

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन उपवन मन्दिर

बेलगछिया रोड पर स्थित श्री पार्श्वनाथ उपवन मन्दिर अखिल भारतीय ख्याति का मन्दिर है। पहले इस स्थान पर सेठ हुलासीरायजी का बगीचा था। बाद में यहाँ यह मन्दिर बन गया। इस मन्दिर का नक्शा विक्टोरिया मेमोरियल बनाने वाले इंजीनियर ब्राउन साहब से बनवाया गया था। मन्दिर के सामने सुन्दर सरोवर है। अब भव्य मानस्तम्भ भी बन गया है। इसे देखने के लिए देश-विदेश के काफी पर्यटक आते रहते हैं। कृत्रिम पहाड़, झरने और फव्वारे से इसकी शोभा बहुत बढ़ गई है।

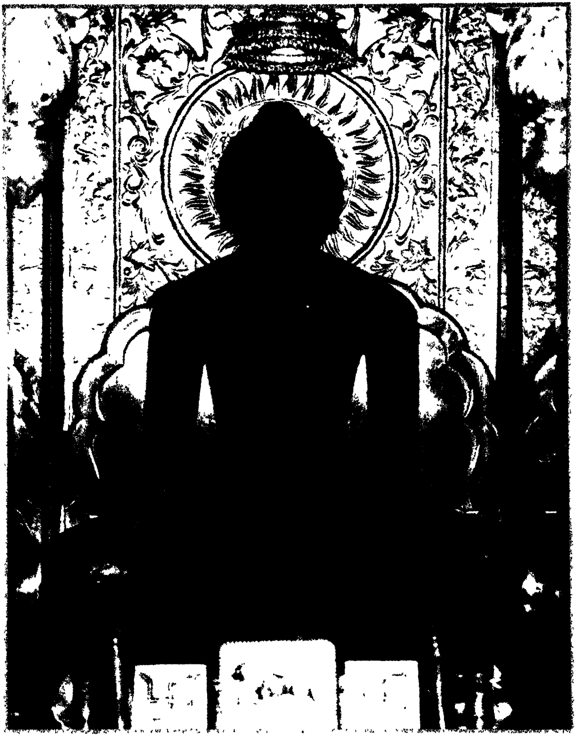
आवरण के पृष्ठ भाग पर भारत-विख्यात 'बेलगछिया मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध इसी मन्दिर की सौन्दर्यपरक एक भव्य झलक प्रस्तुत की गई है।





भारत-विख्यात एक सातिशय जिनबिम्ब

भगवान महावीर



स्वर सप्त समस्त कला रागिनी, धूप दीप तुम्हारे ही नाम करूं।
तुम दीन दयालु कृपालु महा, अब कौन सा नाम सुनाम धरूं।।
वन्दना हीन हूं अनिरंजन हूं, नित भोर उठूं यही काम करूं।
पद पंकज शीश नवाय तुम्हें, महावीर प्रणाम, प्रणाम करूं।।

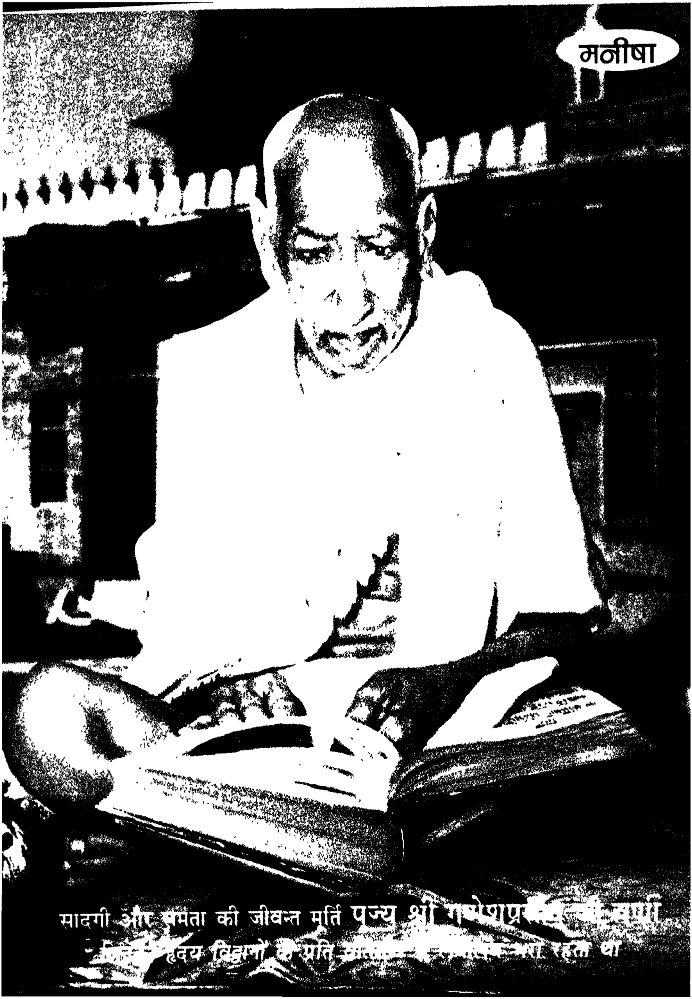


ऐलक श्री सन्मतिसागरजी
(आचार्यश्री के गृहस्थावस्था के छोटे भाई)

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य
चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी

पूज्य मुनि श्री वर्धमानसागरजी
(आचार्यश्री के गृहस्थावस्था के बड़े भाई)

सच है यदि सूरि शान्तिसागर, संयम का रूप नहीं धरते, जो अपनी काया से युग का, कायाकल्प नहीं करते।
मानवता मान नहीं पाती, यदि जीवित मन्त्र नहीं होते, यह भारत गारत बन जाता, यदि ऐसे संत नहीं होते।।


मनीषा
सादगी और समता की जीवन्त मूर्ति पूज्य श्री
हृदय विद्वानों के प्रति
रहता था

प्राचार्यजी के प्रेरणास्रोत

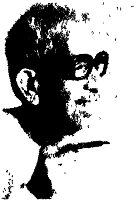
देश के शीर्षस्थ विद्वान्

(जिनका प्रशस्त आशीर्वाद उन्हें सतत प्राप्त रहा)


विद्वत्सम्राट् प माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य


वादीभकेसरी प मक्खनलालजी न्यायालंकार


विद्यावारिधि प श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री


साहित्याचार्य प. पन्नालालजी शास्त्री


सिद्धान्तज्ञ प कैलाशचन्द्रजी शास्त्री


न्यायाचार्य डा दरबारीलालजी कोठिया


व्याकरणाचार्य प वंशीधरजी शास्त्री


सरस्वती के वरद पुत्र प. जगन्मोहनलालजी शास्त्री


काव्यतीर्थ प कुंजीलालजी शास्त्री


मनीषा
जिन्हें अर्पित है यह अभिनन्दन ग्रंथ

सम्पादक मण्डल



परामर्श-प्रमुख
प. श्री नीरज जैन



प्रधान सम्पादक डा. भागचन्द जैन 'भागेन्दु'



प्रबन्ध सम्पादक डा. चिरंजीलाल बगड़ा

सम्पादक मण्डल



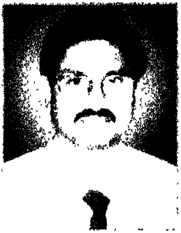
डा. जयकुमार जैन



डा. शीतलचन्द्र जैन



डा. कपूरचन्द जैन



डा. अनुपम जैन



श्री कपूरचन्द पाटनी



श्री अजित पाटनी (विशिष्ट सहयोगी)



प. लालचन्द जैन 'राकेश'



प्रतिष्ठाचार्य प. विनोदकुमार जैन

ग्रन्थ-लोकार्पण समारोह के सूत्रधार

आचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

श्री भा. दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा, पश्चिम बंगाल शाखा-कोलकाता



केन्द्रीय अध्यक्ष
श्री निर्मलकुमार सेठी



स्वागताध्यक्ष
श्री मदनलाल बज



बगाल प्रान्तीय अध्यक्ष
श्री भागचन्द पहाड़िया



कार्याध्यक्ष
श्री कैलाशचन्द बड़जात्या



कार्याध्यक्ष
श्री हुकमीचन्द सरावगी



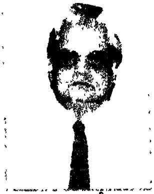
महामत्री
श्री महावीरप्रसाद गगवाल



कोषाध्यक्ष
श्री पवन मोदी



सयुक्त मत्री
श्री अजीत पाटनी



सयुक्त मत्री
श्री प्रकाशचन्द पाटनी



सयुक्त मत्री
श्री अजीत पाण्डया

मनीषा

(विद्या-विनय-विवेक के जीवन्त व्यक्तित्व की यशोगाथा)

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ

परामर्श-प्रमुख

नीरज जैन

प्रधान सम्पादक

डा. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु

प्रबंध सम्पादक

डा. चिरंजीलाल बगडा

सम्पादक-मंडल

डा. जयकुमार जैन　　डा. शीतलचन्द्र जैन

डा. कपूरचन्द्र जैन　　डा. अनुपम जैन

श्री कपूरचन्द्र पाटनी

सह-सम्पादक

पं. लालचन्द्र राकेश　　प्रतिष्ठाचार्य पं. विनोदकुमार जैन

विशेष सहयोगी

श्री अजित पाटनी

-: प्रकाशक :-

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा (पश्चिम बंगाल), कोलकाता

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

मनीषा :
विद्या-विनय-विवेक के जीवन्त व्यक्तित्व की यशोगाथा
प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रसंग :
परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज
131वाँ जन्म जयन्ती वर्ष (संयम वर्ष)

प्रकाशन वर्ष :
वीर निर्वाण सम्वत 2530, 25 दिसम्बर 2003

प्रथम संस्करण :

लोकार्पण-प्रसंग :
प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का 71वें जन्म-जयन्ती वर्ष में प्रवेश

लोकार्पण-स्थान :
कला मन्दिर प्रेक्षागृह, कोलकाता

ग्रन्थ प्राप्ति-स्थान :
- श्री भा. दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा
  68 नलिनी सेठ रोड, कोलकाता-700 007, दूरभाष : 9831076001
- श्री उपेन्द्रकुमार जैन
  जनता प्रॉविजन्स
  104, नई बस्ती, फिरोजाबाद (उ.प्र.)- 283203

सहयोग : पांच सौ रुपये मात्र

अक्षर संयोजन : शकुन प्रिन्टर्स, 3625 दरियागंज, नई दिल्ली

मुद्रक : शकुन प्रिन्टर्स, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशक :
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा
(पश्चिम बंगाल शाखा), कोलकाता
श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

!! समर्पण !!

जैनदर्शन के उद्‌भट विद्वान् एवं व्याख्याता
प्रख्यात शिक्षाविद्, साहित्यानुरागी एवं धर्म-मर्मज्ञ
शताधिक वर्ष प्राचीन
महासभा के मुखपत्र 'जैनगजट' के यशस्वी सम्पादक
जैन विद्वानों की प्रतिनिधि संस्था
श्री भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद के लोकप्रिय अध्यक्ष
अनेक मानद उपाधियों से अलंकृत
अनेकानेक पुरस्कारों से सम्मानित
निर्लोभ, निःस्वार्थ एवं समन्वयवादी प्रवृति के धनी
विद्या, विनय और विवेक की साकार मूर्ति
समस्त जैन समाज की आशाओं के केन्द्र

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन

के
कर-कमलों में
उनके कृतित्व, कर्तृत्व और व्यक्तित्व की यह यशोगाथा

'मनीषा'

सादर-सविनय समर्पित

गुणानुरागी :
'मनीषा' सम्पादक-मण्डल
अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा (पश्चिम बंगाल)
एवं समस्त शुभेच्छुगण!

स्थान :
कला मन्दिर प्रेक्षागृह, कोलकाता
दिनांक : 25 दिसम्बर, 2003

देव-शास्त्र-गुरु के आस्थावान उपासक, जिनवाणी के प्रभावक प्रवचनकार एव जेन जगत के लोकप्रिय सुलेखक, [illegible]
विद्वत्‌शिरोमणि प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन, फिरोजाबाद के कर-कमलो में सादर सविनय समर्पित

-: प्रशस्ति-पत्र :-

हे सरस्वती के वरद पुत्र!

कल्मषहारिणी, परम सौख्य-प्रदायिनी, भगवती जिनवाणी सरस्वती की अहर्निश साधना में तन्मय रहकर आपने जो वरदान प्राप्त किया है, वह आपकी सुमधुर, सरस एव सुश्राव्य वाणी से मुखरित होकर श्रोताओ के हृदय कमल को प्रफुल्लित, सुरभित करती है। अगम, अपार एव अगाध साहित्य-सागर के आलोड़न एव मन्थन से आपने जो अमृत्व प्राप्त किया है, वह आपकी वाक् निर्झरिणी से नि सृत होकर अनेक शुष्क मानस प्रदेशो को आप्लावित एव अनुप्राणित कर देती है। आप वास्तव मे सरस्वती के वरद् पुत्र, कुशल लेखक एव प्रभावी वक्ता हैं। तथा निर्विवाद विद्वत्ता के सर्वमान्य व्यक्तित्व है।

हे वाणीभूषण, व्याख्यान-केसरी!

प्राच्य विद्या विशारदो की मणिमाला की आप दिव्य मणि है, भारतीय सस्कृति के जैन तत्त्वज्ञान को उजागर करनेवाले अनुपम रत्न है। शान्त एव सस्मित होने के साथ ही अद्‌भुत क्षमता के धारी है। आपकी कृतियो एव सेवाओ का जो बहुमान राष्ट्रीय एव सामाजिक स्तर पर हुआ है, वह अतुलनीय है, फिर भी आपमें सरलता एव निराभिमानता व्याप्त है। 'विद्या ददाति विनय'—विनय एव विवेक आपके स्वाभाविक गुण है।

हे समाज-विभूषण, सिद्धान्त-रत्न!

पूज्य साहित्य मनीषियों, विद्वानों का स्नेह आपको प्राप्त रहा है, उन्हीं की प्रेरणा से हजारो-हजार छात्रो एव समाज के श्रावको को ज्ञान-दान देकर उनके जीवन को प्रशस्त मार्ग पर आरोहित कर आपने अनुपम कार्य किया है। पचास वर्षो के शिक्षा एव सेवा के साधना काल मे आपने जैन सस्कृति के सरक्षण-सवर्धन का जो महत् कार्य सम्पादित किया है, वह अप्रतिम है। आपकी यह कर्मठता समाज-कल्याण की आधारशिला है।

हे विद्या-वाचस्पति!

सत्तर वर्ष की वय में शिक्षा, स्वाध्याय तथा साहित्य उपासना की गौरवपूर्ण अर्धशताब्दी के शुभ अवसर पर आज आपका अभिनन्दन कर हम स्वय कृतार्थ हुए हैं। हितोपदेशी भगवान महावीर की प्राणिमात्र के लिए हितकर वाणी को अपने सरल-सरस और हृदयस्पर्शी उद्‌बोधनो के द्वारा जन-जन तक पहुँचाने की आपकी जीवन-व्यापिनी श्रुतसाधना के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु प्रकाशित विद्या-विनय-विवेक के जीवन्त व्यक्तित्व की यशोगाथा 'मनीषा' के समर्पण-समारोह के मागलिक अवसर पर आपको

'स्याद्वाद-वारिधि'

की मानद उपाधि से अलकृत करते हुए हम स्वय को गौरवान्वित अनुभव करते हैं एव आपके स्वस्थ, सुखी एव यशस्वी जीवन की मगल कामना करते है।

जैन जयतु शासनम्।

हम हैं आपके गुणानुरागी
'मनीषा' सम्पादक-मण्डल
अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति
श्री भा दि जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा (पश्चिम बंगाल)
एव समस्त कोलकाता दि. जैन समाज

गुरुवार,
दि 25 दिसम्बर 2003
स्थान कलामदिर प्रेक्षागृह, कोलकाता

सम्पादकीय

प्राचार्य पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ 'मनीषा' को लोकार्पित करते हुए हमें सातिशय प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यतः सुधीजनों, परमपूज्य सन्तों, राष्ट्र नेताओं, सामाजिक कर्णधारों और विविध क्षेत्रों में अपने प्रशस्त कृतित्व से सम्पूर्ण वसुन्धरा को एवं चिन्तन को महिमा-मण्डित करनेवालों का अभिनन्दन सदैव स्वागतेय होता है। इसी दैदीप्यमान मणिमाला में विगत अर्द्धशताब्दी से भी अधिक समय से· जैनधर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास और समाज के साथ-साथ राष्ट्रीय आदर्श तथा वैचारिक औदार्य के संवर्द्धन में सन्नद्ध पण्डित-प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन सम्प्रति समग्र जैन जगत् में विख्यात मनीषी हैं। आर्षमार्गी विद्वत्परम्परा में अग्रगण्य प्राचार्य जी को साधु और श्रावक--दोनों का विश्वास एवं सम्मान प्राप्त है। प्राचार्यजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन श्रुत-देवता की आराधना एवं उसके संरक्षण और प्रचार-प्रसार में समर्पित कर दिया है।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का जन्म 31 दिसम्बर 1933 को उत्तर प्रदेश में आगरा जिला के जटौआ ग्राम में हुआ। आपके पिता प्रख्यात प्रतिष्ठाचार्य (स्व.) पं. रामस्वरूप जी शास्त्री एवं माता श्री चमेलीबाई जी थीं। विपत्तियों के निकष पर पुरुषार्थ की यशस्विनी विजय के दैदीप्यमान आभा-मण्डल के जीवन्त प्रतीक श्री नरेन्द्रप्रकाशजी ने अपनी शिक्षा पूर्ण करके फिरोजाबाद के श्री पी.डी. जैन इण्टर कालेज में 1953 से शिक्षकीय कार्य प्रारम्भ किया। अपनी कर्तव्यनिष्ठा और विद्या-विनय-विवेक-सम्मिश्रित योग्यता के आधार पर प्रोन्नत होते हुए वे 1971 में इसी कालेज के प्राचार्य-पद पर अधिष्ठित हुए। इस पद पर इक्कीस वर्ष (1971-1992) की अनवरत शिक्षा-सेवा के पश्चात् वह 1992 में गौरव-मण्डित होते हुए सेवा-निवृत्त हुए।

अपने शिक्षकीय दायित्वों के साथ जनता-जनार्दन और राष्ट्रीय हित की गतिविधियों में श्री नरेन्द्रप्रकाशजी निष्ठापूर्वक प्रवृत्त रहे। ऐसे कार्यो में उनकी संगठनक्षमता, नेतृत्व गुण और सृजनशीलता का निदर्शन सर्वतोभावेन अनवरत सहज ही होता रहा। सांस्कृतिक चेतना से संवलित उनकी वाणी ने समाज को संस्कारित किया, लेखनी ने शाश्वत तथ्यों को मूर्तमन्त किया और उनकी चर्या ने दीप-स्तम्भ का कार्य किया। एक दर्जन से अधिक रचनाओं के यशस्वी लेखक प्राचार्य जी अच्छे कवि भी हैं। उनकी भाषा सहज, सरल और प्रमोद गुण से परिपूर्ण होती है। वे अनेक पत्र-पत्रिकाओं के लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक भी हैं। 'जैनगजट' के सम्पादकीय अग्रलेखों की लोग उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी अपनी सादगी, सरलता और निश्छल व्यवहार के कारण सर्वप्रिय हैं। बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्कों के प्रति सद्भाव और छोटों के प्रति वात्सल्य उनके आचरण के अभिन्न अंग है। राष्ट्र की अनेक शीर्षस्थ संस्थाओं ने उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित किया है। वे समय-समय पर अनेक महान् उपाधियों से भी अलंकृत किये गये हैं। उन्हें प्राप्त पुरस्कारों, सम्मानों, अलंकरणों एवं अभिनन्दनों की लम्बी सूची है।

समग्र राष्ट्र में विविध प्रसंगों पर पण्डित-प्रवर श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन के व्यक्तित्व, वैदुष्य और कृतित्व को अनेकशः सम्मानित किया है, तथापि उनके प्रेरणास्पद व्यक्तित्व और असाधारण वैदुष्य के अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन की आयोजना शेष थी।

इस मांगलिक कार्य का प्रकल्प और संकल्प एक बहुत बड़े समारोह के अवसर पर कोलकाता मे श्री निर्मलकुमार जी सेठी की अध्यक्षता में देश के कोने-कोने से एकत्रित प्रतिनिधि-महानुभावों की एक असाधारण सभा में किया गया। एतदर्थ अखिल भारतीय अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति एवं सम्पादक मण्डल का गठन किया गया।

सम्पादक मण्डल की दमोह, कोलकाता, फिरोजाबाद, कुण्डलपुर (नालन्दा) और दिल्ली में महत्वपूर्ण बैठकें सम्पन्न हुईं। सम्पादित सामग्री के सुरभित सम्पुट के रूप में प्राचार्य जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से अभिमण्डित 'मनीषा' का यह पुष्प-गुच्छ माननीय प्राचार्य श्री के इकहत्तरवें वसन्त में पदार्पण के मांगलिक अवसर पर दिनांक

25 दिसम्बर 2003 को कोलकाता में उन्हें त्रिदिवसीय विभिन्न धार्मिक, सामाजिक आयोजनों के साथ समर्पित होने जा रहा है।

यह अभिनन्दन ग्रन्थ

'मनीषा' में रचना के मूल रूप और रचनाकार के मूल अभिप्राय को अक्षुण्ण रखते हुए अनेक रचनाओं में आवश्यक परिवर्तन/परिवर्द्धन और संशोधन करने पड़े हैं। सम्पादक का कार्य दुष्कर होता है। उसे अनेक लता-पादपों से विविध प्रकार के पुष्प चयन कर एक मनोरम माला में गूंथने होते हैं। हमने भी अपने सहयोगी सम्पादकों के साथ परामर्शपूर्वक यथासम्भव रुचिकर रचनाओं का चयन किया है। वे कैसी, क्या हैं, यह निर्णय सुधी पाठक ही करें। 'मनीषा' में प्रकाशनार्थ देश के कोने-कोने से बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई, किन्तु ग्रन्थ की सीमित पृष्ठ संख्या के कारण 'विविधा' खण्ड हेतु अनुरोधपूर्वक प्रांप्त की गयी कुछ सामग्री हार्दिक इच्छा होते हुए भी प्रकाशित नहीं कर सकने का सन्ताप मन में बना हुआ है। एतदर्थ माननीय विद्वान् लेखकों से हम विनम्र क्षमाप्रार्थी हैं।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य

इस 'मनीषा' अभिनन्दन ग्रन्थ में माननीय प्राचार्य जी के जीवन, व्यक्तित्व, वैदुष्य और सृजनशीलता के साथ-साथ उनके प्रति शुभाशीष, शुभ कामनाएँ, विनयांजलि और संस्मरणों का समावेश तो किया ही है, उनके कृतित्व को भी समीक्षा के निकष पर परखा गया है। कुछ महत्वपूर्ण विद्वानों/विचारकों/समाज व; कर्णधारों से माननीय प्राचार्य जी के सम्बन्ध में साक्षात्कार लेकर भी इसमें संजोया गया है।

सर्वप्रिय प्राचार्य जी को यहाँ सम्पूर्ण भारतवर्ष के परमपूज्य आचार्य, उपाध्याय, साधु-सन्तों आर्यिका माताजी, ऐलक, क्षुल्लक महाराजों ने अपने मंगल आशीषों से अभिसिंचित किया है। वहीं कर्मयोगी स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक महास्वामीजी, श्रवणवेलगोला तथा मूडबिद्री एवं अन्य सभी भट्टारकवृन्द तथा धर्मस्थल के राजर्षि डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े सहित राष्ट्र के अनेक प्रमुख जननायकों की शुभकामनाएं तथा बधाई-सन्देश भी प्राप्त हुए हैं।

ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में—मंगल आशीष, सन्देश, सद्भावना, शुभकामना आदि समाविष्ट हैं।

द्वितीय खण्ड में—प्राचार्य जी के प्रति आदरांजलियाँ, हमारे प्रणाम और संस्मरण सगुम्फित हैं।

तृतीय खण्ड में—प्राचार्य जी के आत्मकथ्य, भेंट-वार्ताएँ एवं उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को अभिव्यंजित करनेवाली रचनाओं को संजोया गया है।

चतुर्थ खण्ड में—प्राचार्य जी के साहित्यिक एवं सामाजिक अवदान के विविध पक्षों को रेखांकित किया गया है।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ का पंचम खण्ड विशेषतया तैयार किया गया है, जिसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष में बीसवीं शताब्दी के प्रमुख दि. जैन मनीषियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय समाविष्ट किया गया है। हमारा प्रयत्न था कि इस खण्ड में राष्ट्र के सभी प्रदेशों के दि. जैन विद्वानों का परिचय रहे, किन्तु अनवरत आग्रह के बावजूद अनेक लेखकों की ओर से यथेष्ट सामग्री या तो प्राप्त ही नहीं हो सकी या बहुत विलम्ब से प्राप्त हुई। पुनरपि जो सामग्री दी गयी है, वह राष्ट्रीय क्षितिज पर जैन विद्वत्ता के विविध आयामों को रूपायित करने में समर्थ है।

कृतज्ञता

हम पण्डितप्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी के चिरकृतज्ञ हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण समिति और सम्पादक मण्डल को यह

ज्ञान-यज्ञ सम्पन्न करने की स्वीकृति प्रदान की। हमारी मंगल कामना है कि प्राचार्य जी युग-युग जियें, उन जैसे निःस्पृह, विनयी और सदाचार-प्रवण मनीषी का सान्निध्य प्रत्येक सुधी को प्रमुदित करता है और समाज को मार्गदर्शन देता है।

हमारे अनुरोध पर पूज्य आचार्य भगवन्तों, साधु-सन्तों, आर्यिका माताओं तथा भट्टारकवृन्द ने अपने मंगल आशीष भिजवाकर इस ग्रन्थ को गरिमा-मण्डित किया है। एतदर्थ सम्पूर्ण सम्पादक-मण्डल विनत है।

प्राचार्य जी के द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के समीक्षकों, विद्वान लेखकों, परामर्शदातृ-मण्डल के माननीय सदस्यों और अभिनन्दन ग्रन्थ की प्रकाशन समिति के प्रति सम्पादक-मण्डल हृदय से आभारी है।

विद्यावाचस्पति, सिद्धान्त-रत्न प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी को समर्प्य 'मनीषा' अभिनंदन ग्रन्थ के परामर्श-प्रमुख माननीय पं. नीरज जी जैन, सतना ने समय-समय पर यथावश्यक परामर्श प्रदान कर अनुगृहीत किया है। सम्पादक-मण्डल के सभी सदस्यों ने अकथ्य परिश्रम करके अत्यन्त निष्ठापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन किया है। प्रबन्ध सम्पादक डॉ. चिरंजीलाल जी बगड़ा और प्रकाशन समिति के मन्त्री श्री अजित पाटनी ने सभी कार्य विधिवत् सम्पन्न किये हैं। इन सभी के सहयोग की शाब्दिक अभिव्यक्ति औपचारिकता ही होगी। वस्तुतः यह महनीय कार्य सभी के समवेत सहयोग और सद्भावना की मूर्तमान अभिव्यंजना ही है। यह उनका कर्तव्य भी था।

मनीषा की पाण्डुलिपि तैयार करने में सर्वश्री उमेश जैन, डॉ. विमला जैन, श्री अनूपचन्द्र जी जैन एडवोकेट (सभी फिरोजाबाद) तथा दमोहस्थ श्री महेन्द्र सिंघई, सुश्री रुचि जैन एवं हमारी शोध छात्राओं सुश्री रेखा जैन और लीना पटवा ने अपना सहयोग प्रदान किया है। इनके प्रति 'मनीषा'-परिवार के अनेक साधुवाद और मंगल कामनाएं।

इस ग्रन्थ का अक्षर-संयोजन तथा मुद्रण शकुन प्रिंटर्स, दिल्ली के अनुभवी मुद्रण-कला-विशेषज्ञ श्री सुभाषचन्द्र जैन ने अत्यन्त लगन एवं परिश्रम के साथ करके ग्रन्थ को आकार प्रदान किया है। इसके लिए उन्हें तथा उनके सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

अपनी सीमाओं और ग्रन्थ सम्बन्धी त्रुटियों/कमियों से हम भली-भांति परिचित है। हम जानते हैं कि यह ग्रन्थ श्रद्धेय प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाशजी जैन जैसे अग्रगण्य मनीषी के बहुआयामी विराट् व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं बन सका है। हमें संकोच है कि इच्छा रहते भी इस 'मनीषा' अभिनन्दन ग्रन्थ को सर्वांगपूर्ण नहीं बना सके, इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। इस ग्रन्थ में प्रमादवश जो कमियाँ दृष्टिगोचर हों, वे हमारी हैं। अन्त में हमारा अनुरोध है कि—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

जन-जन के प्रिय, यशस्वी महामनीषी, पण्डितप्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन का जीवन और कृतित्व भारतीय मेधा को स्फूर्त करे एवं प्रेरणा स्रोत बने, इस भावना के साथ यह 'मनीषा' अभिनन्दन ग्रन्थ उनके कर-कमलो में सविनय समर्पित है।

28, सरोज सदन,
सरस्वती नगर,
दमोह, म.प्र. 470661
दिनांक 25 दिसम्बर 2003 ई.

विदुषां वशंवदः
समस्त सम्पादक मण्डल की ओर से
प्रो. डॉ भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु
प्रधान सम्पादक

□

हार्दिक आभार

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन का कोलकाता में कई बार शुभागमन हुआ है—कभी पूर्यषण-प्रवचनों के लिए तो कभी शिक्षण-शिविरों के निमित्त से। सन् 1995 में जैन विद्वानों की प्राचीनतम प्रतिनिधि संस्था 'श्री भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद' के अध्यक्ष-पद का गुरुतर दायित्व भी उन्होंने यहीं स्वीकार किया था। बार-बार आते-जाते रहने से यहाँ के जैन समाज और उनके बीच गहरे आत्मीय सम्बन्ध बन गए हैं। यहाँ के लोग उनके ओजस्वी एवं सटीक प्रवचन-शैली के जबरदस्त फैन हैं। प्राचार्यजी भी कोलकाता को अपना दूसरा घर कहा करते हैं।

अप्रैल 2002 में यहाँ प्रबुद्ध जैन विचार मंच की ओर से विविध क्षेत्रों में सेवारत प्रतिभाओं को 'जैन राष्ट्र-गौरव' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। एक निर्णायक के नाते प्राचार्यजी का हमारे आमन्त्रण पर यहाँ पधारना हुआ। उसी समय यहाँ के समाज-प्रमुखों की एक अनौपचारिक बैठक में जैनधर्म के इस गहन अध्येता विद्वान का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान करने का निर्णय सर्वसम्मति से लिया गया। उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और कर्तृत्व पर रोशनी पड़ सके, इस भावना से एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का भी संकल्प पारित किया गया।

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि आज कोलकाता समाज के उस संकल्प की पूर्ति हो रही है। हम आभारी हैं ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक डॉ. भागेन्दुजी के, जिन्होंने प्रारम्भ में फोल्डर छापकर, समाचार पत्रों में विज्ञप्तियाँ देकर प्राचार्यजी के शुभेच्छुओं से उनके सन्दर्भ में शुभ कामनाएँ, संस्मरण, काव्यांजलियाँ आदि आमन्त्रित कीं और अल्प समय में ही भारी मात्रा में ये प्राप्त भी हो गईं। उनके इस श्रम की हम हृदय से सराहना करते हैं। ग्रन्थ को स्थायी महत्व प्राप्त हो, इस भावना से विशिष्ट आलेखों के लिए भी सुधीजनों से प्रार्थना की गई, जिनका शीघ्र ही सकारात्मक परिणाम सामने आने लगा। हम उन सभी सुधीजनों के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

सामग्री तो इकट्ठी हो गई, किन्तु उसके सम्पादन में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से विलम्ब हुआ। हम यह घोषित कर चुके थे कि 31 दिसम्बर के आसपास ग्रन्थ का लोकार्पण-समारोह कोलकाता में आयोजित किया जाएगा। हमारी यह सोच है कि किसी भी निर्णय के क्रियान्वयन में ज्यादा देरी होने से उसकी चमक कम हो जाती है। बार-बार निवेदन करने पर अधिकांश सामग्री हमें सुलभ करा दी गई। अब समस्या यह थी कि समय बहुत कम है, वह छपे कैसे' हमारी इस चिन्ता को दूर किया श्रीयुत् भाई सुभाषजी (शकुन प्रिन्टर्स, दिल्ली) ने। उन्होंने बड़ी फुर्ती से सम्पूर्ण मैटर कम्पोज कराकर हमारे हाथों में सौंप दिया। उनके इस सहज सौजन्य के प्रति हम अपना अनुग्रह व्यक्त करते हैं।

सबसे बड़ी समस्या थी, इस विशालकाय ग्रन्थ के कम्पोज्ड मैटर के प्रूफ-संशोधन की। सम्पादन से भी ज्यादा जटिल कार्य यह है। प्रकाशकों का कहना तो यह है कि कोई नई किताब लिखना आसान है, किन्तु उसके प्रूफ देखना बहुत कठिन है। प्रूफ-संशोधन एक बड़ा ही श्रमसाध्य कार्य है। हम बड़े गौरव के साथ यह कहना चाहते हैं कि इस ग्रन्थ में सम्पादक-मण्डल के हमारे आदरणीय विद्वज्जनों सर्वश्री डॉ. शीतलचन्द्र जी जैन (जयपुर), डॉ. जयकुमारजी जैन (मुजफ्फरनगर), डॉ. कपूरचन्दजी जैन (खतौली) एवं प्रतिष्ठाचार्य श्री विनोदकुमारजी (रजवांस) ने हमें जो आत्मीयतापूर्ण सहयोग दिया, उसके प्रति हम अपना आभार शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते। इन विद्वानों ने अपने दायित्व-बोध का आदर्श प्रस्तुत करते हुए इस कार्य को सम्पन्न किया।

श्रद्धेय नीरज जी (सतना) ने भी इसके सम्पादन में गहरी रुचि ली। वह फोन पर प्रगति-रिपोर्ट भी लेते रहे तथा उपयोगी सुझाव देकर हमारा मार्गदर्शन भी करते रहे। किन शब्दों में हम उनकी इस कृपा के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करें!

इस कार्य-सम्पादन हेतु हमें दिल्ली में हफ्तों रहना पड़ा। यहाँ हमारे आवास एवं भोजनादि की सुन्दर व्यवस्था में स्थानीय जैन भवन (फुहारा) एवं जैन बालाश्रम (दरियागंज) के व्यवस्थापकों तथा स्थानीय विद्वान डॉ. सुरेशचन्द्रजी जैन (सम्पादक, जैन प्रचारक) ने जो आत्मीय सहयोग दिया, उसके प्रति हम अनुगृहीत हैं।

विनीत
चिरंजीलाल बगड़ा,
अजित पाटनी

कोलकाता
2 दिसम्बर, 2003

अध्यक्ष की कलम से :-

हम गौरवान्वित हैं!



अनेक महापुरुषों की चरण-रज से पवित्र नगरी फिरोजाबाद जो विविध सांस्कृतिक चेतना की संगम स्थली रही है तथा इतिहास के स्वर्णिम काल में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी, आज भी अपनी गौरवमय परम्परा को यथावत बनाए हुए हैं। विद्वद् मनीषियों, साहित्य सृष्टाओं एवं अध्यात्म प्रेमियों की मणिमाला के जाज्वल्यमान रत्न प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने जो कांति और ज्योति प्रकाशित की है, उससे प्रतिभासित होकर समाज का जनमानस अपने मनोविकारों को वितीर्ण करने में सक्षम हो रहा है।

आशाओं एवं अभिलाषाओं की आकांक्षा न रखते हुए उन्हें संयमित एवं नियंत्रित कर, जिस निष्काम भाव से आप समाज की वर्षो से अपनी चतुरानुयोगमयी वाणी द्वारा, प्रवचनों द्वारा स्वाध्याय की लौ प्रज्वलित करते हैं, दिशा बोध करा रहे हैं, वह स्पृहणीय एवं श्लाघनीय है। लक्ष्मी की चकाचौंध से ग्रसित होकर कतिपय विद्वान जो आज समाज को भ्रमित एवं पददलित कर रहे हैं, आप उनकी प्रखर प्रताड़ना कर समीचीन आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं। देव शास्त्र एवं गुरु परम्परा के अनुसर्ता बनने हेतु आपका प्रेरणापूर्ण उद्घोष सागर की तरह गंभीर गर्जना के साथ होता है।

जिनवाणी अगम-अपार है। उसका जितना मंथन किया जाएगा, मधुर रसास्वादन प्राप्त होगा। भा. दि. जैन महासभा के मुखपत्र जैन गजट के माध्यम से आप सद्ज्ञान एवं आचार-विचार का प्रचार कर रहे हैं। कर्मयोगी का सा आपका जीवन सतत् गतिमान रहकर समीचीन सत्य एवं धर्म मार्ग को प्रवर्धित करता रहा है। अध्ययन के साथ साहित्य-सृजन की आपकी अभिरुचि अभिनन्दनीय है।

आपकी ओजपूर्ण वाणी से समाज में नवचेतना का संचार हुआ है। प्रखर प्रवचन शैली से युवा वर्ग सम्मोहित हो गया है। मानवीय जीवन के गुण निश्छलता, सरलता, निस्पृहता, निष्पक्षता तथा प्रखरता आदि से आप समलंकृत हैं।

श्री वर्धमान महावीर प्रभु के वीतराग शासन को प्रवर्द्धमान करने में आप यथाशक्ति प्रभावना करते रहें तथा समाज की देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परम्परागत श्रद्धा एवं भक्ति को अनुप्राणित करते रहे। अभिनन्दन की इस बेला में इन्हीं श्रद्धा-पुष्पों के साथ हम आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए आपके दीर्घायु यशस्वी जीवन की कामना करते हैं।

अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन में हमारे सभी सहयोगियों पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं, प्रकाशन समिति के सदस्यों, सम्पादक मण्डल के वरिष्ठ विद्वानों तथा ग्रन्थ प्रकाशन में सहयोगी दातारों के प्रति हम हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हैं जिनके सहयोग के बिना यह कार्य दुष्कर था।

कोलकाता गौरव पूज्य आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज कहा करते थे कि जो व्यक्ति अथवा संस्था समर्पित, निष्ठावान, चारित्रवान विद्वानों का सम्मान करती है वह संस्था अपना गौरव बढ़ाती है।

इसी भावना के फल-स्वरूप कोलकाता समाज आज महासभा के तत्वावधान में विद्वानों के सम्मान हेतु 'मनीषा' के द्वारा अपने श्रद्धा पुष्प अर्पित करने का प्रयास कर अपने को गौरवान्वित महसूस करता है।

अध्यक्ष
भागचन्द पहाड़िया
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा
(पश्चिम बंगाल शाखा) कोलकाता

कार्याध्यक्ष की कलम से :-



''स्वदेशे पूज्यते राजा - विद्वान सर्वत्र पूज्यते''

भारतीय संस्कृति को पुष्पित एवं पल्लवित करने में जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण अवदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति में विद्वानों का सम्मान महत्वपूर्ण स्थान रखता है, कहते भी हैं–''स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते'' – विद्वानों का आदर सम्मान देश में ही नहीं सर्वत्र होता है। वे ज्ञान के प्रकाशपूंज है।

हमारे समाज में वर्तमान में एकमात्र एक ही विद्वान व्यक्तित्व ऐसा है जिनको सभी आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और वे हैं हमारे श्रद्धेय प्राचार्य जी। हमें अत्यन्त खुशी एवं गौरव है कि समाज के ज्ञानवृद्ध विद्वान मनीषी प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी को आज हम ''मनीषा'' ग्रन्थ समपर्ण करने जा रहे हैं।

ग्रन्थ के नाम पर अनेकों विद्वानों तथा सम्पादक मण्डल ने इस पर गहन चर्चा करके इसका नाम ''मनीषा'' रखा। ''मनीषा'' का तात्पर्य ''बुद्धि'' से है, जो प्राचार्य जी के व्यक्तित्व पर अक्षरशः खरा उतरता है। हम कोलकाता वासियो को सदैव यह अभिमान रहेगा कि हम ऐसे व्यक्तित्व के दिशा निर्देश में अपने धार्मिक, सामाजिक एवं शिक्षण शिविरों के आयोजन करते हैं, जिनकी उपस्थिति मात्र से ही ज्ञान दीप प्रज्वलित होने लगते हैं।

मनीषा के सम्पादन, प्रकाशन एवं समपर्ण समारोह के प्रत्येक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोगी को मैं हृदय से हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ समाज के समक्ष प्रस्तुत हो सका है। ग्रन्थ में प्राचार्य जी के व्यक्तित्व कृतित्व के अलावा बीसवीं शताब्दी के मनीषी विद्वानों का संक्षिप्त परिचय इस ग्रन्थ में चार चाद लगा रहा है।

ग्रन्थ के सम्पादन प्रकाशन हेतू सम्पादक मण्डल की अनेक बैठकें कोलकाता, फिरोजाबाद, कुण्डलपुर में आयोजित हुई जिसमें सभी विद्वानों ने उपस्थिति होकर ग्रन्थ को आकार देने में अहम् भूमिका निभाई है। मैं उन सभी के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ।

प्राचार्य जी के व्यक्तित्व एंव कृतित्व से अनेक व्यक्ति लाभान्वित हुए है। सैकड़ों छात्रों को प्राचार्य जी ने सन्मार्ग पर लगाया है। वर्षों तक कॉलेज के प्राचार्य रहकर अनुशासन, शिक्षा सदाचार का जो पाठ आपने पढ़ाया है वह आज भी आपके छात्रों में देखा जा सकता है। कोलकाता में आपका बराबर समागम मिलने से ही यहां की समाज स्वाध्याय प्रेमी बनकर ज्ञानार्जन में तत्पर रहती है।

प्राचार्यजी के व्यक्तित्व की यह छाप अमिट बनी रहे। समाज उनसे लाभान्वित होती रहे, उनसे प्रेरणा प्राप्त करती रहे, इसी उद्देश्य से ''मनीषा'' का प्रकाशन अपने आप में एक ''मील का पत्थर'' साबित होगा ऐसी आशा है।

कैलाशचन्द बड़जात्या
कार्याध्यक्ष
श्री भा. दि. जैन महासभा
पश्चिम बंगाल, कोलकाता

□

महामंत्री का प्रतिवेदन :-

ज्ञान दीप को प्रज्वलित बनाये रखेंगें



श्री भा. दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा की पश्चिम बंगाल प्रान्तीय शाखा द्वारा हमें "मनीषा" ग्रन्थ प्रकाशन विमोचन एवं समपर्ण करते हुए अतीत प्रसन्नता एवं गौरव की अनुभुति हो रही है महासभा की पश्चिम बंगाल शाखा सदैव ही विद्वानों के सम्मान में अग्रणी रही है। शिक्षण प्रशिक्षण शिविर, धार्मिक शिक्षण शिविर एवं दशलक्षण में विद्वानों को आमंत्रित कर महासभा ने ज्ञान दीप को सदैव प्रज्वल्लित बनाये रखने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। महासभा ने कोलकाता के स्थानीय मन्दिरों में सामुहिक रूप से धार्मिक शिक्षण शिविर के आयोजनों से महती धर्म प्रभावना की है। पिछले वर्ष कोलकाता में आयोजित अखिल भारतीय प्रतिभा सम्मान समारोह के अवसर पर उपस्थित महासभा के केन्द्रीय एवं प्रान्तीय पदाधिकारियों ने "मनीषा" ग्रन्थ का प्रकाशन कर श्रद्धेय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का अभिनन्दन करने का निश्चय सर्वसम्मति से किया एवं इस हेतू सम्पादक मण्डल तथा प्रकाशन समिति का गठन कर ग्रन्थ प्रकाशन की तैयारियां प्रारम्भ कर दी गई। एक वर्ष की समयावधि के अन्दर ही सम्पादक मण्डल ने ग्रन्थ प्रकाशन कर अपने समर्पित आदर्श दायित्व बोध को प्रस्तुत किया है। आज हमें "मनीषा" को श्रद्धेय प्राचार्य जी के कर-कमलों में समर्पित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

इस अवसर पर पश्चिम बंगाल की महासभा ने अनेक सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संयोजन भविष्य में करने का प्रण लिया है जिसमें प्रमुखतया प्रतिवर्ष पांच मेधावी छात्रों को उच्चशिक्षा हेतू छात्रवृति प्रदान करना, कोलकाता एवं बंगाल में धार्मिक शिक्षण शिविरों का निरन्तर आयोजन करना, धर्म शिक्षण हेतू स्थाई रूप से यहां विद्वान उपलब्ध कराना तथा शिक्षा हेतू आगत विद्यार्थियों के आवास भोजन की व्यवस्था हेतू छात्रावास की स्थापना करना प्रमुख है।

महासभा के सभी कार्यक्रमों एवं आयोजनों में कोलकाता समाज का तन-मन-धन से सक्रिय सहयोग ही हम सभी कार्यकताओं का सम्बल है केन्द्रीय पदाधिकारियो सर्व श्री निर्मलकुमार जी सेठी, चैनरूपजी बाकलीवाल, डुगंरमलजी गंगवाल, चान्दमल जी पाण्डया, त्रिलोकचन्द जी सेठी, हुकमीचन्द जी पाण्डया, मदनलाल जी वज, राजकुमार जी सेठी एवं हमारे सभी सहयोगी कार्यकर्ताओं का सहयोग एवं प्रेम निरन्तर महासभा को उपलब्ध रहता है।

महासभा मात्र एक संस्था नहीं है। एक सिद्धान्त है हमें महासभा के सिद्धान्तो का पालन एवं उनकी रक्षा करनी है। हमें उसे घर-घर में पहुचाना है। महासभा को सबसे जुड़ना है एवं सभी को महासभा से जोडना है तभी हम समाज में रचनात्मक कार्यो को आगे बढ़ा सकेगें।

"मनीषा" ग्रन्थ के सम्पादन, प्रकाशन तथा समपर्ण समारोह के समस्त सहयोगियो के प्रति हृदय से आभारी हूं जिनके सक्रिय सहयोग के बिना हम इस ज्ञान यज्ञ को मूर्त रूप देने में असमर्थ थे।

श्रद्धेय प्राचार्यजी के दीर्घ यशस्वी जीवन की मंगल कामना करते हुए, कोलकाता समाज को उनका स्नेह पूर्ववत उपलब्ध होता रहेगा इसी आशा के साथ—

25 दिसम्बर 2003
कोलकाता

महावीर प्रसाद गंगवाल
महामंत्री
श्री भा. दि. जैन धर्म संरक्षिणी महासभा
पश्चिम बंगाल, कोलकाता

☐

कोषाध्यक्ष द्वारा आभार :-

सामाजिक गतिविधियां और आपका सहयोग



श्री भा. दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभा की बंगाल प्रान्तीय शाखा द्वारा विभिन्न धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक आयोजनों में समाज का तन-मन-धन से सक्रिय सहयोग प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। समाज के इस सम्बल युक्त अवदान से ही हमें रचनात्मक आयोजनों एवं कार्यक्रमों को करने में संकोच नहीं होता। महासभा के विभिन्न आयोजनों एवं धार्मिक शिक्षण शिविरों में सहयोगियों का सहयोग हमें हरदम उपलब्ध रहता है।

पिछले वर्ष कोलकाता में आयोजित एक भव्य समारोह में आगत विशिष्ट महानूभावों ने प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के अभिनन्दन बाबत 'मनीषा' ग्रन्थ के प्रकाशन का दायित्व बंगाल महासभा को प्रदान किया तो उसके प्रकाशन एवं सम्मान समारोह के आयोजन हेतू आर्थिक सम्बलता प्राप्त करने का दायित्व मुझे दिया गया। मुझे यह कहते हुए अतीत प्रसन्नता एवं गौरव का अनुभव हो रहा है कि कोलकाता के हमारे दातारों ने इस आयोजन के महत्व एवं गरिमा को समझते हुए हमें व्यय की चिन्ता न होने दी एवं यह प्रकाशन तथा आयोजन आज अपनी पूर्ण भव्यता एवं गरिमा से प्रस्तुत कर पाने में हम सभी कार्यकर्ता सफलीभूत हो सके हैं।

कोलकाता समाज विद्वानों के सम्मान एवं उनके प्रति आस्था श्रद्धा रखने में सदैव अग्रणी रहता है, देश के प्रमुख विद्वानों का समागम हमें बराबर मिलता रहता है।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी तो कोलकाता को अपना दूसरा घर ही समझते है उनके दिशा निर्देशन में शिक्षण, प्रशिक्षण शिविर एवं धार्मिक शिक्षण शिविर आदि के आयोजनों से यहां महती धर्म प्रभावना हुई है। हम सभी उनके प्रति कृतज्ञ है एवं अपनी श्रद्धा-आस्था, भावनायें इस ग्रन्थ के प्रकाशन के माध्यम से प्रस्तुत कर अपने को गौरवान्वित महसुस करते हैं।

ग्रन्थ के सम्पादन, प्रकाशन एवं इसके समपर्ण समारोह के आयोजन में सभी-आर्थिक सहयोगकर्ताओं को मैं हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हुआ उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं एवं आशा करता हूं कि आपका सहयोग हमे ऐसे रचनात्मक कार्यो बाबत सदैव उपलब्ध रहेगा।

25 दिसम्बर 2003

पवन मोदी
कोषाध्यक्ष
श्री भा. दि. जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा
पश्चिम बंगाल, कोलकाता

स्वागत है शत बार आपका

-: स्वागतोत्सुक :-

श्री सुरेशकुमार पाटनी (इम्पेक्स), कोलकाता
श्री धर्मेन्द्रकुमार, महेन्द्रकुमार, ज्ञानेन्द्र पाटनी, कोलकाता
श्री अशोककुमार, मनोजकुमार पाटनी, कोलकाता
श्री ज्ञानचन्द सेठी, कोलकाता
श्री श्रवणकुमार सुबोधकुमार जैन (फूलमार्का) कोलकाता
श्री अमरचन्द भागचन्द पहाड़िया, कोलकाता
श्री कैलाशचन्द संदीपकुमार बड़जात्या, कोलकाता
श्री धर्मचन्द पवनकुमार मोदी, कोलकाता
श्री निर्मलकुमार सेठी, लखनऊ
श्री डूंगरमल गंगवाल, दिल्ली
श्री पदमचन्द पाटनी, दिल्ली
श्री राजकुमार बडजात्या, चैन्नई
श्री पुनमचन्द गगवाल, जयपुर
श्री केवलचन्द सुरेशकुमार पाटनी, कोलकाता
श्री मदनलाल मन्नालाल काला, कोलकाता
श्री दानमल अजीतकुमार पाण्डया, कोलकाता
श्री दुलीचन्द सुरेशकुमार सेठी, कोलकाता
श्री मदनलाल बैनाड़ा, आगरा
श्री मदनलाल सुरेशकुमार बज, कोलकाता
श्री हुकमीचन्द सरावगी (पाण्डया), गौहाटी
श्री हंसराज संजयकुमार सेठी, कोलकाता
श्री संतोष सेठी (ATN), कोलकाता
श्री गुलाबचन्द सुरेशकुमार पाटनी, कोलकाता
श्री कैलाशचन्द जैन (भारत ट्रेडर्स), कोलकाता
श्री पुरणमल महावीरप्रसाद काला (दांता), कोलकाता
श्री पुरणमल पवनकुमार पाटनी, कोलकाता
श्रीमती अंगूरीदेवी बाकलीवाल, कोलकाता
मैसर्स जैन रोडवेज, कोलकाता
श्री मोहनलाल सरावगी, पाण्डया, कूचबिहार
श्री वीरेन्द्रकुमार बाकलीवाल, कोलकाता
श्री सोहनलाल मनोजकुमार छाबड़ा, कोलकाता
श्री फुलचन्द पवनकुमार सेठी, (डिमापुर), कोलकाता
श्री झुमरमल पन्नालाल गंगवाल, गौहाटी
श्री राजकुमार सुरेशकुमार बाकलीवाल, खारुपेटिया
श्री मदनलाल सुरेशकुमार अजमेरा (रांची), कोलकाता
श्री विजयकुमार जैन (सालीसीटर), कोलकाता
श्री नरेशकुमार, विनोदकुमार, जितेन्द्रकुमार पहाड़िया, हावड़ा
श्री मागीलाल छाबडा, डिमापुर
श्री मदनलाल सुमेरमल चुड़ीवाल, कोलकाता
श्री अजीतकुमार कान्तीकुमार बाकलीवाल, कोलकाता
श्री सागरमल अशोककुमार पाण्डया, गिरीडीह
श्री कपूरचन्द पाटनी, गौहाटी
श्री हीरालाल सुभाषचन्द बड़जात्या, कोलकाता
श्री रमेशकुमार अनिलकुमार सरावगी, कोलकाता
श्री महेन्द्रकुमार ललितकुमार पाटनी (MS) कोलकाता
श्री कैन्हयालाल सेठी, औरंगाबाद, बिहार
श्री श्यामसुन्दर जैन, (सरावगी), कोलकाता

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी।।

जो जिनवचन में अनुरक्त हैं तथा जिनवचनों का भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और असंक्लिष्ट होकर परीतसंसारी (अल्प जन्म-मरणवाले) हो जाते हैं।

●

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं।।

जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के लिए भी न चाहो। यही जिनशासन है—तीर्थंकर का उपदेश है।

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

प्रेरणा-स्रोत :

श्री 108 आचार्य वर्धमानसागर जी महाराज
श्री 108 सरोकाद्धारक उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज
स्वस्ति श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी, श्रवणबेलगोला

परामर्श प्रमुख :

पं. नीरज जैन, सतना

प्रधान सम्पादक :

प्रोफेसर डॉ. भागचन्द्र जैन "भागेन्दु", दमोह

प्रबन्ध सम्पादक :

डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता

सम्पादक मण्डल :

डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
श्री कपूरचन्द्र पाटनी, गुवाहाटी
डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली

सह-सम्पादक :

पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा
पं. विनोदकुमार जैन, रजवॉस

परामर्शदाता मण्डल :

वाणीभूषण पं. गुलाबचन्द जी पुष्प, टीकमगढ़
डॉ. कमलचन्द्र जी सोगानी, जयपुर
डॉ. श्रेयांसकुमार जी, बड़ौत
डॉ. फूलचन्द्र जी प्रेमी, वाराणसी
पं. मल्लिनाथ जी शास्त्री, चेन्नई
श्री निरंजनलाल जी बैनाड़ा, आगरा

संरक्षकवृन्द :

बा. ब्र. कौशल मां, ऋषभांचल, गाजियाबाद
श्री ब्र. कमलाबाई, श्री महावीरजी,
ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, हस्तिनापुर
डॉ. डी. वीरेन्द्र हेगड़े, धर्मस्थल
श्री साहू रमेशचन्द्र जैन, नई दिल्ली
श्री हरकचन्द्र सरावगी, कोलकाता
श्री पूनमचन्द गंगवाल, जयपुर
श्रीमंत सेठ डालचन्द्र जैन, सागर
पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर
श्री पं. नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर
श्री पं. पदमचन्द्र शास्त्री, नई दिल्ली
श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर
श्री सेठ मोतीलाल, सागर

अध्यक्ष :

श्री निर्मलकुमार सेठी, दिल्ली

कार्याध्यक्ष :

श्री भागचन्द पहाड़िया

सह कार्याध्यक्ष :

श्री हुकमीचन्द सरावगी, गुवाहाटी
श्री कैलाशचन्द बड़जात्या, कोलकाता

स्वागताध्यक्ष :
श्री मदनलाल बज, कोलकाता

कोषाध्यक्ष :
श्री पवन मोदी, कोलकाता

उपाध्यक्ष :
श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर
श्री पारसमल पाटनी, कोलकाता
श्री केवलचन्द पाटनी, कोलकाता
श्री हंसराज सेठी, कोलकाता
श्री मोहनलाल पाण्ड्या, कोलकाता
श्री अशोककुमार पाण्ड्या, गिरिडीह
श्री महावीरप्रसाद गंगवाल, हाथीगोला, गौहाटी
श्री चक्रेशकुमार जैन, बिजलीवाले
श्री शान्तिलाल जी गदिया, ब्यावर
श्री सि. जीवनकुमार जैन, सागर
श्री पदमचन्द धाकड़ा, चेन्नई
श्री शान्तिलाल बाकलीवाल, कोलकाता
श्री चैनरूप बाकलीवाल, दिल्ली
श्री गणपतराय काला, कोलकाता
श्री हनुमानप्रसाद सरावगी, राँची
श्री चांदमल पाण्ड्या, किशनगंज
श्री नरेशकुमार सेठी, जयपुर
श्री स्वरूपचन्द्र जैन, मारसन्स, आगरा
श्री बाबुलाल पहाड़े, हैदराबाद
श्री राजकुमार सेठी, कोलकाता

महामंत्री :
श्री महावीरप्रसाद गंगवाल, कोलकाता

मंत्री :
श्री अजीत पाटनी, कोलकाता
श्री प्रकाशचंद पाटनी, कोलकाता

सदस्य
पं. शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी
डॉ. रतनचन्द्र जैन, भोपाल
प्रो. पी. सी. जैन इलाहाबाद
श्री पं. सागरमल जैन, विदिशा
डॉ. रमेशचन्द्र जैन, निवाई
श्री डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर
श्री डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन, 'सुमन', महावीरजी
श्री डॉ. सुरेन्द्रकुमार भारती, बुरहानपुर
श्री महेशकुमार मलैया, सागर
श्री तनसुखलाल सेठी, गोहाटी
श्री महावीरप्रसाद जैन, सीकर
श्री प्रताप जैन (जागृत वीर समाज) दिल्ली
श्री निर्मलकुमार जैन, आगरा
श्री जीवेन्द्रकुमार जैन, गाजियाबाद
श्री सुरेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
श्री सेठ राजेन्द्रकुमार जैन, विदिशा
श्री धर्मवीर जैन, लखनऊ
श्री लालमणिप्रसाद जैन, ग्वालियर
डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद
श्री सुरेश जैन, आई. ए. एस. भोपाल
डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर', नागपुर
श्री डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, अलीगढ़
पं. हंसमुख जैन प्रतिष्ठाचार्य, धरियावद
श्री डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर
डॉ. सनतकुमार जैन, जयपुर
श्री पूर्णचन्द्र जैन 'सुमन', दुर्ग
श्री महेन्द्रकुमार मलैया, सागर
श्री डी. आर. शाह, इण्डी. महाराष्ट्र
श्री नरेशकुमार मादीपुरिया, दिल्ली
श्री भोलानाथ जैन, आगरा
श्री विजयकुमार टोंग्या, मथुरा
श्री विजयकुमार जैन, सासनी
श्री कैलाशचन्द्र चौधरी, इन्दौर
श्री अशोककुमार सेठी, बंगलौर
श्री सौभाग्यमल जैन, गौहाटी
श्री पुष्पेन्द्रकुमार जैन, हैदराबाद

श्री राव साहिब पाटिल, सोलापुर
श्री मनोहरलाल जैन, आगरा
श्री विजयकुमार मलैया, दमोह
श्री वीरेन्द्र कुमार इटोरिया, दमोह
श्री सेठ दामोदर जैन, शाहगढ़
श्री अभिनन्दन सांधेलिया, दमोह
श्री कन्हैयालाल जैन केशरगंज, अजमेर
श्री बाबूलाल बरौदिया, अशोकनगर
श्री कैलाशचन्द्र जैन, फरिहावाला
श्री विमलकुमार जैन, इलाहाबाद
श्री अरविन्दकुमार जैन, आई जी. लखनऊ
श्री विजयकुमार जैन, देवता ग्लास, फिरोजाबाद
श्री सेठ महावीर प्रसाद जैन, फिरोजाबाद
श्री सिं संतोषकुमार जैन, (बैटरी वाले) सागर
श्री गुलाबचन्द्र जैन, पटना वाले, सागर
श्री ज्ञानचन्द्र इमलया, ललितपुर
श्री अरविन्दकुमार जैन, पूर्व विधायक-ललितपुर
श्री संतोषभारती, दमोह
श्री चन्द्रकुमार बजाज, दमोह
श्री मा. मूलचन्द्र जैन, दमोह
श्री मदनलाल, काला
श्री शिखरलाल बगड़ा, कोलकाता
श्री हरिप्रसाद पहाड़िया, कतरास
श्री त्रिलोकचन्द सेठी, किसनगंज
श्री माणकचंद गंगवाल, राँची
श्री अक्षयचन्द्र सेठी, तिनसुकिया
श्री कन्हैयालाल बाकलीवाल, जोरहाट
श्री पदमचन्द बगड़ा, विजयनगर
श्री पवनकुमार गंगवाल, कोलकाता
श्री अनिलकुमार बड़जात्या, कोलकाता
श्री कैलाशचन्द जैन (सी.ए.) कोलकाता
श्रीमती राजकुमारी रांधेलिया, कटनी
श्री सम्पतलाल छाबड़ा, कोलकाता
श्री महावीरप्रसाद काला (दांता), कोलकाता
श्री धर्मचन्द्र मोदी, कोलकाता
श्री भागचन्द्र कासलीवाल, कोलकाता
श्री केवलचन्द पाटनी, कोलकाता
श्री मोहनलाल जैन अजमेरा, धूलियान
श्री दानमल पाण्डया, कोलकाता
श्री सुरेशचन्द जैन, राजिम नवापारा
श्री राजाराम बाबू जैन, फिरोजाबाद
श्री कपूरचन्द्र घुवारा, पूर्व विधायक, टीकमगढ़
श्री अजितकुमार कण्डया, दमोह
श्री सिं. संतोषकुमार जैन, दमोह
श्री डॉ. जयकुमार शास्त्री, टीकमगढ़
श्री निर्मलचन्द्र सोनी, अजमेर
श्री शांतिलाल बड़जात्या, अजमेर
श्री हजारीमल पाण्डया, कोलकाता
श्री सुभाष जैन, शकुन प्रकाशन, दिल्ली
श्री इन्द्रध्वज जैन, शिकोहाबाद
श्री अनूपचन्द्र जैन, एडवोकेट, फिरोजाबाद
श्री ओमप्रकाश जैन, सूरत
श्री हर्षद भाई जैन, अहमदाबाद
श्री संतोषकुमार जैन (घड़ी वाले) सागर
श्री विभवकुमार कोठिया, बीना
श्री ज्ञानचन्द्र अलया, ललितपुर
श्री कन्हैयालाल खेड़कर, नागपुर
प्रो. विनयकुमार जैन, दमोह
श्री चन्द्रकुमार सर्राफ, दमोह
श्री एम. एल. जैन, शास्त्री, दमोह
श्री महेन्द्र पाटनी, कोलकाता
श्री बाबूलाल छाबडा लखनऊ
श्री कन्हैयालाल सेठी, औरंगाबाद
श्री रतनलाल गंगवाल, पुरुलिया
श्री बालचन्द छाबडा, गया
श्री महेन्द्र पाटनी (एम. एस.)
श्री रतनलाल रारा, गौहाटी
श्री शान्तिकुमार जैन अग्रवाल, कटक
श्री कैलाशचन्द जैन (भारत ट्रेडर्स), कोलकाता
श्री कल्याणमल झांझरी, कोलकाता
श्रीमती सुधा जैन, कोलकाता
डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर-
श्री हुकमीचन्द पाटनी, कोलकाता
श्री भागचन्द्र छाबड़ा दीवान, कोलकाता
श्री रतनलाल सेठी, कोलकाता
श्री शान्तीलाल पाटोदी, कोलकाता
श्री धन्नालाल काला, कोलकाता
श्री भागचन्द जैन छाबड़ा, लालगोला
श्री विमलकुमार पाटनी, कोलकाता

☐

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा, पश्चिम बंगाल, कोलकाता
पदाधिकारी एवं कार्यकारिणी सदस्य

संरक्षक

श्री हरखचन्द सरावगी
श्री मदनलाल बज
श्री मोहनलाल पांड्या
श्री सीताराम पाटनी
श्री राजकुमार सेठी
श्री शान्तिलाल बाकलीवाल
श्री रतनलाल सेठी

अध्यक्ष
श्री भागचन्द पहाड़िया

कार्याध्यक्ष
श्री कैलाशचन्द बड़जात्या

महामंत्री
श्री महावीरप्रसाद गंगवाल

संयुक्त मंत्री
श्री अजीतकुमार पाटनी
श्री प्रकाशचन्द पाटनी
श्री अजितकुमार पांड्या

कोषाध्यक्ष
श्री पवनकुमार मोदी

तीर्थ जीर्णोद्धार मंत्री
श्री सुरेशकुमार सेठी

क्षेत्र मंत्री
श्री भागचन्द छाबड़ा (मुर्शिदाबाद)
श्री प्रसन्नकुमार पाण्ड्या (उ. बंगाल)
श्री रतनलाल गंगवाल (पुरुलिया)

उपाध्यक्ष :
श्री हुकमचंद पाटनी
श्री महेन्द्रकुमार पाटनी
श्री केवलचन्द पाटनी
श्री श्रवणकुमार जैन
श्री देवकरण सरावगी
श्री पारसमल पाटनी
श्री महावीरप्रसाद बगड़ा
श्री अनिलकुमार बड़जात्या
श्री कैलाशचन्द जैन (सी.ए.)
श्री मोहनलाल अजमेरा
श्री सुमेरमल चुड़ीवाल
श्री कैलाशचन्द जैन
श्री विमलकुमार पाटनी
श्री भागचन्द छाबड़ा दीवान
श्री शान्तिलाल पाटोदी

सदस्य
श्री कल्याणमल झांझरी
श्री मोहरीलाल छाबड़ा
श्री विमलकुमार पाण्डया
श्री राकेशकुमार दगड़ा
श्री अनिलकुमार ठोल्या
श्रीमती शशि पाटनी
श्रीमती संतोष काला
श्रीमती कुसुम छाबड़ा
श्रीमती सरिता कासलीवाल
श्री पुखराज पाण्ड्या
श्री दयाचन्द बड़जात्या
श्री राजेन्द्रकुमार बगड़ा
श्री अभयकुमार पाटनी
श्री अशोककुमार छाबडा
श्री रतनलाल पाटनी
श्री डॉ. विमलकुमार जैन
श्री आनन्दीलाल गंगवाल
श्री निर्मलकुमार सेठी
श्री संजीवकुमार जैन
श्री अजीतकुमार धनावत
श्री बसंत कासलीवाल
श्री लेखचंद बाकलीवाल
श्री कमलकुमार गंगवाल
श्री भागचंद काला
श्री चंदनलाल काला, जियागज
श्री चंदनलाल काला, बहरामपुर
श्री विनोद सरावगी, पुरुलिया
श्री नेमीचन्द पाटनी, कानकी
श्री जयकुमार सेठी, सन्मतिनगर
श्री इन्द्रचंद पाटोदी, रिसड़ा
श्री गणपतलाल पाण्ड्या, कूँचबिहार
श्री रतनलाल पाटोदी, मिर्जापुर
श्री इन्द्रचंद पाटनी, मैनागुड़ी
श्री विजयकुमार पाटनी, जंगीपुर
श्री पदमचंद भरतिया, बण्डेल
श्री प्रमोद पाटनी, रानीगंज
श्री चिरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता

☐

वरिष्ठ विद्वानों में अप्रतिम

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा, पश्चिम बंगाल द्वारा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष महामनीषी प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का राष्ट्रीय स्तर पर अभिनन्दन-समारोह का समायोजन कर उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, यह एक सुखद प्रसंग है। प्राचार्यजी देश के वरिष्ठ विद्वानों में अन्यतम हैं। आपकी प्रतिष्ठा सभी संवर्गो में समान रूप से मान्य है। आप विद्वानों के चहेते विद्वान हैं। प्राचार्य जी ने अपने अध्यक्षीय काल में सभी सदस्य विद्वानों को सदैव स्नेहपूर्ण आदर दिया है तथा आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सभी विद्वान स्वयं अनुशासनबद्ध रहे हैं। 1995 ई. से लेकर आज तक शास्त्रि परिषद को आपका कुशल नेतृत्व प्राप्त है। उनके निर्देशन में सम्पूर्ण विद्वान एकजुट होकर धर्म-प्रचार में संलग्न हैं। आप निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी तथा कुशल वक्ता हैं। शास्त्रि-परिषद द्वारा समायोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों में समाज एवं विद्वद्वर्ग ने आपके निर्देशन में बहुत कुछ सीखा है, जिसकी छाप अनेक दशकों तक समाज एवं विद्वानों पर रहेगी। अ.भा.दि. जैन शास्त्रि परिषद् के सभी सदस्य अभिनंदन की इस वेला में प्राचार्य जी को नमन, वन्दन एवं अभिनन्दन करते हैं।

श्रेयांसकुमार जैन
कार्याध्यक्ष

जयकुमार जैन
महामन्त्री

अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद्

"मनीषा"

(विद्या-विनय-विवेक के जीवन्त व्यक्तित्व की यशोगाथा)

- अनुक्रमणिका -

प्रथम खण्ड

(मंगलाशीष, सन्देश, शुभकामनायें)

द्वितीय खण्ड

(आदरांजलि/हमारे प्रणाम/संस्मरण)

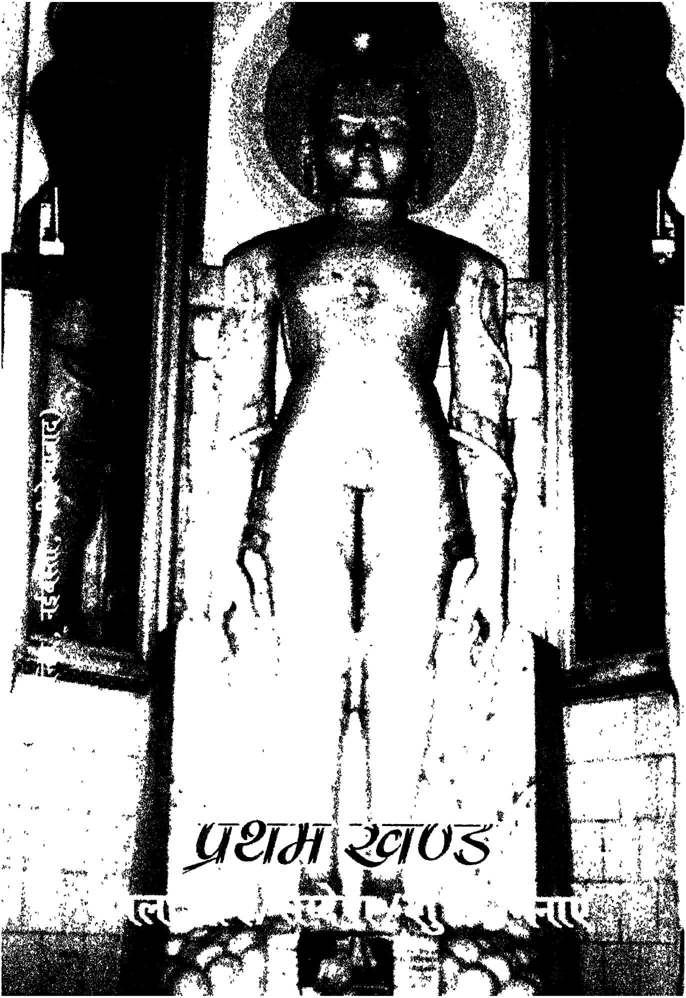
तृतीय खण्ड

(जीवन ऐसे जिया, आत्मकथ्य, भेंटवार्ताएं, व्यक्तित्व एवं कृतित्व)

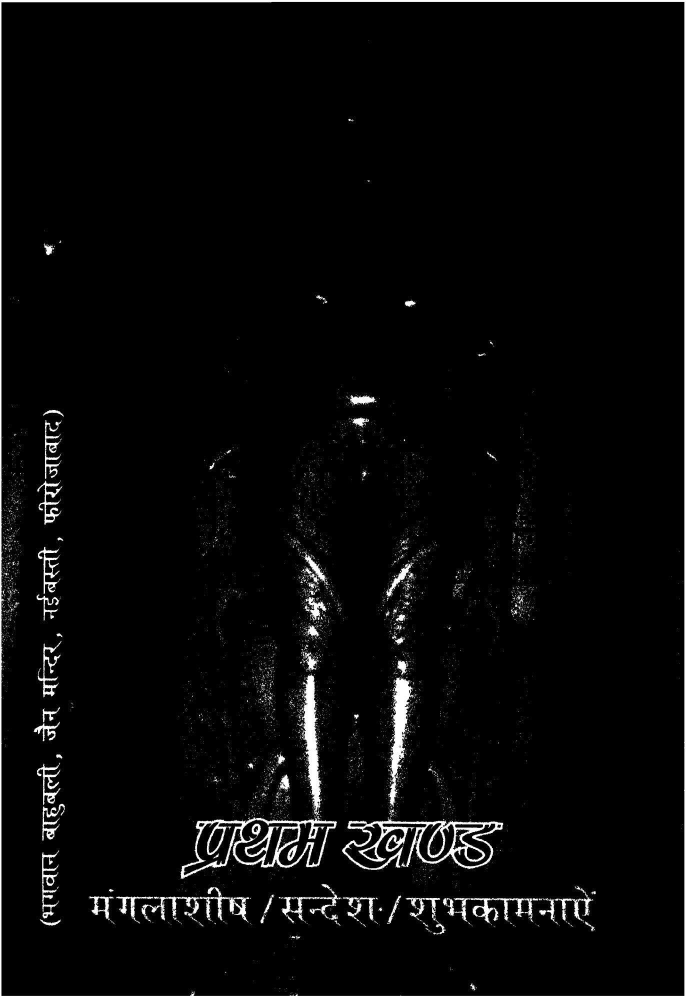
कैमरे की आँख से

चतुर्थ खण्ड

(साहित्यिक-अवदान, यात्रायें, काव्योद्यान, समीक्षायें)
प्राचार्य जी की कलम से



प्रथम खण्ड



(भगवान बाहुबली, जैन मन्दिर, नईबस्ती, फीरोजाबाद)

प्रथम खण्ड

मंगलाशीष / सन्देश / शुभकामनाएं

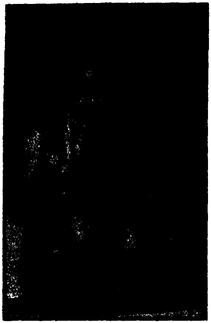


मंगल मनीषा

विद्यार्थी से अध्यापक और अध्यापक से प्राचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होकर शैक्षणिक जगत में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर राष्ट्रसेवा में समर्पित व्यक्तित्व है प्राचार्य जी।

जैन जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान् होकर जैनदर्शन के प्रखर प्रवक्ता व्याख्यान-वाचस्पति प्राचार्य जी सर्वजन परिचित हैं। वे अनेक मौलिक ग्रन्थों के लेखक एवं सम्पादक के रूप में जाने जाते हैं। उनके कुशल सम्पादकत्व मे धर्मसंरक्षिणी महासभा का मुखपत्र 'जैनगजट' साप्ताहिक व अन्य पत्रिकाएँ जैन समाज में पढ़ी जाती हैं। प्राचार्यजी के जीवन का समन्वय और सगठक पक्ष भी बड़ा सुदृढ़ है। अनेकों प्रसंगों पर सम्पन्न सगोष्ठी-सेमिनार उनके आलेख-वाचन, सचालन और संयोजन से अलकृत रहे हैं। जैन जगत के प्राय. बड़े समारोहो में उनकी उपस्थिति देखी जाती है। शास्त्र प्रवचन शैली के लिए विख्यात उन्हें बहुत सुना जाता है। शास्त्रप्रवचनो द्वारा उन्होने जिनवाणी का प्रसार लगभग सारे देश में किया है। वे देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य भक्त होने के साथ ही सदाचारमय जीवन के अनुरागी हैं। सादे-सरल-सर्वजनप्रिय तथा श्रद्धा-ज्ञान से आप्लावित प्राचार्यजी के जीवन मे जिनभक्ति रूप पूजन प्रवाह निरन्तरता लिए हुए सर्वत्र बहता रहे, यही प्रेरणादायी मगल मनीषा है। वे श्रावकोचित अन्य आचरण में भी अब बहुत कुछ वृद्धि करें ऐसी भावना है। कुशल प्रशासक, समाजनिष्ठ, निरभिमानी और निर्विवाद व्यक्तित्व शास्त्री परिषद् के सर्वसम्मत अध्यक्ष 'प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाशजी' की 'सप्तति' पूर्ति की बेला में उनके सार्वजनिक-सामाजिक अभिनन्दन हेतु 'अभिनन्दनग्रन्थ' समर्पण के पुण्य अवसर पर उनके धर्ममय भविष्य की मंगल मनीषा के साथ हमारी एव संघ की यही भावना है कि श्रद्धा व ज्ञानमय उनका जीवन चारित्रमण्डित भी बने। प्राचार्यजी के लिए हमारे ससघ मगल आशीर्वाद।

(आचार्य वर्धमानसागर)



मंगल-आशीष

जाग्रत समाज का आदर्श विम्ब विद्वानों में देखा जा सकता है। कतिपय मनीषियों ने श्रमण-संस्कृति के आदर्श मानदण्डों और आर्ष-मार्ग के संरक्षण तथा संवर्धन का अभिनव उपक्रम किया है। ऐसे मनीषियों में प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम सम्प्रति विशेषतया उल्लेखनीय है। उनकी श्रुत-सेवा, साधुभक्ति, और समाजनिष्ठ चर्या स्पृहणीय है। वे बोधि और समाधि-लाभ करें, यही हमारा शुभाशीष है।

—आचार्य विद्यासागर

(रीठी-प्रवास में ग्रन्थ के प्रधान
सम्पादक की अभ्यर्थना पर अभिव्यक्त उद्गार।)



मंगल-आशीर्वाद

आर्षमार्ग के श्रद्धालु विद्वान् और जिनवाणी के अनुशासित प्रवचनकार प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी आज विद्वानों के समुदाय में एक वरिष्ठ और प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। विद्वत्ता के साथ विनय उनकी विशेषता है। उनकी वाणी में ओज है और श्रोताओं पर उनका प्रभाव पड़ता है। ऐसे विद्वान् का सम्मान वास्तव में समूची विद्वत्ता का सम्मान है।

उनके लिए दीर्घायु धर्मवृद्धि का मंगल आशीर्वाद।

शुभाशीर्वाद

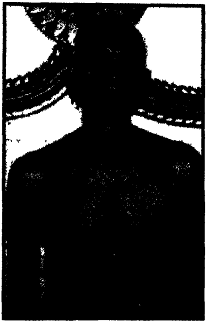
-आचार्य विद्यानन्द मुनि



शुभाशीष

जैनधर्म के विद्वानो का स्वागत-सम्मान होना चाहिए। यह सम्मान व्यक्ति का नहीं, ज्ञान का, जिनवाणी का है। जिनागम की रक्षा के लिए विद्वानो की रक्षा अनिवार्य है। इसलिए जिनागम के अनुसार चलने वाले विद्वत् वर्ग का मन, वचन, काय, धन, लेखनी आदि से सम्मानादि और उत्थान करना चाहिए। देश मे जैनधर्म के विद्वानो में नरेन्द्रप्रकाश जी का माननीय स्थान है। वे स्पष्ट वक्ता है, आगम के अनुसार बोलते हैं और सदाचारी है, निष्पक्ष हैं। यही विद्वानों का गुण है। इसलिए अभिनन्दन ग्रन्थ के माध्यम से उनका सम्मान बढ़े और नए-नए विद्वान तैयार हों ऐसा कोटि-कोटि धर्मवृद्धि आशीर्वाद।

—आचार्य अभिनन्दनसागर



मंगलाशीष

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि जैन जगत के मूर्धन्य मनीषी, यशस्वी प्रवक्ता, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् के कर्मठ अध्यक्ष तथा जैनगजट (साप्ताहिक) के सम्पादक माननीय पण्डित-प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन, फिरोजाबाद का उनके सत्तरवें बसन्त की प्रपूर्ति पर अखिल भारतीय अभिनन्दन का भव्य समारोहपूर्वक आयोजन तथा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

मानव जीवन गुण-दोषों से भरा हुआ है। इसके एक ओर मोक्ष और दूसरी ओर संसार है। संसार में तो वह अपना जीवन व्यतीत कर ही रहा है। उससे उबरने का प्रयत्न करना मानवता है। मानव से मानवता की ओर चलने के लिए कटिबद्ध परमपूज्य मुनि-कुंजर दक्षिण भारत के वयोवृद्ध दिगम्बर सन्त आदिसागर जी अंकलीकर हुए। उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी बहुभाषाविद् एव विद्वान् शिष्य आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज थे, जिन्होंने उनकी कीर्ति को युगो-युगो तक के लिए अक्षुण्ण बना दिया। वह हमेशा संसार से उबरने का ही आशीष देते थे।

प्राचार्य जी के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य अच्छा है। उसके लिए मेरा शुभाशीर्वाद है।

सुगन्ध दशमी 2003 —आचार्य सन्मतिसागर (तपस्वी सम्राट्)



शुभाशीष

श्री भारतवर्षीय दि. जैन (धर्म सरक्षिणी) महासभा द्वारा प्रकाशित 'जैन गजट' एक प्राचीन जैन पत्रिका है। यह पत्रिका 107 वर्षो से प्रकाशित होकर एक दीर्घकालीन इतिहास को पार करके आगे बढ़ रही है। इसका भविष्य और भी गौरवमयी बने, ऐसा हम सबका कर्त्तव्य होना चाहिए। सबसे अधिक कर्त्तव्य सम्पादक, संवाददाता और लेखकों का होता है, क्योंकि वे उत्तम सम्पादन, सूचना और लेखो के माध्यम से पत्रिका को और भी श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, व्यापक, सर्वग्राही, युगानुकूल बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

ऐसे जैनगजट के वर्तमान सम्पादक प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन इसका सम्पादन सुदीर्घ काल से कर रहे हैं। आप श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, प्रभावोत्पादक बनें, ऐसा महासभा, जैन-गजट, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश को मेरा बहुत-बहुत आशीर्वाद। मेरी एक और भावना है कि श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपने प्रवचन एव सम्पादन के दीर्घ जीवन में जो कुछ कटुक-मधुर अनुभव प्राप्त किए हैं, उन्हें निष्पक्ष भाव से उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना से युक्त होकर जैनगजट में विश्व-कल्याणार्थ किसी के नाम का उल्लेख किए बिना सार्वभौम रूप से क्रमशः प्रकाशित करे। पुनः शुभाशीर्वाद।

—आचार्य कनकनन्दी



मंगल आशीष

यह ज्ञात कर अति प्रसन्नता हुई कि पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन का अखिल भारतीय अभिनन्दन कोलकाता जैसी धर्मनगरी में सम्पन्न होने जा रहा है। प्राचार्य प. नरेन्द्रप्रकाश जैन सरस्वती के वरद पुत्र है। वे एक निर्भीक वक्ता, आर्ष मार्ग के सफल प्रवचनकार, कुशल लेखक और सचालक हैं। वे यशस्वी सम्पादक भी हैं। उनके अध्यक्षीय काल में अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद् ने देव-शास्त्र-गुरु की शुद्ध आम्नाय के संरक्षण व संवर्द्धन हेतु बहुत कार्य किए है।

प्राचार्य जी के सम्मान मे प्रकाशित होने वाला अभिनन्दन ग्रन्थ जैन धर्म-दर्शन की बहुमूल्य निधि होगा। उनका अभिनन्दन वास्तव मे समस्त विद्वत्समाज का अभिनन्दन है।

मैं प्राचार्य जी के दीर्घ, स्वस्थ, यशस्वी जीवन हेतु अपना मंगल आशीष प्रेषित करता हूँ।

सिद्धक्षेत्र श्री गिरिनारजी —आचार्य निर्मलसागर



मंगल आशीष

पंडित-प्रवर श्री नरेन्द्रप्रकाश जी, फिरोजाबाद का 'अभिनन्दनग्रन्थ' प्रकाशित कर उनका सार्वजनिक सम्मान किया जा रहा है, यह प्रशंसनीय कार्य है।

इस बीसवीं शती में अनेक कार्य ऐसे हो रहे हैं, जिनसे जैन संस्कृति का क्षरण हो रहा है, यह चिन्तनीय है, किन्तु कुछ विद्वान ऐसे है जो संस्कृति की सरक्षा मे मनसा-वाचा-कर्मणा लगे हुए है। उन विद्वानों में श्री नरेन्द्रप्रकाश जी अग्रणी हैं। उनका यह समर्पित प्रयास स्तुत्य एव अभिनन्दनीय है।

विद्वद्वरेण्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी तो समाज के दीपक, जिनवाणी के प्रसारक, मानवता के पथप्रदर्शक, सुष्ठु मान्यताओं के पोषक, आर्ष मार्ग के संरक्षक एवं आदर्शो के आदर्श हैं। वे समाज में जागृति लाने वाले विद्वान हैं। वे विद्वत्ता के आदर्श हैं। उन्होंने विद्वान और साधु दोनों के आदर्श स्वरूप को विश्लेषित करने का उपक्रम किया है। उनकी दृष्टि में विद्वान नि:स्पृह और स्वाभिमानी होकर अपनी गरिमा की रक्षा करें, जिनवाणी को उदरपूर्ति का साधन न बनावें। नरेन्द्रप्रकाश जी ने समाज के सामने दीनता नहीं प्रकट की। इस वय में भी युवकों जैसी स्फूर्ति उनमें दृष्टिगोचर होती है। वे साधु-शिथिलाचार पर सदैव टिप्पणी करने के लिए कटिबद्ध हैं। इन्हीं सद्गुणों के कारण वे सर्वदा समाज द्वारा अभिनन्दनीय एव वन्दनीय है।

—उपाध्याय ज्ञानसागर

जीवन उज्जवल हो

भारतीय भूमि त्यागी-तपस्वी और सन्त-मुनियों की पावन रज से प्रसिद्ध एवं पवित्र है। विद्या के क्षेत्र मे सेवा करनेवाले सरस्वती-पुत्रो का भारतीय एवं जैन सस्कृति के उत्थान मे अनुकरणीय योगदान है। उन सरस्वती-पुत्रो में प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम जुड़ने पर सरस्वतीदेवी वास्तव में प्रसन्न हुई है। आपकी अभिव्यक्ति-शैली, लिखने की कला देख-सुनकर प्रसन्नता है। उनके द्वारा किए गए कार्यो की प्रशसा होनी चाहिए। आपका कार्य स्तुत्य है।

उनका जीवन उज्ज्वल एवं सुख-शान्ति पूर्ण हो, यह आशीर्वाद है।

—उपाध्याय निजानन्दसागर



शुभाशीष

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी विद्वत् जगत के ख्यातिलब्ध विद्वान् है। विद्वत्ता ही नहीं, देवशास्त्रगुरु की भक्ति और सत् सस्कार उन्हे विरासत मे ही मिले है। विनयशीलता, मधुर सम्भाषण ओर सहृदयता उनकी अपनी पहचान है। म.प्र मे गुरुवर आचार्य श्री के चातुर्मास या हम लोगो के सानिध्य में होनेवाले विधान/संगोष्ठी आदि प्रभावना/कार्यक्रमो मे वह जब भी आए, विचारो का आदान-प्रदान हुआ ही। निकटता का क्रम तो लम्बे समय तक तब विशेष बना, जब उ प्र मे हम लोगो का विहार हुआ। कन्नोज पचकल्याणक महोत्सव के निमित्त गुरुवर आचार्य श्री का आशीष/आदेश प्राप्त हुआ। वहा कार्यक्रम सम्पन्न कराकर गुरुवर आचार्य श्री की चातुर्मास-स्थली फिरोजाबद (सन् 1975) के लिए विहार का सुयोग बना। उस अपरिचित स्थान मे चातुर्मास स्थापना की पूर्व बेला मे आपने सुप्त समाज को सक्रिय कर चातुर्मास-स्थापना का माहौल बनाया। सन् 2003 का चातुर्मास श्री छदामीलाल जैन ट्रस्ट श्री महावीर जिनालय परिसर मे बडे हर्षोल्लसित वातावरण मे स्थापित हुआ। फिर क्या? प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी विद्वान् की तरह नही, किन्तु एक कार्यकर्ता की तरह अपने साथियो के साथ जुट गए। चातुर्मास विभिन्न साधना/प्रभावनापूर्ण कार्यक्रमो के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। गृहस्थोचित धार्मिक कार्यो का सस्कार ही कहे या कहे उनकी अपनी भक्ति/प्रेरणा, जहां 1975 मे उन्होने गुरुवर आचार्य श्री के चातुर्मास-प्रवास का भरपूर लाभ लिया था, इस वर्ष भी धर्म-लाभ मे अभिवृद्धि की। अपने ही गृहद्वार पर पडगाहन कर जहां आहारदान देने का सुअवसर प्राप्त किया, वही पिच्छी-परिवर्तन समारोह मे मेरी पुरानी पिच्छिका ग्रहण कर सयम के क्षेत्र मे भी अभिवृद्धि की।

रत्नत्रय से पावन जिनका यह औदारिक तन है
गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा में रत रहता निश-दिन मन है।
सन्मति युग के ऋषि-सा जिनका बीत रहा हर क्षण है,
विद्या के इस सागर को मम शत-शत बार नमन है।

गुरुवर आचार्य श्री के प्रति लिखी गई इन पक्तियो के रचयिता प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को इस अवसर पर जिनवाणी की सेवा, स्वस्थ जीवन और रत्नत्रय की अभिवृद्धि के लिए शुभाशीष।

—मुनि समतासागर



शुभाशीष

प्रखर चेता प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी आगमनिष्ठ श्रद्धालु विद्वान हैं। वे विद्वज्जगत् के आदर्श हैं। सिद्धान्त के प्रतिपादन में निर्भीकता और निरीहिता उनका अनुपम वैशिष्ट्य है। अपनी लेखनी और वाणी के बल पर उन्होने जिनशासन की जो प्रभावना की है, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

वेसे तो पिछले अनेक वर्षो से वे हमारे सम्पर्क में हैं, परन्तु फिरोजाबाद वर्षायोग मे उनकी निष्ठा को गहराई से समझने का अवसर मिला। वे सच्चे देवशास्त्र और गुरु के अनन्य सेवक हैं। जिन शासन के प्रति उनके मन में गहरी निष्ठा है। सरलता, सहृदयता और सादगी उनके जीवन की ऐसी विशेषताएँ है, जो अन्य विद्वानों में प्रायः नहीं मिलती।

समाज द्वारा उनका अभिनन्दन किया जा रहा है, यह बड़े गौरव की बात है। ऐसे श्रुताराधक का अभिनन्दन यथार्थतः श्रुत का अभिनन्दन है। वे इसी तरह श्रुताराधन करते हुए जिनशासन की प्रभावना करते रहें तथा उनका यह श्रुताराधन उन्हे श्रुत-पारगत बनाए, मेरा यही शुभाशीष है।

—मुनि प्रमाणसागर

शुभाशीष

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य भक्त जैनधर्म, दर्शन, साहित्य-संस्कृति एवं सिद्धान्तों के संपोषक एवं संरक्षक पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद) का अभिनन्दन तो धर्म का ही अभिनन्दन है। ये दीर्घायु हों, स्वस्थ प्रशस्त मंगलमय जीवन व्यतीत करते हुए अविरल अपने मार्ग में आगे बढ़ते रहें तथा देश, धर्म एवं समाज की सेवा करते रहें। सिद्धान्त, संस्कृति एवं साहित्य की साधना करते हुए संयम एवं समाधि को प्राप्त करें, यही शुभाशीर्वाद है।

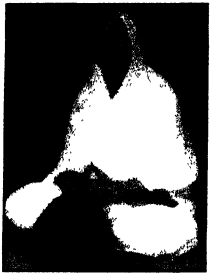
—मुनि श्री 108 चिन्मयसागर जी
(जंगल वाले बाबा)
(शिष्य-पूज्य आ.श्री विद्यासागर जी महाराज)

□

शुभाशीष

श्री भारतवर्षीय दि. जैन समाज ने श्री प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी का अभिनन्दन करने का विचार किया है, वह अति उत्तम है। आर्ष परम्परा में इस शताब्दी में कई महनीय विद्वान हुए हैं। इसी शृंखला में वर्तमान समय में एक विद्वान् ही मेरी दृष्टि में हैं। वह हैं प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी, जो अपनी मधुर वाणी से सबको मुग्ध कर लेते हैं। मैं श्री वीर प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि प्राचार्यजी शतायु हों और वीर-वाणी का प्रसार करते रहें।

—श्री 108 मुनि विष्णुसागर



शुभाशीष

सरस्वती के समान धर्म के अभिन्न अंगस्वरूप विद्वानों को जैन समाज के दाहिने हाथ के रूप में स्वीकार कर मैं सदैव कहा करती हूँ कि इनके सम्मान में हमारी संस्कृति का सम्मान है।

अपने संघ-सानिध्य में आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों में, संगोष्ठियों में एवं सभाओं में प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश के निश्चय-व्यवहार समन्वयात्मक प्रवचन एवं तीर्थंकर जन्मभूमि कुण्डलपुर का समर्थन सुनकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश के लिए मेरा यही कहना है कि धर्मरक्षा एवं प्रभावना के कार्यों में आप सतत सलंग्न रहें एवं ज्ञान के साथ-साथ चारित्रपथ पर भी अग्रसर होते हुए यशस्वी हों, इसी मंगल अशीर्वाद के साथ–

कल्याणमस्तु कमलाभिमुखी सदास्तु,
दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रसमृद्धिरस्तु।
आरोग्यमस्त्वभिमतार्थ फलाप्तिरस्तु,
भद्रं तवास्तु जिनपुंगव भक्तिरस्तु॥

कुण्डलपुर (बिहार) —गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मंगलआशीर्वाद

"आदमी आदमी में है अन्तर, कोई हीरा कोई कंकर"

यह पंक्ति पण्डित जी के जीवन में चरितार्थ होती हुई देखी जा सकती है। उन्होंने अपनी जिन्दगी की प्रत्येक श्वाँस को श्रुत की आराधना, जैनधर्म की प्रभावना में लगा दिया है। अपने लेख और रचनाओं के माध्यम से जन-जन तक अपना चिन्तन-मन्थन भेजते रहे हैं। भले ही आपको किसी ने न देखा हो, लेकिन आपके व्यक्तित्व-कृतित्व से सभी परिचित हुए हैं। आप विद्वत् मण्डली में सर्वश्रेष्ठ मान्यता को प्राप्त हुए हैं। आपकी लेखनी में साधु-सन्तों के प्रति आस्था व्यक्त होती है। आपके रोम-रोम में सरलता, सहजता, सादगी तथा व्यवहार-कुशलता दिखाई देती है। इसलिए आपका जीवन जन-जन के लिए मनमोहक बन गया है। आपने अपने जीवन की जो सुन्दर झाँकी बनाई है, उसको ज्ञानीजन ही समझ सकते हैं, अन्य किसी को इसका अहसास नहीं हो सकता। कहा भी है—

"विद्वानों का अमित श्रम, जानत हैं बुध लोय
नहिं जानत वंध्या तिया, प्रसव-वेदना सोय"

यह आश्चर्य की बात है कि अनेक लौकिक उपाधियो से अलंकृत होते हुए भी आप अहकार से दूर रहे। इसी की देन है कि आप सभी के हृदयग्राही हुए। ख्याति-कीर्ति के पात्र बन गए। सच है—we rise in glory as we sink in pride। अन्तिम आशीर्वाद के रूप मे आपसे कहूँगी कि आपने अपने 70 वर्ष लौकिक जगत के कार्यक्रम साहित्य-सृजन, लेखन तथा रचनाओं में व्यतीत किए, अब शेष समय को गुरु-चरणों में दिगम्बरत्व पद का अनुभव करते हुए सर्वोत्कृष्ट समाधि को प्राप्त कर जिन्दगी की श्वाँसो को सफल करें, जिससे आपके ज्ञान-चारित्र को युगों-युगों तक विश्व पढ़ता रहे और स्वर्ण अक्षरों में आपका नाम अंकित रहे और सभी पण्डितवर्ग को आपसे दिशाबोध मिले।

यही मेरा आपके लिए आशीर्वाद है।

—आर्यिका प्रशान्तमति
(विदुषी शिष्या-आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज)

सहधर्मी वात्सल्य का परिचायक है प्राचार्य जी का अभिनन्दन



विद्वानों के लिए आदर्श एवं प्रेरणास्रोत प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का सौम्य एवं सरल व्यक्तित्व ही वास्तव में उनका चुम्बकीय आकर्षण है। विशिष्ट वक्ता के रूप में प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की जो छाप मेरे मन पर पड़ी, वह आज तक भी अमिट है।

प्राचार्य जी की आगमनिष्ठ भावना के साथ भाषा-सौष्ठव को देखकर कई बार मुझे पं. सुमेरुचन्द दिवाकर का स्मरण हो आता है। उन्होंने जिनागम एवं चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के पवित्र जीवन से जनमानस को परिचित कराने हेतु जिस प्रकार अपने लौकिक ज्ञान का सदुपयोग किया, उसी प्रकार वर्तमान में प्राचार्य जी भी अपनी वाणी एवं लेखनी का सदुपयोग जिनवाणी की पुष्टता एवं धर्मरक्षा के हित में कर रहे हैं, यह उनके पुण्य विशेष का ही माहात्म्य समझना चाहिए।

आर्षमार्गीय विद्वानो की सर्वाधिक प्राचीन संस्था 'दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद्' के आप यशस्वी अध्यक्ष तो हैं ही, वर्तमान में दिगम्बर जैन समाज के लगभग सभी वर्ग के लोग आपको अपना मानकर बड़े सम्मानपूर्वक विभिन्न समारोहों मे आमन्त्रित करते है। इसमें कारण आपकी निष्पक्षता एव निर्भीकता ही कही जा सकती है, जो प्रत्येक व्यक्तित्व मे दुर्लभप्राय होती है।

हमारी समाज के श्रेष्ठियो एवं विद्वानों ने ऐसे प्रभावी व्यक्तित्व के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लेकर वास्तव में प्रशसात्मक कार्य किया है, जो कि वात्सल्य अंग का परिचायक भी है। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने कहा है—

स्वयूथ्यान् प्रतिसद्भाव-सनाथापेतकैतवः।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलप्यते ॥

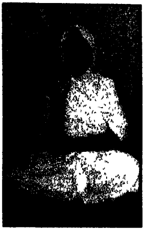
अर्थात् अपने सहधर्मियों के प्रति जो हमेशा छलकपट रहित होकर सद्भावना रखते हुए प्रीति करते है और यथायोग्य उनके प्रति विनयभक्ति आदि भी करते हैं, वे वात्सल्य अंग के पालक होते है।

यह सम्मान प्राचार्य जी का व्यक्तिगत सम्मान नहीं है, प्रत्युत जिनवाणी के प्रति समादरभाव का प्रतीक है। इसे स्वीकार करते हुए प्राचार्य जी सदैव सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति समर्पित बने रहें एवं आर्षमार्गीय सत्यता का दामन उनसे कभी छूटने न पावे, यही उनके स्नेहिल व्यक्तित्व के लिए मेरी प्रेरणा है तथा उनकी विद्वत्ता भविष्य में भी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धिंगत होकर आत्मकल्याण में निमित्त बने, यही मंगल आशीर्वाद है।

—आर्यिका चन्दनामती

(शिष्या-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

मंगल आशीर्वाद



प्राचार्य पण्डित-प्रवर नरेन्द्रप्रकाश जैन का उनके 71वें वर्ष के मंगल प्रवेश के सुअवसर पर उनको सम्मानित करके उनका गौरव बढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य आप सभी ने एकत्रित होकर करने का जो यह प्रयत्न किया है, वह आपका कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। पंडित जी ने अपने 70 वर्ष के अब तक के जीवन मे स्वपर-कल्याण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और भविष्य में भी वे सतत चिरायु होकर करते रहें। यह ज्ञानदान ही भविष्य में केवलज्ञान-लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए पाथेय बनेगा और भावी पीढी के लिए मार्गदर्शक बनेगा। वे जिनवाणी माता की सेवा करने के लिए कटिबद्ध रहे, पण्डित जी के लिए मेरा मगल आशीर्वाद।

—आर्यिका श्रेयासमती

मंगलमय शुभाशीष

प. नरेन्द्रप्रकाश जी साहित्यिक, धार्मिक, शैक्षणिक एव सामाजिक क्षेत्रो में कार्य करते हुए तीर्थ क्षेत्रो के उत्कर्ष मे अत्यन्त निष्णात नि.स्वार्थ भावना से कार्य कर रहे है।

पं. नरेन्द्रप्रकाश जी सयम-नियमपूर्वक धर्ममार्ग पर चलते हुए समय-समय पर समाज को मार्गदर्शन प्रदान करते है। नीतिकार ने लिखा है, "कि कि न साध्यति कल्पलतेवविद्या" अर्थात् सम्यग्ज्ञान स्वरूप कल्पवृक्ष के सम्मुख किस-किस सुफल की उपलब्धि नहीं होती अर्थात् सभी की होती है। वास्तव में विद्या की उपासना आराधना में निमग्न रहनेवाले विद्वानो के द्वारा ही समय-समय पर धर्म की महती प्रभावना हुई है। पिछले पांच सौ वर्षो का इतिहास इसका साक्षी है, प. टोडरमल जी, प. बनारसीदास जी, पं. गोपालदास जी बरैया आदि विद्वानों की शृंखला में प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी फिरोजाबाद है, जो कि ज्ञानाध्ययन में संलग्न रहकर अपनी वाक्पटुता व सुदृढ़ भावशैली से श्रावकों के मन को मोह लेते हैं।

वाणी में आकर्षण के साथ निर्भीक पत्र सम्पादक की कुशलता और प्रखर तेजस्वी बहुआयामी व्यक्तित्व एव कृतित्व के धनी मनीषी का समाज को प्रेरणाप्रद सहयोग रहा है। वहीं आचार्यो सन्तों ऋषि मुनियों के प्रति हार्दिक विनय-आदर-सम्मान का भाव सदैव सहज की दिखाई देता है। ऐसे प्राचार्य पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जी को मेरा मंगलमय आशीर्वाद।

—ऐलक निश्चयसागर
(शिष्य—आचार्य विद्यासागर जी महाराज)



अभिनन्दन की परम्परा भारत की अतिप्राचीन परम्परा है

अभिनन्दन और सम्मान की परम्परा भारत की प्राचीन परम्परा रही है। जैन साहित्य के अनुसार इस कर्मयुग के आदि में प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव को जब एक वर्ष उनतालीस दिन के उपवास के पश्चात् हस्तिनापुर के युवराज श्रेयांसकुमार ने इक्षुरस के द्वारा प्रथम आहार कराया था, तब अयोध्या के सम्राट् भरत ने हस्तिनापुर जाकर श्रेयांस का अभिनन्दन किया एवं उन्हे प्रथम आहारदाता के रूप में 'दानतीर्थप्रवर्तक' की पदवी से अलकृत किया था। तब से लेकर आज तक विशिष्ट गुणवान् महापुरुषो के अभिनन्दन का क्रम बराबर चला आ रहा है।

अभिनन्दन की इसी शृंखला में विद्वत्समाज के रत्न प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन-फिरोजाबाद (उ.प्र.) के सम्मान में जैन समाज के द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन एक प्रशंसनीय कार्य है। मेरा तो प्राचार्य जी के साथ दीर्घकालीन परिचय रहा है, जिसमें मैंने उनके अन्दर सदैव निरभिमानता का विशेष गुण देखा है। मै समझता हूँ कि इसी गुण के कारण वे आज जन-जन के प्रिय बन सके हैं। उनकी मधुर एवं ओजस्वी वाणी सुनने के लिए श्रोता हमेशा लालायित रहते है, इसीलिए आज उन्हें विद्वत्समूह में प्रथम श्रेणी का विद्वान् माना जाता है। विद्वत्ता के साथ-साथ उनका सयमित-सादगीपूर्ण जीवन समस्त विद्वानों के लिए अनुकरणीय है। ऐसे विद्वान् हमारे दिगम्बर जैनसमाज की धरोहर के रूप में सदैव अभिनन्दनीय है।

प्राचार्य जी चिरंजीव एवं स्वस्थ रहकर सदैव इसी प्रकार से जिनधर्म की प्रभावना में अपना योगदान प्रदान करते रहें, यही उनके लिए मेरा आशीर्वाद है। अभिनन्दन ग्रन्थ के सभी सम्पादकों एवं प्रकाशन समिति के कार्यकर्ताओं को भी शुभाशीर्वाद के साथ यही प्रेरणा है कि इसी प्रकार समय-समय पर सरस्वतीपुत्र विद्वानो का अभिनन्दन करना कभी न भूलें, ताकि धर्म की परम्परा अखण्डरूप में चलती रहे।

—क्षुल्लक मोतीसागर

(संघस्थ पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)



मंगल मनीषा

जैन दर्शन के वरिष्ठ और मर्मज्ञ विद्वान, लोकप्रिय लेखक और जिनवाणी के प्रखर प्रवक्ता प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी अनेक वर्षों मे गोमटेश्वर भगवान बाहुबली क्षेत्र से जुड़े हैं। पिछले महामस्तकाभिषेक के अवसर पर उन्होंने विद्वान श्री निर्मल जैन का सहयोग लेकर 'विद्वत्-सम्मेलन' के सयोजन का गुरुतर भार बड़ी कुशलता के साथ सम्हाला था। मुख्य अभिषेक के दिन राष्ट्रीय टेलीविजन पर महोत्सव का आँखों देखा हाल प्रसारित करने मे, श्री नीरज जैन के सहयोगी के रूप मे भी उनका स्मरणीय और महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सार्वजनिक सभाओ मे प्राचार्यजी का भाषण प्रभावी होता है। उनकी वाणी मे ओज है और वे वस्तु-स्वरूप का सरल विश्लेषण तथा उसकी सार्थक समीक्षा करने में समर्थ है। उनमें लेखन-कला, सम्पादन-शैली तथा प्रभावक वचन-विन्यास की विलक्षण क्षमता है। अपने विचारों को जन-मानस के चित्त पर अंकित करने की भी उनमें अद्भुत सामर्थ्य है। ऐसे प्रभावी व्यक्ति को केवल धर्म-प्रचार में संलग्न रहने के लिये यदि समाज अनुकूल व्यवस्था और सहयोग प्रदान करे तो अहिंसा धर्म की महती प्रभावना हो सकती है।

यह प्रसन्नता की बात है कि समाज ने जैन-सस्कृति के सवर्धन तथा जैन समाज की पुरोवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान के लिये श्री नरेन्द्रप्रकाशजी को अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की योजना की है। इस आयोजन की सफलता के लिये हम मंगल मनीषा व्यक्त करते हैं।

लोकपूज्य गोमटेश्वर भगवान बाहुबली स्वामी से हमारी प्रार्थना है कि प्राचार्यजी को दीर्घायु के साथ सुख-शान्ति तथा आंतरिक समृद्धि प्राप्त हो और धर्म-प्रचार मे उन्हें महती सफलता मिलती रहे।

वर्द्धताम् जिनशासनम्।

—स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी,
श्री जैन मठ, श्रवणबेलगोल

शुभाशीष

भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं अध्यात्म के प्रखर प्रवक्ता जैन जागृति के सशक्त उद्घोषक तथा मानवीय जीवन मूल्यों के पक्षधर एवं पत्रकारिता के प्रेरणास्तम्भ श्री नरेन्द्रप्रकाश जी शतायु हों, तथा धर्म कार्य में सतत क्रियाशील रहते हुए भगवान द्वारा प्रवर्तित सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र-रत्नत्रयी को आत्मसात् कर साधना के पथ पर सतत अग्रसर होते रहें।

मानवजीवन समतल मार्ग नहीं, अपितु उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष, हर्ष-विषाद की मिली-जुली वेदिका है और व्यक्ति को कदम-कदम पर चुनौतियों, परीक्षाओं, विषमताओं, विद्रूपताओं का भी सामना करना पड़ता है। मगर जो व्यक्ति धर्म, परम्परा, संस्कृति के प्रति आस्था विश्वास एवं आराध्य देवादि देवों के प्रति पूर्णतः श्रद्धावान एवं आचार्य, मुनि संघ आदि के प्रति विनयवान रहते हैं, वे जीवन के झंझावतों का आसानी से सामना कर लेते हैं। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश के गौरवमयी जीवन की यात्रा के परिप्रेक्ष्य में यह शाश्वत सत्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।

हमारी कामना है कि न केवल वे दीर्घायु हों बल्कि वे 'चरैवेति चरैवेति' की उक्ति के अनुसार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विहार करते रहें, धर्म-पथ पर आगे बढ़ते रहें।

जैन काशी के 18 जैन मन्दिर व यहॉ के मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ प्रभु और द्वादशांग देवी श्रुतमाता से प्रार्थना ये है कि आपका जीवन मंगलमय, शुभप्रद एवं फलप्रद हो।

शुभाशीर्वाद।

इति 'भद्रं भूयात् वर्धतां जिनशासनम्'

—भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी
मूडबिद्री.

शुभाशीष

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करना सचमुच श्लाघनीय विचार है। हमारी दृष्टि मे वे सिर्फ एक व्यक्ति नही, बल्कि जैन समाज की अमूल्य सम्पत्ति हैं। सरस्वती-पुत्र श्रीमान् नरेन्द्रप्रकाश जी का जैन धर्म और जैन साहित्य को दिया हुआ अवदान अपार है। श्रीमान् प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन जी को हमारे क्षेत्र की अधिष्ठात्री महामाता ज्वालामालिनी देवी से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य देकर सर्वरीति में सन्मंगल प्रदान करने के लिए हम प्रार्थना करते हैं।

इति भद्रं भूयात्
शुभाशीर्वादों के साथ

स्वस्ति श्री शान्तिभूषण
लक्ष्मीसेन भट्टारक स्वामी
श्री सिंहनगद्दे जैनमठ
नरसिंहराजपुर जिला चिक्कमगलूर
कर्नाटक 577134

शुभाशीष

किसी सम्पन्न या निर्धन परिवार में जन्म लेना, किसी उच्चकुल या साधारण घर में पैदा होना मनुष्य के हाथ में नहीं है, परन्तु मनुष्य के हाथ में परिश्रम, योग्यता, सदाचार, अध्ययन-मनन और आदर्श निष्ठा जैसे सद्गुण अवश्य हैं। जैन जागृति के अग्रदूत, सरस्वती पुत्र, उद्‌भट शास्त्रज्ञ, प्रखर पत्रकार प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाशजी ने गौरवमय 70 वर्षो में इन गुणों को अपने जीवन में पूर्णतः आत्मसात् और स्वायत्त कर लिया। वे इसीलिए ट्रस्ट के लिए, समाज के लिए, जाति के लिए पूज्य और गौरवान्वित महत्वपूर्ण बन गए हैं।

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी साहित्य, पत्रकारिता, अध्यात्म एवं जैन साधना-पथ के सतत साधक हैं। उन्हें उपाधियों, सम्मानों एवं उपलब्धियों ने न तो कभी आकृष्ट किया, न कभी लुभाया या ललचाया और न ही धन के लिए भ्रमित व उत्साहित हुए, बल्कि उन्होंने इन सबका विनम्रता एवं श्री जिनेन्द्र भगवान की कृपा, प्रसाद समझकर स्वीकार किया। ऐसे आदर्श शिक्षक, कुशल संगठक धर्मनिष्ठा पण्डित प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी शतायु हों, दीर्घायु हों तथा आयामी साधना के पथ पर सतत क्रियाशील बने रहें।

इति शुभाशीर्वाद पूर्वक

''भद्रं भूयात् वर्धता जिनशासनम्''

—स्वस्ति श्री ललितकीर्ति भट्टारक महास्वामी

कार्कल अतिशय क्षेत्र,
उडुपि—कर्नाटक-574104

शुभाशीष

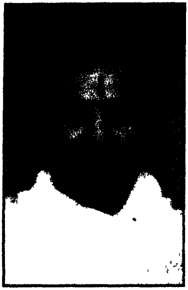
प्रा. श्री पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति के द्वारा उनके अब तक के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर एक अविस्मरणीय कार्य किया है। विद्वान मनीषी पण्डित जनों का सन्मान करना समाज का आद्य कर्तव्य है। विद्वान समाज के हितैषी होते है। जिस समाज में विद्वान पूज्य हैं, वह समाज सर्वत्र पूजनीय है।

पण्डित जी ने अपने लेखों और भाषणो के द्वारा समाज का गौरव बढ़ाया है। आपने समाज की सेवा की है। बाल्यकाल से ही आप धार्मिक जीवन से जुड़े हैं। सरल जीवन और गम्भीर व्यक्तित्व के धनी आप समाज के मूर्धन्य विद्वानों में एक हैं। ऐसे विद्वान का अभिनन्दन करना समाज का आद्य कर्तव्य है।

हमारी कामना है कि आप आरोग्य सम्पन्न होकर शतायु बनें और जीवन में शान्ति सुख प्राप्त करें।

इति, भ्रदं भूयात् वर्धतां जिनशासनम्

— स्वरित श्री भानुकीर्ति स्वामी
कंबदहली जी, मंड्या (कर्नाटक)



शुभकामना

हम सबके आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन वर्तमान युग के लिए एक आवश्यकता की पूर्ति ही मानना चाहिए। समाज के प्रति प्रदत्त उनकी दीर्घकालीन सेवाएँ इस ग्रन्थ के माध्यम से लोगो को ज्ञात हो सकेंगी तथा तृतीय सहस्राब्दि के प्रारम्भिक वर्ष में एक विशिष्ट विद्वान् के अभिनन्दन से निश्चित ही अभिनन्दनीय बन जाएँगे। प्राचार्य जी की विलक्षण प्रतिभा मैंने अनेकों बार देखी है। मुझे याद है कि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के सानिध्य मे 'श्रीशान्तिवीर दिगम्बर जैन सिद्धान्त सरक्षिणी सभा' द्वारा हस्तिनापुर में आयोजित सन् 1978 के ऐतिहासिक प्रशिक्षण शिविर में आप माताजी की प्रवचननिर्देशिका पुस्तक से अत्यन्त प्रभावित हुए थे तथा उस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था—"प्रवचन निर्देशिका में पूज्य माताजी ने हम जैसे पल्लवग्राही पाण्डित्य वाले वक्ताओं के लिए अच्छी सामग्री एकत्रित कर दी है। मैं उससे भरपूर लाभ उठाऊँगा। अन्य विद्वज्जन भी उठावेंगे ही, इसमें सन्देह नहीं। यह एक सुन्दर प्रयास रहा। तलस्पर्शी विद्वत्ता की जड़ें हरी होने में तो समय लगेगा।"

वैसे तो अनेक वरिष्ठ विद्वानों ने समय-समय पर जैनसमाज का मार्गदर्शन किया है किन्तु प्राचार्य जी की वक्तव्य प्रतिभा एवं लेखन कला बेजोड़ है। आर्षपरम्परा के संरक्षण के साथ-साथ आपने जनमानस के हृदय में जो स्थान बनाया हैं, उसे मणिकांचन संयोग ही मानना होगा।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी का मै किन शब्दों में गुणानुवाद करूँ, यह समझ से परे है।

हमारी शुभकामनाये स्वीकार करें।

—ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ)



समस्त जैन समाज गौरवान्वित है

महान विद्वान, अ.भा. दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अध्यक्ष आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी शास्त्री, फिरोजाबाद द्वारा गत पचास वर्षों से माँ जिनवाणी की, की जा रही सेवाओं से समस्त भारत का जैन समाज गौरवान्वित है।

ऐसे यशस्वी सरस्वती पुत्र का सम्मान पूर्व में ही हो जाना था। यह सम्मान वास्तव में माँ जिनवाणी के प्रति श्रद्धा एवं आस्था का प्रतीक है। मैं इनकी सेवाओं का सम्मान करती हूँ तथा इनके यशस्वी, गौरवमय जीवन के लिए स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु की भगवान महावीर से प्रार्थना करती हूँ।

—ब्र. कमलाबाई,
संचालिका

श्री दि. जैन आदर्श महिला विद्यालय
श्री महावीर जी (राजस्थान)

सदाचारी और निर्भीक विद्वान्

पं. नरेन्द्रप्रकाशजी के वाक्चातुर्य या निर्भीक वक्तृत्वकला एवं आगमपोषक लेखनकला से सम्पूर्ण समाज चिर-परिचित है। पं. जी के यथार्थ विचारों को पढ़कर हम यह अनुभव करते हैं कि श्रमण संस्कृति में पनप रहे शिथिलाचार के प्रति भी पं. जी के हृदय में वेदना है। धर्म के नाम पर हो रहे प्रदर्शन, आडम्बरयुक्त महोत्सवों की फिजूलखर्ची के बारे में भी पण्डितजी अपनी लेखनी से समाज को सजग करते रहते हैं।

आगमोक्त, सैद्धान्तिक, गूढ़ विषयों को भी सरलता के साथ प्रतिपादन करने की आपकी कला बेजोड़ है। कई घण्टों तक श्रोता सुनते हुए बोर नहीं होते हैं। यह कला आपको विरासत में मिली है। इन समस्त गुणों के साथ आप स्वाभिमान एवं सरलता से ओत-प्रोत हैं।

मुझे वह गौरवशाली पुण्य दिन स्मरण में आ रहा है जब फिरोजाबाद में 17 अप्रैल, 2000 को महाकवि रइधू पुरस्कार समर्पण करते हुए अनेकान्त ज्ञानमन्दिर शोधसंस्थान, बीना द्वारा प्रारम्भ किए गए शास्त्रोद्धार शास्त्र सुरक्षा अभियान को 20वीं शताब्दी की एक श्रेष्ठ उपलब्धि बतलाते हुए आपने एक जिनवाणी शिशु की भावनाओं को सम्मानित करते हुए जिनवाणी संरक्षण की दिशा में नए आयाम जोड़कर लोगों को इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया था।

मैं स्वयं एवं अनेकान्त ज्ञानमन्दिर शोधसंस्थान, बीना की ओर से पण्डितजी के मंगल जीवन की कामना करते हुए हृदय की ढेर सारी सद्भावनाएँ व्यक्त करता हूँ कि आपके द्वारा माँ भारती की सेवा-उपासना इसी प्रकार होती रहे।

सद्भावनाओं के साथ

—ब्र. संदीप 'सरल'
संस्थापक
अनेकान्त ज्ञानमन्दिर शोधसंस्थान
बीना, सागर (म.प्र.)

सरस्वती के सपूत

श्रद्धेय श्री पं. नरेन्द्रप्रकाश जी सरस्वती के आराधक, प्रखर वक्ता, अद्‌भुत विद्वत्ता, देवशास्त्र गुरु के प्रति अटल निष्ठा, मौलिक चिन्तन, युक्त्यागम सतर्क लेखन क्षमता, निर्भीकता, बहुमुखी प्रतिभा एवं सदाचरण की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

आपकी पठन, पाठन, चिन्तन एवं प्रवचन की शैली अद्वितीय है। आप अपने प्रवचनों के द्वारा समाज में व्याप्त अशिक्षा, रुढ़िवादिता, पन्थ-व्यामोह, एकान्तवाद पर कुठाराघात करते हैं। जैन दर्शन के मूल तत्त्वों में आई स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए आपने समाज को सजग किया। आपने अपने समय को धर्म समाज और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता के लिए लगाया है। अनेक वर्षो से जैन गजट का सम्पादन कर आपने जैन समाज को दिशा बोध तो दिया ही, साथ ही 70 वर्ष की उम्र में भी आपकी लेखनी एवं वाणी अथक परिश्रम कर रही है। आपकी विनम्रता को देख फलों से लदे वृक्ष की याद आ जाती है। जबलपुर में सन् 1993 में आचार्य श्री विद्यासागरजी के सान्निध्य में हुए पंच कल्याणक के शुभावसर पर हम लोगो के विद्या गुरु पं. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के समक्ष आपका सम्मान हुआ। एक बार फिरोजाबाद जैन समाज के साथ आप बुन्देलखण्ड तीर्थ यात्रा के अवसर पर श्री दिगम्बर जैन वर्णी गुरुकुल जबलपुर पधारे, इन्हीं अवसरो पर हम सभी को आपके प्रेरणास्पद प्रवचनों का लाभ मिला।

सादा जीवन और उच्च विचार के धनी विद्वत्रत्न शतायु हों और लोगो के अज्ञान अन्धकार को दूर करते रहे, ऐसी मंगल भावना के साथ..

—ब्र. पवन जैन सिद्धान्तरत्न, न्यायरत्न

—ब्र. कमल जैन सिद्धान्तरत्न, न्यायरत्न

श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल, जबलपुर (म.प्र.)

वाणी के जादूगर : 'प्राचार्यजी'

पं. श्री नरेन्द्रप्रकाश जी प्राचार्य का निर्मल व्यक्तित्व, आत्मीय स्वभाव, उनकी धार्मिकता, उनकी मृदुवाणी लोगो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। आप सरलता के पर्याय हैं। अहंकार आपके व्यक्तित्व को कहीं से भी स्पर्श नहीं कर सका। यही कारण है कि आप जैन समाज के ही नहीं, अन्य जैनेतर समाज के भी आस्था के प्रतीक बने हुए है। अभिनन्दन के मंगल अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ...।

—ब्र. सुकान्त जैन

(अधीक्षक)

श्रमण संस्कृति संस्थान

सांगानेर, (जयपुर)।

अप्रतिम प्रतिभा के धनी

प्राचार्य पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जी, फिरोजाबाद के नाम व व्यक्तित्व में यथा नाम तथा गुण की सूक्ति चरितार्थ होती है। मनुष्यों में इंदु के समान, ज्ञान का प्रकाश करनेवाले, नेतृत्वशील, सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य जी से सम्पूर्ण जैन जगत स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है।

आपके शब्दों की अभिव्यक्ति जन-सामान्य को भी आकर्षित करनेवाली है। आपकी वाणी का प्रभाव युवा, बाल, वृद्ध सभी पर अनूठा ही पड़ता है। धर्म सभाओं में लोग आपकी वाणी लालायित व मन्त्रमुग्ध होकर सुनते हुए देखे जाते हैं। आपकी बोली में माधुर्य, शब्दों में गाम्भीर्य व चेहरे पर ओजस्विता स्पष्ट दिखाई देती है।

साधु, त्यागी, व्रतियों के प्रति आपके हृदय में वात्सल्य एव बहुमान अगाध है। आप हमेशा ही व्रतियो के प्रति समर्पित व विनयशील रहते हैं। आप सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। जिनवाणी माँ के 'अनन्य भक्त' को हार्दिक शुभकामनाएँ।

आप स्वस्थ रहे, दीर्घायुष्य हो व सम्यग्ज्ञान का इसी प्रकार प्रचार-प्रसार करते रहे।

—डॉ. ब्र. अरुण सॉधेलीय
भाग्योदय तीर्थ, सागर (म.प्र.)

मंगलकामना

भारतवर्ष में समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लिया है। उसके कारण देश व धर्म उन्नत हुआ। इसी शृखला मे हमारे जैन विद्वान प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी द्वारा जैन धर्म की पताका लहरा उठी। इससे सारा जैन समाज धन्य हुआ। निस्पृह जीवन का प्रकाश बिखेरने वाले, उत्तर प्रदेश की सुहागनगरी फिरोजाबाद मे जन्म लेनेवाले आदरणीय प्राचार्य जी हैं, जिन्होंने अपने जीवन का व पद्मावतीपोरवाल समाज दोनों का नाम रोशन किया है, और अपने गृहस्थ जीवन को सार्थक किया है, समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। सारा समाज आपका सदा ऋणी रहेगा। आप एक उच्चकोटि के निस्पृहता सरलता, समता को धारण करनेवाले गम्भीर विचारशील चिन्तनशील, सद् गृहस्थ हैं। आपके जितने गुणों का बखान किया जाए, उतना ही कम है। मुझ जैसी अबोध बालिका द्वारा आपका यशोगान सूर्य को दीपक दिखाना मात्र ही कहा जावेगा।

भगवान ऋषभदेव से प्रार्थना है कि आपका स्वास्थ्य निरन्तर सकुशल रहे और आप दीर्घायु रहकर इसी प्रकार जिनधर्म की पताका को फहराने का उत्तरदायित्व सँभालते रहें, इसी भावना के साथ मैं सपरिवार आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए आपको शत् शत् प्रणाम करती हूँ।

—ब्र. कुमारी आरती जैन
(संस्थापक) वर्धमान कम्प्यूटर, फिरोजाबाद

सामंजस्य भावना के आराधक

ओजस्वी वाणी, कुशल लेखक, बोलचाल एवं मुहावरे से संयुक्त बातों से अपनी बात प्रस्तुत करना, एवं सोती हुई सभा में नई चेतना को जागृत करने की अलौकिक प्रतिभा तो उनमें हैं ही, साथ में सामाजिक एवं धार्मिक विवादों के बीच में सामंजस्य स्थापित करना, कमलवत् निर्लिप्त रहना आपकी विशेषता है। वह विवाद चाहे कॉलेज सम्बन्धित हो, साधु सम्बन्धित हो अथवा विद्वानो के मतभेद ही क्यों न हों, आपने न्यायमूर्ति बन दोनों पक्षों को समझाने की कोशिश की। मतभेद को मनभेद नहीं होने दिया। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय पद प्रतिष्ठा पर होने के बावजूद भी कभी आपने स्वार्थ की पूर्ति नहीं की। कई बार आपको राजनेताओं ने राजनैतिक क्षेत्र में आने के लिए निमन्त्रण दिया, प्रलोभन दिया, फिर भी इस नीति से दूर ही रहे।

'सादा जीवन एवं उच्च विचार' का सूत्र अपनाना ही आपका लक्ष्य रहा है। गुस्सा आना एवं आत्म प्रशंसा करना यह आपकी निकटता में मुझे देखने को नहीं मिला। सन् 2002 के फिरोजाबाद चातुर्मास में ब्रह्मचर्य व्रत के साथ अन्य व्रतों को धारण करके विद्वानो के मध्य मिसाल एवं प्रेरणा दी कि ज्ञान के साथ चारित्र की भी महत्ता है। इसके बिना नरजन्म एवं ज्ञान दोनों ही निष्फल है।

अन्त में आपको विनयांजली अर्पित कर यही कामना करती हूं कि आप दीर्घायु होने के साथ निरोगी हों एवं समाज तथा राष्ट्र को चिरकाल तक दिशा निर्देशित करते रहें।

—डॉ ब्र. अजु जैन, फिरोजाबाद

फिरोजाबाद की निधि

प्राचार्य जी मेरे फुफेरे भाई हैं। मेरा बचपन से ही साथ रहा है और साथ में खेले-कूदे भी हैं। जब मैं 18 वर्ष की उम्र मे विधवा हो गई थी, इनका मुझे पढ़ाने-लिखाने में पूरा-पूरा योगदान रहा है। वे फिरोजाबाद की एक निधि के रूप में हैं। इनके भाषण सारगर्भित, रुचिकर एवं चुटीले होते है। श्रोताओं को प्रिय लगते हैं। मैं भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि प्राचार्य जी दीर्घायु हों, यही मेरी शुभकामना है।

—ब्र. शकुन्तला बाई
गाँधीनगर, फिरोजाबाद

युवाओं के मार्गदर्शक

प्राचार्य जी युवाओं के मार्गदर्शक हैं। उनकी प्रेरणा से जो युवा धर्म और विद्वत्ता के क्षेत्र मे आगे बढे हैं, उन्हीं में से मै भी एक हूं। मैं उनके सुदीर्घ जीवन की मंगलकामना करता हूं।

—ब्र. सुनील जैन शास्त्री
कैलाशनगर, दिल्ली



उप-राष्ट्रपति सचिवालय
नई दिल्ली - 110011
VICE-PRESIDENT'S SECRETARIAT
NEW DELHI - 110011

के एल कोचर
उपराष्ट्रपति के प्रेस सलाहकार
दूरभाष 23016344 23016422
फैक्स 23018124

संदेश

महामहिम उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत का यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशन समिति, दमोह, मध्य प्रदेश द्वारा प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाशजी के सत्तरवे जन्म दिन के अवसर पर एक अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर अभिनन्दन ग्रथ का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है।

उपराष्ट्रपतिजी इस समारोह की सफलता तथा श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन के दीर्घ जीवन की कामना करते हुए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

(के.एल.कोचर)

नई दिल्ली
24 जुलाई ,2003



निर्मल चन्द्र जैन
राज्यपाल, राजस्थान

राज भवन
जयपुर-302 006

सदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि प्रतिष्ठित विद्वान, जैन गजट के सम्पादक एव शास्त्री परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य, श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन (फिरोजाबाद) का अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रखर विद्वान एव शिक्षाविद् श्री जैन ने शिक्षा जगत, सेवा एव साधना मे अमिट पहचान बनाई है। समाज को नयी दिशा एव नयी सोच देने वाले श्री जैन के व्यक्तित्व एव कृतित्व को अभिनन्दन ग्रथ के रुप मे प्रकाशित करना प्रशसनीय है। मुझे विश्वास है कि इससे समाज को नयी प्रेरणा मिलेगी।

मैं प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रथ के लिए शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ।

निर्मलचन्द्र जैन

(निर्मल चन्द्र जैन)



शुभकामना सन्देश

मुझे यह ज्ञात होने पर नितांत प्रसन्नता हुई कि जिनागम के मर्मज्ञ एवं सुपरिचित विद्वान् तथा भारतवर्ष की सुविख्यात पत्रिका 'जैन गजट' के यशस्वी संपादक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का सम्मान का प्रसंग आयोजित हो रहा है।

हमारे अभिमत मे इतने प्रकांड पंडित के समादर का आयोजन समाज का अतीव श्लाघनीय कर्तव्य है। आज इस इक्कीसवीं सदी के आरंभ के वर्षो मे इतने महान् प्राचार्य जैसे सर्वमान्य मनीषी तथा जिनधर्म मार्ग प्रदीपक को सम्मानित करके समाज स्वयं गौरवान्वित हो रहा है। हमें इस नितांत समुचित अभिनंदन कार्य का अनुमोदन करने में अतीव हर्ष एव उल्लास का अनुभव हो रहा है।

हम भगवान श्री चंद्रनाथ स्वामी जी एवं भगवान श्री बाहुबली स्वामीजी से प्रार्थना करते हैं कि उन पर सदा उनकी अनुकंपा बरसती रहे तथा उन्हें सुदीर्घ आयुरारोग्य संपदाओं को अनुग्रहीत करें-ऐसी हमारी मंगल भावना है।

वर्धता जिनशासनम्।

डी. वीरेन्द्र हेगड़े

(राजर्षि) डा. डी. वीरेन्द्र हेगड़े
धर्माधिकारी श्रीक्षेत्र धर्मस्थल, कर्नाटक

सन्देश

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन ने अति उत्साह और जोश के साथ शिक्षा जगत में शिक्षकों और छात्रों की मुखर समस्याओ के लिए अपना जीवन एक संघर्षरत शिक्षक के रूप में आरम्भ किया। आपके सफल नेतृत्व में शिक्षको और छात्रों की समस्याओं का निराकरण हुआ। शिक्षा क्षेत्र में आप का संघर्षप्रिय चेहरा हमेशा वदनीय/अभिनदनीय बना रहेगा।

श्री जैन ने गौरवमयी जैन धर्म के हीरों की परख कर साहित्य की जो सेवा की, उसने जैन की ख्याति को आसमान की ऊँचाई तक पहुँचाया। आप साहित्य, धर्म और जैनदर्शन के प्रखर पुरोधा सिद्ध हुए हैं। श्री जैन शिक्षक, लेखक और अन्वेषण कर्त्ता के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगें।

श्री जैन की दीर्घ आयु और उनकी लेखन की क्षमता के प्रति हार्दिक शुभकामनायें प्रस्तुत करता हूँ।

—रघुवरदयाल वर्मा, पूर्व मंत्री उ. प्रदेश सरकार, फिरोजाबाद

एक वन्दनीय पुष्प

भाई नरेन्द्रप्रकाश जैन हमारे पुराने मित्रों में से एक हैं। उन्होंने पिछली आधी सदी से भी अधिक समय तक शिक्षा, धर्म और समाज की प्रचुर सेवा की है। साहित्य के संवर्धन के साथ ही छात्रों के चरित्र-निर्माण की दिशा में भी उनके प्रयत्न प्रशंसनीय रहे हैं।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनके सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है। उनके चिर सुख की कामना करते हुए हम उन्हें बधाई देते हैं। उनके व्यक्तित्व के निरन्तर ज्योतिर्मय बने रहने का रहस्य हम अपनी इन चार पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं—

पाँच पंखुरी की देह का भविष्य कौन कहे
धूल बन जाना, उसे विधि के विधान में
किन्तु पुष्प वही है वन्दनीय, जो छोड़ जाए
बीज वसुधा में और सुगन्ध आसमान में

—उदयप्रताप सिंह, सांसद

सी-2/30, मोतीबाग-1
चाणक्यपुरी, शान्तिपथ, नई दिल्ली

भारतीय संस्कृति के प्रसारक

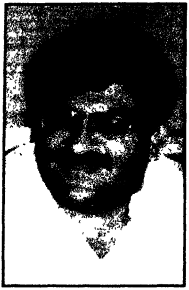
छात्र-जीवन से ही हमारे अभिन्न मित्र रहे भाई नरेन्द्रप्रकाशजी की ख्याति एक अनुशासनप्रिय प्राचार्य, कुशल वक्ता एवं अनन्य साहित्यानुरागी के रूप में रही है। हिन्दी के पुरोधा श्रद्धेय प. बनारसीदास चतुर्वेदी (दादाजी) के बाद दूर-दूर तक यह नगर भाई नरेन्द्रजी के कारण पहचाना जाता है। निःसन्देह वह इस नगर के गौरव हैं।

भारतीय संस्कृति दया, करुणा और परोपकार की संस्कृति रही है। श्री नरेन्द्रप्रकाशजी हरियाणा से असम तक और गढ़वाल से कर्नाटक तक इसी संस्कृति को आगे बढ़ा रहे हैं। वह आज जैन-जगत के सर्वप्रिय विद्वान् हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर उनके अभिनन्दन का आयोजन कर एक स्तुत्य कार्य किया गया है। हम उन्हें शतशः बधाइयाँ देते हैं।

—श्यामनन्दन सिंह, सदस्य विधान परिषद
(प्रवक्ता-उत्तरप्रदेश भाजपा)

महावीर चौक, घेर खोखल,
फीरोजाबाद



गुरुवर के चरणों में नमन

हमारे नगर फिरोजाबाद को पूरे देश में गौरव प्रदान करने वाले प्रखर जैन विद्वान् प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का शिष्य होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है। जिनके ज्ञान एवं ओज की छाया मे मेरे जैसे हजारों शिष्य सामाजिक क्षेत्र में पहुँचे हैं, ऐसे ऋषितुल्य व्यक्तित्व के विषय में लिखना कितना कठिन हो सकता है, यह मुझे आज महसूस हो रहा है।

प्राचार्य जी ने जिस प्रकार अपने जीवन के मूल्यो को निभाया है, वह मात्र उनके निजी दैनिक जीवन का हिस्सा ही नहीं है, अपितु सारे समाज को उनसे सतत प्रेरणा मिलती रहती है। आत्मानुशासन एवं सयम ने उन्हें ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। प्राचार्य जी के व्यवहार मे सदैव सहजता एवं हास्य-विनोद की झलक झिलमिलाती रहती है। इतने लम्बे धार्मिक सामाजिक एवं शैक्षिक जीवन मे प्राचार्य जी ने समाज की समस्त गतिविधियों के साथ जुड़े रहकर भी राजनैतिक दलों/विचारों से अपनी स्पष्ट एवं निर्णायक दूरी बना कर रखी है, वह आज के दौर में दुर्लभ है। अपने गुरु का अनवरत आशीर्वाद एवं स्नेह न केवल मुझ पर, मेरे नगरवासियों पर, अपितु पूरे देश भर में उनके चाहने वालों के ऊपर सौ वर्षो तक बरसता रहे, ऐसी मेरी परम पिता परमेश्वर से आकांक्षा है।

यह बात कह कर मै अपने श्रद्धेय गुरुवर के चरणों में अपना शीश झुकाता हूँ।

—मनीष असीजा
अध्यक्ष नगरपालिका परिषद, फिरोजाबाद



नीर-क्षीर-विवेकी प्राचार्य जी

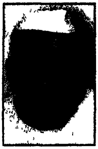
भगवान् महावीर स्वामी के 2600 वे जन्म कल्याणक महोत्सव-वर्ष के ऐतिहासिक अवसर पर कोलकाता में हमारी अध्यक्षता में पण्डितप्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी के अखिल भारतीय अभिनन्दन का निर्णय हुआ। इस सुखद समाचार को सम्पूर्ण राष्ट्र में बहुत सराहा गया, सर्वत्र इसका हार्दिक स्वागत हुआ।

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाशजी तटस्थ और निष्पक्ष व्यक्तित्व के धनी, स्वतन्त्र चिन्तक मनीषी हैं। शिक्षा और विद्या के अधिष्ठान पर विकसित 'नीर-क्षीर-विवेकी दृष्टि' से ओत-प्रोत उनके विचार सन्तुलित एवं मार्गदर्शक होते हैं। श्री भा. दि. जैन महासभा जैसी प्राचीन और प्रतिष्ठित सामाजिक सस्था के मुखपत्र 'जैनगजट' के प्राचार्यजी यशस्वी प्रधान सम्पादक है। उनके सम्पादकीय अग्रलेख बहुत चाव से तो पढ़े ही जाते हैं, संग्रह भी किये जाते हैं। समाज में जब-जब कोई धार्मिक अथवा सामाजिक विसंगति उत्पन्न हुई है, प्राचार्य जी के सुलझे हुए विचारों को पढ़कर समाज ने समाधान प्राप्त किया है।

प्राचार्य प. नरेन्द्रप्रकाशजी का श्री भारतवर्षीय दि. जैन महासभा के कार्यो में अभिन्न एव आत्मीय सहयोग रहता है। कुछ वर्ष पूर्व मनाये गये महासभा के शताब्दी समारोह के वह महामंत्री थे। उनके समीचीन मार्गदर्शन में यह समारोह पूरे देश में सफलतापूर्वक मनाया गया था। उनकी ओजस्वी वक्तृत्व कला सबको मन्त्रमुग्ध करने वाली है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी के जीवन दर्शन और आर्ष मार्ग के मौलिक चिन्तन से समन्वित इस अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन और ऐतिहासिक भव्य समर्पण के शुभ अवसर पर उन्हें गौरवपूर्वक नमन करता हूँ और उनके सुदीर्घ निरामय दीर्घायुष्क की भावना प्रकट करता हूँ।

—निर्मलकुमार सेठी,
अध्यक्ष
श्री भारतवर्षीय दि. जैन (धर्म-तीर्थ-संरक्षिणी), महासभा



कुशल समाज सुधारक

कुछ प्रतिभायें ऐसी होती हैं जिनका परिचय नहीं देना पड़ता। उनके व्यक्तित्व, कार्यशैली, वैदुष्य और व्यवहार की सुगंध स्वंयमेव ही दिग्दिगन्त को सुवासित करती रहती है। उसी प्रकार कृति कृतिकार के वैचारिक वैभव का परिचय कराकर पाठक को नत-मस्तक कर देती है। ऐसे विशाल, गम्भीर, मधुर व्यक्तित्व के धनी, समाजोत्थानक, समसामयिक चिन्तक, स्नेहिल मनीषी श्री नरेन्द्रप्रकाशजी के परिचय की आवश्यकता नहीं रहती है। आप अपने कुशल नेतृत्व के द्वारा जन-जन के हृदयों तक पहुँच गये हैं। आप श्रमण और श्रावकों में बढ़ रहे शिथिलाचार के विरोधी हैं। आपने अनेक मंचो से गोष्ठियों के माध्यम से एवं व्यक्तिगत चर्चाओं के द्वारा, पूर्वाचार्यो के उदाहरण देकर मुनियों का संवर्धन भी किया है और सार्वजनिक अपील करके समस्त समाज को जागृत किया है। 'जैन गजट' में अपनी अन्तर्वेदना को निःसंकोच सम्पादकीय के माध्यम से प्रकट कर जन जागरण का अभियान चला रखा है। आप परम मुनि भक्त होते हुये भी शिथिलाचारी मुनिराजों का शख्त विरोध भी करते हैं और उपगूहन एवं स्थितिकरण भी करते हैं। जैन धर्म और समाज के प्रति आपकी सेवायें आदर्श के रूप में गिनी जाती हैं। आप हमेशा कुरीतियों/रूढ़ियों के विरोधी रहे हैं। समाज इन से ही दूषित होता है। इन दूषणों को आप अपने प्रभावी प्रवचनों एवं कुशल लेखन से परिमार्जित करते हैं। जहाँ आपकी कलम कौशल दिखाती है, वहीं आपकी वाणी अपने ओज से सम्मोहन करती है। कठिन से कठिन विषय को भी अत्यन्त सरल ढ़ग से प्रस्तुत करना आपकी वाणी/शैली/गम्भीर चिन्तन/सरलता एवं सहजता का प्रतीक है। आपकी संचालन कला अद्वितीय है, चाहे वह मच का कार्यक्रम हो या किसी संस्था/परिषद् के संचालन का कार्य हो, सभी गरिमा को प्राप्त होने हैं। शास्त्री परिषद् के आप यशस्वी अध्यक्ष हैं। आपके कारण ही शास्त्री परिपद् ने बडे बड़े कार्य किये हैं। आपको लगातार दो पंचवर्षीय कार्यकाल में शास्त्री परिषद् का अध्यक्ष बनने का सौभाग्य प्राप्त है। आपकी निर्दोष/निष्पक्ष कार्यप्रणाली ही आपकी लोकप्रियता का राज है। अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों में एक ही मंच पर आपके साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ, तब हमें ऐसा अनुभव हुआ कि आज भी आदर्श प्रवचनकार एवं प्रामाणिक विद्वत्ता के विद्वान् हैं, जिनके ऊपर समाज गौरव करती है। आपके अनुशासित संचालन एवं निर्णयात्मक विचारशैली ने समाज और धर्म को विकास पथ पर लाकर गतिमान किया है, जिसे समाज कभी विस्मृत नही कर पायेगी। आज समाज आपका राष्ट्रीय सम्मान कर कृतज्ञता ज्ञापित कर रही है। इस अवसर पर हम भावना करते हैं कि आप सुदीर्घ स्वस्थ जीवी होकर समाज का दिशा निर्देशन करते हुये मानव जीवन के उत्कृष्ट लक्ष्य को प्राप्त करें।

पं. गुलाबचन्द 'पुष्प', टीकमगढ़ (म. प्र.)

□

मंगलकामना

यह जानकर हर्ष हुआ कि दिगम्बर जैन समाज के साहित्य-मनीषी प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन कोलकाता समाज द्वारा हो रहा है।

प्राचार्य जी प्रखर प्रवक्ता तथा मधुर वाणी बोलने में निष्णात हैं। उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हुए भगवान से प्रार्थना है कि आप व्रती बनकर समाधि को प्राप्त हों। कोलकाता समाज सदैव ही सन्तों एवं विद्वानों के प्रति निष्ठाभाव रखते हुए उनके प्रति आदर एवं सेवा सुश्रुषा करने में अग्रणी रहा है। आगे भी ऐसा ही हो, यह माना है। कोलकाता समाज, प्रकाशन समिति एवं प्राचार्य जी के प्रति मेरा मंगल आशीर्वाद है।

प्रतिष्ठाचार्य धर्मचन्द शास्त्री, दिल्ली

समाज के गौरव

जैन समाज के यशस्वी मूर्धन्य विद्वान् एवं ओजस्वी प्रवक्ता प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन वर्तमान में अ. भा. दि. जैन महासभा के प्रसिद्ध साप्ताहिक मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक और अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष पद से लोकसेवा करते हुए अपने पवित्र जीवन, सद्व्यवहार, निर्भयता, निरहकार मनस्विता आदि मानवीय आदर्श मूल्यों से समाज और विद्वद्गण को गौरवान्वित कर रहे हैं।

मुझे बड़े बड़े समारोहों, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों, शास्त्र प्रवचनों एवं सामाजिक अधिवेशनों में प्राचार्य जी की जनमानस को प्रभावित कर उनके हृदय में सद्भाव जाग्रत करने वाली सक्षम वाणी श्रवण करने का अनेक बार अवसर मिला है। पंडित-प्रवर नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपने संपादकीय लेखों मे सामाजिक गतिविधियो का उल्लेख करते हुए निर्भीकतापूर्वक बारम्बार समाज हित में, व्यक्ति विशेषों की बुराईयों को न प्रकट कर स्पष्टवादिता का परिचय दिया है, यह उनकी विशेषता है। आपके धार्मिक, क्रियाशील और देव, गुरु, शास्त्र के प्रति श्रद्धापूर्वक समर्पित व्यक्तित्व की सराहना करते हुए हार्दिक अभिनन्दन है।

आरोग्यमस्तु शुभमस्तु सुदीर्घायुरस्तु।

—संहितासूरि, पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर

□

एकः चन्द्रः तमो हन्ति

विस्तीर्ण आकाश में जगमगाते हजारों तारे जो कार्य नहीं कर पाते, वह एक चन्द्रमा कर देता है। विद्वान् अनेक हैं, सभी की अपनी-अपनी शैली है, परन्तु जिस शैली के साथ प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जिनवाणी के गूढ़ तत्त्वों को प्रकाशित करते हैं, वह विलक्षण है। उनकी दीर्घावधि की स्वाध्याय साधना का ही यह फल है। आज स्वाध्याय के प्रति जैसी उपेक्षा व्याप्त है वैसी कभी नहीं रही। साधुओं के प्रति अन्धश्रद्धा और लोकैषणा की पूर्ति के निमित्त ही सारे प्रयत्न किए जा रहे हैं। प्राचार्य जी का जीवन्त परिचय अभिनन्दन ग्रन्थ के माध्यम से जिनवाणी के मर्म को प्रकाशित करने में सार्थक भूमिका निबाहेगा और व्याप्त अन्धकार को दूर करेगा। इसी भावना के साथ उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

—पद्मचन्द्र शास्त्री, दरियागंज, दिल्ली

□

श्रमण संस्कृति के यशस्वी पुरोधा

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी से हमारा सम्पर्क विगत बीस वर्षों का है। वे भारतीय मेधा तथा तपोपूत श्रमण संस्कृति के यशस्वी पुरोधा मनीषी हैं। उनके योगदान का विशिष्ट इतिहास है। उनके निरामय स्वस्थ चिरायुष्क की मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

—पं. मल्लिनाथ जैन शास्त्री, चेन्नई

□

यह नादान मनुष्य भले ही पशुओं से प्रेम करता रहे किन्तु पशुओं को तो मनुष्यों से घोर घृणा है।

अद्भुत प्रतिभा के धनी

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी वाणी के धनी, वाक चातुर्य और ज्ञान के भण्डार हैं। प्रवचन और भाषण में उनकी समानता करने वाले विरले ही हैं। वे कुशल सम्पादक हैं। उन्होने कई पुस्तकों की भूमिका और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है। उनकी स्वयं की अनेक पुस्तकें हैं। उनके जीवन में जैन गजट एक पर्याय बन गया है। जैनगजट को समय-समय पर ऐसे ही प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति मिले हैं। आज जैन गजट का स्तर उनके कारण से ऊँचा उठा है। वे अपने प्रवचन में चुटकी लेने से नहीं चूकते हैं। बहुत से गुण उन्हें विरासत मे अपने पिताजी से मिले हैं। वे सफल लेखक हैं। गोष्ठियाँ और सभा संचालन करने में निपुण हैं।

मेरा उनका सयोग 1978 में हस्तिनापुर में हुआ था। तब से आज तक एक परिवार के रूप में निभ रही है। जिस विद्यालय में वे एक शिक्षक की जगह नियुक्त हुये थे उसी के प्राचार्य पद से सेवा निवृत हुये, ऐसे उदाहरण बहुत कम है। शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष के रूप में बहुत सम्मान पा रहे है। संस्था भी प्रगति पर है। 1995 में उन्हें मुरैना में मेरे एक प्रस्ताव पर एकमत से शास्त्री परिषद् का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया और कलकत्ता अधिवेशन में उन्हें सार्वजनिक रूप से अध्यक्ष के पद का भार मैंने उन्हें सौंप दिया। उन्हे तिलक किया, शाल उढ़ाई और अध्यक्ष के पद पर बिठाकर मैं उनके पास बैठ गया, यह भी एक मधुर स्मृति है।

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन गजट और शास्त्री परिषद् के प्राण बन गये हैं। वे एक दूसरे के पूरक है। वे जीवन में जितना आगे बढ़ेंगे मुझे उतनी ही प्रसन्नता होगी, बढ़ती रहेगी। अगर वे मुझे इस उतरती अवस्था में प्रसन्न मुद्रा में देखना चाहते हैं तो वे आगे और आगे बढ़ते रहें, वे इतना चलें कि मार्ग ही समाप्त हो जाये। उनके अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये मेरा स्नेह-अर्पण और समर्पण उनके साथ है। वे सदा प्रसन्न-स्वस्थ और हंसमुख बने रहे। उनके चेहरे पर सदा स्मित मुस्कान खेलती रहे।

स्नेह सहित – मंगलमयी शुभकामनाएँ अर्पित है, समर्पित हैं। मंगल आशीर्वाद स्नेह सहित,

—पं. सागरमल जैन, विदिशा
(पूर्व अध्यक्ष- अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद्)

□

उदात्त हृदय की बेजोड़ मिसाल

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी स्वच्छ हृदय एवं निश्छल व्यक्तित्व के धनी हैं। अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष पद का निर्वाह वे मृदुता से एवं श्रेष्ठ मानवीय पद्धति से कर रहे हैं। विचार-भेद होने पर भी उनके विरोधी कम ही नजर आते हैं। उनके सीधे-सादे चरित्रवान् मनस्वी व्यक्तित्व में गुणों का भंडार समाया हुआ है। विद्वत्ता, पत्रकारिता, अध्यापन, प्राचार्यत्व, सहिष्णुता, सहजता, मिलनसरिता और सदैव सस्मित-विनोद जन सामान्य को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। वे समाज में सदैव अभिभावक के रूप में समादृत हैं, वे उलझनों, परस्पर विवादों के बीच में सुलझे हुए मनीषी के रूप में सबकी आशा के केन्द्र हैं। उनका हृदय विशाल विराट् है।

प्रवचन कला के क्षेत्र में उनका जादुई प्रभाव है। गम्भीर एवं रुक्ष विषय को सरलता से प्रस्तुत करने में माहिर हैं।

धर्म के लिए अर्पण किया हुआ [illegible] है।

निस्पृहता उनकी सहचरी है। ज्ञान-प्रसार के द्वारा, अपनी सुरभित वाणी के द्वारा, आगम पक्ष प्रस्तुतीकरण के माध्यम से कभी स्वार्थपूर्ति में विश्वास नहीं रखते। वे जीवन-पद्धति में फीरोजाबाद के गौरव पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुयायी हैं। उन्हीं की भाँति लेखनी तथा वक्तृत्व के धनी हैं।

स्वाभिमान उनका विशिष्ट परिचय है। अभिमान उनको छू नहीं पाया है। 'जैन गजट' के दीर्घकालीन संपादकत्व में वे कभी भी अनुचित पक्षधर के रूप में दृष्टिगत नहीं होते हैं। वे अपनी लौह लेखनी से समाज का मार्गदर्शन करने हेतु विख्यात हैं।

वे मेरे तो बड़े भाई साहब हैं। मैं उनके सद्परामर्श से असंमजस की स्थिति में मार्ग-दर्शन प्राप्त करता हूँ। उनका परिवार सदैव हमें स्नेह व सौजन्य प्रदान करता है।

मुझे तो ऐसा कहने में कतई संकोच नहीं है कि उनका अभिनन्दन समस्त विद्वज्जगत का अभिनन्दन है। उनके विशाल व्यक्तित्व में सभी विद्वान् समाविष्ट हैं।

मैं उनके गुणगान के इस अवसर पर उनके धर्मप्रसार रूप दीर्घ, स्वस्थ, मंगलमय, भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

—शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी

□

शुभकामना

मैं अभिनन्दनीय विभूति को सादर सविनय नमन करता हूँ। कलम और वाणी दोनों के धनी इस विरल शिक्षक व्यक्तित्व के सम्मोहन से, सम्पर्क में आनेवाला शायद ही कोई अपने आप को बचा पाता हो। सरलता, सादगी, हास्य-विनोदवृत्ति, व्यंग्यप्रियता, कार्यनिष्पादन क्षमता, संगठन-सामर्थ्य, विद्वत्ता, निर्भीकता और भी न जाने प्राचार्यजी के दिल और दिमाग की कितनी-कितनी विशेषताएँ—उनकी उन्हीं में हैं। 'सागर' गहरा है उसकी थाह ली जा सकती है, पर्वत ऊँचा है उसे नापा जा सकता है, पर प्राचार्यजी जैसे सन्तुलित व्यक्तित्व को जिसमें गहराई भी है और ऊँचाई भी—शब्दों में बाँध पाना कठिन है। मैं उनके स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करता हुआ उनके प्रति पुनः अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

—डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

□

संस्मरण व शुभकामना

सन् 1980 में श्री निर्मलकुमार जी सेठी ने बरसों से निष्क्रिय पड़ी दिगम्बर जैन समाज की सर्वाधिक प्राचीन सामाजिक-धार्मिक संस्था श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की बागडोर सँभालकर उसमें नए प्राण फूँक दिए तथा आज उसे दिगम्बर जैनों के देशव्यापी सर्वाधिक प्रभावी संगठन के रूप में स्थापित कर दिया है। महासभा की विचारधारा के प्रचार-प्रसार के सशक्त माध्यम उसके मुख-पत्र हिन्दी जैन गजट (साप्ताहिक) जो अजमेर में अरसे से बन्द पड़ा हुआ था। उसे लखनऊ से पुनः प्रकाशित करने का भार उन्होंने मुझे सौंपा, पं. कुंजीलाल शास्त्री फिरोजाबाद को प्रधान सम्पादक बनाया तथा उन्हीं के परामर्श से पी.डी. जैन इण्टर कॉलिज फिरोजाबाद के युवा प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी को

तीर्थों पर [illegible] प्रतिस्पर्धा तो होनी ही नहीं चाहिए।

सह-सम्पादक के रूप में सम्बद्ध कर लिया। प्राचार्य जी से मेरा सम्पर्क तभी से हुआ तथा उनके निश्छल, सरल व्यक्तित्व ने प्रथम दृष्टया ही आकर्षित कर लिया।

पं. कुंजीलाल शास्त्री, तदन्तर प्रधान सम्पादक बने पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री के शीघ्र ही दिवंगत हो जाने के बाद गत, बीस वर्षों से प्राचार्य जी ही जैन गजट के प्रधान सम्पादक का कार्य भार सँभाले हुए हैं।

महासभा की परम्परा-पोषक विचारधारा में आस्था रखने के साथ-साथ अपने उदार दृष्टिकोण, गहरी सूझबूझ तथा प्रभावक वक्तृत्व एवं लेखन शैली के बल पर प्राचार्यजी ने शीघ्र ही जैन विद्वानों की अग्र श्रेणी में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

जैन विद्वानों की प्राचीनतम प्रतिनिधि संस्था 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद' के भी वे पिछले सात-आठ वर्षो से अध्यक्ष चले आ रहे हैं। उनकी अध्यक्षता में शास्त्री परिषद की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

प्राचार्यजी के अनेक सम्पादकीय लेख (आचार्य शान्तिसागर एवं सन्त अंकलीकर--कथ्य और तथ्य, साधु संस्था और चमत्कार, साधु-संगति-हमारा अहोभाग्य, मॉसाहार का निषेध क्यो? आहार नीति का आधार-अहिंसा, विद्वान् और समाज आदि) कालजयी सिद्ध हुए हैं और उनसे जैन गजट की प्रतिष्ठा व लोकप्रियता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

मैं प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के यश-कीर्ति मे उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ शतायु होने की मंगल कामना करता हूँ। वे अन्त समय तक इसी प्रकार समाज का तथा विद्वज्जन का मार्गदर्शन करते रहें।

--अजितप्रसाद जैन
शोधादर्श
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ

□

जैनगजट के यशस्वी सम्पादक

मानवीय कलाओं में वक्तृत्व, लेखन, सम्पादन कलाओं का विशिष्ट महत्त्व है। इनमें से किसी एक कला को भी प्राप्त व्यक्ति महानता को प्राप्त हो जाता है, किन्तु जिसमें तीनों कलाओं की विशेषता हो, उसका अप्रतिम महत्त्व निश्चित रूप से होता है। उक्त कलात्रय से मण्डित व्यक्तित्व का नाम प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन है।

प्राचार्यश्री श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में भी जानने योग्य हैं। इन्हें वक्ता और सम्पादक के रूप में तो सम्पूर्ण जैन समाज जानता ही है, क्योंकि देश भर मे होने वाले महोत्सवों की सभाओं में इनके सारगर्भित विचार सुनने को मिलते रहते हैं, और प्रति सप्ताह जैनगजट में भी इनकी सम्पादकीय पढ़ने को मिलती है साथ ही उन सम्पादकीय आलेखों में जो साहित्यिक अवदान है, वह अनुपम है। उसी के आधार पर एवं उनकी स्फुट कृतियों के आधार पर श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में जानने परखने में पूर्ण सहायता मिलती है। साहित्य ही साहित्यकार के व्यक्तित्व का परिचय देता है। इनका व्यक्तित्व लोकप्रिय है। ये सभी के साथ शालीनता का व्यवहार करते हैं। विद्वत्समाज के प्रति आपका माधुर्यपूर्ण व्यवहार स्तुत्य है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति रखते हुए जिनागम के प्रसार-प्रचार में समर्पित रहने वाले जैनगजट के पर्याय बने हुए है। जैनगजट और प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन एक दूसरे के उत्कर्ष के पूरक हैं। इन्होंने जैनगजट को शिखर पर

न जाने कब आयेगा वह शुभ दिन जब हमारे दिगम्बर जैन समाज में पारस्परिक ईर्ष्या और अहं से उत्पन्न कलह का पूरी तरह खात्मा होगा।

पहुँचाया तो जैनगजट ने भी इनको जन-जन का चहेता बनाया। इनके सम्पादकत्व में जैनगजट को जो लोकप्रियता मिली, वह शब्दों में नहीं बाँधी जा सकती है। आज जैनगजट सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में प्रत्येक जैन मतावलम्बी के लिए पठनीय हो गया है। सभी इसको सुरुचिपूर्वक पढते हैं। यह समग्र समाचारों को अपने में संजोए हुए सैद्धान्तिक आलेखों से मण्डित होकर पाठकों के पास पहुँचता है।

जैनगजट के सम्पादकत्व के साथ उनकी लोकप्रियता में उनके अन्य गुण भी सहकारी हैं। वे सभा-संचालन में सिद्धहस्त हैं। सामान्य से सामान्य और विशेष से विशेष विषय के प्रस्तुतिकरण की उनकी शैली निराली है, जिससे सम्पूर्ण सभासद इनकी ओर आकर्षित होकर टकटकी लगाये हुए चित्रलिखित से बैठे रहते हैं। जिस जनसभा को सम्बोधित करने के लिए खड़े होते हैं उस सभा में धर्मध्वजा को फहराने वाले एक योद्धा-सम प्रतीत होते हैं। अपने वक्तृत्व के माध्यम से सभी को जीतने में समर्थ हैं, इनमें सभाचातुरी नामक अद्भुत गुण विद्यमान है। अपने प्रवचनों में जो उदाहरणों की प्रस्तुति करते हैं उनसे दुरूह से दुरूह विषय प्रत्येक श्रोता को हृदयङ्गम हो जाता है। वास्तव में सभा को बाँधने की अद्भुत शक्ति से समन्वित आपका व्यक्तित्व है।

वक्तृत्व, लेखन, सम्पादन के अलावा अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहने वाले हैं। किसी भी पद पर प्रतिष्ठित होते हैं, तो उस पद की प्रतिष्ठा की श्रीवृद्धि अवश्य करते हैं। पी. डी. इण्टर कॉलेज के प्राचार्य पद पर दीर्घकाल तक प्रतिष्ठित रहकर पद की ही प्रतिष्ठा स्थापित की। सम्प्रति अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् के अध्यक्ष पद को गौरवान्वित कर रहे हैं। शास्त्रिपरिषद् के अध्यक्ष पद को अनेक सिद्धान्तविद मनीषियों ने मण्डित किया है, उनकी परम्परा को अक्षुण्ण बनाने वाले मनीषी, आपने अपने व्यक्तित्व और ज्ञान से सम्पूर्ण विद्वत्समाज और श्रेष्ठी वर्ग को आकर्षित किया ही है, साथ मे सम्पूर्ण साधक वर्ग भी प्रभावित है। यह सौभाग्य का विषय है कि जैनगजट का सम्पादन ऐसे कुशल प्रबुद्ध मनीषी के हाथों में है।

-डॉ श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत

□

एक ओजस्वी वक्ता

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी के ओजस्वी जैन वक्ताओं में अग्रगण्य माने जाते हैं। जैन समाज के इतिहास में एक ऐसा समय आया था, जब निश्चयैकान्त की आँधी जोरों से आई थी और अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् इस विचारधारा का जोरदार विरोध कर रही थी। ललितपुर में एकान्तवादियो ने शिविर लगाया। दूसरी तरफ वहाँ की समाज ने शास्त्रिपरिषद् को आमन्त्रित किया। उस समय देश के दिग्गज विद्वान् पं. मक्खनलाल शास्त्री, पं. मोतीचन्द्र कोठारी, पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री, डॉ. लालबहादुर शास्त्री, पं. वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, पं. बाबूलाल जमादार प्रभृति वहाँ उपस्थित थे। जोरदार शिविर हुआ और एकान्तवादियों का किला ढह गया। इस समय प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के लोकोपयोगी और शास्त्रीय प्रवचनों की धूम रही। ललितपुर के शिविर से प्रभावित होकर फलटण की समाज ने परिषद् को आमन्त्रित किया। फलटण अधिवेशन में विद्वानों की अच्छी उपस्थिति रही। उस अधिवेशन के प्रवक्ताओं में भी प्राचार्य जी अग्रिम पंक्ति में थे। इसके बाद परिषद् के बीसों कार्यक्रमों में उन्हें सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ और उनकी वक्तृत्व कला, सादगी, निर्भीकता, ओजस्विता, चिन्तनशक्ति और वाग्धारा से मैं निरन्तर प्रभावित हुआ। वे मुझसे उम्र में बड़े हैं। एक बड़े की छोटों के प्रति जो स्नेह दृष्टि रहनी चाहिए, वह बराबर उनसे प्राप्त हुई। उन्होंने

[illegible]

दूसरों का उत्कर्ष देखकर कभी ईर्ष्या नहीं की। मुझे आगे बढ़ते देखकर वे सदैव प्रसन्न हुए और निरन्तर उत्साहवर्द्धन करते रहे। एक दो बार वे उन पुरस्कारों के निर्णायक भी रहे, जिनमें मुझे पुरस्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका निर्णय निष्पक्ष रहा। उन जैसे निष्पक्ष निर्णायक मैंने कम ही देखे।

प्राचार्य जी ने सदैव विद्वान की विद्वत्ता को सम्मान दिया। जब प्राचार्य जी और उनके साथी कहा करते थे कि कुछ दिनों में कानजी भाई की मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठित होंगी तो सुनकर मुझे अचम्भा सा लगता था, किन्तु इस बात की सचाई तब उजागर हुई जब बम्बई के दादरनगर के एक मन्दिर में जहाँ वीतराग भगवान की प्रतिमायें विराजमान हैं, वहीं स्वतन्त्र रूप से कानजी भाई की प्रतिमा भी प्रतिष्ठित देखी। यह भी देखा कि लोग भगवान को पूज्य सामग्री चढ़ाने के साथ कानजी भाई की सवस्त्र प्रतिमा को भी अर्घ्य चढ़ा रहे हैं। उस समय अनुभव हुआ कि यदि शास्त्रि परिषद् सामने न आती तो देश के अनेकानेक मन्दिरों का यही हाल होता।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी में संगठन की अद्‌भुत क्षमता है। महासभा और शास्त्रिपरिषद के वे स्थायी स्तम्भ हैं। उनकी विनम्रता का प्रभाव उनके परिवार के लोगों पर भी है। एक बार उनकी अनुपस्थिति में उनके घर जाने का मौका मिला। उनके परिवार के लोगों ने प्राचार्य जी की अनुपस्थिति का अहसास नहीं होने दिया।

प्राचार्य जी अच्छे कवि भी है। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के प्रति उनकी भावाञ्जलि-'रत्नत्रय से पावन जिसका यह औदारिक तन है! गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा में जो रहता सदा मगन है', आदि पंक्तियाँ आचार्य श्री की पूजा का अङ्ग बन गई हैं। शिक्षा जगत् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैसा विद्वान् पाकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। मेरा भी उन्हें विनम्र प्रणाम समर्पित हैं।

— डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर, उ.प्र.

□

अमित प्रतिभा के धनी

प्रतिभा प्रकाशन के लिए मंच एक साधन है। मंच उपलब्ध हुए बिना न प्रतिभा का विकास हो पाता है और न उसका सदुपयोग हो पाता है। श्री पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन प्रतिभा के धनी विद्वान् और विचारक हैं। महासभा के मंच ने उनकी प्रतिभा को विकसित होने के लिए अच्छा अवसर दिया है। मंच मिलना भी एक सौभाग्य की बात है और उस मंच का उपयोग सही ढंग से करना उसकी प्रतिभा और क्षमता पर अवलम्बित है। नरेन्द्रप्रकाशजी ने महासभा के मंच को अपनी प्रतिभा से समुन्नत किया है। उन्होंने अपनी व्यावहारिकता और समन्वयवादी वृत्ति से समाज को एक चिन्तन दिया है, दिशा-ज्ञान दिया है, जिसके लिए समाज सदैव उनका आभारी रहेगा।

नरेन्द्रप्रकाशजी के सम्पादकीय ज्वलंत समस्याओं के समाधान के परिप्रेक्ष्य में दीप स्तम्भ का काम करने वाले सिद्ध हुए हैं। पं. जी की तलस्पर्शिता, निर्द्वन्द्वता, स्वाभिमान-वृत्ति और निःसंगता झलकती है। इसलिए हम पं. जी का अभिनन्दन करते हैं, वे स्वस्थ और निरामय रहें और समाज सेवा में गतिशीलता बनाये रखें, यही हमारी शुभ कामनाएँ हैं।

—प्रोफेसर डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर

□

मनुष्य में जिज्ञासा नाम की प्रवृत्ति इतनी जोरदार है कि वह उसे गर्मी-सर्दी या बरसात की बाधाओं की परवाह ही नहीं करने देती।

मेरु शिखर मनीषी

वर्तमान पीढ़ी के विद्वानों में अग्रणी चिन्तक, मनीषी प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी धर्म के अच्छे ज्ञाता, उत्कृष्ट प्रवक्ता हैं जो किसी भी विषय पर तर्क पूर्ण विचार रखने में सक्षम हैं। अपनी वक्तृत्व कला के माध्यम से बड़ी से बड़ी उखड़ी हुयी सभाओ को पुनः संयोजित करने में सक्षम हैं। फिरोजाबाद के जैन मेले के संचालन में मैने यह देखा उसी समय पूज्य 108 आचार्य प्रवर श्री विमलसागर जी के संघ का चातुर्मास चल रहा था अनुमान्यतः 50,000 की भीड़ को सुनियोजित रूप में संचालित करने का इनका अपना आत्म विश्वास ही माना जा सकता है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् के 1995 से लगातार अध्यक्ष पद को जिस दृढ़ता से निर्वाहित करते आ रहे हैं उसी के फलस्वरूप 2000 में पुनः इन्हें सर्वानुमति से अध्यक्ष चुना गया। वे शास्त्रि परिषद के वरिष्ठ एवं अग्रणी विद्वान हैं अच्छे लेखक, सफल संपादक, तर्क पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न शैली में वे अपने प्रतिद्वदियों को उत्तर देने में सक्षम हैं। उनके सम्मानार्थ अनेक संस्थाओं ने कई मानद उपाधियों से सम्मानित किया है परन्तु प्राचार्यजी ने नाम के अतिरिक्त किसी भी उपाधि को अपने आगे नही जोड़ा। प्राचार्यजी ने सामाजिक धार्मिक मंचो से जो ख्याति अर्जित की है वह स्तुत्य है। यदि आज के विद्वत् जगत में निर्भीक, सजग व तर्कपूर्ण प्रस्तुति हेतु किसी विद्वान् को चयन करने के लिए खोजा जाय तो प्राचार्यजी को ही यह सौभाग्य प्राप्त होगा। विद्वानों की किसी भी गोष्ठी या सम्मेलन हेतु प्रथम पंक्ति में प्राचार्यजी का नाम होता है। महान प्रतिभा के धनी, मनीषी, चिन्तक, निर्भीक वक्ता के रूप में वे सम्पूर्ण भारत वर्ष की समाज में जाने जाते हैं। सरल स्वभावी व अपने दृढ़ संकल्प के धनी हैं। एक संस्मरण आज भी मुझे भली प्रकार याद है कि जब उ. प्र. मा. शि. संघ के 1979 के आन्दोलन में मैं एक माह का कारावास व्यतीत कर रहा था, वे बाराबंकी जेल मे अपने साथियों सहित मिलने आये और दृढ़ता व आस्था दिखाते हुए उन्होंने अध्यापकों के मनोबल को बढ़ाया। उन्होंने कहा– अध्यापकों के हित के लिए अपना शिक्षक समाज सर्वस्व समर्पित करे तभी संगठन की शक्ति है। मैं आप सबको जेल यात्रा के लिए बधाई देने आया हूँ। उस समय श्री नरेन्द्रप्रकाशजी आगरा मण्डल के अध्यक्ष थे। शिक्षक संघ के सम्मेलन में मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ था तब से निरन्तर सम्पर्क बना है, प्राचार्यजी सम्बन्ध को बनाये रखने में बहुत कुशल हैं, मै उनके दीर्घ जीवन की शुभकामना के साथ-साथ स्वस्थ रहने की कामना करता हूँ।

–उत्तमचन्द्र राकेश, ललितपुर
उपाध्यक्ष
अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद्

□

प्रखर पाण्डित्य के धनी

वर्तमान विद्वत्परम्परा में प्रखर पाण्डित्य के धनी श्रद्धेय प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन, जैन समाज के बहुप्रतिष्ठित विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी ओजपूर्ण वक्तृत्व कला, सुविचारित सम्पादन एवं समसामयिक लेखन से जन-जन को प्रभावित किया है। दीर्घकालीन अध्ययन-अध्यापन और प्राचार्य के रूप में कुशल प्रशासन की नींव पर आधारित उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व आज हम सबके लिये प्रेरणास्रोत बन गया है।

सरल-स्वभावी प्राचार्यजी का वाक्चातुर्य उनकी उपस्थिति का सहज बोध करा देता है। जहाँ वे अपनी स्वाभाविक

[illegible]

ब्रज-मिश्रित हिन्दी भाषा के माध्यम से अपने परिकर को हास्यरस से ओत-प्रोत कर देते हैं, वहीं वे गम्भीर विषयों में भी अपनी तर्कपूर्ण शैली के माध्यम से आबाल-वृद्धों को प्रभावित किये बिना नहीं रहते हैं।

गुटबाजी में प्राचार्यजी का विश्वास नहीं है। स्वच्छ परम्पराओं को स्थिर रखना उनका स्वभाव है। शीर्षासन को प्राप्त करने के लिये जहाँ कुछ विद्वान् छल-बल का सहारा लेते हैं, वहीं प्राचार्यजी ऐसे पदों को ठुकराने में एक क्षण का भी बिलम्ब नहीं करते हैं। सर्वसम्मत निर्णय हो, ऐसा उनका सदैव प्रयास रहता है।

वैराग्यशतक में भर्तृहरि ने सेवाधर्म योगिजनों के लिये भी *अगम्य कहा है–'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'*। फिर भी प्राचार्य जी अपनी लगन के पक्के है। वे अपनी सामाजिक सेवाओं के लिये सम्पूर्ण भारत में विख्यात हैं और इसके उपलक्ष्य में उन्हें समय-समय पर विविध नगरों की जैन समाज द्वारा सम्मानित भी किया गया है, किन्तु अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर उनका यह सम्मान निश्चय ही स्वागतेय है।

सम्मान्य प्राचार्यजी चिरजीवी हों, उनका सुयश निरन्तर वृद्धिङ्गत हो और सम्पूर्ण जैन समाज के साथ ही हम अनुज विद्वानो का मार्गदर्शन करते हुये वे आजीवन माँ जिनवाणी की सेवा करते रहें, यही हमारी मंगलकामना है।

डॉ. कमलेशकुमार जैन
रीडर एवं अध्यक्ष
जैन-बौद्धदर्शन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

□

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम लेते ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा मूर्त होने लगती है। वे एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनमें अनेक गुण विद्यमान हैं। मेरा उनसे शास्त्री परिषद के कारण पिछले 15-20 वर्षो से परिचय है। मैंने उनमे कुशल नेतृत्व के गुण देखे है।

कुछ लोगं ऐसे होते हैं जो पद से शोभित होते हैं, जबकि कुछ लोगों के कारण पद सुशोभित होता है। प्रा. नरेन्द्रप्रकाशजी के अध्यक्ष होने के कारण शास्त्रि परिषद का गौरव ही बढ़ा है। सुखद बात तो यह है कि इस पद की न उन्हें आकाक्षा थी, न लोभ। उन्होंने कभी पद के लिए चुनाव या अटपटी राजनीति नहीं अपनाई–वे दो बार निर्विरोध अध्यक्ष चुने गये। पद का उपयोग अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बढाने मे नहीं किया, अपितु परिषद की प्रतिष्ठा बढ़ाने मे किया।

कुशल और निर्भीक वक्ता के रूप में आप पूरे देश में प्रख्यात हैं। आपको 'प्रवचन केशरी' कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। विषय का योग्य प्रतिपादन, प्रस्तुतिकरण की शैली स्वयं में एक अद्‌भुत उदाहरण है। अपनी बात की सत्यता प्रस्तुत करने में वे निजी स्वार्थ और संबंधो को भी किनारे कर देते हैं, क्योंकि सत्य कभी गलत समाधान या चापलूसी नहीं करता। देव-शास्त्र गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखने के साथ-साथ कभी गलत कार्य की सराहना आपने नहीं की।

निर्भीक पत्रकारिता आपकी विशेषता है। 'जैन गजट' आपके यशस्वी संपादन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैन गजट के साथ जुड़े होने पर भी सत्य का दामन कभी नहीं छोड़ा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर (नालंदा) को लेकर स्पष्ट है।

पूरे पंडित वर्ग का सम्मान हो, उन्हें प्रतिष्ठा मिले, यह भावना आपमें सदैव रही है। कभी अकेले पूरा लड्डू खाने की संकुचित भावना नहीं रखी। इसका उदाहरण है श्री बाहुबली जी का 1993 में हुआ मस्तकाभिषेक, जहाँ सभी विद्वानों को

सम्यग्दर्शन के बिना संसार के बन्धन से यह जीव छूट नहीं सकता, इसलिए हमें शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

सम्मान एवं योग्य स्थान प्रदान कराया। एक कुशल वक्ता के उपरांत लेखक के रूप में भी आपने प्रतिष्ठा प्राप्त की है। स्वभाव से समन्वयवादी, उत्तेजना के क्षणों में भी शांत रहनेवाले श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की सहनशक्ति सराहनीय है। उनके सम्मान में प्रकाशित हो रहे उनके गौरव ग्रंथ के साथ उनकी गौरवगाथा उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हो, इन्हीं भावनाओं के साथ।

– डॉ. शेखरचन्द्र जैन
प्रधान सम्पादक "तीर्थंकर वाणी", अहमदाबाद
अध्यक्ष, भ. ऋषभदेव दि. जैन विद्वत् महासंघ

□

जैन पत्रकारिता को नई ऊँचाईयाँ दीं

प्रत्येक कालखण्ड में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो अपने स्वस्थ एवं सकारात्मक चिन्तन, प्रभावी वक्तृत्व शैली एवं निर्भीक लेखन द्वारा समाज को दिशा देते हैं। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, एक ऐसे ही व्यक्तित्व है। उन्होंने जैन गजट के माध्यम से जैन पत्रकारिता को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता है कि वे मूलतः शिक्षक हैं एवं शिक्षक तथा प्राचार्य के रूप में उन्होंने समाज में अच्छी ख्याति अर्जित की है।

मेरा उनसे सम्पर्क कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के माध्यम से हुआ है। ज्ञानपीठ एवं अर्हत् वचन के सन्दर्भ में उनके सुझाव एवं मार्गदर्शन सदैव व्यावहारिक एवं उपयोगी रहे हैं। ऐसे विशिष्ट प्रतिभावान विद्वान् का अभिनन्दन किया जाना अत्यन्त सामयिक है। मैं अपनी ओर से तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से उनके स्वस्थ, सुदीर्घ जीवन की मंगलकामना करता हूँ।

–प्रो. ए.ए. अब्बासी
पूर्व कुलपति
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय एवं
मानद निदेशक
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

□

निष्पक्षता एवं कर्मठता की प्रतिमूर्ति आदरणीय प्राचार्यजी

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं उसी नगर का वासी हूँ जो नगर प्राचार्य जी के नाम से जाना जाता है। मुझे बड़ा फ़ख्र होता है जब कोई मुझसे कहता है कि आप उसी फिरोजाबाद के हैं जहाँ प्राचार्य जी रहते हैं। मात्र इतना ही क्यों? मुझे 1967-68 में उसी पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज में विद्याध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ, जिसको 1953-71 तक शिक्षक एवं 1971-92 तक प्राचार्य जी ने अपनी सेवाओं से उपकृत किया। उनके प्राचार्यत्व का काल विद्यालय के उत्थान का काल था या यूँ कहें स्वर्णयुग था। आपने अपने कार्यकाल में इतने उच्च मानदण्ड स्थापित किए कि आज 'प्राचार्य जी' आपके नाम का पर्यायवाची बन गया। आजकल कई अन्य विद्वान् भी अपने नाम के साथ प्राचार्य उपाधि लगाने लगे हैं। निश्चय ही वे सभी प्राचार्य हैं या रहे हैं किन्तु इस शब्द को जो ऊँचाई एवं गरिमा प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी ने प्रदान की है, वह शेष में अभी नहीं है। प्राचार्य जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अद्वितीय है।

वर्तमान समय में व्यक्तिगत स्वार्थों एवं जातिगत समूहों के कारण अनेक विद्वान् भी सत्य को सत्य कहने से कतराने लगे हैं। कर्तव्य पर स्वार्थ हावी हो गया है। यह स्थिति समाज के लिए घातक है।

यदि विद्वत्जन ही निष्पक्ष एवं निर्भीक नहीं होंगे तो सिद्धान्त विरुद्ध कार्यो एवं शिथिलाचार को कौन राकेगा। ऐसी विषम परिस्थिति में भी प्राचार्य जी ने सदैव निष्पक्षतापूर्वक समाज के सजग एवं निर्भीक प्रहरी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है। मात्र इतना ही क्यों? जब भी आवश्यकता पड़ी आपने शारीरिक व्याधि या शिथिलता की परवाह न करते हुए समय पर पहुँचकर अपना निर्भीक समर्थन दिया है।

कुन्दकन्द ज्ञानपीठ इन्दौर का वर्तमान स्वरूप आपके सुयोग्य मार्गदर्शन, निर्भीक एवं स्पष्ट समर्थन एवं सतत् सहयोग से ही आ सका है। मैं आपके राष्ट्रीय अभिनन्दन के अवसर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ तथा अपने से सम्बद्ध समस्त संस्थाओं एवं स्वयं अपनी ओर से नमन करते हुए आपके स्वस्थ, सुदीर्घ एवं यशस्वी जीवन की मंगलकामना करता हूँ।

—डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर

□

जिन शासन-प्रभावक विद्वान

मुझे जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि जैन जगत के महान् निष्पृही व प्रभावशाली विद्वान का अभिनन्दन ग्रन्थ महासभा (पश्चिम बंगाल) द्वारा प्रकाशित कराया जा रहा है।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने दिगम्बर समाज के श्रावकों को अपने प्रवचनों से मंत्र-मुग्ध किया है। उन्हें धर्म के मार्ग पर आरूढ़ करने में उत्साह के साथ प्रेरित किया है। उन्होंने मुनि-संस्था की छवि को समाज व देश के समक्ष निर्मल बनाए रखने में जैन गजट के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

देश के हमारे समस्त आचार्य, मुनि, आर्यिकायें, भट्टारकगणों व अन्य त्यागीव्रतियों का उन्हें पूर्ण आशीर्वाद व सम्मान मिलता रहा है।

प्राचार्यजी ने एकान्तवाद के साथ कभी समझौता नहीं किया। आगम एवं आर्ष परम्परा की रक्षा करना ही उनके जीवन का लक्ष्य एव उद्देश्य रहा है। आप शास्त्री परिषद की रीति-नीतियों के पालन करने के लिए. सदैव प्रयत्नशील रहे हैं।

मै अपनी तरफ से एव समस्त महासभा की ओर से इस अभिनन्दन की बेला में आपकी दीर्घायु की कामना भगवान महावीर से करता हूँ। आप इसी तरह जिन शासन की प्रभावना करते रहे।

महासभा की बंगाल प्रान्त के सभी सदस्यों को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनकी कर्मठता से यह बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

सादर।

—चैनरूप बाकलीवाल, महामन्त्री
श्री भा.दि. जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा

□

धर्म मार्ग पर आस्था बनाये रखने में मन्दिरों का योगदान अप्रतिम है।

निःस्वार्थ सेवी

आज के युग में हर विद्वान जब भौतिकवाद एवं पैसों के पीछे भाग रहा है, उस समय में प्राचार्य श्रीनरेन्द्रप्रकाशजी जैन की निःस्वार्थ सेवा एवं योगदान समाज के अन्य विद्वानों के लिए एक नई दिशा प्रदान करता है।

आ. प्राचार्य श्रीनरेन्द्रप्रकाशजी दीर्घायु हों तथा अपने जीवन में स्वस्थ रहकर समाज की सेवा में तत्पर रहें, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ पुनः बधाई एवं शुभकामनाएं।

—प्रदीप कासलीवाल, इन्दौर

□

शुभकानायें

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि भारतवर्ष के जाने-माने मूर्धन्य विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है, जो निश्चय ही आने वाली पीढ़ी के लिये प्रकाश-पुंज का कार्य करेगा।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी अपनी विद्वत्ता, स्पष्टवादिता एवं प्रखर वक्तृत्व शैली के गुणों से सारे भारतवर्ष में जाने जाते हैं। आगमनिष्ठ एवं आचार्यो, मुनिराजों के परम भक्तों में आपकी गिनती की जाती है। मुझे आज भी वह दिन याद है, जब खण्डेला में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में आपने पांचों दिन रहकर सभी धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करवाया। उसी क्रम में आचार्य वर्धमानसागरजी महाराज ससंघ एवं आर्यिका गणिनी सुपार्श्वमती माताजी के पावन सानिध्य में नेमीसागर कालोनी, जयपुर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पांचों दिन रहकर आपने सभी धार्मिक कार्यो को अपने दिशा-निर्देशों में करवाकर उसे ऐतिहासिकता प्रदान की। जब-जब भी जहां-जहां भी मैंने आपको याद किया, आप वहां अवश्य पधारे, जो आपके स्नेह का द्योतक है। सारे भारत में आयोजित कोई भी विद्वत् सम्मेलन हो या पंचकल्याणक, विचार गोष्ठी हो या धार्मिक संगोष्ठी, उनमें हमेशा आपको याद किया जाता है। आपकी बेवाक व निर्भीक टिप्पणियों के सभी कायल है। आप ही के सद्प्रयत्नों से जैन गजट, जैन समाज का एकमात्र प्रतिनिधि पत्र बन गया है, जिससे समाज एवं महासभा गौरवान्वित है।

अनेक गुणों से भरपूर प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी हमेशा साधु एवं समाज की सेवा में समर्पित रहते हुये अपने चिन्तन से, जीवन को धर्म-ध्यान में व्यतीत करते हुये चिरायु रहें— यही मेरी मंगल शुभकामनाऐं हैं। मैं भगवान महावीर से कामना करता हूं कि आपका जीवन हमेशा सुखमय रहे।

—पूनमचन्द जैन गंगवाल, जयपुर

□

मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊँगा -महात्मा गाँधी

शुभकामना संदेश

समाज में कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं, जो अपनी प्रखर वाक्शक्ति, तार्किक सोच एव निर्भीक लेखन के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान करते हैं। ऐसे विरल व्यक्तित्व है प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अध्यक्ष तथा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के सौ वर्ष से अधिक प्राचीन मुखपत्र जैन गजट के यशस्वी सम्पादक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने समाज की कुरीतियो तथा दिग्भ्रमित होते वर्ग के मूल पर चोट कर उसे सम्यक् दिशा दी है। आज भी वे सामाजिक गतिविधियों पर अपनी सूक्ष्म दृष्टि रखकर उसे यथोचित मार्गदर्शन देते रहते हैं।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से वे प्रारम्भ से ही जुड़े रहे हैं। अर्हत् वचन के सम्पादन, कुन्दकुन्द पुरस्कारों के चयन तथा जैन विद्या संगोष्ठियों के आयोजन में हमें उनका सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। मै उनके यशस्वी जीवन के 70 वर्ष पूर्ण होने पर अपनी ओर से तथा अपने से सम्बद्ध सभी संस्थाओं की ओर से हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। उनके स्वस्थ, सुखी, सुदीर्घ एव यशस्वी जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

—देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

□

माँ शारदा के श्रद्धावान् साधक

चितन की चपलता को चकोरवत चेतना-केन्द्रित कर, बहुमुखी प्रतिभा के प्रभासक, सहज, सुमधुर भाषी, सविनय, सत्य के निर्भीक उद्घोषक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, जैसा मैने देखा, समझा और जाना, एक ऐसे व्यक्तित्व का साकार पुञ्ज है, जिसमें स्वधर्मगत आस्था, अन्वेषणपरक जिज्ञासा, प्रयासो की निरन्तरता, परिष्कृत प्रक्रिया, गुण ग्राह्यता, नीर-क्षीर विवेक स्वयमेव ही समाहित हो गये हो।

विगत तीन दशक से उनसे मेरा सम्पर्क रहा है। उनका अध्ययन, मनन, विवेचन, चातुर्य, शैली एवम् गांभीर्य उत्तरोत्तर विकसित एवम् समृद्ध ही मैने पाया है। अपने विचार वह अत्यन्त ही सहजता से तर्क सहित प्रभावी रूप मे अभिव्यक्त करते हैं। उनके व्याख्यान तत्त्व व तथ्यों से परिपूरित, उद्देश्यपरक होते हैं, जिनमें विषय केन्द्रित प्रवाह होता है। ऐसे अनुकूल सयोग विरल ही पाए जाते हैं।

सामयिक एवम् सामाजिक समस्याओ एवम् परम्पराओं पर आपकी सटीक समालोचना समाधान तो देती ही है, साथ ही वह आपकी समाज के प्रति सजगता एवम् कर्त्तव्यबोध की परिचायक भी है।

अनेक पद, पदक, सम्मान से अलंकृत, विविध गुण-विभूषित आदरणीय श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन का अभिनन्दन यथार्थ मे तो माँ—सरस्वती की आराधना ही होगी।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन के सुदीर्घ, स्वस्थ एवम् यशस्वी जीवन की मंगल कामना के साथ।

—पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

□

आदमी पढ़ लिख कर उतना नहीं सीख पाता, जितना घूम-फिर कर सीखता है।

प्राचार्यजी की सैद्धान्तिक दृढ़ता

पं. प्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान हैं। उन्होंने मां सरस्वती के भंडार में अनेक मौलिक रचनायें अर्पित की हैं। पंडित जी मृदुभाषी, अपने सिद्धान्त के दृढ व्यक्ति हैं। उनकी प्रखर वाणी में जन-समूह को आकर्षित करने की अद्भुत कला है। उन्हें साहित्य एवं समाज सेवा के लिए अनेक पुरस्कार एव सम्मानों से सम्मानित किया गया है। मैं उनके स्वस्थ्य एवं यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

हमारे समाज के मूर्धन्य विद्वान, प्रखर प्रवक्ता, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के कर्मठ अध्यक्ष, जैन गजट के प्रधान संपादक सम्माननीय प. प्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन का निर्णय स्तुत्य है, साधुवाद।

—श्रीमन्त सेठ डालचंद जैन
कोषाध्यक्ष— म. प्र. कांग्रेस कमेटी,
(पूर्व सांसद), सागर

□

मंगल कामना

प्राचार्यजी दिगम्बर जैन आगम-दर्शन व नीति के मर्मज्ञ व सामयिक विवेचनकार है। आपका योगदान न केवल पत्रकारिता तक सीमित है, वरन् विद्वत्-समूह द्वारा माँ-जिनवाणी का प्रचार-प्रसार प्रत्येक श्रावक के हृदय तक पहुँचा कर आत्म-कल्याण की ओर भी प्रेरित करता है। अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य पूरी तरह सफल रहे व प्राचार्यजी का भावी जीवन स्वस्थ व शांतिपूर्ण रहे इसी मगल कामना के साथ।

—निर्मलचन्द सोनी, अजमेर

□

आपकी ब्रज भाषा कर्णप्रिय है

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी फिरोजाबाद के निवासी है। मै भी तीन साल तक फिरोजाबाद रहा। इसी बीच मेरा उनसे घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बना। मेरा कई उत्कृष्ट संस्थाओ से आत्मीय सहयोग रहा है और आपका भी उनमें योगदान रहा है। इसी कारण आपसे सम्पर्क हुआ और मित्रता बढ़ी।

आपका धार्मिक विषयों में गहन अध्ययन रहा है। साथ ही आपकी विचार अभिव्यक्त करने की शैली इतनी मृदु एवं सरल है कि आम आदमी भी आसानी से समझ जाता है, इसीलिए आप समाज के अतिप्रिय हैं। आप एक विद्वान, मृदुभाषी एवं निर्भिक वक्ता है। जब कभी आप ब्रज भाषा में बोलते हैं तो वह अति कर्णप्रिय लगती है।

मेरी हार्दिक भावना है कि आप इसी प्रकार सदैव समाज का ज्ञानवर्धन करते रहें। भगवान आपको दीर्घायु प्रदान करें।

—गणेशीलाल रानीवाला, कोटा

□

पृथ्वी प्रसन्नता को धारण करे तथा सभी मनुष्य अशुभ (पाप) से रहित हों।

समन्वय एवं सामंजस्य के पक्षधर

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन 'जैनगजट' के यशस्वी सम्पादक हैं। उनके विचार सन्तुलित एवं मार्गदर्शक होते हैं तथा पाठकों के द्वारा बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। समाज में जब-जब कोई धार्मिक अथवा सामाजिक विसंगति उत्पन्न हुई है, उनके सुलझे हुए विचारों को पढ़कर समाज ने समाधान प्राप्त किया है।

उनका चिन्तन स्वस्थ एवं गम्भीर है। वह पारस्परिक मेल-मिलाप एवं एकता पक्षधर रहे है। उनकी सोच समाज को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाली है।

राष्ट्रीय स्तर पर उनके अभिनन्दन से आज समाज गौरवान्वित हो रही है। हमारी यह मंगल कामना है कि उनकी छत्रछाया वर्षो तक सकल दि जैन समाज पर बनी रहे।

—मदनलाल बज
स्वागताध्यक्ष, अभिनन्दन ग्रन्थ, प्रकाशन समिति, कोलकाता

☐

प्राचार्य जी

- विद्वानों की गौरवशाली परम्परा के संवाहक हैं —प्राचार्य जी
- आकर्षक व्यक्तित्व एवं सादगी की प्रतिमूर्ति है —प्राचार्य जी
- विरोधियों की आँख में हमेशा खटकते है —प्राचार्य जी
- प्रवचन सभा में कुशल वक्ता की छाप छोड़ते है —प्राचार्य जी
- सम्मान देना और पाना जानते हैं —प्राचार्य जी
- जिनवाणी रक्षार्थ विरोधियों का दंश सह लेते हैं —प्राचार्य जी
- भिन्नता और एकसूत्रता के द्वन्दात्मक ढाँचे को परिभाषित करते हैं —प्राचार्य जी
- मौलिक चिन्तन-परक साहित्य के सर्जक हैं —प्राचार्य जी
- विचार और आचरण की एकरूपता हैं —प्राचार्य जी
- माँ जिनवाणी के सच्चे सपूत और विद्वानों के नायक है —प्राचार्य जी

—डॉ. ज्योति जैन, (खतौली)
(सह सम्पादिका 'जैन सन्देश')

☐

संस्कारित एवं व्यसन मुक्त जीवन शैली के बिना निर्मल चेतना का अनावरण नहीं हो सकता।

प्राचार्य जी : व्यक्तित्व एवं विचार

निष्ठा के सामने कठिनाइयां सर झुकायेंगी

उम्र की यही कोई 66 सीढ़ियॉ चढ़ चुके नगर फिरोजाबाद की नईबस्ती में निवास करने वाले जैन विद्वान् एवं साहित्य-कर्मी श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन पी. डी जैन कालेज के प्राचर्य-पद से सेवानिवृत्त होने के बाद फिलहाल अब जीवन की संध्या में उतर चुके हैं, लेकिन उनकी ऊर्जा-शक्ति नष्ट नहीं हुई है। पद और पदार्थ से दूर रहते हुए विद्या और वैदुष्य की उनकी साधना जारी है। पाँच अभिनन्दन ग्रन्थों-सहित बीस छोटी-बड़ी पुस्तकों को सम्पादित कर चुके श्री जैन सम्प्रति लखनऊ से प्रकाशित होने वाले जैन समाज के प्रमुख साप्ताहिक पत्र 'जैन गजट' का सम्पादन-कार्य देख रहे हैं। अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष नरेन्द्रप्रकाश जैन ऐसे व्यक्ति का नाम है, जिसने पैरों से नहीं, जीवन की यात्रा विचारों से की है। संक्षेप में नरेन्द्रप्रकाशजी जैन में आदमी होने की तमीज है। उनके बूढ़े जिस्म में जवान की ऑखे हैं। संवदेनशील धड़कता हुआ हृदय है। उन्हे समय और समाज की चिन्ता है। हाल-फिलंहाल जीवन के अन्तिम पड़ाव की ओर उन्मुख हो चुके श्री जैन साहित्य और समाज की सेवा अब भी मन्थर गति से कर रहे हैं, मन्थरा-गति से नहीं। इसलिए उनकी कीर्ति कभी कलंकित नहीं हो सकती। प्रस्तुत है 'अमर उजाला' से हुई बातचीत क़े कुछ अंश–

जिन्दगी भर के अनुभव से जो सार तत्त्व आपने निकाला?
ईमानदारी का निर्वाह करना चाहिए। कठिनाइयॉ आयेंगी, किन्तु निष्ठा के सामने वे नतमस्तक होंगी।

सर्वाधिक कड़वा सच आपकी नजर में?
नेताओ और समाज-प्रमुखों की कथनी और करनी का अन्तर ही सर्वाधिक कडवा सच है।

जीवन के सबसे सुखद क्षण?
जब हमारे हाथो में किसी महापुरुष की जीवनी या संस्मरण की पुस्तक होती है।

अगर जीवन दुबारा जीने को मिले तो सबसे महत्वपूर्ण दो काम, जो आप करना चाहेंगे?
1. फिर से शिक्षक बनना, 2 सदाचार की प्रेरणा देने वाली पुस्तक लिखना।

सबसे सुन्दर सपना, जो पूरा होने से रह गया?
समाज में सम्पन्न होने वाले महोत्सवों को अल्प व्यय में सादगी से मनाये जाने के लिए वातावरण बनाना।

देश की हालत पर एक वाक्य में यदि टिप्पणी करनी हो तो क्या कहेंगे?
देश में नैतिक अवमूल्यन इस समय चरम पर है।

सबसे विश्वसनीय दोस्त?
संकल्प के प्रति समर्पण का भाव।

सबसे बड़ा दुश्मन?
मन में साहस का अभाव, जिसके होते हुए मित्र भी साथ नहीं देते।

पाप समय निर्बल बनो, धर्म समय बलवान। वैभव समय विनम्र अति, दुःख में धीर महान।।

देश की सत्ता में आये तो प्रथम पाँच काम, जो करना चाहेंगे?
सत्ता में कभी जाने का मन नहीं।

पंसदीदा व्यक्तित्व?
राजनीतिक क्षेत्र का वियतनाम के पूर्व राष्ट्रपति होचीमिन्ह।

जीवन का आदर्श, जो आपने अपनाया?
सबके प्रति सहज व सरल व्यवहार, जिसमें कोई दिखावा न हो।

ऐसी कौन-सी चीज है, जो जीत कर भी हार जाने में सुख मानते हैं?
बेईमानी से या किसी का हक छीनकर मिला हुआ पद या पैसा।

सीख, जो नई पीढ़ी को देना चाहेंगे?
आयु, विद्या, यश और बल मे जो बड़े है, उनके प्रति विनम्र व्यवहार।

आपको अपने ढ़ंग से एक दुनिया बनानी हो तो कैसे बनायेंगे?
स्वस्थ विचारकों से परामर्श करके तथा रचनात्मक प्रवृत्ति का प्रोत्साहन देकर।

सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक, जो हमेशा आपको अपने पास रखने लायक लगी?
लेखक पं. माणिकचन्द न्यायाचार्य की लिखी हुई 'धर्मफल-सिद्धान्त'।

किसी मनीषी का कोई वाक्य, जो आपको सर्वाधिक अच्छा लगा?
'उन्नत मानसं यस्य, भाग्यं तस्य समुन्नतम्'।

सबसे अधिक पीड़ादायी पछतावा, जो आपको सर्वाधिक सालता रहा हो?
भाग्यशाली हूं कि ऐसी किसी पीड़ा के अनुभव से नहीं गुजरना पडा।

फिल्म, जो आपको सबसे ज्यादा पसंद आयी?
दो आखे बारह हाथ।

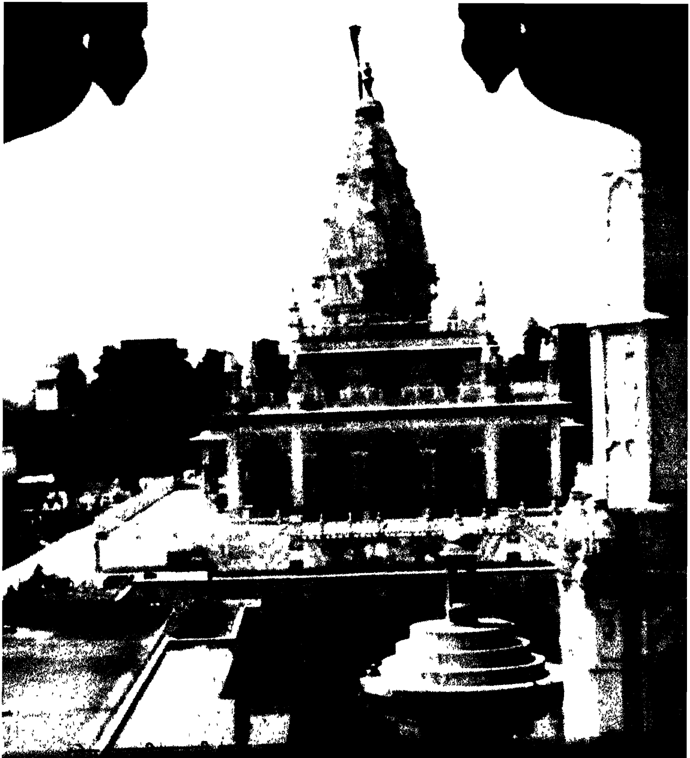
पांच नाम, जो आपके लिए प्रेरक बने?
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', गणेशप्रसाद वर्णी, पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' एवं लालबहादुर शास्त्री।

धर्म के बारे में आपकी धारणा?
जिस आचरण से गुणों का विकास और दोषो का परिमार्जन होता हो, वही धर्म है।

—प्रस्तुति : शरद चौहान
(दैनिक 'अमर उजाला', आगरा · 15 अप्रैल 1999 से साभार)

☐

सब के सुख में अपना सुख मानने वाले ही महावीर बन सकते हैं।



द्वितीय खण्ड

आदरांजलि / हमारे प्रणाम / संस्मरण

मेरे पापाजी

कोलकाता में बाबू (पिता प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी) के अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन होने के निर्णय के बाद ही यह जानकारी मुझे प्राप्त हो गई थी कि पश्चिम बगाल की महासभा इकाई उनका अभिवन्दन ग्रन्थ प्रकाशन करने का विचार कर रही है। इस सूचना के बाद मै बार-बार विचार करती रही कि इस ग्रन्थ के लिए मै स्वय क्या लिखूँ? मुझे यही उचित लगा कि पापा के प्रति अपनी अनुभूतियों और स्मृतियों के लबालब भरे भरपूर खजाने से निकाल कर वही लिखू, जैसा मैंने उन्हें देखा, जाना और समझा है।

अपने पापा के गृह मे जब मैंने अपना होश सम्भाला तो पाया कि मैं अपने से बड़ी दो बहिनों तथा तीन भाइयों में सबसे छोटी हूँ। घर मे सबसे छोटे होने का मुझे भरपूर लाभ मिला। वैसे तो सभी माता-पिता अपनी सभी सन्तानों पर समान रूप से दुलार और स्नेह करते है, उनके भविष्य और विकास के लिए कोई भी माता-पिता के दोहरे मापदण्ड नही अपनाते, किन्तु यह एक प्राकृतिक नियम जैसा ही है कि सबसे छोटी सतान प्रायः माता-पिता के विशेष लाड-प्यार और स्नेह की पात्र बन जाती है। यहाँ यह अन्तर भी प्राय देखने में आता है कि छोटी सन्तान के रूप मे अगर पुत्र है तो वह माँ के अधिक निकट और उसके प्यार का अधिक पात्र बन जाता है, और यदि छोटी संतान पुत्री है तो वह पिता के सर्वाधिक स्नेह की पात्र देखी जाती है। यह प्राकृतिक वरदान मुझे भी मिला और यह इसी वरदान का प्रतिफल है कि मै इसका लाभ विवाह-उपरान्त भी उठा रही हू।

मे सबसे पहले यहाँ उनके स्वभाव के बारे मे ही बात करूँगी। वह सदैव प्रसन्नचित्त मुस्कराते हुए ही रहते हैं। मैंने उन्हे घर या बाहर मे कभी क्रोधित होते हुए या तनावपूर्ण क्षणो मे मौन या गुमसुम नही देखा। उन दिनो हमारे परिवार मे दादा, दादी, माँ स्वय बाबू व हम 6 भाई बहिन हुआ करते थे।

में नही जानती कि उस समय उनके आर्थिक स्रोत क्या थे, किन्तु परिवार मे हम किसी ने कभी कोई तनाव या अभाव नही देखा। मैं आज विचार करती हूं कि वह अपने स्वभाव और संस्कारों के चलते कभी अनुचित साधनों से आय की आपूर्ति करने का विचार भी मन मे नहीं लाते होंगे, और उस समय वर्तमान भी आज के समय जैसा नही था। उस पर भी हमारे परिवार के तनावरहित वातावरण का आखिर कारण क्या था? इसका उत्तर मेरे सज्ञान में यही आता है कि यह उनके आत्मबल तथा सादा जीवन उच्च विचार का ही परिणाम है, जो उन्हे सदा सदेव सहज बनाए रख पाता है। उनका यह आदर्श आज मेरे जीवन का आधार बन कर मुझे भी आत्मबल प्रदान करता है।

सदैव शान्तचित्त और प्रसन्न रहकर दूसरो को भी अपनी शैली से तनाव रहित करने वाली उनकी छवि का एक दूसरा पहलू भी है। वह है उनकी अनुशासनप्रियता। विद्यालय से लेकर घर तक अनुशासनहीनता उन्हे सहन नही। घर मे हम सभी हमउम्र भाई बहिनो की धमाचौकड़ी, हल्लागुल्ला से उन्हे कभी परेशानी नही होती थी। कभी-कभी वह स्वय हम लोगो की छीना-झपटी, तकरार मे भागीदार भी हुआ करते थे, किन्तु इतने पर भी उन्होंने कभी भी उदण्डता या अनुशासनहीनता को किसी मे जमने नही दिया। इसके लिए उन्हें कभी कठोर बनने की आवश्यकता भी नही पडी। उन्होने अपने ही तरीके से हम सभी भाई-बहिनो को एक सही अनुशासित जीवनशैली जीने की दिशा प्रदान की।

रात्रि में सोने से पहले दैनिक डायरी लिखना उनकी जीवनचर्या का आवश्यक अंग है। बचपन में मुझे यह एक व्यर्थ और बेकार का कार्य लगता था, किन्तु आज उसकी सार्थकता का आभास मुझे होता है कि दैनिक घटनाक्रम को लिखना और उस पर इस विचार के साथ चिन्तन करना कि कहीं कुछ ऐसा तो नही हुआ जो नही होना चाहिए, जीवन को सम्यक्

हर व्यक्ति गुण और दोषों का पिण्ड है किन्तु गुण वही सार्थक है जिनसे दूसरों को लाभ मिले और जिससे केवल अपनी ही हानि हो, ऐसे दोष भी ठीक हैं, ऐसे दोषी ठोकर खाकर सभल सकते हैं।

मार्गदर्शक देने का एक सुदृढ़ आधार है। अपनी सामान्य भूल पर भी दृष्टिपात करते रहने पर ही उसे दूर किया जा सकता है और डायरी लेखन इसका श्रेष्ठ और सही माध्यम है।

अवकाश के दिनों में तीर्थक्षेत्रो या दर्शनीय स्थलों पर जाने का वह कार्यक्रम सदा बनाते रहते हैं। शादी से पूर्व तक मेरा उनके साथ जाना नियमित होता था। उन यात्राओं की स्मृतियॉं मेरी यादों में आज भी अमूल्य निधियों की तरह सुरक्षित हैं। इस क्रम में मुझे ध्यान नही पड़ता कि कोई तीर्थ या दर्शनीय स्थल मुझसे छूटा हो। इन यात्राओं का सबसे सुखद पक्ष है कि मुझे आज वर्तमान के अनेक आचार्य, मुनिराज व आर्यिका माताओं के दर्शन का निकट से सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी पुत्री होने का यह पुण्यलाभ आज भी मुझे सहजता से प्राप्त है। फिरोजाबाद मे जैन मेला, पर्यूषण पर्व या अन्य सामाजिक धार्मिक अवसरों पर देश के वरिष्ठ जैन विद्वानों का आगमन होता रहा है। 'अतिथि देवो भव' के भारतीय जीवन दर्शन के अनुरूप उनका आतिथ्य सदैव हमारे घर हुआ और आज भी इस परम्परा का निर्वाहन वहॉं प्रशन्नता के साथ होता है। विवाह पूर्व मुझे अनेक स्वनामधन्य विद्वानों को निकट से देखने-सुनने का अवसर मिला है।

तनाव और कष्ट का कारण होता है किसी से भी अत्यधिक आशाऐ और अपेक्षाएें कर लेना। पापा ने परिवार, समाज या अन्य किसी क्षेत्र से इस प्रकार की अपेक्षाऐ कभी नही रखी और इसी के चलते वह तनाव रहित जीवन जीने मे समर्थ हैं। सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर भी वह अभिमान से सदा दूर रहते है। मैने महात्मागांधी या अन्य महापुरुषों को नहीं देखा, पर उनके बारे मे सुना या पढा है। मैं सोचती हूं कि उनका जीवन दर्शन भी पापा के जीवन की तरह सहज और सरल रहा होगा। व्यक्ति जब अपनी दृष्टि को बाह्य जगत से हटाकर अन्तर्मुखी बना लेता है तो वह घर मे रहकर भी जनक सरीखा विदेह बन जीवन जीने की कला विकसित करने में सफल बन जाता है।

वैसे तो प्रत्येक माता-पिता के अपनी सतान पर अनेक उपकार होते हैं, मुझ पर भी हैं, लेकिन यह लेखन, वक्तव्य, स्वाध्याय और चिन्तन का सृजन मेरे अन्दर मेरे आदर्श पिता का ही वरदान है। उत्तम क्षेत्र, मानव शरीर के साथ एक आदर्श पिता मुझे मिले, यह मेरे पूर्व पुण्योदय का ही परिणाम है और यह मुझे मिला, जीवन मे इससे बढकर सन्तोष का हेतु और क्या हो सकता है। दैव से इतना ही आग्रह है कि उनका वरदहस्त वह हम सभी पर सदैव-सदैव बनाएं रखे।

जिनकी उंगली पकड़ आज तक
सम्यक् पथ पर चलना सीखा।
जीवन जीना एक कला है
जिनसे जीवन जीना सीखा।।
उनकी भाषा उनका दर्शन
सब कुछ उनका ही तो मुझ पर।
कैसे क्या लौटाऊँ उनको
ऐसा क्या है मेरा मुझ पर।।

-श्रीमती अलका जैन, एम. ए.
अहमदाबाद

□

लिखना एक कला है और उसे सीखना पड़ता है– वह तो एक साधना है, तप है, जैसे बिना परिश्रम के कोई इन्जीनियर नहीं बन सकता, वैसे ही बिना प्रयत्न के कोई लेखक नहीं बन सकता।

मेरे भैया : मधुर स्मृतियाँ

मुझे मेरे भैया परम प्रिय तो हैं ही, आदरणीय और श्रद्धेय भी हैं। मुझे इस वात का बडा गर्व है कि वे भारत के ख्याति-प्राप्त बडे विद्वानों में हैं। मुझ से उम्र में लगभग 15 वर्ष बडे है। अत. पितृतुल्य वात्सल्य रहा है। मुझे उदास देखना उन्हें पसंद नहीं है, मेरी किंचित् मात्र उदासी भी उन्हें बेचैन कर देती है। स्थानीय होने के कारण उनका संरक्षण और दुलार मुझे मिलता ही रहता है। जव-जब मैं अस्वस्थ हुई, वे आकर मुझे सभी दृष्टि से समझाते-दुलारते तथा सान्त्वना देते हैं। मेरी हिम्मत बंधी रहती है। भैया के इस अपनत्व से भैया मेरे स्वसुर-देवर-जेठ सभी को सम्मान देते हुये व्यवहार करते हैं। अतः मुझे सदैव ही उनकी तारीफ सुनने को मिलती है, जिससे मै स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती हूं।

मुझे वे दिन भी भूलते नही, जब हमारी माँ मरणासन्न स्थिति मे थी, और भैया ने उनकी निर्दोष समाधि कराई थी। माँ की यही इच्छा थी कि मुझे अन्त समय में विधि से समाधिमरण करा के सद्गति कराई जावे। वे कहती थी कि मैं अपनी स्वर्ण-माला उसी को दूगी, जो मेरी समाधि करायेगा। उनकी अस्वस्थता में सेवा-सुश्रुषा और वैयावृत्ति इतनी अच्छी प्रकार से हुई कि मुझे अपने भाभी-भैया पर गर्व है।

इसी प्रकार पिताजी की लम्बी बीमारी मे भी भैया की कर्तव्य-निष्ठा प्रशसनीय थी। उनकी भी अन्त समय तक समाधि मरण कराके सद्गति का प्रयास किया है। आज भी मेरे भैया मुझे उसी वात्सल्य से देखते है। नाती-पोते-धेवते वेटा-वहू-बेटी-दामाद सबके बीच मे मुझे पूर्ण अपनत्व और सम्मान मिलता है, यह भैया-भाभी का बडप्पन ही है।

मुझे भैया के साथ तीर्थ-यात्राओं का भी सुखद अनुभव है। बद्रीनाथ की यात्रा तो मे कभी भूल ही नही सकती। वह यात्रा मेरे जीवन मे स्वर्णाक्षरों मे अमिट रहेगी। शिखरजी के पहाड की वन्दना भी भैया के साथ की है। हँसी-खुशी के माहौल मे यात्रा को ज्ञानवर्द्धक और मनोरजक बनाना भैया का स्वभाव है।

मुझे याद नही कि भैया ने कभी डाँटा या बुरा भला कहा हो। अनुशासनप्रियता हमारे घर की सस्कृति है। वैसे सबसे मिलकर खूब हँसना-बोलना-चिढ़ाना इसका आनन्द खूब लेते रहे हैं। छोटी-मोटी कहानी या दृष्टान्त सुनाकर बातो ही वातों मे ज्ञानार्जन कराना या व्यवहार-कुशल बनाना यह भी भैया का स्वभाव है। मेरे बच्चो के प्रति पूर्ण वात्सल्य और अपनत्व हम लोगो को अटूट बन्धन मे बाँधे रहता है। हर हँसी-खुशी दर्द मे भैया का सहयोग मिला है। मेरा एक ही तो भैया है, जो खुशी देता है, यह मेरा सौभाग्य है। भैया का जब-जव सम्मान होता है, मै खुशी से झूम उठती हूँ। मेरा भैया चाँद की तरह सुखद उद्योत देते रहें और सूर्य की तरह ज्ञान का प्रकाश फैलाते रहे। वे शतायु हो, समाज और धर्म की प्रगति में लगे रहे, यही मेरी मगल कामना है।

–चन्द्रप्रभा जैन, फिरोजावाद (बहना)

□

शिक्षा संस्था कहो या विद्या मंदिर एक ही बात है। मंदिर पूजा का स्थान होता है, उसे कभी अखाड़ा मत बनने देना।

अग्रज जैसा अपनत्व

प्राचार्य नरेन्दप्रकाश जैन मेरे साले अवश्य है, परन्तु मुझे अपने अग्रज जैसा ही अपनत्व देते रहे हैं। स्थानीय ससुराल से लोगों को शिकायत रहती है, परन्तु मुझे कभी ऐसा अनुभव नही हुआ। मेरा अपना बडा परिवार है, अतः मेरे साले साहब उनको बडा सम्मान तथा अपनत्व देते रहे हैं। समय-समय पर उनका आना-जाना और व्यवहार-कुशलता हम लोगों को सुखद अनुभूति देती है।

प्राचार्य श्री मृदुभाषी, व्यवहार-कुशल, सुसस्कृत ,हंसमुख व्यक्तित्व के धनी हैं। मुझे सामाजिक और शैक्षिक कार्यो के लिए प्रेरित करते रहते है। मै उनके चिरायु स्वस्थ सुखी जीवन की कामना करता हूँ।

—जयप्रकाश जैन (साहू) "लोहे वाले", फिरोजावाद (बहनोई)

□

मेरे प्रिय बाबूजी

जो काँटो के मध्य रहकर भी मुस्कराते है, जिन्होने अपनी मनमोहक खूशबू से सभी को वश में कर लिया है, ऐसे है मेरे बाबू जी। मोती के समान जगमगाते बाबूजी की वाणी ऐसी है, जो पत्थर को मोम बना देती है, जो असम्भव को सम्भव कर देती है। बाबू की वाणी मन को मोहित करती है। बाबूजी के चरण-कमल पर नत-मस्तक होकर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने की चेष्टा करती हूँ। संयम, सदाचार एव श्रमण सस्कृति को जीवन्त बनाये रखने मे वे अपनी भूमिका निभा रहे है। ऐसे कुल मे जन्म पाकर मै धन्य हूँ, जिसमे मेरे बाबूजी जैसे व्यक्तित्व का वरद हस्त मेरे सिर पर हैं।

— शिप्रा जैन
पुत्री श्री उपेन्द्रकुमार जैन

□

मेरे चाचाजी

इस नश्वर ससार में प्राणी पिछली योनियों मे कुछ अच्छे कर्म करने के पश्चात् मनुष्य योनि और जैन कुल प्राप्त करता है। कोई इसका महत्व न समझ कर नदी में फेंके हुए रत्न की भाँति ही उम्र बिता देता है। कुछ विरले ही व्यक्ति हुआ करते है, जो सत्य, अहिसा, त्याग की भावनाओ के साथ श्रावक के नियमों को अपनाते हुए अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी एक ऐसे ही व्यक्तित्व का नाम है।

एक दिन में आदरणीय अंकलजी के घर पहुँचा। यह वात नवम्बर 1993 की है। उस समय श्रवणबेलगोला महामस्तकाभिषेक की चर्चा चल रही थी। मुझसे पूछा चल रहे हो? मैने कहा- हॉ, जाना तो चाहता हूँ। बोले— अकेले। मैने कहा-नही, वहिने भी जायेंगी। बोले-हम चल रहे है, चलो मेरे साथ। मैने कहा-रिजर्वेशन करवा लूँ। बोले-सब हम करवा देगे। उस समय जेब में पैसे भी नही और तीन टिकट का रिजर्वेशन 30 दिन की यात्रा का करवा दिया। साथ-साथ यात्रा

मन को निर्मल बनाओ और वह निर्मल बनता है सकारात्मक चिन्तन से, मन एक बर्तन की तरह है, साफ बर्तन में भरा पानी गन्दा नहीं होता है जबकि गन्दे बर्तन में गंगाजल भी अशुद्ध हो जाता है।

की। मुझे नहीं पाता, 30 दिन इस यात्रा में कैसे निकल गये। पूरी यात्रा मे जो आनन्द आया, शायद इसे मै अपने जीवन में नहीं भुला सकूँगा। मैं ऐसे बहुमूल्य आदर्शो के धनी, अनेक पदों से विभूषित पूज्य प्राचार्यजी के अच्छे स्वास्थ्य एवम् दीर्घायु की कामना करता हूँ। इनके प्रकाश-पुंज से समाज के कुछ मानव-दीप समाज के मार्ग-दर्शन हेतु ज्योति पा सकें यही भावना है।

–डॉ. सुशीलकुमार जैन, कुरावली (मैनपुरी)

□

विज्ञ प्राचार्य जी

जिस प्रकार गांधी, चाचा, तिलक, गोखले इन संकेतों मात्र से उन-उन पुरुषों का बोध हो जाता है तथा जिस तरह साहित्याचार्य जी कहने से जैन-जगत मे डा. पन्नालाल साहित्याचार्य का बोध हो जाता था, ठीक वैसे ही आज 'प्राचार्य जी' कहने से लोग समझ जाते है कि नरेन्द्रप्रकाश जैन प्राचार्य सा के लिए यह सम्बोधन है। इसी से आपकी लोकप्रियता सहज में ही ऑकी जा सकती है।

लगभग 4 वर्षो से तो मैं असाध्य व्याधि के कारण पढने-लिखने मे असमर्थ हूँ। उसके पूर्व जैन गजट का हर सम्पादकीय में एक सास मे पढ लेता था। फिर एक-दो दिन बाद पुन. पढता था। आपके सम्पादकीय वास्तव में ऐसे ही होते हैं कि पाठको का उसके प्रति आकर्षण बना रहता है। सम्पादन कला तो कोई आपसे सीखे। सभी सम्पादकीय गुण आपमे विद्यमान हैं।

आगरा में दिनाक 23 2.94 को प्रतिष्ठा महोत्सव के समय विशाल स्टेज पर मञ्च संचालन आपने ही किया था, अत. बीच-बीच मे उद्‌बोधन आपका ही होता था। हित-मित वचन, मनोहारी आकर्षक लच्छेदार एव मुहावरो से युक्त भाषा व हिन्दी छन्दो से ओतप्रोत आपके उद्‌बोधन से मै आश्चर्यचकित एव श्रद्धावनत था। इससे पूर्व मैंने आप जैसा कुशल मञ्च-सचालक कहीं नहीं देखा। आपकी तुलना किसी अन्य से तो की ही नही जा सकती।

दिल्ली मे डॉ. डी सी. जैन द्वारा आयोजित सम्मेलन 'सितम्बर-अक्टूबर ९२' का मञ्च-संचालन आप ही कर रहे थे। मैं भी लाला लखमीचन्दजी कागजी के साथ बिना आमन्त्रित हुए भी चला गया। समारोह पाण्डाल में मुझे देखते ही प्राचार्य जी ने मञ्च पर बुला लिया एव मेरी बड़ाई करने लगे। लगभग 25 वर्ष पूर्व एक पत्र के उत्तर में आपने मुझे सान्त्वना देते हुए लिखा था– मुख्तार ग्रन्थ हेतु मकान मत बेचना, पैसा तो धीरे-धीरे इक्ट्ठा हो जाएगा। इतना ही नही, एक दान-दातार को प्रेरित कर उससे कुछ राशि भी प्राप्त कर भिजवा दी थी। ऐसा रहा है आपका स्नेह।

इसके सिवाय आप अनेक बार उदयपुर व भीण्डर पधारे है। प्राय· हर बार मुझे आपका सान्निध्य-लाभ प्राप्त हुआ है। ये सभी सुखद क्षण मेरे स्नेह-स्मृति-पटल की मजुल रेखाओं पर सदैव अंकित रहेंगे।

-पं. जवाहरलाल सिद्धान्तशास्त्री, उदयपुर (राज.)

□

जैन समाज हमेशा से एकता, समन्वय और सहिष्णुता का प्रबल पक्षधर रहा है। जिस प्रकार हर बीज में वृक्ष बनने और प्रत्येक अक्षर में मंत्र बनने की शक्ति निहित है, उसी प्रकार हर आत्मा में परमात्मा होने की योग्यता है।

बिखरी यादें

"जिस श्राविकाश्रम की ख्याति सुनी थी, जिसने जैन जगत में नारी-शिक्षा के क्षेत्र मे एक कीर्तिमान स्थापित किया और जिसके कारण सोलापुर एक ज्ञानतीर्थ बना हुआ है, उसमे ठहरने का सौभाग्य मिला। श्रद्धेया बहिन श्री प. सुमतीबाईजी स्वयं में एक संस्था हैं। प्राचार्या बहिन विद्युल्लताजी का सहयोग मणिकाचन-संयोग की तरह है। यहाँ जो प्रोजेक्ट चलते हैं, वे अनुकरणीय हैं। मैने यहाँ आकर बहुत कुछ सीखा है। बहिन श्री का जो प्रशस्त स्नेह मिला, उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।"

यह अनुपम शब्द समर्पित किये थे आदरणीय धर्मबधु प श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन ने, ई. सन् 1981 में। जहाँ श्रवणबेलगोला मे जैनदर्शन की प्रतीक व ज्ञान का सतत सदेश देने वाली बाहुबली मूर्ति का महामस्तकाभिषेक करने के लिए सारा भारतवर्ष भावविभोर हो रहा था, वहीं प श्री नरेन्द्रजी भी मन मे उल्लास लिये दक्षिण में बढ रहे थे। जैसे नदी सागर को मिलने की तीव्र इच्छा लेकर उसकी तरफ तेजी से बढती है, किन्तु बीच-बीच मे शान्त रहकर समस्त प्राणियों का कल्याण भी करती है, वैसे ही नरेंद्रजी उत्तर से बाहुबली के अभिषेक को देखने की तीव्र इच्छा लेकर तेजी से बढ रहे थे किन्तु साथ में बीच-बीच में विविध नगरो मे रुककर ज्ञान की वर्षा भी कर रहे थे। उन्ही नगरो मे सोलापुर भी आ गया।

सोलापुर को आपका समागम एक-दो दिन नहीं, अपितु सात दिन तक मिला। उन सात दिनो मे आपमें श्रेष्ठ वक्तृत्व गुणों के साथ आत्मीयता, गंभीरता, बालवृत्ति, निस्पृहता आदि अनेक गुणो के दर्शन हुये। उस समय संस्था की घोडा-गाडी थी, जिस पर बैठकर आपने एव समस्त परिवार ने सानद सोलापुर के दर्शन किये, जिसका उल्लेख आप हमेशा पत्रों में करते है।

आपके मन की गहराईयॉ समझ पाना वास्तव मे बहुत ही मुश्किल है। आपकी निर्विकार छवि के अदर धर्म की प्रति कितनी आस्था है। हीरों की पहचान करना तो कोई आपसे ही सीखे। समस्त भारतवर्ष में से हर साल विशिष्ट एव जैनधर्म के प्रति समर्पित व्यक्तियो के लिए स्व श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास की ओर से "रइधू" पुरस्कार दिया जाता है। ई. 2001 में आपने मुझे पुरस्कार वितरण के लिए आमंत्रित किया। मेरा स्वास्थ्य ठीक नही था, सोचा इतने दूर का प्रवास कैसे होगा, लेकिन आपकी स्नेहमयी वात्सल्यमूर्ति ऑखो के सामने आते ही ठोस निर्णय किया कि चाहे कुछ भी हो आपके कार्यक्रम में जरूर आयेंगे। पं सुभाष शास्त्री एव मैं तथा साथ में पॉच छ. बहनो को लेकर हम सभी ने फिरोजाबाद की तरफ कूँच किया। जाते-जाते तन-मन की हालत खस्ता हो गयी, किन्तु आगरा जैसे ही पहुँचे तो आपने और पं. श्री रतनलालजी बैनाडा ने जो गरमजोशी से हमारा स्वागत किया, जिसे देखकर सारी थकान भाग गयी। अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब पता चला कि "रइधू" पुरस्कार मुझे प्रदान करने वाले है। तब आपने ही कहा था कि "आपकी जैनधर्म के प्रति अनन्य आस्था है, समस्त जीवन इस समाज को सुधार मे लगाया है। नारियों का आत्मसम्मान बढ़ाने के लिए तन-मन-धन समर्पित किया है। अत यह पुरस्कार आपको नही देंगे तो किन्हे देगे?" यह सुन मै चुप बैठ गयी। मुझे पुरस्कार सहित राशि 21,000/- नगद, सम्मान-पत्र, बहुमोल वस्तुएँ एव मानवस्त्रादि से सम्मानित किया। ये पुरस्कार तो अलग किन्तु हर संस्था अनवरत चले, और इसके इधन है–'अर्थ'। इसीलिए फिरोजाबाद की समाज ने 11,000/- की नगद रशि और सौप दी। आपने यह भी कहा था कि यह पुरस्कार व राशि हम समस्त श्राविका-सस्था के प्रचार-प्रसार के लिए दे रहे हैं। इसका नाम समस्त भारतवर्ष में हो, अतः पुरस्कार प्रदान किया है। उन तीन-चार दिनों में ही उनका धर्मप्रेमियों के प्रति अपनत्व देखा। अंतिम दिन जब जाने का समय आया तब लगा कि कुछ छोडकर जा रहे है। आपने अश्रुपूरित नेत्रो से हमे विदाई दी, तब अचानक बंधुप्रेम देख इस बहन की भी ऑखे गीली हो गयीं।

इसके बाद हमारा संपर्क हमेशा बना रहा। पत्रो में आपकी विद्वत्ता की झलक दिखती थी। आपको वापिस सोलापुर मे एक बार बुलाने की इच्छा मन मे बहुत दिनों से दबी हुई थी, किन्तु आपका व्यस्तसमय कैसे लेवें? आप आयेंगे या नही? "काक-ताल" के न्याय से आप बैंगलोर में पर्यूषणपर्व के पावन-बेला में जा रहे थे तभी आपसे मुलाकात हुई और आपको

भगवान महावीर के जितने भी सिद्धान्त हैं, वे रटने-बोलने के लिए नहीं हैं, बल्कि जीवन में उतारने के लिये हैं। जब तक सिद्धान्त हमारे आचरण का अंग नहीं बनते, तब तक वे धर्म नहीं कहलाते।

केवल इतना ही कहा कि—"हमारे श्राविकाश्रम में "आ. शांतिसागर स्पर्धा वक्तृत्त्व फंड" की ओर से हर वर्ष 47 सालों से भाषण प्रतियोगिता का आयोजन होता आ रहा है। इस ईस्वी. सन् 2001 वर्ष मे भी कार्यक्रम रखा है, कृपया आप आपके करकमलों से पुरस्कार वितरण करें।" उसी समय आपने सहर्ष सम्मति भी दी। तब मैंने सोचा कि मैं व्यर्थ ही, व्यर्थ प्रश्नों से जूझ रही थी। आप सोलापुर आये, पुरस्कार प्रदान किया और अविस्मरणीय भाषण भी दिया। उस समय संस्था के ज्युनिअर कॉलेज की छात्रायें उपस्थित थीं, उनको उद्देश्य करके भाषण दिया था—"विद्या एक ग्रहण करने की ही वस्तु न होकर कृति में लाने की कला है। जो भी हम सीखें उसको तुरंत व्यवहार में लायें तो उस विद्या का मौल रहता है। यदि हमें भोजन बनाने का ज्ञान हुआ, परंतु भोजन नही बनाया तो उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है। अतः समस्त विद्या को लेकर जीना चाहिए तभी उसकी सार्थकता है। नारी एक ऐसी श्रेष्ठ कलाकृति है, जिसके पेट से अनेक शूर-वीर पूतों ने जन्म लेकर भारतवर्ष की शान रखी है। इसी नारी की कोख से 24 तीर्थंकर हुये हैं, जो धर्म-धुरा को चलाते हैं। ऐसी नारी एक नहीं, दो-दो घर संवारती है, अतः उसका सुशिक्षित होना अत्यंत आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।" अन्त में कहा कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।"

आपकी श्रेष्ठता की महिमा लेखनी से कहां तक लिख सकती हूं। बस, मेरी तो यही शुभकामनाएँ हैं, आप हमेशा जैनधर्म की पताका आकाश में गर्व से फहराएं।

— ब्र. विद्युल्लता शहा
श्राविका संस्था नगर, सोलापुर

□

मेरे प्राचार्य

जब मै आगरा से विद्याध्यन करने के बाद श्री पी.डी. जैन इण्टर कालिज फीरोजाबाद मे अध्यापक होकर आया, उस समय आपकी एस.आर. के इन्टर कालिज में छात्र संसद के प्रधान वक्ता-रूप में विशेष ख्याति थी। बाद में आप भी हमारे कालिज मे ही अध्यापक बनकर आये।

हमारे पूर्व प्रधानाचार्य ने इसको पूर्वयश के कारण वाक्प्रतियोगिता के वास्ते छात्रों को तैयारी कराने का इन्चार्ज बनाया। उसी समय के आपके शिष्य श्री अनूपचन्द्र एडवोकेट हैं।

हम लोग वर्षो तक सह अध्यापक रहे। तत्पश्चात् आप हमारे कालिज के प्राचार्य नियुक्त हो गये। पूर्व प्राचार्य द्वारा प्रदत्त समस्त जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर सौंपकर आपने सज्जनता का परिचय दिया।

अपने पारिवारिक पडित-परिवार के गुणो को पूज्य पिताजी पं. रामस्वरूप जी से उत्तराधिकार में पाकर वाक्शक्ति का सदुपयोग जिनवाणी की सेवा करते हुये अपनी वर्तमान यशस्वी स्थिति बनाई है। आपमें धर्म के दस लक्षणों का श्रावकोचित पूर्ण रूप से समावेश है। सम्यक्त्व के सभी गुण आप में विद्यमान हैं। आपकी सज्जनता, निश्छलता, पारस्पारिक सोहार्द अनवरत गुण हैं। आप विनयपूर्वक विद्यार्जन के साथ चारित्र-पथ पर भी पूर्ण रूप से अग्रसर हैं। विदेश न जाने का व्रत, रात्रि-जल का त्याग आप बड़ी दृढ़ता से पालते हैं। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र का संयोग सोने में सुगंध के समान है।

मैं उनका बड़ा भाई तुल्य होने के नाते विशेष रूप से उनके उज्ज्वल, यशस्वी, स्वस्थ, धर्मरत, दीर्घ जीवन की हार्दिक कामना करता हूँ।

—प्रेमकुमार जैन, फीरोजाबाद

□

वात्सल्य या प्रेम का उद्रेक करुणा से होता है। जहां करुणा नहीं, वहां प्रेम भी नहीं।

एक छोटी घटना वरदान बन गई

मैंने अनुभव किया कि सही मायने मे उनमे प्राचार्य के गुण हैं, जिसके कारण प्राचार्य नाम ही उनकी पहचान बन गया। प्राथमिक अल्प मिलन में ही पहचानने की अद्भुत कला है उनमे।

मैंने स्वयं पद्मावतीपुरवाल जाति का इतिहास तैयार किया और फीरोजाबाद जाकर उन्हें भेट कर दिया। बड़े प्रसन्न हुये और कहा हम इसे प्रकाशित करायेंगे। काफी समय व्यतीत होने पर भी इतिहास प्रकाशन के बारे मे कोई सूचना नहीं मिली और न प्राचार्य जी ने कोई पत्रोत्तर ही इस सम्बध में दिया। हमने भी भुला दिया, परन्तु इस वर्ष सन् 2002 मे पूज्य मुनि श्री 108 पुलकसागर जी महाराज का चातुर्मास ग्वालियर मे हुआ। इस चातुर्मास काल मे एक विद्वत्गोष्ठी का आयोजन हुआ था। विषय था–"गोपाचल की दशा एवं दिशा।" प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी, श्री नीरज जी एवं डा. अनुपम जी इन्दौर एवं श्री एच.एन. मोहनपुरी चैन्नई से आये थे। स्थानीय विद्वानों मे श्रीमती कृष्णा जैन, श्रीमती कान्ति जैन, श्री लालबहादुरसिंह जी पुरातत्व विभाग, डा. अशोक जैन एव मै स्वय था। सयोजक श्री अभयप्रकाश जी ग्वालियर थे। उस समय प्राचार्यजी से भेंट हुई। समाचार दिया कि इतिहास पद्मावतीपुरवाल दिल्ली भेज दिया गया है। शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

मुझे सूचना मिली कि प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है, तदर्थ सस्मरण लिखूं। यद्यपि मुझे प्राचार्य जी से भेंट-वार्ता का समय अधिक नही मिला, परन्तु एक छोटी घटना मेरे साथ घटी, वह मैने लिख दी है। इस ही माध्यम से मैं प्राचार्य जी का अभिनन्दन करता हूं, वन्दन करता हूं। मै परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि प्राचार्य जी को दीर्घायु प्रदान करे, जिससे वे अपने गुण एव ज्ञान से समाज को अधिक से अधिक लाभान्वित करें।

–रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर

□

मुझे उनका अंदाज भा गया

जैनधर्म ने जीवन और जीव मात्र को, सम्पूर्ण सम्मान देते हुये, आदर्श आचरण अपनाने वाले को 'श्रमण' और 'श्रावक' नाम दिया। तदनुसार श्रावक का उत्कृष्ट जीवन जीते हुये श्रमण साधुओं की सेवा साधना में, सर्वस्व समर्पित करने वाले अनन्य विद्वान् है : प्राचार्य श्री प. नरेन्द्रप्रकाश जी।

मुझे वह अच्छे लगते हैं :–

क्योंकि वह सकारात्मक रीति से, आध्यात्मिक चितन के द्वारा, समाज के मनोमस्तिक को परिमार्जित, परिवर्धित कर रहे हैं।

क्योंकि उनकी लेखनी और पत्रकारिता पर श्रद्धेय डॉ. नेमीचन्द जी इन्दौर का अच्छा असर है, ऐसा वह स्वय मानते हैं।

क्योंकि श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर से वह प्रेरित हैं और प्रभाकर जी की लेखनी ने मेरे दिलोदिमाग को गजब का सुकून दिया है।

रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भीगा हुआ होना चाहिए।

क्योंकि वह कड़वी से कड़वी बात भी सरलता एवं सच्चाई से बिना कडवाहट कह देते हैं।

क्योकि वह अपने किसी मत पर जबर्दस्ती, अनावश्यक रूप से अड़े-अटके नहीं रहे है।

क्योंकि उनके लिये सत्य, अहिंसा, अनेकांत की आराधना करना प्रथम प्राथमिकता है।

क्योंकि वह आम आदमी की भाषा में, सब के समझ में आने वाली, दिल में उतर जाने वाली सहज शैली में बोला करते हैं।

मेरी पंडित-प्रवर प्राचार्य जी से पहली और अब तक की एकमात्र भेट 'बीना-संगोष्ठी-1998' में हुयी है। उनके विराट् व्यक्तित्व से मैं अभिभूत हुआ।

उस समय 'भाग्योदय' से जुड़ा एक पीडादाई प्रकरण चल रहा था। आपसी चर्चा से ज्ञात हुआ कि जैनधर्म के प्रकाण्ड पण्डित श्री नीरज जी सतना को एक छोटी सी आगमानूकल टिप्पणी के कारण इस कदर धमकाया जा रहा है कि कुछ ही दिनों मे उनके घर 60-70, गाली गलौज वाले, अपमानकारी धमकी भरे पत्र भेजे गये है और कष्टकारी तो यह है कि ये पत्र जैनधर्म के अनुयायी ही भेज रहे हैं।

इस घटना से प्राचार्य जी अत्यंत उद्वेलित थे। इस प्रकरण की अन्तर्कथा का हाल तो मुझे मालूम नही, परंतु प्राचार्य जी ने अपने व्याख्यान मैं बिना किसी व्यक्ति, संस्था पर आरोप लगाते हुये, धर्म की जो सुन्दर व्याख्या की, उससे मुझे उपरोक्त घटनाक्रम की विवेचना तथा समाधान दोनों दिखे।

उन्होंने आचार्य गुणभद्र की गाथा को उद्‌धृत करते हुये कहा कि **'धर्म-तीर्थ-मंदिर' परिणामों में रहते हैं। चित्त में धर्म होने पर मारने वाले को भी मारने का भाव नहीं आना। इसीलिये भगवान राम ने अपने बैरी रावण को भी मरने के बाद ससम्मान अग्नि संस्कार दिया। इसी सद्‌भाव के चलते ही द्रोपदी ने अपने पाँचो पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा को भी माफी दे दी। 'जप-तप से यदि मन में शुद्धि नहीं होती है तो शरीर सुखाने से कोई फायदा नहीं।'**

प जी की मन की बात तो वो ही जाने, परंतु मुझे तो उनके इस उद्‌बोधन से ऐसा लगा कि वह परम पूज्य श्रमणो (तथा श्रावकों) से निवेदन कर रहे है कि "छोटी-छोटी सी बातो पर उनका इस तरह 'भभकना-भडकना-भडकाना' बिल्कुल अशोभनीय तथा अधार्मिक है।"

मुझे प्राचार्य जी का अंदाज भा गया, उनकी अदा लुभा गयी और इस तरह उनका आध्यात्मिक-वैचारिक व्यक्तित्व मुझ पर सदा के लिये छा गया।

—अजित जैन 'जलज', ककरवाहा, टीकमगढ़ (म.प्र.)

☐

जब चित्त में करुणा के स्रोत खुलते हैं, तभी कोई जीव अपनी या दूसरों की रक्षा के लिए प्रवृत्त होता है।

विनम्रता की मूर्ति

प्राचार्य जी से कभी किसी संगोष्ठी में मैं मिला अवश्य हू, पर उनसे व्यक्तिगत रूप से कभी मिलना नहीं हुआ। वस्तुतः हम दोनों एक-दूसरे से इस प्रकार अपरिचित हैं कि यदि किसी संयोग से आमने-सामने पड़ जाएं, तो एक-दूसरे को पहचान भी न सकें, नाम से भले ही हम एक-दूसरे को जानते हों। मेरे पास उनके केवल दो पत्र हैं जिनसे उनकी विनम्रता की कुछ झलक मिलती है। जो व्यक्ति पत्रो में, वह भी किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ, इतना विनम्र हो सकता है, वह व्यक्तिगत जीवन में कितना विनम्र होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

लगभग पाच वर्ष पूर्व, महासभा अध्यक्ष सेठी जी के विरुद्ध कुछ लोगों ने एक सुनियोजित अभियान-सा छेड़ रखा था। 'जैन गजट' तथा कुछ अन्य पत्रा मे भी उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में बहुत-कुछ लिखा जा चुका था। उसी समय प्राचार्य जी ने *'कृपया अतिरेक से बचे'* शीर्षक से एक लम्बा सम्पादकीय लिखा था। इसे पढ़ कर, वस्तुतः उसकी भाषा एवं तार्किक दृष्टि से, मैं इस प्रकार प्रभावित हुआ कि मै 'न चाहते हुए भी' प्राचार्य जी को पत्र लिखने से अपने-आपको रोक नहीं सका।

यहा 'न चाहते हुए भी' मैने सोद्देश्य लिखा है। मुझे 'जैन बालादर्श' का सपादन करते हुए तीन वर्प से ऊपर हो चुके थे। उन दिनो 'बालादर्श' का मुझ पर एक प्रकार से 'भूत-सा' सवार था। अपने अन्य कार्य छोड़ कर मै सारा समय 'बालादर्श' को ही दे रहा था। जिन लोगो ने 'जैन बालादर्श' के प्रथम तीन वर्षो के अंक देखे है, उन्हें सभवत· याद होगा कि उस समय का 'बालादर्श' किस प्रकार भाषा, वाक्य-विन्यास, सही हिज्जे, सबसे अधिक बालोपयोगी ज्ञानवर्धक रचनाओं के लिए जाना जाता था। पर दुर्भाग्यवश सेठी जी के संबंध मे उपरोक्त अनर्गल अभियान छेड़े जाने के कुछ वर्ष पूर्व कुछ ऐसी बातो का पता चला कि मैं सेठी जी को वह सब लिखे बिना नहीं रह सका। मैंने सेठी जी को संभवत· तीन या चार पत्र लिखें होंगे, पर सेठी जी ने किसी का उत्तर देना तो दूर, प्राप्ति-सूचना तक नहीं दी। ऐसी स्थिति में मैने 'जैन बालादर्श' के सम्पादकीय दायित्व से हट जाना ही बेहतर समझा और इस्तीफा दे दिया।

इसके कुछ समय बाद इलाहाबाद के एक व्यक्ति ने 'श्री बाहुबली महामस्तकाभिषेक' की आड़ में 'तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन' का विज्ञापन 'जैन गजट' और 'जैन बालादर्श' में छपवाकर सैकडों जैन बंधुओं को न केवल ठगा, वरन् उनकी धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ भी किया। चूकि ये विज्ञापन महासभा के पत्रों मे छपे थे, अतः तीर्थयात्रा से लौटने पर कुछ यात्रियो की सलाह से मैंने महासभा कार्यालय को पत्र लिखकर जानना चाहा कि 'स्पेशल ट्रेन' के ये विज्ञापन निःशुल्क छपे थे या उनका भुगतान किया गया था? इस पत्र का कोई उत्तर नही मिलने पर जब तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन के प्रबधक/सयोजक/सचालक के विरुद्ध इलाहाबाद के उपभोक्ता संरक्षण फोरम में मुकदमा दायर किया गया तो मजबूरन (न चाहते हुए भी) महासभा को भी एक प्रतिवादी बनाना पडा, क्योंकि मेरे पत्र पर महासभा की 'चुप्पी' से पता चलता था कि महासभा भी उस तथाकथित स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था या संचालन से किसी-न-किसी रूप में सबद्ध थी। अधिकांश यात्रियों ने महासभा के प्रकाशनो में विज्ञापन देख कर ही सीटे रिजर्व कराई थीं। महासभा की प्रतिष्ठा से वे परिचित थे अत· किसी प्रकार की धोखाधडी का कोई अंदेशा नहीं था।

कहने का आशय यह कि इन दोनों घटनाओं से मैं सेठी जी की प्रबंधन व्यवस्था से ('व्यक्ति' सेठी जी से नहीं) नाराज था, और महासभा से मेरा सबध लगभग टूट-सा गया था। अतः जब सेठी जी के विरुद्ध कुछ असामाजिक तत्वों ने वह अभियान छेडा तो मुझे क्षोभ होना स्वाभाविक था। सेठी जी से मै सभवतः तीन या चार बार मिला हूं और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित भी हुआ हू। एक बार मेरे निवास पर भी वे आ चुके हैं और उस समय कुछ घंटे तक विविध विषयों पर उनसे मेरी चर्चा भी हुई है। अत· इस अभियान के विरुद्ध मैं प्राचार्य जी को पत्र लिखने से अपने-आपको रोक नहीं सका। मेरे पत्र के उत्तर में प्राचार्य जी ने 1.9.99 को लिखा :–

क्षमाशील सुख की नींद सोता है, जब कि असहिष्णु एवं क्रोधी व्यक्ति की रातें करवटें बदलते हुए बीतती हैं।

'कृपया अतिरेक से बचें' शीर्षक अग्रलेख पर आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई, अनुगृहीत हूँ। आपका पत्र मैंने शताब्दी विशेषांक में प्रकाशनार्थ भेजा है। दृष्टि एक ही है, समर्पित कार्यकर्ताओं का उपहास नहीं होना चाहिए। सेठी जी के पास यदि एक टीम बनाकर आगे बढ़ने और 'प्लानिग' के साथ काम करने की क्षमता और होती तो बड़ा परिवर्तन हो सकता था। फिर भी अकेले दम पर दिनरात लगे रहते हैं।

नैतिकता को बढावा देने वाले आपके मूल्यवान विचार यदि कभी-कभी 'जैन गजट' को मिलते रहें तो वह उसका अहोभाग्य होगा। आशा है हमारी यह प्रार्थना स्वीकार की जाएगी। कृपादृष्टि बनाए रखें।

इसके बाद एक बार फिर प्राचार्य जी को पत्र लिखने का अवसर मिला जब अभी कुछ माह पूर्व उनके नाम (प्रधान सम्पादक) से प्रसारित एक विज्ञप्ति मिली जो 'कुण्डलपुर के महावीर' नामक 'एक प्रामाणिक संदर्भ ग्रथ' से संबंधित थी। प्राचार्य जी इस ग्रंथ के प्रधान सम्पादक बनाये गये थे और यह विज्ञप्ति भी उन्हीं के नाम से तैयार की गयी थी। संभवतः केवल देश ही नहीं विदेशो के भी जैन-अजैन विद्वानों को यह भेजी गयी थी। इस विज्ञप्ति में लिखा गया था कि 'भगवान महावीर से संबंधी संस्मरणों, कविताओ, रेखाचित्रो और आख्याओं' को भी इसमें शामिल किया जाएगा।

यह पढकर मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ ही, उससे भी अधिक खेद यह सोच कर हुआ कि जब देश से बाहर के विद्वानो ने यह पढ़ा होगा तो हम लोगों के 'अज्ञान' पर निश्चय ही हसे होंगे, यानी हम लोगों ने स्वय अपने-आपको दूसरो की दृष्टि में हास्यास्पद बना डाला।

ज्ञातव्य है कि यह ग्रथ 'प्रामाणिक संदर्भ ग्रन्थ' के रूप मं तैयार किया जा रहा था और मेरी तुच्छ बुद्धि मे किसी संदर्भ ग्रथ मे कविताए, रेखाचित्र एव आख्याएं तो होनी ही नही चाहिए! (पर हम जैनों को यह कौन समझाए, क्योंकि अभी पिछले ही वर्ष-2002 मे-इलाहाबाद में 'भगवान महावीर का जन्म स्थान' विषय पर एक विद्वत्गोष्ठी आयोजित की गयी थी जिसमें एक विद्वान ने विषय से हट कर अपना पूरा समय ज्ञानमती माता जी की प्रशस्ति में एक कविता पढ़ कर निकाल दिया और उपस्थित सैकडां श्रोताओ की तालियों की गड़गडाहट से अपने इस प्रयास की सार्थकता पर मुहर भी लगवा दी)। जहा तक 'संस्मरण' की बात है, किसी संदर्भ ग्रंथ में सस्मरण दिये तो जा सकते हैं पर 'संस्मरण' सामान्यत: उन्ही लोगों द्वारा लिखे जाते है या लिखे जा सकते है, जिन्होंने सदर्भित व्यक्ति को निकट से जाना है, या जो उसके संपर्क मे रहे है। क्या आज कोई 'प्रामाणिक दृष्टि' से दावा कर सकता है कि वह महावीर को व्यक्तिगत रूप से जानता है या उनके सम्पर्क मे वह रहा है? अत: मैंने प्राचार्य जी को इस विषय पर अपना संदेह व्यक्त करते हुए लिखा कि "जान पड़ता है 'कुण्डलपुर के महावीर' सबधी विवरण पत्र उन्होंने किसी व्यक्ति से तैयार कराया है और उसे ठीक से पढे बिना ही आपने अपने नाम से उसे प्रसारित हो जाने दिया। मुझे यह तो पूरा विश्वास है कि यह विवरण आपने तैयार नहीं किया है। जिस किसी ने भी यह विवरण तैयार किया है जान पड़ता है कि उसे 'संदर्भ ग्रंथ' के विषय में पूरी क्या, जरा भी जानकारी नहीं है। आपको यह विवरण पत्र ठीक से पढ़ने के पश्चात् ही उस के साथ अपना नाम छापने की स्वीकृति देनी थी।"

एक अन्य बात मैंने यह भी लिखी कि ग्रंथ की रूपरेखा से जान पड़ता है कि उसमें 'इंडेक्स' यानी विषयानुक्रमणिका जैसी कोई चीज नही रहेगी। यह उसकी बहुत बडी कमी होगी। इंडेक्स तो वस्तुतः किसी भी संदर्भ ग्रंथ की जान होती है। इसके नहीं होने से लोग ग्रंथ का सही-सही एवं पूरा उपयोग नहीं कर पाएंगे। देश-विदेश के पुस्तकालयों में 25 वर्षो से अधिक समय तक कार्य करने के अपने अनुभव से मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं। आलेख तैयार करने या उनके सम्पादन में जितना परिश्रम करना होता है, उससे कई गुना अधिक परिश्रम एव समय इंडेक्स तैयार करने में लगता है। अत: सम्पादक मंडल को इस संबंध मं अवगत कराएं तथा कोशिश करें कि ग्रंथ में इंडेक्स अवश्य हो।

उक्त आशय का पत्र मैंने प्राचार्य जी को लिख तो दिया, पर इसी प्रकार के अपने एक पिछले अनुभव से मुझे कोई

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। रोते हुए रिसना, रिसते हुए रोना-यह सदा से कायरों का काम है।

आशा नहीं थी कि प्राचार्य जी इस पत्र का उत्तर देना तो दूर, सभवत. प्राप्ति-सूचना भी न दे। वस्तुतः कुछ वर्ष पूर्व जब 'एन्साइक्लोपीडिया आफ जैनिज्म' नामक सदर्भ ग्रथ के संबंध में पत्र-पत्रिकाओ में जोर-शोर से प्रचार किया गया था तो मुझे यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि कई खंडो मे निकलने वाले इस ग्रथ मे इंडेक्स नही होगी। अतः मैंने इस ग्रंथ के संपादक को पत्र लिख कर इस कमी की ओर सकेत किया। पर आज तक सपादक महोदय ने उस पत्र की प्राप्ति-सूचना तक नहीं दी।

पर मेरी आशका निर्मूल थी। प्राचार्य जी ने न केवल मेरे पत्र का उत्तर दिया, वरन् मेरी लिखी बातों से सहमत होने हुए ग्रंथ तैयार करते समय उन पर ध्यान देने की बात भी लिखी। उनके पत्र का कुछ अश इस प्रकार है :–

> आपके पत्र के लिए अनुगृहीत हूँ।
> प्रथम तो यह स्पष्ट कर दूं कि पत्रक की भाषा मेरे ही
> द्वारा लिखी गई है, किसी अन्य के द्वारा नही। हा,
> छपाने से पूर्व सहमति सबकी ली गई थी।
> ग्रंथ के अत मे इण्डेक्स देने का आपका सुझाव उपयोगी
> एव अनुपालनीय है। हम इसका निर्वाह करने की
> कोशिश करेगे।
> आपकी यह बात सही है कि भगवान महावीर के सस्मरण
> नहीं लिखे जा सकते, किन्तु जहा-जहा उनके मन्दिर और
> मूर्तियां विराजमान हैं, उन-उन स्थानो की यात्रा के
> सस्मरण तो लोगों ने लिखे ही हैं, लिख ही सकते है।
> मूर्ति-शिल्प या पुरातात्विक महत्व की आख्याये भी
> लिखी जा सकती है। इन पक्तियो का सम्वन्ध इन्ही से
> है। फिर भी सद्भावनापूर्वक दिए आपके सुझाव का समादर
> करते हुए ग्रंथ के प्रकाशन से पूर्व 'एक प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रथ'
> के स्थान पर हम ऐसे किसी वाक्याश का प्रयोग करेगे, जिससे
> सभी को संतोष हो।
> कृपया मार्गदर्शन देते रहे।

स्पष्ट है कि प्राचार्य जी ने मेरे पत्र में लिखी किसी बात को अन्यथा नही लिया और न उसे अपनी अवमानना ही समझा। मेरे दिये गये सुझावो से सहमत होते हुए उन्होंने सस्मरणो एव आख्याओं को सन्दर्भ ग्रथ मे शामिल किये जाने के सम्पादक मण्डल के निर्णय के पक्ष मे अपना तार्किक स्पष्टीकरण भी दिया, साथ ही उन्होने यह भी माना कि ऐसी स्थिति मे इस ग्रथ को 'प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रंथ' नहीं कहा जाएगा।

इस बात से शायद ही कोई असहमत होगा कि इन दोनो पत्रो की भाषा एव उनमें लिखी बातो से उनके लेखक की विनम्रता ही झलकती है। ऐसे कितने विद्वान होंगे जो प्राचार्य जी की स्थिति मे होते तो इसी प्रकार की भाषा मे उत्तर देते?

–महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद

□

बड़ों से मिली सीखें बड़े काम की होती हैं। उन पर अमल करना चाहिए।

एक कुशल प्रशिक्षक

सितम्बर 2000 के पर्युषण पर्व के अवसर पर प्रशिक्षणार्थ माननीय श्री प्राचार्य जी हमारे सागानेर सस्थान (छात्रावास) में पधारे थे। उन्होंने हमें 6-7 दिन प्रशिक्षण दिया, जिस कारण हम सभी ने ज्ञानामृत पिया और कुछ प्यास बुझाई। समय कम होने के कारण वह हमें कम समय ही दे पाये। जितना ज्ञान मिला, उसको ही हमने समाज के सामने प्रकाशित किया और हम सभी ने सफलता हासिल की। हम सब उनको प्रतिवर्ष आमन्त्रित करते हैं, परन्तु वह समयाभाव के कारण आ नही पाते और हमारी आंखे प्यासी की प्यासी ही रह जाती है। "श्रीमान्" प्राचार्य जी अद्वितीय प्रतिभा के धनी व्यक्ति है, जिन्होने समाज मे रहकर समाज व देश का कल्याण किया एवं स्वकल्याणार्थ कार्य भी करते है। आन्दोलन आदि में भाग लेकर जेल जाने में भी वे पीछे नहीं रहते। सच्चाई को पाने के लिये प्राचार्य जी हर मुसीबत से जूझ जाते हैं। आज प्राचार्य जी 70 वर्ष के हो गये हैं, तभी तो उनका अनुभव, प्रवचन-शैली, तर्कणा-शैली अति मज चुकी है। उनके मुह से निकले ब्रज भाषा के बोल हम लोगो को अति आनन्दित कर देते थे। वह दो-ढाई घण्टे प्रशिक्षण देते, कब समय निकल जाता, मालूम ही नहीं चलता था। "सम्मानीय प्राचार्य जी" ने हमे जो ज्ञान दिया, वह हमारे लिये अविस्मरणीय है। वह शिक्षा में जीवन भर याद रखूगा।

ज्ञान का ऋण (गुरु का ऋण) चुकाया नही जा सकता, अतः ऋणमुक्त होने के लिये हमें उनके द्वारा लब्ध ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते रहना चाहिए। उनसे हमे बार-बार कुछ सीखने के अवसर मिलते रहे। यही भावना है।

-विनीतकमार जैन शास्त्री, सागानेर, जयपुर

□

पितृतुल्य श्री प्राचार्य जी

सभी माता-पिता अपनी सतान के जीवन को योग्य, समृद्धिशाली और उन्नत बनाने का यथाशक्ति प्रयास करते हैं। इस हेतु वे उन्हे समय-समय पर शिक्षा, स्नेह, शुभाशीष और मार्गदर्शन देते रहते है। अतः सतान को यह सब माता-पिता से सहज ही मिल जाता है, पर उनके ही तुल्य स्नेह, मार्गदर्शन आदि जिन्हे मिलना है वे विशेष भाग्यशाली हैं। मैं भी उनमें से एक हूं।

मुझे लेखनी, वाणी और कर्म के धनी, जैन दर्शन और साहित्य के मर्मज्ञ, बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न, जैन समाज के जागरूक प्रहरी, समाज की सशक्त धुरी रूप प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी से पितृतुल्य आशीर्वाद और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है और आगे भी मिलता रहेगा।

सन् 1981 ग्रीष्मावकाश में मै अपने पिताजी पं श्री ज्ञानचन्द्र जी जैन 'स्वतत्र' के साथ फिरोजाबाद गयी थी। वहाँ पिताजी के साथ आदरणीय प्राचार्य जी से मिलने और बातचीत करने का प्रथम सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होने पिताजी से वार्ता करने के उपरान्त मुझसे नाम, शिक्षा के विषय में पूछा- मैंने बताया-बी.एस सी. करने के उपरान्त शासकीय सेवा मे अध्यापिका के पद पर कार्यरत हूँ। इसी वर्ष संस्कृत में एम.ए पूर्वार्ध की परीक्षा दी है। यह सुनकर वे कहने लगे– प्राचीन अर्वाचीन का सयोग कैसे? तब मुझे कहना पड़ा कि पिताजी संस्कृत के विद्वान् है अत. यह वंशानुगत प्रभाव है। उन्होंने मुझे निरन्तर अध्ययनशील रहने व पिताजी की तरह लेखन कार्य हेतु प्रेरणा व आशीर्वाद दिया। प्राचार्य जी की लेखन कार्य की प्रेरणा, माननीय पितृव्य डॉ. भागचन्द जी भागेन्दु का मार्गदर्शन और सम्माननीय डॉ रतनचन्दजी जैन भोपाल के निर्देशन

सभी पंथों, ग्रंथों और सन्तों का उद्देश्य एक ही है–मन की शान्ति प्राप्त करना। भगवान महावीर की दृष्टि में यही वास्तविक धर्म है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

में मैंने एम.ए. उत्तरार्ध में 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार में प्रतिपादित श्रावकधर्म और उनका मोक्षमार्ग में स्थान' लघु शोध प्रबन्ध लिखने मे सफलता पायी।

पीएच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध 'जयोदय महाकाव्य का शैलीवैज्ञानिक अनुशीलन' प्रकाशित हुआ। उसकी एक प्रति उन्हें भेजी। जैन गजट मे समीक्षा प्रकाशित कर प्राचार्य जी ने एक प्रति मुझे भेजी और लिखा अब लेखन से इति श्री मत करना। उनके इन शब्दों ने मुझे अपने स्व. पिताजी का स्मरण करा दिया।

गत वर्ष इलाहाबाद में आदरणीय प्राचार्य जी से मिलना हुआ। तब वे सहज ही बोले तुम लिखती तो अच्छा हो, पर लेखन की गति बढ़ाओ। उनका यह कथन पितृवत मेरे प्रमाद को दूर करने, आगे की ओर गतिशील रहने और वर्तमान में पिताजी के अभाव को पूर्ण करने मे सक्षम है।

आदरणीय विद्वान् प्राचार्य जी मेरे लिए पितृतुल्य हैं। उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त कर मै स्वय को सौभाग्यशाली मानती हूँ और कामना करती हूँ कि वे दीर्घायु हो, जिनवाणी की सेवा में रत रहते हुए समग्र समाज का पथ प्रदर्शन करते रहें।

-(डॉ.) आराधना जैन 'स्वतत्र'
गज वासौदा (विदिशा) म प्र.

□

एक चमकता नक्षत्र

राष्ट्रीय विद्वान, प्रभावशाली वक्ता, सुलेखक, प्रखर बुद्धि, नगर के गौरव, विलक्षण प्रतिभा के धनी, आकर्षण, व्यक्तित्व वाले प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी पर कुछ शब्द लिखने का सुअवसर पाकर मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूं।

प्राचार्य जी से मेरा सम्बन्ध-छात्र जीवन से ही है। आप मुझसे एक वर्ष सीनियर थे। आप अच्छे वक्ता थे, पढने-लिखने में होशियार थे, जिससे वादविवाद प्रतियोगिता या भाषण प्रतियोगिता मे आपको कालेज की ओर से भेजा जाता था। आप सदैव प्रथम आते थे। कालेज के लिये अनेकों ट्रॉफी जीत कर लाये थे। आपको भी अनेको पुरस्कार प्राप्त हुये थे। कालेज में छात्र-सघ के अध्यक्ष पद का चुनाव हुआ। आपके सरल स्वभाव, मिलनसार, मिष्टभाषी कुशलवक्ता तथा व्यवहार कुशलता के कारण आपको निर्विरोध अध्यक्ष चुन लिया गया। आपके अनेक गुणों को देखकर कोई विरोध में खड़ा ही न हुआ।

इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही आपने श्री पी डी जैन इण्टर कालेज, फीरोजाबाद में अध्यापन कार्य करना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि नगर में उस समय उच्च शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी तथा व्यक्तिगत परीक्षा भी शिक्षक के रूप में ही दी जा सकती थी। अतः उच्च शिक्षा की लालसा ने ही आपको अध्यापक बनाया और आप काफी सफल अध्यापक रहे। अपने कौशल तथा कठिन परिश्रम के कारण ही इसी कालेज में प्रवक्ता तथा प्राचार्य तक बन गये।

कालेज के प्रधानाचार्य श्री हाकिमसिह जी उपाध्याय का कार्य-काल समाप्त हो गया। उनके स्थान पर उप प्रधानाचार्य रघुवीर सिह जी की नियुक्ति प्राचार्य पद पर की गई, लेकिन वे एक वर्ष भी नही टिक सके। उसके बाद एस.आर के (पी. जी.) कालेज से डा मिथिलेशचन्द जी की नियुक्ति हुई लेकिन वह भी एक साल बाद ही त्यागपत्र देकर पूर्व स्थान पर वापिस

जब तक धर्म मन में निवास करता है, तब तक प्राणी अपने मारने वाले का भी घात नहीं करता और जब वह ध र्म मन में से निकल जाता है, तब पिता और पुत्र का भी परस्पर में घात देखा जाता है।

चले गये। उस समय नरेन्द्रप्रकाश जी प्रवचन करने बाहर जाने लगे थे। उनकी प्रतिभा पुष्पित, पल्लवित और प्रस्फुटित होने लगी थी। आपकी लगनशीलता को देखकर कालेज कमेटी ने आपको प्राचार्य पद पर नियुक्त कर दिया। यद्यपि इस नियुक्ति से अनेकानेक वरिष्ठ अध्यापकों की उपेक्षा हुई लेकिन प्राचार्य श्री ने अपने मृदु स्वभाव, सरल व्यवहार, प्रशासनिक योग्यता तथा सच्ची निष्ठा से अपने पूरे स्टाफ को अपने अनुकूल बना लिया। आपने अपना कार्यकाल पूरे सम्मान सहयोग और आदर के साथ पूरा किया। आपने 58 वर्ष के बाद ही अवकाश ग्रहण किया, जिससे समाज व धर्म की अधिक से अधिक सेवा की जा सके। आपका विदाई समारोह, आपके कठिन परिश्रम द्वारा निर्मित नसियाँ जी के विशाल हॉल में हुआ था, जो देखने लायक था।

आप फीरोजाबाद के गौरव तो हैं ही, सहयोगी भी हैं। समाज मे कोई समस्या हो, कोई विवाद हो, आपके माध्यम से तुरन्त हल हो जाता है। कोई भी आन्दोलन फीरोजाबाद में हो उसका नेतृत्व आपको ही सौंपा जाता है। चाहे शिक्षक आन्दोलन हो, चाहे मूर्ति चोरी होने पर आन्दोलन करना पड़े, जैसे जारखी आन्दोलन, मैनपुरी आन्दोलन आदि। जैन मेला भूमि सत्याग्रह तथा शिक्षक सत्याग्रह में आप जेल भी हो आये है।

आप निर्भीक वक्ता हैं। फीरोजाबाद में अ. भा. जैन युवा फैडरेशन, जयपुर द्वारा सचालित शाकाहार–श्रावकाचार रथ आया, जिसका उत्तर प्रदेश मे भ्रमण का प्रारम्भ फीरोजाबाद से होना था। मै मंत्री था। कुछ लोगों को साथ लेकर आपसे निवेदन करने गया, आपने तुरन्त स्वीकृति प्रदान कर दी लेकिन जब भाषण दिया तो उनके ही मच पर अपनी बात कहने मे नही चूके। वास्तव मे आपको चिकनी-चुपडी बात करने की आदत नही है। साफ-साफ कह देते है। मथुरा चौरासी में माननीय मुख्यमत्री मायावती पधारी थीं। बहुत विशाल सभा का आयोजन था, जिसमें संचालन का दायित्व आपको सौपा गया था जिसे आपने बखूबी निभाया। मुख्यमत्री जी ने आपकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी।

आप धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। अपनी मृदुल वाणी और सरल सौम्य व्यवहार से सहज ही अपरिचित को भी अपना आत्मीय बना लेते हैं। शिक्षा के क्षेत्र मे आप प्रकाश स्तम्भ है। निरपेक्षता और रचनात्मक दृष्टि ही आपकी सच्ची कसौटी है। आपकी आवाज धनिक वर्ग, विद्वत् वर्ग तथा त्यागी वर्ग बडे ध्यान से सुनते हैं। आप जैन दर्शन के महापडित तो हैं ही, अन्य धर्मो तथा विचारधाराओ का अध्ययन करके आप श्रेष्ठ ज्ञान के महासागर बन गये हैं।

आपकी अनेकों रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। आप जैन गजट साप्ताहिक के सफल प्रधान सम्पादक हैं। अलकृत भाषा के प्रयोग से आप गद्य को भी रमणीक बना देते हैं। शिष्ट हास्य-व्यंग्य का पुट देने की आप मे अद्भुत क्षमता है। इतना मान सम्मान पदप्रतिष्ठा पाकर भी आपके रहन सहन, वेशभूषा में कोई अंतर नहीं आया है। आपकी छवि एक निर्विवाद व्यक्ति की छवि है। आपके बारे में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है। सूरज को दीपक दिखाना मात्र है।

हम आपके उज्ज्वल भविष्य, दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन की कामना करते हैं।

-डॉ. ऋषभदास जैन, फीरोजाबाद

□

धर्म न वचनों में मिलता है और न शरीर में। धर्म तो परिणामों (भावों) में मिलता है। अगर हमारे भावों में धर्म है तो हम सुख और शान्ति की दिशा में अपने कदम बढ़ाने में समर्थ होंगे।

एक विख्यात विद्वान

प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जी एक सहज, सरल, गम्भीर, वाणी के जादूगर, जिनवाणी के उपासक एव प्रसारक, श्रेष्ठ लेखक, प्रखर प्रवक्ता, कुशल सपादक एवं अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न अखिल भारतीय स्तर के मान्य विद्वान हैं।

प्राचार्य जी से जिसका भी परिचय होता है वह अपने को उनसे अत्यधिक निकटता का अनुभव करता है। वे छोटे बड़े सभी से अति आत्मीयता से वार्तालाप करते हैं। माननीय मान-रहित यशस्वी विद्वान है। विद्वत्ता उनकी पैतृक सम्पत्ति है। उनके पूज्य पिता श्री स्वय अपने समय के यशस्वी लब्धप्रतिष्ठित प्रतिष्ठाचार्य रहे है।

जिनवाणी के गूढ़ तत्त्वो को बडी सरलता से सरस उदाहरणो के माध्यम से जनमानस को हृदयंगम कराने की कला में आप पूर्णतः दक्ष हैं। आप ओजस्वी वक्ता है। जिनवाणी के आराधक एवं प्रसारक प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी की वक्तृत्व शैली महती प्रभावक है।

आप एक कुशल सगठक, सफल नेता एव प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी है। आप गूढ़ से गूढ़ समस्या का सहजता से समाधान करने मे माहिर हैं। दो-तीन वर्ष पूर्व की घटना है। आदरणीय प्राचार्य जी नागौर की धर्मसभा में प्रवचन कर रहे थे कि अचानक उन्होंने एक माताजी को सोते हुये देख लिया। प्राचार्य जी तत्क्षण बोले माताजी आप इस सभा में सोने के लिये नहीं, प्रवचन सुनने आई है। यदि नींद जोर से आवे तो अपने दोनों हाथो की मुट्ठी बाध लिया करो। नींद अपने आप भाग जायेगी। आपके इस कथन से धर्मसभा मे हास्यमय वातावरण निर्मित हो गया।

एक सस्मरण और याद आ गया। आदरणीय प्राचार्य जी के साथ आठ-दस विद्वान इसी वर्ष इन्दौर मे बैठे थे। चर्चाये चल रही थी कि सभी लोग कुछ-न-कुछ सुना रहे थे। आदरणीय प्राचार्य जी बोले—एक अग्रेज मथुरा में आया तो लोगों से पूछा कि यहा कौन सी दर्शनीय चीज है। लोगो ने कहा-यहा के चौबे दर्शनीय हैं। चलते-चलते रास्ते मे उस अंग्रेज ने पूछा-दिखाओ। वह समझ रहा था चौबे किसी जगह या इमारत का नाम होगा। रास्ते में एक मोटा-सा व्यक्ति दिखा तो उस अग्रेज से लोगों ने कहा-यह है चौबे। उसने आश्चर्य से कहा—अरे हम तो कुछ और समझ रहे थे, यह तो हमारे जैसा आदमी है। इसकी क्या विशेषता है? तब उन्होंने कहा कि ये चौबे जी सामने के हलवाई की दुकान की सभी मिठाईयां खा सकते हैं। अग्रेज बोला—यदि ये सभी मिठाईया खा लेंगे तो हम इन्हें 2,000/- रुपया इनाम देंगे। चौबे जी से पूछा गया तो वे बोले—थोड़ा समय दो तो मैं बताता हूँ। थोड़ी देर बाद चौबे जी घर से आये और उन्होने दुकान की सारी मिठाई खा ली। चौबे जी को अंग्रेज ने 2,000/- रुपये इनाम में देने के साथ-साथ पूछा—घर पर कौन-सा चूरन खाकर आए हो। चौबे ने कहा— घर पर इतनी ही मिठाई खाकर रिहर्सल करके आ रहा हूँ, ताकि चौबे की बदनामी न हो। अग्रेज ने उसे 2,000/- और दिए।

आपने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का तथा महत्वपूर्ण विद्वानों के अभिनन्दन ग्रन्थों का सम्पादन किया है। आप जिस स्थान पर भी प्रवचन करने गये, उस स्थान की समाज ने आपको किसी न किसी उपाधि से विभूषित किया है, पर आपकी सरलता एवं निरभिमानता का अनुपम उदाहरण है कि कभी भी आपने अपने नाम के साथ किसी उपाधि को नहीं जोडा है।

आप अनेक सस्थाओ के पदाधिकारी रहे हैं। वर्तमान मे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के सम्माननीय अध्यक्ष हैं। आप एक कुशल सगठक है।

विद्वत्-प्रवर प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी मेरे परम श्रद्धास्पद है। निर्भीकता, निश्छलता, स्पष्टवादिता, सहजता, गुण-ग्राहिता, धार्मिक ज्ञान के साथ ही साथ सदाचारी विद्वान है। ऐसे परम श्रद्धेय प्राचार्य जी स्वस्थ शतायु जीवन प्राप्त कर जैन समाज में जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करते रहे, इसी शुभ भावना के साथ मै सतत अभिनन्दनीय विद्वान का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

-प. शीलचंद जैन, सागर

□

भगवान महावीर ने मन की निर्मलता को ही सुखी जीवन का आधार कहा है। चित्त-शुद्धि ही किसी व्यक्ति के धर्मात्मा होने की एकमात्र कसौटी है।

प्राचार्य जी - जैसे मैंने देखे

पहली बार - प्राचार्य जी को मैने 1990 मे परम पूज्य आर्यिका माता जी ज्ञानमती जी के जन्मोत्सव पर हस्तिनापुर मे देखा था। परिचय मात्र इतना था कि मैं डॉ अभयप्रकाश जैन की पत्नी हूँ। मुझे शाकाहार, जीवदया, अहिंसा संगोष्ठी में बुलाया गया था। प्राचार्य जी ने मेरा आलेख "सौंदर्य प्रसाधनो में हिंसा" सुना और मच से उतरने के बाद मुझे अपने पास बुलाकर शाबाशी दी और उत्साहवर्धन किया। उनके शुभाशीषो का ही फल है कि मुझे जैन साहित्य के पठन-पाठन-अध्ययन एवं शोध मे रुचि जागृत हुई।

1998 अक्टूबर मास की बात है प्राचार्य जी का फोन आया कि घर मे अभयप्रकाश है—फोन पर मैंने कहा व नही हे -लेकिन मै तो हूँ—अपने अंदाज मे हँसकर फोन पर प्राचार्यजी ने कहा—ठीक है, मै आ रहा हूँ, खाना भी खाऊंगा। ठीक चार बजे वे घर आ गए, भोजन करके सतुष्ट हुए और कहने लगे नौकरी और घर की पूरी-पूरी जिम्मेदारी कैसे उठा लेती हो।

इस अवसर के बाद तो वे जब भी ग्वालियर आए ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्होने फोन न किया हो और घर न आए हो और जलपान या भोजन न किया हो।

मै तो अपना सौभाग्य मानती हूँ कि उनका स्नेह और वात्सल्य मुझे अत्यन्त निकटता से मिला है। उनकी विनोदप्रियता और बेबाकपन साथ ही समाज को मार्गदर्शन 'जैनगजट' के माध्यम से हमें मिलता रहता है। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व समाज मे विरले हैं।

—डॉ कांति जैन, ग्वालियर

सौम्य मधुर नरेन्द्रप्रकाश जी

उन्हे 'पंडित' या 'आचार्य' कहना मुझे जचता नहीं है। यह सब तो ऊपरी चिप्पियाँ या सजावट है। उन्हें 'भाई' कहना ही सहज और निकटतम है। भाई नरेन्द्रप्रकाश जी से मेरा सर्वप्रथम साक्षात् परिचय नागपुर मे हुआ। यह सन् 1995 की बात है, जब नागपुर में दिगम्बर जैन महासभा के शताब्दी महोत्सव के अन्तर्गत स्थानीय या विदर्भ क्षेत्रीय अधिवेशन या सभा हुई थी। मैं भाई मूलचन्द जी बडजात्या वर्धा के साथ सहज ही, कौतूहल वश दर्शक के नाते नागपुर चला गया। इतवारी के बड़े मंदिर के सभा-भवन मे सभा चल रही थी। महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी और उपाध्यक्ष श्री उम्मेदमल जी पांड्या भी उपस्थित थे। कुछ लोगों के भाषण चल रहे थे। बाद मे समाज के कतिपय समाज-सेवी प्रसिद्ध-सम्पन्न व्यक्तियों का प्रतीकों के साथ अभिनन्दन कार्यक्रम था। कुछ ही देर बाद मंच पर से मेरा नाम पुकारा गया। सचमुच, मै स्तब्ध रह गया, अचरज हुआ। क्योंकि मेरा कार्यक्षेत्र तो गांधी-विनोबा प्रेरित सर्वोदयजगत् रहा है और उस विचारधारा से पोषित, प्रेषित होते हुए भी समग्र जैन समाज के लिए जैसी भी थोडी बहुत सामाजिक या साहित्यिक सेवा बन पडी, करता रहा। मेरा ध्येय रहा है जैन-विचार धारा और सर्वोदय-विचार धारा में समन्वय!

मंच पर पहुँचने पर मैंने अपने मित्र भाई शांतिलाल जी बड़जाते से पूछा कि इस मंच से मेरा नाम क्यों पुकारा गया है? उन्होंने कहा, 'महासभा के ये बड़े लोग क्या जानें कि तुमने जीवन भर क्या किया है? मैंने इन्हे तुम्हारे बारे मे बता दिया है और इसीलिए तुम्हारा सम्मान किया जा रहा है, फिर तुम तो वर्धावासी ही हो।' श्री निर्मलकुमार जी सेठी ने स्वय खड़े होकर प्रतीक प्रदान करते हुए तिलक करके अभिनन्दन किया। मेरे जीवन की यह सचमुच अनोखी घटना कही जायेगी।

जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियाँ शान्ति से निर्द्वन्द्व होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषायरूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकता।

बस, यहीं मेरा भाई नरेन्द्रप्रकाश जी से परिचय हुआ। इसके पूर्व मै केवल इनके नाम से परिचित था। लोगों से संपर्क करना, लोक-सग्रह करना, मैत्री-सबध बढ़ाना मेरा स्वभाव रहा है। वहाँ वे सभा के नेताओं के बीच व्यस्त तो थे, पर बीच बीच में कुछ समय निकाल कर हमारी चर्चा होती रही। उन्होंने उस समय जैनगजट के लिए मेरी एक छोटी-सी पुस्तिका 'बारहभावना : एक सामाजिक चिन्तन' माँग ली। वह जैनगजट मे एक एक भावना के रूप में प्रकाशित भी हुई।

इस अल्पकालिक परिचय ने हमे निकट ला दिया। नरेन्द्रप्रकाश जी चाहते थे और पत्रो मे भी संकेत करते थे कि मै महासभा की समाज सेवापरक प्रवृत्तियो से जुड जाऊं, परन्तु मै मौन ही रहा। इसके लिए कह सकता हूँ कि मेरे संस्कार और मेरी सोच ही इसमे कारणभूत है।

मै अपने को किसी चौखटे मे बाधना नही चाहता। जानता हूँ कि इधर सेठीजी के तत्त्वावधान मे महासभा बहुत सक्रिय हुई है, सेठीजी ने उसमे नये प्राण फूँक दिये है और अनेक सास्कृतिक योजनाए प्रगति पर है। धनी-मानी लोगो से दान भी काफी मिला है, जीर्णोद्धार भी हो रहा है। महासभा के आगे अनेक अखिल भारतीय सस्थाएं पिछड गयी है। यह सब आम श्रावकों के लिए श्रद्धा और आकर्षण की बातें है, पर मेरा अकिचन, सामान्य मानस इस दिशा मे आगे नही आना चाहता। इसे कोई कमजोरी कह सकता है, पर मेरा निश्चित मत है कि सेवा के क्षेत्र मे वैभव, प्रचार दिखावे से व्यक्तिपूजा को महत्व मिलता है और असली सेवक कुठित स्थिति में सास लेता है। कभी-कभी शंका होती है कि भाई नरेन्द्रप्रकाश जी भी कही महासभा की चमक-दमक और नामधारी श्रेष्ठियों के बीच एकाकी, दबे-दबे मे तो नहीं है।

नरेन्द्रप्रकाश जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। सादगीमय जीवन, नपीतुली भाषा मे अपने विचार व्यक्त करने की कला। सन्दर्भ और सप्रमाण तर्क करने की कुशलता। लेखनी मे प्राञ्जलता, स्वच्छ और सधी लिखावट, आचार-सम्पन्नता उनके विशेष गुण है। वे शास्त्रि-परिषद् के एक प्रकार से एकमेव अद्वितीय अध्यक्ष है। प्रत्येक सस्था की अपनी नीति-रीति होती है और उसका परिपोषण करना उचित ही है। मेरे अनुरोध पर उन्होंने शास्त्रि परिषद् से कविवर वृन्दावनदास जी की रचना छन्दशतक का नया सस्करण प्रकाशित कर दिया। छन्दशतक का पहला सस्करण मैंने सम्पादित करके श्रद्धेय प नाथूरामजी प्रेमी के आर्शीवाद से सन् 1947 मे प्रकाशित किया था।

मैंने देखा है कि नरेन्द्रप्रकाश जी पर्याप्त सतुलन और धैर्य रखने पर भी कई बार सपादक के नाते उलझन मे या असमंजस मे पड जाते है। मन कुछ कहता है और नीति कुछ और कहती है। शायद कभी-कभी दबाब मे ऐसा भी लिखना पड जाता है जो शायद उन्हे भी नहीं जचता। ऐसी स्थिति मे उसका व्यक्तित्व 'पडित' कोटि मे चला जाता है। यह उनका दोष नही है, हर मनुष्य इसी तरह दुविधा में रहता है। लगभग समन्वय साधे तो कैसे साधे? सघर्ष टालना भी जरूरी होता है। तरह तरह के दबावो के बीच एक सच्चे मनुष्य की स्थिति, उसकी कल्पना वही कर सकता है जो दबावो मे सास लेता है। मै मानता हूँ कि नरेन्द्रप्रकाश जी ऐसे प्रसगों को भी सहज मुस्कान से झटक देते है और वाद-विवाद में नही पडते।

सन् 1998 मे मेरे कतिपय लेखो का एक सकलन, 'चिन्तन-प्रवाह सेवा से श्रेयस की ओर' नाम से छपा। उसकी एक प्रति भाई नरेन्द्रप्रकाश जी को भेजी थी। जैनगजट मे उसकी समीक्षा तो नही छप सकी, पर उन्होंने अपने पत्र में लिखा कि यह पुस्तक मैं पाथेय के रूप मे साथ रखता हूँ। मै समझता हूँ कि लम्बी लम्बी और प्रशसात्मक समीक्षाओं या अभिप्रायों की अपेक्षा एक वाक्य का यह अभिप्राय अधिक महत्वपूर्ण है। वजनदार है।

नरेन्द्रप्रकाश जी की भी एक पुस्तक 'चिन्तन-प्रवाह' नाम से प्रकाशित हुई है। इसमे विविध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित उनके लेख और 24 विचार-बिन्दु है। पुस्तक मे आत्ममथन, सुझाव, दिशानिर्देश, पारस्परिक सौहार्द, सामाजिक दायित्व, चरित्र निर्माण आदि लगभग सभी विषय हैं। समय-समय पर लिखे गये नरेन्द्रप्रकाश के विचारों की यह मंजूषा प्रत्येक समाजसेवी के लिए प्रकाशदीप जैसी है। इसे पढकर पाठक आनन्द तो प्राप्त करेगा ही, मानसिक प्रेरणा और उत्साह भी

विद्वत्ता, पद-प्रतिष्ठा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का घमण्ड कभी नहीं करना चाहिए। ये सभी नश्वर हैं।

प्राप्त करेगा। प्रकाशक ने ठीक ही लिखा है कि 'नरेन्द्रप्रकाश जैन अपनी सादगी, सरलता और निश्छल व्यवहार के कारण सर्वप्रिय हैं। बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्कों के प्रति सद्भाव एव छोटों के प्रति स्नेह उनके आचरण के अभिन्न अग हैं।'

उनकी यह दुर्लभ विशेषता है कि अनेक उपाधियो और पुरस्कारों से सम्मानित होने पर भी कभी उन्होने इनका उपयोग अपने नाम के साथ नहीं किया। सामान्यत इस दुबले-पतले, सादे वेश के व्यक्तित्व के व्यवहार, सिद्धान्त, ज्ञान और साधना का कितना एकत्व है, यह ऊपर-ऊपर से समझना सरल नहीं है। इससे बढ़कर उत्कृष्ट श्रावकत्व और क्या हो सकता है, जिसमें सेवा, साधना और सौहार्द घुल-मिल गये हो।

विद्वद् समाज की ओर से, विद्वानों की स्वतः प्रेरणा से भाई नरेन्द्रप्रकाश जी को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने की योजना शुभ है, विशेष रूप से स्वागत योग्य है। वे शतायु हों, अपने प्रगल्भ और प्रेरक विचारों से, अपने आचरण-वैभव से युवा पीढ़ी को नरेन्द्र के नाते प्रकाश प्रदान करते रहे।

-जमनालाल जैन, सारनाथ

□

दूर-दृष्टा प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी

श्रद्धेय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी आज जैनजगत में एक ऐसा नाम हे, जा पूरे देश मे बड़े सम्मान से लिया जाता है। उनकी विद्वता, न्यायकुशलता, मंत्रमुग्ध करने वाली वक्तव्य शैली, लेखन, चिन्तन, और समस्याओं को सुलझाने की क्षमता सब कुछ बेजोड़ है, प्राचाय जी तो हमारे परिवार के एक अग ही है। हमारे पूज्य ताऊजी श्रद्धेय स्व. पं. श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री से उनके रिश्ते पिता-पुत्रवत् थे। इसी कारण उनके साथ हमारे परिवार की अन्तरगता उसी अनुरूप सदैव थी और है।

आदरणीय ताऊजी प. श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री कभी उनकी बात नही टालते थे। शास्त्री जी का नियम था कि वह मॉ जिनवाणी के माध्यम से मिलने वाली किसी भी सम्मानित धन-राशि को, जो उन्हे देश के किसी भाग मे समाज द्वारा प्रदान की जाती थी, उसे अपने या परिवार के निजी हित मे प्रयोग नही करते थे। बड़ी से बडी धन-राशि उन्होने प्राप्त होने पर महासभा, जैनगजट, शास्त्री परिषद् या नगर के विद्यालय 'श्री पी डी. जैन इन्टर कालेज फिरोजाबाद', जिसके वह सस्थापक मत्री थे, प्रदान कर दिया करते थे। शास्त्री जी को उनके जीवन का अन्तिम सम्मान श्री महावीर जी तीर्थक्षेत्र मे आचार्य विद्यानद जी के चरण सानिध्य में 'गांधीरगा जनमगल प्रतिष्ठान, सोलापुर के द्वारा एक लाख रुपये की धनराशि व प्रशस्ति पत्र प्रदान करने की घोषणा की गई। सम्मानराशि प्राप्त होने से पूर्व ही आदरणीय प्राचार्य जी ने शास्त्री जी से इस राशि को कहीं अन्यत्र न देने का आग्रह किया। शास्त्री जी ने चौंक कर कहा कि मैंने जीवन मे किसी सम्मान राशि का अपने या परिवार के लिए प्रयोग नही किया, अब इस अन्तिम बेला में तुम ऐसा क्यों कह रहे हो? तब प्राचार्य जी ने कहा कि वह इस धनराशि को निजी प्रयोग में लेने की बात नहीं कर रहे। वह तो इस राशि में इतनी ही राशि और समाहित करके उसे एक ट्रस्ट बना कर सदा-सदा के लिए सुरक्षित करने के लिए कह रहे हैं। उनका विचार है कि इस धन राशि से "पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत सम्वर्धक न्यास" की स्थापना की जाए और उससे प्रति वर्ष देश में श्रुत या समाज सेवा के किसी कार्य में संलग्न महानुभाव को सम्मानित करने का क्रम प्रारम्भ किया जाए। शास्त्री जी ने इसके लिए अपनी सहर्ष स्वीकृति उसी समय प्रदान कर दी। एक न्यास का गठन करके उसके अध्यक्ष हमारे दूसरे पूज्य ताऊजी श्री उदयभान जी एडवोकेट व प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को आजीवन मत्री बना दिया गया। आदरणीय शास्त्री जी के जीवन-काल में ही इस न्यास का प्रथम आयोजन सम्पन्न हुआ। इस न्यास के सम्मानीय मंत्री के नाते प्रति वर्ष सम्मान के लिए व्यक्ति का

मतभेद सदा रहे हैं और रहेंगे। हम इतना तो कर ही सकते हैं कि दूसरों के दृष्टिकोण की उपेक्षा न करें और न बलात् उन पर अपनी राय ही थोपें।

चयन आदरणीय प्राचार्य जी द्वारा ही किया जाता है। उनके कुशल निर्देशन में 'पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत सम्वर्धक न्यास' रइधू पुरस्कार के रूप मे अब तक पं श्री शिवचरनलाल जी शास्त्री, मैनपुरी, ब्रह्मचारी सदीप सरल, बीना, ब्रह्मचारिणी विद्युल्लता शहा सोलापुर, श्रीमान जीवनदादा पाटिल, कोल्हापुर व श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, अलीगंज को उनकी सामाजिक, आगम व काव्य सेवा के लिए सम्मानित कर चुका है। यह उनकी सम्यक् सोच, कार्यकुशलता का ही परिणाम है कि हम तथा हमारा परिवार समाज व श्रुत-सेवा के कार्य की एक कड़ी बन सका।

अभिवन्दन की इस मगलबेला मे हम उनका हार्दिक अभिवन्दन करते हैं।

—लोकेन्द्रपाल जैन, रवीकान्त जैन, फिरोजाबाद

□

जिन देखा तिन पाइयाँ

मितव्ययता की गरिमा, सादगी का सौदर्य, संघर्ष मे हर्ष, समता का स्वाद और आस्था का आनद, ये कही देखना हो तो प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश के आचरण मे मिलेगे।

समय के प्रवाह के साथ बहना जितना आसान हैं, उसके विरुद्ध जाना, उतना ही कठिन। जीवन मे सामान्यत लोग आसान मार्ग ही चुनते है और समय के हाथों स्वय को समर्पित कर देते हैं किन्तु प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन ने जीवन के सहज सुलभ मार्ग को त्यागकर कष्टो से भरे कठिन मार्ग को चुना था। कदम-कदम पर विपरीत परिस्थितियो से टकराते हुए उन्होने अपनी मान्यताओं को जीवित रखा। अपने समय की जिन सामाजिक रूढ़ियो एव शिथिलाचार की बढती प्रवृत्तियो एवं कारणो को उन्होने पसंद नही किया, निर्भीक भाव से उन सारी रूढि मान्यताओ के विरुद्ध आवाज उठाने का जोखिम उठाया और संघर्ष छेड़कर ही दम लिया। श्रमण सत्ता समाज पर कितनी हावी है, इस बात की परवाह किए बिना शिथिलाचार से टकराने के लिए सदैव तैयार रहे। उनके आत्मविश्वास का परिणाम है कि कठोरतम विपरीत परिस्थितियो मे उन्होंने श्री नीरज जेन, सतना तथा डॉ भागचंद भागेन्दु के स्वाभिमान की रक्षा आगे बढकर की। जब जैसी स्थिति आई, उसी के अनुसार अपने स्वतत्र व्यक्तित्व की छाप छोडते हुए प्राचार्य जी ने अपने विचार व्यक्त किए और शास्त्रि-परिषद् को टूटने से बचाया, देश की जैन समाज का नेतृत्व करने के लिए वे सदैव आगे रहे हैं। देश मे जैन समाज को सगठित करने वाले तथा विलक्षण समन्वय शक्ति सम्पन्न व्यक्ति विरले ही है।

जहा तक व्यक्तिगत जीवन की बात है प्राचार्य जी अत्यत सहृदय, विनोदी और सरल है, किन्तु इसके साथ ही बडे व्यावहारिक भी हैं। मर्यादा का उल्लघन न स्वय करते न किसी से उसका उल्लंघन किया जाना पसंद करते हैं। जहाँ वे एक समर्थ वक्ता, उच्च लेखक, सपादक-समीक्षक है, वहाँ व्यवस्थाऐ जुटाने मे भी अत्यत निपुण है। 4 से 10 दिसम्बर 2002 मे कम्पिल श्री क्षेत्र पर पचकल्याणक के आयोजन मे उनकी दूरदृष्टि और पक्का इरादा देखते ही बनते था। पचकल्याणक की पूरी कमान प्राचार्य जी एव पं शिवचरणलाल जैन तथा डॉ सुशील जैन तीनों विद्वानो के हाथ में थी। कम्पिल क्षेत्र और साधुओं की सास्कृतिक सुरभि तीर्थक्षेत्र की मिट्टी के कण-कण में सुगंध की तरह फैल गई थी। देश में विद्वानों द्वारा पंचकल्याणक सयोजन/संचालन की यह पहली घटना है।

उनके सम्पर्क में आने वाले सभी जानते हैं कि प्राचार्य जी अपने मित्रों—हितैषियों के हित संवर्धन का सदैव ध्यान रखते

भौतिकता को ओढ़ने और सहेजने वाला सम्राट् तो बन सकता है किन्तु एक संत की प्रभुता के सामने उसका वैभव तुच्छ ही माना जाएगा। सम्राट् और संत में संत ही महान् है।

हैं। यह बात मे अपने अनुभव से लिख रहा हूँ—वे बहुत अच्छे पारखी हैं। वे एक निगाह डालते ही असलियत भांप जाते हैं। जब-जब उनके सम्पर्क में बैठा हूँ, न जाने कितने विषयो पर वे मुझसे विचार-विमर्श करते रहते हैं और हॅसते-हॅसाते हैं।

इतिहास गवाह है सामाजिक-धार्मिक-आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान हमारे गुरुओ और पंडित विद्वान मर्मज्ञों की परपरा ने किया है। इसीलिए देवशास्त्र-गुरु की त्रिवेणी पूजनीय बनी है।

प्राचार्य जी ने जहाँ साहित्य पढ़ने पढ़ाने का जीवन भर कार्य किया है, वहाँ सामाजिक धार्मिक बारीकियों को भी स्वयं स्वाध्याय से परखा/समझा है। सामाजिक पृष्ठभूमि मे धर्म-नैतिकता एव सामाजिक कुरीतियों रूढियों की गहराई से समझते हुए वे आवाल वृद्धों की जिज्ञासाओ-समस्यायों का समाधान वखूबी करते है। युवा पीढी की जिज्ञासा रहती है कि जैन धर्म अन्य धर्मो से किन-किन बातो में भिन्न है और इस भिन्नता का कारण क्या है? वे कारणों की खोज करके नित उदाहरण देकर तथा वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर सास्कृतिक जागरण का कार्य करते हैं। उनके प्रवचनो से समाज ने नवजीवन का अनुभव किया है।

प्राचार्य जी मेरे अग्रज भी है और मित्र भी। उनके सम्पर्क में जो भी आता है, उनका हो जाता है। उनका व्यक्तित्व मोहक और दिलचस्प है। उनका एक वाक्य मुझे याद आता है "ससार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई है, वे सब जैन सस्कृति की देन हैं—जैन सस्कृति शारीरिक मानसिक शक्तियो का पशिक्षण, आत्म-परीक्षण नियमन, दृढीकरण का विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।" यह उनकी चितनधारा की बानगी है। वे अपनी चिंतनधारा को बोलते समय वुनियादी बातो से शुरू करके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाते है।

आज हमारे सामने समाज-सिद्धान्त-चिंतन तथा आचरण को लेकर जो प्रश्न है, वे केवल सैद्धान्तिक नही है, आधार भूत भी है। एक ओर तो हम अपने आपको स्वयसिद्ध मानकर कठोर होते गए, दूसरी ओर हमने विचारो और सिद्धान्तों मे अधिकाश अधिक उदार और सहिष्णु होने का दावा किया। इससे हमारे सामाजिक आचारविचार अत्यंत सकीर्ण होते गए। यह फटा हुआ व्यक्तित्व-सिद्धान्त और आचरण का विरोध आज तक हमारे साथ है और आज भी हम इसके विरुद्ध सघर्ष कर रहे है। कितनी विचित्र बात है कि अपनी दृष्टि की सकीर्णता-आदतो और रिवाजो की कमजोरियो को हम यह कहकर नजरदाज कर देना चाहते है कि पूर्वजों से हमे विरासत में मिले है—लेकिन पूर्वजों से मिले ज्ञान एव हमारे आचरण मे भारी विरोध है—और जब तक हम इस विरोध की स्थिति मे दूर नही करते-हमारा व्यक्तित्व फटा का फटा रह जाएगा। जैसे हम देश की बडी से बडी समस्याओं का मुकाबला कर रहे हैं, हमे अपने सामने फैले आध्यात्मिक सकट का भी सामना करना चाहिए।

फिरोजाबाद की गलियों में प्राचार्य कहलाने वाला शख्स-गलियो में कभी घूमा नहीं, लेकिन इस की गली-गली का बच्चा-बच्चा उन्हे जानता है। मगर उन्हें यह अहसास भी नही हुआ कि यहॉ की माटी पर उसका अधिकार नहीं है। एक बार नरेन्द्रप्रकाश जी फिरोजाबाद आए तो फिर यहीं के होकर रह गए। वे सिर्फ अध्यापक ही नही, पथप्रदर्शक भी है। अब भी कोई अपनी समस्या या पीड़ा लेकर उनके पास आता है तो वे उसी तजुर्वे से सलाह देते हैं, जिस लगन से उन्होंने विद्यार्थियों को पढ़ाया था। पैर छूने वालों को देखिए तो पूरा फिरोजाबाद पंक्तिबद्ध हो जाता है। जब वे बाजार मे निकलते हैं—शहर में पं. बनारसीदास चर्तुवदी के बाद लोकप्रियता में प्राचार्य जी का नाम लिया जाता है। समता और तनाव रहित जीवन की धरा पर खड़े प्राचार्य जी किसी आचार्य से कम हैं क्या? उनसे समाज को प्रवल आकांक्षाऐं हैं।

- अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर

☐

भाग्यशाली वह नहीं है, जिसके पास अकूत दौलत है। भाग्यवान है वह, जो दौलत को लात मारकर अपरिग्रही और अनासक्त बन चुका है।

गरिमामयी व्यक्तित्व

परम श्रद्धेय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की आत्मीयता, वात्सल्य, सहयोग और स्नेह की रश्मियो की ऊर्जस्विता मुझे पग-पग पर प्राप्त हुई। अनेकों महत्त्वपूर्ण आयोजनो/संगाष्ठियो में उनके साथ मचस्थ होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्राचार्य जी की एक अद्वितीय विशेषता जो मुझ प्रायः अभिभूत और नतशीश करती है, वह है उनकी निष्पक्षता, वाक्पटुता, प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं मौलिकता। कभी भी उनके वक्तव्य में मैने पुनरावृत्ति नहीं देखी। सच, इन मा सरस्वती के वरद पुत्र के विशद जीवन दर्शन और कृतित्व को अभिनन्दित करने का श्लाघनीय कार्य हो रहा है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को मै अनेको रूपो मे देखती हूं–प्रवचनकार/पत्रकार/साहित्यकार, वक्ता/चिन्तक/समाजसेवी/कर्मठ कार्यकर्ता/सफल सयोजक/संचालक। प्रत्येक रूप मे उनके विचारवैभव की स्निग्धता आर सघनता उन्हे जीवन्त शिखर-पुरुष बनाती है। अपने निष्कलुष, हसमुख, सवदेनशील चरित्र, उदारता एव सहज मानवीय सौजन्य के कारण सर्वप्रिय/सर्व श्रद्धेय/सर्वमान्य प्राचार्य जी के पास एक ओर उर्ध्व संचरण की सिद्धि है तो दूसरी ओर समतल जीवन-सचरण तथा विकास-प्रसार की शक्ति एवं शिक्षक के रूप मे उन्होने जहॉ अपना चारित्र का आदर्श और निर्लोभी उदाहरण प्रस्तुत किया, वही ऐसी शिक्षा को मान्यता दी जो युवा पीढ़ी मे रचनात्मकता और सच्चरित्रा जगा सके, जो मनुष्यत्व को पोषण प्रदान कर सके और जो उन्हें सहज और सत्यनिष्ठ बना सके। अपने सभी लेखों और प्रवचनो में उनकी आस्था आज के व्यक्ति और समाज एवं अन्तर-बाहय सम्बन्धी ऊपरी विरोधो के बीच मानवीय एव सास्कृतिक चेतना के गहन प्रच्छत्र प्रस्तरो मे एक नवीन सन्तुलन तथा समन्वय की रहती है। उनकी जीवन-व्यापी लेखनी और वाणी मे, उनकी गहन निष्ठा के मूल मे हमें यही आस्था निरन्तर सक्रिय दिखाई देती है। अपनी भास्कर नैसर्गिय प्रतिभा के माध्यम से उनका समग्र व्यक्तित्व समाज के लिए आदर्श और शुभ फलदायी बना हुआ है।

प्राचार्य जी की अन्तर्बाह्य एकरूपता और उनके अध्ययन एव अनुभव का प्रकाश उनके आनन पर धूप सा खिला रहता है। यही कारण है उनके संपर्क मे आने वाला या तो प्रभावित होगा या निष्प्रभ। आत्मविश्वास और आत्म-गौरव की निधि के स्वामी श्रद्धेय प्राचार्य जी का हास्य-विनोद और गाभीर्य दोनो ही सम्पर्क मे आने वालो के हृदय के आँगन को उर्वर और ज्योतिर्मय कर देता है।

मुझे दो बार प्राचार्य जी की कर्म एवं साधनास्थली फिरोजाबाद मे भी जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण जैन समाज में समादृत प्राचार्य जी के प्रति स्थानीय नगरवासी भी बहुत सम्मान और श्रद्धाभाव रखते है। उनके चुम्बकीय एव स्थायी आकर्षण से बधे फिरोजाबाद वालो के भी वे "प्राचार्य जी" ही है। सत समाज और श्रावक समाज दोनो में प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन एक बहुमान से लिया जाने वाला नाम है।

मेरा श्रद्धाभाव प्राचार्य जी के प्रति है और रहेगा। मुझे सतत प्रगति-पथ पर चलते रहने की प्रेरणा देने वाले प्राचार्य जी अभी लम्बे समय तक समाज को मार्गदर्शन प्रदान करे। उनकी वाणी और लेखनी का सौन्दर्य एव अमृत शाश्वत रहे। इसी मंगल भावना के साथ उनकी दीर्घायु एव स्वस्थ जीवन की कामना है।

— डॉ. नीलम जैन गजियाबाद

□

जड़ के सुखी होने में जड़ पदार्थ निमित्त बनते हैं, किन्तु चेतन का सुख प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सेवा, क्षमाशीलता, सरलता आदि सद्गुणों के विकास में है।

प्राचार्य श्री के प्रति हृदयोद्‌गार

31 दिसम्बर 2003 हमारे प्राचार्य प्रवर श्री नरेन्द्र प्रकाश जी का 71वॉ जन्मदिन है। इस शुभ अवसर पर प्राचार्य जी को उनकी महती धर्म और समाज सेवाओ के लिए अखिल भारतीय स्तर पर अभिनदन ग्रन्थ के साथ सादर सम्मानित किया जा रहा है, यह हमारे लिए परम सौभाग्य का विषय है। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी से ताजा मुलाकात दिनाक 4 मई, 2003 को पंचकल्याणक मच, सुदामानगर इन्दौर मे हुई। वही चिर परिचित स्नेह तथा प्रेम और निश्छलता की झलक उनके दीप्त मुखमंडल पर विराजित देखकर दिल को सुकून मिला। इस अवसर पर "समय के शिलालेख" पुस्तक की एक प्रति आपने मुझे अपने हस्तलिखित सदेश के साथ सस्नेह प्रदान किया। इनकी ज्ञान से ओतप्रोत रचनाओ को पढकर निजधर्म के सिद्धांतों के प्रति मेरी श्रद्धा और प्रगाढ हुई।

प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी की सादगी पूर्ण जीवन शैली, धार्मिक निष्ठा, सतो के प्रति श्रद्धा, विद्वत् जनो के लिए दिल मे आदर भाव तथा अनेक पदों को सुशोभित करते हुए समाज सेवा की गहरी लगन से हम वाकिफ और प्रभावित है।

प्राचार्य श्री के अनुकरणीय चरित्र की गरिमा से नई पीढ़ी को आदर्श रोशनी मिलेगी। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के निमित्त हमें अध्यात्म की राहो पर अग्रसर होते रहने की ऊर्जा मिलती रहेगी। जब कभी बाधाओ से जूझना होगा हम अभिनदन ग्रन्थ की मौलिक रचनाओ मे समाहित ज्ञान को उलीचकर अपने गन्तव्य को बाधामुक्त करने मे सफल होगे। यह हमारा विश्वास है।

अभिनदन की इस अपूर्व बेला मे प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के प्रति शत्-शत वदन और बारबार सादर नमन, इस भावना के साथ कि उनकी कलम सतत चलती रहे। वे स्वस्थ रहें और दीर्घायु हो।

-- हुकुमचद सोगानी, इन्दौर (म. प्र)

□

गुरुवर नरेन्द्रप्रकाश जी

एक कहावत है . "गुरू गोविन्द दोऊ खडे काके लागू पाय, बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताय"–दो महापुरुष आपस में बातचीत कर रहे थे कि सबसे बडा कौन है? एक ने कहा कि पृथ्वी सबसे बडी है, दूसरे ने कहा कि पृथ्वी कहा बड़ी है वह तो शेषनाग पर खड़ी है। अत· शेषनाग बडा हुआ, पहिले वाले ने कहा कि शेषनाग कहा बडा है वह तो शिवजी के गले में पड़ा है। अतः शिवजी बड़े हुये, तो दूसरे ने पुन कहा कि शेषनाग की शेय्या पर विष्णु जी आराम फरमा रहे है। अत· विष्णु जी बड़े हुये, तो फिर बात आगे बढी कि विष्णु जी बडे होते तो राम के रूप में अवतार ही क्यों लेते? अत. राम बडे हुये तो पहिले वाले साथी ने कहा कि राम तो गुरु वशिष्ठ के चरणो में पडे है। गुरु वशिष्ठ सबसे बड़े हुये, कहने का तात्पर्य है इस ससार मे गुरु से बढ़कर कोई नही है। इसलिये कहा है "हरि रूठें तो ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर" गुरु भी 2 प्रकार के होते है एक लौकिक गुरु दूसरे अलौकिक गुरु। लौकिक गुरु कौन होते है? लौकिक गुरु वे होते हैं जो लोक मे रह कर लोक शिक्षा से अवगत कराते हैं, जिससे परिवार की आजीविका चलती है और अलौकिक गुरु वे होते हैं, जो इस भवसागर से पार उतारने की शिक्षा देते है · भगवान आदिनाथ जब ऋषभकुमार के रूप मे राजकुमार थे, तब उन्होंने असि-मसि, कृषि, शिल्प, बिहार, वाणिज्य आदि की शिक्षा दी थी, परन्तु जब उन्हें ज्ञान हो गया तो समोशरण में भवसागर से पार उतरने की शिक्षा दी थी। अलौकिक गुरुओ को लोग मुनि, आचार्य उपाध्याय की संज्ञा देते है, परन्तु कुछ

आदमी का सभ्य होना तो जरूरी है ही, किन्तु उसे सुसंस्कृत भी होना चाहिए। संस्कारों के अभाव में सभ्यता मानवता के लिए बोझ बन जाती है।

व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनका आचरण एवं ज्ञान मुनियो से भी अधिक होता है उनका स्वाध्याय रूपी तप इतना होता है कि अच्छे-अच्छे पीछे रह जाते है। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के बारे मे मैं क्या कहूँ? वे तो मेरे, मेरे ही क्या, मेरे बच्चो के भी लौकिक गुरु है, जो उनकी परम अनुकम्पा से अकलक व निकलंक उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में विधि व्यवसाय में रत है तथा 2 बच्चे अनमोल जैन एव मृदुल जैन बी. टेक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कालेज आफ इंजीनीयरिंग रुड़की मे प्रवक्ता के पद पर कार्य कर रहे हैं। छात्र जीवन में इन बच्चो को श्री नरेन्द्र प्रकाश जी द्वारा हमेशा पुरस्कृत किया गया। मेरा सारा जीवन फिरोजाबाद में गुरुजी के चरणो मे ही बीता। मेरे मन में यह भाव उठे कि अपने बच्चो का जन्म-दिन तो प्राय. सभी परिवारो मे मनाया जाता है, परन्तु गुरु का जन्म-दिन तो शायद ही किसी को याद हो, हां मुनिराजो का तो मनाया जाते हुए देखा है। वैसे उनका वास्तविक जन्म-दिन वह होता है, जिस दिन उनके वैराग्य भावो का उदय हुआ। मुझे गुरुजी का जन्म-दिन याद था। अतः मैने महासमिति, फिरोजाबाद सभाग के अध्यक्ष श्री सूरजभान जी से बात की तो फिर क्या था, उनकी सहर्ष स्वीकृति प्राप्त हो गई और समस्त महासमिति के सदस्यगण एव पदाधिकारी चले गुरुवर के घर की ओर और सारी व्यवस्था निःसकोच रूप से फिरोजाबाद के प्रसिद्ध एक्सपोर्टर वीरेन्द्र कुमार जी जैन सरनऊवालो ने कर डाली और इस तरह गुरुजी का जन्म-दिन बडी धूमधाम से मनाया और आशीर्वाद प्राप्त किया।

गुरु जी सौम्य प्रवृत्ति के है। सादा जीवन उच्च विचार उनका परम सिद्धात है। भौतिकता की चकाचौध से वे कतई दूर हैं। वे ऐसे व्यक्तित्व के धनी है कि अनचाहे भी यह माथा उनके चरणों में झुक जाता है। हर शहर मे लोकल पार्टीबन्दी होती है, परन्तु गुरुजी को इन पचडों से कोई मतलब नही है। उनके लिये सभी समान है। नरेन्द्रप्रकाश जी दीर्घायु होवे। ऐसी मगलभावना के साथ।

– रमेशचन्द्र जैन, एडवोकेट, इलाहाबाद

□

हमारी अविस्मरणीय बुन्देलखण्ड यात्रा

(22-12-2001 से 1-1-2002 तक)

सन् 2001 के उत्तरार्द्ध में नगर के प्रमुख उद्योगपति उदारमना श्री देवेन्द्रकुमार जैन 'मामा' (राजू डेकोरेटर्स) के भाव अपने परिजनो सहित रिश्तेदारों तथा कुछ इष्टमित्रो को बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण यात्रा के लिये एक निःशुल्क बस ले जाने के हुए, जिसका पूरा व्यय भार उन्होंने स्वय वहन किया। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होने प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी से मत्रणा की। प्राचार्य जी ने उनके इस भाव का केवल अनुमोदन ही नही, बल्कि उन्हें प्रोत्साहित भी किया। यहा श्री मामाजी ने अपनी व्यापारिक बुद्धि-चातुर्य का इस्तेमाल करते हुए उनसे आश्वासन ले लिया कि इस यात्रा मे उन्हे सपरिवार साथ चलना पड़ेगा और निर्देशन का गुरुतर भार भी उन्हें ही वहन करना पडेगा। प्राचार्य जी से स्वीकृति मिलने के साथ ही यात्रा का ताना-बाना बुना जाने लगा। कार्यक्रम तय किया गया और तदनुसार सारे तीर्थो को प्राचार्य श्री के माध्यम से अग्रिम सूचना भेज दी गई। सौभाग्य से उस यात्रा में शामिल होने का पुण्य-लाभ इन पक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ।

अन्त' वह पावन तिथि दि. 22-12-2001 आ गई। एक सम्पूर्ण सुविधा युक्त डीलक्स बस आकर लगी और 'पहले आओ, पहले पाओ' के सिद्धान्त पर यात्रिओं ने अपने-अपने स्थान ग्रहण किये। पाच सेवा कर्मियों सहित कुल लगभग 55 यात्रियो का काफिला जाने को तैयार था। यात्रियों को विदा करने के लिये नगर के लगभग 200-225 संभ्रात नागरिक उपस्थित थे, जिन्होंने प्रत्येक यात्री को मंगल तिलक लगाकर पीत पट्टिका डालकर रात्रि 10 बजे भाव-भीनी विदाई दी और

संसार के बंधन से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति ही भव्य जीव का सर्वोच्च लक्ष्य है। जिनेन्द्र-भक्ति से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

श्री 1008 भगवान चंद्रप्रभु के जयकार के साथ बस चल पड़ी। इसके बाद यात्रा का दिशा-निर्देशन का पूरा भार प्राचार्य श्री के कन्धों पर आ गया और उनके ही सफल निर्देशन में अन्त तक सम्पूर्ण यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई।

यात्रा का पहला पड़ाव दि. 23-12-2001 को सुबह 5.30 बजे करगुवा पर हुआ। यहा भूगर्भ से प्राप्त 1008 श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की अत्यन्त मनोहारी तथा अतिशय युक्त मूर्ति विराजमान है। धर्मशाला भी अत्यन्त विशाल एव सुविधापूर्ण है।

यहां से काफिला आगे बढ़ा तो सिद्धक्षेत्र पवाजी (पावागिरि) पहुचे। यहां से सुवर्णभद्र आदि चार मुनि मोक्ष गये थे। यह क्षेत्र भी काफी विशाल एवं सुविधापूर्ण है।

पवाजी से चलकर शाम को ललितपुर पहुंचे और रात्रि-विश्राम श्री दि जैन मंदिर क्षेत्रपाल पर किया। मंदिर कमेटी को हमारे पहुचने की अग्रिम सूचना पहले ही प्राप्त हो चुकी थी, जिसके कारण हमें ठहरने की सारी व्यवस्था चाक-चौबन्द मिली।

दूसरे दिन दि. 24-12-2001 को सुबह ललितपुर शहर के मंदिरों के दर्शन करने गये। सर्वप्रथम घंटाघर-स्थित श्री अटा मंदिर के दर्शन किये। अत्यन्त विशाल एव दर्शनीय मंदिर है। ऊपर हाल में विराजमान पाषाण की लगभग 3 फुट अवगाहन की पद्मासन चौबीसी अत्यन्त मनोहारी एवं दर्शनीय है। हम लोग दर्शन कर ही रहे थे कि प्राचार्य श्री के आगमन की सूचना पाकर समाज के कुछ प्रबुद्ध लोग एकत्रित हो गये और प्राचार्य श्री से कुछ समय के लिये उद्बोधन की प्रार्थना की, लेकिन समयाभाव के कारण उनसे अति विनम्रता से क्षमा-याचना की। इसके बाद नया मंदिर तथा बडा मंदिर क्रमशः दोनो मंदिरों के दर्शन किये। तीनों ही मंदिर अत्यन्त विशाल एव दर्शनीय हैं। इसके बाद हम लोग देवगढ के लिये प्रस्थान कर गये।

देवगढ़ वास्तव में 'यथानाम तथा गुण' वाली कहावत को चरितार्थ करता है। इसे वास्तव मे देवताओं द्वारा गढा हुआ समझा जाना चाहिये अथवा देवताओ का गढ़ यानी किला। जितने जिन-बिम्ब यहां देखने को मिलते हैं, सम्पूर्ण भारत में एक स्थान पर शायद ही कही अन्यत्र हो। एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक द्वारा इसके बारे में एक टिप्पणी लिखी गई थी कि यहा पर इतनी मूर्तियॉ हैं कि अगर एक बोरी चावल लेकर चला जाय और प्रत्येक मूर्ति के सन्मुख एक-एक चवाल चढ़ाया जाय तो भी चावल कम पड जायेगे। आज यह पूरा क्षेत्र पुरातत्व के अन्तर्गत है। यहां के अधिकतर मंदिर व मूर्तिया पांचवी तथा छटी शताब्दी, गुप्त, परमार तथा गुर्जरकालीन है।

दि. 25-12-2001 को सुबह श्री थूवोन जी के लिये प्रस्थान किया। यहां कुल 26 मंदिर है, जो अत्यन्त प्राचीन एवं विशिष्ट शैली मे बने हुये हैं। इनमें 5 फुट अवगाहना से लेकर 20-21 फुट अवगाहना तक की खड़गासन मूर्तियां विराजमान है। ये सभी मंदिर 12वीं शताब्दी मे पाडाशाह नामक एक रांगा व्यापारी ने व्यापार मे अप्रत्याशित रूप से लाभ होने के उपलक्ष मे बनवाये।

यहां से प्रस्थान कर खन्दारगिरि पहुंचे। खन्दारगिरि पर 6वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी तक की सात गुफायें है, जिनमें अत्यन्त प्राचीन मूर्तियां विराजमान है। पहाडी पर ही 38 फुट ऊंची 1008 भगवान आदिनाथ जी की मूलनायक खड़गासन मूर्ति विराजमान है। यहा से चन्देरी पास ही है। चन्देरी का चौबीसी मंदिर भारत विख्यात है। देश की यह प्रथम व अन्तिम चौबीसी है, जिसमें सभी मूर्तियां का वर्ण तीर्थंकरों के वर्ण के अनुसार है। सभी मूर्तियां 4.5 फुट अवगाहना की पद्मासन मुद्रा में है। यह मंदिर काफी विशाल एवं प्राचीन है। यह नगर चंदेल शासकों की राजधानी रहा था।

चन्देरी से प्रस्थान किया तो अतिशय क्षेत्र सेरोनजी पहुंचे। यहा भी हमारे यात्रा संघ की अग्रिम सूचना आ चुकी थी। क्षेत्र पर पहुंचने पर हम सभी को अत्यन्त सुखद एवं अविश्वसनीय आश्चर्य हुआ कि क्षेत्र की पूरी कमेटी हम लोगों के स्वागत के लिये तैयार खड़ी थी। सारे ही यात्रियों का मंगल तिलक लगा कर तथा श्रीफल भेंट कर स्वागत किया और नाश्ता से लेकर शाम के भोजन तक का पूरा प्रबन्ध किया। यह केवल प्राचार्य श्री के प्रताप का ही प्रतिफल था, जो हमें इतना सम्मान

अकेली एक जिनभक्ति ही ज्ञानी के दुर्गति का निवारण करने में, पुण्य का संचय करने में और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है।

मिला। इस क्षेत्र पर 12वीं-13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक की अति प्राचीन मूर्तियों का भण्डार है तथा साथ ही एक अत्यन्त विशाल पुरातत्व मूर्तियो का संग्रहालय भी है। आस-पास के क्षेत्र मे आज भी यहां यदा-कदा मूर्तिया भूगर्भ से मिलती रहती हैं।

यहां से चलकर पपौरा जी या पंपापुरा (पुराना नाम) शाम को पहुंचे। रात्रि-विश्राम किया। अग्रिम सूचना होने के कारण यहां भी आवास-व्यवस्था मे कोई कमी नहीं थी। इस क्षेत्र पर कुल 11 जिनालय है, जिनमें आधे से भी अधिक चंदेलकालीन हैं। मूर्तियां अत्यन्त प्राचीन एव मनोज्ञ हे। सारे ही मंदिर एक ही प्रकोष्ठ में अवस्थित है।

इसके बाद सिद्ध क्षेत्र आहार जी पहुचे। यहा भगवान शन्तिनाथ की लगभग 20 फुट ऊची अतिशय युक्त मूर्ति के साथ ही भूत-भविष्य तथा वर्तमान की तीन चौबीसी तथा विद्यमान बीस तीर्थकरो की मूर्तिया विराजमान है। इसी क्षेत्र पर प्रातः स्मरणीय आचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनि 108 श्री समतासागर जी महाराज एव 108 श्री प्रमाणसागर जी महाराज के दर्शन हुये, जिनका सन् 2002 में चातुर्मास कराने का सौभाग्य फीरोजाबाद नगर को भी मिला। यह इस मंगल मिलन का ही परिणाम था। इस क्षेत्र पर कुल सात जिनालय है।

यहां से चले तो सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि शाम 6 बजे पहुचे। उस समय तक पहाड बन्द हो चुका था, पर यह प्राचार्य जी के नाम व व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि क्षेत्र कमैटी ने न केवल पहाड जाने की स्वीकृति ही प्रदान की, बल्कि रोशनी आदि से लैस 2-3 आदमियों को भी हमारे साथ जाने की व्यवस्था की। इस क्षेत्र से गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष गये हैं। पहाड पर 38 जिनालय तथा गुफायें हैं तथा तीन जिनालय नीचे हैं।

यहां से सिद्धक्षेत्र श्री नैनागिरि के लिये प्रस्थान किया। रात्रि-विश्राम कर सुबह पहाड वन्दना के लिये चले। पहाड़ छोटा होने के बाद भी अत्यन्त मनोहारी है। यहा का 1008 भगवान पार्श्वनाथ का समवशरण जल मंदिर तो अद्वितीय ही है। पहाड़ पर 40 तथा नीचे 13 कुल 53 मंदिर है। इस क्षेत्र से कुल पाच मुनि इन्द्रदत्त, सायरदत्त, वरदत्त, गुरुदत्त तथा मुनेन्द्रदत्त मोक्ष गये थे और श्री पार्श्वनाथ भगवान का समवशरण यहा आया था। मंदिर न 35 मे अभिषेक करते समय मूर्ति के मस्तिष्क भाग से ॐ की ध्वनि सुनी जा सकती है।

यहां से पटेरिया (गढ़ाकोटा) होते हुये कोनीजी पहुंचे। पटेरिया मे 1008 भगवान पार्श्वनाथ जी की तीन विशाल भव्य मूर्तियां है, जिनमे से एक मूर्ति के सर्वाग से आज भी कभी-कभी जलधारा बहती है। प्राचार्य जी स्वय एक वार के प्रत्यक्षदर्शी रहे है।

कोनीजी (आ. 108 श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा प्रदत्त नया नाम कुण्डलगिरि) क्षेत्र पर 108 आ श्री विद्यासागर जी महाराज ससंघ विराजमान थे। हम लोग थोड़ा विलम्ब से पहुचे और आचार्य श्री साध्यकालीन सामायिक पर बैठने वाले थे। संघ के एक ब्रह्मचारी द्वारा आचार्य श्री को संदेश दिया गया कि फीरोजावाद से एक यात्रा सघ प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के नेतृत्व में आया हुआ है और दर्शन करना चाहता है। सूचना मिलने के साथ ही आचार्य श्री अपने कक्ष से वाहर आ गये और पूरा यात्री संघ बुला लिया। पूरे सघ को अपना आशीर्वाद दिया और करीब 10 मिनट के उद्‌बोधन से कृत-कृत्य किया। इतने निकट और सहजता से आचार्य श्री के दर्शन एव आशीर्वाद हम लोगो को सुलभ हो सके, इसके पीछे केवल प्राचार्य श्री की ख्याति तथा बहुआयामी व्यक्तित्व ही कारण था।

इसके बाद हमारा काफिला जबलपुर की तरफ रवाना हुआ और रात्रि 8.30 बजे मढिया जी की धर्मशाला में रुके। दूसरे दिन सुबह शहर के मंदिरों के दर्शनार्थ निकले। प्रमुख तीन मदिर हैं। (1) हनूमान ताल का बड़ा मंदिर, (2) लार्डगज का श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर तथा (3) गोल बाजार का आदिनाथ दि. जैन मदिर। पहले दो मंदिर काफी प्राचीन तथा विशाल हैं। यहां भी लार्डगंज मंदिर में वहां के नागरिकों एवं मंदिर कमेटी के अत्यन्त आग्रह पर 15-20 मिनट का उद्‌बोधन प्राचार्य जी को देना पड़ा।

पिसनहारी की मढ़िया पर 13 तथा नीचे 3 मंदिर हैं। इसमे नन्दीश्वर द्वीप मंदिर की रचना आ. 108 श्री विद्यासागर

भगवान के गुणों के स्तवन से मोह के बंधन ढीले पड़ जाते हैं। मोह के पलायन करते ही शेष कर्म भी हथियार डाल देते हैं।

जी महाराज की देखरेख में हुई। पार्श्व में श्री गणेश वर्णी गुरुकुल है। गुरुकुल संचालको को जैसे ही पता चला कि इस यात्रा-संघ में प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी साथ है, उनके पदाधिकारीगण आये और प्राचार्य जी के साथ अन्य यात्रियों को भी साथ ले गये। तुरत-फुरत एक हाल में सारी व्यवस्था की गई। अलग-अलग लोगों के उद्बोधन हुये, प्राचार्य श्री को पूरे गुरुकुल का अवलोकन कराया गया ओर अन्त में मगल तिलक लगाकर श्रीफल भेंट कर विदा किया गया। प्राचार्य श्री के कारण जगह-जगह इस यात्रा संघ को जो स्वागत-सम्मान मिला, उससे हम सभी लोग अभिभूत थे। यहां से दमोह होते हुये रात्रि 8 बजे कुण्डलपुर पहुंचे।

सुबह दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर पहाड़ वन्दना के लिये गये। ऊपर पहाड पर 48 तथा तलहटी में 15 मंदिर हैं। वैसे तो सारे ही मंदिर व मूर्तिया अत्यन्त प्राचीन व मनोहारी है, पर बडे बाबा की बात ही कुछ और है। यह लगभग 1500 वर्ष पुरानी अत्यन्त अतिशय पूर्ण है। पद्मासन मुद्रा में लगभग 20 फुट ऊची तथा 10 फुट चौड़ाई की 1008 श्री आदिनाथ भगवान की यह मूर्ति कब और किसने बनवाई यह इतिहास तो उपलब्ध नही है, पर यहां के इन सारे मदिरों का पहले पन्ना के राजा श्री छत्रसाल महाराज ने जीर्णोद्धार कराया और बाद में दो स्दनाम-धन्य भट्टारक सर्वश्री सुरेन्द्रकीर्ति महाराज तथा सुचन्द्रसागर महाराज ने इस मूर्ति को कहीं अन्यत्र से लाकर यहां स्थापित कराया। प्रमुख मूति के पार्श्व मे दोनों तरफ 1008 भगवान पार्श्वनाथ की 12 फुट ऊंची खड्गासन मूर्तियां जैसे इस मूर्ति में चार चाद लगाती है। आजकल इस मंदिर का जीर्णोद्धार आ. 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के मार्गदर्शन में चल रहा है।

यहां से चलकर खुजराहो जाते समय अतिशय क्षेत्र पटेरा पर आ. 108 श्री देवनन्दी जी महाराज के ससघ दर्शन हुये ओर उनके आशीर्वचन मिले। खजुराहो दि 30-12-2001 को सुबह 4 बजे पहुचे। खजुराहो में श्री आदिनाथ भगवान, श्री शान्तिनाथ भगवान एवं श्री पार्श्वनाथ भगवान के मंदिरों के दर्शन किये। सभी तीनों मंदिर अत्यन्त विशाल, भित्त चित्र तथा मीनारों की शिल्प कला अद्वितीय हैं। सभी मंदिर चंदेल शासनकालीभ हैं और आजकल पुरातत्व विभाग की देखरेख में हैं। इसके अतिरिक्त शैव मंदिर भी देखे, जिनकी आज कुल सख्या 22 है। यह पूरा क्षेत्र पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत है और अपनी शिल्प के लिये विश्व-विख्यात है। पुरातत्व विभाग इनके बारे में समय-समय पर काफी कुछ प्रकाशित करता रहता है।

यहां से चलकर रात्रि 9 30 वजे सिद्धक्षेत्र सोनागिरि जी पहुंचे और दिल्ली वाली धर्मशाला मे प्रवास किया। दि. 30-12-2001 को सुबह पहाड वन्दना और बाद मे तलहटी के मंदिरो के दर्शन किये। यहा पूज्य आर्यिका 105 विशुद्धमती माताजी के ससंघ दर्शन मिले। इसके बाद भोजनोपरान्त धर्मशाला-प्रागण में सारे यात्रियो द्वारा एक सभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्रीमान् कैलाशचन्द्र जैन (कोषाध्यक्ष, स्याद्वाद शिक्षण परिषद) एव प्रदीपकुमार (एकाउन्ट आफीसर, नवभारत टाइम्स) के द्वारा की गई। इस सभा में सभी यात्रियो ने अपने-अपने उद्गार व्यक्त किये। कोई संघ संचालक श्री देवेन्द्रकुमार जी 'मामा' के प्रति अपनी भावनायें व्यक्त कर रहा था तो कोई प्राचार्य श्री के कुशल निर्देशन के प्रति नतमस्तक था। बड़ा ही हृदयस्पर्शी दृश्य था। अन्त मे श्री मामाजी ने प्राचार्य श्री के प्रति उनके सफल निर्देशन और सहयोग के लिये शाल उढ़ाकर सम्मान व्यक्त किया और सभा का समापन हुआ। इस यात्रा की सबसे बडी व खास उपलब्धि यह रही कि न तो किसी यात्री को कोई आर्थिक क्षति हुई और न ही किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट ही हुआ, जबकि यात्रा में सभी वय के लोग सम्मिलित थे।

आज प्राचार्य जी के राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे अभिनन्दन का निमित्त पाकर इस प्रेरक यात्रा के सुखद क्षणों की मधुर स्मृतियां हमारे मानस में साकार हो उठी हैं। दस दिवसीय इस यात्रा में उनके राष्ट्रव्यापी प्रभाव का अनुभव पदे-पदे सबने किया। इस अवसर पर सम्पूर्ण यात्री संघ की तरफ से हम भी अपने भाव-पुष्प उन्हें समर्पित करते हुए उनके सुखी, स्वस्थ और दीर्घ जीवन की मंगल कामना करते हैं।

— कमलकुमार जैन आलमपुरिया, नई बस्ती, फीरोजाबाद

☐

जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रिया में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही अहिंसक हो सकता है।

सरस्वती के वरद सपूत

जैन समाज में शायद ही कुछ लोग ऐसे होंगे, जिन्होंने विद्याव्यसनी, कर्मठ विद्वान श्री प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी के बहुआयामी व्यक्तित्व के बारे में न सुना हो। उनकी निर्भीक वक्तृत्व शैली, धर्मपरायण सात्विक जीवन चर्या और व्यवहार कुशलता, सभी के लिए प्रेरक है। उनके लेखन एवं भाषण में, गभीर अध्ययन और चिंतन की स्पष्ट छाप झलकती है। वे वर्तमान युग के मूर्धन्य विद्वान है। उनकी उच्च कोटि की विद्वत्ता और निश्छल सेवाओं से जैन समाज गौरवान्वित है।

मुझे 1985 में अपने पतिदेव डा. नरेन्द्र विद्यार्थी के साथ एक बार अपनी सुपुत्री के लिए 'सुयोग्य वर' देखने फिरोजाबाद जाना पड़ा था। उसी समय मेरा पहली बार प्रत्यक्ष परिचय प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी से हुआ। एकाएक मौसम खराब होने से बरसात में भी उन्होने कष्ट सहकर अपना अमूल्य समय देकर हमारा पूरा सहयोग किया और आत्मीयजनों की भांति मार्गदर्शन दिया। साथ ही पूरे परिवार ने हमारे भोजन पान से लेकर वापिस प्रस्थान करने तक अपनत्वपूर्ण जो स्वागत किया, वह आज तक हमारे मानस पटल पर अंकित है।

ऐसे सहृदय, जैन संस्कृति के अग्रदूत आदरणीय प. प्रवर प्राचार्य श्री के सम्मान मे भावभीनी वन्दना समर्पित करते हुए मैं उनके स्वस्थ्य जीवन एवं दीर्घायु होने की मगल कामना करती हूँ।

— डा. श्रीमती रमा जैन, छतरपुर

□

सहजता और सरलता की प्रतिमूर्ति

घटना शायद 1949-50 अथवा 50-51 की है। मै श्रीतिलक इन्टर कालेज का छात्र था और श्री नरेन्द्र प्रकाश जी एस. आर. के. कालेज में पढ़ते थे। मेरा उनसे कोई परिचय नही था। एक दिन कालेज मे हमे ज्ञात हुआ कि डी.ए.वी इन्टर कालेज में बाद- विवाद प्रतियोगिता का आयोजन है। मैं अपने कुछ साथियों सहित डी.ए.वी मे पहुंचा। कई टीमें प्रतियोगिता में भाग लेने आई हुई थी। जब श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के बोलने की बारी आई, तो लोग मन्त्र मुग्ध होकर सुनने लगे। बोलने के बाद सबसे पहले श्री कुसुमाकर जी ने उनकी पीठ थपथपाई तथा अन्य कई लोगों ने उनके भाषण की सराहना की। मेरे मन में सहज रूप से यह भाव आया कि यह छात्र एक दिन महापुरुष बनेगा। इस बात को मैंने श्री रनवीरसिंह जो मेरे सहपाठी थे और गौंछ (गाव) से रोजना पढ़ने आते थे, से भी व्यक्त कर दी। उन्होंने सिर हिलाकर मौन स्वीकृति दी। आज मै उस भावना को साकार होता हुआ देख रहा हूँ।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी इन्टर पास करके श्री पी.डी.जैन इन्टर कालेज में अध्यापक हो गये और मैं भी तिलक इन्टर कालेज में शिक्षक बन गया। उन दिनों फीरोजाबाद में कोई डिग्री कालेज नहीं था और प्राइवेट बी.ए , एम.ए. करने के लिये शिक्षक होना अनिवार्य था। वहीं से आपने एम.ए. तक की परीक्षा पास की तथा एल.टी. भी बाद मे कर ली और हिन्दी के प्रवक्ता बन गये।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जी प्रारम्भ से ही शिक्षक संघ में सक्रिय रहे और दो या तीन बार शिक्षक संघ के अध्यक्ष भी रहे। मेरा भी शिक्षक सघ से लगाव बना रहा। उस समय शिक्षक संघ में बड़ी एकता थी और अनेक छोटी, बड़ी समस्याओं को संघ के माध्यम से आसानी से सुलझा लेते थे। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के कुशल नेतृत्व में सघ ने एक साख जमा ली थी। उसका समाज पर भी अनुकूल प्रभाव था। उस समय आये दिन यों ही आन्दोलन या भूख हड़ताल नहीं करते थे।

संयम और सदाचार के बिना आत्मा की कोरी कथनी तोतारटन्त ही है।

सन् 1968 में शिक्षक समुदाय वेतनमान तथा अन्य कई माँगों की माँग कर रहा था, किन्तु शासन ने कोई ध्यान नहीं दिया। उस समय उत्तर प्रदेश में संविद सरकार के असफल हो जाने से राज्यपाल श्री रेड्डी का शासन था। अन्त में संघ आन्दोलन के लिये बाध्य हुआ और बड़ा जबरदस्त रूप धारण कर लिया। सभी इन्टरकालेजों के प्रायः सभी अध्यापक जेल गये। जेल भरो आन्दोलन बडा सफल रहा। श्री पी.डी. जैन और एस.आर.के. कालेज के शिक्षकों ने जेल जाने के बाद मुझे नगर का प्रभारी बनाया गया और दो तीन दिन बाद तिलक इन्टर कालेज के एक दो शिक्षकों को छोड़कर प्राय सभी शिक्षक मालायें पहनकर आगरा जिला कारागार की हवा खाने पहुँच गये।

आन्दोलन को लम्बा खिंचता देख और कोई अनुकूल परिणाम न देखकर लोग घबराने लगे। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने कई बार मीटिंग में कहा कि आन्दोलन कभी विफल नहीं होता, कुछ न कुछ प्राप्त ही कराता है। कुछ दूरगामी परिणाम होते हैं। अस्तु, आन्दोलन लगभग एक महीने के बाद समाप्त हो गया। हम लोग जेल से बाहर आये, एक निराशा का वातावरण था। हॉ, उसके दूरगामी परिणाम अच्छे ही निकले। उस समय संघ के अध्यक्ष के रूप में श्री ओमप्रकाश सारस्वत ने बड़ा परिश्रम किया और शिक्षकों को बाँधे रखा तथा बिखराव की नौबत नही आने दी।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी स्वभाव से विनम्र, रहन सहन मे 'सादा जीवन उच्च विचार' के प्रतीक एवं सहज स्नेही होने के साथ 2 कुछ तथाकथित विद्वानों की भॉति कृत्रिम गम्भीरता को नहीं ओढते और न मुँह लटकाये ही रहते है। सहज स्थिति के साथ निष्ठ हास्य एवं विनोद प्रियता मे कुशल है। अपने साथियों एवं मित्रों मे हास्यात्मक व्यंग्य भी किया करते हैं। स्व. श्री शम्भूदयाल शर्मा, 'हृदय' उनके विनोद के पात्र हुआ करते थे।

किसी कार्य अथवा वैसे ही मिलने के लिये मुझे कई बार उनके घर जाने का अवसर प्राप्त हुआ है। सदैव बड़ी आत्मीयता एव प्रेम से मिले। पुस्तकों का ढेर सामने और कुछ न कुछ लिखने पढ़ने का कार्य ही उनका ध्येय रहा है और अब भी है। स्वाध्याय उनका स्वभाव है।

अब तो वे अखिल भारतवर्षीय जैन विद्वानों एवं वक्ताओं में अव्वल हैं। समस्त भारत का भ्रमण करना पड़ता है। महीने मे कभी 2 तो आधे से भी अधिक समय परिव्राजकाचार्य के रूप मे ही उन्हे बिताना पडता है। मेरा अनुमान है कि विश्व के कई अन्य देशों में भी जैन बन्धुओं का समाज होगा और लोग उन्हें नाम से जानते होंगे, परन्तु एक तो अंग्रेजी बोलने का स्वभाव न होने तथा अति महत्वाकांक्षी न होने के कारण शायद विदेश जाने का उन्होने कभी प्रयास नही किया और इस प्रकार के अवसर ढूंढने की भी कभी कोशिश नहीं की।

मध्य प्रदेश में जिला भिंड के अन्तर्गत वहां से लगभग 40-45 किलोमीटर दूर एक कस्बा है जिसका नाम है 'मौ'। वहाँ जैन लोगों की अच्छी बस्ती है। बड़े भव्य जैन मन्दिर हैं। मेरा पुत्र कुछ वर्ष पूर्व शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे प्रवक्ता था। भादो मास में पूजा के दिन थे। कुछ जैन विद्वान एवं मुनि बाहर से आये थे। मै भी एक सप्ताह रहा। प्रायः रोजाना प्रवचन सुनने जाया करता था। एक दिन मेरा परिचय वहां के कुछ जैन कार्यकर्ताओं से हुआ। जब मैंने फीरोजाबाद का नाम लिया तो प्रायः सभी लोगों ने श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम लिया। मैंने उनसे पूछा आप लोग उन्हे कोई नहीं बुलाते। इस पर वे बोले, 'हमें यह सौभाग्य अभी तक नहीं मिल सका है। यद्यपि प्रयास तो किया है कभी वे व्यस्त बताये गये, कभी हम लोग विलम्ब से सूचना भेज पाये। फिर भी हम लोग भविष्य मे उन्हें सुनना चाहते हैं।' मैंने कहा कि आपको उन्हें सुनकर विशेष आनन्द प्राप्त होगा, परन्तु व्यस्तता के कारण उन्हे बुलाने के लिये प्रयास करना होगा। वे मेरी बात से सहमत थे।

प्रधानाचार्य का कार्य बड़ा पेचीदा एवं अनेक उत्तर-दायित्वों से भरा होता है। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी कम आयु में ही श्री पी.डी. जैन के प्रधानाचार्य बना दिये गये थे। ये दायित्व उनकी सच्चाई, सौम्यता, योग्यता तथा अन्य चारित्रिक गुणों के

कारण कालेज की प्रबन्ध समिति के शुभ चिन्तकों द्वारा सौपा गया था। उन्होंने बडी सहजता के साथ उसका निर्वाह किया। शिक्षकों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार कार्य वितरण किया। अर्थ-व्यवस्था पर स्वय दृष्टि रखते थे, किन्तु इस पद को ओढ़कर तथा उसे भार समझकर नही ढ़ोया। विद्यालय के बाद उसे अपने ऊपर लादकर कभी नहीं रखा। इतने बड़े कालेज का नेतृत्व करना मैं एक बड़ी उपलब्धि मानता हूँ जिसमें आये दिन अनेक समस्यायें आती रहती हैं।

जैसा कि उनका स्वभाव है और आज का वातावरण हे उसके अनुसार छात्रों का शिक्षा की ओर लगन न होना, उदंडता तथा अध्यापक वर्ग का भी शिथिल होना, उन्हें खलता रहा किन्तु कुछ स्वस्थ परम्पराओ के कारण ठीक प्रकार दायित्व का निर्वाह करते रहे। अन्त मे 58 वर्ष की आयु पर ही उन्होने सेवानिवृति स्वीकार की। कुछ आर्थिक हानि सहते हुये भी उन्होंने अकारण झझटों से बचना ही उचित समझा। यह उनकी निस्पृहता का प्रमाण है।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी मूलरूप से एक शिक्षक ही है। अध्ययन एव अध्यापन में उनकी विशेष रुचि रही है। उनके पढ़ाने एवं बोलने की ऐसी शैली है कि छात्र एव श्रोता उससे प्रभावित हुये विना नहीं रह सकते। उनको सुनने में रस लेते हैं। यही कारण है कि श्री नरेन्द्र प्रकाश जी को सार्वजनिक सभाओं, धार्मिक प्रवचनों साहित्य की चर्चाओं तथा अन्य प्रकार के उत्सवों में सादर आमंत्रित किया जाता है और लोग उनके भाषण का लाभ उठाते है। डा. मक्खनलाल पाराशर एव श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, ये दो ऐसे व्यक्तित्व है जिन्हें समाचार पत्रो की सुर्खियो में सचित्र अध्यक्ष अथवा मुख्य वक्ता के रूप में प्रायः बोलते हुये देखते हैं।

ज्ञान पर किसी का एकाधिपत्य नही होता। यह भगवान की कृपा का प्रसाद है। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का ज्ञान केवल जैन धर्म तक सीमित नही है। उन्हे सभी धर्मो का अच्छा ज्ञान है। वे चिन्तक है, तुलनात्मक अध्येता भी है। अनेक गुणों की सम्पन्नता के कारण उन्हें जो यश मिला है उस पर हम फीरोजाबाद वासियो को गर्व है।

सरल स्वभाव, विनम्र व्यवहार, सहज स्नेही आचरण, सादा रहन सहन, शुद्ध आहार विहार, सात्विकता आदि अनेक उनके सहज गुण है। घमड की क्षीण रेखा भी उनमे कभी नहीं देखी गयी। मुझे पता नही कि वे कभी क्रोधित होते है कि नही, हॉ, वैसे कभी-कभी क्रोध का नाटक करते होंगे, जो कभी-कभी आवश्यक हो जाता है जैसे माता-पिता बच्चो पर करते हैं।

अन्त में मैं परम प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वस्थ एवं सानन्द रूप मे शतायु हों। प्रभु उत्तरोत्तर उन्हें आन्तरिक प्रगति के पथ पर अग्रसर करें और हमारे नगर और देश का गौरव बढाते रहे।

– डॉ रामसिहं शर्मा, सेवानिवृत व्याख्याता, फीरोजाबाद

□

प्रभावक वक्ता

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन एक आदर्श प्रवचनकार तथा कुशल प्रभावक वक्ता हैं। उनको सुनने का अवसर मुझे प्रायः मिलता ही रहता है। अनेक बार ऐसा अनुभव हुआ कि प्राचार्यजी की वाणी ने पासा ही पलट दिया। एक स्थान पर पंचकल्याणक महोत्सव का कार्यक्रम होना था। वहाँ मुनिभक्त तथा मुनियों को उपेक्षित करने वाली दो पार्टी थीं। दोनों में मतभेद के साथ मनभेद भी स्पष्टतः दृष्टव्य था। किसी प्रकार दोनों में समझौता हो गया और मिलकर यह आयोजन करने का निर्णय ले लिया गया। इस मेला महोत्सव के निर्देशन का भार प्राचार्यजी को दिया गया। मुनिद्वय के सान्निध्य में मेला अति सफलता-पूर्वक सम्पन्न हो गया। अन्तिम दिन एक मुनिभक्त महानुभाव ने मच पर डींग हांकना शुरू कर दिया कि

हे प्रभो! आपकी स्तुति से मेरे समग्र पाप क्षण भर में उसी प्रकार समाप्त हों, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से रात्रि का सघन अंधकार नष्ट हो जाता है।

किस प्रकार हमने मुनि-विरोधियों को चारों खाने चित्त कर दिया और मुनिश्री के सान्निध्य मे धूमधाम से मेला सम्पन्न करा लिया है। उधर दूसरी पार्टी के कर्मठ तथा श्रेष्ठी लोग भी कुछ मंच पर तथा कुछ श्रोता समाज के मध्य बैठे थे। मेरे पास बैठे लोग भड़क गये और वे अपमान जनक शब्द बोलते हुए बडबड़ाने लगे।

बात बिगड़ती देख प्राचार्य जी ने तुरन्त मायक ले लिया और अपने प्रभावक समन्वयवादी भाषण से इतना अधिक प्रभावित कर दिया कि वे आपे से बाहर होते लोग एकदम शान्त हो गए। उन्होंने मुख्य लोगो को मंच पर बुलाकर एक दूसरे को माला पहनवा दी, हाथ मिलवाये और एक दूसरे के प्रति सौहार्द-पूर्ण व्यवहार करने के लिए मजबूर कर दिया। देखते-देखते पासा ही पलट गया जो एक दूसरे को दुर्वचन कहते हुये मारने-पीटने तक को तैयार थे, वे अब गले मिल रहे थे। हम लोग मुस्करा रहे थे। यह है 'वाक्-पटुता' और 'वाणी-चातुर्य' का कमाल। ऐसी न जाने कितनी स्मृतियाँ है, जो हमें गुदगुदाती रहती हैं। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन शतायु हो, स्वस्थ सुखी जीवन व्यतीत कर समाज को सुखद समीचीन दिशा निर्देशित करते रहे, यही हमारी मगलकामना है।

धन्य फिरोजाबाद है, सुरभित हुये दिगन्त,
शत वसन्त सुख से जियो, शुभकामना अनन्त।

– प्रकाशचन्द्र जैन (पी.म.), फिरोजाबाद

□

प्राचार्य जी के दिशा-दर्शन से विद्यालय की प्रगति

परम पूज्य प्रात. स्मरणीय आचार्य विमलसागर जी महाराज का आशीर्वाद फीरोजाबाद जैन समाज पर तो था ही लेकिन मुहल्ला नईवस्ती की जैन समाज पर विशेष रूप से था। इस मुहल्ले के "श्री 1008 बाहुबलि दि. जैन मन्दिर जी" में उत्तर भारत की द्वितीय बाहुबलि स्वामी की प्रतिमा जी विराजमान है। इस मन्दिर जी मे अष्ट धातु की 1 फीट खड्गासन मुद्रा में चौवीसी, जो कि आस-पास 200 कि मी की दूरी के मध्य अन्य कही नही है, तथा सरस्वती भवन जिसमें हजारो की संख्या मे दुर्लभ शास्त्र जी है, आचार्य श्री की ही देन है। इसी क्रम मे "108 आचार्य विमलसागर विद्यालय" "श्री 108 आचार्य विमलसागर दातव्य ओपधालय" आचार्य श्री के आशीर्वाद का प्रतिफल है।

इस मन्दिर जी के शिखर निर्माण के शुभ अवसर पर आचार्य श्री का ससघ फीरोजाबाद आगमन हुआ और शिखर पर स्वर्ण कलशारोहण अत्यन्त धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ, जिसमे प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन, प. मुरारीलाल जी जैन (वर्तमान में मुनि श्री विष्णुसागर जी महाराज) महेन्द्रकुमार जी वत्सल, सुरेशचन्द्र जी जैन, धर्मचन्द्र जी जैन, डोरीलाल जी सर्राफ, इन्द्रकुमार जी जैन, अमोलकचन्द्र जी जैन, भामण्डल दास जी जैन, मानपाल जी जैन आदि अनेक धर्मालम्बियों ने बड़े ही मनोयोग से यह कार्य सम्पन्न कराया।

उस समय पं. मुरारीलाल जी जैन छोटे-छोटे बच्चों को मन्दिर जी में 'जैन-धर्म' के प्रथम भाग से छहढाला तक का पाठ पढ़ाते थे। बच्चों की संख्या काफी रहा करती थी। मैं स्वयं भी उसमें धर्म पढता था। बच्चो की सख्या को देखते हुए यहाँ यह अनुभव किया जाने लगा कि एक धार्मिक विद्यालय भवन होना चाहिए। इसके लिए सभी लोगों ने आचार्य श्री से आशीर्वाद प्राप्त किया। आचार्य श्री के शुभाशीष एवं प्रशस्त प्रेरणा से श्रीमान मनोहरलाल जी जैन कनौडिया, डीमापुर ने कोई उपयुक्त भवन खरीदने हेतु अपनी स्वीकृति दे दी। उनसे इशारा मिलते ही सन् 1967 मे स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन का एक मकान खरीदकर विद्यालय की ट्रस्ट कमेटी का निर्माण किया गया। जिसमें कक्षा 5 तक सरकार से मान्यता प्राप्त कर

भगवान के गुणानुवाद से चित्त को शान्ति मिलती है और वह विकार-मुक्त होने लगता है।

विद्यालय चलाया गया। तत्पश्चात् उस भवन के बराबर का मकान भी बिकने की खबरें मिली। ट्रस्टगणों ने इस पर बैठक **की और प्राचार्य जी को भवन खरीदने** के लिए अपील करने का भार सौंपा गया। तुरन्त प्राचार्य जी ने एक बुकलेट तैयार **की और उसे वितरित कराया तथा** प्राचार्य जी के निर्देशन मे बराबर वाला भवन भी खरीद लिया गया, जिसमें श्री देवेन्द्रकुमार **जैन राजेन्द्रप्रसाद जैन** 'राजू' का सहयोग सराहनीय रहा।

आज नव निर्मित भवन मे कक्षा एक से जूनियर हाईस्कूल तक सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालय चल रहा है। जिसमें **लगभग 250 छात्र-छात्रायें** अध्ययनरत हैं। इस विद्यालय मे नैतिक शिक्षा के साथ 'जैनधर्म' की शिक्षा आज भी दी जाती है।

कृतज्ञता स्वरूप यह विद्यालय आचार्य श्री के नाम पर ही स्थापित करने का निर्माण ट्रस्ट कमेटी ने लिया था।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन इस संस्था के प्रारम्भ से ही ट्रस्टी है तथा अध्यक्ष, मन्त्री पदों पर रहे हैं। आजकल **विद्यालय** के निर्देशक हैं। जिनकी देखरेख मे भवन से लगा एक अन्य भवन खरीदा गया तथा उसका एक मंजिल निर्माण **कार्य** भी प्रायः पूरा है। प्राचार्य श्री के दिशा निर्देश समय-समय पर हमें मिलते रहते है, जिससे हम सभी विद्यालय को उत्तरोत्तर उन्नति के शिखर पर ले जा रहे है।

प्राचार्य श्री के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए विद्यालय प्रबन्ध समिति एव स्टाफ तथा छात्र-छात्रायें भगवान बाहुबलि स्वामी से प्रार्थना करते है कि प्राचार्य जी दीर्घायु हो और हमे तथा समाज को अपने अनुभवो से लाभान्वित करते रहे।

– साहसकुमार जैन, प्रवक्ता, फीरोजाबाद

□

प्राचार्य जी और श्रवणबेलगोला महोत्सव

आदरणीय प्राचार्य जी से मेरा सर्वप्रथम परिचय श्रवणबेलगोला महोत्सव 1993 मे मेरे मामाजी (श्री नीरज जैन सतना) ने कराया। प्रथम परिचय की अमिट छाप आज तक धुल न सकी। मैं उन्हे मामाजी कहकर उनसे सदैव आशीर्वाद ग्रहण करता हूँ।

प्राचार्य जी की शान्त-सौम्य प्रकृति जन मानस में घर बनाती है। श्रवणबेलगोला महोत्सव के समस्त कार्यक्रमो का दूरदर्शन प्रसारण हेतु सचालन श्री नीरज जी सतना के साथ अविरल गति से चला, मुझे लगभग 8 दिन आपके साथ रहकर सीखने का अवसर मिला। उसके बाद अशोकनगर, खजुराहो, सागर, शिवपुरी, ग्वालियर के कई कार्यक्रमो में भी मैं आपके साथ रहा।

जैन गजट के यशस्वी संपादक, ओजस्वी वक्ता के रूप में सारा जगत आपसे परिचित है। शिवपुरी में पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी के वर्षायोग में आपको आमंत्रित कर बुलाया गया। धारा प्रवाह प्रवचन शैली से सारा शहर भावना में डूब गया। भारतवर्षीय धर्म संरक्षिणी महासभा शिवपुरी की बैठक भी आपकी अध्यक्षता में आयोजित की गई, जिसमें आपने महासभा एव जैनगजट के 107 वर्ष पुराने इतिहास पर सुन्दर प्रकाश डाला। मैं शिवपुरी नगर एव अपने परिवार की ओर से मूर्धन्य मनीषी आदरणीय प्राचार्य जी के प्रति सुमनांजलि प्रेषित करते हुये उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

– सुरेश जैन मारौरा, शिवपुरी (म.प्र.)

□

मोह के उदय में दृष्टि मलिन और विपरीत हो जाती है, सत्य भी असत्य प्रतीत होने लगता है तथा चित्त राग-द्वेष के द्वन्द्व में फंस जाता है। यह मोह मीठा बदमाश है।

'विनयांजलिरर्प्यते'

भारतीय उत्तरप्रदेश की जटौआ खान मे एक असंस्कृत मणिकान्त का उदय हुआ, जो पूर्वजन्म में प्राप्त पुण्य कसौटी के माध्यम से, सुसंस्कृत किया गया। पुन: जो पं. रामस्वरूप जी शास्त्री प्रतिष्ठा कलाकार द्वारा नरेन्द्र नाम से प्रतिष्ठित, विश्वविद्यालय आगरा से एम. ए. एल. टी किरण से तथा फिरोजाबाद के पी. डी. जैन इन्टर कालेज के तट से प्राचार्य की तीव्र किरणों से प्रकाशित हुआ। अनन्तर अपनी प्रतिभा से अनेक कष्टों और विवादों से संघर्ष कर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जैनदर्शन के चिन्तन, अनुशीलन, सृजन आदि गुणो से अभिव्यक्त, "आचार्य विद्यानन्द व्यक्तित्व एव कृतित्व", "आचार्य विमलसागर" आदि स्वरचित ग्रन्थ किरणों से यह मणिकान्त उत्तरोत्तर क्षेत्रों में अधिक देदीप्यमान होता गया।

भारतीय विविध प्रदेशों मे ग्रन्थों के सम्पादन, प्रकाशन, प्रवचन और लेखन की प्रखर किरणो के माध्यम से यह मणिकान्त चमत्कार करता हुआ पूर्णचन्द्र की तरह राष्ट्रगगन में सर्वतः देदीप्यमान हो रहा है। वर्तमान में यह चन्द्र अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् के अध्यक्ष शिखर पर प्रकाशमान हो रहा है।

यह भारत का चन्द्र अनेक सम्मानों से सम्मानित, पुरस्कारों से पुरस्कृत, अनेक मानद उपाधियों से अलंकृत किया गया है। आपके व्यक्तित्व, कृतित्व, प्रतिभा, अभिनंदन, अभिवन्दन और पुरुषार्थ को अवलोकित कर हम घोषणा कर सकते हैं कि आप भारत के नरेन्द्र, समाज के प्रकाश स्तम्भ और अपने परिवार के 'नरेन्द्रप्रकाश' हैं।

नरेषु इन्द्रवद्भाति, प्रकाशयति भारतम्।
जीयात् प्राचार्य : लोकेस्मिन्, विनयांजलिरर्प्यते।।

—डॉ. दयाचन्द्र साहित्याचार्य, सागर (म.प्र.)

□

बहुआयामी व्यक्तित्व

आदरणीय प्राचार्य प. नरेन्द्रप्रकाशजी से मेरा व्यक्तिगत परिचय तो नगण्य ही है और मुझे उनसे सम्पर्क का सुयोग भी विशेष नहीं मिला है पर उनके विषय में समाज का कौन व्यक्ति नहीं जानता। वे जैन जगत् की शोभा हैं और उसे भारत के दिग्-दिगन्त में प्रकाशित कर रहे है। उन्होंने सामाजिक एव जैन विद्वत्परम्परा स्तर पर तो ख्याति पाई ही है, वे साहित्यिक, सम्पादकीय एवं साहित्य लेखक के रूप में भी 'मील के पत्थर' सिद्ध हुए हैं। उनके सम्पादकीय लेख सटीक होते हैं, प्रामाणिक होते हैं। उनमें दूरगामी प्रभाव छोडने की क्षमता होती है। उनमें अनेक क्षमताएँ हैं, जिन्हें प्राप्त करना सभी के लिए सरल नहीं है।

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी के अभिनन्दन का राष्ट्रीय आयोजन अत्यन्त स्वागत-योग्य चरण है। मैं उनके सुदीर्घ स्वस्थ जीवन की कामना करता हुआ उनके प्रति अपना आदर भाव व्यक्त करता हूँ।

—डॉ. नन्दलाल जैन, रींवा

□

वीतराग की भक्ति भक्त को भी वीतराग बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

सरलता एवं संयम की जीवन्त प्रतिमूर्ति

आपने जीवनभर अध्यापन कार्य करते हुए समाज के युवाओ मे जेन सस्कार डालने के साथ ही अपने गम्भीर अनुभवो से प्रौढ़ों को भी लाभान्वित किया है। प्राचार्यजी समाज मे सुप्रतिष्ठित एवं बहु सम्मान प्राप्त व्यक्ति विशेष है। यथा नाम तथा गुणों के भण्डार है। सादा जीवन एव उच्चविचार आपका बाना है। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि, सूझबूझ एव गहन चिन्तना तर्कणा प्रधान है।

आपकी वाणी मे जहा ओजस्विता, सरसता, मधुरता एव लोकप्रियता है वही चुम्बक की आकर्षण शक्ति की भाँति अपनी ओर खींचने की अपूर्व क्षमता तथा जन-जन को मत्रमुग्ध करने का अद्भुत जादू है। ठीक ही कहा गया है– वक्ता दशसहस्रेषु अर्थात् लाखों में कोई एक व्यक्ति ही वक्तृत्व कला का धनी होता है प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी मे यह उक्ति यथार्थतः चरितार्थ होती है। आप विलक्षण वक्तृत्व कला सम्पन्न हैं।

सरलता एवं सयम की यह सजीव प्रतिमूर्ति सम्प्रति सेवानिवृत्त है फिर भी वे समाज, ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तो एव आर्यिकाओं की सेवा के प्रति पूर्ण समर्पित विद्वान है। उदात्तविचारवान आपकी सगठन के प्रति पूर्ण निष्ठा है। सर्वधर्मसमभावी एव चारित्र निष्ठ ऐसे मनीषी विद्वान् का अवश्य ही अभिनन्दन होना चाहिए।

इस पावन अवसर पर हार्दिक मगलकामना है कि वे शतायु हो, ओर हम सभी को दीर्घ अनुभवपूर्ण आपका अजस्र ज्ञान-चारित्र्य जीवन शोधन के साथ जीवन्त प्रेरणा स्रोत बना रहे।

–डॉ धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र

□

पण्डितप्रवरस्य श्रीनरेन्द्रप्रकाशमहोदयस्य प्रकाशकत्वम्

धन्येयं भारतभूमि । समस्तविश्ववन्दिता वसुन्धरेयमनेकेषा सच्चरित्रवता महापुरुषाणा जननी। चरित्रवन्तो जना स्वकीयेन सदाचारेण समाजे समादरं तु प्राप्नुवन्त्येव, किन्तु स्वालौकिकक्रियाकलापै समस्तं भूमण्डलं पावयन्ति। एतादृशेषु पुरुषेषु प्राचार्यश्रीनरेन्द्रप्रकाशस्य नाम ग्रहीतु शक्यते, यो हि स्वनामान्वर्थ कुर्वन् भारते चकाशते।

अय महानुभाव. 1933 ईशवीयाब्दस्य दिसम्बरमासे 31 तारिकाया उत्तरप्रदेशस्थ आगरा जनपदस्य 'जटौआ' ग्राम स्वजनुषा पावनमकरोत्। अस्य पिता पं. रामस्वरूपशास्त्री महोदयोऽपि समकालीन प्रख्यात प्रतिष्ठाचार्य. आसीत्। सुयोग्यपितुः योग्यपुत्रत्वेन सुर-सरस्वती-सेवकेन नरेन्द्रेण आगराविश्वविद्यालयस्य स्नातकोत्तरोपाधि ग्रहणानन्तर फिरोजावादस्य पी डी जैन इण्टरकालेजे शिक्षकरूपेण स्वकीयेन वाक्कौशलेन विपयमीमासया च सर्वानाह्लादयन् प्राचार्यपदमपि समलङ्कृतम्। प्राचार्यत्वेन महानुभावस्यानुशासनं प्रशासनञ्च सर्वै भृश प्रशंसित। महोदयस्य नेतृत्वमधिगम्य उत्तरप्रदेशस्य 'माध्यमिक शिक्षक सघोऽपि' शिक्षककल्याणार्थाय बहुविधं साफल्यमर्जितम्। कर्मनिष्ठोऽयं महानुभावः न केवलं शिक्षा क्षेत्रमपितु सर्वजनहिताय सामाजिकमपि कार्यमङ्गीचकार। फिरोजावादस्य 'जैन-मेला-भूमिविवादे सञ्चालितमनेनान्दोलनं तत्कालीनं प्रदेशप्रशासनमपि प्रकम्पितम्। मेधाविन परोपकारिणश्च पं नरेन्द्रप्रकाशस्य व्यक्तित्वेन भृशं प्रभाविताः शिक्षकगणाः ससर्गमस्य नैवोज्झन्तिस्म। यतो हि,

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्।।

भक्ति का कार्य ही पापो को नष्ट करना है। जिन भक्ति के द्वारा हमारे ह्रदय में पवित्र भावों के संचार से पुण्य-बंध होता है और उस पुण्य के फल से पाप दूर होते है।

'अङ्गीकृतं सुकृतिन· परिपालयन्तीति' आभाणकमनुस्मरन्नय महानुभावः स्वहस्तगत कार्य प्राणपणेन सम्पादयति। महाभागेनानेन भारतीयसंस्कृते· शिक्षाया· जैनधर्मस्य चोन्नत्यै महद् योगदानं कृत विद्यते। प्रशंसनीया वरीवर्त्यस्य साहित्यसाधना। अनेन विरचितानि मौलिकानि रचनानि विशिष्ट-वैदुष्य-विभूतिमस्य प्रदर्शयन्ति। तेषु **मधुर स्मृतियाँ, शाकाहार, एक आन्दोलन, चिन्तन प्रवाह, आचार्य विमलसागर, आचार्य विद्यासागर** इत्यादिनि उल्लेख्यानि सन्ति। महोदयेन जैन धर्मसम्बन्धिन· बहव ग्रन्था अपि सम्पादिताः। अनेन सह पद्मावती सन्देश-जैन संस्कृति·-वीरादयो पत्रिका अपि बहुकालपर्यन्तं प्रकाशितवान्। इत्थ सम्पादने, भाषणे, लेखने किम्बहुना विविधेषु क्षेत्रेष्वस्य प्रतिभायाः वैशिष्ट्यं परिलक्ष्यते। न किमपि तादृक् क्षेत्रमवलोक्यते यस्य समुन्नत्यै महाभागैः न प्रयतितम्। अयं महानुभावः स्वशेमुषीशाणत्वेन बहुआयामीव्यक्तित्वेन च 'अखिल-भारतीय-दिगम्बर-जैन शास्त्रि परिषदः अध्यक्षपदमलङ्कुर्वन् राराजते।

विविधगुण विशिष्टोऽय महानुभाव· बहूना जैनमुनीनां साधु-साध्वीनाञ्च संसर्गेण सन्तस्वभावं धत्ते। जैनागमादि धार्मिक ग्रन्थानामध्ययनेन महोदयस्य विचारेण साकमाचारोऽपि सन्तवत् परिलक्ष्यते। अमृतगतिना वर्णितमधोनिर्दिष्टं लक्षणमस्य चरित्रे सर्वथा समीचीनं प्रतिभाति। तद्यथा –

> चिन्ताह्लादि व्यसनविमुख शोकतापापनोदि,
> यशोत्पादि श्रवणसुखदं न्यायमार्गानुयायि।
> तथ्यं पथ्य व्यपगतमदं सार्थकं मुक्तवादं,
> यो निर्दोषं रचयति वचस्तं बुधाः सन्तमाहुः।।

पण्डितप्रवरस्य श्रीजैनमहोदयस्याभिनन्दन कर्तुं समुद्यता बद्धपरिकराश्चाभिनन्दनग्रन्थसमितिः कोलकाता महानगरस्य महामंत्री श्री महावीरप्रसाद गगवाल–महोदयस्य नलिनी सेठ रोड स्थिते कार्यालये अभिनन्दनग्रन्थं प्रकाश्य समर्पयिष्यतीति ज्ञात्वा मोमुद्यते मम चेतः। धन्यवादार्हा सर्वे प्रकाशनमण्डलस्याधिकारिणश्च। यतो ह्यस्मिन् कलियुगे निर्गुणा धनिका एवाद्रियन्ते। पुरा गुणवन्तो, जनाः सम्मानार्हा भवन्ति स्म, यतो हि 'गुणा स्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय· इति प्रथा प्रचलिता आसीत्। वस्तुत· सम्मान· गुणानामेव क्रियते, न वा कुलस्य, जातेः, देशस्य, स्थानस्य, वयसो वा। विद्यादिगुणमेव सम्मानस्य निदानमिति सत्यमेव भणितं मनुना ·–

> न हायनैः न पलितैः न वित्तेन न बन्धुभिः।
> ऋषयश्चक्रिरे धर्म योऽनूचान; स नो महान्।।

अस्मिन् सकलप्रपञ्चप्रपञ्चिते भारते स्वनामधन्य· विद्यावाचस्पति-सिद्धान्तरत्नादिभिः उपाधिभि· लोकविभूषित पं. श्री नरेन्द्रप्रकाशजैनमहाभाग· स्वनामोपाधिमन्वर्थ कुर्यादिति शम्। मंगलं भूयादभिनन्दनम्।

–डॉ. शिवदर्शन तिवारी, वाराणसी

☐

बुरे विचारों से पाप-बंध होता है और पाप-बंध ही दुर्गति, दुर्दशा या संसार-परिभ्रमण का कारण है।

आकर्षक एवं प्रभावक व्यक्तित्व

कुशल-प्रशासन, मौलिक-चिन्तन, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, स्वानुशासन, ओजस्वी वक्तृत्व, न्यायप्रियता, लेखन एव सम्पादन में असाधारण वैदुष्य, हास्य-व्यंग्य शैली के माध्यम से दूसरों के हृदय में सहजता से प्रवेश करने की अद्भुत क्षमता, न्यायप्रियता, विवादों को निर्विवाद करने का कौशल, देशप्रेम, जिनवाणी की सेवा में सतत सलग्नता आदि अनेक गुणों के आश्रयभूत व्यक्तित्व के धनी हैं प्राचार्य प. श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन। आपमे ये सभी गुण छात्र जीवन से ही पल्लवित होते रहे हैं। जब कभी कोई व्यक्ति आपके संपर्क मे आता है तो आपसे प्रभावित होकर आपका भक्त बन जाता है। ऐसे सहज स्वभावी प्राचार्यजी को उनके नामानुरूप (नरेन्द्रप्रकाश) गुणों को नमस्कार करता हूँ तथा उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। समाज को तथा जिनवाणी को आपके व्यक्तित्व से अधिकाधिक लाभ मिले यही आशा करता हूँ।

—डॉ सुदर्शनलाल जैन, वाराणसी

□

वह तो बस वह ही है

सन् 1969 मे प्राचार्य जी से प्रथम भेट हुई। फीरोजाबाद मे 200 वर्ष प्राचीन जैन मेलाभूमि के विवाद को लेकर 'जेल भरो' आन्दोलन चल रहा था। हम अपने कुछ साथियो के साथ उसमें भाग लेने के लिए वहाँ गए थे। प्राचार्यजी जब सभा में हुंकार भरते तो लोगो की नस-नस फडकने लगती। जेल जाने के लिए लोग अपने-अपने हाथ उठाने लगते। प्राचार्य जी के कुशल नेतृत्व ने इस आन्दोलन को प्रदेशव्यापी बना दिया था। गौहाटी से महासभा के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री चाँदमल जी सा. पाण्ड्या एवं संरक्षक श्री सेठ भागचन्द्र जी सोनी (अजमेर) भी जैन समाज का उत्साहवर्धन एव प्रशासन से बात करने के लिए वहाँ पहुँचे थे। इस आन्दोलन को भारी सफलता मिली। लोगों के जोश और उत्साह को देखते हुए लोग इसकी तुलना स्वतन्त्रता-आन्दोलन से करने लगे थे। इससे जैन मेला भूमि पर अनधिकृत कब्जा करने की एक उद्योगपति की चाल नाकाम हो गई। आज उस भूमि का मूल्य करोडो मे आँका जाता है।

सन् 2001 में प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री राजनाथसिंहजी की अध्यक्षता में भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक समारोह को मनाए जाने के लिए एक प्रदेशस्तरीय समिति का गठन महामहिम राज्यपाल की ओर से किया गया था। मनोनीत सदस्यों मे प्राचार्यजी का भी नाम था। लखनऊ-सचिवालय में उसकी प्रथम बैठक थी। एक माननीय सदस्य ने जैनो को अल्पसंख्यक मान्यता दिए जाने का मुद्दा बड़े ही प्रभावशाली ढग से उठाया, किन्तु पूरी सुने बिना ही श्री राजनाथसिह ने उन्हे बीच में रोककर कहा—'जब तक मैं मुख्यमन्त्री की कुर्सी पर हूँ, तब तक यह मान्यता नहीं दी जा सकती।' प्राचार्यजी को उनकी टोन अच्छी नहीं लगी। उन्होने कहा—'मुख्यमन्त्री महोदय! आपकी बात सुनकर बहुतों के दिलों को ठेस लगी है। राजनीति मे इतने ऊँचे पद पर बैठकर भी आपने ऐसी रूखी बात कही। राजनेता तो प्रायः किसी को गुड भले ही न दें, परन्तु गुड़-जैसी बात जरूर बोलते हैं। हमारी बात आपको सुनना भी पसन्द नहीं है।' मुख्यमन्त्री ने तुरन्त बात सँभालते हुए कहा कि नहीं, ऐसी बात नही है। हम तो जैन समाज को बडे आदर की दृष्टि से देखते हैं।' जबान से थोडा ऊँचे स्वर मे बोल जाते हैं, इसलिए आपको ऐसा लगा है। इस मुद्दे पर हम जैन समाज के प्रतिनिधियों को अलग से बुलाकर बात करेंगे।

प्राचार्यजी कोई बात कहे और उसका असर न हो, ऐसा प्रायः कम ही होता है। लखनऊ में जैन कला वीथिका का

जिस प्रकार एक नन्ही-सी ज्योति-किरण पूरे अंधकार को पी जाती है, उसी प्रकार अनादिकाल से बंधे हुए पाप-कर्म प्रभु-भक्ति के प्रताप से जीर्ण होकर झड़ जाते हैं। यही तो है भक्ति की अचिन्त्य महिमा।

उद्घाटन मुख्यमन्त्री सुश्री मायावती ने किया। सभा का संचालन करते हुए प्राचार्य जी ने इस प्रकरण पर ऐसी प्रभावशाली भूमिका बॉधी कि मायावती जी ने उसी मच से जैनो को अल्पसख्यक दर्जा दिए जाने की बात स्वीकार किए जाने की घोषणा कर दी। सभी ने प्राचार्य जी की वक्तृत्व कला का लोहा मान लिया।

3 मई, 2002 को प्रदेश सरकार की ओर से लखनऊ-स्थित 'रवीन्द्रालय' में भगवान महावीर के ज्ञान कल्याणक दिवस के उपलक्ष्य में एक सभा का आयोजन महामहिम श्री विष्णुकान्त शास्त्री (राज्यपाल महोदय) के मुख्य आतिथ्य में किया गया था। मुख्य वक्ता के रूप में प्राचार्य जी मंच पर उनके पार्श्व में ही बैठे थे। अपना नाम पुकारे जाने पर उन्होंने अपना उद्‌बोधन दिया। बोलकर जब वह अपनी सीट पर लौटे तो प्रदेश के प्रथम नागरिक ने अपनी सीट से खड़े होकर उनका अभिवादन किया तथा उनके द्वारा शाल उढाकर उनका अभिनन्दन भी किया गया। उनका सम्बोधन होता ही इतना हृदयग्राही है कि कोई उनसे प्रभावित हुए विना रह ही नही सकता।

समाज ने राजनीति के अनेक धुरंधरों की सभा में प्राचार्य जी को बोलने के लिए खड़ा किया है और हर बार और हर मंच पर उन्होंने अपनी एक अमिट छाप छोडी है। जिन मन्त्रियों की सभा में वह बोले हैं, उनमें से कुछ मुख्य नाम है—सर्वश्री लालकृष्ण अडवाणी, जार्ज फर्नाण्डीज, सुषमा स्वराज, निनीशकुमार, प्रणव मुखर्जी, आई डी. स्वामी, मुलायमसिंह यादव, मधु दण्डवते आदि।

महासभा और जैनगजट से वह सन् 1983 से जुडे हुए है। उनके द्वारा लिखे गए अग्रलेख पूरे समाज में उत्सुकता और उत्साह के साथ पढे जाते हैं। उनकी वाणी और लेखनी मे गजब का जादू है। उनके सम्पादक-पद पर रहते हुए 'जैन गजट' का महत्त्व काफी बढा है। प्राचार्यजी शतायु हो और इसी तरह अर्हिर्निश धर्म ओर समाज की सेवा करते रहें, यही हम सबकी भावना है।

—बाबूलाल जैन छावड़ा
(सयुक्त महामन्त्री श्री भा. दि. जैन महासभा)

□

दिल्ली के दो अविस्मरणीय प्रसंग

वाणी के जादू ने मोह लिया सबको

पहला प्रसंग है सन् 1986 का। प्राचार्य जी को पर्यूषण पर्व मे प्रवचनार्थ लाल मन्दिर जी की शास्त्र-सभा के लिए भाई चक्रेश जैन (अध्यक्ष) ने आमन्त्रित किया था। दिल्ली में यह उनका प्रथम शुभागमन था। लोग उनके नाम से तो परिचित थे, पर उन्हें कभी सुना नहीं था। प्रथम दिन वह उत्तम क्षमा पर बोले। श्रोता तो प्रसन्न थे, पर उपस्थिति देखकर प्राचार्य जी कुछ अनमने-से थे। उन्होंने पूछा भी—'क्या श्रोताओं की संख्या इतनी ही होती है यहाँ?' मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि आज पहला दिन है, कल से सब ठीक हो जाएगा। श्रोताओं ने आपके ओजस्वी वक्तव्य का ट्रेलर आज देख लिया है, कल से उनकी सख्या बढ़ेगी। हुआ भी ऐसा ही। दूसरे दिन से ही हॉल ठसाठस भरने लगा। उनके प्रवचन की सुगन्ध से आकर्षित होकर पंचायत के सभी पदाधिकारी एव सदस्यगण भी आने लगे। उनकी विद्वत्ता और प्रवचन-शैली का सिक्का दिल्ली में जम गया। यहाँ भी उनके प्रशंसकों की नई पंक्ति खड़ी हो गई। निःसन्देह उनकी वाणी मे सबको कीलित कर देने की शक्ति है।

जब मुख्यमन्त्री भी अभिभूत हो उठे

दूसरा प्रसंग सन् 1988 या 89 का है। महावीर जयन्ती महोत्सव में बहुत मनुहारों के साथ उन्हें मुख्य वक्ता के रूप

प्रतिक्रमण: संचित पापों से रीता कर लेता है तथा भक्तिरूप नौका पर सवार होकर संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

में आमन्त्रित किया गया था। चीफ गैस्ट थे दिल्ली के मुख्यमन्त्री माननीय श्री जगप्रवेशचन्द्र जी। नाम पुकारने पर प्राचार्य जी बोलने खड़े हुए। 'वर्तमान युग में भगवान महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता' विषय पर वह बोल रहे थे, धारावाहिक रूप से। मुझे लगा कि वह लम्बा बोल सकते हैं। मैंने भाषण को संक्षिप्त करने का संकेत एक चिट थमाकर किया। मुख्यमन्त्री की व्यस्तता बाधित न हो, यह सोचकर ही चिट थमाई गई थी, पर मुख्यमन्त्री तो उनका भाषण सुनने में मगन थे। उन्होंने कहलवाया कि मुख्य वक्ता को रोकिए मत, बोलने दीजिए। मुझे कोई जल्दी नहीं है। वह तो उनकी शैली से अभिभूत थे। प्राचार्य जी भी कालिज के एक पीरियड के बराबर अर्थात् चालीस मिनट बोले। जब वह मुख्यमन्त्री के पार्श्व में आकर बैठे तो उन्होंने उन्हें बधाई दी। श्रोताओ ने भी देर तक जोरदार करतल ध्वनि कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

अब बारी थी मुख्यमन्त्री महोदय के बोलने की। श्री जगप्रवेशचन्द्र जी ने भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा कि उनके सिद्धान्तो पर समसामयिक महत्त्व का इतना सुन्दर विवेचन इससे पूर्व मैने कभी नही सुना। इच्छा हो रही थी कि वह बोलते ही रहे और मे सुनता रहूँ। बहुत ही मार्मिक एव सारगर्भित थीं उनकी बाते। राजनीति के जंजाल में आकण्ठ फँसे हम जैसे लोगों को कहाँ मिल पाते है ऐसे सुखद क्षण। मैं अनुगृहीत हूँ महोत्सव समिति का, जिसके सौजन्य से मुझे भगवान महावीर की यथार्थ वाणी सुनने को मिली।

सचमुच ही प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन एक कुशल वक्ता है। उनकी वाणी मे जादू है। छोटे-छोटे किन्तु रुचिकर दृष्टान्तो के माध्यम से श्रोताओ की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने मे वह सिद्धहस्त है। उनकी सभाओ मे उमड़ती भीड उनकी वाणी की सम्मोहन-शक्ति की साक्षी है। श्रोतागण उनकी बाते ध्यानपूर्वक सुनते ही नही, दिल की गहराइयों मे उतार लेते है। उन्हें बार-बार सुनने की ललक हमेशा बनी रहती है।

वह सुखी और स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु प्राप्त करे, यही हमारी मगल कामना है।

—प्रताप जैन
(महामन्त्री, जागृत वीर समाज, दिल्ली)

□

एक प्रतिबिम्ब : यादों के आइने से

यह बात है सन् 1998 की। पद्मावतीपुरवाल जाति के अनेक विद्वानो को जन्म देने वाले जारखी गॉव (तहसील टूण्डला) के जैन मन्दिर से 34 मूर्तियों की चोरी और उसके विरोध मे चल रहे आन्दोलन का समाचार जब दिल्ली मे सुना गया तो आन्दोलनकारियों के साथ अपनी एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए पंचायत के अध्यक्ष (तत्कालीन) के नाते हमने भाई प्रताप जैन और सतीश जैन (गुड्डू भाई) के साथ टूण्डला पहुँचने का कार्यक्रम बनाया।

जब हम टूण्डला पहुँचे, तब अनशन-कैम्प पर फीरोजाबाद के एस पी (श्रीपाद शिरोडकर) महोदय भी आए हुए थे। प्राचार्यजी उनसे मॉग कर रहे थे कि पूरी शक्ति लगाकार यथाशीघ्र मूर्तियाँ बरामद कराएँ। देव-मूर्तियाँ न मिलने से समाज में उत्तेजना बढती जा रही है। यह सुनकर एस.पी. साहब ने पुलिसिया अन्दाज में प्राचार्य जी से पूछा—'चोरी की इस घटना में यदि जैन समाज का ही कोई व्यक्ति लिप्त हो और हम उस पर हाथ डालें तो हंगामा तो खडा नहीं करेंगे?' प्राचार्यजी ने भी कड़े तेवर अपनाते हुए बिना एक क्षण सोचे जवाब दिया—'एस. पी सा.! चोरो की कोई जाति नही होती। हमें तो अपनी मूर्तियॉ चाहिए। यदि आपके पास किसी जैन के विरुद्ध कोई पुख्ता प्रमाण है तो देरी मत कीजिए। उसे पकड़िए,

जिस प्रकार पाषाण-निर्मित मूर्ति में हम जिनेन्द्र प्रभु की कल्पना करते है, उसी प्रकार वर्तमान मुनियों में चतुर्थकालीन साधुओं की कल्पना कर, हमें उनकी पूजा करनी चाहिए।

हम आपके साथ सहयोग करेंगे। हाँ, यह जरूर है कि जैन समाज को भ्रमित करने के लिए बिना सबूत यदि किसी का उत्पीडन किया गया तो यह आन्दोलन और तेज हो जाएगा और उसके लिए पुलिस-प्रशासन जिम्मेदार होगा।' प्राचार्य के तेवर देख उस पुलिस-अधिकारी की बोलती बन्द थी। इस बार एक मँजे हुए और धाकड नेता से उनका पाला पड़ा था।

यह प्राचार्य जी का कुशल नेतृत्व ही था कि आन्दोलन बहुत लम्बा चला और उसमें कोई टूटन नहीं आ सकी। बाद में अधिकांश मूर्तियाँ भी मिल गई और लोगों ने राहत की साँस ली।

प्राचार्यजी के दमखम पर समाज को हमेशा ही पक्का भरोसा रहता है। आप एक प्रशसनीय विद्वान् तो हैं ही, एक अच्छे 'फील्ड-वर्कर' भी हैं। भावना है कि वे चिरायु हो।

—रमेशचन्द्र जैन कागजी, दिल्ली

□

यात्रा से जुड़ी कुछ यादें

हमे यह कहने में बडे गौरव का अनुभव होता है कि हम श्रद्धेय प्राचार्य जी के दामाद है। 19 फरवरी 1979 को अपनी बडी बेटी प्रतिभा का हाथ हमारे हाथों मे सौंपते हुए उन्होने जो उद्बोधन दिया था, वह हमे आज भी याद है। उन्होंने कहा था—'जब बेटी का जन्म हुआ था, तब घर मे गाजे-बाजो की आवाज सुनाई नही दी थी, किन्तु बेटी की विदाई के अवसर पर आज घर में कितनी चहल-पहल और धूमधाम है। ऐसा उछाह तो बेटे के जन्म पर भी देखने में नहीं आता।' उनके ये शब्द साक्षी है इस बात के कि हमारे बाबूजी ने बेटा और बेटी के लालन-पालन मे कभी कोई अन्तर नही किया।

महासभा के मुखपत्र 'जैनगजट' मे उन्हे अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किए जाने का समाचार पढकर मेरे मन मे भी उनके सम्बन्ध मे कुछ लिखने की प्रेरणा जागृत हुई। मुझे लिखने का अभ्यास तो नही है, फिर भी मन की खुशियॉं कागज पर उतरना चाहती है।

जब बाबूजी ने हमें बना दिया डी.एस.पी.

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व हमने बाबूजी के साथ प्रथम बार बुन्देलखण्ड के जैन तीर्थों की यात्रा जीप से की। यात्रा दस दिन की थी। एक दिन की बात है कि हमारी जीप मऊरानीपुर से खजुराहो की ओर बढ़ रही थी। बीच में वन विभाग की एक चौकी पर बैरियर डालकर जीप रोक दी गई। बाबूजी गाडी से बाहर आए और हमारी ओर इशारा करके चौकी-कर्मचारी से पूछने लगे—'डी.एस.पी साहब की गाड़ी क्यों रोकी है?' कर्मचारी सकपका गया और उसने हम पर एक निगाह डालकर अनजाने में हुई भूल के लिए क्षमा माँगते हुए बैरियर को ऊँचा करा दिया। हमारी जीप खजुराहो की ओर तेजी से बढ़ चली। रास्ते भर हँसते-हँसते सबके पेट मे बल पड़ गए। शेष यात्रा में भी सभी हमें डी.एस.पी कहकर बाबूजी के विनोद का मजा लेते रहे।

बच्चों के साथ बच्चे : बड़ों के साथ बड़े

इसी यात्रा में एक दिन गाडी किसी गॉव से गुजर रही थी। एक बाग मे कुछ लड़कियाँ झूल रही थीं। पेड़ की टहनियों पर तीन-चार झूले पडे हुए थे। हमारी लडकी शालू, जो उस समय सात-आठ वर्ष की थी, झूलने के लिए मचलने लगी। बाबूजी ने गाड़ी रुकवाई और वह लडकियों के साथ एक झूला पर बैठकर झूलने लगी। पन्द्रह मिनट हुए, बीस मिनट हुए, आधा घण्टा हो गया। बार-बार कहने पर भी शालू झूले से उतर ही नहीं रही थी। बाबूजी ने बादलों की ओर इशारा करते

हुए उससे कहा कि भयंकर बारिश होने वाली है। वर्षा शुरू हो गई तो कच्चे रास्तो में कीचड़-ही-कीचड़ हो जाएगी और सबको रात यही भींगते हुए काटनी पड़ेगी, इसलिए अब झूला छोड़कर गाड़ी में बैठ जाओ। जब इस चेतावनी का भी उस पर कोई असर नहीं हुआ तो बाबूजी हम सबसे बोले—'चलो, सभी गाड़ी में बैठो। इसे यहीं रहने दो। चार दिन बाद लौटेंगे तो इसे ले लेंगे।' गाँव की लड़कियों से कहा कि इसका ख्याल रखना। भूख लगे तो रोटी खिला देना। यह सुना तो शालू झटके से झूले से उतर पड़ी। हमने देखा कि वह बाबूजी की गोद में चली आ रही है। बाबूजी की चतुराई पर हम सब हँसते रहे। उनकी यही तो विशेषता है कि वह बच्चों में बच्चे बन जाते हैं।

दक्षिण के तीर्थों की यात्रा

सन् 1983 मे उनके साथ हमे दक्षिण भारत के तीर्थो की यात्रा करने का भी अवसर मिला। जिस तीर्थ पर भी हम पहुँचे, वहाँ हमारे ठहरने की बढिया व्यवस्था पहले से ही थी। बाबूजी हमेशा योजनानुसार पत्राचारपूर्वक ही यात्रा करते हैं, इसलिए कहीं कोई अड़चन नहीं आती। श्रवणबेलगोल मे हमने उन्हें दूरदर्शन पर महामस्तकाभिषेक की रनिंग कमेंट्री करते हुए भी सुना और देखा। हम उन क्षणों को कभी नही भूल सकते।

इसी यात्रा-क्रम में हमने सौराष्ट्र के तीर्थो की भी वन्दना की। प्राकृतिक सुषमा के भण्डार दीव द्वीप भी गए। समुद्र के किनारे उठती उत्ताल तरगों में खूब चले-फिरे और भींगते हुए लहरो का आनन्द लिया। प्रतिभा को पानी मे चलने से डर लगता था, इसलिए वह सागर-तीरे बैच पर बैठी-बैठी दूर से ही लहरों को निहारती रही। बाबूजी ने कहा कि यह लड़की जब अगले जन्म में मछली बनेगी, तब इसके मन से पानी का भय निकल जाएगा। इस पर सभी खूब हँसे।

बाबूजी की विनोदप्रियता बेमिसाल है। सच तो यह है कि उनके साथ यात्रा करते हुए समय के पख उग आते हैं। पता ही नहीं चला कि सवा महीने का समय कैसे बीत गया।

बाबूजी सदा स्वस्थ रहें और उनका आशीर्वाद हम पर हमेशा बना रहे, हमारी तो भगवान मुनिसुव्रतनाथ से यही प्रार्थना है।

—सुधीरकुमार जैन, बाँदा (उत्तरप्रदेश)

□

बड़े बाबूजी : हमारे मार्गदर्शक

श्रद्धेय प्राचार्यजी हमारे बड़े बहनोई हैं। सन् 1952 में हमारी बडी बहन राजेश्वरी जैन के साथ जबसे उनका रिश्ता जुड़ा है, तबसे ही वह हमारे परिवार के अभिन्न अंग बन चुके हैं। हमारे पूज्य माता-पिता भी उनसे परामर्श किए बिना कोई कार्य नहीं करते थे। मैं तो उस समय मात्र दस वर्ष का एक व्यावहारिक ज्ञान से शून्य बालक ही था। उन्होंने ही हमारी उँगली पकड़कर और अपने स्नेह का सम्बल देकर हमें समाज में सम्यक् प्रकारेण रहना, उठना-बैठना और चलना सिखाया है। हमारे सभी भाई-बहिन जीजा के रूप में उन सरीखे सौम्य और शालीन व्यक्तित्व को पाकर स्वयं को कृतार्थ अनुभव करते हैं। हमारे जीजाजी का जलवा आज सारे देश में व्याप्त है। इससे ज्यादा गर्व की बात हमारे लिए और क्या हो सकती है?

वह गम्भीर हैं और विनोदी भी। वह जब भी हमारे यहाँ (ससुराल में) आते हैं तो पूरे घर में हास्य की फुहारें छूटने लगती हैं। उनके साथ में रहते हुए कभी कोई बोर तो हो ही नहीं सकता। किसी कठिन समय में उनकी सलाह हमारे लिए सर्वोपरि होती है। उसके अनुसार चलना हम सबके लिए लाभ का सौदा सिद्ध हुआ है।

इसी वर्ष मार्च के द्वितीय सप्ताह में हमें उनके साथ प्रथम बार विमान से गुवाहाटी (आसाम) की यात्रा का सौभाग्य

जब अनेक जन्मों के पुण्य शोक में उछाल लेते हैं, तब कोई मुनित्व को अंगीकार करता है। भव-भव की बेड़ियाँ काटने में यही पद समर्थ है। इसलिए मुनिचरणों में बहुमान होना मानव जीवन की चरम सार्थकता है।

मिला। वहाँ दस दिवसीय इन्द्रध्वज महामण्डल विधान का आयोजन था। पूजा में सम्मिलित होकर एक ओर तो हमने भक्ति-भागीरथी में स्नान किया तो दूसरी ओर प्राचार्य जी की ज्ञान-सरिता में भी अवगाहन करने का अवसर मिला। उन्होने सभा में दो बार बोलने का अवसर भी हमें दिया। छोटों को प्रोत्साहित करने की कला तो कोई उनसे सीखे! हम एक नई स्फूर्ति लेकर वहाँ से लौटे।

सन् 1981 में हमारे पूज्य पिताजी का तथा सन् 1991 में ममतापूर्ण माताजी का निधन हो गया। अब तो जीजाजी ही हमारे अभिभावक हैं। उनसे सदैव उचित मार्गदर्शन मिलता रहे, इस भावना के साथ अपने पूरे परिवार की ओर से हम उन्हें सविनय प्रणाम करते हैं।

—कुसुमकुमार जैन, एटा (उ प्र.)

□

श्री दिवाकरजी का आशीर्वाद : नरेन्द्रजी! तुम उगते सूर्य हो

बात सन् 1992 की है। बहुश्रुत नरेन्द्रप्रकाश जी एवं यशस्वी महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी नागपुर में आयोजित पंचकल्याणक महोत्सव मे आए हुए थे। अपने समय के शीर्षस्थ विद्वान् श्रीमान् पण्डित सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर सिवनी में अस्वस्थ चल रहे थे। हम सबका मन बना कि चलकर उनसे मिला जाए। उनका सान्निध्य पाकर हमें और हम सबको अपने बीच मे पाकर उन्हे प्रसन्नता होगी।

दूसरे दिन प्रातः एक मारुति बैन (टैक्सी) से हम लोग सिवनी के लिए रवाना हुए। सड़क सँकरी थी। सिवनी 20-25 किलोमीटर ही रह गया होगा कि अचानक एक खड़े ट्रक से बचने के लिए ड्राइवर ने गाडी को धीमे से बाएँ किनारे से निकालना चाहा कि मारुति ने पलटी खाई और उसके चक्के ऊपर की ओर हो गए। हम सब लोग घबरा गए और णमोकार मन्त्र पढने लगे। कुछ गॉव वाले आ गए। उन्होंने बैन के शीशे तोडकर खिडकी से हम सबको बाहर निकाला। मजे की बात यह रही कि हममे से किसी को चोट नही आई। बाद में एक ट्रक से हम सिवनी गए और पण्डितजी के स्वास्थ्य-लाभ की शुभ कामना व्यक्त की। दुर्घटना और उसमे हम सबके सकुशल रहने की बात सुनकर उनके परिवार ने राहतभरी खुशी व्यक्त की।

श्रद्धेय दिवाकरजी से देर तक धर्म-चर्चा भी हुई। उन्होने प्राचार्य जी के लेखन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उन्हे बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए। उन्होने इन्दौर का एक प्रसग सुनाया कि वहाँ चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी का शताब्दी-समारोह मनाया गया था, जिसमें समाज के आमन्त्रण पर पण्डितजी और प्राचार्यजी दोनों ही उपस्थित थे। प्राचार्यजी बहुत अच्छा बोले और उन्होंने अपने प्रथम भाषण मे ही इन्दौरवासियों का दिल जीत लिया। श्रद्धेय पण्डितजी भी बहुत प्रसन्न थे। बोले—'चारित्र-चक्रवर्ती' ग्रन्थ लिखा तो हमने है, पर लगता है पढ़ा आपने है।' प्राचार्यजी ने जब यह कहा कि यह ग्रन्थ अब तक मैं सात-आठ बार पढ़ चुका हूँ तो पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए। बड़े ही प्रसन्न मन से यह प्रसग सुनाकर दिवाकरजी ने बताया कि उस समय हमारे मुख से निकला—'हम तो अब अस्तंगत सूर्य हैं और नरेन्द्रजी! तुम उगते सूर्य हो। संसार में पूजा उगते सूर्य की ही होती है।'

स्व. दिवाकरजी का यह कथन प्राचार्य जी के लिए जीवन का सबसे बड़ा प्रमाणपत्र है। सेठीजी भी उनके मुख से प्रशंसा सुनकर बेहद खुश हुए। हँसी-खुशी के वातावरण में हम लोग यह भूल ही गए कि अभी कुछ देर पहले ही हमारे साथ एक बड़ी दुर्घटना हुई थी। आज भी जब यह घटना याद आती है तो हमें रोमांच और हर्ष की मिली-जुली अनुभूति होती है।

—श्रीकान्त चवरे, कारंजा (महाराष्ट्र)

□

भगवान की भक्ति से मिथ्यात्व-तिमिर का नाश और आत्म-रवि का उदय होता ही है।

सदा रहे बेदाग चदरिया

तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी में तीस चौवीसी मन्दिर के पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर एक बड़ी दुर्घटना हो गई। बिजली के शार्ट-सर्किट से लगी आग इतनी भयकर थी कि देखते-ही-देखते पूरा पण्डाल राख की ढेरी में तब्दील हो गया। कई स्त्री-पुरुष बुरी तरह झुलस गए। गनीमत यह थी कि उस समय पण्डाल में कोई कार्यक्रम नहीं चल रहा था। यदि आधे घण्टे बाद यह अग्निकाण्ड होता तो यह जैन इतिहास की सबसे बड़ी दुर्घटना होती। इस घटना से कार्यकत्ताओं के उत्साह पर पाला पड गया। सभी लोग मायूस और किकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। समझ मे नही आ रहा था कि आगे क्या हो? अभी तीन कल्याणक शेष थे। इस विषम स्थिति पर विचारार्थ एक मीटिंग मध्यलोक मन्दिर मे बुलाई गई। उस समय प्राचार्यजी ने जो प्रभावपूर्ण उद्बोधन दिया, उसे सुनकर कार्यकत्ताओं के बुझे दिलो मे रोशनी की एक किरण-सी चमक उठी। निराशा के बादल छँटने लगे। उन्होने कहा था, कि भगवान पार्श्वनाथ पर कितना उपसर्ग हुआ, किन्तु वे विचलित नही हुए। हम भी उन्हीं के वंशज हैं। किसी को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। पण्डाल ही तो जला है, भगवान तो सभी सुरक्षित है। क्या यह किसी चमत्कार से कम है? यह हॉल, जहाँ हम लोग बैठे हैं, इतना बड़ा है कि इसमे सभी शेष कार्यक्रम गरिमा के साथ पूरे हो सकते है। प्राचार्यजी का मार्मिक उद्बोधन सुनकर सभी लोगो ने अपने भीतर एक नई ताकत का अनुभव किया। शेष सभी कार्यक्रम बहुत ही उत्साह से और विधिपूर्वक सम्पन्न हुए। अगले दिन से तो लोग यह भूल ही गए कि यहाँ कोई बड़ी दुर्घटना हुई थी। यह सब प्राचार्यजी के उद्बोधन का ही कमाल था कि सभी के हृदय उद्वेलित हो उठे और यह ऐतिहासिक अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पन्न हो सका।

मै तो सन् 1981-82 से ही प्राचार्यजी का मुरीद हूँ। उनकी वाणी और लेखनी दोनो से ही प्रभावित हूँ। जब भी मौका मिलता है, उन्हें सुनने और पढ़ने का लोभ सवरण नहीं कर पाता। दो वर्ष पूर्व बैंगलोर मे पर्यूषण पर्व पर अपने प्रवचनों से धूम मचाकर वह चेन्नई भी पधारे थे और वहाँ उनके आतिथ्य का सौभाग्य हमारे परिवार को ही मिला था। आज भी सभी परिवारजन उनकी मिलनसारिता और मृदुवाणी का स्मरण कर उत्फुल्ल हो उठते हैं। उनके प्रति यही कामना है कि–

सदा रहे बेदाग चदरिया, उम्र रहे सरनाम
ईश्वर करे कि इस जीवन की, कभी न होवे शाम।

–पदमचन्द्र धाकडा, चैन्नई
(केन्द्रीय उपाध्यक्ष–धर्म सरंक्षिणी महासभा)

□

जैन संस्कृति के अग्रदूत

मानव जीवन में सादगी, सरलता, विनम्रता, धर्मनिष्ठा, उदारता, आत्मीयता, संस्कारशीलता आदि सभी गुण यदि एक ही व्यक्तित्व में देखना हो तो ये सभी गुण प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन मे देखे जा सकते हैं। वह अनेक संस्थाओं के साथ सक्रिय रूप से जुड़कर समाज सेवा की मशाल को थामते आ रहे है। गुलाब के फूल की सुगन्ध की तरह उनकी कीर्ति की सुगन्ध भी सर्वत्र फैली हुई है।

प्राचार्यजी से मेरा सम्पर्क कई वर्षो से रहा है। वह मेरे हितैषी एवं मार्गदर्शक हैं। अहंकार का लवलेश भी उनके भीतर नहीं है। विद्वानों की प्राचीनतम प्रतिनिधि संस्था शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष के रूप मे उन्होंने सदैव यह कोशिश की है कि

जब तक मुनि-संस्था फलती-फूलती रहेगी, तब तक धर्म की जड़ हरी रहेगी। मुनि-संस्था के इस उपकार का विस्मरण हमें कभी नहीं करना चाहिए।

समाज में संगठन और एकता बनी रहे। अनेक धार्मिक एवं सामाजिक विवादों का सर्वमान्य हल निकालने में उन्हें सफलता मिलती रही है। अपनी निष्पक्षता से सभी पक्षों को प्रभावित करने की उनकी दक्षता प्रशसनीय है।

वह सुधारक और क्रान्तिकारी हैं, परन्तु अतिवादी नहीं हैं। उन्होंने शिथिलाचार का कभी समर्थन नहीं किया। निहित स्वार्थ में लिप्त कुछ लोगों ने उन पर मुकदमे भी चलाए, पर उनकी तर्कपूर्ण विवेचना का कोई काट न होने से वे बाद मे चुप्पी साधकर बैठ गए और इस तरह अदम पैरवी मे सभी मुकदमे खारिज होते गए। वह कभी-कभी चुभती बात तो लिखते हैं, किन्तु कभी किसी के व्यक्तित्व पर छींटाकशी या चरित्र-हनन नहीं करते। वह तो केवल बुराई पर चोट करते हैं, बुरे व्यक्ति या दोषी पर नहीं।

मॉ जिनवाणी की सेवा और पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका योगदान चिरस्मरणीय है। वह एक समर्पित साहित्य-सेवक, स्वतन्त्र चिन्तक एवं मनस्वी पण्डित हैं। वह लीक से हटकर लिखते और बोलते हैं, इसीलिए सभी लोग उन्हें सुनने और पढ़ने के लिए सदैव उत्सुक रहते है। वह मृदुभाषी एव शील-सौजन्य की प्रतिमूर्ति हैं। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को इस छोटे-से लेख मे समेट पाना सम्भव नही है।

उनका राष्ट्रीय स्तर पर अभिनन्दन किया जाना इस कहावत को झुठला रहा है कि 'गुण न हिरानो, गुणगाहक हिरानो हे'। पश्चिम बगाल महासभा और कोलकाता के दिगम्बर जैन समाज ने अपनी गुणग्राहकता की जो मिसाल कायम की है, उसे देखकर भविष्य मे सभी को यह प्रेरणा मिलती रहेगी–

'गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।'

–सुरेशचन्द्र जैन बारोलिया, आगरा।

□

पंच प्रसून

नर-श्रेष्ठ सदा ही विकास करे।
नर-इन्द्र हमेशा प्रकाश करें॥

मधु मन्द हँसे धर धीरज ध्यान।
सदा रखते जिनधर्म का मान॥

इनकी वाणी से झरता अमृत।
सम्पूर्ण समाज हुआ उपकृत॥

हो जैन जगत् के ज्योति-पुंज।
अद्भुत निस्पृह स्नेह-निकुज॥

आशीष देत हैं सब आचार्य।
ये 'जैन-गजट' के हैं प्राचार्य॥

–आजत जैन 'जलज'

□

यदि मुनि मोही है तो वह नरकादि कुगति में जायेगा। मुनि का मोहवान् होना महापाप है। वह पाप वज्रलेप होता है।

पण्डित श्री प्राचार्य नरेन्द्र

प्रिय सुहाग नगरी के वासी,
श्री नरेन्द्र पण्डित प्राचार्य।
हैं प्रकाश के पुंज, मनीषी,
पूर्ण लगन से करते कार्य॥

विज्ञ, विवेकी, विद्वज्जन-प्रिय,
गुणग्राही, साधक, विद्वान्।
निडर और निर्भीक प्रवक्ता,
सफल समालोचक, गुणवान॥

लेखक सत् साहित्य सृजक है,
दृढ़ श्रद्धानी, निष्ठावान।
श्रोता-प्रिय, ओजस्वी वक्ता,
हित-मित भाषी, विद्यावान॥

प्रवचन शैली महा मनोहर,
मर्यादित आगम अनुसार।
परम भक्त हैं सद् गुरुओं के,
किन्तु विरोधी शिथिलाचार॥

ख्याति प्राप्त श्री 'जैन गजट' के,
सम्पादक सद्गुण भण्डार।
चिन्तन मनन विचारक अद्भुत,
सादा-जीवन उच्च विचार॥

सदा अध्ययन अध्यापन-रत,
श्रुत अभ्यासी, परम उदार।
करुणा, दयावान, उपकारक,
महा यशस्वी स्नेहागार॥

है अध्यक्ष शास्त्रि परिषद् के,
विद्वानो का सघ विशाल।
जगह-जगह सम्मान प्राप्त कर,
किया देश का उन्नत भाल॥

रूढ़ि, अन्ध विश्वास विरोधी
क्रियाकाण्ड से कोसो दूर।
सत्य अहिंसा, मय जीवन है,
सन्तोषी, विनयी, भरपूर॥

शान्त स्वभावी, सेवा भावी,
सहृदयी, भावुक, अतिधीर।
पुरा सम्पदा, संरक्षण प्रति,
सावधान अरु अति गम्भीर॥

विद्वत्ता का यह अभिनन्दन,
सेवा का समुचित सत्कार।
जीवन मे खुशियाँ भर देवे,
यह 'अनूप' सुन्दर उपहार ॥

—अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ, जयपुर

□

विनम्र विनयाञ्जलि

उत्तर प्रदेश की धरती को,
करते हम शत-शत प्रणाम।
उपजाया जिसने दिव्य दूत,
शशि शरद पूर्णिमा के समान।
गौरवशाली बन गया ग्राम...
'जटौआ' पाकर नव-प्रकाश
चमेली माँ की पूर्ण हो गई आश॥
अद्भुत विद्वत्ता के प्रतीक
मधुर स्मृतियाँ, सामाजिक आन्दोलन,
आचार्य विमल-विद्यानन्दजी का
व्यक्तित्व एव कृतित्व सम्मोहन॥
चिन्तन-प्रवाह, जैन पर्व अनुशीलन,
समय के शिलालेख एवं अनेकानेक आलेख
ऐसे विद्वत् वर को हम,
अपनी विनयांजलि अर्पित करते हैं,
दीर्घायु हों दीर्घायु
इस अभिनन्दन अलंकरण में
हम भावाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—शिखरचन्द जैन, साहित्यरत्न, रीठी

साधुओं को देखकर जिसके अन्तस् में हर्षोल्लास की उर्मियाँ नहीं उठतीं, उसका कल्याण अभी दूर है, यही कहा जा सकता है।

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन : अष्टक

उत्तम कुल में जन्म ले,
किया उजागर धर्म।
अध्यापन स्वीकार कर,
समझा जीवन मर्म ॥1॥

अभिरुचि सेवा की जगी,
किये बहुत उपकार।
सफल किया सुकुमार मति,
बच्चों का संसार ॥2॥

सामाजिक सत्कर्म का,
उपजा मार्दव भाव,
सन्तो के सत्संग से
पाया स्निग्ध स्वभाव ॥3॥

षट् आवश्यक पालकर,
सबल किये संस्कार।
व्यसन-वासना से रहित,
उपजे शुद्ध विचार ॥4॥

गुरु चरणों में बैठ कर,
पाया आतम-ज्ञान।
आज अन्ततः बन गये,
मूर्धन्य विद्वान् ॥5॥

सम्पादक बन गजट का,
अतिशय किया प्रचार।
निर्भय लेखक की तरह,
प्रस्तुत किये विचार ॥6॥

आर्ष धर्म की आपने,
चिन्ता करी तमाम।
विश्ववद्य मुनिवृंद को,
दिया उचित सम्मान ॥7॥

आज आपके काम का,
करते सब सत्कार।
अभिनन्दन के ब्याज से,
होता जय-जयकार ॥8॥

— डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, अलीगढ

□

सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन हैं..........।

सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।
उनकी कीर्ति-कौमुदी फैली, चारों दिशि, धरती आकाश॥

यह संसार एक उपवन है, जिसमे खिलते सुमन अनेक।
किसको छोटा-बडा कहें हम, रखता है महत्व प्रत्येक॥
खुद महकें, महकायें पर को, वे तो होते है अनमोल।
कवि-कल्पना नहीं कर पाती, ऐसे प्रिय पुष्पों का मोल॥
ऐसे सुरभित श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।
उनकी कीर्ति-कौमुदी फैली, चारों दिश धरती आकाश॥

देह इकहरी, गोरी-न्यारी, सुन्दर मुख-मडल ज्यों इन्दु।
शत-शत आभा बढ़ जाती थी, जब रखते ललाट पर बिन्दु॥
नर होकर भी ऐसा सुन्दर, जैसे दिवि से आया इन्द्र।
यही जानकर माता-पिता ने, नामांकन कर दिया नरेन्द्र॥
दोज चन्द्र सम बालक ने बढ़, फैलाया चहुँ ओर प्रकाश।
सुन्दर सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

अंतिम दिन, सन् तेतिस को, यह स्वर्णिम सौभाग्य मिला।
जिला आगरा, ग्राम-जटौआ, मे यह सुन्दर सुमन खिला॥
धन्य चमेली बाई माता, करती सद् गृहणी का कार्य।
विद्वद्वर श्रीरामस्वरूपजी, थे प्रख्यात प्रतिष्ठाचार्य
माता-पिता आप दोनो से, पाया बालक सुमन विकास।
सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

जैसे एक बीज के भीतर, गर्भित रहता वृक्ष विशाल।
वैसे नन्हे से बालम मे, सम्भावित प्रतिभा का जाल॥
माली अगर योग्य मिल जाये, हो जाता है बीज निहाल।
राम-चमेली की छाया में, बालक बना कीमती लाल॥
बचपन मे ही पाये उसने, पुरस्कार पच्चीस-पचास।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

मानव जीवन पाकर सच्चा श्रावक बनने में ही इस पर्याय की सार्थकता है।

इण्टर करके त्रेपन में, शिक्षकीय दायित्व लिया।
पढ़ते और पढ़ाते संग में, बी ए. एम ए पास किया॥
प्राप्त प्रशिक्षण किया एल.टी., रहे समर्पित सभी प्रकार।
विद्या-विनय-विवेक सभी ने, खोले सदा प्रगति के द्वार॥
भाग्य विधाता अन्य न कोई, वह है जिन का अथक प्रयास।
सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

वक्ता कुशल, प्रभावक वाणी, प्रामाणिक आगम का ज्ञान।
सुन्दर शब्द चयन, जनभाषा, भर देती प्रवचन मे प्राण।
कठिन विषय को सरल बनाकर, कह देते है मिश्री घोल।
ऊब नही आती श्रोता को, घण्टो सुनते वचन अमोल।
हास्य-व्यग्य के मधुमय छीटे, बीच-बीच मे विना प्रयास।
सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन् है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।

गुण के द्वारा ग्रथित सुमन ही, कण्ठाहार बन पाते हैं।
बिखर-बिखर जाते हैं निर्गुण, पद रज मे मिल जाते है॥
अथवा रह कर सदा उपेक्षित, असमय मुरझा जाते है।
शिक्षक से प्राचार्य मनुज बस, गुण द्वारा बन पाते हैं॥
गुण के साथ बँधी जो रहती, वह पतग छूती आकाश।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश।

भूमि विवाद जैन मेले का, स्वय किया नेतृत्व सफल।
जवरदस्त आन्दोलन छेड़ा, शासन भी हो गया विकल॥
ढाई शतक स्त्री-पुरुषो ने, दी गिरफ्तारी जान पै खेल।
धन्यवाद प्राचार्य श्री को, हँस-हँसकर जाते थे जेल॥
मिली सफलता जैनधर्म को, सतत आपका अथक प्रयास
सुन्दर-सुरभित श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।

श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी, कृत सम्पादित ग्रन्थ अनेक।
सम्भव नहीं यहाँ कर पाना, नामोल्लेख ग्रन्थ प्रत्येक॥
तीस ट्रेक्ट्स या लघु पुस्तके, बहुतेरे अभिनन्दन ग्रन्थ।
चन्द्रप्रभ वैभव, प्रेरणा, मक्खनजी का स्मृति ग्रन्थ॥
छोटे एक झरोखे मे से, पा जाते बुधजन आभास।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठता, चिन्तन-सह स्वातत्र्य विचार।
सदाचार-सारल्य-सत्यता, सत्सगति निश्छल व्यवहार॥
एकाकार जहाँ हो जाते, जीवन-धारा में अनुकूल।
दृढ इच्छा शुभ आशंसा हो, कोई नहीं रहता प्रतिकूल॥
पथ के पर्वत हट जाते हैं, देते बढने को अवकाश।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।

श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी व्यक्ति एक है, रूप अनेक
उत्तम शिक्षक, कुशल प्रशासक, संचालक उद्घोषक नेक
निस्पृह-त्यागी, गुण-अनुरागी, लोकप्रिय नेता, मतिमान।
शिक्षा-सस्कृति, क्रीडा गतिविधि रहे सदा सबमे गतिमान।
जहाँ सभा मे हुए उपस्थित, बिखर गया सुरभित मधुमास।
सुन्दर सुरभित श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश।

फिरोजाबाद नगरी सुहाग की, नरेन्द्रप्रकाश भरा सिन्दूर।
गुणवन्तो को कोई मजिल, कभी नहीं रहती है दूर॥
विद्वत्ता-वाग्मिता-मनीषा, के प्राचार्य उत्कृष्ट धनी।
सदाचार, चारित्रिक दृढता, उनका जीवन-अग बनी॥
इसीलिए तो फैल रही है, चतुर दिशा मे कीर्ति-सुवास।
सुन्दर सुरभित-श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

सच्चे सेवक जिनवाणी के, सेवा करी विविध आयाम।
शोधालेखन-भाषण-प्रवचन, संचालन-सगोष्ठी काम॥
मौलिक लेख लिखे बहुतेरे, उद्बोधन अध्यक्ष दिये।
पर्वो और समारोहों पर, व्याख्यान मन-मुग्ध किए॥
सागर की लहरे गिनने की, क्षमता होगी किसके पास।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

अनेक पत्र-पत्रिकाओ का, सम्पादन करते निर्दोष।
विपुल-विविध सामग्री पढ़कर, पाठक पाते मन सन्तोष॥
'पद्मावती-सन्देश' 'जैन सस्कृति', 'जैन गजट', साप्ताहिक पत्र
'अर्हत्वचन', कुशल निर्देशन, और सन्तुलित ही सर्वत्र।
जैन गजट की ग्राहक संख्या, करती रही सदैव विकास,
सुन्दर-सुरभित श्रेष्ठ सुमन हैं, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

व्रतियों की समस्त क्रियायें संवेग और वैराग्य के लिए होती है। लौकिक यश, या विभूतियों का मिल जाना धर्म की कसौटी कथमपि नहीं है।

गोम्मटेश श्री बाहुबली की, दक्षिण अद्भुत प्रतिमा है।
तपस्त्याग-वैराग्यभाव की, प्रकटाती अति महिमा है॥
द्वादश वर्षो में होता है, प्रतिमाजी मस्तक अभिषेक।
पुण्यार्जन करते नर-नारी, दिव्य-अलौकिक उत्सव देख॥
मनहर रनिग कामेंट्री की है, नीरज और नरेन्द्रप्रकाश।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

वर्णी वाग्देवी, श्रमणभारती, श्रुतसवर्द्धन, श्री वृषभेश।
विद्यासागर रजत दीक्षोत्सव, पुरस्कार श्रीमठ गोम्मटेश॥
वाणीभूषण-विद्यावाचस्पति, समाजविभूषण-सिद्धान्तरत्न
व्याख्यानवाचस्पति, व्याख्यानकेसरी, मिली उपाधियाँ विद्वन्रत्न
लेकिन इस निस्पृह व्यक्ति ने, दिया महत्व न इनको खास।
सुन्दर सुरभित-श्रेष्ठ सुमन हैं श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

अर्द्ध शतक वर्षो से जिसने, अलख जगाया जला मसाल।
जिनवाणी माँ के चरणो में, झुका सम्मुन्नत जिसका भाल॥
जैनधर्म-संस्कृति-समाज का, रहा उन्नयन जिसका काम।
आर्षमार्ग विद्वत्समाज मे, अग्रगण्य है जिसका नाम॥
श्रावक-साधु दोनो का ही, जिसको प्राप्त रहा विश्वास।
सुन्दर सुरभित-श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

इनके मनमें विज्ञजनों प्रति, रहता है श्रद्धा का भाव।
समवयस्क सन्मित्रो के सँग, रखते है हार्दिक सद्भाव॥
जो होते हैं वय मे छोटे, उनको मन का द्वार खुला।
सादा जीवन-सरल आचरण, रखते सबसे हृदय मिला॥
ओठों पर है सदा खेलता, अन्तस् का हँसता मधुभास।
सुन्दर-सुरभित-श्रेष्ठ सुनम है, श्रीप्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

लिखना-लखना, वाचन-पाचन, दोनो मे अत्यन्त प्रवीण।
उत्तम वक्ता, उत्तम लेखक, मौलिकता अभिव्यक्ति नवीन॥
प्रतिभा प्रखर, व्यक्तित्व प्रभावक, समीचीन कृतित्व धनी।
जैन जगत्-साहित्य क्षेत्र में, एक विशिष्ट पहचान बनी॥
मणि-कांचन सयोग इस तरह, पाते बस विरलेजन खास।
सुन्दर सुरभित-श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

साधारण व्यक्तित्व के भीतर, लिए असाधारण व्यक्तित्व
सीधी सरल-सरस वाणी मे, उद्घाटित कर देते तत्त्व,
जिनवाणी को जनवाणी मे, इस प्रकार कह देते हैं,
बालक-वृद्ध-युवा नर-नारी, सब आत्मसात् कर लेते हैं।
कैसा भी हो विषय आपसे मिलता उसको नया प्रकाश।
सुन्दर, सुरभित, श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

नीतिकार का कथन सत्य है, इसमे है सन्देह न लेश।
राजा अपने देश मे पुजता, विद्वत् पुजते देश-विदेश॥
श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश पर, उक्ति उतरती पूर्ण खरी।
जाते जहाँ वहाँ पुजते है, मानो जिनवाणी उतरी॥
स्वस्थ-सुखी-चिरजीवी होवे, जैनधर्म का करें प्रकाश,
सुन्दर-सुरभित श्रेष्ठ सुमन है, श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश॥

—लालचन्द्र राकेश, गजबासौदा

□

भावाञ्जलि

पंडित श्री नरेंद्रप्रकाश का हम अभिनन्दन करते हैं।
डिगे नहीं कभी आर्ष मार्ग से वन्दन उन्हें हम करते हैं॥
तन-मन जोड़ा जिनवाणी से, नई दिशा दिखलानी है।
जीवन मे कुछ कर दिखलाने की अपने मन मे ठानी है।

अभिनन्दन क्या करें हम उनका जो स्वयं अभिनन्दन है।
भिन्न-भिन्न रचनायें रचकर वे स्वय कुन्दकुन्द के कुन्दन हैं।
नमन हमारा बारम्बार यह हितकर पक्ष दिखलाते हो।
अन्धकारमय जन-मानस में नव प्रकाश फैलाते हो॥

—आलोक जैन, बिरधा

प्रशंसा हमेशा पुरुषार्थ की करनी चाहिये, अतिशयों की नहीं।

विनयाञ्जलि

चन्दन-सी वन्दनीय मुखड़े पर धूप।
चम्पा की कलियों-सा मँहक रहा रूप॥

शीतलता प्रतिबिम्बित, वाणी में ओज
धर्म की हथेली पर विश्वासी खोज
चतुराई शरमायी पलको पर फाग,
हिन्सा की गलियों से हटा रहा आग।
जगह-जगह बाँध दिये गरिमा स्तूप,
चन्दन-सी वन्दनीय मुखड़े पर धूप।

आकाशी स्मृतियाँ जीवन मे ढाल
जिनवाणी संयत कर मंत्रित की माल
चरवाही भाषा को अमृत में मोड़,
मतभेदी मन्दिर की सीढ़ी दी तोड़
थपकी दे बन्द किया परिग्रह का कूप
चन्दन-सी वन्दनीय मुखड़े पर धूप

सयम की पुस्तक पर प्रतिभा की छाप
विश्वधर्म के सारे मेटे संताप
नगर-नगर घूम रही चरचा अविराम
वाणी की महिमा है मोहक अभिराम
बार बार वंदन है ! मर्यादित भूप
चन्दन-सी वन्दनीय मुखड़े पर धूप

जीवन पर ओढ़ लिया शिक्षक का मान,
नगपति से बढ़-चढ़कर आदर सम्मान,
कर्म की हथेली पर समता का फूल,
फूँक दिया हँस-हँस कर प्रतिरोधी शूल,
भद्र भाव नयनो में अनुभव अनूप,
चन्दन-सी वन्दनीय मुखडे पर धूप।

सकल्पित चादर पर अभिमन्त्रित छन्द
अभिनन्दित आभा पर मुखरित मकरन्द
धन्य-धन्य फीरोजाबाद के सपूत,
नरेन्द्र से वरदानी मन के अवधूत
पारस से आलोकित स्वत्व के सुरूप,
चन्दन-सी वन्दनीय मुखड़े पर धूप॥

—ओमप्रकाश सारस्वत 'द्रोणाचार्य' (फीरोजाबाद)

कलम तुम्हारी शब्द शक्ति

प्राचार्य श्री के जीवन वृत्त पर,
कैसे मै कुछ लिख पाऊँ?
वो एक सूरज और मैं दीपक,
चरणों में नतमस्तक हो जाऊँ।

कितने लोगों के बिखरे जीवन को,
सँवार दिया आध्यात्मिक पथ से।
था मेरा भी सूना आकाश,
बने प्रभाकर नरेन्द्रप्रकाश।

कितने पुष्प महक उठे पथ में,
सहज, सरल, स्पष्ट प्रवक्ता।
उपाधियाँ सब ओछी पड़ गई,
आध्यात्म-मुद्रिका में तुम मुक्ता।

कर जोड नमन मैं करता हूँ,
याद तुम्हे कर हर्षित होता हूँ।
मुस्कान तुम्हारी कितनी निश्छल,
तुम हो जैसे निर्बल का बल।

प्रवचनप्रिय तुम्हारा जीवन,
श्रोताओं का जैसे यश-धन।
कलम तुम्हारी शब्द शक्ति,
वचनों से झरती आत्म भक्ति॥

एक बार जो तुमसे मिलता,
भूल नहीं फिर तुमको पाता।
मेरा जीवन भी किया सार्थक,
मै धन्य हो गया तुमसे मिलकर।

कितने अपूर्व गुणों के आगार,
आदर्शो से तुमको प्यार।
ग्रन्थों का ज्ञान तुम्हे अपार,
सात्विकता में जीवन का सार।

वीतराग के पथगामी तुम,
धर्म प्रमियों में नामी तुम।
रवि सदृश्य चमकता नाम,
मेरे अग्रज तुम्हें प्रणाम।

—हुकमचन्द सोगानी, इन्दौर

साधु निरन्तर परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहने की कोशिश करता रहता है। इस स्थिरता में बाधक तत्त्व मोह है। उसे जीतने से ही वह निर्मोही कहलाता है।

शत-शत वंदन अभिनन्दन

स्व पुरुषार्थी बन कर्मठता से ज्ञानामृत पी ज्ञान जगाया।
एम ए एल टी शिक्षा पाकर आगरा विश्वविद्यालय चमकाया॥
सुहागनगर के पी डी जैन कॉलेज मे शिक्षा देने आया।
उन्नत भाल ज्ञान से परिपूरित कर्तव्यनिष्ठ बन चमकाया।
फिरोजाबाद पावन नगरी मे शिक्षा अवदान किया सम्वर्द्धन।
विद्वद्रत्न श्री नरेन्द्रप्रकाश को शत-शत वदन अभिनन्दन॥1॥

उत्तरोत्तर इसी शिक्षालय मे ज्ञान की गंगा बहाई।
इक्कीस वर्ष तक प्राचार्य पद शोभित उज्ज्वल गरिमा पाई॥
मण्डलीय प्रादेशिक स्तर पर वाद विवाद मे प्रथम पद पाया।
अनेकानेक पदों से भूषित कुन्दन जैसा चमकाया॥
सगठन नम्रता परिचय देकर, प्रदेश व्यापी आन्दोलन।
निस्पृह त्याग भाव से आपने किया गजब का सचालन॥2॥

निर्भीक प्रबल प्रवचन प्रवक्ता से, श्रुत देवत्व से चमकाये।
सेमीनार सगोष्ठियो मे उत्तरोत्तर पद सचालन कर महकाये।
सहज रूप से श्रोताओ को हास्य व्यग्य से आकर्षित करते।
वस्तु स्वरूप प्रतिपादन करके जन-जन को मोहित करते॥
चन्द्रप्रभ का वैभव लिख चमकें विद्वज्जन लिख अभिनन्दन।
पद्मावती सन्देश, सस्कृति, जैन गजट का सम्पादन ॥3॥

चारो अनुयोगों मे सिद्धहस्त बन जैनधर्म की बिगुल बजाई।
भारतवर्ष के अग्रसर नगरो मे सम्यग्ज्ञान-गगा बहाई ॥
स्याद्वाद और अनेकान्त से रत्नत्रय की ज्योति जलाई।
शास्त्री परिषद् के अध्यक्षी पद से विद्वज्जन की शान बढाई ॥
धन्य-धन्य है जैनागम के तलस्पर्शी बन महके चदन।
श्रद्धा-ज्ञान-संयम के साधक वात्सल्यमूर्ति तुमको वदन ॥4॥

जब तक नभ मे चन्दा सूरज, तब तक जीवन पाओ।
जब तक गंगा यमुना जल है, चिरजीवी बन जाओ ॥
सारस्वत की सेवा में रहकर मणिमय जीवन चमकाओ।
सह परिवार चिरायु रहकर आर्ष मार्ग के गुण गाओ॥
सयोग मिला है बड़े पुण्य से चमको नित्य मणि-काचन।
विद्वद् मनीषी श्री नरेन्द्रप्रकाश को नत फणीश का वदन ॥5॥

—पं बाबूलाल 'फणीश' शास्त्री, (एम ए.)

□

आदराञ्जलि

साहित्य-समाज-सरोवर में, दैदीप्यमान हो खिलते हैं,
आभामण्डल गौरवान्वित हो, ऐसे व्यक्तित्व दमकते है।
यह पूर्व पुण्य का अहोभाग्य, आशिष वरदान बरसते है,
पुरुषार्थ प्रबल कर्तृत्व कुशल, मणि-कांचन योग चमकते है।
पितु रामस्वरूप का शास्त्र-ज्ञान, यश-सुरभि चमेली माँ की है,
सुत सौम्य सुभग शुचितम प्रतिभा, लगे इन्द्र सा दम्पत्ति सोची है।
तब गुण अनुरूपी नाम रक्खा नरेंद्रप्रकाश श्रवण-सा है,
बहिनो के मध्य चन्द्र-सा इक, सोने में सुगन्ध सुहृद सा है।
सुधि सुन्दरि राजेश्वरी मिली, द्विगुणित हो सुषमा बिखरी है,
त्रैवर्ग और षट्कर्म पूर्ण को, श्रावक सृष्टि ऋतु सरसी है।
अणुव्रत का सुन्दर कवच पहन, नेतृत्वकुशल अप्रतिम-सा है,
अनुशासित जीवन शैली मे, स्वाध्यायी कर्म सृजक-सा है।
यद्यपि शिक्षक-प्राचार्य रहे, पर अभिरुचि मे शिक्षार्थी हैं,
भाषण, तीर्थाटन, साधु-सग, चिन्तन अरु मननस्वभावी हैं।
लेखन व पत्रकारिता मे मन रमता सत्य सुभाषी है
वक्तव्य प्रभावक समीचीन, आबाल बृद्ध मन भावी है।
कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व प्रवर, भारतीय सस्कृति ज्योती है,
कृतित्व अपूर्व अरु अनुपमेय, माँ वाणी स्वयं सजोती है।
वाणी-भूषण कलकत्ता ने मानद उपाधि दे डाली है,
व्याख्यान-वाचस्पति कह कर, महासभा हुई बलिहारी है।
विद्या-वाचस्पति कहा तुम्हे, सोलापुर मथुरा वासी है,
समाज-विभूषण दे उपाधि श्रावस्ती भी आभारी है।
व्याख्यान-केसरी कोल्हापुर में तुम्हे कहा हरषाई है,
सिद्धान्त-रत्न से आभूषित अजमेर मे करते भाई है।
धन धन्य फिरोजाबाद हुआ, ज्ञानाभा प्रखर प्रकाशी है,
यश सुरभि बढे दिन-दिन दूनी, शत शरद जीओ जनभाषी है।
अभिनन्दन वन्दन जन-जन का श्रुतदेव-आराधक तेरा है,
रत्नमय-मंडित मगल हो, रहे शाश्वत विमल सबेरा है।

—प्रो. डॉ. विमला जैन 'विमल'

□

सच्चा श्रावक बनना है तो निर्भीक बनो।

विनय 'सुमन' अर्पित है

आये यहाँ अनेक विद्वत् जन,
पर न दिखा तुमसा कोई।
वश मे किया है सबको,
सबने सुध-बुध खोई।
प्राचार्यजी के चरणो मे
विनय 'सुमन' अर्पित हैं।
जन-जन के मन वास करें ये,
जग की आँखो के तारे हैं।
नमन-नमन-नमन करें हम,
ऐसे धरती के लाल को।

—प. कोमलचन्द शास्त्री 'सुमन' (फागी)

हार्दिक मंगलकामना

जिस तरह संगीत की, होती मधुर इक ताल है,
जिस तरह संतों की, होती कुछ अलग ही चाल है,
जिस तरह हर वृक्ष की, होती सुहानी डाल है,
जिस तरह फूलों से सदा, बनती सुहानी माल है,
उस तरह देखो हजारो में 'नरेन्द्रप्रकाश' लाल है।
धन्य है माता-पिता, धन्य है भगवान को।
धन्य भूमि हो गई, देखकर गुणवान को।
धर्म में पूरे समर्पित हो, बढ़ाई शान है।
उच्च शिक्षा, उच्च पद, गौरव मिला सम्मान है।
स्वस्थ ओर दीर्घायु हो, परिवार यह खुशहाल हो।
'मुन्नी' को आशीष दो, उंचा सदा यह भाल हो,
शत-शत नमन, शत-शत नमन, शत-शत नमन।

—मुन्नी जैन, व्याख्याता, कोटा

शुभ कामनाएँ

श्री- जिनराज चरण ध्याऊँ मन लाय कैं।
न- र भव उत्तम पाय धरम धरि धाय कैं॥
रे- मन पण्डित गुण गावो हरषाय कै।
न्द्र- यो ज्ञान की निधी, कहूँ बतलाय कै॥
प्र- कट जैन मत कियो, आप्त अनुसार ही।
का- ज संभारो श्रावक और अनगार ही॥
श- त शत वन्दन करों, आज मन लाय कै।
जी- वैं बरस हजार जु नर-भव पाय कै॥
श- शि सूरज भू मांहि रहै जा काल सों।
ता- सु सुयश जग मॉहि रहे नित हाल सों॥
यु- ग युग मे ता नाम प्रकाशित होय जू।
हों- य शारदा-पूत सदा मद खोय जू॥

—मिश्रीलाल जैन, कोहडार, जि इलाहाबाद

श्री नरेन्द्र प्रकाश से हों मनीषी जमाने में

कहते है, सौ विच्छुओं के डक से भी,
अधिक दर्द नारी को जननी बन जाने मे,
भक्ति-आंगन के तुलसी पूँछते रहीम से-
क्यो? माताये प्रसन्न हैं बालक उपजाने मे।
कहते रहीम कवि माताओ को लोभ यही,
महापुरुष, सत् नारियाँ बस उपजे घराने में।
दोनों अतिशय प्रिय चाहे राजेश्वरी रानी हो,
या नरेन्द्रप्रकाश से हो मनीषी जमाने मे।

—जगदीश पालीवाल, शिकोहाबाद

यशस्वी आदर्श पुरुष

मनुष्यता के धनी हैं नरेन्द्रप्रकाश जी,
विद्वानों की प्रथम श्रेणी में हैं नरेन्द्रप्रकाशजी।
शिक्षा के क्षेत्र से सम्पादन में आये हैं
यशस्वी आदर्श पुरुष है नरेन्द्रप्रकाशजी।

—योगेन्द्र दिवाकर, सतना

आगम की विवक्षाओं को समझकर ही, हमें अपना मार्ग-निर्धारण करना चाहिए। यों ही मुनियों के बारे में यद्वा-तद्वा बोलकर पाप का भागी नहीं बनना चाहिए।

अभिनन्दन है अभिनन्दन

स्वानामधन्य, नर-इन्द्र सहज, वसुधा पाई तुमसे प्रकाश।
हुई जैन भारती धन्य धन्य, जनगण पाया तुमसे विकास॥
शिशु वय से श्रमण श्रेष्ठ लखकर, उर से शीतल रसधार बही।
गागर छलकी सम पर पल छिन, गौवच्छ प्रीत समभाव सही।
दीनों के दीनबन्धु बनकर भी सदा अहं तज रखा विराग।
इसीलिए प्रियदर्श बने, सतत मिला धर्मानुराग॥
नव जागृति तरुणाई पाये, तब ओजस्वी शुभ वाणी से।
मानवता शुचि दीप जले मॉ जिनवाणी कल्याणी से॥
वाचस्पति विद्या अरु वाणी व्याख्यान केशरी आप हुए।
जनमानस सगठित किया, मोती माणिक जयमाल बने॥
समाजशिरोमणि, धर्मदिवाकर, कृतज्ञ समाज ने किया प्रदान।
अति विशिष्ट मानद उपाधियाँ पाये वर्णी श्री सम्मान॥
सम्यक् चिंतक, धर्म प्रवर्तक, विद्वत्-प्रवर, लगे योगी।
निर्विकार, संयम-आराधक, जैसे वस्त्र सहित जोगी॥
सकल समाज आज श्रद्धानत शत-शत अभिनन्दन करते।
विद्वान-प्रवर की संस्तुति में, आज शब्द बौने पडते॥
उत्साह, उमंगे भाव भरी, यह विनयाञ्जलि समर्पण है।
बस शब्द वंदना के द्वारा, अभिनन्दन है अभिनन्दन है॥

—राजकुमार जैन, जबलपुर

आदर्श पुरुष को बारम्बार प्रणाम

'प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी', हैं एक ऐसी विभूति।
जिनकी वाणी और कलम से निकलती स्वानुभूति॥
मौलिक जीवन है आपका, हैं आप एक जीवंत कृति।
आप संजोये हैं अपने में, श्रमण वीतरागी संस्कृति॥
आपने कीमत की प्रत्येक श्वास की,
सौ है आपकी हर श्वांस कीमती।
आपकी हर श्वांस से स्व-पर कल्याण हो, हैं प्रभु से विनती॥
आप हैं अनेक उपाधियों से विभूषित, पर नहीं है अभिमान।
ऐसे आदर्श प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को बारम्बार प्रणाम॥

—विजय सत्यप्रिय राजाबाबू, दमोह

उपवन को महकाते पुष्प

कुछ ही खिलते हैं पुष्प यहाँ, जो उपवन को महकाते हैं।
कुछ ही जलते हैं दीप यहाँ, जो तम को दूर भगाते हैं॥
कुछ ही होती हैं बातें वो, जो दिल को छूकर जाती हैं।
सोच बदल देती है और हमको प्रतिबद्ध बनाती हैं॥
कुछ ही होते है ज्ञानवान जो इन बातों को बतलाते हैं।
जिनको सुनकर बुद्धिहीन भी बुद्धिमान बन जाते हैं॥
उन लोगों की भाँति मनुज की गरिमा को चमकाते हैं॥
जिनके दिल में ईश्वर खुद ही आके ठौर बनाते हैं॥
शत-शत वन्दन तुम्हें गुरू।
शत-शत मेरी दुआ लगे॥
सौ साल जिओ और जीवन भर।
जन-जीवन का उद्धार करो॥

—कु. ममता जैन (एम. ए.), फीरोजाबाद

मानवता साकार हो गई

हे ज्ञान-वाटिका के माली, सुरभित तुमसे सुमन अनेक।
सौरभ-सुरभि बिखेरी कण-कण सभी एक से बढ़कर एक॥
संस्कार पा पूज्य पिता से विद्या-उपवन महकाया।
सरल सौम्य प्राचार्य श्रेष्ठ पा तरुणो का मन मुस्काया॥
गुण वैशिष्ट सुमन-माल से कण्ठहार शोभित अभिराम।
हे मानस के राजहस धनि नीर-क्षीर बुद्धि सुखधाम॥
नव साहित्य कला नन्दन-सा महका नव इतिहास बना।
ऋतुराज-सी बिखरी सुरभि जनगण पाया छाव घणा॥
सादा जीवन उच्च विचारो के अनुपम जीवंत प्रमाण।
श्रमण सस्कृति तुमसे पुलकित हर्षाये जनमानस प्राण॥
सत्य अहिंसा ध्वज फहराते, सर्वोदय विचार वाले।
सन्मति-पथ के बने प्रदर्शक, शिव मारग चलने वाले॥
गौरवमंडित किया प्रान्त ने, राष्ट्र स्वतः कृतकृत्य हुआ।
अभिनन्दन भारत विशाल का संत वचन लो सत्य हुआ॥
धन्य-धन्य शुभ दिवस आज का श्रद्धा सुमन समर्पण है।
जैन भारती के सपूत का कोटि-कोटि अभिनन्दन है॥

—देवेंद्र जैन 'रत्न', जबलपुर।

इन श्रेष्ठ ब्रह्मचारियों की चरण-रज माथे से लगाकर, अपने मानव जीवन को सार्थक और कृतार्थ करें।

आदर्शों के शिखर पुरुष तुम

आजकल के
भौतिक युग में
जहाँ मनुजता
अपनी खुद पहचान खो रही।
लालच, लिप्सा और स्वार्थ की
दूकानों पर
जहाँ मनुज की
निष्ठा तक नीलाम हो रही॥

ऐसे दूषित परिवेषो मे
जनक-सरीखा बन विदेह जब
कोई मानव
निस्पृह होकर, जीवन जीता है।
लगता है तब
जीवन्त आज भी रामायण है
मानवता की कुछ साँसो में
अब भी शायद
रची-पची भगवत् गीता है॥
मै सोच रहा हूँ
आज तुम्हारे लिए
लिखूँ क्या?
तुम शब्दों मे नहीं
आचरण में जीते हो।
अक्षुण्ण रहे सत्य जीवन मे
इसीलिए तो
राग-द्वेष, माया-तृष्णा के
इन विषदंशो को
नीलकण्ठ बनकर पीते हो॥

आदर्शो के अभिलेखों को
अनुकरणीय बना कर तुमने
किया प्रतिष्ठित मानवता को।
उन्नति के शिखरो पर चढकर
रहे अछूते अभिमानो से
कीचड़ में भी कमलपुष्प बन
अक्षुण्ण रखा,
अपने मन की पावनता को॥

शिक्षा से लेकर समाज तक
धर्म-सभा से जैनागम तक
जो कुछ कहा उसे अपनाया।
चिन्तन, लेखन, आचरणों मे
एकरूपता प्रतिबिम्बित है
कथनी-करनी के मिश्रण ने
आज तुम्हें आदर्श बनाया॥
नाम सार्थक हुआ तुम्हारा
'गुणग्राहक बन,
बने नरो मे इन्द्र
'नरेन्द्र' तुम।
और प्रकाशित किया स्वय को,
बने 'प्रकाश' के ज्योतिपुंज तुम॥
बाँटा तुमने मुक्तहस्त हो
अपनी आलोकित क्षमता को
पाकर तुमसे मार्ग दर्शना
मूक कण्ठ भी मुखर हो उठे।
दबी-ढकी कुण्ठित प्रतिभा को
मिला तुम्हारा बल-संबल तो
कितने ही नव सुमन खिल उठे॥

आज तुम्हारे अभिवन्दन पर
मानवता ही अभिवन्दित है।
आदर्शों के इस ललाट पर
नाम तुम्हारा बनकर चन्दन
शोभित होकर अब अंकित है॥

अभिवन्दन की इस बेला मे
यही कामना करते है हम
देव तुम्हें शत आयु देकर
रखे हमारे बीच
और हम
जीवन जीना सीखे तुमसे।
आदर्शों के शिखर पुरुष तुम
पथ-दर्शक बन
रहो हमारे इस जीवन मे
शत-शत वर्षो तक
यही कामना है बस प्रभु से॥

—उमेश जैन, फीरोजाबाद

व्यक्तित्व : एक झलक

लम्बा कद चौडा वक्षस्थल आँखें मुस्कानो की,
सरल हृदय मे दृढ़तर बातें रहती मरदानो की।
चले प्रगति के पथ 'मधुर' परवाह नही प्राणो की,
और न चिन्ता की जीवनभर आँधी तूफानों की।

सहज भाव के पुञ्ज सुगन्ध अमन्द सदैव लुटाई।
हैं अपार गुणवान थाह कब सागर ने भी पाई।
गुरु ज्ञानी, दानी वाणी के गंगा ज्ञान बहाई,
जैनधर्म की कीर्ति-पताका नभ में लहराई।

—ओमप्रकाश उपाध्याय 'मधुर', कोटला

□

जब तक यह मुनि-संस्था जीवित है, समाज में संयम का प्रवाह बना रहेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयम ही सुखी जीवन की आधारशिला है।

एक महकता जीवन सुमन

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

जिसे पाकर जटौआ ग्राम हुआ धन-धन,
रामस्वरूप शास्त्री का हर्षित हुआ रोम-रोम।
मात चमेलीबाई का खिल उठा तन-मन,
तुम्हारे जन्म से कुल हुआ रोशन-रोशन।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

रूप तुम्हारा सौम्य, वचन मधुर रसधार,
जीवन तुम्हारा गगा-जल सम पतित पावन।
सरलता के तुम हो नरेन्द्र मूर्तिमान् निदर्श,
आदर्श शिक्षक बन जग मे रखी नई मिशाल।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

नहीं गुणो के पुञ्ज, तुम हो प्रकाश प्रतिभा के धर्नी,
नही तुमसा कोई ज्ञानी जो कर सके तुमसे सार्नी।
प्रखर-वाग्मी, निश्छल व्यवहार के हो तुम धनी,
कर सत्याग्रह सत्य-प्रेम की तुमने जोत-जलाई।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।
श्रुत देवता की महती आराधना में बन रत्,
रची मधुर स्मृतियाँ, शाकाहार एक आन्दोलन।
चिन्तन-प्रवाह, जैन-पर्व एक अनुशीलन,
समय के शिलालेख से भरी जैन खदान।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

पत्र-पत्रिकाओं का कर सम्पादन,
जैन-धर्म की महत्ता का किया प्रकाशन।
सचिव-अध्यक्ष बन समिति संस्थान के,
नाम किया जग में उनका रोशन,

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

वाणी वाग्देवी, श्रमण भारती,
श्रुत सम्वर्द्धन, ऋषभदेव पुरस्कार।
पाकर नहीं हुए तुम गोरव-विभूषित,
तुम्हें कर सम्मानित हुए वे गौरव-मण्डित।

प्राचार्य नरेन्द्र-प्रकाश एक महकता जीवन-सुमन
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

नही नाम के नरेन्द्रप्रकाश तुम, हो सच में प्रकाश,
अपने सत्कर्म से हम सब को किया आलोकित।
अध्यात्म की ज्योति जला मिटाया तुमने अज्ञान-तम
नरेन्द्र बन गए तुम हम सबकी प्रेरणा के स्रोत।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश एक महकता जीवन-सुमन,
जिसके ज्ञान-सौरभ से सुवासित है जन-जन।

—डॉ हेमलता बौलिया
—सस्कृत विभाग, सुखाडिया वि.वि उदयपुर

मंगलकामना

शुचि स्मिता की मूर्ति सादगी से ओत-प्रोत,
तेरे मन-मन्दिर में शारदा सजी रहे।
वाक् पटुता के शिल्पकार तेरी लेखनी से,
धर्म रूपी धार में नवीनता बढ़ी रहे॥
नवदीप तेरी जिन्दगी से जलें रोज रम्य,
किन्तु तेरी ज्योति मे अखण्डता बनी रहे।
नरो मे नरेन्द्र जैन पी.डी. जैन की विभूति,
तेरे कर्म की मिसाल देश में बनी रहे॥

—रसाल शर्मा 'रम्य'

कषाय कहते हैं मन की खोट को और खोट चाहे सोने में हो या मन में, उससे मूल्य और मान कम होता है।

गाथा इक इन्सान की

आओ भाई तुम्हें सुनायें, गाथा इक इन्सान की।
नाम है जिनका नरेन्द्रप्रकाश सरस-सरल श्रीमान की॥
लिया जन्म 31 दिसम्बर सन् तेतीस मे उत्तर प्रान्त।
जनपद आगरा ग्राम जटौआ, परिजन हर्षित ग्राम तमाम॥
प्रतिष्ठाचार्य पितु रामस्वरूपजी मात चमेली सद् सस्कार।
बाधाएँ आई उन सबका किया सामना भाव उदार॥
दैदीप्यमान जिन आभामण्डल, शान्त-सरल इन्सान की॥
नाम है जिनका नरेन्द्रप्रकाश जी...॥1॥
महामना हैं, महामनीषी, महा सरल हैं, महा उदार।
मीठी जिनकी वचनवर्गणा, प्रमुदित मन से देते प्यार।
किया समर्पित जीवन सारा, श्रुतदेवी का आराधन।
पठन-पाठन है मनन चिन्तवन विषयबद्ध है आलेखन॥
जैन जगत् के श्रेष्ठ सितारे महामना इन्सान की।
नाम है जिनका नरेन्द्रप्रकाश जी ॥4॥

निर्भीक निडर हैं, खरी है वाणी, ओजपूर्ण है शैली सार।
वाणीभूषण, व्याख्यान-वाचस्पति, आदि अनेक उपाधि धार।
उत्तम वक्ता, उत्तम लेखक, व्यवहार जगत् का उत्तम ज्ञान।
तनमनधन के आप धनी हैं, दे दिग्दर्शन आज महान्॥
सादा जीवन उच्च विचार के मूर्तिवन्त विद्वान् की।
नाम है जिनका नरेन्द्रप्रकाश जी...॥5॥

दोहा—प्राप्त मुझे-आशीष हो-चाहत है 'दीवान'॥
नमन करूँ मैं विनय युत्, हे सम्यक् 'धीमान'॥

—प्रतिष्ठाचार्य प पवन कुमार शास्त्री 'दीवान', मोरेना

□

बुधवरनरेन्द्रो विजयते

मनीषी मेधावी मधुरवचनालापनिपुणो
महासत्त्वो धीरो मृदुलकविताकार्यकुशलः।
मनुष्येन्द्रो नम्रो मननिरतो मोहरहितो
महीभूषाभूतो बुधवरनरेन्द्रो विजयते॥1॥

दयालुः प्रेमार्द्र. सरलहृदयः पण्डितवरो
वदान्य. सम्मान्यो धरणिविबुधः काव्यरसिक ।
कलालोकालोक· यम नियमसंसक्तचरित.
पवित्राचारोऽसौ बुधवरनरेन्द्रो विजयते॥2॥

सदा विद्यादाने जिनचरितगाने च चतुर·
प्रकृत्या स्वाध्यायी विनयमधुरस्सत्यवचन ।
चरित्रेणादर्शो बुधसदसि वागीशसदृशो
धराचन्द्रो वन्द्यो बुधवरनरेन्द्रो विजयते॥3॥

हिमाद्रयुन्तुङ्गश्चाप्रतिहतगतिः शास्त्रसरणौ
प्रवीणो व्याख्याने सहृदयधुरीणः पृथुयशा.।
कृपालुश्चोदारस्तपसि निरतस्सागरनिभो
गभीरोऽयं नित्य बुधवरनरेन्द्रो विजयते॥4॥

मनस्वी तेजस्वी सकलजन कल्याणनिरत.
सदैवाग्रे गण्यो विपुलजननेतृत्वनिपुण·।
यशस्वी सन्तुष्ट परमकरुणाक्रान्तहृदयः
सभालङ्कारोऽसौ बुधवरनरेन्द्रो विजयते॥5॥

—डॉ. बालकृष्ण शर्मा, साहित्यविभागाध्यक्ष
शासकीय संस्कृतमहाविद्यालयः ग्वालियरम्

□

वृक्ष-छायादार

खिला हुआ कमल सा जीवन गर्व कभी भी हुआ नहीं
बात सटीक प्रभावित कहते, संशोधन कभी हुआ नही
शास्त्री परिषद्, विद्वत्महासघादि के आप तो प्राण हैं
प नरेन्द्रप्रकाश शास्त्री, विद्वानों में भी विद्वान् हैं।

सरल सहज व्यक्तित्व है, व्यक्ति परम निःशल्य
बाहर-भीतर एक सा, सब पर समान वात्सल्य,
सत्य, अहिंसा, सेवा संपन्न, जिन वाणी का प्रसार
''यथा नाम गुण तथा'' पं. नरेन्द्रप्रकाशजी वृक्ष छायादार

—डॉ. सुरेखा जैन, लखनादौन

आज की भौतिक वातावरण प्रधान इस बीसवीं सदी में भी नग्न यथाजात मुद्रा के धारक जिनेन्द्र के लघुनन्दनों के दर्शन हो रहे हैं, यह आचार्य शान्तिसागर महाराज का ही महान् उपकार है।

एक कवि के भाव-प्रसून

गौर वर्ण, अरु बदन इकहरा, प्रभापूर्ण मुखमण्डल।
मृदुभाषी, रसना रसाल-सी, गन्धाती ज्यो सन्दल॥
वाणी से माधुर्य-चन्द्रिका, झरझर-झरझर झरती।
निष्छलता, मृदुता, विनोदप्रियता सर्वदा विखरती॥
हृदय मोम-सा विशद व्योम-सा अरु चञ्चल मनुहारे।
"श्याम" उदात्त भावनाये जिसका व्यक्तित्व उभारे॥
धनी कलम का, यती जन्म का, उत्कट अहं विरोधी।
शिक्षा की समग्र कल्मषता कर्मठता से धो दी॥
शोषण-अनाचार के आगे घुटने कभी न टेके।
बढ़ते कदम सदैव सुनहरे सकल्पो को लेके॥
धन के नही, सतत सेवा के रहे सदा उन्मेषी।
पलपल निर्बल, दुखी और पीडित के परम हितैषी॥
'सादा जीवन उच्च विचारों' के सच्चे अनुयायी।
होकर स्वय समर्पित आदर्शो की अलख जगाई॥
सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को जीवन मे किया उजागर।
कभी न किञ्चित होने दी मैली चरित्र की चादर॥
पी डी. जैन माध्यमिक विद्यालय इतिहास सुनाता।
सुलभ न होता गौरव यदि तुमसा प्राचार्य न पाता॥
बॉटा करता जो जन-जन को प्यार-दुलार अपरिमित।
नमन उसी नर नागर को उर-श्रद्धा-सुमन समर्पित॥

—श्याम जोशी
मानसरोवर साहित्य सगम, फीरोजावाद

अभिनन्दन

देख दिव्यता का अभिनन्दन वहार ऑचल हिला उठी है॥

जैन धर्म को नवगति दे दी
जन-मानस को मार्ग दिखाया।
राष्ट्र धर्म का लेप लगाकर
विकृतियों को दूर भगाया॥

तन-मन पावन देख आपका वसुन्धरा दृग मिला उठी है।
देख दिव्यता का अभिनन्दन बहार आँचल हिला उठी है॥

शिक्षा-जगत धन्य कर डाला
मानव मे मानव भर डाला।
दिव्य दृष्टि से युग-पीडा को
सहज भाव से ही हर डाला॥

वन्दनीय वाणी श्रीमन को मन को अमृत पिला उठी है।
देख दिव्यता का अभिनन्दन वहार ऑचल हिला उठी है॥

आप ज्ञान के स्तम्भ रहे है
भटके जन को दिया सहारा।
पहचाना है मानव मन को
डूवो को दे दिया किनारा॥

भारत को शुभ मत्र दिया है उपा पुन खिलखिला उठी है।
देख दिव्यता का अभिनन्दन वहार ऑचल हिला उठी है॥

—चन्द्रप्रकाश यादव 'चन्द्र', फीरोजाबाद

ज्ञान के आलोक-शिखर

शिक्षा की दुनिया के
ज्ञान की अनुपम सृष्टि के
प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन
समुज्ज्वल, ज्योतिर्मय आलोक-शिखर हैं।
उन्होंने अपने प्राचार्यकाल में
ज्ञान की पवित्र गंगा
युग-पटल पर प्रवाहित की
उत्साह एवं उमंग का द्वार खोलते हुए,
उसकी जितनी भी
सराहना की जाए वह थोड़ी है।
शिक्षक के रूप मे
ज्ञान की दिशा प्रदान करने मे
प्राचार्य के प्रशासनिक वातावरण मे
एक अभिनव संजीवनी शक्ति प्राप्त की
और वक्ता की दुनिया मे
जैनसाहब ने वाणी-रत्न-शिरोमणि का
उच्चतम स्तर प्राप्त किया,
अपनी पारवारिक गरिमा को
गौरवान्वित करते हुए।
वस्तुतः नरेन्द्रप्रकाशजी ने
लोकप्रियता की दुनिया में
अनेक कीर्तिमान प्रस्थापित किए है,
जो हमेशा नवयुवकों को
प्रेरणा एवं दिशा प्रदान करते रहेंगे।

—उमेश जोशी (वरिष्ठ साहित्यकार), फीरोजाबाद

साधु को आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य को विचार में नहीं लाना चाहिए। आत्मज्ञान से रहित नग्नतामात्र को साधुता नहीं कह सकते।

दे रहा युग अर्घ तुमको

दे रहा युग अर्घ तुमको
हर हृदय की बात हो तुम।

धन्य शिक्षोद्यान जिसके तुम रहे हो मजु माली।
झूमता है मुदित पुलकित, हर विटप, हर एक डाली।
हर लता मुसका रही है, दूब तक यश गा रही है।
त्याग तप की शुभ्र गाथा, ईट-ईट सुना रही है।

इस विशाल सभा-भवन के
प्रथम पुण्य प्रभात हो तुम।
सर्व हितकारी सु दर्शन जैन का वरदान पावन।
साथ में चलता तुम्हारे, भूमि-सिंचन-हेतु सावन।
द्वेष ईर्ष्या के मरुस्थल मे सरस सरिता बहाते।
भींग उठते प्रेमजल मे जो तनिक इसमें नहाते।

क्षुब्ध सघर्षीय लू में,
स्नेह की वरसात हो तुम।
अखिल जैन समाज के प्रिय श्रेष्ठतम आचार्य हो तुम।
आर्य जात्यभिमान मंजुल.हृदय में अवधार्य हो तुम।

सरस साहित्यिक सुरुचि ले, सुपथ पर गतिशील हो तुम।
मुक्त सब संकीर्णताओ से विशद नभ नील हो तुम।

उमस मय युग की दुपहरी
मे मलय की वात हो तुम।
दौडती जिस ओर दुनिया, तुम उधर से भाग आए।

जाय जल कल्मष धरा का, खोज ऐसी आग लाए।
हो रहा विश्वास सबको, ज्योति दिव्य जगा सकोगे।
और उद्धत दम्भ दर्पित तिमिर तोम भगा सकोगे।

प्रेम सलिला मनुजता सरि
का मनोज्ञ प्रभात हो तुम।
दे रहा युग अर्घ तुमको, हर हृदय की वात हो तुम॥

—डॉ. मथुराप्रसाद 'मानव', फीरोजाबाद

□

विद्वत्ता का सुयश तुम्हारा

चिर अभिलाषा थी सबके उर, कब आवे वे शुभ घड़ियाँ।
प्राचार्य नरेन्द्र की वाणी सुनकर खिल जाये अन्तर की कलियाँ॥
पुण्योदय से अवसर आया जो सबके मन भाया है।
पूजन मे उनके भाषण सुन भारी पुण्य कमाया है॥1॥

भारत भर के सब प्रान्तों मे, नाम तुम्हारा छाया है।
जैन जगत के विद्वानो मे ऊँचा नाम कमाया है॥
विद्वत्ता का सुयश तुम्हारा, सबके हृदय समाया है।
फीरोजाबाद नगर का तुमने, गौरव खूब बढाया है॥2॥

जगमग-जगमग स्वाभिमान है, किन्तु नहीं अभिमान जरा।
जन-जन के प्रति सदा हृदय मे रहता प्रेम-पराग भरा॥
मनहर कण्ठ मधुर वाणी से, धर्मामृत जव बरसाते।
भव्य मयूरों के हृदय तब सौख्य-सुधा से भर जाते॥3॥

बडे-बडे आर्ष ग्रन्थो के, दे प्रमाण समझाते हो।
विविधि नयों और दृष्टातो से, गहन तत्त्व दर्शाते हो॥
चारो अनुयोगो का विशालतम् वर्णन जब तुम करते हो।
तब ऐसा लगता है मानों ज्ञान-सुधा के सागर हो॥4॥

देव शास्त्र गुरु श्रद्धा रक्खो निर्मल ज्ञान चरित्र धरो।
अशुभ हरो-शुभ भाव सम्भालो, शुभ छोडो शुद्ध भाव धरो॥
इस क्रम से पर परणति त्यागो, मिट जावे ससार क्लेश।
जैन धर्म का मर्म यही है, यही तुम्हारा शुभ सन्देश॥5॥

—ला. शातीस्वरूप जैन रैमजा वाले

□

मुनि होकर विपरीत आचरण करना अक्षम्य अपराध है। झूठी प्रशसा या वाहवाही के चक्कर में पड़कर भीड़ जुटाना साधु-मार्ग नहीं है।

हृदयहार

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का व्यक्तित्व 'सादा जीवन उच्च विचार' की कहावत का जीवन्त रूप है। वह ज्ञान-पुज और सिद्धान्तज्ञ है। परमस्नेही और प्रसन्नमना है। जिस कार्य को भी हाथ मे लेते है, उसे सफलता की बुलन्दियों तक पहुँचा देते हैं। जैन गजट और महासभा इसका जीता-जागता उदाहरण है। दोनों की उत्तरोत्तर प्रगति का श्रेय नरेन्द्र और निर्मल की जोड़ी को ही है। अपने ओजस्वी और आगमसम्मत प्रवचनों के माध्यम से प्राचार्य जी ने पूरे देश में अपना एक अप्रतिम स्थान बना लिया है। संसार में दो ही तरह के लोग होते हैं--कुछ सबके दिल से उतर जाते है और कुछ सबके दिल में उतर जाते है। प्राचार्य जी दूसरी कोटि मे आते है। नि.सन्देह वह हृदयहार हैं।

प्राचार्यजी का सम्मान माँ सरस्वती का ही सम्मान है। वह शतायु हों और इसी तरह माँ सरस्वती की सेवा करते हुए मोक्षमार्ग के पथिक बने।

—लाडलीप्रसाद जैन प्रतिष्ठाचार्य
पापड़ीवाल-भवन, सवाईमाधोपुर

□

निष्कम्प दीपशिखा की भांति अडिग

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य भक्त प्राचार्य जी की प्रवचन शैली में एक चुम्बकीय आकर्षण है। कठिन-से-कठिन सिद्धान्त को सोदाहरण श्रोताओ के गले उतार देने की कला मे वह बेजोड हैं। कॉलिज के प्राचार्य-पद से तो उन्होंने सन् 1992 मे अवकाश ग्रहण कर लिया था, किन्तु नवोदित विद्वानो एव धर्म-जिज्ञासुओ को पढाने का कार्य अद्यावधि करते रहने से वह आज भी समाज की दृष्टि मे 'प्राचार्य' बने हुए हैं। वह एक ऐसे जीवन्त व्यक्तित्व के स्वामी है, जो कभी 'भूतपूर्व' की श्रेणी में नही आता।

समाज में जब भी कोई समस्या उत्पन्न होती है, आप उसे अपनी सूझबूझ से सहजता से सुलझा देते हैं। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी आप एक निष्कम्प दीपशिखा की भांति अडिग बने रहते है। विद्वत्रत्न तो आप है ही, नररत्न भी है। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा, सबको स्नेह और प्यार बाँटते हैं।

कोलकाता का गुणग्राही समाज बधाई का पात्र है, जिनकी कृपा से प्राचार्य जी के व्यक्तित्व को जन-जन की श्रद्धा का पात्र बनाने का यह स्तुत्य आयोजन किया जा रहा है। सभी मेरा अभिवादन स्वीकार करे।

—(प्रा.) खेमचन्द्र जैन
गढ़ा रोड, जबलपुर

□

साधु को किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति इष्ट या अनिष्ट की कल्पना से बचना चाहिये। स्व के प्रति रुचि और पर के प्रति अरुचिता ही इसके लिये एकमात्र उपाय है।

एक प्रणाम मेरा भी

'ज्ञानी के पूजन-वन्दन से, सदा ज्ञान की पूजा होती।
ज्ञानी की वाणी जन-जन के, मन में शिव के अंकुर बोती।।'

सम्पूर्ण जैन समाज का यह महाभाग्य है कि उसे प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन के रूप मे एक निर्भीक वक्ता, जिनवाणी-अराधक एव मोक्षाभिलाषियो को सन्मार्ग का उपदेश देने वाला एक नि स्पृह विद्वान् मिला है। हम तो उन्हें जैनागम का सूर्य मानते हैं। हम उनको अपना प्रणाम प्रेषित करते है।

—चौ. सुभाष जैन
(डॉ हरीसिह गौर विश्वविद्यालय, सागर)

□

वह किसी परिचय के मोहताज नहीं

जिस प्रकार उगता सूर्य, खिलता हुआ फूल, बहता झरना और जलता दीया किसी के परिचय का मोहताज नहीं है, उसी प्रकार प्राचार्य जी के सुपरिचित व्यक्तित्व पर कुछ लिखना भी आवश्यक नही है। समाज में कौन है ऐसा, जो उन्हे नही जानता। उनका व्यक्तित्व ज्ञान के संचय और उसके वितरण की प्रवहमान मंदाकिनी के समान है। जो भी उसमे डुबकी लगाता है, अज्ञान के कल्मष से दूर होने लगता है।

भारतीय मनीषा के गम्भीर अध्येता, अनेकान्त और स्याद्वाद के प्रबल पक्षधर, निर्भीक लेखक, प्रवीण सम्पादक एव अद्भुत प्रतिभा के धनी प्राचार्यजी के प्रति हमारी यही शुभकामना हे कि वह चिरकाल तक सुखी एवं स्वस्थ रहकर माँ जिनवाणी की सेवा करते रहे।

—प्रकाशचन्द्र जैन एडवोकेट
(मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर)

□

जैन वाङ्मय के मर्मज्ञ विवेचक

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन के बोलने और लिखने की शैली सहज, सरल, सुबोध और अपने आप मे अनोखी है। जिस सभा मे भी वह पहुंच जाते है, लोग उन्हे सुनने के लिए लालायित रहते हैं। 'जैन गजट' में पाठकवृन्द पहले उनका सम्पादकीय पढना चाहते हैं। वह जैनधर्म और साहित्य के मर्मज्ञ विवेचक हैं। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी एक उद्भट विद्वान हैं। उनका आत्मीय व्यवहार सभी जिनवाणी-रसिकों को प्रभावित करता है।

हमारी तो यही भावना है कि हम उनके मार्ग का अनुसरण करते रहे। उनसे हमें हमेशा प्रकाश मिलता रहें।

—सरमनलाल जैन 'दिवाकर' शास्त्री
(प्राचार्य, श्री दि. जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर)

□

जो मुनि जिनलिंग को धारण करके भी इछित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे वमन करके फिर उस वमन को ही निगलते हैं। अतः मुनि बनने के बाद अपने इर्द-गिर्द परिग्रह इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

जिन्हें कोई भूल नहीं पाता

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन एक बार जिस नगर में प्रवचन दे आते हैं तो वहाँ लोग वर्षो तक उसकी चर्चा करते रहते हैं। एक बार आप औरंगाबाद में भगवान महावीर की जन्मजयन्ती के त्रिदिवसीय सेमिनार में पधारे थे। तीनों दिन 'अहिंसा लक्षणो धर्मः', 'परिणाम-विशुद्धि' एवं 'भगवान महावीर का जीवन-दर्शन' विषयों पर आपके उद्‌बोधन हुए थे। इस सेमिनार में महाराष्ट्र के प्रबुद्ध लोग उपस्थित थे। आज कई वर्ष बीत जाने पर भी लोग उनकी वक्तृत्व-शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए देखे जाते हैं।

आज से छह-सात वर्ष पूर्व अतिशयक्षेत्र कचनेर मे प्रज्ञाश्रमण पूज्य आचाग्र श्री देवनन्दीजी महाराज के सान्निध्य में महासभा का अधिवेशन हुआ था। अनेक विद्वज्जन पधारे थे। यहाँ भी सबके आकर्षण के केन्द्र प्राचार्य जी ही थे। जब आप मंच से बोलते तो सभी श्रोतागण सूचीपात शान्ति के साथ आपको सुनते थे तथा बाद में भी घण्टों तक उनकी कही हुई बातों पर मंथन करते हुए देखे जाते थे। वर्षो के बाद भी जिसे पीठ-पीछे लोग याद करते हो, उसे ही महान् कहा जा सकता है।

मैंने 'कचनेर-दर्शन' पुस्तक लिखी थी। हमारे निवेदन पर उन्होंने अपनी प्रस्तावना लिखकर भेजी थी। अपनी रचनाओं के सन्दर्भ मे उनसे पत्राचार भी होता रहता है। वह बडी भाग-दौड़ और व्यस्तता का जीवन जी रहे हैं। कभी पत्रोत्तर मिलता है, कभी नही भी मिलता, परन्तु उनके सौजन्य मे कभी कोई कमी नहीं रहती।

वह आज 106 वर्ष पुराने 'जैन गजट' साप्ताहिक के यशस्वी सम्पादक हैं। यह उनकी सशक्त लेखनी का ही प्रताप है कि आज उसके पाठकों की संख्या सर्वाधिक है। मैं भी उनके गुणो का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

—एम. सी. जैन, पत्रकार
चिकलठाणा, (महाराष्ट्र)

□

विद्वज्जनों के मार्गदर्शक

आदरणीय प्राचार्यजी वर्तमानकालीन जैन विद्वत्परम्परा में एक सर्वाधिक अनुभवी एव अग्रणी विद्वान हैं। जैन विद्वानो की प्रतिनिधि संस्था, 'श्री भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद' के वह गौरवशाली अध्यक्ष है। अनेक पुरस्कारों से अलकृत उनका व्यक्तित्व एव कर्तृत्व सभी विद्वत्जनों के लिए प्रेरक एव दिशाबोधक है। उनके सम्मान में एक अभिनव अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन अत्यन्त श्लाघनीय है। सभी आयोजकों को हार्दिक बधाई। उनके सम्मान में हम सबका सम्मान निहित है।

—नरेन्द्रकुमार जैन शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य
रुड़की, (उत्तरांचल)

□

साधु और श्रावक दोनों ही अपने-अपने परिणामों को अचंचल और उच्चादर्श की ओर उन्मुख रखने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहें तो वर्षायोग निःसंदेह वरदान सिद्ध हो सकेगा।

शुभ सुमनों की माला

जो व्रतनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ और ध्येयनिष्ठ होते हैं, अभिनन्दन उनका ही किया जाता है। साधु-सुचेता, साधक, संकल्पवान, विद्वान्, वक्ता, विचारक, संचालक, सम्पादक, लेखक, आचार्य, अध्येता आदि विशेषणों से विभूषित श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन आज लोक में प्रतिष्ठित है। वह मानवीय आदर्शो की जीती-जागती प्रतिमूर्ति हैं। वह महामनीषी और नरोत्तम हैं। नगर और प्रान्त की सीमाओ से दूर सम्पूर्ण भारत मे अपनी प्रशस्त वाग्मिता और विद्वत्ता के लिए सुविख्यात हैं।

हमारा वैदिक परिवार उनके सुखद जीवन और अभ्युदय के लिए वेद-माता की मागलिक ऋचाओं से यह मगल कामना करता है–

आध्यात्मिक हो दिवस आपके, योग-क्षेमकर निशा-निशा।
जगमग ज्योति जगे जीवन में, शुभ्र-स्वच्छ हो दिशा-दिशा।।
परिपूजन के शब्द, मत्र की मंजुल माला,
भावो की अभिव्याप्ति, आपका नेह निराला।
श्रद्धा-सहित समर्पित, शुभ सुमनों की माला,
स्वीकृत आर्य नरेन्द्र' वेद की वैदिक माला।।

–वेदप्रकाश वैदिक
श्री गोपाल वैदिक स्वाध्याय सदन
घिरेरा (मैनपुर, उ प्र.)

□

निर्विवाद व्यक्तित्व

प्राचार्यजी का व्यक्तित्व सदेव निर्विवाद रहा है। महासभा हो या महासमिति अथवा मुनिभक्त हों या मुमुक्षु, सभी उन्हें पूरा-पूरा सम्मान देते हैं। उनकी वाणी में शिष्ट हास्य का पुट रहता है। कभी चुटकी भी लेते हैं तो बडी मीठी, जिससे किसी को बुरा भी नही लगता। घण्टों तक धराप्रवाह बोलने की उनकी क्षमता देखकर हर कोई दाँतों तले उँगली दबा लेता है। 71वी वर्षगाँठ पर उनका हार्दिक अभिनन्दन।

–यशवन्तकुमार शास्त्री
जैन हा. सै. स्कूल, दमोह (म.प्र.)

□

मुनि को सयम, शौच और ज्ञान के प्रतीक पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु के रखने की आज्ञा नहीं है।

प्रकाश-स्तम्भ

वर्तमान समय में प्राचार्यजी दिगम्बर जैन समाज के प्रकाश-स्तम्भ हैं। वे अपना सारा समय जैन सस्कृति और धर्म की मर्यादाओं को सुरक्षित रखने मे लगा रहे हैं। आज उन जैसा प्रभावशाली वक्ता अन्य कोई नहीं है। उनकी वाणी में माधुर्य और युक्तियों में सार समाया रहता है। वह खरा-खरा बोलते हैं, कभी लाग-लपेट की बातें नहीं करते।

समाज को प्राचार्यजी के नेतृत्व की अभी वर्षो तक आवश्यकता है। वह सबकी आशाओ के केन्द्र है।

—प्रमोदकुमार जैन 'प्रभात' शास्त्री
जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर

□

हार्दिक अभिनन्दन

आज जबकि देश मे असमानता, अनाचार व कुरीतियों का बोलबाला है, साथ ही जैन जगत में शक्ति-संघर्ष अपनी चरमावस्था पर है, ऐसे मे देश के सुप्रसिद्ध विद्वान्, प्रखरवक्ता, समाजसेवी एव साप्ताहिक जैन गजट के प्रधान सपादक आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन के अखिल भारतीय स्तर पर अभिवन्दन करने का सकल्प उनकी 70वीं जन्म वर्षगांठ पर जैन समाज की उनके प्रति सच्ची कृतज्ञता है।

जैन गजट का चहुँमुखी विकास उनकी श्रेष्ठ पत्रकारिता का परिणाम है। ऐसे यशस्वी प्रेरणास्पद व्यक्तित्व के प्रति मेरी आदरसहित अनेकानेक शुभकामनाएँ है कि आदरणीय प्राचार्यजी दीर्घकाल तक धर्म, समाज एव जिनवाणी की अनवरत सेवा करते रहे।

—प्रकाश जैन 'रोशन'
मंत्री, दि. जैन समाज एव दि. जैन महासमिति
जतारा, टीकमगढ (म. प्र.)

□

त्याग की साक्षात् मूर्ति

उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद में विद्वानों की उर्वरा भूमि जटौआ ग्राम में जन्मे आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी आज वर्तमान की विद्वत् परम्परा मे एक ऐसा नाम है, जो सम्पूर्ण देश में आदर के साथ लिया जाता है।

ओजस्वी, सरल एवं सुमधुर वाङ्मय के वह ऐसे महानतम सरस्वती-पुत्र हैं, जिनका सान्निध्य हम सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत और प्रसन्नता का कारण बनता रहा है। किसी भी कार्यक्रम में उनकी उपस्थिति उस कार्यक्रम की गरिमा बन जाती है। एक साथ अनेक पदों पर रहकर उन संस्थाओं का उन्होंने कुशल संचालन किया है। अनेक गोष्ठियों में उनका निकट सान्निध्य हमें सदा प्राप्त होता रहता है। अपने बीच हम उन्हें पाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

जहाँ वीतराग संत विराजते हों, वहा प्रेम का दरिया बहते रहना चाहिए। सामाजिक कलह या द्वन्द्वो की समाप्ति तथा भाईचारे की भावना के विकास से ही किसी साधु का प्रभाव आंका जाता है।

आगम-अनुरूप चर्या के धनी निर्लोभिता की प्रतिमूर्ति आदरणीय प्राचार्यजी हमारे प्रेरणास्रोत हैं। उनके गुणो को आत्मसात कर हम अपने मानवीय गुणों को विकसित करे तो उनके प्रति हमारी सम्यक् विनयाजलि होगी, इन शब्दों के साथ उनके चरणों में मैं अपनी भक्ति भावना अर्पित करता हूँ।

—सनतकुमार जैन (विशारद)
खिमलासा, जि. सागर

□

वे हमारे आदर्श हैं

आदरणीय श्री नरेन्द्रप्रकाश जी एक व्यक्ति नहीं, अपितु एक आदर्श हैं, जिन्हे पूरा देश प्राचार्य जी के नाम से सबोधित करता है। वह एक प्रखर ओजस्वी तथा स्पष्टवादी विद्वान् ही नही, एक श्रेष्ठ मार्गदर्शक भी हैं। वह जिस सस्था से भी संबंधित रहे, उसकी सफलता उनकी श्रेष्ठता से परिचय कराती है। उनकी सहज सरलता और स्पष्टवादी प्रवचन शैली से अनेक लोग स्वकल्याण-पथ प्राप्त कर धन्य हुए हैं। ऐसे स्वविवेकी, आगम निपुण, शास्त्र विश्लेषक मुश्किल से मिलते है। अपने गुणों के कारण वह हमारे आदर्श है।

मैं अपने हृदयोद्‌गार उनके चरणों में समर्पित करते हुए जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मार्गदर्शक गुरु, श्रद्धेय प्राचार्य जी स्वस्थ और दीर्घजीवी हों, और वह हम सभी का मार्गदर्शन करते रहें। उनके गुणो का यशोगान सदा सर्वदा होता रहे।

वे हैं मेरे आदर्श करूँ मैं वन्दन।
वे जिएँ हजारों साल करूँ अभिवन्दन।
उनके चरण कमल को चूमे तन-मन,
हृदयपुष्प चरणों में करता अर्पण।

—बी. एस. जैन, फिरोजाबाद

□

वह क्षण जो मन पर अंकित हैं

जब-जब जैन गजट मे आदरणीय प्राचार्यजी के सम्पादकीय आलेख पढ़ता था, तब-तब उनके दर्शनों की इच्छा तीव्रतर हो जाती थी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के सम्माननीय सचिव डॉ. अनुपम जैन के मार्गदर्शन में जब 'अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य 'वर्गीकरण पद्धति' (Due decimal Classification) का जैन पुस्तकालयों में कैसे प्रयोग किया जाए, यह कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ, अनुपम जी से ज्ञात हुआ कि इस वर्ष (सितम्बर 2000 में) आ. प्राचार्य जी पर्यूषण पर्व पर टी.टी. नगर भोपाल प्रवचन के लिए पधार रहे है। उन्हें सुनने का जीवन मे यह प्रथम अवसर था। उनकी बेजोड़ प्रवचन शैली मेरे अन्तस में गहरे पैठ गई।

तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली इलाहाबाद मे जैन विद्वत् सघ की बैठक मे वह विशिष्ट आमंत्रित अतिथि के रूप में जब पधारे, तब उनसे प्रत्यक्ष चर्चा का सौभाग्य मुझे मिला। मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति से उनकी सहज चर्चा मुझे अभिभूत कर

गुरुमुख से उपदेश सुनकर जो विचारपूर्वक आचरण करता है, वास्तव में वह है श्रावक। एक आदर्श श्रावक में श्रद्धा, विवेक और आचरण का संगम दृष्टिगत होना चाहिए।

गई। उनसे चर्चा के यह पल मेरे जीवन के अमूल्य क्षण बनकर आज भी मेरे मानस पर अंकित है।

इसके बाद तो कम्पिल जी, इन्दौर या कुण्डलपुर जब-जब उनका सान्निध्य मुझे मिला, मैंने उनसे अनेक विषयों पर चर्चा करके उस अवसर का भरपूर लाभ उठाया।

सामाजिक पत्रकारिता में जैन गजट ने आज जिस ऊँचाई को छुआ है, उसमें उनके बहुमुखी व्यक्तित्व और सम्पादन का ही श्रेय है। मै उनके चरणों मे श्रद्धा सहित नमन करते हुए उनके शतायु होने की कामना करता हूँ।

—डॉ सजीव सराफ
प्रचारमन्त्री
तीर्थकर ऋषभदेव जैन विद्वत्त महासंघ
52, पदमाकर कालोनी, सागर

□

आदर्शों के ज्योतिपुंज

आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के लिए मै कुछ लिख सकूँ, यह क्षमता तो मै अपने अन्दर नहीं पाता। मै तो उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों मे से हूँ, जिन्होंने श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन विद्यालय फिरोजाबाद में उनके अनुशासन में रहकर शिक्षा ग्रहण की है। जीवन की बुनियाद में उनके द्वारा रोपे गए सद्सस्कार आज मेरे जीवन में अमूल्य निधि की तरह सचित हैं।

आदर्शो के ज्योतिपुज आदरणीय प्राचार्यजी के चरणों मे मैं अपनी विनयाजलि अर्पित करते हुए उनके दीर्घ जीवन की मगल कामना करता हूँ।

—राकेश जैन, कैलाश गज, एटा

□

सामाजिक चेतना के प्रतीक

हम अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन, एटा की सभी पदारूढ सदस्याएँ परम श्रद्धेय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के 70वें जन्मदिवस पर प्रकाशित उनके अभिनन्दन-ग्रन्थ एवं उसके कोलकाता मे 25 दिसम्बर, 03 को आयोजित समारोह के समाचार से अत्यधिक अभिभूत हैं।

मानवीय परम्पराओं के पोषक आ. प्राचार्य जी हमारी संस्था के मार्गदर्शक तथा प्रेरणास्रोत है। भ्रूण-हत्यानिषेध, शाकाहार एवं धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हमें उनका आशीर्वाद एव मार्गदर्शन सदैव प्राप्त होता रहता है।

उनके दीर्घजीवन की मंगल कामना करते हुए हमारा सगठन उनके कृतित्व और व्यक्तित्व के लिए उनके चरणों में प्रणाम करता हुआ स्वय को गौरवान्वित अनुभव करा रहा है।

—बबीता जैन तथा
संगठन की सभी सदस्याएँ

□

लोकैषणा या ख्याति-लाभ की चाह से साधु को सदा दूर रहना चाहिये। यह भी अंतरग परिग्रह है। बाह्य आरम्भ और परिग्रह का त्याग होते हुए भी यदि अंतरंग परिग्रह से साधु मुक्त नहीं है तो उससे मलोत्पत्ति हो जाती है।

ओजस्वी वाणी एवं विनम्रता के प्रतिरूप

मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों मे से एक हूं, जिन्हे आदरणीय प्राचार्यजी की निकटता सहजता से प्राप्त है। उनकी विनम्रता और सहजवाणी तो उनके आत्मीय गुण है। उनकी विशेषता है कि अपने व्यक्तित्व और प्रभाव के चलते किसी से किसी प्रकार की अपनी निजी आवश्यकता की आपूर्ति के प्रति उनकी उदासीनता। अनेक राजनीतिज्ञों, अधिकारियों से अपनी निकटता का लाभ उन्होने कभी अपने निजी हित में नहीं उठाया, और समाज-धर्म हित में उनसे उचित सहयोग के लिए वह सदैव अग्रणी रहे।

समाज या व्यक्तिगत विवादो को उन्होंने सदैव सम्यक् प्रकार से सुलझाने मे अपनी अग्रणी भूमिका निभाई है। किसी के प्रति अन्याय न हो, यह सोच उन्हें सदा निष्पक्ष भूमिका के निर्वहन की प्रेरणा देता रहता है। इसके चलते वह नगर और पूरे देश मे सभी का विश्वास अर्जित कर सके है।

ऐसे सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी आदरणीय प्राचार्य जी के चरणो मे मै श्रद्धा से प्रणाम करते हुए उनके दीर्घजीवन की मंगल करता हूं।

—सुरेशचन्द जैन
हाथरस घृत भंडार, डाकखाना चौराहा, फिरोजाबाद

□

आर्षमार्ग के प्रखर विद्वान्

वाणीभूषण, व्याख्यान-वाचस्पति, समाज-विभूषण, सिद्धान्तरत्न श्रद्धेय प. श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन, फिरोजाबाद, उन मूर्धन्य विद्वानों में से एक हैं, जिन्होंने जैनधर्म की उज्ज्वल ज्योति प्रदीप्त कर पूरे देश मे जिनवाणी का प्रचार-प्रसार किया है। ऐसे प्रखर मनीषी के दिव्य कृतित्व को मेरा शत-शत नमन।

—सर्जीवकुमार जैन (व्याख्याता)
शासकीय उच्चतर, मा. शाला
गैठी (कटनी) म. प्र

□

समाज के अनुपम रत्न

राष्ट्रीयता और मानवीयता के प्रबल पक्षधर श्रद्धेय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के 70वें जन्म दिवस पर प्रकाशित उनका अभिनन्दन ग्रन्थ गुण-उपासना की अर्चना तो है ही, साथ ही आने वाले समय के लिए एक अनुपम दस्तावेज भी है। मैं श्रद्धानवत होकर उनके दीर्घ स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए उन सभी महानुभावों को साधुवाद देता हूं, जिन्होने इस कार्य के लिए अपना योगदान कर इसे पूर्णता प्रदान की।

—सुनील जैन, 'बादा'
अध्यक्ष अ. भा. दि. जैन युवा परिषद, जैन नगर, एटा

□

धन्य है वह गृहस्थ-धर्म, जिसमें जिनेन्द्र और जिनवाणी की पूजा, मुनियों की विनय, धर्मात्माओं की सेवा एवं व्रतो का पालन किया जाता है।

जिन पर पूरे देश को गर्व है

श्रद्धेय पं. श्री नरेन्द्रप्रकाश जी प्राचार्य अनेकानेक श्रेष्ठ-गुणों के भण्डार हैं। आप बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी एवं मूर्धन्य विद्वान् हैं। आपकी स्वनिर्मित पहचान किसी परिचय की मुखापेक्षी नहीं है। आप अपनी प्रसन्न मुद्रा, हास्य व्यंग्य, सरलता, निश्छल व्यवहार एवं निर्भीक लेखनी के कारण सर्वप्रिय हैं। आपकी ओजस्वी वाणी हृदयंगत होने में समय का इन्तजार नहीं करती। आप प्रखर वक्ता हैं। मुझे आपका सान्निध्य पाने का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। सदैव मैंने अपने को आपके वात्सल्य की बौछार में सराबोर ही पाया तथा समय-समय पर मार्गदर्शन प्राप्त किया।

प्राचार्यजी पर न केवल मुझे व समाज को अपितु सारे देश को गर्व है। आपकी लेखनी, प्रवचन-शैली, वक्तृत्व गुण, धार्मिक एवं साहसिक जीवन अनुकरणीय है। मुझे ज्ञातकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि प्राचार्य जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

ऐसे उदार एवं वाणी के वरद पुत्र के अभिनन्दन के शुभ अवसर पर श्रद्धा अर्पित करती हुई उनके सुख-स्वास्थ्य-समृद्धि से समन्वित जीवन की मगल कामना करती हूँ।

—श्रीमती अल्पना जैन
अवध ज्ञानोदय संस्थान, लखनऊ

□

अन्तरंगता से जुड़े क्षणों का अनुभव

पारस पत्थर का अपना यह निजी गुण है कि वह स्वय तो अमूल्य होता ही है, अपने स्पर्श से वह लोहे को भी स्वर्ण बना देता है। ऐसे ही मानवीय गुणों से ओतप्रोत व्यक्तित्व के धनी हैं हमारे प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी। यह हमारा सौभाग्य है कि हम फिरोजाबाद नगर के ही नहीं, अपितु उनके गृहनिवास 104, नई बस्ती के उनके पडौस के ही निवासी हैं। उनकी रात्रिकालीन नियमित बैठक का सौभाग्य हमारे अपने निवास की बैठक को प्राप्त है। चिन्तन, लेखन, सम्भाषण, विद्वत्ता के शिखर-बिन्दु पर स्थापित किन्तु सहजता सरलता और निराभिमानिता के उच्च मानवीय गुणों ने उन्हें आज सभी का आदर्श पुरुष बना दिया है।

हमारी यह बैठक पूरे देश में स्थापित उनकी मान्यता की प्रत्यक्ष साक्षी है। जब रात्रिकालीन इस बैठक में प्रतिदिन उनके लिए प्रायः देश के हर भाग या प्रान्त से दूरभाष पर उनसे प्रबुद्धजनों द्वारा सम्पर्क स्थापित किया जाता है, तब हम लोग प्रायः यह विचारते हैं कि वह धर्म, समाज आदि सभी में इतने महत्त्वपूर्ण होकर भी इतना सहज जीवन कैसे जी रहे हैं! आम बातचीत में वह कभी ऐसे नही लगते कि वह एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। यही सहजता लोगों में उनके प्रति अपनत्व का भाव जागृत करती है।

उनके अभिनन्दन का यह प्रसंग मानवीय जीवन-मूल्यों के अभिनन्दन को सार्थकता प्रदान करता प्रतीत होता है। हम उनके शतायु होने की कामना करते हुए उनका निकट सान्निध्य पाने को अपना परम सौभाग्य मानते हैं।

—वीरेन्द्रकुमार जैन
ए वन लैम्प इण्डस्ट्रीज
फीरोजाबाद

□

न्यायपूर्वक धन कमाने वाला, गुणानुरागी, हितमितप्रियभाषी, विवेकी, सत्संगति-अनुरागी और जितेन्द्रिय ही श्रावक कहलाने का पात्र है।

एक सारस्वत विभूति

श्रमण संस्कृति एव आर्षमार्गी, विद्वत्परम्परा के मूर्धन्य-साहित्य मनीषी, वाणीभूषण विद्यावाचस्पति, सिद्धान्त-शास्त्री, जैन **जगत के** यशस्वी प्रवक्ता, अ. भा. दि जैन शास्त्री परिषद के कर्मठ अध्यक्ष, जैन गजट के प्रधान सम्पादक माननीय पं. **श्री** नरेन्द्रप्रकाश जैन के अभिनन्दन ग्रन्थ विमोचन पर मेरी मगलमय शुभकामनाएँ हैं। आप समाजनिष्ठ, स्वनामधन्य ओजस्वी वाणी तथा लेखनी से जैन जगत को नई दिशा प्रदान करते हैं। आप सहज सादगी, सरलता, निश्छल व्यवहार तथा मधुर मुस्कान के कारण सर्वप्रिय हैं। आपका जीवनदर्शन, चिन्तन, अभिव्यक्ति और सृजन अनवरत जैनधर्म, दर्शन, साहित्य, समाज, सस्कृति और इतिहास की अभिवृद्धि मे लगा है। ऐसे प्राचार्यश्री के यशस्वी एव सुदीर्घ जीवन की मगल कामना करता हूँ।

—पं. विजयकुमार जैन 'हितकारी'
रीठी, कटनी (म. प्र)

□

विविध विधाओं के धनी

यूँ तो बहुतों मे बहुत गुण होते है परन्तु श्रेष्ठ वही होते है जो उन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करते है। चन्द्र-सूर्य-ज्योतिर्मय होने के साथ ज्योति प्रदान भी करते है—इसीलिए वे महान् होते हैं, पूज्य और सुखद होते है। प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन भी विविध विधाओ के धनी बहुआयामी प्रतिभा से प्रतिभासित हैं। वे अपने वक्तव्यो, आलेखो और व्यवहार से एक नवीन चेतना के प्रतीक बन गए है। अतः ऐसे महान व्यक्तित्व के लिए मेरी मंगल कामनाएँ है। वे अमर रहे जब तक सूर्य-चन्द्र मे आलोक है, पुष्पो मे सौरभ और वीणा मे राग तथा कोयल मे कुहुक है, प्राचार्य जी स्वस्थ और कर्मठ बने रहें।

—इन्द्रसेन जैन शास्त्री
सहारनपुर, यू पी

□

आर्षमार्गी विद्वत्-रत्न

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन आर्षमार्गी विद्वत् परम्परा के अग्रगण्य विद्वान् तथा श्रमण और श्रावक सभी के विश्वास और सम्मान प्राप्त मनीषी है। आपका अभिनन्दन ज्ञान का, दर्शन का और सरल सादगी का अभिनन्दन है। आप कर्त्तव्यनिष्ठ, विद्या-विनय-विवेक तथा पुरुषार्थ के प्रतीक व्यक्तित्व के धनी हैं। अनेक संगठनो के कुशल सचालक, निस्पृही, यशोमडित, धीर-वीर कठिनाइयो में भी मुस्कराते रहना तथा विषम समस्याओं में भी सहजता से समाधान ढूँढ़ निकाल लेने के अनुपमेय कौशल से युक्त है। ऐसे दिव्य चेतना, दिव्य प्रकाश के पुज श्री प्राचार्य जी को अन्तस में अनन्त मगल कामनाएं है। प्राचार्य जी मेरे 'मामा' जी है, अतः उनका वात्सल्यभरा स्नेह मेरे लिए प्रेरणास्रोत रहा है।

—रमेशचन्द्र जैन 'तिलक'
बाराबकी

□

जो सन्तोष को ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य मानेंगे, वे कभी अन्याय से धन नहीं कमायेंगे, पाप से डरेंगे और सदैव सदाचार का पालन करेंगे।

अनन्त शुभाशीष

देव-शास्त्र-गुरुभक्त, धर्म-सस्कृति परम सरक्षक, सरस्वती के वरद पुत्र, तार्किक, परम ओजस्वी विद्वत् रत्न प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन, धार्मिक सस्कार युक्त, तीक्ष्ण बुद्धिवाले धाराप्रवाह व्याख्यान देने वाले, गौरवपुंज, महाविद्वान् स्वयं में एक महान् व्यक्तित्व है। अनेक गुरुवरो से आशीर्वाद- प्राप्त, माता-पिता तथा गुरुजनों के आशीषवचन प्लावित स्नेही मित्रवरों की शुभकामाओं से परिपूर्ण जन-जन के प्रिय, विद्वत्-आकाश के चन्द्र, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश ज्ञान के सागर और गुणों के आगर हैं। अपने स्पष्ट वक्तव्य तथा तार्किक व शालीन लेखनी से श्रमणो के शिथिलाचार और श्रावकों के अनाचार पर सटीक टिप्पणी देते हैं। वर्तमान मे अपने ओजपूर्ण तार्किक वक्तव्य तथा समीचीन दिशाबोधन मे अपना शानी नहीं रखते। समाज के गौरव-पुज महाविद्वान् प्राचार्य जी ने 'जैन गजट' के सम्पादन काल मे सोनगढी, एकान्तवादी, कुछ पण्डित नामधारी लोगों के अव्यावहारिक दुष्प्रचार को निर्मूल करने मे अथक और अद्वितीय कार्य किया है। आपकी सरस्वती-आराधना स्वयं के लिए ही नही, समाज के लिए भी है। अतः ऐसे वात्सल्यभावी, रत्नत्रय से अलंकृत प्राचार्य जी समाज की आँखों के तारे है। आप तीर्थक्षेत्र, धर्म सस्कृति के परम सरक्षक है। अत आप शतायु, यशस्वी, स्वस्थ कर्मठ रह वाणी की आराधना करते रहें, यही हमारी शुभ कामना है, यही मंगलाशीष है।

—प हुकुमचन्द शास्त्री
साहित्याचार्य, ललितपुर

□

चहुँमुखी व्यक्तित्व

आर्ष परम्परा के ख्यातिप्राप्त विद्वान्, आगमोक्त परम्परा के श्रद्धालु, देव-शास्त्र-गुरुभक्त, वयोवृद्ध वरिष्ठ विद्वान् प प्रवर नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद के अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन के शुभ अवसर पर हम गौरवान्वित होते हुए अभिनन्दन करते हैं। आप बाल्यावस्था से ही 'सादा जीवन उच्च विचार' की भावना से ओतप्रोत थे। आप अपने ओजपूर्ण वक्तव्यों के कारण छात्र जीवन से ही पुरस्कृत और सम्मानित होते रहे है। युवावस्था और शैक्षिक अध्यापन जीवन में अनेक संगठनों से जुड़े रहकर, आन्दोलनों का कुशल नेतृत्व करते रहे है। शास्त्री परिषद और महासभा आपके कर्मठ नेतृत्व और आदर्श व्यक्तित्व तथा निष्कलंक कृतित्व के कारण चतुर्मुखी विकास को प्राप्त हुई है। आप जिनागमानुसार अपने आचरण का पालन करने वाले, धर्मगुरुओं के प्रति पूर्ण निष्ठा भक्ति रखते हैं। अत गुरुओं से स्व-परकल्याणकारी आशीर्वाद भी प्राप्त है। अतः आदरणीय वयोवृद्ध विद्वान् पंडितप्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन को हार्दिक बधाई है। इस अखिल भारतीय अभिनन्दन के शुभ अवसर पर ऐसे महान् व्यक्तित्व के दीर्घायु होने की मगल कामनाएँ।

—पं. बाबूलाल जैन 'सेठिया'
मु पो. नैनवा, जि. बूंदी, राजस्थान

□

शकल से आज जो मानव दिखते हैं, उन्हें अकल और आचरण से भी मानव होना/दिखना चाहिए। आचरण-शून्य मानव से न धर्म का हित होने वाला है और न किसी मन्दिर या तीर्थ का।

उत्कृष्ट विचारों के धनी

प्राचार्य पं. प्रवर श्रीमान नरेन्द्रप्रकाश जी जैन से मेरा सम्पर्क पिछले 20 वर्षो से रहा है, जब आप एवं स्व. श्री श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री दोनों महानुभावो को दशलक्षण पर्व समाप्त होने पर कलशाभिषेक महोत्सव पर नाई की मण्डी बुलाया जाता था। आपके प्रवचनो को आजकल की नई पीढ़ी बहुत ही ध्यानपूर्वक सुनती है और आप अपनी ओजस्वी वाणी से एक अच्छी छाप उन पर छोडते हैं, जिसे वे हृदय मे धारण कर लेते हैं। आपके प्रवचन करने की एक अपूर्व शैली है, जिसको हर कोई नहीं कह पाता है। जब भी आप आगरा आते है, वड़े ही सरल स्वभाव से मिलते हैं। आपको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। क्रोध तो कभी आपके चेहरे पर देखने को मिला ही नहीं, और मान कषाय से तो आप कोसो दूर रहते हैं। कषाय आपमे नाममात्र को भी नहीं है। आपके विचार बहुत ही उत्कृष्ट है। इस काल में कोई इन जैसे विचारोवाला व्यक्ति शायद ही ढूँढने पर मिल सके। आप अपने जीवन मे सात्विक विचारों के धनी हैं, जो अनुकरणीय हैं।

मैं भगवान महावीर से प्रार्थना करता हूं कि आप शतायु हों और जैन धर्म की निरन्तर सेवा करते रहें। आपने अपने परिवार पर एक पुस्तक लिखी है, जिससे चार लाइनें वहुत ही मार्मिक हैं, मनन करने योग्य हैं–

कहीं पर सुख के सारे साज
कहीं नित गिरती रहती गाज
अनोखे ये कुदरत के खेल
जगत के रंग सभी बेमेल।

–शान्तिलाल बैनाडा, आगरा

□

वाग्मी व्यक्तित्व

"शतेषु जायते शूरा, सहस्त्रेषु च पंडितः
वक्ता दश सहस्त्रेषु वाग्मी भवति बा न बा।।"

ऐसे वाग्मी व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन अपने सरल, सहज, सरस, स्नेहिल व्यवहार तथा वाग्मिता से भारत के कोने-कोने मे अति लोकप्रिय है। उनका जीवन विद्या और समाज को समर्पित है। जहॉ वह अपने बौद्धिक वैशिष्ट्य और वाक्सिद्धि के लिए लोक विश्रुत हैं, वही शालीन तथा मनस्वी मनीषी के रूप में भी अनुप्रेरित करने वाले हैं। ऐसे समाजसेवी प्रकाण्ड विद्वान सद्श्रावक के कर्मठ व्यक्तित्व के अभिनन्दन पर मै मगल कामनाएँ तथा हार्दिक बधाई प्रेषित करता हूं।

–प्रेमचन्द जैन रपरिया, फिरोजाबाद

□

धर्म का गौरव बाह्य साधनों और उपासनाओं की चमक-दमक से नहीं, हमारी परम्परागत आन्तरिक संरचना से सुरक्षित रहेगा।

आगम-दीप्ति प्रदीप्त दीप हे आर्य हमारे!

एक मधुर स्मृति के रूप में प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन मेरे आदर्श बने हुए हैं। श्वेत धोती और बडे कालर की सफेद कमीज, परिपक्व प्रौढ़ उम्र, कुछ दुबले-पतले गौरवर्ण, उच्च ललाट, कुंचित केश, सीधी-सादी वेश-भूषा में प्रभावक एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व के धनी, जैन समाज के जागरूक प्रखर वक्ता के रूप मे उनकी छवि मेरी स्मृतियों में समाई हुई है। प्रशान्तमूर्ति जोश और उत्साह समेटे, नपी-तुली तीखी मारक भाषा, सधी हुई वाणी सहज ढंग से जब वे अपना वक्तव्य देते हैं तो आबाल वृद्धों से भरी अथाह भीड भी मंत्रमुग्ध हो उन्हें सुनने में स्वय को गौरवान्वित अनुभव करती है। आप अपने कुशल नेतृत्व से कितने ही आन्दोलनों को सफलता के शीर्ष पर पहुँचा चुके है। 'समाज गौरव' की उपाधि से विभूषित आप सदैव प्रणम्य हैं। आपके सम्पादकीय, सम्पादित पुस्तकें तथा अन्यान्य कृतियॉ समाज के लिए पथ-प्रदर्शक तथा प्रेरक है। निरन्तर बहुमुखी अध्यवसाय एव कृतित्व के कारण आप चिरस्मरणीय है। आपके गुणानुवाद को लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। अतः स्नेहिल प्रणाम के साथ–

'वक्ता' और 'प्रवक्ता' श्री 'प्राचार्य' हमारे,
अगले-पिछले नमन करें स्वीकार्य हमारे।
आगम-दीप्ति-प्रदीप्त दीप हे! आर्य हमारे,
हम तो केवल कारण, तुम ही कार्य हमारे।।

–अनिलकुमार जैन 'एडवोकेट'
कवि एव कथाकार
33, मिश्राना, शिकोहाबाद, उ. प्र.

□

एक विरल विद्वान हो

दिशाओं में जब हवा का रुख बदलता है
दिल समन्दर का लहर बनकर जब मचलता है।
सुबह की लालिमा जब किरण बनकर निकलती है
सफर कर रात के साये से जब सूरज निकलता है।
जिन धर्म की कसौटी पै अब कस चुका है कंचन
वाणी की सहर्षता, अब महक उठा है चन्दन
सिद्धान्तविद तुम हर सरल भाषा के सक्षम प्राण हो
हो विलक्षण तीव्र विद्युत की तरह विरल विद्वान हो
पांडित्य का भंडार हो श्रद्धान हो गणमान हो
सम्मान से शोभित सुशोभित तुम स्वय सम्मान हो।
आज इस दुष्काल में जब, आपसे प्राचार्य हैं
आशीष देने को दिगम्बर जैन मुनि आचार्य है।
प्रदीप, इन चरणों की सदा, रजकण, चढ़ाएं शीश पर
जिनके कि आलम्बन से मिलें शान्ति-सुमन दहलीज पर,
आपने जैनत्व उद्‌बोधन, प्रखर वाचन किया है
जन-जन तलक उलझन को सुलझाकर सुलभ दर्शन दिया है।
जैन दर्शन पर सदा ही नित नया आयाम दर्शाया
स्वाध्याय के प्याले में भरकर, ज्ञान का परसाद दीया है।

–प्रदीप जैन, म्यूजिक ग्रुप सिंगर

□

शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों के प्रयोग, द्यूत-क्रीड़ा, जीवहत्या, शिकार, मिलावट, भ्रष्टाचार आदि बुराइयों से अपने देश को एक आदर्श श्रावक बनकर ही बचाया जा सकता है।

गीत

कालेज 'पी.डी. जैन' नगर में,
गौरवमय जिमि इन्दु नखत में।
त्यों नरेन्द्रप्रकाश तुम्हारी,
है निष्ठा साकार जगत में।।
तुम निर्मित करते आये हो
सागर की लहरो पर राहें।
फैलाकर तुम उन्नत बाहे,
तोड रहे हो लघु सीमायें।

सदा जलाते अंधियारों मे,
ज्ञान-पुंज की विमल शिखाये।।
तुम रखते सकल्प अनूठे,
पूरी करते युग की चाहे।
तुम तो नितप्रति देते आये,
इतिहासो को नवल दिशाये।
घर-घर जा-जाकर फहराते,
अनुशासन की धवल ध्वजाये॥

नीलकण्ठ सम पीते जाते,
कवि-कोविद की करुण कराहें।
तमसो मा सद् गमय भाव से,
वर्षगॉठ मंगलमय आई।
मंगलमयी कामना लेकर,
देते साधक! तुम्हें बधाई।।
बढ़ो प्रगति की ओर ज्ञानवर,
'सुमन' सुमन से सदा सराहें।

—शारदा प्रसाद 'सुमन'
(प्राचार्य, गर्ग इण्टर कालिज, फीरोजाबाद)

□

उज्ज्वल नक्षत्र

वाणी भूषण प्रो. पं. नरेन्द्रप्रकाश जी उत्तर भारत के जैन समाज के उज्ज्वल नक्षत्र हैं—'कोहीनूर' है। वे उच्च कोटि के विद्वान्-वाणी के जादूगर है।

प्राचार्य जी ने धर्म प्रचार के माध्यम से नवयुवकों मे अच्छे सस्कारो का सचार किया है। सस्कारवान् समाज ही किसी देश क्षेत्र एव परिवार की प्रगति मे नींव के पत्थर का काम करती है। ऐसे पत्थरों को सजाने, सम्हारने में आदरणीय प्राचार्य जी का बहुमूल्य योगदान है। जो चिर स्मरणीय रहेगा। ऐसे साहित्य दीपक के लिए मै शत-शत नमन करता हुआ उनके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूं।

सांधेलिया अजित जैन
मन्त्री, शान्ति सेवा मण्डल
सि. क्षे. फलहोड़ी बड़ागॉव, (धसान) (म.प्र.)

□

अटल विश्वास और निष्ठा के धनी

प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जी से मिलने का अवसर मुझे आठ वर्ष पूर्व सागर में प्राप्त हुआ। परम पूज्य पं. गणेश प्रसाद जी वर्णी की 1994 में जन्म जयंती मानने का हम सागर वासियों को सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस शुभ अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद का अधिवेशन विशेष रूप से होना था और भक्तामर भारती ग्रन्थ का विमोचन भी होना था। इस अवसर पर अन्य विद्वानों के साथ-साथ प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी का सामीप्य प्राप्त

अपनी आत्मा की शान्ति के लिये सोना, चाँदी, धन, मकान, दवा-दारू आदि की आवश्यकता नहीं होती, उसके लिये आवश्यक है अपनी अन्तःशक्ति के जागरण या उद्घाटन की। सुख कहीं बाहर नहीं, अपने ही भीतर है।

हुआ। इस चार दिवसीय कार्यक्रम मे मुझे प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को नजदीक से देखने सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी स्पष्ट वक्ता हैं। गलत बात को तुरन्त नकार देना यह उनकी विशेषता है। सिद्धान्तों पर अटल विश्वास और निष्ठा के मुझे प्राचार्य जी में दर्शन हुए। संगठन को सम्बल प्रदान करने की अद्वितीय कला आप में दिखी। जब आपसे अध्यक्ष पद स्वीकार करने का सभी विद्वानो ने अनुरोध किया तो आपने एक शर्त रख दी। वह शर्त यह थी कि जिन पदो पर जो विद्वान अभी हैं वही विद्वान रहेंगे। यह सिंह गर्जना प्राचार्य जी ने जिस आत्म विश्वास और निष्ठा से की उसका ही प्रतिफल है कि विद्वानो के मध्य डॉ. नरेन्द्रप्रकाश जी प्राचार्य विद्वानों की माला में सुमेरू के समान सुशोभित होते हैं।

—सेठ मोतीलाल जैन
अध्यक्ष श्री खेमचन्द जेन चैरिटेबल ट्रस्ट सागर

□

विशिष्ट कृतियों के सर्जक

"आगम अध्यात्म के पुरोधा एव बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन अपनी सौम्य प्रकृति, सहजता और सरलता के लिए लोकप्रिय है। स्थितप्रज्ञ गूढ़ सैद्धान्तिक विषयों विषयक बेबाक टिप्पणी करने मे भी कभी सकोच नहीं करते।

विशिष्ट कृतियों के सर्जक, 'जैन गजट' के यशस्वी सम्पादक एव 'अर्हत वचन' जैसी शोध पत्रिकाओ के वरिष्ठ परामर्शी विद्वज्जनो के बड़े आत्मीय रहे है।

आप आनेवाले अनेक दशकों तक यथावत निर्निमेष भाव से अपना योगदान करते रहे, यही मगल कामना है।"

—कोकलचन्द जैन (वरिष्ठ पत्रकार)

□

आर्ष मार्ग के प्रतिपादक

ऐसी माता को धन्य है, जिन्हे इन महान पुरुषों को जन्म दिया इन्होने आगमानुकूल जिनवाणी का प्रचार-प्रसार किया मुझे भी उनका एक बार श्रुत पंचमी को मालपुरा मे समागम हुआ था। जिनवाणी को ऐसे हृदयांगम कराते हैं जैसे गागर में सागर भर देते हैं एक-एक करके उदाहरण सहित शका समाधान करते है। दूसरी बार उनका आशीर्वाद जयपुर मे पंच कल्याण पर मिला जिनवाणी पर शका-समाधान हुआ था। प्रभु से यही कामना करता हूं कि ऐसे विद्वान् शतायु ही नहीं शतायु से अधिक उम्र मिले जिससे जिनवाणी का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो। आप निर्भीक वक्ता हैं ऐसे महान पुरुषों की आवश्यकता है। ये ही शुभ कामना है।

—ताराचन्द जैन, पचेवर (राज.)

□

बाहरी पदार्थों के संसर्ग से मन में विकार उत्पन्न होते हैं और इन विकारों से बचने की दिशा में उठा हुआ पहला कदम है व्रत धारण करना।

स्वदेशे पूज्यते राजा....

श्रद्धेय प्राचार्य जी सरलता, सहजता के मूर्तिमान हैं। इनकी वक्तव्य शैली सहज ही आकर्षित करती है।

'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते' की युक्ति पूर्ण रूपेण सत्य करते हुए प्राचार्य जी एक यशस्वी विद्वान् के रूप में सम्पूर्ण भारत के श्रेष्ठ विद्वानो में श्रेष्ठता एवं वरिष्ठता से सुशोभित हैं।

श्रद्धेय प्राचार्य जी के प्रति नम्रीभूत होते हुए उनके स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन के लिए कामना करती हूँ।

—श्रीमती अर्चना जैन 'पम्मी', टीकमगढ़

□

विनयाञ्जलि

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।

आज समस्त जैन परम्परा में प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का नाम विद्वानो में शीर्षस्थ है। जिनके मुख पर सदैव प्रसन्नता, स्वभाव मे नम्रता, वाणी में मधुरता के साथ माँ जिनवाणी का सहज, सरल भाषा में प्रभुत्व किसी और में देखने-सुनने को नहीं मिलता।

सकारात्मक एवं गुणात्मक विचार ही श्रेष्ठ व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। आज के समय में धार्मिक पीढ़ी को ज्ञान की सीढ़ी से विवेक के द्वार तक पहुँचाने वाले प्रकाश स्तभ रूपी मार्गदर्शक हमारे परम आदरणीय प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन के दिव्य प्रवचन दर्शाते है– जीवन जीने की कला हमारे मानवीय कर्तव्य के साथ अध्यात्म का अनुपम मार्ग और इनके प्रवचनों में है शास्त्रोक्त बारीकियाँ व सिद्धांतों का अनुपम संगम।

जिस प्रकार बादलों से गिरने वाली बूँदें मिट्टी में गिरी तो मिट्टी बन जाती हैं। गर्म लोहे पर गिरी तो भस्म हो जाती हैं। सीप में गिरी तो मोती बन जाती हैं। पानी की बूँदें सही पात्र मिलने पर सार्थक रूप प्राप्त कर लेती हैं उसी प्रकार सत्पुरुषों का सत्सग भी हमारा जीवन सार्थक बनाने में अहम् भूमिका निभाता है। जिनके अमृतरूपी वचनों से हमारा जीवन महक उठता है। ऐसे पथ-प्रदर्शक, धर्म प्रभावक प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन को मेरी ओर से भावभरी विनयांजलि। आपकी दीघार्यु की मगल कामना वीर प्रभु से करती हूँ और माँ जिनवाणी का 'नवनीत' आपके माध्यम से हम सभी को हमेशा मिलता रहे। अंत में बस यही कहना चाहूँगी।

जन जन के नायक हो तुम मौलिक मानव भाषा हो।
सात्विक जीवन के मूल्यों की, सुंदरतम परिभाषा हो।

इन्हीं सद्भावना के साथ क्षमस्व

—ज्योति संतोषकुमार पाटनी, नागपुर

□

जीवन में जितना-जितना अधिक परिग्रह जुटता जाता है, हमारे मन की शान्ति उतनी-उतनी घटती जाती है। यदि परिग्रह में सुख होता तो तीर्थंकर क्यों छोड़ते?

जैनागम के प्रकाण्ड विद्वान्

जैनधर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास और समाज के साथ-साथ राष्ट्रीय आदर्श के क्षेत्र में आपकी अमूल्य देन है। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन जैन दर्शन एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। ऐसे मनीषियों के जीवन से समस्त समाज का हित होता है। उनके विचार प्रेरणाप्रद होते हैं एवं एक नई दिशा तथा नई सोच का मार्ग प्रशस्त करते हैं। स्वनाम-धन्य प्राचार्य श्री एक ऐसी ही सारस्वत विभूति हैं जिनकी ओजस्वी वाणी और ऊर्जस्वित लेखनी सम्पूर्ण साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान प्राप्त किए हुए है।

सरल स्वभावी, प्रखर प्रतिभा एवं प्रभावक व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य जी का अभिनन्दन वर्तमान पीढ़ी के लिए एक आदर्श प्रस्तुत तो करेगा ही साथ ही प्रेरणाप्रद भी होगा।

प्राचार्य जी दीर्घजीवी हों तथा समस्त जैन समाज उनके ज्ञान और सेवाओं से लाभान्वित होता रहे।

प्रदीपकुमार जैन, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
श्री भारतवर्षीय दि जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा।

□

सर्वप्रिय मनीषी

बुन्देलखण्ड प्रान्त के अनेक आयोजनो में माननीय प. नरेन्द्रप्रकाश जी से भेंट हुई है। उनके प्रवचन सुने है। अनेक अवसरो पर उनका मार्गदर्शन भी प्राप्त किया है। साधु-सन्तो, छोटे-बडे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, सस्था संचालको, समारोह-व्यवस्थापको और सभी वय के विद्वानों के बीच उनकी लोकप्रियता देखकर-अनुभव कर मै बहुत प्रभावित हूँ।

उनके अखिल भारतीय अभिनन्दन अवसर पर हमारी अनन्त मगल कामनाएँ समर्पित हैं। वे युग-युग जिये।

–सन्तोषकुमार जैन, (घडी छाप साबुन)
कटरा बाजार, सागर, म. प्र.

□

प्रभावक प्रवचनकार

जैन दर्शन के दुरूहतम विषयों पर सहज ,सरल, रोचक और प्रभावोत्पादक शैली में विश्लेषण करने वाले श्रेष्ठतम विद्वान् का यदि कोई नाम है तो वह है–प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी का।

मैंने अनेक अवसरों पर उन्हें सुना है। ऐसे सहज और प्रभावक प्रवचनकार और लेखक को कोटि-कोटि नमन।

–श्रीमती राजकुमारी देवकुमार रांधेलीय
महावीरकीर्ति स्तम्भ, कटनी (म प्र.)

□

ज्ञान से बढ़कर जीव का दूसरा कोई बन्धु नहीं है तथा ज्ञान-रहित अवस्था से बढ़कर उसका कोई शत्रु नहीं है। अतः सुखार्थी जीव को ज्ञान अवश्य धारण करना चाहिये।

सद्भाव और स्नेह की प्रतिमूर्ति

आदरणीय भाई सा. श्री नरेन्द्रप्रकाश जी का हमारे परिवार से विगत चालीस वर्षो का निकट से जुडाव है। खट्टे-मीठे अनेक मौकों पर उनका सामीप्य भी हम लोगों को मिला है। इस लम्बी कालावधि मे हमारे परिवार ने यह अनुभव किया है कि सहज और स्वाभाविक जीवन जीने की कला यदि सीखना है तो उसके एक प्रखर प्रतिनिधि है–आदरणीय भाई सा. नरेन्द्रप्रकाश जी। अनेक यात्राओ, आयोजनो, समारोहों तथा परिवार के बीच उनके सहज स्नेह और सद्भाव को उत्तरोत्तर वढता हुआ ही पाया है–'पुनरेवामिवर्धते'।

वे चिरायुष्क प्राप्त करे और भगवान् महावीर के दर्शन के इस विशिष्ट गुण को निरन्तर वितरित करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ–

–सौ सरोज सांधेलीय
28, सरस्वती नगर, दमोह, म. प्र

□

वे व्यक्ति नहीं, संस्था हैं

आदरणीय प्राचार्य जी का वात्सल्य एव मधुर-स्नेह मुझे प्राप्त है। सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्रों में उनके साथ कार्य करने का कई बार अवसर प्राप्त हुआ। 'प्रेरणा' (स्व. बाबू जयकुमार जैन स्मृति ग्रंथ) में उनके साथ मैंने भी सम्पादक के रूप में कार्य किया। उनके आगे विद्वता एव ज्ञान में, मै शून्य के समान हूं। परन्तु उन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को बराबरी का दर्जा दिया एव मेरे कार्य की अत्यन्त सराहना की। धन्य है उनकी सरलता एवं सद्व्यवहार।

मैंने आदरणीय प्राचार्य जी मे अद्भुत तेज एव ओज के दर्शन किए हैं। संगठन-क्षमता एव सभी को जोड़ने की कला मे आप पारखी है। आपका जीवनदर्शन, चिन्तन की अभिव्यक्ति, दर्शन-साहित्य के प्रति लगाव एवं भारतीय संस्कृति तथा श्रमण सस्कृति के प्रति समर्पण अद्वितीय है।

आप सादगी, सरल एवं निश्चल सद्व्यवहार के कारण लोकप्रिय तो हैं ही, साथ ही बुजुर्गो के प्रति श्रद्धा, समवयस्को के प्रति सद्भाव एवं अनुजो के प्रति वात्सल्यमयी दृष्टि उनके सदाचरण के अनुपम उदाहरण हैं।

आप व्यक्ति नहीं, संस्था हैं जिससे आज समस्त समाज लाभान्वित है। आदरणीय प्राचार्य श्री का वरदहस्त वात्सल्यमयी, आशीर्वाद सदा बना रहे ऐसी श्री वीरप्रभु से प्रार्थना है।

–डॉ. राजीव जैन
सम्पादक अ. भा जैसवाल जैन पत्र, आगरा

□

धर्म का काम विवादों को मिटाना है। धर्म का काम समता उत्पन्न करना है। धर्म का काम निराकुलता का उपार्जन है। धर्म का काम शान्ति का उद्भव करना है।

सांस्कृतिक चेतना के संवाहक

श्रीमान प्राचार्य जी से मेरे नजदीकी संबंध रहे हैं। उनका चुम्बकीय व्यक्ति है। उनके बारे मे जैसा सुना एव जाना कि आप प्रारम्भ से ही अत्यन्त मेधावी एव कुशाग्र बुद्धि के हैं। आप प्रतिभा-सम्पन्न एव प्रभावक वक्ता, अनुशासनप्रिय, राष्ट्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक चेतना के सवाहक, लब्धप्रतिष्ठित, मनीषी, ओजस्वी वक्ता और प्रख्यात लेखक है।

आदरणीय प्राचार्य जी दीर्घायु हों एवं समस्त समाज उनसे लाभान्वित होता रहे ऐसी श्री वीरप्रभु से प्रार्थना है।

भोलानाथ जैन

अध्यक्ष जैन साहित्य शोध-सस्थान, आगरा

□

निष्कलंक व्यक्तित्व

सामाजिक, धार्मिक एव शैक्षणिक क्षेत्र में अग्रणी, मधुर वाणी एव सद्व्यवहार के लिए प्रसिद्ध, ओजस्वी वक्ता, वाणी वाणी-भूषण एवं प्रख्यात लेखक माननीय पण्डित-प्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन समाज में सर्वमान्य है।

प्राचार्य जी से मेरे निकटता के सम्बन्ध हैं। उनकी विद्वत्ता एव कार्यकुशलता से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ।

व्याख्यानवाचस्पति एवं समाज-विभूषण तथा अनेक उपाधियों से विभूषित प्राचार्य जी सरलता एव सादगी की प्रतिमूर्ति है। सर्वत्र आपकी छवि एक निर्विवाद एवं निष्कलक व्यक्ति की है। श्री जैन अनेक-अनेक गुणों से प्रशस्त एव बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी मनीषी विद्वान् है। वे दीघायु हों एवं समस्त समाज को उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे, यही शुभ भावना है।

—निर्मलकुमार जैन

(ट्रस्टी-श्री महावीर दिगम्बर जैन ट्रस्ट, आगरा)

□

स्पष्टवादी प्राचार्य जी

मैं प्राचार्य जी की विद्वता, भाषाशैली एव सरल व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हूँ। परिषद् द्वारा आयोजित कई राष्ट्रीय कार्यक्रम में वे आगरा में मंच-संचालन कर चुके है। समस्त समाज उनकी ओजस्वी वाणी एवं प्रखर वक्तव्य से अत्यन्त प्रभावित है। प्राचार्य श्री सादा जीवन उच्च विचार से ओतप्रोत, सरल हृदयी, स्पष्टवादिता एवं निर्भीकता के स्पष्ट उदाहरण हैं।

मंगल कामनाओं सहित,

—मनोहरलाल जैन

संरक्षक आगरा दि. जैन परिषद

□

व्रती ही समाज की शोभा हैं। आज कुछ लोग व्रतों की और व्रतियों की महिमा को नकारने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन वह वक्त जल्दी ही आयेगा जबकि ऐसे लोग ही समाज द्वारा नकार दिये जायेंगे।

कर्मयोगी प्राचार्य जी

समाज के यशस्वी लेखक एव लोकप्रिय सम्पादक श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन उस गुलाब के प्रसून सदृश हैं, जो कष्ट रूपी कंटकों में पलकर भी देश व समाज के हित में गौरव की सुगन्ध दे रहे हैं। वे तपे तपाये कुन्दनवत् हैं। जैन समाज के विराट पुरुष, कर्मयोगी, धर्मानुरागी श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। जैन समाज के सजग प्रहरी हैं। समाज की उन्नति में रत धार्मिक क्रिया कलापो मे लीन समाज के आधार स्तम्भ हैं।

मानव जीवन की भलाई में सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहना ही उनके जीवन का आधारभूत सिद्धान्त है। सद्गुणो से परिपूर्ण आपका चरित्र व धर्म की प्रभावना समाज के लिए अनुकरणीय है, वदनीय है।

आप सादा जीवन उच्च विचार की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, सच्चे श्रावक, समन्वयवादी दृष्टिकोण के धनी उत्साही लगनशील पत्रकार हैं। आगरा दिगम्बर जैन परिषद् की ओर से शुभकामनाएँ।

—शिखरचन्द जैन सिंघई
अध्यक्ष
दिगम्बर जैन परिषद्, आगरा

□

सदा स्मरणीय

आज हमें अपने पारम्परिक जीवनधारा से कुछ हटकर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा साहित्य संस्कृति राजनीति, समाजसेवा आदि में आगे आना चाहिए। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन की तरह हमारे युवक-युवतियों को आगम की रक्षा तथा उत्थान में तन-मन-धन से लग जाना चाहिए। प्राचार्यजी ने अपने जीवन का अधिकांश समय धर्म और समाज की सेवा में व्यतीत किया है। वे अपनी स्पष्ट एव निष्पक्ष नीतियों के तहत समाज में सदा अविस्मरणीय रहेंगे।

अपने साहित्यिक जीवन की आलेख कृतियों द्वारा जैन समाज मे ध्रुव तारे की तरह सदैव क्षितिज मे रहने वाले श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की मैं वीर प्रभु से दीर्घायु की कामना करता हूँ।

—पदमकुमार बगड़ा
सम्पादक—आगम दर्शन
विजयनगर, कामरूप (आसाम)

□

जहाँ कषाय की उपस्थिति है, वहां सत्य और संयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है। सत्य-संयम के अभाव में तप-त्याग का निर्वाह भला कैसे हो सकता है?

आगमनिष्ठ जिनवाणी-सेवक

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन द्वारा माँ जिनवाणी की सेवा, प्राचीन ग्रंथों की टीका, नवीन साहित्य सर्जन, दो नयों के साथ प्रवचन, गोष्ठी में अधिकारपूर्वक कथन, आगमनिष्ठ शैली, प्रभावोत्पादक भाषण जीवन के प्रमुख कार्य रहे हैं।

आपके इन्ही गुणों के कारण अनेक शीर्षस्थ जैन संस्थाओं ने संपूर्ण भारतवर्ष की विभिन्न शहरों में आपको मानद उपाधियों से विभूषित किया गया है।

आपने अनेक गरिमापूर्ण समारोहों का सफल आयोजन एवं सचालन किया है। आपको अभिनन्दनग्रंथ समर्पण कर समिति आपको सम्मानित कर स्वयं गौरवान्वित हो रही है। आप दीघार्यु हो। आप इसी तरह माँ जिनवाणी की सेवा करें, यही मंगल कामना है।

—राजकुमार सेठी, वरिष्ठ संरक्षक
श्री दि. जैन महासभा

□

जुझारू व्यक्तित्व के धनी

जैन विद्वानो मे आज सबसे अधिक श्रद्धा से लिया जाने वाला नाम प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन का है। अपने जुझारू व्यक्तित्व और ओजस्वी वक्तव्यों से सभी को मंत्रमुग्ध करने वाले प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन उत्तर प्रदेश के ही नही वरन् सम्पूर्ण भारत के विद्वानों में सबसे अग्रसणी है। जैन आगम पर अधिकार पूर्वक विवेचना अपनी मान्यताओं पर अडिग रहते हुए सभी को उसे स्वीकार करने के लिए दृढ़तापूर्वक कहना, अपनी लेखनी से समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध बिगुल बजाना, प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की थाती रही है।

निजी जीवन मे अत्यन्त सरल, मृदुभाषी एव प्रथम भेंट में ही दूसरे पक्ष को प्रभावित कर देने की कला के धारक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की जीवन पर्यन्त साहित्य साधना ने उन्हे वर्तमान पीढ़ी के विद्वत्जन मे सबसे आगे का स्थान दिलाया हुआ है। आपकी सेवायें सदैव स्मरण में रखी जायेगी—हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

—एन. के. सेठी, जयपुर

□

विद्वान् धर्म की रक्षा करता है, वस्तु तत्त्व का निरीक्षण करता है, शिक्षा प्रदान करता है, अन्य कुछ नहीं चाहता, न श्रीमत्ता को प्राप्त होता है और न मान की अपेक्षा करता है। विद्वानों की यह कोई अपूर्व ही सृष्टि है, जो वंदनीय है।

प्राचार्य जी शतायु हों

आ. प्राचार्य जी का जिनवाणी सरस्वती के प्रति लगभग 50 वर्ष लगातार तन-मन व धन से सेवा करने का ऐसा उदाहरण मुझे दूसरा ध्यान नहीं आता।

मेरा सम्बन्ध आ. प्राचार्य जी से तब से रहा है जब मैं रात्रि पाठशाला में बालबोध की शिक्षा प्राप्त करता था। यह बात 50 वर्ष पुरानी है। ये स्व. पं. श्यामसुन्दरलाल जी के साथ हमारी परीक्षाएँ लेने आया करते थे। उसी समय से हम इनके जोशीले प्रवचनो के दीवाने है। आपके साथ प. श्यामसुन्दरलाल जी के भी प्रवचनो का लाभ हमेशा मिलता था। आज भी उस याद को ताजा होते ही हृदय गद्गद हो जाता है।

उनके इस धार्मिक सेवा भाव व लगन का मेरे जीवन पर भी बहुत प्रभाव पड़ा है।

मेरी हार्दिक भावना है कि ये शतायु हो और इनका मार्ग दर्शन हमें मिलता रहे।

जैन जगत के मनीषी विद्वान को शत बार नमन करता हूँ।

—मदनलाल जैन बैनाडा, आगरा

□

चतुर्मुखी व्यक्तित्व के धनी

पण्डितजी का नाम आज जैन समाज के उच्चकोटि के विद्वानो में अग्रगण्य है।

आदरणीय पंडितजी इस युग के अत्यधिक प्रभावशाली प्रवक्ता, लेखक, सम्पादक और समाजसेवी हैं। विद्वता, वक्तृता, और लेखन-तीनों की दृष्टि से उनकी सरस्वती अद्वितीय है। उनकी वाणी बडे-से-वडे कोलाहल मे भी नीरवता ला देती है और सुनने वाला उनकी दो टूक बातों को सुनकर उन पर विचार करने को मजबूर होता है। मुझे उनके धाराप्रवाह आकर्षक प्रवचनों को अनेको बार सुनने का अवसर मिला है। उनके प्रवचन इतने ठोस एव प्रभावशाली होते हैं जिन्हें सुनकर श्रोतागण गद्गद हो जाते हैं।

माननीय पंडितजी की प्रामाणिक ज्ञान साधना अद्भुत रूप से धाराप्रवाही तथा अखण्ड रही है। आपका सुसंस्कृत व्यक्तित्व समाज के लिए आदर्श एव वरदान स्वरूप रहा है। मेरी हार्दिक भावना है कि आप निरामय रूप से दीर्घ जीवी रहें और आपके परिपक्व अनुभवो से समाज लाभ उठाता रहे।

ऐसे चतुर्मुखी व्यक्तित्व के धनी विद्वान के चरणो में शत-शत नमन के साथ मै हृदय से शुभ कामना प्रेषित करता हूँ।

—माणिकचद जैन पाटनी
नेमीनगर इन्दौर

□

जिस प्रकार उबलते हुए पानी में अपनी परछाई नहीं दिखती, उसी प्रकार तीव्र कषाय के उदय में शुद्धात्मदर्शन नहीं हो सकता; तथा जिस प्रकार लोहे का गर्म गोला पानी को अपने भीतर सोख लेता है, उसी प्रकार कषाय से संतप्त आत्मा कर्म-जल को ग्रहण कर लेता है।

जैन विद्याओं के अग्रगण्य मनीषी

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, यह जानकर बहुत ही हर्ष है। जिनवाणी के प्रबल समर्थक, प्रचारक व आराधक के इस तरह प्रोत्साह करने की वर्तमान में बहुत आवश्यकता है। यह ग्रन्थ समाज को नई दिशा देगा, ऐसी भावना है। प्राचार्य जी चिरजीवी हों।

—निरंजनलाल जैन बैनाडा, आगरा

□

असाधारण प्रतिभा के धनी

यह कहने की आवश्यकता नही है कि प्राचार्य जी जेन समाज के विद्वानो की परम्परा में असाधारण प्रतिभा के धनी हैं। विद्वत् समाज मे उनका स्थान मूर्धन्य है। उन्होंने जीवनभर जैन समाज, धर्म एव साहित्य की उल्लेखनीय सेवाएं दी है। जो निश्चय ही चिरस्मरणीय रहेंगी। प्राचार्य जी उच्च विचार और सादा जीवन के मूर्त रूप है। उनमे राष्ट्रीयता के साथ-साथ विश्व-मानवता के मूल भाव समाविष्ट हैं। उनका निरभिमान पांडित्य और सहज उपलब्धता सबमे प्रेरणा और स्फूर्ति की भावना भरता है। वे आदर्श गुरु परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। 'जैन गजट' के प्रधान सम्पादक के रूप मे आपने जैन धर्म और समाज की जो सेवा की है वह हमेशा स्मरणीय रहेगी। आपके सम्पादकीय लेख मौलिकता लिए हुए होते हैं तथा अत्यन्त प्रेरणादायक होते हैं। जितना अच्छा वे लिखते है उससे कहीं अधिक अच्छा वे बोलते हैं। उनकी वाणी में एक ऐसी शक्ति है जो श्रोताओ को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

अभिनन्दन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

—तनसुखराय सेठी
अध्यक्ष, श्री दिगम्बर जैन समाज
इम्फाल (मणिपुर)

□

जुग-जुग जियें

मनीषियों का जीवन स्वयं का कम, समाजनिष्ठ अधिक होता है। आदरणीय श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने 1953 से एक साधक के रूप में जो विकास यात्रा प्रारम्भ की वह विविध क्षेत्रों में उत्तरोत्तर समृद्ध और सफल होकर उन्हे यशस्विता से अभिमण्डित करके वर्तमान 2003 मे अखिल भारतीय अभिनन्दन के सर्वोच्च शिखर पर अधिष्ठित कर रही है। मैं उनकी निष्ठा, आराधना और साहित्य-संस्कृति तथा आगम परायणता को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूं। वे जुग-जुग जियें।

—इंजीनियर अभयकुमार कासलीवाल
आर. के. पुरम, नई दिल्ली

□

क्या आपके नित्य देवदर्शन का नियम है? यदि नहीं तो आज ही प्रतिज्ञा कीजिए कि हम दर्शन किए बिना भोजन नहीं करेंगे। मत भूलिए कि दर्शन-पूजन गृहस्थ के छः आवश्यकों में से एक है।

विद्वानों में सिरमौर

समाज को दिशा प्रदान करने में विद्वानों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वह न केवल धर्म की प्रभावना करता है, वरन् समाज की दशा और दिशा को भी निर्धारित करता है। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश नामानुरूप सम-सामयिक सन्दर्भो में अपनी लेखनी और ओजस्वी वाणी से धर्म-परम्परा के अनुरूप दिशा देने में सजग हैं। जैन गजट में उनके सामाजिक सम्पादकीय समाज को दिशा प्रदान करते हुए उत्प्रेरित करते है। ऐसे मनीषी विद्वान् का अभिनन्दन वस्तुत· पूरी विद्वत् परम्परा का अभिनन्दन है। हमें विद्वानो के सम्मान और उनके आगमोचित निर्देशों पर चलकर स्व पर कल्याण की ओर प्रवृत्ति बनानी चाहिए। प्राचार्य श्री दीर्घावधि तक अपनी गौरवपूर्ण उपस्थिति से उपकृत करते रहेगे। ऐसी मंगल भावना व्यक्त करता हूँ।

—चक्रेश जैन (बिजली वाले)
प्राचीन श्री अग्रवाल दि जैन पंचायत, धर्मपुरा, दिल्ली-6

□

प्रखर सूर्य

विद्वत्रत्न, वाणीभूषण प्रखर वक्ता पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जी शास्त्री का प्रवचन सुनने का मुझे कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके तर्क संगत प्रवचनों ने जैन जगत में धूम मचा रखी है। आपकी आगम सम्मत तार्किक शक्ति लोगो का अनायास ही मन मोह लेती है। पण्डित जी, आज जैन जगत के शीर्षस्थ विद्वानों में से एक हैं।" जिस निर्भीकता से आप आगम की रक्षा कर रहे हैं वो अभूतपूर्व है। आपको आगम रक्षक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। ज्ञान गंगा के यह भागीरथ चिरायु हों एव जैन साहित्य एवं समाज का दिशा निर्देशन करते रहें यही मेरी जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है। आपका अभिनन्दन कर मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ।

जिनके कण्ठ बसी जिनवाणी, आगम का है ज्ञान भरा।
अमृत सी प्रिय ध्वनि बिखेरते, शास्त्रों का है सार भरा।।
अभिनन्दन है प्राचार्य आपका, कोटि नमन स्वीकार करें।
महावीर पथ के अनुयायी, जन-जन का सन्ताप हरें।।

—श्रवणकुमार जैन
ट्रस्टी—श्री दिगम्बर जैन भवन
मंत्री—श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर
मंत्री—श्री दिगम्बर युवक समिति
कोलकाता

□

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से पाप-समूह रूपी कुंजर के सौ टुकड़े हो जाते हैं, जैसे वज्र-प्रहार से पर्वत खण्ड-खण्ड हो जाता है।

उच्चकोटि के विद्वान्

आदरणीय श्री नरेन्द्रप्रकाश जी शास्त्री उच्चकोटि के विद्वान हैं। काफी वर्षो से समाज की सेवा कर रहे हैं। आ. पंडित जी का अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित करना उचित है एवं बहुत खुशी की बात है। पंडित जी के अभिनंदन से समाज का भी गौरव बढेगा।

मैं पंडितजी के प्रति अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

—मदनलाल चादवाड, रामगज मण्डी (राज.)

□

आपसे समाज गौरवान्वित है

'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अध्यक्ष तथा जैन गजट के सम्पादक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन 'जैन जगत' के उन गिने-चुने मूर्धन्य विद्वानों मे है। जिनके कारण हमारा समाज गौरवान्वित हुआ है।

वे एक उच्च कोटि के लेखक ही नहीं बल्कि ओजस्वी वक्ता भी हैं। उनकी वाणी मे अभूतपूर्व आकर्षण है। आपके प्रवचन हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी और समाज के कल्याण के लिए होते है। प्राचार्य जी की करनी व कथनी में कोई अन्तर नही है। वे एक उच्चकोटि के शिक्षक है तथा पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज, फिरोजाबाद के प्राचार्य के रूप में आपकी सेवाएँ सदैव स्मरण की जाएगी।

प्राचार्य जी कट्टर मुनि भक्त होते हुए भी वर्तमान मे मुनियो में व्याप्त शिथिलाचार के कट्टर विरोधी भी है तथा इस सम्बन्ध मे सम्पादकीय लेखों द्वारा समाज को जागृत भी करते रहते हैं। प्राचार्य जी निर्भीक और स्पष्टवादी वक्ता हैं, उन्हे जो कहना होता है उसे कहने में सकोच नहीं करते। मैं आपके प्रवचनों से काफी प्रभावित हुआ हूँ।

वीर प्रभु से प्रार्थना है कि आदरणीय प्राचार्य जी को स्वस्थ जीवन एवं दीघार्यु प्रदान करें ताकि वे अनेक वर्षो तक इसी प्रकार समाज का मार्ग दर्शन करते रहें।

—केशरीमल छाबड़ा
मत्री, श्री दिगम्बर जैन समाज
इम्फाल (मणिपुर)

□

जिस प्रकार अमृत-सिंचन से भी पत्थर पर कमल नहीं उगाये जा सकते, उसी प्रकार भाव-रहित नमस्कार से प्रभु-कृपा का लाभ मिलना भी सम्भव नहीं है।

शुभ कामना

श्रद्धेय प्राचार्य जी का जीवन धर्म और समाज के लिए समर्पित है। आप कई सस्थाओं के पदाधिकारी, सदस्य आदि हैं। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में आपने अपनी सेवाएँ प्रदान कर इस संस्था में एक नई जान फूँकी है। पंडित प्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी वर्तमान समाज के एक ऐसे प्रकाशवान दिवाकर है जिनकी लेखनी और वाणी से हमारे समाज को एक अपूर्व दिशा मिली है। आपके द्वारा लिखा गया आगम, साहित्य आपकी अपूर्व विद्वत्ता एव प्रतिभा का प्रतीक है। आपके प्रवचन सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र एवं चारों अनुयोगों पर बड़े मधुर शब्दों में होते है। अगाध विद्वान होते हुए भी आपके स्वभाव मे अत्यन्त सरलता, मधुरता है तथा किसी प्रकार का मद नही है।

शिक्षा के क्षेत्र मे भी प्राचार्य जी की सेवाएँ अनुपम हैं। आपने अनेक वर्षो तक पी.डी जैन इण्टर कॉलेज फिरोजाबाद के प्राचार्य के रूप मे अपनी सेवाएँ समाज को प्रदान की है। ऐसे उन्नत व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य जी का अभिनन्दन करना एक उत्तम बात है। मैं भगवान श्री महावीर स्वामी से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे चरित नायक प्राचार्य जी दीघार्यु हो, अवर्णवाद को इसी तरह खण्डित करते हुए आगम के प्रचार प्रसार में सार्थक हो–ऐसी कामना है।

–मांगीलाल छाबडा (डीमापुर)
भारतवर्षीय दि. जैन (धर्म सरक्षिणी) महासभा, लखनऊ

□

प्रशंसनीय कार्य-शैली

यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि जैन जगत के मूर्धन्य विद्वान प्रखर और धाराप्रवाह वक्ता, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष, जैनागम के पण्डित, मृदुभाषी, सरल परिणामी, सादा जीवन उच्च विचार की भावना से ओतप्रोत, पण्डित-प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का सराहनीय निश्चिय किया है।

प्राचार्य श्री कुशल लेखक तो हैं ही, साथ ही ओजस्वी वक्ता भी हैं। आगरा नगर के कई प्रमुख अखिल भारतीय कार्यक्रमों में उनके द्वारा किया गया कुशल सचालन स्मरणीय है। उनकी कार्यशैली प्रशंसनीय है। इस मंगल कार्य पर अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ और श्री वीरप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन दीर्घायु हों और समाज को निरन्तर उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहें।

–स्वरूपचन्द्र जैन मारसन्स, आगरा

□

क्या हम पाप, विकथा, परपीड़न, असत्य-संभाषण, अनर्थदण्ड आदि से बच पा रहे हैं? यदि नहीं, तो न तो हम निर्दोष हैं और न अपने को निर्दोष बनाने की साधना ही कर रहे हैं।

माँ सरस्वती विराजमान है

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी शास्त्री अतिकुशल वक्ता होने के साथ-साथ अच्छे विद्वान भी हैं इनकी जिव्हा पर हर समय माँ सरस्वती विराजमान रहती है।

शास्त्री जी हमारी जन्म भूमि फिरोजाबाद के है। इनके हजारो शिष्य हैं और हमारे बच्चों के भी गुरु आप ही हैं। प्राचार्य जी के प्रति हार्दिक शुभकामनाएँ

—रामगोपाल जैन
अध्यक्ष : बिहार राज्य दि. जैन धार्मिक न्यास बोर्ड
बिहार सकार पटना

□

शुभकामना-संदेश

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के यशम्वी अध्यक्ष एवं 'जैन गजट' के सम्पादक श्री नरेन्द्रप्रकाश शास्त्री के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी दीर्घायु हो एवं लम्बे समय तक समाज को शास्त्र ज्ञान दें, ऐसी वीर प्रभु से प्रार्थना है।

—ताराचन्द जैन, अध्यक्ष
झारखण्ड राज्य दिगम्बर जैन धार्मिक न्यास बोर्ड

□

शुभकामना

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी का जीवन आदर्शमयी है। अवकाश प्राप्त होने के पश्चात समाज, देश, व राष्ट्र की सेवा तन-मन व हृदय से कर रहे हैं। परम्परा का समर्थन करते हुए किसी की आलोचना भी अगर की तो अदम्य साहस के साथ निर्भिकता पूर्वक। समाज को जागृत करते हुए शिथिलाचार व एकान्तवाद के विरुद्ध आपने अनेकों लेख लिखे हैं और सम्पादक के रूप मे आपकी लेखनी से जैन गजट को बहुत सम्बल प्राप्त हुआ है।

हम आपके दीर्घायु व उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

—सौभाग्यमल राकेश जैन (काला)
ट्रस्टी—महासभा, लखनऊ

□

अनुचित से कितना बच पाए और उचित को कितना निभा पाए, स्व-मूल्यांकन का यही एक मात्र आधार है। इसी कसौटी पर अपने को कसिये और फिर सुख की नींद सोइए।

सकारात्मक चिन्तक

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, एक ऐसे व्यक्तित्व है, जिन्होने अपने स्वस्थ एवं सकारात्मक चिन्तन, प्रभावी वक्तृत्व शैली एवं निर्भीक लेखन द्वारा जैन समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। जैन गजट के माध्यम से उन्होने जैन पत्रकारिता को नई ऊँचाइयॉ प्रदान की हैं। उनका अभिनन्दन मां जिनवाणी का अभिनन्दन है। मेरी अत्यन्त शुभकामनाएँ स्वीकारे।

—कपूरचन्द घुवारा (पूर्व विधायक)
अध्यक्ष—श्री दि जैन सिद्धक्षेत्र
द्रोणगिरि छतरपुर

□

श्रद्धा सहित नमन

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन भारत वर्ष के जैन जगत के आकाश मे एक चमकदार सितारे की तरह है, जो ज्ञान, भक्ति, आराधना चिन्तन एव प्रकाशन के माध्यम से सतत् ज्ञानदान करते हुए, साधु समाज के विश्वास के आधार रहे हैं। आपके साथ कुण्डलपुर महोत्सव जो एक राष्ट्रीय महान महोत्सव था, मैं काम करने का इस अकिचन को अवसर प्राप्त हुआ था। मैंने आपसे बहुत सीखा बहुत पाया। वही मेरी धरोहर है। ऐसे विद्वान् मनीषी का अभिनन्दन कर सम्पूर्ण समाज गौरवान्वित है। आप आरोग्य, सुख, समृद्धि सहित ज्ञान धारा का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित करते रहें। दीर्घजीवी हो यही भगवान जिनेन्द्र देव से मगल कामना है।

—वीरेन्द्र इटोरया
अध्यक्ष-जैन पचायत, दमोह

□

सुधारवादी विचारक

आदरणीय प्राचार्य जी एक निर्भीक प्रवक्ता, सादगी की मूर्ति, सुधारवादी विचारधारा के निर्माता हैं। उन्होंने सदा नि:स्वार्थ भाव से समाज की सेवा की है। वे समाज के अन्दर फैली हुई बुराईयों को दूर करने मे सदा अग्रसर रहे हैं। आपने इन बुराइयों का दृढ़ता के साथ विरोध किया है। आप कभी भी अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए हैं। अपनी बात को दूसरो पर प्रभावपूर्ण ढग से समझाने में आप एक कुशल व्यक्ति हैं। आप जैसे विद्वान् निष्ठावान व्यक्ति को पाकर दिगम्बर जैन समाज अपने को आज गौरवान्वित महसूस करता है।

ऐसे सद्गुणी, प्रखर वक्ता, समाज सुधारक प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी इसी प्रकार समाज को मार्ग दर्शन देते रहें एव देव-शास्त्र-गुरु की सेवा से विमुख व्यक्तियो को सन्मार्ग दिखाते रहें, ऐसी मेरी वीर प्रभु से प्रार्थना है।

—मोतीलाल छाबडा, डीमापुर
अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन समाज, हिमापुर (नागालैण्ड)

□

सदाचारी और सभ्य मनुष्य का तो बलवान होना अच्छा है, किन्तु दुराचारी और निर्गुण मनुष्य का निर्बल होना ही ठीक है।

माँ शारदा के सपूत

जैन दर्शन के प्रचार-प्रसार और संवर्द्धन के लिए आज जिन विद्वानों के नाम बडे आदर और सम्मान से लिए जाते हैं, उनमें एक नाम प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, फीरोजाबाद का भी है।

हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के प्रेमी श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने पूरे जनपद में सफलतम मंच संचालक की जो ख्याति प्राप्त की और उसके साथ-साथ जैन दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर जिनवाणी का प्रचार और प्रसार किया उसने अखिल भारतीय स्तर पर योग्यतम विद्वानों की सूची मे उनको उच्च स्थान दिलाया। आप जैन दर्शन के प्रबल और प्रखर प्रवक्ता है। विशुद्ध भारतीय वेश-भूषा, शुद्ध खान-पान और अनुकरणीय आचरण के कारण आप जैन और जैनेतर समाज में बडे लोकप्रिय हैं। उनके प्रवचनों और उद्वोधनों की भाषा बड़ी सरल और सशक्त होती है। स्पष्ट चिंतन के धनी और दो टूक बात कहने वाले प्राचार्य जी को जनमानस बडे ध्यान से सुनता है।

जैन दर्शन के मर्मज्ञ, सद्गृहस्थ, सबके मित्र और मुनिभक्त प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश के अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशन और समारोह आयोजन से पद्मावती पुरवाल जाति का भी गौरव बढा है। प्रकाशक एव आयोजकों को बधाई और आभार।

—सुरेन्द्रबाबू जैन, उपाध्यक्ष
पद्मावतीपुरवाल दि. जैन पचायत, दिल्ली

□

दिल में उतर जाती हैं उनकी बातें

श्री पद्मावतीपुरवाल दिगम्बर जैन पचायत (पजी.) धर्मपुरा, दिल्ली-6 द्वारा पूर्व पचायत के कुछ अग्रणी एव वरिष्ट स्व. महानुभावो की स्मृति मे उनके परिवारजनों ने पंचायत के अतर्गत एक अवार्ड योजना प्रारम्भ की थी। वर्ष 2002 में अवार्ड योजना मे प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन को अवार्ड देने का निर्णय किया गया। तद्नुसार 2002 मे फिक्की सभागार मे प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी को अवार्ड देकर सम्मानित किया गया।

पद्मावती पुरवाल जाति के गौरव, कुशल मच संचालक, प्राचार्य के रूप मे अपनी प्रशासनिक योग्यता की श्रेष्ठतम छाप छोडनेवाले, जैन आगम के प्रखर प्रवक्ता प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने इस समारोह मे अपने 25 मिनट के उद्बोधन में जो भावनाएं व्यक्त कीं, उन भावनाओं का जनमानस द्वारा अनुमोदन का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस 25 मिनट के उद्बोधन मे 8 बार तालियाँ बजी। सरल, सुबोध हिन्दी, जिसमे खडी बोली का भी पर्याप्त पुट था, ने श्रोताओं को झकझोर दिया। एक ओर उन्होंने क्षमा का अर्थ, उसकी उपयोगिता, उसके व्यवहारिक पहलू पर प्रकाश डाला तो दूसरी ओर आचार्य श्री विमलसागर जी के जीवन-प्रसंग सुनाकर गुरुभक्ति में सराबोर कर दिया। एक और उन्होंने एकान्तवाद को अपनी व्यग-विनोद शैली से हतोत्साहित किया तो दूसरी ओर स्याद्वादमय आगम को श्रोताओं के दिल और दिमाग की गहराइयो में उतार दिया। जाति गौरव प्राचार्य श्री ने पद्मावती पुरवाल जाति को आगे बढ़ने के लिए सगठित प्रयास करने और कुछ रचनात्मक कार्यो से नए कीर्तिमान स्थापित करने का परामर्श दिया।

सरस्वती के वरद पुत्र, देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य उपासक प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के स्वस्थ और यशस्वी भविष्य की कामना करते है।

—पदमचद जैन, अध्यक्ष
पद्मावतीपुरवाल दि. जैन पचायत, धर्मपुरा, दिल्ली

□

संयमी और दयालु व्यक्ति के बल से समाज लाभान्वित होता है, जबकि असंयमी और भ्रष्ट मनुष्य की शक्ति से समाज को हानि उठानी पड़ती है।

शुभकामनाएँ

मुझे यह जानकर हार्दिक आह्लाद हो रहा है कि जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान, कुशल एव मोहक प्रवक्ता प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी शास्त्री का कलकत्ता में 25 दिसम्बर, 2003 को राष्ट्रीय स्तर पर भव्य अभिनन्दन किया जा रहा है।

1988 में जब मैं सहारनपुर से वकालत छोड़कर दिल्ली दि. जैन महासमिति कार्यालय में आया तो आदरणीय नरेन्द्र प्रकाश जी से परिचय हुआ, इनके कृतित्व को पढने का अवसर मिला तथा इधर-उधर सभा, समारोह, अधिवेशन आदि में मिलना भी होता रहा है।

यमुनापार की एक विशाल धर्मसभा, लाल मन्दिर, परेड मैदान, ऋषभाचल तथा अन्य कई स्थानों पर विशाल धर्म सभाओं में इनको सुनने का अवसर मिला। जैन दर्शन के गूढ़ से गूढ़ विषयों को अत्यन्त रोचक एवं सरल तरीके से समझा देते हैं प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी। और पलभर में ही मोहित कर लेते हैं श्रावको को।

जनवरी 2001 में श्रवणबेलगोला में आयोजित चन्द्रगिरि चिक्कबेट्ट महोत्सव को कवर करने के लिए मैं वहाँ गया। वही एक दिन विशाल धर्म सभा मे आदरणीय नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपनी अत्यन्त सरल, रोचक एवं हृदयस्पर्शी भाषाशैली में उत्तर को दक्षिण से जोड़ने वाला जो वक्तव्य दिया उसे सुनकर दक्षिण भारतीय श्रावक-श्राविकाएँ भी अवाक् हो देर तक तालियाँ बजाते रहे। हृदय से निकली आवाज के समक्ष भाषा की समस्या, कहीं भी, जरा भी आडे नही आई। उसी समारोह में जब मैंने कन्नड भाषा में अपना संक्षिप्त उद्बोधन दिया तो सर्वप्रथम आदरणीय नरेन्द्रप्रकाश जी ने मेरी पीठ थपथपाकर शाबासी दी थी। उन अमूल्य क्षणों का वर्णन तो शब्दातीत है।

सादा जीवन - उच्च विचार के सिद्धांत को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले जैन जगत के सरस्वती पुत्र एवं यशस्वी विद्वान् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के इस भव्य अभिनन्दन समारोह के पावन, स्मरणीय एव मंगलमयी अवसर पर मैं अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ तथा जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि ये दीर्घ काल तक पूर्णतया स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त रहते हुए जैन धर्म एव समाज की यूँ ही अनवरत सेवा करते रहे।

—रमेशकुमार जैन
(नवभारत टाइम्स), लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92

□

उत्कृष्टता के प्रतीक प्राचार्यजी

आगरा क्षेत्राधीन ग्राम जटौआ के जैन विद्वान प्रतिष्ठाचार्य पं. रामस्वरूप जी शास्त्री की धर्मपत्नी श्रीमती चमेली बाई ने 31 दिसंबर 1933 को बालक को जन्म देते हुए यह कभी नहीं सोचा होगा कि उत्पन्न बालक अपनी प्रतिभा से जैन धर्म एव समाज के उन्नयन में मील का पत्थर बनेगा। शुभाशुभ नक्षत्रों के सम्मिलन का प्रभाव बालक नरेन्द्रप्रकाश पर पड़ा और वह अपनी प्रतिभा की रश्मियों को बिखेरता चला गया, प्रारंभिक विद्याध्ययन के पश्चात्, आप पी डी. कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए उस समय तक आपने एम. ए. एल. टी. आदि योग्यता परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लीं थीं, परिणाम स्वरूप आपने इसी महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में, स्वेच्छा से अध्यापन छोड़कर, अपना जीवन धर्म व समाज के बारे में चिन्तन एवं उन्नयन में लगाने का निश्चय किया।

आपके गहन अध्ययन का ही यह परिणाम है कि आपके प्रवचन सारगर्भित, तर्कसम्मत, प्रभावी होने के साथ-साथ

'[illegible] तक [illegible]' की सीख को ध्यान में रखते हुए आत्महित हमारा मुख्य लक्ष्य बन जाए, इसी में इस [illegible] का गौरव है।

श्रोताओं को सुनने, मनन करने को विवश कर देते हैं मधुर ओजस्वी वाणी आपकी विशेषता है।

एक सफल शिक्षक नेता के रूप में प्रतिष्ठापित पंडित जी का जीवन जैन दर्शन, समाज एव सस्कृति के प्रेरक तथ्यों से महिमा मंडित होने के साथ आपमें सफल नेतृत्व के भरपूर गुण हैं यही इसका प्रमाण है कि-आप अ. भा. जैन शास्त्री परिषद् के सम्माननीय अध्यक्ष है।

आपके बारे में लिखना शोधकार्य से कम नही है, मै आपके जीवन में सुखशांति, समृद्धि एवं दीर्घायु के लिए मगलकामना करते हुए अभिनदन समर्पण पर भावांजलि व्यक्त करता हू।

—पं. पूर्णचन्द्र 'सुमन', दुर्ग

□

लघु बीज से विशाल वट वृक्ष

कृतज्ञ समाज अपने एक सर्वगुण सम्पन्न मनीषी को आदर देकर स्वय गौरवान्वित अनुभव करना चाहता है। कौन जानता था कि आगरा के एक छोटे से गॉव मे पिता पंडित रामस्वरूप जी शास्त्री और माता चमेली बाई जैन के घर जन्म लेकर यह बालक पूरे भारत वर्ष में, जैन वाङ्मय का शीर्ष विद्वान, लेखक, सुवक्ता, प्रशासक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं सुचारु आंदोलनकारी के रूप में जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में चमकेगा।

वाणीभूषण, व्याख्यानवाचस्पति, विद्यावाचस्पति, समाज विभूषण, व्याख्यान केसरी, सिद्धातरत्न आदि उपाधियाँ भी पडित नरेन्द्रप्रकाशजी के विराट व्यक्तित्व के समक्ष बोनी ही सिद्ध होतीं है।

पंडित नरेन्द्रप्रकाशजी दीर्घकाल तक जिनवाणी, जैन समाज और पूज्य साधु समुदाय की इसी तरह सक्रिय, स्वस्थ और सावचेत होकर सेवा करते रहें इसी भावना के साथ महाकवि अकबर इलाहाबादी के इस शेर से मै अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

हुजूमें बुलबुल हुआ चमन में, किया जों गुल ने जमाल पैदा
कभी नहीं कद्रदॉ की अकबर करे तो कोई कमाल पैदा

—निर्मल इटोरया, दमोह

□

विशिष्ट प्रभावी वक्ता

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी के वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व, प्राञ्जल भाषा-शैली मे ओजस्वी व्याख्यान/भाषण एव मधुर व्यवहार से सभी सामाज, विद्वान् एव साधु-सन्त सहज ही प्रभावित होते हैं। उनके प्रभावी ओजस्वी भाषण से सभासद्गण/श्रोतागण अनुशासन बद्ध होकर ज्ञानानन्दानुभव मे निमग्न रहते है। उनके भाषण में प्रयुक्त शब्द उनकी विद्वत्ता की छाप छोड़ते हैं। ऐसे विशिष्ट प्रभावी विद्वान् वक्ता विरले ही मिलते हैं। जयपुर एव अन्य अनेक बार उनका सान्निध्य प्राप्त कर गौरवान्वित हुये हैं। हम उनके आध्यात्मिक जीवन के मंगल अभ्युदय की शुभ भावना भाते हैं।

—प्रेमचन्द रांवका, जयपुर

□

भोजन वही उचित है, जिससे भजन में बाधा न आवे। हमारे आगम-ग्रन्थों में धर्म के साधन के रूप में एक सुसंगत आहार-नीति की चर्चा की गयी है।

प्रेरणा स्रोत प्राचार्यजी

भारतवर्षीय जैन समाज में प्राचार्य जी का नाम उत्साहवर्द्धक, प्रेरणा-प्रदायक, विश्वास-वर्द्धक, सुप्रसिद्ध अनुकरणीय लेखक एवं अनुशासक के रूप में माना जा रहा है। प्राचार्य जी की मौलिकता प्रशंसनीय है। प्राचार्य जी ने स्वयं के पुरुषार्थ के बल पर समस्त विशेषतायें प्राप्त की है। स्वयं की मौलिक प्रतिभा से वक्तृत्व कला के धनी बनकर जैन समाज तथा अजैन समाज के मंचों पर अपने उद्‌घोष से सर्वप्रिय बनकर साधु संघो, श्रेष्ठी वर्ग, एवं विद्वत्समाज में आदर्श मार्ग दर्शक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

सबको साथ लेकर सभी तरह के विरोधो मे स्थिर रहकर, अपने मार्ग पर अग्रसर होते हुये विद्वानों के लिये मार्ग दर्शक बन गये हैं। समाज मे प्राचार्य जी की इन विशेषताओ को प्राप्त करने के लिये मैं उनका शत शत अभिनंदन करता हूँ।

—प. बालमकुन्द शास्त्री, मुरैना म. प्र

□

अप्रतिम प्रतिभा के धनी

अप्रतिम प्रतिभा के धनी श्री नरेन्द्रप्रकाशजी में ऐसी अपूर्ण क्षमता है कि वे कठिन-से-कठिन परिस्थितियो मे भी अपना स्वतः संतुलन खोये बिना ही स्पष्ट एव अचूक निधि प्रदान करते है।

आपके चेहरे पर ऐसी अपूर्व-स्निग्ध एवं मन-मोहिनी छवि विराजमान रहती है जो सामने वाले को वरबश अपनी ओर आकृष्ट करती है। वे कुशल, कुशाग्रबुद्धि प्रखर वक्ता हैं, अपनी सुदृढ़-युक्तियो के आधार पर गहनतम प्रश्नो के जबाव बड़ी खूबी और क्षमता से प्रस्तुत करते हैं जिससे श्रोता स्वयं-संतुष्ट हो जाता है। आप स्याद्वाद एवं अनेकान्त शैली के मूर्तरूप उदाहरण हैं। चाहे लौकिक जीवन मे विद्यालयीन प्रशासन हो अथवा समाज के समक्ष गुरु-मर्यादा का प्रश्न हो, सभी जगह आपने गुरुता बनाये रखी है। इसलिए आज भी आप अजातशत्रु हैं।

जैन दर्शन के ऐसे पारगामी-तलस्पर्शी-ओजस्वी निर्भीक-यशस्वी व्यक्तित्व के प्रति हमारा कोटिशः अभिनन्दन वीर प्रभु से प्रार्थना है कि उन्हें दीर्घायु-स्वस्थ्य जीवन प्रदान करें।

—प. पूर्णचन्द्र जैन पूर्णेन्दु, पजनारी

□

आत्मीय शुभकामना

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी हमारी समाज तथा देश के आदर्श मार्गदर्शक सारस्वत मनीषी हैं। उनके प्रति अपनी आदराञ्जलि समर्पण कर अभिनंदन ग्रन्थ के प्रकाशन एव समर्पण के अवसर पर शुभकामनायें सम्प्रेषित कर गौरवान्वित हूँ।

—प. शिखरचन्द्र जैन "साहित्याचार्य" सागर

□

जीव दया, सम्यक्त्व और ज्ञान की आराधना, दान तथा परोपकार से जीवन मंगलमय बनता है। अपनी विद्या-बुद्धि, धन-वैभव और शारीरिक बल का सदुपयोग जो ऐसे अच्छे कार्यों में करता है, वह सज्जन कहलाता है।

सिद्धान्तरत्न प्राचार्य जी

सम्पूर्ण राष्ट्र में देदीप्यमान बहुमूल्य रत्न की भांति सैद्धान्तिक अड़िगता, मूलाम्नायी आर्ष परम्परा की संरक्षणता और वेवाक विवेचना के क्षेत्र में भाई पं. नरेन्द्रप्रकाशजी जैन का नाम बहुविश्रुत है। जिस प्रसादगुण पूर्ण भाषा और हृदयावर्जक शैली में आगम सम्मत विवेचन करते हैं उससे एक श्रुतदेवता के महान् आराधक का दिव्य व्यक्तित्व प्रणम्य हो उठता है। वस्तुतः वे श्रुतमर्मज्ञ 'सिद्धान्तरत्न' हैं। वे नर इन्द्र = नरेन्द्र है। श्री नरेन्द्र जी का प्रकाश अज्ञान-तिमिर का अपहारक बने इसी शुभ भावना के साथ उनके सुदीर्घ स्वस्थ यशस्वी जीवन की मगल कामना है।

–प्रतिष्ठाचार्य प. अमृतलाल जैन शास्त्री, दमोह (म प्र.)

□

प्रतिभा, पुरुषार्थ एवं पूर्वार्जित पुण्य की त्रिवेणी

सन् 1955 से 1959 तक मै फीरोजाबाद के उसी विद्यालय में हिन्दी-संस्कृत विभाग अध्यक्ष था जिसमें श्री नरेन्द्रप्रकाशजी हिन्दी विभाग मे थे। उस कालावधि में श्री नरेन्द्रजी मेरे अभिन्न साथी थे। आज वे लोकयश और विद्वत्ता के जिस शिखर पर है उसकी झलक उस समय भी कभी कभी प्रकट हो जाती थी।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपनी प्रतिभा, पुरुषार्थ और पूर्वार्जित पुण्य की त्रिवेणी के रूप मे जो कीर्तिमान स्थापित किये हैं वे अत्यन्त विरल और वरेण्य हैं।

मैं उनके उस व्यक्तित्व के प्रति आश्वस्त हूँ जो समन्वय का ध्वज बनकर समस्त जैन समाज के हृदय का हार बनेगा।

–प्रो. रवीन्द्रकुमार जैन, मद्रास

□

पत्रकारिता के आदर्श मानदण्ड

मैं "दिव्यध्वनि" मासिक का प्रधान सम्पादक हूँ। परावर्तन में "जैनगजट" प्राप्त होता है। उसमें प्रकाशित सम्पादकीय अग्रलेखो तथा अन्य आलेखों की विषय वस्तु से मैं बहुत प्रभावित हूँ। उनके आधार पर संक्षेप में, इतनी ही टीप पर्याप्त मानता हूँ कि वे पत्रकारिता के आदर्श हैं। वे चिरजीवी हों।

–डॉ. के. वी. लोखण्डे, शोलापुर (महाराष्ट्र)

□

आत्म विशुद्धि के मार्ग से हटना ही साधु का प्रमाद या शिथिलाचार है। किसी भी मुनि को रागी गृहस्थों के कार्यों में कदापि नहीं पड़ना चाहिए। उनके लिए तो कृत-कारित-अनुमोदना तीनों प्रकार से राग को छोड़ना ही अभीष्ट है, क्योंकि राग विषरूप है।

श्रुतप्रभावक मनीषी विद्वान्

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जन्म लेने वाले विद्वानों में प्राचार्य प. नरेन्द्रप्रकाशजी का प्रमुख स्थान है। वे 20 वर्ष की अल्पावस्था में आचार्य (अध्यापक) बने और जब उनका आचार्यत्व परिपक्व एवं प्रशस्त हो गया तब वे प्राचार्य हो गये। उन्होंने अपनी जीवन शैली से ही लोगों को बता दिया कि आचार्यत्व और प्राचार्यत्व क्या हैं। उनके जीवन से प्रेरणा लेकर हजारों विद्यार्थी आदर्श नागरिक बनकर देश और समाज की सेवा में संलग्न हैं।

प्राचार्य जी ने समाज को सही दिशा देने हेतु अपना तन, मन और धन सब कुछ समर्पित कर दिया। प्रायः पाँच दशकों से वे अपनी ओजपूर्ण और आकर्षक प्रवचन शैली द्वारा पर्यूषण, अष्टान्हिका, महावीर जयन्ती, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, संगोष्ठी एवं अन्य विशिष्ट अवसरो पर समाज को सजग-सावधान करते जा रहे हैं, पत्रकार के रूप में भी दो दशक से समाज को जागरूक बना रहे हैं। शतायु होने हेतु मगलकामना करते हुए ऐसे आदर्श व्यक्ति के चरणो में मेरा शत-शत नमन है।

—ऋषभचन्द जैन "फौजदार" एवं श्रीमती वीणा जैन, वैशाली (बिहार)

□

समाज के सजग प्रहरी

अभिनंदन की प्रतिमूर्ति प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी एक सुलझे हुए समर्थ यशस्वी मनीषी होने के साथ ही वक्तृत्व कला के धनी और जैनदर्शन के निष्णात पंडित हैं। उनका पांडित्य अध्यात्मपरक होते हुए भी श्रोताओं को मुग्धकारी रहता है।

सामाजिक और पत्रकारिता के क्षेत्र मे जैसे ही उनका पदार्पण हुआ, जैन गजट के निष्पक्ष और पैने उनके वक्तव्यों ने समाज में धूम मचा दी। पिछले दस-पंद्रह वर्षो के बीच समाज में ऐसी अनेक घटनायें घटित हुई जिससे समाज का विक्षुब्ध होना स्वाभाविक था, पर पं प्राचार्य जी ने एक सजग प्रहरी के रूप में इन घटनाओ की मीमासा की और समन्वयी विचारधारा के आधार पर वातावरण को सुस्थिर किया।

अनेक सगोष्ठियों मे हम लोग एक साथ एक मच पर रहे। वहाँ वे ओजस्वी और प्रखर वक्ता के रूप में सदैव छाये रहे। अनेक संस्थानो और प्लेटफार्मो से जुड़े रहने के कारण खट्टी-मीठी स्मृतियो का होना स्वाभाविक है, चाहे वह दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् की सदस्यता का प्रश्न हो या सगोष्ठियों में सहभागिता का इन सभी मे उनकी प्रशासन क्षमता तथा पारम्परिकता का आभास होता है। राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं का स्वतंत्र संगठन हो, वे पुरुष जीवी न हों, प्राचार्य जी के विचार निश्चित ही महिला वर्ग की प्रगति की दृष्टि से अर्थवत्ता लिए हुए हैं। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से भी यह स्वागतार्ह है।

पं. जी स्वस्थ और निरामय रहें, शतायु होकर अपनी स्वस्थ विचारधारा से समाज को लाभान्वित करते रहें, यही हमारी शुभकामना है।

—प्रोफेसर पुष्पलता जैन, नागपुर

□

जिन कार्यों की चरणानुयोग में आज्ञा नहीं है, उन सबकी गणना शिथिलाचार में होती है।

प्राचार्य जी वास्तविक प्राचार्य हैं

अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्री परिषद के यशस्वी अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी का व्यक्तित्व सम्पूर्ण विद्वत् परम्परा को अनुकरणीय है। समाज मे विद्वान् बहुत हैं, परन्तु प्राचार्य जी की जीवन शैली एक अलग ही प्रकार की है। वह स्वार्थपरता एवं पक्षपात से कोसों दूर हैं। इसी कारण से उनको शास्त्री-परिषद का दो बार निर्विवाद अध्यक्ष बनने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

वह किसी जैन संस्कृत महाविद्यालय में नहीं पढे, न ही उन्होंने कोई धार्मिक परीक्षा उत्तीर्ण की है, फिर भी विद्वानों के 'शिरोमणि' के रूप में जाने जाते हैं।

ऐसे पण्डित प्रवर के चरणों में मैं अपनी विनयांजलि समर्पित करता हूँ तथा भगवान पार्श्वनाथ से यह प्रार्थना करता हूँ कि पण्डित जी शतायु हों।

—डॉ. हरिशचन्द्र जैन शास्त्री, मुरैना

□

समन्वयवादी विद्वद्रत्न

प्राचार्य जी के दीर्घ जीवन की शुभकामनाओं सहित मैं उन्हे प्रणाम करता हूं। ऐसे नि:स्पृह कर्मठ ख्याति प्राप्त विद्वद्रत्न का अभिनन्दन और उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने का निर्णय जिन भी महानुभावों ने लिया है, वे सभी बधाई के पात्र हैं।

—पं. पन्नालाल जैन, इलाहाबाद (उ. प्र.)

□

विनयवान् सिद्धान्तवादी मनीषी

साहित्य मनीषी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के संसर्ग से एक विशिष्ट शैली के अधिगृहीता प्राचार्य प. नरेन्द्रप्रकाश जी सातिशय प्रतिभा सम्पन्न, विनयवान्, सिद्धान्तवादी बहुश्रुत मनीषी हैं। विनय, सरलता, मृदुता, मिलनसारिता और प्रसन्नता बिखेरना उनके व्यक्तित्व के पर्यायवाची हैं।

आर्ष मार्ग का सम्वर्द्धन न्याय की तुला का संरक्षण, सुदृढ अनुशासन-व्यवस्थापन उनके व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण हैं। व्यष्टि से समष्टि की हित साधना में निरन्तर निरत प्राचार्य जी को शत शत वन्दन, शत शत प्रणाम।

—प्रतिष्ठाचार्य पं. जयकुमार जैन शास्त्री, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

□

सम्यग्ज्ञान और सद्गुणों की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्ति के लिए दीक्षा धारण की जाती है।

हार्दिक अभिनन्दन

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन प्रख्यात साहित्यकार, सिद्धहस्त, लेखक, नेता, वक्ता, धार्मिक प्रवचन कर्त्ता सम्पादन कला में दक्ष हैं। आपका जीवन कर्त्तव्य परायणता, शैक्षिक शालीनता, राष्ट्रीयता, सहिष्णुता, सद्‌भाव, मेल मिलाप एवं साहचर्य का है। आपका सादा जीवन सरल स्वभाव तो है ही आचरण मे पवित्रता और शालीनता भी है। आप इस युग के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान हैं। आपकी यह पुण्य प्रकृति (शुभोपयोग) सम्यक् दर्शन सहित हो। जो संवर निर्जरा का कारण बने और यही शुभोपयोग निकट काल मे शुद्धोपयोग को प्राप्त हो। आप दीर्घायु हो। आपका जीवन शाश्वत सुख, समृद्धि से युक्त समाधिपूर्वक हो, ऐसी जिनेन्द्र देव से प्रार्थना है। इन्ही शुभकामनाओं के साथ आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—खुशालचन्द्र "शास्त्री", द्रोणागिरि

□

पं. बरैया जी के विद्यालय की शान

गुरूणां गुरु पं. गोपालदास जी बरैया की आगमोक्त विद्या-बगिया में आपके पिताश्री ने विद्या रूपी पेड का बीजारोपण किया और उनसे ही प्राचार्य जी ने धार्मिक सस्कार प्राप्त किए।

श्रेष्ठ सन्तों मे एक नाम पूज्य प्रातःस्मरणीय, निमित्तज्ञानी आचार्य 108 विमलसागर जी महाराज का है और श्रेष्ठ विद्वान् के रुप मे प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी फिरोजाबाद का नाम आता है। इन्होंने अपनी सैद्धान्तिक, ओजस्वी और निर्भीक शैली से सभी को सम-सामायिक घटनाओं पर प्रेरित किया है। आप सदैव नवोदित विद्वानो के प्रेरणा-पुज और स्नेहिल भावना से अग्रसर होने का मार्गदर्शन करते है।

पूजनीय प्राचार्य जी शतायु होकर हम सभी को ज्ञान रूपी गगा से विद्या रूपी जल पिला कर सञ्जीवित करते रहे।

—पं रमेशकुमार जैन शास्त्री 'दाऊ', जोबनेर

□

बेजोड़ सम्पादक

जैन गजट में प्राचार्य जी के सम्पादकीय आलेखो से उनकी विद्वत्ता का समाज को लाभ मिलता है। प्राचार्य जी के अभिनन्दन पर हार्दिक शुभकामनायें।

—शान्तिकुमार "शास्त्री", द्रोणगिरि (म प्र.)

□

एक सत्पुरुष वह है, जो अपने कर्तव्य का पालन करता है। कर्तव्यपालन ही धर्म है।

महान् विभूति

अपनी बुलन्द आवाज व सशक्त प्रखर लेखनी में सिद्धहस्त अखिल भारतवर्षीय दि जैन शास्त्री परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष श्री आदरणीय प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी से सारा जैन समाज प्रकाशमान और गौरवान्वित है।

जैन गजट के यशस्वी सम्पादक प्राचार्य जी के लेख मील के पत्थर साबित होते हैं, जो दिल दिमाग को झकझोर देने में समर्थ होते हैं। आपकी विद्वत्ता से कोई भी अनजान नही रहा है। मुझे भी कतिपय संगोष्ठियों, अधिवेशनो में आपकी प्रवाहमयी वाणी को हृदयङ्गम करने का अवसर मिला है। निश्चित ही आपकी सेवा जैन समाज के लिए स्तुय हैं। अनेक श्लाघनीय निर्णय समाज हित मे आपने किए हैं। समाज सदैव आपसे गौरवान्वित रहेगा।

आपके यशस्वी जीवन के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए शतायु हों ऐसी भावना के साथ ऐसे महान व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धारक मनीषी पुरुष को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

—सुनील जैन "संचय" शास्त्री,
नरवाँ (सागर) (म. प्र.)

□

सरस्वती पुत्रों में अग्रज

सरस्वती के भण्डार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खर्वे घट जात।।

इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन जगत के, सरस्वती के बडे पुत्र के रूप मे सम्माननीय, निडर, सम-सामयिक घटनाओं के न्यायाधीश आदर्श पुरुष है। हम सभी नवोदित लोगो के पथ-प्रदर्शक एवं प्रेरणापुंज है आपके ज्ञान-विज्ञान एवं प्रवचन कला की मर्यादा असीम है। मैं आपके दीर्घजीवी होने की मंगल कामना करती हूँ।

—श्रीमती कल्पना जैन, मैनवार

□

विद्वत्त का सम्मान

परमपूज्य श्रुतनिधि, ज्ञान वारिधि, सम्यक्त्व शिरोमणि आचार्य कल्प श्री 108 श्रुत सागर जी महाराज 20वीं सदी के महान् श्रमण रत्न थे। अजमेर में अपने ऐतिहासिक चातुर्मास मे भूतपूर्व महासभाध्यक्ष श्री चॉदमल जी पाण्ड्या को उद्बोधन प्रदान करते हुए कह रहे थे कि जो संस्था व समाज समर्पित निःस्वार्थ सेवाभावी चरित्रवान विद्वानों का सम्मान करती है, वह सस्था अपना गौरव बढ़ाती है। औद्योगिक महानगर कोलकाता के धर्मप्राण समाज ने यह सत्कार्य करके अपना गौरव बढ़ाया है। सरस्वती पुत्र, आर्ष मार्ग पोषक, अनवरत सेवाभावी गुरुभक्त, निर्भीक वक्ता प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के प्रति हमारा हार्दिक साधुवाद है।

—शान्तिलाल बड़जात्या
संगठन मंत्री - श्री भा. दि. जैन धर्मसरक्षणी महासभा
(राजस्थान शाखा)

□

सहनशीलता, नम्रता, सरलता, संतोष आदि आन्तरिक गुणों का विकास ही पर्व का मुख्य लक्ष्य है।

निःस्वार्थ समाज सेवी

जीवन समाज की एक अमूल्य धरोहर है। निष्काम सेवा के माध्यम से उसे समाज हित में समर्पित करने का भाव प्रत्येक व्यक्ति के मन में रहना चाहिए-- प्रख्यात यशस्वी विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी के ये उद्‍बोधन हम सभी कार्य कर्त्ताओ को समाज हित हेतु सेवाकार्यों की ओर निरन्तर प्रेरित करता रहता है। कोलकाता समाज प्राचार्य जी के प्रति अनन्य श्रद्धा एवं आदर रखता है। आज कोलकाता समाज ऐसे यशस्वी मनीषी का अभिनन्दन कर स्वयं गौरवान्वित हो रही है। प्राचार्यजी के प्रति हार्दिक शुभकामनाओं सहित उनके दीर्घायु जीवन की मगल कामना है।

—अनिलकुमार बड़जात्या
कोषाध्यक्ष - श्री बं. बि. उ. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी
कोलकाता

□

युग युग सुयश पताका फहराओ तुम!

मां जिनवाणी के अन्यतम उपासक, समर्पित साहित्य सेवी, स्वतत्र चिन्तक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी ने जिस निश्छल, निष्काम भाव से लोगों को संस्कारित करने, ज्ञान दान देने का अनुपम अप्रतिम कार्य किया है, वह उनके जीवन की सबसे अमोल निधि है। सत्तर वर्ष की आयु में 50 वर्षो से जिन्हों ने यशोलिप्सा, एवं याचकवृत्ति से दूर रहकर सरलता सादगीपूर्ण तरीके से अपनी प्रखर वाणी एवं लेखनी से मानव मात्र को संतृप्त किया है, ऐसे मनस्वी विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की यशोगाथा युगों युगों तक याद की जाती रहेगी। अभिनन्दन की इस अभूतपूर्व मंगल बेला पर हम यही कामना करते है कि—"नरेन्द्रजी, युग युग सुयश पताका फहराओ तुम"!

—हरखचन्द सरावगी, कोलकाता

□

मानवीय मूल्यों के संरक्षक

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन वर्तमान समय में एक आदर्श व्यक्ति के रूप में देश, समाज को दिशा दे रहे है। अपने शिक्षा, संयम एवं साधना के जीवन्त प्रतिबिम्ब को दर्शाते हुए उन्होंने मानवीय मूल्यों-नैतिकता, न्याय, ईमानदारी, कर्त्तव्य परायणता, सिद्धान्तप्रियता का संरक्षण एवं संम्वर्द्धन किया है। विद्वानों के विद्वान प्राचार्य श्री का अभिनन्दन कर दिगम्बर जैन समाज कोलकाता गौरवान्वित है। इस अवसर पर आपके दीर्घायु यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

—मोहनलाल सरावगी, पाण्डया, कूचबिहार

□

पवित्रमना व्यक्ति पापों से तौबा कर लेता है तथा भक्तिरूप नौका पर सवार होकर संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

वास्तविक आदर्श पुरुष - प्राचार्य श्री

आध्यात्मिक एवं साहित्यिक वातावरण में पुष्पित, पल्लवित प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी का जीवन मानव मात्र के लिए एक आदर्श उपस्थित करता है। जिज्ञासु एवं आज्ञाकारी बचपन, गम्भीर एवं चिन्तनशील युवा संस्कार, अध्ययनरत एवं मार्गर्शक वर्तमान रूप, प्राचार्य जी के जीवन शैली के इन अनेक अन्यतम उदाहरणों से उनके हजारों छात्रों ने तो अपने आपको संस्कारित किया ही है, जैन समाज का विद्वत् वर्ग भी उनके चारित्रिक जीवन शैली से प्रेरणा प्राप्त करता है। जैन समाज का बच्चा बच्चा, चप्पा-चप्पा उनकी शिक्षा साधना को नमन करता है। अभिनन्दन की इस बेला पर वास्तविक आदर्श पुरूष जी को शत् शत् प्रणाम।

—महेन्द्र पाटनी (एम. एस.) कोलकाता

□

यशस्वी विद्वत्वर

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी से कोलकाता समाज का अनेक वर्षो से सम्बन्ध रहा है। यहाँ आयोजित शिक्षण शिविर, प्रशिक्षण शिविर, विद्वत् सम्मेलन आदि का जो भी आयोजन समायोजित किया जाता है, उसमें प्राचार्य जी सदैव मार्गदर्शन, सहयोग एव आशीर्वाद देते आये हैं। प्राचार्य जी सरल स्वभावी एवं नि:स्वार्थ सेवाभावी तथा विनय गुण से सम्पन्न हैं। उनके अभिनन्दन की यह बेला उन्हें मंगलमय जीवन की ओर अग्रसर करे यही शुभ भावना है।

—शान्तिलाल बाकलीवाल
मंत्री—श्री दिगम्बर जैन सम्मेलन, कोलकाता

□

साहित्यानुरागी-प्राचार्यजी

जैन दर्शन के गहन अध्येता, प्रबुद्ध मनीषी प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी सादगी, सरलता, विनम्रता, धर्मनिष्ठता, उदारता, संस्कार शीलता की जीवंत प्रतिमूर्ति हैं। आपके सद्व्यवहार ने हजारो छात्रो का ही मन नहीं जीता वरन् समग्र भारत की जैन समाज आपके समक्ष नतमस्तक है। आपकी जिनवाणी साधना आपकी सुमधुर वाणी से जब नि:सृत होकर जनमानस को सतृप्त करती है, तब ऐसा लगता है मानो ज्ञान पिपासुओं को अमृत रूप बूंदें प्राप्त हो गई हों। साहित्यानुरागी प्राचार्य जी के राष्ट्रीय अभिनन्दन की इस बेला पर उनके यशस्वी दीर्घायु जीवन की कामना करते हैं।

—कल्याणमल झाझरी, कोलकाता

□

क्या आपके नित्य देवदर्शन का नियम है? यदि नहीं तो आज ही प्रतिज्ञा कीजिए कि हम दर्शन किए बिना भोजन नहीं करेंगे। मत भूलिए कि दर्शन-पूजन गृहस्थ के छः आवश्यकों में से एक है।

कांति जो कीर्त्ति से दूर रहती है

सादगी, सरलता, निश्छल व्यवहार के लिए सर्व प्रिय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन समाज की एक ऐसी विभूति हैं, कांति हैं जो सदैव कीर्ति से दूरी बनाये रखते हैं। अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का पालन ही उनका लक्ष्य रहता है। कभी भी यशोलिप्सा एवं मान सम्मान की आकांक्षा उनमें नहीं दिखी। ऐसे निस्पृही विद्वान का अभिनन्दन कर कोलकाता समाज ने अनुकरणीय कार्य किया है, प्राचार्य जी के प्रति हार्दिक शुभ कामना प्रगट करता हुआ मैं उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

—केवलचन्द पाटनी, कोलकाता

□

सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत

समाज हित तथा अपने शैक्षणिक दायित्वों में प्राचार्य जी की निष्ठा अनुकरणीय है। सगठन क्षमता, नेतृत्व गुण और सृजबशीलता का दिग्दर्शन उनके जीवन से उजागर होता है। सास्कृतिक चेतना से परिपूर्ण उनके लेखों तथा उनकी वाणी ने समाज को सस्कारित कर एक आदर्श उपस्थित किया है। प्राचार्य जी वस्तुतः समाज के सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत कहे जा सकते हें। अभिनन्दन के इस अवसर पर हार्दिक शुभकामनाओ के साथ उनकी निष्ठा को नमन है।

—कमलकुमार पहाडिया, कोलकाता

□

श्रुत देवता के आराधक

प्राचार्य जी ने अपना समस्त जीवन श्रुत देवता की आराधना में समर्पित किया है। मॉ जिनवाणी के प्रचार प्रसार मे अपनी शक्ति को प्रस्तुत कर आपने जैन धर्म, सस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास और समाज सगठन के संरक्षण सवर्द्धन का अप्रतिम कार्य किया है। आपकी ओजस्वी प्रखरवाणी ने अनेकों व्यक्तियो को सन्मार्ग पर आरूढ़ किया है। प्राचार्य जी शतायु हो तथा इसी प्रकार समाज को दिशा एवं मार्ग दर्शन देते रहे— यही अभिलाषा है।

—हंसराज सेठी, कोलकाता

□

मन की निर्मलता ही धर्म है

प्राचार्य जी का आशीर्वाद कोलकाता समाज को सदैव मिलता रहता है, गत शिक्षण शिविर में उन्होंने यहां मार्ग दर्शन देकर धर्म का मार्ग बताया था। कोई कहता है, मंदिर पूजा पाठ में धर्म है, तो कोई कहता है, तीर्थयात्रा मे धर्म है, कोई कुछ कहता है तो कोई और कुछ। पर जब प्राचार्य जी ने कहा कि मन की निर्मलता पवित्रता ही धर्म है तो बात सीधे समझ में आ गई। धर्म का मतलब हमने उन्ही से सीखा है समझा है। प्राचार्य जी की श्रुति साधना को नमन है।

—शकुन्तला देवी गगवाल, कोलकाता

□

शक्ल से आज जो मानव दिखते हैं, उन्हें अक्ल और आचरण से भी मानव होना/दिखना चाहिए। आचरण-शून्य मानव से न धर्म का हित होने वाला है और न किसी मन्दिर या तीर्थ का।

प्रभावी प्रवचनकार

उत्तरप्रदेश के छोटे से ग्राम जटौआ (जिला आगरा) में जन्म लेकर उन्होंने आध्यात्मिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जगत में उच्चतम कीर्तिमान स्थापित किए हैं। उन्होंने अपनी विलक्षण विद्ववत्ता एवं वाक्चातुर्य से आचार्य विमलसागर जी, आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य विद्यासागर जी प्रभृत्ति संतो, सामाजिक नेतृत्व और श्रेष्ठियों के बीच प्रभावी समन्वय स्थापित किया है। उनके प्रभावी प्रवचनों पर आधारित पुस्तकें उनके गम्भीर पाण्डित्य को प्रदर्शित करती है। उनके द्वारा लिखित पुस्तकें शास्त्रीय ज्ञान मंजुषा की भाँति संग्रहणीय है। उन्होंने शास्त्रीय विषयों पर प्रामाणिकता के साथ संपादकीय लिखकर सम्पूर्ण राष्ट्र में ख्याति प्राप्त की है। उनके आलेख सुरूचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक है। उन्होंने जैन सारस्वत अभियान में राष्ट्रीय नेतृत्व प्रदान किया है। उन्होंने जिनवाणी की निःस्वार्थ एवं निष्ठापूर्वक सेवा की है। वे सिद्धहस्त लेखनी एवं प्रभावी/प्रेरणादायक प्रवचन शैली के धनी है। सरस्वती सदैव उनकी जिह्वा पर नाचती है।

आध्यात्मिक सामाजिक एवं मानवीय सरंचना के गहन सूत्रों के संचालन में उन्होंने सदैव अद्भुत सफलता प्राप्त की है। महान चित्रकार एवं मूर्तिकार माइकेल एंजिलो की भाँति भी वे अपनी वाणी के ओज और माधुर्य से जैन आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जगत से दुष्कर भित्तिचित्र बनाने में सफल रहे है। उन्होंने विभिन्न संप्रदायों के बीच सहिष्णुता सौहार्द एवं मैत्री पूर्वक सफल समन्वय एवं एकीकरण स्थापित कर सांप्रदायिक समन्वय का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी समन्वयात्मक कार्यशैली में उनकी कल्पनाशीलता और समस्याओं के सुलझाने की रणनीति मे उनके व्यापक अनुभव एव असाधारण प्रतिभा की झलक हमें सर्वत्र दिखाई देती रहती है। उन्होंने अपनी अपार दूरदर्शिता एवं असाधारण क्षमता से अनेक आध्यात्मिक एवं सामाजिक जटिल समस्याओं का सफलतापूर्वक समाधान किया है।

हम मानवता के पुजारी और लोक लुभावन व्यकितत्व के धनी इस संत विद्वान को अपने प्रणाम संप्रेषित करते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे स्वस्थ एवं प्रसन्न रहकर इसी प्रकार से माँ सरस्वती की आराधना करते रहे।

-सुरेश जैन, आई.ए.एस., भोपाल
सचिव, चुनाव आयोग

-विमला जैन, एच.जे.एस.,
जिला एव सत्र न्यायाधीश

□

सर्वमान्य निस्पृही विद्वान

वर्तमान के सर्वमान्य प्रतिष्ठित जैन विद्वानों में जिनका नाम सबसे पहले आता है, वे हैं पंडित श्री नरेन्द्र प्रकाश जी। इनकी विद्वत्ता एवं प्रवचन शैली की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। पंडित जी उन विद्वनों में से हैं, जिन्होंने जैन धर्म व समाज में व्याप्त कुरीतियों को कभी बर्दाश्त नहीं किया। जहाँ एक ओर इन्होंने एकान्तवाद का जोरदार खण्डन किया वहीं मुनियों में व्याप्त शिथिलाचार को लेकर अपनी चिंताऐं भी व्यक्त कीं। धर्म के गूढ़ रहस्यों को जन-साधारण की भाषा में प्रस्तुत करने में पंडित जी को महारथ हासिल है। प्रवचन शैली इतनी सशक्त है कि जो कोई इन्हे सुनता है सम्मोहित-सा हो जाता है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मुझे ऐसे विद्वान के निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पंडित जी के प्रवचन व्यक्ति के जीवन को बदल देने की क्षमता रखते हैं। सन् 1980 की बात है। पंडित जी सागर

सम्यग्दर्शन के बिना संसार के बंधन से यह जीव नहीं छूट सकता। इसलिये इसे शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

में प्रवचन देने के लिए गये। उनका विषय संयम के ऊपर था। इनके प्रवचनों से वहीं के एक युवा एम.ए. के विद्यार्थी वीरेन्द्र पर इनका बहुत प्रभाव पड़ा। युवा वीरेन्द्र पंडित जी को अपनी मोटर साईकिल पर बैठाकर कई जगह घुमाने/मिलाने भी ले गये। पंडित जी फिरोजाबाद लौट आये। कुछ ही दिनों बाद पता चला कि उस युवक ने तो आचार्य श्री विद्यासागर जी से क्षुल्लक दीक्षा ले ली। वे ही अब वर्तमान में मुनि श्री क्षमासागर जी हैं। पंडित जी जब कभी इस प्रसंग को सुनाते हैं तो आत्म-विभोर हो उठते हैं। स्वाभाविक भी हैं, क्योंकि पंडित जी का संयम पर दिया प्रवचन भी तो युवा वीरेन्द्र की दिशा परिवर्तित करने में कुछ निमित्त रहा होगा।

सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार स्व. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी से श्री पंडित जी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। पंडित जी के प्रेम और वात्सल्य के कारण चतुर्वेदी जी प्रायः इनके विद्यालय जाया करते थे और विचार-विमर्श किया करते थे। पंडित जी ने अपने कई संस्मरणों को दैनिक पत्रों में भी प्रकाशित करवाया है। चतुर्वेदी जी फिरोजाबाद के ही रहने वाले थे। फिरोजाबाद के जिन लोगों का प्रभाव पंडित जी पर पड़ा, उनमे से एक हैं हमारे दिवंगत विद्वान पं. श्यामसुन्दर दास जी। बाद में इनके नाम की ही एक संस्था भी पंडित जी के निर्देशन में स्थापित हुई।

मुझे पंडित जी का विशेष स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त है। इसके कई कारण हैं। ये मेरे पिताजी स्व भा. रामसिंह जैन के मित्र भी थे। मेरे पिताजी आगरा क्षेत्र के एक प्रतिष्ठित विद्वान थे।

आज पंडित जी जैसे अनेकों विद्वानों की आवश्यकता है जिससे समाज में एकता को मजबूत बनाये रखा जा सके। पंडित जी का मार्ग-दर्शन समाज को निरन्तर प्राप्त होता रहे, ऐसी कामना है।

डा. अनिलकुमार जैन, अहमदाबाद

□

सदाचारी सारस्वत सपूत

जैन तत्त्ववेत्ता एवं कुशल प्रभावी वक्ता पंडितप्रवर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, समाज की एक सारस्वत धरोहर के रूप में हैं। आप जितने प्रखर एवं स्पष्टवादी वक्ता हैं, उतने ही जैन दर्शन तथा परम्परा के तलस्पर्शी मनीषी भी। आपकी श्रुतसाधिका लेखनी से अनेक ऐसे समयानुकूल आलेख एवं सम्पादकीय प्रस्तुत हुए हैं, जिन्होंने जैन सस्कृति के सरंक्षण को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। ऐसे सारस्वत सपूत का समाज द्वारा सम्मान किया जाना समयानुकूल सही समय पर सार्थक सम्पूर्ति है।

प्राचार्य जी से 15-20 वर्षो से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उनका निश्छल व्यवहार और सदाचारपूर्ण सादगी सभी को सम्प्रेरित करती है। प्राचार्य जी के घर पर आतिथ्य प्राप्त करने का भी मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ। अनेक संगोष्ठियों में भी साथ रहने का सौभाग्य मिला। आपके सस्नेह, सरल व्यवहार ने सदैव यह प्रेरणा दी कि विद्वत्ता का फल सादगी और संतोषपूर्ण जीवन ही है। प्राचार्य जी की सदैव हंसमुख और सहज जीवनशैली उनके सम्पर्क में आने वाले सभी को प्रेरणादायी रही है। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ हैं कि प्राचार्य पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जी स्वस्थ्य एवं दीर्घायु होकर निरन्तर समाज और साहित्य की सेवा में लगे रहें।

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

□

घृणा और विद्वेष ही वे विष-बीज हैं, जो सृष्टि में कड़वाहट घोलते हैं।

विचारशीलअध्येता एवं प्रखरवक्ता

प्राचार्य जी का नाम सुनते ही एक ऐसे सारस्वत मनीषी का शब्दचित्र मानसपटल पर उभर आता है, जिसे समग्र जैनसमाज में श्रमण और श्रावक दोनों वर्गों में विश्वास एवं सम्मान प्राप्त हैं प्राचार्य जी का व्यक्तित्व पक्ष जितना सघन, प्रेरणीय श्लाघनीय है, कृतित्व पक्ष उतना ही लोकोन्मुखी, प्रगतिशील, अनेकान्तवादी है। प्राचार्य जी एक ओर मानवीय पहलू के क्रियाशील, ईमानदार शिक्षक हैं, दूसरी ओर अद्भुत मेघा के धनी, कवि, लेखक, प्रवचनकार, स्वतंत्र जागरूक पत्रकार एवं सम्पादक हैं। आपकी कार्यशैली नवजागरण की है।

–डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर

□

गुदड़ी के लाल

प्राचार्य जी वर्तमान में दिगम्बर जैन मार्ग के सर्वोच्च सर्वमान्य प्रवचनकार विद्वान में एक है। दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद की कार्यकारिणी के सदस्य के नाते सम्मेलन व अनेक आयोजनों में उनसे मिलना होता रहता है। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश को देखते ही उनकी शान्ति पूर्ण छवि हंसमुख निरभिमान सरल प्रकृति को देखकर अन्तरंग मे अनायास ही उनके प्रति सम्मान भाव जागृत हो जाता है। प्राचार्य जी को किसी भी क्षेत्र चाहे वह किसी संस्था या संचालन हो, संभाषण गोष्ठी के नेतृत्व, किसी धार्मिक समारोह या सामाजिक संस्थान का निर्देशन हो हर क्षेत्र में उन्होंने सबका भार अथवा उत्तरदायित्व बखूबी निभाया। प्रशंसा सफलता के पात्र बने। इन सब विशेषताओं और प्राचार्य जी की योग्यताओं के फल स्वरूप किया जाने वाला उनका यह सम्मान "अभिनन्दन ग्रंथ" गुदड़ी के लाल को अनावृत करने जैसा है। मैं भी इस शुभावसर पर अपनी सम्मानाजंलि प्राचार्य जी के प्रति अर्पित करता हूँ।

-वैध धर्म चन्द्र जैन शास्त्री, इन्दौर
आयुर्वेदाचार्य B I M S

□

स्मृति के क्षणों में

स्वनाम धन्य सादा जीवन उच्च विचार की साक्षात मूर्ति श्रीमान् प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी जैन प्रधान सम्पादक "जैन गजट" तथा अखिल भारत वर्षीय शास्त्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में एक ऐसा चिरपरिचित नाम है जिनके नाम मात्र के स्मरण से एक साक्षात् मूर्ति हम सबके समक्ष दृष्टिगोचर होकर उनके प्रति आत्मीय श्रद्धा के भाव सहसा प्रकट करने वाली आत्मीय भावना जागृत हो उठती है। हम सभी धन्य हैं जो ऐसी समता, ममता और सादगी से परिपूर्ण व्यक्तित्व के अभिनंदन में अपनी जीवन की सार्थकता की सफलता मानते हैं। श्रीमान् प्राचार्य जी के साथ जो साक्षात् आत्मीय क्षण व्यतीत कर उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया वह मेरे लिए गूगें की मिठाई के समान है।

श्रीमान् प्राचार्य जी "सत्यं शिवं सुन्दरं" की तथा "सादा जीवन उच्च विचार" की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। वे सदैव प्रसन्न, नीरोग रहकर हम सब का मार्गदर्शन करते हैं। यही उन्हें समर्पित "अभिनन्दन ग्रन्थ" के पावन प्रसंग पर मंगल भावना है।

पं. शिखरचन्द्र जैन "साहित्याचार्य", सागर (म.प्र.)

□

संस्कारित एवं व्यसनमुक्त जीवन-शैली के बिना निर्मल लेखन का अवतरण नहीं हो सकता।

लोकप्रिय अध्यक्ष

श्रेद्धय विद्ववर पंडित जी वर्तमान में अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद् के लोकप्रिय अध्यक्ष हैं, आप आर्षमार्गी महासभा, जैन दर्शन व जैन धर्म के उच्चकोटि के विद्वान हैं। शासकीय सेवा में प्राचार्य सरीखे उच्च पद पर रहकर भी आपका जीवन संयमित, नियमित तथा सादा रहा है आपमें सरलता, सादगी, सच्चरित्रता, सौजन्यता, कर्तव्य परापणता, शालीनता, मृदुता, विनम्रता, धार्मिकता उदारता आदि मानवीय उदात्तगुण आपके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकते हैं।

-पं. शीलचंद जैन

□

सौम्य मधुर नरेन्द्र प्रकाश जी

नरेन्द्रप्रकाश जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। सादगीमय जीवन, नपीतुली भाषा में अपने विचार व्यक्त करने की कला। सन्दर्भ और सप्रमाण तर्क करने की कुशलता। लेखनी में प्रोजलता, स्वच्छ और सधी लिखावट, आचार-सम्पन्नता उनके विशेष गुण है। वे शास्त्रि-परिषद् के एक प्रकार से एकमेव अद्वितीय अध्यक्ष हैं। प्रत्येक संस्था की अपनी नीति-रीति होती है और उसका परिपोषण करना उचित ही है।

विद्वद् समाज की ओर से, विद्वानों की स्वतः प्रेरणा से भाई नरेन्द्र प्रकाश जी को अभिनन्दन ग्रंथ भेट करने की योजना शुभ है विशेष रूप से स्वागत योग्य है। वे शतायु हों, अपने प्रगल्भ और प्रेरक विचारो से, अपने आचरण-वैभव से युवा पीढ़ी को नरेन्द्र के नाते प्रकाश प्रदान करते रहें।

-जमनालाल जैन, सारनाथ

□

इतनी सरलता इतनी सौम्यता और कहाँ?

सामाजिक, धार्मिक होने के साथ-साथ भावनाओं मे सरलता और चेहरे पर सौम्यता मुश्किल से ही किसी व्यक्ति पर देखने को मिलती है—जो हमें सहज ही माननीय श्री नरेन्द्र प्रकाश जी में देखने को मिल रही है।

आप चिरायु हों, निरोगी रहें और आज के करवट लेते हुए धार्मिक, सामाजिक परिवेश को सही मार्ग-दर्शन देते रहें, यही मेरी आन्तरिक कामना है।

-पं. वसन्त कुमार जैन शास्त्री, शिवाड

□

कुशल मंच संचालक

जैन जगत् में प्राचार्य जी की लेखनी एवं प्रवचन शैली से जो नई दिशा मिली, बहुत ही प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। प्राचार्य जी में कूट कूट कर भरी हुई हैं। ऐसे सरस्वती पुत्र श्रद्धेय पंडित श्री नरेश प्रकाश जी जैन प्राचार्य जी को अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

प्रतिष्ठाचार्य पं. कमलकुमार जैन शास्त्री, एम.ए. साहित्याचार्य

□

बिना लाभ या प्रयोजन के मूर्ख या अनाड़ी भी कोई प्रवृत्ति नहीं करता। क्या हममें से कोई स्वयं को मूर्ख कहलवाना पसन्द करेगा? यदि नहीं तो शक्ति का सदुपयोग कीजिए। कुमार्ग से बचिये, सुमार्ग पर चलिए। अपने जीवन को धर्म की प्रयोगशाला बनाइये।

प्रकाश-स्तंभ

आप प्रतिभा, क्षमा एवं संगठन की त्रिमूर्ति हैं। पर्वत में ऊँचाई तो होती है, पर गहराई नहीं, सागर में गहराई तो होती है, पर ऊँचाई नहीं। श्री नरेन्द्रप्रकाश जी में ज्ञान की गहराई एवं चारित्र की ऊँचाई एक साथ मुखर हो उठी है। कृतित्व, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व का अनूठा संगम है।

-डॉ. खेमचन्द्र बड़ेराय, दमोह, म. प्र.

□

श्रेष्ठ प्रवचनकार

विद्यावाचस्पति, सिद्धान्तरत्न, महामनीषी पंडित प्रवर श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन फिरोजाबाद जैन समाज की एक महान् विभूति है। लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा का मणिकचन संयोग आपमें विद्यमान है। आप लौकिक शिक्षा में तो स्नातकोत्तर उपाधियों से अलंकृत हैं ही, जैनदर्शन के क्षेत्र में भी पूर्ण पारंगत विद्वान् है। यह लिखना असंगत न होगा कि जैनधर्म और दर्शन का ज्ञान आपको अपने पिताजी श्री रामस्वरूप जी, अपने समय के प्रतिष्ठित प्रतिष्ठाचार्य से प्राप्त हुआ है। आपने उस धरोहर को कम नहीं किया, अपितु बढाया ही है। श्री पं. रामस्वरूप जी धन्य है, जिन्होंने अपने ज्ञान और आचरण को पुत्र के लिए उत्तराधिकार मे सौंप कर जैनधर्म की महती सेवा की तो वहीं श्री पं. नरेन्द्रप्रकाश जी, उनके सुपुत्र भी धन्य है, जिन्होंने अपने पूज्य पिताजी की धरोहर को न केवल सुरक्षित रखा, अपितु उससे सम्पूर्ण देश को लाभान्वित किया।

-सिंघई दीपचन्द्र जैन, रायसेन, मध्यप्रदेश

□

अपूर्व व्यक्तित्व के धनी

श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी जैन आर्षमार्गीय विद्वत्परम्परा में, साधु और श्रावक दोनों से विश्वास और सम्मान-प्राप्त व्यक्ति हैं। आगमानुकूल विद्वत्तापूर्ण प्रभावक भाषणों, लेखों और स्वतंत्र रचनाओं के धनी हैं।

अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण समारोह के अवसर पर मैं प्राचार्य जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ, उनके दीर्घ यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

-पं. रतनचन्द्र शास्त्री काव्यतीर्थ, रहली (सागर) म. प्र.

□

वक्तृव्य कला के धनी

आप 'यथा नाम तथा गुण' हैं। किसी भी विषय को प्रतिपादित करने में और अपनी ओजस्वी वाणी से प्रतिवादी को मूक कर देने में समर्थ देखे जाते हैं। विद्वानों के गौरव का भाव बनाए रहने एवं उनके प्रति कर्तव्य पालन की प्रेरणा निरन्तर देते रहते हैं। आपके दीर्घायु की कामना करता हूँ।

-विद्याभूण पं. कोमलचन्द्र शास्त्री, बांसवाड़ा (राज)

□

जिससे आचार-विचार को शुद्ध रखने तथा धर्म-पालन में सहायता मिले, उसी आहार की 'शाकाहार' संज्ञा है।

जैन जगत् के अग्रणी विद्वान्

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन जगत के माने हुये सुप्रसिद्ध विद्वान हैं। उन्होंने बाल्यकाल से ही धार्मिक विचारधारा और आचरण से अपने जीवन को सजाया है। आप आचार और विचार दोनों के समर्थक विद्वान है।

धार्मिक विषय के आप निष्णात विद्वान है। आपका गहन अध्ययन और मनन इस बात का प्रमाण है कि आप कठिन से कठिन धार्मिक शंकाओं और विवादों को बड़े ही सरल ढंग से निपटा देते हैं। इस तरह के समाधानों में आप युक्ति के साथ साथ शास्त्रीय प्रमाण भी देकर शंकालुओं और पृच्छकों को आश्चर्यन्वित कर देते है। वस्तुतः आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी है।

हमारी हार्दिक कामना है कि आप सदैव स्वस्थ रहे और चिरायु हों। इस अभिनन्दन के अवसर पर मेरी अनेक शुभकामनायें।

—तनसुखराय सेठी कार्यकारी अध्यक्ष,
श्री दि. जैन पचायत, गुवाहाटी

□

आर्ष मार्ग के धर्म केतु

आपकी प्रतिभा प्रभावी वक्तृत्त्व, ऑखों मे स्नेहिल अपनापन, वाणी में माधुर्य किसी भी अनजान व्यक्ति को क्षण भर में अपना बना लेते हैं। आप आर्ष मार्ग के कट्टर समर्थक हैं। आपको आर्ष मार्ग का धर्म केतु कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आपका स्थान जैन समाज के विशिष्ट विद्वानों में शीर्षस्थ है।

आपने अपने विद्वता पूर्ण भाषणों से समस्त भारत भूमि पर अपनी विशिष्टता की छाप अंकित कर दी है। गत वर्ष जब आप श्री मद् जिन सहस्त्र नाम मण्डल विधान के अवसर पर गुवाहाटी पधारे थे तो आपको सुनने के लिये महावीर भवन का विशाल प्रांगण ठसाठस भर जाता था तथा अनेक लोगों को बैठने की जगह नहीं मिलती थी। आपका जीवन इतने कतृत्वो से संपूरित है कि आप व्यक्ति से संस्था बन गये। एक ओर आपकी निरभिमानिता परन्तु दूसरी ओर स्वाभिमान की गरिमा आपमें परिलक्षित होती है। समाज को आपने बहुत कुछ दिया और देते चले आ रहे है।

इस सारस्वत समारोह द्वारा मेरे हार्दिक श्रद्धा सुमन समर्पित है।

-हुक्मीचन्द सरावगी
महामंत्री, श्री दि जैन पंचायत, महावीर भवन
गुवाहाटी तथा अध्यक्ष असम प्रादेशिक दि. जैन महासभा

□

युग की महान् विभूति

स्वनाम धन्य प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी जैन इस युग की महान विभूति हैं। संस्कृत साहित्य में एक युक्ति कही गई है—विद्वान सर्वत्र पूज्यते। अर्थात विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है और इसी युक्ति का यह सार्थक अभिप्राय हो गया है कि

अखिल भारतीय जैन समाज शास्त्री परिषद के अध्यक्ष तथा जैन गजट के प्रधान सम्पादक प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी का अभिनन्दन करने जा रही है। हमारा जहां तक विचार है, यह प्राचार्य जी का अभिनन्दन नही होकर उनकी विद्वता, समाज सेवा एवं कर्तव्य-परायणता का अभिनन्दन है जिसके द्वारा उन्होंने सांसारिक प्राणियों को सद् धर्म का उपदेश दिया और व्यक्ति को उसके कर्तव्य का बोध-कराया। आशा है समाज ओर युवा पीढ़ी उनके मानवोचित कार्यो से प्रेरणा लेगी और धर्म एवं समाज सेवा की ओर अग्रसर होगी।

-महावीर प्रसाद छाबड़ा, गुवाहाटी

□

प्रकाशवान् दिवाकर

पंडित प्रवर प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी जैन वर्तमान समाज के एक ऐसे प्रकाशवान् दिवाकर है जिनकी लेखनी और वाणी से हमारी समाज को एक अपूर्व दिशा मिली है। जैन गजट के सम्पादकीय लेखों से समाज में एक नयी करवट बदली। उनके द्वारा लिखा गया आगम साहित्य उनकी अपूर्व विद्वता एवं प्रतिभा का प्रतीक है। उनकी ओजस्वी वाणी ने जन-जन को सम्मोहित कर देव शास्त्र गुरु की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे अपने आप मे मां सरस्वती की ज्ञान सरिता के प्रवाहमान रूप है। इनके सम्मान से भारतीय जैन समाज गौरवान्वित है।

-महावीर प्रसाद पाटनी, गुवाहाटी

□

उन्नत व्यक्तित्व के धनी

प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन ने पिछले 40 वर्षो मे पत्र-पत्रिकाओ द्वारा अपने सम्पादकीय विश्लेषणो द्वारा, सिंहनादी प्रभावक लेखों, आगमानुकूल विद्वता पूर्ण प्रवचनों से समाज की जो सेवा, समाज मे जो जागृति, आगम के प्रति जागरूकता प्रज्जवलित की है वह वर्णनातीत है। आपने अपनी सम्यक् वाणी से अवर्णवाद का खण्डन कर जो धर्म की रक्षा की है वह युगों-युगों तक विस्मृत नहीं की जा सकती।

-केवलचन्द गंगवाल, गुवाहाटी

□

आदर्श व्यक्तित्व

परम आदरणीय प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी वर्तमान शताब्दी के प्रतिभाशाली विद्वानों मे शिरोमणि हैं। भारत की कोटि जैन समाज आपके उन्नत व्यक्तित्व और महान कृतित्व से प्रभावित हैं। देश के विभिन्न स्थानो से आपको अनेक लोकोत्तर उपाधियों से अलंकृत कर समाज ने आपके महान कृतित्व एव व्यक्तित्व की वन्दना की है।

ऐसे महानतम मनीषी विद्वान का मैं हृदय से अभिनन्दन करता हुआ उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की प्रार्थना भगवान पार्श्वप्रभु से करता हूँ।

-विजयकुमार पाण्डया, गुवाहाटी

□

[illegible], वात्सल्य और प्रभावना।

बहुगुणधारी प्राचार्यजी

जैन जगत के सर्वोपरि विद्वान श्रद्धेय पूज्य प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन एक बहुश्रुत विद्वान, मधुर भाषी एवं सच्चे समाज सेवक हैं।

ऐसे महान व्यक्ति के अभिनन्दन पर मैं पूज्य प्राचार्य जी को प्रणाम कर भगवान महावीर स्वामी से प्रार्थना करता हूँ कि वे शतायु होकर समाज, धर्म और संस्कृति की ऐसी ही सेवा कर उसे लोकोत्तर उन्नति के शिखर पर ले जायें।

-नन्दलाल गंगवाल, गुवाहाटी

□

निष्ठावान रत्न

इस भारत वसुन्धरा पर जैन समाज का ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसने प्राचार्य पं. नेरन्द्र प्रकाश जी जैन, फिरोजाबाद का नाम न सुना हो। पंडित जी भारत के उन सपूतों में से हैं जिनका अधिकांश जीवन समाज की निःस्वार्थ सेवा मे व्यतीत हुआ। पंडित जी अपने निश्चय से कभी विचलित नही हुये। अपनी बात को श्रोताओं पर प्रभावी ढंग से समझाने में एक कुशल व्यक्ति हैं। आप जैसे विद्वान, निष्ठावान व्यक्ति को पाकर दिगम्बर जैन समाज अपने को आज गौरवान्वित समझती है।

-मदनलाल बड़जात्या, एडवोकेट, गुवाहाटी

□

क्रांतिकारी व्यक्तित्व

अभिनन्दन के इस स्वर्णिम अवसर पर मैं पूज्य प्राचार्य जी के चरणों में अपनी श्रद्धा अर्पित करते हुये उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की मंगल कामना करती हूँ।

श्रीमती रत्नप्रभा सेठी
अध्यक्षा, जीवन-ज्योति, गुवाहाटी

□

कुशल प्रशासक

आपने अपनी ओजस्विनी वाणी और ऊर्जस्वित् लेखनी से सम्पूर्ण साहित्य संसार एवं जैन जगत् में एक विशिष्ट पहचान बनायी है। प्राचार्य जी राष्ट्रीय धार्मिक-सांस्कृतिक साहित्यिक चेतना के सम्वाहक लब्धप्रतिष्ठ, मनीषी, कुशल, प्रशासक, ओजस्वी वक्ता और प्रख्यात लेखक हैं, आपने अनेक गरिमापूर्ण समारोहों का सफल संयोजन और संचालन किया है, जिनमें

सहनशीलता, ममता, [illegible], [illegible] आदि आन्तरिक गुणों का [illegible] का कुशल [illegible] है।

बहुत से चिरस्मरणीय बन गये है। प्राचार्य जी अपनी सादगी, सरलता और निरछल व्यवहार के कारण सर्वप्रिय हैं, बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्कों के प्रति सद्भाव एवं छोटों के प्रति स्नेह आपके आचरण के अभिन्न अंग हैं।

मैं भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी वाणी और लेखनी से सम्पूर्ण साहित्य संसार में एक विशेष पहचान के रूप में छाये रहें।

कमल कुमार रावंका, मत्री
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा, लखनऊ

☐

प्राचार्य जी : एक ओजस्वी वक्ता

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी के ओजस्वी जैन वक्ताओं से अग्रगण्य माने जाते हैं। जैन समाज के इतिहास में एक ऐसा समय आया था, जब निश्चयैकान्त की आँधी ज़ोरों से आई थी और अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद् इस विचारधारा के प्रमुख का जोरदार विरोध कर रही थी। ललितपुर में एकान्त वादियों ने शिविर लगाया। उसके शिविर के प्रभाव को कम करने के लिए वहाँ की समाज ने शास्त्रिपरिषद् को आमन्त्रित किया। उस समय देश के दिग्गज विद्वान् पं. मक्खनलाल शास्त्री, पं. मोतीचन्द्र कोठारी, पं. श्यामसुन्दर शास्त्री, डॉ. लालबहादुर शास्त्री, पं. श्यामसुन्दर शास्त्री, पं. वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, पं. बाबूलाल जमादार प्रभृति वहॉ उपस्थित थे। वहॉ जोरदार शिविर हुआ और एकान्तवादियों का किला ढह गया। इस समय प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के लोकोपयोगी और शास्त्रीय प्रवचनों की धूम रही। ललितपुर के शिविर से प्रभावित होकर फलटण की समाज ने परिषद् को आमन्त्रित किया। फलटण अधिवेशन में विद्वानों की अच्छी उपस्थिति रही। उस अधिवेशन के प्रवक्ताओ में भी प्राचार्य जी अग्रिम पंक्ति में थे। इसके बाद परिषद् के बीसों कार्यक्रमों में उन्हें सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ और उनकी वक्तृत्व कला, सादगी, निर्भीकता, ओजस्विता, चिन्तनशक्ति और वाग्धारा से मैं निरन्तर प्रभावित हुआ। वे मुझसे उम्र में बडे हैं। एक बड़े की छोटों के प्रति जो स्नेह दृष्टि रहनी चाहिए, वह बराबर उनमें प्राप्त हुई। उन्होंने दूसरों का उत्कर्ष देखकर कभी ईर्ष्या नहीं की। मुझे आगे बढ़ते देखकर वे सदैव प्रसन्न हुए और निरन्तर उत्साहवर्द्धन करते रहे। एक दो बार वे उन पुरस्कारों के निर्णायक भी रहे, जिनमें मुझे पुरस्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका निर्णय निष्पक्ष रहा। उन जैसे निष्पक्ष निर्णायक मैंने कम ही देखे। आज तो स्थिति यह है कि सैकड़ों विद्वानों से उनके कार्यो का कुछ संस्थायें रचनायें मॉगती हैं। किन्तु अपने चहेते विद्वानों को ही पुरस्कृत करती है। आज कुछ साधुओं की भी दृष्टि निस्पक्ष नहीं रही। प्राचार्य जी ने सदैव विद्वान की विद्वत्ता को सम्मान दिया।

प्राचार्य जी अच्छे कवि भी है। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के प्रति उनकी भावाञ्जलि-'रत्नत्रय से पावन जिसका यह औदारिक तन है! गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा में जो रहता सदा मगन हैं, आदि पंक्तियाँ आचार्य श्री की पूजा का अङ्ग बन गई हैं। शिक्षा जगत् प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैसा विद्वान् पाकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। मेरा भी उन्हें विनम्र प्रणाम समर्पित हैं।

-डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर

☐

साधु-संगति से ही सम्यक और सदाचारी नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त होगा।

निपुण निर्देशक

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन मेरे घनिष्टतम प्रिय लोगों में से एक है, मैं इनकी बुद्धिमत्ता तथा समीचीन राय का प्रसंशक रहा हूँ। समाज सेवी संस्था श्री पार्श्वनाथ ट्रस्ट के ट्रस्टी के रूप में भी प्राचार्य जी को मनोनीत किया हुआ है यह ट्रस्ट फिरोजाबाद का प्राचीनतम समाजसेवी ट्रस्ट है। सैकड़ों वर्ष पुराना जैन मेला इसी संस्था की देन है। मेलाभूमि पर हुये अतिक्रमण में जैन समाज ने संघर्ष प्राचार्य जी के निर्देशन में ही किया था तथा ससम्मान सफलता प्राप्त की थी। यह मेला अब भी हर चौथी साल होता है।

ट्रस्ट के सभी कार्यक्रमों में प्राचार्यजी अपना उचित निर्देशन देते रहते हैं। प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश के अमूल्य परामर्श के लिए ट्रस्ट और समाज आभारी हैं। मेरा प्रा. नरेन्द्र प्रकाश को चिरायु तथा स्वस्थ्य सुखी जीवन के लिए शुभकामना तथा मंगलाशीष है।

रामबाबू जैन 'राजा', फिरोजाबाद

□

वाणी और लेखनी के धनी : प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी

जैन सांस्कृतिक परम्परा की समुन्नति में विद्वानों की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह देश सदियो से गुणीजनो के प्रति श्रद्धावनत रहा है। वर्तमान के जैन मनीषियों में प्राचार्य पण्डित नरेन्द्रप्रकाश जी का महत्वपूर्ण स्थान है। वे वाणी और लेखनी के सिद्धहस्त सशक्त हस्ताक्षर हैं। विद्वानों की प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् के अध्यक्ष तथा जैनगजट के यशस्वी सम्पादक है। विरासत में प्राप्त सद्संस्कारों एवं विशिष्ट क्षयोपशम द्वारा स्वाध्याय कर ज्ञानार्जन से पूरे देश में ज्ञान-सुरभि से समाज को जिनवाणी का रसास्वादन कराकर उपकृत कर रहे हैं। सैद्धान्तिक दुरूह विषयो को अपनी सहज-शैली से प्रस्तुत कर अज्ञान-तिमिर से लोगों को सम्यग्ज्ञान की ओर प्रवृत्त करना आपके व्यक्तित्व की विलक्षण विशेषता है।

वे युवापीढ़ी के विद्वानों को निरन्तर प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन प्रदान कर जिनवाणी के प्रचार-प्रसार हेतु प्रेरित करते रहते हैं। आपकी प्रशस्त प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से मैं सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो के प्रति प्रवृत्त हुआ। आपके कृतित्व का एक उज्ज्वल पक्ष यह भी है कि आपसे विरोध रखने वाले भी आपके विचारों का सम्मान करते हैं। मैं उनके गौरवशाली व्यक्तित्व एक कृतित्व को प्रणाम करता हुआ उनके दीर्घायुष्म की मंगलकामना करता हूँ।

-डॉ. अशोककुमार जैन
विभागाध्यक्ष, जैन विद्या एव तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान
लाड़नूं (राजस्थान)

□

सम्यग्ज्ञान और सद्गुणों की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्ति के लिए दीक्षा धारण की जाती है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी : प्रा. नरेन्द्रप्रकाशजी जैन

प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम लेते ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा मूर्त होने लगती है। वे एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनमें अनेक गुण विद्यमान हैं। मेरा उनसे शास्त्रीय परिषद के कारण पिछले 15-20 वर्षों से परिचय है। मैंने उनमें एक कुशल नेतृत्व का गुण देखा है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पद से शोभित होते हैं जबकि कुछ लोगों के कारण पद सुशोभित होता है। प्रा. नरेन्द्रप्रकाशजी के अध्यक्ष होने के कारण शास्त्रि परिषद का गौरव ही बढ़ा है। सुखद बात तो यह है कि इस पद की न उन्हें आकांक्षा थी न लोभ। उन्होंने कभी पद के लिए चुनाव या अटपटी राजनीति नहीं अपनाई—वे दो बार निर्विरोध अध्यक्ष चुने गये। पद को उपयोग अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बढ़ाने में नहीं किया अपितु परिषद की प्रतिष्ठा बढ़ाने में किया।

कुशल और निर्भीक वक्ता के रूप में आप पूरे देश में प्रख्यात हैं। आपको 'प्रवचन केशरी' कहा जाये तो अत्युक्ति नही होगी। विषय का योग्य प्रतिपादन, प्रस्तुतिकरण की शैली स्वयं में एक अद्भुत उदाहरण है। अपनी बात की सत्यता प्रस्तुत करने में वे निजी स्वार्थ और संबंधों को भी किनारे कर देते हैं क्योंकि सत्य कभी गलत समाधान या चापलूसी नहीं करता। आपको चाहे आ. विद्यानन्दजी से कहना पड़ा हो या उन मुनियों से जो शिथिलाचार के पोषक बने हैं। देव शास्त्र गुरू पर पूर्ण श्रद्धा रखने के साथ-साथ कभी गलत कार्य की सराहना नहीं की।

उनके सम्मान में प्रकाशित हो रहे उनके गौरव ग्रंथ के साथ उनकी गौरवगाथा उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हो इन्हीं भावनाओं के साथ.....

-डॉ. शेखरचन्द्र जैन
प्रधान सम्पादक "तीर्थकर वाणी"
अध्यक्ष, भ. ऋषभदेव दि. जैन विद्वत महासंघ-हस्तिनापुर

□

कथनी-करनी में एक रूपता

प्राचार्य प्रवर एक राष्ट्रीय मनीषी हैं। उनका योगदान राष्ट्र के लिये धार्मिक एवँ सांस्कृतिक चेतना फैलाने वालों में सदैव प्रथम पंक्ति में है, प्राचार्य जी की वाणी ओजस्वी है। मानों स्वयं वाग्देवी उनकी रसना में विराजित हैं। उनका लेखन धार्मिक एवँ साहित्यक दोनों श्रेणियों में अतिविशिष्ट है। उनकी प्रशासन क्षमता निःसन्देह रूप से उत्तम है। पंडित जी इस धरा पर समाज के लिये ईश्वर प्रदत्त वरदान हैं।

मैं केवल इतना ही कहकर नरेन्द्र जी के लोकाराधन को विनत् प्रणाम करना चाहूँगी कि वे अपने कृतित्व द्वारा नरों में इन्द्र के समान तेजस्वी और यशस्वी हैं और एक रुढ़िमुक्त सामाजिक, आध्यात्मिक चेतना का प्रकाश प्रसारित कर रहे हैं वे वास्तव में नरेन्द्र प्रकाश हैं। उनके यशस्वी, दीर्घायु जीवन की मंगल कामना है।

-श्रीमती अर्चना मलैया, जबलपुर

□

गुरु जो संशीय समीचीन ज्ञानों का अवगाहन कर जो नित्य उपदेश प्रदान करते हैं, माता जिनवाणी के चरणों के उपासक वे पुण्यात्मा विद्वज्जन सबका कल्याण करें।

बहुमुखी व्यक्तित्व श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन बड़े श्रद्धालु व्यक्ति हैं। वे उच्च कोटि के धार्मिक प्रवक्ता, साहित्यकार, लेखक व भाषण कला में निपुण हैं। उनकी सादगी, साधुवाद व निराभिमानता का तो कहना ही क्या है जो सहज ही में आकर्षित कर लेती है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने अपने नगर फिरोजाबाद को जहां देश-विदेशों मे गौरवान्वित किया। वैसे ही नरेन्द्रप्रकाश जैन दूसरे व्यक्ति हैं, जिन्होंने नगर के नाम का देशभर में रोशन किया है।

लम्बे कद, गोरे रंग छर हरे बदन, टेरीकोट का कुरता, महीन धोती कुद घुंघराले बाल में आप बड़े सजीले, लजीले व चुस्त-दुरुस्त मालुम होते है। वे मुझसे उम्र में छोटे परन्तु शान गरिमा में बहुत बड़े है। आपके बारे में मेरा लिखना आसान नहीं क्योंकि जब मैं लिखता हूँ तो वे और अन्य उपलब्धियां प्राप्त कर लेते हैं। फिर भी मेरा लिखना जरूरी है। यह मेरी कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर भी हैं।

आज का यह अहम सवाल है कि साहित्यकार, विद्वान व समाज सेवियों को पूछता कौन है। आज पूछ, मान, सम्मान व उल्लेख तो उन्हीं का है, जिन्होंने राजनीतिक पहुँच बना ली है या किसी तरह धनोपार्जन कर लिया है। ऐसे समय में जैन समाज का प्रबुद्ध वर्ग नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का सम्मान कर उनको अभिनंदन ग्रन्थ भेंट कर रहा है। इसके लिये अभिनंदन समिति व ग्रन्थ का सम्पादक मंडल विशेष धन्य है। इस शुभ अवसर पर मैं अपनी शुभकामनायें प्रेषित करते हुये भगवान महावीर स्वामी से श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन के स्वस्थ दीर्घजीवन के लिये प्रार्थना करता हूँ।

"अत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोघत।" अर्थात् उठो जागो और श्रेष्ठ जनों के पास जाकर उनसे उत्तक ज्ञान और चेतना प्राप्त करो।

-शिवप्रभु शर्मा, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

□

जीता जागता व्यक्तित्व

कौन जानता था कि जटौआ गाँव मे जन्मे एक होनहार बालक में एक साथ इतनी प्रतिमायें इकट्ठी होगी, लेकिन ऐसा ही हुआ जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज के समाज के साहित्यिक-अध्यात्मिक उत्कृष्ट प्रचारक-प्रसारक प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी का जीता जागता व्यक्तित्व प्रवचनकार व अध्यात्मिक प्रवक्ता के रूप में हमारे सामने है। आकाश में जब वर्षा ऋतु में मेघ आते है तब मोर पक्षी आनन्दित होता है वैसे ही जब प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी कलकत्ता आते है तब समस्त समाज में खुशी की लहर दौड जाती है सन् 2002 मे जब आप दशलक्षण पर्व पर कलकत्ता पधारे और उस समय दस धर्मो पर जब आपका विवेचन चलता था तो पूरा बड़ा मंदिर जी का हाल ठसाठस भर जाता था। आपके प्रवचन शैली में श्रोतागण इतने मुग्ध हो जाते हे कि एक घंटे का समय कब पूरा हो जाता है यह मालूम ही नही पड़ता। श्रोताओं को तत्वज्ञान के बल पर एक घंटे तक बांधकर रखना और आचार्य भगवन्तो की वाणी को हंसते हंसते दृष्टान्तो द्वारा श्रोताओं के गले उतार देना—यह आपके प्रवचनो की खूबी है। इनके प्रवचन इतने ठोस और प्रभावशाली होते है कि जिसे सुनकर हम सब गद्‌गद हो जाते विद्वता वक्तता और लेखन तीनो की दृष्टि मे उनकी सरस्वती अद्वितीय है। विद्वान समाज का प्राण होता है यद्यपि सरस्वती के आराधको को और उपासको को इन लौकिक अभिनन्दनो की काइं आंकाक्षा नही होती और होनी भी नही चाहिये तथापि नरेन्द्र प्रकाश जी जैसे महान व्यक्तित्व का अभिनन्दन कर समाज स्वयं को गौरावान्वित

लोहे की टेढ़ी छड़ तपाकर सीधी की जाती है। सोना तपने के बाद ही आभूषण बनता है। ऐसे ही तप के द्वारा आत्मा की वक्रता को विदा किया जाता है।

करेगा। मैं भगवान से यही भावना भाती हूँ कि समाज के गौरव व कर्णधार विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी का जीवन उत्तरोत्तर उनन्तिशील रहे तथा उनके निष्काम सेवा भाव का लाभ निरन्तर समाज को मिलता रहें, आप स्वस्थ और दीर्घायु रहकर इसी प्रकार जिनवाणी की सेवा करते रहे यही मेरी शुभकामना है।

हर कोई चाहता है सितारो को छू लूं, हर कोई चाहता है नभ में चमक लूं,
पर कितने के पास होते है सभीगुण, धैर्य, संयम, कवित्व सहिष्णुता के गुण
इन गुणों का खजाना है जिनके पास, जी हां ऐसे नरेन्द्र प्रकाश ज़ी हैं हमारे पास।

-श्रीमती संतोष काला, हावडा

□

स्पष्ट वक्ता एवं लेखनी के धनी

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी से अनेक बार मेरी भेंट हुई। वे मेरे निमंत्रण पर रांची दो तीन बार आये थे। पूज्य मुनि उपाध्याय ज्ञान सागर जी महाराज का जब रांची मे चातुर्मास हुआ था तब आयोजित विद्धत गोष्ठी एव अन्य आयोजनो मे उनकी उपस्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। आपने यहां कई आयोजनों की अध्यक्षता भी की। उस समय आपके भाषण इतने प्रभावशाली रहे कि उनकी चर्चा आज भी सर्वत्र की जा रही है। एक बार मैनें प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी को टेलिफोन किया कि अंहिसा-संदेश रांची का रजत जयन्ती महोत्सव यहां आयोजित है उसमें आप अवश्य पधारें तथा समारोह की अध्यक्षता भी करें। प्राचार्य महोदय ने तत्काल स्वीकृति प्रदान कर दी तथा यथा समय रांची पधारे। रांची में वह आयोजन भी अभूतपूर्व रहा तथा उनका तथ्यपूर्ण भाषण एतिहासिक बन गया। आपने जैन पत्रो का इतिहास ही प्रस्तुत कर दिया। रांची विश्वविद्यालय के सभी उच्चकोटि के विद्वानों ने भी उसमें भाग लिया था। सभी ने प्राचार्य महोदय के भाषण की अपूर्व सराहना की। उसके बाद नरेन्द्र प्रकाश जी को रांची मे दशलक्षण पर्व में आमंत्रित किया था। दशलक्षण मे रांची मे उनके प्रवचनों की धूम रही तथा समाज ने अपूर्व लाभ उठाया।

आप कट्टर मुनि भक्त है परन्तु शिथिला चार को सहन नही करते है। आपकी लेखनी का लोहा सभी मानते है। मेरी आपके प्रति अपार श्रद्धा है। आपसे मैं काफी प्रभावित हूं। आप सिद्धान्तो से समझौता नही करते। यह एक अनुकरणीय भावना सभी विद्वानों एवं पत्रकारो मे होनी चाहिये। अभिनन्दन ग्रंथ समर्पण के अवसर पर मै आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं तथा इसके आयोजकों को हृदय से धन्यवाद देता हुं।

-रत्नेशकुमार जैन, राची
सम्पादक : अहिंसा संदेश

□

उच्च कोटि के विद्वान्

पंडित-प्रवर प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी उच्च कोटि के विद्वान, लेखक, सम्पादक और जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ व्याख्याकार हैं। गुवाहाटी में पर्यूषण महापर्व पर प्राचार्य जी को हमने कई बार सुना है। उस समय उनकी ज्ञान गरिमा, तत्व-निरूपण, मधुर व्याख्यान शैली में जिनवाणी के प्रतिपादन से जो रसास्वादन मिला उससे हम सभी अत्यन्त अभिभूत हुये थे। उनका

विद्वानों में बहुत से ऐसे भी विद्वान् हैं जो धन की लालसा से आगम परम्परा के विरुद्ध बोलकर जघन्य अपराध करते हैं, पर इससे विद्वानों का प्रभाव क्षीण नहीं होता। पूर्ण चन्द्र में कलंक स्पष्ट दिखाई देता है, फिर भी क्या वह अपनी शीतल [illegible] के साथ प्रकाशित नहीं होता?

सुदर्शन व्यक्तित्व, निश्चल व्यवहार, सरल हृदय सभी को प्रभावित करता है। ज्ञान की अगमता और निरभिमान हृदय मणि कांचन योग प्राचार्य जी में विद्यमान है।

सरस्वती तो आपकी जिह्वा पर हमेशा ही मानों नृत्य करती है जिससे कि आप कठिन से कठिन विषय को सरलता से समझा देते हैं। ऐसे महान प्रतिभाशाली वयोवृद्ध विद्वान को प्रणमाजंली समर्पित करता हुआ आपकी चिरायु की शुभकामना करता हूँ।

-रतनलाल रारा, एडवोकेट
मंत्री, श्री दिगम्बर जैन पंचायत, गुवाहाटी

□

सच्चे सरस्वती - पुत्र

भारतीय संसद में एक बार प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने श्री अटलबिहारी वाजपेयी के लिये कहा था कि सरस्वती आपकी जिव्हा पर विराजती है। यह उक्ति जैन जगत में यदि किसी पर चरितार्थ होती है तो वे हैं पडित नरेन्द्रप्रकाश जी। श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देने की कला उनकी वाणी में है। इसीलिये मैंने एक कार्यक्रम का संचालन करते समय प्राचार्य जी के भाषण के बाद टिप्पणी करते हुए कहा था–

असर लुभाने का प्यारे तेरे बयान में है।
किसी की आंख में जादू तेरी जुबान में है।

बोलते समय विषय को सही परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित करने की क्षमता तो पण्डितजी में है ही, एक विशेषता और है कि वे अपने प्रवचनों/भाषणों के बीच सात्विक ढंग से कुछ ऐसी फुलझड़ियां छोड़ देते हैं कि श्रोता विषय की गंभीरता से विमुख हुए बिना ही आनंद का अनुभव भी कर लेते हैं। इस प्रकार उनके प्रवचन का विषय भले ही नीरस हो परन्तु प्रवचन कभी नीरस नहीं होते।

स्पष्टवादिता भी पंडितजी का गुण है, वे आगम विरुद्ध कही या लिखी गई बातों का या आगम विरुद्ध किये गये आचरण का विरोध अपनी वाणी या लेखनी द्वारा करने से कभी नहीं चूकते और आलोचना/समालोचना भी कुछ इस कौशल से करते हैं कि आलोच्य व्यक्ति मन ही मन तिलमिला तो जाता है परंतु कुछ कहने का साहस नहीं कर पाता।

जैनगजट के अनेक संपादकीय मेरी इस बात के प्रमाण के लिये एतिहासिक दस्तावेज बन चुके है। यही कारण है कि उनके सम्पादकत्व में जैनगजट की लोकप्रियता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। कुछ लोग जो जैनगजट की रीति नीति से सहमत नहीं हैं, वे भी जैनगजट पढ़ते अवश्य है। सामाजिक विरोधाभासों और वैचारिक द्वंदों के इस युग में निष्पक्ष रहकर जैनगजट का संपादन करते रहना पंडितजी के जीवन की बहुत बड़ी सफलता है।

नरेन्द्रप्रकाश जी को सुनना जितना अच्छा लगता है, उनका साहचर्य भी उतना ही आनंददायक होता है। लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व जैनसमाज सतना के मंत्री के नाते जब मैंने पर्यूषण पर्व में उन्हें प्रवचन के लिये सतना आमंत्रित किया और दस दिन अपनी कुटिया पर उनका साहचर्य पाया उसकी मधुर स्मृति मेरे और परिजनों के मन में बसी हुई है। उस समय उनकी व्यवहारकुशलता की जो छाप मन पर पड़ी, वह अनेक संगोष्ठियों, अन्य कार्यक्रमों में तथा अपने और उनके निवास पर बिताये दिनों के बाद भी धूमिल नहीं पड़ी वरन चमकी ही है।

भगवान महावीर के जितने भी सिद्धान्त हैं, वे रटने-बोलने के लिए नहीं हैं, व्यक्तिक जीवन में उतारने के लिये हैं। जब तक सिद्धान्त हमारे आचरण का अंग नहीं बनते, तब तक वे धर्म नहीं कहलाते।

जीवन के सत्तरवें वर्ष की पूर्णता के मंगल अवसर पर अपने से दो वर्ष छोटे, बड़े भाई नरेन्द्र प्रकाशजी को मैं उनके विद्वत्तादि गुणों के लिये प्रणाम करते हुए बहुत प्रसन्न हूं। मैं अपने पूरे मन से यह कामना करता हूं कि आयु पर्यंत उनकी काया, वाणी और मन पूरी तरह से स्वस्थ रहें ताकि वे आत्म कल्याण करते हुए हम सबके लिये भी उसका पथ प्रदर्शित करते रहें।

-निर्मल जैन, सतना

□

उनकी वह सीख मुझे आज भी याद है

आदरणीय नरेन्द्र प्रकाश जी के व्यक्तित्व पर कुछ भी कहते समय अत्यन्त संकोच हो रहा है, क्योंकि उनसे जुड़ी मेरी सभी स्मृतियाँ आज से 21 वर्ष पूर्व की हैं। तब मैं मात्र 15 साल का था और श्री पी.डी. जैन इण्टर कालेज में इण्टरमीडियेट का छात्र था। कक्षा 3,4, व 5 मैंने पढ़ी ही नहीं थीं। मेरी प्रतिभा को देखते हुए (कृपया इसे आत्म प्रशंसा न समझें) मेरे पिता ने कक्षा 2 से सीधे कक्षा 6 में मेरा दाखिला इस्लामियाँ इण्टर कालेज में करा दिया था। वहाँ से हाई स्कूल करने के बाद मुझे श्री पी.डी. जैन इण्टर कालेज में दाखिल किया गया। श्री नरेन्द्र प्रकाश जी वहाँ प्राचार्य थे।

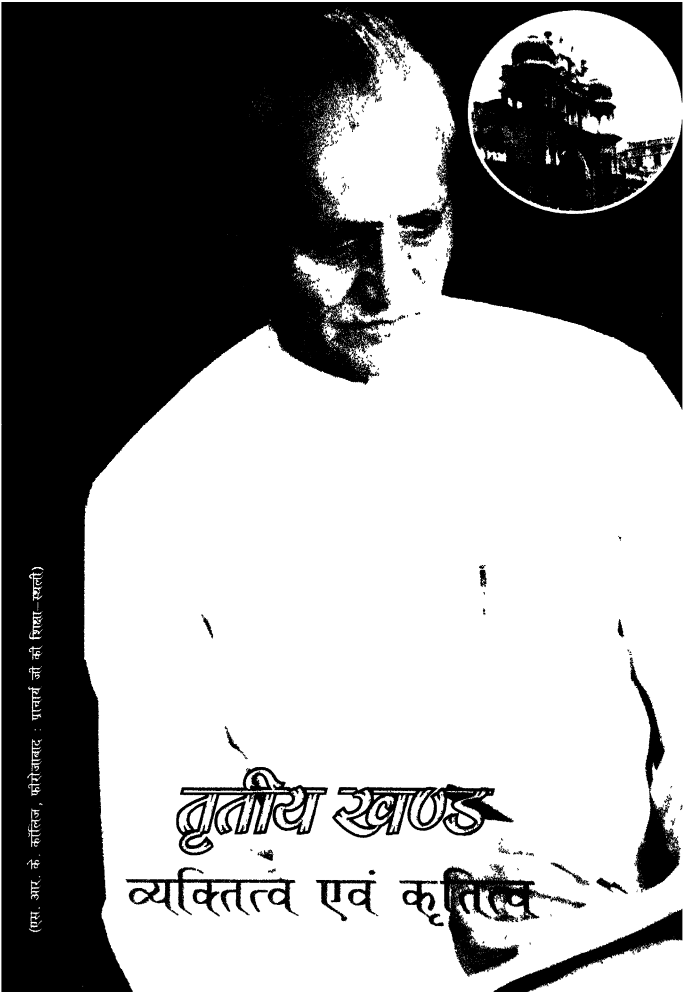
बात फर्स्ट-इयर के दिनों की है। यदाकदा कालेज में प्राचार्य जी से आमना-सामना हो जाता था। उनकी छवि एक निहायत कठिन स्वभाव के अनुशासनप्रिय व्यक्ति की थी, सो उनके सामने पड़ते ही दिल की धड़कनें तेज हो जाती थीं। उनके व्यक्तित्व और स्वभाव की छाप सम्पूर्ण कालेज प्रांगण में साफ महसूस की जा सकती थी। उन्हें मैंने बहुत कम बोलते देखा था। उनके कार्यालय के सामने से गुजरने में भी भय लगता था, इसलिए उस क्षेत्र से मै भरसक दूर ही रहता था। उन दो सालों के दौरान मैंने उन्हें कभी हँसते-मुस्कराते हुए नहीं देखा था।

हमारी कक्षा के एक अध्यापक महोदय, जिनका नाम आज इतने लम्बे अन्तराल के बाद याद नही है, की आदत थी कि जब भी वे कक्षा में आते तो किसी एक छात्र को कोई एक पाठ पढ़ने के लिए खड़ा कर देते। छात्र जितनी देर तक पाठ पढ़ता, वे ऊँघते रहते थे। इस बीच कक्षा का वातावरण एक विचित्र से उहापोह और आलस्य से भर जाता था। एक दिन कुछ छात्रों ने अध्यापक जी की शिकायत प्राचार्य जी से करने का निर्णय लिया। प्राचार्य जी तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन सबने मुझे तैयार किया। जोश में आकर मैं राजी हो गया। किन्तु बात जब पहल करने की आयी तो प्राचार्य के बरामदे तक पहुँचते-पहुँचते मेरे हाथ-पैर काँपने लगे थे। मन में वापस लौट लेने की आयी, लेकिन सहपाठियों द्वारा खिल्ली उड़ाये जाने के डर से जैसे-तैसे हिम्मत जुटाई और 'परमीशन' लेकर उनके कार्यालय में दाखिल हो गया। उनके सामने ही मेरी हिम्मत और कण्ठ, दोनों जवाब दे गये और मैं लगभग रोने-रोने को हो आया। उन्होंने मुझे पहले चुप कराया और संयत भाषा व स्वर में मुझसे बात पूछी। काँपते स्वर में मैंने जैसे-तैसे अध्यापक जी की शिकायत कर दी। यह भी कह दिया कि वे अच्छा नहीं पढ़ाते, हमारी समझ में कुछ नहीं आता। घबड़ाहट में मेरे मुँह से अध्यापक जी के लिए कुछ ऐसे शब्द निकल गये, जो उनकी गरिमा के खिलाफ थे।

प्राचार्य जी ने गम्भीर आवाज में मुझे समझाया—"वे जो भी हैं, तुम्हारे गुरु हैं। विद्या सिर्फ पढ़ने से नहीं आती, गुरुओं का सम्मान करने से भी आती है। दूसरे लड़कों के उकसाने पर यहाँ आने के बजाय पहले अपने से बड़ों का सम्मान करना सीखो।"

डरा-डरा सा मैं उनके कमरे से वापस चला आया था। एक विचित्र से अपराध बोध और आत्म ग्लानि से भरा हुआ।

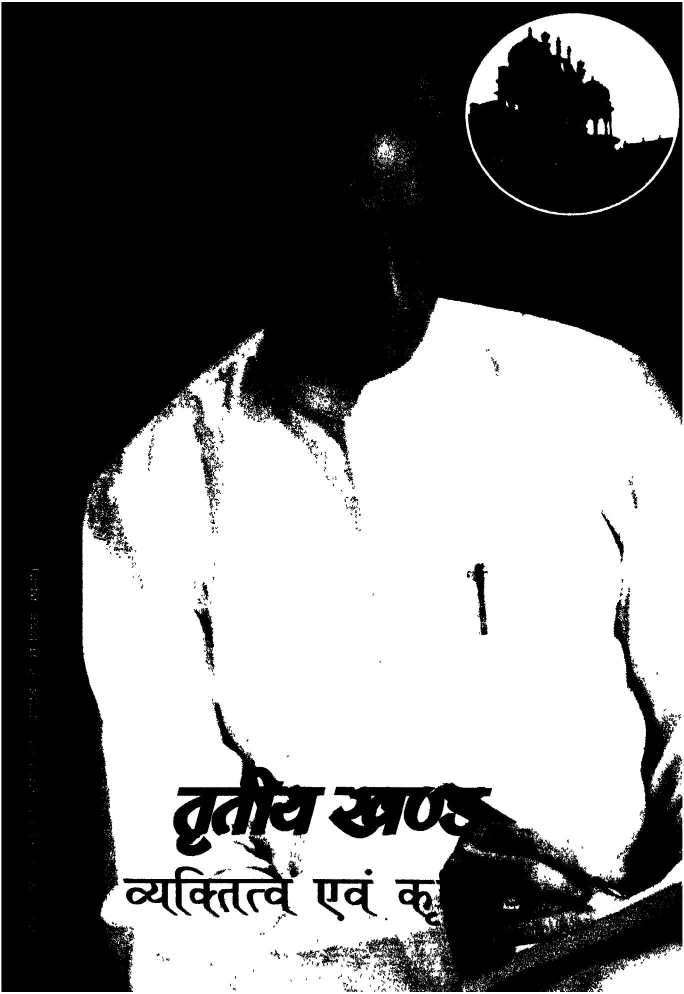
रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भीगा हुआ होना चाहिए।



(एस. आर. के. कॉलिज, फीरोजाबाद : प्राचार्य जी की शिक्षा-स्थली)

तृतीय खण्ड

व्यक्तित्व एवं कृतित्व



तृतीय खण्ड

व्यक्तित्व एवं कृ

आत्मकथ्य

(विगत 70 वर्षों की जीवन-यात्रा की प्रेरक स्मृतियाँ)

यह संसार जीवों से ठसाठस भरा हुआ है। जल, थल और आकाश का कोई कोना ऐसा नहीं है, जहाँ अपार जीवराशि विद्यमान न हो। पृथिवी पर रेंगते-उगते कीड़े- मकोड़ों और पेड़-पौधों, जल में तैरते मगरमच्छों और घड़ियालों तथा आकाश में उड़ते पक्षियों की गणना कौन कर सकता है? अनन्तानन्त जीवों से भरे इस विराट् विश्व में मनुष्यों की संख्या महासमुद्र के समक्ष एक नन्हीं-सी बूँद के समान अत्यल्प है। मनुष्य का भव मिलना बहुत ही दुर्लभ है। कहा भी गया है–

दुर्लभ है निगोद तें थावर अरु त्रस गति पानी
नर-काया को सुरपति तरसें सो दुरलभ प्रानी

जब किसी जीव के अशुभ कर्मो का भार कम होने पर पुण्य कर्म थोक में उछाल भरते है, तब मिलता है मनुष्य का जन्म। 'मानुस्सं खलु सु दुल्लहं' की वीरवाणी के आधार पर ही मनुष्य को 'देवानुप्रिय' शब्द से सम्बोधित किया जाता रहा है। इस शब्द का अर्थ है-देवताओं को भी प्रिय। अपनी बुद्धि के सदुपयोग की अद्भुत क्षमता होने से ही उसका स्थान देवताओं से ऊँचा माना गया है। वह बुराइयों के दलदल से निकलकर अपने सत्कर्मो से अमल-अविनाशी सुख, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं, को प्राप्त कर सकता है।

प्रबल पुण्योदय से हमें भी यह मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई है, किन्तु इसकी सार्थकता तभी है, जब इसके साथ ही आर्यक्षेत्र में जन्म, उच्च कुल, अच्छे माता-पिता, जिनवाणी-श्रवण की लालसा, धर्म मे श्रद्धा और श्रद्धानुरूप आचरण के संयोग भी मिलें। सौभाग्य से 'सोने मे सुगध' की तरह हमें ये सभी सुखद संयोग प्राप्त हुए हैं और इनका यथाशक्ति लाभ भी हमें मिलता रहा है।

सभी मनुष्य अपनी-अपनी आकृतियों या रूप-रग की दृष्टि से पृथक्-पृथक् दिखते हुए भी आत्मा या गुण-धर्म की अपेक्षा से एक हैं। जिस प्रकार हर बीज में वृक्ष बनने और प्रत्येक अक्षर में मंत्र बनने की शक्ति निहित है, उसी प्रकार हर आत्मा में परमात्मा होने की योग्यता है। आवश्यकता है उसे समझने और प्रकट करने की। कबीर ने कहा भी है–

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग
तेरा साई तुज्झ में, जाग सके तो जाग

हमें अपने बारे में कोई भ्रम नहीं है। पूरे देश में हर जगह जाने-आने तथा प्रचुर मात्रा मे लिखते और बोलते रहने से लोगों ने हमें बड़ा पण्डित मान लिया है, परन्तु हम स्वय न तो अपने आप को प्रतिभाशाली लेखक मानते है और न जिनागम का तलस्पर्शी विद्वान् ही। यदि कोई कुशलता हमारे में है भी तो वह इतनी ही है कि हम जो भी जानते हैं, उसे दूसरों के दिल में उतारने में थोड़ा-बहुत सफल होते रहे हैं। इसे हम वरदा वाणी का प्रसाद मानते है और यह हमें प्राप्त है। हमारी इसी वाक्पटुता ने हमें सभी प्रिय पाठकों एवं श्रोताओं का स्नेह-भाजन बनाया है। स्वाध्याय के प्रति लगन और श्रेष्ठ जनो की संगति का लाभ जिसे प्राप्त हो, उसे औरों से अधिक मान-सम्मान मिलता ही है। हमें भी अपने से बड़ों और छोटों का लाड़-प्यार और स्नेह हमेशा ही अपनी योग्यता से अधिक मिलता रहा है। यह सब यश कीर्ति कर्म के उदय का फल है। इसमें हमारा कोई विशेष पुरुषार्थ नहीं है।

अभी पिछले दिनों हमारे कुछ विद्वानों ने अपनी यह भावना व्यक्त की कि अपने जीवन के अनुभव हम स्वयं लिखे। हमें कुछ संकोच-सा हुआ। मन में एक दुविधा तो यह थी कि हमारे जीवन में ऐसा कुछ भी तो नही हैं, जिससे किसी को कुछ शिक्षा मिल सके। दूसरी दुविधा यह थी कि स्वयं अपने बारे में कुछ लिखना क्या सचमुच इतना आसान है, जिसका निर्वाह हमसे सहजता से हो पायेगा।

आत्मार्थी के चित्त में उमंग और उल्लास रहता है। जो उत्साही है, वही धर्मसाधना कर सकता है। उसी के जीवन में खुशियाँ अठखेलियाँ करती हैं।

श्रद्धेय दादाजी (पं. बनारसीदास चतुर्वेदी) ने भी लिखा है—"अपने विषय में कुछ भी लिखना और वह भी तटस्थ वृत्ति से अर्थात् आत्म-प्रशंसा और आत्म-निन्दा में संतुलन बनाए रखना, कोई आसान काम नहीं है। यह तो ऐसा ही है, जैसे मनुष्य अपने अंगों की चीर-फाड़ स्वयं ही करे। यह बड़ा नाजुक काम है।" हमारे संकोच को भाँपकर एक सुझाव यह भी सामने आया कि यह कार्य किसी अन्य विद्वान् को इण्टरव्यू देकर करा लिया जाए। इसमें भी यह सोच आड़े आया कि हमारे बारे में ठीक-ठीक वही सहृदय व्यक्ति लिख सकेगा, जिसके मन में हमारे प्रति स्नेह का भाव होगा और स्नेही जीव अतिशयोक्तियों का सहारा न ले, यह हो नहीं सकता। स्नेह उस दुरबीन की भाँति होता है, जिसके माध्यम से छोटी चीज भी बड़ी दिखाई देती है। पर्याप्त ऊहापोह के बाद हमने यही निश्चय किया कि विगत 70 वर्षो की अपनी जीवन-यात्रा का आधा-अधूरा लेखा-जोखा, जितना भी हमारी स्मृति-मंजूषा में सुरक्षित है, हम स्वयं ही लिखें। इसी बहाने हमें अपने हितैषियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का अवसर भी मिल सकेगा। नीतिकारों ने कहा भी है—

जो तृणसम उपकार को समझे सदृश पहाड़
ऐसे सुजन कृतज्ञ की होय न कबहूँ हार

हमारे इस आत्मचरित मे कोई प्रेरक तत्त्व हो या न हो, किन्तु 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यं' की नीति के अनुसार हमारा यह तुच्छ प्रयास किसी को भी खटकना तो नहीं चाहिए। और कुछ नहीं, तो भी पाठक हमारी त्रुटियों से तो कुछ सीख ही सकते हैं।

अभी पिछले दिनों ही हिन्दी के यशस्वी चिंतक एवं साहित्यकार श्री कैलाश वाजपेयी ने अपनी 70वीं वर्षगाँठ पर कहा है—"जीवन के इस पड़ाव पर पहुँचकर मुझे नहीं लगता कि कोई पूरी तरह से खुश हो पाता होगा, क्योंकि यहाँ तक आते-आते व्यक्ति अपने जीवन के पच्चीस हजार से भी ज्यादा दिन पार कर चुका होता है और अब उसके पास गिनती के दिन ही शेष बचते हैं। यश की अन्तिम सीढ़ी पर खडा व्यक्ति भी 'अभी आगे और' की जिजीविषा से पीड़ित रहता है। उसे बार-बार ऐसा लगता है कि जीवन निरर्थक ही रहा।"

यही अनुभूति हमें भी हो रही है। जीवन के इस पायदान पर खड़े-खड़े यह विचार भी आता ही है कि अब जो दिन बचे हैं, उनका ही सदुपयोग कर लें। स्व. श्री नाथूरामजी 'प्रेमी' द्वारा व्यक्त यह मगल भावना हमारे मन में हिलोरें ले रही है—

दयामय ऐसी मति हो जाय
त्रिजगत की कल्याण-कामना,
दिन-दिन बढ़ती जाय।
औरों के सुख को सुख समझूँ,
सुख का करूँ उपाय।
अपने दुख सब सहूँ किन्तु,
पर दुख नहिं देखा जाय।
दयामय......

सत्तर वर्षो का समय कम नहीं होता। हम अपने समय का पूरा-पूरा सदपुयोग नहीं कर सके, फिर भी अपनी शक्ति-सामर्थ्य और परिस्थितियों के चलते जितना कार्य हो सका, उससे असंतोष भी नहीं है। अब शेष जीवन के लिए यह सकल्प एकमात्र विकल्प के रूप में हमारे सामने है—

जो बनि आवे सहज ही,
ताही में चित देय।

□

[illegible] के लिए नहीं, धर्म-साधन में मन को टिकाये रखने के लिये करना चाहिए।

प्रभाव गाँव की माटी का

यह सच है कि व्यक्तित्व के निर्माण में वातावरण का प्रभाव पड़ता ही है। प्रभु का भजन मंदिर में बैठकर तो हो सकता है, सिनेमा-हॉल में बैठकर नहीं। हमारा जन्म आगरा जनपद के सौ-सवा सौ घरों के एक छोटे-से गाँव जटौआ में हुआ था। मिट्टी से बने और गोबर से पुते-लिपे कच्चे घरों, धूलभरी राहों और पगडण्डियों, नीम के पेड़ों की छाया, कच्चे कुओं, पानी से भरी एक पोखर तथा राष्ट्रीय पक्षी मोर की मधुर गुंजार को अपने में समेटे यह गाँव आज की तरह विकसित नहीं था। दूर-दराज से गाँव तक पहुँचने के लिए एकमात्र रेलवे स्टेशन बरहन में है। यह स्टेशन गाँव से दो कोस की दूरी पर स्थित है। गाँव तक घोड़ा, ऊँट या बैलगाड़ी से पहुँचा जा सकता था, किन्तु जिनके घरवालों या नाते-रिश्तेदारों के पास ये साधन नहीं होते थे, उन्हें तो यह दूरी पैदल चलकर ही नापनी होती थी। डाकखाना गाँव से दो फर्लांग की दूरी पर अवस्थित अहारन कस्बे में है।

जटौआ अहिवासी ब्राह्मणों का गाँव है। सभी लोग प्रायः खेती करते हैं। धनी-मानी हैं। कुछ लोगों के यहाँ कपास ओटाने की रहटियाँ भी चलती थीं। जैनों के एक ही कुल के मात्र तीन-चार घर ही थे, किन्तु गाँव में उनकी प्रतिष्ठा बहुत थी। यहाँ के अनेक लोगों ने दूरस्थ विद्यालयों में अध्ययन कर उच्च कोटि का पाण्डित्य प्राप्त किया था। ये लोग कभी-कभार जब गाँव में आते थे तो अहिवासी लोग खड़े होकर उन्हें बहुमान देते थे।

गाँव मे जिन्हें हमने स्थायी रूप से रहते हुए देखा, उनमें से एक थे हमारे ताऊ हकीम पन्नालालजी। उन्हें नाड़ी का अच्छा ज्ञान था। रोगी से कुछ पूछे बिना ही वह उसकी तकलीफ के बारे में बता दिया करते थे। डाक्टरों ने जिन्हें असाध्य घोषित कर दिया था, ऐसे कुछ मरीज भी उनके इलाज से ठीक हुए थे। उनकी चिकित्सा-पद्धति में दवायें तो नाममात्र को ही होती थीं, वह प्रायः गाँव और उसके आस-पास पाई जाने वाली जड़ी-बूटियों के प्रयोग पर ज्यादा जोर देते थे। वैद्यक का ज्ञान उन्होंने अपने नाना श्री बलदेवदास जी से प्राप्त किया था। स्वस्थ होने के बाद रोगी स्वेच्छा से जो भेंट देते, उसी में वह संतुष्ट रहते थे। गाँव में उनके पास दस-बारह बीघा जमीन भी थी, जिस पर खेती करते थे। दरवाजे पर बैलों की एक जोड़ी और गाय हमने तब तक बँधी देखी, जब तक उनके शरीर में उनकी सेवा करने का बल बना रहा।

ताऊजी हमसे बहुत स्नेह रखते थे। हमारी किसी भी इच्छा की पूर्ति का वह भरसक प्रयत्न करते थे। प्रायः ग्रीष्मावकाश में हम अपनी माँ के साथ गाँव में रहने चले जाते थे। दिन में खेतों पर चले जाते। हमारे खेत में नीम, आम, बेर, अमरूद और नीबू के पेड़ थे। मेंड़ के सहारे चार-छह बबूल भी थे। पेड़ों पर चढ़ना-उतरना हमारा शौक था, पर ज्यादा ऊँचाई तक नहीं चढ़ते थे। डर लगता था। विवाह के चार-पाँच वर्षो के बाद तक गाँव में हमारा आवागमन बना रहा। ताऊजी के अवसान के बाद यह क्रम टूट गया।

एक थे ला. सूरजमानजी, जो छह फुटे लम्बे और छरहरे वदन के थे। वह ऊँट रखते थे। उस पर बैठकर आसपास के गाँवों में फेरी लगाकर कपड़े का व्यापार करते थे। अकेले ही थे। वृद्धावस्था में भी उनकी चुस्ती-फुर्ती देखते ही बनती थी।

एक थे श्री रामचन्द्रजी, जो जन्मान्ध थे। उनके आगे-पीछे कोई नहीं था। बाहर की बैठक मे चना, गुड़, नमक, मिर्च, साबुन, दियासलाई आदि बेचते थे। जो आय होती, उसी से उदर-पूर्ति होती थी। गाँव के बाहर स्थित कुए से पानी भरकर लाने, आटा गूँथने, दाल-सब्जी पकाने और रोटी बनाने जैसे सारे कार्य स्वयं करते थे। रविवार को लाठी टेकते हुए अहारन जाते और पेंठ से सप्ताहभर के लिए आटा-दाल-सब्जी तथा दुकान का सामान खरीद कर ले आते। आँख वालों से ज्यादा सक्रिय दिखाई देते थे। हम जब गाँव में रहते तो हमसे पद्मपुराण वाँचने को कहते। एक-एक वाक्य या प्रसंग को बड़े ध्यान से सुनते थे।

[illegible]

ये दोनों हमारे पिताजी के ममेरे भाई थे। हम इन्हें ताऊजी कहते थे। आत्मनिर्भरता किसे कहते हैं, इसका बोध इनकी क्रियाशीलता को देखकर होता था। ये ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु महाभारत का यह श्लोक उनके जीवन का आदर्श बन चुका था–

अकृत्वा पर सन्तापं, अगत्वा पर मन्दिरं
अनुत्सृज्य सहांवत्म, यच्छक्यं तत् कुरु

अर्थात्–दूसरों को पीड़ा पहुँचाए बिना, दूसरों के घर से भीख माँगे बिना और भले आदमियों का रास्ता छोड़े बिना जो कुछ कार्य बन सके, वह करो।

सुखी जीवन का आधार है यह सीख। जो भी इसका अनुपालन करेगा, वह आनन्द पायेगा।

किसी-किसी भूमि का भी अपना भाग्य होता है। वह भी प्रतापी मनुष्यों की तरह गौरव को प्राप्त हो सकती या हो जाती है। जटौआ की भूमि में यह विशेषता रही है कि जिसने भी वहाँ जन्म लिया, उसके भीतर उत्कट ज्ञान-पिपासा जगे बिना नहीं रह सकी। जिसने भी पुरुषार्थ किया, वह राष्ट्रीय ख्याति का पण्डित बन गया। हमारे बाबूजी या ताऊजी के गाँव छोड़ देने पर अन्य शहर या कस्बे में जो भाई उत्पन्न हुए, वे कुशल व्यापारी या पद-प्रतिष्ठा के धनी तो बने, किन्तु माँ वागेश्वरी की कृपा-कोर से वंचित रहे।

किसी-किसी भूमि में ऐसी विशेषतायें देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। राजा विक्रमादित्य जिस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था, युग बीतने पर वह मिट्टी के ढेर में दब गया। मिट्टी के उस ढेर या टीले पर भेड़ें चराने वाला गडरिया का एक निरक्षर बेटा जब बैठता तो ज्ञान की बातें करने लगता। बड़े-बड़े झगड़ों का बुद्धिपूर्वक निपटारा कर देता। टीले से उतरते ही उसका ज्ञान छूमन्तर हो जाता था। चाँदनपुर में एक टीले के नीचे दबी सातिशय मूर्ति के प्रभाव से एक गाय के थनों से दूध आपोंआप झरने लगता था। होनहार तीर्थंकर की माता दिक्कुमारियों के जटिल से जटिल प्रश्नों का सटीक समाधान करती है। क्या उसके पास किसी विश्वविद्यालय की बड़ी उपाधि होती है? नहीं, सातिशय पुण्यात्मा बालक के गर्भ में स्थित होने से उसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जड़ पदार्थ हो या चेतन व्यक्ति, शुभ परमाणुओं का प्रभाव सब पर अंकित होता है और निमित्त पाकर वह अनुभव मे भी आता ही है।

जटौआ के इस मूल में भी पूर्वजों के तप-त्याग का प्रभाव हो सकता है। हम भाग्यशाली थे कि हमारा जन्म जटौआ की धरती पर हुआ। अब गॉव में जाना नहीं होता, फिर भी हमारी स्मृति में वह रहता ही है। उसके स्मरण से भी उत्साह का स्फुरण होता है, ऐसा हमने कई बार अनुभव किया है।

गॉव की उस पावन माटी को हमारे शतशः प्रणाम।

□

गाँव-परिवार की सारस्वत विभूतियाँ

जैन पण्डित-परम्परा में जटौआ, बेरनी, चावली आदि गाँवों का प्रचुर योगदान रहा है। ये सभी गॉव एक-दूसरे से सटे हुए पाँच-सात कोस की परिधि में ही बसे हुए हैं। जैन विद्या के क्षेत्र में इन गाँवों का अवदान इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

विद्वान् किसी भी क्षेत्र या समाज के गौरव-स्तम्भ होते हैं। हमारा गॉव जटौआ भले ही एक छोटा-सा गॉव है, किन्तु अपनी सारस्वत विभूतियों के कारण उसने सम्पूर्ण देश में अपनी एक पहचान बना ली है। हमारा जन्म भी एक ऐसे परिवार में हुआ, जहाँ सरस्वती (माँ जिनवाणी) की साधना और पूजा होती रही है। उसी माँ शारदा के प्रभाव से वाग्देवी का वरदान और प्रसाद थोड़ी-सी मात्रा में हमें भी प्राप्त हो सका है।

मेरे पिताजी (स्व. पण्डित रामस्वरूप जी) चार भाई थे और सभी विद्वान् थे। उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना हम अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं।

हकीम पन्नालाल जी : हमारे बड़े ताऊजी थे, जो धर्मशास्त्र के तो नहीं, अपितु आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता थे। दस-बीस गॉवों मे उनकी साख थी। नब्ज देखकर यह बता देते थे कि मरीज ने आज क्या बदपरहेजी की है। पेड़-पौधों के गुणों की उन्हें जबर्दस्त पहचान थी। वह हमारे गाँव के धन्वन्तरी थे।

पण्डित कुंजविहारीलालजी शास्त्री : हमारे यह मझले ताऊजी उच्चकोटि की प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने इन्दौर और हजारीबाग मे लगभग 40 वर्षो तक अध्यापन-कार्य किया था। लेखन-कला और काव्य-रचना में निष्णात थे। उन्होंने हर विधा में अपनी लेखनी चलाई है। उनकी प्रकाशित कृतियों में मुख्य हैं—(1) जीवन्धर-चरित (नाटक), (2) कन्या-विक्रय (प्रहसन), (3) कुजगान-मंजरी (भजन-संग्रह), (4) धर्मपत्नी और वैश्या (उपन्यास) एवं (5) जैन विवाह-पद्धति (गृहस्थाचार-विधान)। उनके द्वारा रचित कृतियों को अपने छात्र-जीवन मे हमने भी पढ़ा है और उनसे हमने मसिकर्म की प्रेरणा प्राप्त की है।

वह प्रवचन-पटु भी थे। जिनवाणी के सूत्रों की अच्छी व्याख्या करते थे। मात्र 57 वर्ष की आयु मे क्षय रोग से उनका निधन हो गया।

उन्होंने यहाँ फीरोजाबाद में अपना मकान बना लिया था। यहीं उन्होंने अन्तिम सॉस ली। उनके छोटे सुपुत्र श्री महेन्द्रकुमार जैन 'वत्सल' आजकल यहाँ रह रहे हैं। वह एक ख्यातिप्राप्त 'जनरल मर्चेण्ट' हैं। पं. यतीन्द्रकुमार जैन शास्त्री एवं पं. कैलाशचन्द्र जैन साहित्य विशारद का निधन हो चुका है। दोनों ही अच्छे विद्वान थे।

पण्डित विजयकुमारजी न्यायतीर्थ : हमारे छोटे ताऊजी भी लेखनी और वाणी दोनों के धनी थे। जैन गीतों और भजनों की उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। वह लाड़नूं (राजस्थान) मे अध्यापन-कार्य करते थे। मात्र 26 वर्ष की अल्पायु में ही जलन्धर रोग से पीड़ित होकर वे दिवंगत हो गए। यदि उन्हें कुछ जीवन और मिला होता तो वह बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करते।

पण्डित रामस्वरूपजी शास्त्री : हमारे पिताजी चारों भाइयों में सबसे छोटे थे। वह भी जैन विद्या और प्रतिष्ठा-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। कुशल कवि और लेखक भी थे। उनके द्वारा रचित कृतियों के नाम हैं—(1) जैन भजन रंजनमाला, (2) सरस सवैया, (3) प्रश्नोत्तर शतक भाग 1-2, (4) दृष्टान्तलहरी, (5) जैन क्रियाकाण्ड-प्रदीप, (6) वेदीप्रतिष्ठा-कलशारोहण विधान, (7) जैन मत प्रकाश एवं (8) जैन विवाह पद्धति (सम्पूर्ण नेगाचार सहित)। इनमें कृति संख्या 2 एवं 3 प्रकाशित

[illegible]

एवं शेष अप्रकाशित हैं। उनकी पाण्डुलिपियों में प्राचीन लावनियों का एक संकलन भी है। अपनी युवावस्था में उन्होंने मारवाड़ में अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की थी।

पण्डित यतीन्द्रकुमार शास्त्री : यह हमारे मझले ताऊजी के पुत्र थे। इन्हें आयुर्वेद, ज्योतिष एवं प्रतिष्ठा शास्त्रों में महारत हासिल थी। संहितासूरि, साहित्यालंकार, कवि कोविद आदि उपाधियों से इन्हें अलंकृत किया गया था। चतुर्विंशति शासनदेवी विधान, क्या हम अहिंसक है, स्याद्वाद-सूर्य आदि आपकी प्रकाशित कृतियाँ है। जीवन का बहुभाग समाज और धर्म की सेवा में बिताया। कुछ वर्ष पूर्व आगरा की गांधीनगर कॉलोनी में अपना मकान बना लिया था। इनके दो पुत्र शैलेन्द्रप्रकाश और पारसप्रकाश भी उन्हीं की तरह सेवाभावी हैं और आगरा में रह रहे हैं।

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन : यह पण्डित यतीन्द्रकुमार शास्त्री के छोटे भाई थे। हजारीबाग में हमारे मझले ताऊजी के पास रहते हुए इन्होंने साहित्य विशारद की उपाधि प्राप्त की थी। वक्तृत्व शैली प्रभावक थी। मात्र 21-22 वर्ष की आयु में वह महामारी हैजा के शिकार हो गए।

स्वानामधन्य पण्डित-प्रवर श्री गजाधरलालजी शास्त्री एवं पं. रामप्रसाद जी शास्त्री के परिचय के बिना तो जटौआ की गौरव-गाथा अपूर्ण ही मानी जायेगी। पूज्य पिताजी के चचेरे भाई होने के नाते ये भी हमारे ताऊजी थे और इन्होंने अपने तलस्पर्शी पाण्डित्य से राष्ट्रीय स्तर की ख्याति प्राप्त की थी। इनका संक्षिप्त परिचय भी यहाँ प्रस्तुत है—

पण्डित गजाधरलालजी शास्त्री : आप एक उच्चकोटि के विद्वान् थे। एक उत्कृष्ट टीकाकार के रूप में आपकी ख्याति थी। आचार्य अकलंकदेवकृत 'राजवार्तिक' ग्रंथ की आपकी टीका अत्यंत वैदुष्यपूर्ण है। कुछ अन्य आगम ग्रंथों की टीकायें भी आपने लिखी थीं, किन्तु वे आज सुलभ नहीं है। आप कोलकाता की जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था से सम्बद्ध थे तथा वहाँ घी का थोक व्यापार करते थे। आपके एकमात्र सुपुत्र कानपुर से रेलवे के एक उच्च अधिकारी के पद से अवकाश ग्रहण कर आजकल बम्बई में निवास कर रहे हैं। इनका शुभ नाम है—श्री प्रकाशचन्द्र जैन।

पण्डित रामप्रसादजी शास्त्री : आपका सेवा-क्षेत्र 'ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती सदन, बम्बई' रहा। मधुर वक्ता एवं प्रामाणिक लेखक के रूप में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। आपकी भी कई रचनायें हैं, जो अब अनुपलब्ध हैं। हमने बचपन में एक बार आपके दर्शन किए थे।

इसी श्रृंखला में यह निवेदन करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि जटौआ के निकटवर्ती गाँव बेरनी के निवासी जैनदर्शन-मर्मज्ञ सर्वश्री पण्डित खूबचन्द्रजी शास्त्री, प. बंशीधरजी शास्त्री (सोलापुर-प्रवासी) तथा बाबू नेमीचन्द्र जी वकील (मोरेना-प्रवासी) हमारे पिताजी के मौसा थे। समाज के शीर्षस्थ विद्वान् न्यायालंकार वादीभकेसरी पं. मक्खनलालजी शास्त्री पिताजी के शिक्षा-गुरु थे। हमें भी उनका स्नेह प्राप्त होता रहा।

ऐसे विद्या-मनीषियों के परिवार में जन्म लेकर हमें गर्व का अनुभव हो रहा है। अपने इन विद्वान् पूर्वजों की निर्मल कीर्ति हमारे लिए एक अमूल्य धरोहर के समान है।

☐

[illegible]

एक दृष्टि अपनी वंशावली पर

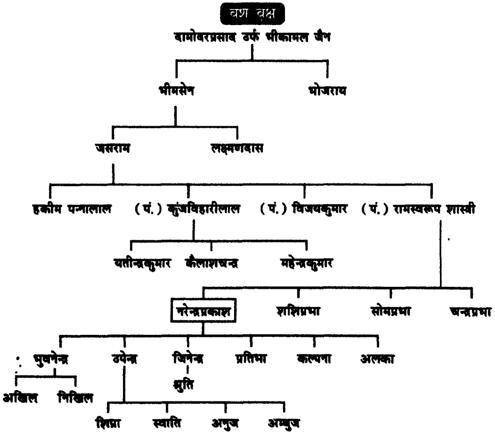
अपने वंश की रीति-नीति के अनुकरण की भावना संतान में आती ही है। हर व्यक्ति वातावरण का गुलाम है। कुल-परम्परा से जैसा अलन-चलन वह देखता है, स्वयं भी उसी साँचे में ढल जाता है।

हमारे कुल में धर्म के प्रति निष्ठा हमेशा रही है। हमारे सभी ताऊजी तो धर्मनिष्ठ और धर्म-मर्मज्ञ थे ही, बाबा-दादा भी पाप-भीरु थे। वे भगवत्भजन और संयम-नियम का पालन कितना करते थे, यह तो पता नहीं, किन्तु सभी परिश्रमी थे और समय को व्यर्थ की बातों में नहीं गँवाते थे। सरलपरिणामी थे। उनके जीवन का उसूल था–

'हाथ काम, मुख राम, हिरदै साँची प्रीति'

मनीषियों के अनुसार ये भी धर्मात्मा के ही लक्षण हैं। आचार्य हरिभद्रस्वामी ने लिखा है– 'तव सपर्यास्तवाज्ञा-परिपालनम्' अर्थात् भगवान की आज्ञा का पालन ही भगवान् की पूजा है। परोपकार या परहित-चिन्ता ही तो भगवान की आज्ञा है और हमारे सभी पूर्वज इसका परिपालन करते थे।

अपनी वंशावली को जानने की जिज्ञासा हमारे मन में बचपन से ही थी, परन्तु हमारे होश सँभालने से पूर्व ही सभी बुजुर्ग विदा हो चुके थे। अतः पूज्य पिताजी कभी-कभी हमारे पूर्वजों के बारे में जो बताते थे, उसी के आधार पर अपनी वंशावली का संक्षिप्त परिचय हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।



हिन्दू और मुसलमान का धर्म, धर्मग्रन्थ, आचरण, [illegible] और [illegible] का [illegible] अलग-अलग हो सकता है, लेकिन उनकी भूख, प्यास, आँसू और मुस्कान में कोई अन्तर नहीं हो सकता।

एटा जनपद के अन्तर्गत गहलादोषपुर नाम का एक बड़ा गॉव है, जिसमें एक भव्य जिनालय है। उसमें पद्मावतीपुरवाल जैन जाति के लोग निवास करते थे। उन्हीं में एक दामोदरदास नाम के धार्मिक रुचि-सम्पन्न व्यक्ति रहते थे। जनसामान्य में वह भीकामल के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके दो पुत्र थे। प्रथम भीमसेनजी, दूसरे भोजरायजी। भीमसेनजी बड़े बहादुर और बलवान थे। गॉंव और आसपास के लोगों पर उनका बडा रौब था। वह हमेशा गरीबों की मदद करते रहते थे। उनकी उपस्थिति में झगड़ा नहीं होता था। कलहप्रिय लोग उनसे डरते थे।

भीमसेनजी के भी दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक का नाम श्री जसरामजी और दूसरे का श्री लक्ष्मणदासजी था। जसरामजी बड़े शान्तस्वभावी, कुशल व्यापारी और गुणी थे। उनका प्रथम विवाह बरहन सराय से हुआ था। उनसे एक पुत्र ज्योतिप्रसाद एवं एक पुत्री हुई। यह पुत्र फीरोजाबाद मे ब्याहे थे। यहॉं कटरा पठानान में उनका मकान छोटे मन्दिर के पास में है। अब उनके परिवार के लोग घाटमपुर (कानपुर के पास) में रहने लगे हैं। पुत्री का विवाह राजा के ताल के श्री गुलजारीलालजी के साथ हुआ था। उनके एक पुत्र साहूलालजी थे, जिनकी सन्तान आज भी गॉव मे रहती है।

दैवयोग से कुछ दिनों के बाद जसरामजी की प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो गया। उनका दूसरा विवाह चावली-निवासी हकीम बल्देवदासजी की पुत्री के साथ हुआ। वे एक योग्य और अनुभवी हकीम थे। उन्हें लोग आदर से 'दद्दू' कहकर पुकारते थे। उनकी धर्मपत्नी जग-बहूरानी के नाम से प्रसिद्ध थी। उनके तीन पुत्रियॉं उत्पन्न हुई। पहली सेवतीदेवी, दूसरी तंगडदेवी उर्फ अमीरा और तीसरी गरीबादेवी थीं। कुछ कारणों से हकीमजी अहरान के पास जटौआ आकर बस गए। वहॉं भी उनकी हिकमत जोरों से चलने लगी। उनके पास दो भैंसे थीं। दूध-दही का बडा आराम था। उन्होंने परचूनी की एक दुकान मझौआ गॉंव, जो जटौआ से दो फर्लांग की दूरी पर है, कर ली थी। यह ठाकुरों का गॉव है।

श्री जसरामजी का दूसरा विवाह इन्हीं की बडी पुत्री सेवतीदेवी के साथ हुआ था। दूसरी तंगड़देवी का विवाह बेरनी-निवासी श्री सोनपालजी के साथ हुआ था। वे चार भाई थे और सभी विद्वान् थे। तीसरी लडकी गरीबादेवी फीरोजाबाद-निवासी श्री जीवारामजी पसारी के सुपुत्र श्रीपालजी को ब्याही थीं। उनके दो पुत्र थे—ला. रामशरणजी और ला भानुकुमार जी। श्री जयरामजी के चार पुत्र हुए, जिनमे पिताजी सबसे छोटे थे। इन्हीं गरीबा दादी ने पिताजी का लालन-पालन किया। बचपन में हमें भी इनका भरपूर वात्सल्य मिला।

श्री बल्देवदासजी ने हमारे बाबा जसरामजी को भी जटौआ बुला लिया। वे वहीं एक दर्जी का मकान मोल लेकर रहने लगे। बाबाजी एक कुशल व्यापारी तो थे ही, उन्होने अहारन के बौहरे हजारीलाल के साथ व्यापार शुरू कर दिया।

हमारे पिताजी चार भाई थे और चारो का ही जन्म जटौआ में हुआ था। गॉव का हमारा घर दो ऑंगन का था। सटे हुए एक छोटे-से घर मे चैत्यालय की स्थापना कर ली थी, जहॉं नियमित रूप से पूजा-प्रक्षाल होता था।

यह है हमारे पूर्वजों (परबाबा, बाबा आदि) का संक्षिप्त परिचय। गॉव मे अब कोई जैन नहीं रहता। सभी के बाल-गोपाल अब शहरों में आकर रहने लगे हैं। चैत्यालय-स्थित कुछ प्रतिमाये तो निकटस्थ खरकना गॉव के चैत्यालय में पहुॅंचा दी गई हैं और कुछ यहॉं नई बस्ती के जैन चैत्यालय में आ गई हैं। जटौआ का नाम अब केवल हमारी स्मृति में ही सुरक्षित है। बच्चों का तो अब गॉव से कोई लगाव शायद ही हो, क्योकि उन्होंने उसे देखा ही नहीं, पर हमें तो वह कभी विस्मृत नहीं हो सकता। कहा भी है—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

हम जटौआ की पावन धरती पर बसे अपने पूर्वजो की श्रम-गाथा को सादर शीश झुकाते हैं।

□

प्राणिवध का अनुमोदक पुरुष कभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। 'जिओ और जीने दो' का भाव इसी का रूपान्तर है।

संघर्षमय जीवन के पर्याय : पूज्य बाबूजी

हमारे पूज्य पिताजी (प्रतिष्ठा-दिवाकर स्व. पण्डित रामस्वरूपजी शास्त्री) का जन्म 4 जनवरी 1904 को जटौआ मे और अवसान 29 दिसम्बर 1983 को फीरोजाबाद में हुआ। अस्सी वर्ष का उनका यह जीवन संघर्षमय रहा। उन्हें अपने जीवन में न तो माता-पिता का सुख मिला और न एक स्थान पर रहने और टिकने का स्थायित्व ही। विद्यार्जन और जीविका की तलाश में वह कितने-कितने स्थानों पर घूमते-फिरते रहे, इसकी कहानी बड़ी प्रेरक और रोमांचक है। विशेष उल्लेख्य बात यह रही कि इन परिस्थितियों में भी वह कभी निराश नही हुए और नित नई-नई जगहों पर व्यवस्थित होने में उन्हें देर नहीं लगी। इससे उनकी योग्यता और जीवन्तता दोनों का परिचय मिलता है। हम सोचते हैं कि उनके धैर्य को यदि धैर्य भी देख पाता तो उसे भी ईर्ष्या होती।

हम अपने और उनके जीवन की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि हमारा जीवन सुख-साता की छाया में और उनका दुःख और असाता की धूप में बीता है। यह बात अलग है कि उन्होंने धूप को कभी धूप समझा ही नहीं, धूप मे भी छाया का आनन्द ले लिया।

हम पर तो लगभग आधी सदी तक माता-पिता की छत्रछाया बनी रही, किन्तु उन्होने तो अपने मॉ-बाप का सुख जाना ही नहीं। हमारे तो सिर में दर्द भी होता तो मॉ हमें छाती से लगाकर दुलराती-पुचकारती थीं, किन्तु उनके जख्मों को सहलाने वाला कोई नहीं था। ले-देकर एक भाभी थीं, किन्तु वह भी सुभानअल्लाह। यों ही भगवानभरोसे बीता था उनका बाल-जीवन।

बाबूजी के जन्म की अभी पहली वर्षगॉठ भी नही मनाई गई थी कि पिता का साया उनके सिर से उठ गया। एक दिन जोरदार मूसलाधार वर्षा में भीग जाने से उन्हें निमोनिया ने जकड लिया और वह सबको विलखता छोडकर चल बसे। दो वर्ष बाद ही मॉ (श्रीमती सेवतीदेवी) के ऑख-कान मे ऐसी असह्य पीड़ा उठी कि वह उनके प्राण लेकर ही विदा हुई। तीन वर्ष की उम्र में ही बाबूजी अनाथ हो गए और दुःख में डूब गए। प्रारम्भिक काल में ही टूट पडने वाले इस दुःख ने अन्तिम समय तक उनका पीछा नहीं छोडा।

पूज्य माता-पिता के वियोग के बाद बाबूजी का लालन-पालन उनकी मौसी (गरीबा दादी) ने किया। बडे भाई (हकीम पन्नालालजी) ने उन्हे पिता का प्यार दिया। अहारन के प्राइमरी स्कूल में उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। आगे की पढ़ाई निकटवर्ती बरहन में हो सकती थीं, किन्तु बड़ी ताई (हकीमजी की धर्मपत्नी) की वजह से एक सकट खड़ा हो गया। बाबूजी के प्रति उनका व्यवहार अच्छा नहीं था। हर समय डॉटना-डपटना-कोसना रोज-रोज का नाटक हो गया। एक दिन तो उन पर न जाने कौन-सा भूत सवार हुआ कि वह बिना आगा-पीछे सोचे उनका गला दबाने लगीं। उसी समय जमुना नामक महतरानी यदि अचानक न आ धमकती तो कुछ भी हो सकता था, जान भी जा सकती थी। ताऊजी को इस घटना से इतना सदमा लगा कि उन्होंने ताईजी को मायके भेज दिया और तीन वर्षो तक बुलाने का नाम तक नहीं लिया।

ताईजी पंवारी ग्राम के ला. सम्पतलालजी की पुत्री थीं और उनका नाम गुणमाला था। गुणों की माला में अवगुण कहॉ से और क्यों आ गया, इस पर जब सोचता हूँ तो एक ही बात समझ में आती है। उनके दो पुत्र और दो पुत्रियॉ हुई थीं, किन्तु अशुभ कर्मोदय से एक पुत्री (चन्द्रमुखी) को छोड़कर शेष तीनों को असमय मे ही काल ने अपना ग्रास बना लिया। हो सकता है कि शोक-विह्वलता के इन क्षणों मे ही उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया हो और वही धीरे-धीरे कर्कशता में बदल गया हो।

ताईजी की इस बेरुखी से बचाने की गरज से ताऊजी ने बाबूजी को हस्तिनापुर के गुरुकुल में भरती करा दिया। इस

जीव तो जीव है, वह चाहे हिन्दू का हो या मुसलमान का, उसका सम्बन्ध सबको होता है और सबमें की कोई जाति नहीं होती।

समय उनकी उम्र का सातवाँ साल शुरू ही हुआ था। जिस दिन जटौआ से विदा हुए, उस दिन दोनों भाई खूब रोए। इसी का नाम है विवशता और विवशता जो न कराए सो थोड़ा है।

गुरुकुल (ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम) के अधिष्ठाता उन दिनों महात्मा भगवान दीन थे। महात्मा गेंदालाल, ब्र. शीतलप्रसाद, कुँवर दिग्विजयसिंह आदि भी तब वहीं थे और बच्चों को पढ़ाते थे। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का प्यार पाकर बाबूजी का मन वहाँ रम गया। वह चार वर्ष वहाँ रहे तथा हिन्दी-संस्कृत के साथ धर्म, गणित, भूगोल आदि की शिक्षा उन्होंने प्राप्त की। गुरुकुल का अपना एक अनुशासन था। सभी बच्चों को पीली धोती और पीला दुपट्टा पहनना पड़ता था। बनाव-श्रृंगार का तो वहाँ कोई काम ही नहीं था। यहाँ उनका विधिपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार भी सम्पन्न हुआ।

यहाँ से वह मोरेना पढ़ने चले गए। स्वनामधन्य श्री गोपालप्रसादजी वरैया उस समय मौजूद थे। सर्व श्री पं. माणिकचन्दजी न्यायाचार्य, पं. खूबचन्दजी, पं. देवकीनन्दनजी, पं. पन्नालालजी धर्मालंकार जैसे उद्‌भट विद्वान छात्रों को पढ़ाते थे। यहाँ बाबूजी ने छहढाला, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन किया। पं. मक्खनलालजी शास्त्री की उन पर बड़ी कृपा रही।

इन्दौर में श्री तिलोकचन्द्र जैन हाईस्कूल में मझले ताऊजी पढ़ाते थे। उन्होंने बाबूजी को इन्दौर बुला लिया। एक वर्ष बाद ही ताऊजी यहाँ की नौकरी छोड़कर हजारीबाग चले आए। तब बाबूजी सर स्वरूपचन्द हुकुमचन्द दि. जैन छात्रावास में रहने लगे। खर्चे की पूर्ति के लिए ट्यूशन करते थे। यहाँ से सन् 1923 में मैट्रिक पास किया। साथ ही पं. जीवन्धर शास्त्री से सर्वार्थसिद्धि और पं. वंशीधर जी शास्त्री से गोम्मटसार का भी अध्ययन किया। यहाँ आर्थिक तंगी बहुत रही। आगे की पढ़ाई जारी रखना कठिन हो गया, अतः जीविका तलाशने के बारे में सोचना पड़ा। हाँ, इस बीच में कोई संयोग पाकर वह आसाम भी हो आए और वहाँ पलासवाड़ी के किन्हीं सेठ प्रतापमलजी की दुकान पर छह माह तक बैठकर बहीखाता करना भी उन्होंने सीख लिया।

उन्नीस वर्ष की उम्र से उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। वह इसी उधेड़बुन में थे कि आगे क्या किया जाए। तभी आरोन (गुना) में एक पण्डित की आवश्यकता की सूचना जैनमित्र में पढ़ी। उन्होंने आवेदन पत्र भेज दिया और वहाँ से शीघ्र बुलावा भी आ गया, पर समस्या यह थी कि वहाँ पहुँचें कैसे? पैसा तो पास में था ही नहीं। इस आडे वक्त में इन्दौर-छात्रावास के अधीक्षक श्रीमान् पं. अमोलकचन्द्रजी ने उन्हें ढाँढ़स बँधाया और 20 रुपए उधार दिए, जिसे पहला वेतन मिलते ही उन्होंने मनीआर्डर से वापिस कर दिया। पण्डितजी बहुत खुश हुए और उन्होंने प्यार-पगे ढेरों आशीर्वाद दिए।

विधाता ने उनकी जन्मकुण्डली में न जाने कैसे ग्रह डाल दिए थे, जो उन्हें एक जगह टिकने ही नहीं देते थे। वह कहीं भी अधिक समय तक नहीं ठहर सके। साल भर बाद आरोन से निकले तो हजारीबाग पहुँच गए। एक वर्ष तक वहाँ पढ़ाया। यहाँ से सुजानगढ़ के पंचों ने आग्रहपूर्वक अपने यहाँ बुला लिया और 60 रु., मासिक पर प्रधानाध्यापक के पद पर उन्हें नियुक्त कर दिया। यहाँ वह तीन वर्ष रहे और कुछ रुपए भी जोड़ लिए। यहाँ से गाँव आ गए।

गाँव में रहते हुए ही सन् 1928 में एका रियासत के सेठ सोहनलालजी की सुपुत्री के साथ उनका विवाह हो गया। विवाह में भाइयों से कोई सहायता न मिली। जो जोड़ा था, वह सब खर्च हो गया। विवाहोपरान्त उनके कदम फिर बढ़ चले।

इस बार वह सेठ गम्भीरमल पाठशाला, कुचामन मे प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य करने लगे। यहाँ वह चार वर्ष रहे। इन दिनों ब्र. कमलाबाईजी, जो आज शैक्षिक क्रान्ति की सूत्रधार हैं, भी उनकी शिष्या रहीं और इसी नाते आज तक वह हमें भी अपना धर्म-भाई मानकर अपना प्रशस्त स्नेह देती आ रही हैं।

चार वर्ष बाद कुचामन से फिर गाँव आ गए और यहाँ मझौआ में अपने नाना की दुकान पर बैठने लगे। यहीं पर वैशाख

एक हिन्दू बेटे या एक मुसलमान बेटे के मरने पर उनकी माताओं की आँखों से गिरने वाले आँसुओं में फर्क करना मुमकिन नहीं है।

शुक्ल 13 वि. सं. 1991 में हमारा जन्म हुआ। पूरा घर उछाह से भर उठा। ताऊजी ने खूब उत्सव किया। पूरे गाँव में मिष्ठान्न बाँटा गया। बधाई-गीतों से कई दिनों तक घर गूँजता रहा।

हमारे जन्म के कुछ वर्षों के बाद वह आरोन की पाठशाला में पुनः पढ़ाने चले गए। छह माह भी नहीं बीते थे कि हमारे मामाजी (श्री धनपालजी) का पत्र पाकर वह उनके साथ गुजरात चले गए। वहाँ कमाठ नामक कस्बे में चाय-नमकीन का होटल खोल लिया। नौकर-चाकर काम सँभालते थे। कारोबार अच्छी तरह से जम गया था, किन्तु यहाँ का हवा-पानी अनुकूल न पड़ने से वह बीमार हो गए। दो वर्ष ही रह पाए थे कि बोरिया-बिस्तर बाँधना पड़ा। यहाँ से फीरोजाबाद आ गए। यहाँ गली लोहियान में पं. पन्नालालजी न्यायदिवाकर की पुण्य स्मृति में एक विद्यालय उनके प्रधानाध्यापकत्व में दो छात्रों से शुरू हुआ। दो वर्ष में यह संख्या बढ़कर सवा सौ हो गई। कमेटी वालों की कोई बात चुभ गई तो यहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया। आज उनका रोपा हुआ यह पौधा ही वट-वृक्ष बनकर पी. डी. जैन इण्टर कालिज के रूप में खड़ा है। बाद में इसी कालिज में हम शिक्षक बने और 38 वर्षों की सुदीर्घ सेवाओं के बाद प्राचार्य के पद से मुक्त हुए।

यहाँ से मुक्त होकर बाबूजी ने मामाजी के साथ साबुन का कारखाना खोला, किन्तु उसमें यथेष्ठ लाभ नहीं हुआ, इसलिए पृथक् होकर बिसातखाने की दुकान कर ली। यह सन् 1939 के आसपास की बात है। विश्वयुद्ध छिड़ जाने से प्रचुर लाभ हुआ। यहाँ मोहल्ला नईबस्ती में उन्होंने जगह खरीदी और एक मकान बना लिया। यहीं दुकान करते हुए उन्होंने हमारी और तीनों बेटियों की शादियाँ की। बहुत खर्च हो जाने से व्यापार को तगड़ा झटका लगा और घर-गृहस्थी के निर्वाह में कठिनाई आने लगी। जैन पत्रों में पुनः रिक्त स्थानों की सूचनाओं पर दृष्टि गई। पहले ही प्रयास में आवां (कोटा-बूँदी) की पाठशाला से नियुक्ति का पत्र आ गया। दुकान बंद कर वहाँ चले गए।

एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि गाँव में ताऊजी की बीमारी का समाचार मिला। एक झटके में त्यागपत्र देकर गॉव आ गए। वहॉ अन्तिम समय में बड़े भाई की खूब सेवा की। दोनों भाइयों के अटूट प्रेम को देखकर लोग राम-लखन की जोड़ी से उनकी तुलना करते थे। सन् 1959 में ताऊजी का निधन हो गया। उनके त्रयोदशी संस्कार में आसपास के कई गाँवों के लोग शामिल हुए। गाँव का एक सितारा डूब गया।[१]

ताऊजी के सहारे ही गाँव में रहना होता था। उनके अवसान के बाद गाँव हमेशा के लिए छूट गया।

बाबूजी ने गाँव से आने के बाद देवखेड़ा के ला. प्रभूदयालजी के साझे में टूण्डला-चौराहा पर किराने की दुकान खोली। ला. प्रभूदयालजी पहले से ही कर्ज में डूबे थे। वह कर्ज चुकाते रहे और दुकान खाली होती गई। एक दिन उसे बंद कर देना पड़ा। लालाजी पर बाबूजी का जो रुपया उधार रह गया, उसे भी बट्टेखाते डालना पड़ा, क्योंकि वह चुकाने की स्थिति में ही नहीं थे।

टूण्डला का काम चौपट होने के बाद बाबूजी तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिए निकल गए। यहाँ तेरह पंथी कोठी में उनकी भेंट अपने शिक्षा-गुरु पं. पन्नालालजी धर्मालंकार से हो गई। उन दिनों गिरीडीह समाज को एक सुयोग्य धर्माध्यापक की आवश्यकता थी। पण्डितजी की प्रेरणा से बाबूजी की नियुक्ति वहाँ हो गई। उनके जीवन का सबसे लम्बा समय वहाँ बीता। सन् 1960 से 1976 तक वह वहाँ रहे। यहाँ के लोग विद्वानों के अनन्य भक्त हैं और सच्चे मन से उनका सत्कार करते हैं।

31 जुलाई 1976 को वह बीमार पड़ गए। सूचना पाकर हम सब लोग भी वहाँ पहुँच गए। अच्छे-से-अच्छा इलाज हुआ। हालत संभलती नजर नहीं आ रही थी। हम सबको वहाँ 20 दिन रुकना पड़ा। इसी दशा में हमने उन्हें यहाँ लाने का निश्चय कर लिया। 13 अगस्त 1976 को गिरीडीह-समाज ने उनका शानदार अभिनन्दन किया। 24 अगस्त को हम लोग उन्हें लेकर फीरोजाबाद आ गए।

[illegible]

यहाँ उनकी स्थिति में थोड़ा-सा सुधार हुआ और सात वर्षों तब उनकी छत्रछाया हम सब पर बनी रही। 29 दिसम्बर 1983 को समाधिपूर्वक उनका स्वर्गवास हो गया। उनका पूरा जीवन ही संयम से ओतप्रोत रहा।

पूज्य बाबूजी के संघर्षमय जीवन के स्मरण मात्र से हमें रोमांच हो आता है और सारे शरीर में सिहरन सी दौड़ जाती है। महाप्राण निराला के शब्दों में–

'दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ उसे, जो नहीं कही।'

□

ममतामयी माँ

हमारी माँ 'बाईजी' के नाम से लोकप्रिय थी। अपने व्रती-सरीखे आचार-विचार की वजह से ही यह नाम उन्हें किसी ने दिया होगा, जो बाद में सबकी जवान पर चढ़ गया।

बाई चिररुग्णा थीं। पूर्वोपार्जित असाता कर्म का तीव्र उदय था। रोगजनित वेदना को शान्तिपूर्वक सहने की उनकी शक्ति बेमिसाल थी। शरीर के प्रति वह निर्मम थीं। प्राकृतिक और आयुर्वेदिक पद्धति से अपना उपचार बिना किसी को कष्ट दिये स्वयं ही करती रहती थीं। सर्वथा अवश होने पर ही डाक्टरी उपचार कराती थीं।

लाग-लपेट की बाते बनाने से कोसों दूर थीं। 'मन में हो सो वचन उचरिये' का वह एक आदर्श उदाहरण थीं। खरी-खरी दोटूक बातों से कोई नाराज तो नहीं हो जायेगा, इसकी उन्होने कभी कोई चिन्ता नहीं की।

अपने जीवन में उन्होंने अनेक व्रत किये। शरीर से अशक्त होने पर भी हर रविवार, अष्टमी और चतुर्दशी को एकाशन करती थीं। अपने अन्तिम बीस-पच्चीस वर्षों मे उन्होंने उबला हुआ गुनगुना जल ही ग्रहण किया। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की अनन्य भक्त थीं। मन्दिरजी में पूजा-पाठ में उन्हें डेढ़-दो घण्टे का समय तो लगता ही था। उनका श्रद्धान अटल था। उनके समय में घर में मुनियों के आहार भी प्रायः होते रहते थे।

बाईजी नियमों के पालन में बहुत सख्त थीं। एक ही उदाहरण पर्याप्त है। मृत्यु से दो माह पूर्व चारपाई से गिर जाने से उनकी कलाई की हड्डी टूट गई थी। प्लास्टर चढ़वाना पड़ा। उन्होंने नियम ले लिया कि जब तक प्लास्टर नहीं कटेगा, तब तक वह अन्न ग्रहण नहीं करेंगी। उनकी शारीरिक दुर्बलता को देखते हुए सबने समझाया कि इतना कठोर नियम मत लो, पर उन्होंने अपनी निष्ठा से कोई समझौता करना सीखा ही नहीं था। एक माह का समय उन्होंने फलों के रस और दूध-पानी पर ही निकाल दिया।

उनके जीवन की एक घटना तो जब भी स्मरण में आती है, हमारे होठों पर हँसी फूट पड़ती है। वृद्धावस्था में उनकी आँतें तो कमजोर हो ही गई थीं, मुँह के सभी दाँत भी गिर गए थे। 'पेट में आँत नहीं, मुँह में दाँत नहीं' की कहावत चरितार्थ हो रही थी। पाचन-शक्ति ठीक नहीं थी। किसी ने दाँतों का सैट लगवाने की सलाह दी। बड़ी मुश्किल से डाक्टर की दुकान पर कुल्ला आदि करने के लिए घर से छना और उबला हुआ पानी ले चलने की शर्त पर वह दाँत लगवाने के लिए राजी हुई। स्थानीय गौशाला की दुकानों में एक डा. खोराणा दाँतों के मशहूर डाक्टर थे। उनके पास उन्हें ले गए।

मुँह का नाप-माप सब हो गया। इसी बीच नगर के विधायक श्री जगन्नाथ लहरी अचानक आ टपके। छन्ना-लोटा आदि हमारे हाथ में देखा तो उन्हें मजाक सूझा। खोराणाजी की ओर मुखातिब होकर वह बोले–'डा. साहब! अम्माजी व्रत-नियम की बड़ी पाबन्द हैं। छुआछूत भी मानती हैं। किसी ऊँची जाति के व्यक्ति के मुख से निकले दाँत लगाना, नीची जाति के व्यक्ति के नहीं।' इतना सुनना था कि बाईजी उठ बैठीं और बोलीं कि मुझे नहीं लगवाने दाँत। बेचारे लहरीजी भी सकपका गए। उन्होंने बहुत समझाया कि अम्माजी, हमने तो यह बात विनोद में कही थी। दाँत तो पत्थर के होते हैं, पर वह फिर किसी भी तरह दाँत लगवाने के लिए तैयार ही नही हुई। ऐसी भोलीं और पुराने विचारो वाली थीं हमारी माँ।

ऐसी ही एक विनोदपूर्ण घटना और याद आ रही है। गर्मियों के दिन थे। जगार हो चुकी थी। छत पर खाली पड़ी चारपाई पर एक बन्दर आकर लेट गया। किसी ने मजाक में कहा कि लगता है, यह बन्दर मरने वाला है। माँ ने सुना तो पहुँच गई चारपाई के पास और उसके कान से मुँह सटाकर सुनाने लगीं णमोकार मंत्र। मत्र-ध्वनि सुनकर बन्दर जाग गया और खों-खों कर माँ के सिर के ऊपर से छलाँग लगाकर भाग खडा हुआ। माँ के मुख से चीख निकल गई। हम सब बच्चे, जो यह दृश्य देख रहे थे, हँसते-हँसते लोटपोट हो गए।

बाईजी ने जीवनभर कष्ट ही पाए, लेकिन उन्होंने हमेशा सन्तोष और धैर्य से काम लिया। 23 अक्तूबर 1982 को उनकी इहलीला समाप्त हुई। अन्न-जल की मात्रा अन्तिम दिनों मे वह क्रमशः घटाती गई। जीवन के अन्तिम क्षण तक चैतन्य रहीं। णमोकार मंत्र जपते-जपते प्रणामांजलि की मुद्रा में देह-त्याग उनके पूरे जीवन की साधना का फल था।

दुनिया मे कोई बेटा अपने माँ-बाप के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। हम पर तो दोनो का अपार-अगाध स्नेह रहा है। करुणा से आपूरित था उनका हृदय। उनकी ममता का भण्डार अक्षय था।

□

भूलूँ कैसे दिन बचपन के!

तासु मधुर स्वर की ध्वनि, हिरदै मांहिं समाई
बीत गए बहु बरस, अजहुं लौं परे सुनाई

अपनी 70 वर्ष की इस आयु में भी जब हम अपनी सबसे छोटी पौत्री श्रुति उर्फ छुटकी, जो इसी रक्षाबन्धन पर एक वर्ष की हुई है, की लीलाओं को देखते हैं तो हमें हमारा बचपन याद आ जाता है। 'ऊँ-आँ' करके इशारे करने, घुटनों के बल ठुमक-ठुमक कर या छोटे-छोटे पाँवों से डगमग-डगमग चलने, चलते समय बार-बार गिरने और फिर-फिर उठकर चलने की कोशिश करने, रूठने और मचलने, किसी को भी सामने पाकर मुस्कराने आदि उसकी चेष्टाओं को देखकर घर में बहार-सी आ जाती है तथा प्रसिद्ध कवियित्री सुभद्राकुमारी चौहान के शब्दों में अपनी छोटी-सी कुटिया में भी नन्दनवन की अनुभूति होने लगती है।

शिशु और किशोर अवस्थायें बचपन के ही दो रूप हैं–एक पढ़ाई शुरू होने से पहले का और दूसरा उसके बाद का। दोनों ही अवस्थाओं में दीन-दुनिया की चिन्ताओं से मुक्त हँसी-खुशी और मस्ती-चुस्ती का जो आलम रहता है, पूरे जीवन में फिर उसके दर्शन नहीं होते। शिशु-अवस्था की तो बात ही निराली है। छह सात माह से लेकर छह-सात वर्ष की अवस्था तक बच्चा कितना ही शरारती हो, फिर भी सबको अच्छा लगता है। हमारी छुटकी को ही देखिए, वह सत्तरवर्षीय हम बूढे

सुखद भविष्य के निर्माण के लिए सबको वैर-भाव को तिलांजलि देनी होगी।

के कान खींचकर 'चाऊ-माऊ' का खेल खेलती है, सिर के बाल खींचकर हँसती है, तख्त पर चढ़कर उस पर रखी हमारी किताबों को तितर-बितर कर देती है, कभी-कभी किसी किताब या कापी का पन्ना भी फाड़ देती है, फिर भी बड़ी प्यारी लगती है। हम उसे गोद में उठाकर दुलराते और उसकी पुच्ची लेते हैं। ऐसी ही हरकतें कोई बड़े होने पर करे तो बड़ों की डाँट या मार खाने से वह बच सकता है क्या?

यथार्थ में सभी बच्चे मन के सच्चे होते हैं। ऐसी-ऐसी हरकतें वे खेल-खेल में करते हैं। उनके पीछे मन में कोई मैल नहीं होता। बड़े होकर बचपन के इसी सहज स्वरूप को जब कोई प्राप्त कर लेता है तो वह साधु कहलाता है। साधु को यथाजात मुद्रा का धारक तथा बालकवत् निर्भय और निर्विकार कहा जाता है। सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं साहित्यकार श्री आनन्दशंकर माधवन अपनी एक कृति 'अनामन्त्रित मेहमान' में लिखते हैं—'शिशु ही ससार का सार, विधाता की अमूल्य थाती और घर-परिवार का एकमात्र बल है। प्रत्येक बच्चे का जीवन एक उच्च कोटि की शिल्प-रचना है। बच्चे की हर हलन-चलन स्वयं में एक रासलीला है।'

बच्चों को देखकर हम कल्पना करते हैं कि हमारा शैशव भी ऐसा ही रहा होगा। कानों सुनी बात है कि हमारा जन्म झिल्ली में हुआ था। कहते है कि झिल्ली मे जन्मे बच्चे भाग्यशाली होते हैं। हमें भी यह कथन जँचता है, क्योंकि हमें भी अपने जीवन में निरन्तर यह अनुभव होता रहा है कि हर आड़े वक्त में भाग्य ने हमारी सहायता की है। कभी कोई ऐसी मुश्किल नहीं आई, जो सुलझी न हो।

पिताजी बताते थे कि बचपन में हम बहुत जिद्दी थे। जिस चीज के लिए मचल जाते, उसे पाये बिना किसी को चैन से नहीं बैठने देते थे। हमारे इस जिद्दीपन से पूरा घर परेशान रहता था। एक दिन तो परेशान होकर पिताजी ने हमें डराने या चुप कराने के लिए घर की मुड़ेर से उल्टा लटका दिया था। फिर भी हमारे हठी स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया था। किसी ने ठीक ही कहा है—

जाको जौन स्वभाव जात नहिं जी से
नीम न मीठो होय सींच गुड़-घी से

आज भी हम कम जिद्दी नहीं हैं और हम इसे कोई बुराई भी नहीं मानते। बचपन में तो प्रायः सभी जिद्दी होते ही हैं। हठों में बाल-हठ, त्रिया-हठ और राज-हठ मशहूर हैं। महाराजा दशरथ के पुत्र राम भी कम जिद्दी नहीं थे। कवि-सम्राट् तुलसीदास ने उनके बारे में लिखा है—'**कबहूँ रिसियाइ कहै हठि कैं, पुनि लेत वही जेहि लागि अरैं।**' बालकृष्ण के स्वाभाविक हठ का चित्रण भी महाकवि सूरदास ने इन शब्दों में किया है—

मैया, मैं तो चन्द-खिलौना लैहों।
जैहों लोटि धरनि पै अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।।

हम तो आज भी कम जिद्दी नहीं हैं। आज भी हमारी यह आदत है कि मन में जो धुन सवार हो जाए, उसे हर हालत में पूरा होना ही चाहिए। हो सकता है कि शैशवावस्था में हमारा हठ नकारात्मक रहा हो, किन्तु आज तो वह सकारात्मक है। उससे हमें हानि कम, लाभ ज्यादा हुआ है।

बचपन में हम बहुत शर्मीले थे, किसी से बातचीत करने में झिझकते थे। दस-बीस लोगों के बीच में तो मुँह ही नहीं खुलता था। अपनी इस आदत के कारण हमें अनेक बार घर में और घर से बाहर उपहास का पात्र भी बनना पड़ा है। कोई हमें 'मौनी बाबा' के खिताब से नवाजता तो कोई 'चुप्पा' कहकर चिढ़ाता। बाल-मनोविज्ञान के पारखी विद्वानों से हमने सुना है कि छोटी उम्र में जो झेंपू होता है, बड़े होकर वह खूब बोलने लगता है। हमारे साथ ऐसा ही हुआ है। अपने संकोची स्वभाव से हमें एक लाभ और भी मिला है और वह यह कि हम ब्रह्मानन्द-सहोदर शब्दों की किफायत करना सीख गए

घृणा और विद्वेष ही वे विष-बीज हैं, जो सृष्टि में [illegible]

हैं। आज भी हम सुनते ज्यादा हैं और बोलते कम हैं। जब भी कुछ बोलना होता है तो बोलने से पहले सोचते खूब हैं। दो कान, दो आँखें और एक मुँह के पीछे यह रहस्य छिपा है कि दो बार सुनो, दो बार देखो और तब एक बार बोलो। सुविचारित शब्दों से बात में वजन आ जाता है और लोग उसे ध्यान से सुनते हैं।

जब हम छोटे थे तो माँ हमें परिन्दों और पशुओं की कहानियाँ सुनाया करती थीं–कभी किसी गोरैया की तो कभी शेर और खरगोश की। कहानियों का हमारे जन-जीवन में हमेशा से बड़ा महत्व रहा है। पंचतंत्र, आल्हा-ऊदल, सिंहासन बत्तीसी आदि से सम्बन्धित कथा-वार्ताओं से हमारे देश का कहानी-साहित्य बड़ा समृद्ध रहा है। हमारे यहाँ की नानियाँ, दादियाँ और मातायें युगों-युगों से बच्चों को रुचिकर और शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाती आ रही है। जाड़ों में अलाव पर तापते हुए कहानी सुनने और सुनाने की परम्परा गाँवो में आज भी जीवन्त है।

अपनी माँ से सुनी हुई अनेक कहानियों मे से एक हमें आज भी याद है। वह कहतीं–सुनो, एक चिड़िया थी। उसे एक दिन कूड़े के ढेर पर चना का एक दाना (दौल) मिल गया। वह उसे चोंच में दबाये-दबाये उड़ती हुई आई और एक खूँटे पर बैठ गई। खूँटे में एक दरार थी। वह दाना चिड़िया के मुख से छूटकर उस दरार में जा पड़ा और नीचे अटक गया। चिड़िया दौड़ी-दौड़ी बढ़ई के पास गई और उससे बोली–

बढ़ई-बढ़ई खूँट उखाड़
खूँट दोल देय ना
मैं चब्बू क्या?

बढ़ई ने उसे फटकार दिया–'चल हट, बड़ी आई खूँटा उखड़वाने वाली। जा-जा, मुझे फुरसत नहीं है।' चिड़िया ने राजा से शिकायत की और कहा–

राजा-राजा बढ़ई डाँड़
बढ़ई खूँट उखाड़े ना
खूँट दौल देय ना
मैं चब्बू क्या?

कहानी लम्बी थी। चिड़िया बढ़ई और राजा के जवाब से निराश होकर क्रमशः रानी, चूहा, बिल्ली, कुत्ता, लाठी, आग, नदी और हाथी के पास यही फरियाद लेकर गई, लेकिन किसी ने उसकी सहायता नहीं की। अन्त में मदद की भी तो एक नन्हीं-सी चींटी ने। चिड़िया को दौल मिल गया और वह संतुष्ट हो गई।

यह लम्बी गेय कहानी माँ सुनाती और मैं सो जाता। आज कविवर रहीम की यह सीख इस कहानी में स्पष्ट सुनाई देती है–

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिए डार
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवार

जब हम बड़े हुए तो माँ के मुख से हमें सती सीता, अंजना, मनोरमा, रयनमंजूषा आदि की पौराणिक कहानियाँ सुनने को मिलीं। इनसे हमारे बाल मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा और हमें धर्म-पालन की शिक्षा मिली।

हमारी माँ ज्यादा पढ़ी-लिखी भले ही न हों, पर निरक्षर भी नहीं थी। मोटे अक्षरों में छपी धार्मिक पुस्तकें अपने खाली समय में वह पढ़ती रहती थीं। नियमित शास्त्र सुनने और बाँचने का भी उन्हें शौक था ही। इधर-उधर से सुनकर अनेक लौकिक जानकारियाँ भी उन्होंने इकट्ठी कर ली थीं। रोचक पहेलियाँ भी वह हम सभी भाई-बहिनों से पूछती रहती थीं। कुछ पहेलियाँ हमें आज भी याद हैं–

[illegible] भारतीय संस्कृति में है, वह कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

एक थाल मोती से भरा
सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर वह थाली फिरे
मोती उससे एक न गिरे
(उत्तर-आकाश)

बीसों का सिर काट लिया
ना मारा ना खून किया
(उत्तर-नाखून)

हरा था मन भरा था
हजार मोती जड़ा था
राजाजी के बाग में
दुशाला ओढ़े खड़ा था
(उत्तर-भुट्टा)

युवाओं और बूढ़ों की अपेक्षा एक बालक में कौतूहल और जिज्ञासा की मात्रा अधिक होती है। ऐसी चर्चाओ से उसका मनोरंजन तो होता ही है, उसकी चिन्तन-शक्ति का भी विकास होता है।

नितप्रति मन्दिरजी में जाकर देव-दर्शन करने, रात्रि में अन्न से बनी वस्तुओं के त्याग, नई-नई स्तुतियाँ याद करने, णमोकार मंत्र के प्रभाव से हर प्रकार के भय और भूत के भाग जाने के लाभदायक प्रसग हमें उनसे सुनने को मिलते थे। उनसे हमारी श्रद्धा दृढ़ होती रही है। बच्चों पर सबसे अधिक प्रभाव माँ का ही पड़ता है। शैशावावस्था में तो माँ ही बच्चों के लिए एकमात्र शरण होती है। कविवर भूधरदासजी ने लिखा भी है–

'माता सों मानै अति प्रीति
बाल-अवस्था की यह रीति'

सन् 1941 में, जब हम सात-साढ़े सात वर्ष के थे, हम बहुत बीमार पड़ गए थे। मोतीझरा बिगड़ गया था। बचने की आशा नहीं रह गई थी। अडौसी-पड़ौसी भू-शैया पर लेने की सलाह देने लगे थे। वह तो आयु कर्म शेष था, इसलिए हमें नया जीवन-दान मिला। उन दिनों माता-पिता दिन-रात हमारे सिरहाने बैठे रहते थे। उनकी ममता कभी भुलाई नहीं जा सकती।

एक मनीषी के शब्दों में बचपन की ऐसी घटनायें ही एक दिन किसी के अस्तित्व को व्यक्तित्व में परिणत कर देती है।

□

पाप-समय निर्बल बनो, धर्म-समय बलवान। वैभव-समय विनम्र अति, दुख में धीर महान।

छात्र-जीवन

मातेव का या सुखदा, सुविद्या
किमेधते दानवशात्, सुविद्या
-प्रश्नोत्तरमाला

विद्या मनुष्य के लिए एक अविनाशी निधि है, उसके सामने धन-सम्पत्ति का कोई महत्व नहीं है। वह माता के समान सुख देने वाली तथा दान देते रहने पर भी सदा-सदा बढती रहने वाली एक दुर्लभ वस्तु है। किसी के प्रभावक व्यक्तित्व का निर्माण किसी कल-कारखाने में नहीं, बल्कि विद्या के मन्दिर में ही होता है। सन्त तिरुवल्लवर ने ठीक ही लिखा है–'यदि तुम्हें अपने शिक्षक के सामने उतना अपमानित भी होना पडे, जितना भिक्षुक को धनवान के समक्ष होना पड़ता है तो भी तुम विद्या सीखने में कृपणता मत करना। लोक मे विद्या-विमुख व्यक्ति को अधिक आदर का पात्र नही माना जाता।'

पाठशाला में बच्चे को प्रवेश दिलाने की उम्र क्या हो, इस बारे में कई मत हैं। कविवर धनंजय के अनुसार उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार के बाद आठवें वर्ष मे शिक्षारम्भ कराना चाहिए। बनारसीदास आठ वर्ष की आयु में पाठशाला जाने लगे थे, ऐसा अपनी आत्मकथा 'अर्धकथानक' में उन्होंने लिखा है। कविरत्न जल्हकृत 'जिणदत्त चरिउ' मे पढाई शुरू करने की उम्र पन्द्रह वर्ष मानी गई है। प्रद्युम्न का विद्यारम्भ 15 वर्ष की आयु में ही हुआ था, किन्तु आचार्य जिनसेन, आचार्य वादीभसिंह आदि ने लिपि-संस्कार पॉच वर्ष की आयु के बाद ही स्वीकार किया है। कौटिल्य का भी यही मत है।

प्राथमिक शिक्षा

हम, पॉच वर्ष की उम्र मे कस्बा अहारन की प्राइमरी पाठशाला में पढने के लिए भेजे गए। हमें आज भी याद है कि हमारे बडे ताऊजी और पिताजी देवदर्शनपूर्वक हमें लेकर वहॉ गए थे। यह पाठशाला एक छोटे-से टीले पर अवस्थित थी। उस समय वहॉ के प्रधानाध्यापक प. नत्थीलालजी शर्मा हमारे गॉव जटौआ के ही निवासी थे। बडे ही स्नेही थे, साथ ही सख्त भी। प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। सर्वप्रथम पाटी-पूजन हुआ। यह उस समय की एक प्रथा थी। इसे अक्षर-संस्कार भी कह सकते है। हमे पण्डितजी के सामने बिठाया गया। पिताजी हमारे पार्श्व मे बैठे। उन्होने अपने हाथ से लकडी की पाटी पर 'ॐ नमः सिद्धम्' लिखा और हमसे तीन बार उसका उच्चारण कराया। फिर हमारा सीधा हाथ पकडकर उगलियो से छोटा अ, बड़ा आ आदि लिखवाया तथा हमारे सिर पर चावलों का क्षेपण किया। सभी बच्चो को प्रसाद के रूप में बतासे बॉटे गए। इस प्रकार हमारी प्रवेश-क्रिया सम्पन्न हुई।

'ॐ नमः सिद्धम्' का क्या महत्व है, यह बात उस छोटी उम्र में हम नहीं समझते थे। जब हम कुछ बड़े हो गए, तब पिताजी ने हमें बताया था कि युग के आदि मे भगवान ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को बारहखड़ी सिखाने का कार्य इसी मंगल वाक्य से शुरू किया था। 'ॐ नमः सिद्धम्' से प्रारम्भ होने के कारण ही वर्णमाला को सिद्धमातृका भी कहा जाता है। पहले तो सभी धर्म के अनुयायियों में इसी वाक्य का प्रचलन था, बाद मे इसे जैन सम्प्रदाय का पारिभाषिक वाक्य मानकर इसके स्थान पर लिपि-ज्ञान का ओंकार 'ॐ नम. गणेशाय' से किया जाने लगा। जैनधर्म के अनुसार तो गणेश भी एक सार्वभौम देव हैं। मेदनीकोश में उन्हें विघ्नहर्ता एवं जितेन्द्रिय कहा गया है। गणेश का अर्थ गणहर अर्थात् गणधर है। दीपावली पर बहीखातों की पूजा करते समय आज भी 'गौतम गणेशाय नमः' लिखने का चलन है। बीच में 'ॐ नमः सिद्धम्' का ही एक विकृत रूप 'ओ ना मा सी धम्' भी प्रचलन में रहा था।

अहारन की इस पाठशाला में हमने अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया। यहॉ हम साल-सवा साल ही पढ़ सके। चूँकि पिताजी जीविकोपार्जन के लिए फीरोजाबाद में रहने लगे थे, इसलिए हमारा भी गॉव छूट गया। यहॉ बाबूजी सदर बाजार में आगरा गेट (मोहल्ला गंज) पर दुकान करते थे। दुकान के सामने ही एक पतली-सी गली के अंतिम छोर पर उन दिनों नगरपालिका

[illegible] जीवन-शैली के बिना निर्मल चेतना का अनावरण नहीं हो सकता।

द्वारा संचालित प्राइमरी स्कूल चलता था। उसी में हमें दाखिल करा दिया गया। कक्षा दो तक की पढ़ाई यहीं हुई। इस स्कूल में एक बड़ा-सा आँगन था। आँगन की दीवालों पर लकड़ी की कई खूँटियाँ थीं। स्कूल के प्रधानाध्यापक थे कोई श्रीवास्तवजी। जब कोई बच्चा बड़ी गलती करता तो वह उसके दोनों हाथो की उँगलियों को एक-दूसरे में उल्टा फँसाकर उसे खूँटी पर टाँग देते। उँगलियों के फँसाव के कारण बच्चा न ऊपर उचक सकता था और न नीचे कूद ही सकता था। बड़ा कष्ट होता। जब पीड़ा से वह रोने लगता तो मास्टर साहब उसे खूँटी से उतार देते। एक बार हम भी इस सजा की लपेट में आ गए। प्रारम्भ मे कोई सजा भले ही कष्टदायक लगती हो, किन्तु आगे चलकर वह लाभप्रद ही सिद्ध होती है। जीवन को सँवारने या भूलों का सुधारने के लिए दण्ड-व्यवस्था भी आवश्यक है।

सन् 1943 में स्थानीय गली लोहियान-स्थित श्री पन्नालाल दि. जैन विद्यालय में हमारा नाम लिखाया गया। नाम लिखाते समय संस्था की ओर से अभिभावको को एक प्रवेश-पत्र दिया जाता है, जिसमें छात्र से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ भरनी पड़ती हैं। बाबूजी ने जन्मतिथि के खाने में अनुमान से हमारी जन्मतिथि 31 दिसम्बर 1933 लिख दी। तभी से शिक्षा विभाग और बीमा कम्पनियों के रिकार्डो, सरकारी-गैरसरकारी समस्त दस्तावेजों, राशन कार्ड, परिचय-पत्र आदि मे यही जन्मतिथि दिखाई जाती रही है, जबकि यह हमारी वास्तविक जन्मतिथि नही है। जन्मकुण्डली के अनुसार हमारा जन्म 27 अप्रैल 1934 (प्रथम वैशाख शुक्ल त्रयोदशी वि. सं. 1991, शुक्रवार) को हुआ था। हमें भी यह ज्ञान अभी कुछ ही वर्षो पूर्व हुआ, जब यकायक बाबूजी की एक कापी में अंकित अपनी कुण्डली हमें देखने को मिली। जन्मतिथि के अन्तर का यह रहस्य केवल हम जानते हैं, समाज की जानकारी मे तो हमारी जन्मतिथि 31 दिसम्बर 1933 ही है। इस परिवर्तन के कारण हम चार दिन कम चार माह बड़े हो गए हैं, पर इसमें ज्यादा प्रसन्न होने की कोई बात नहीं है। हम यह भली भाँति जानते है कि लोगों का प्यार बड़े होने से नहीं, बड़प्पन आने से मिलता है।

इस विद्यालय में उन दिनों जैनधर्म की शिक्षा अनिवार्य थी। बुन्देलखण्ड में जन्मे पं. फूलचन्दजी शास्त्री यहाँ धर्माध्यापक थे। कक्षा 4 में छहढाला पढ़ाई जाती थी। पण्डितजी ने हम सभी बालकों को वह कण्ठस्थ करा दी थी। बाल-मन पर उस समय जो धार्मिक सस्कार पड़े, आज तक जीवन पर उनका प्रभाव अंकित है। आज हम जो भी हैं या जिसरूप में भी हैं, उसका बीजारोपण इसी विद्यालय में हो गया था। शास्त्रीजी बाद में बीना के श्री दि. जैन नाभिनन्दन संस्कृत विद्यालय मे अध्यापक हो गए थे। बीना में कई बार हमारी उनसे भेंट होती रही है। उनका आशीर्वाद हमेशा हमारे साथ रहा।

उस समय यहाँ के हेडमास्टर थे श्री बद्रीप्रसादजी शर्मा। उनके सुपुत्र श्री अरुण शर्मा हमारे सहपाठी थे। हमने सन् 1992 में श्री पी. डी. जैन इण्टर कालिज के तथा उन्होंने आगरा के श्री रत्नमुनि जैन इण्टर कालिज के प्रधानाचार्य के पद से अवकाश ग्रहण किया है। इस विद्यालय के एक शिक्षक श्री मथुराप्रसाद शर्मा का भी हम सभी बच्चों पर अच्छा प्रभाव था। शिक्षण-कार्य के प्रति वह पूरी तरह समर्पित व्यक्ति थे।

यहाँ का एक मधुर प्रसग अनायास याद आ रहा है। यहाँ हमारे एक सहपाठी थे श्री महावीरप्रसाद जैन। वह नगर के एक उद्योगपति श्री मनोहरलाल सूरजभान जैन के परिवार के थे, जिनकी बनवाई हुई एक विशाल धर्मशाला अतिशय क्षेत्र श्री पद्मपुरा (राजस्थान) में है। बचपन में हम दो-तीन बार उसमें ठहर चुके हैं। हम और महावीर भाई जिगरी दोस्त थे। एक दिन वह अचानक बोले—'नरेन्द्र भाई, एक दिन तुम इसी विद्यालय के प्रधान बनोगे।' उनकी यह बालसुलभ वाणी एक दिन भविष्यवाणी की तरह फलेगी, उस समय तो इसकी कल्पना भी हास्यास्पद थी, किन्तु सन् 1971 में जब हम इसी विद्यालय के विकसित रूप श्री पन्नालाल दि. जैन इण्टर कालिज के प्रधानाचार्य बने तो हमें महावीर भाई के मुख से निकले प्रेम-पगे वचन याद आ गए। उन्होंने भी प्रसन्न मन से टोका-'देखो, हमने कहा था न!'

हम तो आज भी यह मानते हैं कि हमारे जीवन की प्रगति में योग्यता का कम, छोटे-बड़ों के स्नेह और प्यार का ज्यादा हाथ रहा है। लोगों से मिला आशीर्वाद ही हमारे जीवन की पूँजी रहा है। यह पूँजी आज भी हमारे पास है।

माध्यमिक शिक्षा

हमारा यह नगर फीरोजाबाद शिक्षा का एक अच्छा केन्द्र है। यहाँ आज बालक और बालिकाओं के चार स्नातकोत्तर महाविद्यालय तथा एक दर्जन इण्टरमीडिएट कॉलिज है, किन्तु स्वतन्त्रता से पूर्व यहाँ दो ही कॉलिज थे—एक तो सन् 1919 में स्थापित और 1931 में विकसित एस. आर. के. इण्टर कॉलिज तथा दूसरा सन् 1941 में स्थापित इस्लामिया इण्टर कॉलिज। स्नातक-स्तर का यहाँ कोई विद्यालय नहीं था। इण्टर की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के बाद जो छात्र आगे की पढ़ाई जारी रखना चाहते, उन्हें आगरा जाना पड़ता था।

गली लोहियान-स्थित प्राथमिक शाला से सन् 44 में हमने कक्षा 4 की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे 72% अंकों के साथ उत्तीर्ण कर ली। पूज्य पिताजी अब कक्षा 5 में हमारा प्रवेश एस. आर. के. इण्टर कॉलिज में कराना चाहते थे। सम्पूर्ण आगरा मण्डल में अपनी आकर्षक और शानदार इमारत तथा उच्च शैक्षणिक स्तर के लिए यह कॉलिज सुविख्यात था। यहाँ प्रवेशोच्छुकों को हिन्दी, अंगरेजी और गणित, इन तीन विषयों में जाँच की आँच से गुजरना पड़ता था। यों तो हम पढने में तेज थे, फिर भी पिताजी कोई 'रिस्क' नहीं लेना चाहते थे। हमारे पडौस में कस्बा अहारन, जहाँ हमने अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया था, के एक अवकाश-प्राप्त शिक्षक पण्डित राजबहादुर शर्मा रहते थे। प्रवेश-परीक्षा सम्बन्धी तैयारी कराने के लिए पिताजी ने उनसे निवेदन किया। उन्होने सहर्ष मई-जून के ग्रीष्मावकाश मे तभी संभावित प्रश्नो का उत्तर देने के लिए हमें निपुण बना दिया और इस प्रकार बिना किसी कठिनाई के इस कॉलिज में हमे प्रवेश मिल गया।

पहली बार हमने छात्रों की ऐसी भीड़ और चहल-पहल देखी, छोटी-सी कुटिया से निकलकर किसी बड़े और बढ़िया महल में आने पर जैसी खुशी होनी चाहिए, वैसी ही प्रसन्नता की हिलोरें हमारे मन में उठ रही थीं। हमने शीघ्र ही नए वातावरण के साथ स्वयं को व्यवस्थित कर लिया। सन् 1945 से '53 तक का साढे आठ वर्ष का समय कितने आनन्द से गुजरा, इसकी अनुभूति आज भी चित्त को गुदगुदाती है। यहाँ हम अपने सभी गुरुजनों के स्नेह-पात्र बनकर रहे। विशेष उल्लेख्य बात यह रही कि एक श्रेष्ठ वक्ता के रूप मे आज जो हमारी पहचान है, उसका श्रेय इसी कॉलिज को जाता है। हमारे जीवन का यह स्वर्णकाल ही था।

वे दिन : कुछ स्मरणीय प्रसंग

उन दिनों कक्षा 6,7 एवं 8 में उर्दू पढ़ना अनिवार्य था। एक लम्बी और छितरी हुई दाढ़ी वाले मौलवी साहब उर्दू-शिक्षक के रूप में नियुक्त थे। इन तीन वर्षो में हमने उर्दू लिपि मे लिखे वाक्यों और नामों को लिखना और पढना सीख लिया था, किन्तु बाद में अभ्यास छूट गया। यदि किसी चाकू से ज्यादा दिनों तक काम न लिया जाए तो जिस प्रकार उसमें जंग लग जाती है और वह अपनी धार खो बैठता है, उसी प्रकार जो भाषा या विषय-वस्तु नित्य अभ्यास मे नही आती, उसकी स्मृति भी बुद्धि में ज्यादा दिनों तक नहीं ठहर पाती है। कक्षा 9 से चूँकि उर्दू भाषा का पढ़ना अनिवार्य नहीं रह गया था, इसलिए धीरे-धीरे हम उसे भूलते चले गए। आज तो हमे इस भाषा के हरफ 'अलिफ-बे-ते' आदि तक याद नहीं है।

सन् 1945 से 1948 तक कॉलिज में हमारी स्थिति एक 'पढ्दू छात्र' के रूप में तो रही, किन्तु सहपाठीय क्रियाओ मे हमने कभी सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया। हम विषय को रटकर नहीं, समझकर याद करते, गुरुजनो द्वारा दिए हुये गृह-कार्य को यथासमय पूरा करते, हर वर्ष परीक्षा मे अच्छे अकों के साथ उत्तीर्ण हो जाते और कक्षा या कॉलिज के किसी छात्र से कभी कोई कहासुनी या नोंक-झोंक भी नहीं होती—इन चार वर्षो की बस इतनी-सी ही उपलब्धि हमारी रही।

संयोग से कक्षा 9 में आने के साथ ही हमारी सुप्त और लुप्त अन्तर्चेतना के विकसित होने के निमित्त मिलना शुरू हुआ। कॉलिज में हर वर्ष वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन होता था। इस वर्ष भी जनवरी में एक निश्चित तिथि, जो हमें अब याद नहीं है, पर उसके होने की घोषणा हुई। विषय था—'हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है'। प्रतिपक्ष में बोलने वालों को अंगरेजी के पक्ष में दलीलें देनी थीं। कॉलिज के हमारे बंगाली शिक्षक श्री प्रमथनाथ सिन्हा ने पक्ष में बोलने

[illegible]

वालों में हमारा भी नाम लिखा दिया। स्वभाव से संकोची होने के कारण हम मना नहीं कर सके, किन्तु सैकड़ों छात्रों के बीच खड़े होकर कैसे बोल पायेंगे, यह सोच-सोचकर दिल बराबर काँपता रहा।

हमारे फरिहावाले मामा पण्डित रत्नेन्दुजी (बडी ताई के भाई) हिन्दी-संस्कृत के सुयोग्य विद्वान् थे और प्रायः फीरोजाबाद आते रहते थे। पिताजी ने उनसे निर्धारित विषय पर एक छोटा-सा भाषण लिखने को कहा। उन्होंने दो दिन बाद ही दो-ढाई फुलस्केप का एक छोटा-सा भाषण लिखकर भिजवा दिया। आदरणीय मामाजी संस्कृतनिष्ठ एवं प्रांजल हिन्दी लिखते थे। वह एक प्रगतिशील विचारक और प्रयोगवादी कवि थे। उनकी भाषा में लालित्य का पुट रहता था। हिन्दी की महत्ता पर जो भाषण उन्होंने हमारे लिए लिखकर भेजा, उसकी भाषा थोड़ी क्लिष्ट थी, किन्तु उसमें प्रवाह और ओज की कमी नहीं थी। हमने तीन-चार दिन में उसे रट लिया। श्रद्धेय सिन्हा सा. ने दो-तीन बार (प्रतियोगिता की निर्धारित तिथि से पहले) उसे सुना और सन्तोष व्यक्त किया।

उस भाषण की कुछ पंक्तियाँ हमारी एक नोटबुक में आज भी सुरक्षित हैं। कभी-कभी उन्हें पढ़कर हम अपने प्रथम भाषण की याद ताजा कर लिया करते हैं। वे प्रेरक पंक्तियाँ हैं–

"हिन्दी भाषा क्या है?

–भाव-सरिता मे तैरते-उतराते हर आबाल-वृद्ध के मानसिक स्वास्थ्य के हरे-भरे तट का स्पर्श कराने वाली एक पतवार।

–बालक के मानस मे जन्मघुट्टी के साथ अंकुरित एवं पल्लवित एक भावावेग।

–एक देशभक्त की जागरित चेतना।

–तरंगित विचार-दीपकों की हिलती-डुलती और झिलमिलाती एक ज्योतिर्माला।

–एक खग, जो विचारो के पंखों से उड़ान भरकर अनन्त आकाश में निराधार खडा रह सकता है।

–एक मग, जिसका विस्तार पाचाली के चीर से भी बड़ा है।

–एक जग, जिसमे 'सत्य-शिवं-सुन्दर' का आलोक प्रदीप्त हो रहा है।

मन-मानस-विहारिणी राजहंसिनी-तुल्य हिन्दी को छोड़कर अन्य किस भाषा में इतनी तेजस्विता और सामर्थ्य है कि वह राष्ट्रभाषा के प्रतिष्ठित पद पर अलकृत हो सके? किसी में नहीं, अँगरेजी मे तो कदापि नहीं।"

भाषण के इस अंश को सुनकर सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। भीड़ का सामना करने की आदत न होने से हम अचानक उखड गए और हमारे मस्तिष्क की विद्युत्तरंग का फ्यूज उड़ गया। इस बार उपहास में तालियाँ बजीं। हम आधा भाषण बोलकर मंच से नीचे उतर आए।

प्रथम भाषण की इस आशिक असफलता से हम निराश नहीं हुए, बल्कि हमारे मन में एक दृढ़ सकल्प का जन्म हुआ कि अब हमें बोलने का कोई भी अवसर चूकना नहीं है और एक दिन अच्छा वक्ता बनकर उभरना ही है। पूज्य पिताजी को जब हमने बुझे दिल से यह बताया कि हम बीच में भाषण भूल जाने से श्रोताओ की हँसी के पात्र बने थे तो उन्होंने सान्त्वना देते हुए यह आशीर्वाद दिया था कि कभी भी उत्साह की लौ को बुझने मत देना, तुम एक दिन व्याख्यान-वाचस्पति प. देवकीनन्दन-सरीखे वक्ता बनोगे। हमने स्व. पण्डितजी को न तो कभी सुना और न कभी देखा ही, किन्तु पिताजी के इस आशीर्वाद से हमारे मन में एक श्रेष्ठ वक्ता बनने की लगन अवश्य लग गई। हमारा सदा ही यह विश्वास रहा है कि निर्मल हृदय से निकला हुआ आशीर्वाद जीवन में बिना फले नही रहता।

हमारे इसी कॉलिज में उन दिनों भौतिक विज्ञान के एक प्राध्यापक थे–श्री बालकरामजी नागर। साहित्य, सस्कृति और समाजशास्त्र में भी उनकी गहरी रुचि थी। हमारा यह प्रथम भाषण भले ही असफल रहा हो, किन्तु हमारे बोलने के ढग और शुद्ध उच्चारण से वह प्रभावित हुए और उन्होंने अपने क्वार्टर पर हमसे मिलने के लिए कहा। दूसरे दिन हम उनसे मिले तो उन्होंने अच्छा वक्ता बनने के लिए जो नुस्खे हमें बताए, उसके आधार पर हम यहाँ दस टिप्स प्रस्तुत कर रहे है :-

यदि जीवन में, परिवार में या समाज में हम सुख-शान्ति चाहते हैं तो धर्म को अपने मन में स्थान देना होगा।

(1) अपना भाषण हमेशा स्वयं तैयार करो, कभी दूसरों से मत लिखाओ। हाँ, योग्य पुरुषों से विषय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(2) भाषण तैयार करने से पूर्व सम्बन्धित विषय पर गहन चिन्तन करो। उसके सन्दर्भ में जहाँ जो भी सामग्री मिले, उसे पढ़कर उसके आधार पर नोट्स तैयार करो।

(3) भाषण की भाषा सरल और मुहावरेदार तो हो, किन्तु क्लिष्ट कतई न हो।

(4) भाषण के लिए जाने से पूर्व अपने दिमागी कम्प्यूटर में उसकी एक छोटी-सी रूपरेखा और क्रम सैट कर लो, ताकि कहीं अटकने या भूलने की नौबत न आए।

(5) बोलते समय सोचो कि सामने जो सुनने वाले लोग बैठे है, वे सभी सामान्यजन हैं और उन सबके बीच तुम विशिष्ट हो। इससे बोलते समय जवान कभी लडखड़ायेगी नहीं और आत्मविश्वास बना रहेगा।

(6) श्रोताओं से आँख मिलाकर बोलो और ऐसे बोलो कि उन्हें लगे कि तुम उनसे बातचीत कर रहे हो, कोई नसीहत नहीं दे रहे हो।

(7) बोलते समय बीच-बीच में शिष्ट हास्य का पुट भी देते रहो, ताकि श्रोताओं की तन्मयता बनी रहे और वे बोर न हो।

(8) कभी व्यंग्य भी करो तो शालीनता से। भाषण में फूहड़पन नहीं आना चाहिए।

(9) अधिक विद्वत्ता या पाण्डित्य का प्रदर्शन करना वक्ता की कुशलता का माप नही है। वक्ता की योग्यता इस बात पर निर्भर है कि वह जितना भी जानता है—थोड़ा या बहुत, उसे श्रोताओ के हृदय में उतार पाता है या नही।

(10) किसी भी वक्ता को अपनी बातें इस तरह प्रस्तुत करनी चाहिए कि श्रोताओं में अन्त तक सुनने की उत्सुकता बनी रहे। उत्सुकता को बनाये रखना एक प्रकार का सम्मोहन है और जिसे यह कला आती है, उसके श्रोतागण कीलित हो जाते है।

इन टिप्सो पर हमने यथाशक्ति अमल करने की कोशिश की और इससे हमारी बोलने की कला मे धीरे-धीरे निखार आता गया। सन् 1952 में प्रदेश-स्तर की चार-पॉच वाद-विवाद प्रतियोगिताओ में हमने भाग लिया और कॉलिज के लिए चार ट्राफियाँ जीतकर लाए। सस्था की कीर्ति-वृद्धि के लिए हमे अपने सभी गुरुजनो का स्नेहपूर्ण शुभाशीष मिला। उस वर्ष की कॉलिज-पत्रिका 'अर्चना' मे सम्पादक श्री ज्वालाशंकर श्रीवास्तव (अंगरेजी-प्रवक्ता) ने हमारा फोटो छापकर अपने अग्रलेख मे हमारी इस सफलता का विशेष उल्लेख करते हुए हमारे उज्ज्वल भविष्य के लिए मगल कामना व्यक्त की।

सन् 1952 में वक्तृत्व कला के बूते ही हम नगर के इस सबसे बडे कॉलिज की छात्र-यूनियन के निर्विरोध अध्यक्ष चुने गए। इसी वर्ष नगर में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की प्रथम शाखा का गठन हुआ। उसका संस्थापक अध्यक्ष हमे तथा संस्थापक मन्त्री हमारे सहाध्यायी श्री श्यामनन्दनसिंह, जो वर्तमान में राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ के जीवनदानी कार्यकर्ता, उत्तरप्रदेश भाजपा के प्रवक्ता तथा एम.एल.सी. हैं, को बनाया गया। इसके प्रथम सत्र का उद्घाटन हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबरायजी के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। इस उद्घाटन-सभा का सचालन हमने किया था और श्रद्धेय बाबूजी ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।

शिक्षा के साथ सेवा भी

अपने छात्र-जीवन से ही हम सामाजिक गतिविधियों में भी भाग लेने लगे थे। सेवा का क्षेत्र उन दिनों हमारा मोहल्ला नईबस्ती था। यहाँ हमने कुछ युवा साथियों के साथ 'जैन पुस्तक सेवा-सदन' के नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। इस सेवा-सदन को अमेरिकन दूतावास से 150 पुस्तकें भी प्राप्त हुई थीं। नईबस्ती के भगवान बाहुबली मन्दिर की वार्षिक जलधारा का उत्सव भाद्रपद शुक्ला एकादशी को होता था। उस दिन रात में स्व. भगवत्जी द्वारा लिखित कोई एक

जिससे आचार-विचार को शुद्ध रखने तथा धर्म-पालन में सहायता मिले, उसी आहार को 'शाकाहार' संज्ञा है।

नाटक सभी युवजन मिलकर अभिनीत करते थे। उसमें मुख्य पात्र की भूमिका हमें मिलती थी। नाटक के आयोजन के मुख्य सूत्रधार थे (स्व.) पाण्डेय अमोलकचन्द्र जैन। अच्छी अभिनय-कला के प्रदर्शन के लिए रजत मैडल और पुरस्कार भी दिए जाते थे। महावीर जयन्ती और दशलक्षण पर्व पर भोर में हम लोग भजन गाते हुए नगर की परिक्रमा (प्रभातफेरी) के आयोजन भी करते थे।

नगर के लोकप्रिय लेखक श्री रतनलाल बंसल ने राजा साहब की हवेली के एक बड़े कमरे में जनवादी पुस्तकालय खोल रखा था। उनके आग्रह पर हम प्रतिदिन सायकाल दो घण्टे की मानद सेवा दिया करते थे। मार्क्स और लेनिन की विचारधारा से परिचित होने का हमें वहाँ अच्छा अवसर मिला, क्योंकि इस पुस्तकालय में साम्यवादी विचारधारा से सम्बद्ध पुस्तकों का बाहुल्य था।

नगर में आए दिन होने वाली सभाओं में जाने और देश के प्रमुख विचारकों के भाषण सुनने का भी हमें शौक था। उन दिनो किसी भी कवि-सम्मेलन को तो हम कभी मिस नहीं करते थे। इन सभा-सम्मेलनों में बैठकर हमें बहुत-कुछ सीखने को मिला।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से जुडकर उसे चलना ही चाहिए। समाज से यदि हम कुछ ग्रहण करें तो उसे कुछ देना भी चाहिए। महाकवि कालिदास की एक जीवनोपयोगी सूक्ति को हमने उन दिनों ही एक आदर्श के रूप में स्वीकार कर लिया था। वह सूक्ति है–

'आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव'

अर्थात्–जिस प्रकार बादल समुद्र से खारा पानी ग्रहण करते हैं और उसे मीठा बनाकर धरती को लौटा देते है, उसी प्रकार सज्जन पुरुषो को भी समाज से लिए हुए अवदान को उसे ब्याजसहित लौटाने का भाव रखना चाहिए।

एक भूल : पहली और अन्तिम

जिस कार्य को करते समय किसी के सामने मुँह छिपाना पड़े, वह कार्य कपट के अन्तर्गत गणनीय है। पहली बार किये गए कपट को भूल और बार-बार किए जाने वाले कपट को पाप कहा जाता है। कपट का एक नाम माया भी है और माया को आचार्यो ने शल्य कहा है। शल्य कहते हैं काँटे को और काँटा हमेशा चुभता रहता है।

एक बार हमसे पाप तो नहीं, पर भूल हो गई। हिन्दी के तृतीय प्रश्नपत्र की परीक्षा होनी थी। हमें संस्कृत की पठ् धातु के रूप याद नहीं थे। हम अपने बारहइंची फुटा के पृष्ठ भाग पर बारीक अक्षरों में रूप लिखकर परीक्षा-भवन मे ले गए। कोई गलत कार्य यदि बार-बार किया जाए तो भले ही न खटकता हो, पर पहली बार गलती करते समय भय तो लगता ही है। कक्ष-निरीक्षक श्री कृष्णकुमार मिश्र की निगाह बचाकर हम फुटा उलटकर रूप देख ही रहे थे कि अचानक मिश्रजी को कुछ सन्देह हो गया और उन्होंने निकट आकर फुटा हाथ में उठा लिया। उन्होंने ज्यादा बुरा-भला तो नहीं कहा, केवल इतना बोले–'तुम जैसे अच्छे लड़के को नकल नही करनी चाहिए, समझे'। इतना कहकर वह तो आगे बढ़ गए, किन्तु हम उस दिन शर्म से ऑखे नीची किए रहे।

महर्षि बाल्मीकि ने लिखा है :-

'न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितो यशः'

अर्थात्–मैं मृत्यु से नहीं, केवल अपयश से डरता हूँ। नकल के बारे मे सच तो यही है कि छिपी रहे तो चतुराई और खुल जाए तो बेईमानी और बेईमानी चाहे एक पैसे की हो या एक लाख की, है तो बेईमानी ही। नकल भी चाहे एक पंक्ति

की हो या एक पूरे पृष्ठ की, है तो नकल ही। पोल खुल जाने से हमें बड़ा सदमा लगा और हमने संकल्प कर लिया कि भविष्य में न कभी नकल करेंगे और न करायेंगे। आजतक हमने इस संकल्प का निर्वाह किया है।

हमें सन्तोष है कि छात्र-जीवन की यह भूल, भूल बनकर ही रह गई, पाप नहीं बन सकी और हम बार-बार के अपयश से स्वयं को बचा सके।

□

कर्मक्षेत्र की ओर

सन् 1952 मे, जब हम कक्षा 12 में अध्ययन-रत थे, हमारा रिश्ता एटा के प्रमुख व्यवसायी लाला जयकुमारदास जैन (फर्म-मै. जयकुमारदास फकीरचन्द्र) की बडी बेटी राजेश्वरी के साथ निश्चित हो गया। उन दिनों ज्यादा बडी उम्र में शादी का चलन नहीं था। 18 फरवरी 1952 को अठारह वर्ष की आयु में हमारा विवाह जैन रीति से सम्पन्न हुआ। इण्टरमीडिएट की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद गौना भी हो गया। धर्मपत्नी के रूप में एक नए सदस्य का हँसी-खुशी के वातावरण में परिवार मे प्रवेश हो गया।

अब हमारे सामने प्रश्न था कि हम क्या करें? गृहस्थी के खूँटे से बँधने के बाद प्रायः जीविकोपार्जन की ओर ही ध्यान जाता है। यों तो बी. ए. मे प्रवेश पाने की इच्छा से हमने आगरा के राजा बलवन्तसिंह महाविद्यालय मे आवेदन किया था और प्रवेश भी सुनिश्चित ही था, किन्तु तभी गुरुवर श्रद्धेय श्री हाकिमसिंह जी उपाध्याय ने हमारे पिताजी से कहा कि श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलिज में शिक्षकों के कुछ स्थान रिक्त हैं। नरेन्द्र से कहो कि वह अपना आवेदन-पत्र दे दे। बी.ए. और एम.ए. तो वह व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में भी कर सकता है।

पिताजी की भी हार्दिक इच्छा यही थी कि हम अब कुछ काम करें। उसके पीछे तीन कारण थे—एक तो उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर थी, दूसरा एकमात्र पुत्र होने से वह हमें फीरोजाबाद से बाहर भेजना नहीं चाहते थे तथा तीसरा विवाह के बाद युवाओं को अपने पैरों पर खडा होना ही चाहिए, ऐसी उनकी सोच थी। अतः उन्हें उपाध्यायजी का यह प्रस्ताव बिनमाँगी मुराद जैसा लगा। उनका संकेत पाकर मैने आवेदन कर दिया। चूँकि प्रिंसिपल साहब की ओर से ही यह ऑफर आया था, इसलिए चयन के बारे में तो सन्देह ही नहीं था। हमने शिक्षक-धर्म अंगीकार कर लिया। कार्य शुरू करते ही उपाध्यायजी ने हमें कॉलिज के शैक्षिक और साहित्यिक कार्यक्रमों का संयोजक नियुक्त कर दिया। अपनी रुचि के अनुकूल कार्य होने से हमने अवकाश-प्राप्ति तक इस दायित्व को सम्यक् प्रकार से निभाया।

संस्थागत छात्र के रूप मे स्नातक-स्तर की पढाई जारी न रख सका, इसके लिए प्रारम्भ में थोडा-सा पछतावा तो रहा, परन्तु बाद में यह अनुभव किया कि इसका भी एक उज्ज्वल पक्ष है। हर संस्था की एक सीमा या मर्यादा होती है। वहाँ बौद्धिक स्वतन्त्रता के साथ विचारने की आदत का विकास नहीं हो पाता। मन में जिज्ञासा बनी रहे तो स्वाध्याय और सत्संगति से भी बहुत-कुछ सीखा जा सकता है। सीखने की आदत का विकास किसी संस्था से बँधा हुआ नहीं है। यह तो जीवनभर चलने वाली क्रिया है। दिमाग की खिड़की यदि खुली रहे तो यह सम्पूर्ण चराचर जगत ही एक विश्वविद्यालय है। कबीरदास ने तो किसी पाठशाला के दर्शन ही नहीं किए, फिर भी उनके द्वारा गाई गई साखियों और सबदों पर आज प्रतिभासम्पन्न लोग पी.एच.डी. कर रहे हैं। किसी ने ठीक ही कहा है:—

[illegible] और [illegible] चाहिये।

कुछ ऐसे फूल हैं, जिनको मिला नहीं माहौल,
महक रहे हैं वो, मगर जंगलों में रहते हैं।

हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें जीविका की तलाश में कहीं भटकना नहीं पड़ा। वह हमें आसानी से मिल गई। प्रोन्नति के लिए भी कभी किसी से नहीं कहना पड़ा। व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में बी.ए., एल.टी. (सेवाकालीन) और एम.ए. की परीक्षाये उत्तीर्ण कर लेने के बाद हमे अपेक्षित ग्रेड सहज ही प्राप्त होते रहे। हमारी इस विकास-यात्रा में न तो कभी कोई रुकावट आई और न कभी हमें हताशा का ही सामना करना पडा। दैव-कृपा तो इसमें रही ही, कॉलिज के अधिकारियों के स्नेह-दान को भी एक प्रबल निमित्त के रूप मे हम स्वीकार करते है।

हमारा सेवा-काल : कुछ यादें

हमारा यह कॉलिज अपने शैक्षिक एवं साहित्यिक आयोजनों के लिए नगर के अन्य सभी कॉलेजो मे अग्रणी रहा है। यहॉं का पहला साहित्यिक आयोजन था 'कवि-दरबार' का, जिसमें कुछ शिक्षको एवं अधिकाश छात्रों ने सूर-तुलसी से लेकर पन्त-निराला तक के प्राचीन और अर्वाचीन कवियो का पार्ट उन्हीं की वेशभूषा में काव्यपाठ करते हुए अदा किया था। इसे दर्शकों की प्रचुर प्रशंसा प्राप्त हुई थी। यहॉं प्रतिवर्ष होने वाले कवि-सम्मेलनो की भी नगर में धूम रहती थी। सन् 1955 के प्रथम कवि-सम्मेलन का कवरेज करते हुए राष्ट्रीय दैनिक 'अमर उजाला' ने लिखा था कि इसने नगर के पिछले अनेक वर्षों के आयोजनो को फीका कर दिया है। भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा प्रख्यात फिल्म-गीतकार श्री रवीन्द्र जैन की संगीत-निशा को नगर में सर्वाधिक सराहना प्राप्त हुई थी। पूर्व जनपद आगरा एवं नवसृजित जनपद फीरोजाबाद के जनपदीय युवक समारोह नगर में सर्वप्रथम इसी कॉलिज में आयोजित किए गये थे। इन आयोजनों की रंगारग प्रस्तुतियो और अनुशासन की जनपद के प्रशासनिक एव शैक्षिक अधिकारियों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। सन् 1975 में कॉलिज का रजत-जयन्ती समारोह सप्तदिवसीय कार्यक्रमों के साथ अत्यन्त गरिमापूर्ण ढग से मनाया गया था। प्रदेशभर के समाचार पत्रो में उसकी चर्चा हुई थी।

कॉलिज की छात्र-ससद उन दिनो का प्रमुख आकर्षण थी। सभी शिक्षक एवं छात्रगण उसमें गहरी रुचि रखते थे। नगर एव जनपद-स्तर की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में इस कॉलिज के छात्र प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे हैं। उस समय के सफल छात्र वक्ताओं में सर्वश्री निर्मलकुमार चतुर्वेदी (इलाहाबाद हाईकोर्ट), अनूपचन्द्र जैन (फीरोजाबाद न्यायालय), रुद्रदत्त चुतर्वेदी (प्रवक्ता-हल्द्वानी महाविद्यालय), ओमप्रकाश अग्रवाल (जीवन बीमा निगम), प्रताप जैन (दिल्ली नगर निगम), डा के. के. जैन (स्वस्तिक नर्सिंग होम), रजनीकान्त जैन (एक्यूप्रैशर-विशेषज्ञ) आदि के नाम उल्लेख्य है।

कॉलिज की वार्षिक पत्रिका 'अमृत' को जनपद की सर्वोत्तम पत्रिकाओं में गिना जाता है। उसके कुछ विशेषांको, जैसे-फीरोजाबाद जनपद अंक, स्व. बाबू हजारीलाल जैन स्मृति अंक, शैक्षिक अंक, रजत जयन्ती अंक, वीर-परिनिर्वाण अंक आदि को ऐतिहासिक दस्तावेज का महत्व मिला है। अनेक शोधार्थी आज भी उनकी मॉंग करते हुए देखे जाते हैं। श्रद्धेय दादाजी (ख्यातिलब्ध साहित्यकार स्व. डा. बनारसीदास चतुर्वेदी) की यह प्रिय पत्रिका रही है। जब तक वह रहे, उनका प्रशस्त आशीर्वाद इसे सदैव प्राप्त रहा।

कॉलिज के संस्थापक मंत्री श्रीमान् वाणीभूषण पण्डित श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री के सौजन्य से देश के प्रख्यात जैन सन्तों की पावन रज से यहॉं की भूमि पवित्र हो चुकी है। स्वनामधन्य सर्वश्री क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी, आचार्य महावीरकीर्ति, ऐलाचार्य विद्यानन्द, मुनि सुशीलकुमार, आचार्य विमलसागर, आचार्य सन्मतिसागर, मुनि अमितसागर आदि के मंगल प्रवचनों का लाभ हमारे छात्रों को मिलता रहा है। देश के मूर्धन्य साहित्यकारों जैसे—सर्वश्री रामधारीसिंह दिनकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल जैन, हरीशंकर शर्मा, परिपूर्णानन्द वर्मा आदि तथा प्रख्यात स्वतन्त्रता-सेनानियों जैसे-सर्वश्री भाई परमानन्द,

[illegible]

शचीन्द्रनाथ सान्याल, मन्मथनाथ गुप्त, रामचरण हयारण मित्र, राजा महेन्द्रप्रताप सिंह, बाबा पृथ्वीसिंह आजाद आदि तथा शीर्षस्थ राजनेताओं जैसे—भू. पू. प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी, समाजवादी नेता चन्द्रशेखर, राजनारायण, मधु दण्डवते, मधु लिमए, कांग्रेसी नेता कमलापति त्रिपाठी, युवराज कर्णसिंह आदि के प्रेरक उद्बोधनों का लाभ भी समय-समय पर इस नगर की जनता और हमारे छात्रों को प्राप्त होता रहा है।

सच तो यह है कि सन् 1953 से 1992 तक की चालीसवर्षीय अपने सेवा-काल की अनेकानेक मीठी-मीठी यादें हमारे रोम-रोम में रची-बसी हैं। यहाँ शिक्षक, छात्र, प्राचार्य, प्रबन्ध समिति, शिक्षा विभाग और अभिभावकों के मध्य जैसा स्पृहणीय सामंजस्य बना रहा है, उसे देखकर बहुतो को आश्चर्य भी होता था और ईर्ष्या भी। यहाँ की हवाओं मे वही ताजगी सदा बनी रहे, हमारी तो यही भावना है।

तुलसी गाइ-बजाइ कैं दियौ काठ में पाँव

मई 1971 का अन्तिम सप्ताह। विद्यालय के प्राचार्य-पद से आदरणीय डा. मिथलेशचन्द्र चतुर्वेदी त्यागपत्र दे चुके थे। नगर में अटकलें लगाई जा रही थी कि अगला प्राचार्य कौन होगा? हम भी कल्पनाओ के ताने-बाने बुनने में मस्त थे। सोच रहे थे कि इस बार अपने स्टॉफ में से ही किसी को अवसर मिल सकता है। दो-चार नाम गिन जाता था। कभी यह भी ख्याल आता कि नहीं, कोई बाहर का व्यक्ति ही आयेगा। उस समय स्वप्न म भी यह विचार नहीं आया कि आगे चलकर (मात्र डेढ या दो माह के बाद ही) हमारा यह आकलन हमे उस मूर्ख की श्रेणी मे पटक सकता है, जो एक साथी के गुम हो जाने से बार-बार परेशान हो रहा था, लेकिन यथार्थ में गुम कोई नहीं हुआ था। बात सिर्फ इतनी थी कि हर बार वह अपने को ही गिनना भूल जाता था।

वास्तविकता यह थी कि हमने स्वय प्रधानाचार्य-पद के लिए कभी इच्छा नही की। वह तो एक दिन, शायद 6 या 7 जून की सन्ध्या को, संस्था के निर्माता गुरुवर श्री हाकिमसिंह जी उपाध्याय ने आनन्द पुस्तक भण्डार पर अपने होठो को हमारे कान के पास रखते हुए हौले से कहा—'समाचार पत्रो मे आवश्यकता निकल जाने पर आवेदन अवश्य करना।' हमने पूछा—'किसकी आवश्यकता?' वह बोले—'प्रधानाचार्य की'। थोड़ी देर के लिए तो हम सकते मे आ गए। सोचने लगे कि प्रिंसिपल सा. ने पहले तो कभी मजाक किया नहीं, आज यह क्या बात है? हमारे मौन को देखकर वह फिर खुसपुसाए—'भूल मत करना'। हमने गम्भीरतापूर्वक निवेदन किया कि नहीं साब! हम इस पद के योग्य नही हैं। उनका रिमार्क था—'यह तुम क्या जानो! उदूखों ने जीवनभर ऊँट ही चराए हैं'।

'अमर उजाला' में प्राचार्य-पद के रिक्त स्थान की विज्ञप्ति निकल गई। हमसे आवदेन करने के लिए कहा जा रहा था। हम असमजस मे थे। स्टॉफ में हमसे भी वरिष्ठ लोग है। उनका अधिकार पहले है। जिस कॉलिज में 62 शिक्षक, 20-22 अन्य कर्मचारी तथा सवा दो हजार छात्र हों, उसे सँभाल पाना क्या हमारे लिए सम्भव होगा? प्रिंसिपल बनने का अर्थ है काँटों की सेज पर सोना। ठस्से की मास्टरी छोड़कर इस प्रधानी में क्या रखा है? इसी प्रकार के कई-कई तरह के विचार दिमाग में आते रहे। पूरी रात नींद नहीं आ सकी। इसी उधेड़बुन मे सवेरा हो गया।

प्रातःकाल हमारे वरिष्ठतम साथी श्री यादव साहब और पी. के. भैया से भेंट हुई। हमारी दुविधा को वे भाँप चुके थे। उन्होंने कहा—'सीनियर्स में से कोई भी प्रत्याशी नहीं है। आप तो संकोच छोड़कर आवेदन करो। किसी बाहर के व्यक्ति की अपेक्षा यदि अपने ही साथी को अवसर मिलता है तो इससे हम सबको ही खुशी होगी।' फिर भी कई दिनों तक अन्तर्द्वन्द्व बना रहा। अन्ततोगत्वा एक दिन निर्णय ले ही लिया—'अरे नरेन्द्र! सोच-विचार छोड़ो और आवेदन करो! जो होगा सो देखा जायेगा। जब सबकी शुभ कामनायें साथ हैं, फिर चिन्ता क्यों?'

हमने प्रार्थना-पत्र दे दिया—'तुलसी गाइ-बजाइ कैं दियौ काठ मे पाँव'। 15 जुलाई को इण्टरव्यू हुआ और हम चुन लिए

सहनशीलता, नम्रता, सरलता, संतोष आदि आन्तरिक गुणों का विकास ही पर्व का मुख्य लक्ष्य है।

गये। निर्णय सर्वसम्मत रहा। सबका स्नेह हमें मिला। इस अपनत्व से भरे वातावरण में हमने 23 जुलाई 1971 को अपना यह नया पद ग्रहण कर लिया।

प्राचार्य के रूप में इक्कीस वर्ष

नगर के हमारे शुभचिन्तकों ने दिल खोलकर हमारा स्वागत किया। उनकी बधाइयाँ पाकर हमारे उत्साह और आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। बाहर से भी आशीर्वाद के पत्र आने लगे। सबसे पहला पत्र श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी का था, जिसे उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं। उन दिनों वह अपने सुपुत्र डा. बुद्धिप्रकाश चतुर्वेदी के पास ज्ञानपुर में रह रहे थे। वह पत्र यहाँ प्रस्तुत है :–

Gyanpur (Benaras), 31/7/1971

प्रिय नेरन्द्रजी, जयजिनेन्द्र'

मेरे 'जयजिनेन्द्र' लिखने पर आप चौंकें नहीं। कितने ही जैन सज्जन मुझे 'चतुर्वेदी-जैन' लिखते रहे हैं, क्योंकि मैं जैनधर्म के तीन सिद्धान्तों का प्रबल समर्थक रहा हूँ–(1) अहिंसा, (2) अपरिग्रह और (3) आध्यात्मिक स्वावलम्बन यानी ईश्वर विशेष में अविश्वास। पर्यूषण पर्व में मेरे पास जैन संस्थाओं के Express telegram आते रहते हैं, जिनसे रात की नींद हराम होती रहती है। अब मैं धौल-धप्पड़ की सीमा तक ताड़ना का पक्षपाती बन गया हूँ। यह तो हुई आदाब की बात, अब मुख्य प्रश्नों पर आता हूँ।

(1) मेरी हार्दिक बधाई (और कुछ-कुछ सहानुभूति भी) आपके साथ है। आपको पूर्ण स्वस्थ रहते हुए लोक-संग्रह की नीति से काम करना है। बकौल अमर शहीद गणेशशंकरजी विद्यार्थी खुद काम करना आसान है, दूसरों से काम लेना मुश्किल। अगर Over Work से आपने अपनी तन्दुरुती खराब कर ली तो यह पद घाटे का ही रहेगा।

(2) अल्प व्यय में छोटे-छोटे Function अपने विद्यालय में कराते रहिए। ज्यादा खर्च करना सर्वथा अनुचित होगा। कवियो की जयन्तियाँ, नेताओं के जन्मदिवस, स्वर्गीय कार्यकर्त्ताओं की पुण्य तिथि यदि आप कम-से-कम खर्च करके मनवा सकें तो एक सांस्कृतिक वातावरण तैयार हो सकता है। Let us do what we can!

(3) आप पी.डी. जैन कॉलिज को हर प्रकार से एक आदर्श विद्यालय बनायें। संस्थाओं को बच्चों की तरह पालित-पोषित करना पड़ता है। उनकी देखभाल के लिए बीसियों लोगों की खुशामद करनी पड़ती है, जो एक विषपान की तरह है। अपना यह कॉलिज एक अच्छा डिग्री कॉलिज बन जाए तो बहुत अच्छा, पर वस्तुतः एक शिथिल डिग्री कॉलिज से First Class सुदृढ़ इण्टर कॉलिज कहीं अच्छा!

(4) आपके विद्यार्थियों में क्या किसी की भी रुचि लिखने की ओर है? यदि हाँ, तो उन्हें प्रोत्साहित कीजिए। यह काम B.K. (ब्रजकिशोर जैन) भलीभाँति कर सकते हैं।

(5) शास्त्री-कक्ष (कॉलिज के अतिथि भवन) में चित्रों के भिन्न-भिन्न Set होने चाहिए, जैसे-शहीदों के, धर्मगुरुओं के, देश के नेताओं के, नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के इत्यादि। उपयुक्त अवसरों पर उपयुक्त चित्र प्रदर्शित किए जा सकते हैं।

नित्यप्रति 2-3 मील टहलिए। सलाद बोइए, ताकि मेरे फीरोजाबाद पहुँचने का आकर्षण बढ़े। झाड़ियाँ लग रही होंगी।

आपने सुयोग्य आलोचक बनने की क्षमता है, पर सामाजिक कर्तव्यों ने आपके पास अवकाश ही नहीं छोड़ा। अब अच्छे प्रधानाचार्य ही बन लीजिए।

विनीत
बनारसीदास चतुर्वेदी

साधु-संगति से ही सज्जन और सदाचारी नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त होगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के यशस्वी पितामह का यह पत्र पाकर हमें बड़ा उत्साह और सम्बल मिला। जो लोग यह आशंका व्यक्त कर रहे थे कि अब देखना है कि यह हिन्दी का अध्यापक और वह भी धोतीधारी कितने दिन टिक पाता है! यह आशंका सर्वथा निर्मूल भी नहीं थी, क्योंकि हमसे पूर्व-नियुक्त दो प्राचार्य एक-एक साल की अवधि पूरी कर इस पद को स्वेच्छा से छोड़कर अपनी पूर्व स्थिति में लौट गए थे। हमें यह विश्वास हो गया था कि सबके सहयोग से हम गाड़ी खींच ले जायेंगे। इसी भरोसे हमने एक स्वागत-समारोह में सबको आश्वस्त करते हुए कहा था—'यह बढ़ा हुआ कदम अब पीछे लौटने वाला नहीं है। कम-से-कम दो दशकों से पूर्व हम यहाँ से हटने का नाम नहीं लेंगे।' सभी छात्रों, शिक्षकों एवं उपस्थित नागरिकों ने इस कथन पर जोरदार तालियाँ बजाकर हमारा हौंसला बढ़ाया था। यथार्थ में सभी लोग उस वक्त स्थायित्व चाहते थे।

श्रद्धेय दादाजी के सुझावों का यथाशक्ति पालन और क्रियान्वन करने की हमने निरन्तर कोशिश की। किसी प्रकार की तिकड़म या जोड़-जुगाड़ की कला में दक्ष न होने पर भी हमने इक्कीस वर्षो का लम्बा समय अपने पूरे सन्तोष के साथ पूरा किया। बीच में दो-तीन अवसरों पर झंझावात भी आए, पर प्रबन्ध समिति के सहयोग और अपने साथी-शिक्षकों की टीम-स्प्रिट के बल पर हमने उनका सफलतापूर्वक सामना किया। सभी कठिनाइयों का हल बड़ी खूबसूरती से निकलता रहा। वैसे भी हमारा इस जैन सिद्धान्त में अडिग विश्वास है :—

'को काको दुख देत है, करम देत झकझोर।
उरझे-सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर।।'

शुभ कर्मो के उदय और छोटे-बड़ों की सद्भावना ने हमें सदा बल प्रदान किया है और हर समस्या का समाधान भी स्वत· होता रहा है। 'सत्यमेव जयते' की सनातन नीति को ही इसका श्रेय जाता है।

कालिज की प्रगति : कुछ आधार

हमारा कॉलिज नगर और नगर से बाहर के बुद्धिजीवियो मे मदैव चर्चित रहा है। उसके आधा‹ में है यहॉ की कुछ स्वस्थ परम्पराये, जैसे :—

– यहॉ की प्रबन्ध समिति, प्राचार्य एव शिक्षकों के मध्य सम्यक् तालमेल एव पारिवारिक वातावरण रहा है।
– प्रबन्ध समिति ने कॉलिज के आन्तरिक प्रशासन में कभी हस्तक्षेप नहीं किया।
– यहाँ के अध्यापक-मण्डल ने सदैव विद्यालय को अपना मानकर 'टीम-स्प्रिट' की भावना से सेवा-कार्य किया है।
– विद्यार्थियों ने अनुशासन के बारे में कभी किसी को उंगली उठाने का अवसर नहीं दिया।
– विशेष योग्यता-चाहे वह अध्यापक में रही हो या छात्र में—यहाँ हमेशा स्वयमेव पुरस्कृत होती रही है।
– यहाँ शिक्षकों की चरित्र-पंजिका में प्रतिकूल प्रविष्टियों का प्रायः अभाव रहा है।
– 'थ्रो प्रॉपर चैनल' की परिपाटी का यहाँ कभी उल्लंघन नहीं हुआ।

ऐसी स्वस्थ परम्परायें हर विद्यालय में नहीं मिलतीं। स्व. उपाध्यायजी के समय से ही ये यथावत् चली आ रही हैं और जब तक ये बनी रहेंगी, तब तक कॉलिज की साख में कोई कमी नहीं आएगी—यह हमारा विश्वास है।

पूर्व सेवा-निवृत्ति : स्वान्तः सुखाय

यों तो अशासकीय शिक्षा-क्षेत्र में 60 वर्ष की आयु पूरी होने तक कोई भी शिक्षक सेवा में बना रह सकता है, किन्तु शासन ने 58 वर्ष की आयु पूरी होने पर भी अवकाश ग्रहण करने का विकल्प चुनने की एक सुविधा प्रदान की है। हमने स्वान्तःसुखाय और स्वेच्छा से यह विकल्प चुना। शिक्षा के प्रति शासन के उपेक्षात्मक रवैये और शिक्षकों की नियुक्तियो पर लगी रोक से उत्पन्न गतिरोध के कारण ही हमने यह निर्णय लिया था।

[illegible] है, जो अपने [illegible] का पालन करता है। [illegible] ही [illegible] है।

अवकाश-प्राप्ति का अर्थ निष्क्रिय होना कतई नहीं है। जन-जीवन और समाज के कार्यो में अब हम पहले से भी अधिक सक्रिय रहेंगे, यह विश्वास हमने अपने सभी हितैषियो को दिलाया। कॉलिज-पत्रिका 'अमृत' के विदाई-अंक में भाई ब्रजकिशोर जैन ने भी यही आशा व्यक्त की थी कि हमारे इस संकल्प में भी कोई भलाई निहित होगी। विदाई का तात्पर्य जुदाई नहीं है।

कॉलिज प्रबन्ध-समिति की ओर से जो भावभीनी विदाई हमें दी गई, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। किन्हीं-किन्हीं भाग्यशाली लोगों को ही अलविदा होने पर इतना प्यार मिलता है। अपने विदाई-भाषण में हमने कहा था—"सच तो यह है कि मोर्चे पर लड़ते हैं सिपाही, किन्तु विजय का श्रेय मिलता है कमाण्डर को। हमारे साथ भी यही हुआ है। मैं एक/अकेला क्या कर सकता था, यदि पूरा कॉलिज-परिवार एक बँधी हुई टीम की तरह मेरे साथ न होता तो! इस यश का असली भागीदार तो पूरा कॉलिज-परिवार ही है। हाँ, यह बात अलग है कि उसकी अभिव्यक्ति मुखिया के नाम पर हुई है।"

आन्तरिक भावना

कॉलिज के निवर्तमान एवं वर्तमान सभी अधिकारियों एव शिक्षकों से प्राप्त स्नेह के लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हमने अपनी आन्तरिक भावना इन शब्दों में प्रकट की थी—'शिक्षा-संस्था कहो या विद्या-मन्दिर, एक ही बात है। मन्दिर पूजा का स्थान होता है, उसे कभी अखाडा मत बनने देना। संस्था बड़ी होती है, व्यक्ति छोटा। व्यक्ति तो आते-जाते रहेंगे, किन्तु सस्था हमेशा बनी रहेगी। जो भरण-पोषण करती है, वह माँ कहलाती है। यह सस्था भी माँ के समान है। हमे एक ही बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसकी शान में बट्टा न लगने पाए। इत्यलम्।'

□

लिखने की प्रेरणा कैसे मिली!

हम अपने छात्र-जीवन मे स्थानीय तिलक गली में स्थित नगर की सबसे प्राचीन सस्था 'भारती भवन' (सन् 1921 में स्थापित) के सदस्य बन गए थे। यहाँ बैठकर हम साहित्यिक पत्रिकायें पढ़ा करते थे। इन पत्रिकाओं में साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, कादम्बिनी, नवनीत और सरिता हमें विशेष रूप से पसन्द थीं। इनमें प्रकाशित कभी कोई लेख अच्छा लगता तो उसकी कुछ रुचिकर पंक्तियों को हम अपनी नोटबुक मे उतार लेते। एक दिन इन्हीं में से किसी एक पत्रिका में 'वे लेखक कैसे बने' शीर्षक से एक लेख पढने में आया। इस लेख मे उद्धृत इन पंक्तियो पर हमारा ध्यान अटक कर रह गया—

"किसी को अच्छा लिखते हुए देखकर जी में आता, एक गहरी मसमसाहट नसों में उठती कि काश! मैं भी लिख पाता ऐसा ही कुछ, पर कुछ लिख न पाता।"

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

"अपनी छात्रावस्था में जब मैं केसरी और युगान्तर जैसे पत्रों को पढ़ता और उनमें अपने मित्रों की रचनायें छपी हुई देखता तो मन में यह बलबला उठता था कि मैं भी एक दिन लेखक बनूँगा और ऐसे-ऐसे लेख लिखूँगा कि लोग वाह-वाह करें।"

— इन्द्र विद्यावाचस्पति

साप्ताहिक हिन्दुस्तान में पं. बनारसीदासजी चतुर्वेदी और सरिता मे श्री रतनलाल बंसल के लेख प्राय: छपते रहते थे। ये दोनों हमारे ही नगर के निवासी थे। उपरिलिखित पक्तियो को पढ़कर हमारे मन के किसी अज्ञात कोने में यह आवाज उठती कि कभी-कभी किसी पत्र में ऐसे ही किसी लेख के साथ क्या हमारा नाम नहीं छप सकता?

लिखने की इच्छा तो इस लेख की इन पंक्तियों ने जागृत कर दी, परन्तु मिश्रजी की तरह हम बहुत दिनों तक कुछ लिख नहीं पाए। लिखने के लिए प्रेरित किया हमारे पिताजी के एक मित्र श्री सुरेन्द्रचन्द्र 'वीर' ने, जो हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के विद्वान् थे। यहाँ चन्द्रवार गेट पर उनका अपना प्रेस था। और वह एक साप्ताहिक पत्र 'लोकमित्र' निकालते थे। पिताजी के पास उनका प्रायः आना-जाना रहता था। एक दिन उन्होंने बडे स्नेह के साथ हमसे जो शब्द कहे, उनका सार यह था :–

'बेटा! भाषा एक बहुत बडी शक्ति है। उसमें जादू का असर, संगीत का माधुर्य और तलवार की शक्ति होती है। तुलसीदास को महाकवि किसने बनाया? उनकी पत्नी रत्नावली की भाषा ने। न वह उलाहना देती और न वह कलम उठाते। बिहारीलाल के एक दोहे ने विलास में डूबे हुए राजा जयसिंह का मोह छुड़ा दिया था। तुम भी कुछ लिखा करो। जो लिखना जानता है, लोग उसका बहुत आदर करते हैं।'

हमे बात लग गई और हम लिखने लगे। पिताजी उन दिनो सदर बाजार (आगरा गेट) मे विसातखाने की दुकान करते थे। कॉलिज से लौटने के बाद हम भी कुछ देर के लिए दुकान पर बैठते और हम बीच मे पिताजी घर पर भोजन करने चले जाते। हमारी हालत यह थी कि हम जितनी देर वहॉ बैठते, कुछ-न-कुछ लिखते रहते। लिखते समय यदि कोई ग्राहक आकर सामान मॉगता तो हम मन-ही-मन भुनभुनाते कि कर दिया कम्बख्त ने मूड खराब। किसी ग्राहक ने कहा कि नहाने के साबुन की एक टिकिया देना। हमने निकालकर दे दी। टिकिया को उलट-पुलट कर वह बोला कि इसका एक कोना पिचका हुआ हे, जरा दूसरी देना। झट से हम बोल उठते–'ये रहे तुम्हारे पैसे, उठाओ और चलते बनो।' कभी-कभी तो ऐसा भी होता कि ग्राहक ने सात आने का सौदा लिया और एक रुपए का नोट पकड़ा दिया। हमने उसे उन्नीस आने की रेजगारी लौटा दी। जब किसी में लिखने की बेचैनी उत्पन्न हो जाती है, तब प्राय: ऐसा ही होता है।

पिताजी भोजन करके लौटते और जब उन्हें हमारी कारगुजारी के बारे में पता चलता तो अपना माथा पकडकर बैठ जाते। कई बार तो इस शौक के चलते हमें उनकी डॉट भी खानी पड़ती।

वीरजी ने इस कार्य में हमारी बहुत मदद की। वह हमारे लेखो को पढते ओर हमारी कमियॉ हमे बता देते। कभी-कभी उसके कुछ अशों को परिष्कृत कर 'लोकमित्र' में छाप भी देते। जिस दिन हमारा पहला लेख छपा था, उस दिन हमें ऐसा लगा कि हमारा कद दो इंच ऊपर उठ गया है। पूरे दिन मित्रो को हम उसे पढ़ाते रहे तथा रात मे भी सिरहाने रखकर सोए, जैसे कि वह कोई अमूल्य निधि हो।

आज तो लिखना हमारे लिए श्वास की तरह जरूरी हो गया है। जब मन मे विचार उठते है तो बिना लिखे रहा ही नहीं जाता। लिखना हमारी जीवन-चर्या का आज एक अपरिहार्य अंग बन चुका है।

सुलेखक बनने के लिए दस टिप्स

लिखना एक कला है और उसे सीखना पड़ता है। बोलना तो किसी स्कूल मे पढ़े बिना भी आ जाता है, परन्तु लिखना पढ़कर भी नहीं आता। केवल कागज नीला या काला करने का नाम लिखना नहीं है। वह तो एक साधना है, तप है। जैसे बिना परिश्रम के कोई इंजीनियर नहीं बन सकता, वैसे ही बिना प्रयत्न के कोई लेखक नहीं हो सकता। अपने अनुभव के आधार पर एक सुलेखक होने या बनने की इच्छा रखने वालों के लिए हम दस टिप्स यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :–

खुशियों को समेटो नहीं, बांटो, बांटने से खुशियां बढ़ती हैं।

(1) पहली शर्त : लिखने की प्रेरणा – प्रेरणा ही सफलता की भूमिका है। जब तक प्रेरणा का अभाव रहा, तब तक कालिदास मूर्ख ही बने रहे। प्रेरणा का उदय होते ही वह महाकवि के रूप में विश्वविख्यात हो गए। प्रेरणा से बेचैनी उत्पन्न होती है और वह बनी रहे तो कुछ-न-कुछ हो ही जाता है। दृढ़ संकल्प कहो या प्रेरणा, दोनों अन्योनाश्रित हैं।

(2) सुवाच्य लिखावट – सुस्पष्ट एवं सुपाठ्य लिखावट भी आवश्यक है। सुन्दर वस्त्राभूषण की भाँति ही वह सबको अपनी ओर आकर्षित करती है। कुछ लोग घसीटकर लिखते है। ऐसा लगता है, जैसे सूखी घास के रेशे तोडकर कागज पर चिपका रहे हों। महात्मा गांधी की लिखावट अच्छी नहीं थी। अपनी आत्मकथा में इसके लिए उन्होंने पछतावा व्यक्त किया है।

(3). प्रचुर शब्द-भण्डार – हिन्दी भाषा के नए-नए शब्दों को हमेशा सीखते रहना चाहिए। अच्छे शब्दों की कमी से भाषा में रस और आनन्द नहीं आ सकता। शब्दों का जितना बड़ा भण्डार हमारे पास होगा, उतने ही कौशल से हम अपने मनोनुकूल भाव प्रकट कर सकते हैं। व्यापार में पूँजी का जो महत्व है, वही महत्व लेखन में शब्द-भण्डार का है।

(4) शब्दों का सुविचारित चयन – शब्द कामधेनु के समान हैं। कहा भी है– 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति'। कौन सी बात किस प्रकार लिखी जाए, यह ज्ञान होना आवश्यक है। कठिन और अप्रचलित शब्दो का प्रयोग ठीक नहीं है। शोभन, नम्रतासूचक और अवसरानुकूल शब्द सबका ध्यान खींचते हैं। जिस प्रकार स्वर्णकार मीनाकारी करता है, उसी प्रकार लेखक को एक-एक शब्द चुन-चुनकर प्रयुक्त करना चाहिए।

(5) सुगठित वाक्य-रचना – वाक्य वीणा के समान है। जिस प्रकार वीणा के तारों के अपने-अपने स्थान पर रहने से ही उनसे मधुर ध्वनि निकलती है, उसी प्रकार वाक्य में शब्दों को यथास्थान रखने से ही अपेक्षित भावों का ज्ञान हो सकता है। श्री अनन्तगोपाल शेवड़े ने लिखा है–'जो वाक्य बिजली के सजीव तार की तरह हृदय को धक्का न दे सके, उसे मै असफल मानता हूँ'।

(6) भाषा-शुद्धता और व्याकरण – जैसे न तो कोई अशुद्ध पानी पीता है और न अशुद्ध भोजन करता है, वैसे ही अशुद्ध भाषा भी नहीं लिखनी चाहिए। पढ़े-लिखे लोग जब सत्रह को सतरह, स्टेशन को अट्टेसन, बीमारी को बिमारी या थूकना को थुकना लिखेंगे तो प्रबुद्ध समाज मे वे हँसी के पात्र ही बनेंगे। भाषा की शुद्धता व्याकरण के ज्ञान पर निर्भर है।

(7) विरामचिह्नों का सही प्रयोग – कुछ लोग केवल पूर्ण विराम या खड़ी पाई को ही एकमात्र विरामचिह्न समझते हैं और लाठी की तरह चाहे जहाँ उसे टिका देते हैं। मन में उठने वाले आरोह-अवरोह, कौतूहल, जिज्ञासा, शोक, आश्चर्य, भय आदि की सूचना विरामचिह्नों के समुचित प्रयोग के बिना कैसे की जा सकती है! विरामचिह्न भी शब्द-सम्पदा के ही अंग हैं। उनके सही उपयोग के अभाव में वाक्य कभी-कभी भ्रामक और निरर्थक हो जाता है। किसी ने लिखा–'महात्माओं का राग-द्वेष निर्भर नहीं होता।' क्या कोई बता सकता है कि इसका क्या अर्थ है? यथार्थ मे वाक्य होना चाहिए– 'महात्माओं का राग द्वेष-निर्भर नहीं होता।' एक नुक्ते की गड़बड़ से वाक्य अर्थहीन हो सकता है।

(8) रचना-कौशल – शब्द तो ईंटों की तरह हैं, किन्तु ईंटें ही तो मकान नहीं है। उन्हें जमाने की कला भी आनी चाहिए। ईंटों से कामचलाऊ घर-झोंपड़ी भी बन सकती है और दर्शनीय महल-मन्दिर भी। एक कुशल शब्द-शिल्पी के द्वारा प्रयुक्त शब्द वाक्य से काव्य बन जाते हैं।

(9) सतत अभ्यास – सबसे बड़ी बात है लिखते रहने का निरन्तर प्रयत्न करना। कलम को माँजने में समय लगता है। एकलव्य की तरह साधना किए बिना केवल हाथ में कलम पकड़ते ही कोई लेखक नहीं बन जाता। प्रभाकरजी की एक रचना कई पत्रों से लौटा दी गई, किन्तु वह निराश नहीं हुए। हर बार सुधारकर नए-नए पत्रों में भेजते रहे। अपनी बीसवीं कोशिश में वह उसे छपा हुआ देखने में सफल हुए। आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है–'अपनी रचना कम-से-कम चार-पाँच बार पढ़ो और उसे इतना सुधारो कि कोई भी उसकी किसी भूल पर उँगली न उठा सके'।

[illegible]

(10) अनुभव और ज्ञान – चिन्तन-मनन, स्वाध्याय, सत्संग और पर्यटन के द्वारा अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ाते रहना चाहिए। श्री रामचन्द्र वर्मा ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'अच्छी हिन्दी' में लिखा है–'लेखक का काम कुछ अंशों मे मधुमक्खियों से मिलता-जुलता है। वे मकरन्द-संग्रह के लिए कोसों चक्कर लगातीं और अच्छे-अच्छे फूलों पर बैठकर उनका रस लेती हैं। तभी तो उनके मधु में संसार की श्रेष्ठ मधुरता रहती है। जो अच्छा लेखक बनना चाहते हों, उन्हें भी अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का खूब अध्ययन-मनन करना चाहिए। इससे उनकी रचनाओ में भी मिठास आने लगेगी।' सच तो यही है कि प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही लेखन के क्षेत्र मे सफल होते हैं।

ये हैं कुछ टिप्स, यदि इन्हें ध्यान में रखकर लिखते रहेंगे तो काठ की कमल में कमाल पैदा हो सकता है।

मसिकर्मणे नमः

'लेखननिपुणा मसिकर्मार्याः' के अनुसार हम मसिकर्मार्य हैं। लिखना और बोलना हमारे जीवन के दो मिशन रहे है। इन्हीं दो विधाओं के बल पर हमने अब तक अपने हजारो ही प्रशसक बनाए हैं। अपनी वाणी के द्वारा जहाँ हम लोगों में जोश और उत्साह जगाते रहे हैं, वहाँ हमारी लेखनी अपने मन के भावों को प्रिय पाठको के हृदयों तक सम्प्रेषित करने का माध्यम रही है।

लिखना हमारे लिए स्वयं को व्यस्त बनाए रखने की एक तकनीक है। अंग्रेजी मे एक कहावत है–'An empty mind is a devil's workshop' अर्थात् खाली दिमाग शैतान की कार्यशाला है। निठल्ला बैठने से मन में व्यर्थ के ख्याल आते है और उनसे राग-द्वेष उत्पन्न होता है। किसी भी रचनात्मक कार्य मे सलग्न रहने से अनेक बुराइयो से बचा जा सकता है। उन पुरुषों की क्या प्रशंसा की जाए, जो अपने खाली समय में एक-दूसरे से बेसिर पैर की गपशप करते हुए अपना कीमती वक्त बर्बाद करते हैं। उनकी तुलना में वे महिलायें बहुत अच्छी हैं, जो ऊन-सलाई हाथ में लेकर स्वेटर आदि बुनती रहती हैं। इससे वे अनर्थदण्ड से बच जाती हैं। कुछ-न-कुछ लिखते रहना हमारे लिए अपने खाली समय का सदुपयोग ही है।

अब तक जितना या जो कुछ भी हम लिख सके हैं, उसने किस-किसको कितना प्रभावित किया, यह निर्णय करना हमारा विषय नहीं है। हमने तो 'कर्मण्येवाधिकारस्तु या फलेषु कदाचन' की भावना से ही लिखा है।

सन् 1956-57 के आस-पास हमारी आर्थिक स्थिति कमजोर थी। हमें 'अनट्रेण्ड ग्रेजुएट' के रूप मे केवल 60 रु. मासिक वेतन मिलता था। उससे घर का खर्च तो चल जाता था, किन्तु अन्य ऊपरी खर्चो के लिए पैसे नहीं बचा पाते थे। पूज्य पिताजी द्वारा बनवाए हुये घर की छतों का पटाव लकड़ी का था और उनमें दीमको ने घर बना लिया था। रात को कमरे में सोते समय वे शरीर पर टपकती रहती थीं। उन छतों मे लगी लकड़ियो को निकालकर लोहा-सीमेण्ट-मिश्रित नया पटाव कराना जरूरी हो गया था। उसके लिए हमारे पास रुपए नहीं थे। हमारे मित्र डा. रवीन्द्रकुमार जैन ने इसके लिए पाठ्यक्रम पर आधरित पुस्तकें लिखने की सलाह दी। उनकी प्रेरणा से उन दिनों हमने तीन पुस्तकें लिखीं–(1) **हिन्दी रचना कल्पद्रुम** (यह पुस्तक हाईस्कूल के छात्रों में बहुत 'पॉपुलर' हुई और सात-आठ वर्षो में इसके चार संस्करण छपे), (2) **हिन्दी रचना रश्मि** (जूनियर हाईस्कूल के छात्रों के लिए सामान्य हिन्दी की एक पुस्तक, जिसके दो संस्करण हुए) तथा (3) **हिन्दी व्याकरण प्रदीप**। इन पुस्तकों से जो आय हुई, उसका उपयोग हमने जीर्ण-शीर्ण मकान की मरम्मत में किया।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त जो भी लिखा, वह केवल सेवा-भावना से लिखा। प्रकाशन-व्यय तो किसी संस्था या समाज ने वहन किया, किन्तु थोड़ा-बहुत द्रव्य हमारी गाँठ का भी उनमें लगता रहा, जिसे हमने खुशी-खुशी ज्ञान-दान के रूप में अंगीकार किया। कुछ युवा साथियों से मिलकर हमने 'अनेकान्त प्रकाशन' के नाम से एक संस्था स्थापित की। उसके बैनर-तले जो पुस्तकें और ट्रैक्ट छपे, उनके नाम हैं–(1) **प्रवचनामृत** भाग 1-2-3 (आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के

[illegible]

फीरोजाबाद-वर्षायोग के प्रवचनों का संकलन), (2) **निजानुभव शतक** (आचार्यश्री की ही एक काव्य पुस्तिका का द्वितीय संस्करण), (3) **वैराग्य की परिधि पर घूमता एक आइना** (मुनि श्री सम्भवसागरजी का जीवन-परिचय), (4) **रत्नाकर शतक** (प्रसिद्ध कन्नड़ कृति का हिन्दी-अनुवाद) तथा (5) **बाहुबली-चरित** (कवि द्रोणाचार्य-रचित एक खण्डकाव्य)।

पूज्य आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी, मुनि श्री विमलसागरजी एवं राष्ट्रसन्त ऐलाचार्य विद्यानन्दजी महाराज के व्यक्तित्व और कृतित्व पर हमारे आलेख स्थानीय पत्रों में छपे थे, जिन्हें बाद में समाज के द्वारा ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित किया गया। हमारी अन्य प्रकाशित पुस्तिकायें हैं–(1) शाकाहार : एक आन्दोलन, (2) श्रावकाचार, सदाचार और शाकाहार, (3) मधुर स्मृतियाँ (पूज्य पिताजी के जीवन-प्रसंग), (4) चन्द्रप्रभ-वैभव (स्थानीय जैन समाज की लघु डाइरेक्टरी) एवं श्रद्धांजलि (नगर के वरिष्ठ कवि स्व. श्री मदनगोपाल सारस्वत की कविताओं का सकलन)।

जिन ग्रन्थो का हमने सम्पादन किया, उनके नाम हैं– फीरोजाबाद मे रानीवाला परिवार, शारदा के सपूत, भगवत् अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य महावीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थ, पण्डित-प्रवर पं. मक्खनलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ, स्व. जिनेन्द्रप्रकाश जैन स्मृति ग्रन्थ एवं प्रेरणा (स्व. बाबू जयकुमार जैन स्मृति ग्रन्थ)। सगम-पत्रिका के 'राष्ट्रकवि श्रीबल्लभ स्मृति अक' एवं 'न्यायाचार्य प. माणिकचन्द्र कौन्देय प्रशस्तिका' का सम्पादन भी हमने किया। इनका प्रकाशन मानसरोवर साहित्य सगम की ओर से हुआ था। 'अमृत' के आठ-दस अंकों का सम्पादन भी हमने किया है।

सर्व श्री पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य, डा. लालबहादुरजी शास्त्री, सेठ सुनहरीलाल जैन एवं प्रतिष्ठाचार्य प गुलाबचन्द्रजी 'पुष्प' की अनिर्वचनीय सेवाओ के उपलक्ष्य में अखिल दि. जैन समाज द्वारा प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थों मे भी सम्पादक के रूप में हमने अपने कर्तव्य का निर्वहन किया।

सन् 1983 से लगातार जैनगजट (महासभा के मुखपत्र) का सम्पादन करते हुए हमने अब तक दो सौ अग्रलेख लिखे हैं, जिनमें से कुछ का संकलन 'चिन्तन-प्रवाह' और 'समय के शिलालेख' के रूप में हो चुका है। इन्हें क्रमश: श्री भारतवर्षीय दि. जैन महासभा, लखनऊ एवं श्री दि. जैन पंचायत, गुवाहाटी (असम) ने प्रकाशित किया है। 'पद्मावती-सन्देश' मासिक (अ. भा. पद्मावतीपुरवाल पंचायत महासभा के मुखपत्र) का सम्पादन भी चार वर्षो तक पहले किया और अब भी प्रकाशित बुलेटिन के प्रधान सम्पादक के रूप में हमारा नाम जा रहा है। 'जैन संस्कृति' (मथुरा), 'वीर' पाक्षिक के शिक्षा-विशेषाक तथा 'युग परिवर्तन' साप्ताहिक (फीरोजाबाद) के बालश्रम विशेषांक के सम्पादन में भी हमारी मुख्य भूमिका रही है।

राष्ट्रीय 'दैनिक जागरण' के नगर-कार्यालय के प्रभारी श्री शैलेन्द्र गुप्त 'शैली' के आग्रह पर गत विधानसभा-चुनाव के समय हमने लगातार दस दिनों तक 'चुनावी तीर' स्तम्भ के अन्तर्गत 'बेसुरा' के छद्म नाम से व्यग्य-लेख भी लिखे, जिन्हे पाठको द्वारा खूब पसन्द किया गया। पन्द्रह-बीस पुस्तकों की भूमिकायें लिखने का सौभाग्य भी हमें मिला है। दस-बीस फोल्डर भी हमने तैयार किए, जिन्हें विभिन्न अवसरों पर प्रकाशित किया गया।

बस, इतना भर ही है हमारे मसि-कर्म का तुच्छ-सा इतिवृत्त, जिसका परिमाण समुद्र से निकली एक बूँद से अधिक नहीं है।

☐

गुरु के समीप समीचीन शास्त्रों का अध्ययन कर जो नित्य उपदेश प्रदान करते हैं, ऐसे जिनवाणी के चरणों के उपासक वे पुण्यात्मा विद्वज्जन सबका कल्याण करें।

उपसंहार

(साहित्यिक एवं सामाजिक सन्दर्भ)

समय असीम है और व्यक्ति ससीम। 70 वर्ष के जीवन की सभी घटनाओं को एक निश्चित क्रम में याद रखना एक कठिन कार्य है, फिर भी कुछ प्रसंग ऐसे होते हैं, जिन्हें कोई चाहकर भी नही भूल पाता है। प्रस्तुत आत्मकथ्य में हमने ऐसे ही कुछ प्रसंगों की चर्चा की है और उनमें से भी मुख्यत. उनकी, जिनसे नवोदित लेखको, वक्ताओं और शिक्षा-क्षेत्र से जुड़े हुए लोगों को कुछ प्रेरणा मिल सकती है। अब केवल दो और बिन्दुओं को स्पर्श करते हुए हम अपनी लेखनी को विराम देना चाहते हैं।

साहित्यिक वातायन से

सर्वप्रथम हम साहित्य से जुड़े, बाद मे धर्म और समाज से। नगर की प्रख्यात एवं प्रमुख साहित्यिक सस्था 'मानसरोवर साहित्य संगम' के सक्रिय अन्तरंग सदस्य हम प्रारम्भ से ही हैं। इसकी स्थापना नगर के यशस्वी कवि एवं साहित्यकार श्री उमेश जोशी ने सन् 1960 में की थी। श्री जोशीजी ने अतीत में एक कहानीकार एवं संवाद-लेखक के रूप में कार्य किया था। उन्होंने 'नदिया के पार' एव 'सिन्दूर' फिल्मों की पटकथा और संवाद लिखे थे। बाद मे 'मधुकर' और 'चादनी' मासिक का सम्पादन किया। वह स्वयं कोई संगीतज्ञ नहीं थे, किन्तु उनके द्वारा लिखित एक ग्रन्थ 'भारतीय सगीत का इतिहास' देश के कुछ विश्व-विद्यालयों के पाठ्यक्रम मे सम्मिलित है। आपकी कृति 'आप भी महान् बन सकते हैं' हिन्दी-जगत में खूब सराही गई थी। प्रयोगवादी शैली में वह कवितायें खूब लिखते थे– धड़ाधड़, बिना रुके, बिना डिगे।

नगर के व्यस्ततम डाकखाना–चौराहे पर स्थित एक दुकान में संगम का कार्यालय था। मसनद, गद्दों और धवल चादनी से वह सुसज्जित था। संगम के सदस्यों में कवि, लेखक, पत्रकार, शिक्षक, वकील, उद्योगपति, सासद और विधायक सभी तरह के लोग शामिल थे। सुसंस्कृत एवं सुरुचिसम्पन्न लोगों के जुडने-बैठने का वह नगर में एकमात्र स्थान था। सन् 1990 मे उसका त्रि-दशक समारोह मानया गया था। इन तीस वर्षो में यहॉ कितनी ज्ञान-गोष्ठियां हुई, इसकी गणना करना तो सम्भव नहीं है, किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि उस पर कोई भी बुद्धिजीवी गर्व कर सकता है। संगम को यदि एक वैचारिक आन्दोलन की सज्ञा दी जाए तो ठीक ही होगा।

यहॉ पर आयोजित ज्ञान-वार्तायें कई-कई दिनों तक चलती थीं और उनमे नगर तथा नगर से बाहर के मनीषियो के उद्‌बोधन कराए जाते थे। स्थानीय मनीषियों के अलावा यहाँ हिन्दी के अनेक मूर्धन्य हस्ताक्षरों, जैसे–सर्वश्री डा. हरिवशराय बच्चन, सोहनलाल द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा, वियोगी हरि, आनन्दशकर माधवन, श्रीकान्त जोशी, गोपालदास नीरज, सोम ठाकुर एव रूस के हिन्दी विद्वान् वारान्निकोव भी समय-समय पर पधारते रहे हैं। श्रद्धेय पं. बनारसीदास चतुर्वेदी सगम को नगर का साहित्यिक तीर्थ कहते थे।

यह नगर की एकमात्र ऐसी संस्था थी, जहॉ दैनंदिन की सम्पूर्ण गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रतिदिन लिपिबद्ध किया जाता था। तीस वर्षो की ऐसी उन्नीस पंजिकायें हैं, जिनमें इस अविराम यात्रा का पूरा रिकार्ड सुरक्षित है। एक दुर्लभ साहित्यिक दस्तावेज ही हैं ये पंजिकायें।

यहॉ के सभी प्रकाशनों एवं आयोजनो की संयोजना एवं संचालन का दायित्व सगम के मुख्य सचेतक एवं सचिव के नाते हम निभाते रहे हैं। श्रद्धेय जोशी जी के अवसान के बाद अब कार्यालय तो नहीं रहा, पर संस्था अभी भी सेवारत है। वर्तमान में हम उसके अध्यक्ष हैं। इस मानसरोवर में डुबकी लगाते हुए हमें समाधान, सन्तोष और सुखानुभूति का अनुभव होता रहा है। संगम के सदस्य 'राजहंस' कहलाते हैं।

आन्दोलन, जो इतिहास बन गए

किसी समाज में रहते हुए व्यक्ति को उसके हिताहित का ख्याल रखना पड़ता है। यदि कोई उसके स्वाभिमान को

वाचकवार, प्रवक्ता और दूसरों के प्रतारण में चतुर यह लक्ष्मी अपने अनादर के भय से ही मानों विद्वानों के पास नहीं आती, अतः निष्पाप हृदय, लोभ से अकुण्ठित बुद्धि वाले ये विद्वान् जयवन्त हों।

ललकारता है या उसके हितों को चोट पहुँचाता है तो असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। असन्तोष जब सीमा लाँघने लगता है, तब प्रतिक्रियास्वरूप लोग सड़कों पर उतरकर विरोध में अपनी आवाज बुलन्द करने लगते हैं। जो अनीति को देख-सुनकर भी शान्त बने रहते हैं और उनकी नस-नस नहीं फड़कने लगती है तो या तो वे कायर हैं या अकर्मण्य। समाज-धर्म का पालन न करने वालों के प्रति तुलसीदास ने ठीक ही लिखा है– 'सबसे भले विमूढ़, जिन्हें न व्यापहि जगत गति'।

हर समाज या संस्था को शासन-प्रशासन से यह अपेक्षा रहती है कि वह सभी लोगों के जान-माल की सुरक्षा करे, किसी के साथ भेदभाव न होने दे, अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुसार सभी को आगे बढ़ने के समान अवसर मिलें और उसके द्वारा शिष्टों का संरक्षण और दुष्टों का मर्दन होता रहे। सत्ता का दायित्व है कि वह इन अपेक्षाओं पर खरी उतरे। यदि वह कर्तव्य-पालन में चूकती या ना-नुकर करती है तो लोगों को एकजुट होकर उसे उसकी भूल का अहसास कराने के लिए सामने आना ही चाहिए।

समाज कभी स्वयमेव संगठित नहीं होता। उसे उसकी ताकत की याद दिलाने के लिए किसी-न-किसी को अगुआ बनना ही पड़ता है। बलशाली हनूमानजी को उकसाने के लिए जामवन्त को उनके सामने आना पड़ता था। एक बात अवश्य है कि पर-पीड़न के लिए किसी को उकसाना उचित नहीं है, किन्तु सामाजिक समरसता और न्याय की सुरक्षा के लिए उकसाने के औचित्य को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। हमें भी कई बार समाजरूपी हनूमान को जगाने के लिए जामवन्त की भूमिका निभानी पड़ी है।

पहले विरोधमूलक बगावत युद्ध के रूप में सामने आती थी और अब आती है सत्याग्रह के रूप में। युद्ध में तोप-तलवार का प्रयोग होता था और सत्याग्रह में अहिंसा के अस्त्र का अवलम्बन रहता है। युद्ध शरीर-बल से लड़े जाते हैं और सत्याग्रह आत्मबल से। यह नया तरीका हमें गांधीजी ने सिखाया है और इसकी प्रेरणा उन्हें जैनधर्म से मिली थी। युद्ध और सत्याग्रह दोनों में लोगों को समझाया जाता है कि मरने या हारने पर स्वर्ग और बचने या जीतने पर कीर्ति मिलेगी।

अब तक हम सात-आठ सत्याग्रहों का नेतृत्व कर चुके हैं और एकाध अपवाद को छोड़कर प्रायः सभी में सफलता मिली है। इनमें से कुछ आन्दोलनों की धमक तो इतिहास के पन्नों में अंकित हो गई है। ऐसे ही तीन आन्दोलनों की चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं।

जैन मेलाभूमि सत्याग्रह-1969 – नगर के एक उद्योगपति ने परम्परागत जैन मेलाभूमि पर लोहे के पाइपों की बाड़ लगाकर अनधिकृत कब्जा कर लिया था। उसके विरोध में जैन समाज ने एक शान्त जुलूस निकाला तो उसके गुर्गों ने उस पर पथराव शुरू कर दिया। कुछ लोग जख्मी हो गए। उनके वस्त्रों पर पड़े खून के छीटों को देखकर लोग भड़क उठे और उन्होंने रैलिंग (बाड़) को उखाड़कर फेंक दिया। प्रतिपक्ष ने बौखलाकर अनेक प्रतिष्ठित लोगों पर डकैती, मारपीट, आगजनी और हत्या के झूठे आरोप लगाकर उनके वारण्ट निकलवा दिए। एक-दो पकड़े गए और शेष भूमिगत हो गए। इस घटना से समाज में उत्तेजना फैल गई। जितना रोष जैनों में था, उतना ही जैनेतरों में भी था।

पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद सत्याग्रह-आन्दोलन करने का निश्चय किया गया। चूँकि हम एक अच्छे 'डिबेटर' (वक्ता) थे और लोगों में जोश पैदा कर सकते थे, इसलिए सत्याग्रह के संचालन का दायित्व हमें सौंपा गया। हमने भी समाज-धर्म और स्व कर्तव्य मानकर सहर्ष भाव से यह अनुरोध स्वीकार कर लिया।

आन्दोलन 'जेल भरो' के नारे के साथ शुरू हो गया। लोगों में जेल जाने की होड़ लग गई। आजादी के दीवानों की तरह लोग जेल जाने लगे। यह लहर पूरे आगरा मण्डल में फैल गई। हर नगर से सत्याग्रहियों के जत्थे आने लगे। कुल 280 लोग जेल गए, जिसमें महिलायें भी शामिल थीं। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा। सभी आरोपियों की जमानत हो गई। दस वर्ष तक मुकदमा चला और अन्त में सभी अदालत से ससम्मान बरी हो गए।

[illegible]

यदि यह आन्दोलन न चला होता तो समाज में 'मत्स्य-न्याय' चल पड़ता। बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती रहती। बलवान लोग निर्बलों को हड़काते रहते।

शिक्षक आन्दोलन-1969—माध्यमिक शिक्षक संघ, जो प्रदेश के लाखों शिक्षकों का सबसे बड़ा गैर-राजनीतिक संगठन है, ने सरकार की विसंगतिपूर्ण शिक्षा-नीति के विरोध में आन्दोलन करने की घोषणा कर दी। उनकी प्रमुख माँगें थीं— पूरे प्रदेश में समान शिक्षा-नीति (गरीब-अमीर के भेदभाव से मुक्त) लागू हो, समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाए तथा शिक्षा को उत्पादक मानकर केन्द्र की समवर्ती सूची में शामिल किया जाए। चूँकि पढ़े-लिखे वर्ग का प्रदेश में यह पहला आन्दोलन था, इसलिए जनता ने भी इसका खुले दिल से स्वागत किया। जब जत्थे जेल जाते तो जनता उन पर पुष्पवृष्टि करती।

फीरोजाबाद में इस आन्दोलन के संचालन का जिम्मा हमारे कंधों पर था। एक दिन ऐसा हुआ कि एक सत्याग्रही भाई ने ऐन वक्त पर बिना किसी वजनदार कारण के जेल जाने से मना कर दिया। वक्त था नहीं, जो दूसरे से कहा जाता कि वह जेल चला जाए। इस बात को यों ही हवा में उड़ा देने से आन्दोलन में कमजोरी आ सकती थी। अतः हमने तुरन्त एक निर्णय लिया और हम स्वयं बिना किसी से कहे-सुने जेल चले गए। एक पत्र छोड़ गए—'साथियो! अब हमारा रक्षाबन्धन तो जेल में मनेगा और अब जो बाहर हैं, यह उन्हें सोचना है कि आन्दोलन को जारी रखना है या नहीं?' हमने पत्र में यह अपील भी की—

'कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाटी हाथ
जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ'

पत्र ने आग में घी-जैसा कार्य किया। लोगों में जेल जाने का जुनून पैदा हो गया। पहले पाँच-दस के समूह में भाई लोग जेल जा रहे थे, अब कॉलिज की पूरी इकाई ने थोक में जेल जाने की ठान ली। कुछ ही दिनों में जेल की सभी बैरकें सत्याग्रहियों से ठसाठस भर गईं। उन दिनों फीरोजाबाद में जेल नहीं थी। आगरा जाकर गिरफ्तारियाँ देनी होती थीं।

हम एक माह तक जेल में रहे। सेण्ट्रल जेल की उसी बैरक में रहे, जिसमें कभी राममनोहर लोहिया को कैद में रखा गया था। जेल में हमने 'जैसे घर में, वैसे वन में' की राम-नीति का परिचय दिया। न कोई घबड़ाहट और न बाहर निकलने की उतावली। कुछ लोग जमानत पर छूटने का विचार करते तो हम उनका हौंसला बढ़ाते। उनसे कहते कि यदि सरकार बिना शर्त छोड़ेगी तो ही हम बाहर जायेंगे। जेल के कष्टों को शान्तिपूर्वक सहन करने को ही शास्त्रों में 'अकामनिर्जरा' कहा गया है। जनता का व्यापक समर्थन इस आन्दोलन को मिला। जेल में राजनेता और अभिभावक मिलने आते। कोई फलों से भारी टोकरी दे जाता तो कोई मिठाई का डिब्बा या मेवा का पैकिट। सब लोग मिल-बाँटकर खाते। हमने तो जेल मे भी पिकनिक का आनन्द लिया।

सगठन की शक्ति के सामने सरकार को झुकना पड़ा। संघ की अधिकांश माँगें मान ली गई और इस तरह सभी सत्याग्रहियों को बाइज्जत बरी कर दिया गया।

आन्दोलन की सफलता का प्रतिफल हमें यह मिला कि सन् 1970 के चुनाव में हमें निर्विरोध जनपदीय अध्यक्ष चुन लिया गया। जिम्मेदारी आ जाने से बाद में भी छोटे-बड़े आन्दोलनों में हम बराबर भाग लेते रहे। सन् 1977 में एक बार पुन. सर्वसम्मति से हमें जनपदीय अध्यक्ष का पद स्वीकार करना पड़ा। इस बार तो पूरी कार्यकारिणी गठित करने का अधिकार भी हमें सौंप दिया गया। ऐसा प्रथम बार ही हुआ।

जारखी मूर्ति-मुक्ति अभियान-1998—धर्म एवं उसकी आस्था पर की जाने वाली चोट सबसे गहरी होती है। मन्दिर, मूर्ति, महात्मा, माला और मन्त्र-इन पंच मकारों पर टिकी है भारतीय संस्कृति। ये जन-जन की आस्था के केन्द्र हैं। इनसे यदि कोई छेड़छाड़ करता है तो लोगों का हृदय चीत्कार कर उठता है, लगता है जैसे कोई बज्रपात हुआ है।

[illegible]

सन् 1998 की 3-4 जनवरी की रात को जारखी (थाना टूण्डला) के मन्दिर से 34 तीर्थंकर प्रतिमायें चुरा लीं गईं। सुबह पता चला तो हाहाकार मच गया। गाँव में चूल्हे नहीं सुलगे। लोग (स्त्री और पुरुष) अपने इष्टदेवों के वियोग में रो रहे थे। आसपास के शहरों और जिलों में रहने वाले लोग सुनते ही जारखी की ओर दौड़ पड़े। सभी का यह मत था कि मूर्तियों की चोरी ऐसे अपराधियों का कार्य है, जिन पर राजनीतिज्ञों का हाथ रहता है। ऐसे अपराधियों के सामने प्रशासन भी पगु और असहाय बना रहता है। अतः आवश्यक है कि प्रशासन पर दबाव बनाए रखा जाए। एक सशक्त आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया। तीन दिन के जप और अनशन के बाद टूण्डला-चौराहे पर कैम्प लगाकर धरना शुरू कर दिया गया।

10 जनवरी को मण्डलीय रैली का आयोजन किया गया। रैली ऐतिहासिक थी। पच्चीस हजार स्त्री-पुरुषों के अथाह जनसमूह और नौजवानों के आक्रोश को देखकर पुलिस के जवान भी सहमे-सहमे खड़े रहे। टूण्डला के बाजार अभूतपूर्व तरीके से बंद रहे। चाय-पान तक की दुकानें नहीं खुलीं। दीपा चौराहे पर जहाँ देखो, वहाँ काले झण्डे लहरा रहे थे। लोगों के आक्रोश और जोश को नियंत्रित करने में हमे भी पसीने आ रहे थे।

विधान सभा के चुनाव सन्निकट थे। संघर्ष समिति के अध्यक्ष के नाते हमने ऐलान किया कि यदि मूर्तियाँ बरामद नहीं होतीं तो जैन समाज का कोई भी व्यक्ति न चुनाव-प्रचार में जायेगा, न चुनाव के लिए चन्दा देगा और न वोट डालने जायेगा। चुनाव-बहिष्कार की इस घोषणा से राजनैतिक हलकों में खलबली मच गई। कुछ राजनैतिक दलों के लोगों ने भी जैनों को रिझाने के लिए चौराहे पर कैम्प लगाकर अनशन शुरू कर दिया। हमने चेतावनी दी कि सबका स्वागत है, किन्तु किसी को भी राजनैतिक रंग देकर जैन समाज की भावनाओं से खिलवाड़ करने का मौका नहीं दिया जाएगा। इसे कोई भी वोट की राजनीति से जोड़ने के कोशिश न करें।

आन्दोलन लम्बा चला। धरना पूरे एक महीने तक चलता रहा। चुनावी सरगर्मियाँ बढने लगी थी। कुछ अराजक तत्त्व अवसर का लाभ उठाकर टैम्पो बिगाड़ना चाहते थे। 17 जनवरी की रात्रि में निकाला गया मशाल जुलूस ऐतिहासिक था। उसका एक सिरा जब सुभाष पार्क पहुँचा, तब उसका दूसरा सिरा घण्टाघर के पास था। इस विशालता को देखकर प्रशासन भी हैरत में था। जब कुछ लोगों के असयमित होने की सूचना हमें मिली तो हमने गरजते हुए कहा—'मूर्तियाँ मिलें या न मिलें, किन्तु आन्दोलन के दौरान किसी भी प्रकार की हिसा की इजाजत नहीं दी जायेगी। जिन मूर्तियों से हमने अहिंसा की प्रेरणा ली, उन्हें हिंसा के बल पर पाने की हम सोच भी नहीं सकते।' तब जाकर लोग शान्त हुए।

चुनावी आपाधापी के कारण आन्दोलन को स्थगित किया। जुलाई में पुनः शुरू किया। मुख्यमंत्री कल्याणसिंह ने सी. बी. आई. जॉच के आदेश दिये। 25 अगस्त को मूर्ति-चोर 19 मूर्तियॉ, जो एक बोरे मे बन्द थीं, जारखी के पास ही किसी गड्ढे में डाल गए। शेष मूर्तियो का पता नहीं चला। मूर्तियों की बरामदगी के लिए इतना लम्बा संघर्ष कभी नहीं करना पड़ा। समाज ने जिस जोश-खरोश से इस लम्बे आन्दोलन में भाग लिया, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

सार-संक्षेप

आत्मचरित को द्रोपदी का चीर बनाने की इच्छा नहीं है। कहने के लिए तो अभी बहुत कुछ शेष है—शास्त्रि परिषद की गतिविधियों, महाकवि रइधू पुरस्कार, शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों आदि के बारे में—परन्तु ये सब बातें ज्यादा पुरानी नहीं है, समाचार पत्रों में छपती रही हैं और सबको ज्ञात हैं। यदि इनके सन्दर्भ में कुछ कहना ही होगा तो फिर कभी कहेंगे। अभी पुनरुक्ति दोष से बचना चाहते हैं। 'सार-सार को गहि रहें, थोथा देंय उड़ाय' के विनम्र निवदेन के साथ इस रामकहानी के ताने-बानों को हम साभार समेट रहे हैं।

☐

मलिन चित्त में ज्ञान और शील नहीं ठहर सकते हैं। जहाँ कषाय की उपस्थिति है, वहाँ ज्ञान और संयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है।

अन्तर्ध्वनि

'स्वारथ लाग करैं सब प्रीती
सुर-नर-मुनि सबकी यह रीती'

लोक-व्यवहार में प्रायः ऐसा ही देखा जाता है, किन्तु पश्चिम बंगाल महासभा, कोलकाता के सभी धर्मानुरागी तथा सम्पादक-मण्डल के सदस्यगण मिलकर राष्ट्रीय स्तर पर हमारे सम्मान में जो यह अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे हैं, उसके पीछे उनका निश्छल और निष्काम स्नेह ही प्रतिविम्बित हो रहा है। पूर्व जन्म का कोई प्रबल संस्कार ही प्रेरक निमित्त बनकर प्रकट हुआ होगा, ऐसा हम सोचते हैं।

हम यह भी जानते हैं कि ऐसे ग्रन्थों में स्नेहीजन ऐसी-ऐसी बातें लिख दत हे, जो उस व्यक्ति में होती ही नहीं। प्रस्तुत ग्रन्थ में हमारी भी प्रशंसा के पुल बाँधे गए होंगे। हम उनकी इन प्रशसाओं को इस रूप में देखना चाहेंगे कि वे हमारे भीतर जिन गुणों की कल्पना कर रहे हैं, वे एक दिन साकार हों। हम उनके इस सहज स्नेह की कद्र करते हुए उन्हें आश्वस्त करते हैं कि उनकी भावनाओं के अनुरूप बनने की कोशिश करेंगे। कविहृदय माननीय अटलजी के शब्दों में 'अभी तो हमें देर तक/दूर तक चलना है, कई मंजिलें पार करनी है।'

यथार्थ मे उम्र के इस पड़ाव पर बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। हमारा चिन्तन यह है कि जिस प्रकार कपड़े सुखाने में समय लगता है, भिगोने में नहीं या मकान बनाने में समय लगता है, गिराने में नहीं—उसी प्रकार ख्याति पाने में समय लगता है, गँवाने में नहीं। आप जब अपने स्नेह की लिफ्ट से हमें इतना ऊपर उठा ही रहे हैं तो इतना बल भी हमे दीजिए कि इस समय जहाँ हम हैं, यदि उससे ऊँचा न उठ सकें तो कम-से-कम नीचे भी न गिरने पायें। आपकी अहेतुक सद्‌भावनाओं से यह बल हमें मिल सकता है। सच्चे दिल से निकली शुभ कामना कभी निष्फल नहीं होती।

हर व्यक्ति गुण और दोषों का पिण्ड है, किन्तु गुण वही सार्थक हैं, जिनसे दूसरों को लाभ मिले और जिनसे केवल अपनी ही हानि हो, ऐसे दोष भी ठीक है। ऐसे दोषी ठोकर खाकर सँभल सकते हैं। हमें हमारे सन्तो ने यही सिखाया है-'दूसरो की अच्छी बातें देखो और कमियाँ अपनी देखो।'

जीवन को सुखी बनाने के लिए पाँच सूत्र हमारे और आपके सबके आचरण के अंग बनें, हमारी तो यही भावना है। ये सूत्र हैं :—

- खुशियों को समेटो नहीं, बाँटो। खुशियाँ बाँटने से बढ़ती हैं।
- किसी भी अच्छे कार्य को टालो मत और न उसे बेमन से करो। कार्य को बोझ मत समझो, उसमें दिलचस्पी लो। जहाँ भी तुम हो, पूरी तरह वहीं रहो।
- हमेशा ध्यान रखो कि आने वाला कल आज की अपेक्षा अधिक उल्लासपूर्ण होगा। अतः उसके अच्छे-से-अच्छे उपयोग की तैयारी करो।
- किसी भी कार्य को करने से पूर्व दस बार सोचो। योजना बनाकर चलने वाला एक-न-एक दिन अवश्य सफल होता है, कहा भी है—

'अच्छा-बुरा कुछ काम कीजै
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै
अच्छा न उसका परिणाम होगा
बिना विचारे यदि काम होगा'

धर्मनीति का आधार तो प्रेम, करुणा और वात्सल्य है। राजनीति कषाय के बिना चल नहीं सकती और धर्मनीति में कषाय का कोई काम नहीं।

– मन को निर्मल बनाओ और वह निर्मल बनता है सकारात्मक चिन्तन से। मन एक बर्तन की तरह है। साफ बर्तन में भरा पानी गन्दा नहीं होता, जबकि गन्दे बर्तन में गंगाजल भी अशुद्ध हो जाता है।

शरीर के बुढ़ापे को रोकना तो किसी के भी वश में नहीं है, परन्तु मन को हमेशा जवान बनाए रखा जा सकता है। अभी पिछले दिनों महामहिम राज्यपाल श्री विष्णुकान्त शास्त्री ने कहा है–'जो मनुष्य स्मृतिजीवी हो जाता है, बूढ़ा भी वही होता है। जो कृतिजीवी हो गया, वह कभी बूढ़ा नहीं होता'

हमारा भी यह संकल्प है कि कर्म में जियेंगे और जवान रहेंगे।

जिन्होंने हमें कदम-दर-कदम प्रोत्साहित किया और मन के वात्सल्य-रस से सराबोर किया, उन सभी सन्तों, सरस्वती-पुत्रों और समाज-प्रमुखों के हम जीवनभर ऋणी रहेंगे। ऐसे हमारे हितैषियों की संख्या इतनी अधिक है कि हम उनका नामोल्लेख कहाँ तक और कैसे कर पायेंगे। वे सभी सहृदय एवं संवेदनशील हैं। स्वयं समझ लेंगे कि हमारे मन में उनके प्रति कितनी श्रद्धा या आदर है।

मंगल कामना

जीवन्तु जन्तवः सर्वे,
क्लेश-व्यसन-वर्जिताः।
प्राप्नुवन्ति सुखं, त्यक्त्वा-
वैरं पापं पराभवम्।।

-नरेन्द्रप्रकाश जैन

□

प्राचार्य जी के व्यक्तित्व का रहस्योद्‌घाटन करती हुई जन्म-कुण्डली

भारत के भौगोलिक क्षितिज के 027° 09'' उत्तरीय अक्षांश तथा 078° 00'' पूर्वीय रेखांश पर अवस्थित पश्चिम उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध जनपद आगरा के अंचल में बसे हुए ग्राम-जटौआ में विक्रमी संवत् 1991 के प्रथम वैशाख मास के शुक्ल पक्ष त्रयोदशी दिन शुक्रवार की मध्यान्ह बेला मे घड़ी के अनुसार 1 बजकर 30 मिनट पर पद्मावतीपुरवाल दि. जैन जात्युत्पन्न विद्वान, प्रतिष्ठाचार्य, आदरणीय श्री पं. रामस्वरूप जी जैन के सुप्रतिष्ठित परिवार में सारस्वत मनीषी प्राचार्यश्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का जन्म हुआ।

प्राचार्य जी के जन्म समय, जन्म स्थल ग्राम जटौआ के पूर्वीय क्षितिज पर सिंह लग्न अपने पाँचवें अंश में उदित हो रही थी। इस उदित होती हुई जन्म-लग्न सिंह ने अपने प्रभाव से प्राचार्य जी के विचारों व आत्म-विश्वास को दृढ़ता प्रदान करते हुए उनके व्यक्तित्व को महत्वाकांक्षी तथा प्रभावशाली बनाया। सिंह लग्न में जन्म ग्रहण करने वाले व्यक्ति की शैली इतनी व्यंग्यात्मक व निर्भीक होती है, जो यदा-कदा सामने वाले के हृदय पर ठेस पहुँचाने वाली होती है तथा नेतृत्व शक्ति की प्रचुरता जातक को कुशल-प्रशासक व निर्देशक के रूप में सृजित करती है। सिंह लग्नोत्पन्न व्यक्ति अपनी प्रतिभा के कारण ही सम्मान का पात्र होता है। यशस्वी प्राचार्य जी की जन्म-दायिनी लग्न सिंह के विश्लेषित समस्त गुण उनके जीवन में प्रतिबिम्बित हैं।

[illegible]

ॐ श्री अकलंक ज्योतिष कार्यालय ॐ

कंचन कुटीर, एन.आर.कालेज रोड, टूण्डला

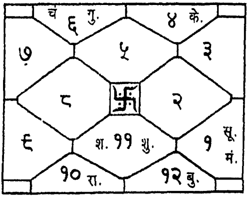
।। 卐 ।। नमोऽनेकान्ताय ।। श्री गणेशाय नमः ।। श्री अकलंकाय नमः ।। 卐 ।।

शुभ विक्रमी संवत् ।। १६६१ ।। श्री शकः ।। १८५६ ।। प्रथम वैशाख शुक्ला ।। १३ ।। त्रयोदश्या ।। शुक्र वासरे, तद्नुसार जन्म दिनांक : २७ अप्रेल १६३४ ई., जन्म-समय : मध्यान्ह १ बजकर ३० मिनट, जन्म-स्थान : आगरा जनपद अन्तर्गत जटौआ ग्राम, श्री सूर्यादयादिष्ट घट्य . ।। १६ ।। २२ ।। २२ ।। तत्समये श्रीमान्-विद्वद्वर्य श्री पं. राम स्वरूप जी जैन गृहे पाणिगृहीत्यां भार्यायां दक्षिण कुक्षौ पुत्र रत्नं अजीजनत् ।। हस्त नक्षत्रस्य ।। ३ ।। तृतीय चरणे जन्म।।

लग्न स्पष्ट ।। ४ ।। ४ ।। ०० ।। ०६ ।।

विंशोत्तरी चन्द्र महादशा भोग्य काल ५ वर्ष १० माह १० दिन

।। अथ जन्मांगमिदम् ।।



।। शुभम्-भूयासुः।।

प्राचार्यश्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन की जन्म-कुण्डली

[illegible]

अर्थ प्रधान इस युग में जीवन-यापन के लिए धन की परम आवश्यकता होती है। यह सुनिश्चित है कि आजीविका से धन तो मिलता ही है, किन्तु इस धन से भी अधिक महत्वपूर्ण है कि अर्थोपार्जन के साथ-साथ समाज में पद-प्रतिष्ठा, लोक-सम्मान व प्रशंसा की भी प्राप्ति सुलभ हो।

सौर-मण्डल में निरन्तर-गतिशील ग्रह ही जातक की आजीविका का निर्धारण करते हैं, जन्मांग इसका स्पष्ट दर्पण होता है।

प्राचार्य जी के जन्मांग में अर्थ भाव में अवस्थित वृहस्पति व चन्द्रमा को बुध धनेश लाभेश होकर पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। ज्योतिषीय परिप्रेक्ष्य में बुध शिक्षा, अध्ययन, अध्यापन, प्रवचन, लेखन, सम्पादन व प्रकाशन का कारक जाना जाता है, तो गुरू, ज्ञान तथा विवेक का प्रतीक और चन्द्रमा धन का। प्राचार्य जी के जन्मांग में यह योग बुद्धिपरक व्यवसाय का स्पष्ट संकेत दे रहा है। अतः यह ही वह सत्य व प्रामाणिक तथ्य है, कि वृहस्पति की विशोंत्तरी चन्द्रमा के साथ युति कर कर्म भाव को सम्पूर्ण दृष्टि से निहारे अथवा पंचमेश कर्म-भाव को पूर्ण दृष्टि से देखे, तो ऐसे योग का जातक बौद्धिककार्य से आजीविका का संचालन करता है। उपरोक्त योगों ने ही प्राचार्य जी के जीवन काल को एक यशस्वी अध्यापक के रूप मे व्यवस्थित किया।

श्री प्राचार्य जी के जन्माग में जन्म लग्नाधिपति सूर्य त्रिकोण भाव मे व्यवस्थित होकर एक श्रेष्ठ लग्नाधिपति योग का सृजन कर रहा है। ऐसा योग होने पर जातक कीचड़ में कमल की तरह खिलता हुआ, आत्मोन्नति करता है। इस योग ने प्राचार्य जी के जीवन को सुरभित, सुगन्धित व यशस्वी बनाया है। यह ही वह ज्योतिषीय कारण है, जिसके परिणाम स्वरूप शीर्षस्थ संस्थानों व अनेक स्थानो की जैन समाज ने उनकी श्लाघनीय प्रज्ञा व यशस्वी कृत्यों के लिए मानद उपलब्धियाँ व सम्मान-पत्र समर्पित कर स्वयं को गौरवान्वित किया।

प्राचार्य जी के जन्मांग में जन्म लग्नाधिपति सूर्य केन्द्रेश होकर त्रिकोण भावस्थ है तथा एक अन्य त्रिकोणेश व धर्म भावाधिपति मगल के साथ धर्म-भाव में ही युति कर रहा है। ज्योतिष की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठतम योग माना गया है, यथा–

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योग कारिता।
अन्य त्रिकोण पतिना सम्बन्धो यदि किं परम्।।
विद्वान राज्याधिकारी चेत् प्रददाति प्रजा सुखम्।
धर्माधिकारिसम्बन्धो यदि तस्य विशेषतः।।

स्पष्ट है, कि उपरोक्त योग ने ही प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन को एक अनुशासन प्रिय, सफल प्राचार्य, सगठन-क्षमता से परिपूर्ण, नेतृत्व गुण प्रधान, जैन-जगत की अनेक यशस्वी संस्थाओं के गरिमापूर्ण पदाधिकारी व संचालक तथा एक निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी के रूप में श्रृंगारित किया।

ज्योतिषीय ग्रन्थों व ज्योतिष पारंगत आचार्यो के मतानुसार वन में विचरण करने वाले परम वीतरागी दिगम्बर सन्तो का प्रतिनिधित्व "शनि" के द्वारा निर्धारित होता है।

विद्वान् प्राचार्य जी के जन्माग में "शनि" अपनी मूल त्रिकोण राशि में व्यवस्थित होकर अपनी सम्पूर्ण दृष्टि से लग्न व लग्नेश, धर्म भाव व धर्मेश तथा दो त्रिकोणाधिपतियों को निहार रहा है, अतः प्राचार्य जी का जीवन दर्शन-चिन्तन-सृजन व अभिव्यक्ति दिगम्बर जैन परम्परा व आगम सिद्धान्तों के अनुकूल व उससे परिपूर्ण रही है।

ज्योतिषीय नियमानुसार अष्टम भाव रहस्य-रोमांच अथवा अध्यात्म का भाव होता है। प्राचार्य जी के जन्मांग के अष्टम भाव में बुद्धि का कारक "बुध" व्यवस्थित है, जिसके प्रभाव से ही प्राचार्य जी को आध्यात्मिक रहस्य व रोमांच की गुत्थी भली-भाँति सुलझाने की अद्‌भुत क्षमता व बुद्धि-कौशल प्राप्त हुआ।

उत्तम क्षमा:- समदृष्टि एवं सहिष्णु बनना। सुख-दुख, हानि-लाभ, यश-अपयश, जय-पराजय आदि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में तटस्थ भाव रखना। क्रोध का त्याग करना।

बुद्धि व वाणी भाव का कारक बुध, अध्यात्म भाव में अवस्थित होकर वाणी-भाव में स्थित धर्मकारक वृहस्पति व मन-कारक चन्द्रमा तथा अपने ही वाणी भाव को अपनी पूर्ण उच्च दृष्टि से देख रहा है, यह ही प्राचार्य जी के व्यक्तित्व का मूल रहस्य है कि वह, श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर देने वाले, हृदय-तलस्पर्शी, प्रतिभा से सम्पन्न, तर्क-प्रवीण, प्रभावक तथा ओजस्वी विशिष्ट वक्ता हैं।

वाणी-भूषण, व्याख्यान-वाचस्पति, विद्या-वाचस्पति, व्याख्यान-केसरी, सिद्धान्त-रत्न तथा समाज-विभूषण आदि मानद उपाधियों से अलंकृत व सुशोभित प्राचार्य जी का जीवन उनकी जन्म कुण्डली में अवस्थित जन्मकालीन ग्रहों की ही देन है। इसका रहस्योद्घाटन उनकी जन्म कुण्डली ने कर दिया है, जिसमें मूल रूप से उनके वाणी भाव में अवस्थित "गज-केसरी" योग तथा जन्म-लग्न सिंह की भूमिका प्रमुख है।

प्राचार्य जी के जन्म समय चन्द्रमा तथा वृहस्पति ने एक ही स्थान मे युति कर उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को अपूर्वता प्रदान कर प्रशस्त गुणों को प्रत्यारोपित किया है।

यथा–

गज-केसरी संजातः तेजस्वी धन्य धान्यवान्।
मेधावी गुण सम्पन्नो राज्य प्राप्ति नरो भवेत्।।

प्राचार्य जी के जन्मांग में "शशक" योग दृष्टिगत है। यह योग पंच महापुरुष लक्षण मे से एक योग है। इस योग में जन्म-ग्रहण करने से जातक प्रख्यात व प्रभावशाली होता है। इस योग का नायक शनि जन्मांग में अपनी मूल त्रिकोण राशि कुम्भ में केन्द्रस्थ होकर प्राचार्य जी को कीर्तिदायक-सुख्याति अर्जित राज योग प्रदान कर रहा है।

जन्म-कुण्डली में "यश व कीर्ति" योग का अपना एक विशिष्ट महत्व है। जीवन मे यदि यश नहीं तो मनुष्य का जीवन व्यर्थ है, परन्तु इस भौतिक संसार में निर्मल यश की प्राप्ति अति दुर्लभ व दुष्कर कार्य है। इसी प्रकरण में महाकवि तुलसीदास जी ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है–"हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, विधि हाथ" इससे स्पष्ट है कि संसार का प्रत्येक प्राणी पूर्व जन्म के संचित पाप और पुण्य के अनुसार ही इस जन्म में शुभ-अशुभ फल प्राप्त करता है, जिसका सकेत जन्म-कुण्डली के द्वादश भावों मे अवस्थित ग्रह-स्थिति के द्वारा पूर्व मे ही मिल जाता है।

ज्योतिषीय दृष्टिकोण से यशस्वी बनने के लिए धन-योग, राज-योग एवम् कीर्ति-योग का परस्पर सम्बन्ध होना तो आवश्यक है, परन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि भी नहीं कि निर्धन व्यक्ति कभी भी यशस्वी नहीं होता।

ज्योतिर्विज्ञान के नियमानुसार जन्म-कुण्डली का तृतीय भाव पराक्रम, मान-प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति, शौर्य व साहस का द्योतक व परिचायक है तथा इस भाव का कारक ग्रह "मगल" होता है।

दशभ भाव से भी मान-सम्मान-प्रतिष्ठा व कीर्ति-लाभ का विचार किया जाता है। इस दशम भाव का कारक सूर्य, गुरू, बुध व शनि को माना गया है।

यशस्वी प्राचार्य जी के जन्मांग में तृतीय व दशम भाव का स्वामी शुक्र है, दशम भाव का कारक शनि अपनी त्रिकोण राशि कुम्भ में उपरोक्त शुक्र के साथ व्यवस्थित होकर लग्न को पूर्ण रूप से प्रभावित कर रहा है, जिसके प्रभाव से प्राचार्य जी के जन्मांग में एक "यशस्वी शिखर पुरूष" तथा श्रेष्ठ "कीर्ति" योग का सृजन हो रहा है। जन्मांग में समाहित उपरोक्त योगों के ही कारण अखिल भारतीय स्तर पर प्राचार्य जी का भव्य सम्मान करने तथा उनके व्यक्तित्व कर्तृत्व का ज्ञापक एक भव्य अभिनन्दन ग्रन्थ उन्हें समर्पित करने का निर्णय लिया गया। सूक्ष्म ज्योतिषीय गणनानुसार उपरोक्त अखिल भारतीय अभिनन्दन करने का यह निर्णय दशम भाव के कारक बुध की महादशा में बुध की अन्तर्दशा में मूल त्रिकोण

दशम सार्थक:- परिणामों को कोमल बनाना, कठोर व्यवहार एवं अहंकार का त्याग करना। सबके प्रति यथोचित आदर-सत्कार का भाव रखना। अपमान तो किसी का भी करना ही नहीं।

राशिस्थ शनि की प्रत्यन्तर्दशा में दिनांक 15 अप्रेल सन् 2002 ई. को लिया गया तथा इस प्रशस्त निर्णय का कार्य रूप परिणमन बुध की महादशा में कीर्ति-योग के जनक शुक्र की अन्तर्दशा व शुक्र की ही प्रत्यन्तर्दशा में दिनांक 25 दिसम्बर सन् 2003 ई. को कलकत्ता में एक भव्य समारोह में सम्पन्न होगा।

"मंगल-कामना"

यावन्मेरुर्धरा पीठे यावच्चन्द्र दिवाकरौ।
तावन्नन्दतु बालोऽयं यस्यैषा जन्म पत्रिका।।

— पाण्डेय वीरचन्द्र जैन, ज्योतिषाचार्य, टूण्डला

□

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी : परिवार-परिचय एवं परिजनों की उनके प्रति धारणा

लेखिका का यह निजी अभिमत है कि आदरणीय प्राचार्य जी के बारे में जानने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि जो एक बार उनसे मिल लेता है वह उनके व्यक्तित्व के बारे में भली-भाँति परिचित हो जाता है। उनसे मिलकर व्यक्ति स्वय ही श्रद्धानत हो जाता है। उनका व्यक्तित्व जितना सादा है 'कृतित्व उतना ही महान और भव्य' इसलिए मेरे मन में यह कौतुहल जागा कि जिनको पूरा देश जैन जगत के गौरव के रूप में मानता और जानता है, उनके प्रति परिजनों की धारणा क्या और कैसी है? इसी जिज्ञासा को लेकर मैं उनके परिवार से मिली, उनसे मिलकर परिवार की जो जानकारी मुझे मिली, वह यहाँ प्रस्तुत है।

प्राचार्य जी के परिवार में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरीदेवी, तीन पुत्रियाँ क्रमशः प्रतिभा जैन, कल्पना जैन, व नीरू जैन है। तीनों ही उच्च शिक्षा प्राप्त एवं अपने संस्कारित माता-पिता से सम्यक् संस्कार लेकर पली-बढ़ी एक आदर्श गृहणी का दायित्व निर्वहन करते हुए तीनों अपने गृहस्थ जीवन में सुखी और सम्पन्न हैं। उनके तीनो पुत्र क्रमशः भुवनेन्द्र जैन, उपेन्द्र जैन तथा जिनेन्द्र जैन उच्च शिक्षा प्राप्त शादीशुदा व अपने-अपने निजी व्यवसाय रत हैं। इन पंक्तियों की लेखिका ने उनके परिवार से मिलकर प्राचार्य जी के प्रति उनके विचार जानने का तथा यहाँ उन्हें क्रम से प्रस्तुत करने का यह कार्य आमने-समाने बातचीत के माध्यम से प्राप्त कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरीदेवी जैन - उनकी धर्मपत्नी से उनके पैतृकगृह के बारे में चर्चा करने पर उन्होंने कहा कि उनके पिता एटा निवासी स्व. श्री जयकुमार जी जैन व माता स्व. श्रीमती कस्तूरीबाई जैन दोनों ही सरल और धार्मिक परिणामी थे। वह एटा में ही ऐलोपेथिक दवाओं (मेडीकल स्टोर) का व्यवसाय करते थे।

वह स्वयं अपने माता-पिता के 6 पुत्र 6 पुत्रियों में सबसे बड़ी थीं। उनका जन्म 8 नवम्बर 1936 को हुआ था। उस समय के चलन के अनुसार उनकी शिक्षा हुई। धार्मिक संस्कार उन्हें अपने माता-पिता से पैतृक धरोहर के रूप में प्राप्त हुए। सन् 1952 में वह वैवाहिक बंधन में बंधकर अपनी ससुराल आ गईं। जब लेखिका ने उनसे प्रश्न किया कि क्या विवाह-पूर्व आपने एक दूसरे को देखा था? तब उन्होंने हँसकर कहा कि उस समय यह सब चलन ही कहां था? तब तो परिवार के

उत्तम-आर्जव:- मन-वचन-कार्य की सरलता अर्थात् अच्छा सोचना, अच्छा बोलना और अच्छा कार्य करना, छल-प्रपंच से बचना तथा न्याय व ईमानदारी से जीवन-यापन करना।

प्रमुख लोग ही बच्चे-बच्चियों के भावी जीवन का निर्णय करते थे। उनसे मैंने पुनः पूछा कि आपके मन में देखने या जानने की कुछ जिज्ञासा तो रही होगी? तब उन्होंने कहा कि नहीं, ऐसा कुछ नही था। घर में होती चर्चाओं से यह तो पता चल ही गया था कि उनके लिए जिस जीवन साथी का चुनाव किया गया है, वह जटौआ ग्राम के सम्माननीय पंडित-परिवार के श्री पं. रामस्वरुप जी जैन प्रतिष्ठाचार्य के इकलौते सुपुत्र हैं। नाम नरेन्द्रप्रकाश जैन है। वर्तमान में "इण्टर" में अध्ययन रत हैं, साथ ही कुशाग्र-बुद्धि और प्रतिभावान हैं। यह जानकारी भी उस काल में अत्यधिक थी, अन्यथा तब तो लड़का-लड़की को पता भी नही चल पाता था कि उसके भविष्य का क्या निर्णय हो रहा है। वर्तमान में लड़के या लड़कियाँ अपना जीवन साथी देख-परख कर चुनते हैं। यह परिवर्तन आपको अब कैसा लगता है? उत्तर में उन्होंने कहा कि आजकल के समय में ठोंक-बजाकर सम्बन्ध होने पर भी जीवन तनावपूर्ण देखे जाते हैं, और यह तनाव कभी-कभी सम्बन्ध विच्छेद तक पहुंच जाता है, जबकि हमारे समय के सम्बन्ध परस्पर संस्कारों के आधार पर तनाव रहित देखे जाते थे। यह अंतर तो आज प्रत्यक्ष देखा और समझा ही जा सकता है। ससुराल में सभी का प्यार और स्नेह मिला। उन्होंने बताया कि प्राचार्य जी के छोटे या बड़े कोई सहोदर भाई नही थे। उनसे छोटी उनकी तीन बहनें क्रमशः शशिप्रभा, सोमप्रभा व चन्द्रप्रभा थीं। इनमें से शशिप्रभा का विवाह उनके विवाह से पूर्व हो गया था। दो हमउम्र ननदों के चलते उन्हे ससुराल में कभी अकेलापन नही लगा। विवाह के 6 माह बाद ही प्राचार्य जी का चयन श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में हो गया। चयन के पीछे इनके विद्यार्थी जीवन की इनकी प्रखरता ही प्रमुख कारण थी। इनके चयन से अन्तरंग प्रसन्नता का होना स्वाभाविक था। वैवाहिक बन्धन में बँधकर या शिक्षक होने पर भी इनकी आगे की शिक्षा या अन्य गतिविधियाँ कभी प्रभावित नहीं हुई। वे अपनी शिक्षा और अन्य सामाजिक या विद्यालय से जुड़ी गतिविधियों को सुचारु रूप से आगे बढ़ाते रहे और आज इस मुकाम पर हैं। जैसे जैसे लोगों को प्रभावित करने की व नेतृत्व की क्षमता का विकास होता गया, लोगों की अपेक्षाऐं भी इनसे बढ़ती गई। सभी को साथ लेकर चलने के इनके गुण विशेष के चलते कभी किसी ने विरोध में स्वर ही नहीं उठाया। दो बार शिक्षक संघ के निर्विरोध अध्यक्ष चुने गये। शिक्षक आन्दोलन में जेल-यात्रा भी करनी पडी। सामाजिक दायित्त्व का निर्वाहन करते हुए जैन मेला भूमि आन्दोलन, मैनपुरी जारखी व अन्य स्थानों के दिगम्बर मन्दिरो से मूर्तियों के चोरी होने पर या अन्य सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु समाज इनसे नेतृत्त्व और निराकरण की अपेक्षा करता था तथा आज भी करता है और इन्होने इस दायित्त्व का सदैव निर्वाह किया है।

यह पूछे जाने पर कि जैन गजट के सम्पादन के साथ-साथ अन्य पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन तथा समीक्षा लेखन व सामाजिक धार्मिक गतिविधियों में व्यस्त रहते हुए वह घर परिवार के दायित्त्व निर्वाह से विमुख रहे होगें? उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा नहीं है। इस सबके साथ ही उन्होंने अपने परिवार के दायित्त्व का सदैव सम्यक् निर्वाह किया है और आज भी करते हैं। उनकी सामाजिक-धार्मिक व्यस्तता के चलते उन्हे घर से दूर रहते समय भी मुझे या बच्चों को कोई तनाव या असुविधा नहीं रही। हम सब विचार करते हैं कि उनकी प्रतिभा गुण की देश समाज को हमसे कहीं अधिक आवश्यकता है, और उन पर समाज का अधिकार भी हमसे अधिक है।

उन्होंने कहा कि मैं विचार करती हूँ कि इन जैसा जीवन साथी मिलने से ही मुझे जीवन में जो अवसर मिले, वह सामान्यतया मिलना दुर्लभ ही थे। इनका साथ मिलने पर ही तो मुझे सभी पूज्य आचार्यों, मुनिराजों, आर्यिका माताओं के इतनी निकटता से दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त हुऐ, देश के अनेक स्वनामधन्य विद्वानों के घर आने पर उनके आतिथ्य का सौभाग्य मिला और सभी तीर्थो के दर्शन लाभ का अवसर प्राप्त हुआ। यह सब कुछ आज जीवन की अमूल्यनिधि की तरह मेरे पास सुरक्षित है।

उनसे अन्तिम प्रश्न इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बारे में करते हुऐ पूछा कि इसके प्रकाशन पर आपको कैसा लग रहा है? उन्होंने सहजता से कहा कि अच्छा लग रहा है। उनके अनुसार यह व्यक्ति की नहीं, गुणों की पूजा है और यह हमारी सांस्कृतिक विरासत है। हमारा देश, समाज सदैव गुण-पूजक रहा है।

[illegible]

भुवनेन्द्रकुमार जैन - प्राचार्य जी के बड़े सुपुत्र भुवनेन्द्रकुमार जैन ने एम.कॉम तक शिक्षा ग्रहण की है। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी जैन एटा निवासी श्री चेतनस्वरूप जी एवं श्रीमती इन्द्राणी जैन की सुपुत्री हैं। वह एक शिक्षित, सुसंस्कारित गृहणी हैं। इनके दो पुत्र चि. अखिल व चि. निखिल क्रमशः बी.एस-सी. प्रथम वर्ष व इन्टर के छात्र हैं। भुवनेन्द्रकुमार काँच के गिफ्ट आइटम का एक्सपोर्ट का व्यवसाय करते हैं।

उपेन्द्रकुमार जैन - द्वितीय पुत्र (मझले) बी.कॉम तक शिक्षा ग्रहण कर अपने व्यवसाय जनता प्रोवीजनल स्टोर व एस.टी. डी. केन्द्र के संचालन में कार्यरत हैं। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सगीता जैन आगरा निवासी श्री महावीरप्रसाद जी एवं श्रीमती सरोज जैन की पुत्री हैं। श्रीमती सगीता जैन सुशिक्षित, संस्कारित व सदैव प्रसन्नचित्त रहने वाली एक कुशल गृहणी हैं। इनकी दो पुत्रियाँ आयुष्मती शिप्र और स्वाती क्रमश इन्टर प्रथम वर्ष व नवमी में अध्ययन करती है। दो पुत्र अनुज 10 वर्ष व अम्बुज 8 वर्ष के हैं।

जिनेन्द्रकुमार जैन - प्राचार्य जी के छोटे पुत्र जिनेन्द्रकुमार जैन बी.कॉम तक शिक्षित हैं। अपने नमकीन उद्योग के साथ व्यवसाय में रत हैं। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सीमा जैन बरहन निवासी श्री मूलचन्द जी एवं श्रीमती सरोज की पुत्री हैं। पढ़ी-लिखी, मृदुस्वभावी और सेवाभावी गृहणी हैं। इनकी एक कन्या श्रुति है।

प्राचार्य जी के तीनों पुत्र और पुत्र-वधुओं से लेखिका ने अलग-अलग साक्षात्कार में चर्चा की और उनके प्राचार्य जी के प्रति विचार जानने का यह कार्य किया। उनके प्रति सभी के विचार समान रूप से एक जैसे ही थे। उनमे कहीं मतभिन्नता नहीं थी। तीनों पुत्रों और पुत्र-वधुओ ने अपने पिता और पिता तुल्य ससुर जी के प्रति बड़े आदर और कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हुये उन्हे अपना प्रेरणा स्रोत बताया। सभी ने कहा कि वह सरलस्वभावी मृदुभाषी हैं और सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं, उन्हे तनावपूर्ण वातावरण पसन्द ही नहीं है। हम सभी उन जैसा पिता व पिता समान ससुर पाकर गौरवान्वित हैं। सभी ने कहा कि उन्होंने अपनी पसद कभी हमारे ऊपर नही थोपी। हम सभी को अपनी इच्छानुरूप कार्यक्षेत्र चुनकर कार्य करने की प्रेरणा ही सदैव दी। उनका आदर्श और सादा जीवन हमे सदा प्रेरणा प्रदान करता है।

उनके पौत्र और प्रपौत्री भी इस चर्चा में भागीदार थे। वह उन्हे बाबू कहते हैं। उन सभी का कहना है कि हमारा तो उनके साथ कुछ अपना अलग ही व्यवहार है। जो कार्य हम हमारे माता-पिता से नही करा पाते, वह उनसे जिद करके करा लेते हैं। हमे अपनी जिदें उनसे पूरी कराना बहुत अच्छा लगता है। बच्चों की बात सुनकर ऐसा लगा कि बाहर में भले ही कोई कितना ही प्रतिष्ठित व आदरणीय क्यों न हो, पौत्र-पौत्रियों के लिए तो वह मित्रवत् ही होता है, तभी शायद कहा जाता है कि मूल से ब्याज अधिक प्रिय होता है।

इस साक्षात्कार के समय उनकी तीनो पुत्रियां यहॉ उपलब्ध नहीं थीं, अतः उनके विचार जानने का अवसर मुझे नही मिला। आदरणीय प्राचार्य जी के लिए मैं स्वय तो कुछ लिखने का साहस भी नही कर सकती हूँ। अतः उन्हे सादर प्रणाम करते हुए अपने लिए उनके आशीर्वाद की ही कामना करती हूँ।

— रचना जैन-एम.ए.बी.एड.
सुपुत्री- श्री उमेश जैन
नई बस्ती, फिरोजाबाद

□

उत्तम ब्रह्मचर्य:- अपने निष्कलंक एवं निर्विकल्प आत्मस्वरूप की उपलब्धि। नारी सम्बन्धी वासनाओं एवं दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करना।

धर्म और समाज

(– पं. विनोदकुमार जैन द्वारा दि. 14-4-2002 को कोलकाता में लिया गया साक्षात्कार)

पं. विनोद – समाज-सेवा एव धर्म के क्षेत्र में आने की प्रेरणा एवं रुचि आपको कैसे हुई?

प्राचार्य जी – यथार्थ में हमने जब स्कूली जीवन समाप्त किया और शिक्षक हो गये तो सन् 54/55 में एक ऐसा अवसर आया, जब फिरोजाबाद में पर्यूषण पर्व पर कोई विद्वान सुलभ नहीं हुआ। फिरोजाबाद मे तीन-चार विद्वान थे, वे बाहर चले गये। हम चूकि छात्र जीवन में वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहे तो लोगो ने हमसे आग्रह किया कि आप प्रवचन करें। चूँकि धार्मिक प्रवचन करने का पहले कोई अभ्यास नहीं था तो काफी परिश्रम किया, कॉलेज से दस दिन पहले छुट्टी ली, अध्ययन किया और उसके बाद बोलना शुरू किया। लोगों से बहुत प्रशंसा मिली। लोगों ने काफी शाबासियाँ दी, तो रुचि बढ़ गई। फिर धीरे धीरे इस दिशा में स्वाध्याय शुरू हुआ। आचार्य विद्यानंद जी और आचार्य विद्यासागर जी का चातुर्मास हुआ। पं. माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य हमारे कॉलेज में धर्मशिक्षण करते ही थे। इन सबके साथ बैठकर इस क्षेत्र में रुचि बढ़ती गई।

पं. विनोद – आपने इस क्षेत्र में किसे आदर्श मानकर कार्य किया?

प्राचार्य जी – एक तो फिरोजाबाद में पं. श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री बहुत प्रामाणिक रूप से बोलते थे। उनको हम बराबर सुनते रहते थे तो प्रेरणा मन में आती थी कि हमें भी इसी प्रकार से बोलने का अभ्यास करना चाहिए, ताकि लोगों पर उसका असर पड़ सके। दूसरे आ विद्यानद जी महाराज एक बात हमसे कहा करते थे कि बहुत जानना उतना महत्वपूर्ण नही है, जितना महत्वपूर्ण ये है कि जितना तुम जानते हो उसे दूसरे के गले उतार सको। तो उसी दृष्टि से हमने तैयारियॉ शुरू कीं। विद्वानों में पं सुमेरचन्द्र जी दिवाकर की सारी पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला और उनका बहुत अच्छा प्रभाव चित्त पर रहा। इस तरह धीरे-धीरे इस क्षेत्र मे प्रेरणा मिलती गई।

पं. विनोद – इस क्षेत्र में कार्य करने से आपको कुछ खट्टे-मीठे अनुभव हुए होंगे, इनमें से कुछ ऐसे अनुभव बताये जिनसे आपको कुछ शिक्षा मिली हो?

प्राचार्य जी – ऐसे कोई खट्टे-मीठे अनुभव तो नहीं हुये, क्योंकि प्रारम्भ से ही हमारी ये नीति रही है कि हमने एक तरह से ये प्रतिज्ञा अपने मन में कर ली थी कि हम कहीं याचना नहीं करेंगे। तो हमारे सामने इस तरह की कोई दिक्कत नहीं आयी। जब दूसरे विद्वानों की शिकायतें हमारे सामने आयीं कि उन्होंने लिफाफा फेंक दिया या पैसों के लिए इतना विवाद किया कि सबका जी खट्टा हो गया, तो इन बातों से जरूर तकलीफ होती रही। लेकिन जहॉ तक हमारा व्यक्तिगत जीवन है, हमें इस तरह का कहीं सामना नहीं करना पड़ा और न कहीं कोई असंतोष किसी के मन में प्रकट हुआ। हॉ कुछ सामाजिक कार्य करने में दिक्कतें जरूर आयीं कि सयत और शिष्ट भाषा में भी लेख जब हम जैन गजट में लिखते हैं तो उस पर चार मुकदमें अब तक कायम हुये तो उसके कारण लगा कि समाज का हाजमा कमजोर है और वह स्वतंत्र अभिव्यक्ति को सुनने तक के लिए तैयार नहीं है। ये सब चला लेकिन उन सब में कुछ हुआ नहीं, वह मुकदमे सब ठप्प हो गये। उनका एक ही उद्देश्य था कि विद्वान को किसी तरह से हैरान करो, ताकि वह लिखना भूल जाए।

पं. विनोद – समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए आपको कहीं जूझना भी पड़ा हो, ऐसा अवसर आया?

प्राचार्य जी – एक तो कई आन्दोलनों में हमें हिस्सा लेना पड़ा, जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। हमारे यहाँ जैन मेला भूमि पर एक पार्टी ने कब्जा कर लिया था। उसके खिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन चला उसका नेतृत्व करने का अवसर मिला। जहाँ तक पहली बार जैनसमाज में 40/45 महिला एवं 250 के करीब पुरुष जेल गये तो इन कारणों से ये सब संघर्ष तो कई करने पड़े। साधु शिथिलाचार के विरोध में कई बार लिखा, उसकी प्रतिक्रियायें अनुकूल भी हुई, प्रतिकूल भी हुईं, संघर्ष की स्थितियॉ

क्षमा एवं मैत्री का संदेश मानव मात्र तक पहुँचाया जा सके तो आपसी कलह एवं युद्धों से होने वाली क्षति को रोका जा सकता है।

भी आती रहीं, लेकिन कुल मिलाकर स्थिति ये ही रही की प्रबुद्ध वर्ग में थोड़ी चेतना रही लेकिन जनसामान्य में आज भी अन्धश्रद्धा बहुत गहरी है। उस अन्धश्रद्धा को हटाना बड़ा मुश्किल काम है, जब तक कोई पूरी सस्था इसके पीछे न हो।

पं. विनोद – इन सब संघर्षो के बाद समाज ने आपको क्या दिया?

प्राचार्य जी – समाज ने प्रेम दिया, सद्भाव दिया। समाज से हमें कोई शिकायत नहीं, जितना सम्मान मिलना चाहिए समाज की ओर से हमेशा मिलता रहा। शिकायत तो वहाँ होती है जब हम समाज से अर्थ की अपेक्षा करते हैं और उसमें कमी रहती है तो शिकायत होती है, लेकिन आज अर्थ के मामले में हम तो ये पा रहे हैं कि जो पहले के विद्वज्जन थे, उनकी तुलना में आज ज्यादा पुरस्कार मिल रहे हैं। अनेक सम्मान मिल रहे हैं। लिफाफा भी भारी मिलता है। ऐसी आज कोई समस्या नहीं है, इसलिए समाज के प्रति कोई शिकायत नहीं।

पं. विनोद – आपने समाज को पास से देखा है, आज समाज को किस चीज की आवश्यकता है, कैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है?

प्राचार्य जी – समाज में सबसे पहली आवश्यकता है कि अपने महोत्सवों को सादगी से मनायें। हमारे महोत्सव बहुत मंहगे हो गये हैं। बहुत पैसा रागरंग और मनोरंजन के कार्यक्रम में समाप्त हो जाता है। ठोस रचनात्मक कुछ नहीं हो पाता। पैसा बचाकर उससे शिक्षण संस्थायें, चिकित्सालय खोलें। जहाँ जहॉ हमारे तीर्थक्षेत्र है, जहॉ जैनियों की सख्या कम और जैनेतर समाज अधिक है। वहाँ अगर हम लोक सेवा के कार्य करेगें तो उनकी सहानुभूति उस क्षेत्र के प्रति, जैन धर्म के प्रति उत्पन्न होगी। वह कार्य हमारे यहॉ नहीं हो रहा है। हमारी ये जो संकीर्णतायें हैं, वह केवल जात-विरादरी और एक सीमित दायरे में संकुचित होकर चल रहीं हैं। उससे सगठन का जो स्वरूप निखरकर आना चाहिए, वह नहीं आ रहा है। इस दिशा में बहुत कार्य करने की जरूरत है।

पं. विनोद – हमें लगता है बहुत कार्य हो रहा है फिर भी सफलता नहीं मिल पा रही है, क्या कारण है?

प्राचार्य जी – जितने भी कार्य हो रहे हैं वो सब कैसे कार्य हो रहे हैं! पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में आज भी श्वेताम्बर समाज और टोडरमल स्मारक भवन वालों से हम बहुत पीछे हैं। जो भी ग्रन्थ छप रहे हैं, वह साधुओं के प्रवचन छप रहे हैं। उनमें कोई मौलिकता नही है। ऐसा साहित्य तो छप रहा है। इसके लिये तो समाज के पास पैसा है लेकिन जो विद्वान हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित किया है उनकी हस्तलिखित पुस्तकें पड़ी हैं, उनको कोई छपवाने वाला नहीं है। इस दिशा मे जब तक हम नहीं सोचेंगे तब तक किसी ठोस परिणाम की अपेक्षा नहीं कर सकते। समाज से दान लेकर किताबें छपें और उसके बाद दुगनी-तिगनी कीमतें वसूल की जाय तो वह किताबें घर घर में नहीं जा सकतीं और उसका कोई प्रचार नहीं हो सकता। जरूरत इस बात की है कि चारों अनुयोगों से संबंधित साहित्य को हम आज की भाषा में समर्थ विद्वानों से लिखाकर उसे जनजन तक पहुँचायें। इस कार्य में हम आज बहुत पीछे हैं। ये कार्य होना चाहिए।

पं. विनोद – आजकल पुस्तकों के छपने की बाढ़ सी आयी है, कहीं कोई प्रतिबंध नहीं है। जैन सेंसर बोर्ड हो और उससे स्वीकृति के बाद पुस्तकें छपे, क्या यह सभव है।

प्राचार्य जी – हो तो सब सकता है लेकिन उसी हालत में हो सकता है जब हमारा संगठन इतना मजबूत हो कि लोग उसकी बात माने। आज हमारी अ. भा. तीर्थक्षेत्र कमेटी है, तमाम तीर्थों का प्रबंध उसके हाथ में होना चाहिए, लेकिन है नहीं। हर तीर्थक्षेत्र कमेटी स्वतंत्र है। जिस तरह से जैसा चाहती है निर्माण कराती है। जबकी श्वेताम्बरों में कोई भी मंदिर बनता है तो लालचन्द्र पेढ़ी का निर्देश उसे मानना ही पड़ता है। उन्ही के द्वारा नक्शा बनता है। ऐसा हमारे यहाँ तो है नहीं तो जब तक संगठन मजबूत नहीं होगा तब तक मानेंगे नहीं। यहॉ तो अनेक दुकानें हैं और हर दुकान का अलग-अलग मालिक है और हर मालिक टकराव के रास्ते पर चलना पसंद करता है।

दया धर्म का मूल है। दया-भाव से विनय-गुण का विकास होता है और विनय से ही विद्वानों के व्यक्तित्व की शोभा होती या बढ़ती है।

पं. विनोद – समाज सेवा में आपने परिश्रम ज्यादा किया हो और परिणाम कुछ भी न आया हो, क्या ऐसा अवसर भी आया है?

प्राचार्य जी – ऐसा कोई अवसर याद नहीं आता। परिणाम कम निकला है, यह तो प्रायः हर प्रयास में सामने आता रहा है, लेकिन उसके लिए समाज को भी दोष नहीं दे सकते। चूँकि हम लोग बटे हुये हैं। हम लोगों की पूरी एकता नहीं हो पाती। किसी एक दृष्टिकोण पर हम एकमत होकर कार्य नहीं कर पाते। तो ये कम परिणाम आना तो उसका कारण है। समाज का नेतृत्व अगर एक दिशा देने में एकमत हो जाये तो समाज तो चलने लगता है। लेकिन एक मत बन नहीं पाता यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। समाज हर कार्य में चलने के लिए तैयार रहता है, विद्वानों की भी सुनता है, साधुओं की भी सुनता है तो समाज को दोष देना व्यर्थ है।

पं. विनोद – आप लगभग आठ वर्षो से शास्त्री परिषद के अध्यक्ष हैं। विद्वानों का आपसे निकट का परिचय है। आज विद्वानों का स्तर कम क्यों हो रहा है, क्या कारण हैं? और उपाय क्या हैं?

प्राचार्य जी – जिस क्षेत्र में जाने से अर्थ मिलता हो उस दिशा में तो आज भी विद्वान खूब बन रहे हैं। प्रतिष्ठाचार्य पहले से बढ़े हैं। कम नहीं हुए। जिन शास्त्रीय विद्वानों को युनिवर्सिटी या इन्टर कॉलेजों मे सर्विस नहीं मिल पाती, उन्हें समाज के आश्रित रहना पड़ता है। समाज बड़ी से बड़ी तनखाह भी दे तो पाँच हजार से ज्यादा नहीं दे पाती। इतने में आज की महगाई के जमाने में उसका खर्च नहीं चलता। इसलिए आकर्षण समाप्त हो गया। पंडित भी अपने बेटे को पंडित बनाना पसंद नहीं करता और जो डिग्री कालिज वगैरह में चले गये वो गद्दी पर बैठ कर बोलने के विद्वान नहीं हैं। शोधी विद्वान तो हैं, रिसर्च करते हैं, लेकिन शास्त्रीय शंकाओं के समाधान करने में अपने आप को कमजोर पाते हैं। ये वातावरण बदलेगा, ऐसे लक्षण भी दिखाई नहीं देते। जो हमारी पुरानी संस्थाये है वे भी दुर्बल हो रही हैं, चाहे वह मुरैना का विद्यालय हो चाहे बनारस का विद्यालय हो, चाहे सादूमल का विद्यालय हो, सबके सामने आर्थिक सकट हैं। जैन धर्म पढ़ने वाले बच्चों का अभाव है, जैनेतरों को जैनधर्म की शिक्षा दी जा रही है, क्योंकि कोटा पूरा करना है। ये तभी संभव होगा जब इस दिशा में हम आर्थिक दृष्टिकोण से सोचें। उन्हें नौकरी की गारंटी समाज दे। उनका बहुमान हो, जैसा पहले होता था। सम्मान भी नही मिलता और पैसा भी नहीं मिलता, इसलिए इस क्षेत्र में लोगों की रुचि धीरे धीरे कम होती जा रही है। एक कारण यह भी है कि इधर ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी वर्ग जो उभरकर सामने आया तो उनके त्याग का बल है तो लोगों का आकर्षण पंडितों से हटकर उनकी ओर बढ रहा है। पंड़ितों को भी थोडा सा त्याग का मार्ग अपनाना होगा। तभी उनकी तरफ आकर्षण बढ़ेगा।

पं. विनोद – आप कह रहे हैं कि विद्यालय दुर्बल हैं, आज सांगानेर और मथुरा जैसे विद्यालय उभर कर सामने आ रहे है। इनके सामने कोई आर्थिक संकट भी नही है। फिर भी क्या विसगतियाँ हो सकती है?

प्राचार्य जी – ये कुछ अच्छे प्रयास हुये हैं। आचार्य विद्यासागर जी की प्रेरणा से एम.बी.ए. संस्थान भोपाल में चल रहा हे। शिक्षण संस्थान जबलपुर में चल रहा है। सांगानेर में धार्मिक शिक्षा का केन्द्र बन गया है, मथुरा में भी इस साल शुरू हुआ है। इन सबका स्वागत होना ही चाहिए, क्योंकि पहली बार ऐसा हुआ है, जब एक अच्छे चयन करने के बाद प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी को इस दिशा में प्रेरित किया गया है। मैं समझता हूँ इसके सुखद परिणाम सामने आयेंगे। कमी रहेगी तो केवल एक ही, चूंकि एक विशेष विचारधारा से संलग्न लोगों के द्वारा सचालित हैं तो जिन विचारधाराओं को लेकर समाज में आज विसंवाद है, वह विसंवाद इनके समाज में सक्रिय हो जाने के बाद भी बने रहेंगे। ये थोड़ा-सा ड्रोवेक है थोड़ी सी उदारता यदि हम वर्तें और पद्धतियों को लेकर जो झगड़े होते हैं, विवाद होते हैं, उन पर ज्यादा ध्यान न देकर सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में अपनी सारी शक्ति लगा दें तो ये सब चीजें स्वागत योग्य हैं। कम से कम रचनात्मक दिशा में कुछ हुआ है। ऐसा लगता है इन सब प्रयासों को देखकर।

पं. विनोद – समाज और धर्म में विकृतियाँ आती जा रही हैं और बढ़ती ही जा रही हैं। इनके आने का कारण और दूर

मृदु परिणामी व्यक्ति अपने किसी का तिरस्कार नहीं करता और यह सृष्टि का नियम है कि यहाँ दूसरों को आदर देने वाला ही स्वयं आदर का पात्र बन सकता है।

करने का उपाय क्या है?

प्राचार्य जी – इस सब विकृतियों का मूल कारण मैं मान रहा हूँ दिगम्बरत्व में आती जा रही कमियाँ और कमजोरियाँ, क्योंकि दिगम्बर संस्कृति को बचाने का सारा दायित्व दिगम्बर साधुओं पर है। अगर दिगम्बर साधुओं में शिथिलाचार बढ़ेगा तो समाज और संस्कृति का क्षरण हम तीन काल में नहीं रोक पायेंगे। जिस तेजी से इधर के दस वर्षो में साधुओं ने अपने प्रोजेक्ट बनाना शुरू किये हैं और अपने नाम से मठ और गिरियाँ बनाना प्रारम्भ किया है, तब से दिगम्बरत्व का जो परम्परागत स्वरूप हम देखते आये हैं उसको धक्का लगा है। नई पीढ़ी की आस्था में कमियाँ आयीं हैं। पहले किसी को साधु की आलोचना करने का साहस नहीं होता था, आज साधु का बहिष्कार हो रहा है, आज साधु के विरुद्ध प्रस्ताव भी पारित हो रहे हैं। हालाकि उसका कुछ व्यापक असर दिखाई नहीं दे रहा है लेकिन इस दिशा में सोचना पडेगा। सबसे ज्यादा चिन्तनीय प्रश्न ये है कि हमारे दिगम्बर साधु के शील पर आज से दस साल पहले तक कोई आरोप नहीं लगा। इधर दस वर्षो में कम से कम आधा दर्जन साधुओं पर स्पष्ट रूप से लग चुका है। इससे ज्यादा लज्जाजनक स्थिति दूसरी नहीं है। एक बार फिर जरूरत पड़ रही है कि उपगूहन अंग की फिर से परिभाषा करें। उपगूहन अतिचार का हो सकता है या अनाचार का भी हो सकता है? अनाचार करने वाले साधु का यदि हम उपगूहन करेंगे, तो ये स्थिति निरंतर बिगड़ती जावेगी और इसका कहीं कोई समाधान दिखाई नहीं देता। उसका असर हमारे धर्म और समाज के विकास पर निश्चित रूप से पडेगा।

पं. विनोद – आपने शिथिलाचार की बात कही, आज आप जैसे प्रबुद्ध विद्वान मिलकर साधुओ के पास जायें और स्थिति-करण करें तो कुछ कार्य बन सकता है?

प्राचार्य जी – दो बार ये प्रयास कर चुके हैं। सात सात दिन की दो बार यात्रायें की हैं। आचार्यो से भी मिले हैं, लेकिन कुल मिलाकर अनुभव ये ही रहा है कि कोई भी आचार्य किसी भी आचार्य का निर्देश मानने की तैयार नहीं। एक आचार्य दूसरे आचार्य पर अंगुली उठाता है कि जिन बातों को आप हमसे दूर कराना चाहते हैं पहले आप जो हमसे बड़े है उनसे कहिए, वो दूर करें। दूसरे से कहते हैं तो तीसरों का नाम लेते हैं। इसका सीधा सीदा मतलब है कि सुधरने के लिए कोई तैयार नही। ऐसी स्थिति में बहुत मुश्किल है कि इन सब चीजों पर काबू पा सकें। एक स्थिति यह भी है कि महासभा, महासमिति आदि जो ये अखिल भारतीय स्तर की सस्थायें हैं ये भी एक मत होकर शिथिलाचार के विरुद्ध कोई उपेक्षात्मक कार्य करने का सकल्प लें, इसकी भी तैयारी दिखाई नहीं देती।

पं. विनोद – आज साधु संस्था का और श्रावक संस्था का स्वरूप क्या होना चाहिए?

प्राचार्य जी – श्रावक और साधु एक गाड़ी के दो पहिये हैं। इन दोनों पहियों में अनुपात नहीं होगा, सामन्जस्य नहीं होगा तो समाज की गाड़ी डगमग-डगमग करके चलेगी। इसलिये बहुत आवश्यक है कि साधु और श्रावको के बीच संवाद निरंतर रहे और दोनों इस दृष्टि से संवाद आगे बढ़ायें कि दोनों के तालमेल से समाज की उन्नति कैसे हो। आज ग्रुप की उन्नति पर सबका ध्यान है। साधुओं के भी ग्रुप हैं-श्रावको के भी ग्रुप हैं। समग्र जैनसमाज के हित को सोचने वालों का निरंतर अभाव होता जा रहा है। जब तक हम समग्र समाज के हित को सामने रखकर इस दिशा में आगे नहीं बढ़ेंगे, तब तक कोई आशा या अपेक्षा करना न श्रावक और न साधु से ही सभव नहीं है।

पं. विनोद – साधु और श्रावक दोनों मिलकर समाज को कैसे मोड़ सकते हैं, और क्या कार्य कर सकते हैं?

प्राचार्य जी – सीधी सी बात है आज जितना भी पैसा दान के रूप में प्राप्त होता है, वह साधु की प्रेरणा से होता है। श्रावक अपना दबदबा खो चुका है। सारे सेठ मिलकर उतना इकट्ठा नहीं कर सकते, जितना एक साधु की अपील पर इकट्ठा हो जाता है। लेकिन साधु का चूँकि अपना निजी प्रोजेक्ट है, वो प्राइवेट लिमिटेड की तरह उनका उपयोग करता है इसलिये समग्र समाज का हित नहीं हो पाता। हम बहुत सस्थाये खोल रहे है। लेकिन उन संस्थाओ पर ग्रुपों का ही

महापुरुष जो कहते हैं, वही करते हैं, किन्तु कुटिल पुरुषों की कथनी और करनी में अन्तर होता है। यह मायाचार है। शास्त्रों में इसे त्याज्य बताया गया है।

प्रभुत्व दिखाई देता है। समग्र समाज के साथ उनका जुड़ाव आज भी दिखाई नहीं देता ये स्थिति तो आपस के चिन्तन से और अपने सोचने के तरीके को व्यापक बनाने से ही संभव होगा। कब संभव होगा, इस दिशा में कुछ नहीं कहा जा सकता।

पं. विनोद – आपकी लेखनी किस विषय पर केन्द्रित रही, आपके लेखों/सम्पादकीय आदि का क्या विषय रहा?

प्राचार्य जी – हमारे लेख नैतिकता का क्षरण कैसे रोका जाय प्रायः इस दृष्टि को रखकर ही लिखे गये हैं। उसमें साधु शिथिलाचार का प्रसंग आया हो या श्रावकों को कर्तव्य पालन करने का प्रश्न आया हो, दोनों तरफ दृष्टि ये ही रही है कि कम से कम समाज के श्रेष्ठ नागरिक बनने का जो मार्ग है वह बन्द नहीं होना चाहिए। श्रेष्ठ नागरिक बनने मे हमारे सिद्धान्त निर्विवाद रूप से साधक है। इसलिये उन्ही सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर हमने अपना लेखन किया। सामाजिक सद्भाव बढ़े, समन्वय बढ़े, एकता बढे और नैतिक क्षरण रुके, यही मुख्य भूमिका रही हमारे लेखों की।

पं. विनोद – आप पत्रकारिता से जुड़े हैं। आज पत्र-पत्रिकाऐं बहुत प्रकाशित हो रही हैं, इससे समाज का उत्थान होगा या कोई नुकसान भी संभव है?

प्राचार्य जी – कुछ तो इस एक दशक में बहुत अच्छे पत्र निकले हैं, जैसे अर्हत् वचन है। विज्ञान और गणित के क्षेत्र मे अब तक हमारे यहाँ कुछ काम नहीं हुआ था, उसके माध्यम से वह काम हुआ। तीर्थंकर ने भी कुछ प्रबुद्ध लोगो में अपनी बहुत अच्छी छाप छोड़ी है। अन्य क्षेत्रों से भी अनेक पत्रिकायें निकली हैं जैसे प्राकृत विद्या, अपभ्रंश भारती निकलीं। इन सबके द्वारा क्षेत्र विशेष में बहुत बढ़िया काम हुआ है, लेकिन जहाँ तक साधुओ की प्रेरणा से निकलने वाले पत्र हैं, या किसी संस्था के द्वारा निकलने वाले पत्र हैं। इनके स्तर में आपस की ग्रुपबाजी के कारण गिरावट आयी है, ऐसा हम अनुभव करते हैं। संस्थाओं के जो पत्र हैं उनमें पदाधिकारियों को महिमा-मंडित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य रहता है और इसके कारण जो सामाजिक विकास का मुद्दा है वह पिछड़ जाता है। इसमें बहुत कुछ करने की जरूरत है। कोई मौटिव जब तक नहीं होगा, पत्रकारिता के सामने, तब तक कोई मिशन पूरा नहीं हो सकता। वो मौटिब्स आज नहीं है और उसका कारण हमारे श्रीमंतों के हाथ में ये पत्र हैं। श्रीमंतो का सोच केवल अपने व्यापारिक लाभ या अपने निजी स्वार्थो की पूर्ति तक सीमित रहता है इसलिए जिस दिशा में इन पत्रों को बढ़ना चाहिए उधर, नहीं बढ पाते। सम्पादकों और प्रकाशकों के बीच मे मतभेद भी रहते हैं। उनका दृष्टिकोण मिल नहीं पाता। दूसरे सामाजिक पत्रों पर सम्पादको का उसके लेआउट पर कोई नियंत्रण नहीं होता। सम्पादक कहीं रहता है पत्र कही से निकलता है। उसके कारण जिस ढ़ंग से उसका लेआउट बनना चाहिये वह नहीं बन पाता। ये कमियां हैं और ये कमियां तभी दूर हो सकती हैं जब सम्पादक और पत्रकारो के सम्मेलन होते रहें। वैसे सम्मेलन भी हमारे दिगम्बर समाज में नहीं होते, जबकि श्वेताम्बरों मे साल में दो बार इस तरह के सम्मेलन हो जाते हैं। हम दूसरों से अच्छी बातें सीखने को तैयार नहीं हैं। इस कमी को स्वीकार करना चाहिए।

पं. विनोद – जैन पत्र पत्रिकाओं के सभी सम्पादक एकमंच पर आने को तैयार हो सकते हैं, अपने विचारो का आदान प्रदान करने में इन्हें कोई समस्या तो नहीं है?

प्राचार्य जी – समस्यायें तो बहुत हैं किन्तु जब आपस में मिलेगें तो दो, चार, पाँच बैठकों में मतैक्य बनेगा। बहुत चीजों पर नहीं बनेगा परन्तु 25-30% पर बनेगा। शुरुआत छोटे से एक कदम से होती है और उसके बाद मंजिल तक आगे बढ़ने में गति मिलती है। लेकिन प्रयास तो शुरू हो। हम केवल यह सोचकर कि मतैक्य नहीं होगा, हम इस तरह के सम्मेलन कर ही नहीं पाये। हम कोशिश करें, अपने प्रयास जारी रखे तो मेरा मन तो कहता है कि निश्चित रूप से सफलता मिलेगी और अच्छे परिणाम सामने आयेंगे।

पं. विनोद – मेरा जहाँ तक अनुभव है, पहले जो पत्रिकायें निकलती थीं उनकी सामग्री समाजोत्थान के लिए होती थी लेकिन आज पत्रिकाओं में व्यक्ति का ही सब कुछ होता है। ऐसा लगता है पत्रिका समाज के लिये नहीं अपितु व्यक्ति

के लिये ही है। ऐसी पत्रिकाओं के लिये आपका क्या संदेश है।

प्राचार्य जी – जब तक पत्रिकाओं का प्रकाशन व्यक्ति या ग्रुप के पैसे पर निर्भर रहेगा तब तक इसमें सुधार नहीं हो सकता। समग्र समाज जब तक किसी पत्रिका के साथ नहीं जुड़े और उसका कन्ट्रोल उस पर नहीं हो तब तक तो जो चल रहा है वही चलेगा। कोई भी परिवर्तन कभी संभव नहीं है। जो पैसा लगता है वह ख्याति के लिये लगता है। वह पत्रिकायें उस तरह का कार्य करती हैं अगर वह हाथ खींच लें तो पत्रिकायें बंद भी हो जायेंगी। ये स्थिति सामने है। इसमे लोगों का जुड़ाव कैसे बढ़े इस पर हमें सोचना पड़ेगा और वह जुड़ाव तभी बढ़ेगा जब हम जन जन की आकांक्षाओं को मूर्त रूप अपने पत्र के माध्यम से दे सकें। हर आदमी यह अनुभव करे कि मैंने अपने मन की बात आज अखबार मे पढ़ी, तब वह आपके साथ जुड़ेगा।

पं. विनोद – आप वर्तमान के युवा वर्ग को क्या संदेश देना चाहेंगे?

प्राचार्य जी – युवा वर्ग पहले की अपेक्षा धर्म से जुड रहा है लेकिन आचरण के मामले में युवा वर्ग आज भी उतना ही पीछे है जितना पहले कभी रहा होगा। साधु की सभा मे उसकी उपस्थिति दिखाई दे रही है। महावीर जयन्ती या इस तरह के विधान उत्सव जहाँ होते हैं वहाँ युवा वर्ग को हम बराबर देखते हैं लेकिन उसका खान पान, उसकी बातचीत की टोन, उसका चारित्रिक ह्रास पहले की तुलना में बढा ही है। इसका कारण चाहे तो युवा वर्ग का टी वी. आदि ससाधनों के प्रति आकर्षण रहा हो या हमारे साधुओं की कमी रही हो लेकिन इस दिशा में युवकों का सचेत करने की जरूरत अवश्य है। पहले साठ साल से ऊपर के मुनि बनते हुए देखे जाते थे, लेकिन आज टीनयेजर्स को मुनि बनते ज्यादा देख रहे हैं। तो बाह्य प्रभाव तो बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है लेकिन आंतरिक विकास में अभी हम बहुत पीछे हैं उस दिशा मे कुछ सोचना होगा और युवाओं को प्रेरित करना होगा कि अपना नैतिकबल बढ़ायें, आत्म विश्वास बढ़ायें तब समाज का नक्शा बदलने में निश्चित सहायता मिलेगी।

पं. विनोद – युवा वर्ग के सामने समस्या है कि दुनिया अपनी गति से चल रही है। टी वी कम्प्यूटर का युग है इसके साथ मे उसको चलना होगा, नही तो बहुत पीछे रह जावेगा और हम उसे धर्म के शिकंजे मे बाधकर पीछे खींच रहे है, वो क्या करें जिससे सबके साथ चल सकें?

प्राचार्य जी – आज जो वैज्ञानिक साधन सुलभ हे उनकी उपेक्षा नहीं होना चाहिए। उनका सदुपयोग करना चाहिए। दूसरे धर्मो के बढ़िया धारावाहिक टी.बी. पर आ रहे है। हमारी संस्थाओं का ध्यान जैन धारावाहिक तैयार करने पर नहीं है, विकल्प हमें देना पड़ेगा। टी.वी. पर जो अश्लील कार्यक्रम आते हैं उनकी जगह हमें शालीन कार्यक्रम देने होगें। तो युवकों में मोड आएगा क्योंकि वह जो पर्दे पर देखेगें उसी प्रकार का आचरण उनके भीतर पल्लवित होता हुआ दिखेगा। अतः जरूरत है वैज्ञानिक साधनों का बहिष्कार न करे, उपेक्षा न करें केवल उसका सदुपयोग कैसे हो इस दिशा में हमे सोचना है। मुनियों के प्रवचन टी.वी. पर आ रहे है लेकिन इन प्रवचनो में तथ्य नहीं होता और जो विद्वान तथ्य दे सकते है उन्हें टी.वी. पर आने के लिए अवसर नहीं है। ये सब चीजें इस बात की ओर इंगित करती हैं कि सही सोच हमारे समाज के पास नहीं है। वह कैसे बने इस दिशा में श्रीमंत लोगों को आपस मे मिलकर और विद्वानों के साथ बैठकर ही कोई रास्ता बना पायेंगे अन्यथा तो यह सभव नहीं है।

– पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
रजवाँस (सागर) म. प्र.

□

गंगा-स्नान आदि से शरीर तो स्वच्छ हो सकता है, किन्तु आत्मा की पवित्रता के लिए तो [illegible] आवश्यक है।

श्रद्धेय प्राचार्यजी के साथ एक अन्तरंग वार्ता

वार्ताकार : शैलेन्द्र गुप्त 'शैली'
ब्यूरो-प्रमुख – दैनिक जागरण
संजय जैन एड्वोकेट पी. आर. ओ.

• **राष्ट्रीय स्तर पर अपने अभिनन्दन की योजना पर आपको कैसा लग रहा है?**

– अच्छा लग रहा है। प्रशंसा और मान-सम्मान तो एक प्रकार का च्यवनप्राश है, जिससे व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। हॉ, यह अवश्य है कि यह अभिनन्दन किसी व्यक्ति का नहीं, मॉ जिनवाणी का हो रहा है। हम तो केवल एक निमित्त मात्र हैं। जैनधर्म में गुण-पूजा का महत्त्व है, व्यक्ति-पूजा का नहीं।

• **आपके इस अभिनन्दन के पीछे मुख्य-प्रेरणा किसकी रही?**

– परोक्षतः उन सबकी, जो हमसे प्यार करते हैं। प्रत्यक्षतः सर्वश्री महावीरप्रसाद गंगवाल, निर्मलकुमार सेठी, भागचन्द्र पहाड़िया, डॉ. भागेन्दुजी, चिरंजीलाल बगड़ा, अजित पाटनी, कैलाशचन्द्र बड़जात्या, पवनकुमार मोदी, विनोदकुमार जैन प्रतिष्ठाचार्य तथा कुछ अन्य महानुभाव कोलकाता-स्थित जैन भवन के एक कक्ष में वार्ता-रत थे कि अचानक ही यह सुझाव सामने आया और सबने सर्वानुमति से उसे क्रियान्वित करने का निर्णय ले लिया।

• **क्या वार्ता के समय आप भी उपस्थित थे?**

– हॉ, थे तो सही, किन्तु जैसे ही श्री गंगवालजी ने यह सुझाव दिया और डॉ. भागेन्दुजी ने उसका समर्थन किया, हम उठकर अपने कमरे में आ गए। बाद में जो भी विचार-विमर्श हुआ, उसकी सूचना फीरोजाबाद लौटने पर डॉ. भागेन्दुजी द्वारा फोन पर प्राप्त हुई। उन्होंने हमे बताया कि ग्रन्थ-प्रकाशन के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक समिति एवं सम्पादक-मण्डल का गठन किया गया है। हमने इस सूचना को इस रूप में ग्रहण किया–

'यह प्यार होता नहीं है हर किसी के लिए
खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए'

• **जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण क्या है?**

– जीवन समाज की एक अमूल्य धरोहर है। निष्काम सेवा के माध्यम से उसे समाज-हित मे समर्पित करने का भाव मन में रहना चाहिए।

• **आप अपना प्रेरणास्रोत किन्हें मानते हैं?**

– कोई एक नाम हो तो बताएँ। हमने तो छोटे-बड़े सबसे ही कुछ-न-कुछ सीखा है। मुख्यत पूज्य सन्तों का प्रशस्त वात्सल्य खूब मिलता रहा। सन् 1956 में समाधि-सम्राट् आचार्य महावीरकीर्तिजी के, सन् 1968 मे राष्ट्रसन्त आचार्य विद्यानन्दजी के, सन् 1975 में निरतिचार चर्या के धनी आचार्य विद्यासागरजी के, सन् 1986 मे वात्सल्य-रत्नाकर आचार्य विमलसागरजी के तथा सन् 2002 में मुनि-पुंगव समतासागरजी एवं प्रमाणसागरजी के पावन वर्षायोग यहॉं सम्पन्न हुए। उनके चरणो में बैठकर हमें उनसे बहुत-कुछ सीखने को मिला। पूज्य आचार्य श्री वर्द्धमानसागरजी, उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी एवं मुनि-त्रय श्री समयसागरजी, योगसागरजी, क्षमासागरजी आदि की सहिष्णुता, रचनात्मकता एवं समता का हमारे मन पर अच्छा प्रभाव रहा है। माताओं में पूज्य आर्यिका गणिनी ज्ञानमतीजी, सुपार्श्वमतीजी और विशुद्धमतीजी के उपकारों से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। उनसे हमें सतत ज्ञानाभ्यास और संयम के सस्कार मिलते रहे हैं।

[illegible]

- **विद्वानों में आप किन्हें अपना आदर्श मानते हैं?**

— हमारे लिए प्रथम आदर्श तो हमारे पूज्य पिता स्व. पं. रामस्वरूपजी शास्त्री ही हैं, जिन्होंने बचपन में ही धर्म-शिक्षा देकर धर्म-मार्ग पर चलने की हमें प्रेरणा दी। कुछ बड़े होने पर जब हम अपने नगर के प्रभावक वक्ता एवं यशस्वी विद्वान् पं. श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री को सभाओं में बोलते देखते तो हमारे मन में भी बोलने की फुरफुरी-सी उठती। बाद में हमने उन्हें अपने शिक्षा-गुरु के रूप में और उन्होंने हमें अपने वरद शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। महासभा और जैनगजट से हम जुड़े श्रीमान् पं. कुंजीलालजी शास्त्री एवं श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी के सौजन्य से। स्व. डा. दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्य ने अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद का तथा स्व. पं. बाबूलाल जमादार ने अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद् का आजीवन सदस्य बनने की प्रेरणा दी। अपने समय के अन्य दिग्गज विद्वानों में सर्वश्री स्वनामधन्य पं. मक्खनलालजी न्यायालंकार, डॉ. लालबहादुरजी शास्त्री, पं. अजितकुमारजी शास्त्री, पं. वर्धमान पार्श्वनाथजी शास्त्री, डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, पं. कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री एवं पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य की स्नेह-मिश्रित कृपा, जिसकी वरदानी छाँव तले हम अपने ज्ञान को परिमार्जित करते रहे, को कभी विस्मृत नहीं कर सकते। इन सबकी संगति ने ही हमें प्राध्यापक से पण्डित के रूप में गणनीय बनाया है।

- **आपकी पसन्द की धार्मिक पुस्तकें कौन-कौन सी हैं?**

— यों तो ऐसी अनेक पुस्तकें हैं, जो हमारी स्वाध्याय की मेज पर प्रायः आती रही हैं, फिर भी उनमें से कुछ उल्लेख्य पुस्तकें हैं—

- चारित्र-चक्रवर्ती, तीर्थकर एवं जैन शासन (पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर)
- अर्ध-कथानक (पं. बनारसीदास जैन की आत्मकथा)
- मेरी जीवन गाथा (स्व. श्री गणेशप्रसाद वर्णी की आत्मकथा)
- युगवीर ग्रन्थावली (पं. जुगलकिशोर मुख्तार के आलेखों का संकलन)
- पार्श्वपुराण (कविवर भूधरदासकृत)
- धर्म-फल-सिद्धान्त (पं. माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य)
- शान्ति पथ प्रदर्शन एव नय दर्पण (स्व. जिनेन्द्र वर्णी)
- जैन जागरण के अग्रदूत (भारतीय ज्ञानपीठ-प्रकाशन)
- गोमटेश गाथा (श्री नीरज जैन)

- **आपके जीवन की उपलब्धियाँ क्या हैं?**

— हमें नहीं पता। हमें तो यह सन्तोष है कि हमने अपना जीवन खुशी-खुशी जिया है। न किसी से कोई शिकायत और न किसी से कोई अपेक्षा। अपनी पसन्द का जीवन जीना ही हमारी एकमात्र उपलब्धि है।

- **महाकवि रइधू पुरस्कार, जो आज अपने नगर के ही नहीं, देश के चर्चित पुरस्कारों में से एक है, की पृष्ठभूमि कैसे बनी?**

— सन् 1989 में अतिशयक्षेत्र श्री महावीरजी मे आयोजित सहस्राब्दि महोत्सव के अवसर पर राष्ट्रसन्त आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में सोलापुर की सुप्रतिष्ठित संस्था 'गांधीनाथा रंगजी दिगम्बर जैन जनमंगल प्रतिष्ठान' द्वारा नगर के गौरव पं. श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री को एक लाख रुपए के आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। हमारे एक विनम्र सुझाव पर उनके भतीजे चि. रविकान्त जैन ने अपने परिवार की ओर से इस शिखर सम्मान-राशि में पचास हजार रुपयों का अशदान मिलाकर उसी समय 'श्री श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास' की स्थापना करने

संयम जीवन का सार तत्व है। जिस तरह [illegible] के बिना [illegible] का कोई महत्व नहीं है, उसी प्रकार संयम का [illegible] जीवन [illegible] है।

का संकल्प घोषित कर दिया था। इसी न्यास की ओर से प्रतिवर्ष जैनधर्म-दर्शन, शिक्षा, धर्म-प्रचार एवं समाजसेवा के लिए समर्पित किसी एक व्यक्तित्व को 'महाकवि रइधू पुरस्कार' (इक्कीस हजार एक रुपए की नकद राशि एवं प्रशस्ति पत्र) से सम्मानित किया जाता है। अब तक ऐसे पाँच पुरस्कार प्रदान किए जा चुके हैं। यद्यपि यह एक पारिवारिक ट्रस्ट है, किन्तु इसके मन्त्री-पद पर उन्होंने हमें मनोनीत किया, यह उनके वात्सल्य का ही परिचायक है। न्यास की अन्तरंग परिषद में नगर के सभी प्रतिष्ठित लोग सम्मिलित हैं। परिषद् के सभी सदस्यगण भी पुरस्कृत विद्वान् को विविध उपहार या नकद राशि प्रदान कर जो आदर्श प्रस्तुत करते हैं, उससे इस पुरस्कार की गरिमा में चार चाँद लग जाते हैं।

• आपके जीवन में जब कोई कठिनाई आती है/आती ही होगी, तब आप उनका सामना कैसे करते हैं?

– अपने आप को सहज और सन्तुलित बनाए रखकर। मुश्किलों के दौर में न हम मुँह छिपाते हैं, न सिर झुकाते हैं, बल्कि मुस्कराते रहते हैं। हमारा विश्वास है–

> 'जिसको जो होना है, वह होगा,
> जो भी होगा, वही सही होगा।
> किसलिए होते हो उदास यहाँ
> जो नहीं होना है, नहीं होगा।।"

• प्राचार्यजी! अन्तिम जिज्ञासा यह है कि इस अवसर पर आप अपने विद्वान् साथियों और सभी स्नेही जनों को कोई सन्देश नहीं देना चाहेंगे?

– क्यों नहीं, अपने विद्वान् मित्रों से हम हमेशा यह निवेदन करते रहे है कि वे हमेशा तैयारी करके बोलें तथा कभी जिनवाणी को व्यवसाय न बनाएँ। कोई स्वेच्छा से और सम्मानपूर्वक कुछ भेंट दे तो उसे ग्रहण करें तथा बिना देखे और विना गिने जेब में डाल लें। वैरिस्टर लोग जो गाउन पहनते हैं, उसमें जेब पीछे होती है। इसके पीछे आशय यही है कि जिसे जो देना हो, पीछे डाल दे। विद्वानों को भी अयाचक वृत्ति रखनी चाहिए। हिन्दी के यशस्वी कवि स्व. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के शब्दों में हर स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए यह आदर्श अपेक्षित है–

> 'अमृत भी हमको अस्वीकार,
> अगर कुण्ठित हो अपना मान।'

अपने सभी हितैषियों को हम यही सलाह देंगे–'भैया! बड़े जतन से ओढ़ो, मैली होने दो न चदरिया।' इत्यलम्।

(कैसिट से आलेखन)

□

[illegible] की जाती है। [illegible] है। [illegible] किया जाता है।

मानवता की मूर्ति एवं धर्म-मर्मज्ञ प्राचार्यजी से एक साक्षात्कार

–डॉ. मक्खनलाल पाराशर
पूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष-एस आर के कॉलिज
मन्त्री-गीता ज्ञानोदय समिति, फीरोजाबाद

1. धर्म आपके दृष्टिकोण से क्या तत्त्व है? क्या वह विशेष पूजा-पद्धति या अनुष्ठान से कोई भिन्न तत्त्व है?

एक नीति-वाक्य 'पापं दूरेण परिहरई' के अनुसार जो दुःख, दुर्गति और पतन की ओर ले जाने वाले पापाचार से बचाता है, वह धर्म है अथवा जो राग-द्वेष और क्रोधादि विकारों से मुक्ति दिलाकर चित्त को पवित्र करे उसे धर्म कहते हैं। कहा भी है–'धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई' अर्थात् धर्म शुद्ध हृदय में ही ठहरता है। विभिन्न पूजा-पद्धतियाँ या अनुष्ठान तो साधन हैं, साध्य नहीं। जिन साधनों से पापाचार या मानसिक विकारों से मुक्ति पाने में हमे सहायता मिले, वे तो ठीक हैं और शेष सब अनुपयोगी हैं।

2. क्या धर्म अंग्रेजी के 'रिलीजन' या उर्दू के 'मजहब' शब्द का पर्याय है?

महत्त्व भाषा या शब्दों का नहीं, भावों का होता है। मनुष्य की अन्तः चेतना मे भाव ही उतरते है, शब्द नहीं। शब्द तो कान से टकराकर बाहर ही रह जाते है। 'रिलीजन' या 'मजहब' शब्द भाषा की दृष्टि से पर्यायवाची हैं, किन्तु भाव की दृष्टि से भिन्न हैं। 'धर्म' आध्यात्मिक विकास पर जोर देता है, जबकि 'रिलीजन' की दृष्टि भौतिक सुखों की प्राप्ति तक ही सिमटकर रह गई है। एक अंग्रेज विद्वान् ने लिखा भी है–'While life is yours, live joyously' अर्थात् मौज-मस्ती के साथ जीवन जियो। उसकी दृष्टि शरीर-सुख से ऊपर नहीं उठ पाती। 'मजहब' शब्द से भी एक सम्प्रदाय का बोध होता है। सम्प्रदाय और परम्पराएँ तो परिवर्तनशील हैं, किन्तु धर्म शाश्वत और अखण्ड है। जैन, बौद्ध, हिन्दू, सिख, पारसी या मुसलमान के लेबिल उस पर नही लगाए जा सकते। धर्म तो वस्तु का स्वभाव है।

3. जैनधर्म का भारतीय संस्कृति को क्या योगदान है? भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म की भूमिका किस रूप में आँकी जा सकती है?

भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान है। आचार-विचार के परिष्कार पर उसमें बहुत जोर दिया गया है। जब आचार में गिरावट आती है तो अराजकता, धन-लिप्सा, कलह, भ्रष्टाचार, चोरी-चकोरी आदि अनेक बीमारियाँ पनपने लगती हैं। इनका इलाज जैनधर्म के अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्तो से आसानी से हो सकता है। वैचारिक प्रदूषण जैसे-ईर्ष्या, अनबन, असहिष्णुता आदि के निवारण में जैनधर्म के अनेकान्त सिद्धान्त का महत्त्व तो सर्वविदित ही है। सामाजिक समरसता की स्थापना में जैनधर्म की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

4. क्या 'अहिंसा परमो धर्मः' का ध्येय वाक्य व्यवहार्य है?

अहिंसा अव्यवहार्य नहीं है। उसको लेकर कुछ भ्रम फैलाए गए हैं। सतीत्व, स्वत्व, स्वाभिमान और धर्म-संस्कृति की मर्यादाओं की सुरक्षा के लिए की गई हिंसा त्याज्य नहीं है। किसी प्रकार के द्वेष या बदला लेने की भावना से मुक्त होने के कारण वह अहिंसा ही है। बुराइयों से संघर्ष करना तो कर्तव्य-पालन की कोटि में आता है और कर्तव्य-पालन ही धर्म या अहिसा है? बलपूर्वक किसी के राज्य या सम्पत्ति को छीनना हिंसा है। इरादतन किसी को मारना या सताना भी हिंसा है, किन्तु दुष्टों-दुराचारियों का मर्दन करना हिंसा नहीं है। किसी बालक के पेट में कीड़े हो जाएँ तो डाक्टर की बताई औषधि लेने से वे मर जाते हैं। इससे डाक्टर को हिसा का दोष नहीं लगता, क्योंकि उसका उद्देश्य बालक को स्वस्थ बनाना है, कीड़े मारना नहीं। सम्राट् खारवेल, सेनानायक चामुण्डराय, श्रीराम आदि सबने युद्ध किए हैं, लेकिन इन्हें किसी ने हिंसक नहीं कहा। ये तो अपने समय के सबसे बडे अहिंसक थे। गांधीजी तो कहा करते थे कि अत्याचार करना तो हिंसा है ही,

मन की तीन ही गतियाँ हैं– [illegible]

अत्याचार सहना भी हिंसा है। यथार्थ में अहिंसा को अव्यवहार्य वही कह सकते है, जो अहिसा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते।

5. आप एक आदर्श शिक्षक रहे हैं। आज के शिक्षकों के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

शिक्षण-कार्य एक पूजा है, कोई सौदा नहीं। आज के कुछ शिक्षकों ने उसे केवल आजीविका का साधन मान लिया है। बच्चों को संस्कारित करने के कर्त्तव्य के निर्वाह में वे चूक रहे हैं। धन की तराजू पर शिक्षा को तौलने के परिणाम छात्रों को ट्यूशन पढ़ने के लिए बाध्य करने, परीक्षा में अपने चहेतो को नकल कराने, पक्षपातपूर्ण अंकदान करने आदि के रूप मे सामने आते रहते हैं। शिक्षक-आन्दोलनों का एकमात्र ध्येय भी आज केवल वेतन-वृद्धि रह गया है। महाकवि तुलसीदासजी ने ऐसे ही कर्तव्य-विमुख और धनलोलुपी शिक्षकों के प्रति कहा है–

'हरहिं शिष्य-धन, शोक न हरईं,
सो गुरु घोर नरक महिं परई।'

6. क्या शिक्षा के अन्तर्गत आप धर्म की शिक्षा दिए जाने को उचित मानते हैं?

धर्म का प्रयोजन है विवेक की जागृति अर्थात् उचित और अनुचित का परिज्ञान होना तथा उसे जानकर अहित मे बचना ओर हितकर मार्ग पर चलना। स्वपर-हितकारक ऐसी धर्म-शिक्षा छात्रों को अवश्य दी जानी चाहिए।

7 प्राचार्य-पद का दायित्व सफलतापूर्वक निभाने का रहस्य क्या है? आपके प्राचार्य-काल मे श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलिज ने शिक्षा-जगत में जो ख्याति अर्जित की, उसका भी रहस्य बताने की कृपा करें।

प्राचार्य-पद की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय हमारे सहयोगी शिक्षको की सामूहिक उत्तरदायित्व के निर्वाह और 'टीम-स्प्रिट' की भावना को ही है। प्रबन्ध समिति मे चलने वाली उठा-पटक, मुकदमेबाजी और राजनीति से हमने कभी कोई सरोकार नहीं रखा। हमारा ध्यान तो केवल इस बात पर रहा कि बच्चो की पढ़ाई में इससे कोई व्यवधान न आने पाए और हम अपने साथियो के सहयोग से इसमें सफल रहे।

8. क्या जैनधर्म हिन्दू संस्कृति का अंग है अथवा उसकी सत्ता हिन्दुत्व से पृथक् है?

जैनों की धार्मिक मान्यताएँ कहीं-कहीं वैदिक या हिन्दू धर्म से भिन्न हैं, परन्तु सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से वे परस्पर सहोदर बन्धुओं की भांति हिले-मिले हैं। जो हिन्द (भारत) मे रहते हैं, वे सब हिन्दू हैं, इस व्युत्पत्ति से हमारी असहमति नही है। विचार और परम्पराओ में अन्तर होते हुए भी जैन और हिन्दू समग्र भारतीय समाज के अभिन्न अंग है।

9. आपके मतानुसार जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और शैवधर्म के संस्थापक भगवान शिव क्या एक ही व्यक्ति हैं?

भारतीय संस्कृति में भगवान ऋषभदेव और भगवान शिव की प्रतिष्ठा एक सर्वमान्य लोकदेव के रूप में है। श्रीमद् भागवत में भगवान ऋषभदेव को आठवें अवतार के रूप मे और जैन ग्रन्थों मे प्रथम तीर्थकर के रूप में उल्लिखित किया गया है। तीर्थकर ऋषभदेव और भगवान शिव में नाम-रूप का अन्तर होते हुए भी अनेक समानताएँ है, जैसे–

- भगवान ऋषभदेव जहाँ वेश से दिगम्बर हैं, वहाँ भगवान शिव वृत्ति से दिगम्बर हैं। दोनों ही विषयों से अनासक्त हैं।
- दोनों की मूर्तियाँ जटा-सहित मिलती हैं।
- एक का लांछन और दूसरे का वाहन वृषभ है।
- एक का निर्वाण-स्थल और दूसरे का निवास-स्थान कैलास है।

- एक त्रिरत्न (रत्नत्रय) के तो दूसरे त्रिशूल के धारक हैं।
- दोनों ही कर्मवीर हैं।

इन प्रतीकात्मक समानताओं को देखते हुए दोनों ही व्यक्तित्व एक रहे हों, इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

10. आज अपने देश और विश्व में नैतिकता का जो ह्रास हो रहा है, आपकी दृष्टि में उसके क्या कारण हैं?

नैतिकता के ह्रास के पीछे बढ़ती हुई स्वार्थपरता, धन-लिप्सा और कर्तव्य की अपेक्षा अधिकार पर अधिक जोर देने की प्रवृत्ति है। इसमें कमी आने पर ही नैतिकता की बेल पुनः लहलहा सकती है।

11. क्या खान-पान और धर्म का कोई सम्बन्ध है?

हॉं, है। धर्म का अर्थ है आचार-विचार की शुद्धि और उस पर हमारे आहार-पानी का प्रभाव पडता ही है। शर-शैया पर पड़े भीष्म पितामह ने कहा था कि जब तक वह पापी कौरवों का अन्न खाते रहे, तब तक उनकी बुद्धि मलिन रही और वह अन्याय के प्रतिकार का साहस न जुटा सके। अर्जुन के वाणो से बिधने पर जब शरीर का दूषित रक्त निकलकर बह गया, तब उनकी बुद्धि निर्मल हो गई और अब वह उचित-अनुचित का निर्णय कर सकते है। कहावत भी है–'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन' और 'जैसा पीवे पानी, वैसी बोले बानी'। आहार से शरीर ही नहीं, स्वभाव भी बनता है। कोई शराब पी ले और चाहे कि नशा न चढ़े, यह सम्भव नहीं है। स्पष्ट है कि मनुष्य के शुद्ध विचार (धर्म) और शुद्ध खान-पान में गहरा सम्बन्ध है।

12. क्या वीरता या साहस का मांसाहार से कोई सम्बन्ध है? शाकाहारी कायर होते हैं, क्या यह मान्यता सही है?

आध्यात्मिक दृष्टि से वही व्यक्ति साहसी कहलाता है, जो ताकतवर होते हुए भी किसी को हानि नहीं पहुँचाते तथा अपनी शक्ति का प्रयोग परहित एवं शुभ कार्यो में करते हैं। मांसाहार से वीरता या साहस का कोई सम्बन्ध नहीं। मांसाहारी जीव क्रूर, नृशंस और झगडालू होते हैं। शाकाहारी जीव जैसे गाय, घोडा आदि सौम्य एवं शान्तिप्रिय होते हैं। जो जीव जरा-सी आहट सुनकर भागने लगें, वे कायर होते हैं। सभी मांसाहारी जीवों में कमोवेश यह आदत पाई जाती है।

13. नई पीढ़ी का झुकाव पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता की ओर बढ़ रहा है, क्यों? इसे कैसे रोका जा सकता है?

भारतीय जीवन-मूल्यों को अपनाते रहने से ही पाश्चात्य प्रभाव को कम किया जा सकता है। आज संचार-माध्यमों से हमें जो भी पढ़ने और देखने को मिल रहा है, वह सब पश्चिम की भौंडी नकल मात्र है। उस पर नियत्रण लगाना होगा।

14. फिल्म एवं टी.वी. पर नई पीढ़ी को जो मसाला परोसा जा रहा है, क्या आप उसे उचित समझते हैं? यदि नहीं तो क्यों?

फिल्म और टेलीविजन दोनो में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में आज हिंसा, मारधाड़ और अश्लील दृश्यों की भरमार है। विज्ञापनों ने आज लोगों में विलासिता की वस्तुए खरीद-खरीद कर इकट्ठी करने की होड़ उत्पन्न कर दी है। दोनों के माध्यम से भड़काऊ, फूहड़ और सस्ता मनोरंजन तो मिल रहा है, किन्तु संस्कार नहीं मिल रहे। जो भी कार्यक्रम दिखाए जा रहे हैं, उनमें अमृत तो बूँदभर है और विष असीम। बच्चों का बचपन चाट जाने वाले इस उद्योग पर मर्यादा का अंकुश लगाने के लिए शिक्षाविदों को आगे आना चाहिए।

15. देश की राजनीति के वर्तमान स्वरूप पर आप क्या कहना चाहते हैं?

देश की राजनीति से आज प्रबुद्ध लोगों का मोह-भंग हो चुका है। आज की राजनीति जातिवाद, भ्रष्टाचार और अपराधों के शिकंजे में कसकर रह गई है। सत्ता मुख्य और सिद्धान्त गौण हो गए हैं। बेमेल सियासी गठजोड़ इसके सबूत हैं।

'आचार और विचार [illegible]'

राजनेताओं में सटीक सोच और जमीनी समझ का अभाव है। सत्ता में बने रहने के लिए किसी को बुरे-से-बुरा हथकण्डा अपनाने में कोई संकोच नहीं होता। आज की राजनीति को 'शॉक ट्रीटमेण्ट' की जरूरत है।

16. क्या विद्वत्ता और सज्जनता अनिवार्य रूप से सहगामी हैं?

हाँ, दोनों का मेल ही प्रशंसनीय है। विद्वान् समाज के मार्गदर्शक होते हैं। उनकी कथनी और करनी में एकरूपता होनी चाहिए। सज्जनता के बिना विद्वत्ता भारस्वरूप है।

□

प्राचार्यजी की बेमिसाल नेतृत्व-क्षमता

(एक पत्रकार के अनुभव)

दीपक जैन, एम. एस. सी.
ब्यूरो-प्रमुख एवं स्तंभलेखक—अमर उजाला
फीरोजाबाद

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन का व्यक्तित्व अनेकानेक खूबियों से भरा पड़ा है। एक प्रखर चिंतक, विचारक व ओजस्वी वक्ता के रूप में उन्हें सभी ने देखा है। पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़े होने के कारण मुझे भी उनके इस विराट् व्यक्तित्व से रूबरू होने का मौका मिला। इसके साथ-साथ उनकी नेतृत्व-क्षमता को मैने बहुत नजदीकी से देखा है। नेतृत्व करने की क्षमता उनकी बेमिसाल है। कई मौके आए जब फीरोजाबाद जैन समाज को आदोलन का रास्ता अपनाना पडा है। समाज जब-जब आंदोलन की भूमिका में होता था, तब-तब एक कुशल नेता के रूप मे आदोलन की बागडोर प्राचार्य श्री के हाथो में दिखाई देती थी। समाज के इन आंदोलनों को अक्सर मुझे समाचार पत्र के लिए कवरेज करने का मौका मिला। इन आंदोलनों में मैंने प्राचार्य श्री की हजारों की उत्तेजक भीड़ को भी संयमित करने की कला का दर्शन किया।

यहाँ उल्लेखनीय है कि जनपद के ही नजदीकी गाँव जारखी से जैन मूर्तियाँ चोरी हो गई थीं। चोर पूरी वेदी ही साफ कर गए थे। इस प्रकरण पर जोरदार आंदोलन चला। जनपद के इतिहास में यह एक धमाकेदार आंदोलन था। इस आंदोलन ने ऐसी गति पकड़ी कि न केवल जनपद और मंडल, बल्कि समूचा प्रदेश हिल गया था। इस आंदोलन की एक-एक गतिविधि को मैंने कवरेज किया। जनपद के जिला मुख्यालय पर धरना-प्रदर्शन, रास्ता जाम और [illegible]ल जुलूस जैसे कठोर कदम उठाए गए। आंदोलन सें समूचा प्रशासन हिल गया था। आंदोलन के लिए जो संघर्ष समिति बनी, उसके संयोजक प्राचार्य श्री नरेंद्रप्रकाशजी ही थे। प्राचार्य श्री के एक आह्वान पर मंडलभर का जैन समाज आंदोलन में कूद पड़ा था। मैनपुरी, इटावा, एटा, कुरावली, आगरा और अलीगढ़ तक के लोग आंदोलन में सहभागिता निभाने आए। क़रीब महीने भर यह आंदोलन चला। इस आंदोलन में प्राचार्य जी में गजब की नेतृत्व-क्षमता दिखाई दी। उनका यह नेतृत्व निश्चित रूप से मिसाल बन गया। उनकी ही नेतृत्व-क्षमता थी, जिसके बलबूते यह आंदोलन इतना लम्बा खिंच गया।

जारखी आंदोलन की इस ज्वाला में प्राचार्य श्री द्वारा दिए गए भाषणों का शब्द-शब्द आज भी झंकार पैदा करता है।

[illegible] के सिखाने के सिद्धान्त हैं, वे रटने-बोलने के लिए नहीं हैं, बल्कि जीवन में उतारने के लिये हैं।
[illegible] सिद्धान्त हमारे आचरण का अंग नहीं बनते, तब तक वे अर्थ नहीं बतलाते।

मंच से जब वह हुंकार भरते थे तो अहिंसक जैन समाज का भी खून धधकने लगता था। साथ ही वह संयम का ऐसा जाल फेंकते थे कि बेकाबू भीड़ पलभर में संयमित हो जाती थी। आंदोलन और चेतावनी का अंतिम चरण था। हजारों की भीड़ टूण्डला चौराहे पर एकत्रित हो चुकी थी। आगरा-फीरोजाबाद मार्ग सुबह से ही जाम कर दिया गया था। मंडल भर का जैन समाज यहाँ मौजूद था। हाथों में काले झंडे और बाजुओं पर काली पट्टी बाँधे हजारों की भीड़ प्रशासन के खिलाफ नारा बुलंद कर रही थी। एल.आई. ओ. (गुप्तचर शाखा) के लोग कलक्टर और पुलिस कप्तान को बार-बार किसी अनहोनी की रिपोर्ट दे रहे थे। इस बीच प्राचार्य जी पर प्रशासन की तरफ से बार-बार दबाव बनाया जा रहा था, लेकिन प्राचार्य जी ने भी बड़ी दृढ़ता के साथ कह दिया कि जो बात होगी, सभा के बीच होगी।

दूसरी और हजारों की भीड़ मे गुस्सा इस कदर था कि कुछ भी होने से इंकार नहीं किया जा सकता था। इस दिन प्राचार्य जी के नेतृत्व के साथ-साथ आत्म विश्वास की मिसाल देखने को मिली। उन्होंने तत्कालीन एस.पी. श्रीपाद शिरोडकर को बड़े ही आत्म विश्वास के साथ भरोसा दिलाया कि मौके पर आ जाएं। प्राचार्य जी के भरोसे पर एस.पी. जैसे ही जाम-स्थल पर पहुंचे, भीड़ का गुस्सा भड़क उठा। एक बार तो ऐसा लगा मानो भीड़ एस.पी. को सबक सिखा ही देगी, लेकिन आंदोलन का नेतृत्व कर रहे प्राचार्य जी ने जैसे ही हुंकार भरी, भीड शांत हो गई। वास्तव में उस दिन समूचा प्रशासन भी प्राचार्य जी की नेतृत्व-क्षमता का कायल हो गया।

यहां मुझे यह कहने में कतई अतिशयोक्ति नहीं लगती कि इस आदोलन मे प्राचार्य जी ने उस बेमिसाल नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। जैसी भूमिका राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की आजादी की लडाई में थी, वही भूमिका प्राचार्यजी ही इस आंदोलन में रही। यही कारण था इतना बड़ा आदोलन बिना किसी हिंसा के कई दिन तक चलता रहा। प्राचार्य जी पहले ही कह चुके थे कि जो लोग हिंसा में विश्वास रखते हैं, वह उनके आंदोलन से दूर हो जाए।

उनकी इस नेतृत्व-क्षमता को देख कई बार मन में विचार भी आया कि समूचा जैन समाज सियासी रूप से नेतृत्व का अभाव महसूस करता है। क्यों न प्राचार्य जी इस कमी को दूर करे, लेकिन यह जानकर मायूसी भी होती है कि प्राचार्य जी ने राजनीति से दूर रहने के साथ-साथ जीवन में कोई भी चुनाव न लड़ने का भी फैसला ले रखा है। अभिनदन ग्रंथ के माध्यम से हम तो यह याचना करते हैं कि समाज-हित में प्राचार्य जी अपने इस संकल्प पर पुनः विचार करें और समाज की सियासी मजबूती को नेतृत्व प्रदान करें।

मेरे गुरू के रूप में – प्राचार्य नरेंद्रप्रकाश जी मेरे गुरु हैं और मुझे उनका शिष्य होने पर आपार गौरव है। लेखन के क्षेत्र में यूं तो कलम चलाने का शौक विधार्थी जीवन से ही था, लेकिन गुरु के रूप में प्राचार्य जी का निरंतर मार्गदर्शन मिलता रहा है। मुझे याद आता है वह दिन जब मैं हाईस्कूल में श्री पी० डी० जैन इंटर कालेज का छात्र था। प्राचार्य जी उस समय विद्यालय के प्रधानाचार्य थे। 15 अगस्त के जलसे की तैयारी चल रही थी। प्राचार्य जी ने मुझे अपने कक्ष मे बुलाया और 15 अगस्त पर भाषण तैयार करने को कहा। भाषण मैं खुद तैयार न कर सका। तब प्राचार्य जी ने मेरा भाषण लिखा। उस दिन पहली बार मंच पर माइक के सामने था। पहला भाषण लड़खड़ाता हुआ रहा। लेकिन प्राचार्य जी ने हिम्मत बंधाते हुए बार-बार मुझे मच पर बोलने का मौका दिया। लेखन में रुचि को देखते हुए एक वर्ष मुझे श्री पी.डी. जैन इटर कालेज की पत्रिका "अमृत" का छात्र संपादक भी बनाया गया। इससे भी मेरा आत्म विश्वास और बढ़ा।

समय-समय पर प्राचार्य जी मुझे जैन गजट आदि पत्र-पत्रिकाओं में लिखने को भी प्रेरित करते रहे। आज मुझे इस बात का बेहद गौरव है कि मैं प्राचार्य जी का शिष्य हूं।

□

वात्सल्य या प्रेम का उद्रेक करुणा से होता है। जहां करुणा नहीं, वहां प्रेम भी नहीं।

मानवीय मूल्यों के प्रबल पक्षधर

जैन समाज द्वारा विद्या-वाचस्पति सिद्धान्त-रत्न प्राचार्य पं० नरेन्द्र प्रकाश जी जैन का अभिनन्दन करना अपने आप में अभिनन्दनीय कार्य है। स्वतंत्रता के छप्पन वर्षो में निश्चित रूप से हमने बहुत सारी उपलब्धिया प्राप्त की हैं, पर दूसरी ओर जिस प्रकार नैतिकता, न्याय, ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, सिद्धान्तप्रियता की आज अवहेलना हो रही है, वह कष्टप्रद है, चिन्ता का विषय है। ऐसे वातावरण में मानवीय मूल्यों के प्रबल पक्षधर प्राचार्य जी को सम्मानित करने का यह प्रयास शीतऋतु में खिलती धूप, और ग्रीष्म ऋतु मे शीतल पवन के झोकों के साथ वर्षा की फुहार जैसी ही है। ज्येष्ठ भ्राता-तुल्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी मेरी दृष्टि में गांधीवादी गृहस्थ सन्त हैं, जिनका सान्निध्य सदा सुखदायक, आनन्द प्रदान करने वाला और जीवन को अर्थ प्रदान करने वाला होता है। नगर-निवासी और हमपेशा होने के फलस्वरूप उनके साथ कार्य करने के अनेक अवसर प्राप्त हुए। यहां मैं केवल दो अवसरों का उल्लेख कर रहा हू।

सन् 1977 का अध्यापक-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ ही था कि श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन को छोडकर फीरोजाबाद नगर के अग्रिम पंक्ति के सभी अध्यापक-नेता रमेशचन्द्र गुप्त, श्री रामप्रकाश 'उपमन्यु', श्री ओमप्रकाश सारस्वत, श्री शारदाप्रसाद "विमल" आदि जेल पहुंच चुके थे। आन्दोलन के सचालन का कार्य मेरे अनुभवहीन कमजोर कन्धो पर आ पडा था। इस गुरुत्तर दायित्व को मैं सफलतापूर्वक नहीं निभा सकता था, यदि उस समय जैन साहब का विवेकपूर्ण मार्गदर्शन, मित्रवत् सहयोग, भ्रातृवत् स्नहे, धूप में तरुवर की छाया-सी प्रेरणा, सदा सुवासित मुस्कान और उनकी सत्यप्रियता का कदम-कदम पर साथ न मिलता। आन्दोलन से सम्बन्धित हर स्थान पर एवं हर कार्यक्रम मे वे नियमित रूप से उपस्थित रहते। सुबह जेल जाने वाले अध्यापकों के लिए आयोजित सभा में उन्हें पुष्पहार पहनाने से लेकर उन्हें बस स्टेण्ड तक विदा करने तक वे साथ रहते थे।

अध्यापक-सगठन पुलिस-सगठन नहीं होता। 1969 के आन्दोलन के बाद से कुछ संस्थाए रूठी हुई थी और कुछ लोग आन्दोलन से अलग रहना चाहते थे। महात्मा गाधी बालिका विद्यालय तथा रेवतीदेवी कन्या विद्यालय की प्राचार्याओ को मनाने और तिलक विद्यालय एवं इस्लामियां इण्टर कालेज के अध्यापकों को सगठन से जोड़ कर आन्दोलनरत करने मे श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की कार्य-शैली, मुस्कराहट और प्रेरणा ने बहुत बडी भूमिका निभाई। गज गांगनी, कोटला, टूण्डला, एत्मादपुर, बरहन के अध्यापको को आन्दोलन में शामिल करना, जेल भेजना जैन साहब के सहयोग और सौजन्य के बिना सम्भव नहीं था। उस वर्ष सैकडों अध्यापक फीराजोबाद से जेल गए। जब-जब अध्यापक-आन्दोलन की बात चलेगी, जैन साहब के नेतृत्व को स्मरण किया जाएगा। प्रदेश-नेताओं के द्वारा बीच में ही आन्दोलन स्थगित किए जाने पर राष्ट्रीय पत्र 'अमर उजाला' में जैन साहब ने एक लेख प्रकाशित कराया था" सिपाही जीते, कमाण्डर हारे"। उनका वह मूल्याकन हमारे बड़े नेताओं के चरित्र पर बहुत खरा उतरता है। अध्यापको से मिलने आगरा एवं बाराबकी जेल मे वे हमारे साथ थे। आन्दोलन से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर वह अपनी हास्य-व्यंग्य शैली में देकर प्रश्नकर्ता को न केवल निरुत्तर, बल्कि उसके मन के बोझ एवं संशय को हलका कर देते थे।

सन् 2000 में फीरोजाबाद सिह सभा गुरुद्वारा में एक परिचय-प्रतियोगिता श्री गुरु गोविन्दसिंह जी" का आयोजन था। उसमें उनका सहयोग प्राप्त करने मैं उनके निवास पर गया। उन दिनों वे एक पुस्तक लिखने में अत्यन्त व्यस्त थे। फिर भी सहज मुस्कान के साथ उन्होंने अपनी स्वीकृति प्रदान की। उन्होंने समय निकालकर श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के जीवन पर प्रतियोगियों से प्रश्न भी पूछे और गुरूजी के जीवन पर अत्यन्त सुन्दर ढग से बोले भी जो लाभदायक रहा, उनका उद्बोधन सिक्ख संगत के लिए भी ज्ञानवर्धक रहा। वे जैन धर्म के ही नहीं, सर्व धर्म के मर्मज्ञ हैं, यह मैंने उसी दिन जाना।

—डा० राजेन्द्रसिह बग्गा

(पूर्व प्रवक्ता-एस. आर. के. कॉलेज), फीरोजाबाद

आज मुझे मिल गया वह आदमी

समय की शिला पर उत्कीर्ण रेखा की तरह जिन्होंने अपनी प्रतिभा, ज्ञान, सदाचार, वक्तृत्व, नेतृत्व, सम्पादन एवं लेखन से आम जन को प्रभावित कर खास स्थान प्राप्त किया है, उन पं० नरेन्द्रप्रकाश जैन, प्राचार्य जी को हम सब आदर्श विद्वान, वक्ता के रूप में देखते हैं, जानते हैं, मानते हैं। ऐसा कोई नहीं, जो उनसे मिले और प्रभावित न हो। माघकवि के अनुसार "लोकप्रियता के लिए प्रिय बोलने, सफलता के लिए अच्छा व सही बोलने की शक्ति और अच्छे व्यक्तित्व के लिए ये दोनों ही गुण चाहिए।" मुझे यह कहते हुए गर्व है कि वे हित, मित, प्रिय तो बोलते हैं ; किन्तु इसलिए नहीं कि उन्हें सफलता या लोकप्रियता मिले, बल्कि वे तो इसे एक सही आदमी का जरूरी कर्त्तव्य मानते हैं। हां, इससे लोकप्रियता और सफलता तो असंदिग्ध रूप से मिलती ही है। 'प्राचार्य जी' के रचनाकर्म से उनका व्यक्तित्व समझने में सहायता मिलती है। मैंने उनकी कुछ चन्द कविताएं पढ़कर मथकर उनमें उन्हें उनकी प्रवृत्तियों को खोजने का प्रयत्न किया है, कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

प्राचार्य जी की दृष्टि मे सफलता के लिए–

उजाला होना चाहिए
भीतर भी,
बाहर भी,
तभी बात बनती है
सफलता मिलती है।

यह उजाला आता है सद्विचारों से, उन्नत लक्ष्य से। बाह्य वैभव, भौतिकता की चकाचौंध से कौन उजला बन पाया है? अतः प्राचार्य जी बाह्य चकाचौंध से बचते रहे, सेठों की संगति और आतिथ्य भी उन्हें लुभा न सके। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि उन्होंने माना कि–

जरूरत है विवेक की
आचार में,
विचार में
व्यवहार में।

जिनके नाम के साथ प्रकाश जुड़ा है और विचारों में जो 'प्रकाशपुंज' हैं, वे सद्विचारों के 'प्रकाश' से बच भी नहीं सकते थे; और बचते भी क्यों? यही तो उनकी आस्था है, विश्वास है। उनकी विचारधारा उन्हीं के शब्दों में प्रतिध्वनित होती है–

विचारों में जो अच्छा हो
उसे स्वीकारो
जो बुरा हो
उसे बुहारो
जो निःसार हो
उससे बचो
जो सम्यक् हो
सही हो
उसमें रचो, पचो।

जब चित्त में करुणा के स्रोत फूटते हैं, तभी कोई जीव अपनी या दूसरों की रक्षा के लिए आतुर होता है।

धन और धर्म मनुष्य को विवश करते हैं कि यह किसी एक को चुने। यद्यपि धर्म से धन मिलता है और धन से धर्म किया जा सकता है; किन्तु जो लोग धनप्राप्ति के लिए ही धर्म करते हैं, वे धर्म के प्रताप और माहात्म्य को संकुचित करते हैं। 'प्राचार्य' जी इस स्थिति से चिन्तित हैं, बैचेन हैं। उन्हीं के शब्दों में–

आज के मनुष्य का
हर काम
चाहे वह प्रभु-पूजा का हो
या धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय का
अथवा दया का
दान का–
उन सबके पीछे धन की लिप्सा है।

इसलिए वे फूल से सीख लेकर मनुष्यता की गध से सुवासित धर्ममय जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं–

.....फूल से कुछ सीखना
तुम धर्म अपना आज मानो
आदमी हो,
आदमी की तरह
जीना जरा जानो।

अपनी कमजोरियां ठीक उसी तरह अपनी होती हैं, जिस तरह अपनी अच्छाईयां अपनी होती हैं; किन्तु हग अच्छाईयों को तो अपना मानते हैं लेकिन कमजोरियों को छिपा लेना चाहते है। हर आत्मा में परमात्मा छिपा होता हे, किन्तु जब हम दभ, दोष, पाप को स्वीकार कर प्रायश्चित न लेकर बहाने करके छिपाने लगते हैं, तब ईश्वरत्व से दूर हो जाते हैं। प्राचार्य जी की यही मान्यता इन पंक्तियों में दिखाई देती है–

हम अपने दंभ, दोष या पाप को
छिपाने के लिए
बहाने तलाशते हैं
और, इस तरह ईश्वरत्व से दूर
बहुत दूर होते जाते हैं।

'बेंजामिन फ्रेंकलिन' ने लिखा है कि "आस्था के नजरिए से देखने पर तर्क की कहीं गुंजाइश नहीं होती।" जो लोग जीवन में संयम, सदाचार और सदाशयता को नहीं अपना पाते, वे सही जीवन नहीं जी पाते। प्राचार्य जी ने अपने जीवन में सदाशयता, सादगी, सज्जनता, सदाचार को अपनाया है अतः जिनके जीवन में यह गुण नहीं है, उनसे उन्हें शिकायत है–

पर सीख सके
हम नहीं
आज तक
सदाचार से
संयम से
रहने-जीने का
सही-सलीका।

[illegible] सुख की नींद सोता है, जब कि असहिष्णु एवं क्रोधी व्यक्ति की रातें करवटें बदलते हुए बीतती हैं।

'कालाईल' के अनुसार-"छोटों के साथ सद्व्यवहार करके ही बड़ा मनुष्य अपने बड़प्पन को प्रकट करता है। प्राचार्य जी की यह विशेषता है कि वे अपने से छोटों को सदा ऊपर उठाने का प्रयत्न करते हैं। मै स्वयं जब जैन समाज की गतिविधियों में जुड़ा और विद्वत्संगोष्ठियों में सम्मिलित होने लगा तो मुझे प्राचार्य जी का प्रोत्साहन सदैव मिला, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

वे सेवाभाव को सर्वोपरि मानते हैं। उनकी दृष्टि में जो दुर्बल, असहायों की सेवा करता है वह सही आदमी है, जिसकी तलाश हर अच्छे आदमी को होती है। वे लिखते हैं–

"आज मुझे मिल गया
वह आदमी
जिसकी
हम सबको तलाश थी।
वह एक लाचार अपाहिज को
अपनी बांह का सहारा देकर सड़क पार करा रहा था।"

मुझे भी एक ऐसे ही आदमी की तलाश थी, जिसे मै स्वीकार कर सकूं। प्राचार्य जी की निरन्तर (नियमित) स्वाध्यायशीलता, सदा सहज मुस्कान, विचारों की सम्प्रेषण-क्षमता, अयाचक वृत्ति, निर्लिप्तता, वाक्चातुर्य, गुणग्राहकता और परमत-खण्डन-क्षमता, साधु-श्रद्धा, सादगी, सहजता, सद्विचारशीलता, सामाजिकता और जैनत्व के प्रति असीम निष्ठा को देखकर मन आनन्दित होता है और मुख से निकल पड़ता है–"आज मुझे मिल गया वह आदमी ;" जिसे लोग बडे आदर से 'प्राचार्य जी' कहते हैं।

'प्राचार्य जी' के अखिल भारतीय अभिनन्दन पर मेरी कोटिश· शुभ कामनाएं। हार्दिक बधाई।

–डॉ० सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'
प्रधान सम्पादक–पार्श्व ज्योति
मन्त्री-श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद,
बुरहानपुर (म० प्र०)

□

प्राचार्य जी के सम्मान में काव्यगोष्ठी : एक मधुर स्मृति

हमारा नगर फीरोजाबाद जहां अपने काच उद्योग के लिए प्रसिद्ध है, वहां अपने साहित्यानुराग के लिए भी जाना जाता है। यहां अनेक हिन्दीसेवी सस्थाएं हैं और उनके माध्यम से आए दिन विचार-गोष्ठियां होती रहती हैं। कविगोष्ठी के बिना तो कोई भी आयोजन फीका माना जाता है। नगर के प्रबद्ध मनीषी एवं जैनदर्शन के गहन अध्येता श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन सन् 1941 मे जब यहां की लोकप्रिय शिक्षा-संस्था श्री पी डी. जैन इण्टर कॉलिज के प्राचार्य-पद पर नियुक्त किए गए तो उनके सम्मान मे मानसरोवर साहित्य सगम ने भी एक सरस काव्यगोष्ठी का आयोजन किया। स्वतन्त्रता दिवस की सान्ध्य बेला में सम्पन्न इस काव्यगोष्ठी की अध्यक्षता नगर के कवि-शिरोमणि डा० मथुराप्रसाद मानव ने तथा संचालन वरिष्ठ कवि श्री मदनगोपाल सारस्वत ने किया। उपस्थित कवियो ने जहां विविध रसों में गुम्फित छन्द और सुनाकर सबको काव्यानन्द

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। रोते हुए रिसना, रिसते हुए रोना...

का रसपान कराया, वहां कुछ कवियों ने प्राचार्य जी के प्रति अपनी शुभ कामनाएं भी व्यक्त कीं। इस गोष्ठी का विवरण विस्तारपूर्वक संगम की एक पंजिका में किया गया है। इसी पंजिका से उद्घृ प्राचार्य जी के प्रति व्यक्त कुछ भावोद्गार यहा साभार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

सर्वप्रथम संयोजक महोदय ने नगर के यशस्वी कवि श्री गणेशलाल शर्मा 'प्रणेश' का नाम पुकारा। उन्होंने जैन साहब की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उनकी सेवा में चार पक्तिया समर्पित करते हुए कहा–

जिनके आते ही कॉलिज में आया अनुशासन है
जिनके द्वारा शिक्षकजन को मिलता अपनापन है
जिनकी वाणी सुनकर खिल जाता सबका मन है
श्री प्राचार्य नरेन्द्र जैन का शत-शत अभिनन्दन है

'युग-परिवर्तन' साप्ताहिक के सम्पादक श्री जगदीश 'मृदुल' से कुछ सुनाने का आग्रह किया गया तो उन्होन प्राचार्य जी का परिचय इन पंक्तियों के साथ प्रस्तुत किया–

भाई नरेन्द्रप्रकाश जैन प्राचार्य-प्रवर हैं
शिक्षक-नेता प्रिय संचालक सरस्वती-श्रीधर हैं
लेखन में हैं अग्रगण्य, वाणी से बड़े मुखर हैं
भारतीय विद्वत्समाज के, ये विद्वान् प्रखर हैं

सगोष्ठी में इटावा से राष्ट्रकवि श्री राधावल्लभ उपाध्याय भी सयोग से पधारे हुए थे। उनसे आशीर्वचन देने के लिए कहा गया तो उन्होंने सद्यःरचित एक दोहा सुनाया–

हैं शिक्षा के क्षेत्र में, अदभुत जिनके कार्य
जैन नरेन्द्रप्रकाश जी, हैं अनुपम प्राचार्य

श्री रणवीरसिंह 'वीर', जो नगर के प्रमुख गो-सेवक है, ने भी एक दोहा सुनाने की इच्छा व्यक्त की। अनुमति पाकर उन्होने प्राचार्य जी की शान मे कहा–

श्री प्राचार्य नरेन्द्रजी, धर्म धवल आधार
मन्त्रमुग्ध जन-जन करत, प्रवचन चारु विचार

श्री वीर जी के बाद संयोजक जी ने नगर के प्रसिद्ध गीतकार श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु' का आवाहन किया तो उन्होंने बिना किसी भूमिका के चार पंक्तियां सुनाकर सभी श्रोताओं का दिल जीत लिया–

कुहकता जिस तरह कल गान कोकिल बैन में है
सरसता जिस तरह काजल नवल के नैन में है
बने हैं मौन पर चर्चा इन्हीं की हर अधर पर है
न जाने कौन-सा जादू हमारे जैन में है

नगर के वरिष्ठ साहित्यकार एवं संगम के संस्थापक अध्यक्ष श्री उमेश जोशी ने श्री बालेन्दुजी की सराहना 'वाह-वाह' कहकर की तो सारस्वतजी ने उन्हीं से काव्यपाठ की प्रार्थना कर डाली। उन्होंने अपने चिर-परिचित अन्दाज में कहा–

बड़ों से मिली सीखें बड़े काम की होती हैं। उन पर अमल करना चाहिए।

जब सुना यह समाचार
कि तुम हुए प्राचार्य
तो ऐसा लगा
जैसे भोर के भाल पर
ऊषा ने टांक दिया है–
कुंकुम तिलक।
इन्हें देखकर आज
नगर का जन-जन
इन्हीं के गुण गा रहा है
मन में फूला नहीं समा रहा है।
देखकर इनके सम्मान को
सम्मान भी मुस्करा रहा है।
नरेन्द्रजी! तुम बढ़े चलो
नई सुबह का सूरज
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

श्री जोशीजी की इन पंक्तियों का स्वागत उपस्थित साहित्यप्रेमियों ने जोरदार करतलध्वनि के साथ किया। सयोजक जी किसी अन्य कवि का नाम पुकारते, उससे पूर्व श्री श्रीभगवान गुप्त एडवोकेट ने संयोजक श्री मदनगोपाल सारस्वत से प्रार्थना की कि वह भी अपनी रचना से सबको आनन्दित करें।

श्री सारस्वतजी ने पहले तो प्राचार्यजी के कुशल नेतृत्व से सम्बन्धित कुछ संस्मरण सुनाए, फिर यह शुभ कामना व्यक्त की–

हैं प्राचार्य नरेन्द्रदेव से नूतन सपनों वाले
इनके संरक्षण में पीलो ज्ञानामृत भर प्याले
राष्ट्र, धर्म, मानवता की सेवा का लक्ष्य बनाओ
अभिनन्दन स्वीकार करो 'नर-इन्द्र' सदा सुख पाओ

यह चतुष्पदी सुनाने के साथ ही पुनः संयोजन का भार संभालते हुए उन्होंने कहा कि मै शुभ कामनाएं समर्पित करने के लिए श्रद्धेय अध्यक्षजी से निवेदन करूं, उससे पूर्व श्री पी. डी. जैन कालिज के ही संस्कृतज्ञ श्री रमेशचन्द्र मिश्र साहित्याचार्य से कुछ सुनाने का आग्रह कर रहा हूँ। श्री मिश्रजी ने संस्कृत में रचित दो श्लोक सुनाकर सबकी प्रशंसा अर्जित की–

प्राचार्य नरेन्द्र जैनोऽपि कुशल वक्ता विचक्षणः
दयाधर्मादिभावनां प्रचाराय चिकीर्षति
विद्यालयीयनौकाया नाविकः कर्मतत्पराः
ज्ञानोत्कर्ष-विकाससाय एतैः सततं विचेष्टते

अन्त में अध्यक्ष-पद के दायित्व का निर्वाह करते हुए कवि-शिरोमणि डा० मथुराप्रसादजी 'मानव' ने निम्न छन्द पढ़कर अपने शुभाशीष प्रदान किए–

युग-युग ज्योति आन-बान की जलाते रहो,
युग-युग गीत जिन्दगी के भव्य गाओ तुम'।

भगवान महावीर ने कहा है-कि धर्म वह है, जो चित्त को शान्त करे, इच्छाओं का शमन करे और हमारी सहन-शक्ति को बढ़ाये।

युग-युग सींचो मंजु वाटिका मनुष्यता की,
युग-युग स्वास्थ्य-सुधाधार में नहाओ तुम।
युग-युग राजे उमा, रमा अनुकूल रहे,
युग-युग वरदा प्रसाद प्रचुर पाओ तुम।
युग-युग दीपक जलाते रहो स्नेह-भरे,
युग-युग सुयश-पताका फहराओ तुम।।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने मधुर मुस्कान का मधु-वर्षण करते हुए सबके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त किया। 'अमर उजाला' में प्रकाशित उनके राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे सम्मान के समाचार ने इसकी स्मृति को ताजा कर दिया और हम उसका यह विवरण प्रस्तुत करने से स्वय को रोक न सके।

प्राचार्य जी चिरायु हों और इसी तरह साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्र मे नए-नए कीर्तिमान स्थापित करते रहे, यही हम सबकी मगलेच्छा है।

–रघुवीरसिंह 'टैनी', फीरोजाबाद
(मन्त्री-मानसरोवर साहित्य संगम)

□

श्रावकत्व के पारसमणि

व्यक्तित्व के गवाक्ष से– अंग्रेजी-भाषा में एक शब्द बहुत लम्बे समय से आदर प्राप्त कर रहा है, जिसके माध्यम से लोग किसी विशेष-व्यक्तित्व का परिचय देकर संतुष्टि पाते हैं। वह है-"वर्सटाइल जीनियस"। किसी के विषय में यह शब्द लिख दिया जाना, उसके अत्यन्त उच्च एवं परिष्कृत परिचय का प्रतीक माना जाता है।

हिन्दी जैसी महान-भाषा में उक्त शब्द का अर्थ है-बहुमुखी प्रतिभा। उक्त शब्द मे गर्हित सामर्थ्य और क्षमता को धारण करने वाले व्यक्तित्व देश में, बहुत ही कम हैं। जो है, जितने हैं, उनमें एक हमारे प्राचार्य महोदय भी हैं, यह समग्र जैन समाज के लिए गौरव की बात है।

एक सत्य आप भी जान लें, उनके गुण/कला आदि बतलाते समय हमे अनेक बार "बहु" उपसर्ग का उपयोग करना पडता है। जैसे, वे बहुभाषी तो हैं ही, बहुभाषज्ञ भी हैं। "बहुगुण" सम्पन्न हैं तो "बहुसक्षम" भी है। अनेक पदो पर विराजमान उनके अनुकूल कर्त्तव्यपूर्ण करने वाले वे बहुपद हैं। स्वाभाविक है कि जब बहुपद हैं तो "बहुदर्शी" भी हैं। बहुत बड़े क्षेत्र में कार्य करते और कार्य देखते हुए, वे "बहुपद" ही मिले हैं, यह समाज का "बहुभाग्य" है। वे सिद्धान्त के प्रशस्त पथ पर सदा एकमत मिले हैं, अतः उनके पार्श्व मे सदा "बहुमत" का नद बहता पाया गया है। फलतः किसी सस्थादि के पद पर मत गिनवा कर नहीं, बहुमत से ऊपर सर्वसम्मति से शोभा बिखराते रहे हैं। यों वे मनोनीत पदों पर अधिक रहे हैं।

वे "बहुश्रुत" विद्वान है। फलतः उनका वर्णन "बहुविस्तीर्ण" है। पर यहां संक्षिप्त में देने का प्रयास है। "बहुविद्" प्राचार्यश्री को जो स्थायी-भाव का "बहुमान" उपलब्ध हुआ है, यह उनके पत्रकार स्वरूप को जाता है। वे स्वतंत्र भारत

[illegible]

में उभरे सामाजिक और जातिगत या धर्मगत पत्रकारिता के सीमित-क्षेत्र में रहकर भी, राष्ट्रीय-स्तर पर अपनी छवि सँवारने में सफल रहे है। कुशल सम्पादक, महान रचनाकर्मी, उससे बड़े रचनाधर्मी, मनीषी, अनेक पत्रिकाए, स्मारिकाए और अभिनंदन ग्रन्थों का विद्वतापूर्ण सम्पादन किया है उन्होने।

उनका लेखनकर्म उन्हें एक तरफ गम्भीर साहित्यकार का परिचय प्रदान करता है तो कलम का चुटीलापन स्थापित व्यग्यशिल्पी इंगित करता है। निबधो ने उन्हें श्रेष्ठ निबंधकार घोषित किया है, तो काव्य कृतियो ने काव्य-मर्मज्ञ।

प्रवचनकार के रूप मे वे देश के हर गॉव-शहर में प्रसिद्ध हैं। तर्कपूर्ण, सिद्धान्तपूर्ण और गवेषणापूर्ण होते हैं उनके प्रवचन। वे छात्र जीवन से ही प्रवचन कर रहे हैं, अब तो सर्वोच्च मंच की शोभा के प्रतीक हैं। उनके प्रवचनों/भाषणों/सम्भाषणो/वार्ता के पार्श्व में उनका स्वर और अध्ययन ही उनका पाथेय है। उच्च ग्रथों का तलस्पर्शी ज्ञान तो उनकी वाणी को सुशोभित करता है। जब वे साधु-सतों से मत्रणा करते हैं तो साधुओ को सचेष्ट होकर वार्ता करते पाया गया है, यह उन्हे श्रेष्ठ प्रज्ञावान सिद्ध करता है– प्रज्ञपुरुष' विज्ञपुरुष' विद्वत्प्रवर'

बचपन मे ही एक और गुण का प्रार्दुभाव हो गया था उनमें, वह था–मंच-सचालन का ओर वाद-विवाद प्रतियोगिता का। गुण इतना अधिक बढ़ता गया कि बाद में वे उसी गुणबल के कारण टेलीविजन की दुनिया मे, बिना कोई पूर्व तैयारी के, लाइव टेलीकास्ट मे उद्घोषक और सचालक की सराहनीय सफलता भी पा सके। जिन पाठको ने सन् १९९३ मे सम्पन्न, प्रसिद्ध तीर्थ श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) मे भगवान बाहुबली के महामस्तकाभिषेक का दृश्य टी. वी में देखा होगा, वे मेरे कथन से सम्मत मिलेगे। आज जैन समाज के बीच, टी वी. की दुनिया में बेस्ट-एंकर का खिताब वे जेब मे रख कर चल रहे हैं, यह पृथक बात है कि टी. वी के लिए समय और शौक नहीं है उन्हे।

वे उक्त वर्णित किसी भी रूप में मिलें, उनके चेहरे पर शिरोमणि पडित का वैदुष्य सदा विराजित मिलता है। कहे, उनकी कोई भी विधा पाडित्यहीन नही है। इसी तरह अनेक सस्थाओ के भरतार या कर्णधार के रूप में प्रसिद्ध हो जाने के बाद भी, वे छात्रों के अत्यत योग्य गुरू/शिक्षक भी सिद्ध हुए है। वे एक नितान्त धार्मिक श्रावक भी हैं, हमारे विशाल समाज के तो एक महान राष्ट्रप्रेमी भी। हा, राष्ट्रभक्त। मैं देख रहा हू कि वे संस्कृति के संरक्षक की विशाल छवि निर्मित कर चुके है, तो आगम के प्रहरी की निर्दोष भूमिका भी निभा रहे हैं। कट्टर मुनिभक्त हैं, पर अधभक्त नहीं। कोई व्यक्ति मुनि, शास्त्र या तीर्थकर के विरूद्ध कुछ कहे, यह उन्हें सहय नहीं है, तुरंत उनकी वाणी और लेखनी चल पडती है। सो उन्हें मानवीय चेतना का सम्वाहक कहने से, कलम को सुख मिलता है। श्रुत-सम्वर्धन और तीर्थ-रक्षण की दिशा मे भी वे बहुत आगे निकल चुके हैं। समाज और सस्थाओं मे वे श्रेष्ठ संगठक सिद्ध हो चुके हैं, तो घर और शाला मे योग्य प्रशासक भी।

सच, यदि कोई विदेशी विद्वानो का समूह आकर कहे कि जैन समाज का "राष्ट्रीय-व्यक्तित्व" देखना चाहते हैं, तो उन्हे प्राचार्य महोदय के दर्शन कर ही सतुष्टि मिलेगी। वे राष्ट्रीयता का सुपुष्ट व्यक्तित्व धारण करते हैं। है श्रेष्ठ नागरिक।

लेख पूर्णता की ओर है पर उनके विषय में अनेक कथन अभी लिखना हैं कि वे एक योग्य बेटा सिद्ध तो हुए ही अपने माता-पिता के, वे एक योग्य पिता भी सिद्ध हो सके हैं अपनी संतान के। घर मे योग्य। परिवार मे योग्य। समाज मे योग्य। ऐसी अनेक योग्यताओं से अभिमंडित योग्य पुरुष का मैं हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

पारिवारिक गवाक्ष से– जिन सौभाग्यशालियो ने प्राचार्यश्री के पिताश्री को कभी देखा है, वे जानते है कि वे सादगी का स्वरूप धारण करते थे। प्रतिष्ठा समारोहों में अपनी प्रज्ञा और प्रवचनों के वैशिष्ट्य के लिए जाने वाले उस महान शास्त्री का नाम श्री रामस्वरूप था। जाहिर है जिस स्वरूप में राम होंगे, वह सादगीपूर्ण तो होगा ही। काव्य कला में निष्णात, समाज-प्रिय कृतियो के गणमान्य लेखक पिताश्री रामस्वरूप जी अपने पिता से प्राप्त संस्कारों पर गये थे, अत. उनके पुत्ररत्न पं. नरेन्द्र प्रकाश जी उनसे भिन्न कैसे हो सकते थे, उन्होंने अपने पिता और पूर्वजों से प्राप्त संस्कार और बढ़ाये और अपना जीवनवृत्त सजाया।

धर्म न वचनों में मिलता है और न शरीर में। धर्म तो परिणामों (भावों) में मिलता है। अगर हमारे भावों में धर्म है तो हम सुख और शान्ति की दिशा में अपने कदम बढ़ाने में समर्थ होंगे।

जिन्होने पं. नरेन्द्र प्रकाश जी की 4 वर्ष की उम्र का चित्र देखा है, उन्होंने उनके नेत्रो को कुछ तलाशता सा देखा होगा। वह बालसुलभ तलाश/जिज्ञासा आज भी उनके नेत्रकमलों में विराजमान है। बालक नरेन्द्र सफेद कालर युक्त नीली शर्ट पर एक 'सैनिक-स्वरूप' की झलक प्रदान करते थे। सैनिक माने प्रहरी। सच वे आज भी प्रहरी है—धर्म, ज्ञान, साहित्य और संस्कार के प्रहरी। मुनि और तीर्थ के प्रहरी। सम्पादन और संचालन के प्रहरी।

उनकी माताश्री पूज्य चमेलीबाई जो तब अल्प वय की थी, अपने प्राणप्यारे नैहर से विदा लेकर प्राणप्यारे पति पं. रामस्वरूप जी के पास आई तो क्षीरसागर मे रमी हुई लक्ष्मी की तरह वे उनकी सेवा-सुश्रूषा मे रम गई। प्रारभ से ही अत्यत दयालु थीं, विनम्र और सहनशील, अत. पडितजी विनोद मे उन्हे 'मोम सी तरल हृदय वाली गृहणी' कहा करते थे। व्रतोपवास मे अग्रणी रहने वाली पू. चमेली जी घर-परिवार-समाज मे पवित्रता और गरिमा की मानक बन गई थीं। यद्यपि तन दुबलेपन के कारण, उन दिनो बहुत कमजोर दिखता था, परन्तु आत्मा मे अजेय पुरूषार्थ लेकर जीवन निर्वाह करती थी।

नरेन्द्र जी अपने पूज्य पिताजी को बोलचाल की भाषा मे घर बाहर, सदा, "बाबूजी" कह कर पुकारते थे। बाबूजी, जो अब हमारे बीच मे नही है, के शिक्षा गुरु कोई साधारण विद्वान नहीं थे, स्वनामधन्य, पंडित शिरोमणि श्री मक्खनलाल जी शास्त्री थे जिनकी प्रज्ञाछाया मे अनेक साधु-सतों ने ज्ञानोपार्जन किया था।

पं. रामस्वरूप शास्त्री उ.प्र. के ग्राम जटौआ में रहते थे, वहा ही प्राचार्यश्री का जन्म हुआ था। पिता के श्रेष्ठ ज्ञान के बाद पुत्र की तीव्रतम प्रज्ञा देखकर कहना पड़ा कि जटौआ ग्राम का नाम उन्होंने सार्थक कर दिखाया, जो व्यक्ति जटौआ मे ज्ञान जट ले, प्राप्त कर ले, वह कहलाया जटौआ का नागरिक/श्रावक।

बाबूजी ने जटौआ से जीने का ज्ञान तो पाया ही था, मरण का मत्र भी पाया था, यही कारण है कि श्रावकत्व को श्रेष्ठ मुकुट पहिनाने मे सफल हो सके थे। अनेक उपचारो और डॉक्टरों-अस्पतालों का घेरा तोड वे निजघर (फिरोजाबाद) में आकर 29 दिसम्बर 1983 को प्रातःकाल 6 बजकर 10 मिनट पर पद्मासन मे बैठे, फिर चटाई पर लेटे और फिर कर दिया— देह का त्याग। शरीर त्याग से पूर्व, वस्त्र त्याग करना नही भूले थे।

इसी तरह प्राचार्यश्री की पू. माता जी भी वर्ष भर पूर्व, 29 अक्टूबर 1982 को, समाधिपूर्वक ससार से पार की ओर गई थीं। ऐसे महान दम्पत्ति का सुत ज्ञान और गृहस्थ तप की हर ऊचाईयाँ क्यो न स्पर्श करेगा?

प. नरेन्द्रप्रकाश जी का विवाह सन् 1956 में श्रीमती राजेश्वरी बाई जैन से सम्पन्न हुआ था, वे एटा निवासी सु-श्रावक श्री जयकुमार जैन की तनया थीं, सुश्री राजेश्वरी तब मात्र 18 वर्ष की थी।

शर्मीली, संकोची, निराभिमान व्यक्तित्व की धनी वह महान कन्या जब वधु बन कर फिरोजाबाद आई तो एटा नगर मे एक ही बात गूँज रही थी—बेटी सुहागनगरी—फिरोजाबाद गई है, वह सदा सुहागन रहेगी।

कालान्तर मे नव दम्पत्ति को सन्तान-सुख की प्राप्ति हुई, पहले जन्मे श्री भुवनेन्द्र जैन जो बडे होकर एम. काम हुए और व्यवसाय रत् हो गये। दूसरे पुत्र श्री उपेन्द्र कुमार हैं, जिन्होंने सहजता से बी. काम कर व्यवसाय को महत्व दिया। तृतीय पुत्र श्री जिनेन्द्र कुमार भी बी. काम कर व्यवसाय को समर्पित हो गये। समयानुसार सभी की शादियां भी हो चुकीं हैं। प्राचार्य-दम्पत्ति को पुत्रियां भी तीन हुई जो प्रतिभा, कल्पना और अलका के नाम से प्राचार्यगृह की सुरभि बनीं। समुचित शिक्षा-दीक्षा के बाद उनके भी विवाह हुए, प्रथम पुत्री बी.ए. के बाद बाँदा ब्याही गई, द्वितीय बी.ए. के पश्चात् दिल्ली और तृतीय एम.ए. (मनोविज्ञान) के बाद अहमदाबाद।

अब उम्र के अंतिम पड़ाव में आदरणीय प्राचार्यश्री और आदरणीया राजेश्वरी जी, 104 नई बस्ती, फिरोजाबाद स्थित मकान में ज्ञान का आराधन करते हुए ईश्वर-भक्ति में लीन हैं। भाभी जी (आदरणीया राजेश्वरी जी) तो प्रातः जिनवाणी

भगवान महावीर ने मन की निर्मलता को ही सुखी जीवन का आधार कहा है। चित्त-शुद्धि ही किसी व्यक्ति के धार्मिक होने की एकमात्र कसौटी है।

ले स्तुति और स्तोत्रों का पाठ करतीं हैं, फिर मंदिर जाकर पूजा-अर्चना। लौट कर सात्विक (शोध का) भोजन करना-कराना। सन् 1977 से कंदमूल आदि का त्याग है, रात्रिभोजन तो बचपन से ही स्वीकार नहीं किया। बाद में पानी का भी परित्याग कर दिया। फलाहार, दूध, मेवा, आदि का त्याग किए हुए भी सदी का चौथा अंश बीत चुकाहै। अब तो पौत्र-पौत्रियों के साथ खेलना होता रहता है और खेलखेल में सस्कार प्रधान-शिक्षा का वपन। तीर्थयात्रा का बहुत मन रहता है। प्राचार्यश्री यदि सालभर तीर्थयात्रा करे तो वे सालभर पथानुगामी बन प्रसन्न रह सकती हैं। उनकी प्रसन्नता तीर्थो में तो निहित है ही, वह पति-चरणों में भी उतनी ही है। श्रावकत्व के पारसमणि प्राचार्यश्री और उनके सम्पूर्ण परिवार के प्रति शुभकामनाएँ।

—सुरेश सरल, जबलपुर

□

सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति – प्राचार्यजी

सम्माननीय प्राचार्यजी से मेरा परोक्ष परिचय तो काफी पूर्व से था किन्तु प्रत्यक्ष परिचय का सौभाग्य लगभग तीस वर्ष से भी कुछ अधिक वर्ष पूर्व राजस्थान के मदनगज-किशनगढ़ में श्रीमजिजनेन्द्र पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर आयोजित अ0 भा0 दि0 जैन विद्वत् परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक के समय प्राप्त हुआ। उस समय मैं जैन विश्व भारती लाडनू (राजस्थान) मे जैन विद्या और प्राकृत विषय के प्राध्यापक के रूप मे कार्यरत था। यही पर उस समय पूज्य आचार्यकल्प श्रुतसागरजी, मुनिश्री वर्धमानसागर जी आदि अनेक मुनिराज तथा पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज ससघ विराजमान थे। उस समय पूज्य आ. श्री विद्यासागर जी के गुरू पूज्य आ. श्री ज्ञानसागर जी महाराज के विषय मे सभा आयोजित थी। सभा मे पूज्य पं कैलाशचंद जी शास्त्री, पं श्री जगन्मोहनलाल जी, प श्री नाथूलाल जी शास्त्री, प श्री पन्नालाल जी आदि अनेक विद्वानों के वक्तव्यों के साथ ही सभी विद्वानों मे प्राचार्य जी के ओजस्वी व्याख्यान की काफी प्रशसा और चर्चा रही। दो-तीन दिन आपके विशेष सान्निध्य से मैं बहुत प्रभावित भी हुआ। तब से लेकर अब तक आपकी विशेष आत्मीयता, प्रेरणाये तथा निरन्तर आगे बढ़ने का प्रोत्साहन मुझे बराबर प्राप्त है।

आपके मन में जहाँ सभी विद्वानो के प्रति सम्मान और उनकी अभ्युन्नति का अच्छा भाव सदा रहता है, वहीं नये विद्वानो को आगे बढते रहने हेतु विशेष प्रोत्साहित करते रहते की भी विशेष चाह सदा रहती है। मै वह प्रसंग कभी भूल नहीं सकता, जब श्रवणबेलगोल मे महामस्तकाभिषेक के अवसर पर आयोजित विशाल जैन विद्वत्सम्मेलन में आये सभी विद्वानों की मस्तकाभिषेक प्रत्यक्ष देखने की तीव्र अभिलाषा "पास" (अनुमति पत्र) के अभाव में क्षीण दिखी, तब आपने मेला व्यवस्थापको के उच्चाधिकारियो के समक्ष सभी विद्वानों को पर्वत पर जाने हेतु ससम्मान रूप में "पास" देने की बात रखी और इस हेतु प्रयास किया, इसी का सुफल था कि सभी विद्वानो को प्रथम दिन ही मस्तकाभिषेक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार आप सम्पूर्ण विद्वत् समाज के उचित सम्मान हेतु सदा तत्पर तो रहते ही हैं, उनके योगक्षेम का भी आप बराबर ध्यान रखते है।

"जैन गजट" में आपकी निर्भीक लेखनी से लिखित समाज, सस्कृति एवं श्रमण संघ आदि से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर जो समसामायिक सम्पादकीय लेख पढ़ते हैं, तब "जैन संदेश" के तत्कालीन सम्पादक स्व. गुरुवर्य पं. कैलाशचन्द जी शास्त्री के सम्पादकीय लेखो की याद आ जाती है। पूज्य पं. जी की तरह आप भी उत्कृष्ट वक्तृत्व कला में पारंगत प्रभावी कुशलवक्ता और सहज तथा क्रान्तिकारी श्रेष्ठ कुशल लेखन शैली—इन दोनों कलाओं में समान रूप में प्रतिष्ठित और सुविख्यात हैं। "सादा जीवन उच्च विचार" आपकी आदर्श जीवन शैली है।

जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियाँ शान्ति से निर्भय होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषायरूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकता।

ऐसे यशस्वी विद्वानों से सम्पूर्ण विद्वत् समाज गौरवान्वित होती है। मैं समादरणीय प्राचार्य जी के इकहत्तरवें बसन्त में मंगल प्रवेश पर आयोजित इस अभिनन्दन के अवसर पर उनके यशस्वी दीर्घजीवन की मंगलकामना करता हूँ।

-डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, अध्यक्ष
अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद

□

एक प्रकाश, जो परिवेश को तेजस्वी बनाता है

1895 से निरन्तर प्रकाशित जैन समाज के प्राचीनतम और सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक "जैन गजट" के यशस्वी सम्पादक, जैन विद्वानों की सबसे पुरानी प्रतिनिधि सस्था 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष एवं श्री पी डी. जैन कालेज, फीरोजाबाद (उ प्र.) के अवकाश प्राप्त प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अखिल भारतीय ख्याति के ऐसे जैन विद्वान है जिनकी बात को सम्पूर्ण देश के जैन समाज का जन साधारण हो अथवा श्रेष्ठि वर्ग, विद्वदजन हों या साधु-साध्वी समाज सभी बडे आदर और सम्मान से सुनते है।

प्राचार्यजी जैनधर्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान ही नही अपनी प्रकार के प्रखर और प्रभावशाली प्रवक्ता हैं। गागर में सागर की उक्ति के अनुरूप थोडे में बहुत कुछ कह डालने की कला मे प्रवीण है। सभा-सम्मेलनादि के कुशल सचालन मे अत्यन्त सिद्ध हस्त हैं। विलक्षण सिद्धता और विचक्षण वक्तृत्व कला के धनी नरेन्द्रजी एक सुयोग्य लेखक और श्रेष्ठ सम्पादक भी हैं। उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, स्मारिकाओं तथा अभिनन्दन-ग्रंथो का सफल सम्पादन किया है। उनके सम्पादन काल में 'जैन गजट' के प्रसार-प्रचार मे अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इसका कारण यही है कि भाई नरेन्द्र प्रकाश जी एक सुविज्ञ, स्वाध्यायी, साहित्य मर्मज्ञ, स्वतन्त्र चिन्तक मनस्वी पण्डित है।

नरेन्द्रप्रकाश जी से मेरा निकट सम्पर्क और सम्बन्ध पूरे छः दशक पुराना है। वे मेरे गुरुभाई है। उनके पिता पूज्य प. राम स्वरूप जी शास्त्री ने श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन विद्यालय मे मुझे धर्म पढ़ाया था। प्राचार्यजी से मेरे सम्बन्ध के रूप अनेक हैं। वे मेरे अग्रज हैं, और अनुज भी। आयु की दृष्टि से मै उनसे बड़ा हूँ, इसलिये वे मेरे अनुज हैं। किन्तु धर्मशास्त्रो के असीम ज्ञान नेतृत्व के गुण और वक्तृत्व कला के क्षेत्र में मुझसे कोसो आगे होने के कारण वे सर्वथा मेरे अग्रज है और रहेगे। हम दोनों जहाँ सहपाठी, सहकर्मी और सहयोगी रहे है वहीं दो दशक वे मेरे अधिकारी और मै उनका अधीनस्थ भी रहा हूँ। किन्तु किसी भी स्थिति मे हम लोगों के व्यवहार मे कभी कोई फर्क नहीं आया, कोई असामान्य स्थिति नहीं आई। कारण-उनका सद्व्यवहार रहा।

जरा गौर से नजर डालें तो हम दोनों के जीवन में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं। हम दोनो का जन्म का वर्ष 1933 है। दोनों की प्राथमिक शिक्षा एक ही स्कूल में हुई। हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ हम दोनों ने स्थानीय एस. आर. के. इण्टरमीडिएट कालेज से उत्तीर्ण की। बी. ए. तथा एम.ए. की उपाधियाँ दोनो ने टीचर कैंडीडेट के रूप में आगरा विश्व विद्यालय से प्राप्त कीं। कालेज प्रबन्धन की पहल पर दोनो को सेवाकालीन एल.टी. प्रशिक्षण प्राप्त करने भेजा गया। एस. आर. के. इण्टर कालेज में हम दोनों के गुरु रहे और बाद में श्री पी. डी जैन कालेज के संस्थापक प्रधानाचार्य बने श्री हाकिम सिहं उपाध्याय के आग्रह पर ही दोनो ने इन्टर परीक्षाये उतीर्ण कर पी डी. जैन कालेज में सहायक अध्यापकों के रूप में जीवन प्रारम्भ किया। मैंने सन् 1951 से और नरेन्द्र जी ने 1953 से। नौकरी के लिये जहाँ लोगों को अनेक पापड़ बेलने पड़ते हैं, सिफारिशों का जुगाड़ भिड़ाना पड़ता है और सेवा योजको की हथेली चिकनी करनी पड़ती है वहाँ हम दोनों

विज्ञान, मान-प्रतिष्ठा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का घमण्ड कभी नहीं करना चाहिए। ये सभी नश्वर हैं।

को ही कोई विशेष योग्यता न होने पर भी 'गुरु कृपा' से बिना किसी प्रयास के सहज ही सुलभ हो गई। यही नही और आगे अतिरिक्त योग्यताऐ (बी.ए., एम.ए, एल.टी.) अर्जित करने के लिये आवश्यक अनुमति तथा इन परीक्षाओं के अध्ययनार्थ कीमती पुस्तकें खरीदने के लिये आर्थिक मदद जुटा देने में भी उपाध्यायजी ने पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया। योग्यता प्राप्त कर लेने पर प्रोन्नति के लिये हम लोगों को कभी किसी की टहलकदमी या विनती-चिरौरी नही करनी पड़ी। ज्यों-ज्यों योग्यता मे वृद्धि होती, गई त्यो-त्यों अपेक्षित ग्रेड और वेतनवृद्धि सहज और स्वतः होती गई। इसे हम लोग देव-कृपा, गुरू-प्रसाद, कॉलेज प्रबन्ध-समिति का स्नेह और सस्था के प्रति की गई अपनी निष्ठापूर्ण सेवा का सुफल मानते है।

पूरे अठारह वर्ष (12 वर्ष सहायक अध्यापक और 6 वर्ष प्रवक्ता-हिन्दी) शिक्षक के रूप मे सेवारत रहने के उपरान्त 1971 में नरेन्द्र प्रकाश जी इसी सस्था के प्रधानाचार्य चुन लिए गए। इस जमाने मे किसी कालेज के प्रिंसीपल का पद फूलों की सेज नहीं कॉटो की डगर पर चलने के समान कठिन और जोखिमभरा था। परन्तु प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश ने इस प्रशासनिक पद के उत्तरदायित्व का पूरे 21 वर्ष बडी कुशलता और सफलता से निर्वाह किया। उनके कार्यकाल की अवधि में कॉलेज में शैक्षिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और खेल-कूद आदि के आयोजनों की धूम मची रहती थी उन्होने ने केवल पूर्व परम्पराओ का निर्वाह ही किया बल्कि स्वयं भी कई स्वस्थ परम्पराऐं डालीं।

प्राचार्यजी अपनी इस सफलता के दो कारक मानते है–एक तो सहयोगी अध्यापको द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना (टीम स्पिरिट) के साथ काम करने की प्रवृति और दूसरे कालेज प्रबन्ध-समिति द्वारा संस्था के आतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप न करने की नीति। लेकिन हकीकत यह है कि इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण वे स्वयं, उनकी कोमल प्रकृति और सदव्यवहार है। प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाने पर भी उन्होंने अपने प्रभुत्व का प्रदर्शन कभी नही किया। वे सदैव शिक्षको के हित चिन्तक, शिक्षक संघ के सक्रिय, समर्पित संगठनकर्त्ता और प्रथम पक्ति के नेता रहे है। प्राचार्य पद पाकर भी वे एक शिक्षक ही बने रहे।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश एक ऐसे वक्ता और विद्वान है जिनकी देश भर के जैन समाज में आयोजित होने वाले सभा-सम्मेलनो समारोह-उत्सवो और पर्यूषण पर्व आदि के अवसरों पर भारी मांग रहती है। इस सम्बध में वे बस, रेल, कार और वायुयान तक से भारत के कोने-कोने तक की यात्रा कर चुके है। कई संस्थाओ द्वारा एकाधिक बार विदेश यात्रा पर जाने के प्रस्ताव भी उनके सामने आय है किन्तु किसी नियम सीमा मे आबद्ध होने के कारण उन्होंने इन्हे मंजूर नहीं किया हे। वर्तमान समय में ऐसे नियम की प्रासंगिकता समझ मे नहीं आती। यदि वे यात्रा पर जा सके तो धर्म के प्रचार-प्रसार और प्रभावना में ही वृद्धि होगी।

प्राचार्यश्री 'सादा जीवन उच्च विचार' की मूर्तिमान व्याख्या है। उनका जीवन देश और समाज के लिये एक आदर्श उदाहरण है। विशुद्ध भारतीय वेश-भूषा अपनाकर उन्होने हिन्दी को ही धन्य नहीं किया अपितु अपने राष्ट्रप्रेम का भी परिचय दिया है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति के विपरीत वे ऐसे उपदेशक है जिनकी कथनी और करनी मे अन्तर नही होता। उनका जीवन शालीनता, सहिष्णुता, सद्भाव, सहयोग, साहचर्य, सन्तोष पूर्ण मनःस्थिति, मेल-मिलाप एवं समन्वयवादी प्रकृति के व्यक्ति का जीवन है। नरेन्द्रजी निर्लोभ, निस्वार्थ और निस्पृही हैं। आज के भौतिकवादी युग में, जहां लोग धन को ही भाई-बाप और कुर्सी से चिपके रहना ही अपना धर्म मानते हैं वहीं प्राचार्यजी ने सेवानिवृति की अपनी निर्धारित समयावधि से दो वर्ष पूर्व ही स्वेच्छिक अवकाश ग्रहण कर अपनी निर्लोभिता, त्यागवृत्ति और निस्पृहता का ऐसा अनुपम, अद्भुत और अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है जो सर्वथाश्लाघ्य है।

दरअसल• प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन एक ऐसे विराट और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं जिसे एक छोटे से लेख की परिधि मे समेट पाना सम्भव ही नही है। संक्षेप मे इस आलेख का समापन मैं स्थानीय एस आर. के. महाविद्यालय के भू. पू. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, डा. एम. एल. पाराशर जी के इन शब्दों में करना चाहता हूं-''श्री नरेन्द्र प्रकाश हैं एक

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञाओं का अनुसरण करना भी विनय के ही अन्तर्गत आता है। ऐसी वास्तविक विनय से मान कषाय गल जाती है।

सहृदय सच्चे मानव। एक परिशुद्ध, समुज्ज्वल चेतना, जो ऊर्ध्व पथ को प्रकाशित करती है। एक प्रकाश, जो परिवेश को तेजस्वी बनाता है और है एक ऐसी सुगन्ध, जो वातावरण को आत्मगन्ध से महका देती है।'' इस्लामियाँ इण्टर कालेज के भू. प. प्रिंसीपल स्व. श्री एहसान हैदर नकवी ने कहा था–

''हर बार उनसे मिलके तमन्ना यही रही,
एक बार फिर मिलेंगे अगर जिन्दगी रही।''

इस अभिनन्दन के अवसर पर मै उनके स्वस्थ, सुखी, सक्रिय, समुज्ज्वल, सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूं।

– ब्रजकिशोर जेन, पूर्व प्रवक्ता,
पी.डी. जैन कालेज, फीरोजाबाद उ.प्र.

□

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत

फीरोजाबाद नगर के लिये यह गौरव की बात है कि अखिल भारतीय स्तर के विद्वानो मे गिने जाने वाले प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन का जो अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। इसके लिये हमारी श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मंदिर कमेटी, आचार्य श्री 108 विमलसागर जी महाराज दातव्य औषधालय समिति, अखिल भारतीय दहेज निवारण एवं समाज कल्याण परिषद, जिला उपभोक्ता सरक्षण समिति, श्री दिगम्बर जैन महासमिति, पद्मावती पुरवाल फण्ड कमेटी, राष्ट्रीय मानव कल्याण एवं उपभोक्ता संरक्षण परिषद्, श्री महावीर सेवा समिति आदि सस्थाओं की तरफ से ढेर सारी शुभकामनाएं।

निश्चय ही ''अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशन समिति एवं कोलकाता जैन समाज के प्रति हमारे फीरोजाबाद के सभी दिगम्बर जैन आभारी है, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन का अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित करने का निर्णय लेकर उन्होंने एक स्तुत्य कार्य किया है।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन जहां एक ओर अपनी अनुशासन-प्रियता ओर प्रशासन-क्षमता के लिये इस जपनद मे ही नही, वरन् पूरे देश मे जाने जाते है, वही एक उत्कृष्ट वक्ता ओर विद्वान के रूप में भी उनकी ख्याति है। जब श्री महावीर सेवा समिति ने, जिसका मै निर्देशक हूँ, प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जेन का प्रथम बार 68 वॉ जन्म दिवस वर्ष 2000 में मनाया था, तब पूरे देश से आये हुये वक्ताओ ने कहा कि जब किसी व्यक्ति का घर मे सम्मान होता है तो उसका सम्मान पूरे देश मे होता है। निश्चय ही प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन गौरव के धनी रहे हैं।

उन्होंने एक उत्कृष्ट वक्ता एवं विद्वान् के रूप मे अखिल भारतीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई हे।

अपनी योग्यता के बल पर आपको अनेक अखिल भारतीय स्तर की जैन संस्थाओं मे स्थान मिला है, जेसे–अखिल भारतवर्षीय शान्तिवीर सरक्षणी सभा, अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्, अखिल भारतीय दि. जैन शास्त्री परिषद, भा. दि. जैन महासभा आदि। इस देश में जहाँ भी जैन समाज रहता है, वहॉ सभी लोग प्राचार्य श्री को अच्छी तरह जानते हैं। प्राचार्य श्री ने देश के कोने-कोने मे जाकर अपनी विद्वत्ता के आधार पर धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार किया। विद्या-वाचस्पति, सिद्धान्त-रत्न, सरस्वती-पुत्र, व्याख्यान-केसरी जैसी अनेकानेक उपाधियों से अब तक उन्हे नवाजा जा चुका है। इनकी कार्य-शैली और विद्वत्ता को देखते हुये उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री मोतीलाल वोरा द्वारा भी इन्हें सम्मानित किया जा चुका है।

जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों-हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बाँट सकता है, लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती।

जैन एवं जैनेतर समाज का यह कहना है कि प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जिस मंच पर आसीन हो जाते हैं, उस मच की सफलता को गारंटी हो जाती है। राष्ट्रीय एवं जैन पत्र-पत्रिकाओं में उनके द्वारा प्रकाशित सभी लेखों को पाठकगण बहुत ही आनन्द एव रुचि के साथ पढ़ते हैं।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन जी की प्रखर प्रतिभा पर यदि दृष्टि डाली जाये तो नि.संकोच हजारों-लाखों श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध करने वाले कुशल वक्ता, अनन्य साहित्य प्रेमी तथा सफल संगठनकर्त्ता के रूप में उन्होंने अपनी पहचान बनाई है। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की सुखी एवं सक्रिय जीवन की भगवान से प्रार्थना करते है कि वे दीर्घायु हो।

– निर्मलकुमार जैन, अध्यक्ष
जिला उपभोक्ता सरक्षण समिति,
श्री दि जैन रत्नत्रय मन्दिर कमेटी, फीरोजाबाद

□

फीरोजाबाद एवं प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश

उत्तर भारत का प्रसिद्ध नगर फीरोजाबाद अपने में एक उज्ज्वल इतिहास छुपाये है। नगर का प्रसिद्ध गृह उद्योग चूडी स्वय नारी की शोभा है और उसके सौभाग्य का प्रतीक।

इस नगर के स्व. छदामी लाल जी 1947 में सागर आये थे। उस समय पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी इस नगर में विराज रहे थे। श्री वर्णी हीरक जयती महोत्सव की तैयारियां जोरो से चल रहीं थी। सेठ साहब ने आकर कहा कि यदि यह समिति वर्णी जी का अभिनन्दन फीरोजाबाद में करे तो हमें बडी प्रसन्नता होगी। वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण समिति ने तत्समय उपस्थित विद्वत्-शिरोमणी विद्वज्जनों, श्रावक शिरोमणी श्रेष्ठीवर्ग एव समाज शिरोमणी श्रावकों के बीच सेठ जी की भावना को आदर देते हुए फीरोजाबाद में प्रात. स्मरणीय पूज्यपाद प. गणेश प्रसाद जी वर्णी को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण की स्वीकारिता प्रदान की और वर्ष 1950 मे काकासाहब कालेलकर के करकमलों द्वारा क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी को आचार्य सूर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य मे अभिनदन ग्रन्थ समर्पित कर फीरोजाबाद में जैनत्व के भाल पर कुमकुम का तिलक लगाया।

जब हमारे चरित्र नायक श्री नरेन्द्रप्रकाश जी 1953 में इस नगर में शिक्षक के पद पर अधिष्ठित हुए, तब इस देश मे पूज्य वर्णी जी ज्ञानरथ के प्रणेता थे। विद्वत्जगत के निर्माता और पितृतुल्य वर्णी जी का अभिनदन-बीज 1950 में फीरोजाबाद में पडा। तीन वर्ष उपरांत 1953 में बटवृक्ष के समान वह बीज नरेन्द्रप्रकाश के रूप में प्रगट हुआ। अपनी कार्यशैली एव कार्यकुशलता से शिक्षक-से पी.डी. जैन कॉलेज के प्राचार्य बने, 21 वर्ष की अनवरत सेवाओं के साथ-साथ अपना अध्ययन भी चालू रखकर समाजहित चिन्तन, जिनवाणी सेवा एवं मुनि भक्ति के माध्यम से विद्वत् समाज की अंगूठी के अमूल्य हीरे बने। वे अनेक मौलिक कृतियों व अनेक संपादित कृतियों के द्वारा जिनेन्द्र भारती की सेवा कर रहे हैं। प्रवचन शैली इतनी मार्मिक एवं हृदयग्राही है कि वर्ष 1979 के दिसम्बर माह के अन्तिम चरण में सागर नगर में स्याद्वाद शिक्षण परिषद के शिविर का आयोजन हुआ था, जिसमें प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी एवं जैन जगत के मूर्धन्य विद्वान स्व. प जगन्मोहनलाल जी शास्त्री शिविर के कुलपति के रूप में पधारे थे। प्राचार्य महोदय के पांच प्रवचन संयम विषय पर हुये। सागर नगर के सिघई-परिवार के 21 वर्षीय नवयुवक सिंघई वीरेन्द्रकुमार एम. टेक. के विद्यार्थी थे और स्याद्वाद शिक्षण परिषद के प्रमुख कार्यकर्त्ता उस शिविर के संचालक निर्वाचित हुये थे उन्होंने संयम के पांचों प्रवचन बड़े मनोयोग से सुने और पं.

जीवन का उद्देश्य बल या आयु बढ़ाना, शरीर-पुष्टि और स्वाद नहीं, चारित्र संयम-ज्ञान-ध्यान की साधना में उसका सहयोगी होना है।

जगन्मोहनलाल जी को बार-बार यह कहते हुए सुना कि "भैया कर्म की रेख पर मेख लगाने का इससे बड़ा अवसर कब मिलेगा।" दोनों विद्वानों के हृदयग्राही प्रवचनों ने शिविर के समापन के 10 दिन उपरांत 10 जनवरी 1980 को श्रीक्षेत्र नैनागिरजी में आचार्य श्री विद्यासागर जी से क्षुल्लक-दीक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। वे आज मुनि श्री क्षमासागर जी के नाम से विख्यात हैं। यह नरेन्द्रप्रकाश जी का ही प्रभाव माना जाएगा।

वर्ष 1975 में जब आचार्य विद्यासागर जी अपने दीक्षा एवं शिक्षा-गुरु परमपूज्य आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी की सल्लेखना पूर्वक समाधि उपरांत वर्ष 1974 का चातुर्मास समाप्त कर अजमेर राजस्थान से बिहार कर उत्तर प्रदेश में प्रविष्ट हुये और ऐतिहासिक नगरी फीरोजाबाद में पधारे, उस समय प्राचार्य महोदय ने संघ को चातुर्मास हेतु सेठ छदामीलाल जी के मन्दिर-परिसर मे ठहराया। चार माह में आचार्य श्री की प्रतिभा का परिचय पाकर प्राचार्य महोदय को पं. कैलाशचंदजी शास्त्री का वह आलेख याद आया, जिसमे उन्होंने आचार्य श्री को "एक नक्षत्र का उदय" के रूप मे आलेखित किया था। आज वह नक्षत्र, नक्षत्र से आगे इस ज्योतिषमण्डल का जगमगाता सूर्य बनकर प्रकट हुआ है।

1975 के फीरोजाबाद के चातुर्मास के बाद आचार्य विद्यासागर जी राजस्थान, पुन उत्तर प्रदेश से मध्यप्रदेश एव बुन्देलखण्ड में अनवरत 27 वर्ष तक विहार करते रहे। अपने चातुर्मासो के द्वारा वह बुन्देलखण्ड के गले का हार बन चुके है। उनकी कीर्ति-कौमुदी की इस विस्तार का श्रेय यदि फीरोजाबाद को दिया जाए तो अत्युक्ति नही होगी।

वर्ष 1993 मे हुये गोमटेश बाहुबली मस्तकाभिषेक की रनिंग कॉमेन्ट्री द्वारा प्राचार्य महोदय एव श्री नीरज जी ने दक्षिण के बाहुबली को उत्तर भारत के जन-जन के समीप उपस्थित कर दिया है।

इस तरह वर्णी जी के रूप में जैन जगत के भाल का तिलक, आचार्य विद्यासागर जी के रूप में गले का हार और प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश के रूप में हीरे की अंगूठी के नग का और चूडी-उत्पादन के रूप में सोभाग्यवती महिला शरीर के श्रृंगार का जो गौरव प्राप्त हुआ है, उसका श्रेय फीरोजाबाद को जाता है।

हम उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करते हुए गौरव का अनुभव करते है और उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

आज पुनः धन्य हुआ है नगर फीरोजाबाद, जिसने विद्वत्जनक गणेश प्रसाद वर्णी का अभिनन्दन किया, जो श्रमणजनक आचार्य विद्यासागर के बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार बना और मनीषी विद्वान नरेन्द्रप्रकाश जी को जिनेन्द्र भारती की सेवार्थ जैन जगत को हीरे के रूप मे अर्पित किया। अमर रहे वह सौभाग्य की चूडियो का प्रतीक फीरोजाबाद।

— सिघई जीवनकुमार, सागर

□

विद्वानों में सुरेन्द्र : प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश

विश्व रचना के मूल में जीव व अजीव दो पदार्थ है। अजीव अर्थात् जड का विकास नहीं होता, जीव का विकास होता है। जीवों में भी तिर्यंच जगत तो अपने आपको वातावरण के अनुकूल बना लेता है किन्तु मनुष्य वातावरण की प्रतिकूलता होने पर भी अपनी सत्ता बनाए रखने के लिये संघर्ष करता है। वस्तुत. मनुष्य भव भी तभी सार्थक है जब वह प्रतिकूल वातावरण में भी स्वनियंत्रित होकर अपने अदम्य साहस से सफलता के सोपान चढ़ता हुआ वातावरण को ही अपने अनुकूल बना लेता है। मानव की यही आविष्कारक शक्ति का परिणाम सभ्यता, सस्कृति व साहित्य है। चिरकालिक इस कसौटी पर प्राचार्य नरेन्द्र जी सौ टंच खरे उतरे हैं। बाल्यकाल की विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने अपने पुरुषार्थ का सम्बल

"[illegible] और [illegible] रोटी खाता है, [illegible] होता ही है, जिस परिवार में ऐसी रोटी [illegible] नहीं [illegible] का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है।"

लेकर सतत् प्रगति की है। उसी का परिणाम है कि आज वे न केवल जैन समाज के अपितु देश के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों मे एक है। वर्तमान में जैन समाज के विद्वानो मे तो वे मुकुट-मणि के रूप मे शोभायमान हैं। कोई भी विद्वत्-गोष्ठी या धार्मिक मंच श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के अभाव में अपूर्ण सा प्रतीत होता है। उनके आ जाने से धर्म सभाओं में बहार आ जाती है।

सतत् अध्ययन : ज्ञानपिपासु का श्रेष्ठ उदाहरण

आचार्य जी अपने प्रारंभिक जीवन से ही विद्या व्यसनी रहे है। अपने छात्र जीवन मे उन्हे अनेक पुरस्कारो से विभूषित किया गया है पुरस्कारों की यह श्रृंखला अभी तक बनी रही है। आचार्य श्री विद्यासागर जी दीक्षोत्सव पुरस्कार, गोमटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार, वर्णी वाग्देवी पुरस्कार, श्रमण भारती पुरस्कार, श्रुत सर्वधन पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों के वे विजेता है। विद्या रूपी धन को जो पहचान लेता है वास्तव मे वही उसका सौदर्य है वही उसका गुरु और वही उसका बन्धु-बान्धव और देवता है। नीतिकार ने कहा है

> "विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं, प्रच्छन्न-गुप्तं धनम्।
> विद्या-भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरुणां गुरुः।।
> विद्या बन्धुजनो विदेशगमने, विद्या परा देवता।
> विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं, विद्या विहीनः पशुः।।"

ऐसे व्यक्तित्व के धनी अत्यन्त अल्प है जो माध्यमिक स्तर की परीक्षा (तत्कालीन इन्टरमीडिएट) के बाद सेवा तथा गृहस्थ दायित्वो का निर्वाह करते हुए आगे की उच्च शिक्षा हेतु बी ए., एम. ए., एल टी. आदि उपाधियो हेतु अध्ययनशील रहे हों और अपनी लगन/अध्ययन शीलता और ज्ञान के बल पर उच्च शिक्षा संस्थान के प्रमुख पद को अर्जित किया हो। आचार्य जी इसी श्रेणी के अध्ययनशील व्यक्तित्व के धनी है। अभी भी आप निरन्तर अध्ययनशील रह कर अपनी लेखनी से अनवरत साहित्य का सृजन कर रहे है।

व्यवसायिक कौशल और संगठन क्षमता : अद्भुत कर्तव्यपरायणता

आचार्य नरेन्द्र जी ने शिक्षकीय कार्य से अपना वास्तविक जीवन प्रारभ किया। एक आदर्श शिक्षक मे जो गुण अपेक्षित है, उन्हें अर्जित करने में वे सदैव प्रयासरत रहे। शिक्षक का सर्वप्रथम आवश्यक गुण है अपने विषय पर पूर्ण आधिपत्य ओर इस कसौटी पर वे खरे उतरे है। वे अपनी शैक्षणिक योग्यताओ में निरन्तर वृद्धि करते रहे। मातृभाषा हिन्दी एवं संस्कृत पर उनका समान अधिकार है। दूसरी आवश्यक योग्यता बाल मनोविज्ञान से परिचित होना है क्योकि शिक्षण सिद्धात में शिक्षक का कार्य पढ़ाना नहीं अपितु स्वय बालक को पढ़ना है। व्यक्तिगत विभिन्नता के मनोवैज्ञानिक तथ्य को आधार बना कर बालक की सुपुप्त शक्तियो को जागृत करना है। सीखने की, ज्ञान की, कौशल की शक्ति बालक में उपादान रूप मे है ही, शिक्षक तो बालक की रुचि बुद्धिलब्धि, अभिवृत्ति और उसके पर्यावरण को पढ़कर इन अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर लाने का प्रयास करता है। प्राचार्य नरेन्द्र जी अपने शिक्षकीय जीवन में उत्तरोत्तर इसीलिए समुन्नत हुए क्योंकि वे विषय विशेषज्ञ होने के साथ-साथ मनोविज्ञान के भी ज्ञाता हैं। वे अपने छात्रो में अत्यन्त लोकप्रिय रहे।

प्रशासकीय दायित्व में संगठन क्षमता ही मुख्य होती है इस विद्या मे भी वे दक्ष है। अपने सहयोगी शिक्षकों, न केवल अपने विद्यालय-महाविद्यालय के अपितु प्रदेश के अन्य शिक्षकों के मध्य भी उनकी लोकप्रियता जगजाहिर थी तभी उन्हे उ प्र. माध्यमिक शिक्षक संघ का पदाधिकारी बनाया गया था। शिक्षकों के व्यावसायिक हितों की रक्षा में अग्रणी रहकर आंदोलनरत रहे और जेल यात्रा से भी भयभीत नहीं हुए। संक्षेप में जहाँ जहाँ भी जिन-जिन पद पर रहे उन पदों से संबंधित अपने कर्तव्यों/दायित्वो का निर्वाह कुशलतापूर्वक पूर्ण कर्तव्यपरायणता एवं निष्ठा से किया। आज भी वे उतनी ही लगन से दत्तचित्त होकर श्रुतदेवता की आराधना में निरत हैं।

मतभेद सदा रहे हैं और रहेंगे। हम इतना तो कर ही सकते हैं कि दूसरों के दृष्टिकोण की उपेक्षा न करें और न बलात् उन पर अपनी राय ही थोपें।

आगम का ज्ञान अगाध : श्रुताराधन की साध

आचार्य जी का श्रुतागम का ज्ञान अगाध है जो उनकी मौलिक कृतियों तथा समालोचनात्मक लेखों में स्पष्टतः झलकता है। उसमें जैन दर्शन के साथ-साथ समाज, सस्कृति, साहित्य, इतिहास, व्याकरण, विज्ञान, स्वंतत्र चिन्तन, जैन पर्वो की पृष्ठभूमि तथा आधुनिक समय में व्याप्त कुछ अनुचित रूढियों आदि की तर्कयुक्त अभिव्यक्तियां हैं। जैन गजट के संपादक के रूप में तो वे सुदीर्घ काल से समाज और दर्शन की सेवा में निरन्तर रत हैं।

श्रुतागम के प्रति उनकी प्रतिबद्धता इस तथ्य से ही स्पष्ट है कि उन्होंने एक प्रतिष्ठित विद्यालय के प्राचार्य पद से भी अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से दो वर्ष पूर्व स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति इसीलिए ले ली क्योंकि वे प्रशासनिक कार्यो मे लगने वाले समय का भी साहित्य सृजन मे सदुपयोग करना चाहते थे। उनकी यह निस्पृहवृत्ति श्लाघनीय है जबकि सामान्यतः ऐसे पद पर अधिकांश व्यक्ति सेवानिवृत्ति के पश्चात भी सेवावृद्धि हेतु प्रयासरत रहते हैं।

मूलतः शिक्षक-संस्कृति के संवाहक

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी मूलतः एक शिक्षक है, उन्होंने अपना गृहस्थ जीवन इस लोकोपयोगी विधा से प्रारम किया था। वस्तुत सद् समाज के निर्माण मे शिक्षक का योगदान प्रमुख रहता है। किसी भी देश/समाज की गुणवत्ता उसके नागरिकों/सदस्यों पर ही निर्भर रहती है और नागरिकों/सदस्यो की गुणवत्ता उनको प्रदत्त शिक्षा पर ही निर्भर रहती है, अत देश/समाज के निर्माण में शिक्षा और उसे प्रदान करने वाले शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है एक प्रमुख शिक्षा शास्त्री ने कहा है कि मुझे कुछ बालक दे दो और मेरा एक पृथक संसार-परिणामत. मै जिसे चाहूं इन्जीनियर, डॉक्टर या दार्शनिक बना सकता हूँ और चाहू तो डाकू, हत्यारा, आततायी और बलात्कारकर्ता भी। इसीलिए शिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा गया है। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी प्रारभ से ही एक सफल शिक्षक रहे है। उन्होने जिस तन्मयता और लगन से विद्या-दान का यह पवित्र कार्य किया उसी से प्रभावित होकर उसी सस्था ने उन्हे संस्थाप्रमुख प्राचार्य के पद से विभूषित किया।

सफल अध्यापन कार्य ने उन्हें कुशल प्रवचनकार बना दिया। उनके पिता श्री प रामस्वरूप जी अपने समय के सुविख्यात प्रतिष्ठाचार्य होने के साथ-साथ जैन दर्शन के अधिकारी विद्वान भी थे। कहना न होगा श्री प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी की विद्वत्ता की पृष्ठभूमि की दृढता अपने पिता श्री के अतुल अनुभवों से परिपूर्ण है। जैन दर्शन के सिद्धान्त उन्हे घुटी के रूप मे प्राप्त हुए है। यही कारण है कि प्राचार्य जी का सैद्धान्तिक ज्ञान पूर्ण प्रमाणिक एव तलस्पर्शी हे। उसमे भूल-चूक या उथलेपन की प्रतीति नहीं होती। जब वे प्रवचनसभा मे बैठते है तो जेनागम के अनेक उदाहरण प्रमाण के रूप मे देते चलते है जिनसे उनके गभीर सैद्धान्तिक ज्ञान का पता चलता हे।

उनकी प्रवचन शैली अत्यन्त आकर्षक है। सधी-सुलझी भाषा, बुलन्द आवाज, विषय प्रतिपादन की रमणीयता, सदर्भो का यथासमय स्पष्टीकरण, धारावाहिकता, सहज बोधगम्यता एव समयानुकूल अभिव्यक्ति इत्यादि अनेकानेक विशेषताओं के कारण उनका प्रवचन/वक्तव्य श्रेष्ठता की कोटि का अनुपम उदाहरण है। अपने प्रवचन कौशल से वे श्रोताओं पर अमिट छाप छोड़ देते हैं जिससे श्रोतागण मात्र श्रवण ही नही अपने व्यवहार को आचरणानुकूल भी बना लेते है। अपने इसी गुण से प्राचार्य जी संस्कृति के संवाहक बने हुए हैं।

पूर्वाग्रहों से मुक्त-रहते सदा उन्मुक्त

सम्प्रति श्रमण संस्कृति के अनुयायी अनेक वर्गो/गुटों/सम्प्रदायो मे बट गये है, यहां तक कि विद्वान और कतिपय साधु संत भी इससे अछूते नहीं रह पाए हैं। किन्तु आचार्य नरेन्द्र जी एक निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी हैं। वे विद्वानों, मनीषियों, संतों एवं समाज के सामान्य सभी वर्गो में समान रूप से प्रतिष्ठित है। उत्तर, पश्चिम, पूर्व और दक्षिण भारत, देश के कोने-कोने में आयोजित धर्म सभाओं/सम्मेलनों/महोत्सवो में उनकी विद्वत्ता की निर्विवाद महती भूमिका रही है। अखिल भारतीय दि. जैन शास्त्री परिषद के तो वे सर्वसम्मति से अध्यक्ष पद पर विराजमान है।

शीशिलालेख को ओढ़ने और सहेजने वाला सम्राट् तो बन सकता है किन्तु एक संत की प्रभुता के सामने उसका वैभव तुच्छ ही माना जायगा। सम्राट् और संत में संत ही महान् है।

'स्वगृहे पूज्यते मूर्खः, स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।'

उक्ति उनके ऊपर पूरी चरितार्थ होती है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है उनका अप्रतिम सैद्धान्तिक ज्ञान जिसकी विशेषता मात्र किताबी ज्ञान रटा-रटाया न होकर उसकी आत्मा को, गूढार्थ को ध्वनितार्थ को पूर्णतः आत्मसात कर उसका प्रतिपादन सरल, सहज और सरस भाषा मे कर देना। मात्र सैद्धान्तिक और शास्त्रीय भाषा सामान्यता नीरस और उबाऊ हो जाती है, किन्तु प्राचार्य जी के साथ यह बात लागू नहीं होती।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी उच्च कोटि के विद्वान हैं ही वे बहुत अच्छे इंसान भी हैं। इसलिये उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं है। सबके लिये उनका मित्रता का हाथ आगे बढ़ा रहता है। छोटे-बड़े सभी के प्रति उनके मन में समान रूप से आत्मीयता का भाव विद्यमान रहता है। अपने इस वैशिष्ट्य के कारण वे सदा अपने मित्रों एवं हितचिन्तको से घिरे रहते हैं। अपनी इन सकल विशिष्ट विशेषताओं के कारण वे विद्वानो में इन्द्र/सुरेन्द्र के समान शोभायमान हैं। प्राचार्य जी चिरायु हों, सुखी एवं स्वस्थ रहकर धर्म एवं समाज की सेवा करते रहें, यही मंगल कामना है।

– डॉ. प्रेमचद जैन
प्राचार्य, जवाहरलाल नेहरु-स्मृति महाविद्यालय, गजबासौदा

□

संयोजन-कला के साकार अनन्वय अलंकार

ज्ञानधारियो के लिये जिन शब्दो का लोक मे बहुशः प्रयोग प्रचलित है, उनमे 'विद्वान्' और बुद्धिमान शब्द उल्लेखनीय है। विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्योपार्जन करने वाला विद्यार्थी प्रायः विद्वान कहलाता है, जबकि अपने अनुभव और अनुशीलन सातत्य से स्वय की बुद्धि को उजागर करने वाला साधक कहलाता है–बुद्धिमान। बुद्धिमान विद्वान हो सकता है पर प्रत्येक विद्वान बुद्धिमान हो, यह आवश्यक नहीं है। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन एक विश्रुत विद्वान् है। यह वस्तुत विरल और बडी बात है कि उनमे विद्वान और बुद्धिमान दोनो के लक्षण एक साथ उजागर हुये है।

पिछले वर्षो मे जब आदरणीय मान्य पडित श्यामसुन्दरलाल शास्त्री जी जीवित थे, तब पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज को लेकर फीरोजाबाद-समाज में द्वेष-द्वन्द्व गहराया था। पर्युषण पर्व पर पंडित जी साहब की गद्दी वाले मंदिर जी में एक प्रभावक प्रवचन कर्त्ता को आमंत्रित करने का प्रश्न उत्पन्न हुआ। मुझे तब आमंत्रित किया गया था पर मैंने अन्यत्र अपनी स्वीकारता दे दी थी, अस्तु मैंने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। दूसरे रोज फीरोजाबाद से समाज के प्रतिनिधि अनेक भाई 'मंगल कलश' लेकर पधारे साथ में प्राचार्य जी का मेरे नाम पत्र भी लाये। मैं कुछ कह पाता कि पंडित जी साहब के पौत्र ने प्रवेश किया और मुझे फीरोजाबाद का कार्यक्रम स्थिर करने का आग्रह किया। प्राचार्य जी ने समाज मे उत्पन्न वैचारिक प्रदूषण को शान्त और शमन करने के लिये मेरा फीरोजाबाद पहुँचना आवश्यक बताकर अपना आत्मीय आग्रह अभिव्यक्त किया, एतदर्थ मेरा पर्यूषण पर्व पर तब फीरोजाबाद जाना तय हो गया।

प्राचार्य जी मंच के कुशल संयोजक ही नहीं, अपितु व्यवस्थापन कला में निष्णात हैं। अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के बलबूते पर वे बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान खोजने मे सक्षम हैं।

पर्वोपरान्त मुझे आदरणीय मान्य पंडित श्री श्यामसुन्दरलाल जी के आवास पर जाना हुआ था। सामान्य शिष्टाचार के

भाग्यशाली वह नहीं है, जिसके पास अकूत दौलत है। भाग्यवान है वह, जो दौलत को [illegible] और अनासक्त बन चुका है।

उपरान्त पंडित जी ने मेरे फीरोजाबाद पधारने पर साधुवाद देते हुये कहा था, "अब मेरा स्वास्थ्य शिथिल रहने लगा है। घुटनो के दर्द से चढ़ना और चलना दूभर हो गया है। मैंने प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश को इस दृष्टि से तैयार किया है।" यह सच है कि प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन एक सुयोग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य सिद्ध हुये है।

मेरी कामना है कि वे पूर्ण स्वस्थ और सानन्द रहे तथा जिनवाणी और जिन धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न रहकर समय का सदुपयोग करें। उन्होंने समाज के विविध क्षेत्रों मे कई अर्द्धशतक लगाये हैं। मैं भावना भाता हूँ कि वे जीवन रूपी क्रिकेट का एक शानदार शतक बनायें और नॉट आउट रहें।

– विद्यावारिधि डॉ महेन्द्रसागर प्रचंडिया, अलीगढ़

□

अप्रतिहत प्रतिभा के धनी

फिरोजाबाद में भगवान पार्श्वनाथ पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव भगवान बाहुबली प्रतिष्ठापना महोत्सव के शुभावसर पर आयोजित श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर् जेन विद्वत परिषद् के पन्द्रहवे अधिवेशन मे सम्माननीय प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन से मेरा प्रारम्भिक परिचय हुआ था। आप दिगम्बर जैन समाज के एक ऐसे जाने माने अग्रणी विद्वान है, जिनकी प्रवृत्तिया चहुमुखी है। आप मूर्धन्य पंडित हैं, ज्ञान के अगाध भडार है, सशक्त लेखनी के धनी है, वाणी मे अपने विचारो को सम्यक् रूप से प्रकट करने की क्षमता है, समाज मे आगम परम्परा को सशक्त बनाने के लिये सदैव आगे रहते हैं। अपने ठोस आगम तर्को के द्वारा एकान्तवादियों का बहुत स्पष्ट सूझ-बूझ-पूर्वक सैद्धान्तिक खडन कर आर्ष-परम्परा और आज के तथाकथित धार्मिक साहित्य या सामाजिक परिवेश मे आये दोषों/विसगतियों का निर्भीक शैली मे निराकरण करना आपकी प्रमुख प्रवृत्ति है।

प्रारम्भ से ही मेरे मन पर आपका प्रभाव पडा कि आपकी प्रकृति सरल एव निष्पक्ष हे। मानो वे एक खुली किताव है। कहीं कोई छिपाव या दुराव नही है। जो कहते है स्पष्ट सरल शब्दो में कहते है। आप शास्त्री परिषद् के प्रमुख स्तम्भ होते हुये भी आपकी निष्पक्षता के कारण विद्वत् परिषद् मे कई अवसरो पर विवादास्पद मुद्दों पर आपके मार्गदर्शन का लाभ प्राप्त किया है।

आप विद्वानो के परम हितैषी है। मुझे स्मरण है कि एक अखिल भारतीय स्तर की विद्वत् सगोष्ठी मे एक पूज्य मुनिराज ने विद्वान् के प्रति भाषा समिति की मर्यादा का ध्यान न रखकर अनुचित टिप्पणी कर दी थी। उस समय आपने तुरन्त उठकर पूज्य मुनि श्री को अपनी निर्भीक शैली में उत्तर दिया और विद्वानो ने इस निर्भीकता की मुक्तकठ से सराहना की।

आपकी मधुर वाणी मे सरलता है, मन और मस्तिष्क में भारी साहस है। आप अप्रतिहत प्रतिभा के धनी हैं। देवशास्त्र गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा एवं असीम भक्ति है। आपके द्वारा जैन गजट के सम्पादकीय आलेख ऐतिहासिक एवं सामाजिक दस्तावेज के रूप में लिखे जाते हैं। चाहे किसी भी विषय से संबद्ध हो आपके सम्पादकीय आलेख विद्वानो द्वारा श्रद्धा एवं मनोयोग पूर्वक पढ़े जाते है। जैन गजट में मात्र संपादकीय पढने की तीव्र उत्कण्ठा बनी रहती है। क्योंकि प्राचार्य जी की लेखनी समाज सुधार, श्रावकाचार, साधु-शिथिलाचार, विद्वानों के आचार विचार तथा एकान्तवाद पर विभिन्न दृष्टिकोणो से प्रकाश डालती हुई हृदय को स्पर्श करने वाली है।

आपके प्रवचन की शैली अति विशिष्ट है। यही कारण है कि जब श्री दिगम्बर जैन श्रमण सस्कृति संस्थान सांगानेर

जड़ को सुखी होने में जड़ पदार्थ निमित्त बनते हैं, किन्तु चेतन का सुख प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सेवा, [illegible], सरलता आदि सद्गुणों के विकास में है।

के अन्तर्गत संचालित महाकवि आ. ज्ञानसागर छात्रावास के छात्रों का प्रथम बैच समाज सेवा के लिये तैयार हो रहा था तो यहां के पदाधिकारियों के मन मे आया कि छात्रो के प्रवचन के विशिष्ट मार्गदर्शन हेतु किन विद्वानों को बुलाया जाय। तब दो विद्वानों के नाम आये जिसमे सर्वप्रथम आपका नाम और द्वितीय पं. शिवचरणलाल जी मैनपुरी का था। आपकी प्रवचन शैली से संस्थान के छात्र काफी प्रभावित हुये। आज भी वे छात्र आपके प्रवचनाशों को प्रवचनों में रेखाकित करते हैं।

आपकी निर्भीकता और स्वाभिमान की प्रवृत्ति विद्वानो के लिये आदर्श है। कितनी ही बडी सभा हो, सम्मेलन हो यदि कोई सुधार या समालोचना/समीक्षा करनी हो तो प्राचार्य जी उसे अपनी मधुर वाणी और व्यग्य शैली मे कहना नहीं चूकते हैं। यही कारण है कि गृहस्थ एव साधुओं के शिथिलाचार को भरी सभाओं मे बखूबी रेखाकित करते हैं और समाज उसका तालियों से स्वागत करती है। आपकी साधुओ और विद्वानो मे अनूठी छवि है। आपका पूरा जीवन समाज-सुधार के दिशाबोध में बीत रहा है।

प्राचार्य जी समाज के उन इने गिने विद्वानो में से हैं जिन्होंने अपनी वाणी और लेखनी से जैन समाज को असामान्य प्रेरणा दी है। उनकी निर्भीकता से समाज मे व्याप्त शिथिलाचार को दूर करने मे काफी सहायता मिली है।

पूज्य साधु एवं विद्वान समाज और राष्ट्र के दर्पण होते है। वे समाज के प्रतिनिधि पथप्रदर्शक एव उन्नायक होते हैं। उन्हीं के विचारों व प्रेरणाओं से समाज को बल मिलता है। समाज उनकी सेवाओं से कभी उऋण नही हो सकता। ऐसे व्यक्तित्व का सम्मान करना राष्ट्र और समाज के लिये गौरव है। हम उनके दीर्घायुष्य जीवन की शुभकामना करते हुये भावना भाते है कि आप जिनवाणी की निरन्तर सेवा करते रहें।

– प्राचार्य डा. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर (राजस्थान)

□

मानवता के गौरव

प्राचार्य जी ने अपने जीवन में अपने कृतित्व के द्वारा अपने माता-पिता परिवार ही नही भारत की समस्त दिगम्बर जैन समाज को गौरावान्वित किया है। वे मानवता के गौरव अनोखे निर्विवाद व्यक्तित्व के धनी है। भारत का समस्त जैन समाज जानता मानता है कि किसी भी ताले की कुजी कठिन से कठिन समस्या का समाधान आदरणीय प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी के पास हे। हर बात का सामाधान उनके पास है वो सरल सहज है। आदरणीय श्री पं मक्खनलाल जी शास्त्री की तरह वे स्पष्टवादी है किसी भी सही बात को कहने में वे चूकते नही इनकी बात कहने का तरीका इतना मधुर है कि सामने वाले को बुरा नही लगता जबकि श्री प. मक्खनलाल जी शास्त्री के तर्क से सामने वाले को पसीना आ जाता था और इनके तर्क से वह घर जाकर पसीने मे सरावोर हो जाता है। **"कागा किसका धन हरे कोयल किसको देय। मीठे वचन सुनाय कर, जग अपनो कर लेय।"** हित मित प्रिय भाषा ही आपकी जीवन की विषेशता है और इनकी मीठी मुस्कान किसी भी सतप्त आदमी के अंतर को शान्ति प्रदान करती है आपका सानिध्य हर आदमी चाहता है और ये उस हर आदमी के पास जो इन्हें चाहता है रहते हैं। पूज्य श्री 108 आचार्य विमलसागर जी महाराज वात्सल्य की मूर्ति थे वे जिधर देखते थे उध र एक सम्मोहन शीतलता, और अपनापन उनकी वात्सल्य भरी नजरो मे होता था। उनकी नजरें बड़ी से बडी पीड़ा एक पल में हर लेती थी। व्यक्ति जो चाहता था वह उसे मिल जाता था, प्राचार्य जी ने ऐसा ही गुण विरासत मे पाया है। सरस्वती पुत्रो में और लक्ष्मीपुत्रों मे प्राय. विरोध हांता है। पर इन्होने लक्ष्मीपुत्रों का अपहरण किया है और फिरौती में कुछ न लेकर संस्कारों की दीक्षा दी है। प्राचार्य जी धार्मिक शिक्षा की बात करते हैं लेकिन पाश्चात्य शिक्षा का विरोध नहीं करते,

आदमी का सभ्य होना तो जरूरी है ही, किन्तु उसे सुसंस्कृत भी होना चाहिए। संस्कारों के अभाव में सभ्यता मानवता के लिए बोझ बन जाती है।

वे पाश्चात्य संस्कारों का विरोध करते हैं। वे कहते है कि अंग्रेजी पढो लेकिन अंग्रेज मत बनो, क्योकि अंग्रेजो के संस्कार नहीं होते। पाश्चात्य देशों में दार्शनिक तो पैदा होते है परन्तु सत पैदा नहीं होते। संत तो भारत में पैदा होते हैं और सतो मे आचरण होता है संतत्व होता है, जबकि दार्शनिकों में ज्ञान हो सकता है आचरण नही होता। ज्ञान और आचरण मे मनुष्य पर्याय की दुर्लभता और जीवोद्धार की प्रक्रिया हो वही ज्ञान-आचरण सम्यक् ओर अनुकरणीय होता है। वे कहते हें कि बालबोध भाग 1, 2, 3, 4 और छहढाला की शिक्षा का प्रवेश अगर नयी पीढी के जीवन में कराया जाए तो जो वर्तमान पीढ़ी दिग्भ्रमित होकर मॉसाहार ओर शराब के नजदीक जा रही उधर जाने से वच जायेगी। देवदर्शन, रात्रिभोजन का त्याग, तथा पानी छानकर पीना उनकी चर्या मे आ जावेगा।

महासभा अध्यक्ष की आज्ञा से मेरे छोटे बेटे ने ग्वालियर मे पाच स्थानों पर शिविर लगवाए। करीब 2000 शिविरार्थियो ने भाग लिया। आचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के नेतृत्व मे वाहर के करीव 40 विद्वानो ने भाग लिया। तवसे आपकी प्रेरणा और महासभा के सहयोग से इन 6 वर्षो में करीव 80 शिविर विभिन्न स्थानों पर लगाए गए है। परिणाम मे नई पीढी के सस्कार बने है। बालक और महिलाओ की भागीदारी प्रमुख रही है। इन प्राथमिक सस्कारो के लिय जन धर्म की शिक्षा जरूरी है। वे कहते हैं कि एक स्वस्थ सगठन बने जो समस्त भारत मे आचार्य भगवन्तो स सम्पर्क करे। विशिष्ट लोगो से चर्चा, विचार विमर्श करें और जो अन्यत्र हो रहा है तीर्थो पर, धार्मिक संस्थानो में या अन्यत्र उसे ठीक करें निरतर प्रयास करके एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो, वर्तमान की यह आवश्यकता है। जैन गजट मे उनके सपादकीय लेख जहां सज्जानित्व क महत्व को स्वीकारते है वही सस्थाओ मे जातिवाद और व्यक्तिवाद को नकारते है। व्यवस्था मे जहा व्यक्तिवाद ओर वर्गवाद हावी होता है, दोष उत्पन्न हो जाते है, अपेक्षाएं और उपेक्षाएँ हावी हो जाती है। कवि हृदय विनोदप्रिय निर्भीक विद्वान के रूप मे आपने ख्याति प्राप्त की है, मुनि सघो में आपका विशिष्ट स्थान है तथा भारत के कोने कोने मे होने वाले धार्मिक आयोजनो में आपकी पूछ है आज जहां विद्वान भी अर्थ की प्रधानता में दुर्लभ हे वहां प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी सहज और सुलभ है। आप स्वय के हित से हटकर अह से दूर रहकर, समाज और धर्म की सेवा मे तत्पर हैं। ऐसे विद्वान वा सरस्वती पुत्र का और उस व्यक्तित्व का अभिनदन मानवता का अभिनदन है।

जननी जनै तो भक्त जन, कै दाता कै शूर।
नातर रहियो बांझड़ी मती गॅवइयो नूर।।
यूं तो इस भीड़ में, कहने को हर आदमी है।
लेकिन यह आदमी वह आदमी नहीं, एक ही "आदमी" है।।

– लालमणि जैन, ग्वालियर

□

बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्राचार्य जी

दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध, लोकप्रिय, मूर्घन्य विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उनकी उन प्रतिभाओ ने ही मुझे उनका मूक प्रशंसक बना दिया। आज उनके अभिनदन के अवसर पर मेरी भावनायें मुखर होकर उनकी प्रतिभाओं का किंचित् बखान करने के लिए उन्मुख है।

प. पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के राजस्थान के बाहर प्रथम चातुर्मास फीरोजाबाद मे उनके प्रवचन-सग्रह प्रकाशित किए गए थे। उन पुस्तकों में मुखपृष्ठ पर प्राचार्य जी द्वारा रचित एक लघु पद्य स्तुति छपी थी "रत्नत्रय से पावन जिनका यह औदारिक तन है.........विद्या के उस सागर को मम शत-शत बार नमन है।" इस छोटी सी कविता के प्रथम

संसार के बंधन से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति ही भव्य जीव का सर्वोच्च लक्ष्य है। जिनेन्द्र-भक्ति से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

पठन में ही मेरे हृदय पर प्राचार्य जी की कवित्व प्रतिभा की छाप अंकित कर दी। कविता तो छोटी थी किंतु उसमें निहित रस, लालित्य गंभीर था। यद्यपि उस समय तक प्राचार्य जी से मेरा परिचय नहीं था किंतु मुझे उस कविता ने उसके रचनाकार के व्यक्तित्व में छिपे प्रतिभावान कवि का प्रशंसक बना दिया। मैंने उस छोटी सी कविता को पू. आचार्य जी के महान व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वाली सूत्र कविता के रूप में पाया। यद्यपि पू. आचार्य जी की स्तुति में अब तक सैकड़ों कविताए लिखी जा चुकी हैं किंतु उस जैसी सशक्त भाव वाली कविता उनमें से कोई नहीं है। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि प्राचार्य जी ने इसके अतिरिक्त और भी कविताएं लिखी या नहीं। यदि नहीं भी लिखी हों तो भी यह अकेली छोटी सी कविता उनकी कवित्व प्रतिभा का दिग्दर्शन करने के लिए पर्याप्त है।

प्राचार्य जी ने फीरोजाबाद के जैन कालेज में जीवन भर शिक्षण कार्य किया और अंत में अपनी शिक्षण प्रतिभा के बल पर कालेज के शीर्षस्थ प्राचार्य पद को प्राप्त किया। उनकी प्रतिभा लौकिक शिक्षण तक सीमित नही रहकर धार्मिक शिक्षण के क्षेत्र में भी विस्तृत हुई। एक बार मै और वे दोनो प पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में अमरकटक में आयोजित शिक्षण शिविर में शिक्षक के रूप में आमंत्रित थे। उसके बाद तो वे अनेक स्थानों पर शिक्षण शिविरों के आयोजक/शिक्षक रहे। कुछ दिनों पूर्व उनके कुलपतित्व में आयोजित कलकत्ता महानगरी के ऐतिहासिक शिक्षण शिविर के जैन गजट में प्रकाशित समाचार हमारे स्मृति पटल पर अंकित है।

उनकी वक्तृत्व प्रतिभा ने उनको समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय विद्वान के रूप में स्थापित किया है। उनके भाषण की भाषा हित मित और प्रिय होती है। विद्वत् सगोष्ठियों में उनके वक्तव्यों ने सदैव प्रशसा बटोरी है। वक्ता के साथ साथ उन्होंने अनेक सम्मेलनों, सेमिनारो एवं गोष्ठियों का सफल संचालन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

प्राचार्य जी की सर्वाधिक सराहनीय उनकी लेखन प्रतिभा है। उनके लेख विषयनिष्ठ, तर्कसंगत एवं हृदयस्पर्शी होते है। उनके लेखों मे अपनी बात के मंडन और प्रतिपक्ष के खंडन में प्रचुर तर्क एव प्रमाण रहते है कितु कही किसी के प्रति निन्दात्मक अथवा आक्षेपणात्मक भाषा के प्रयोग नहीं पाया जाता है। समय समय पर धार्मिक विवादास्पद विषयो पर उन्होने अपने संपादकीय लेखों के द्वारा समाज को निडरता और निष्पक्षतापूर्वक आगमानुकूल समीचीन दिशा-दृष्टि दी है। विभिन्न विषयों पर लिखे गए उनके लेखो के संग्रह की पुस्तक जैन सामयिक साहित्य के मूल्यवान अंग के रूप में प्रतिष्ठा-प्राप्त है।

जैन समाज के अधिकांश लोगो की यह धारणा है कि दिगम्बर जैन साधुओ के इन दिनोंदिन बढ़ते क्षोभनीय शिथिलाचार पर महासभा के कतिपय पदाधिकारी प्रायः मौन साधे हैं, जिससे उस शिथिलाचार को उनके समर्थन का संदेह उत्पन्न होता है। किंतु इस ज्वलन्त विषय पर समाज को सही निर्देशन देने के सद्-उद्देश्य से जैन गजट मे कठोर किंतु सटीक तथ्यात्मक सपादकीय लेख लिखकर प्राचार्य जी ने अपनी आगमनिष्ठता, निडरता, निष्पक्षता एव धर्म-संरक्षण की भावना का परिचय देते हुए पत्रकारिता के नैतिक कर्तव्य को निभाया है।

आगम ज्ञान, लेखन प्रतिभा, वक्तृत्व प्रतिभा एव शिक्षण प्रतिभा के कारण ही प्राचार्य जी दि. जैन विद्वत् समाज की प्रमुख संस्था भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष हैं।

ऐसे बहुमुखी प्रतिभावान विद्वान से भविष्य में भी समय समय पर समाज को सही दिशा दृष्टि प्राप्त होते रहने की आशा है।

संयमशील : अमरकंटक शिक्षण शिविर के अवसर पर साधुओ की आहार चर्या के समय श्रावकों द्वारा पड़गाहन के दृश्य को देखकर प्राचार्य जी के हृदय मे आहार देने की भावना उठी, किंतु सभवतः पहले कभी आहार नही देने के कारण सकोच आड़े आ रहा था। हमने प्रेरित किया तो दूसरे दिन प्राचार्य जी पड़गाहन को खड़े हुए और पुण्योदय से प्रथम दिन ही पू. आचार्य जी का पड़गाहन हो गया। उस आनंदानुभूति से सकोच दूर हो गया और शेष दिनों में प्राचार्य जी पड़गाहन

भगवान के गुणों के स्तवन से मोह के बंधन ढीले पड़ जाते हैं। मोह के [illegible] डाल देते हैं।

में खड़े होते रहे। दान पूजा और संयम श्रावक के अनिवार्य आवश्यक कर्त्तव्य हैं। आचार्य कुंदकुंद के अनुसार इसके बिना श्रावक ही नहीं होता। अतः गृहस्थ विद्वानो का यह उत्तरदायित्व है कि श्रावक के इस मूलभूत कर्त्तव्य का स्वय नियमित पालन करें और दूसरों को मूल कर्त्तव्यों का प्रायोगिक शिक्षण दें।

हम कामना करते है कि बहुमुखी प्रतिभावान प्राचार्य जी दीर्घजीवी हों और विश्व कल्याणकारी जैन धर्म की अपनी वाणी, लेखनी और चर्या से अधिकाधिक प्रभावना करते रहें।

— मूलचन्द लुहाडिया, मदनगंज-किशनगढ

□

ज्ञान के पुजारी : प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन

अविरल-शब्द-धनौघ-प्रक्षालित-सकल-भूतल-मल-कलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।

बाल्यावस्था के अच्छे सस्कार जीवन भर काम आते है, ऐसा कथन भाई नरेन्द्रप्रकाश जी ने 1978 में अपन घर पर हमें सपरिवार भोजन कराते हुए कहे थे। मैने कहा-ऐसा चौका तो बुन्देलखण्ड मे दिखाई देता है। आप तो उत्तर-प्रदेश के निवासी है, जहा लोग छन्ने से पानी कैसे छाना जाता है, यह भी नही जानते हैं।

मैंने आपबीती सुनाई कि 1974 में मेरी नियुक्ति सासनी कालेज में हुई। मै सासनी के जैनी भाईयों मे रचने-पचने का अभ्यास करने लगा। एक दिन भद्र जैन महिला ने नल की टोंटी खोलकर एक गिलास जल भरकर सम्मानपूर्वक पान करने क लिए दिया। मैंने कहा आप पानी छानकर नहीं पीती हैं क्या? वे जैन सिद्धान्त के तत्त्वों की ज्ञाता थीं। हों भी क्यों न, छहढाला के अमर कवि पं. दौलतराम जी की यह नगरी जन्मभूमि है। बोलीं शास्त्री जी हम लोग दिगम्बर जैनी हैं। हमारे साधु दिगम्बर रहते हैं। इसलिए हमारे घर का नल भी दिगम्बर रहता है। मुँह पर पट्टी बाँधकर श्वेताम्बर नही बनाना चाहते।

भाई नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपने बाल्यकाल का चित्रण प्रस्तुत किया कि कैसे हमारे पूज्य पिताजी ने जैनधर्म पाठशाला मे आजीविका के संसाधन जुटाते हुए हमें जैनधर्म के सस्कारो की शिक्षा-दीक्षा दी है। सचमुच जैन पाठशालाओ/विद्यालयों में पढ़ाने वाले जैन विद्वान् कितने आत्मसंतोषी/अल्पपरिग्रही होते थे। उन्होंने उसी पूंजी से वट वृक्ष की भांति अपनी सतति को समाज के सामने ला खड़ा किया। बड़े-बड़े पूंजीपति काल के गाल में धराशायी हो गये, लेकिन विद्वानो की पूंजी आज भी अक्षुण्ण/अमर और वन्दनीय है। तभी तो आचार्य वादीभसिह सूरि ने शब्दमथन करते हुए यह नवनीत प्रस्तुत किया—"स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।"

भाई नरेन्द्रप्रकाश जी कालेज के प्रिंसीपल रहे है—इसलिए सम्मान हो रहा है-सो नही या अखिल भारतवर्षीय शास्त्रि-परिषद् के प्रेसीडेण्ट हैं-सो भी नहीं, लेकिन उनमें ऐसी ऋजुता, मृदुता है कि लोग उनका सम्मान करने के लिए उठ खड़े होते हैं। जैसे प्रिंसीपल के क्लास में अचानक पहुंच जाने पर छात्र उठ खडे होते है, बिल्कुल कुछ ऐसा ही उनके सम्मान में खड़े हो गये हैं लोग-सो ऐसा भी नहीं है, क्योंकि वहां प्रथम पक्ष में भय है या बाध्य करने वाली अनिवार्य मर्यादा है, लेकिन इस सम्मान में वे दोनों अनिवार्य/वाध्यता यहां विद्यमान नहीं है। हॉं इन्द्र जैसे नवजात तीर्थकर के भव्यरूप को देखकर

अघाता नहीं है, वैसे ही इनके वचन/प्रवचन/सम्भाषण सुनते-सुनते हम लोग अघाते नहीं हैं, इसीलिए उठ खड़े हैं ऐसे विरले ओजस्वी प्रवक्ता के सम्मान के लिए।

कहते हैं कि पाप और पुण्य के बीच महीन सा रिश्ता है। इस रिश्ते की डोर मन से बंधी है। जो अपने को बुरा लगे, उससे बढकर कोई पाप नहीं है और वही अपने लिए अच्छा भी नहीं होता है। व्यक्ति जो आत्मचिन्तन तक नहीं करता है वह सोचता है कि जो कार्य उसने कर दिये, वह कोई कर ही नहीं सकता। इसलिए वह सर्वदा दुखी रहता है। पाप और पुण्य के बीच भी यही संबंध है। पुण्य वह है जो दिखाई न दे और हो जाये। इसीलिए जैनधर्म में एक अदृश्य पुण्य की विधा गुप्तदान के रूप में विकसित हुई है, लेकिन आज की भौंड़ी प्रदर्शनप्रियता से जहां पटिये/पाषाण, मठ/मंदिर नाम-पट्टावलियो से रंगे पडे हैं, वहां गुप्तदानी भी अब लुप्त होने लगे हैं। पाप वही कहलाता है जो दिखाई देता है। इसीलिए लोग दिखाई देने के चक्कर मे इस दौड़ से रुक नहीं रहे हैं। भाई नरेन्द्रप्रकाश जी गुप्त वैचारिक दानी हैं। वे बिल्कुल सहजता का जीवन जीते है। इसलिए जो भी जहां भी बोलते हैं लोगों के आकर्षण का कारण बनते है।

आज के लोग नाम और नामा की कैद/गिरफ्त में है। इससे छुटकारा लिए बगैर मुक्ति कहां? शोहरत और सोहबत के चक्कर में संसार-चक्र मे ही फंसे रहते हैं। भाई नरेन्द्रप्रकाश जी इस चक्कर से वाकिफ है। वाकिफ होना ही सम्यकत्व की डगर पर चलना है। मुझे अपने सद्गुरु पूज्य पं. कैलाशचन्द जी सिद्धांताचार्य, वाराणसी के प्रवचन अच्छे लगते थे और अब भाई नरेन्द्रप्रकाश जी के, दोनों को मैने करीब से निहारा है। दोनों के भीतर-बाहर कृत्रिमता नही देखी है। इसीलिए ये बेजोड है। दोनो का अपने-अपने नगर में सम्मान देखा है, जबकि स्थानीय विद्वान् स्थानीय लोगो की नजर में गाजर-मूली होता है।

शब्द-चितेरे— 1977 मे उत्तर प्रदेश शिक्षक संघ का जेल भरो आन्दोलन चल रहा था। आन्दोलन लम्बा चला। प्रदेश और केन्द्र की सरकारे हिल गई। उसी समय "सिपाही जीते, कमाण्डर हारे" लेख 'अमर उजाला' में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी का छपकर आया। अब तो जेल में बन्द हम लोगो का उत्साह द्विगुणित हो गया। सभी लोग जेल में चटकारे ले-लेकर आपका लेख पढते और नारे लगाते 'यू. पी. हो या राजस्थान, शिक्षा होगी एक समान।' 'हर जोर जुल्म की टक्कर मे, सघर्ष हमारा नारा है।' शिक्षा मत्री काली चरन थे। 'कालिया तू कारो, कौवा सो कारो, काली कोयल सों कारो', काली गाजर सो कारो-भीतर सो कारो, बाहर सों कारो। कालिया तेरा........।।" ऐसे निर्भीक शासन-प्रशासन के खिलाफ लिखने वाले भाई नरेन्द्रप्रकाश जी सचमुच शब्द-चितेरे है।

मेरी शत-शत कामना है कि वे दीर्घायु प्राप्त करें और माँ जिनवाणी की सेवा करते रहे।

— आचार्य जिनेन्द्र, सासनी (हाथरस)

☐

संयम और सदाचार के बिना आत्मा की कोरी कहानी खोखलापन ही है।

एक बहुआयामी व्यक्तित्व

पिछले 50 वर्षो में मैंने प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी को एक शिक्षक, वक्ता, विद्वान, अपने परिवार-प्रमुख, एक मित्र और एक अच्छे सलाहकार के रूप मे देखा है और मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वर्तमान भौतिकवादी युग में मानवता के मूल्यो के वे एक सजग प्रहरी हैं और इन मूल्यो की रक्षा के लिए वे समझौतावादी नही हैं। उनका व्यक्तित्व जहां सरल सहज एवं सौम्य है, वहीं उन का चिन्तन और समसामायिक अवसरों पर शीघ्र एव सटीक निर्णय लेने की क्षमता भी बेजोड़ है।

जो सुना :-

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन का जन्म ग्राम जटौआ तहसील एत्मादपुर जनपद आगरा मे हुआ। उनके पिता स्व. पं. रामस्वरूप जी शास्त्री अपने समय के शीर्षस्थ विद्वान थे और जटौआ से आने के बाद मेरे मकान के पास ही श्री मन्जूलाल जैन के मकान में किराये पर रहा करते थे। फिरोजाबाद में गज चौराहा पर उन की उस समय पुस्तको एव स्टेशनरी की प्रमुख दुकान भी थी। श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन सन् 1953 तक फिरोजाबाद के प्रमुख एस.आर.के. इण्टर कालेज में अध्ययन करते थे, यह सब मेरी सुनी हुई चर्चाओ पर आधारित है। अलबत्ता दुकान पर स्कूल से बचे हुए समय मे मैने उन्हे कभी-कभी बैठे हुए देखा है जिसकी हल्की सी स्मृति शेष है, क्योंकि 1953 में मेरी अवस्था भी 8-9 वर्ष से अधिक नही रही होगी। लोगो से सुना है कि विद्यार्थी जीवन में उन के दो ही काम थे, या तो डट कर पढना या फिर वाद विवाद प्रतियोगिताओ में भाग लेना। वे अत्यन्त सादगी से रहते थे, पाजामा कमीज पहनकर स्कूल जाते थे और फिरोजाबाद के प्रमुख घरानो के लडके जो उनके सहपाठी थे, उनके संकोची स्वभाव के कारण उन्हे 'बाबूजी' कहकर पुकारते थे क्योंकि उन दिनो नेकर और पेन्ट का प्रचलन था और वह पाजामा-कमीज पहनकर जाते थे, यह भी सुना ही है कि श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन उन दिनो प्रधानाचार्य श्रीनिवास शर्मा, श्रीराम शर्मा एवं वरिष्ट शिक्षकों के प्रिय छात्र थे। चूंकि यह सब बाते सुनी हुई है किन्तु उनके जीवन को लेकर इस सबकी जानकारी देना भी मै आवश्यक समझता हूँ, इसलिये उनका उल्लेख किया गया है।

जैसा देखा-

शिक्षक के रूप में :- वर्ष 1953 मे मैने स्व. प. पन्नालाल न्यायदिवाकर के नाम से स्थापित विद्यालय से पांचवी कक्षा पास करके श्री पी.डी. जैन जूनियर हाईस्कूल, जो बाद मे इण्टर कॉलेज भी हो गया, के कक्षा 6 मे प्रवेश लिया था। मुझे अग्रेजी पढाने के लिए जिन शिक्षक महोदय की निर्युक्ति की गई थी, वह श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन ही थे। उस समय वह पैन्ट और बुशर्ट पहनते थे तथा प्राय: छठवी व सातवी क्लास को प्रार्थमिक अग्रेजी पढाते थे। इण्टर पास करने के बाद ही बतौर अध्यापक उनकी वक्तव्य कला से प्रभावित होकर उनकी नियुक्ति पी.डी जैन कॉलेज मे कर दी गयी थी और तत्कालीन प्रधानाचार्य श्री हाकिमसिंह उपाध्याय का कहना था कि हमारे यहा के विद्यार्थियों को भाषण देना सिखाओ। अत: उन्होने पढ़ाने के साथ-साथ साहित्य एवं सांस्कृतिक गतिविधियो को भी बढावा दिया और अनेक वक्ता तैयार किये, जिनमें मेरा भी नाम शामिल किया जा सकता है। खेलकूद प्रतियोगिताओं, वाद विवाद प्रतियोगिताओं मे टीम के इचार्ज बनकर छात्रो के साथ कई बार बाहर जाते थे और टीम को विजयी बनवाने का श्रेय प्राप्त करते थे। इसी समय पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज ने 'अमृत' नाम से अपनी पहली मैगजीन प्रकाशित की, जिसमें उन का बहुत योगदान था। अध्यापक के रूप में ही उन्होंने अध्यापन कार्य करते हुए बी.ए., एम.ए. और एल.टी. की योग्यताऐ प्राप्त कीं। इस बीच उन्होने पैन्ट बुशर्ट की जगह पाजामा-कुर्ता पहनना प्रारम्भ कर दिया था। श्री उपाध्याय जी के अवकाश ग्रहण करने के बाद प्रबन्धतन्त्र ने एक मत से जब उन्हें प्रधानाचार्य बनाने का निर्णय लिया। उस समय का दृश्य आज भी आंखों के सामने है। उन्होंने कहा कि मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मै इस पद पर नियुक्त किया जाऊंगा। प्रबन्धतन्त्र ने उस अवसर पर यह भी कहा कि क्योंकि तुम एक अच्छे इण्टर कॉलेज के प्रधानाचार्य बना दिए गये हो इसलिये आप से अपेक्षा की जाती है कि पाजामा-कुर्ता के स्थान पर ऐसे परिधान पहनोगे, जिससे विद्यालय में आने वाले अभिभावकों एवं अधिकारियों पर ठीक प्रभाव पडे। तब

शब्दों के साथ-साथ आचरण में भी अध्यात्म उतरे, इसी में हमारे समाज, राष्ट्र और विश्व का मंगल है।

उन्होने न चाहते हुए भी धारीवाल की ब्राउन एवं ब्लू कलर की सूटिंग खरीद कर जोधपुरी सूट सिलवाये थे, किन्तु वे उन को रास नही आये और अगले वर्ष से ही उन्होने गर्मियों में धोती-कुर्ता तथा जाड़ों में जाकेट पहनना शुरू कर दिया, जो आज तक कायम है। बड़े से बड़े राजनेता, अधिकारी या अन्य किसी भी व्यक्ति के सामने उनके इस भेष में उनकी गरिमा बढ़ जाती है। यहाँ पर भी महत्वपूर्ण है कि उन की नियुक्ति एक इण्टर कालेज में प्रधानाचार्य के रूप में हुई थी किन्तु उनकी योग्यता, निष्ठा, वक्तव्य कला की वजह से उन्हें प्राचार्य कहा जाने लगा, जो वर्तमान मे उन के नाम का पर्याय बन गया है।

कुशल संचालक के रूप में :-

कालेज के समय से ही वे मच संचालन की विद्या में बहुत निपुण थे। राष्ट्रीय स्तर की सभाओ, कवि सम्मेलनो का सरस सचालन मधुरिम टिप्पणियों के साथ वे करते थे 1965 में मुनि विद्यानन्द जी और 1975 में आचार्य श्री विद्यासागर जी के फिरोजाबाद वर्षायोग में प्रवचन-सभाओं के संचालन के द्वारा उनकी राष्ट्रीय पहचान बनी।

लेखक के रूप में :-

पत्रिकाओं एवं अखबारों में लेख, रेखाचित्र, संस्मरण, कविताऐ, सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में सुलझे हुए विचार प्रायः वह लिखते रहते थे और लिखते-लिखते वह सम्पादन कला में भी प्रवीण हो गये। अब तक उन के द्वारा प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा एवं सम्पादित किया गया है।

नेतृत्व क्षमता :-

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन ने समय-समय पर सामाजिक आन्दोलनों का कुशल नेतृत्व किया है। वर्ष 1969-1970 मे जब फिरौजाबाद के ऐतिहासिक जैन मैले की भूमि पर एक राजनैतिक सम्बन्ध रखने वाले उद्योगपति ने कब्जा करना चाहा तो उसके विरोध में आगरा मण्डल के जैन और जैनेतर समाज को लेकर एक सशक्त आन्दोलन लगभग एक माह तक चलाया गया, जिसमें सैकड़ो स्त्रियों पुरुषों की गिरफ्तारियाँ हुयी और धारा 144 तोड़कर गिरफ्तारी देने का क्रम भी निरन्तर जारी रहा। इस का परिणाम यह हुआ कि जैन समाज की बहुमूल्य जमीन सुरक्षित रह सकी और आज भी वह जैन समाज के हाथों में सुरक्षित ही है। आचार्य विद्यानन्द जी ने उस आन्दोलन को ऐतिहासिक बताते हुये कहा था कि फिरोजाबाद जैन समाज के लोगों ने अपनी जमीन की सुरक्षा के लिये सैकडों लोगों को जेल भेजकर एक ऐतिहासिक आन्दोलन किया और उसमें सेठ छदामीलाल जैसे व्यक्ति ने भरपूर योगदान दिया। इसी प्रकार शिक्षकों के आन्दोलन का नेतृत्व तथा अन्य समय पर भी नेतृत्व करके उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया है। जब टूण्डला के पास जारखी के जैन मंदिर से 40 जैन मूर्तिया चोरी हो गयी थी तो उस आन्दोलन का अध्यक्ष उन्हें और महामत्री मुझे बनाया गया। टूण्डला के इतिहास मे इतनी विशाल रैली और 5 घन्टे तक राजमार्ग को जाम करने की घटना को लोग भूले नहीं है। आम चुनाव आने पर जैन समाज चुनाव का बहिष्कार करेगा, जैसा नारा देकर उन्होने तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याणसिंह को विवश कर दिया था और उन्होंने घोषणा की थी कि मूर्तियां बरामद होकर ही रहेगी और वे मूर्तिया बरामद हो भी गयीं। महासभा के शताब्दी समारोह में महामंत्री के रूप में उनके कुशल सचालन मे पूरे देश में शताब्दी महोत्सव ने कीर्तिमान स्थापित किया।

विनोदप्रियता :-

प्राचार्य जी जितने सरल हृदय के व्यक्ति हैं, उतने ही विनोदप्रिय भी हैं। वे किसी भी ऊब के क्षणो को रोचकता में बदल देते है। कुछ प्रसंग इस परिपेक्ष्य में पर्याप्त होगे। जब वे प्राचार्य थे तब प्राचार्यो के अधिवेशन पर एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ और प्राचार्यो की जो सूची प्रकाशित हुई उसमें से किसी एक के आगे प्राचार्या लिख गया। प्रूफ रीडिंग की इस गलती पर वे प्रधानाचार्य उनसे कहने लगे कि आपका तो लिंग-परिवर्तन हो गया। संयोग से उनका उप नाम वैश्य भी था। प्राचार्य जी ने उठकर तुरन्त ही कहा कि आप को ईश्वर का धन्यवाद देना चाहिये कि यह मात्रा प्राचार्य पर लगी, वैश्य पर नही। इस पर ठहाका लग गया और वातावरण सरस हो गया। श्रवणबेलगोल के महामस्तकाभिषेक के अवसर

हे प्रभो! आपकी स्तुति से मेरे समग्र पाप क्षण भर में उसी प्रकार समाप्त हों, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से रात्रि का सघन अंधकार नष्ट हो जाता है।

पर वर्ष 1993 में वे विद्वत् संगोष्ठी के संयोजक थे और संयोग से प्लास्टिक की पाइप लाइन मे एयर हो गयी। इसके कारण से जहां विद्वान् लोग ठहरे थे उस क्षेत्र मे पानी नहीं पहुचा। सभी विद्वान एकत्रित होकर उनके आवास तक पहुँचे और बोले आपकी क्या व्यवस्था है हमें नहाना है और नलो में पानी ही नही है। उन्होने तुरन्त ही कहा कि आप विद्वान हो, यदि इस क्षेत्र में पानी होता तो बाहुबलि भगवान 12 वर्ष बाद नहाते। सयोग से उसी समय पानी चालू हो गया था और वातावरण सरस बन गया। उस ऐतिहासिक समारोह का दूरदर्शन पर हिन्दी में आखो देखा हाल प्रसारित करने हेतु उनका चयन किया गया और उन्होने प्रभावशाली ढंग से उस समारोह को जन-जन तक पहुंचाने मे योगदान किया।

नियमित व संयमित जीवन :-

प्राचार्य जी एक मनीषी विद्वान हैं। उनका जीवन नियमित भी है और सयमित भी जैसा वे बोलते है वैसा ही आचरण भी है। लगभग 20 वर्षो से सूर्यास्त के बाद पानी भी न पीना उनके संयम का परिचायक है। सादगीपूर्ण जीवन जीना नियति है और अभी हाल में समतासागर जी महाराज की पिच्छी जब उन्हे प्रदान की गई तो उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत भी लिया है। वह अनेक विद्वानो के लिए प्रेरणास्पद और अनुकरणीय हैं। वे विद्वानो के लिये आदर्श हैं। निरभिमानी, नि.स्वार्थी, निर्लोभी, निर्भीक व्यक्तिगत के धनी प्राचार्य जी शतायु हों, यही भावना व्यक्त करता हूं।

अंत में किसी कवि की ये पंक्तियाँ उन पर पूरी तरह लागू होती हैं–

कितना मृदु जीवन है इनका
और सभी तत्त्वों का ऐसा
सुघर समन्वय
प्रकृति कह रही हो मानो
यही है एक वास्तविक मानव
एक जीवन्त इंसान

– अनूपचन्द्र जैन, एडवोकेट, फिरोजाबाद

□

ओजस्वी वाणी के धनी

जैन समाज में पण्डित परम्परा की शृंखला मे वर्तमान में अनेक विद्वानो के नाम सम्मिलित हैं। सभी विद्वान अपनी विद्वत्ता, पाण्डित्य एवं वाग्मिता से धर्म की ध्वजा को सतत रूपेण धवल आकाश में फहराए हुए हैं। मुझे यह कहने मे कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती है कि सम्पूर्ण विद्वत् समाज मे अग्रणी और मूर्धन्य विद्वान के रूप मे यदि कोई नाम है तो वह प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी का है।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी के व्यक्तित्व मे अनेक विशेषताओं का समावेश है जिनमें से एक है निर्भीकता के साथ अपनी बात कहने की क्षमता। यही कारण है कि आप समाज में निर्भीक एव प्रखर वक्ता के रूप मे ख्यापित है-स्थापित है। आपकी वक्तृत्व कला एवं विषय प्रतिपादन क्षमता विलक्षण है। मंच पर जब आप बोलने के लिए खड़े होते हैं तो कोई भी विषय आपके बोलने के लिए कठिन या दुरूह नहीं होता है। यही कारण है कि बडी सहजता, कुशलता एवं निर्भीकता से आप अपने विचार श्रोताओं के सम्मुख व्यक्त कर देते हैं। जबकि आज के समय में विशाल जन समूह के समक्ष निर्भीकता के साथ अपने विचार व्यक्त करना साधारण बात नहीं है।

भगवान के गुणानुवाद से चित्त को शान्ति मिलती है और वह विकार-मुक्त होने लगता है।

यह आपकी जन्मजात विलक्षण प्रतिभा है कि आप वाक्पटु हैं और आपकी वाणी एव वक्तृत्व शैली मे गजब की सम्मोहन शक्ति है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वाग्देवी सरस्वती साक्षात् रूप से आपकी जिह्वा पर विराजमान है। आपके द्वारा व्यक्त विचारों मे अधिकाशतः जीवन के यथार्थ की झलक देखने को मिलती है। एक ओर जीवन को ऊंचा उठाने वाला और नैतिकता का बोध कराने वाला सहज बोधगम्य आपका सन्देश और दूसरी ओर आपका अनुकरणीय आदर्श जीवन–ये दोनो ही श्रोताओ एवं आपके सम्पर्क मे आने वाले लोगों के हृदय पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते।

एक और विद्वत्ता एवं पाण्डित्य आपकी वैयक्तिक धरोहर है तो दूसरी ओर शालीनता एवं विनम्रता आपके स्वभाव एवं प्रकृति के सहज स्वाभाविक अग हैं। इसकी झलक स्पष्ट रूप से आपके भाषणो में देखने को मिलती है। जब आप बोलते हैं तो विभिन्न ग्रंथों के अनेक उद्धरण और प्रसग सहज रूप से मुखरित होकर आपकी भाषण शैली को रोचक एवं प्रभाव शाली तो बनाते ही है, आपके वैदुष्य की पर्याप्त छाप श्रोताओं के मन-मस्तिष्क पर डाले बिना नहीं रहते। अनेक बार आपकी विद्वत्ता एवं निर्भीकता की स्पष्ट छाप आपके द्वारा जैन गजट (साप्ताहिक) मे प्रकाशित आपके सम्पादकीय मे देखने को मिलती है। इसके माध्यम से आप समाज को जाग्रत कर समाज मे व्याप्त अनेक कुरीतियो-बुराइयों, असगत परम्पराओं एव रुढ़िगत विसंगतियो से मानो समाज को मुक्त करने का प्रयास कर रहे हों। केवल जैन समाज ही नही, अपितु इतर समाज के, जन सामान्य के नैतिक स्तर को उन्नत करने, जीवन को सादगी पूर्ण बनाने, अपने विचारों मे उच्चता लाने और अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने में आपकी अग्रणी भूमिका सराहनीय है।

आपकी असाधारण एव विलक्षण प्रतिभा ने समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया है। आपका आकर्षक व्यक्तित्व, स्वभाव की सरलता, नम्रता की प्रतिमूर्ति सहज रूप से लोगो को प्रभावित करती है। आपके जीवन शैली का मुख्य आधार है–"सादा जीवन उच्च विचार" जो आपके जीवन की मुख्य विशेषता है। आपके उन्नत और प्रगतिशील विचार सतत रूप से समाज का मार्ग दर्शन कर रहे है। आप सदैव उस श्रमण (जैन) संस्कृति के पोषक रहे है जिसने आचार और विचार की श्रेष्ठता को महत्व दिया हे। सात्विकता, पवित्रता, आचरण की शुद्धता एवं दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण जैन संस्कृति भारत की समस्त संस्कृतियों में अतिश्रेष्ठ एव उन्नत मानी गई है। इस संस्कृति में मनुष्य के जीवन मे सयम एव आचरण की शुद्धता पर विशेष जोर दिया गया है। आडम्बर और पाखण्ड से दूर रहने का निर्देश भी जैन संस्कृति की विशिष्ट देन है। इसे अंगीकार करते हुए प्राचार्य जी ने अपने जीवन को उसी सांचे मे ढालने का सार्थक प्रयास किया है। यही कारण है कि आरम्भ से ही आपका जीवन सयत, सदाचार पूर्ण एव आडम्बर विहीन रहा है। आपके जीवन के अनेक प्रेरक प्रसग अनुकरणीय एव आचरणीय हैं।

धर्म और समाज के प्रति आपका योगदान उल्लेखनीय है। आपके इस योगदान के लिए समाज सदैव आपका ऋणी रहेगा। अत समाज के प्रति आपकी सेवाओ के प्रतिफल स्वरूप आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाना समाज का दायित्व है। इस अवसर पर अपनी अनेकानेक मगल कामनाओं के साथ मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए आपके व्यापद्रहित, स्वस्थ, सुखी, समृद्ध एवं सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, ताकि सुदीर्घकाल तक आपकी सेवाओं एव सक्रिय योगदान से धर्म एव समाज लाभान्वित होता रहे।

– आचार्य राजकुमार जैन, इटारसी (म प्र.)

☐

मोह के उदय में दृष्टि मलिन और विपरीत हो जाती है, सत्य भी असत्य प्रतीत होने लगता है तथा चित्त राग-द्वेष के द्वन्द्व में फंस जाता है। यह मोह मीठा मोहपाश है।

हमारे नगर के गौरव

104 नई बस्ती जहाँ देश के ख्याति प्राप्त विद्वान व जैन गजट के सम्पादक प्राचार्यश्री नरेन्द्र प्रकाश जी का निवास स्थान है उसके कुछ ही कदम की दूरी पर भाई वीरेन्द्रकुमार जी के निवास की वह बैठक जहां सायं 7 बजे से 9 बजे तक प्राय: जो लोग एकत्रित होते हैं उनमे एक नाम आदरणीय प्राचार्यजी का भी है। इस बैठक के स्थाई सदस्य हैं स्वयं प्राचार्य जी, भाई वीरेन्द्रकुमार जी, उमेश जी, कमलकुमार जी, प्रेमचन्द्र जी तथा मैं स्वय सुरेशचन्द्र तथा समय-समय पर आने वाले अन्य महानुभाव। इस बैठक का यह एक नियमित क्रम है। फिरोजाबाद में रहते हुए हम सभी लोग यहाँ शाम को एक साथ बैठकर गपशप अवश्य करते हैं।

यह अन्तरंग से जुड़े इन सभी की अपनी नियमित दिनचर्या है। इस बैठक मे प्राचार्य जी वह नही होते जो वह प्राय प्रवचनमच पर या अन्य किसी सामाजिक, धार्मिक समारोहों की गति विधियो में हुआ करते है। ऐसे भी वह सादगी सरलता की प्रतिमूर्ति है, उनके साथ बैठकर या रहकर यह आभास नही होता कि वह सामान्यजन से कुछ अलग कोई विशिष्ट व्यक्ति है। भले ही सामान्यजन उनके साथ बैठकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हो किन्तु वह स्वय मे सामान्य व्यक्ति के साथ रहकर भी कोई हिचक या सकोच का अनुभव नही करते। उनकी विद्वता, मान सम्मान कभी लोगों के मध्य दीवार बनकर खडी नही होती। उनके व्यक्तित्व का यह गुण उनकी अपनी एक निजी पहचान है जो प्राय: सम्मान के उच्चशिखर पर पहुँचे व्यक्तियो मे कम ही दिखाई पडती है।

जैन समाज की धार्मिक व सामाजिक गतिविधियों में पूरे देश भर मे उनकी क्या आवश्यकता है, और इस आवश्यकता के चलते वह कितने व्यस्त है यह आभास हम सभी को उस बैठक में भी होता रहता है। हमारे अपने नगर के उनके सभी परिचित व्यक्ति जानते ही है कि नगर मे रहते हुए साय 7 बजे के बाद वह कहां मिलेंगे उक्त समयावधि में अगर किसी को उनसे मिलना है या किसी विषय पर कोई चर्चा या विचार करना है तो उनके निवासस्थान पर न जाकर भाई वीरेन्द्र जी की बैठक मे ही आता है। प्राय इस अवधि मे ऐसा कोई भी दिन नही होता जब बाहर से अन्यस्थानो से उस बीच एक दो फोन वहाँ उनके लिए न आते हो।

प्राचार्य जी हमारे अपने नगर के ही नही अपितु विद्वत्ता मे पूरे देश के गौरव है। उनके गृहनगर मे सभी वर्ग के लोग इस बात को अनुभव ही नहीं करते अपितु अपने इस सौभाग्य पर गौरवान्वित भी होते है। जब इस बैठक के भागीदारो को यह ज्ञात हुआ कि कोलकता मे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की बैठक मे उनकी विद्वता, धार्मिक व सामाजिक सेवाओ के लिए उनका अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है तो हम सबको लगा कि महासभा का यह निर्णय किसी व्यक्ति विशेष के सम्मान का निर्णय नही बल्कि उन मानवीय गुणमूल्यो को सम्मानित करने का निर्णय है जो उनके जीवन मूल्यों से जुड़े हुऐ हैं। फिरोजाबाद नगर परमपूज्य आ श्री महावीर कीर्ति जी का जन्मस्थान होने के साथ पूर्व में अनेकानेक जैन विद्वानो का गृहनगर व कार्यक्षेत्र रहा है। आदरणीय प्राचार्य जी का सम्मान इस पूरी विद्वत् परम्परा का सम्मान है इस नगर की प्रबुद्धता का सम्मान है।

हम लोगों की इस बैठक मे चर्चा का कोई नियमित विषय नही होता। यहाँ सामान्य से निजी चर्चाओ से लेकर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, व देश की अन्य सभी घटनाओ पर चर्चा होती है। इस चर्चा के माध्यम से हम सभी को उनके अभिमत की जानकारी होती रहती है। विषय चाहे श्रावक समुदाय में आए शिथिलाचार या सामाजिक परम्परा मे समाहित बुराईयों का हो या श्रमणजनों के शिथिलाचार या जिनागम से हटकर उसके क्रियाकलाप का हो वह उस पर खुले मन से चर्चा करते हैं और अपनी चिन्ता व्यक्त करते हैं। आवश्यकतानुसार वह अपने विचार जैनगजट के सम्पादकीय कालम से लेकर अन्य सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में अपनी लेखनी से या मंच पर अपने भाषणों से प्रगट भी करते हैं। अब तक

उनके द्वारा लिखे गये सेकड़ों लेखों में से कुछ चुने हुए लेखों का पुस्तकाकार संग्रह 'चिंतन-प्रवाह' एवं समय शिलालेख महासभा से प्रकाशित हुआ है जो पठनीय कृतियां है। धर्म के क्षेत्र में धन के बढ़ते प्रभाव पर उनकी चिंता वर्तमान समय में एक विचारणीय बिन्दु है। आचार्य, मुनिराजों के वर्षायोगो पर बढ़ता हुआ खर्च अब लाखों की सीमा पार कर करोड़ो के आकड़ों को छूने लगा है उनके अनुसार यह वीतरागता का परिचायक नही। इसी प्रकार पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवो में मुख्य धार्मिक क्रियाओं को गौण कर मात्र उनका मंचीय प्रदर्शन भी उन्हें रुचिकर नही। यह सब ऐसे विषय्र हैं जिन पर चर्चा प्रायः इस बैठक में होती रहती है। उनका मानना है कि धर्म में धन के हस्तक्षेप के चलते अनेक विसंगतियों ने जन्म लिया है इन विसंगतियों की कालिमा ने वीतरागता की पावनता को भी आज मलीन करना प्रारम्भ कर दिया है। समय-समय पर वह अपने विचार आलेखों या प्रवचनों के माध्यम से प्रगट करते रहते हैं। उनका अभिमत है कि सीमा का अतिक्रमण कर किसी व्यामोह में फसना श्रावक या श्रमण किसी के हित में नहीं हैं, इसके चलते जिनागम की छवि भी धूमिल होती है।

किसी विषय पर मतभिन्नता होने पर भी वह अपनी बात को हठपूर्वक मनाने का आग्रह किसी से नही करते। उनके स्वयं के तर्क इतने समयानुकूल होते है कि सामने वाले उनके कथन पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दूसरो के दुराग्रहपूर्ण हठ को भी वह अपनी सहज और सामान्य शैली से अनुकूल बनाने की कला मे प्रवीण हैं और यही कारण है कि उन्हें पक्ष विपक्ष में समान रूप से सम्मान प्राप्त है। उनके साथ हम सभी के अनेक अनुभव जुड़े हुए है। हम अपने नगर गौरव ही नहीं देश गौरव इस व्यक्तित्व के प्रति सामूहिक रुप से हार्दिक मगल कामनाएे व्यक्त करते हुए उनके दीर्घजीवन की कामना करते हैं।

– सुरेशचन्द्र जैन (इसौली), फिरोजाबाद

□

कृतित्व और व्यक्तित्व के धनी

इस प्रकृति के सभी प्राणधारकों मे एक मनुष्य ही तो एक ऐसा प्राणी है जिसके लिए सभी सम्भावनाओं के द्वार सदैव खुले हुये हैं। आवश्यकता है अपनी सम्भावनाओं को प्रकट करने के लिए उनके प्रति सत्यनिष्ठा और सम्पूर्ण समर्पण भाव की आदरणीय प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी की जीवन यात्रा अपने कार्यक्षेत्र के प्रति अपने कर्त्तव्य बोध का एक जीता जागता प्रमाण पत्र है। वह अध्यापन से लेकर प्राचार्यपद के प्रशासनिक दायित्व तक या शास्त्र की गद्दी से लेकर जैन गजट जैसे सर्वाधिक प्राचीन सामाजिक-धार्मिक पत्र के सम्पादन तक अपने गुरुतर दायित्व के प्रति सदैव सचेत और सचेष्ट रहे तथा रहते हैं। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्त्व उसके कृतित्व का दर्पण होता है, उसका कृतित्व ही उसके व्यक्तित्व में दर्शित होता है। सत्यनिष्ठा और निर्लोभिता ही समीचीन सम्यक कृतित्व की नीव होते हैं। और यह दोनों ही गुण उनकी जीवनशैली के अभिन्न अंग है। अपनी बात को निर्भीकता पूर्वक कह पाना तभी सम्भव हो पाता है जब कथनी और करनी में एकरूपता होती है। इस कथनी और करनी की एकरुपता ने ही उन्हें आज जैन-जैनेतर के सभी वर्ग में सम्मान के उच्चशिखर पर स्थापित किया है। सामाजिक और धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में उनका कृतित्व आज एक उदाहरण की तरह माना जाता है।

हमारे छात्रजीवन से लेकर आज तक के अनेक अनुभव उनके साथ अति निकटता से जुडे हुये हैं। उनकी अध्यापन शैली, छात्रों को उनके कर्त्तव्य बोध कराने तथा उन्हें अनुशासित जीवन जीने की कला सिखाने में उनकी अद्भुत क्षमता का लोहा पूरा विद्यालय परिवार मानता था। उनकी क्षमताओं को देखकर ही उस समय के विद्यालय प्रबन्ध तंत्र ने वरिष्ठता क्रम का उल्लंघन कर उन्हे विद्यालय के प्राचार्य पद का गुरुतर भार सोपा था। उनकी समन्वयकारी रीत-नीत के चलते उनके वरिष्ठ सहयोगी भी उनके साथ मात्र सहयोगी ही नहीं अपितु उनके अग्रणी प्रशंसक बन कर रहे। यह एक संयोग ही था कि स्वयं

भक्ति का कार्य ही पापों को नष्ट करना है। जिन भक्ति के द्वारा हमारे हृदय में पवित्र भावों के संचार से पुण्य-बंध होता है और उस पुण्य के फल से पाप दूर होते हैं।

मेरे अतिरिक्त अन्य कई ऐसे महानुभाव जो अपने छात्र जीवन मे उनके छात्र रहे वह आगे चलकर उनके प्राचार्य काल में विद्यालय प्रबन्ध तंत्र के सदस्य, पदाधिकारी बनकर विद्यालय संचालन व उसके विकास में उनके साथ भागीदार बने। यह एक रोमांचिक अनुभव था, एक तरफ प्रबन्धाधिकारी के वह सदस्य-पदाधिकारी अपने शिक्षक गुरु के अपने शिष्यों के विकास को अपनी गुरुता का परिणाम मानकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे। गुरु शिष्यो की इस प्रकार की निकटता के यह अवसर और उस पर एक दूसरे के प्रति सहजता और सम्मान प्राय· कठिनता से ही दृष्टिगत होता है। यह उनके सम्यकसोच, सवन्वय के साथ उनके विशाल व्यक्तित्व का ही परिणाम है जो कभी टूटन का पक्षधर नहीं सभी को साथ लेकर चलने का विश्वासी है। बाईस साल का उनका प्राचार्यपद का कार्यकाल विद्यालय के विकास और उत्कृष्टता का स्वर्ण-युग है।

उनके प्राचार्यपद काल में विद्यालय अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। उस काल में हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठित कवि, साहित्यकारों का आगमन विद्यालय में हुआ। इनमें प्रमुख नाम हैं रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, वियोगी हरि, बलवीर सिह रंग, यशपाल जैन, डा. परिपूर्णानन्द आदि। हिन्दी के जाने माने साहित्यकार एवं पत्रकारिता के भीष्मपितामह पद्मभूषण श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जो नगर फिरोजाबाद के ही थे उनका प्राचार्य जी के प्रति अत्यधिक स्नेहभाव था। वह नगर निवास के समय विद्यालय के उपवन में प्रातः भ्रमण के लिए नियमित आते थे। आदरणीय चतुर्वेदी जी के सेकड़ों पत्र जो समय समय पर उन्होंने प्राचार्य जी के लिए लिखे आज भी उनके पास अमूल्य निधि की तरह सुरक्षित हैं। नगर के अन्य साहित्यकार श्री रतनलाल वशल, उमेश जोशी, श्रीराम शर्मा आदि सदैव इनके प्रसंशक रहे। आज भी सभी साहित्यक गोष्ठियो में उनकी उपस्थिति को गरिमा के रुप मं देखा जाता है। उनके प्राचार्य काल में विद्यालय मे साहित्यकार ही नही भाई परमानन्द जी, सचीन्द्रनाथ सान्याल, रामचरण हयारण मित्र, मन्मथनाथ गुप्त, राजा महेन्द्रप्रतापसिंह, बाबा पृथ्वीसिंह आजाद, जैसे स्वतत्रता सेनानी तथा महाराज कर्णसिंह (उस समय युवराज) श्रीमती इन्दिरागान्धी, श्री चन्द्रशेखर, श्री मधुदण्डवते, श्री मधुलिमिये, श्री कमलापति त्रिपाठी आदि अनेक वरिष्ठ राष्ट्रीय नेता समय-समय पर विद्यालय मे अतिथि बन कर पधारते रहे है। जैन विद्वानो का आवागमन प्रायः उन दिनों विद्यालय में होता रहता था इनमें प्रमुख रूप से यशपाल जैन, डा. दरबारीलाल जी कोठिया, प कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला, डा. राजाराम जी आरा आदि प्रमुख नाम हैं। नगर मे वर्षायोग या अल्पप्रवास पर आए पूज्य दिगम्बर मुनिराज, आचार्यो के साथ पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी व श्वेताम्बर मुनि सुशील कुमार जी की चरण रज ने भी उनके समय मे विद्यालय की भूमि को पावन किया है। प्राचार्य जी स्वय मे एक जनप्रभावक पत्रकार और लेखक हैं उनका स्नेहभरा मार्ग दर्शन ओर सहयोग सदैव साहित्य और धर्म के क्षेत्र में नवअंकुरित साहित्यकारो को प्राप्त रहता है।

अति निकटता से उन्हें जानने वाले अनेक लोग उनकी निर्लोभता के साक्षी हैं। अपने विद्यालय के कार्यकाल से स्वेच्छापूर्वक दो वर्ष पूर्व ही अवकाश प्राप्तकर वह सामाजिक व धार्मिक कार्यो के लिए कार्यमुक्त हो गये अपनी अभिव्यक्ति की स्वतत्रंता के लिए उन्होंने कितने ही आर्थिक प्रलोभनों को सहजता से अस्वीकार कर दिया। ऐसी निस्पृहता आज बिरले ही लोगों में देखने को मिलती है।

हजारों हजार की भीड़ को सम्मोहित कर उनके बोलने की क्षमता को आज पूरा देश सम्मान देता है। बोलने के साथ उनका अपनी कलम पर भी उतना ही अधिकार है। प्रायः यह सयोग भी विरले ही लोगों को मिल पाता है कि वह कुशल वक्ता के साथ एक प्रभावी समीचीन लेखक भी हो, उनके द्वारा लिखे गये सम्पादकीय व स्वतंत्र लेख जहाँ आने वाले कल के लिए कीमती दस्तावेज की तरह हैं वही उनके द्वारा लिखी व सम्पादित की गई कृतियाँ धर्म और समाज की नीति निर्धारण में मील के पत्थर की तरह हैं। बोलने ओर लिखने में उनकी शैली इतनी सहज और प्राशंसिक है कि वह सरलता से सबको हृदयग्राही बन जाती है। उलझन और विवाद भरे प्रश्नों पर उनके सुझाव प्रायः सर्वग्राही होते हैं।

जिनशासन की मर्यादा के प्रति वह सदैव सजग और सचेष्ट रहते हैं। इनके चलते अगर कभी उन्हें कुछ कहना या

बुरे विचारों से पाप-बंध होता है और पाप-बंध ही कुगति, दुर्दशा या संसार-परिभ्रमण का कारण है।

लिखना पड़ता है तो वह शास्त्रीय सीमा रेखा के अन्दर निःसंकोच कहने या लिखने में नही चूकते। नीतिगत् प्रसगो पर वह कभी समझोता नही करते। प्रभावी से प्रभावी व्यक्ति भी उन्हें नीतिगत सिद्धान्तो से नही डिगा पाते। उनका मानना है कि व्यक्ति मान्यताओं, सिद्धान्तों और जिनशासन की मर्यादाओं से ऊपर नही होता। उनका कहना है कि जिनवाणी का हर शब्द सारभूत, सार्थक और प्रमाणिक है। पक्षपात रहित शास्त्र संगत अपनी स्पष्ट वादिता के कारण वह पूज्य मुनिसंघों सामाजिक व धार्मिक मंचों से लेकर तेरहपथ, बीसपथ, आर्षमार्ग या सोनगढ़ मान्यता वालों तक अपनी बात को प्रभावपूर्वक रखने में कोई संकोच नहीं करते। उनकी बात सभी पक्षो मे सम्मान पूर्वक सुनी जाती है।

जैन समाज के अन्दर आज उनका व्यक्तित्व निर्विवाद माना जाता है। किसी पद का व्यामोह उन्हे कभी नही रहा, किन्तु समाज या सगठन का चुनाव उन्होने कभी नही लड़ा। अपने प्राचार्य पद कार्यकाल में वह शिक्षक संघ के दो बार निर्विरोध जिला अध्यक्ष चुने गये। अखिल भारतवर्षीय शास्त्रि परिषद् जो विद्वानो की सर्वाधिक प्राचीन संस्था है उसके वर्तमान में और उससे पिछले कार्यकाल के वह सर्वसम्मत निर्विरोध अध्यक्ष है। समाज में जब कभी कहीं किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है तक समाज उनके नेतृत्व में उस समस्या का समाधान खोजती है। गत वर्षो में दिगम्बर जैन मन्दिरो में होने वाली चोरीं की घटनाओं में काफी वृद्धि हुई है। आगरा मण्डल में पिछलें कुछ वर्षो मे मैनपुरी दि जैन मन्दिर व जारखी दि. जैन मन्दिर की चोरी ने इस क्षेत्र के पूरे जैन समाज को हिलाकर रख दिया था। जारखी मन्दिर के करीब 22 मूर्तियॉ एक साथ चोरी हुई और मन्दिर में एक भी मूर्ति शेष नहीं बची थी। जारखी ग्राम टूण्डला के निकट है अत· टूण्डला को केन्द्र बनाकर उस समय शासन और प्रशासन पर दबाब बनाने के लिए पूरे आगरा मण्डल (आगरा, मथुरा, अलीगढ, एटा, मैनपुरी, इटावा, फिरोजाबाद जनपद) के जैन समाज को एकत्रित कर उन्होने जो आन्दोलन खडा किया उससे पूरा उत्तर प्रदेश शासन हिल उठा था, टूण्डला का प्रसिद्ध चौराहा जो राष्ट्रीय राजमार्ग (शेरशाह सूरीमार्ग) पर है उसे उनके नेतृत्व मे घण्टों के लिए जाम किया गया था। जैन समाज द्वारा अपने आराध्य की चोरी के प्रति रोष प्रगट करने की यह अपने मे एक अभूतपूर्व घटना थी। जो शायद देश भर में पहली बार उनके नेतृत्व मे हुई, उस समय केन्द्र के चुनाव का समय था लोकसभा के चुनाव बहिष्कार करने का आह्वान उनके नेतृत्व में किया गया उसका इतना तत्काल प्रभाव हुआ कि उस समय के उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री कल्याणसिह जी को अपने दो वरिष्ठ मंत्री भेज कर यह आश्वासन दिलाना पड़ा कि शासन हर प्रकार से इन मूर्तियो को खोजकर जैन समाज को सोंपेगा, और यह कार्य पूरा भी हुआ, पुलिस प्रशासन ने कुछ ही दिनो मे वह सभी मूर्तियॉ बरामद कर समाज को सोप दी। मैनपुरी का जन आन्दोलन भी उनके नेतृत्व में सफल हुआ था और मन्दिर जी से चोरी गई सभी मूर्तियॉ पुनः वापस मिली।

फिरोजाबाद के 300 साल प्राचीन जैन मेला भूमि पर नगर के एक प्रतिष्ठित परिवार द्वारा जब कब्जा किया गया तब पूरे फिरोजाबाद जैन समाज के अग्रणी लोगो को झूठे केसों में फॅसाकर गिरफ्तार कर लिया गया था उस समय जैन समाज के जन आन्दोलन का नेतृत्व प्राचार्य जी ने स्वयं सभाला और उसे पूर्णता तक पहुँचाया। सामाजिक नेतृत्व में उनकी वाणी का जादू लोगो के सिर पर चढ़कर बोलता है। फिरोजाबाद नगर को अपनी इस धरोहर पर गर्व है। साहित्यक, सामाजिक, व धार्मिक सभी मंचों पर उनकी उपस्थिति उस मंच को गरिमा प्रदान करती है। सन् 1993 मे भगवान बाहुबलि (गोम्मटेश्वर) के महा मस्तिकाभिषेक पर दूरदर्शन से ऑखों देखा हाल की रनिग कामेंट्री (हिन्दी) के लिए उनका चुनाव हुआ था। उस समय उन्हें दूरदर्शन से देश-विदेश मे सुना और सराहा गया था।

प्राचार्य जी का अभिनन्दन उन मानवीय गुणो का अभिनन्दन है, जो उनकी जीवन पूंजी है। इस अवसर पर हम उनके मंगलमय जीवन के लिए कामना करते हुए यह आशा करते हैं कि धर्म, समाज, और देश के लिए उनका मार्ग दर्शन हम सभी को सदैव प्राप्त होता रहेगा।

— उमेश जैन, फिरोजाबाद

☐

जिस प्रकार एक नन्ही-सी ज्योति-किरण पूरे अंधकार को पी जाती है, उसी प्रकार अनादिकाल से बंधे हुए पाप-कर्म प्रभु-भक्ति के प्रताप से जीर्ण होकर झड़ जाते हैं। यही तो है भक्ति की अचिन्त्य महिमा।

कथनी-करनी में एकरूपता

प्राचार्य प्रवर एक राष्ट्रीय मनीषी हैं। उनका योगदान राष्ट्र के लिये धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना फैलाने वालो में सदैव प्रथम पंक्ति में है, प्राचार्य जी की वाणी ओजस्वी है। मानो स्वय वाग्देवी उनकी रसना में विराजित हैं। उनका लेखन धार्मिक एवं साहित्यक दोनों श्रेणियों में अतिविशिष्ट है। उनकी प्रशासन क्षमता निःसन्देह रूप से उत्तम है।

पंडित जी इस धरा पर समाज के लिये ईश्वर प्रदत्त वरदान है। मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस अनुभूति का वर्णन शब्दो में करना अत्यन्त दुष्कर है। उनके सामीप्य की अनुभूति उसी प्रकार से वर्णनातीत है जिस प्रकार गूंगा गुड खाने के बाद उसका स्वाद को अनुभव कर सकता है, लेकिन वर्णन नही कर सकता।

प्राचार्य महोदय ने समाज को जो भी निर्देश दिये पहले स्वयं उन पर चलकर दिखाया, उन्होने कथनी-करनी का अन्तर अपने व्यवहार से दूर कर दिखाया, अर्थात् जो कहा, वही किया, सच्चे अर्थो में महापुरुषो का जीवन चरित्र एव दृष्टिकोण अगर जानना-समझना हो, तो प्राचार्य जी इसके ज्वलंत प्रमाण है। उन्होने समाज को एक विशिष्ट गति दी है। धर्माचरण क्या है? कैसा होना चाहिये यह उनके द्वारा बताया गया जीवन प्रमाण प्रस्तुत करता है। साहित्य कैसा हो, साहित्य समाज के लिये क्या कर सकता है? समाज मे साहित्य का स्थान एव उपयोगिता यह उनसे अच्छी तरह कोई नही जान सकता, यह बात उनके द्वारा रचित साहित्य द्वारा प्रमाणित है।

जैसा कि कहा भी गया है कि विद्वान लोग हर जगह पूजे जाते हैं, उन पर किसी एक समाज या एक परिवार या एक समुदाय का अधिकार नही रह जाता, वो तो मानव की भलाई व समाज के उद्धार हेतु ही इस धरा पर आते है, वो सारी मानव जाति के भूषण होते हैं। या दूसरे शब्दो मे कह सकते है, कि प्राचार्य प्रवर जैसी विभूतियां ईश्वर द्वारा हम लोगो के लिये भेजी गई सर्वोतम सौगातों मे से एक है। ऐसी विभूतियो के सम्मान मे कुछ कहना या लिखना अपने शब्दो को तुच्छ बनाना है। सम्मान उनके लिये नही अपितु उनके नाम से सम्मान गौरवान्वित होते हैं।

प्राचार्य जी जिस तरह से समाज की सेवा करते आये है, जिस तरह साहित्य को उन्होने गौरवान्वित किया है। हम उस सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, कि प्राचार्य जी को स्वस्थ दीर्घायु प्रदान करे।

— डा गणेशचन्द्र शर्मा, फिरोजाबाद

□

जैन पण्डित परम्परा के पोषक

जैन धर्म एक शाश्वत धर्म है। त्रिकालवर्ती चर्तुविंशाति तीर्थकरों की उद्भावना के फलस्वरूप यह सिद्ध है कि जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अनादि से रहा है और रहेगा। जैन धर्म के विकास मे, जिनवाणी की रक्षा एव सरक्षा मे, जैन धर्मावलम्बी समाज को सच्चरित्र, धर्मनिष्ठ उपासक बनाये रखने मे जितना योगदान पूज्य श्री 108 आचार्य भगवन्तों, साधु परमेष्ठियो के अनन्तर भट्टारक महाभागो का रहा है वैसा किसी अन्य का इतिहास में देखने सुनने को नही मिला है।

जैन आचार्यो ने तीर्थकरों की वाणी को सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओ के साथ साथ कन्नड, तमिल, तेलगू, मराठी भाषाओं में निबद्ध किया है। आचार्यो की भावना जैन धर्म को सर्वजनीन बनाने की रही थी। परन्तु जैन धर्मावलम्बी अधिकांश समाज उक्त भाषाओं का ज्ञाता न होने से ग्रन्थों के भाव समझने में समर्थ नही था अतः जैन पण्डितों ने कठिन

[illegible] ग्रंथों से सीखा कर लेता है तथा [illegible] नौका पर सवार होकर संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

श्रम करके उन ग्रन्थों की टीकायें कर सर्वजन को समझने योग्य बनाने का महनीय कार्य किया है व पण्डित, विद्वान रहे हैं स्व..पं. टोडरमल जी, स्व. प. सदासुखदास जी, प. जयचंदजी छावड़ा, पं द्यानत राय जी, पं. भूधरदासजी, पं. आशाधरजी आदि है।

जैन पण्डित सर्वत्र सुलभ न रहने के कारण तथा यातायात के साधनों की कमी के कारण, जैन धर्मावलम्बी अशिक्षा के कारण, जैन धर्म के अन्ध श्रद्धालु बने रहे या कुछ देश काल की परिस्थितियो के कारण धर्म परिवर्तन कर अन्य धर्मो के अनुयायी हो गये परिणामतः करोड़ों की संख्या में रहने वाले जैन धर्म उपासक मात्र लाखों में ही रह गये हैं।

पंडित गणेश प्रसाद जी "वर्णी" न्यायाचार्य ने जन्मनः जैन न होते हुए भी जैन धर्म के मर्मज्ञ विद्वान होकर गॉव-गॉव पदैल यात्रा कर अशिक्षित जैन समाज को शिक्षा की ओर रूचिवन्त बनाया। जगह-जगह पाठशालायें खुलवाकर जैन धर्मावलम्बी समाज के बच्चों को जैन धर्म के ज्ञान एवं आचरण से सस्कारित करने का महनीय कार्य किया था। वाराणसी में स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय की, सागर में श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना करवा कर पण्डित निर्माण का कार्य किया। उक्त विद्यालयों मे रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने, विद्वान जैन धर्म के प्रति श्रद्धालु एवं अनुरागी बने, उनमें से कुछ पंडित बने रहे और कुछ प्राध्यापक या प्रोफेसर बने पर सभी ने जैन विद्या के प्रचार में कोई कमी न रखी है। कुछ तो ऐसे भी विद्वान रहे है जिन्होंने जैन विद्यालयों में अध्ययन न करके भी षट्खण्डागम, धवला, महाधवला आदि अति-दुर्लभ ग्रन्थो की हिन्दी भाषा में टीँकायें कर जिनवाणी की सेवा की है।

पंडितों के नाम से जाने वाले विद्वान तो समाज द्वारा प्रदत्त अति न्यून वेतन में कार्य करते रहे और कुछ तो अभी कर रहे है।

चारों अनुयोगों की सेवा करने में अपनी शक्ति लगानेवाले प्रमुख विद्वान निम्नलिखित हैं।

स्व. डॉ हीरालाल जी, स्व डॉ ए.एन. उपाध्येजी, स्व. पं माणिकचन्द जी "कौन्देय", फिरोजाबाद, स्व पं लालारामजी शास्त्री चावली, स्व. पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, मोरेना, स्व. पं. देवकीनन्दजी शास्त्री, कारजा, स्व प. कैलाशचंदजी शास्त्री, वाराणसी, स्व. पं. फूलचंदजी सिद्धान्तशास्त्री, वाराणसी, स्व. पं. महेन्द्रकुमार जी, न्यायाचार्य खुरई (वाराणसी), स्व प जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, कटनी, स्व. पं. हीरालाल जी शास्त्री, साढूमल, स्व. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर, स्व पं. वर्द्धमान जी शास्त्री, सोलापुर, स्व प. वशीधरजी व्याकरणाचार्य, बीना, स्व. प. बालचन्द्र जी शास्त्री, सोंरई, स्व. ष कें. भुजबली शास्त्री, मूड़बिद्री, स्व. पं. सुमेरुचन्द जी दिवाकर, कटनी, स्व. पं. मूलचन्द्रजी शास्त्री महावीर जी, स्व खुशालचन्द जी गोरावाला, वाराणसी, स्व. प. डॉ. लालबहादुर शास्त्री, दिल्ली, स्व. पं. परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ, ललितपुर, स्व. प. डॉ दरबारीलाल जी कोठिया, बीना, स्व. पं. अमृतलाल जी दर्शनाचार्य, वाराणसी, श्री पं. उदयचद जी सर्वदर्शनाचार्य वाराणसी, स्व. डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, जयपुर, पं. अजितकुमार जी शास्त्री, श्री महावीर जी, पं. इन्द्रकुमार जी शास्त्री, जयपुर, प. शान्तिलाल जी, शाह बम्बई, डॉ. गोकुलचंदजी, वाराणसी, स्व. प. चैनसुखदास जी, जयपुर, पं. नाथूराम जी शास्त्री, "डोगरीय", इन्दौर, स्व. पं. डॉ. नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य, आरा, स्व. पं. परमानन्द जी शास्त्री, दिल्ली, डॉ. प. प्रेमसागर जी, बड़ौत, स्व. पं. राजकुमार जी शास्त्री, आगरा, डॉ. पं. राजाराम जी, आरा, डॉ. पं. देवेन्द्रकुमार जी शास्त्री, नीमच, स्व. प. प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली, पं. पदमचंद जी शास्त्री, दिल्ली, पं. डॉ. हुकुमचंदजी भारिल्ल, जयपुर, पं रतनचंदजी भारिल्ल, जयपुर, स्व. पं. ज्ञानचन्द जी "स्वतंत्र", गंजवासौदा, स्व. पं. मूलचन्द जी कापड़िया, सूरत, स्व. पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, जयपुर, पं. नाथूलाल जी शास्त्री, इन्दौर, स्व. डॉ. नेमिचन्द जी, इन्दौर, पं. मदनलाल काला, स्व. पं. माणिकचंदजी, न्यायतीर्थ, कारजा, स्व. पं. माणिकचन्द जी मिसीकर, बाहुबलि, पं. विमलकुमार जी, सोंरया, टीकमगढ़, पं. भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री, खुरई इत्यादि शताधिक विद्वान रहे हैं और है जो निरन्तर जिनवाणी की सेवा कर रहे हैं।

उपरिलिखित विद्वान अनुवादक, सम्पादक, समालोचक के साथ-साथ शोध खोज पूर्ण आलेख लिखकर जैन धर्म की

जिस प्रकार पाषाण-निर्मित मूर्ति में हम जिनेन्द्र प्रभु की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार वर्तमान मुनियों में चतुर्थकालीन साधुओं की कल्पना कर, हमें उनकी पूजा करनी चाहिए।

प्रभावना कार्य करते रहे कर हैं परन्तु प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी एम. ए एक ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने शास्त्रीय पद्धति से जैन धर्म का अध्ययन नहीं किया है पर प्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं..रामस्वरूप शास्त्री जो नरेन्द्रजी के पूज्य पिताजी है से विरासत मे मिली प्रतिभा एवं जैन धर्म के प्रति अनुराग ने उन्हे सस्कारवान बनाया है। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी एक कुशल, प्रतिभा सम्पन्न, तर्कप्रवण, प्रभावक ओजस्वी वक्ता, अनुशासित एवं अनुशासनप्रिय, स्वाध्यायशील रचनाकार है। विभिन्न सामाजिक उपाधियों से अलंकृत, समाज द्वारा अनेक बार पुरस्कृत, श्रेष्ठ संगठक, लोकप्रिय सम्पादक जैन धर्म की कठिन से कठिन शंकाओं को सरल भाषा तथा हास्य व्यग पूर्ण शब्दों में सुलझाने वाले, उच्च कोटि के मनीषी मंत्रमुग्ध कर लेने की वक्तृत्व कला सम्पन्न, निष्कलंक व्यक्तित्व के धनी, साहित्यकार हैं।

मैं जैन प्राचीन पण्डित परम्परा के पोषक पण्डितों के समस्तगुणों से विभूषित, जैन धर्म और समाज भूषण प नरेन्द्रप्रकाश जी प्राचार्य फिरोजाबाद के शतायुष्क की कामना करता हूँ।

– डॉ. नेमिचन्द्र जैन प्राचार्य
गुरूकुल, खुरई (सागर)

□

वस्तुतः प्राचार्य जी सरस्वती-पुत्र है

प्राचार्य शब्द कहते ही प्राचार्य श्री प नरेन्द्रप्रकाश जी का नाम उपस्थित हो जाता है। आज वे प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हो चुके है। लेकिन समाज के आचार्यो ने अभी भी उनको अपना प्राचार्य मान रखा है। इसलिए प्राचार्य जी से उनकी मात्र पहचान ही नहीं है बल्कि अभी भी उनको सभी छात्रो, विद्वानों, आचार्यो एव समाज ने अपना अनुशास्ता मान रखा है। शास्त्रि-परिषद के विद्वान उनको अपने अध्यक्ष पद से मुक्त नही होंने दे रहे है।

अनुकरणीय सम्पादक–

जैन गजट मे सम्पादक का पद निर्वहन करते हुए सम्पादको के लिए अनुकरणीय है (मेरे लिए तो निश्चित ही है)। जटिल से जटिल प्रश्नो का समाधान आपके सम्पादकीय मे आगम सम्मत एव युक्तिसगत देने में आपकी लेखनी बेजोड़ है। चाहे गृहस्थों का अनुशासन हो या श्रमणो का समुचित राय देने मे सकोच नही करते तथा अपनी निर्भीक लेखनी से समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं। इनके सम्पादकीय लेखो का संग्रह 'समय के शिलालेख' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

ओजस्वी वक्ता–

बड़ी से बड़ी सभा मे शमा बाधने वाले ओजस्वी वक्ताओ मे आप शिरमौर है। जब भी कोई बडे अधिकारी, मुख्यमत्री या राज्यपाल आदि के पास कोई बड़े कार्यक्रम होते है तो जैन समाज का पक्ष रखने के लिए पूज्य प्राचार्य जी को याद किया जाता है। अभी मथुरा में जब समस्त उ. प्र. जैन समाज के द्वारा माननीया मुख्यमत्री मायावती का अभिनदन कार्यक्रम चल रहा था। वक्ताओ को अपनी बात रखने का बहुत अवसर नहीं मिल रहा था। सभा का संचालन प्राचार्य जी कर रहे थे। वक्ता के बुलाने के उद्बोधन में एवं समापन के अवसर पर प्राचार्य जी जो अपनी समीक्षा देते थे वह माननीया मुख्यमंत्री जी के लिए सूत्र वाक्य हो जाती थी, इसलिए अपने उद्बोधन में माननीया मुख्यमंत्री मायावती को बार-बार विद्वान वक्ताओ के स्थान पर संचालक महोदय (प्राचार्य) जी के नाम पर ही अपनी बात कही एवं इनकी विद्वत्ता का श्रेय स्वीकार किया।

निर्भीक–

समाज के श्रेष्ठियों, साधुओं या अधिकारियों के सामने आप निर्भीकता से अपनी बात रखते है। उनको कोई लालच

यह महावीर की और कुन्दकुन्द की मुद्रा है। इसकी अवमानना कभी मत करना।

या संकोच नहीं है। दो वर्ष पहले लखनऊ में भी महावीर जन्मोत्सव का विशेष कार्यक्रम चल रहा था। उ. प्र. सरकार द्वारा **आयोजित** क्षमापर्व के कार्यक्रम में माननीय राज्यपाल जी ने क्षमा पर प्रश्न खड़ा किया कि आज अफगानिस्तान मे लादेन **ने** उत्पात मचा रखा है इस अवसर पर जैनियों की क्षमा क्या करेगी? माननीय महामहिम जी के पूर्व प्राचार्य.जी का उद्बोधन हो चुका था, मैं सोच ही रहा था कि महामहिम जी के प्रश्न का उत्तर दिया जाना चाहिए कि प्राचार्य जी ने तुरन्त कागज में नोट लिखा और बढा दिया महामहिमजी के सामने की जैन परम्परा में अहिसा का विशद विवेचन किया गया है। आत्मरक्षार्थ हिंसा के निवारण के लिए विरोधी हिंसा गृहस्थों एवं राजा के लिए विहित है।

स्पष्टवादी–

जैन परम्परा में कहा गया है–**मन में होय सो वचन उचरिए, वचन होय सो तन से करिए।** आप इसके पालक है।

अभी दो वर्ष से समाज में भगवान महावीर की जन्मभूमि का मुद्दा गर्मा रहा है। दि. परम्परा का एक पक्ष वैशाली को जन्मभूमि मानता रहा है लेकिन दूसरा पक्ष नालन्दा के पास कुण्डलपुर को भी जन्मभूमि मानता रहा है। पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ने कुण्डलपुर (नालन्दा) जन्मभूमि है इसका खूब प्रचार-प्रसार किया। कुछ लोगो ने अनेकान्त को ढाल बनाकर अपनी बात कही। लेकिन प्राचार्य जी कुण्डलपुर (नालन्दा) के पक्षधर है। अतः वे सकोच नही करते अपनी बात रखने में। मैं स्वय उनके इस मत का समर्थक नहीं हूं। लेकिन उनकी स्पष्टवादिता का प्रशंसक हूँ। आज सभी विद्वान् अपनी बात स्पष्ट रखने लगें तो जल्दी सभी का मन्तव्य पता चल जाए तथा निर्णय लेने में सुविधा हो।

संक्षेप में पूज्य प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी पंडितों में अग्रगण्य समाज को दिशा देने मे समर्थ प्रतिभाशाली विद्वान है। इनका अभिनन्दन वस्तुतः योग्य सरस्वती पुत्र का अभिनदन है। इस अवसर पर मैं उनकी शतायु की कामना करता हुआ अपनी प्रणमाजलि प्रस्तुत कर रहा हूँ।

– डॉ विजयकुमार जैन,
सम्पादक – श्रुत सवर्धिनी, लखनऊ

□

एक जीवन्त तीर्थ

भारतीय संस्कृति मे तीर्थ का विशेष महत्व है। तीर्थ शब्द 'तृ' धातु से बना है। वह पवित्र स्थल जहां ससार-सागर तैरकर पार करने का उपक्रम सफल होता है – तीर्थ की संज्ञा से विभूषित होता है। यह स्थल बाह्य चक्षुओं से देखने पर जड प्रतीत होता है लेकिन इसका प्रत्यंक रजकण, इसका पर्यावरण उन भव्य आत्माओ के दैवीय प्रकाश से आलोकित रहता है जो 'ध्यान की अग्नि में कर्म कलक को भस्म कर शुद्ध बुद्ध, अविरुद्ध, नित्य निरंजन देव स्वरूपी' शाश्वत स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं। मान्यता है कि तीर्थयात्रा पुण्य कमाने का सशक्त माध्यम है–"तीर्थ कर लो पुण्य कमा लो" एक निश्चित भोगोलिक सीमा में बँधे ये तीर्थ अचल होते हैं।

आज मैं आपसे जिस तीर्थ का वर्णन करने का दुधमुँहा प्रयास कर रही हूँ– वह तीर्थ भावात्मक दृष्टि से इन तीर्थो से साम्य रखते हुए भी किंचित् पृथक् है। यह तीर्थ जड़ नहीं चेतन है, अचल नहीं चल है, पाषाण खण्डों का समूह नहीं हाड़ मॉस का पुतला है। एक निश्चित भौगोलिक सीमा में न बँधकर सम्पूर्ण भारतवर्ष में कश्मीर की केशर की क्यारियों से लेकर कन्याकुमारी के महासागर की उत्ताल तरंगो तक, रवीन्द्रनाथ टैगौर के कोलकाला से कृष्ण की द्वारिका तक वर्ष भर विचरण ही करता रहता है–"चरैवेति चरैवेति" चलते रहो चलते रहो–जिसके जीवन का मूलमन्त्र है। जिसके विचार

जब अनेक जन्मों के पुण्य थोक में उछाल लेते हैं, तब कोई मुनित्व को अंगीकार करता है। भव-भव की बेड़ियाँ काटने में यही पद समर्थ है। इसलिए मुनिचरणों में बहुमान होना मानव जीवन की परम सार्थकता है।

में चलते रहने में ही जीवन की सार्थकता है। समझे अगर इन्सान तो दिन रात सफर है। वह गुनगुनाता रहता है प्रसिद्ध अमेरिकन कवि रॉबर्ट फ्रास्ट (Robert Frost) की कविता की ये पंक्तियाँ–

"The woods are far lovely and deep
And I have miles to go before I sleep".

विचारणीय तथ्य यह है कि इस अथक, अनन्त यात्रा में वह एक पल भी यह विस्मृत नहीं करता कि चरण से आगे आचरण से चलना है। शरीर से आगे विचार से चलना है। विघ्न बाधाओं में चलते रहना लोकपथिक का धर्म है। ज्ञान फूल है और आचरण उसकी सुगन्ध। गंधहीन फूल की तरह अनाचरित ज्ञान भी निरर्थक है। कोरा ज्ञान प्रदर्शन है। ज्ञान की सार्थकता इसी मे है कि जो जाना जाये उसे जीवन में उतारा भी जाये। रत्ती भर आचरण कई मन ज्ञान से बड़ा है।

वह यह भी नहीं भूलता कि "विद्या ददाति विनयं" विद्या विनय देती है। ईश्वर–भक्ति की पहली शर्त अहं का विसर्जन है। श्वेत खद्दर की धोती–कुर्ते में लिपटी उसकी मनमोहक काया–सादगी की प्रतिमूर्ति प्रतीत होती है।

यह मेरा सौभाग्य है कि अपनी किशोरावस्था से लेकर आज तक जब मैं सेवानिवृत्त हो चुकी हूं न जाने कितनी बार मुझे इस जीवन्त तीर्थ के दर्शन का, उसके सानिध्य मे रहकर कुछ सीखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। कई बार मै स्वय इस तीर्थ की तलहटी मे जा पहुंची हूं और अनेक बार इस चल तीर्थ ने स्वय चलकर अपनी प्रखर मनीषा, अगाध ज्ञान, वात्सल्य से आपूरित विशाल हृदय, और आवाज के जादू से मुझे सम्मोहित किया है। सामान्यतया ध्वनि को दो भागो मे विभक्त किया जाता है। नगाडे की गडगडाहट, सिंह की गर्जना या 'कंकण किंकिण नूपुर' की मधुर ध्वनि किन्तु एक ही कंठ मे एक साथ रणभेरी का तुमुल नाद और चूडियो की खनखनाहट–दुर्लभ होती है। इस जीवन्त तीर्थ में आप एक ही साथ तोपो की गड़गड़ाहट और बॉसुरी की मधुर ध्वनि सुन सकते है। अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए आगम विरुद्ध तथ्यो के निर्मम खण्डन के लिए जहॉ इनकी जिव्हा आग उगलती है वहीं साधर्मी बन्धुओ के प्रति वात्सल्य–प्रदर्शन मे फूल बरसाती है, शास्त्रो के गूढ़ रहस्यों के विवेचन मे अमृतवर्षा करती है। हजारो की भीड एकत्रित हो–किन्तु वाणी का यह धनी जब बोलने खडा होता है तब आप सभागार में सुई के गिरने की आवाज भी सुन सकते है। बेचारा माईक इस ओजस्वी स्वर से शरमा जाता है।

अभी कुछ समय पूर्व जब पूज्य मुनिवर समता सागर एव प्रमाण सागर के पावन सानिध्य में मैनपुरी जैन समाज ने आचार्य ज्ञानसागर जयन्ती समारोह का आयोजन किया तब इस जादुई आवाज को पुनः सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उम्र के इस पडाव पर भी आवाज में वही दमखम। मैंने कहा–"आपकी आवाज का जादू अभी भी बरकरार है" मुस्कराकर बोले–"जा आवाज को का बिगरनो है, बस नैक घुटने दगा दे गये हैं सो जे वकील साहब (अनूप चन्द्र जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद) कार से ढो लाये है।" ऐसे दृढ आत्मविश्वास और अदम्य जिजीविषा के आगे बुढापा पास आने की हिम्मत कैसे जुटा पायेगा। 70 वर्ष के इस नौजवान की हास्य व्यंग्यप्रियता अपने चारो ओर आमोद-प्रमोद के जिस वातावरण को जन्म देती है–उसका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकते है।

सामान्यतया तीर्थक्षेत्र अपने आँचल में गगनचुम्बी पर्वत श्रृखलायें, जल से आपूरित सरिताओं, कमलों से सुसज्जित सरोवर और हरित वनों को समेटे रहते है। यह जीवन्त तीर्थ भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। इस हिमालयी व्यक्तित्व मे आपको ज्ञान-गिरि की ऊँची ऊँची चोटियॉ, नेह-नीर से आप्लावित नदियॉ, मुस्कान के कमलों से सुसज्जित दिव्य आभामण्डित मुखमण्डल और जिजीविषा की हरीतिमा दृष्टिगत होगी।

अपने से छोटों पर असीम वात्सल्य और उत्साहवर्द्धन के लिये अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा की वर्षा करना कोई इस उदारमना व्यक्तित्व से सीखे। अभी वर्ष 2003 के महावीर जयती महोत्सव पर फिरोजाबाद जाना हुआ। मेरे फिरोजाबाद जाने का एक प्रमुख कारण इस जीवन्त तीर्थ की वन्दना करना होता है। प्रवचन सभा में भगवान महावीर स्वामी के संदेशो के सन्दर्भ मे कुछ बोलने का आग्रह था जैन समाज का। मंच पर यह विराट व्यक्तित्व मेरे सन्निकट था। मन मे एक संकोच, एक

भगवान की भक्ति से मिथ्यात्व-तिमिर का नाश और आत्म-रवि का उदय होता ही है।

द्विविधा—"बुरी फँसी"। इनके बोलने के पश्चात—बोलने को रह ही क्या जाता है। इनकी स्नेहिल नजर ने ढांढस बँधाया। प्रेरणा दी। कुछ कहना तो था ही। मेरे साथ एक अन्य धर्मावलम्बी प्राध्यापक बन्धु भी वक्ता के रूप में उपस्थित थे। सभा के समापन पर जब यह वाक्य मेरे कर्णकुहरों में प्रविष्ट हुआ—

"मुझे आज इस धर्मसभा में प्राध्यापक बन्धु गौतम गणधर के रूप में दृष्टिगत हो रहे हैं तो डॉ. मालती जी मे मुझे श्वेताम्बर आम्नाय की महिला गणधर राजकुमारी की प्रतिच्छाया नजर आ रही है"।

मेरी आँखों में आँसू भर आये। कण्ठ अवरुद्ध हो गया धन्यवाद के दो शब्द भी मुख से निसृत नहीं हुये। When the heart is full the tongue is dumb मै मूक निहारती रही—इस महामानव को। जहाँ शब्द हार जाते हैं वहाँ मौन मुखर होता है।

अनेक प्रसंग हैं—उनकी विद्वत्ता के, विनम्रता के, दृढ़ता के, सरलता के, सरसता के, चुटीले व्यंग्य के। उनकी सारस्वत यात्रा के सन्दर्भ में—हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचन्द शुक्ल की यह उक्ति कितनी सटीक है—

"अन्तर यात्रा के लिये निकलती रही है बुद्धि पर हृदय को भी साथ लेकर"

मैं दीर्घ अवधि तक आपको उलझन में नही रखना चाहती। यद्यपि मैं यह जानती हूँ कि इस अते-पते से आपने मेरी पहेली स्वयं बुझा ली होगी फिर भी शार्दूल-गर्जना के साथ यह कहना चाहूँगी—यह जीवन्त तीर्थ है—सुहाग नगरी का सुहाग" पण्डित प्रवर, प्रकाण्ड विद्वान, ओजस्वी वक्ता, सहृदय साहित्यकार, 'श्रावकत्व के पारसमणि', समर्पित समाज सेवक प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन—मेरे अग्रज, पथ प्रदर्शक, निदेशक, हित-चिन्तक—All in one

इस सुअवसर पर जब सम्पूर्ण भारतवर्ष हिमालय की ऊँचाई और सागर की गहराई को एक साथ अपने व्यक्तित्व मे समेटे प्राचार्य श्री का अभिनन्दन, वन्दन कर रहा है—एक पँखुडी मेरी भी उनके चरण कमलों में।

कामना है वे जीवन मे शत मधुमास देखे अनवरत गतिशील रहते हुए "जीवेत शरदः शतम्" गूँजती रहे उनकी कोकिल सी मधुर एवं सिह—गर्जना जैसी ओजस्वी वाणी।

फिरोजाबाद आने वाला व्यक्ति दानवीर स्व. छदामीलाल जी के जीवन्त स्मारक जैन नगर में स्थित भगवान महावीर के भव्य मन्दिर एव भगवान बाहुबली की उत्तुग प्रतिमा के दर्शन कर अपने को कृतार्थ अनुभव करता है किन्तु मुझे यह कहने में किंचित् संकोच नहीं है कि उसकी यह यात्रा अधूरी रहेगी यदि वह इस जीवन्त तीर्थ के दर्शन-लाभ से वंचित् रहता है। यदि उसे जैन धर्म और दर्शन के गूढ़ रहस्यो का ज्ञान प्राप्त करना है, पुराण साहित्य का रसास्वादन करना है, आगम विरुद्ध कार्यो के नग्न यथार्थ का दर्शन करना है, असत् का विरोध करने के लिये नैतिक साहस जुटाना है, सिर उठाकर जीने की कला सीखनी है तो उसे फिरोजाबाद की नई बस्ती में स्थित प्राचार्य श्री के गृह-द्वार पर दस्तक देनी ही होगी।

श्रद्धेय प्राचार्य श्री ने अपने महान कार्यो से समय की शिला पर जो लेख अंकित किये हैं उन्हें कोई भूकम्प, कैसी भी आँधी नहीं मिटा सकती। वे अमर हैं, अमिट हैं और हैं— एक उन्नत प्रकाश स्तम्भ जो निबिड़ तम में भटकती भावी पीढ़ी का सदैव पथ प्रदर्शन करता रहेगा। मैं छायावाद के प्रमुख स्तम्भ महाकवि जयशंकर प्रसाद की कालजयी कृति 'कामायनी' की निम्न पंक्तियो के माध्यम से अपने पूज्य अग्रज के चरणों में श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूँ—

फूलों की पंखुडियाँ।
बिखरें जिनके अभिनन्दन में।।
मकरन्द मिलाती हो अपना।
स्वागत के कुंकुंम चंदन में।।

— डॉ. कु. मालती जैन, मैनपुरी

☐

जब तक मुनि-संस्था फलती-फूलती रहेगी, तब तक धर्म की जड़ हरी रहेगी। मुनि-संस्था के इस उपकार का विस्मरण हमें कभी नहीं करना चाहिए।

एक प्रेरक व्यक्तित्व

सादगी की प्रतिमूर्ति, स्वर में माधुर्य, स्वभाव में गम्भीरता, कार्य मे स्फूर्ति, व्यवहार मे शालीनता, और जीवन मे उत्साह लिए–अहिंसा के आराधक, धर्मनिष्ठ समाजसेवी, प्रसिद्ध जैन विद्वान, एवं यशस्वी सम्पादक प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी जैन भारत की महान विभूतियों में से एक हैं। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी चिन्तक हैं, जिन्होंने जैनत्व को जन-जन तक पहुँचाने का दुष्कर कार्य किया है। प्राचार्य जी **"सादा जीवन उच्च विचार"** के सदैव हामी रहे है वे अत्यन्त सरल हैं, उनके खान-पान, रहन-सहन आदि सभी बातों मे सादगी स्पष्ट झलकती है वे नैतिक मूल्यो के प्रहरी हैं, एक सामाजिक व्यक्तित्व होते हुए भी आप साम्प्रदायिकता की दीवारों से पूर्णतः मुक्त हैं। अपने जीवन में शुद्धाचरण और लोकाचरण की प्रतिमूर्ति हैं, साथ ही नैतिकता और नियमितता की कसौटी पर खरे सिद्ध हुये हैं।

वे अत्यन्त धार्मिक है, लेकिन धर्मान्ध नहीं हैं, इसलिए साम्प्रदायिक तो हो ही नहीं सकते। परन्तु धर्म के प्रति उनका प्रगाढ समर्पण अनुपम है। जैनाचरण उनकी दिनचर्या में स्पष्ट परिलक्षित होता है, सन् 2002 में पूज्य मुनि श्री समता सागर एव प्रमाण सागर जी के ससंघ चातुर्मास में पिच्छी परिवर्तन कार्यक्रम में पूज्य मुनि श्री की पिच्छी ग्रहण करते हुऐ आपके द्वारा "आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत" के पालन की उद्घोषणा इसका स्पष्ट प्रमाण हैं।

प्राचार्य जी विनोदी भी बहुत है। विनोद करना और विनोद होने देना तथा बीच-बीच मे मीठी चुटकी लेते रहना उनका स्वभाव है, परन्तु विपरीत प्रसगो में भी भाषा की मर्यादा का दामन उन्होने कभी नहीं छोड़ा। कड़वाहट और कसैलापन न तो उनकी वाणी में है और न व्यवहार मे। अक्रोध उनकी अनुपम विशेषता है, मेने कभी उन्हें गुस्से में न देखा और न सुना, वे अत्यन्त सहजता से सब कुछ कह जाते हैं। अपनी असहमतियों को भी अत्यन्त शालीनता से अभिव्यक्त करते हैं, उनके व्यवहार में धार्मिक, संस्कार युक्त, निष्कपट, एक सरल हृदय व्यक्तित्व की झलक दृष्टिगोचर होती है।

प्राचार्य जी फिरोजाबाद शहर की न केवल सभी जैन, जैनेतर सामाजिक संस्थाओ से जुड़े है, बल्कि समस्त सार्वजनिक प्रवृत्तियो से जुडे हैं, तथा सभी के प्रेरणास्रोत हैं। जन जीवन के उन्नयन में आपका ठोस योगदान है। कृत्रिमता तो उन्हे विल्कुल पसंद नहीं है, पैसा अथवा पद उन्हें कभी प्रलोभित नहीं कर सका है, तथा उनकी कथनी-करनी में कभी कोई विभेद नही रहा। उनका अन्तर और बाह्य एक जैसा है। लोक जीवन मे अब आप केवल "प्राचार्य जी" के नाम से विख्यात है।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों का आपने केवल अध्ययन ही नहीं किया बल्कि सिद्धान्तो की वास्तविकता को अपने हृदय स्थल मे स्थान देकर अनुपम आध्यात्मिक बल पाया है। प्राचार्य जी में अपने को जीतने, समाज को नई दिशा एवं प्रेरणा देने और युग की धारा को मोड़ने की सामर्थ्य है। उनमे लोक रंजन के साथ लोक कल्याण और लोक कल्याण के माध्यम से समाज को बदलने की अद्भुत क्षमता है। वे सच्चे अर्थो मे एक क्रान्तिकारी हैं क्योंकि क्रान्ति का शुभारम्भ विचारों से ही होता है। आपके अद्भुत व्यक्तित्व का कमाल है कि प्रश्नो के आगे, सदैव समाधान पूरक उत्तर मौजूद रहते हैं।

प्राचार्य जी का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और वाणी लुभावनी है, उनके शब्दों का प्रभाव सीधे श्रोता के हृदय पर पड़ता है, वे जो बोलते हैं, अत्यन्त सारगर्भित होता है। उनका प्रवचन हित-मित और तथ्यों की सीमाओं से कभी बाहर नहीं जाता। तथ्यों को वे बड़ी निर्भीकता और शालीनता से प्रस्तुत करते हैं। सन् 2002 में भगवान महावीर का जन्म स्थान **"वैशाली बनाम कुण्डलपुर"** विवाद में आपका तथ्य पूर्ण आलेख तथा निर्भीक, निराग्रह, उद्घोषणा इसके स्पष्ट उदाहरण है। प्राचार्य जी अपने सिद्धान्तों और आदर्शो पर अड़िग रहते हैं। उनका जीवन भ्रष्टाचार, पक्षपात और खुशामदों से कोसो दूर रहता है। उनमें अपूर्व धीरता है और उच्च कोटि का विवेक भी। उनका व्यक्तित्व हिमालय जैसा ऊँचा, शीतल और शान्त है, ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति उनके व्यक्तित्व मे समाहित है।

[illegible]

किसी की चार दिन की जिन्दगी, सौ काम करती है।
किसी की सौ बरस की जिन्दगी, से कुछ नहीं होता।।

व्यक्ति के कार्य ही उसे लघुता और दीर्घता प्रदान करते हैं, कुछ व्यक्ति सौ बरस जीवित रहते हैं, पर उन्हें कोई स्मरण नही करता और कुछ व्यक्ति अपने जीवन के हर क्षण को इस प्रकार जीते है कि उन्हे वर्तमान पीढी ही नहीं वरन् भावी पीढियाँ भी "पथ प्रदर्शक" के रूप में स्वीकार करती हैं, स्मरण करती हैं। जैन वाङ्मय के प्रति प्राचार्य जी की सेवाएं अतुलनीय है। प्रायः उन्होंने समस्त कार्य अपने को होमकर व्यक्तिगत स्तर से किये है परन्तु फिर भी उनके कार्य किसी महान संस्था से कम नहीं है।

अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन तथा 71वें बसन्त में मगल प्रवेश के सुअवसर पर हमारे परिवार की ओर से दीर्घ, यशस्वी एवं सुखद जीवन की कोटि-कोटि मंगल कामनाऐं।

— डा0 (श्रीमती) रश्मि जैन
प्रवक्ता हिन्दी, एस. आर. कं. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

□

ज्ञान पथिक

विद्या विवादाय धन मदाय शक्तिः परेषाम् परपीडनाय।
खलस्य साधो विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणय।।

श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन से मेरी प्रथम भेंट 13 अक्टूबर 76 को कालेज प्राङ्गण में वाद-विवाद प्रतियोगिता के अवसर पर हुई थी। दुबला-पतला गौरवर्ण वाक्तित्व से पूर्ण शरीर था। उस समय आप मेरे पास कुर्सी पर ही बैठे थे। बातचीत आरंभ हुई, उन्होंने अन्धविश्वासो व आडम्बरों का जो चित्र खींचा, उससे मैं गद्गद् हो गया। उन्होने सत्सगति के विषय में कहा—

तीरथ का है एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनन्त फल, कहत कबीर विचार।।

वास्तव में श्री जैन साहब भी पी. डी जैन इण्टर कॉलिज के प्रतीक हैं। आपने श्री हाकिम सिंह उपाध्याय के बाद कालेज के विकास को अपनी कर्मभूमि माना। कॉलेज आज भी आपके लिए पवित्र सरस्वती मन्दिर है। आप इस मन्दिर के पुजारी हैं। आपने सभी सहयोगियों का सहयोग लेकर व समाज को साथ लेकर एक साधारण कॉलेज को मण्डल का ही नहीं, अपितु प्रदेश का प्रमुख कॉलेज बना दिया। कॉलेज का छात्राअनुशासन श्री नरेन्द्र जी के सद्प्रयासों का फल था। कोई भी प्रधानाचार्य इतना समय व कठोर परिश्रम कॉलेज के लिये नहीं कर सकता, जितना आपने किया। आप कठोर अनुशासन प्रिय के साथ आप अधिक क्षमाशील भी हैं। परीक्षा के दिनों में आपकी क्षमाशीलता देखने को मिलती थी।

आप सात्विक व सयमी जीवन मे विश्वास रखते हैं। जैन समाज में जन्म लेकर आपने आर्य जाति के तेज और देवो की उदारता को धारणकर जैन समाज को गौरवान्वित किया। आपने अपने कठोर परिश्रम कल्याण से केवल जैन समाज को ही नहीं, अपितु फीरोजाबाद को कृतार्थ किया है। वास्तव में आप अन्य प्रधानाचार्यो व अध्यापकों के प्रेरणा श्रोत हैं। यह सब होते हुये भी श्री नरेन्द्र प्रकाश जी यश की आकांक्षा से सदैव दूर ही रहते हैं। आपका सबसे बड़ा सम्मान यही

साधुओं को देखकर जिसके अन्तस् में हर्षोल्लास की ऊर्मियाँ नहीं उठतीं, उसका कल्याण अभी दूर है, यही कहा जा सकता है।

है कि उनके जीवन से अनुशासन, कठिन परिश्रम व विद्यानुराग का पाठ सीखा जाय।

आज विद्यालय को उच्च शिखर पर पहुचाकर आप अवकाश ग्रहण कर चुके है। फिर भी, श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन कर्त्तव्यनिष्ठ बनकर समाज सेवा के कार्यो मे अपना योगदान कर रहें हैं। मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।

मधुर वाणी हृदय उदार,
है अति मृदु व्यवहार
श्री नरेन्द्र प्रकाश जी,
है आपकी कीर्ति अपार।।

जैन समाज के स्तम्भ हैं आज प्राचार्य जी लोभ-लालच से दूर रहने वाले, परम दयालु, विभिन्न सामाजिक सस्थाओं से जुडे हुये हैं। छुआ छूत के आप घोर विरोधी है। अंधविश्वासो के घोर विरोधी होने के कारण सच्च धर्म सिद्धान्त के प्रति चेतना जगाने मे आपकी सर्वाधिक रुचि है। आपके विषय मे जितना लिखा जाये थोडा ही है। वास्तव में आप आलोक पुज है। आपसे पथभ्रष्ट मानव मार्ग प्राप्त करते है। मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि आप दीर्घायु हों, छात्रों को प्रेरणा व आर्शीवाद देते रहें और हम कभी आपको भूल न पायें।

अज्ञानमूलहरणम्, जन्मकर्मनिवारकम्
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थ, गुरोः पादोदकम् पिबेत्।

– राजकुमार गुप्ता, प्रधानाचार्य
श्री गोपीनाथ इण्टर कालेज, फीरोजाबाद

□

नवोदित विद्वानों के आदर्श

जैन दर्शन, अध्यात्म एव कर्म सिद्धात की विवेचना आचार्यो एव विद्वानो ने कई ग्रन्थों मे की है। वर्तमान में संस्कृत प्राकृत का अभ्यास क्रमश· कम होता जा रहा है, जिससे सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय अत्यधिक सीमित हो गया है। भौतिक संसाधनो की प्रचुरता होने पर भी जीवन अस्त व्यस्त हो गया है, आबाल, वृद्ध समयाभाव से ग्रसित हैं। दिनचर्या में देवदर्शन, पूजन एवं स्वाध्याय को समय नहीं है, यदि है भी तो मात्र औपचारिकता पूर्ण करने के लिए। युवा पीढी जैन दर्शन से अछूती होती जा रही है, ऐसे समय में क्लिष्ट विषय को कैसे जन सामान्य तक पहुँचाया जाये, विचारणीय हो गया है।

शास्त्र सभाओं में श्रोताओं की उपस्थिति 5-10-20 तक ही रह गयी है, क्योंकि शास्त्रीय भाषा किसी को समझ नही आती है। ऐसी परिस्थिति मे विद्वानों का मार्ग निर्देशन किया है प्राचार्य जी ने, आपकी रोचक सरल-सरस वक्तृत्व शैली कठिन से कठिन विषय को भी सटीक उदाहरणों से मन मस्तिष्क में उतर जाती हैं। आपकी लोचदार भाषा एवं चुटीले प्रसग समाज, श्रावक एवं श्रमण परम्परा में व्याप्त शिथिलाचार कुरीतियों को इस तरह व्यक्त करते हैं कि सुनने वाला सोचने पर मजबूर हो जाता है।

आपके प्रेरणास्पद संस्मरण युवा विद्वानों को प्रवचन शैली-मच संचालन वक्तृत्व कला में पारंगत करते हैं। दशलक्षण पर्व प्रवचन, तत्त्वार्थसूत्र वाचन, शिविर सचालन हेतु आपके द्वारा दिये गए प्रशिक्षण का लाभ अनेको विद्वानों को मिला है। आपके निर्देशन को पाने आज भी वरिष्ठ एवं नवोदित विद्वान लालायित रहते हैं, क्योंकि आपके प्रसंग एव दृष्टांत विषय

को स्पष्ट एवं पुष्ट करने वाले होते हैं। चितन के नये आयाम मिलते हैं। जो जिनशासन के मर्म को सुस्पष्ट करते हैं।

आपकी प्रवचन शैली इतनी प्रभावक है कि जैन अजैन बालक श्रावक विद्वान सभी अपनी व्यस्तता में से टी.वी. के आकर्षण को छोड़ कर उपस्थित होते हैं। कर्म सिद्धान्त एवं जैन दर्शन की प्रक्रिया को सादा सरल भाषा में जब आप व्यक्त करते हैं तो विषय हृदयंगम होता जाता है। सुनने वाला आपके दृष्टांतों से विषय को इस प्रकार ग्रहण करता है जैसे माँ से बेटा शिक्षा ग्रहण करके तृप्त होता है।

आपकी वाणी का आकर्षण ऐसा है कि सभी बार-बार कई बार सुनना चाहते है एव धर्म के मर्म को हृदयगम कर अपने जीवन की विसंगतियों एवं रूढ़ियों को हटाकर संयम साधना एवं त्याग को ग्रहण करके सम्यक्त्व के मार्ग को प्रशस्त करता है।

प्राचार्य जी का नाम बहुत पहले सुना था। प्रथम सान्निध्य का सौभाग्य टीकमगढ़ मे आयोजित विद्वत सगोष्ठी से प्राप्त हुआ। सौम्य, हंसमुख एवं सहज व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य जी से प्रवचन करने की शैली, विषय प्रस्तुतीकरण का ढंग, श्रोताओ को विषय से जोडने के सूत्र सीखे।

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के पावन मंगल आशीष से प्रतिष्ठा कार्य की ओर बढ़ने की प्रारंभिक अवस्था में जहाँ आचार्य श्री के चरणों का विश्वास एवं पिताश्री पुष्प जी का निर्देशन था वहीं प्राचार्य जी का प्रोत्साहन मिलने से मुझे दिशा सहज ही मिल गई। श्रद्धेय पं. सागरमल जी के प्रेरणा एव स्नेह से मुझे अखिल भारतवर्षीय शास्त्रि परिषद का सदस्य बनने का सौभाग्य मिला, जिससे प्राचार्य जी का सामीप्य वर्ष में कई बार मिलने लगा। पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के सान्निध्य में आयोजित शिक्षण प्रशिक्षण शिविर मे विधि-विधान, अनुष्ठान मे प्रशिक्षण के काल में प्राचार्य जी से अत्यन्त निकटता मिली।

पुष्पांजलि ग्रन्थ के सम्पादन में वरिष्ठ विद्वान श्री भागचन्द्र जी "भागेन्दु के सानिध्य मे सम्पादन विधि एव विषयों का परिमार्जन सीखने के साथ-साथ शका-समाधान में प्राचार्य जी का सतत् सहयोग अविस्मरणीय है। सम्पादक मंडल की सभी बैठकों मे उनसे सार्थकता मिली। प्राचार्य जी की सहजता सरलता अनुकरणीय है।

पूज्य मुनि श्री समतासागर, प्रमाणसागर, ऐलक निश्चयसागर जी के फिरोजाबाद चातुर्मास में मुनि श्री के मंगल आशीष के साथ प्राचार्य जी का मंगल सानिध्य मिला।

फिरोजाबाद में पिच्छी परिवर्तन के एक दिन पूर्व पहुँचकर पूज्य मुनिद्वय से व्रतोद्यापन विषय पर विशेष निर्देशन प्राप्त किया। प्राचार्य जी से चर्चा हेतु दोपहर का समय निश्चित हुआ। इसी बीच सभी साथियों के साथ शौरीपुर बटेश्वर की वंदना का कार्यक्रम बन गया अतः प्राचार्य जी से सायं 4:30 बजे का समय लेकर बटेश्वर चले गए। बटेश्वर मे वंदना ध्यान साधना में अधिक समय लगने से फिरोजाबाद पहुँचने में 6 बज गये। आते ही पता चला कि प्राचार्य जी 4:30 बजे से प्रतीक्षा करते करते सायंकालीन भोजन लेने घर चले गए हैं। अत्यन्त पश्चाताप हुआ कि मेरे कारण प्राचार्य जी का इतना समय व्यर्थ गया।

शीघ्र ही जल लेकर मैं प्राचार्य जी से क्षमायाचना हेतु फोन करने के लिए जा रहा था कि इसी बीच प्राचार्य जी आते हुए दिखे। अत्यन्त विनम्र भाव से क्षमायाचना की तो प्राचार्य जी बिना किसी टिप्पणी के सहजता से बोले निशांत जी बाहर जाने में समय लग ही जाता है, तुम नहीं आते दिखे तो सोचा कार्य महत्वपूर्ण है, समय लग जायेगा अत. भोजन ही कर लें, चलो जल्दी से विषय देख लें। आज भी प्राचार्य जी की वह मुद्रा मेरे मानस पटल पर बनी है कि जिनवाणी के प्रति उनका समर्पण एवं मुझ जैसे कनिष्ठ व्यक्ति के लिए उनका स्नेह एवं सहजता अविस्मरणीय रहेगी।

मैं भगवान से यही कामना करता हूँ कि प्राचार्य जी जैसा ज्ञान, गंभीरता, सहजता एवं सरलता मुझे भी मिले। मैं भी

[illegible] की समस्त क्रियायें संयम और वैराग्य के लिए होती है। लौकिक पद, या विभूतियों का मिल जाना धर्म की कसौटी आवश्यक नहीं है।

उन्हीं के समान माँ जिनवाणी के प्रति समर्पित होकर अपना जीवन सफल कर सकूँ।

श्रद्धेय प्राचार्य जी स्वस्थ्य, यशस्वी, समृद्ध, मंगलमय, दीर्घजीवी होकर सदैव हमारा मार्ग निर्देशन करते रहें। इसी कामना के साथ शत-शत प्रणाम।

– प्रतिष्ठाचार्य जय निशांत, टीकमगढ़

□

हिमानी व्यक्तित्व के धनी

ईश्वर की सृष्टि में मानवीय दृष्टि को सबसे महानतम माना गया है। मानव ही वह केन्द्र है जहाँ से सृजन की दिव्य रश्मियॉ सारे ब्रह्माण्ड में विकीर्णित होती है। किन्तु इस मानव के अस्तित्व में जो 'अस्ति' भाव है–यही जीवन का सुलझा हुआ रहस्य है। इसी आस्तिकता मे 'स्वास्तिक' का डूबा हुआ बिम्ब सारी मानवता को अपने आनन्द से अनुप्राणित कर रहा है। यही कारण है कि प्रकृति के वैविध्य मे भी सम्मान का समर्पण उसी को मिला जो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के लिए सदैव मानव लोक में विनत है।

भौगोलिक क्षेत्र में एक नहीं तमाम उन्नतशील पहाड है किन्तु सम्मान हिमालय को ही मिला क्योंकि वहॉ शीतलता है और जहॉ शीतलता है - वहॉ शान्ति है। जहॉ शान्ति है - वहॉ संयम है। जहॉ सयम है - वहॉ भक्ति है। जहाँ भक्ति है - वहॉ शक्ति है और जहॉ शक्ति है - वही मानव का जयघोष है। मानव इन्ही शक्तिकणों का कुछ ऐसा ही हिमालय है, जहॉ शिवत्व (कल्याण) का निवास है। महाकवि 'प्रसाद' ने अपनी अमर कृति कामायनी मे जो सदेश दिया है, वह वास्तव मे अमरता की अमराई के निकट है–

> शक्ति के विद्युत-कण जो विकल,
> व्यस्त बिखरे हैं, हो निरूपाय।
> समन्वय उसका करे, समस्त–
> विजयिनी मानवता हो जाय।।

गंगा इसी हिमालय की आचार संहिता है। पवित्रता जिसका गुण है। लोक कल्याण के लिए सतत चलकर सागर (ब्रह्म) मे डूब जाना ही इसका लक्ष्य है। जो इस हिमालय की भाव-व्यञ्जना का पर्याय बन सका है– वहीं मानव दिव्य मानव है। महामानव है। वन्दनीय है। पूज्य है। शक्ति पुञ्ज है। क्षमा का क्षितिज है। सच्चा वीर है - महावीर का सच्चा अनुयायी है। और बधाई है उस महाविचार को जिसके अधीन प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह ग्रन्थ, ग्रन्थ न होकर मानव-समाज के समक्ष ऐसा दिव्य पथ बनेगा जिसके इर्द-गिर्द जडी-बूटियाँ होंगी। जिसके ऊपर आचरणो का आभा-मण्डल होगा। प्यास के लिए तीक्ष्ण अनुभूतियों का अमृत होगा और सामने होगा जीवन के कॉंतिवान कल्पवृक्ष का अभीष्ट लक्ष्य।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन भले ही अनेकानेक उपाधियों से, अनेकानेक अलंकरणों से तथा भले ही अनेकानेक स्वर्ण-आभूषणों से मण्डित हो चुके हों या भले ही उनके अभिनन्दन ग्रन्थ में उन्हें स्तुतियों के बहुरंगी सिहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया जाय, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि उनके उस 'मूल सुसंस्कार' का पूरा अनुवाद नहीं हो सकता जिस पर उनके पूज्य पिताजी एवम् उनके संप्रेरक गुरुओं की आशीर्वादमयी छाप है। यह संस्कार ही तो पुण्यों का वह बीज है जिसके प्रस्फुटन में मानव

की सार्थक यात्रा खुल पड़ती है। लोक सग्रह का वैभव बिखर उठता है। ऋषियों औरं मुनियो की सम्पदा चरितार्थ हो उठती है। नाम की उपाधि, उपाधि होकर भी मानव-समाज की मंगल धरोहर बन जाती है। अतः श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन के नाम में जो 'नामी' समाया है उसे देखने के लिए असाधारण दृष्टि के साथ व्यक्ति को साधक होना ही पड़ेगा।

प्राचार्य श्री की जीवन-यात्रा के जितने भी आयाम मैं देख पाया हूँ.- मैं पूर्ण निष्ठा के साथ कह सकता हूँ कि उनके जीवन का प्रत्येक पहलू तथ्य और कथ्य से, चाह और राह से, आदर्श और यथार्थ से, मति और गति से, चरण और आचरण से तथा दृष्टि और सृष्टि से सदैव समन्वित रहा है। कला और विज्ञान के वे आज भी बेजोड़ संगम है। शिक्षा के क्षेत्र में, श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलिज, फीरोजाबाद आज भी उनका अपृथक अंग है। सांस्कृतिक परम्पराओं के लिए यह विद्यालय उनके काल मे सचमुच ही स्वर्ण भोर रहा है। सबसे बड़ी बात जो श्री जैन साहब मे रही, वह, यह कि वे कभी एक सांस्कृतिक धारा के पक्षधर नहीं रहे। उन्होंने हर समाज तथा हर जाति की प्रतिभाओं को उभारा एवं मंच पर स्थापित किया। नये लेखकों-कवियों एवम् पत्रकारों को अपनी प्रेरणा का भरपूर प्यार दिया। उनके द्वारा आयोजित कई अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में मुझे काव्य-पाठ करने का सुयोग मिला और मैंने देखा कि उन्होंने कभी भी मंच पर वर्तमान हास्य और चुटकुलों के घिनौंने प्रदूषण को फटकने नहीं दिया। उन्होंने स्वयं भी उसी मच पर बैठना स्वीकारा जिस मंच पर उन्हे स्वस्थ परंपरा मिली। कई वर्षो तक वे शिक्षक संघ के भी प्रमुख पदाधिकारी रहे - वह भी निर्विरोध और अपेक्षाओं से सदैव निर्लिप्त। साथ ही शिक्षक गुट में रहकर उन्होंने 'गुट' का मोहक और पक्षपाती 'मुकुट' कभी नही पहना बल्कि पूर्ण सेवा और त्याग के साथ ही उन्होंने इन महत्वपूर्ण पदों का निर्वहन किया। विद्यालयीय सांस्कृतिक पत्रिका 'अमृत' के कई अंक और विशेषाक जो मुझे पढ़ने को मिले, आज भी मेरे लिए संग्रहणीय हैं। उनका सरक्षण और उनका सपादन आज भी इस दिशा में प्रशंसनीय ही नहीं, प्रेरणास्पद है। अपने सेवा काल में कुछ बंधे हुए रहकर भी उन्होने न मालूम कितने हृदयो की वाणी को खोला, नये पथिकों के लिए न मालूम कितने रास्तों को खोला और अंध विश्वासों के न मालूम कितने बधनो को खोलते हुए स्वयं भी इतने खुलते चले गए कि उन्होने फीरोजाबाद जैसी कॉच की नगरी को अपने साथ विश्व पटल पर कंचन की नगरी बना दिया। धन्य है भोर की तरह उनका खुला हुआ कृतित्वमयी कॉंतिवान व्यक्तित्व।

एक सूक्ति है कि ज्यों-ज्यो व्यक्ति की अनुभूतियाँ सघनतम हो उठती है, त्यो-त्यो व्यक्ति का व्यक्तित्व भी एक धारा के लिए सिमटने लगता है। वह एक धारा है - मात्र मानवता/मानव का एक मात्र धर्म। एक वाणी-लोकवाणी। एक चिन्तन-हित चिन्तन। एक यात्रा-कल्याण यात्रा। एक विनमय-प्रेम विनमय। एक साधना-आत्म साधना। कि बहुना, आज श्री जैन साहब का लक्ष्य इसी साधना के निकट है। चाहे वे पत्रकार के रूप मे है, या लेखक के रूप मे हें अथवा वक्ता या प्रवचनकर्त्ता के रूप में हैं, 'स्वरूप' का उन्हें सदैव बोध है। लेखन में निर्भीकता एवं स्वाभिमान उनके दाये-बाये अग हैं। मेरी कृति 'चौबीस-चिनगारियाँ' की भूमिका मे वे स्पष्ट लिखते हैं कि 'शरीर जीवी सभ्य तो हो सकते हैं किन्तु सुसंस्कृत नहीं। सुविधाओं में जीने वाला बाहर से तो भरा-पूरा दिख सकता है किन्तु अन्दर से वह खोखला ही होता है।' इसी सन्दर्भ में मानवीय मूल्यों की पताका फहराते हुए वे किस सरलता से कितने बडे सत्य को किस तरह व्यावहारिकता के धरातल पर रखकर कहते हैं, 'मानवीय मूल्यों के अभाव मे हर सुविधा आदमी को दुविधा में ही डालने का कार्य करती है।'

सचमुच में सुविधा आदमी को दुविधा में ही डालती है। धर्म इस दुविधा से निकालने का एक मात्र मार्ग है। धर्म का अनुयायी होना सरल है किन्तु धार्मिक होना कठिन है क्योंकि वह साधनाजन्य है। प्राचार्य जी को मैंने ऐसे ही धार्मिक रूप में देखा है। उनके लिए धर्म इतना व्यापक है, जहॉ न काले गोरे का भेद है, न अमीर-गरीब का, और न ही जाति-पॉति का। उनके धर्म का छोर तो हर मानवीय दर्शन से जुडता है। मानवीय मूल्यों के तो जैसे वे संरक्षक दिखते हैं। मेरी पुस्तक की समीक्षा में उन्होंने अपनी दृष्टि को इतना पैना किया है कि जीवन के शाश्वत मूल्य उनकी लेखनी के पूर्ण सहयोगी बन गए हैं। उन्होंने अपनी भूमिका मे जिन काव्यांशो को उद्धृत किया है, वे निःसंदेह उनके निश्छल व्यक्तित्व के निर्णायक घटक हैं। यथा—

साधु निरन्तर परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहने की कोशिश करता रहता है। इस स्थिरता में बाधक तत्त्व मोह है। उसे जीतने से ही वह निर्मोही कहलाता है।

सत्य, अहिंसा और प्रेम, जिस घर प्रश्रय पाते हैं,
वे घर महावीर के अपने मन्दिर हो जाते हैं।

पीर पौंछ लेता जो समाज की बहा के नीर,
वही वीर सच्चा महावीर बन जाता है।

आदमी से बड़ा नहीं और कोई देव यहाँ,
आदमी को आदमी की भावना से भेंटिये।

दूसरे का अधिकार छीन के जो होता धन्य,
भले हो कुबेर किन्तु वही महादीन है।
वित्त की प्रधानता से कैसे होगा वह महान,
चित्त की प्रधानता से जो चरित्रहीन है।

और इस सत्य को उनका समर्थन देखिये—

शुभ चिन्तना से स्वच्छ नहीं कोई और राह,
ज्ञान से बड़ा न कोई बुद्धि का प्रयोग है।
धैर्य से बड़ा न कोई मानवीय धर्म और
सत्य से बड़ा न कोई भोर का सुहाग है।।

प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन द्वारा लिखित 'चिन्तन-प्रवाह' नामक पुस्तक आद्योपान्त पढ़ी। पढकर लगा जैसे उनका सुधी प्रवचनकर्त्ता इस पुस्तक मे हृदय खोलकर खड़ा है। सरल भाषा मे, आकर्पित उदाहरणो से, अपने व्यावहारिक अनुभवों को जोड़कर और मुनियो की अनुभूतियो को निचोडकर पाठको के समक्ष जो जीवन के तथ्यो का सम्प्रेषण किया है, वह सचमुच हृदयग्राही है। साथ ही मुझे यह कहते हुए भी कोई सकोच नहीं कि धर्म के व्यापकत्व को समेटे यह कृति ऐसी हे जिसे मात्र जैन दर्शन की कृति कहना, कृतिकार के प्रति अन्याय ही होगा क्योंकि लेखक के चिन्तन प्रवाह में जो रत्न हे वह किसी एक समाज के नहीं बल्कि समूची मानव जाति के ऐसे प्रेरक प्रसग है जिनके बिना आत्म साधना वास्तव में अधूरी है।

साराशतः प्राचार्य श्री के बहुमुखी व्यक्तित्व को गिने-चुने शब्दो मे बाँधना सागर को सुराही मे भरने के सादृश्य ही होगा। आगरा विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ गोपाल कृष्ण अग्रवाल ने श्री जैन साहब के लिए जो अपनी टिप्पणी दी है, वह शत-प्रतिशत सत्य ही है।

"एक सहृदय मानव के रूप में अपने कर्त्तव्यों की अनुभूति एक ऐसा गुण है जो किसी एक व्यक्तित्व मे कठिनाई से मिलता है।"

अतः जिस तरह बिन्दु से सिन्धु, किरन से सूर्य, ढेले से पृथ्वी, ओंकार से ब्रह्म, बीज से वृक्ष और प्रेम से प्राणी मात्र को देखना ही जीवन की शाश्वत कला है। ठीक इसी प्रकार प्राचार्य श्री के प्रकाश को स्वय के पारदर्शी विश्वास से देखना ही उचित होगा।

अन्त में, जैन और अजैन से परे, सर्वत्र समता के सेतु पर खड़े, सादा जीवन मे प्रसन्न और सदैव उच्च विचारों से अभिन्न, साफ-सुथरे शब्दों के सम्राट और स्वागत समारोहो के ललाट, सात्विक लेखन के धनी और समाज के पारसमणि, वर्तमान पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत, पुरातन संस्कृति से ओत-प्रोत तथा सतत कर्त्तव्य परायणता के देवदूत इस भारतीय सपूत को मेरा प्रणाम।

सच्चा श्रावक बनना है तो निर्भीक बनो।

हालाँकि इस परिवर्तनशील संसार की किसी न किसी पर्त के साथ हमारी दैहिक क्षण भंगुरता की शर्त जुड़ी है कि हमें भी इस 'परिवर्तन' का एक न एक दिन 'प्रिय' होना है। तथापि मैं प्रति विहान वन्दनीय एवम् सदैव श्रद्धास्पद अपने अग्रज श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन की दीर्घ आयु के लिए प्रभु के समक्ष सदैव प्रार्थी हूँ ताकि इस मॉटी के देवता से इस देश को कुछ और मिल सके, कोई दीप और जल सके, कोई पथिक कुछ और चल सके.....। अन्त में उन्हीं की अन्त· भावना के सम्मान में–

कागज तनिक प्रेम छूकर के प्रेम-पत्र बन जाता,
और शब्द भी इसी प्रेम से महामन्त्र बन जाता,
अरे व्यक्ति! तू चकित भाव से नभ को देख रहा है,
इसी प्रेम से व्यक्ति स्वयं नभ का नक्षत्र बन जाता है।

— बहादुरसिह निर्दोषी, फीरोजाबाद (उ.प्र.)

□

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

भारतवर्ष सदैव से ही दुखों से संतप्त प्राणियों को सुख और शांति का सच्चा उपाय बताता रहा है। जिन प्राणियों ने उस उपाय को अपनाया वे संसार से पार हो गये और जिन्होंने प्रमाद किया वे आज भी संसारी हैं। यद्यपि यह सत्य है कि जो उस उपाय या मार्ग को आंशिक रूप से तय कर रहे हैं वे भविष्य में अवश्य अपने लक्ष्य अर्थात मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे। तात्पर्य यह है रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष प्राप्ति है जो आज साक्षात तो नही परन्तु परंपरा से आज भी प्राप्त की जा सकती है। अवसर्पिणी काल होने के कारण मनुष्यों के ज्ञान, आयु, बल व विचार शक्ति सभी में ह्रास होता जा रहा है। भगवान महावीर के पश्चात केवली, श्रुतकेवली, अंगपूर्व के ज्ञाताओं ने धर्मध्वजा को सम्हाला। अंगपूर्व के लोप होने के पश्चात विशिष्ट ज्ञानी आचार्यो, मुनियों, भट्टारकों, पण्डितों, कवियों और विद्वानों ने समय 2 पर धर्म का संरक्षण किया। परिणामस्वरूप अनादि काल से चला आया और विशेष रूप से इस अवसर्पिणी काल में भगवान आदिनाथ द्वारा संचालित तथा वीरप्रभु द्वारा प्रचारित जैनधर्म आज भी जगमगा रहा है।

ऐसे ही धर्म संरक्षकों, प्रचारकों और प्रसारकों में प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फिरोजाबाद में जन्मे प्राचार्य जी का नाम सारे भारतवर्ष में बडे गौरव के साथ लिया जाता है। अध्ययन करने के पश्चात आप कुछ दिन प्रवक्ता के पद पर और पश्चात प्राचार्य पद पर कार्यरत रहे। आपकी सेवाओं से श्री पी.डी. जैन इन्टर कालेज फिरोजाबाद उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। आपने भयमुक्त वातावरण उत्पन्न किया। अल्पकाल में ही आपके कुशल प्रशासन की कीर्ति चतुर्दिक फैल गई। छात्र और समाज के सभी वर्गो के प्रति आपका समान व्यवहार था। आपके निष्पक्ष व्यवहार से सभी आपकी भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। आपकी कार्य प्रणाली से सभी अधिकारी तथा प्रबन्ध समिति के सभी पदाधिकारी पूर्ण रूप से संतुष्ट थे।

आपके पिता स्व. पं. रामस्वरूप जी शास्त्री एक अच्छे विद्वान थे। जैन पण्डित होने के साथ 2 बड़े ही सहृदय और मिष्ठभाषी थे। बालक पर भी वही छाप पड़ी अतः प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी की जैनधर्म पर बचपन से ही अटूट श्रद्धा है। धर्म का वह अंकुर आज बट वृक्ष के रूप में फलित हो रहा है।

आज भौतिकवाद और नास्तिकवाद ने पूरे विश्व को पथभ्रष्ट कर दिया है। आधुनिकता की चकाचौंध में आज का शिक्षित नवयुवक धर्म को पाखड और ढकोसला कहता है। धार्मिक व्यक्तियों को दकियानूसी विचारधारा वाला कहकर

आगम की विवक्षाओं को समझकर ही, हमें अपना मार्ग-निर्धारण करना चाहिए। [illegible] मुनियों के बारे में यद्वा-तद्वा बोलकर पाप का भागी नहीं बनना चाहिए।

उनकी हँसी उड़ाता है। स्वाध्याय के अभाव मे वे कुतर्क करते हैं। न उन्हें परलोक पर विश्वास है और न स्वर्ग नरक पर। वे कहते हैं कि हम कैसे माने कि स्वर्ग और नरक होते है क्योकि दिखते तो नहीं है। यदि उनसे पूछा जाय कि आपने कैसे जाना कि स्वर्ग और नरक नहीं होते तो उनके पास कोई उत्तर नहीं है। आज चार पुरुषार्थो में दो का ही बोलबाला है। अधिकांश धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ को छोड़कर अर्थ और लाभ पुरुषार्थ की चपेट में हैं। आधुनिक शिक्षा आजीविका की कला सिखाती है। फलस्वरूप इंजीनियर, डाक्टर, वकील और प्रोफेसर आदि कोई भी हो सभी का उद्देश्य धनार्जन करके ऐश आराम का जीवन बिताना है। सहजानंद जी वर्णी ने लिखा है कि आज बच्चों से पूछा जाय कि क्या करोगे, तो वे कहते हैं कि पढ़ेंगे लिखेंगे। फिर क्या करोगे तो कहते है पढकर सर्विस या व्यापार करके धनार्जन करेंगे और ठाठ से रहेंगे। फिर क्या करोगे तो कहते है कि मरकर चले जायेंगे। उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि ऐसा करते 2 अनंत काल व्यतीत हो गया। परमार्थ की शिक्षा के बिना जन्म मरण की परम्परा चलती रहती है। इसीलिये शास्त्रकारो ने कहा है ·

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।

अर्थात् बहत्तर कलाओं मे दो मुख्य कलाऐं है एक तो जीविका की कला और एक जीव उद्धार की कला। आज प्राय. जीव उद्धार की कला मे सभी शून्य हैं।

ऐसे विषम परमार्थ शून्य वातावरण मे प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने भारत के कोने 2 में अपने उपदेशों से समाज की गरिमा को अक्षुण्ण रखा है। आपकी प्रवचन शैली इतनी सुन्दर, आकर्षक और आश्चर्यजनक है कि कठिन से कठिन विषय भी दृष्टान्तों के माध्यम से तुरन्त समझ में आ जाता है।

पिछली बीसवीं शताब्दी में अध्यात्मवाद की आड लेकर एकान्त निश्चयावलम्बियों ने मूल आम्नाय को विकृत करने का प्रयत्न किया है। पुण्य को सर्वथा हेय बताना, मुनियों को द्रव्यलिंगी बताकर उनकी निन्दा करना, अपने को संसारी होते हुए भी सिद्ध के समान शुद्ध बुद्ध मानना, त्याग, संयम और तप आदि को व्यर्थ ठहराना और इनको शरीर का धर्म बताना, शुद्ध खान पान आदि को जड की क्रिया कहकर व्रतियो की निन्दा करना आदि बातों को अपने साहित्य में समावेश करके लोगो को भ्रमित कर दिया है। किसी ने ठीक ही कहा है कि

विषयी सुख का लालची, सुन अध्यातमवाद।
त्याग धर्म को त्याग कर, करे साधु अपवाद।।

विद्वान होने के साथ 2 प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी में शूरवीरता का भी गुण है। आपकी संगठनात्मक शक्ति अद्भुत है। जैन मेला फिरोजाबाद की भूमि पर जब कब्जा करने की विरोधियो ने नीयत बनाई तब पूरे समाज को सगठित करके विपक्षियों से लोहा लिया। आपके नेतृत्व में धर्म की विजय हुई और भूमि वापस मिली। इसी प्रकार ग्राम जारखी से जब जैन मूर्तियॉ चोरी चली गई तब आपने लोगों को सगठित किया। पुलिस पर दबाव पड़ा और आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

प्राचार्य जी सच्चे देव शास्त्र गुरु के भक्त है। 1995 मे वे ललितपुर में पर्युषणपर्व मे प्रवचन हेतु पधारे। उन्होंने वहॉ शास्त्रों की अव्यवस्था पर खेद प्रकट किया। मुझे भी उनसे प्रेरणा मिली। फलस्वरूप आज ललितपुर के चारो मन्दिरों में विशाल ग्रंथालयों की स्थापना हो चुकी है जिसमें मूल आम्नाय के सभी ग्रंथों की सुव्यवस्था है। जो भी मुनि संघ आते है वे ग्रंथालय देखकर असीम हर्ष प्रकट करते हैं। इन गुणों को देखकर मुझे एक कवि का दोहा स्मरण हो आता है .

जननी जनै तो भक्त जन, कै दाता कै सूर।
नातर तिरिया बांझ रह, क्यों खोवत है नूर।।

प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी में एक नहीं तीनों गुण विद्यमान हैं। उन्होंने सही मार्ग (आर्ष मार्ग) बताकर अभयदान दिया

[illegible] आचार्यों की चरण-रज माथे से लगाकर, अपने मानव जीवन को सार्थक और कृतार्थ करें।

है और देवशास्त्र गुरु के सच्चे भक्त हैं और समाज को एक सूत्र में बॉधकर अन्याय को न सहते हुए शूरवीरता का परिचय दिया है।

इन गुणों के अतिरिक्त किसी भी धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रम में संयोजन क्षमता, स्वाभिमानिता, सामयिक सूझबूझ, व्यवहार कुशलता आदि और भी बहुत से गुण हैं जिन्हें मैं लेख बढ़ जाने के कारण नहीं लिख पा रहा हूँ। मुझे तो स्वामी समन्तभद्राचार्य कृत स्वयंभूस्तोत्र की वे पंक्तियॉ याद आ रही हैं जो उन्होंने भगवान अरहनाथ की स्तुति में लिखी है·

'गुण-स्तोकं सदल्लङ्घ्य तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुण वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम्।।'

अर्थात विद्यमान गुणों की अल्पता को उल्लंघन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है उसे लोक में स्तुति कहते है। वह स्तुति (हे अरजिन!) आपमें कैसे बन सकती है? नहीं बन सकती। क्योंकि आपके गुण अनंत होने से पूरे तौर पर कहे ही नहीं जा सकते-बढ़ा चढ़ा कर कहने की तो फिर बात ही दूर है।

इसी प्रकार यदि हम प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के सभी गुणों को लिखना चाहे तो वह अशक्य है। एक बात और भी है कि जिस प्रकार रत्नों की परख जौहरी ही कर सकते है उसी प्रकार प्राचार्य जी गुणों की परख सभी नही कर सकते। उसके लिये विवेक की ऑखे चाहिए। किसी ने ठीक ही कहा है :

'परख सकती नहीं रत्नों को हर इन्सान की आँखे।
दिखाई ब्रह्म क्या देवे, जो न हो ज्ञान की आँखे।।

अंत में मैं यही कामना करता हूँ कि प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी चिरायु हो और जिन शासन की प्रभावना करते रहे।

— सुरेशचन्द्र जैन, ललितपुर

□

पद-प्रतिष्ठा की चाह से विरत व्यक्तित्व

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी का राष्ट्रीय सम्मान व्यक्ति का सम्मान नही अपितु गुणों की गरिमा का बहुमान है जो प्रत्येक बुद्धिमान का कर्तव्य होता है। गुणवान व्यक्ति सदा सम्मानीय होता है। किन्तु राष्ट्रीय सम्मान व्यक्ति के विशेष गुणों के प्रति वन्दन, अभिनदन, गुण ग्राहिता की भावना को प्रदर्शित करता है। प्राचार्य जी के सद्व्यवहार, सरलता, सहजता, निरपेक्ष सवाद, निष्पक्ष निर्णायक प्रभावी व्यक्तित्व, गम्भीर चिन्तन, विनोदप्रियता वाक्पटुता, मोहक वक्तृत्व शैली, कुशल निर्देशक, अनुभवीमार्ग-दर्शक एवं सफल नेतृत्व के धनी आदि विशेष गुणों से आपका व्यक्तित्व आलोकित है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति आपका नैकट्य प्राप्त कर अपने आपको धन्य मानता है।

पद/प्रतिष्ठा की चाह आपको स्पर्श भी नही करती। चुनाव लड़कर आप किसी संस्था के पदाधिकारी नहीं बने। आपका संकल्प है कि जहॉ एक से ज्यादा उम्मीदवार होगें, वहाँ मैं उम्मीदवार नहीं रहूँगा। दूसरे यदि किसी को मेरे पद पर रहने से कोई शिकायत हो तो मैं पहले ही पद से हट जाऊँगा। आपके इन विचारों से आपके अन्दर पद/प्रतिष्ठा की उदासीनता प्रकट होती है।

उक्त विचारों को चरितार्थ होते हुये मैंने सन् 1995 में अ.भा. दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अधिवेशन में कलकत्ता मे देखा था। परिषद के अध्यक्ष पद का चुनाव होना था। आपका निर्विरोध चयन हुआ। आपने पद ग्रहण करते ही परिषद

जब तक यह मुनि-संस्था जीवित है, समाज में संयम का प्रवाह बना रहेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयम ही सुखी जीवन की आधारशिला है।

की साधारण सभा में घोषणा की थी की मैंने चुनाव नही लडने की प्रतिज्ञा ली है, यदि एक व्यक्ति भी इस पद का उम्मीदवार हो तो मैं अपना नाम वापिस ले लूगा। आपका किसी ने विरोध नही किया।

आपकी कार्यशैली, उज्ज्वल छवि, निरपेक्ष चिन्तन एवं कुशल नेतृत्व के प्रभाव से परिषद के अध्यक्ष पद के लिए मधुबन चौक राजस्थली दिल्ली में पुनः आपका नाम प्रस्तावित किया गया। आपने स्पष्ट मना कर दिया, किन्तु आपकी योग्यता के समक्ष और दूसरे लोग अपना नाम ही नहीं रखना चाहते थे। मै इस समय भी प्रत्यक्षदर्शी था। आप निरन्तर मना कर रहे थे और पूरी कार्यकारिणी आपसे निवेदन कर रही थी, फिर भी आप स्वीकृति नहीं दे रहे थे, किन्तु जब वयोवृद्ध विद्वान प. पद्मचन्द्र जी शास्त्री दिल्ली वालो ने आपका हाथ पकड़ कर कहा कि आपको अध्यक्ष पद सम्हालना ही है, तब प्राचार्य जी ने पुनः पॉच वर्ष के लिये अध्यक्ष पद की स्वीकृति प्रदान की इस तरह आपके स्वभाव मे पद/प्रतिष्ठा के प्रति किसी प्रकार की लिप्सा नहीं है।

मालपुरा (राजस्थान) में शास्त्री परिषद की साधारण सभा में आपके पुनः अध्यक्ष पद की स्वीकृति की घोषणा की गई, तब किसी भी सदस्य ने आपका विरोध नहीं किया, बल्कि हर्षित होकर करतल ध्वनि से अपनी स्वीकृति प्रदर्शित की। कालान्तर मे एक-दो महात्वाकाक्षी सदस्यों ने दूषित प्रचार किया की अध्यक्ष चुनाव की प्रक्रिया दोष पूर्ण है, इसमें प्राचार्य जी का चयन भी भेदभाव पूर्ण ढग से किया गया है। तब सीकर अधिवेशन की साधारण सभा मे प्राचार्य जी ने स्पष्ट कहा था की यदि मेरे प्रति दस लोग भी असतोष व्यक्त करते है तो मै अपने पद से अभी त्याग पत्र दे सकता हूं। आपके अतःकरण मे पद के प्रति लालसा कभी भी देखने को नहीं मिलती। आप जिस पद पर रहे है, उस पद को गौरवान्वित कर कर्तव्य निष्ठा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जैन गजट का सम्पादन हो या किसी संस्था का जिम्मेदार पद, आपके मार्ग दर्शन से उसने उत्तरोत्तर विकास कर समृद्धि एवं गरिमा प्राप्त की है।

श्री विमलनाथ भगवान के गर्भ जन्म, तप ज्ञान कल्याणक से पवित्र तीर्थक्षेत्र कॉपिल जी मे दिनाक 5/12/02 से 11/12/02 तक सम्पन्न पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में आपके निर्देशन/संचालन की छाव तले हमें पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसमे आपके कुशल निर्देशन की उज्ज्वल छवि का दर्शन कर अभिभूत हुआ। आपमे सभा को बॉध के रखने की अनुपम कला है। आपके मंच स क्रुद्ध, असतुष्ट भी सतुष्ट एव प्रसन्न होकर लौटता है। छिद्रान्वेषी एवं अवगुणी वक्ताओं को आप ऐसी मधुर फटकार लगाते है कि उसके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता और उसके अवगुण छूट जाते है।

आपकी स्पष्टवादी प्रवृत्ति, निर्णयात्मक निष्पक्ष चिन्तन ने धर्म और समाज मे उत्पन्न होने वाले विवाद समस्याओं के निराकरण में अहम् भूमिका निभाई है। आपके निर्णय निष्पक्ष एवं सर्व मान्य होते है। आपकी तर्क शक्ति अनुकरणीय है। समाज को प्राचार्य जैसे रत्न ही गरीमामय बनाते है। अनेक बार आपके साथ रहने का संयोग मिला प्रत्येक बार पुन मिलने की भावना बनी रही, आपसे बात करने का आनंद अलग ही है, क्योंकि आपकी सोच में कही भी उलझन नहीं है। बडी से बड़ी समस्या का सीधा सरल समाधान देना आपका स्वभाव है। आपकी वाणी मे हास्य रस की मधुरता स्पष्ट देखने को मिलती है।

प्राचार्य जैसे महामनीषी का राष्ट्रीय सम्मान, समाज की गुण ग्राह्यता, गुणानुराग, एव गुणानुशसा का प्रतीक है। आपके राष्ट्रीय अभिनंदन की इस मधुर वेला पर आपके मंगलमय उज्ज्वल जीवन की कामना करते हुये हम आपको शतशत नमन करते हैं।

– पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन, रजवॉस (सागर) म.प्र.

☐

[illegible] हैं मन की खोट को और खोट चाहे सोने में हो या मन में, उससे मूल्य और मान कम होता है।

प्रशस्त पथ-प्रदर्शक प्रभावक प्रवचनकार : प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश

पृष्ठभूमि : पन्द्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक, पाँच सौ वर्षो का काल अनेक कारणों से समूची भारतीय-संस्कृति के लिए अशुभ काल कहा जाता है। विदेशी शासकों के मिथ्यात्व-प्रेरित, हिंसा-प्रधान, धर्माचरण की आंधी में राम-कृष्ण-महावीर और गौतम बुद्ध का भारत अपनी पारम्परिक अवधारणाएँ खो चुका था। धर्म के नाम पर तरह-तरह के निरर्थक आडम्बर प्रचलित और प्रतिष्ठित होते जा रहे थे। धर्म के नाम पर थोथे प्रदर्शन, छुआछूत के आत्मघाती नियम और परस्पर कलह बढ़ रहे थे। समाज वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, कन्या-विक्रय और सती-प्रथा जैसी भयानक कुरीतियों का शिकार हो गया था। जहां बालक-बालिकाओं के लिए अक्षरज्ञान भी आवश्यक नहीं रह गया था। उस दुष्काल में धार्मिक शिक्षा की बात तो सोचना भी असंभव-कल्पना की तरह निरर्थक था। जैन सिद्धान्त, जैन-दर्शन, जैन-न्याय, जैन-व्याकरण, जैन ज्योतिष, जैन साहित्य और जैन इतिहास जैसे विषयों का अध्ययन-अध्यापन लुप्तप्राय या दुरूह हो गया था।

प्रातः स्मरणीय पूज्य 105 श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज और गुरुणांगुरु पंडित गोपालदास जी बरैया जैसे विद्या-विस्तारक मनीषी महापुरुषों की तपस्या के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम कुछ वर्षो में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अशिक्षा के अंधकार में डूबी दिगम्बर जैन समाज के बीच लौकिक तथा धार्मिक शिक्षा के मगल दीप प्रज्ज्वलित हुए और इस प्रकार जैन विद्या के शिक्षण का अंकुरारोपण हुआ। बरैयाजी ने मोरैना में 'जैन विद्यालय' की स्थापना की तथा वर्णीजी ने विद्या-नगरी काशी में 'स्याद्वाद महाविद्यालय' की स्थापना करके 1905 में धार्मिक शिक्षा के अनुष्ठान का ध्वजारोहण किया। फिर तो वर्णी बाबा की पावन प्रेरणा से गॉव-गॉव मे जैन पाठशालाओं की स्थापना होती गई। समय के साथ-साथ विद्यालय और महाविद्यालय अस्तित्व में आते गए। उन परम पुरुषार्थी पुण्य-पुरुषो के द्वारा रोपित इन अंकुरो ने, उनके जीवनकाल मे ही, वटवृक्ष के समान विशाल रूप धारण कर लिया और देखते-ही-देखते जिनवाणी की सेवा करने वाले विद्वानों की तीन पीढ़ियां तैयार हो गई। इसीलिए बीसवीं शताब्दी को हम जैन-विद्याओं के पुनरुद्धार की शताब्दी कह सकते हैं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वर्णीजी ने 'आजीवन पद-यात्रा' का कठिन व्रत लेकर जैन विद्याओं के प्रसार के साथ सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिए उत्तर भारत के गॉव-गॉव में विहार करते हुए, द्वार-द्वार पर दस्तक देना प्रारम्भ किया। बीस-पच्चीस वर्ष बीतने तक कर्नाटक और महाराष्ट्र से पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने सयम और चरित्र की वह गगा बहाई, जिसने उत्तर भारत को भी अपनी पावन तरंगों से पवित्र किया। कालान्तर में उन्हें 'चारित्र-चक्रवर्ती' पद से अलंकृत किया गया, जो उनके ऐतिहासिक दिव्य-अवदान को देखते हुए सर्वथा उपयुक्त था। उन्हें इस उपाधि से मण्डित करके समाज ने अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की थी। पूरी शताब्दी में उन जैसा आगमानुसारी तपस्वी महामुनि दूसरा नहीं हुआ। उचित ही था कि उन्हें 'बीसवी शताब्दी का प्रथम दिगम्बराचार्य' और 'मुनिमार्ग का पुनरोद्धारक' कहा गया। उधर राजस्थान मे पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी छाणी महाराज ने कुरीति-निवारण के लिए अभियान चलाया। इन तीनों विभूतियों का कार्यकाल शताब्दी के प्रारम्भ से 1960 तक फैला है। इस बीच दोनों शान्तिसागर आचार्य अपने मंगल विहार से दर्शन-ज्ञान-चारित्र की त्रिवेणी प्रवाहित करते रहे। दोनों ने एक साथ एक ही नगरी-ब्यावर-में चातुर्मास साधना करके दिगम्बर सतों का अनाग्रही रूप और मुनियों-आचार्यो के बीच साधर्मी वात्सल्य का उत्कृष्ट उदाहरण समाज के सामने प्रस्तुत किया।

इस प्रकार यह ऐतिहासिक और सुनिश्चित तथ्य है कि चार-पॉच सौ साल के दुष्काल के उपरान्त उत्तरभारत में दिगम्बर मुनि परम्परा का पुनः प्रादुर्भाव चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज के दिव्यावदान का ही सुफल है तथा उस क्षेत्र मे जैन विद्याओं के पठन-पाठन की ज्ञान-ज्योति पूज्यश्री गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज के पुरुषार्थ से प्रज्ज्वलित हुई है। आज सैकड़ों की संख्या में जो मुनि महाराज, आर्यिका माताएं तथा अन्य साधक हमारे बीच हैं, यदि उनकी उद्गमस्थली पर विचार किया जाए तो निश्चित ही उनकी परम्परा चारित्र-चक्रवर्ती महाराज के चरण-कमलों तक पहुंचेगी। इसी प्रकार

आज की भौतिक वातावरण प्रधान इस बीसवीं सदी में भी नग्न यथाजात मुद्रा के धारक दिगम्बर साधुसन्तों के दर्शन हो रहे हैं, यह आचार्य शान्तिसागर महाराज का ही महान् उपकार है।

आज जो हजारों विद्वान् मनीषी और विदुषी बहनें हमारे बीच हैं, यदि उनकी गुरु परम्परा की छानबीन की जाए तो निश्चित ही उस परम्परा के जनक रूप में पूज्यश्री गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज का वन्दनीय नाम सामने आएगा।

जिनवाणी सेवकों की चार पीढ़ियां : दो वर्ष बाद 1905 ईस्वी में स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी की स्थापना को सौ साल पूरे हो जाएंगे। जैन विद्याओं के प्रचार और प्रसार के इस शतवर्षीय कालखण्ड मे जैन विद्वानों की चार पीढ़ियॉ सामने आ चुकी हैं। पहली और दूसरी पीढ़ी के विद्वानों ने ईश्वर कर्तृत्व की मान्यता वाले सनातनी पण्डितों के साथ 'खण्डन-मण्डन' की नीति पर सैकड़ों जगह शास्त्रार्थ करके अनेकान्त और स्याद्वाद के झण्डे फहराये। इसके साथ ही जैन सिद्धान्त और अध्यात्म के अनेक ग्रन्थों तथा पुराणों को आधुनिक हिन्दी मे प्रस्तुत करके उन्होंने जिनवाणी की महान् सेवा की। दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी ने जैन सिद्धान्तों के वैज्ञानिक अध्ययन का शुभारम्भ किया और विश्व-विद्यालयीन स्तर पर जैन विद्याओं पर शोधग्रन्थ प्रस्तुत करने-कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अब विद्वानो की तीसरी और चौथी पीढ़ी की साझेदारी में जिनवाणी को कम्प्यूटर की भाषा में परिणत करके उसे इण्टरनेट तक पहुँचाने की जिम्मेवारी है। जैन वाग्मय को इण्टरनेट पर डालने के प्रति अभी दिगम्बर जैन समाज में पर्याप्त चेतना नहीं आई है। कोई सुविचारित और योजनाबद्ध कार्यक्रम भी तैयार नहीं हो सका है। कुछ छुटपुट काम ही हुए हैं। इन कार्यों में जितना विलम्ब होगा, हम समय की दौड में उतने ही पिछडते जाएंगे।

बड़ा काम पड़ा है विद्वानों के लिए : भगवान महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त आदि जो जगत-कल्याणकारी उपदेश दिए थे, मानव मात्र के लिए हितकारी वह अनमोल निधि इस काल में केवल हम जैनों के पास ही शेष रह गई है। इन सार्वभौमिक और सर्वोपयोगी सिद्धान्तों को, जिन्हे प्राइमरी की कक्षाओं मे पढाया जाना चाहिए था, उन्हे अपनी आलमारियो में बंद करके हम अपने आपको गौरवान्वित न मान लें, संतुष्ट न हो जाएँ। भगवान महावीर की उन लोक-उपकारी शिक्षाओं को, दुरूह शास्त्रीय शब्दावली से बाहर निकालकर, लोक-भाषा मे जन-साधारण तक पहुँचाना जैन समाज, तथा विशेषकर जैन विद्वानों का दायित्व है।

- जैन विचारकों ने जानकारियों या सूचनाओं के संग्रह को 'ज्ञान' नही माना।
- उन्होंने आत्मा की उस प्रज्ञा को ज्ञान कहा जो 'स्व' और 'पर' के उपकार के लिए मनुष्य के आचरण में अनूदित होकर उसके जीवन में उतर जाए।
- ज्ञान यदि दूध है तो जीवन के ताप में खौलने पर सदाचार की मलाई उस पर तैरनी चाहिए।
- ज्ञान यदि एक पौधा है तो अडिग आस्था उसका मूल होना चाहिए।
  निज-हित और पर-हित की सबल शाखाओं में उसे विकसित होना चाहिए।
  सहिष्णुता, सहनशीलता, सह-अस्तित्व और अनेकान्त की कोपलें उसमें फूटनी चाहिएं।
- उसके द्वारा अहिसा और अनुकम्पा का समीर-सचरण होना चाहिए और शान्ति तथा समता के फल-फूल उसमे लगना ही चाहिए।

  ज्ञान-वृक्ष के यही 'पचाग' कहे जा सकते है। यही विद्वान् के पॉच आभूषण हैं।

विद्वानों की गौरवपूर्ण परम्परा : उत्तर भारत के लिए यह गौरव की बात रही कि विधर्मियों और धर्म-द्वेषियों के कई सौ वर्षो के शासन काल में जिस तरह दिगम्बर मुनि परम्परा विलुप्त हो गई थी, उस तरह वहॉ विद्वानों और पण्डितों की परम्परा खण्डित नहीं हो पाई। इतिहास के गवाक्ष से हम देखते हैं कि मुनि धर्म का निर्वाह दुष्कर होने पर तेरहवीं शताब्दी से ही जैन संस्कृति को उनका अवदान रेखांकित होने लगा था। अनगार और सागार धर्मामृत के रचयिता पण्डित आशाधर का नाम उनमें अग्रगण्य हैं। उनके बाद की प्रायः हर शताब्दी में हमें विद्वानों की परम्परा के दर्शन होते हैं।

साधु को आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य को विचार में नहीं लाना चाहिए। आत्मज्ञान से रहित क्रियाकाण्ड को साधुता नहीं कह सकते।

इस काल में विद्वानों का योगदान भले ही संयमाचरण चारित्र के अनुपालन मे बिरल रहा हो, परन्तु उनका व्यक्तिगत आचरण प्रायः निष्कलंक और अनुकरणीय रहा है। इस प्रकार मुनियों के अभाव में विद्वानों ने ज्ञान के प्रसार के साथ जैनों के मर्यादा पूर्ण 'सामाजिक चरित्र' के भी उच्च आदर्श अपने जीवन में ढालकर भारतीय समाज के सामने प्रस्तुत किए हैं। विपन्नता के कष्ट सहकर भी उन्होंने अपनी निस्पृहता को कलंकित नहीं होने दिया और सुविधाओं के अभाव को नजरअंदाज करते हुए, निष्ठापूर्वक अपने काम में लगे रहे। प्राचीन ग्रन्थों को भाषानुवाद के माध्यम से प्रस्तुत करके, तथा नवीन मौलिक ग्रन्थों की रचना करके विद्वान् श्रावकों ने जिनवाणी की उल्लेखनीय सेवा की है। इस परम्परा में अव्रती गृहस्थ विद्वानों और व्रती विद्वान श्रावकों के साथ भट्टारक पद पर आसीन विद्वानों का योगदान भी कम करके नहीं आँका जा सकता। भट्टारक परम्परा ने साहित्य रचना से अधिक पूर्वाचार्यो द्वारा रचित साहित्य की रक्षा करके संस्कृति को अपना अति-महत्त्वपूर्ण योगदान अर्पित किया है। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि लगभग पाँच सौ वर्षो तक, विरोधी आँधियों का सामना करते हुए, हजारों जिन मन्दिरों का निर्माण और लाखों जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भट्टारको ने अपनी प्रेरणा और प्रभाव से कराई है। हजारों मन्दिरों में भट्टारकों की नामांकित मूर्तियाँ आज भी पुष्कल परिमाण मे विद्यमान है।

आधुनिक हिन्दी के निर्माण में भी जैन कवियों/विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। कविराज बनारसीदास ने 'अर्द्धकथानक' लिखकर हिन्दी में आत्मकथा के लेखन का मंगलाचरण किया। कुछ विद्वानों ने तो उसे विश्व की सर्वप्रथम आत्मकथा होने का श्रेय दिया है। महाकवि भूधरदास का 'पार्श्व पुराण' और पुष्कल परिमाण मे उपलब्ध उनके स्तवन, भजन और पद प्राचीन हिन्दी काव्य की श्रेष्ठ रचनाओं मे गिने जाते हैं। पण्डित टोडरमल जी ने एक ओर जहाँ गोमटसार जैसे गम्भीर सिद्धान्त ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद तैयार किए वहीं 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' जैसा मौलिक ग्रन्थ देकर जिनवाणी के विस्तार में अनुपम योगदान दिया। इस बीच कविवर बुधजन, दौलतराम, भागचन्द, द्यानतराय, आदि कवियो ने जैन भण्डारो को समृद्धि प्रदान की।

पं. सदासुखदास, पं. दौलतराम कासलीवाल, प. लालाराम, पं टेकचन्द से लगाकर प पन्नालाल साहित्याचार्य तक अनेक ऐसे मनीषी विद्वान् हुए, जिन्होंने पुराण ग्रन्थो के सुगम भाषानुवाद प्रस्तुत किए। आधुनिक शोधकर्ता विद्वानों मे प युगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', नाथूराम प्रेमी, के. भुजबली शास्त्री और मिलापचन्द कटारिया को उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। नवीन मौलिक रचनाकार विद्वानों में सर्वश्री पण्डित माणिकचन्द्र 'कौन्देय', ब्र. शीतलप्रसाद, डॉ महेन्द्रकुमार दर्शनाचार्य, डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के साथ प. कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, पं. देवकीनन्दन, पं. दरबारीलाल कोठिया, प. वंशीधर व्याकरणाचार्य, पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर और पं जगन्मोहनलाल शास्त्री और डॉ नेमीचन्द जैन के अलावा वे समस्त विद्वान भी, जिनमें नामो का उल्लेख, विस्तार भय और अपने अज्ञान के कारण यहाँ मेरे लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है, उन सभी के योगदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित किए बिना दिगम्बर जैनों की विद्वत्परम्परा का परिचय पूरा नहीं हो सकता।

सैकड़ो साल के अंतराल को पूरते हुए आचार्यो की वाणी को यथावत अपने शब्दो में बाँधकर प्रस्तुत करने का यह काम कठिन और ईमानदारी का काम था, जिसे हमारे भट्टारकों, कवियों और विद्वानों ने अथक परिश्रम पूर्वक यदि इतनी गरिमा के साथ सम्पन्न न किया होता तो आज हमारे पास प्राचीन कहलाने योग्य शायद कुछ नही होता और अर्वाचीन साहित्य के संदर्भ में हमारा स्थान इतने आगे नही होता, जितना वह आज है। इस दिव्यावदान के लिए समाज आज भी उन सबका ऋणी है और हमेशा ऋणी रहेगा।

विद्वत्ता के अभिनन्दन और विद्वत्गुणानुवाद की परम्परा : 'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' की लोकोक्ति के अनुसार विद्वान के अवदान का उल्लेख करते हुए, उनका गुणानुवाद करना हमारी पुरानी परम्परा है। यद्यपि यह परम्परा विद्वान् को उपाधियों/पदवियों से अलंकृत करके सम्मानित करने के रूप मे प्राचीन काल से रही है, परन्तु अभिनन्दन-ग्रन्थ

मुनि होकर विपरीत आचरण करना अक्षम्य अपराध है। झूठी प्रशंसा या वाहवाही के चक्कर में पड़कर भीड़ जुटाना साधु-मार्ग नहीं है।

भेंट करके सम्मानित करने की प्रथा अधिक पुरानी नही है। यह परम्परा बीसवी शताब्दी के द्वितीय चरण में प्रारम्भ हुई लगती है। मेरी जानकारी के अनुसार–

1946 में पण्डित नाथूराम प्रेमी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया।

1949 में 'पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी अभिनंदन ग्रन्थ' का समर्पण समारोह सम्पन्न हुआ।

1965 में 'गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ।

1967 में बाबू छोटेलाल सरावगी का अभिनन्दन ग्रन्थ, उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ।

1973 में 'चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर स्मृति-ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ, और

1974 में पूज्य 'आचार्यश्री शिवसागर स्मृति-ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ। इसके पॉच वर्ष पश्चात

1980 में 'पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ।

1980 के उपरान्त अभिनन्दन ग्रन्थों के प्रकाशन और समर्पण का कुछ ऐसा प्रचार हुआ कि प्राय. प्रतिवर्ष किसी न किसी ग्रन्थ की तैयारी या चर्चा सामने आती रही। प्रारम्भ मे अभिनन्दन ग्रन्थो के लिए, उनके सक्षम सम्पादको द्वारा चुनी गई उत्कृष्ट सामग्री के कारण इन ग्रन्थो की उपयोगिता स्थापित हुई, परन्तु कालान्तर में शोधपूर्ण अप्रकाशित सामग्री की अनुपलब्धता तथा सम्पादक का सकोच उनके स्तर को बनाए रखने में बाधक बनने लगा। विभिन्न अभिनदन ग्रन्थों मे प्रकाशित सकल सामग्री का सम्मिलित इण्डैक्स बनाने की दिशा मे भी कोई प्रयास सामने नहीं आया। यही कारण रहा कि अपने भीतर विपुल शोध-सामग्री से समृद्ध होते हुए भी इन ग्रन्थो को 'सन्दर्भ-साहित्य' के रूप मे भी कोई सुनिश्चित/महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हो सका। धीरे-धीरे, शायद प्रमाद के कारण, या सम्पादकों की विवशताओं/अनुभव-हीनताओं के कारण भी, ऐसा हुआ कि अभिनन्दन ग्रन्थो का कोई एक स्तर बनकर नही रह सका। अब तो उनकी सयोजना मे और भी कई विसंगतियों का समावेश हो गया है, पर वह सब इस लेख का विषय नही है।

आज जिनका अभिनन्दन है : हमारी गौरवपूर्ण विद्वत्परम्परा और मान्य विद्वानों के सम्मान, गुणानुवाद तथा उन्हें समर्पित अभिनन्दन ग्रन्थों की इस पृष्ठभूमि मे, हम उस परम्परा में उद्‌भूत सम्माननीय विद्वान, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश के प्रभावक व्यक्तित्व और सराहनीय कृतित्व को अपने मनोभावो का पुष्प-गुच्छक अर्पित करके अपनी आदर भावना व्यक्त करेंगे।

जब हम श्री नरेन्द्रप्रकाश जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर दृष्टि डालते है, तब हमें उसका वास्तविक रहस्य समझते देर नहीं लगती। यह उनके पूर्वोपार्जित पुण्य तथा माता-पिता से मिले सस्कारों का सुफल था कि अपने जीवन में अध्ययन और अनुभव के माध्यम से जो भी उन्होंने अर्जित किया उससे बहुत अधिक क्षमता और सामर्थ्य सदा उनमे विद्यमान रही है। इसी निधि के सहारे वे अपने जीवन के हर क्षेत्र मे एक के बाद एक सफलता की सीढियॉ चढ़ते चले आए है।

शिक्षा-गुरु की आसंदी पर बीते चालीस वर्ष : सुहागनगरी फिरोजाबाद के जैन विद्यालय मे आज से ठीक पचास साल पूर्व, 1953 मे सामान्य अध्यापक पद पर नियुक्ति पाने के बाद अपनी योग्यता और श्रम के बल पर वे प्राचार्य की आसदी पर प्रतिष्ठित हुए, परन्तु इसके लिए उन्हे अठारह वर्षो का लम्बा सफर तय करना पड़ा। इस बीच वे पढाते तो थे ही, पढते भी रहे और स्नातक बनकर उन्होंने अपने आपको महाविद्यालय मे अध्यापन की अर्हता प्राप्त की। बारह वर्ष उन्होने प्राध्यापक पद पर संस्था को अपनी सेवाएँ दीं। 1971 में प्राचार्य-पद प्राप्त होने के बाद के बीस-इक्कीस वर्षो के यशस्वी कार्य काल में नरेन्द्र प्रकाश जी ने महाविद्यालय को एक अनुशासित और नियमबद्ध विद्या मन्दिर का रूप दिया। इस बीच महाविद्यालय की उपलब्धियों के लिए उन्हें हमेशा स्मरण किया जाता रहेगा।

एक बड़े संस्थान में लम्बी सेवा-अवधि के बीच सैकड़ों सहयोगियों को अपने व्यवहार से संतुष्ट रखना और हजारों चपलमति विद्यार्थियों को अनुशासन में बाँधकर उनके जीवन-निर्माण के लिए हितकर मार्ग-दर्शन देना तब तक सम्भव ही

जो मुनि जिनलिंग को धारण करके भी इच्छित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे वमन करके फिर उस वमन को ही निगलते हैं। अतः मुनि बनने के बाद अपने इर्द-गिर्द परिग्रह इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

नहीं है, जब तक शीर्ष पर बैठा व्यक्ति स्वयं आत्म-अनुशासन की सम्पदा से समृद्ध न हो। शिक्षा जगत के सेवाकाल में तथा सामाजिक क्षेत्र में भी प्राचार्यजी को जो सफलताएँ और जो श्रेय प्राप्त हुआ और हो रहा है, उसमें उनके आत्म-अनुशासन और निस्पृहता का बड़ा योगदान रहा है। समाज सेवा के लिए ऐसा अनुशासित और समर्पित व्यक्तित्व समाज द्वारा अभिनन्दन का पात्र माना जाए, यह सहज स्वाभाविक ही है।

जैन गजट का सम्पादन : दीर्घकालीन ज्ञान-दान के अलावा दूसरा जो महत्त्वपूर्ण और गर्व के साथ उल्लेखनीय कार्य भाई नरेन्द्रप्रकाश के द्वारा सम्पन्न हो रहा है, वह है दिगम्बर जैन समाज के सर्वाधिक प्राचीन साप्ताहिक पत्र 'जैन गजट' का सफल सम्पादन। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा का यह एक शताब्दी से अधिक पुराना पत्र महासभा के कीर्तिध्वज की तरह प्रतिष्ठित मुखपत्र है। जैन गजट का सम्पादक होना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह एक ऐतिहासिक पद है, जिसे पूर्व में बैरिस्टर चम्पतराय और ब्रह्मचारी शीतला प्रसादजी जैसे मनीषियों ने सुशोभित किया है। शताब्दी के अंतिम चरण के बदले हुए युग में सम्पादक पद पर अपने दायित्वों का सम्यक प्रकार से निर्वाह करते हुए नरेन्द्रप्रकाश जी ने पत्र का कद तो बढ़ाया ही है, इससे स्वयं उनका कद भी बढ़ा है। जिस प्रकार दीर्घ काल की तपस्या के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अनुभव और विद्वत्ता का अर्जन किया था, उसी प्रकार गजट का सुन्दर और संतुलित सम्पादन उनके लिए कीर्ति और प्रसिद्धि का कारण बना है। यह उनकी सम्पादन कला का सुफल है कि देश के जिस कोने में भी वे पहुँचते हैं, उनका यह राजदूत उनके पहुँचने से वर्षो पूर्व उनकी कीर्ति की झनकार वहाँ पहुँचा चुका होता है।

सौजन्य और प्रखरता का अद्भुत समन्वय : समाचार-पत्र को 'समय का दर्पण' कहा गया है। समाज मे जब-जहाँ जो भी घटित होता है, उसकी झलक सामाजिक पत्रों में दिखाई देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो समझना चाहिए कि सम्पादक के आसन पर सम्पादक नहीं, किसी पक्ष विशेष का प्रचारक बैठा हुआ है। विशेष इतना और है कि दर्पण परिस्थितियों को प्रतिबिम्बित करके भी उन्हें किसी प्रकार सजाने या सुधारने का संकेत नहीं देता, जबकि ऐसे मार्ग-दर्शन देते चलना सम्पादक का अनिवार्य दायित्व होता है।

हमने बार-बार अनुभव किया है कि जैन गजट के सुधी सम्पादक ने हर मौके पर उस सम्पादकीय दायित्व का पूरी ईमानदारी से निर्वहन किया है, उसमें कभी चूक नहीं होने दी। चाहे सोनगढ़ से उठी एकान्त की दुर्गंधित ऑधी हो, चाहे सूर्यकीर्ति का कपटी सूर्योदय हो, चाहे जयपुर से टोडरमल स्मारक के नाम पर हिम्मतनगर और मुम्बई के जिनालयो में खेली गई चौपड की रूढ़ताई हो, चाहे चारित्र-चक्रवर्ती के उज्ज्वल नाम पर फेंकी गई, स्वयं अंकलीकर मुनि महाराज के नाम को धूसरित करने वाली धूल हो, और चाहे दमित वासना से ग्रसित हाथों में मयूर पिच्छी लेकर चौराहे पर नर्तन करता पाखण्ड हो, नरेन्द्रप्रकाश ने आर्ष मार्ग के सजग पहरुवे की तरह, समाज को सावधान करने के लिए, हर बार झकझोरने वाली आवाज में टेर लगाई है। उनके प्रकीर्णक अग्रलेखों के दो संकलन, 'चिन्तन-प्रवाह' और 'समय के शिलालेख' प्रकाशित हैं, जिनमें इसके पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है। इन आलेखों की सामयिकता, स्पष्टवादिता और बेबाकी ने उन्हें एक प्रतिष्ठित पत्र का सुयोग्य सम्पादक होने का गौरव प्रदान किया है।

इस कर्तव्य बोध से प्रेरित नरेन्द्रप्रकाश को कभी-कभी अपनी लेखनी को सुई बनाकर समाज की कोमल रग पर चुभाना भी पड़ा है। शिफत ये रही है कि उनकी सुई ने हमेशा एक मीठी चुभन और कसक देकर नींद उड़ाने का ही काम किया है, घाव बनाकर टीस या पीड़ा नहीं दी। उनके सम्पादकीय अग्रलेखों और टिप्पणियों में प्रखरता होती है, परन्तु धारदार वाणी का प्रयोग करते समय भी वे सज्जन-सुलभ सौजन्य को त्यागते नहीं, यह उनकी विशेषता है। यही वह बिन्दु है, जहाँ नरेन्द्र प्रकाश सम्पादक बिरादरी में अपनी विशेष पहचान बनाते हैं।

1983-84 में जब प्राचार्य जी ने जैन गजट को सम्हाला, तब उसकी प्रसार संख्या चार हजार से कम थी। आज यह संख्या बारह हजार है और शीघ्र ही इस संख्या को पार कर लेगी, ऐसी आशा है। इस बीच इसके प्रसार की क्षेत्रवृद्धि भी हुई है। आज यह पत्र भारत के हर प्रदेश में पहुँच रहा है और श्रावकों के अलावा पूज्य आचार्यों, मुनिराजों तथा आर्यिका

मुनि को संयम, शौच और ज्ञान के प्रतीक पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को रखने की आज्ञा नहीं है।

माताओं के द्वारा भी इसका अवलोकन किया जाता है। समाज के हर वर्ग के पाठक उत्सुकता पूर्वक 'गजट' की प्रतीक्षा करते हैं।

प्रेरणा और प्रोत्साहन दोनों मिलते हैं उनसे : प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी की सम्पादन कला ऐसी मोहक है जो पाठक को तो संतुष्ट करती ही है, लेखकों और संवाददाताओं को भी प्रोत्साहित करती है। वरिष्ठ लेखकों को, जिनके लिए अब प्रोत्साहन का कोई अर्थ नहीं रह गया उन्हें भी, प्राचार्यजी के आमत्रण से लेखनी चलाने की प्रेरणा तो प्राप्त होती है। उनका यह गुण या स्वभाव साहित्य के सृजन का निमित्त बनता है।

1985 के भादों मास की बात है। प्राचार्य जी पर्व में प्रवचन के लिए सतना आने वाले थे और मुझे पूज्य मुनिश्री योगसागरजी तथा क्षमासागरजी के पास बण्डा में रहना था। मेरा उनसे मिलने का बड़ा मन था, अतः मैंने कार्यक्रम ऐसा बनाया कि पंचमी को सुबह जब वे आ जाएँ तब, उनसे मिलकर मैं प्रस्थान करूँगा। अनुज निर्मल के यहाँ ही उनका ठहरना निश्चित हुआ था। लगभग एक घण्टा उनसे वार्तालाप का अवसर मिला।

सहसा वे पूछ बैठे—'आजकल क्या लिख रहे हैं?'

वह सोनगढ़ से प्रेरित 'सूर्यकीर्ति काण्ड' का युग था। जगह-जगह छल-बल के माध्यम से भावी काल के कल्पित तीर्थंकर के नाम पर श्रीकहानजी की मूर्तियाँ लुका-छिपाकर मन्दिरों की वेदियों पर रखने की घटनाएँ सुनने में आ रही थीं। समाज में इसका सशक्त विरोध हुआ था और उस समल योजना का भण्डाफोड़ हो चुका था। छल पूर्वक रखी कई मूर्तियाँ निकाल कर फेंकी जा रही थीं। मैंने उस पाखण्ड पर कुछ लिखने का मन बनाया था और एक छोटा लेख तैयार कर रहा था, जिसका शीर्षक था, 'सूर्यकीर्ति का सूरज डूब रहा है।' मैंने उस लेख के नोट्स उन्हें बताए, जिन्हें देखते ही उन्होंने लेख को 'जैन गजट' के लिए माँग लिया। मैंने फेयर प्रति बनाकर भेजने का आश्वासन देकर उनसे बिदा ली।

पर्व के बाद जब मैं लौटकर घर आया, तब नरेन्द्रप्रकाशजी का एक विस्तृत पत्र मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने लेख के विषय को समाज के लिए उपयोगी बताया और उसे समाज में फैलाए जा रहे उस नए पाखण्ड का परिहार करने में सहायक निमित्त के रूप में देखा था। उस पत्र में मुझसे आग्रह किया गया था कि इस विषय पर विस्तार से लेखनी चलाऊँ, इसे एक सतत लेखमाला के रूप में वे जैन गजट के पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं। फिर सम्पादकजी की इस प्रेरणा से उस लेख की एक के बाद एक, अनेक किश्तें तैयार होती गई। प्रायः हर माह उनके मीठे तकाजे आते रहे और गजट के अट्ठाईस अंकों तक वह लेखमाला छपती रही। समापन किश्त के बाद, महासभा अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी के अनुरोध पर उस सामग्री का सम्पादित रूप 'सोनगढ़-समीक्षा' नाम से पुस्तक रूप में महासभा ने प्रकाशित किया। ऐसा माना जाता है कि इस लेखमाला और पुस्तक ने अनेक वक्ताओं को अपनी भाषा बदलने के लिए और कम से कम दो सम्पादकों को अपनी भूलें सुधारने के लिए मजबूर किया। इस पुस्तक का समाज में आशातीत स्वागत हुआ। मराठी और तमिल में इसके अनुवाद प्रकाशित हुए। पच्चीस हजार से अधिक की संख्या में वितरित हो जाने के बाद भी आज तक महासभा कार्यालय में इस पुस्तक की माँग लगातार आती रहती है।

सोनगढ़-समीक्षा का लेखन मात्र एक उदाहरण है। ऐसे अनेक लेख और पुस्तकें भाई नरेन्द्रप्रकाश के प्रोत्साहन, आग्रह या अनुरोध से तैयार होकर पाठकों तक पहुँची हैं। उनके मार्गदर्शन में, या उनकी प्रेरणा से समाज में अनेक नए लेखक तैयार हुए हैं और हो रहे हैं। साहित्य सृजन में और लेखकों को सँवारने में उनका यह योगदान अपना अलग महत्त्व रखता है।

निस्पृहता और सादगी उनका गुण है : सादा जीवन, उच्च विचार, सहज सौजन्य और निरीहताजन्य निस्पृहता, नरेन्द्रप्रकाश के स्वभाव में घुले-मिले गुण हैं। वे कहीं से आरोपित या ओढ़े हुए नहीं हैं। उनसे मिलना कुछ अलग प्रकार की अनुभूति देता है। सामने वाले पर उनके व्यवहार की जो छाप पड़ती है, वह उनसे पुनः मिलने की उत्सुकता जगाती रहती है। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के बारे में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, पर मैंने उनके शिक्षाकर्म, साहित्य सृजन और सम्पादन कला को ही अपने लेख का विषय बनाया है। उन गुणों का भी अल्प सा परिचय इस आलेख में प्रस्तुत करके

[illegible] विचारपूर्वक आचरण करता है, वास्तव में वह है श्रावक। ऐसे आदर्श श्रावक में, श्रद्धा, विवेक और आचरण का संगम दृष्टिगत होना चाहिए।

मुझे विराम लेना पड़ रहा है।

भाई नरेन्द्रप्रकाश के अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना का हृदय से अनुमोदन करते हुए मैं इस विद्वत्-सम्मान-समारोह की सुन्दर आयोजना के लिए कलकत्ता की जैन समाज की सराहना करता हूँ। अंत में अपनी एक अभिलाषा अंकित करके इस लेख का समापन करना है। अभिनन्दन के अवसर पर जितनी भी पुष्पमालाएँ उनके गले में डाली जाएँ, उन सभी में उनके यशस्वी और स्वस्थ्य दीर्घ जीवन की मंगल मनीषा का एक-एक सतरंगा फूल मेरी ओर से भी वे स्वीकार करें। इत्यलम्।

31 अक्तूबर, 2003 (मेरा जन्मदिन) —नीरज जैन
शान्ति सदन, कम्पनी बाग, सतना, म. प्र.

□

मेरे संस्कार-निर्माता

"व्यक्ति का व्यवहार, व्यक्ति के व्यक्तित्व का आईना होता है।" उक्त पंक्तियां प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन के ऊपर पूरी तरह से खरी उतरती है। सादगी, जिन्दादिली का नाम है। प्राचार्य जी में सादगी के संस्कार कूट-कूट कर बचपन से ही भरे हुए थे। परिवार में पाण्डित्य का स्वरूप आपके पूज्य पिता श्री राम स्वरूप जी जैन के समय से ही मैने देखा। माताजी आपके पिता श्री से भी चार कदम आगे रहीं, ऐसे माता-पिता के परम आशीष को हम सदा-सदा चरणो में नमन करते रहेंगे, जिन्होंने ऐसी प्रतिभावान, चारित्रवान, सादा जीवन उच्च विचार वाली भावनामयी विभूति को जन्म दिया। उन्हें बारम्बार नमन है।

सादगी की प्रतिमूर्ति में– एक धोती, एक कुर्त्ता ही आपका बाना है। इन्हीं से शोभायमान होने लगती है यह परम विभूति। लम्बा कद, गौर वर्ण, एकहराबदन, दैदीप्यमान मुखमण्डल और सागर जैसी गम्भीरता, स्नेहमयी विलक्षणता और आकर्षक व्यक्तित्व ही आपकी सादगी व शालीनता की पहचान करा देता है। चारित्र की आराधना के मूल्य पर हासिल किया जाने वाला ज्ञान, स्वाध्याय की वेदी पर प्रतिष्ठित होकर एक साधारण से अध्यापक, लेक्चरर से प्राचार्य बन कर आर्षमार्ग के पथ पर जीवन के स्वरूप गढ़ता है, वही सब कुछ प्राचार्य श्री के अन्दर झरनें की भांति प्रवाहमान होते देखते हैं।

स्मृति-पटल पर आज स्मृतियां पुनः ताजी हो गई कि जब, आपके माध्यम से ही मैं विद्याध्ययन हेतु श्री गोपाल दिगम्बर जैन संस्कृत महा विद्यालय मोरेना पहुँचा, जहां मेरे पूज्य बाबा स्वनामधन्य विद्यावारिधि, न्यायालंकार श्रीमान पं. मक्खनलाल जी शास्त्री "तिलक" संस्था में प्राचार्य थे। आपके स्नेहाशीष को पाकर सुसंस्कार की इस कार्यशाला से जुड़ा। यह मेरा परम् सौभाग्य रहा। मैं सदैव उनका ऋणी रहूंगा।

सर्व प्रथम मैं मोरेना से विद्याध्ययन करने के उपरान्त वर्ष 1968 मे जब फीरोजाबाद पहुंचा तो प्राचार्य जी के माध्यम से अनेकानेक पारितोषिक मुझे प्राप्त हुए और आज जब मैं बाराबंकी (सर्विस कर रहा हूँ) से अपने निवास स्थान 115, नई बस्ती-फीरोजाबाद जाता हूँ तो सहज ही मेरे लिए आपके दरवाजे सदैव की भांति आशीष प्राप्त करने के लिए आज भी खुले हैं और सदैव खुले रहेंगे।

आपके व्यक्तित्व-कृतित्व मे सदैव पारदर्शिता के दर्शन होते हैं। स्याद्वाद धर्म के पोषक, देवशास्त्र गुरू के अनन्य भक्त, अनेकान्तवाद के प्रति प्रबल आस्थावान प्राचार्य जी ने जिनवाणी मां की सेवा की है। आप आगम के दृढ़ अनुयामी हैं। साहित्य-जगत में सरस्वती के वरद्-पुत्र-सम हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्राचार्य श्री मेरे पूज्य मामाजी भी हैं। आपके चरणों में मेरा शत्-शत् नमन, वंदन और अभिनन्दन।

— रमेशचन्द्र जैन "तिलक", बाराबंकी

□

लोकैषणा या ख्याति-लाभ की चाह से साधु को सदा [illegible] यह भी अंतरंग परिग्रह है [illegible] और परिग्रह का त्याग होते हुए भी यदि अंतरंग परिग्रह से साधु मुक्त नहीं है [illegible]

उदात्त एवं निर्भीक सरस्वतीपुत्र

प्रज्ञा, परिश्रम एवं संगठन के एकत्र समवाय जिस विद्वान् के व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बाँधना असंभव है, उस व्यक्तित्व का नाम है नरेन्द्रप्रकाश जैन। कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा के धनी, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रिपरिषद के स्वनामधन्य यशस्वी अध्यक्ष प्राचार्य जी का नाम आज जैन समाज के जन-जन की जिह्वा पर है। आदरणीय प्राचार्य जी अपने उदात्त जीवन के सत्तर बसन्त पूर्ण करके इकहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और इस अवसर पर धर्म संरक्षिणी महासभा (पश्चिम बगाल शाखा) उनके अखिल भारतीय अभिनन्दन समारोह का आयोजन कर एक अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित कर रही है, यह एक सुखद प्रसंग है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी ने जिस उदात्त, निलोर्भता एवं निर्भीकता के साथ देव, शास्त्र एव गुरु की संरक्षा मे अपने को समर्पित करते हुए धर्म प्रचार किया है, वह विद्वानो के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। हिमगिरिसम गुरुता एवं सागरसम गंभीरता के धारक प्राचार्य जी में एकतः क्षमासी क्षमाशीलता है तो अन्यतः शशिसम शीतलता। सामाजिक एव धार्मिक विसंवादों में उनकी लेखनी जहाँ संवादों का शमन करती है, वहाँ श्रावकों को कर्तव्यपथ का प्रदर्शन भी सहज ही कर देती है। मिथ्या आरोपों से कभी भी विचलित नहीं होते हैं तथा उनके प्रतिकार में कभी भी कटुता नहीं होती है।

महासभा के मुखपत्र जैनगजट के प्रधान सम्पादक के रूप में सम्पादकीय लिखकन उन्होंने साधु सस्था में आ रहे शिथिलाचार को रोकने का सावधान प्रयास किया है तो श्रावकों को भी उनका कर्त्तव्यबोध कराया है। आज उनके सम्पादकीय पढने के लिए प्रबुद्ध वर्ग ने जैन गजट की सदस्यता स्वीकार की है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी से मेरा प्रथम परिचय फिरोजाबाद मे सेठ छदामीलाल जी के मन्दिर की पचकव्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर हुआ था। अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् के अधिवेशन के अवसर पर उत्पन्न विवाद का समाधान ढूँढने के लिए गठित एक त्रिसदस्यीय समिति में श्रीमान् पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री एवं श्रीमान् पं. दरबारी लाल कोठिया के साथ मैं भी था। समाधान ढूँढने में प्राचार्य जी का परोक्ष सहयोग सार्थक एवं सराहनीय रहा था। एक शिविर में कलकत्ता में उनके साथ रहने का मुझे लगातार 8-10 दिन सौभाग्य मिला। मैं उनके वक्तृत्व एवं त्वरित आगमानुकूल समाधान से अत्यन्त प्रभावित हुआ। 1995 ई. में अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद् के अध्यक्ष के रूप में प्राचार्य जी ने मुझे महामन्त्री मनोनीत कर मुझे 'छारतैं उबारिके पहारहूँ ते भारी' कर दिया। अध्यक्ष के रूप में उनका निर्देशन एवं मार्गदर्शन मुझे आज भी सतत प्राप्त है। वे सस्था, सदस्यों एव समाज के हित में सदैव जागरूक एव प्रयासशील रहते हैं।

प्राचार्य जी प्रत्येक विद्वान् को अपना परिवार का सदस्य मानते हैं। उनकी आत्मीयता, सहजबोधगम्य प्रवचनशैली सबके मन को भाती है तथा उनका हास्यमिश्रित व्यंग्य सबको प्रभावित करता है। उनके सान्निध्य का सुख एवं आनन्द वास्तव में अनिर्वचनीय है। वे एक व्यक्ति नही अपितु सम्पूर्ण संस्था है। अपने सुख-दुःख में अद्वैतता तथा दूसरों के सुख-दुख सहभागिता उनका वैशिष्ट्य है। मेरे लिए वे पितृकल्प हैं। मेरी 8-9 वर्ष की अवस्था में ही पूज्य पिताजी की छत्रछाया उठ गई थी। पिता का स्नेह कैसा होता होगा इसकी सहज अनुभूति मुझे प्राचार्य जी का स्नेह देखकर हो जाती है। वे मेरे आदर्श तो हैं ही, उनके प्रति मेरी अटूट श्रद्धा है।

अभिनन्दन की इस आनन्ददायिनी वेला में उनका शत-शत वन्दन करता हुआ मैं उनके स्वस्थ मंगलमय चिरायु एक जीवन की कामना करता हूँ।

–डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

☐

[illegible]

विद्या, विनय, विवेक का जीवन्त व्यक्तित्व

विगत अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय से जैन धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास और समाज के साथ-साथ राष्ट्रीय आदर्श, औदात्य तथा औदार्य के सम्वर्द्धन में सन्नद्ध पण्डित-प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाशजी जैन सम्प्रति समग्र जैन जगत में जाना पहिचाना नाम है। आर्ष-मार्गी विद्वत्परम्परा में अग्रगण्य प्राचार्य जी को साधु और श्रावक दोनों का ही विश्वास एवं सम्मान प्राप्त है। प्राचार्य जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन माँ सरस्वती की आराधना एवं उसके प्रचार-प्रसार में समर्पित कर दिया है।

श्री नरेन्द्र प्रकाशजी का जन्म 31 दिसम्बर, 1933 को उत्तरप्रदेश में आगरा जिला के जटौआ ग्राम में हुआ। आपके पिता प्रख्यात प्रतिष्ठाचार्य (स्व.) पं. रामस्वरूपजी शास्त्री एवं माता श्रीमती चमेली बाई जी थीं। विपत्तियों के निकष पर पुरुषार्थ की यशस्विनी विजय के दैदीप्यमान आभामण्डल के जीवन्त प्रतीक श्री नरेन्द्र प्रकाशजी ने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए, एल.टी. तक शिक्षा प्राप्त कर फिरोजाबाद के पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज में 1953 से अध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा, विद्या-विनय-विवेक-सम्मिश्रित योग्यता के आधार पर वह समुन्नत होते गए और 1971 में इसी कॉलेज के प्राचार्य बनाए गए। इस पद पर इक्कीस वर्ष (1971-1992) की अनवरत प्रोन्नत शिक्षा-सेवा के पश्चात् वह 1992 में गौरव मण्डित होकर सेवा निवृत्त हुए।

श्री नरेन्द्र प्रकाशजी अपने छात्र जीवन से ही एक कुशल, प्रतिभा सम्पन्न एवं तर्क प्रवण प्रभावक वक्ता, अनुशासित और अनुशासनप्रिय संचालक तथा स्वाध्यायशील रचनाकार रहे हैं। मण्डलीय एव प्रादेशिक स्तर की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में उन्होंने अनेक बार प्रथम स्थान प्राप्त कर पुरस्कार एवं ट्राफियाँ जीती हैं। फिरोजाबाद के एस.आर.के कॉलेज से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज में सन् 1953 में शिक्षक के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। यहाँ शिक्षक रहते हुए उन्होंने बी.ए., एम.ए. और एल.टी. की उपाधियाँ अर्जित कीं। सन् 1971 में वह इसी संस्था में प्राचार्य नियुक्त हुए तथा सर्वाधिक समय 21 वर्षों तक लगातार उन्होंने अपने प्रशासनिक दायित्वों का सम्यक् निर्वाह किया। सेवा-निवृत्ति की निर्धारित अवधि से दो वर्ष पूर्व ही स्वैच्छिक अवकाश लेकर उन्होंने निःस्पृहता और त्याग का एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया। उनके कार्यकाल में यह लोकप्रिय शिक्षा संस्था विवादों से तो मुक्त रही ही, अपनी शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और खेल कूद सम्बन्धी गतिविधियों के लिए सम्पूर्ण प्रदेश में चर्चित भी रही। सभी बुद्धिजीवियों का भरपूर आत्मीय भाव इस संस्था को प्राप्त रहा। श्री नरेन्द्र प्रकाशजी की संगठन क्षमता का परिचय अनेक अवसरों पर सहज ही प्राप्त होता है। यथा—

- उत्तरप्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ के सुदीर्घ काल तक पदाधिकारी और उसके द्वारा 1961 में संचालित प्रदेश व्यापी शिक्षक आन्दोलन का सफल नेतृत्व करते हुए उन्होंने एक माह की जेल यात्रा की।
- फिरोजाबाद के जैन मेला भूमि विवाद में नेतृत्व कर एक ऐसा जबरदस्त आन्दोलन खड़ा किया, जिससे समूचा प्रशासन ही हिल उठा। इस आन्दोलन में 250 से अधिक जैन स्त्री-पुरुषों ने अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। जिसके फलस्वरूप ही इस पेचीदे मामले में फँसाये गए लब्धप्रतिष्ठ महानुभावों को जेल जाने के आसन्न संकट से मुक्ति मिल सकी।
- जारखी (फिरोजाबाद) के जैन मन्दिर से चोरी गई जैन मूर्तियों के बरामद किए जाने की माँग को लेकर एक लम्बा सत्याग्रह भी आपके नेतृत्व में ही चलाया गया और उसमें सफलता प्राप्त हुई।

* [illegible], [illegible], [illegible], विवेकी, [illegible] और [illegible] [illegible] है।

- दो बार उत्तरप्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ और दो बार प्रधानाचार्य परिषद के जनपदीय अध्यक्ष निर्वाचित हुए और उनका कार्यकाल गौरवपूर्ण तथा यशोमण्डित रहा।

वस्तुतः सबको साथ लेकर चलने की अपनी योग्यता में ही उनकी सफलता के सूत्र सन्निष्ट हैं।

प्राचार्य जी का जीवन-दर्शन, चिन्तन, अभिव्यक्ति और सृजन जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, समाज, इतिहास और संस्कृति से ओत-प्रोत है। उनके द्वारा प्रणीत प्रमुख मौलिक ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

1. मधुर स्मृतियाँ, 2. शाकाहार : एक आन्दोलन, 3. आचार्य विमलसागर, 4. आचार्य विद्यानन्द : व्यक्तित्व एव कृतित्व, 5. हिन्दी रचना कल्पद्रुप, 6. चिन्तन-प्रवाह, 7. जैन-पर्व : एक अनुशीलन 8. समय के शिलालेख, तथा तीन सौ से अधिक आलेख आदि, जो देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं, अभिनन्दन और स्मृति ग्रन्थों तथा शोध संगोष्ठियों की स्मारिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न भागों में आयोजित शताधिक संगोष्ठियों/शोध सेमीनारों में इन्होंने अपने आलेखों/अध्यक्षीय उद्‌बोधनों/संचालकीय वक्तव्यों और पर्वो/समारोहों तथा अन्य प्रसगों में शास्त्र-प्रवचनों के माध्यम से 'श्रुत-देवता' की महती आराधना तो की ही है, विद्वज्जगत और समाज को प्रशस्त मार्ग भी निदर्शित किया है। प्रवचन के साथ-साथ लेखन और सम्पादन पर भी आपका असाधारण अधिकार है। जैनागम के दुरुहतम विषयों को भी सरल भाषा में हास्य और व्यंग्य की चुटकी के साथ आप ऐसा समझाते हैं कि वह श्रोताओं के हृदय में सहज ही पैठ जाता है। उनके द्वारा सम्पादित प्रमुख कृतियॉं हैं–

1. चन्द्रप्रभ वैभव, 2. फिरोजाबाद में रानीवाला परिवार, 3. राष्ट्रकवि स्व. श्री वल्लभ : संगम पत्रिका, 4. भगवत् अभिनन्दन ग्रन्थ, 5. प्रेरणा (स्व. बाबू जयकुमार जैन स्मृति ग्रन्थ), 6. साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ, 7. 'पुष्पांजलि' : प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचन्द्र जैन 'पुष्प' अभिनन्दन ग्रन्थ, 8. न्यायाचार्य पं. मक्खनलाल शास्त्री स्मृति ग्रन्थ एवं लगभग 30 ट्रेक्ट्स/लघु पुस्तकें आदि।

आपने अब तक अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है/कर रहे हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं : 1. पद्‌मावती सन्देश, 2. जैन संस्कृति, 3. 'वीर' का शिक्षा विशेषांक, 4. जैन गजट : साप्ताहिक (श्री भारतवर्षीय दि. जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा का मुख पत्र)

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी 1983 ई. से अनवरत इस सर्वाधिक प्राचीन साप्ताहिक जैन पत्र (सन् 1895 से निरन्तर प्रकाशित) के प्रधान सम्पादक हैं।

5. अर्हत् वचनः (त्रैमासिक) शोध पत्रिका के परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष के पद से आपने उल्लेखनीय मार्गदर्शन कर उसे बहु आयामी रूप प्रदान किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासभा का शताब्दी महोत्सव आपके महामन्त्रित्व में ही सातिशय प्रभावना और सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इन सभी तथा ऐसे ही शताधिक अन्य प्रसंगों तथा रचनाधर्मिता के आधार पर हम संक्षेप में कह सकते हैं कि प्राचार्य जी की वाणी, आलेखों और रचनाओं में ओज है, स्पष्टवादिता है, अर्थगौरव है और है निर्भीकता। उनकी गणना देश के वरिष्ठ मनीषियों में की जाती है।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जी सम्प्रति जैन विद्वानों की प्राचीनतम एवं प्रतिनिधि संस्था 'अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्री

[illegible]

परिषद्' के माननीय अध्यक्ष हैं। ईस्वी सन् 1995 और 2000 दोनों ही बार उनके चयन में जो सर्वसम्मति रही, वह उनके निर्विवाद व्यक्तित्व की परिचायक है।

आपने अनेक गरिमापूर्ण समारोहों का सफल संयोजन और संचालन किया है जिनमें बहुत से चिर स्मरणीय बन गए हैं। वस्तुतः किसी भी मंच पर आपकी उपस्थिति ही उसकी सफलता की गारण्टी के रूप में आँकी जाती है। प्रत्येक बारह वर्ष के बाद सम्पन्न होनेवाले विश्वविख्यात भगवान् गोम्मटेश्वर बाहुबली (श्रवणबेलगोला, कर्नाटक), के गत महामस्तकाभिषेक 19 दिसम्बर, 1993 की 'रनिंग कमेण्ट्री' या 'लाइव टेलीकॉस्ट' के लिए बंगलोर दूरदर्शन केन्द्र ने उनसे एक अनुबन्ध किया और चार घण्टे तक चलनेवाले उनके प्रभावोत्पादक हिन्दी प्रसारण को देश-विदेश में अत्यन्त रुचिपूर्वक सुना और सराहा गया।

श्री नरेन्द्र प्रकाश जी अपनी सादगी, सरलता और निश्छल व्यवहार के कारण सर्वप्रिय हैं। बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्को के प्रति सद्भाव एवं छोटों के प्रति स्नेह उनके आचरण के अभिन्न अग हैं। अनेक शीर्षस्थ जैन संस्थाओं ने उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित किया है। वे समय-समय पर अनेक मानद उपाधियों से भी अलंकृत किए गए हैं, किन्तु अपने नाम के साथ उन्होंने कभी ऐसी उपाधियों का प्रयोग नहीं किया।

कलकत्ता, अशोक नगर, बुरहानपुर, गिरिडीह, जबलपुर, सतना गुवाहाटी, कोल्हापुर, श्रावस्ती, फलटण, अजमेर, सोलापुर प्रभृति अनेकानेक स्थानों की जैन समाज तथा अन्य विविध संस्थानों ने इनकी विद्वत्ता और धर्म साहित्य संस्कृति सेवा के उपलक्ष्य में अभिनन्दन एवं सम्मान पत्र तथा उपाधियाँ समर्पित करके स्वय को गौरवान्वित किया है।

नीतिकार का यह कथन युक्ति संगत है कि 'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।' मनीषियो का जीवन उनका स्वयं का कम, समाज-निष्ठ अधिक होता है। उनके विचार समाज को नई दिशाएँ प्रदान करते हैं। स्वनामधन्य पण्डित प्रवर प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाशजी जैन भी एक ऐसी ही सारस्वत विभूति हैं, जिन्होंने अपनी ओजस्वनी वाणी और ऊर्जस्वित् लेखनी से सम्पूर्ण साहित्य संसार एवं जैन जगत् में एक विशिष्ट पहचान बनाई है। वे जितना अच्छा बोलते है, उतना ही अच्छा लिखते भी हैं। ऐसा 'मणि कांचन-संयोग' किसी विरले ही मनीषी को श्रुत-देवता के प्रसाद से ही प्राप्त होता है। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाशजी की प्रखर प्रतिभा, प्रभावक व्यक्तित्व और समीचीन कृतित्व का आकलन करने के उपरान्त संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि वे उच्च कोटि के मनीषी, सहस्रों श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर देनेवाले कुशल वक्ता, वाग्मी साहित्यकार तथा सफल संगठन कर्त्ता हैं। सर्वत्र आपकी छवि एक निर्विवाद एवं निष्कलक व्यक्ति की है। यथार्थतः सम्यक् चिन्तन से युक्त आचरण ही श्रेष्ठ व्यक्तित्व की आधार शिला होती है। विद्वत्प्रवर प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाशजी जैन इन्हीं प्रशस्त गुणों एव बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी माननीय मनीषी विद्वान् हैं। उनकी निर्मित पहचान किसी परिचय की मुखापेक्षी नहीं है। वे 'जीवेत् शरदः शतं, भूयात शरद शतात्।' इति-हमारी यही मगल भावना है।

—प्रो. डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु', दमोह (म.प्र.)

□

[illegible] और न किसी मन्दिर का तीर्थ [illegible]

प्राचार्य जी को देश के विभिन्न भागों से प्राप्त सम्मान-स्मृति चिह्न

● प्रथम ऋषभदेव पुरस्कार	26.5.97	दिगम्बर जैन महासमिति, गाजियाबाद
● श्री महावीरप्रसाद सर्राफ एवार्ड	29.9.2002	पद्मावतीपुरवाल दि. जैन पंचायत दिल्ली
● सम्मान-पत्र	पर्यूषण पर्व 2000	दिगम्बर जैन पंचायत कमेटी ट्रस्ट, भोपाल
● सम्मान-प्रतीक	9.4.01	भगवान महावीर के 2600वाँ जन्म कल्याणक एवं पंच कल्याणक महोसत्व पर, फरीदाबाद
● शिविर-कुलपति	1.6.03	श्री. दि. जैन धर्म सरक्षिणी महासभा (प बगाल) कोलकाता
● प्रतीक-चिह्न	3.12.01	श्री दि. जैन सिद्ध क्षेत्र अहार जी द्वारा प. गुलाबचन्द जी के सम्मान-समारोह पर
● प्रतीक-चिह्न	2.5.01	श्री भ महावीर स्वामी 2600वीं जन्म जयन्ती वर्ष में केवलज्ञान कल्याणक पर, आयोजक–जैनधर्म प्रवर्धिनी सभा, लखनऊ
● स्मृति-चिह्न	15.4.02	धर्म प्रवर्धिनी सभा, लखनऊ
● स्मृति-चिह्न	17.12.02	प्रतिभा सम्मान समारोह प्रादेशिक अधिवेशन दि. जैन, नवयुवक मण्डल, कोलकाता
● सम्मान-पत्र	2.10.95	दि. जैन महासभा शताब्दी समारोह, ललितपुर
● आचार्य विमलसागर स्मृति पुरस्कार एवं वाणी-भूषण उपाधि	9.11.98	श्रुतसंवर्धन संस्थान मेरठ, तिजारा
● प्रतीक-चिह्न	23.1.98	जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एव गजरथमहोत्सव, कटनी
● स्मृति-पुरस्कार		आचार्य शान्तिसागर वक्तृत्व स्पर्धा फण्ड, श्राविका सस्थान, शोलापुर
● स्मृति-चिन्ह	15.1.01	भगवान महावीर 2600 वॉ जन्म जयन्ती महोत्सव समिति, मेरठ
● प्रतीक-चिन्ह	21.1.2000	दि. जैन समाज, रेवाड़ी।

[illegible] बाह्य साधनों और उपासनाओं की [illegible] से नहीं, हमारी परम्परागत आन्तरिक संरचना से [illegible]

● प्रतीक-चिन्ह	27.12.98	दि. जैन महासमिति संभागीय अधिवेशन, शिकोहाबाद
● स्मृति-चिन्ह	27.8.99	दि. जैन जौहरी बाजार नवयुवक मंडल, जयपुर
● स्मृति-चिन्ह	30.6.98	शान्सिागर महाराज जैन शिक्षण समिति, ग्वालियर
● स्मृति-पुरस्कार	26.1.93	आचार्य विद्यासागर के 25वें दीक्षोत्सव पर पिसनहारी मढ़ियाजी, जबलपुर
● स्मृति-चिन्ह	4.2.96	श्री दि. जैन मध्यलोक शोधसंस्थान, हस्तिनापुर
● स्मृति-चिन्ह	12.10.99	वर्षायोग समिति, जयपुर (तत्त्वचर्चा गोष्ठी में)
● स्मृति-चिन्ह	1.4.96	भगवान महावीर जयन्ती, दि. जैन महासभा, फिरोजाबाद
● स्मृति-चिन्ह	11.6.97	ओम कोठारी फांउडेशन द्वारा
● स्मृति-चिन्ह	15.2.03	श्री क्षेत्र सिद्धाचल पोदनपुर द्वारा
● रजत स्मृति-चिन्ह	8.4.01	दि. जैन पद्मावतीपुरवाल समाज, आगरा
● स्मृति-चिन्ह	2000	जैन मित्र मंडल, भोपाल
● स्मृति-चिन्ह	–	मानसरोवर दि. जैन मन्दिर, जयपुर
● स्मृति-चिन्ह	2.10.97	श्री नयन जागृति चातुर्मास मंच, सिरसागंज
● स्मृति-चिन्ह	2003	श्री पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज, स्वर्णजयन्ती समारोह
● स्मृति-चिन्ह	26.4.99	आशीर्वाद, आचार्य भरतसागर जी, तीस चौबीसी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सम्मेदशिखर
● स्मृति-चिन्ह	फरवरी 99	दि. जैन अतिशय क्षेत्र, पद्मपुरा (जयपुर) मानस्तम्भ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

□

[illegible] तथा अन्य मादक द्रव्यों के प्रयोग, द्यूत-क्रीड़ा, [illegible], शिकार, [illegible], [illegible] आदि [illegible] से अपने जीवन को भी एक आदर्श श्रावक [illegible] ही बनाया जा सकता है।

देश के विभिन्न भागों से प्राचार्य जी को प्राप्त सम्मान/अभिनन्दन पत्र

● शुभ भावना	22.7.71	फिरोजाबाद	—	हीरालाल जी अग्रवाल फिरोजाबाद द्वारा प्राचार्य पद-ग्रहण के अवसर पर
● अभिनन्दन पत्र	31.7.1971	फिरोजाबाद समाज	प्रखर वक्ता	श्री पी डी. जैन इण्टर कॉलेज फिरोजाबाद के प्रधानाचार्य पद-ग्रहण के समय
● अभिनन्दन पत्र	1.10.74	गिरिडीह समाज	साहित्यानुरागी	दशलक्षण पर्व के अवसर पर
● अभिनन्दन पत्र	15.9.78	पंचायत जबलपुर	कुशल वक्ता	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	4.9.82	जैन समाज अशोकनगर	सिद्धान्त-शास्त्री	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	21.9.83	जैन समाज फिरोजाबाद	—	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	28.6.86	श्री दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध-संस्थान हस्तिनापुर	उद्‌भट विद्वान	विद्वत् प्रशिक्षण शिविर
● अभिनन्दन पत्रम्	5 9 90	दिगम्बर जैन जैसवाल समाज अजमेर	सद्‌साहित्य-प्रणेता	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन-पत्र	11.9 92	जैन समाज गुवाहाटी	पण्डित-शिरोमणि	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	10.11.92	पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज प्रबंध समिति फिरोजाबाद	वाग्देवी के वरद पुत्र	प्रधानाचार्य पद से अवकाश के समय
● अभिनन्दन पत्र	29.9.93	जैन समाज मैनपुरी	आर्ष मार्ग के प्रबुद्ध प्रहरी	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	26.1.93	जैन समाज जबलपुर	सरस्वती-सेवक	श्री नंदीश्वर द्वीप पचकल्याणक एवं पंच गजरथ महोत्सव
● उपाधि पत्र	30.4.94	अ.भा. ब्रज साहित्य संगम, मथुरा	विद्यावाचस्पति	शिक्षा, साहित्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान के उपलक्ष्य में।

[illegible] के लिये सोना, चाँदी, [illegible], [illegible] आदि की आवश्यकता नहीं होती, उसके लिये [illegible] है। [illegible]

● अभिनन्दन पत्र	19.6.96	अ. भा. दि. जैन महासभा शताब्दी समारोह समिति दिल्ली	सम्पादक-शिरोमणि	अ. भा. वर्षीय दि. जैन महासभा के कोटा में आयोजित शताब्दी समारोह एव इतिहास के चार अध्याय पुस्तक के लोकार्पण के अवसर पर।
● प्रशस्ति पत्र	24.2.97	श्री दिगम्बर जैन पंचायत, अशोकनगर	–	समवशरण विधान महोत्सव पर
● अभिनन्दन पत्र	1 6.03	सकल जैन समाज कोलकाता	ऊर्जस्वित लेखक	श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा पश्चिम बंगाल शाखा कोलकाता द्वारा आयोजित धर्म शिक्षिण एवं संस्कार शिविर के अवसर पर।
● अभिनन्दन पत्र	8.4 01	पद्मावतीपुरवाल समाज, आगरा	वाणीभूषण	भगवान महावीर के 2600वॉं जन्म कल्याणक एव पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर
● अभिनन्दन पत्र	6 9.98	जैन पचायत, रॉंची	–	दशलक्षण पर्व
● उपाधि पत्र	20 8 01	श्रवणबेलगोल स्वामीजी चातुर्मास महेन्द्रगिरि, बीजापुर	व्याख्यान-केसरी	श्रेष्ठ वक्ता एवं ज्येष्ठ विद्वान् को
● अभिनन्दन पत्र	12 9 2002	दि जैन पंचायत कमेटी ट्रस्ट एव समस्त समाज, भोपाल	विशिष्ट ज्ञानी	दशलक्षण पर्व
● अभिनन्दन पत्र	8 4 2001	श्री महावीर इण्टर कॉलेज, आगरा	सरस्वती-पुत्र	सार्वजनिक सम्मान समारोह पर
● प्रशस्ति-पत्र	1 4 96	श्री गोमटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति समिति	श्री गोमटेश्वर पुरस्कार प्रशस्ति	–
● उपाधि-पत्र	31 12 02	पद्मावतीपुरवाल फण्ड कमेटी, फीरोजाबाद	समाज-गौरव	आपके 70वें जन्मदिवस पर
● स्मृति प्रतीक	8.3.98	भारतीय जैन मिलन केन्द्रीय अधिवेशन महावीर जी	–	वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर

बाहरी पदार्थों के संसर्ग से मन में विकार उत्पन्न होते हैं और इन विकारों से बचने की शिक्षा में [illegible] पहला कदम है व्रत धारण करना।

● स्मृति प्रतीक	19.6.95	सकल दि. जैन समाज, रघुवरपुरा, दिल्ली	णमोकार मंत्र	श्री नयन जागृति वर्षायोग समिति
● प्रशस्ति पत्र	16.4.03	जिन संस्कृति संरक्षण व सवर्धन समिति द्वारा।	समाज-रत्न	शास्त्री नगर, मेरठ।
● प्रशस्ति पत्र	12 2 03			भ. महावीरस्वामी जन्मभूमि कुण्डलपुर, नालंदा, बिहार, पंचकल्याणक महोत्सव
● प्रशस्ति पत्र	29.9.02			श्री पद्मावतिपुरवाल दि जैन पंचायत दिल्ली, महावीर प्रसाद जैन सर्राफ मेमोरियल एवार्ड
● उपाधि पत्र (रजत)	1.6 3	समाज-रत्न		श्री दि जैन पद्मावतीपुरवाल समाज, पूर्वाचल
● प्रशस्ति पत्र	24.9 99			दि जैन. परवार मन्दिर ट्रस्ट इतवारी, नागपुर (पर्यूषण पर्व)
● उपाधि-पत्र	15.2.2000	शिक्षा-रत्न		ब्रजराज सिंह स्मृति शिक्षा समिति फिरोजाबाद शताब्दी समारोह 2002
● प्रशस्ति पत्र	99.2000	मुख्य वक्ता		राष्ट्रीय नयन जागृति शाकाहार मच, फिरोजाबाद
● अभिनन्दन पत्र	6.9.98			दि जैन. सभाज, रांची
● प्रशस्ति-पत्र		सामाजिक कार्यो में उत्कृष्ट भूमिका		भारतीय जैन मिलन, फिरोजाबाद

□

[illegible]

प्राचार्य जी के पूज्य पिताश्री को मिला सम्मान-पत्र

श्री पार्श्वनाथाय नमः

श्रीमान् आदरणीय प्रतिष्ठाचार्य पं० रामस्वरूपजी शास्त्री

की सेवा में समर्पित

—ः अभिनन्दन-पत्र ः—

श्रद्धेय महानुभाव !

गिरिडीह दि० जैन समाज अपने को परम सौभाग्यशाली अनुभव करता है कि आप जैसे सरल, निरभिमानी एवं निर्लोभ विद्वान की धार्मिक सेवायें विगत १७ वर्ष से प्राप्त होती रही हैं। इन दिनों में जितने भी धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-प्रतिष्ठायें एवं महोत्सव हुए हैं, उन सब में आपकी भूमिकायें अग्रणी रही हैं।

विज्ञ गृहस्थाचार्य !

आप जैसे विज्ञ गृहस्थाचार्य को पाकर किसी भी संस्कार के लिये समाज को चिंतित नहीं रहना पड़ा है। आपके सबल कंधों पर कार्यभार छोड़कर समाज निर्भार हो जाता रहा है। अन्यत्र भी जहाँ-जहाँ आप किसी अनुष्ठान में गये हैं, वहाँ अपने यश-लाभ के साथ गिरिडीह दि० जैन समाज को भी आपने गरिमा प्रदान की है।

सरल एवं निर्लोभ व्यक्तित्व के धनी !

समाज का आबाल वृद्ध पुरुष एवं महिला जगत आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए गद्गद् है कि आपने बिना किसी भी प्रकार की आलोचना के, बिना किसी विकल्प के, तटस्थवृत्ति एवं अपनी सहज मुस्कान से अपने व्यवहार को निभाया है। ऐसी शालीनता प्रायः दुर्लभ ही देखी जाती है।

सुयोग्य शिक्षक !

श्री जैन विद्यालय और दि० जैन महिला शिक्षा मन्दिर के बालक और बालिकायें आपके द्वारा दी गयी धार्मिक शिक्षाओं से उपकृत हुए हैं। जीवन में जब भी ये शिक्षायें उन्हें सुसंस्कारित एवं धार्मिक बने रहने का अवसर प्रदान करेंगी, वे सभी आपके पुण्यनाम का अवश्य स्मरण करेंगे। दि० जैन मंदिर की रात्रिकालीन शास्त्र सभायें आपकी ज्ञानदान की प्रवृत्ति का उज्ज्वल उदाहरण हैं।

जिनवाणी-सेवक !

आपने प्रश्नोत्तर शतक, जैन भजनरत्नमाला, दृष्टान्तलहरी, जिनमत-प्रकाश, सरस सवैये एवं प्रतिष्ठा-पाठ-संग्रह की रचना कर जिनवाणी के प्रचार और प्रसार में प्रशंसनीय योगदान किया है। इनमें से कुछ रचनायें अभी अप्रकाशित हैं। जैन-साहित्य के प्रचार की दृष्टि से समाज उनके प्रकाशित होने की आवश्यकता अनुभव करता है।

यशस्वी विद्वान् !

समाज के पुण्योदय से आपको अत्यन्त सुयोग्य, विनम्र, आज्ञाकारी प्राचार्य चि० नरेन्द्रप्रकाश जैन, M. A. जैसा पुत्र-रत्न प्राप्त है, जिसकी गरिमामय वाणी से अखिल भारतवर्षीय दि० जैन समाज लाभान्वित है। आपकी सौभाग्यवती गृहणी अत्यन्त धार्मिक, सेवानिष्ठ एवं सात्विक विचारपरायणा महिला हैं।

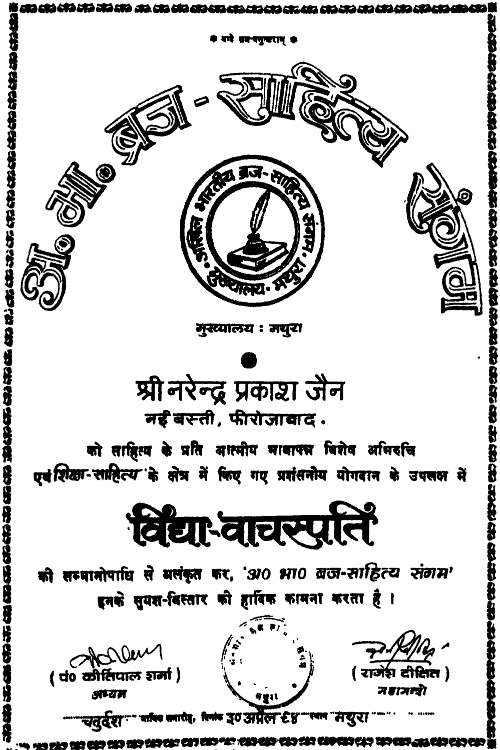
इन दिनों आप अस्वस्थ हैं। हम परमदेवाधिदेव भगवान श्री वीर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनके पुण्य-प्रसाद से आप शीघ्र ही आरोग्यलाभ करें और दीर्घकाल तक समाज की धार्मिक सेवा में पूर्ववत संलग्न रहें।

दिनांक ११-८-७६

हम हैं आपके विनम्र विनीतः-
दि० जैन समाज
गिरिडीह

व्रत से बढ़कर जीव का दूसरा कोई बन्धु नहीं है तथा व्रत-रहित अवस्था से बढ़कर [illegible] कोई शत्रु नहीं है।
अतः सुखार्थी जीव को व्रत अवश्य धारण करना चाहिये।

प्रशस्ति पत्र – 1



॥ वन्दे व्रज-वसुन्धराम् ॥

अ० भा० ब्रज-साहित्य संगम

अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य संगम, मुख्यालय-मथुरा

मुख्यालय : मथुरा

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन

नई बस्ती, फीरोजाबाद.

को साहित्य के प्रति आत्मीय भावापन्न विशेष अभिरुचि

एवं 'शिक्षा-साहित्य' के क्षेत्र में किए गए प्रशंसनीय योगदान के उपलक्ष में

'विद्या-वाचस्पति'

की सम्मानोपाधि से अलंकृत कर, 'अ० भा० ब्रज-साहित्य संगम'

इनके सुयश-विस्तार की हार्दिक कामना करता है।

(पं० कीर्तिपाल शर्मा)
अध्यक्ष

(राजेश दीक्षित)
महामन्त्री

चतुर्दश वार्षिक समारोह, दिनांक 30 अप्रैल 84 स्थान मथुरा

वि किशोर प्रेस, आगरा-3

सभी ही समाज की उपेक्षा है। आज कुछ लोग शास्त्रों की और व्रतियों की महिमा को नकारने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन वह समय जल्दी ही आयेगा जबकि ऐसे लोग ही समाज द्वारा नकार दिये जायेंगे।

प्रशस्ति पत्र – 2

॥ श्री गोम्मटेश स्वामिने नमः ॥

श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति

श्री श्रीमती नरेन्द्रप्रकाश जैन

फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

इनको सादर समर्पित।

धर्म भारतीय संस्कृति का आधार है।
प्राचीन श्रमण संस्कृति के श्रुतकेवली भद्रबाहु, आचार्य कुंदकुंद,
श्रीनेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति आदि महान आचार्यों एवं
कर्नाटक के आदिकवि पम्प तथा रन्न, रत्नाकर
आदि कवियों की साहित्य आराधना द्वारा प्रदीर्घ काल से
तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत दिगंबर जैन सिद्धान्त की प्रभावना होती रही है।

वर्तमान समय में साहित्य के क्षेत्र में
आपके सृजनात्मक लेखन तथा संपादन के द्वारा
धर्मप्रभावना के सर्वतोमुख कार्य से सारा समाज प्रभावित एवं उपकृत है।
आपकी उत्साहभरित साहित्य सेवा की सराहना करते हुए
आपको रु.५,०००/- की राशि सहित
श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति
से पुरस्कृत कर हम सहर्ष सम्मानित करते हैं।

॥ भद्रं भूयात् ॥

दि. १ अप्रैल, १९९६
भगवान महावीर जयन्ती
श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला
कर्नाटक ५७३ १३५

जगद्गुरु कर्मयोगी स्वस्तिश्री
चारुकीर्ति भट्टारक स्वामीजी
श्रवणबेलगोला मठ
अध्यक्ष, श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ प्रशस्ति समिति

जहाँ कषाय की उपस्थिति है, वहा सत्य और सयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है। सत्य-सयम के अभाव में तप-त्याग का निर्वाह भला कैसे हो सकता है?

सम्पादक-शिरोमणि की उपाधि

श्री महावीराय नमः

मूर्द्धन्य जैन विद्वान - महासभा की शताब्दी समारोह के महामंत्री, जैन गजट के यशस्वी सम्पादक ओजस्वी वक्ता, शास्त्री परिषद के अध्यक्ष एवं महासभा इतिहास के सम्पादक, परमादरणीय

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी जैन

फिरोजाबाद की सेवा में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

[redacted]

आदरणीय आचार्य जी ! दि. जैन महासभा की शताब्दी समारोह के महामंत्री पद पर रहते हुए आपने देश विभिन्न प्रदेशों की राजधानियों एवं प्रमुख नगरों में शताब्दी समारोह के विभिन्न कार्यक्रमों सम्मान समारोहों विद्वत सगोष्ठियों का आयोजन करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है, तथा देश के सभी भागों में महासभा की पताका फहरायी है, इसके लिए समस्त महासभा परिवार एवं शताब्दी समारोह के पदाधिकारी एवं सदस्यों द्वारा आपके कृतित्व की जितनी प्रशंसा की जावे, वही कम रहेगी। आप में गजब की संगठन शक्ति है। आपकी वक्तृत्व कला में चुम्बकीय शक्ति है। आप जैसे विशाल व्यक्तित्व के धनी को शताब्दी समारोह के महामंत्री के रूप में पाकर हम सब गौरवान्वित हैं।

[redacted]

आचार्य जी ! जब से आपने महासभा के पत्र जैन गजट के सम्पादक के पद को संभाला है तब से जैन गजट की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। और समाज में जैन गजट को पढ़ना आवश्यक माना जाने लगा है। आप स्वयं कलम के धनी हैं। आप के सम्पादकीय में समाज की समस्याओं पर बहुत सुन्दर रीति से प्रकाश डाला जाता है। आप निर्भय हो कर अपनी लेखनी चलाते हैं। लेखों का चयन एवं अन्य सामग्री का संकलन बहुत ही सुन्दर रीति से किया जाता है। इस सम्बन्ध में आपकी जितनी प्रशंसा की जावे, वही कम है।

[redacted]

आपने इतिहास रत्न डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल द्वारा लिखित "महासभा इतिहास के चार अध्याय" पुस्तक का उत्तम रीति से सम्पादन करके उसमें चार चांद लगा दिये हैं। सचमुच आपका व्यक्तित्व जितना आकर्षक है, कृतित्व भी उतना ही रचनात्मक है। शास्त्री परिषद के अध्यक्ष पद पर विराजमान होने के पश्चात आपने श्रमण साहित्य के उपासक विद्वानों की एक नयी पंक्ति खड़ी कर दी है।

अद्भुत वक्तृत्व कला के धनी :

शास्त्री जी आप जितने कलम के अनूठे धनी हैं, उससे भी अधिक वक्तृत्व शक्ति के स्वामी हैं। आपकी वक्तृत्व शैली अनूठी है। इसलिए जब कभी आप किसी समारोह में बोलने लगते हैं, तो श्रोतागण मंत्र मुग्ध होकर आपकी वाणी को सुनने का आनन्द लेते हैं। सरस्वती आपके कंठ में बैठ जाती है और फिर घंटों धाराप्रवाह बोलते रहते हैं और थकने का नाम नहीं लेते। प्राचार्य जी की वाणी में माधुर्य है। आप मीठी चुटकियां भी लेते हैं और हंसी हंसी में अपनी बात श्रोताओं के गले उतार देते हैं।

महासभा के कोटा में आयोजित शताब्दी समारोह एवं इतिहास के चार अध्याय पुस्तक के लोकार्पण के शुभ अवसर पर यह अभिनन्दन पत्र आपके कर कमलों में समर्पित करते हुए गौरव का अनुभव करते हैं। तथा आपको "सम्पादक शिरोमणि" की मानद उपाधि से अलंकृत करते हैं।

कोटा १९ जून १९९६

निर्मलकुमार सेठी अध्यक्ष महासभा	त्रिलोकचन्द कोठारी महामंत्री महासभा	उम्मेदमल पांड्या परामर्श प्रमुख शताब्दी समारोह समिति	आर. के. जैन अध्यक्ष, शताब्दी समारोह समिति

हम सब सच्चे मन से वीर-वाणी को श्रवण, अनुशरण करें तो हमारा भी भाग्योदय हो सकता है।

शील-शैथिल्य : सबसे बड़ा पाप

जिस प्रकार किसी जैन के घर का कोई बच्चा प्रतिदिन अनछना पानी पीता हो अथवा कभी-कभार रात्रि-भोजन भी कर लेता हो तो एक बार को उस ओर से ऑख मूँदी जा सकती हैं, किन्तु उसके द्वारा मद्यपान या मांसाहार (अण्डे-आमलेट, मॉस, मदिरा आदि) का सेवन बर्दाश्त करने योग्य नहीं है, उसी प्रकार सभी श्रेणी के पापों को एक बार अनदेखा किया जा सकता है, किन्तु मनुष्य के शील में शिथिलता असह्य है।

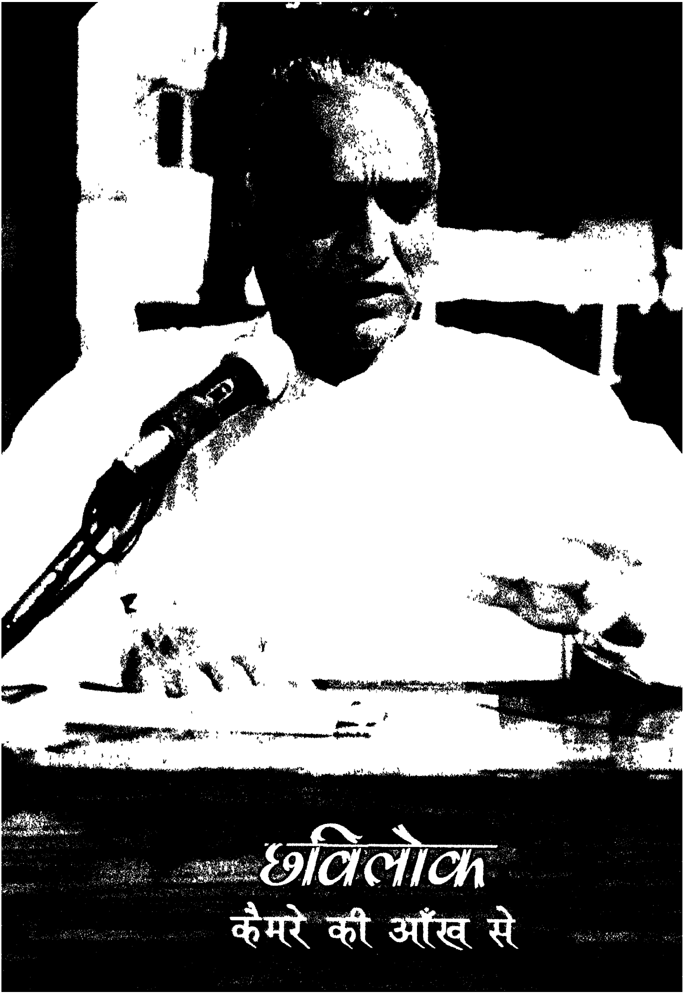
शील-गुण की सुरक्षा पर आगम-ग्रन्थों में बहुत जोर दिया गया है। शील-दोष से आत्मा तो मलिन होती ही है, व्यक्ति के सम्पूर्ण पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। जो शील से रहित है, उसका मनुष्य-भव निरर्थक है। नीतिशास्त्र भी कहता है–

'एकतः सकलं पापं, शीलभंगोत्थमेकतः
तयोः स्याच्वान्तर, नूनं मेरूसर्वपयोरिव'

अर्थात– अन्य सारे पाप तराजू के एक पलड़े में हो और शीलभंग का पाप हो तराजू के दूसरे पलड़े में तो इन दोनों में मेरू पर्वत और सरसों के समान अन्तर होता है।

शीलभंग की घटनाओं की अपेक्षा करना धर्म और संस्कृति के लिए घातक है। इस पाप में संलग्न कोई भी क्यों न हो, चाहे वह साधु हो या गृहस्थ, उसे दण्डित किया जाना चाहिए। शील-भंग के दोषियों को दण्डित न किया जाना अपराध की श्रेणी में आता है।

–'अनेकान्त' से
(जुलाई-सितम्बर 1999)


छविलोक
कैमरे की आँख से

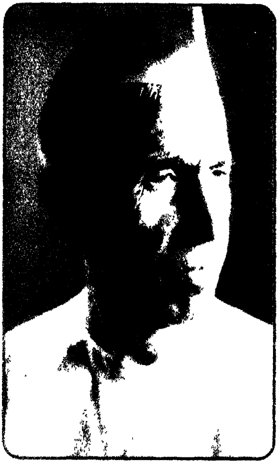


प्राचार्य जी विभिन्न मुद्राओं में



डा. बनारसीदास जी चतुर्वेदी (अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के साहित्यकार)

आचार्य जी के साहित्यिक प्रेरणा स्रोत



पं. रामस्वरूप जी शास्त्री

प्राचार्य जी के पिताश्री एवं माताश्री



श्रीमती चमेलीबाई जैन

प्राचार्य-परिवार



ताऊजीश्री कुंजबिहारीलाल जी शास्त्री



सहोदरतुल्य बड़े भ्राता श्री महेन्द्रकुमार जैन 'वत्सल'



सन् 1974

प्राचार्य जी एवं धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरीदेवी जैन



सन् 1990

प्राचार्य-परिवार



नाना नानी सेठ सोहनलाल जैन
एवं श्रीमती द्रोपदीबाई जैन



बहन-बहनोई श्रीमती शशिप्रभा जैन एवं श्री शान्तिस्वरूप जैन



बहन-बहनोई श्रीमती सोमप्रभा जैन एवं श्री नेमीचन्द जैन



बहन-बहनोई श्रीमती चन्द्रप्रभा जैन एवं श्री जयप्रकाश जैन

प्राचार्य-परिवार



ज्येष्ठ पुत्र श्री भुवनेन्द्रकुमार जैन एवं पुत्रवधू श्रीमती राजकुमारी जैन



मझले पुत्र श्री उपेन्द्रकुमार जैन एवं पुत्रवधू श्रीमती संगीता जैन



कनिष्ठ पुत्र श्री जिनेन्द्रकुमार जैन एवं पुत्रवधू श्रीमती सीमा जैन



अनुज जैन (पौत्र)



अम्बुज जैन (पौत्र)



निखिल जैन (पौत्र)



अखिल जैन (पौत्र)



प्राचार्य जी परिवार के साथ



शिप्रा जैन (पौत्री)



स्वाती जैन (पौत्री)



श्रुति जैन (पौत्री)



श्री सुधीर जैन (ज्येष्ठ दामाद, बांदा उ. प्रदेश), प्रतिभा जैन
कु. शालू जैन, कु. टीना जैन एवं आदित्य जैन (दोहित्र-दोहित्री)



श्री अरविन्दकुमार जैन (मझले दामाद, दिल्ली), कल्पना जैन
अंशुल जैन, आयुषी जैन (दोहित्र-दोहित्री)



श्री मनोज जैन (कनिष्ठ दामाद), अलका जैन
समकित, प्रतीति (दोहित्र-दोहित्री)

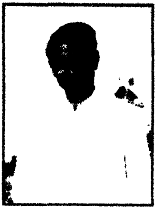
प्राचार्य-परिवार



प्राचार्य जी सन् 1952 में छात्र-संघ के अध्यक्ष के रूप में

छात्र-जीवन की एक छवि

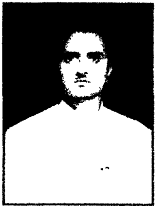

4 वर्ष की उम्र में


सन् 1956


सन् 1969


सन् 1971


सन् 1973


सन् 1974


सन् 1978


सन् 1990


सन् 2003

प्राचार्य जी की छवियाँ


सन् 1957


सन् 1965


सन् 1966


सन् 1967


सन् 1968


सन् 1955
दीक्षान्त समारोह में बी. ए. की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त

प्राचार्य जी की छवियाँ



प्रधानाचार्य-पद पर आसीन प्राचार्य जी सन् 1971



दैनन्दिनी लिखते हुए



चिन्तन-मुद्रा में



स्वाध्याय-पीठ पर विराजमान

प्राचार्य जी की छवियाँ



फिरोजाबाद के
चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर जी में



महासभा के शताब्दी-समारोह के
अवसर पर कोलकाता के
श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर जी में



विभवनगर (फिरोजाबाद) के पंचकल्याणक महोत्सव
में प्रवचन करते हुए

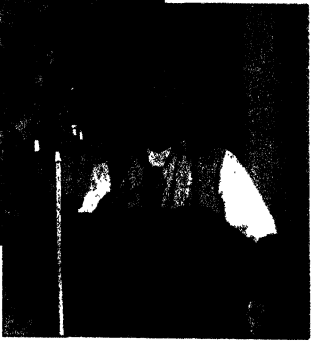
शास्त्र-प्रवचन करते हुए प्राचार्य जी











प्राचार्य जी की उद्बोधन-मुद्रायें



फिरोजाबाद में



कचनेर (महाराष्ट्र) में



फिरोजाबाद में



धरियावद (राजस्थान) में

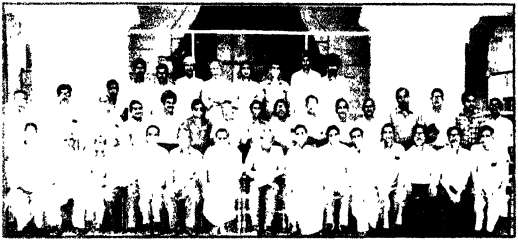


कोटा (राजस्थान) में

पगड़ियाँ भी गौरवान्वित हुई



श्री पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज की प्रथम पारी के शिक्षकों के साथ प्राचार्य जी

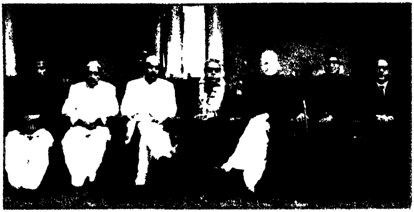


श्री पी. डी. जैन इण्टर कालेज की द्वितीय पारी के शिक्षकों के साथ प्राचार्य जी



कालेज पत्रिका 'अमृत' के सम्पादक-मण्डल के साथ प्राचार्य जी

अपने कॉलेज-परिवार के बीच



श्री पी. डी. जैन इन्टर कालेज की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों के साथ (बाये से) सर्व श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, बाबू जयकुमार जैन, वैद्य माणिकचन्द जैन, प्राचार्य हाकिमसिंह उपाध्याय, पं. श्यामसुन्दरलाल शास्त्री, हकीम प्रेमचन्द जैन एवं डा. मिथिलेशचन्द्र चतुर्वेदी (सन् 1969)



कालेज की रजत जयन्ती के अवसर पर प्रबन्ध समिति के सदस्यों के साथ प्राचार्य जी (बायें से तीसरे) (सन् 1975)



फिरोजाबाद नगर की प्रमुख साहित्यिक संस्था मानसरोवर साहित्य संगम की अन्तरंग समिति के सदस्यगण सर्व श्री प्राचार्य जी (मंत्री), बालकृष्ण गुप्त (सरक्षक), उमेश जोशी (संस्थापक अध्यक्ष), चन्द्रकुमार जैन (निदेशक), डा. मथुराप्रसाद 'मानव' (नगर के वरिष्ठ कवि) दूसरी पंक्ति में सर्व श्री रणवीरसिंह वीर (गौ-सेवक), गौरीशंकरसिंह केदारिया (सदस्य उ.प्र. शिक्षा बोर्ड) रघुवीरसिंह टैनी एवं राजपति दुबे 'बालेन्दु'

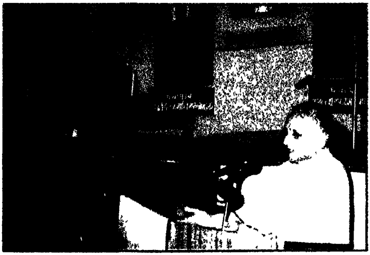
अपने कॉलेज एवं साहित्यिक परिवार के बीच



आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज के साथ
अन्तरंग चर्चा करते हुए प्राचार्य जी,
लोहारिया (राजस्थान) (सन् 1989)



आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज के सान्निध्य
में उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी,
लोहारिया, राजस्थान (सन् 1989)



आचार्य श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य में
उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी
जयपुर (राजस्थान)

संतो के पावन सान्निध्य में



बुन्देलखण्ड तीर्थयात्रा के अवसर पर अतिशय क्षेत्र कोनीजी में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए प्राचार्य जी (यात्रीदल के साथ) सन् 2001



अमरकंटक मे आचार्य श्री विद्यासागर जी से चर्चा करते हुए प्राचार्य जी



आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज के सान्निध्य मे श्री नीरज जी एवं प्राचार्य जी

सन्तों के पावन सान्निध्य में


आचार्य श्री देवनन्दीजी महाराज के साथ चर्चा करते हुए प्राचार्य जी


मुनिश्री समतासागरजी, मुनिश्री प्रमाणसागरजी एवं ऐलक निश्चयसागरजी के सान्निध्य में तत्त्वार्थसूत्र संगोष्ठी में विषय- प्रवर्तन करते हुए प्राचार्य जी

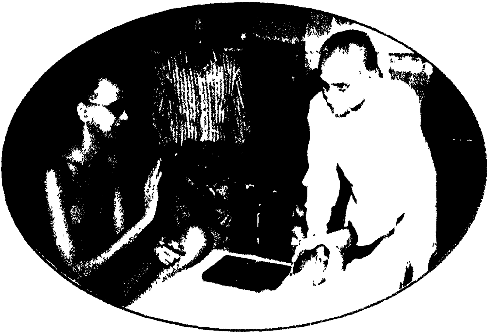

मुनिश्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों से आचार्य विद्यासागर ग्रन्थावली प्राप्त करते हुए प्राचार्य जी!


मुनिश्री समतासागरजी से पिच्छिका ग्रहण करते हुए प्राचार्यजी एवं उनका परिवार


मुनिश्री समतासागर जी महाराज को आहार देते हुए प्राचार्य जी एवं उनकी धर्मपत्नी तथा अन्य!


मुनिश्री गुप्तिसागरजी के साथ इन्दौर में चर्चा करते हुए प्राचार्य जी

सन्तों के पावन सान्निध्य में



मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज को श्रीफल भेंटकर आशीर्वाद लेते हुए प्राचार्य जी



मुनिश्री प्रज्ञासागरजी महाराज एवं मुनिश्री प्रसन्नसागरजी महाराज से अहमदाबाद में आशीर्वाद प्राप्त करते हुए प्राचार्य जी

सन्तों के पावन सान्निध्य में



हस्तिनापुर में पूज्य गणिनी आर्यिका श्री 105 ज्ञानमती माताजी से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए प्राचार्य जी अपने परिवार सहित।



धरियावद में आर्यिका श्री 105 विशुद्धमति माताजी के साथ प्राचार्य जी एवं श्री नीरज जी जैन, सतना (समाधि से कुछ माह पूर्व)



नागौर में पूज्य गणिनी आर्यिका श्री 105 सुपार्श्वमति माताजी से तत्त्वचर्चा संगोष्ठी के सन्दर्भ में परामर्श करते हुए प्राचार्य जी एवं सर्वश्री निर्मलकुमार सेठी, नीरजजी जैन, बाबूलाल छाबड़ा एवं अन्य

गणिनी आर्यिका माताओं के सान्निध्य में



फिरोजाबाद में समवशरण महामण्डल विधान में यज्ञनायक के रूप में अर्घ्य चढ़ाते हुए प्राचार्य जी एवं उनकी धर्मपत्नी!



सिद्धिरम्मले (तमिलनाडु) में पर्वत पर उत्कीर्ण मनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन करते हुए सपत्नीक प्राचार्य जी!



धरियावद पंचकल्याणक में श्रीजी का अभिषेक करते हुए प्राचार्य जी!

आराधना के क्षण



सन् 1981 में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर भगवान गौमटेश्वर बाहुबली
के चरणों में अपनी पुत्रियों एवं धर्मपत्नी के साथ प्राचार्य जी



तमिलनाडु की विभिन्न पर्वत-श्रृंखलाओं में एक हजार वर्ष पूर्व उत्कीर्ण मूर्तियों के दर्शन करते हुए प्राचार्य जी अपनी पत्नी के साथ। साथ में स्वस्ति श्री भट्टारक लक्ष्मीसेन जी महाराज (सन् 2001)



तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी की वन्दना करते हुए (डोली में) प्राचार्य जी



हस्तिनापुर क्षेत्र की वन्दना के अवसर पर सपरिवार प्राचार्य जी



भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालन्दा, बिहार) क्षेत्र में पं. शिवचरणलाल जी जैन, पं. लालचन्द जी जैन 'राकेश' एव श्री सजीव सर्राफ के साथ प्राचार्य जी

तीर्थयात्रा की स्मृतियां



उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी के साथ प्राचार्य जी (सन् 1972)



कालिज के रजत जयंती महोत्सव (1975) पर प्राथमिक पाठशाला के संस्थापक प. रामस्वरूपजी शास्त्री (प्राचार्य जी के पूज्य पिता) का अभिनन्दन करते हुए कालिज के प्रबन्धक हकीम प्रेमचन्द जैन



उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री मोतीलाल बोरा प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए



लखनऊ में भगवान महावीर 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर आयोजित ज्ञान कल्याणक समारोह में राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकान्त शास्त्री एवं अन्य के साथ प्राचार्य जी (सन् 2002)



श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्तिजी महाराज प्राचार्य जी को 'गोम्मटेश्वर प्रशस्ति पुरस्कार' से सम्मानित करते हुए



कोल्हापुर के भट्टारक स्वस्तिश्री लक्ष्मीसेनजी महाराज प्राचार्य जी को उपहार प्रदान करते हुए



धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्रजी हेगड़े प्राचार्य जी को कोटा में ''सम्पादक-शिरोमणी'' की उपाधि एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए, साथ में हैं महासभा अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी।

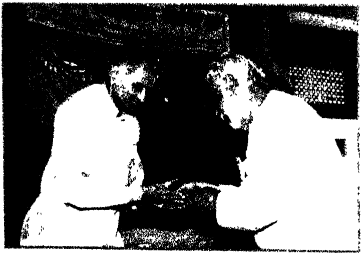
पुरस्कृत सेवा-साधना



मुंबई में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित जैन विद्वत् संगोष्ठी में प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए साहू श्री श्रेयासप्रसादजी जैन, श्री चन्दूलाल जी शाह आदि (सन् 1982)



कोलकाता में आयोजित अ. भा. दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अधिवेशन में अध्यक्ष पद का भार प्राचार्य जी को सौंपते हुए पं. श्री सागरमल जी जैन (सन् 1995)



पूर्व सांसद श्री डालचन्द जी जैन प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए



धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्रजी हेगड़े प्राचार्य जी को शाल ओढ़ाकर सम्मानित करते हुए, साथ मे हे श्री पदमचन्द धाकड़ा, मद्रास



स्वतत्रता-सेनानी श्री सेढ़मल जी जेन प्राचार्य जी को सम्मानित करते हुए



कोलकाता में प्राचाय जी का सम्मान करते हुए वयोवृद्ध समाजसेवी श्री हरखचन्दजी सरावगी एवं महासभा के पदाधिकारीगण



श्री जयकुमार जैन, फिरोजाबाद, श्री आर. के. जैन, मुबई एवं श्री अशोक जैन सर्राफ, इन्दौर प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए (सन् 1986)



लुहारिया के समाज-प्रमुख श्री नाथूलालजी जैन प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए



श्री पी. डी. जैन इन्टर कालेज, फिरोजाबाद के प्रबधक श्री राजेन्द्रकुमार जैन एडवोकेट स्वर्ण जजीर एवं शाल ओढ़ाकर सम्मान करते हुए (सन् 1992)



शोलापुर के श्री कस्तूरचन्द शाह प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए (सन् 2001)



खतौली (उ. प्र.) में पंचदिवसीय भगवान महावीर जयन्ती के अवसर पर प्राचार्य जी का सम्मान करते हुये डा. कपूरचन्द जैन



लखनऊ के आई. जी श्री अरविन्दकुमार जी जैन प्राचार्य जी को साहित्य भेंट कर सम्मान करते हुए



आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज के सान्निध्य में प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए श्री एन. के. सेठी एवं श्री पूनमचन्द गंगवाल, जयपुर



श्री पद्मावतीपुरवाल दि. जैन फण्ड कमेटी द्वारा प्राचार्य जी के 70वें जन्मदिवस पर अभिनन्दन करते हुए श्री प्रेमकुमार जैन, श्री विजयकुमार जैन, श्री सुरेशचन्द जैन, श्री जयप्रकाश जैन एवं श्री बृजकिशोर जैन (सन् 2002)



कोलकाता में श्री पद्मावतीपुरवाल दि. जैन समाज (पूर्वांचल) द्वारा 'समाजरत्न' की उपाधि से विभूषित करते हुए श्री कैलाशचन्द्र जैन, श्री भोलानाथ जैन एवं श्रीमती गार्गी जैन (सन् 2002)



फिरोजाबाद में 68वें जन्मदिवस पर प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए श्री सावलराज कोठारी, श्री राजा रामबाबू जैन, श्री रमेशचन्द जैन 'बैरिस्टर' एवं श्री निर्मलकुमार जैन



कोलकाता में शिक्षण शिविर के कुलपति प्राचार्यजी का सम्मान करते हुए बंगाल महासभा के पदाधिकारी



श्री दि जैन महासमिति एवं जैन मिलन के पदाधिकारीगण प्राचार्य जी का स्वागत करते हुए



शोलापुर में सुश्री विद्युल्लता शहा प्राचार्य जी की धर्मपत्नी श्रीमती गजेश्वरीदेवी जैन का सम्मान करते हुए



प्राचार्य जी की धर्मपत्नी का अभिनन्दन करती हुई श्रीमती सरोज जैन, सतना



फिरोजाबाद के श्री पी डी. जैन इण्टर कालेज के प्राचार्य बनने पर छात्रों द्वारा प्राचार्य जी का अभिनव स्वागत



प्राचार्य-पद पर पदारोहण के पश्चात अभिनन्दन समारोह में कालेज के मंत्री पं. श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री शुभाशीष प्रदान करते हुए



प्राचार्य पदारोहण सम्मान समारोह की अध्यक्षता करते हुए विद्वत् सम्राट् पं. माणिकचन्द जी न्यायाचार्य



प्राचार्य पदारोहण सम्मान समारोह पर स्वागत करते हुए मित्रगण



प्राचार्य पदारोहण के उपलक्ष्य में आयोजित कवि सम्मेलन में स्वतंत्रता-सेनानी श्री रामगोपाल जी पालीवाल, पूर्व प्राचार्य श्री हाकिमसिंह उपाध्याय एवं वरिष्ठ साहित्यकार श्री उमेश जोशी (सन् 1971)

प्राचार्य-पदारोहण-सम्मान



राजगिरि के विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर देशना स्मारक के पचकल्याणक के अवसर पर आयोजित विद्वत् संगोष्ठी में वरिष्ठ विद्वानों के साथ प्राचार्य जी (नीचे से दूसरी पंक्ति में कुर्सी पर बायें से तीसरे)



सागर में आयोजित शिक्षण शिविर पर उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी एवं मंचस्थ अन्य विद्वान



श्री पन्नालाल दि. जैन इण्टर कालेज, फिरोजाबाद के रजत जयंती समारोह को सम्बोधित करते प्राचार्य जी, बैठे हैं बायें से समारोह के अध्यक्ष पं. बनारसीदास चतुर्वेदी एवं मुख्य अतिथि पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य

ज्ञानीजनों के बीच



कोलकाता मे प. पदमचन्द जी शास्त्री के साथ प्राचार्य जी



भिण्डर के प. जवाहरलाल जी सिद्धान्त शास्त्री के स्वास्थ्य-लाभ की कामना करते हुए प्राचार्य जी। साथ मे हैं श्री फूलचन्द जी प्रेमी, डा. कमलेश जी जैन, वाराणसी, श्री सन्तोषीलाल जी मेहता एवं अन्य

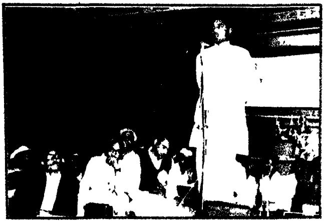


प्रसन्न मुद्रा में देश के तीन वरिष्ठ विद्वान् डा. भागचन्द जी भागेन्दु, दमोह, श्री नीरज जी जैन, सतना एवं प्राचार्य जी



स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्तिस्वामी जी (श्रवणबेलगोला) के साथ प्राचार्य जी

ज्ञानीजनों के बीच



फल्टण में आयोजित अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद के अधिवेशन में प्राचार्य जी उद्‌बोधन देते हुए (सन् 1976)



फरीदाबाद में अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद द्वारा आयोजित श्रावकाचार संगोष्ठी में वरिष्ठ विद्वानों के साथ प्राचार्य जी



जयपुर में आयोजित तत्त्वचर्चा संगोष्ठी में प्राचार्य जी अन्य वरिष्ठ विद्वानों के साथ



महासभा कार्यालय लखनऊ में प्राचार्य जी के सम्मान में आयोजित समारोह में श्री बाबूलाल छाबड़ा, श्री नीरज जी जैन, श्री शिवचरणलाल जी जैन, श्री निर्मल जी सेठी, प्राचार्य जी, श्री श्रेयांस कुमार जी जैन एव जैन गजट के प्रकाशक श्री सुधेश जैन

ज्ञानीजनों के बीच



अपने कालेज में पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी के 80वें जन्मदिवस पर आयोजित समारोह में भावांजलि अर्पित करते हुए प्राचार्य जी



प्राचार्य जी के सम्मान में आयोजित एक कवि गोष्ठी, जिसमें नगर के सभी प्रमुख साहित्यकार उपस्थित हैं



शिकोहाबाद के वी. डी. एम बालिका महाविद्यालय की प्राचार्या श्रीमती निर्मला यादव, संतकवि निर्दोषी, चेयरमेन श्री कमल सिंह यादव, प्रो. चन्द्रवीर जैन एवं श्री अनूपचन्द जैन एडवोकेट के साथ प्राचार्य जी

साहित्यकारों के साथ



साहू श्री रमेशचन्द जी के साथ



श्री मदनलाल जी बैनाड़ा के साथ



श्रवणबेलगोला में सर्व श्री कलाश बढ़ (इजी)
शान्तिलाल दोशी, एन सी जन (चीफ इजी)
बाबूलाल पाटोदी, प्राचार्य जी एव विमल अजमेरा (इजी)



एक महत्वपूर्ण बैठक में (खड़े हुये) ब्र विद्युल्लता शहा, सोलापुर, श्री निर्मल सेठी, श्री राजकुमार सेठी, श्री प कैलाशचन्द जी शास्त्री, श्री रूपचन्द कटारिया, श्री प कुन्जीलाल जी शास्त्री, श्री अजितप्रसाद जी जन, श्री सोभागमल कटारिया, श्री उम्मेदमल पाण्ड्या, श्री प्रकाशचन्द पाण्ड्या, ब्र मोतीचन्द जन, श्री किरनमल मित्तल (बैठे हुये) प धर्मचन्द शास्त्री, प सुमतिचन्दजी शास्त्री, प्राचार्य जी, श्री निर्मलकुमार जैन, श्री बाबूलाल छाबडा, श्री नरेन्द्र जेन

समाज-प्रमुखों के साथ



श्री पी. डी. जैन इण्टर कालेज के स्वर्ण जयन्ती वर्ष समारोह की स्मारिका का विमोचन करते हुए प्राचार्य जी, साथ में है कालेज के प्रबन्धक, प्राचार्य एवं सम्पादक



जबलपुर में पूज्य मुनि श्री समतासागर जी, मुनि श्री प्रमाणसागर जी के सान्निध्य में नीरज जी की पुस्तक का विमोचन करते हुए प्राचार्य जी



पं अजितप्रसाद जी जैन (सम्पादक शोधादर्श) को 'प्राच्य श्रमण भारती' पुरस्कार प्रदान करते हुए प्राचार्य जी



लखनऊ, जैन गजट कार्यालय में श्री शशिकान्त जी, श्री रमाकान्त जी, श्री बाबूलाल जी, श्री गम्भीरलाल जी के साथ प्राचार्य जी



धर्मस्थल में आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज के सान्निध्य में महासभा के शताब्दी महोत्सव में प्रमुख सूत्रधार के रूप में उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी, अन्य मुनिगण एवं भट्टारकगण भी विराजमान।



कोलकाता में आयोजित शाकाहार एवं साहित्य पुरस्कार समारोह में प्रमुख मार्गदर्शक के रूप में उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी। मंच पर विराजमान हैं शाकाहार विशेषज्ञ डा. कल्याणमल गंगवाल, सेठी जी एवं भारत सरकार के वित्त मंत्री श्री प्रणव मुखर्जी, कोलकाता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री के सी अग्रवाल एवं अन्य



उदयपुर में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के 65वें दीक्षा दिवस पर आयोजित समारोह में बोलते हुए प्राचार्य जी

प्रमुख सूत्रधार के रूप में

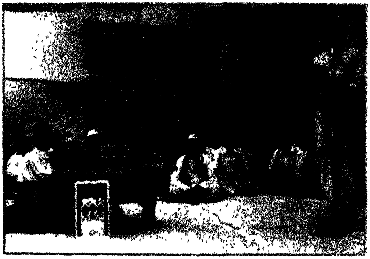




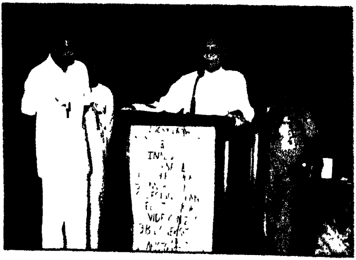
कोलकाता में भगवान महावीर 2600वें जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर प्राचार्य जी के मार्गदर्शन में देश की विविध विधाओं के 26 प्रमुख प्रतिभाओं के सम्मान हेतु श्री अ. भा. दि. जैन प्रतिभा सम्मान समारोह-समिति एवं श्री दिगम्बर जैन नवयुवक मंडल, कोलकाता द्वारा आयोजित समारोह के दृश्य।
श्री डा. भागचन्द भागेन्दु, दमोह (ऊपर) एवं श्री पार्श्वनाथ उपाध्ये, बैंगलोर (नीचे) को सम्मानित करते प्राचार्य जी।



इन्दौर में आयोजित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह में मंच पर श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, श्री सुरेशचन्द जैन (आई. ए. एस) एवं अन्य विशिष्ट जनों के साथ प्राचार्य जी



फिरोजाबाद मे आयोजित रइधू पुरस्कार समारोह में उद्बोधन देते हुए प्राचार्य जी



दिल्ली के फिक्की आडिटोरियम में श्री पद्मावती पुरवाल दि जैन पचायत (धर्मपुरा) के द्वारा श्री महावीरप्रसाद सर्राफ मेमोरियल अवार्ड से सम्मानित प्राचार्य जी अपने आभार प्रकट करते हुए, दाई ओर हैं श्री स्वराजकुमार जैन सर्राफ एवं बाई ओर हैं श्री प्रताप जैन, दिल्ली।



महासभा-अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी प्राचार्य जी को तिलक लगाकर सम्मान करते हुए



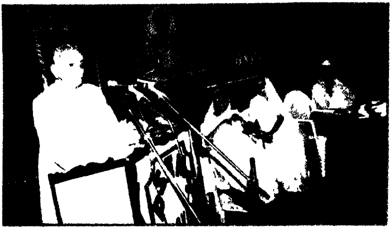
कोलकाता में आयोजित शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में कुलपति के रूप में दिशा प्रदान करते हुए प्राचार्य जी, साथ में हैं बंगाल महासभा के महामंत्री श्री महावीरप्रसाद गंगवाल



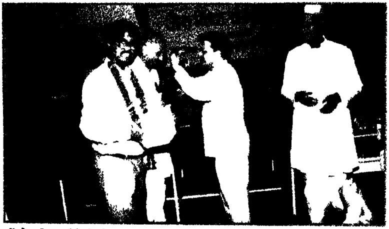
गौहाटी में प्राचार्य जी की पुस्तक 'समय के शिलालेख' का विमोचन करते हुए असम के सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार श्री परेशचन्द्रदेव शर्मा, साथ में हैं गौहाटी समाज के मंत्री श्री रतनलाल रारा, पं. हसमुख जी प्रतिष्ठाचार्य एवं अध्यक्ष श्री हुकमीचन्द जी सरावगी



कोलकाता में आयोजित शिक्षण शिविर में परीक्षा देते शिविरार्थी, अवलोकन करते कुलपति प्राचार्य जी एवं महासभा पदाधिकारीगण



शोलापुर में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज की पुण्य तिथि पर बोलते हुए प्राचार्य जी। मंच पर हैं ब्र. विद्युल्लता शहा, श्रीमती राजेश्वरीदेवी जैन, (फीरोजाबाद), श्री धन्यकुमार शहा, श्री रतनचन्द शहा आदि



इन्दौर में जैन विद्या संगोष्ठी के अवसर पर प्राचार्य जी का सम्मान करते हुए अहिल्याबाई विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, साथ में है श्री देवकुमारसिंह काशलीवाल एवं डा. अनुपम जैन



फिरोजाबाद में अपने मझले पुत्र उपेन्द्र जैन के नवीन गृह का प्रवेश-अनुष्ठान सम्पन्न करते हुए प्राचार्य जी



श्री चन्द्रप्रभु मन्दिर जी में आयोजित सिद्धचक्र मण्डल विधान के अवसर पर ध्वजारोहण करते हुए प्राचार्य जी



भारत विकास परिषद द्वारा प्राचार्य जी के सम्मान में आयोजित समारोह में प्रमुख अतिथिगण, साथ में हैं भा. वि. परिषद के अध्यक्ष श्री प्रमोद जैन, मंत्री श्री डी. के. सिहं आदि



भारत विकास परिषद द्वारा आयोजित प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं को पुरस्कार देते हुए प्राचार्य जी



भारतीय जैन मिलन द्वारा आयोजित चिकित्सा शिविर के अवसर पर सदस्यों के साथ प्राचार्य जी

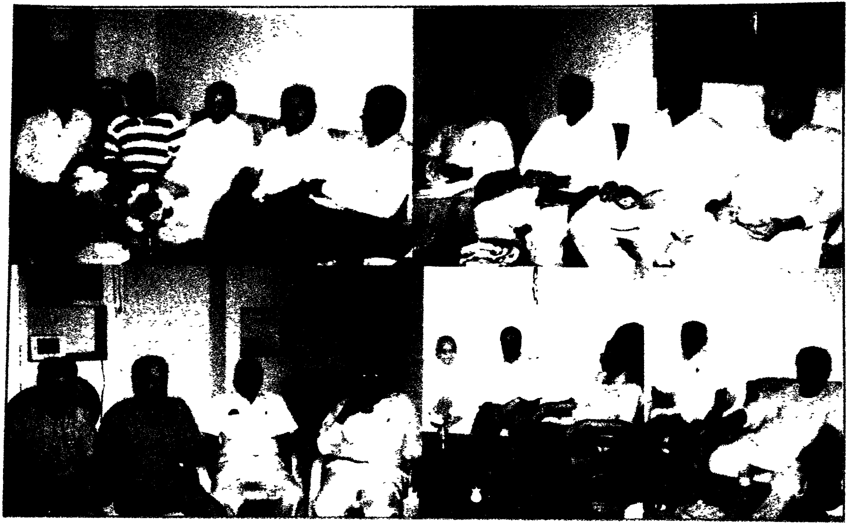


फीरोजाबाद में स्थाई जलशाला के उद्घाटन पर प्रमुख समाजसेवी श्री रामबाबू जैन, पाण्डे मुंशीलाल जैन, पूर्व नगरपालिका अध्यक्ष श्री राजेन्द्रकुमार जैन व रमेशचन्द जैन बैरिस्टर के साथ प्राचार्य जी



प्रवचन करते हुए प्राचार्य जी

सम्पादक मण्डल के सदस्यों के फीरोजाबाद-प्रवास के समय का चित्र



आनन्द समिति के सदस्यों के साथ सर्वश्री डा. अनुपम जैन (इन्दौर), डा. चिरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता), प्राचार्य जी, डा. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' (प्रधान सम्पादक, दमोह), अजित पाटनी (कोलकाता), महेन्द्रकुमार जैन 'वत्सल' (प्राचार्य जी के बड़े भाई), पं. विनोदकुमार जैन प्रतिष्ठाचार्य (रजवास), प्राचार्य लालचन्द्र जैन 'राकेश' (गंजबासौदा), उमेश जैन, कमलकुमार जैन, शान्तकुमार जैन, सुरेशचन्द्र जैन, राजेन्द्रकुमार जैन एडवोकेट, प्राचार्य जी, अजित पाटनी, वीरेन्द्रकुमार जैन, प्रेमचन्द जैन एवं देवेन्द्रकुमार जैन (उद्योगपति)



चतुर्थ खण्ड
साहित्यिक अवदान

फीरोजाबाद का शान्ति–निकेतन : श्री पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज
जहाँ प्राचार्य जी ने ४० वर्षों तक ज्ञान–दान दिया

नया वर्ष : नव संवत्सर

तेरहवीं सदी के एक प्रसिद्ध जैन कवि एवं आचार्य श्रीधरसेन के शब्दों में भारतीय संस्कृति का मूलाधार है–**'वहति जगती प्रेमोद्गारं तरन्त्वशुभं जनाः'** अर्थात् पृथ्वी प्रसन्नता को धारण करे तथा सभी मनुष्य अशुभ (पाप) से रहित हों। भारतीय चेतना में इसी प्रशस्त भावना का प्राधान्य है। संस्कारित एवं व्यसनमुक्त जीवन-शैली के बिना निर्मल चेतना का अनावरण नहीं हो सकता। किसी हिन्दी कवि ने सुखी और उन्नत जीवन का उपाय बताते हुए ठीक ही लिखा है–

पाप-समय निर्बल बनो, धर्म-समय बलवान।
वैभव-समय विनम्र अति, दुःख में धीर महान ॥

'संस्कृति शब्द संस्कार से बना है तथा 'संस्कार' शब्द सकल्प और यत्न के लिए प्रयुक्त होता है। सुखी जीवन के लिए सतत् यत्नशील रहना शुभ संकल्पों के बिना भला कैसे संभव है। हमारे सभी भारतीय धर्मों का हर पर्व, तीर्थ, शास्त्र, मन्त्र आदि व्यक्ति और समाज को इसी दिशा की ओर ले जाता है।

हर वर्ष चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को पूरे देश में नववर्ष मनाया जाता है। नववर्ष मनाने की प्रथा यों तो विश्व के सभी देशो में है, किन्तु भारतीय प्रथा की अपनी अलग ही विशेषता है। इस विशेषता की चर्चा हम अपने इस आलेख के उपसंहार में करेंगे।

काल-निर्णय एवं ऐतिहासिक घटनाओं के सम्यक् प्रकारेण गुम्फन के लिए संवत्सर की अवधारणा का जन्म हुआ होगा। संवत्सर की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए जैन एव बौद्ध ग्रन्थों में कहा गया है–

'अयनं द्वयं संवत्सरः' (भगवती आराधना)
'सवंत्सरी द्वादशमासात्मकः' (आवश्यक निर्युक्ति/धम्मपद)

अर्थात्–दो अयनों या बारह मास का एक संवत्सर होता है। एक अयन छः मास का माना जाता है। हर संवत्सर के प्रथम दिन को 'नववर्ष' के रूप में मनाए जाने की प्रथा है।

भारत में मुख्यतः पांच संवत्सरों का प्रचलन पाया जाता है। (1) विक्रम (2) शक (3) वीर-निर्वाण (4) हिजरी एवं (5) ईसवी संवत्। इनमें से तीसरे एवं चौथे संवत् का प्रयोग क्रमशः केवल जैनों और मुसलमानों में होता है। ईसवी सन् ईसामसीह के अवसान के बाद प्रचलित हुआ। आज इसका प्रयोग यूरोप के सर्वाधिक क्षेत्रों में होता है। अंग्रेजी साम्राज्य के दिनों से भारत में भी इसका ही प्रचलन मुख्य हो गया है। यह भी एक तरह से विदेशी दासता का ही प्रतीक है।

भारतीय संस्कृति में सर्वप्रधान संवत् विक्रम संवत् है। वैवाहिक संस्कारों, दुकान-मकान के मुहूर्तो, बहीखाता-पूजन तथा नामकरण, कर्णछेदन आदि संस्कारों के समय इसी का प्रयोग मुख्यता से होता है। ईसवी सन् या संवत् का उल्लेख तो केवल संगति दरशाने के लिए दूसरे क्रम पर होता है। जैनों के शाश्वत पर्व अष्टमी-चतुर्दशी अथवा हिन्दुओं के एकादशी, अमावस्या या पौर्णिमादि पर्व-तिथियों का निर्धारण भारतीय संवत्सरों के आधार पर ही होता है।

विक्रम संवत् का प्रारम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से माना जाता है। इस दिन भारतीय लोग गंगा-तीरे या मंदिरों में विशेष पूजा-अर्चना का आयोजन करते हैं। जैन लोग भी प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में जागकर मुख-शुद्धिपूर्वक सबसे पहले जिनेन्द्र-दर्शन करते हैं। यह एक नैसर्गिक उल्लास का दिन है। पहली जनवरी को ऐसे पवित्र भावों का जागरण भारतीय मानस में नहीं होता। इससे हमारे आगम-ग्रन्थों में 'कालमंगल' की जो चर्चा पाई जाती है, उसकी सार्थकता ही सिद्ध होती है।

तीर्थों का स्थल विशेष स्मृति के परदे पर सदियों पहले की घटनाओं को चलचित्र की तरह उभार देता है,
जिससे जीवन में कभी-कभी ऐसी प्रेरणा मिलती है जैसी बड़ी-बड़ी पोथियों को पढ़कर भी नहीं मिलती।

प्रारम्भ में दक्षिण में शक् संवत् का भी प्रचार था, किन्तु आज आम जनता में इसका चलन नहीं है। प्राचीन होने से सरकारी मान्यता होते हुए भी यह संवत् शासकीय खानापूरी तक ही सीमित होकर रह गया है। ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार गोमतीपुत्र सातकर्णी शालिवाहन ने ईसवी 79 में एक राजा नरवाहन को परास्त करके शकों की जीत के उपलक्ष में शक संवत् चलाया था। प्राचीन जैन ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र इसका उल्लेख पाया जाता है। फिर भी वर्तमान में इसका व्यवहार लुप्तप्राय है।

'शक' शब्द का प्रयोग सवत्-सामान्य के अर्थ में भी किया जाता है। उदाहरण के लिए यह श्लोक दृष्टव्य है:—

युधिष्ठिरो विक्रम शालिवाहनो ततो नृपः स्याद्विजयाभिनन्दनः।
ततश्च नागार्जुन भूपतिः कलौ कल्की षडेते शककारकाः स्मृताः ॥

अर्थात्-कलियुग में युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन और कल्की ये राजा शककारक (संवत् चलाने वाले) कहे गए हैं।

दक्षिण देशों में प्रत्येक संवत् को 'शक' शब्द से उल्लिखित किया जाता है, जैसे विक्रम शक, शालिवाहन शक, महावीर शक आदि। जो भी हो, आज यह प्रचलन-वाह्य है। भारत का सर्वमान्य संवत् विक्रम संवत् ही है।

भारतीय संवत्सर की विशेषता : यों तो भारत में पहली जनवरी के दिन को भी बडे ही धूम-धडाके के साथ 'नववर्ष' के रूप में मनाया जाने लगा है, किन्तु अपने सांस्कृतिक गौरव एवं स्वाभिमान की सुरक्षा तो चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को 'नववर्ष' के रूप में मनाने में ही है। पश्चिमी देशों की उत्सवप्रियता शारीरिक सुख, इन्द्रिय-विलास और राग-रंग के साधनों के जुटाने तक ही सिमटी हुई है, जवकि भारतीय संस्कृति मे हर उत्सव के पीछे एक उच्च कोटि की आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। हमारे यहॉ कोरे मनोरंजन का कतई महत्त्व नहीं है, साथ में आत्मरंजन भी होना चाहिए।

प्राचीनकाल से ही हमारे यहॉ परम्परा चली आ रही है कि जब भी हमारा भारतीय नववर्ष (विक्रमी संवत्) प्रारंभ होता है तो भारतीय लोग तीर्थयात्रा, गगा-स्नान और पूजा-अर्चना के साथ ही जरूरतमदों को समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह-सरीखा मानकर दान आदि भी देते है। दान के पीछे न तो आत्मप्रचार की भावना होती है और न ग्रहेताओ पर उपकार या ऐहसान जताने-जैसा कोई दम्भ ही। जो सात्विकता भारतीय सस्कृति में है, वह कही अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

दूसरी ओर पहली जनवरी के दिन नववर्ष का जश्न मनाने वाले लोग मंदिरो में मन लगाने के बजाय महंगे होटलो एव क्लबो में डिनर, शराब और हुड़दग के साथ इसे मनाते हैं। जगह-जगह डास-पार्टियो का आयोजन होते हुए देखा जाता है। डांस के नाम पर पॉप संगीत और ट्विस्ट की धमाचौकडी रहती है। कत्थक, भरतनाट्यम, भाखड़ा, नवताल आदि अपनी उपेक्षा पर कोने में बैठकर आसू बहाते रहते हैं। हा-हा हू-हू के शोर और हुडदंग में यह सब निषिद्ध है। कई स्थानों पर 1 जनवरी के जुलूसों मे इतनी अधिक हुल्लड़बाजी होती है कि उस पर नियन्त्रण करने के लिए पुलिस को लाठियाँ चलानी पड़ती है और अनेक लोग उससे घायल हो जाते है।

आज आकाशवाणी और दूरदर्शन पर पाश्चात्य शैली से मनाए जाने वाले कार्यक्रमों को जितनी प्रमुखता से दिखाया जाता है, उसका दशमाश महत्त्व भी भारतीय नववर्ष को नहीं मिलता। इससे सांस्कृतिक ह्रास हो रहा है। मंदिरो में फिल्मी तर्ज के गानो और अशास्त्रीय-अधार्मिक नृत्यों की अनुगूंज मे यह गिरावट स्पष्ट देखी जा सकती है। हमारे समाज की युवा पीढ़ी पश्चिम की अंधी नकल कर रही है और अपनी परम्पराओं से कटती जा रही है।

भारतीय नववर्ष के उत्सव गुलछर्रे उड़ाने के लिए आयोजित नहीं किए जाते, उनका उद्देश्य व्यसनमुक्त जीवन जीने का सकल्प लेना है। युधिष्ठिर महाराज ने कहा था—'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्तिः' अर्थात्-धर्म

आत्म निर्मलता के प्रधान अंग सम्यग्दर्शन की परिपुष्टि के लिए गृहस्थ को तीर्थ यात्रा करनी चाहिए।

को जानते हुए भी उसमें हमारी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को जानते हुए भी उससे हम बच नहीं पाते। हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील और परिग्रह (आवश्यकता से अधिक संचय) पाप है-यह कौन नहीं जानता, पर ऐसा कौन माई का लाल है जो इनसे बचने का यत्न करता है। पश्चिम के अंधानुकरण का आज यह नतीजा देखने में आ रहा है कि जिस कार्य के लिए निषेध किया जाता है, हम अदल-बदलकर वही कार्य करने लगते हैं। जिस दीवाल पर यह इबारत लिखी हो कि यहाँ थूकना मना है, उसी दीवाल पर पान की पीकों के धब्बे सबसे ज्यादा देखे जाते हैं। शायद इसीलिए आचार्य वादीभसिंह को लिखना पड़ा-'हेये स्वयं सती बुद्धिः, यत्नेनाप्यसती शुभे' अर्थात्-जो हेय या छोड़ने योग्य है, उसे यह जीव सहज रूप से ग्रहण कर लेता है, किन्तु जो शुभ या ग्रहण करने योग्य है, उसे यह स्वीकार नहीं कर पाता। गाली देना बिना सिखाए हम सीख जाते हैं, किन्तु भगवान की स्तुति हमे सिखाने पर भी याद नहीं होती। इस स्थिति को बदलना चाहिए और यह बदलेगी तभी, जब हम भारतीय मूल्यों को अपनाएँगे।

नव संवत्सर पर हम यह मंगल कामना करते हैः—

शिवमस्तु सर्व जगतां, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, तिष्ठतु जिनशासनं सुचिरम् ॥

(जैन गजट/1 अप्रेल 1966)

□

महावीर-जयन्ती

समय-आज से छव्वीस सौ वर्ष पूर्व की चैत्रशुक्ला त्रयोदशी। कुण्डलपुर में होनहार तीर्थंकर बालक वर्द्धमान का जन्म। सारे विश्व में खुशियों की लहर। हिंसा की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों से पीड़ित जनता में नई आशाओं का संचार। दरिद्रता से त्राण।

बालक वर्द्धमान का जन्म-दिवस हमेशा-हमेशा के लिए त्यौहार बन गया। हर वर्ष हर जगह लोग इस दिन को बडी उमग से मनाते हैं।

वीर-जन्म के इस मनोहारी प्रसंग का चित्रण कवि "बुध महाचन्द्र" ने बहुत ही सुन्दर शब्दों मे किया हैः—

"सिद्धारथ राजा दरबारै बटत बधाई रंगभरी हो। टेक।
त्रिशलादेवी नैं सुत जायो वर्द्धमान जिनराज बरी हो,
कुण्डलपुर में घर-घर-द्वारे होय रही आनन्द घरी हो ॥1॥
रतन की वर्षा को होते पन्द्रह मास भए सगरी हो,
आज गगन-दिश निरमल दीखत पुष्पवृष्टि गंधोद झरी हो ॥2॥
जन्मन जिनके जग सुख पाया दूरि गए सब दुःख टरी हो,
अन्तरमुहूर्त नारकी सुखिया ऐसो अतिशय जन्म धरी हो ॥ 3 ॥
दान देय नृप ने बहुतेरो जाचिक जन-मन हर्ष करी हो,
ऐसे वीर जिनेश्वर चरणों बुध महाचन्द्र जु सीस धरी हो ॥4॥

अर्थ—महाराजा सिद्धार्थ के दरबार में आज रंगभरी बधाई बंट रही है। त्रिशलादेवी ने पुत्र को जन्म दिया है। यह पुत्र

यह नादान मनुष्य भले ही पुद्गलों से प्रेम करता रहे किन्तु पुद्गलों को तो मनुष्यों से घोर घृणा है।

होनहार जिनेन्द्र "वर्द्धमान" है। कुण्डलपुर में घर-घर और द्वार-द्वार पर आनन्द छाया हुआ है। रत्नों की वर्षा होते हुए पन्द्रह महीने हो गए हैं। आज आकाश और दिशाएं निर्मल दिखाई दे रहीं है, पुष्प वृष्टि हो रही है और गन्धोदक की झड़ी लगी हुई है। उनके जन्म से संसार ने सुख पाया और लोगों के सारे दुःख दूर होकर टल गए हैं। उनके जन्मातिशय के बारे में क्या कहा जाए, कुछ क्षणों के लिए सभी नारकियों ने भी सुख का अनुभव किया है। राजा सिद्धार्थ ने याचिकों को प्रचुर दान देकर जन-मन को हर्षित कर दिया। ऐसे वीर जिनेश्वर के चरणों में "बुध महाचन्द्र" अपना शीश झुकाकर उनकी वन्दना करते है।

एक कहावत है कि "होनहार विरवान के होत चीकने पात" अथवा "ललना के लक्षण पलना में दिख जाते हैं।" बालक महावीर के जन्म के साथ ही जो घटनाएं घटीं, उनसे उनकी भवितव्यता और भविष्य के संकेत जनता को मिलने लगे थे। हम चाहें तो इन प्रसंगों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

रत्न-वृष्टि : भगवान के माता के गर्भ में आने से छह माह पूर्व से ही रत्न-वृष्टि होने लगी थी। प्रतिदिन प्रभात, मध्यान्ह, सांयकाल एवं मध्यरात्रि में साढे तीन-तीन करोड़ रत्न बरसते थे। इससे लोगों की दरिद्रता दूर हो गई। सब सुखी हो गए।

ऐसा होना असम्भव नहीं है। जब किसी के जीवन में लगातार मुसीबतें-ही-मुसीबतें आती हैं तो लोग पूछने लगते है कि जब तुम माता के पेट में थे, तब क्या धरती पर पथरा (ओले) पड़े थे। यदि पाप कर्म के उदय में ओले पड़ सकते हैं तो लोकोत्तम तीर्थंकर कर्मप्रकृति के उदय में रत्न बरसना भी सम्भव है। महावीर का जीव स्वर्ग से आने वाला था। छह माह पूर्व देवताओं की गले की माला मुरझाने लगती है। उससे यह सबको ज्ञात हो जाता है कि इस जीव की आयु समाप्त होने वाली है। यद्यपि जिस देव का जीव तीर्थंकर होने वाला है, उसकी माला नहीं मुरझाती किन्तु छह माह पूर्व अन्य देवो की तरह आयु-बंध तो उसका भी होता ही है। देवताओं को अवधिज्ञान तो होता ही है। उससे उन्होंने यह भी जान लिया होगा कि हमारे इस साथी का जन्म अब कुण्डलपुर में होने वाला है। हो सकता है कि उसके जन्म से पूर्व उन्होंने छह माह पूर्व से वहाँ रत्नवृष्टि करना शुरू कर दिया हो। जिस जीव को जहां रहना होता है, वहाँ का वातावरण यदि अच्छा नही हुआ तो वह जीव सुखी नहीं रह सकता। जहा चारों ओर हाहाकार मचा हो, पड़ौसी चीख-पुकार कर रहे हों, वहां भला कौन चैन से रह सकता है! बालक महावीर के पूर्व भव के साथियों (देवताओं) ने यही सब सोचकर स्नेहवश कुण्डलपुर में वातावरण को सुखमय बना दिया था।

हम जन्म-पूर्व की घटना से यह सीख ग्रहण कर सकते है कि हमें अपने आसपास रहने वालों को स्वयं तो कष्ट देना ही नहीं चाहिए, बल्कि यदि दूसरा कष्ट दे रहा हो तो उसे दूर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। सबके सुख में अपना सुख मानने वाले ही महावीर बन सकते हैं। "**क्षेमं सर्वप्रजानाम्**" की कल्याण-कामना के पीछे यही रहस्य छिपा हुआ है।

शुभ स्वप्न-दर्शन : भगवान का जीव जब त्रिशला माता के गर्भ में आया तो उसने शुभ सोलह सपने देखे। हर तीर्थंकर की माता ऐसे स्वप्न देखती है। क्या सभी माताएं ऐसे सपने नहीं देख सकती? क्या सपने देखना हमारे हाथ में नहीं है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज कहा करते थे–"**मनी बसे, स्वप्ने दिसे**" अर्थात् जैसे मन में विचार होते हैं, वैसे ही स्वप्न दिखाई देते हैं। बुरे विचार रखने वालों को बुरे और अच्छे विचार रखने वालों को अच्छे स्वप्न दिखाई देते हैं। आप या हम टी०वी० पर अश्लील दृश्य देखकर सोएं या फूहड़ श्रृंगार से भरी कहानी पढ़कर सोएं अथवा किसी से लड़-झगड़कर सोएं तो फिर आपको या हमको अच्छे सपने कैसे दिखाई पड़ सकते हैं।

गर्भ में आने से पहले ही देवियां माता की सेवा में रहने लगती हैं और वे दिन-रात उनका मन बहलाती हैं। उनसे तरह-तरह के आध्यात्मिक प्रश्न करती हैं। माता त्रिशला भी उनका बहुत ही सुन्दर, सटीक और अकाट्य उत्तर देती हैं। जिसके गर्भ में तीर्थंकर बालक होता है, उसकी बुद्धि विशुद्ध हो जाती है। यह ठीक ऐसे ही होता है, जैसे टीले के नीचे

धर्म के लिए अर्पण किया हुआ द्रव्य तो पुण्य की खान है।

भगवान की मूर्ति होने पर उसके ऊपर खड़ी गाय के थनों से आपोंआप दूध झरने लगता है या जिस मिट्टी के नीचे राजा विक्रमादित्य का सिंहासन दबा हुआ था, उस मिट्टी के ढेर पर बैठकर अनपढ़ ग्वाला भी अच्छी ज्ञान-ध्यान और न्याय-नीति की बातें करने लगता था।

गर्भ में तीर्थंकर-सरीखा बालक और उसके जन्म से पहले माता का सारा समय ज्ञान-वार्ता में बीतना ये दोनों ऐसे कारण हैं, जिनसे आगे चलकर वर्द्धमान में महावीरत्व प्रकट हुआ और वह जन-जन के आराध्य बन गए। शास्त्रों में गर्भशोधन-संस्कार की चर्चा के पीछे गहरा रहस्य निहित है। जब अभिमन्यु गर्भ में थे, तब अर्जुन ने उनकी माता को चक्रव्यूह भेदन का तरीका बताया था, किन्तु जब चक्रव्यूह से निकलने की विधि बता रहे थे, तब उनकी माता सो गई थी। परिणाम क्या हुआ, महाभारत का यह प्रसंग आप जानते ही हैं।

माता के स्वप्न-दर्शन की घटना से हम क्या सीखे, शायद अब इसे विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है।

अप्रतिम मुख-सौन्दर्य : नवजात बालक वर्द्धमान की सुन्दर मुख-छवि को देखकर शची चकित रह गई। बालक के स्पर्श से उसे लगा कि जैसे त्रिलोक की विभूति ही उसे मिल गई हो। इन्द्र ने जब पहली बार बालक को देखा तो देखता ही रह गया। दो आँखों से देखने पर जब तृप्ति नहीं मिली तो उसने विक्रिया से हजार आँखें बनाईं। "वीरायन" महाकाव्य के रचयिता श्री रघुवीरशरण मित्र ने तो एक अद्भुत कल्पना की है। एक दासी बालक को नहलाने के बाद स्वच्छ वस्त्र से उसका शरीर पोंछ रही थी, किन्तु बाल तीर्थंकर के कपोल पर पड़ी एक बूँद सूखने में नही आ रही थी। बार-बार तौलिया से पोंछते देखकर इन्द्राणी ने हंसते हुए उससे कहा–

"बार-बार क्यों पोंछती अरे लाल का गाल
पगली यह पानी नहीं, यह कुण्डल की झाल"

असल में दासी के कान में जो कुण्डल थे, उसकी परछाई बालक के गाल पर पड़ रही थी और वह पानी की बूँद-सी दिखाई पड़ती थी। कितना सुन्दर रहा होगा वह बालक! एकदम दर्पण की तरह सुकोमल।

आचार्य मानतुंग कहते हैं कि बाल तीर्थंकर-सरीखा सौन्दर्य अन्य किसी बालक को प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि विधाता (कर्म) ने शान्तरस के समस्त परमाणुओं से उसकी रचना की है। अब ऐसे सुन्दर परमाणु बचे ही नहीं हैं, जिनसे किसी नए अतुलनीय सौन्दर्य की रचना की जा सके।

यह सुन्दरता शुभ नामकर्म के उदय से उन्हें प्राप्त हुई थी। हमें महावीर जयन्ती के अवसर पर यह चिन्तन करना चाहिए कि शुभ नामकर्म के आस्रव में कौन-कौन से कारण जुटाना आवश्यक है।

महावीर जयन्ती राग-रंग का नहीं, आत्मचिन्तन का पर्व है। हमें विचारना यह है कि हम भी कैसे उन विशेषताओं को, जो उनमें थीं, को उपलब्ध हों। ऐसा सोचेंगे तो "जन्मन जिनके जग सुख पाया" की सूची में एक दिन हमारा नाम भी आ जाएगा।

(जैन गजट/14 अप्रेल 1964)

□

श्रुतपंचमी : एक ज्ञान-पर्व

कल्पना करें कि शास्त्र या आगम-ग्रंथ यदि न लिखे गए होते तो क्या होता? यही न कि हम सब अज्ञानान्धकार में भटक रहे होते। हमें लौकिक सुख-सुविधाएं तो प्राप्त होतीं किन्तु ज्ञान सुधारस के स्वाद से वंचित ही रहना पड़ता। ज्ञान के अभाव में किसी को भी धर्म-ज्ञान प्राप्त न होता और धर्म-ज्ञान के अभाव में लोग अपने जीवन को भोगों में गंवा रहे होते और भोगी बने रहकर वे अनन्तकाल तक संसार में ही भटकते रहते। कहा भी है–

आलोकेन बिना लोको मार्गं नालोकते यथा,
विनागमेन धर्मार्थी धर्मध्वानं जनस्तथा।

अर्थात्-जिस प्रकार आलोक के बिना लोग मार्ग नहीं देख सकते, उसी प्रकार आगम के बिना धर्मार्थीजनों को धर्म-मार्ग का ज्ञान नहीं होता।

भला हो आचार्य श्री धरसेनस्वामी का, जिनके मन में तीर्थंकर कथित तत्त्वज्ञान को लिपिबद्ध कराने का प्रशस्त विचार उत्पन्न हुआ। सौभाग्य है यह हमारा कि इसके लिए उन्हें अद्भुत प्रज्ञा-सम्पन्न पुष्पदन्त और भूतवलि सरीखे युगल शिष्य-रत्न मिले, जिन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन शास्त्र रचना या श्रुतावतार का प्रथम महान् कार्य पूर्ण किया। यही तिथि श्रुतपंचमी के रूप में विख्यात है। श्रुतपंचमी को सर्वत्र एक ज्ञान-पर्व के रूप मे मनाया जाता है और मनाया जाना चाहिए।

श्रुतपंचमी के दिन हमें सतत् शास्त्राभ्यास या स्वाध्याय की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए। आचार्यो का उपकार तो देखो कि उन्होंने अपने जीवन भर के अध्ययन/अध्यवसाय को अकथनीय परिश्रम के द्वारा ग्रथ के रूप में हमारे सामने रख दिया और हम है ऐसे विकट आलसी कि उस दिव्य सम्पदा से लाभान्वित होने का भाव ही हमारे मन में नही आता। कितने अभागे हैं हम।

ज्ञानार्जन या स्वाध्याय का महत्व बताते हुए चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने कहा था-"**अकरा अंग चौदा पूर्व महासमुद्र आहे। त्यांचे वर्णन करणारे आज कोंणी केवली नाहीं, श्रुत केवली नाहीं। आत्म्याचा कल्याण करणारी जिनवाणी सरस्वती श्रुतदेवी आहे। त्यां पैकी एक अक्षर ऊँ अक्षर जो धारण करता त्यां जीवा च कल्याण होतो।**" आचार्य श्री ने अपने अन्तिम संदेश में दीर्घ निःश्वासपूर्वक यह भी कहा-"**इतका महिमा जिनवाणी चा आहे पर कोण धारण करत नाहीं।**"

आचार्य कुन्दकुन्द के शब्दों में '**सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं**' अर्थात् जिनसूत्र या श्रुत सम्यग्दर्शन का निमित्त है। सम्यग्दर्शन के बिना संसार के बंधन से यह जीव नहीं छूट सकता। इसलिए हमें शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं करना चाहिए। कहा गया है–

भव्या नरा ज्ञानरथाधिरूढ़ा व्रजन्ति शीघ्रं शिवपत्तनं च

शास्त्र-परीक्षा : आज जैन समाज में शास्त्र के नाम पर ग्रन्थों का ढ़ेर लग गया है। कुछ लोगों ने अपना मन्तव्य देकर जिनवाणी को जनवाणी बना दिया है। कौटिल्य ने '**अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या**' की जो बात कही थी, वह आज की स्थिति में सत्य प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में स्वाध्याय के लिए शास्त्र का अध्ययन करते समय एक कसौटी सामने रखनी होगी। इस गाथा में उस कसौटी की ओर संकेत है–

न जाने कब आयेगा वह शुभ दिन जब हमारे दिगम्बर जैन समाज में पारस्परिक ईर्ष्या और अहं से उत्पन्न कलह का पूरी तरह खात्मा होगा।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षण-च्छेदन ताप-ताड़नैः
तथैव शास्त्रं विदुषा परीक्ष्यते, श्रुतेरशीलन तपो-दयागुणैः

जिस प्रकार स्वर्ण की परीक्षा उसे घिसकर, काटकर, तपाकर और पीटकर की जाती है, उसी प्रकार शास्त्र में भी ये चार बातें देखनी चाहिए:–

(1) जिसमें प्रत्यक्ष या बुद्धि से अविरुद्ध (अबाधित) कथन हो।
(2) जिसमें सदाचार को पूर्ण प्रतिष्ठा दी गई हो।
(3) जिसमें ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के लिए तप का विधान हो। तथा–
(4) जिसमें अहिंसा सम्मत सन्मार्ग का निरूपण हो।

एकान्तवादियों द्वारा रचित साहित्य में अनेक विसगतियां है। इस परख के अवलम्बन से हम अपने को उससे बचा सकेंगे।

श्रुतपंचमी के ज्ञान-पर्व को मनाने के लिए हमें निम्न सुझावों पर ध्यान देना चाहिए–

- इस दिन जगह-जगह जिनवाणी-रथ निकाले जाएं।
- हर मंदिर में पुस्तकालय स्थापित हों और उनके रखरखाव पर समुचित ध्यान दिया जाए।
- हर मंदिर में साहित्य-विक्रय-केन्द्र खोलें तथा दातारों की सहायता से लागत या लागत से भी कम मूल्य पर जैन ग्रन्थ पाठकों को सुलभ कराए।
- श्रुतपंचमी के दिन शास्त्रों के वेस्टन बदले जाएं तथा अलमारियों की सफाई की जाए।
- मंदिरों में जैन पत्र-पत्रिकाएं भी मंगाए, ताकि भक्तों में सामाजिक रुचि का विकास हो।

आशा है, श्रुतपंचमी के ज्ञान-पर्व को उत्साहपूर्वक मनाने का संकल्प जागृत होगा। ध्यान रहे–

'ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण'।

(जैन गजट/21 मई 1968)

□

अपने तीर्थंकरों और आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर जब हम कदम बढ़ायेंगे, तभी हम और हमारा समाज राग-द्वेष के विषमताओं में भटकने से बच सकता है।

वीरशासन दिवस

तीर्थंकर की दिव्यध्वनि, सुनते हैं जो लोग।
उनके जीवन में कभी, रहते शोक न रोग ॥

संसार में जितने भी जीव हैं, सभी सुख चाहते हैं। वह सुख भगवान की वाणी के श्रवण और अनुसरण से मिलता है। इस वाणी को गम्भीर, मधुर, मनोहर, दोषरहित, हितकर, स्पष्ट, इष्टफल-प्रदाता, सर्वभाषात्मक, अनुपम आदि विशेषणों से आगम में उल्लिखित किया गया है। उसका बहुप्रचलित एक नाम **'दिव्य ध्वनि'** भी है। वह दिव्य ध्वनि तब खिरती है, जब चार घातिया कर्मों के क्षय से भगवान की आत्मा में केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

हम सब लोग चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में रह रहे हैं। भगवान महावीर को सन्मति, वीर, अतिवीर और वर्धमान भी कहते हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होंने बारह वर्षों तक कठोर तपश्चरण किया। उनकी वह द्वादशवर्षीय साधना जब सिद्धि की ओर बढ़ रही थी, तक ऋजुकूला नदी के शान्त तट पर वैशाख शुक्ला दशमी को उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई, जैसा कि हम कवि वृन्दावन कृत पूजा में पढ़ते हैं–

शुकल दसैं वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक क्षय करना।
केवल लहि भवि भव-सर तारे, जजौं चरन सुख भरना ॥

केवलज्ञान के प्रकट होते ही उनके ज्ञान में जगत के समस्त पदार्थ दर्पणवत् झलकने लगे। उनके मोह के बन्धन टूट गए। वीतराग दशा प्रकट हो गई। वह जन्म-मरण के चक्र से छूट गए। वे 'जिन' कहलाने लगे, क्योंकि उन्होंने स्वयं को जीत लिया। अब वह 'प्रभु तरण-तारण भव-निवारण भविकमन आनन्दनों', की कोटि में आ गए। जैन शासन ने ज्ञान के विषय में कहा गया है– **'जेणा रागा विरज्जेजा जेण सेएसु रज्जदि, जेण मित्तिं पभाविज्ज तं णाणं जिणसासणे'**

अर्थात्–जिससे राग से विरक्ति, श्रेय की प्राप्ति और मैत्री-भाव की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, उसे ज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान परम ज्ञान है, जो अतुलनीय है।

भगवान वीर वर्धमान को इधर केवलज्ञान हुआ, उधर इन्द्र के आदेश से कुबेर ने समवसरण की रचना की। समवसरण उस भव्य एवं विराट् सभा को कहते हैं, जहाँ बारह प्रकोष्ठों में बैठकर भव्य जीव प्रभु की दिव्यध्वनि का आस्वादन करते हैं। अष्ट प्रतिहार्य, तडाग, बावड़ी, रत्नजटित स्तम्भों आदि से समवसरण की शोभा अवर्णनीय हो जाती है, जैसा कि कहा भी गया हैः– **'समोसरन-सम्पत्ति की कथा, मोपै कही जाय किमि तथा।'**

ऐसी दिव्य सभा में भगवान विराजमान हैं। हजारों श्रोता उनकी दिव्य देशना सुनने को आतुर हैं, किन्तु वाणी मुखरित-गुंजरित नहीं हो रही है। बारह वर्ष की अपनी दीर्घ साधना में तो वह मौनपूर्वक (आकेवलेदयान्मौनी) रहे ही, अब भी वह मौन ही हैं। कारण क्या है?

नियम है कि किसी योग्यतम शिष्य के अभाव में भगवान की देशना नहीं होती, वक्ता को सुनने के लिए श्रोता भी चाहिए। जब वक्ता उत्कृष्ट एवं असाधारण हो, तब श्रोता भी वैसा ही अपेक्षित है। इन्द्र ने उस समय के एक विश्रुत विद्वान इन्द्रभूति गौतम को युक्तिपूर्वक भगवान के चरणों में उपस्थिति किया। वीर प्रभु के दर्शन करते ही गौतम की श्रद्धा जाग उठी, मिथ्यात्व दूर हो गया। उसने महावीर का शिष्यत्व अंगीकार कर लिया। वह महाव्रती साधु बन गया। उसके प्रकर्ष

किसी संयोग या परिस्थिति विशेष में की गई कोई व्यवस्था धर्म का राजमार्ग नहीं बन सकती।

पुण्य का उदय था कि दीक्षा धारण करने के साथ ही उसके चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) प्रकट हुए और तदनन्तर भगवान का मौन भंग हो गया। वीर प्रभु की प्रथम देशना में गौतम गणधर का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। इसीलिए तो रोज पढ़ते हैं-**'मंगलं गौतमो गणी।'**

जिस दिन भगवान की वाणी का प्रकाशन हुआ, वह दिन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का था। हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री सोमठाकुर ने इस घटना को निम्न भावपूर्ण पंक्तियों में गूँथा है:-

'वह युगों की मांग थी जब समय ने तुमको पुकारा,
मास था श्रावण जगत में बह रही थी तिमिर-धारा।
क्यों न होता विश्व आलोकित तुम्हारे ज्योतिरथ से
कृष्ण-पक्षी प्रतिपदा को मौन टूटा था तुम्हारा।'

भगवान के मौन और देशना के बीच छयासठ दिन का अन्तराल रहा। बहुत उत्सुकता और बेचैनी के दिन रहे होंगे वे। लोग चातक की तरह उनके वचनामृत के पिपासु थे। इस अन्तराल के पीछे गणधर एवं काललब्धि का अभाव मुख्य कारण रहा। धवलादि ग्रन्थों में इस प्रसंग पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

भगवान का मौन-भंग और उनके द्वारा कैवल्य-रहस्य का प्रथम उद्घाटन इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना बन गई। सारे समाज को राग-द्वेष के बन्धनों से छूटने, श्रेयोमार्ग पर अपने कदम बढ़ाने और मैत्रीभाव के विस्तार के लिए अद्भुत-अनुपम अवसर उपलब्ध हुआ। पं० दौलतरामजी के शब्द कितने मार्मिक हैं :-

'भवि भागन वश जोगे वशाय। तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय ॥'

हे जिनवर! आपकी दिव्यध्वनि भव्य जीवों के भाग्य और आपके वचनयोग से प्राप्त होती है। उसे सुनकर सारे भ्रमों (संशयों-समस्याओं) का उच्छेद हो जाता है।

जन-जन के इस भाग्योदय की स्मृति में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को सर्वत्र वीर शासन जयन्ती मनाई जाती है। इसी दिन धर्मतीर्थ का प्रवर्तन हुआ। यदि हम सब सच्चे मन से वीर-वाणी को श्रवण-अनुसरण करें तो हमारा भी भाग्योदय हो सकता है। **जयतु वीर शासनम्।**

(जैन गजट / 2 जुलाई 85)

□

बड़ों का आशीर्वाद ही तो सफल पुरुषों की पूंजी है।

रक्षाबन्धन

बात बहुत पुरानी है। मल्लिनाथ तीर्थंकर के समय की है। हस्तिनापुर में मुनिराज अकम्पनाचार्य अपने सात सौ शिष्यों के साथ पधारे। वहां बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रहलाद नामक मुनि-द्वेषियों ने उन पर घोर उपसर्ग किया। जहां मुनि-संघ ठहरा हुआ था, उस स्थान के चारों ओर उन्होंने यज्ञकुण्ड बनवाया और अग्नि जलाकर 'नरमेध' करना प्रारम्भ कर दिया। समस्त मुनियों ने जीवन पर संकट आया जान आहार-पानी का त्याग कर दिया। उस समय मिथिला नगरी में एक कोई श्रुतसागर महाराज वर्षायोग कर रहे थे। रात्रि मे कांपते हुए श्रवण नक्षत्र को देखकर उन्हें इस अनिष्टकारी घटना का अनुमान हुआ और उनके मुख से 'हा' शब्द निकल पड़ा। उनके शिष्य क्षुल्लक पुष्पदन्त ने गुरु महाराज से इसका कारण पूछा। सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर उनकी आज्ञा से उसने मुनिराज विष्णुकुमार के पास प्रयाण किया, जिन्हें विक्रिया ऋद्धि की प्राप्ति हो चुकी थी। क्षुल्लक पुष्पदन्त से करुण घटना की बात सुनकर उनका हृदय करुणा से अप्लावित हो उठा। अपनी ऋद्धि की परीक्षा कर उन्होंने 'वामन' का रूप बनाया और जा पहुँचे बलि के पास, तीन पग भूमि का दान मांगने के लिए। फिर क्या हुआ, उसकी कथा हर आबाल-वृद्ध जैन भाई को ज्ञात है। मुनियों पर आई विपत्ति दूर हुई, इसलिए यह दिन 'रक्षाबन्धन' कहलाया। इसे वात्सल्य पूर्णिमा भी कहते हैं।

जैनधर्म में वात्सल्य की बडी महिमा गाई गई। नीतिज्ञों ने भी प्रेम पर बड़ा जोर दिया है। प्रेम-रहित जीवन को सुगन्धहीन पुष्प की तरह निःसार बताया गया। कुरल काव्य में कहा है–

अस्थिहीनं यथा कीटं सूर्यो दहति तेजसा।
तथा दहति धर्मश्च प्रेम-शून्यं नृकीटकम् ॥

अर्थात्–अस्थिहीन कीड़े को सूर्य जिस तरह जला देता है, उसी तरह धर्मशीलता उस मनुष्य को जला देती है, जो प्रेम-शून्य है। प्रेम या वात्सल्य जीवन का रस है। अष्टांग सम्यग्दर्शन का ही यह एक अंश है। आज के इस रक्षा-पर्व पर हमें यही विचारना है कि अपनी हृदय-वल्लरी पर इस प्रेम की बेल को हम कैसे पल्लवित होने दे।

वात्सल्य या प्रेम का उद्रेक करुणा से होता है। जहां करुणा नहीं, वहां प्रेम भी नहीं। वह करुणा ही तो थी, जो श्रुतसागर महाराज के मुख से 'हा' शब्द के रूप में प्रकट हुई। करुणा के वशीभूत होकर ही क्षुल्लकजी विष्णुकुमार के पास गए और करुणा ने ही विष्णुकुमार मुनि को उपसर्ग-निवारण के लिए प्रयत्नशील होने को प्रेरित किया। रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भींगा हुआ होना चाहिए। अपनी करुणा रूपी बहन की रक्षा ही रक्षाबन्धन का लक्ष्य है। प्रेम और करुणा के अभाव में राखी और दक्षिणा का आदान-प्रदान महत्त्वहीन है। राखी के उस पतले से धागे का क्या मूल्य है? वह किसी भी समय एक झटके मे टूट जाएगा। गन्दा होने पर आप ही उसे तोड़कर फेंक देंगे। वह तो एक प्रतीक है। यह भावनाओं का केन्द्र है। उसके साथ सच्चे प्रेम का गठबन्धन है। रुई के धागे के साथ जो स्नेह का धागा बांधा जाता है, वह नही टूटना चाहिए। इस अटूट प्रेम-बन्धन का नाम ही रक्षाबन्धन है।

जब चित्त में करुणा के स्रोत खुलते हैं, तभी कोई जीव अपनी या दूसरों की रक्षा के लिए प्रवृत होता है। अपनी या दूसरों की रक्षा में भी स्वरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वरक्षा ही वास्तविक सुरक्षा है। जो स्वयं सुरक्षित नहीं है, वह दूसरों की रक्षा भी नहीं कर सकता। कहा भी है **'छिन्नहस्तो विहस्तस्य कथं बध्नातु कंकणम्'** अर्थात् जिसका हाथ कटा हुआ है, वह किसी बिना हाथवाले को मंगलसूत्र या राखी कैसे बांध सकता है? भावावर्त में स्वयं चक्कर खाने वाला क्या किसी दूसरे डूबते हुए को किनारे लगा सकता है?जब हम स्वयं समर्थ बनेंगे, तभी दूसरों के संकट टालने में सफल हो सकते हैं। आज जो आकण्ठ भोगों में डूबे हुए हैं, विषय-कषायों से जो बच नहीं पा रहे हैं, ऐसे लोग साधु-संस्था की रक्षा का दम भर रहे हैं। यह एक विडम्बना ही है।

धर्म मार्ग पर आस्था बनाये रखने में मन्दिरों का योगदान अप्रतिम है।

पहले हम आत्मरक्षा करें– 'आदहिदं कादव्वं।' आत्महित हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। यह रक्षाबन्धन पर्व इसी का स्मरण कराने आया है। इहलोक, परलोक, अरक्षा, मरण, वेदना आदि के भयों से जो उद्वेग को प्राप्त है, वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता। आचार्यों ने कहा है कि पर पदार्थों में आत्मीय बुद्धि के बिना भय नहीं होता। पर्यायों में मोह करने वाले मिथ्यादृष्टि को भय होता है। मात्र समयसार के पढ़ने से यह पर्यायदृष्टि दूर होने वाली नहीं है। इसके लिए आत्मानुशासन आवश्यक है। रक्षाबन्धन में 'रक्षा' शब्द 'आत्मरक्षा' की ओर तथा 'बन्धन' शब्द 'नियमन' 'अनुशासन' या संयम की ओर इंगित कर रहा है। अतः इस पर्व पर हम अपने व्रतों की रक्षा का संकल्प लें। व्रतों की रक्षा में ही राष्ट्र, समाज और देश की रक्षा निहित है। आत्मरक्षा और विश्वरक्षा के लिए व्रत ही सबसे बड़ा कवच है। व्रत सम्यग्दर्शन रूपी दुर्ग में प्रवेश करने की कुंजी है। व्रती ही अभय या निर्भय हो सकता है। ठीक है कि व्रत भी एक बन्धन है, लेकिन यह बन्धन परपदार्थों की आसक्ति को छुडाने वाला बन्धन है। जिस प्रकार कुएं में पड़े हुए व्यक्ति को बाहर निकालने के लिए रस्सी का बन्धन आवश्यक है, उसी प्रकार विषय-कषायों के गहन गर्त में पड़े हुए जीवों को उबारने के लिए यह व्रत या संयम का बन्धन है। हमारी कलाई पर बंधी हुई राखी भी एक बन्धन है और वह आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के शब्दों में अपने उत्तम गुणों की रक्षा और अपने मन-वचन-काय को संयम और नैतिकता के बन्धनों मे नियमित रखने के लिए प्रदत्त प्रतिज्ञा-वाक्य है।

जिनका सारा समय आज व्रतियों में दोष ढूँढने और जोर-शोर से उसका ढिंढोरा पीटने में वीत रहा है, वे न अपनी रक्षा कर सकते है और न समाज की। मुनियों में छिद्रों का अन्वेषण करने वाले आत्मान्वेषण भी करें। भाषण से ही नहीं, उदाहरण से अपनी बात कहें। स्वयं व्रत-संयम की राखी अपने आत्मा रूपी मणिबन्ध पर बांधे और बँधवाए। शिकायतों का महल स्वयमेव ढह जाएगा। कर्त्तव्य यह मुनियों का भी है कि वे भी इस रक्षा-पर्व पर आत्मावलोकन करे और अपने शिथिलाचार से अपनी रक्षा का संकल्प ग्रहण करें। मुनि यदि श्रावकों में दोष ढूँढता रहेगा और श्रावक मुनियों में तो दोनों ही डूबेगे। परदोष-दर्शन से आत्मदर्शन नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त है।

किसी व्यक्ति के पास एक लाठी हो किन्तु यह अन्दर से घुनी हो और बाहर से आकर्षक रंगों से पुती हो तो किसी के आक्रमण करने पर वह उस व्यक्ति की रक्षा में सहायक हो सकती है क्या? वह तो पहली चोट में टूट जाएगी, टुकडे-टुकडे हो जाएगी। उस व्यक्ति का जीवन भी घुनी लाठी की तरह है, जो बाहर से वैभव-सम्पन्न हो, लच्छेदार और लुभावनी बातों से चमकदार दिखता हो, किन्तु अन्दर से भोगेच्छाओं और कषायों ने जिसे खोखला कर रखा हो। इस रक्षा-पर्व पर एक खोखली जिन्दगी जीने से हम विराम लें तथा करुणा, प्रेम, सद्भावना, वात्सल्य आदि गुणों से उसे समृद्ध और सम्पन्न बनावें, इसी में इस पर्व की सार्थकता है। यह ध्यान रहे कि अपने जीवन को संवारने -सुधारने की बात है, दूसरों के जीवन को सँवारने-सुधारने की नहीं। पराए कपड़ों को धोने वाला तो धोबी होता है। हमें तो अपनी ही आत्मा पर लगी कालिख को धोना है।

आचार्य अकलंकदेव ने कहा है–**'जिन-प्रणीत धर्मामृते नित्यानुरागता वात्सल्यम्'** अर्थात् धर्मरूप अमृत के प्रति नित्य अनुराग रखना वात्सल्य है। यह धर्म क्या है? स्वात्मावलोकन ही धर्म है। अच्छे-अच्छे कपड़े पहन लेना अथवा षट्रस भोजन या स्वादिष्ट पकवान बनाकर खा लेना पर्व का उद्देश्य नहीं है। आत्मा के साथ निकटता स्थापित करना और उसमें रम जाना ही पर्व का उद्देश्य नहीं है। आत्मा के साथ निकटता स्थापित करना और उसमें रम जाना ही पर्व का उद्देश्य है। समस्त त्यागी-व्रती, मुनि-आर्यिकाएं, ऐलक-क्षुल्लक आदि आत्म-रक्षा और आत्मदर्शन के मार्ग पर चल रहे हैं। उनकी सेवा-वैयावृत्ति हम करें तथा उन सरीखें बनने की भावना भावें-इस प्रकार व्यवहार और निश्चय से हम रक्षा पर्व मनाएं। मुनिराज धर्म का सम्यक् प्रकार पालन करने वाले, रत्नत्रय से विशुद्ध तथा लोगों को भवार्णव से पार लगाने वाले हैं, अतः उनके प्रति अवज्ञा या अनादार का भाव तो त्रिकाल में भी हमारे मन में नहीं आना चाहिए। कहा गया है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात् आप जब अपने धर्म की रक्षा करेंगे तो आपकी भी रक्षा होगी। धर्म आत्मावलोकन की प्रक्रिया को कहते हैं, जिस मार्ग पर चलने से यह प्रक्रिया सध सकती हो, उस पर चलने वालों के प्रति दया, करुणा और वात्सल्य रखना यही गृहस्थ का धर्म है।

मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊँगा -महात्मा गाँधी

हस्तिनापुर में जब सात सौ मुनियों का विशाल संघ आया था, तब उसके दर्शनार्थ उल्लसित जन समूह उमड़ पड़ा था। मुनि-द्वेषी मन्त्रियों के द्वारा रोके जाने पर भी राजा पद्मराय ने उनको यह कहकर दुत्कार दिया था कि **'अमृत देख अमर न होय, विष देखे से मरे न कोय'**। वन्दना करने से पूर्व मुनियों की परीक्षा करने का भाव भी किसी के मन में नहीं आया था। परीक्षा तो अपनी ही की जानी चाहिए। हम अपने को तौलें, परखें और जाँचें। दूसरों में जो कमियां दिखें, वैसी कहीं हममें भी तो नहीं हैं-इसका विचार करें। उन कमियों को अपने में से दूर करें, तभी हमारी रक्षा होगी। स्व-वात्सल्य से वात्सल्य पूर्णिमा की महिमा बढ़ाने का संकल्प ही स्व-रक्षा और सर्व-रक्षा का पथ प्रशस्त कर सकेगा।

(जैन गजट / 23 अगस्त, 83)

□

विकारों से मुक्ति का पर्व–पर्युषण

सुख कहीं बाहर नहीं, हमारी आत्मा में ही है। अज्ञानी उसे व्यर्थ ही बाहर (मन्दिर-मस्जिद-मठ अथवा पन्थ-महन्त आदि में) खोजता फिरता है। सन्त कबीर ने कहा भी है–

'ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सके तो जाग ॥'

यह आत्म-जागरण ही धर्म है। इस पर्व में इसी धर्म की आराधना की जाती है। यह व्यक्ति-पूजा का नहीं, गुण-पूजा का पर्व है। यह पर्व जीवमात्र को क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, असंयम आदि विकारी भावों से मुक्त होने की प्रेरणा देता है।

हमारे विकार या खोटे भाव ही हमारे दुःख का कारण हैं और ये भाव वाह्य पदार्थों या व्यक्तियों के संसर्ग के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। आसक्ति-रहित आत्मावलोकन करने वाला प्राणी ही इनसे बच पाता है। इस पर्व में इसी आत्म-दर्शन की साधना की जाती है।

यह एक ऐसा अभिनव पर्व है कि जिसमें किसी अवतार, युग पुरुष या व्यक्ति विशेष का गुणगान न करके अपने ही भीतर छिपे सद्गुणों को विकसित करने का पुरुषार्थ किया जाता है। अपने व्यक्तित्व को समुन्नत बनाने का यह पर्व एक सर्वोत्तम माध्यम है।

जैनधर्म में विकारों से मुक्ति के दस उपाय बताए गए हैं। उन्हें धर्म के दस लक्षण भी कहा जाता है। उन्हीं दस लक्षणों की चर्चा-वार्ता की प्रधानता होने से इस पर्व को 'दसलक्षण पर्व' कहा जाता है। उत्तम क्षमादि इन दस लक्षणों को अपने आचरण में उतारने के लिए जो साधना करता है, वह एक दिन निर्विकार हो जाता है। यह हम सबका कर्त्तव्य है कि विकारों से बचते हुए हम धर्म-मार्ग पर चलें।

क्रोध पर अंकुश लगाएं : आज का मनुष्य अपने आवेगों से परेशान है। वह हर समय तनाव में जी रहा है। सास

आदमी पढ़ लिख कर उतना नहीं सीख पाता, जितना घूम-फिर कर सीखता है।

और बहू, ननद और भावज, दिवरानी और जिठानी तथा भाई और भाई के बीच की अनबन या कलह आज घर-घर की कहानी बन गई है। पूरे देश के लोग जाति, भाषा और समुदाय के नाम पर झगड़ रहे हैं। पंजाब विद्वेष की आग से सुलग रहा है। कश्मीर और आसाम भी अशान्त है। यह सब आम आदमी के मन में रचे-पचे क्रोध का ही दुष्परिणाम है। क्रोध की दिनों-दिन बढ़ती इस लहर पर अंकुश लगा कर ही हम पारिवारिक और सामाजिक शांति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

क्रोधी जीव दूसरों से घृणा करने लगता है तथा अपना भला-बुरा नहीं सोच पाता। उसकी बुद्धि और विचार-शक्ति कुंठित हो जाती है। उबलते हुए पानी में जिस तरह हम अपनी परछाईं नहीं देख सकते, उसी तरह क्रोध के आवेश में स्वहित-चिन्तन नहीं हो सकता। सहनशीलता, समता और क्षमा के बीज क्रोध के अभाव में ही पल्लवित और पुष्पित होते हैं।

क्रोध को जीतने के अनेक उपाय हैं। जब क्रोध आए तो तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त करने से बचना चाहिए। समय का अन्तराल क्रोध के वेग को कम कर देता है। पूरी और गहरी श्वांस लेने से भी क्रोध पर विजय पाई जा सकती है।

अकड़ छोड़े : विनम्र बनें : दया धर्म का मूल है। दया-भाव से विनय-गुण का विकास होता है और विनय से ही किसी के व्यक्तित्व की शोभा होती या बढ़ती है।

सामान्यतया किसी महापुरुष के सामने झुकने को विनय माना जाता है किन्तु सच्ची विनय तो उनकी आज्ञा का पालन करना है। कोई बेटा अपने बाप के पैर तो रोज दाबे, किन्तु उन्हें वक्त पर न तो भोजन दे और न उनका कहना ही माने तो उसे सपूत नहीं कहा जा सकता। तीर्थंकरों द्वारा बताए मार्ग पर चलना ही वास्तविक विनय है।

आज हमारे स्कूल और कालिजों के छात्र रेलों और बसों के शीशे तोड़ रहे हैं, ईट-पत्थर फेंककर राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने तथा धौंस-धमकी से परीक्षा में नकल करने में संलग्न हैं। यह तो हद दर्जे की अविनय है। **'विद्या विनयेन शोभते।'** विनय-शून्य आज की हमारी शिक्षा पद्धति भारतीय मूल्यों का उपहास बन कर रह गई हैं। इसे बदलना होगा।

पैसा, पद, प्रभुता, ज्ञान आदि को पाकर घमण्ड नहीं करना चाहिए। आज उच्च पदों पर बैठे हुए लोग कल्पित बड़प्पन के नशे में चूर हैं। ये अपने सामने दूसरों को तुच्छ समझते हैं तथा दूसरों को पीछे धक्केल कर स्वयं आगे बढ़ने में विश्वास रखते हैं। इस प्रवृत्ति में बदलाव विनय-गुण या मार्दव धर्म को अपनाने से ही सम्भव है। मृदु परिणामी व्यक्ति कभी किसी का तिरस्कार नहीं करता और यह सृष्टि का नियम है कि यहाँ दूसरों को आदर देने वाला ही स्वयं आदर का पात्र बन सकता है।

कथनी और करनी एक हो : महापुरुष जो कहते हैं, वही करते हैं, किन्तु कुटिल पुरुषों की कथनी और करनी में अन्तर होता है। यह मायाचार है। शास्त्रों में इसे त्याज्य बताया गया है।

आज सर्वत्र मायाचार या छल-कपट का साम्राज्य है। किसी भी शहर की टूटी-फूटी सड़कें, ठेके पर बनी नई किन्तु जर्जर इमारतें, ऊपरी आमदनी (रिश्वत), खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट, करों की चोरी, दो तरह के बहीखाते आदि हमारे जीवन में घुले-मिले मायाचार के जीते-जागते नमूने हैं। हमारे इस छल-कपट से परिवार, समाज और देश में अनाचार-भ्रष्टाचार पनप रहा है।

धर्म का क्षेत्र भी मायाचार से अछूता नहीं है। हम मन्दिर में तो अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह की चर्चा करते हैं किन्तु मन्दिर से बाहर उत्पीड़न, असत्य और अन्यायपूर्वक दौलत कमाने के फेर में पड़े रहते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है–

'सत्य-अहिंसा दया-प्रेम से, अपना बस इतना ही नाता है।
दीवालों पर लिख लेते हैं, दीवाली पर पुत जाता है ॥

मनुष्य में [illegible] की प्रवृत्ति इतनी जोरदार है कि [illegible] की भावनाओं की परवाह ही नहीं करने देती।

हमारा मन्दिर का धर्म अलग है और बाजार का धर्म अलग, लेकिन ध्यान रहे कि ऐसी दुहरी जिन्दगी जीना धर्म नही हो सकता। धर्म तो वहाँ होता है, जहाँ ऋजुता (सरलता) होती है। आर्जव धर्म का अर्थ है—मन, वाणी और कर्म की पवित्रता और यह पवित्रता ही किसी व्यक्ति को महान् बनाती है।

तृष्णा या लोभ से बचें : क्रोध, मान, माया, आदि कषायो या पापों की उत्पत्ति लोभ से होती है। जर, जमीन और जोरू के लोभ से लडाइयाँ तथा जीभ के लोभ (चटोरेपन) से बीमारियॉ होती हैं। दहेज जैसी कुरीतियों अथवा रिश्वत जैसे भ्रष्टाचार के पनपने का कारण भी लोभ ही है। आचार्यो ने इसीलिए लोभ को पाप का बाप कहा है।

लोभ, तृष्णा, हवस, कामनाएं आदि पर्यायवाची शब्द हैं। लोगों की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता। आदमी बूढ़ा हो जाता है, किन्तु तृष्णा कभी बूढ़ी नही होती। तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।

गंगा-स्नान आदि से शरीर तो स्वच्छ हो सकता है, किन्तु आत्मा की पवित्रता के लिए तो लोभ का त्याग ही आवश्यक हे। लोभ व्यक्तित्व को बौना बना देता है, क्योंकि लोभी व्यक्ति के दया, करुणा, सहानुभूति, संवेदना आदि गुण मर जाते हैं। जब कहीं कोई दुर्घटना होती है तो कुछ लोग घायलों की सेवा करते है किन्तु कुछ लोभी प्रवृत्ति के दुष्ट व्यक्ति माल पार करने के चक्कर में रहते हैं। लोभ छोडने से ही आत्मा में उत्तम शौच धर्म प्रकट होता है।

वाणी का सदुपयोग करें : धर्म के दस लक्षणों में एक उत्तम सत्य भी है। सत्य का अर्थ है कि जो अजन्मा और अमर्त्य है, उसकी खोज करना। व्यवहार में वाणी के सुदपयोग को सत्य कहते हैं।

बोलने की शक्ति का मिलना किसी वरदान से कम नहीं है। यह शक्ति सम्पूर्ण जीव जगत मे केवल मनुष्य को प्राप्त है। अपनी वाक् शक्ति के कारण ही मनुष्य समस्त जीवधारियों मे सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। ऐसी दुर्लभ वाणी का सदुपयोग करने वाला ही धर्मात्मा कहला सकता है।

हित, मित और प्रिय वचन बोलना ही वाणी का सदुपयोग है। कटु, कर्कश, कठोर एवं निन्दापरक वचन वाण की तरह होते हैं, जो सुनने वाले के हृदय में घाव कर देते हैं। अन्धो के पुत्र अधे होते हैं'—द्रोपदी के इन मर्मभेदी वचनों का परिणाम महाभारत के युद्ध के रूप मे सामने आया। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि पर-पीड़ाकारक एक शब्द के प्रयोग से भी सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

सत्य की पहचान शब्दों से नहीं, अभिप्राय से करनी चाहिए। यदि अभिप्राय में खोट न हो तो बोला गया असत्य वचन भी शास्त्रों में सत्य माना गया है, किन्तु ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध या लोभवश कहे गए शब्द असत्य की कोटि मे गिने जाते है। हमेशा नम्रतासूचक एव अवसरानुकूल वाणी बोलनी चाहिए। मीठे और कोमल शब्द अमृत के समान तथा कडुए और कठोर शब्द विष तुल्य हैं।

संयम जीवन का प्राण है : संयम जीवन का सार तत्त्व है। जिस तरह मूर्ति के बिना मन्दिर, सुगन्ध के बिना पुष्प और पानी के बिना कुएं का कोई महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार संयम या सदाचार से शून्य जीवन निरर्थक है। संयम जीवन को भार स्वरूप होने से बचाता तथा व्यक्तित्व को परिष्कृत करता है।

यह मानव शरीर एक ऐसे रथ की तरह है, जिसमें इन्द्रियो रूपी पाँच घोड़े जुते हुए हैं। मन उसका सारथी है। यदि वह संयमित और विरक्त है तो रथ को सही मार्ग पर ले जाता है, अन्यथा विषयासक्त चित्त तो हमेशा कुमार्गगामी ही होता है। जिस प्रकार घोड़े को लगाम से वश में रखा जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियों का वश में रखना संयम से ही सम्भव है।

सम्यग्दर्शन के बिना संसार के बन्धन से यह जीव छूट नहीं सकता, इसलिए हमें शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

बीडी, सिगरेट, चरस, तम्बाकू, भाँग, शराब, ड्रग्स आदि व्यसनों का त्याग संयम कहलाता है। जीवों को मारकर उनसे निर्मित होने वाली वस्तुओं जैसे चमड़े के जूते, बेल्ट, सूटकेस आदि अथवा रेशम के वस्त्र आदि का त्याग करना भी संयम है। संयम भोजन-पान में भक्ष्याभक्ष्य के विवेक पर भी जोर देता है। वह जीवन का अनुशासन है। उसका पालन करते हुए ही जीवन को सुखी, निरापद और शानदार बनाया जा सकता है।

तप का प्रयोजन : मनःशुद्धि : धर्म के दस लक्षणों में एक उत्तम तप भी है। तप का अर्थ है तपाना या तपना। लोहे की टेढ़ी छड़ तपाकर सीधी की जाती है। सोना तपने के बाद ही आभूषण बनता है। ऐसे ही तप के द्वारा आत्मा की वक्रता को विदा किया जाता है।

कुरल काव्य में शान्तिपूर्वक कष्ट सहने के अभ्यास को तप कहा गया है। आचार्य उमास्वामी ने इच्छाओं के निरोध को तप बताया है। **'तपसा निर्जरा च'**—तप से संवर और निर्जरा दोनों होती हैं अर्थात् कर्म-भार हल्का होता है।

ज्ञान-प्राप्ति में कष्ट सहना पडता है। कष्ट उठाकर प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही प्रामाणिक और स्थायी होता है। सुविधाओं के साथ प्राप्त ज्ञान मुसीबत में काम नहीं आता। साधु उपवास (अन्न के साथ-साथ विषय-कषायों का त्याग) करता है, खाना हुआ तो भूख से कम खाता है, नीरस आहार लेता है, एक आसन-से बैठकर प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान आदि करता है। यही उसका तप है। तप से आत्मा पवित्र होती है। गृहस्थों को भी एक देश उनका अनुकरण करना चाहिए।

तप का प्रयोजन है—मन की शुद्धि। मन की शुद्धि के बिना काया को तपाना या क्षीण करना व्यर्थ है। सन्तान, धन, यश आदि की प्राप्ति के लिए साधु तप नहीं करते। वे तप करते हैं जन्म-मरण रूप संसार-चक्र से छूटने के लिए। तप से ही अध्यात्म की यात्रा का ओंकार होता है।

लेना ही नहीं, देना भी सीखो : दान मनुष्य का आभूषण है। दान देने वाले का स्थान लेने वाले से ऊँचा होता है। बादल यदि जल-दान करना बन्द कर दें तो वह काले पड़ जाते है, किन्तु बरसने पर उनका रंग उज्जवल हो जाता है। जल-दान करते रहने से बादलों को ऊपर आकाश में स्थान मिला है, जबकि समुद्र, जो केवल जल का संचय करता है, को नीचे रसातल मे जगह मिली है। उसका पानी भी खारा हो जाता है। उससे किसी की प्यास नहीं बुझ सकती। स्पष्ट है कि देने का आनन्द कुछ पाने के आनन्द से बड़ा है।

आचार्यो ने साधुओं के लिए उत्तम त्याग और गृहस्थों के लिए दान को उत्तम कर्म बताया है। त्याग साध्य है और दान साधन। त्याग में अन्तरंग के राग-द्वेष को छोड़ने की बात है तो दान में अप्राप्त भोगो की इच्छा न करने तथा प्राप्त भोगों में शनैः-शनैः विमुख होने का भाव है।

दान का महत्त्व उसकी उपयोगिता में है। एक गरीब आदमी तेल से भरा दीपक रोज अँधेरी गली में रखता था। उससे अनेक राहगीर ठोकर खाने से बच जाते थे। उसी गॉव का एक सेठ घी का एक दीपक मन्दिर में चढाता था। दोनों मरकर जब स्वर्ग पहुँचे तो गरीब को बैठने के लिए सेठ से ऊँचा सिहासन दिया गया। सेठ के अह को इससे ठेस पहॅुची। तब धर्मराज ने उसे समझाया कि यह महत्त्व की बात नहीं है कि किसने कितना दिया, बल्कि कैसे और किसलिए दिया, महत्त्व इसका है।

धन की तीन ही गतियॉ हैं—दान, भोग और नाश। बुद्धिमता इसी में है कि नष्ट होने से पहले उसे परोपकार में लगा दिया जाए। उत्तम कार्यो मे दिया या लगाया हुआ धन ही सार्थक है, अन्यथा तो उसे अनर्थो की जड़ कहा गया है।

परिग्रह : दुःख का कारण : शरीर से भिन्न ज्ञानमयी आत्मा का ध्यान करने से आकुलता कम होती है। यह आत्मा

सर्व परिग्रहों से मुक्त है। मिथ्यात्व (खोटी धारणा) और कषाय को अन्तरंग परिग्रह तथा धन-धान्य, सोना-चाँदी, वर्तन-वस्त्रादि को बाह्य परिग्रह कहते हैं। जो इनका आंशिक रूप से भी त्याग करता है, वह प्रतिकूल संयोगों के मिलने पर भी शान्त और संयत रह सकता है। परिग्रह ही दुःख का मूल कारण हैं।

स्वाधीनता में सुख तथा पराधीनता में दुःख है। हमने आज तक बाहरी वस्तुओं की प्राप्ति में सुख माना है तथा छल-बल से हम उन्हें जुटाते रहे हैं। इनको पाने में भी मुसीबतें सहनी पड़ती हैं तथा इनके बिछुड़ने पर भी घोर मानसिक सन्ताप होता है। जो लोग आनन्द का जीवन जीना चाहते हैं, उन्हें बाह्य पदार्थो के प्रति आसक्ति का त्याग करना चाहिए। समत्व की साधना तभी सम्भव है।

तिलतुषमात्र परिग्रह के त्यागी मुनिवृन्द हानि-लाभ, जीवन-मरण लाभ-अलाभ, यश-अपयश आदि में सदा समभाव रखते हैं। इनके इसी आदर्श का यथाशक्ति अनुकरण करना गृहस्थ का कर्तव्य है।

ब्रह्मभाव अन्तर लखो : संसार में सदा से दो धाराएं चल रही हैं-एक योग की और दूसरी भोग की। भोग का अर्थ विषय-सेवन है, जो इन्द्रियों के द्वारा पदार्थों के प्रति आसक्ति रूप होता है। योग में आत्मा के निर्विकार स्वरूप की प्राप्ति के लिए चिन्तन किया जाता है। एक योगी ही सच्चा ब्रह्मचारी होता है। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है अन्तर्यात्रा अर्थात् अपनी ज्ञानरूप आत्मा में लीन होना।

व्यवहार में मन की वासना या विकारों को जीतने का नाम ब्रह्मचर्य है। हमारे आचार्यो ने स्त्री या पुरुष के शरीर में राग रूप परिणाम रखने को अब्रह्म कहा है। अपनी धर्मपत्नी या पति को छोड कर अन्य सभी स्त्रियों या पुरुषों को माता-बहिन या भाई के समान समझना तथा विशेष रूप से नारी जाति का सम्मान करना गृहस्थ का ब्रह्मचर्य है। हमारे पुराणों में सीता, द्रोपदी, मनोरमा, अंजना, रयणमंजूषा आदि महासतियों तथा भगवान नेमि-पार्श्व-महावीर, सुकौशल मुनि, भीष्म पितामह, कुणाल आदि सत्पुरुषों के प्रेरक जीवन प्रसंग मिलते हैं, जिनसे ब्रह्मचर्य पर दृढ़ रहने का उत्साह वृद्धिंगत होता है। सादगी, हल्का-सुपाच्य भोजन, वृद्ध-सेवा, सत्संगति और स्वाध्याय से भी ब्रह्मचर्य के पालन में दृढ़ता आती है।

सारांश : संक्षेप में यही हैं धर्म के दस लक्षण। धर्म तो एक और अखण्ड है, ये दस तो उस तक पहुँचने के रास्ते हैं। कहीं से भी शुरू कीजिए, आप अपनी मंजिल पा जाएंगे। इस दशांग धर्म के आचरण से ही आत्मा निर्मल-निर्विकार होता है। व्यावहारिक जीवन की सफलता भी इन्हीं के अनुपालन पर निर्भर है। जिसके आचरण में ये उतर जाते हैं, वह सुख और आनन्द के वातावरण में विचरण करने लगता है। जो भी इन्हें अपनाएगा, वह अनुपम सुख पाएगा। आइए, हम भी इस धर्म-मार्ग पर चलने का संकल्प लें।

(जैन गजट / 12 सितम्बर, 81)

□

विजया-दशमी

किसी जिज्ञासु ने एक संत से पूछा-"मनुष्य का बलवान होना अच्छा है या निर्बल होना?" छोटा-सा और सरल-सा प्रश्न था। आशय स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी आयुपर्यन्त जीवित तो रहना ही है, ऐसी दशा में वह ताकतवर होकर जिए या कमजोर होकर जिए। आम आदमी इसका यही उत्तर देगा कि बलवान होकर जीना अच्छा है, किन्तु सन्त का उत्तर कुछ गूढ़-सा था। उन्होंने अनेकान्त शैली में कहा-"आदमी का बलवान होना भी अच्छा है, और निर्बल होना भी।" जिज्ञासु ने जब कहा कि मुझे तो एक उत्तर मिलना चाहिए तो सन्त बोले कि इस प्रश्न का एक उत्तर हो ही नही सकता। सदाचारी और सभ्य मनुष्य का तो बलवान होना अच्छा है, किन्तु दुराचारी और निर्गुण मनुष्य का निर्बल होना ही ठीक है। बल अपने आप में न तो अच्छा होता है और न बुरा। मनुष्य की भावना और परिस्थिति ही उसे अच्छा या बुरा मानती है। बल या शक्ति से किसी को परेशान कर उसे रुलाया भी जा सकता है और उसी बल से किसी असहाय अथवा अनाथ के आँसू पोंछे भी जा सकते हैं। सारी खुशियों और रंजोगम का आधार बल ही है। बल के सदुपयोग से समाज या परिवार की रक्षा तथा दुरुपयोग से विनाश दोनों ही सम्भव हैं। संयमी और दयालु व्यक्ति के समाज लाभान्वित होता है, जबकि असंयमी और भ्रष्ट मनुष्य की शक्ति से समाज को हानि उठानी पडती है। जीवन को सफल और मंगलमय बनाने का एक बहुत बड़ा सूत्र सन्त के इस उत्तर में निहित है।

दशहरा या विजयादशमी के पर्व पर जब हम दृष्टि डालते हैं, तब इस उत्तर की सार्थकता सहज ही हमारी समझ में आ जाती है। राम और रावण दोनों ही मनुष्य थे। दोनों को ही मानव-शरीर पुण्य के उदय से मिला था, लेकिन अपनी शक्ति के दुरुपयोग से रावण लोक में निन्दा का पात्र हुआ, जबकि श्रीराम ने अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सुयश प्राप्त किया। राम का नाम अमर हो गया। सभी धर्मों में उनके नाम का स्मरण अत्यन्त आदर के साथ किया जाता है। वैष्णवों ने उन्हें विष्णु का और बौद्धों ने बोधिसत्व का अवतार माना है। जैनधर्म में भी आठवें बलभद्र के रूप में उनकी महिमा गाई गई है। रावण के चरित्र को तो सबने ही हेय और उपेक्षणीय कहा हैं

श्रीराम ने सदैव दूसरों का कष्ट-निवारण किया। वह हमेशा यह ध्यान रखते थे कि उनके किसी विचार, वचन अथवा कार्य से किसी को कोई तकलीफ न पहुँचे। उनमें जन्म से ही कुछ ऐसे अच्छे और विशिष्ट संस्कार थे, जिनकी वजह से कोई भी गलत कदम उठाने से वह हमेशा विरत रहे। अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध उन्होंने निरन्तर संघर्ष किया। उदात्त-व्यक्तित्व एवं मानवोचित गुणों के कारण उन्हें सर्वत्र प्रतिष्ठा मिली। इसीलिए जीवन मे वे अजेय और अपराजित रहे। उनकी आदर्श जीवन-शैली के कुछ उदाहरण देखिए .—

राजा जनक पर एक बार किसी म्लेच्छ राजा ने आक्रमण किया और जनक-कनक दोनों भाइयों को बन्दी बना लिया। तभी राम-लक्ष्मण वहाँ पहुँचे। उनके प्रबल पराक्रम के सामने वह म्लेच्छ राजा एक क्षण भी नहीं टिक सका और जान बचाकर भाग गया। इस प्रकार धर्मात्मा जनक और कनक बन्धन से मुक्त हुए। सबने राम की प्रशंसा की।

राम राजा दशरथ के सबसे बड़े पुत्र होने के नाते राजगद्दी पर बैठने के पूर्ण अधिकारी थे, किन्तु कैकेयी के बाधक बन जाने से उन्हें राज्य से वंचित होना पड़ा। राम के मन में इससे कोई खेद नहीं हुआ। राजा दशरथ भी अपने दिए हुए वचनों को निभाने के लिए कैकेयी की बात मानने को विवश थे। राम-लक्ष्मण-सीता खुशी-खुशी वन को चले गए। राज्य पाने के लिए उन्होंने विद्रोह नहीं किया। आज तो सत्ता और सिंहासन के लिए जैसा हड़कम्प और खून-खराबा होता है, उसकी तुलना मे राम का त्याग कितना महान है।

पाप समय निर्बल बनो, धर्म समय बलवान। वैभव समय विनम्र अति, दुःख में धीर महान।।

वनवास-काल में राम एक बार मालव देश के दशपुर नामक स्थान पर पहुँचें, जहां बडे विशाल जिन मन्दिरों के होते हुए भी श्मसान की सी खामोशी दिखाई दी। किसी राहगीर से पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वहां के राजा वज्रकरण पर उज्जयिनी के अहंकारी राजा सिंहोदर ने इसलिए आक्रमण किया है कि वज्रकरण उन्हे नमस्कार नहीं करता। वह मुनिराज से श्रावक के व्रत अंगीकार कर यह प्रतिज्ञा कर चुका है कि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अतिरिक्त वह किसी अन्य के सामने अपना माथा नहीं झुकाएगा। श्रीराम ने जिनभक्त वज्रकरण की रक्षा करने का निर्देश लक्ष्मण को दिया और उनकी युक्ति से सिंहोदर को झुकना पड़ा। इस प्रकार एक धर्मपालक पर अकारण आया संकट टल गया।

वनवास-काल में ही अतिवीर्य नामक एक राजा ने भरत पर चढ़ाई कर दी। राम की प्रेरणा और अपने श्वसुर राजा पृथ्वीधर की सहायता से लक्ष्मण ने अतिवीर्य को बन्दी बना लिया। अपनी पराजय से अतिवीर्य इतना दुःखी हुआ कि उसने मुनि-दीक्षा ले ली। राम ने उसके पुत्र का तिलक कर उसका राज्याभिषेक करा दिया।

वंशस्थल नगर के पास पर्वत पर ध्यान एवं तप करते हुए देशभूषण और कुलभूषण मुनियों पर असुरकृत उपसर्ग का दोनो भाइयों ने निवारण किया। बाधा के टलते ही दोनों मुनियों को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। दोनों भाइयों ने सीता-सहित बहुत भक्ति के साथ उनकी पूजा की। इसी प्रकार दण्डकारण्य मे रहते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनियो पर आए उपसर्ग को भी उन्होंने दूर किया था।

साहसगति नामक कोई विद्याधर वानरवंशी राजा सुग्रीव की पत्नी सुतारा पर आसक्त हो गया। असहाय सुग्रीव राम की शरण मे आया। राम ने साहसगति का वध कर सुग्रीव को उसके आतंक और शोक से उबार लिया। सुग्रीव हमेशा के लिए उनका भक्त बन गया।

लका मे रावण के साथ जब युद्ध चल रहा था, उन्ही दिनों रावण जिन मन्दिर में बैठकर बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा। विद्या सिद्ध हो जाने पर कहीं जीत असम्भव न हो जाए, इस दृष्टि से उसकी साधना मे विघ्न डालने की अनुमति माँगने पर राम ने अपने योद्धाओं को उसके लिए अनुमति नहीं दी। उन्होंने कहा कि पीठ दिखाकर भागने वाले और मन्दिर में शरण लेने वाले का पीछा करना क्षत्रिय का कर्त्तव्य नहीं है।

रावण के मर जाने पर किसी अधिकारी ने घृणा से उसके शव को ठोकर मारनी चाही। राम ने उसे झिड़ककर रोक दिया और कहा कि इष्टसिद्धि के बाद भले आदमी किसी से वैर नहीं रखते। अब रावण हमारा भी वैसा ही भाई है, जैसा विभीषण का है। उनके कहने से रावण का अन्तिम संस्कार बहुत आदर के साथ सम्पन्न किया गया।

ये हैं श्रीराम के जीवन की कुछ आदर्श झलकियाँ। इसके विपरीत दशानन रावण के चरित्र में कुछ ऐसे दाग दिखाई देते हैं, जिनकी वजह से उसका पूरा जीवन ही कलंकित हो गया। वैसे वह भी एक नीतिज्ञ, विद्वान, और बलशाली राजा था। वह त्रिखण्डाधिपति विद्याधर था। उसका प्रताप और ऐश्वर्य ऐसा था कि पूछो मत, किन्तु अपनी विकृत मनोवृत्ति से उसने इतना अपयश कमाया कि आज तक पृथ्वी पर उसके उस अपयश की काली घटाए छाई हुई हैं। प्रारम्भ में ही किसी ज्योतिषी के यह बताने पर कि जनक-तनया सीता के निमित्त से दशरथ-पुत्रों के द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी, उसने विभीषण को उत्तेजित कर दशरथ और जनक को मरवाने का षड़यन्त्र किया। वह तो नारद की सूझ-बूझ से दोनों बच गए, अन्यथा दशानन ने तो कोई कसर छोडी नहीं थी। सम्यग्दृष्टि बाली महामुनि पर अकारण कुपित होकर उसने उपसर्ग किया, किन्तु बाली मुनि के तपश्चरण के प्रभाव से उसे अपमानित होना पडा। अपमान से पीड़ित होकर वह इतना रोया, इतना रोया कि लोग उसे रावण कहने लगे। लोक मे दशानन की अपेक्षा उसका रावण नाम ही अधिक प्रचलित है।

सब के सुख में अपना सुख मानने वाले ही महावीर बन सकते हैं।

यद्यपि रावण ने अनन्तवीर्य मुनिराज से यह नियम लिया था कि "जो परस्त्री मोहि न अभिलाषै ताहि मैं न सेवूँ" (पद्मपुराण भाषा पृष्ठ 7), तथापि सीता का अपहरण कर वह बहुत समय तक मानसिक अब्रह्म से पीड़ित रहा। अपने सगे भाई विभीषण की नेक सलाह को ठुकराकर उसने उसे अपना विरोधी ही बना लिया। मारीच, मन्दोदरी आदि ने भी जब-जब सीता को वापिस कर देने की बात कही, तब-तब उसने उनकी उपेक्षा की। कभी तो वह कहता कि त्रिखण्ड की सब सुन्दर वस्तुएं मेरे ही भोगापभोग के लिए बनी हैं तो कभी कहता कि यदि अब मैं सीता को वापिस करता हूँ तो लोग मुझे कायर कहेंगे। इस प्रकार वासना एवं अहंकार में आकण्ठ डूबे रावण का पुण्य क्षीण होता गया। अन्त में युद्ध में लक्ष्मण के द्वारा चलाए अपने ही चक्र से उसका मरण हुआ। शक्ति के दुरुपयोग से उसे कितना नीचा देखना पड़ा। इस समय उसका जीव नरक में घोर दुःख पा रहा है।

विजय-पर्व के पीछे निहित यह सारी कहानी हमें प्रेरणा दे रही है कि मनुष्य पर्याय पाकर हमें उसका सदुपयोग अपनी भोगेच्छाओं और कषायों पर विजय पाने में करना चाहिए। **'बड़े भाग मानुष तन पावा'** की सीख को ध्यान में रखते हुए आत्महित हमारा मुख्य लक्ष्य बन जाए, इसी में इस भव का गौरव है। स्वयं रामचन्द्रजी ने यही किया। उनके बाबा रघु, ताऊ अनन्तरथ, पिता दशरथ, भाई भरत और शत्रुघ्न, पुत्र लवणांकुश, सेनापति कृत्तान्तवक्र, भक्त हनुमान, सुग्रीव, नल, नील आदि सबने दीक्षा लेकर संसार-सिंधु से पार जाने के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया। कैकेयी आदि माताओं तथा पत्नी सीता ने भी आर्यिका-दीक्षा ग्रहण की। राम, भरत, हनुमान आदि उसी भव से मोक्ष चले गए, शेष आगे मोक्ष जायेंगे। रावण के परिवार मे भी उसको छोड़कर सबने वैराग्य को प्राप्त हो आत्म-कल्याण किया। भाई कुंभकर्ण और विभीषण, पुत्र इन्द्रजीत और मेघनाद, पटरानी मन्दोदरी आदि ने सकल संयम को अंगीकार किया। इन्दजीत, कुम्भकर्ण और मेघवाहन उसी भव से मोक्ष भी चले गए। संयम धारण करने में ही मानव-जीवन की शोभा और सफलता है। असंयम ही शक्ति का दुरुपयोग है। अतः दशहरा पर्व में भी जीवन में यथाशक्ति व्रत-नियम पालने की प्रेरणा मिल सके तो यह हमारा अहोभाग्य ही होगा।

जीव-दया, सम्यक्त्व और ज्ञान की आराधना, दान तथा परोपकार से जीवन मंगलमय बनता है। अपनी विद्या-बुद्धि, धन-वैभव और शारीरिक बल का सुदुपयोग जो ऐसे अच्छे कार्यो में करता है, वह सज्जन कहलाता है। विपरीत आचरण करनेवाला तो फिर दुर्जन होगा ही। किसी आचार्य ने कहा भी है–

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां पर-पीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय ॥

आचार्य के इस स्वर्णिम कथन के प्रकाश में हम अपने कर्त्तव्य का निर्धारण कर सकें तो विजय-पर्व मनाना सार्थक होगा। जयतु जय राम! जय अभिराम राम गुणधाम!!

(जैन गजट / 12 नमम्बर, 85)

□

निर्वाण या निर्माण

समयसार की 412वीं, गाथा में कहा गया है:–

"मोक्खपहे अप्पाणं हवेहि, चेदयहि झाहि तं चेव।
तत्थेवे विहर णिच्चं, मा विहरसु अण्णदव्वेसु" ॥

अर्थात् हे भव्य! मोक्षपथ में अपनी आत्मा को तू स्थापित कर, उसी का अनुभव कर, उसी का ध्यान कर और वहीं पर सदा बिहार कर। अन्य द्रव्य में विहार मत कर।

मोक्ष मनुष्य का चरम पुरुषार्थ है। इसी को निर्वाण भी कहते है। यह मोक्ष या निर्वाण बन्ध के हेतुओं राग-द्वेष या कषायादि के अभाव तथा सम्पूर्ण कर्मो के छूटने से होता है (बन्ध हेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः-तत्त्वार्थसूत्र।) कर्मों से पूर्ण रूप से छूटना द्रव्यमोक्ष तथा रागादि से निवृत्ति भावमोक्ष कहलाती है। ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। मोक्ष मिलने पर यह औदारिक शरीर छूट जाता है, शेष रह जाता है केवलज्ञान। इसी अपेक्षा से सिद्धों को ज्ञानशरीरी कहा जाता है।

मोक्ष मिल जाने पर यह जीव अनन्त सुख का संवेदन करने लगता है। जिस प्रकार बन्धन-युक्त मनुष्य बेड़ी आदि से छूट जाने पर स्वतन्त्रता पूर्वक चल फिर सकता है और सुखी होता है, उसी प्रकार कर्म और रागादि बन्धन से छूटकर आत्मा भी स्वाधीन होकर अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव में रमण करता हुआ अत्यन्त सुख का अनुभव करता है। आत्मा की स्वाधीनता का ही दूसरा नाम मोक्ष है।

हम सब पराधीन जीव हैं। हमें अहर्निश दूसरों की सहायता की अपेक्षा रहती है। वैभाविक परिणमन (क्रोधादि विकारो की उत्पत्ति) पराश्रय के बिना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है। गाली सुनकर क्रोध और प्रशंसा करने वाला कोई और ही होता है। इसीलिए विकारोत्पति को परनिमित्तक कहा गया है। गाली या प्रशंसा सुनकर भी जो बैचेन या प्रसन्न नहीं होते, ऐसा तो कोई मुनि ही हो सकता है। मुनि के गले में कोई मरे हुए साँप की माला डाले अथवा पारिजात-पुष्पों से उनकी पूजा करे, वे दोनों के प्रति समभाव रखते हैं। 'न निन्दक से वैर' और 'न प्रशंसक से प्रीति'–यह उनकी नीति होती है। ऐसे मुनि ही मोक्षमार्गी कहलाते हैं।

हमें भी साधु बनने की भावना भानी चाहिए। भावना भवनाशिनी। चारित्र मोहनीय के उदय से कदाचित् हम मुनि न भी बन सकें तो भी जो मुनि बन गए हैं, उनकी भलीभाँति सेवा-सुश्रूषा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। उनकी अवज्ञा या तिरस्कार कम-से-कम न होने पाए, इसका ख्याल रखना आवश्यक है। मुनि-निन्दा से बडा पाप दूसरा नहीं है।

मोक्ष या निर्वाण मनुष्य भव से ही प्राप्त हो सकता है। अन्य किसी भव से मुक्ति-लाभ सम्भव नहीं है। यह मनुष्य पर्याय तीव्र पुण्योदय से मिलती है। कविवर तुलसी ने कहा भी है–"बड़े भाग मानुस तन पावा।" महावीर ने तो पहिले ही कहा था–"मानुस्सं खलु सुदुल्लहं।" उपनिषद् भी यही कहता है–"न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।" इस सर्वश्रेष्ठ नर-पर्याय को पाकर मोक्षमार्ग मे लगना ही अभीष्ट है।

भगवान महावीर ने आज के दिन निर्वाण प्राप्त किया था। वह तो अध्यात्म–सूर्य थे। सूर्य के विदा होने पर लोग दीपक का प्रकाश करते ही हैं। उनके मुक्त होने पर भी देवों और मनुष्यों ने घर-घर व डगर-डगर को दीप-पंक्तियों से सजा दिया था। तभी से दीपावली की परम्परा चली आ रही है, किन्तु मिट्टी का दिया तो प्रतीक मात्र है। ऋषियों का इशारा तो ज्ञान-दीप प्रकाशित करने की ओर है। दिए से रात्रिकालीन अँधेरा तो दूर किया जा सकता है, किन्तु मोहान्धकार को भगाने के लिए तो ज्ञान का प्रकाश ही अपेक्षित है। बाह्य प्रकाश के लिए जिस प्रकार मिट्टी के दीपक, सरसों के तेल, रुई की बाती और दियासलाई की आवश्यकता होती है, आन्तरिक प्रकाश के लिए उसी प्रकार मन का दीपक, करुणा या समता का तेल, व्रत की बाती तथा स्वाध्याय की दियासलाई अपेक्षित है। महावीर के जीव ने पिछले कई भवों से स्वयं को इसी

रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भीगा हुआ होना चाहिए।

चित्प्रकाश से आलोकित करते रहने का निरन्तर अभ्यास किया था। यथार्थ में एक शब्द है निर्माण और दूसरा है निर्वाण। निर्माण बनाने को तथा निर्वाण मिटाने को कहते हैं। बनाने का काम बाहर दिखता है, किन्तु मिटना भीतर-ही-भीतर चलता है। वह दिखाई नहीं देता, पर अनुभव में आता है। हम सब लोग दिन-रात बनाने के चक्कर में लगे हुए हैं। कोई पैसा बना रहा है तो कोई घर बनाने के फेर में है। किसी को सेहत (स्वास्थ्य) बनाने से फुर्सत नहीं है तो कोई योजनाएं बनाने में रत है। कहीं दूल्हा-दुल्हन के जोड़े बनाने की चिन्ता है तो कहीं बेटा या बेटी को बनाने (जन्म देने) और सँवारने की धुन सवार है। गरज यह है कि सुई से लेकर इंजन बनाने तक की श्रृंखला लगातार और सर्वत्र चल रही है। अब जब बनाना छूटे, तब मिटना शुरू हो। बनाना राग के बिना सम्भव नहीं और राग को तो आग कहा गया है। उसी को तो मिटाना या बुझाना है। राग के मिटने पर निर्वाण होता है।

एक रोचक प्रसंग है। है काल्पनिक ही। एक दिन गौतम गणधर ने भगवान महावीर पर पक्षपात का आरोप लगाते हुए कहा कि आप मुझ से नाराज हैं। प्रभु ने पूछा "कैसे?" गौतम बोला-'जिन्होंने मेरे बाद आपसे दीक्षा ली, उन्हें आपने तार दिया, पार लगा दिया। वे मोक्ष चले गए। आपका सर्वप्रिय शिष्य या प्रधान गणधर कहलाकर भी मैं अभी संसार में बैठा हुआ हूँ। मुझ पर आपकी कृपा नहीं हुई। यह पक्षपात नहीं तो और क्या है?"

महावीर ने हँसते हुए कहा-"जो सारे नेह-नाते तोड़ देता है, उसे मोक्ष मिलता है। क्या तुमने सब कुछ छोड़ दिया है?"

"यह आप पूछ रहे हैं प्रभु! कितना वैभव था मेरे पास। पाँच सौ शिष्य थे। सब मेरी आज्ञा का पालन करते थे। सबको छोड़कर, सबसे नाता तोड़कर मैंने आपसे दीक्षा ली है। अब मैं पूर्णतः नग्न हूँ, बिल्कुल आपकी ही तरह। आप ही कहें कि अब क्या कुछ बचा है मेरे पास?" यह था गौतम का प्रतिप्रश्न।

महावीर बोले—'मोक्ष जाने के लिए मुझे भी छोडना होगा। बोलो, क्या तुम तैयार हो?" "नहीं प्रभु, नहीं। आपके प्रति राग या लगाव है, तभी तो सब कुछ छोड छाड़कर आप की शरण में आया हूँ। आपको नहीं छोड़-सकता।" गौतम ने दो टूक जवाब दिया।

महावीर ने समाधान दिया—"मोक्ष पाने के लिए मोक्ष की इच्छा को भी त्यागना पडता है, मेरी तो बात ही क्या है?"

भगवान महावीर के प्रति गौतम के मन में जो प्रशस्त राग था, उसके रहते हुए वह उसे नहीं तोड़ सका। कार्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रातः जब महावीर का निर्वाण हो गया, तभी उसका यह राग टूटा तो इसी दिन सायंकाल की बेला में उसे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। यह प्रसंग भले ही काल्पनिक हो किन्तु इसके द्वारा फलित सिद्धान्त एकदम सही है।

यह सच है कि निर्वाण पाने के लिए राग के संस्कारों को पूरी तरह छोड़ना या तोड़ना पडता है, किन्तु पहले अप्रशस्त राग को बुद्धिपूर्वक छोड़ना होता है, बाद में प्रशस्त राग स्वयं छूट जाता है। क्रम ऐसा ही है। दीक्षा ग्रहण करते समय भगवान ने स्वयं "नमः सिद्धेभ्यः" कहकर सिद्धों को प्रणाम किया था। बाद में वह प्रारम्भिक परावलम्बन (प्रशस्त राग) स्वतः छूट गया और आज के दिन वह स्वयंसिद्ध परमेष्ठी बन गए।

इस मानव-शरीर को पाकर निर्वाण-मार्ग में लगो, निर्माण-पथ के पथिक मात्र बनकर मत रह जाओ। निर्वाण की साधना इस शरीर से ही हो सकती है। यद्यपि शरीर तो अपवित्र है, तथापि निर्वाण की साधना में लगकर वह पवित्र हो जाता है। महावीर के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद इन्द्र ने उनके छूटे हुए शरीर की भी पूजा की थी। मोक्ष-गामी का शरीर शव नहीं, शिव होता है।

पवित्र दीपावली के दिन हमें ऐसी ही भावना भानी चाहिए। मोक्ष-मार्ग में अपनी आत्मा को स्थापित करने की प्रेरणा देने के लिए ही यह पर्व हर वर्ष आता है। नमः श्री महावीराय।

(जैन गजट / 25 अक्टूबर, 90)

□

जब चित्त में करुणा के स्रोत खुलते हैं, तभी कोई जीव अपनी या दूसरों की रक्षा के लिए प्रस्तुत होता है।

होली : एक राष्ट्रव्यापी त्यौहार

होली एक राष्ट्रव्यापी त्यौहार है। वह प्रेम, समता, सहनशीलता और भाईचारे का प्रतीक है। उसका मुख्य उद्देश्य है राग-द्वेष से निवृत्ति, किन्तु आज वह हुड़दंग और धमाचौकड़ी का पर्याय बनकर रह गया है। देखा जा रहा है कि होली पर लोगों को अनाप-शनाप बकने, फूहड़-से-फूहड प्रदर्शन करने या विदूषक-जैसा बनने या बनाने की मानों छूट ही मिल जाती है। इस स्थिति में बदलाव लाना चाहिए।

एक प्रसंग याद आ रहा है। कुछ वर्ष पहले दैनिक समाचारपत्रों में पूज्य श्री विद्यासागरजी महाराज के आगरा-आगमन की सूचना पढ़कर हम उनके दर्शनार्थ आगरा गए। वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि दोपहर-बाद वह तो यहाँ से बिहार कर गए। किधर गए है, यह पूछने पर सिकन्दरा की ओर जाने के संकेत मिले। सौभाग्य से वहाँ के जैन मन्दिर में उनका दर्शन-लाभ हो गया। वे होली के दिन थे, हमने विनम्रतापूर्वक आचार्य श्री से निवेदन किया कि इधर ब्रजप्रदेश में फाल्गुन शुक्ला एकादशी से ही होली का हुल्लड़ शुरू हो जाता है और वह दस-बारह दिनों तक चलता है। शहरों में पिचकारियों से रंगों की बौछारे होती हैं तो गांवों मे बच्चे राहगीरो पर धूल-मिट्टी और कीचड़ फेकते हैं। सन्त हों या सामान्यजन, बच्चों को किसी से भी होली खेलने में कोई सकोच तो होता नहीं। वे जाने-अनजाने मे कुछ भी हरकत कर सकते हैं और यह मौसम ऐसा है कि बड़े लोग भी **'बुरा न मानो होली है'** कहकर बच्चों को मना भी नही करेंगे। अतः आप एक पखवाडे तक यहीं प्रवास करें।

आशा थी कि प्रार्थना स्वीकार कर ली जाएगी, किन्तु विद्यासागरजी की तो बात ही निराली है। असुरक्षा मे ही वे अपनी सुरक्षा मानते हैं और उपसर्गो को अपने धैर्य की परीक्षा का अवसर। बोले-"अब तो मै प्रात होते ही बिहार करूँगा। बच्चे और बड़े मुझ पर धूल फेंके, यह तो अच्छा ही होगा। इससे मुझे यह पता चल सकेगा कि मैं मानापमान के ख्यालों से कितना ऊपर उठ चुका हूँ तथा प्रतिकूलताओं में भी मैं अपने पर नियत्रण रख सकता हूँ या नही? साधु की सहनशीलता की परीक्षा का इससे बढ़िया अवसर भला और कौन सा होगा।"

प्रार्थना इस सोच के साथ अनसुनी हुई और आचार्यश्री दूसरे दिन प्रातः होते ही बिहार कर गए। हमने मन में विचार किया कि सच्ची होली तो इनकी है। ये जीते है हर पल अभय में। न स्वागत की आकांक्षा और न उपसर्गो से परहेज। ये हैं पूरी तरह अपनी मनमर्जी के मालिक। समता और स्वतंत्रता की ऐसी ही ललक यदि हमारे भीतर भी उत्पन्न हो जाए तो इसी में होली के त्यौहार की सार्थकता है।

होली-दहन तो प्रतीक है। उसके पीछे उद्देश्य तो दोष-दहन का ही होना चाहिए। होली के ढेर पर हमें लकड़ियाँ नहीं, अपने क्रोध या प्रतिशोध की भावना को जलाना है। होली इस तरह खेलना है कि सामने वाला प्रसन्न हो और वह हमसे पहले से भी अधिक प्रेम करने लगे।

हम ऐसे अनेक महानुभावों को जानते हैं, जो हुड़दंग और होहल्ला से बचने के लिए होली पर अपने निकटस्थ तीर्थ पर चले जाते हैं और वहाँ शान्ति से भजन-पूजन करते हैं। हम स्वय भी होली के त्यौहार पर सपरिवार प्रायः श्री महावीरजी अतिशयक्षेत्र पर जाते रहे हैं, किन्तु अब हमारी युवा पीढ़ी वहाँ भी आपस में जमकर होली खेलने लगी है। घर पर रहते हुए तो शायद उन्हें अपने बुजुर्गो का कुछ लिहाज भी करना पड़ता होगा, किन्तु वहाँ तो निर्द्वन्द्व होकर रंगों की बौछार करते हैं। दोपहर को बैठकर ताश खेलते और हंसी-मजाक में वक्त गुजारते है। एक क्षुल्लकजी ने एक बार ऐसे ही कुछ युवकों से तीर्थ की गरिमा बनाए रखने को कहा तो उनका भी उपहास उड़ाया गया। तीर्थक्षेत्रों पर ज्यों ज्यों सुविधाएं बढ़ती जा रही हैं, वे पिकनिक स्पॉट बनते जा रहे है। ऐसे लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है, जो तीर्थो पर भक्तिवश नहीं, बल्कि मौजमस्ती के लिए जाते हैं। इस पर अकुश कैसे लगे, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

आत्मा के साथ निकटता स्थापित करना और उसमें रम जाना ही पर्व का उद्देश्य है।

कुछ वर्षो पूर्व मीणा–गूजरों ने यह निर्णय लिया था कि वे महावीरजी में होली नहीं खेलेंगे। इस निर्णय के पीछे जैन यात्रियों को परेशानी न हो, यह विचार था, किन्तु अब जैनियों को क्षेत्र पर रंगों से सराबोर देखकर वे अपने मन में खूब हंसते होंगे।

शहरों में होली-दिवाली पर नशे की आदत भी बढ़ रही है। इसे रोकना होगा। नशा करने का अर्थ है शरीर की बरबादी और पैसे की तबाही। लोकनिन्दा मिलती है मुफ्त में। बहुत से लोग नशा करते हैं मानसिक चिन्ता दूर करने के लिए किन्तु नशा उतरने पर पाते हैं कि चिन्ताएं और बढ़ गई हैं। नशा करने में क्षणिक उत्तेजना भले ही मिलती हो, किन्तु अन्त में थकान बढ़ जाती है। नशा एक ऐसा वेशर्म व्यसन है कि एक बार लग जाए तो फिर बार-बार तलब लगती है। त्यौहारों पर इस बुरी आदत से बचना चाहिए।

होली का त्यौहार बुरा नहीं है, किन्तु मनाने का तरीका दिन-पर-दिन विकृत होता जा रहा है। हमें होली खेलते समय कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, जैसे–

- जो होली न खेलना चाहे, उनके साथ जबरदस्ती न करें। दूसरों को प्रसन्न रखने की कोशिश करनी चाहिए, उन्हें नाराज करने की नहीं।
- होली पर हलके रगो का प्रयोग करे। कीचड, गन्दे पानी गोबर, तारकोल, स्याही और गहरे रंगों का नहीं।
- होली पर किसी से गाली-गलौज न करे और न अश्लील गाने ही गाएं।
- किसी से बदला लेने का भाव नहीं रखना चाहिए। प्रतिशोध हिंसा है और हिंसा का समर्थन कोई भी भारतीय धर्म नही करता।
- नशा भूलकर भी न करें। नशा जानलेवा महारोग है। इससे बचें।

होली के त्यौहार की सार्थकता की एक कसौटी है कि समाज में वात्सल्य-भाव की वृद्धि होनी चाहिए। आपस के मनमुटाव कम हो और संगठन मजबूत हो, यही होली मानने का उद्देश्य है। सन्त तिरुवल्लवर ने कहा है–

"प्रीतिं करोतु तादृशी, यादृशी नीरपंकयोः।
सूर्येण शोषिते नीरे, पंकदेहो विदीर्यते ॥"

अर्थात्-आपस में प्रेम ऐसा होना चाहिए कि जैसा पानी और कीचड़ में होता है। जब सूर्य अपनी प्रखर किरणों से पानी को सुखा देता है तो कीचड़ की देह में दरारें पड़ जाती हैं।

साधर्मीजनों के दर्द में हमदर्द बनना ही सही होली है। किसी को भी यही लक्ष्य अपने सामने रखकर होली खेलना चाहिए:–

आ रहा है रंगो का त्यौहार,
स्वागत करो
डालो रंग आपस मे
एक-दूसरे पर
कोई हर्ज नहीं
पर, ध्यान इतना रहे
रंग हलके हों
देखने में अच्छे लगें
डालो तो बस इतना
कि मन को गुदगुदा दें
न कि निमोनिया का शिकार बना दें
जिस पर डालो
उसका मन रंग जाए
खुशियों से
द्वेष गल जाए
प्यार महक उठे
दिल चहक उठे
मनाओ इस तरह
होली का त्यौहार ॥

□

शुचि निष्ठा से बड़ा धन कोई दूसरा नहीं है।

शासन देवी-देवताओं की पूजा

(भ्रान्तियों का निराकरण)

आजकल कुछ पत्र-पत्रकाओं में शासनदेवी-देवताओं की मान्यता के विरोध में लेखादि छप रहे हैं। उनमें जोर इस बात पर दिया जा रहा है कि हमारे लिए उपास्य या वन्दनीय केवल वीतराग जिनेन्द्रदेव ही हो सकते हैं। यह ठीक भी है। जैन सिद्धान्त का 'क-ख-ग' जानने वाला भी यही कहेगा। हमें भी यही इष्ट है। इससे असहमति व्यक्त करने का अर्थ तो अपने 'जैनत्व' पर ही प्रश्न चिह्न लगाना है। कोई शासनदेवों को माने या नहीं भी माने तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? जोर-जबर्दस्ती से न तो कोई किसी को उन्हें मानने के लिए विवश कर सकता है और न वह अहिंसक मार्ग ही है। ऐसे लेखों को पढ़कर चौंकते हम तब हैं, जब यह पाते हैं कि शासनदेवों का बहाना बनाकर महासभा या मुनियों को कोसा जाता है! क्या शासनदेवों की उत्पत्ति महासभा या मुनियों ने की है? महासभा ने तो अभी अपने जीवन में सौ बसन्त ही पूरे किए हैं, जबकि शासनदेवों, दिक्पालों आदि का अस्तित्व हजारों सालों से मान्य है। अठाहरवीं सदी तक किसी ने उन्हें चुनौती भी नहीं दी। यह विवाद भी इधर के दो सौ वर्षो की ही उपज है। जहाँ तक मुनियों की बात है, उनमें भी सभी तो पद्मावती आदि के प्रचारक नहीं हैं और जो हैं भी, क्या वे शासनदेवों को जिनेन्द्रदेव के समकक्ष मानने के लिए कहते हैं अथवा अर्हन्त और सिद्ध भगवान की उपासना को गौण करते हुए शासनदेवादि की मान्यता को मुख्यता देते हैं? इस सन्दर्भ में तटस्थ भाव से चिन्तन करने की आवश्यकता है।

सर्वप्रथम तो हमें उनके अस्तित्व के बारे में निर्णय करना है। आचार्य पूज्यपाद (चौथी शताब्दी) तथा उनके बाद हुए आचार्य गुणभद्र, आचार्य सोमदेवसूरि एवं पं० आशाधरजी ने अपने प्रतिष्ठा-पाठों में शासनदेव, दिक्पालादि का उल्लेख किया है। आचार्यत्रय श्री इन्द्रनन्दि, वसुनन्दि एव नेमिचन्द्र के प्रतिष्ठा-विधानों मे भी इनके आह्वान के लिए मंत्र और सूत्र हैं। 'मंगलाष्टक' में हम प्रतिदिन तथा विभिन्न उत्सवों पर जयादिक आठ देवियों, सोलह विद्या-देवताओं, चौबीस यक्ष-यक्षिणियों, बत्तीस इन्द्रों, आठ दिक्कन्याओं, दस दिक्पालों आदि देव-समूह से अपने और सबके कल्याण की कामना करते हैं। मथुरा में कंकाली टीला के उत्खनन से प्राप्त पुरातत्व-सम्पदा में चक्रेश्वरी एवं सरस्वती की मूर्तियॉं भी हैं, जो ईसा पूर्व की कृतियाँ हैं। उड़ीसा-स्थित खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओं में दो हजार सालों से भी पहले की बनी अम्बिका, गोमेद, गान्धारी, धरणेन्द्र, पद्मावती, रोहिणी आदि की मूर्तियाँ मिलती हैं। सितम्बर 1982 में बम्बई मे श्रीमान् साहू श्रेयासप्रसादजी द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ के अवधान में आयोजित संगोष्ठी में श्री नीरजजी ने अपने आलेख में सप्रमाण कहा था-"प्राचीन काल में तीर्थंकर मूर्तियाँ जितनी संख्या में बनीं, उससे कई गुनी संख्या शासनदेवों, अप्सराओं, किन्नर, गन्धर्व, दिक्पाल, नवग्रह आदि की मूर्तियों की पाई जाती है।" डा० भागचन्द्र भास्कर ने गुप्तोत्तरकालीन प्रतिमा-कला पर बोलते हुए एलोरा में उत्कीर्ण इन्द्रसभा का विशेष रूप में उल्लेख किया था। इस इन्द्रसभा में शासनदेवों की मूर्तियाँ भी है। अन्य भी सभी प्राचीन क्षेत्रों यथा चम्पापुरी, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पभोसा, देवगढ़, गजपंथा, हुम्मच, नरसिहपुरा आदि में शासनदेव-देवियों की मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में दृष्टव्य हैं और उनमें से अधिकांश प्राचीन हैं। श्रवणबेलगोल की विश्वविख्यात गोमटेश्वर प्रतिमा यक्ष-यक्षिणी-सहित है। इस प्रतिमा के सहस्राब्दी समारोह की स्मृति अभी धूमिल नहीं हुई है। साहित्य और कला के क्षेत्र में विद्यमान इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए भी इनके अस्तित्व को नकारना क्या इतिहास के साथ अन्याय नहीं होगा।

अब रहा शासनदेवी-देवताओं की पूजा का प्रकरण तो इस सन्दर्भ में भ्रान्तियाँ उत्पन्न करने की बहुत कोशिशें की जाती रही हैं। पहली गड़बड़ तो 'पूजा' शब्द के अर्थ को लेकर ही हो रही है। संस्कृत की 'पूज' धातु से यह शब्द बना है। यह धातु वन्दना करने और सत्कार करने, इन दोनो अर्थो में प्रयुक्त होती है। जिन-पूजा और देवता-पूजा में अन्तर है। पूजा शब्द का वन्दना-समर्थक अर्थ देवता-पूजा में अभिप्रेत नहीं है। यहाँ पूजा से प्रयोजन सत्कार करने से है। जिस प्रकार माता-पिता

पुण्यशाली महापुरुषों का जहां जन्म होता है अथवा वे जहां-जहां विहार व प्रवास करते हैं, वे सभी स्थान तीर्थ तुल्य बन जाते हैं, ऐसे स्थानों की यात्रा से मन को अद्भुत शान्ति मिलती है।

और विद्या-गुरुओं का सम्मान किया जाता है, उसी प्रकार जिनभक्त, धर्मवत्सल एवं प्रभावक शासनदेवों का सम्मान करने की बात कही जाती है। उनके प्रति आदर व्यक्त करना है, श्रद्धा नहीं। श्रद्धान तो वीतराग परमेष्ठी के प्रति ही हो सकता है।

"देवं जगत्रयी नेत्रं व्यंतराद्याश्च देवताः।
समं पूजा विधानेषु पश्यन् दूरं ब्रजेदधः॥" —(यशस्तिलक)

अर्थात्-देवाधिदेव जिनेन्द्रप्रभु और व्यन्तरादि शासनदेवों को जो समान कोटि में मानता है, वह दुर्गति का पात्र होता है। अन्य भी किसी आचार्य ने शासनदेवों की वन्दना-सहित पूजा करने की बात नहीं कही है। आचार्यों की वाणी के आधार पर ही स्व० ब्र० शीतलप्रसादजी ने 'जैन मित्र' में लिखा था-'जिन शासनदेव अर्हन्ततुल्य नहीं होते। वे हर दशा में साधर्मी-समान मानने योग्य हैं।'

साधर्मी का सम्मान करना क्या कोई गुनाह है? धरणेन्द्र, पद्मावती, चक्रेश्वरी, क्षेत्रपालादि शासनदेव धर्म, धर्मात्मा और धर्मायतनों के रक्षक के रूप में चर्चित हैं। राजकुमार नमि-विनमि, महासती सीता, जीवन्धरकुमार, धन्यकुमार, अनन्तमती, तपस्वी पार्श्वनाथ, सुदर्शन सेठ, स्वामी समन्तभद्र, पात्रकेसरी, विद्यानन्दि, आचार्य मानतुंग, श्रीमद् भट्टाकलंकदेव, वादिराज सूरि आदि के जीवन-प्रसंगों में इन देवों आदि के द्वारा की गई सहायता-वार्ता पुराणप्रसिद्ध है। प्रथमानुयोग ऐसे प्रसंगों से भरा पड़ा है। ऐसे धर्मबुद्धि शासनदेवों को साधर्मी मानकर आदर देना सम्यग्दर्शन के वात्सल्य अंग का ही परिचायक है। शासनदेवों को आदर देने से सम्यक्त्व दूषित हो जाएगा, ऐसी कल्पना ही हास्यास्पद है। धर्मात्माओं की पूजा-प्रशंसा शास्त्रानुमोदित है। पं० सदासुखलालजी ने विनयसम्पन्नता भावना का वर्णन करते हुए लिखा है कि अपमान तो किसी भी जीव का नहीं करना चाहिए। दूसरों का सम्मान देने वाला स्वयं सम्मान पाता है। जो दूसरों का अपमान करता है वह स्वयं भी अपमानित होता है। अपमान तो मिथ्यादृष्टि का भी नहीं करना चाहिए। एक सद्गृहस्थ के लिए परमार्थ विनय और व्यवहार विनय दोनों का ही निर्वाह करना उचित है।

'पूजा' शब्द की तरह ही 'देव' शब्द से भी कभी-कभी लोग उलझन में पड जाते हैं। जैन ग्रन्थों में 'देव' शब्द का प्रयोग वीतरागी जिनेन्द्र भगवान तथा देवगति के संसारी जीव दोनों के लिए होता है। पच परमेष्ठी, चैत्य, चैत्यालय, शास्त्र और तीर्थक्षेत्र, ये भी नवदेवता माने गए हैं। इसीलिए प्रकरण के अनुसार ही 'देव' शब्द का अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

आचार्य सकलकीर्ति ने अपने 'धर्म-प्रश्नोत्तर' ग्रन्थ में देव चार प्रकार के (देवाश्चतुर्विधाः) बताए हैं :—(1) देवाधिदेव अर्थात् धर्म-प्रवर्तक लोकनायक तीर्थकरदेव (2) सुदेव अर्थात् चतुर्निकायों के सम्यग्दृष्टि एवं जिनभक्त इन्द्रादि देव (3) कुदेव अर्थात् सभी मिथ्यादृष्टि देव तथा (4) अदेव अर्थात् परवंचक एवं धूर्त जिन्न, प्रेत आदि देव। जैन कथा-साहित्य में शासनदेवों की चर्चा जिस रूप में आई है, उससे उन्हें सुदेव मानना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं अन्य विविध विधि-विधानों में सम्भावित विघ्नों की शान्ति के लिए हमारे आचार्यगणों के द्वारा मिथ्यादृष्टि देवी-देवताओं का आह्वान किए जाने की बात हमारी समझ से परे है।

स्व० डा० हीरालालजी एक अन्वेषक विद्वान थे। वह 'भारतीय' संस्कृति में जैनधर्म का योगदान' पुस्तक में लिखते हैं—"भगवतीसूत्र के आधार पर ऐसा अनुमान होता है कि विवाह के पश्चात् प्रत्येक कुटुम्ब में शासनदेवों की प्रतिमाएं कुलदेवता के रूप में प्रतिष्ठित की जाती थीं। भारत के प्रायः सभी दि० जैन मन्दिरों में प्राचीन काल से ही जिनशासन देवता की स्थापना का प्रचलन था, आर्ष ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है।" डा० साहब के इस कथन को चुनौती देने योग्य बुद्धि हमारे पास तो कम-से-कम नहीं है।

यह सही है कि भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी (भवनत्रिक) देवों में सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं लेते, किन्तु पर्याप्तियों

यह सच है कि साधु को न तो कोई विवाद खड़ा करना चाहिए और न उसमें पड़ना चाहिए। वीतरागता की सुरक्षा और संवर्धन भी तभी संभव है।

के पूर्ण होने पर उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, ऐसा भी नियम नहीं है। जातिस्मरण, जिनबिम्बदर्शन, समवसरणविभूति-दर्शन आदि निमित्तों से उन्हें सम्यग्दर्शन हो सकता है, ऐसा तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। जो शासनदेव सच्चे जिनभक्त है तथा अपने उत्कट धर्मानुराग से अन्य साधर्मियों के उपसर्ग-निवारण तथा आचार्यो को अभय प्रदान करने में सदैव अग्रसर रहते हुए जिनधर्म की प्रभावना करते हैं, उनके मिथ्यादृष्टि होने की बात मन को जँचती नहीं है।

शासनदेव-देवियों का यथायोग्य सत्कार करने वाला मिथ्यादृष्टि हो जाएगा, ऐसी कल्पना करना भी उचित नही है। आगम में देवमूढ़ता को मिथ्यात्व कहा गया है। आचार्य समन्तभद्र लिखते है –

'वरोपलिप्स्याशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढ़मुच्यते ॥'

अपने समय के महान् नैयायिक एवं तार्किक विद्वान आचार्य प्रभाचन्द्रजी ने टीका करते हुए लिखा है–"ऐहिक फल की इच्छा रखने वाला जो पुरुष वांछित फल की आशा से रागी-द्वेषी देवो की उपासना करता है-उसका वैसा करना देवमूढ़ता है।" शासनदेवों के बारे में अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए वह आगे लिखते है–"जैन शासन में निरत देवता होने के कारण जब उनकी उपासना की जाती है अर्थात् उनका यथायोग्य सत्कार किया जाता है, तब वह सम्यग्दर्शन की मलिनता का कारण नहीं होता।"

सम्यग्दृष्टि का धर्माचरण कर्मक्षय के उद्देश्य से होता है। मेरा धर्म-कार्य ठीक से सधता रहे, उसके सम्पादन में विघ्न न आए, मात्र इस सदाशा से वह शासनदेवो का सत्कार करता है। उनसे भोगोपभोग-सामग्री की याचना उसके लिए प्रयोजनीय नहीं थी। दो नम्बर की दौलत मांगना अवश्य ही मिथ्यात्वबध का कार्य है। ऐसा उद्देश्य अभव्य जीव का ही हो सकता है। भव्य जीव तो आजीविका में भी निष्कपटता एवं न्यायोपार्जन का ही लक्ष्य रखता है। पापाचार से वह भयभीत रहता है। सम्यग्दृष्टि का तो यह दृढ़ विश्वास होता है कि हमारे पूर्वोपार्जित कर्म के अनुसार ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है। कोई दूसरा न हमें कुछ दे सकता है और न कुछ हमसे ले सकता है। यही कारण है कि कुदेवों की उपासना से वह अपने सांसारिक मनोरथ को पूर्ण करना नहीं चाहता।

एक प्रश्न यह भी पूछा जाता है कि किसी व्रती का अव्रती को सम्मान देना कहाँ तक उचित है? शासनदेव, दिक्पाल तथा यक्ष-दक्षिणी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होने से अव्रती ही होते है। देवपर्याय में वैसे भी संयम नहीं होता। इसलिए पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को अपने से नीचे पदवाले का सम्मान नही करना चाहिए। इसका समाधान यह है कि एक सम्यग्दृष्टि जीव दूसरे सम्यग्दृष्टि जीव का सत्कार कर सकता है। एक देशसंयत सम्यग्दृष्टि लोक व्यवहार में अन्य असंयतों तक का सत्कार करता हुआ देखा जाता है या नहीं? महापुराण मे एक प्रसग आता है, जिसके अनुसार सोलहवें स्वर्ग का अच्युतेन्द्र दूसरे ऐशान स्वर्ग के ललितांग नामक सामान्य देव का सत्कार करता है। अपने से छोटे का सत्कार करने से क्या उसके सम्यग्दर्शन मे कुछ कमी आ गई? आचार्य सोमदेव ने **'ततो यज्ञांश दानेन माननीया सुदृष्टिभिः'** लिखकर इस संबंध में अपना निर्देश दे दिया है।

आचार्य अकलंकदेव ने 'राजवार्तिक' मे लिखा है–**'शरणं द्विविधिम् लौकिकं लोकोत्तरं च। तत्र राजा देवता लौकिक-जीवशरणम्, पंचगुरवः लोकोत्तरजीव-शरणम्।''** इस निष्पत्ति के अनुसार शासन देवताओं को लौकिकशरण ही मानना चाहिए। लोकोत्तरशरण तो पंचपरमेष्ठी ही हैं। श्री कानजी भाई को जो भक्त सद्गुरुदेव कहते हैं, उनका वह कथन लौकिक दृष्टि से ही तो है। पारमार्थिक दृष्टि से तो सग्रन्थ होने से वह सद्गुरु हो ही नहीं सकते। यही व्यवस्था यहाँ

भगवान महावीर ने कहा है कि धर्म वह है जो चित्त को शान्त करे- हमारी उत्तेजनाओं का शमन करे और हमारी सहन शक्ति को बढ़ाए।

शासनदेवों के संबंध में लगा लेनी चाहिए। स्व० पं० गोपालदासजी बरैया ने लिखा है—"जिनका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, वे आपदाकुलित होने पर भी शासनदेवों की आराधना नहीं करते और जिनका सम्यगदर्शन सदोष है, वे करते भी है।" (बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ 83)

जहाँ तक साधुओं की बात है, वे शासनदेवताओं को धर्म-वृद्धिरूप आर्शीवाद देते हैं। उनकी धर्मरुचि का उनके द्वारा यही सत्कार करना कहलाएगा। आचार्य महावीरकीर्ति महाराज पद्मावती की मूर्ति को पीछी लगाकर आशीष देते थे। इस सन्दर्भ में श्रीमान् पं० सुमेरुचंदजी दिवाकर की एक पुस्तक 'आध्यात्मिक ज्योति' से हम एक मनभावन एवं मार्मिक प्रसंग को प्रस्तुत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहे हैं। आचार्य शान्तिसागरजी के स्वर्गारोहण के बाद अपने संस्मरण सुनाते हुए उनके सुयोग्य शिष्य श्री नेमिसागर महाराज ने कहा-हम सदा आचार्य महाराज को प्रणाम करते हैं। उनके चरणयुगल हमारे हृदय में विराजमान हैं। हम उनकी संयमयुक्त पर्याय को ध्यान में रखकर प्रणाम करते हैं। हम अव्रती देवपर्यायवाली आत्मा को कैसे प्रमाण करेंगे? आगम की जैसी आज्ञा है, वैसा हम करते हैं।

दिवाकरजी ने उनसे पूछा—'महाराज! यदि आचार्य महाराज का जीव यहा प्रत्यक्ष देवरूप में दर्शन दे तो क्या आप उनको नमस्कार नहीं करेंगे?' महाराज ने कहा—'हाँ, हम उन्हें नमस्कार नहीं करेंगे। इस पर पण्डितजी ने पूछा—'अच्छा यह बताइए कि वह सुरराज की पर्याय वाली आचार्य महाराज की आत्मा आपको प्रणाम करेगी या नहीं? उन्होंने कहा—'अवश्य, आगम की आज्ञा में आचार्य महाराज का सदा विश्वास रहा। इसलिए वह सकल संयम की वन्दना अवश्य करेंगे, अन्यथा उनकी विशुद्ध श्रद्धा को दोष लगेगा।' (आध्यात्मिक ज्योति : पृष्ठ 227)

क्या इस इतने स्पष्ट कथन के बाद भी कुछ आलोच्य हो सकता है, सुधीजन कृपया इस पर विचार करें। जैसे विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से दान मे अन्तर पड़ता है, वैसे ही पूजक, पूज्य, पूजा-सामग्री और पूजा-विधि के अनुसार वहाँ भी अन्तर मानना चाहिए। शासनदेवों की पूजा तीर्थकर-पूजा के समान अष्ट द्रव्यों से नहीं होती, उन्हें केवल अर्घ्य चढ़ाया जा सकता है। स्व० पं० मक्खनलालजी शास्त्री के अनुसार भी एक राजा और एक भृत्य के सत्कार में जैसा अन्तर है, वैसा ही जिनेन्द्र भगवान और शासनदेवों के सत्कार मे मानना चाहिए।

इन शब्दों के साथ हम प्रस्तुत लेख को विराम देते हैं। यह निवेदन करना शायद अनुचित नहीं होगा कि हम स्वयं शासनदेव-पूजा के प्रति आग्रही नहीं है और न इसे धार्मिकता का राजमार्ग ही मानते हैं, किन्तु इस प्रकरण को लेकर विसंवाद उत्पन्न करने के प्रयासों को भी उचित नहीं समझते। वस्तुस्थिति को तोड़—मरोड़कर पेश करना, उसे अतिरंजित रूप देना या शासनदेवों के अस्तित्व को ही न मानना बुद्धिसम्मत नहीं है। शासनदेव-पूजा के बारे में कहीं-कहीं चल रही विकृतियों का हम कदापि समर्थन नहीं करते। विवेक-शून्य क्रियाओं का अनुमोदन करना भी नहीं चाहिए। विवेक तो धर्म का प्राण है। 'भगवती आराधना' के अनुसार जिसके द्वारा या जिसके विषय से अशुभ उपयोग हुआ है, उसके निराकरण करने और उससे अलग होने को विवेक कहते हैं। श्रावक को अपनी हर क्रिया में इसका ध्यान रखना ही होगा। शासनदेव जिनशासन के सेवक हैं, स्वामी नहीं। स्वामी तो त्रिभुवननाथ श्री मज्जिनेन्द्रदेव ही हैं। शासनदेवों का दर्जा एक साधर्मी का है और एक साधर्मी के रूप में ही उनका सत्कार करने की बात आगम सम्मत है। इसमें और इतने में कोई गुनाह भी नहीं है। इत्यलम्।

(जैन गजट / 4 मार्च, 86)

□

समुद्र की तरह यह मन लवणाकार भी है और रत्नाकर भी, इसे संभालने पर सफलताएं चरण चूमती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

जाति-व्यवस्था और सामाजिक संगठन

इसमें तो हमें मतभेद नहीं होना चाहिए कि जाति-व्यवस्था अनादि काल से है। जातियों का नाम-परिवर्तन तो सम्भव है, किन्तु उनका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं हो सकता। गांधीजी ने 'शूद्र' को एक नया नाम दे दिया 'हरिजन'। यहां नाम बदलने से मूल नष्ट नहीं हुआ। इसी प्रकार पहले इक्ष्वाकु, सूर्यवश, चन्द्रवंश आदि थे तो अब खण्डेलवाल, अग्रवाल, जैसवाल आदि हैं। यहाँ यह संकेत कर देना भी उचित ही होगा कि अमरकोश, मेदिनीकोश आदि के अनुसार सन्तति, गोत्र, कुल, वंश, अभिजन आदि शब्द 'जाति' के ही वाचक हैं। ये सभी पर्यायवाची है।

जैनदर्शन में सप्त परमस्थानों का जो महत्त्व है, वह किसी से छिपा नही है। अन्तिम परमस्थान 'निर्वाण' साध्य है और उसका आधार सज्जातित्व है। प्रथम परम स्थान 'सज्जातित्व' के बिना छह परमस्थानों की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिनका जाति-कुल शुद्ध होता है, तीर्थकरों का जन्म उन्हीं के यहाँ होता है। जाति-कुल-विशुद्ध ही दीक्षा के पात्र हैं तथा उत्तम देश-जाति-कुल में उत्पन्न व्यक्ति ही महापूजा में सम्मिलित हो सकते हैं। मोक्षमार्ग की सुरक्षा जातियों की सुरक्षा में ही निहित है।

आज कुछ लोग सभी जातियों को एकमेक करने का बीड़ा उठा रहे हैं, किन्तु ऐसा अभी हजारों वर्षो तक नहीं होगा। आँशिक सफलता तो मिल सकती है, किन्तु जाति-व्यवस्था का सर्वथा लोप नहीं हो सकता। जाति-व्यवस्था के नष्ट हो जाने पर तो मोक्षमार्ग ही बन्द हो जाएगा। बोधिदुर्लभ भावना में इसीलिए हम यह विचार निरन्तर करते हैं कि यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ है और उसमें भी उत्तम कुल तथा उत्तम जाति का मिलना तो बहुत ही कठिन है। उत्तम जाति की प्राप्ति महान् सौभाग्य या पुण्योदय का फल है।

'मनुष्यजातिरेकैव' का कथन संग्रह नय की अपेक्षा से है। इसका सीधा-सा अर्थ मात्र इतना ही है कि मनुष्यत्व की अपेक्षा मनुष्य गति के सभी जीव एक है, जैसे देवगति के सभी जीव देवत्व की दृष्टि से समान हैं। इस कथन से यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि उनमें जातिगत भेद नहीं होते। जिस प्रकार देवों में भवनवासी, व्यन्तरादि जातिया है, उसी प्रकार मनुष्यों में भी जैन, ब्राह्मणादि जातियाँ हैं। जैनियो मे प्राय. 84 जाति-उपजातियो का पाया जाना स्वीकार किया जाता है। गोम्मटसार में मनुष्यों के बारह खरब कुल बताए गए है।

विवाह सजातियों में हो या विजातियों में, यह चर्चा पुरानी पड चुकी है। पिछले पाच-सात दशको में विद्वानो ने इस पर बहुत-कुछ लिखा है। अब तो जो भी इस प्रसंग को अखबारो में या मंचों पर बार-बार उठाते या उछालते है, वे पुरानी दलीलों का ही पिष्टपेषण कर रहे है। वही राजा-महाराजाओ के पौराणिक किस्से सुना-सुनाकर अपने-अपने पक्ष का समर्थन या विरोध किया जा रहा है। हम इस विषय में अपना माथा नहीं खपाना चाहते। बडे लोगो के दृष्टान्तो के चक्कर में पड़कर तो किसी दिन तथाकथित प्रगतिशील लोग तद्भव मोक्षगामी युधिष्ठर का उदाहरण देकर जुआ खेलने को भी उचित ठहरा सकते हैं। आज भी लखपतियों के द्वारा ही विजातीय विवाह सम्पन्न किए जा रहे है। जिन इक्का-दुक्का निम्न-मध्यम वर्ग के लोगों ने उनके उकसाने पर ऐसे विवाह यदि किए भी हैं तो वे आज पहले से ज्यादा दुःखी हैं। हमारा कहना तो यह है कि वैवाहिक क्षेत्र में जो भी प्रथा पिछले सैकडों-हजारो साल से प्रचलन में हैं, उसका आन्दोलन के ढंग पर विरोध करके समाज में तनाव पैदा नहीं किया जाना चाहिए।

हमें आश्चर्य होता है कि कुछ लोग जाति-व्यवस्था और विवाह को सामाजिक संगठन के नारे से जोड़ने लगे हैं। कहा जा रहा है कि सभी जातियों में यदि परस्पर विवाह होने लगें तो समाज में एकता स्थापित हो जाएगी, सारे झगड़े खत्म हो जाएंगे। समाज में व्याप्त वर्तमान कलह के लिए कुछ सभा-समितियाँ, महासभा की सजातीय विवाह की नीति को जिम्मेदार मानती हैं। हम उनके इस विचार से सहमत नहीं है।

मन ही हमारी अशान्ति का वाहक है। यदि मन पर अंकुश लग जाए तो परिवार, समाज तो क्या, सारी सृष्टि में शान्ति हो सकती है।

प्रेम-भाव और सामाजिक एकता सम्यग्दर्शन के वात्सल्य अंग के पालन पर निर्भर है। वात्सल्य अंग का संबंध विवाह प्रथा से है ऐसा तो हमने कहीं नहीं पढ़ा।

यदि ठाकुरों और ब्राह्मणों के साथ किसी जैनी का विवाह-संबंध नहीं है तो क्या उनमें प्रेम-भाव भी नहीं हो सकता? किसी भी शहर में हिन्दू-मुसलमान-ईसाई सभी रहते हैं। उनमें भावनात्मक एकता के लिए क्या यह कहा जाएगा कि वे आपस में रोटी-बेटी के रिश्ते कायम करें? यह कल्पना विश्व-सरकार की कल्पना के समान ही निःसार है। सारी दुनियां की एक सरकार हो, यह विचार सुनने में कितना ही अच्छा लगता हो किन्तु व्यावहारिक नहीं है। उसी प्रकार सभी जातियों में वैवाहिक संबंधों के विस्तार का विचार भी सतही ही है। इससे जो जटिलताएं उत्पन्न होंगी, उस ओर विचारकों का ध्यान नहीं है। कम-से-कम सामाजिक संगठन की दृष्टि से तो इस विचार का कोई सरोकार ही नहीं है। प्रेम विवाह, कोर्ट मैरिज, दहेज आदि के कारण विवाह-संस्था आज विकृत हो चुकी है। उसकी वजह से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। घर-घर में खींचतान है। तलाक की घटनाएं जैनियों में भी होने लगी हैं। इन विनाशकारी प्रवृत्तियों और कुप्रथाओं के विरुद्ध सभी संस्थाओं को एकजुट होकर पूरी ताकत से आन्दोलन चलाना चाहिए, किन्तु वे सजातीय-विजातीय का शंख बजा-बजाकर एक-दूसरे पर कीचड़ उछाल रही हैं। संगठन का अलख जगाने वाले स्वयं द्वेषपगी भाषा बोलकर विघटन के बीज बो रहे हैं। इस नुक्ते पर भी ठण्डे दिल से विचार किया जाना सामयिक ही होगा।

जाति-भेद विघटन कराने के लिए नहीं, मनुष्यों को नियन्त्रित करने के लिए है। जातीय संगठनों (पंचायतों) के भय से लोग अनर्थों से बचे रहते हैं। दहेज कम मिलने पर बहुओ को सताने/जलाने वालों को अ० भा० संस्थाओं, महासभा, महासमिति, परिषद आदि से उतना डर नही लगता, जितना स्वाजातीय सभाओं से लगता है। बहुत से लोग बूढ़े माता-पिता की सेवा इस लोक-लाज से करते हैं कि जाति-भाइयों में उनकी हँसी न उड़े, कही कोई यह न कहे कि यह कैसा दुष्ट है, जो बुढ़ापे में अपने माता-पिता को तंग करता है। जाति में बदनामी के डर से एक भाई दूसरे भाई का तथा एक पिता अपने पुत्रों का हक नहीं छीन पाता। जाति-भेद मिट गया तो यह अंकुश समाप्त हो जाएगा। अंकुश हट जाने पर समाज मे कलह बढ जाएगी।

सभी धर्मो में कुलीनता के गुण गाए हैं। प्रायः सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति बड़े ऊँचे घराने का है। यह कुलीनता या घराना आखिर है क्या वस्तु? यह सज्जातित्व का ही दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति गोत्रकर्मानुसार कुलक्रम या जातिक्रम से अच्छे बुरे-संस्कार लेकर आता है। जिस घर में बाबा वैद्यक (चिकित्सा) करते थे, उनके लड़के और अब नाती भी वैद्यक करते देखे जाते हैं। बवासीर, कुष्ट, वात-व्याधि सरीखे कुछ पैतृक रोग हैं, जो सन्तान क्रम से चले आते हैं। ऐसे ही अनेक संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते हैं। प्रकृति-प्राप्त आम्नाय का अपना अलग ही महत्त्व है। गाय का दूध हलका और भैंस का दूध भारी होता है, भले ही गाय को पुष्ट पदार्थ खिलाए गए हों और भैंस को मात्र भुस या तिनके ही! जाति-भेद में विविध गुणों के विकास की सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। जातियों के उत्कर्ष से समाज का अपकर्ष कभी नहीं होता।

जाति-व्यवस्था बुरी नहीं, जातिवाद बुरा है। जातिवाद से दृष्टि संकुचित बनती है और वही संकुचित दृष्टि समाज के अभ्युदय में बाधक है। सम्मेदशिखरजी के मुकद्मे में सभी जातियों ने एकजुटता का परिचय दिया था। अभी पिछले दिनों पूज्य एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के नेतृत्व में इस दशक का जो सबसे बड़ा सत्याग्रह-संघर्ष कुम्भोज में हुआ, क्या उसमें किसी जाति की ओर से कोई अड़चन आई? जब भी जैन समाज पर कोई संकट आता है, हारी-बीमारी का या साम्प्रदायिक विद्वेष अथवा अपने स्वत्वों की सुरक्षा का तो सभी जातियाँ एक हो जाती हैं। पंचकल्याणक, महावीरजयन्ती आदि के उत्सव सम्पूर्ण जैन समाज के उत्सव हैं, किसी एक जाति-विशेष के नहीं। भारतीय सेना में जातियों के नाम पर रेजीमेण्ट जैसे गोरखा, जाट, डोंगरा, सिख रेजीमेण्ट आदि बने हुए हैं तो क्या इससे देश की सुरक्षा को कोई खतरा है? गोरखा, जाट, सिख आदि की वीरता और देशभक्ति की अपनी-अपनी उज्जवल परम्पराएँ हैं और वे सब मिलकर देश को

जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियां शान्ति से निर्भय होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषाय रूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकता।

कमजोर नहीं करतीं, मजबूत बनाती हैं। इसी प्रकार भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म के प्रति निष्ठावान विभिन्न जातियाँ समाज को समुन्नत ही करती हैं, कभी उसकी अवनति का कारण नहीं बनती।

जैसे हाथ में पाँच उँगलियाँ होती हैं, सभी अलग-अलग, उसी प्रकार समाज में अनेक जातियाँ हैं। जिस प्रकार, उँगलियाँ हथेली से जुड़ी रहती हैं, उसी प्रकार जातियाँ यदि धर्म से जुडी रहें तो फिर समाज मे अशान्ति हो ही नहीं सकती। जाति कोई भी क्यों न हो, उसे **'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च'** के सूत्रानुसार आचरण करना चाहिए। जैन सिद्धान्त के मानने वाले मनुष्यों पर ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंगों और वृक्षों तक पर दया करते हैं। वहाँ संकीर्णता का भला क्या काम?

जातिवाद की भाँति ही जाति-मद बुरा है। झगड़ों की जड़ जातीय अहंकार ही है। अमुक जाति ऊँची है और अमुक नीची, ऐसा वर्गीकरण कोई सकषाय व्यक्ति ही कर सकता है। हमारे आचार्यो ने जाति को नहीं, जाति-मद को अनुचित कहा है। मद हमेशा ऊँची चीज का ही होता या हो सकता है। रत्नों को पाकर ही कोई गुमान करता है, कंकणों पर भला किसे अभिमान होगा? जाति भी ऊँची चीज है। उसकी सुरक्षा कीजिए, किन्तु जाति-मद से बचिए।

मेरी जाति में अमुक-अमुक आचार्य, मुनि, त्यागी, पण्डित, दानवीर या समाजसेवी हुए, ऐसा कहना-सुनना अभिमान नहीं, स्वाभिमान है। इसमें उन जैसे बनने की प्रेरणा ग्रहण करने का भाव है। इससे समाज पर कोई संकट कैसे आ सकता है? हाँ करवंचकों, रिश्वतखोरों आदि की शेखी बघारना मद है और वह बुरा है।

बन्धुवर! इस भ्रम को हृदय से निकाल बाहर कीजिए कि समाज में एकता इसलिए नही है, क्योंकि विवाह अपनी-अपनी जातियों में ही होते हैं। विवाह अलग बात है और संगठन अलग। विवाह मात्र दो घरानों का मिलन है, किन्तु संगठन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। दो भिन्न-भिन्न जाति या धर्म से जुडे लोगों में अटूट प्रेम हो सकता है, किन्तु दो सगे भाई भी एक होकर नहीं रह पाते। एक ही बाबा की सन्तान कौरव और पाण्डवों का उदाहरण हमारे सामने है। झगड़े राग-द्वेष की उपज हैं, विवाह से उनका कुछ भी लेना-देना नहीं।

संगठन कौन नहीं चाहता? झगडे या कलह के महत्त्व पर बोलते हुए हमने आज तक किसी विद्वान या नेता को नहीं सुना। सब संगठन के स्वर ही अलापते हैं, किन्तु यह आवाज कण्ठ से निकलती है, दिल से नही। दिल से निकले तो समाज में बिखराव तीन काल में कभी हो ही नहीं सकता। जब सगठन की चर्चा होती है तो महासभा और जैन गजट परिवार भी प्रसिद्ध फिल्म-संगीतकार श्री रवीन्द्र जैन के स्वर में स्वर मिलाकर कहना चाहेगा:–

"हम नहीं दिगम्बर-श्वेताम्बर, तेरापंथी स्थानकवासी
सब एक पंथ के अनुयायी, सब एक देव के विश्वासी
हम जैनी, अपना धर्म जैन, इतना ही परिचय केवल हो
हम यही कामना करते हैं, ऐसा आने वाला कल हो"

यही नहीं, जब भी किसी प्रतिपक्ष से निपटना होगा तो हम धर्मराज की भाषा में डंके की चोट इस तरह बोलेंगे कि "हम (पाण्डव) भले ही पाँच और वे (कौरव) सौ हैं, किन्तु तुम्हारे लिए तो एक सौ पाँच हैं। हमारी शक्ति को कभी कम करके मत आँकना।" किन्तु, विवाह के क्षेत्र में हम सदा सज्जातित्व की सुरक्षा की ही बात कहेंगे, उससे कभी विरत नहीं होंगे। महासभा पर पिछड़ेपन अथवा विघटनवादी होने का आरोप लगाने वाले जरा अपने गिरेबान में भी झाँककर देखें कि वहाँ भी कितने दाग हैं, कषाय के और द्वेष के। आइए, उन दागों को मिटाने का संकल्प हम सब एक साथ लें। एक मायाचार-विहीन सात्विक समाज की संरचना में अपनी-अपनी भागीदारी ईमानदारी से निभाएँ।

(जैन गजट / 15 मई, 1986)

☐

जिस प्रकार उबलते हुए पानी में अपनी परछाई नहीं दिखती, उसी प्रकार तीव्र कषाय के उदय में शुद्धात्मदर्शन नहीं हो सकता।

विधवा-विवाह आगमानुकूल नहीं

चाँदभाई सेठी पारमार्थिक ट्रस्ट, 8-अरविन्द पार्क, टोंक फाटक, जयपुर-5 द्वारा प्रकाशित चार पृष्ठ का एक पैम्पलेट हमे प्राप्त हुआ है, जिसका शीर्षक है–'विधुरों के समान विधवाओं को भी पुनर्विवाह का अधिकार है'। उसमें कहा गया है–'देवगति में भी विधवा-विवाह होता है। एक देवी के पति के मरने पर दूसरा देव उसका पति बन जाता है।' सबसे पहले तो ऐसा लिखने वालों को यह जानना चाहिए कि 'विवाह' कहते किसे हैं?

राजवार्तिक के अनुसार विवाह की परिभाषा है–**'सद्वेद्यस्य चारित्रमोहस्य चोदयात् विवहनं......कन्यावरणं विवाह इत्याख्यायते'** अर्थात्-सातावेदनीय और चारित्रमोहनीय के उदय से कन्या के वरण करने को विवाह कहते हैं। सागारधर्मामृत में कहा गया है कि धर्म, सन्तान और कुल की उन्नति के लिए कन्या को विवाह कर लाना प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है। यहाँ दो बातें दृष्टव्य है–(1) विवाह कन्या से होता है। विवाह की एक प्रमुख रस्म का नाम 'कन्या-दान' है। विवाह के बाद कन्यापने का विसर्जन हो जाता है तथा (2) विवाह केवल गृहस्थों का कर्त्तव्य है और गृहस्थ संज्ञा मनुष्यों से ही पाई जाती है। देव, नारकी और तिर्यचों में भी कोई गृहस्थ कहलाता है क्या? वहाँ/उनमें विवाह नहीं होते, विवाह-प्रथा का प्रचलन केवल मनुष्य-जाति में ही है। देवों में विवाह बतलाना मानसिक दिवालियेपन का द्योतक है।

विधवा-विवाह के समर्थन मे लेखक का यह तर्क भी निहायत बचकाना है–"भोगभूमि में तो सगे भाई-बहन ही पति-पत्नी बन जाते थे और उसे उस समय की समाज-व्यवस्था मानकर शास्त्रों में न तो उसे व्यभिचार माना जाता था और न उसकी सन्तान भगवान ऋषभदेव को व्यभिचारजात कहा गया है।" पुरुष-प्रधान समाज-व्यवस्था को कोसते हुए लेखक महोदय लिखते है कि पुरुष हजारों स्त्रियों से विवाह करके भी धर्मात्मा कहला सकता था। इसके लिए उन्होंने सम्राट् भरत, जिनके 66000 रानियॉं थीं, का उदाहरण दिया है। लेखक की मशा हमारी समझ में यह तो हर्गिज नहीं ही होगी कि भोगभूमि की तरह अब कर्मभूमि मे भी पुनः भाई-बहनों का विवाह होने लगे अथवा स्त्रियों को भी हजारो पति रखने का अधिकार मिल जाए। ऐसी दृष्टि से तो लेखक उपहास का ही नहीं, दया का भी पात्र बन जाएगा।

लेखक महाशय ने कुछ बाते बेसिर-पैर की भी हॉक दी है, जैसे–'स्वर्गीय आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के भतीजे ने भी विधवा-विवाह किया था।' भाई, उस भतीजे का नाम भी बता देते? साथ ही इस सवाल का जवाब भी देना था कि किसी भाई या भतीजे द्वारा विधवा से शादी कर लेने से ही क्या कोई प्रथा धर्मानुमोदित मान ली जाए? लेखक ने यह लिखकर तो सचमुच झूठ बोलने में अपनी कृपणता का अच्छा परिचय दिया है–'दिगम्बर जैन महासभा की कार्यकारिणी समिति के अनेक सदस्यों ने भी अपने परिवार में विधवा-विवाह किए हैं। एक-दो ने नहीं, अनेक ने। लेखक की इस खोज के लिए क्या 'पद्मश्री' जैसी कोई उपाधि उसे नहीं मिलनी चाहिए?

आज सुधारवाद की झोंक मे कुछ अन्य लोग (जिनमें 'शास्त्री' की उपाधि के धारक विद्वान तक शामिल हैं) भी कभी-कभी विधवा-विवाह के समर्थन में अपने वक्तव्य दे देते हैं। उन्हें हम याद दिलाना चाहते हैं कि स्व० पण्डित गोपालदासजी बरैया, जिन्होंने दस्सा-पूजन तक का समर्थन किया था, भी विधवा विवाह के घोर विरोधी थे। उन्होंने लिखा है–"विधवा-विवाह का अर्थ है उत्तम कुलवालों को खोटी दलीलों से विषयासक्त करके घृणित कार्यो की ओर उत्साहित करना और भारतीय नारी के शील को भंग करना। (जैनमित्र वर्ष 3/7-8 पृष्ठ 17)

स्व० श्री गणेशप्रसाद वर्णी भी इस अर्थ में तो प्रगतिशील थे ही कि उन्होंने हरिजन-मन्दिर-प्रवेश का समर्थन किया था। विधवा-विवाह का विरोध करने के लिए उन्हें भी एक बार बनारस से बीना (बारहा) आना पड़ा था, जहाँ विधवा-विवाह के अनन्य पोषक स्व० ब्र० शीतलप्रसादजी की उपस्थिति में परवार सभा के अधिवेशन में विधवा-विवाह का प्रस्ताव पारित होने वाला था। जब वर्णीजी बीना पहुँचें तो ब्रह्मचारीजी ने इच्छाकार की। वर्णीजी ने कहा–"ब्रह्मचारीजी! मैं इच्छाकार नहीं करना

कषाय एक ऐसा जहर है, जो आत्मा के सभी गुणों को विकारक बना देता है, इस जहर से बचिए, यही सुख का रास्ता है।

चाहता, क्योंकि आप ऐसे महापुरुष होकर भी विधवा विवाह के पोषक हो गए। मुझे खेद है कि आपने यह कार्य हाथ में लेकर जैन समाज को अधःपतन की ओर ले जाने का प्रयास किया है। आप जैसे मर्मज्ञ को यह उचित न होगा।.....लोगों के हृदय में आप जिस पाप की प्रवृत्ति करना चाहते हैं, अभी उसकी वासना तक नहीं है। पंचम काल का अभी दसवाँ हिस्सा ही गया है। अभी इतने कलुषित संस्कार नहीं, अतः मेरी प्रार्थना पर मीमांसा करने की चेष्टा करिए।....इसका पक्ष लेना केवल पाप का पोषण होगा। आप भी अन्त में पश्चाताप करेंगे। आपका यश समाज में बहुत है, उसे कलंकित करना सर्वथा अनुचित है। जो आपके पथ के पोषक हैं, वे एक भी आपके साथी न रहेंगे। यदि आपको विश्वास न हो तो उनके घर से ही इस प्रथा को चलाइए, सब पता चल जाएगा।" (मेरी जीवन-गाथा, प्रथम भाग पृष्ठ 153, 355)

वर्णीजी सरीखे शास्त्रज्ञ एवं मृदुभाषी सन्त को भी विधवा-विवाह के प्रसग को लेकर किंचित कठोर शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, यह कोई कम गम्भीर बात नहीं है। बीना (बारहा) की उस परवार सभा में जनता के विरोध को देखते हुए वह प्रस्ताव लाया ही नहीं गया। अपनी आत्मकथा में वर्णीजी ने लिखा है–"दूसरे दिन आम सभा हुई। जनता की सम्मति विधवा-विवाह के निषेध पक्ष में थी। यदि प्रस्ताव आता तो लडाई होने की सम्भावना थी, अतः प्रस्ताव न आया।"

जैन ग्रन्थों में एक पतिव्रतधारी एवं आजन्म ब्रह्मचर्यधारी नारी ही प्रशंसनीय मानी गई है। वही, केवल वही, तीर्थंकर, बलभद्र, चक्रवर्ती आदि की जन्मदात्री होती है। हमारे शास्त्रों में ऐसे उदाहरणों की भरमार है, जिनके अनुसार अनेक जैन विधवा नारियाँ अपना समस्त जीवन तपश्चरण और धर्मध्यान में व्यतीत करती थीं। भट्टारकों की स्थापना से पूर्व वि० सं० 1070 में रचित 'धर्म-परीक्षा' ग्रन्थ में धनश्री और लक्षणवती नामक ऐसी विधवाओं की चर्चा है, जिन्होंने जिनदीक्षा लेकर सच्चे हृदय से समाज की सेवा की थी। आचार्य श्री अमितगति ने लिखा है–"जो भी विपरीत कार्य (बेजोड़ विवाह, विधवा-विवाह आदि) होते हैं, वे सत्यानाश के लिए ही होते हैं।" भगवती आराधना मे लिखा है–

'वेधव्वतिव्वदुक्खं आजीवं णिंति काओ वि'

अर्थात्–कितनी ही स्त्रियाँ वैधव्य का तीव्र दुःख आजीवन धारण करती थीं।

विधवा-विवाह के समर्थन में आगम में एक शब्द तक नहीं मिलता। फिर भी हमारे आज के सुधारक अपनी दिमागी कसरत से बाल की खाल निकालने और बालू में से तेल काढ़ने की कोशिशें करते है, किन्तु ये और ऐसी सब कोशिशें हास्यापद ही हैं।

प्राचीन आदिनाथ-युग से लेकर वर्तमान महावीर-युग तक समाज मे विधवा-विवाह का प्रचलन कभी नहीं रहा। लेखक का यह लिखना कि 'चरणानुयोग के प्राचीन शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा है कि पुरुषों को तो एक पत्नी के मरने पर दूसरा विवाह करने का अधिकार है और स्त्री को पति के मरने पर पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं है, केवल एक कपोल कल्पना है। शास्त्रों में विधवा-विवाह-निषेध के अनेक उद्धरण हैं। आदिपुराण मे अर्ककीर्ति ने सुलोचना के प्रति कहा था–

"नाऽहं सुलोचनार्थ्यस्मि मत्सरो मच्छरैरयम।
परासुरघुनैव स्यात्किं विधवया तया"

अर्थात्–अब ईर्ष्या या मात्सर्य से क्या लाभ? यद्यपि मैं अभी जयकुमार को प्राण–रहित कर सकता हूँ, परन्तु तब तो सुलोचना विधवा हो जाएगी, उससे फिर मेरा क्या प्रयोजन?

स्व० पं० नाथूराम प्रेमी ने 'जैन साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि ग्यारहवीं सदी में भी जैन लोकमत विधवा-विवाह का विरोधी था। तापसों के शास्त्र में एक स्थान पर विधवा-विवाह का विधान है–

जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों, हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बांट सकता है, लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती है।

"पत्यौ प्रव्रजिते क्लीबे प्रनष्टे पतिते मृते,
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते"

अर्थात्–पति के लापता होने, मर जाने, साधु हो जाने, नपुसंक होने और पतित होने पर इस तरह इन पाँच आपत्तियों में स्त्रियों के लिए दूसरा पति करने की विधि है। ऋषियों ने इसी आधार पर किसी मण्डप कौशिक नामक व्यक्ति को विधवा-विवाह की अनुमति प्रदान की। इन प्रसंगों का उल्लेख करते हुए 'धर्म परीक्षा' के ग्यारहवें परिच्छेद में यह श्लोक आया है:–

"तेनातो विधिना ग्राहि तापसादेशवर्तिना
स्वयं हि विषयो लोलो गुर्वादेशेन किं पुनः"

अर्थात्–तब उसने ऋषियों की आज्ञानुसार एक विधवा का ग्रहण किया। यह जगत बिना उपदेश ही विषयों की लालसा रखता है सो गुरुजनों की आज्ञा होने पर तो कहना ही क्या?

यहाँ आचार्य श्री अमितगति ने तापसियों के कथन का मजाक उड़ाया है। इससे सिद्ध है कि विधवा-विवाह जैनाचार्यो को कभी मान्य नहीं रहा।

इतर उच्चकुलीन समाज में भी विजातीय और विधवा-विवाहों का चलन नहीं रहा है। ग्रीक–यात्री मेगस्थनीज ने अपने यात्रा-विवरण में लिखा-"भारत में अपनी जाति के बाहर किसी के भी विवाह का अनुमोदन नहीं किया जाता" (No one is allowed to marry out of its own Caste)। ईसा की सातवीं सदी में ह्वेनसांग नामक एक चीनी यात्री भारत आया था। वह अपने संस्मरणों में लिखता है–"कोई स्त्री एक विवाह के बाद दूसरा पति कदापि नहीं कर सकती" (A women once married can naver take an other husband)। इन ऐतिहासिक साक्षियों के रहते हुए भी विजातीय या विधवा-विवाहों का समर्थन एक व्यर्थ का प्रलाप ही माना जाएगा।

जैन समाज में वर्तमान में विधवा–विवाह की आवाज सबसे पहले स्व० श्री दयानन्द गोयलीय ने उठाई थी, किन्तु वह सर्वथा अनसुनी रही और कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकी। बाद में ब्र० शीतलप्रसादजी ने इसके लिए जोरदार आन्दोलन छेडा। प्रारम्भ में उनके मन में भी बड़ी हिचकिचाहट थी। उनका कहना था कि वह विधवा-विवाह के समर्थक अवश्य है, किन्तु अपने विचार सार्वजनिक मंच से प्रकट नहीं कर सकते। हाँ, मरने के पहले वह यह बात लिख जरूर जाएँगे। बाद में लोगों के द्वारा अत्यधिक उकसाए जाने पर वह खुल्लम-खुल्ला सामने आ गए, किन्तु उन्होंने हमेशा यही कहा कि 'विधवा-विवाह जैनधर्म के विरुद्ध है, परन्तु समय की माँग है।' अपने इस मन्तव्य के कारण वह जैन समाज में काफी निन्दित हुए। वर्णीजी की प्रताड़ना की चर्चा हम पहले कर ही चुके हैं।

पाराशर स्मृति में भी इससे मिलता-जुलता कथन है, किन्तु वहाँ 'पत्यौ' का अर्थ -पतिरिव पतिः' = जो पति के समान हो अर्थात् जिसके साथ मगाई की गई हो किन्तु विवाह नहीं हुआ हो, किया गया है। इस व्युतिपत्ति से तो विधवा-विवाह का विरोध ही ध्वनित होता है।

स्व० पं० नाथूराम प्रेमी भी विधवा-विवाह के समर्थक हो गए थे। उन्होंने अपने भाई का भी विधवा-विवाह कराया और उसमें शामिल हुए। 'जैन हितैषी' में जब उन्होंने विधवा-विवाह के पक्ष में लेख छापना शुरू किया तो पत्र का बहिष्कार हुआ। उसकी ग्राहक-संख्या एकदम घट गई तथा प्रेमीजी को काफी घाटा उठाना पड़ा। अपने इन विचारों के कारण समाज में उसका मान भी बहुत कम हो गया।

विधवा-विवाह आन्दोलन की खेती में सबसे ज्यादा खाद-पानी दिया पं. दरबारीलालजी ने, जो 'स्वामी सत्यभक्त' के

[illegible]

नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने खींचतान कर विधवा-विवाह को ब्रह्मचर्याणुव्रत का पूरक सिद्ध करने की नाकाम कोशिश की। जयपुर से प्रकाशित जिस पैम्पलेट की चर्चा हमने पिछले लेख में की है, उसमें भी उन्हीं के तर्कों को दोहराया गया है, लेकिन ध्यान रहे कि आगम के आलोक में हर विवाहित पुरुष ब्रह्मचर्याणुव्रत का धारक नहीं माना जाता और ब्रह्मचर्याणुव्रत का धारक त्रिकाल में विधवा विवाह नहीं कर सकता। विधवा-विवाह और ब्रह्मचर्याणुव्रत को आपस में गड्डमड्ड करना अति साहस ही कहा जाएगा।

स्वामी सत्यभक्त के द्वारा अपने पत्र 'जैन जगत' के माध्यम से किये गये विधवा-विवाह के जबर्दस्त प्रचार की भी समाज ने घोर उपेक्षा की, जो स्वयं उनके ही इन शब्दों में स्वतःसिद्ध है–

"विधवा-विवाह के समर्थन में लेख लिखने की हिम्मत किसी में न थी और विरोध में भी कोई लेख भेजता नहीं था। ऐसी दशा में यह सारा नाटक मुझे ही करना पड़ा। कल्पित नामों से मैंने विधवा-विवाह के विरोध और समर्थन में लेख लिखने शुरू किए। कभी कल्याणीदेवी के नाम से विधवा-विवाह का विरोध करता तो कभी सव्यसाची के नाम से विधवा-विवाह के समर्थन में लिखता।" उन्होंने यह भी लिखा है कि वह स्वयं ही ब्रह्मचारीजी की ढाल भी थे और तलवार भी। ब्रह्मचारीजी से जब कोई विवाद करता तो वह उससे कह देते कि सत्यभक्त से मिलो। (बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ–पृष्ठ 104)

सत्यभक्तजी ने प्रकारान्तर से यहाँ अपनी घोर असफलता ही स्वीकार की है। धर्मप्राण हमारे प्रिय पाठकों को इन सब प्रकरणों से विधवा-विवाह के प्रति जनता की रोषपूर्ण उदासीनता का परिचय नहीं मिलता है क्या? यह एक अच्छी बात है जो आगम-विरुद्ध तो है ही, साथ ही लोक-विरुद्ध भी है। उसे पाप-भीरु जनता कभी स्वीकार नहीं कर सकती।

सच तो यह है कि आज विधवा-विवाह के आन्दोलन की नहीं, विधवाओं के प्रति लोगों के नजरिये को बदलने की आवश्यकता है। एक विधवा के जीवन की सारी उमंगे और खुशियाँ तब समाप्त हो जाती हैं, जब दुनिया उसे 'अपशकुन' मानती है। सास की नजर में वह 'डायन' होती है और माँ के लिए 'बदनसीब'। कैदी की तरह दिन-रात मशक्कत करना तथा प्रताडना और अपमान को बिना चूँचपड़ किए सहते जाना उसकी नियति बन जाती है। ऐसे कुण्ठित जीवन से उसे उबारने के लिए अनुकूल वातावरण बने, ऐसी कोशिशें की जानी चाहिए। विधवाओं के प्रति घर में और बाहर सब जगह घृणा का नहीं, प्रेमपूर्ण व्यवहार अपेक्षित है।

गाँधीजी वैधव्य के दिव्य रूप को धर्म का शृंगार कहा करते थे। 'जैन प्रदीप' के यशस्वी सम्पादक स्व. बाबू ज्योतिप्रसाद जैन की भतीजी पुष्पा विवाह के तुरन्त बाद विधवा हो गई थी। उसके पुनर्विवाह का प्रश्न उठा। इसके लिए उन पर बहुत जोर भी डाला गया (क्योंकि विधवा-विवाह का आन्दोलन उन दिनों अपनी जवानी पर था), किन्तु उनके सामने एक दिव्य नारी चन्दाबाई का आदर्श था। उन्होंने लोगों से कहा–"विवाह तो हर घड़ी हाथ में है, पर यह प्रयोग (पुष्पा को चन्दाबाई बनाने का) तो बाद में न होगा।"

आरा का जैन 'बाला-विश्राम' एक भारत विश्रुत-संस्थान है, जिसकी स्थापना एक विधवा नारी चन्दाबाई ने की थी। चन्दाबाई का विवाह ग्यारह वर्ष की उम्र में हो गया था और बारहवें वर्ष में उसकी माँग का सिन्दूर पुछ गया। वैधव्य के बाद उसने विद्यारम्भ किया तथा धर्मशास्त्र, न्याय, साहित्य और व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की। उनके द्वारा स्थापित संस्था ने न केवल अनेक विधवाओं को ही, बल्कि अनेक अभिशप्त सधवाओं–परित्यक्ताओं को संकट से उबारा है। बाबू ज्योतिप्रसादजी की तरह ही हमें भी धर्मात्मा चन्दाबाई का आदर्श विधवाओं के सामने रखना चाहिए।

महिलारत्न मगनबाई का नाम भी हमें याद आ रहा है। वह अ.भा.दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के संस्थापक, ख्यातिप्राप्त शिक्षा-प्रसारक एवं दानवीर स्व० सेठ माणिकचन्द्र जे० पी० की आदर्श पुत्री थीं। 13 वर्ष की उम्र में उसका विवाह हुआ। पति मिला दुराचारी और शराबी तथा उसके सास-ससुर थे धार्मिक संस्कारों से कोरे। इस पर भी दुर्भाग्य यह कि वह उन्नीस

जैन धर्म अतिशय सुसंगत स्वतन्त्र और सुव्यवस्थित है। ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा यह अधिक सरल, [illegible] विवेकतापूर्ण है, डा. ए. गिरनार (एक फ्रेंच विद्वान)।

वर्ष की उम्र में विधवा हो गई। जे० पी० का कलेजा दहल गया। उन्होंने उस समय अपनी पुत्री को जो मार्गदर्शन दिया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने मगन से कहा–

"मगन! तू अपने दुःख को सारे विश्व का दुःख बना ले, तू अपने बहते हुए आँसुओं को पीकर संतप्त बहनों के रिसते हुए नासूरों पर मरहम लगाना सीख। अपने वैधव्य को अपने लिए वरदान समझ और आज जो तेरी बहनें अज्ञानांधकार में भटक रही हैं, उन्हें सम्यक् मार्ग दिखा दे। सदाचरण का कवच पहनकर समूचे भारत में घूम-घूमकर जीवन-ज्योति जला दो, बेटी!"

उन्नीसवर्षीय मगनबाई ने विधवा होने के बाद अमरकोश, सिद्धान्त कौमुदी, न्यायदीपिका, द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र का गहन अध्ययन किया और अपने पिता के मकान के कुछ कमरों में ही एक श्राविकाश्रम खोल दिया, जिसकी प्रथम सूचना 16 फरवरी 1906 के 'जैन गजट' में प्रकाशित हुई थी। मगन ने भारत के सभी प्रान्तों का भ्रमण किया और महिलाओं में जागृति उत्पन्न की। उनकी प्रेरणा से उस समय बम्बई–दक्षिण प्रान्त में 12, राजपूताना-मालवा में 9, मध्यप्रदेश-बरार में 4, देहली- पंजाब प्रान्त में 5, संयुक्त प्रान्त में 7, बंगाल-बिहार में 2 आश्रम एवं पाठशालाएँ स्थापित हो चुकी थीं तथा लाखों रुपया ध्रौव्यफण्ड के रूप में बैंकों में सुरक्षित हो गया था। आज उस विधवा सन्नारी के प्रति दुनिया नतमस्तक है।

आज भी ऐसी अनेक महिलाओं के उदाहरण हमारे सामने हैं, जिन्होंने विधवा होने के बाद जैन विद्या का तलस्पर्शी अध्ययन किया और जो आर्यिका बनकर सारे जगत का अभी भी कल्याण कर रही हैं। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी की प्रेरणा से शताधिक बहनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर यह सिद्ध कर दिया है कि **'कस्योन्नतिं न कुरुते भुवि साधुवाक्यम्'**। नेपाल-नरेश की विधवा बहिन को आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज के उपदेश से शान्ति मिली थी। एक दिन में 60-60 सिगरेटें पीने वाली उस आधुनिक महिला का विलासमय जीवन अत्यन्त सात्विक और धार्मिक बन गया। ये सब उदाहरण विधवाओं के लिए कितने प्रेरक और अनुकरणीय हो सकते हैं। विधवाओं को पुनर्विवाह के लिए कहना उन्हें पुनः पाप-पंक में ढकेलना है तथा इससे समाज की नैतिक मर्यादाओं की भी भयंकर क्षति होगी।

विधवा-विवाह को शास्त्र-सम्मत प्रमाणित करने की कोशिशें एक दुस्साहसमात्र है। महासभा ऐसे सभी प्रयत्नों का घोर विरोध करती रही है। यही यदि सुधारवाद या प्रगतिशीलता है तो उसे हम दूर से नमस्कार करते है। आचार्य श्री सोमदेव ने 'यशस्तिलक चम्पू में लिखा है–**'शुद्धे वस्तुनि संकल्पः कन्याजन इवोचितः'** अर्थात् किसी शुद्ध वस्तु में परवस्तु का संकल्प होता है, जैस कन्या में पत्नी का संकल्प! जैन शास्त्रों के ऐसे उदाहरणों से कन्या का विवाह एक पवित्र संस्कार ही ठहरता है, जिसे उसके पुनर्विवाह की चर्चा से कलंकित नहीं होने दिया जा सकता।

विधवाओं के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव रखते हुए उन्हें आत्मकल्याण के मार्ग पर कदम बढ़ाने की प्रेरणा देना ही एकमात्र सही उपाय है। मनुष्य भव का फल केवल विषय-भोग सेवन ही नहीं है, मोक्षमार्ग पर चलने का यह एक दुर्लभ अवसर भी है। वैधव्य को संयम-पालन और आत्मजागरण का अलार्म मानना चाहिए।

(जैन गजट / 10 फरवरी, 1986)

☐

स्वाध्याय के प्रति लगन और श्रेष्ठ जनों की संगति का लाभ जिसे प्राप्त हो, उसे औरों से अधिक मान-सम्मान मिलता ही है।

एक ही पंथ : आगमपंथ

दि० जैन समाज में कोई तो तेरापंथी है और कोई बीसपंथी। बीच मे एक 'साढ़े सोलह पंथ' भी चला था, पर अब उसकी चर्चा सुनाई नहीं देती। तेरा-बीस को लेकर जैन पत्रों में पहले भी नोंकझोंक चलती रही है, अब भी कुछ लोग यदा-कदा चुभते वाक्य लिख दिया करते हैं। इनमे कोई नई बात भी नही है। हमने तो जबसे होश सँभाला है, तब से प्राय· एक-दूसरे के माल को खोटा बताकर अपनी दुकान चलाते हुए ही लोगों को देखा है। तेरापंथ और बीसपंथ के प्रकरण में यह दृष्टव्य है कि हमले प्रायः बीसपंथ पर ही होते हैं। बीसपंथियों को तेरापंथ से कोई खास गिला नहीं है। इधर कुछ सोनगढी भी तेरापंथ की आड़ मे अपनी रोटियाँ सेकने लगे हैं।

तेरापंथ और बीसपंथ ये काल्पनिक नाम हैं। हमारे पूर्वाचार्यो ने आगम ग्रन्थों मे कहीं इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया। पिछले ढाई-तीन सौ वर्षो से ही ये शब्द चलन में आए हैं। जब लोग तेरा-बीस के नाम पर झगड़ने लगे तो पूज्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ने एक बड़ा अच्छा समाधान दिया। उन्होंने कहा कि बीसपंथ श्रावकों के लिए और तेरापंथ मुनियो के लिए है। पाँच अुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत और आठ मूलगुण ये बीस व्रत श्रावको द्वारा पालनीय हैं तथा पंच महाव्रत, पंच समिति और त्रिगुप्ति त्रयोदश प्रकार के चारित्र को पालने वाले मुनि कहलाते हैं। बीसपंथ 'कामद' और तेरहपथ 'मोक्षद'है। आगम मे इसके अलावा अन्य कोई तेरह या बीसपंथ नहीं है।

तेरह और बीस शब्द संख्यावाचक है अथवा 'तेरा' का अर्थ जिनेन्द्र का और 'बीस' का अर्थ विषम होता है, इन सव व्याख्याओ में उलझना हमे इष्ट नहीं है। हम तो केवल इतना जानते हैं कि तेरापंथ और बीसपथ में कोई धर्म-भेद नहीं है। दोनो ही पथों के मानने वाले जिनेन्द्रदेव, वीतराग वाणी और निर्ग्रन्थ गुरु के अनन्य भक्त धर्मात्मा है। उनकी पूजा-पाठ और अभिषेक की पद्धति में अन्तर हो सकता है, किन्तु दोनों की सैद्धान्तिक मान्यताएँ एक हैं। रत्नत्रय में सबकी अटूट आस्था है। सर्वज्ञभाषित तत्त्वा पर दोनो ही अटल विश्वास रखते हैं। वीतरागता की प्राप्ति ही दोनो का चरम लक्ष्य है। फिर समझ में नहीं आता कि तेरा और बीस के नाम पर समाज में खींचतान बनाए रखने मे कौन-सी तुक है?

तेरापंथ और बीसपंथ के नाम पर जो सवाल उछाले जाते है, उनमे मुख्य है –

* स्त्रियाँ अभिषेक कर सकती है या नहीं?
* अभिषेक जल से करना चाहिए या पचामृत से?
* पूजा में फल चढाना उचित है या नही?
* भगवान के चरणों में केसर-चन्दन लगाने का विधान है या नही?
* उपासना खडे होकर करें या बैठकर?

आगम और परम्परा से इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में भी मिलता है और 'नहीं' में भी। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। उत्तर भारत में कोई जल से और कोई पंचामृत से अभिषेक करता है। दक्षिण में सर्वत्र पंचामृताभिषेक का प्रचलन है। विश्वविख्यात भगवान गोमटेश्वर बाहुबलि का महामस्तकाभिषेक दूध, दही, घृत, इक्षुरस और सर्वोषधि से होता है। प्रति बारह वर्ष बाद होने वाले इस आयोजन में तेरापंथी और बीसपंथी सभी (अनपढ से लेकर विद्वान तक) दूर-दूर से आकर शामिल होते हैं। स्त्रियों द्वारा अभिषेक किए जाने पर वहाँ कोई आपत्ति नहीं करता। उनका कहना है कि जो दीक्षा का अधिकारी है तथा मुनियों को आहारदानादि दे सकता है, वह जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक भी कर सकता है। शास्त्रों में फल चढ़ाने तथा श्रीजी के चरणों में केसर-चन्दन लगाने के प्रकरण मिलते हैं। अवस्था और शक्ति के अनुसार बैठकर या खडे होकर पूजन करने के विधि-निषेधों पर बहस करना व्यर्थ है, मुख्यता मन के उत्साह और भावो की होती है।

विद्या मनुष्य के लिए एक अविनाशी निधि है, इसके सामने धन-सम्पत्ति का कोई महत्त्व नहीं है— वह माता के समान सुख देने वाली तथा दान देते रहने पर भी सदा-सदा बढ़ती रहने वाली दुर्लभ वस्तु है।

इन सब विषयों पर विद्वानों में पहले काफी चर्चा हो चुकी है। बहुत कुछ लिखा गया है। पुनः विस्तार में जाना बेकार की माथापच्ची होगी। उससे कोई लाभ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। पूजा-पद्धति में अन्तर होने से गृहस्थ के सम्यक्त्व और व्रतों में कोई दोष नहीं लगता। हाँ, इतना ध्यान अवश्य रखना होगा कि हमारी सम्पूर्ण क्रियाएँ, जो चाहे तेरापंथियों की हों, चाहे बीस पंथियों की, यदि विवेक–रहित होती हैं तो वे पाप-बन्ध का ही कारण हैं। विवेक से हमारा प्रयोजन है कि अभिषेक में प्रयुक्त जल, दूध, दही, घृत आदि शुद्ध अर्थात् मुनियों द्वारा ग्रहण करने योग्य हो। फल पके हुए हों, हरितकाय न हो, रजस्वला-अवस्था में अभिषेक न करें आदि।

जहाँ जैसी मान्यता हो, वहाँ उस तरह लोगों को ये करने देना चाहिए। किसी प्रकार का आग्रह या जोर–जबरदस्ती उचित नहीं है। उससे कषाय उत्पन्न होती है। आपस में तनाव बढ़ता है। सन् 1981 की बात है, हम दक्षिण यात्रा पर थे। श्रवणबेलगोला में पूज्य ऐलाचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराजजी के पास बैठे थे, तभी बड़ौदा की एक बहिन ने पूछा–'महाराजजी! क्या स्त्रियाँ प्रक्षाल कर सकती हैं? महाराज श्री का सधा हुआ उत्तर था–'इधर तो करती हैं/कर सकती हैं, किन्तु उधर यदि रिवाज न हो तो मत करना।' उस बहन ने पुनः पूछा–'क्या शास्त्रों में स्त्री-प्रक्षाल का निषेध नहीं है? इस पर उन्होंने विनोदपूर्वक कहा–'है भी और नहीं भी है। नहीं इसलिए कि स्त्रियों को यदि पूरी तरह पूजाभिषेक का अधिकार मिल गया तो पुरुष दर्शन करना भी छोड देंगे'। वहाँ बैठे सब लोग हँस पड़े। सभी साधुओं को इस विषय में इसी तरह अनाग्रही होना चाहिए। गृहस्थों की क्रियाओं में साधुओ द्वारा प्रेरणा करना ठीक नही है। किसी की जिज्ञासा का समाधान करना अलग बात है।

आज तीर्थों पर पूजा-पाठ और अभिषेक की क्रियाओ में शुद्धि-अशुद्धि पर कौन ध्यान देता है। श्री महावीरजी में पुजारी और दर्शनार्थी सब गड्ड-मड्ड होकर चलते हैं। भारी भीड़ के कारण उनके मध्य में एक अंगुल की दूरी भी तो नहीं रह पाती। सब एक-दूसरे को धकियाते हुए और अभिषेक-पूजा करते हुए देखे जाते हैं। गोमटेश्वर पर अभिषेक के लिए जो दूध, दही, घी आदि ले जाए जाते हैं, क्या वे प्रासुक होते हैं? यथार्थ मे तीर्थक्षेत्रों पर भक्ति की प्रधानता होती है। वहाँ की इन विषमताओं पर प्रायः विद्वानों का भी ध्यान नहीं जाता। वहाँ वे भी उसी तरह पूजा-पाठ करने को विवश होते हैं। वे ही विद्वान जब हाथ धोकर बीसपंथ के पीछे पड जाते हैं तो आश्चर्य होता है।

महासभा तेरापंथ और बीसपंथ को विवाद का विषय नहीं मानती। ऐसा करो और ऐसा मत करो, इस प्रकार का उसका कोई आग्रह नहीं है। इस सन्दर्भ में वह तटस्थ दृष्टि रखती है। तेरा और बीस वास्तव में कोई पंथ नहीं, मात्र पद्धतियाँ हैं। महासभा में दोनों ही पद्धतियों के मानने वाले विद्वान हैं। हम स्वयं व्यक्तिरूप रूप से तेरापंथ को पसन्द करते हैं, फिर भी बीसपंथ से हमें कोई एलर्जी नहीं है। महासभा वस्तुतः आगमपंथी है और उसका लक्ष्य धर्म की सुरक्षा है। धर्म कर्त्तव्यपालन का ही दूसरा नाम है। देव-पूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षटावश्यक ही गृहस्थ के मुख्य कर्त्तव्य हैं। पूजा–अभिषेक कैसे करें, इस बारे मे कोई निर्देश-आदेश न देकर महासभा इस बात पर जोर देती है कि ऐसा कोई काम न करें, जिससे पाप-बन्ध हो। पाँच पापों अथवा चार कषायों से प्रत्येक प्राणी को बचना चाहिए। ये ही बन्ध के कारण हैं। अष्टान्हिका-चतुर्दशी तथा अन्य पर्व–तिथियों पर यथाशक्ति एकाशन-उपवासादि करना चाहिए। जो करते हों, उन्हें समुचित आदर दें। यही आगम-मार्ग है। कहा भी है:–

"जं सक्कइ तं कीरइ जं पुण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥"

तेरापंथ-बीसपंथ के विवाद को उछालकर समाज के वातावरण को बोझिल बनाना हमारी दृष्टि में सर्वथा अवांछनीय है। आशा है, प्रबुद्धजन इस पर विचार करेंगे।

(जैन गजट / 5 फरवरी, 1985)

□

जैन बनाम हिन्दू : एक वस्तुस्थिति

जैन गजट के दि० 26 फरवरी, 5 मार्च एवं 12 मार्च 1998 के सम्पादकीय कॉलमों में "जैन समाज और अल्पसंख्यक दर्जा" शीर्षक से एक पठनीय लेखमाला प्रकाशित हुई है, जिसमें अल्पसंख्यक शब्द की संविधान-सम्मत व्याख्या तथा भारतीय कानून के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से जैनों को अल्पसंख्यक का दर्जा दिए जाने की माँग का पुरजोर समर्थन किया गया है। जैनो की इस माँग को कुछ लोग इस ढंग से प्रचारित करते हैं, जिससे आम हिन्दू चौंके और उन्हें लगे कि जैन लोग अपनी अलग खिचड़ी पकाना चाहते हैं, किन्तु इस माँग के पीछे ऐसा कुछ है नहीं। यह आशंका हिन्दू शब्द की गलत व्याख्या के कारण उत्पन्न हुई है। फिर भी इस आशंका का निवारण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि इस माँग के पीछे राष्ट्र की एकता को खण्डित करने की भावना कतई नहीं है। वैसे भी आज आवश्यकता अलगाव की नहीं, एकत्व की है। आवश्यकता उन ताकतों को बढ़ावा देने की है, जो जोड़ती हैं और उन तमाम स्थितियो को नकारती हैं, जो तोड़ती हैं या आपस में बैर बढ़ाती हैं।

इस लेखमाला की समापन किस्त (जैन गजटः 12 मार्च) के उपसंहार में व्यक्त दो-ढाई पंक्तियों को लेकर हमारे कुछ प्रबुद्ध पाठकों के मन में एक भ्रांति उत्पन्न हुई है, जिसकी ओर लेखक का ध्यान एक प्रबुद्ध पाठक ने आकर्षित किया है और वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण की अपेक्षा की है। जैन बनाम हिन्दू विषयक इस परिचर्चा के सन्दर्भ में हम अपना दृष्टिकोण इस आलेख में अपने प्रिय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

'पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः'

स्वार्थ और दुराग्रह संघर्ष के कारण हैं। जैनधर्म में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। वह तो हमेशा से एकता, समन्वय और सहिष्णुता का प्रबल पक्षधर रहा है। उसकी इसी उदार विचारधारा के अन्तर्गत हम 'हिन्दू' शब्द को भारतीयता के परिप्रेक्ष में देखना पसन्द करते हैं। धर्म की अपेक्षा जैन हिन्दू नहीं हैं, किन्तु जिन जातियों और जिन धर्मो की जन्मभूमि भारतवर्ष है, वे सब जातियाँ और वे सब धर्म 'हिन्दू' शब्द के वाच्य अर्थ में समाहित हो जाते हैं। इस अपेक्षा से यह लिखना ठीक है–"जैन व्यापक हिन्दू समाज का एक अंग हैं, भले ही उनके धार्मिक विचार और मान्यताएँ कुछ हद तक भिन्न हों। वे दोनों इस प्रकार हिले-मिले हैं, जिस प्रकार दो सहोदर होते हैं।"

प्रस्तुत कथन की पुष्टि में हम दो मनीषियों के विचार यहाँ उद्धृत कर रहे हैं .–

"हिन्दू शब्द शास्त्राधार पर अवस्थित नहीं है। मुस्लिम विजेताओं ने इस शब्द का निर्माण किया था" –डा० सर हरिसिंह गौर

"भारतवर्ष के लिए हिन्द शब्द का व्यवहार होता है, जो हिन्दुस्तान शब्द का संक्षिप्त रूप है। पश्चिम एशिया, ईरान, टर्की, अफगानिस्तान, ईजिप्ट तथा अन्यत्र भारत को पहले की तरह हिन्द कहा जाता है। हिन्द में रहने वाले हिन्दू हैं। हिन्दू का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।" –पं० जवाहरलाल नेहरू

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू समाज से तात्पर्य भारतीय समाज से है। वैसे भी हिन्दू धर्म के नाम से कोई धर्म ही नहीं है। धर्म तो वैदिक धर्म है। लोकरूढ़िवश लोग वैदिक धर्म को ही प्रायः हिन्दू धर्म अथवा ब्राह्मण वर्ण द्वारा प्रसूत विचारधारा के रूप में उल्लिखित करते रहे हैं। इसी से यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। धार्मिक दृष्टि से जैनधर्म वैदिक धर्म से भिन्न है, इसमें किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिए। हाँ, समाजशास्त्रीय दृष्टि से दोनों धर्मो का सहअस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है।

जिनका जाति कुल शुद्ध होता है, तीर्थंकरों का जन्म उन्हीं के यहां होता है।

लेखमाला की जिन पंक्तियों को लेकर असहमति व्यक्त की जाती है, वे पंक्तियाँ हैं–'जैन विचार और सिद्धान्त हिन्दू व्यवस्था में संशोधन और सुधार के रूप में विकसित हुए जान पड़ते हैं। इसको पृथकत्व नहीं, परिवर्तन–परिष्कार या विकास माना गया....'' । इसी पर से प्रबुद्ध पाठक महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला जान पड़ता है–''जैन सदा से हिन्दुओं के अभिन्न अंग रहे हैं और आज भी हैं।'' किसी भी ऐतिहासिक साक्ष्य के अभाव में इस तरह के आशय को सुसंगत नहीं माना जा सकता।

किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि जैनधर्म हिन्दू धर्म (सही नाम वैदिक धर्म) की बुराइयों को दूर करने के लिए संशोधित हिन्दू धर्म के रूप में उद्भुत हुआ। अनेक उच्च कोटि के जैनेतर (भारतीय एवं पाश्चात्य) विद्वानों के मन्तव्यों से इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है। ऐसे ही कुछ उद्धरण देखिए–

''जैन विचार निःसंशय प्राचीन काल से हैं, क्योंकि **'अर्हन् इदं दयसे विश्वमध्वम्,** (अर्थात् हे अर्हन्, तुम इस विशाल विश्व की रक्षा करते हो) इत्यादि सूक्तियाँ वेदों में पाई जाती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि जैनधर्म के संस्थापक भगवान ऋषभदेव का सद्भाव ऋग्वेद की रचना से बहुत पहले सें था।''–

''जैनधर्म हिन्दू धर्म से मतभिन्नता धारण करने वाला उसका कोई उपभेद नहीं है।'' –कुमारस्वामी शास्त्री (प्रसिद्ध हिन्दू विद्वान)

''जैनधर्म अनादि है, यह विषय निर्विवाद है। सुतरां, इस विषय में इतिहास के सुदृढ़ सबूत हैं।'' –पं. बालगंगाधर तिलक

''प्राचीन भारत में किसी भी धर्मान्तर से कुछ भी ग्रहण करके नूतन धर्म चलाने की प्रथा नहीं थी। जैनधर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा पृथक् धर्म है। यह उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं है।'' –प्रो० मैक्समूलर

महामनीषियों के इन स्पष्ट विचारों से सिद्ध होता है कि जैनधर्म वैदिक धर्म का न तो अंग है, न उससे प्रभावित है और न उसका कोई परिष्कृत रूप ही है। विचार और परम्परा की दृष्टि से दोनों में बहुत अन्तर है।

जैनधर्म और वैदिक धर्म की भिन्नताएँ : वैदिक शास्त्र हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक यज्ञों का वर्णन करते हैं। उसमें एक ओर **'मा हिंस्यात्' सर्वभूतानि'** तो दूसरी ओर **'सर्वमेधे सर्वं हन्यात्'** सरीखे परस्पर विरोधी कथन पाए जाते हैं। वशिष्ठ मुनि अहिंसात्मक यज्ञ के समर्थक हैं तो विश्वामित्र ऋषि हिंसात्मक बलिदान का पोषण करते हैं। जैनधर्म आदि से अन्त तक अहिंसा के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है।

जैन लोग हिन्दुओं की तरह वेदों को अपना धर्म-ग्रन्थ नहीं मानते।

हिन्दुओं (ब्राह्मणों) के समान वे मृत व्यक्ति के क्रियाकर्म, श्राद्ध, पिंडदान आदि की बात स्वीकार नहीं करते।

जैनदर्शन में जीवों का वर्णन अन्य दर्शनों से भिन्न है। वस्तु-स्वातंत्र्य, लोक-व्यवस्था, सृष्टि-विज्ञान आदि के सन्दर्भ में जैनधर्म के विचार तथा स्याद्वाद या सप्तभंगी, कर्म-सिद्धान्त और तत्त्वज्ञान सम्बन्धी उसका चिंतन अधिक मौलिक और वैज्ञानिक है। डा० ए० गिरनाट (एक फ्रेंच विद्वान) ने लिखा भी है–''**जैनधर्म अधिक सुसंगत, स्वतन्त्र और सुव्यवस्थित है। ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा वह अधिक सरल, सम्पन्न एवं विविधतापूर्ण है।**''

साहित्य और भाषा दोनों ही दृष्टियों से जैनधर्म एक स्वतन्त्र धर्म है। वैदिक ग्रन्थों में संस्कृत भाषा का तथा जैन ग्रन्थों में प्राकृत भाषा का प्रयोग मुख्यता से पाया जाता है।

उपसंहार : सामाजिक समरसता और एकता की दृष्टि से यदि जैनों को हिन्दू समाज का अभिन्न अंग कहा जाए तो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु धार्मिक दृष्टि से वैदिक (लोकप्रचलित शब्द हिन्दू) धर्म का अंग वह कतई नहीं है। समाज और धर्म को यदि पर्यायार्थक न मानें तो फिर इस विवाद के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। धर्म की अपेक्षा जैनधर्म

का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करना न्याय तथा सत्य की मर्यादा के सर्वथा अनुकूल है।

अन्त में हम भारत के हृदयहार स्व. पं० जवाहरलाल नेहरू की अमर कृति "भारत की खोज" से निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत कर अपनी बात को विराम देते हैं :–

"जैनधर्म यथार्थ में वैदिक या हिन्दू धर्म नहीं है, यद्यपि उसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई और वह भारतीय जीवन, संस्कृति तथा तत्त्वज्ञान का मुख्य अंग है। धर्म की दृष्टि से जैनधर्म हिन्दू धर्म नहीं है।"

(–जैन गजट / 30 अप्रैल, 1998)

□

सुख-शान्ति का उपाय–मनःशुद्धि

भगवान महावीर के जितने भी सिद्धान्त हैं, वे रटने-बोलने के लिए नहीं हैं, बल्कि जीवन में उतारने के लिए हैं। जब तक सिद्धान्त हमारे आचरण का अंग नहीं बनते, तब तक वे धर्म नहीं कहलाते। जैन धर्म में हर सिद्धान्त को प्रयोग के द्वारा अपने अनुभव में लाने की प्रक्रिया पर बहुत जोर दिया गया है। बात चाहे जीवन की हो या परिवार और समाज की हो, भगवान महावीर ने कहा है कि धर्म वह है, जो चित्त को शान्त करे, हमारी उत्तेजनाओं का शमन करे और हमारी सहन-शक्ति को बढ़ाए। जो नियम आचरण अथवा चिन्तन और व्यवहार इसमें हमारी सहायता करता है, वही धर्म कहलाता है।

घड़ी में तीन सुइयाँ होती हैं–घण्टा, मिनट और सैकिण्ड की। तीनों का आकार अलग-अलग है, लेकिन तीनों का उद्देश्य एक ही है–समय बताना। तीन व्यक्ति बीमार हैं। तीनों इलाज कराने के लिए चिकित्सक के पास जाते हैं। एक आयुर्वेद-पद्धति से, दूसरा होम्योपैथी से और तीसरा एलोपैथी से अपना इलाज करवाते हैं लेकिन तीनों का उद्देश्य एक ही है–निरोग या स्वस्थ होना। तीन व्यक्ति अलग-अलग दुकान खोलते हैं–एक कपड़े की, दूसरा किराने की और तीसरा फैक्ट्री लगाता है। तीनों का उद्देश्य एक ही है–धन कमाना। जिस प्रकार घड़ी की सुइयों, इलाज की पद्धतियों अथवा व्यापार की किस्मों के पृथक्-पृथक् होने पर भी उद्देश्य भिन्न-भिन्न नहीं होते, उसी प्रकार धर्म और ग्रन्थ भले ही अलग हों, लेकिन सभी पंथों, ग्रन्थों और सन्तों का उद्देश्य एक ही है–मन की शान्ति प्राप्त करना। भगवान महावीर की दृष्टि में यही वास्तविक धर्म है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

यदि हमारे परिवार में अशान्ति है तो हम उसका कारण परिवार के दूसरे सदस्यों को मानते हैं। उसकी चिकित्सा का उपाय तलाशतें हैं। भगवान महावीर ने बुनियादी बात यह कही कि *अशान्ति बाहर नहीं है, वह हमारे चित्त में है। जब तक चित्त में शान्ति नहीं है, तब तक धर्म हमारे जीवन या परिवार में अमन-चैन कायम करने में सहायता नहीं कर सकता।* धर्म केवल शब्दों में व्यक्त करने या शरीर से कुछ क्रियाएँ दोहराते रहने में नहीं है, धर्म तो मन में होना चाहिए। वचन या शरीर से किया जाने वाला धर्म परिवार या समाज में शान्ति स्थापित करने में कोई सहायता नहीं कर सकता। आचार्य गुणभद्रस्वामी ने कहा है–

'जब तक धर्म मन में निवास करता है, तक तक प्राणी अपने मारने वाले का भी घात नहीं करता और जब वह धर्म मन में से निकल जाता है, तब पिता और पुत्र का भी परस्पर में घात देखा जाता है।'

प्रातःकाल आँख खुलते ही इस कथन को अपने चिन्तन में लाएँ तो निश्चित रूप से मने शान्त होगा। मनःशुद्धि हो

लोक में विद्या विहीन व्यक्ति को अधिक आदर का पात्र नहीं माना जाता।

तो परिवार में भी शान्ति के स्वर सुनाई देंगे। धर्म मन में रहता है, यह बड़ी गूढ़ और वैज्ञानिक बात है। धर्म न वचनों में मिलता है और न शरीर में। धर्म तो परिणामों (भावों) में मिलता है। अगर हमारे भावों में धर्म है तो हम सुख और शान्ति की दिशा में अपने कदम बढ़ाने में समर्थ होंगे, अन्यथा कार्य-सिद्धि नहीं होगी।

जब तक चित्त में धर्म होता है, तब तक वह जीव मारने वाले को भी नहीं मारता। धर्म यदि चित्त में रहता है तो एक भाई के विरोध में दूसरा भाई अदालत में खड़ा नहीं होता। यह सब तभी होता है, जब धर्म चित्त से निकल जाता है। राम-रावण के मध्य युद्ध चल रहा था। लंका में सेनापति ने राम को सूचना दी कि रावण शान्तिनाथ मन्दिर में बैठकर विद्या सिद्ध कर रहा है। आप हमें अनुमति दें तो हम इस कार्य में विघ्न डालें। यदि रावण ने यह विद्या सिद्ध कर ली तो फिर सीता का पाना आसान नहीं होगा। राम के चित्त में धर्म था, उन्होंने तत्काल कहा कि सेनापति, तुम भूल गए हो कि क्षत्रिय का धर्म क्या है? क्षत्रिय का धर्म है कि वह वृद्धों पर, स्त्री पर, बच्चों पर एवं शरणागत पर शस्त्र न उठाए और न ही मन्दिर में पूजा-पाठ करने वाले की पूजा में विघ्न डाले। इसलिए मैं तुम्हे ऐसा करने की अनुमति नहीं देता। यह है चित्त में स्थित धर्म का प्रभाव।

युद्ध में विजय प्राप्त करके रावण के मर जाने पर राम ने आज्ञा दी कि उसका दाह-संस्कार सम्मान के साथ किया जाए। रावण के प्रति राम की सेना में कदाचित् घृणा का भाव आया भी पर राम के चित्त में तो धर्म था। उन्होंने कहा—**'मरणान्तानि वैराणि'**—बैर तो केवल जीवित रहने तक रहे तो रहे किन्तु मरण के बाद किसी से बैर नहीं रखना चाहिए।

जरत्कुमार ने पशु समझकर भ्रमवश वाण छोड़ा और वह श्रीकृष्ण को लग गया। उसने क्षमा माँगी कि भूल हो गई, मुझे क्षमा करें। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि भइया! बलराम जल लेने गए हैं, वे आते ही होंगे। तू जितनी जल्दी हो सके, भाग जा। यदि उन्हें ये बात ज्ञात हो गई तो वे तुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे। जब चित्त में धर्म होता है तो मारने वाले के प्रति भी मारने का भाव नहीं आता। यदि जीवन में, परिवार में या समाज में हम सुख-शान्ति चाहते है तो धर्म को अपने मन में स्थान देना होगा। केवल वचनों से और शरीर से धर्म का पालन करके अपने आप को धर्मात्मा मान लेने का भ्रम पाल लेना ठीक नहीं है। हम शरीर या वचनों से तो धर्म करते हैं किन्तु अपने अन्तरंग भावों को संभालने का प्रयत्न नहीं करते। देखें, महाभारत का यह उदाहरण कि द्रोणाचार्य के बेटे अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार डाला। द्रौपदी का विलाप देखकर पाण्डवों ने प्रतिज्ञा की कि सूर्यास्त से पहले अश्वत्थामा को पकड़कर द्रौपदी के सामने खड़ा करके पाँच टुकड़े कर देंगे। सूर्यास्त से पहले सचमुच ही अश्वत्थामा को पकड़कर उन्होंने द्रौपदी के सामने खड़ा कर दिया। तलवारें उठ गई तो द्रौपदी ने कहा—''ठहरों! क्या करते हो। इसके पाँच टुकड़े करने से मेरे पुत्र तो जीवित नहीं होंगे। यह तुम्हारी गुरुमाता का पुत्र है, इसे क्षमादान दो। मैं अपनी पीड़ा तो सह ही रही हूँ, इसके मरने पर जो पीड़ा इसकी माता को होगी, वह मैं सह नहीं पाऊँगी।'

जब चित्त में धर्म रहता है तो मारने वाले से भी बदला लेने का भाव नहीं होता। जब चित्त से धर्म निकल जाता है, तब पिता और पुत्र के बीच भी दरार पैदा हो जाती है। मथुरा में राजा उग्रसेन के परिवार में पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियों ने कह दिया कि यह पुत्र माता-पिता के लिए अशुभ है। पिता ने उसे काँसे के बर्तन में रखकर लकडी के सन्दूक में बंद करवा दिया और वह सन्दूक नदी में प्रवाहित करवा दिया। एक मल्लाह को मिल गया। काँसे के बर्तन में रखे होने से उसका नाम 'कंस' रख दिया। बड़े होने पर जब उसे पता लगा कि मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया गया था तो उसने अपने पिता से बदला लिया। राजा श्रेणिक के बेटे अजातशत्रु का उदाहरण भी ऐसा ही है। भाई! हिंसा से हिंसा उपजती है, और मन की निर्मलता ही पारिवारिक शान्ति का एकमात्र उपाय है।

भगवान महावीर ने मन की निर्मलता को ही सुखी जीवन का आधार कहा है। चित्त-शुद्धि ही किसी व्यक्ति के धर्मात्मा होने की एकमात्र कसौटी है। यह मन शत्रु भी है और मित्र भी। यदि इसमें राग-द्वेष या विषय-भोग के विचार उत्पन्न होते

[illegible]

हैं तो यह शत्रु है, किन्तु यदि संयम का बीज पल्लवित होता है तो यह मित्र है। जिस प्रकार कीचड़ का जन्म पानी से होता है और पानी से ही उसे धोया या साफ किया जाता है, उसी प्रकार सारे विकारों का जन्मदाता भी हमारा मन है और मन के संकल्प से ही उन विकारों से मुक्त हुआ जा सकता है। समुद्र की तरह यह मन लवणाकर भी है और रत्नाकर भी। इसे सँभालने पर सफलताएँ चरण चूमती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुसार मन की शुद्धि से ही आत्मा शुद्ध होती है। मन की शुद्धि के बिना केवल शरीर को क्षीण करना व्यर्थ है। आचार्य विद्यासागरजी महाराज ने सन् 1975 में फिरोजाबाद में कहा था कि आप पर्व के दिनों में उपवास करते हैं, यह तो ठीक है किन्तु ध्यान रखना कि उपवास के द्वारा शरीर को कमजोर बनाना धर्म नहीं है। शरीर तो धर्म का साधन है। इसके भीतर जो सूक्ष्म कार्माण शरीर है, उसे सुखाना चाहिए। उसका निर्माण हमारी मन की कलुषता अर्थात् कषायों से होता है। मन की निर्मलता से ही उस कार्मांण शरीर का नाश होगा। मन ही हमारी अशान्ति का वाहक है। यदि मन पर अंकुश लग जाए तो परिवार क्या, समाज क्या, सारी सृष्टि में शान्ति हो सकती है।

□

बचें, कषाय से

कषाय कहते हैं मन की खोट को और खोट चाहे सोने में हो या मन में, उससे मूल्य और मान कम होता है। राजवार्तिक में कहा गया है–"मलिने मनसि व्रतशीलानि नावतिष्ठन्ते" अर्थात् मलिन चित्त में व्रत और शील नहीं ठहर सकते। व्रत और शील के बिना आत्मा पवित्र नहीं होती। आत्मविशुद्धि के लिए पहले मन को निर्मल बनाना होता है। कषाय के रहते हुए न कभी मन स्वस्थ हो सकता है और न आत्मा पवित्र। आचार्यो ने कहा भी है–"कषत्यात्मानं हिनस्ति"। इसका आशय है कि कषाय आत्मा के सहज–स्वाभाविक स्वरूप की हिंसा करती है। इस कषाय को तो सदा हेय जानकर चित्त से बहिष्कृत करना चाहिए। कषाय या चित्त की कलुषता ही हमारे जीवन में दुःखों को आमंत्रण देती है।

कषाय से अशान्ति : मन में खोट रखकर जो भी कहा-सुना या किया जाता है, उसका परिणाम सदा दुःखरूप ही होता है। सात-आठ महीने का छोटा-सा बालक पिता की गोद में खेलते हुए यदि उनकी मूँछे भी नोंचता है अथवा चश्मा उतार कर फेंक देता है तो भी पिता को बुरा नहीं लगता। वही सात-आठ वर्ष का होने पर यदि उलट कर जवाब भी दे दे तो माँ-बाप का मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है। इसके मूल में यही एक बात है कि छोटे बच्चे का मन पवित्र होता है। नुकसान उससे यों ही खेल-खेल में हो जाता है, वह जान-बूझकर नहीं करता। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों उसके मन में विकृतियाँ आती जाती हैं। बड़ा होने पर पहले वह अपना स्वार्थ देखता है, बाद में दूसरों की सुविधा। स्वार्थ-पूर्ति के लिए वह तरह-तरह के बहाने गढ़ना, गुस्सा होना, झूठ बोलना और मायाचार करना सीख जाता है। इससे उसकी कथनी और करनी मे अन्तर आ जाता है। यह अन्तर या द्वैत कषाय की ही उपज है और इसी से जीवन असन्तुलित एवं अशान्त बन जाता है।

किसी के गाली देने पर जितना कष्ट होता है, उससे कई गुना अधिक कष्ट अपने अहं के आहत होने की अनुभूति में होता है। क्रोध की दशा में किसी भी व्यक्ति की छटपटाहट बढ़ जाती है। मायाचार के द्वारा अभीष्ट की पूर्ति न होने

चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, सत्संग और पर्यटन से अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ाते रहना चाहिए।

तक मानसिक तड़पन का भी अंत नहीं होता। चोरी गया धन कष्ट नहीं देता, उसके प्रति जो लोभ है, वह पीड़ाकारक है। आत्मानुशासन में ठीक ही कहा गया है—"जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियाँ शान्ति से निर्द्वन्द्व होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषायरूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकता।

कषाय के भेद-प्रभेद : स्थूल रूप से कषाय चार होती हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इनमें से प्रत्येक के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन, ये चार-चार उपभेद भी होते हैं। इस प्रकार कषाय सोलह प्रकार की हो जाती हैं। इनमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और त्रिवेद, ये नौ कषायें मिला दें तो फिर कषाय के पच्चीस भेद बन जाते हैं। हर भव्य प्राणी को इन सबसे ही यथासम्भव/यथाशक्ति बचना चाहिए।

आचार्य पूज्यपादस्वामी के अनुसार **"अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तम्"**-मिथ्यात्व का एक नाम अनन्त है। अनन्त संसार का कारण होने से ही उसका यह नाम है। यह सबसे अधिक खतरनाक है। इसके सत्ता में रहते हुए जीव मोक्षमार्ग में नहीं लग सकता। जो भी कषाय चित्त में छः महीने से ज्यादा टिक जाती है, उसे अनन्तानुबन्धी समझना चाहिए। किसी से झगड़ा होने पर यदि छः माह बाद भी बदला लेने की भावना बनी रहे तो इसे अपने मिथ्यादृष्टि होने का परिचायक मानें। अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय श्रावकोचित व्रतों में अनुराग नहीं होने देता। प्रत्याख्यानावरण के उदय में कोई महाव्रत धारण नहीं कर सकता तथा संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र की घातक है। राजवार्तिक के अनुसार **"चारित्रपरिणामकर्षणात् कषायः"** - चारित्र परिणाम की घातक होने से ही इन्हें कषाय कहते हैं। यथार्थ में एक ओर तो कषायोदय में अभिप्राय की विपरीतता के कारण उसे सम्यक्त्वघाती तथा दूसरी ओर पदार्थों में राग-द्वेष उत्पादक होने से उसे चारित्रघाती कहा गया है। सम्यक्त्व और चारित्र की सुरक्षा के लिए मन्दकषायी होना आवश्यक है।

कषाय स्वभाव नहीं : धवला में कहा है—**"ण कसाओ जीवस्स लक्खणम्"** अर्थात् कषाय जीव का लक्षण नहीं है। जीव तो टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी और त्रिकालशुद्ध माना गया है। कषाय उस शुद्ध चेतना पर पड़े हुए आवरण का नाम है। वह स्वाभाविक नहीं, एक वैभाविक परिणमन है। स्वभाव मे अनन्त काल तक ठहरा जा सकता है किन्तु विभाव में विचलन होता है। कोई घण्टों तक शान्त तो बैठ सकता है लेकिन घण्टों तक क्रोध नहीं कर सकता, क्योंकि क्रोध स्वभाव नहीं है। स्वभाव शाश्वत होता है और विभाव क्षणिक। कषाय संयोगज भाव है। हमेशा किसी न किसी निमित्त (पर पदार्थ के संयोग) को पाकर ही उत्पन्न होती है। उपादान (स्वभाव) को सँभाल कर रखने वाले ही कषाय से बच पाते हैं।

कषाय से ही बन्धन : आगम में आस्रव के दो भेद बताए गए हैं—साम्परायिक और ईर्यापथ। कषायसहित आस्रव को साम्परायिक आस्रव कहते हैं। इसी से बचना है। कषाय की प्रेरणा से ही व्यक्ति कर्म में प्रवृत्त होता है। आगम का कथन है-**"णय वत्थुदवे बन्धो, बन्धो अज्झप्पजोएण"** अर्थात् केवल वस्तुओं के संयोग-वियोग से बन्ध नहीं होता, बन्ध होता है अध्यवसान (रागद्वेषात्मक कषायों) से। कषाय-विहीन ईर्यापथ आस्रव से आत्मा का कोई अहित नहीं होता। वह संसार-वास या स्थिति-बन्ध में समर्थ नहीं है। पसीने के द्वारा गीले कपड़ों पर ही धूल चिपकती है, सूखे वस्त्रों पर नहीं। इसी प्रकार मन-वचन-कार्य की प्रवृत्ति से कर्म आते अवश्य हैं किन्तु कषाय के अभाव में कार्मण शरीर पर उनके संस्कार अंकित नहीं होते।

ध्यान रहे कि जिस प्रकार उबलते हुए पानी में अपनी परछाई नहीं दिखती, उसी प्रकार तीव्र कषाय के उदय में शुद्धात्मदर्शन नहीं हो सकता तथा जिस प्रकार लोहे का गर्म गोला पानी को अपने भीतर सोख लेता है, उसी प्रकार कषाय

[illegible] में अपनी-अपनी [illegible] से निभाएं।

से संतप्त आत्मा कर्म-बन्ध को प्राप्त हो जाता है। जो भव-बन्धन से बचने के अभिलाषी हैं या सुखी होना चाहते हैं, वे कषाय करते समय भयभीत अवश्य रहते हैं। कषाय, रागद्वेष, मोह आदि सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। कषाय और कर्म कभी एक-दूसरे से जुदा नहीं रहते। कविवर दौलतरामजी ने ठीक ही कहा है–"**आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय**"। चारो प्रकार की कषायों से होने वाली हानियो को समझकर सभी को उनसे बचना चाहिए।

नास्ति क्रोधसमो रिपुः : आगम-ग्रन्थों में क्रोध को अनर्थों की जड़, धर्म का लोप करने वाला और संसार-वृद्धि का कारण कहा है। घर-परिवार, ग्राम-नगर या देश-प्रदेश मे कहीं भी कलह, कत्ल, आगजनी, झगडे, गाली-गलौज, शोषण, अनाचार और अत्याचार की घटनाएँ देखने-सुनने या पढ़ने में आती हैं, वे सब क्रोध की काली करतूतों की ही शक्लें हैं। तीव्र क्रोध में व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेता है।

सज्जन पुरुष तो उपसर्ग आने पर भी क्रोध नहीं करते। "ते करम पूरब किए खोटे, सहे क्यों नहिं जीयरा" का चिन्तन करते हुए बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी वे अद्भुत सहनशीलता का परिचय देते हैं। भगवती आराधना में कहा भी है कि पाप-ऋण प्रसन्नता से चुकाना चाहिए।

"**कोपवशिनो न भवन्ति भव्याः**" - भव्य लोग कभी क्रोध के वशीभूत नही होते। हमारे आचार्यो ने क्रोध पर क्रोध करने के लिए कहा है। कुत्ता लाठी को पकड़ने दौड़ता है किन्तु शेर लाठी मारने वाले पर झपटना है। हमे भी हानि पहुँचाने वाले पर क्रोध न करते हुए क्रोध के कारणों का उपचार करना चाहिए।

मान महाविषरूप : अनगारधर्मामृत में कहा है–"पुण्य कर्म का उदय होने पर व्यक्ति अत्यन्त मान करने लगता है ओर यह भूल जाता है कि नीच गतियों आदि मे अपमान पाना इस अहकार का ही फल है। घमण्डी का सिर नीचा, मुर्गी राख उड़ाए–अपने सिर पर आए, ऊपर का थूका मुँह को आता है, गरमी खावे अपने को–नरमी खावे गैर को, आदि कहावतें मान से होने वाले अपमान की ओर ही तो इंगित कर रही हैं। विद्वत्ता, पद-प्रतिष्ठा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का घमण्ड कभी नहीं करना चाहिए। ये सभी नश्वर हैं। मानी मनुष्य दूसरों का तिरस्कार करते-करते एक दिन स्वय तिरस्कार का पात्र बन जाता है।

अहंकार हमेशा कर्तृत्व का होता है, इसलिए ज्ञाता-दृष्टा जीव को कर्तृत्व बुद्धि के परित्याग का उपदेश दिया जाता है। नाम की भूख, पदवियों का आदान-प्रदान, अभिनन्दन-समारोहों की बाढ, मन्दिरों आदि की दीवालो और फर्शो पर लगे नामों के बेशुमार पाटिए आदि समाज में दिनों दिन बढ़ती हुई मान कषाय के सजीव चित्र है। पण्डित आशाधरजी ने कहा है–"**भैया यदि मान ही करना है तो अपनी व्रतादिरूप प्रतिज्ञाओ पर कीजिए, जिससे कि धर्म के शत्रुओं का संहार हो।**"

मान का विलोम विनय है और विनय को आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष का द्वार कहा है, किन्तु विनय दिखावटी नहीं होनी चाहिए। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञाओं का अनुसरण करना भी विनय के ही अन्तर्गत आता है। ऐसी वास्तविक विनय से मान कषाय गल जाती है।

दूरतो मुंच मायाम् : मन-वचन-काय की कुटिलता मायाचार कहलाती है और इस मायाचार से संसार में कौन बच पाया है? आचार्य वादिवृषभ ने "छत्रचूणामणि" में कहा भी तो है–"ससार मे रहे और कहे कि मैंने मायाचार छोड़ दिया है तो यह कथन भी तो एक मायाचार ही है।" टूटी-फूटी सड़के, मिलावटी मसाले, नकली दवाइयाँ, पानी-मिला दूध, टैक्सों की चोरी, दो तरह के बहीखाते, रिश्वत आदि हमारे समाज में व्याप्त मायाचार के ही तो नमूने हैं। धार्मिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। माला फेरते समय मन का इतस्ततः चलायमान रहना, धन-लाभ के लिए भगवान पर छत्रादि चढ़ाना, प्रतिष्ठा

जातियों के उत्कर्ष से समाज का अपकर्ष कभी नहीं होता।

के लिए बोलियाँ लेना, कृतदोष को आचार्य से छिपाना, मिथ्या धर्मोपदेश देना आदि ऐसे ही उदाहरण हैं।

मायाचारी का मन हमेशा शंकित रहता है, भेद खुल जाने के भय से उसे दूसरो से मुँह छिपाना पड़ता है, वह समाज का विश्वास खो देता है, अपमानित होता है तथा सक्लेश परिणामों से तिर्यंच गति का आस्रव करता है। सरल परिणामी ही मायाचार से बचने में समर्थ है। "मन में हो सो वचन उचरिए, वचन होय सो तन सों करिए"। निज स्वरूप में लीन होने के लिए ऐसी सरलता ही अपेक्षित है। साँप जमीन पर भले ही टेढ़ा-मेढ़ा लहराता हुआ चले/रेंगे किन्तु बिल में उसे सीधे ही प्रवेश करना होता है। सिद्धशिला ऊपर सीध में है। सीधे हृदय वाले ही वहाँ जा सकते हैं। इस प्रकार से अनुचिन्तन करते हुए वक्रता या मायाचार को दूर से ही नमस्कार करना चाहिए।

लोभः पापस्य कारणम् : सबसे बड़ा पाप है परिग्रह। उसी के सचय के लिए लोभ किया जाता है। यह सभी कषायों में दुर्जेय है। अन्य कषायें तो पहले ही छूट जाती हैं किन्तु लोभ दसवें गुणस्थान तक पीछा नहीं छोड़ता। लोभ को आचार्यो ने "अशुचि' कहकर पुकारा है। अन्य किसी भी कषाय को अशुचि नहीं कहा।

हिसा का कारण लोभ है। सारी लड़ाइयाँ जर-जमीन-जोरू के लाभ के लिए ही होती है। रसना के लोभ (चटोरेपन) से बीमारियो का शिकार होना पड़ता है। यश के लोभ से तो साधु भी नहीं बच पा रहे। लोभी का विवेक लुप्त हो जाता है। बाढ में बहकर आए शवों से लालची लोग आभूषण उतार लेते है। रेल-दुर्घटना के समय कुछ लोग तो घायलों की सेवा करते है किन्तु कुछ लोगों का चित्त माल पार करने मे लगा रहता है। दहेज-सरीखी कुरीतियों को लोभ से ही ताकत मिलती हे। महाभारत के शान्तिपर्व में ठीक ही कहा गया है–**"एको लोभो महाग्राहो, लोभात्पापं प्रवर्तते"**। लोभ से बचने का उपाय है सन्तोष-वृत्ति। कहा भी है–**"सुख पावे सन्तोषी प्राणी"**।

धनादि सामग्री लोभ करने से नहीं, पुण्य से प्राप्त होती है। सकल पदार्थ या जग माहीं, भाग्यहीन नर पावत नाहीं। इसलिए लोभ करने की अपेक्षा प्रशस्त पुण्य के सम्पादन में लगना चाहिए।

जीवन मे सर्वप्रथम इन्ही कषायो के विमोचन का अभ्यास करना उचित है। इन कषायो के अभाव में ही सुख-शान्ति या धर्म आत्मा में प्रकट होते हैं। कषायों को छोड़े बिना न सयम पल सकता है और न वचनों में सत्यता आ सकती है। कषाय-रहित जीव का तो तप-त्याग भी व्यर्थ ही है। कषाय एक ऐसा जहर है, जो आत्मा के सभी गुणो को विषाक्त बना देता है। इस जहर से बचिए। यही सुख का रास्ता है।

□

[illegible] हिन्दी को छोड़कर अन्य किस भाषा में इतनी तेजस्विता और सामर्थ्य है कि वह राष्ट्र भाषा के प्रतिष्ठित पद पर अलंकृत हो सके।

अहिंसा

आज विश्व में हिंसा की वारदातें बढ़ रही हैं। पिछले दिनों एक ओर अमरीकी जहाजों ने एक छोटे-से देश लीबिया में जबर्दस्त बमबारी की तो दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने जांबिया, जिम्बाब्वे और बोत्स्वाना पर शर्मनाक हमला बोल दिया। सैकड़ों निर्दोष-निरपराध मारे गए। भारत में भी आतंकवाद अपना सिर उठा रहा है। सुबह-सुबह अखबार खोलते ही देश में हत्याओं के समाचार सुर्खियों में पढ़ने को मिलते हैं। अखबार का हर पन्ना बलात्कार, चोरी, डकैती, हत्या, आत्महत्या, लूटपाट, दंगे या बहुओं के जला देने की खबरों से रंगा रहता है। यह सब पढ़-सुनकर दिल काँप-काँप उठता है और मन का स्वाद बिगड़ जाता है।

मानव की बुद्धि आज भाँति-भाँति की विषैली गैसों, प्रक्षेपणास्त्रों और बमों के आविष्कार में लगी हुई है। उसके भयंकर दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। भोपाल की गैस-त्रासदी जिन्होंने भोगी है, वे क्या कभी उसकी कटु स्मृतियों से उबर सकेंगे? रूस की एक परमाणु भट्टी से हुई रिसन से एक लाख लोगों के कैंसर-ग्रस्त होने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही हैं। बम-विस्फोटों का परिणाम विकलांगता के रूप में सामने आ रहा है। हिंसा-दानव के इस बढते दबाव से मनुष्य का जीवन कैसा असहाय और कितना असुरक्षित हो गया है।

आचार्य शुभचन्द्र ने ठीक ही कहा था–''हिंसैव दुर्गतेर्द्वारं'। यह दुर्गति आज सर्वत्र दिखाई दे रही है। सब जगह मानवीय संवेदना और सहानुभूति चुकती जा रही है। उसका स्थान नृशंसता, क्रूरता और कठोरता ने ले लिया है। ऐसी परिस्थिति में एक बार फिर दुनिया के विचारक अहिंसा के महत्त्व पर नए सिरे से विचार करने के लिए विवश हो रहे हैं, अयुद्ध-सन्धि और निःशस्त्रीकरण की चर्चायें इसी का प्रतिफल है। लोगों में यह समझ बढ़ी है कि अहिंसा ही इस महाविनाश से मानवता को बचा सकती है। अहिंसा विश्वधर्म का एक सदाबहार तत्त्व है। उसका त्रैकालिक महत्त्व है। अतीत से भी अधिक महत्त्व आज है। सूर्य के प्रकाश में मोमबत्ती की रोशनी भले ही अधिक महत्त्व न रखती हो किन्तु अमावस की अंन्धेरी रात में तो उसकी उपयोगिता के बारे में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। आज हिंसा की अमा ने निराशा की काली चादर धरती पर फैला दी है। उससे बचने के लिए अहिंसा की टार्च हाथ में लेकर चलने पर ही उससे त्राण मिल सकता है।

'ज्ञानार्णव' में कहा गया-**'अहिंसा लक्षणो धर्मः, तद्विपक्षश्च पातकम्'** अर्थात् धर्म अहिंसा लक्षणवाला है और उससे विपरीत जो भी है, वह सब पाप है। अहिंसा से बड़ा कोई धर्म और हिंसा से बढ़कर पाप दूसरा नहीं हो सकता। यूँ तो कहने को भगवान महावीर ने पाँच अणुव्रतों का उपदेश दिया था, परन्तु वास्तव में उनका सबसे अधिक जोर अहिंसा पर ही था। **''एक हि साधे सब सधे'** के अनुसार अहिंसा की पूर्णता में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भी सहज ही सध जाते हैं। कोई अहिंसक व्यक्ति झूठ कैसे बोल सकता है, चोरी कैसे कर सकेगा, शील से डिगने का प्रश्न ही उसके सामने नहीं उठता तथा आवश्यकता से अधिक का संग्रह बिना दूसरों को कष्ट में डाले सम्भव ही नहीं है। अहिंसा-व्रत को स्वीकार करने वाला पहले ही यह संकल्प कर लेता है कि वह किसी को सताएगा नहीं। अतः शेष व्रतों का पालन उसके द्वारा स्वतः ही हो जाता है। इसीलिए तो पंचाणुव्रतों में अहिंसा को सिरमौर कहा गया है।

आचार्य शुभचन्द्र ने **'अहिंसैव जगन्माता'** कहकर अहिंसा को ममतामयी **'माँ'** के समकक्ष रख दिया है। संसार में माँ से बढ़कर हितैषी और कौन हो सकता है? जो रक्षा करे, वह माँ कहलाती है। स्वयं कष्ट सहकर भी माता जिस तरह बालक की रक्षा करती है, उसी तरह तीन लोक की रक्षा अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। आचार्य गुणभद्र ने 'आत्मानुशासन' में लिखा है कि जब तक मनुष्य के मन में अहिंसा धर्म रहता है, तब तक वह मारने वालों को भी नहीं मारता किन्तु जब अहिंसा धर्म उनके दिल और दिमाग से निकल जाता है, तब औरों की कौन कहे, प्रिय पुत्र को पिता मार डालता है और पिता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से जुड़कर उसे चलना ही चाहिए। समाज से यदि हम [illegible] तो उसे कुछ देना भी चाहिए।

की हत्या पुत्र कर देता है। श्रीकृष्ण और जरत्कुमार तथा श्रेणिक महाराज और कुणिक अजातशत्रु के उदाहरण हमारे सामने हैं। अतः यह निश्चित है कि इस विश्व की रक्षा का मूल आधार धर्म है और वह अहिंसामय है। स्वमी समन्तभद्र तो सबसे आगे बढ़कर कहते हैं–'अहिंसा भूतानां जगतिविदितं ब्रह्मपरमम्' अर्थात् जीवों की अहिंसा (रक्षा) ही परमब्रह्म परमात्मा है और यह बात संसार में प्रसिद्ध है। इस तरह हमारे मनीषी आचार्यों ने अहिंसा को सदैव सर्वोपरि धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

अहिंसा : तीन पहलू : अहिंसा का सामान्य अर्थ है–दूसरों को न सताना किन्तु यह केवल इसका एक पक्ष है। जिस तरह बिजली के तार 'निगेटिव' और 'पोजीटिव' दो तरह के होते हैं, उसी तरह अहिंसा का 'निगेटिव' पक्ष है–दूसरों को न सताना और 'पोजीटिव' पक्ष है–दूसरों की यथाशक्ति सेवा–भलाई करना। मैत्री, करुणा, सहिष्णुता, सहानुभूति आदि सब शब्द अहिंसा के ही पर्याय हैं। अहिंसा का एक तीसरा सबसे बड़ा पक्ष और भी है, वह है–स्वयं को न सताना। स्वयं को सताये बिना आदमी दूसरों को सता ही नहीं सकता। जब भी हम दूसरों को मारने या सताने की सोचते हैं, तभी हमारी रात की नींद गायब हो जाती है। पहले हम स्वयं दुखी होते हैं, तब दूसरों को कष्ट होता है। दूसरों को कष्ट हो ही, यह निश्चित नहीं है, किन्तु स्वयं को कष्ट होना अनिवार्य है। दूसरों पर कीचड़ फेंकने से यह जरूरी नहीं कि दूसरा गन्दा ही हो, किन्तु फेंकने वाले के हाथ तो गन्दे होते ही हैं।

जैनाचार्यों ने रागादि परिणामों को स्वहिंसा तथा षट्काय के जीव-हनन को परहिंसा कहा है। यह भी कहा है कि स्वहिंसा के बिना परहिंसा सम्भव नहीं है। अहिंसा वस्तुतः स्वसेवा ही है और स्वसेवा ही सबसे बडी सेवा है। एक चिन्तक ने व्यंगपूर्वक कहा है कि दूसरों पर दया करने का दम्भ करने वाला आज का आदमी खुद की हिंसा करता रहता है। इस व्यंग के पीछे जो तत्त्व छिपा हुआ है, उस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। किसी ने सच कहा है–

"अरे सुधारक! जगत की चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार ॥

स्वयं का सुधार सबसे बड़ी अहिंसा है। जिसका चित्त जगत भर की कल्याण-कामना से भरा हुआ हैं, वह महामानव है। एक सच्चा जैन प्रतिदिन शान्ति-पाठ के माध्यम से संसार की कल्याण-कामना करता है–"सम्पूर्ण प्रजाओं का क्षेम हो, राजा (या मंत्रीगण) बलवान और धार्मिक हो तो मेघ समय पर वर्षा करें, व्याधियों का नाश हा, क्षणभर के लिए भी अकाल, चोरी और महामारी संसार के प्राणियों को पीड़ित न करे तथा विश्व को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र का धर्मचक्र निरन्तर प्रसारित हो।" इस प्रकार हम प्रातःकालीन उपासना द्वारा भी 'अहिंसा' की ही वन्दना करते हैं

अहिंसा : विश्वधर्म-'अहिंसा परमो धर्मः' का सूत्र गलत नहीं है। सभी धर्मों में अहिंसा को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गई है। मुनिश्री विद्यानन्दजी अहिंसा को विश्वधर्म कहते हैं तथा अपने प्रवचनों के आदि-मध्य-अन्त में विश्वधर्म अहिंसा की जय प्रायः बुलवाते हैं। उन्होंने एक बार कहा था कि सन् 1966 में जब वह दिल्ली में थे, जापान से एक दल वहाँ उनसे मिलने आया। दल के नेता को मुनिश्री ने धर्म की एक पुस्तक देनी चाही। दलनायक ने पूछा–"यह कैसी पुस्तक है?" मुनिश्री ने कहा-"यह धर्म की पुस्तक है।" उसने बताया-"हम तो धर्म को मानते नहीं है।" मुनिश्री ने समझाया-"दुनिया में ऐसा कोई भी आदमी नहीं जो धर्म को न मानता हो।" जापानी युवक ने पूछा-" जब हम मना कर रहे हैं तब आप इस प्रकार कैसे कह रहे हैं?" तब मुनिश्री ने उनसे प्रश्न किया–"कोई आपके सिर पर लाठी मारे तो आपको कैसा लगेगा?" युवक का कहना था–"यह तो सबको बहुत बुरा लगेगा।' मुनिश्री ने पुनः पूछा और कोई उस पर मरहम-पट्टी बाँधे तो?' उन्होंने कहा–'यह तो अच्छा लगेगा।' मुनिश्री बोले–"बस यही तो धर्म-अधर्म है। जापानी दल के नेता ने कहा–"धर्म ऐसा है तब तो हम उसे मानते हैं।" प्रश्न व्याकरण सूत्र में ठीक ही कहा गया है–"प्राणी जीवन की तमाम अच्छाइयाँ और अच्छे काम अहिंसा धर्म में अन्तर्भूत हो जाते हैं।" आचार्य शुभचन्द्रजी का यह कथन कि धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, पूर्णतः सार्थक एवं निर्विवाद है। संसार में जितने भी गुण या पुण्याचरण हैं, उन सबके लिए एक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

[illegible]

विश्व में ऐसा कौन सा धर्म है, जिसमें अहिंसा के गीत न गाए गए हो? आज स्कूल-पाठशालाओं, मन्दिरों और सभा भवनों की दीवालों पर जो एक वाक्यांश प्रायः लिखा हुआ दीख पडता है—'अहिंसा परमो धर्मः'—यह महाभारत के आदिपर्व के एक श्लोक का पहला चरण है। इस श्लोक में "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" अर्थात् किसी जीव की हिंसा मत करो, ऐसा आदेश दिया गया है। महाभारत के ही शान्तिपर्व में 'न वैरं कुर्वेत् केनचित्' की प्रेरणा भी अहिंसा को बल प्रदान करने के लिए ही है। अहिंसक जीवन के लिए उपायों की विवेचना करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'। कन्फ्यूशियस ने इसी का अनुवाद करते हुए अपने अनुयायियों को आदेश दिया—"तुम्हें जो चीज नापसन्द है, वह दूसरों के लिए हर्गिज मत करो। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि अहिंसा सर्वोपरि है।

'धम्मपद' में कहा गया है—"न तेन आरियो होति येन पाणाणि हिंसति' अर्थात् जो प्राणियों की हिंसा करता है, वह 'आर्य' कहलाने का अधिकारी नहीं है। तथागत बुद्ध स्वयं करुणा की मूर्ति थे। उनके सम्बन्ध में एक प्रसंग प्रसिद्ध है। एक बार वह किसी रसाल—पादप के नीचे बैठे थे। वृक्ष आम्र-फलों से लदा था। पास में खेलते हुए कुछ लड़कों ने आम का फल पाने के लिए एक ढेला फेंककर मारा। निशाना चूक जाने से ढेला फल को न लगकर महात्मा बुद्ध के माथे पर लगा। माथे से खून रिसने लगा। लड़के डरते-डरते उनके पास आए। उन्होंने देखा कि बुद्ध की आँखों में आँसू हैं। रोते हुए वे बोले-"महात्माजी, हमें क्षमा कर दीजिए। हमसे बहुत बड़ी भूल हो गई है। आइन्दा ऐसी गलती कभी नहीं होगी।" बुद्धदेव ने सान्त्वना देते हुए कहा-"बच्चो! मेरे माथे में चोट लगी, इसलिए मैं नहीं रो रहा हूँ। ढेला मारने पर वृक्ष बदले में मीठा फल देता है। मेरे ढेला लगा लेकिन मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं तो वृक्ष से भी गया-बीता हूँ, इसलिए मैं रोता हूँ।" इतिहास-प्रसिद्ध है कि सम्राट् अशोक ने महात्मा बुद्ध के अहिंसामय उपदेशों का देश-देशान्तरो में प्रचार कराया था। 'मज्झिमनिकाय' में निर्दिष्ट तप के चार भेदों में से जुगुप्सा तप का अर्थ ही है हिंसा का पूर्णरूपेण तिरस्कार।

इस्लाम धर्म में भी जीव-दया का संदेश स्थान-स्थान पर मिलता है। कुरानशरीफ में 'विस्मिल्लाह रहमानुर्रहीम' लिखकर खुदा को रहम का देवता कहा गया है। बताया जाता है कि कुरान में रहतम और रहम जैसे शब्दों का प्रयोग चार सौ से भी अधिक बार हुआ है। किसी के प्रति बुरा बोलने या गाली देने को भी वहाँ गुनाह कबूल किया गया है। हजरत मुहम्मद साहब की दयालुता के बारे में एक किस्सा मशहूर है। किसी शिकारी ने एक हिरनी को पकड़ लिया। उसकी कातर दशा से द्रवित होकर मुहम्मद साहब ने शिकारी से कहा—"इस हिरनी के बच्चे भूखे हैं। इसे इतनी मोहलत दे दो कि यह उन्हें दूध पिलाकर लौट आए। तब तक के लिए मैं अपनी जान को अमानत के रूप में तुम्हें सौंपता हूँ।" अहिंसा के प्रति कितनी अगाध निष्ठा थी उनके हृदय में, इस घटना से यह पता चलता है।

इस्लाम धर्म मे कुर्बानी का उपदेश कब, किसने और क्यों दिया, यह विचारणीय है। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरत अली साहब ने तो पशु-पक्षियों तक पर रहम करते फर्माया है—"रे इंसान! तू पशु-पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत बना।" दीनेइलाही के प्रवर्त्तक सम्राट् अकबर ने भी शब्दान्तर से यही दुहराया है। कुरानशरीफ में खुदा (परमात्मा) को सारे खल्क (दुनिया) का खालिक (पिता) तथा समस्त प्राणियों को उसका बन्दा (पुत्र) बताया गया है। कोई खालिक अपनी ही औलाद को सताने या मारने की सीख कैसे दे सकता है? इस्लाम धर्म में गोश्त की तो कौन कहे, शराब पीने तक की मनाही है। इस्लाम अरबी का शब्द है, जिसका अर्थ 'शान्ति में प्रवेश करना' होता है। मुसलमानों में कुर्बानी-प्रथा का प्रारम्भ बहुत बाद में (सम्भवतः इब्राहीम के समय से) हुआ लगता है।

ईसामसीह ने अपने दुश्मनों से भी प्यार करने का उपदेश दिया है। उनकी दृष्टि में प्रेम के बदले प्रेम करने में कोई मार्के की बात नहीं है। वह कहते हैं—"अपने बैरी से प्रेम कर और सताने वाले के लिए प्रार्थना कर, ...जो तुम्हें शाप दें, उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुम्हारी चादर छीन लें, उन्हें अपना कुर्ता भी ले लेने दो। .... यदि तू बुरी नीयत से किसी को देखता है तो तू उससे व्यभिचार कर चुका। अच्छा हो कि तू उस आँख पर हमेशा के लिए पट्टी बाँध दे, ताकि सारा शरीर तो नरक में जाने से बच जाए।"

अधिक विद्वता या पाण्डित्य का प्रदर्शन करना वक्ता की कुशलता का माप नहीं है— वक्ता की योग्यता इस बात पर निर्भर है कि वह जितना भी जानता है— थोड़ा या बहुत, उसे श्रोताओं के हृदय में उतार पाता है या नहीं।

ईसा का अहिंसा के प्रति लगाव बहुत गहरा था। एक जगह वह कहते हैं—"यदि तू चर्च जा रहा हो और रास्ते में तुझे याद आ जाए कि यहाँ अमुक से तेरी खटपट या अनबन है तो चर्च जाने से पहले उससे अपराध की क्षमा माँग। अपराध या भूल को स्वीकार किए बिना प्रार्थना करने का तुझे कोई अधिकार नहीं है" उन्होंने स्पष्ट कहा है—"धन्य है वे, जो दयावान हैं क्योंकि उन पर ही दया की जाएगी।"

यहूदी, पारसी आदि मतों की बुनियाद में भी अहिंसा की भावना पाई जाती है। इनके धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि किसी आदमी का अपमान करना उतना ही बड़ा पाप है, जितना उसका खून कर देना। पशुओं को मारने और बदले की भावना रखने का निषेध सर्वत्र किया गया है।

विश्व के प्रायः सभी धर्मों में अहिंसा के स्वर मुखरित हुए हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि जैन दर्शन में अहिंसा की जितनी सूक्ष्म और निर्दोष-निर्मल व्याख्या मिलती है, उतनी दुनिया के किसी अन्य धर्म में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ वैदिक मान्यतानुसार कृतियुग में ज्ञान-यज्ञ का प्रचलन था। उनमे किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती थी। त्रेतायुग में कुछ स्वार्थी लोगों ने हिंसा को उत्तेजना दी। स्व. श्री रामधारीसिंहजी 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है—"वैदिक काल में हिंसा और अहिंसा का संघर्ष चल रहा था। कुछ ब्राह्मणों ने हिंसा का पक्ष लिया, क्योंकि यज्ञ से उनकी रोजी चलती थी और हिंसा के बिना यज्ञ सम्पन्न नही किया जा सकता था। ऐसे मे निरीह पशुओ की रक्षा का भार क्षत्रियों पर आ पडा और वे अहिंसावाद के नेता हुए।"

बौद्धधर्म में मरे हुए पशु का माँस खाने का विधान करके अपनी अहिंसानिष्ठा पर प्रश्नचिन्ह लगा लिया गया किन्तु जैनों की अहिंसा निस्सीम है। स्वयं हिंसा करने, किसी से करवाने या करने वाले की प्रशंसा करने का जैनधर्म में निषेध है।

अहिंसा : जिओ और जीने दो— अहिंसा आत्मा का आलोक है। 'भगवती आराधना' में तो कहा है—'**अत्ता चेव अहिंसा**'—आत्मा ही अहिंसा है। जैनदर्शन के अनुसार हिंसा या अहिंसा का सम्बन्ध दूसरों से उतना नहीं, जितना स्वय से है। महर्षि व्यास, महात्मा बुद्ध, यीशु, नानक आदि सभी ने एक स्वर से एक ही बात कही—"दूसरों को बचाओ, प्राणियों की रक्षा करो।" किन्तु, भगवान महावीर ने जोर देकर कहा—"पहले स्वयं बचो, अपनी रक्षा करो।" जो स्वयं सुरक्षित नही है, वह दूसरों को भी सुरक्षा नहीं दे सकता। 'जिओ और जीने दो' के नारे के पीछे भी यही भावना निहित है। यहाँ पहले स्वयं जीने को कहा गया है, बाद में दूसरों को जिलाने की बात है। जो स्वयं मृत हो, वह दूसरों को कैसे जिलाएगा? जो जियेगा, वही जीने देगा। जीना पहले है, जिलाना बाद में। बहुत से लोग आपदाओ से घबड़ाकर आत्महत्या कर लेते हैं। यह आत्महत्या सबसे बड़ी हिंसा है। जिसे अपना जीना ही पसन्द नहीं है, वह दूसरों को जिला सकेगा, ऐसा सोचना ही हास्यापद है। जो अपने प्रति इतना क्रूर है, क्या वह दूसरों के प्रति दयालु हो सकता है? जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों-हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बाँट सकता है लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती।

हमारे आचार्यो ने कहा है—"आत्मा में आकुलता का उत्पन्न होना ही हिंसा है। सभी धर्म प्राणों के घात को हिंसा कहते है किन्तु यह भूल जाते हैं कि प्राण दूसरे के ही नहीं, अपने पास भी मौजूद हैं। दूसरों के प्राणों का विघटन तो बाद में होगा, पहले अपने ही प्राणों का विघटन होता है और अपने प्राणों का विघटन होना ही वस्तुतः हिंसा है।" उनके इस कथन को बहुत गहराई से समझने की आवश्यकता है। हिंसा और अहिंसा के व्यापक अर्थो की छानबीन एवं विश्लेषण में तभी हम सफल हो सकते हैं।

संस्कृत वाङ्मय के आदि सूत्रकार आचार्य उमास्वामी ने हिंसा की परिभाषा देते हुए एक सूत्र लिखा है—"**प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा**" अर्थात् प्रमाद के वश होकर किसी के प्राणों को पीड़ा देना हिंसा है। यह पद बड़े

[illegible]

मार्के का है। प्रमाद को अनर्थों की जड़ कहा जाता है। यह प्रमाद है किस चिड़िया का नाम? आचार्य पूज्यपाद सकषाय **अवस्था को प्रमाद कहते हैं (प्रमादः सकषायत्वं)** तथा आचार्य अकलकदेव के अनुसार अच्छे कार्यों के करने में आदर-भाव **का न होना प्रमाद कहलाता है (स च प्रमादं कुशलेष्वनादरः)**। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ कि कषाय भाव से की जाने **वाली क्रिया हिंसा कहलाएगी।** हिंसा से बचना है तो कषाय से बचना होगा। कहा भी है—**'आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।'** कषाय मानसिक मलिनता का ही दूसरा नाम है। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि अन्तःकरण की अशुद्धि हिंसा और परिणाम-विशुद्धि अहिंसा है। कोई भी आदमी जब क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों के फेर में पड़ जाता है तो वह कोई अच्छा कार्य कर ही नहीं सकता और कदाचित् करना भी पड़े तो वह उसे बेमन से करता है। आचार्यों ने किसी सत्कार्य को अनिच्छा या अनुत्साह से करने को भी हिंसा कहा है। कषाय से उत्पन्न यह हिंसा ही बन्ध का कारण है। जिसने कषाय की, वह बँध गया बैचेनी और अशान्ति से। कषायी जीव का निराकुल होना असम्भव है।

ऐसे प्रमाद के वश होकर प्राणों को पीड़ा देना हिंसा है। प्राण किसे कहते हैं? धवला में कहा है—**'प्राणिति जीवति एभिरिति प्राणाः'** अर्थात् जिनके द्वारा जीव जीता है, उन्हें प्राण कहते हैं। जैसा कि हमने पहले कहा कि प्राण दूसरों के ही नहीं, अपने भी पास होते हैं। ये प्राण दो प्रकार के हैं—(1) द्रव्य प्राण और (2) भाव प्राण। द्रव्य प्राण के दस भेद हैं—पाँच इन्द्रिया, तीन बल (मन-वचन-काय बल), आयु और उच्छवास। भाव प्राणो से तात्पर्य है आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख-शान्ति, निराकुलता आदि गुण। किसी को सताने का विचार मात्र करना आत्मविकलता को न्यौता देना है। इस विकलता का उत्पन्न होना ही हिंसा कहलाता है। दियासलाई की तीली रगड खाकर जल उठती है। स्वयं जलने के बाद सूखे घास-फूस को जलाने लगती है। तीली के जलते ही यदि तेज हवा का झोंका आ जाए तो घास-फूस जलने से बच भी सकता है किन्तु तीली स्वयं तो जले बिना रहती नहीं। इसीलिए हमारे शास्त्रकारो ने कहा है कि जीवन की सबसे बड़ी बुराई भाव-हिसा है।

जैन ग्रन्थकारों ने हिंसा के चार भेद बताए हैं—(1) संकल्पी (2) आरम्भी (3) उद्योगी और (4) विरोधी। इनमें गृहस्थ को केवल सकल्पी हिंसा का त्याग करना होता है। 'सागारधर्मामृत' मे सोदाहरण यह बात इस प्रकार कही गई है .—

"आरम्भेऽपि सदा हिंसां, सुधीः सांकल्पिकीं त्यजेत्।
घ्नतोऽपि कर्षकादुच्चैः, पापोऽघ्नन्नपि धीवरः ॥"

अर्थात् सुधीजन आरम्भ या गृहस्थोचित कार्यो यथा-भोजन-पाक, घर की सफाई आदि कार्यों में सकल्पपूर्वक हिंसा का त्याग करें। एक धीवर मछलियों के मारने के संकल्प से नदी मे जाल डालता है। एक भी मछली जाल में न फँसे तो भी धीवर को हिसा का पाप लगता ही है किन्तु एक किसान की नीयत अन्नोत्पादन की है, उसके हल की नोंक से जीवों की विराधना होने पर भी वह पाप का भागी नही होता।

एक न्यायाधीश भी मनुष्य के भावों के आधार पर ही अपना निर्णय सुनाता है। तीन 'डकार' का उदाहरण देखें। एक ड्राइवर मोटर चला रहा है। उसी समय एक मोड से कोई बच्चा निकलकर सड़क पार करने लगता है। ड्राइवर उसे बचाने की कोशिश करता है, किन्तु बच्चा मोटर की चपेट में आकर मर जाता है। एक डाकू किसी मुसाफिर को लूटता है। प्रतिरोध करने पर उसे गोली से उड़ा देता है। एक डाक्टर रोगी की प्राण-रक्षा के लिए आपरेशन करता है किन्तु बचाने की हरसम्भव कोशिश करने पर भी रोगी मर जाता है। ये तीनों मामले कोर्ट में पेश होते हैं। तीनों मृत्यु के मामले हैं, किन्तु सबका पक्ष सुनने के बाद जज का फैसला अलग-अलग होता है। तनिक-सी असावधानी के लिए वह ड्राइवर को छः मास का कारावास तथा डाकू को उसकी क्रूरता के लिए फाँसी की सजा देता है एवं डाक्टर को निर्दाष होने से रिहाई मिल जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि फल क्रिया के अधीन नहीं, भावों के अधीन है।

हिंसा-अहिंसा : अनेक सम्भावनाएँ— आचार्य अमृतचन्द्र ने अपने ग्रन्थ **'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय'** में हिंसा-अहिंसा का बड़ा ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी विवेचन किया है। उन्होंने अनेक सम्भावनाओं की चर्चा की है:—

जिस प्रकार कपड़े सुखाने में समय लगता है, भिगोने में नहीं; या मकान बनाने में समय लगता है, गिराने में नहीं, उसी प्रकार ख्याति पाने में समय लगता है, गंवाने में नहीं।

हिंसा न करते हुए भी किसी-किसी जीव को हिंसा का बन्ध होता है, जैसे-आयुध-निर्माता अपने आयुधों से स्वय कोई हिंसा नहीं करता किन्तु हिंसा का फल तो उसे भोगना ही पड़ता है।

हिंसा हो जाने पर भी कोई-कोई जीव हिंसा के फल को नहीं भोगता, जैसे—डाक्टर अथवा आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसा में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्त या ईर्यासमिति से चलता हुआ साधु।

हिंसा तो करे कोई एक जीव किन्तु फल अनेक को भोगना पड़े, जैसे—देवी के सामने किसी पशु की हत्या (या बलि) तो करे कोई एक आदमी किन्तु उसका फल भोगना पड़े उन सैकड़ों को, जो इस हत्या से हर्षित हो उसका अनुमोदन कर रहे हैं।

बहुत से लोग मिलकर हिंसा करें किन्तु फल एक को मिले, जैसे-युद्ध में लड़ती तो है सेना किन्तु उसका फल मिलता है कमाण्डर या सेनापति को। हिटलर स्वयं किसी को मारने नहीं गया, किन्तु हजारों लोगों को सैनिकों ने उसकी आज्ञा से मार डाला। इस महापाप का फल भोगने से हिटलर बच नहीं सकता।

हिंसा करने पर भी फल अहिंसा का मिले, जैसे—किसी दीन, अनाथ, अबला या साधु की रक्षा के लिए की गई हिंसा में मिलता है।

हिंसा हो या न हो किन्तु पाप का बन्ध अवश्य हो, जैसे—धीवर को होता है। शास्त्रों में तन्दुल मच्छ का उदाहरण आता है, वह आकार में छोटा होने से किसी को मारता नही किन्तु भावों से मारने की कल्पना करते रहने से रौरव नरक मे उसे जाना पड़ता है।

ऐसे-ऐसे अनेक भंग (अपेक्षा) आचार्य अमृतचन्द्र ने प्रस्तुत किए हैं, जिनसे भावों की महिमा पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। सुप्रसिद्ध विचारक अमर मुनि ने ठीक ही लिखा है—"**जब किसी की आत्मा में किसी के प्रति रोष जगा तो हिंसा हो गई तथा किसी भी रूप में झूठ बोलने, चोरी करने या व्यभिचार का दुर्भाव आया अथवा कभी क्रोधादि चतुष्टय की भावनाएँ, जो जीवन को अपवित्र बनाती हैं, उठीं तो इसी को हिंसा कहा जाता है।**" यह भाव हिंसा मिथ्यात्व या अज्ञान-दशा का सूचक है। इसीलिए **'ज्ञानार्णव'** में **'हिंसैव गहनः तमः'** कहकर इससे बचने की सलाह दी गई है। अज्ञान दशा में आदमी स्वार्थी हो जाता है। अधीनस्थ व्यक्तियों से अधिक समय तक काम लेना, शक्ति से अधिक काम लेना, उनका शोषण करना या उचित वेतन न देना आदि कार्य स्वार्थ-प्रेरित हिंसा के ही प्रतिफल है। कोई भी अहिंसक प्राणी दूसरों के प्रति कठोर नहीं होता।

भावों का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता ही है। एक व्यक्ति रोता है तो उसे देखकर दूसरों को भी रोना आ जाता है। एक हँसने वाला व्यक्ति दूसरों को भी हँसाता है। स्वयं झूठ बोलने वाला दूसरों को सत्य का पाठ नहीं सिखा सकता। क्या कोई कायर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को बहादुर बना सकता है? किसी भोगी से आत्म-निग्रह की सीख नहीं मिल सकती। महात्मा गाँधी ने अहिंसा को जीवन का अमृत कहा है। स्वच्छ हृदय वाले अहिंसक लोग ही एक शिष्ट ओर संयत समाज की रचना कर सकते हैं। अहिंसा का दर्शन जीवन की हर क्रिया में प्रतिपल—प्रतिक्षण सोते-जागते और उठते-बैठते होता रहना चाहिए। गाँधीजी ने लिखा है—"अहिंसा तो मानों मेरी माला के मनकों में धागे की तरह है, जो मेरे सारे कामों में ओत-प्रोत है।

अहिंसा : उपदेश या आचरण? एक वैद्य के पास एक ऐसा रोगी पहुँचा, जिसकी आँखें दुख रही थीं और एक पैर में गठिया का दर्द था। वैद्यजी ने उसे दो दवायें दीं, पर उस मूर्ख ने पैर पर लगाने वाला लेप तो आँखों में आँज लिया और आँख की दवा पैर पर मल ली। उसे जो मजा इससे आया होगा, उसे आसानी से समझा जा सकता है। हिंसा और अहिंसा

हर व्यक्ति गुण और दोषों का पिण्ड है किन्तु गुण वही सार्थक है, जिससे दूसरों को लाभ मिले और जिससे केवल अपनी ही हानि हो, ऐसे दोष भी ठीक हैं, ऐसे दोषी [illegible] [illegible] [illegible] सकते हैं।

को लेकर भी आज कुछ ऐसा ही हुआ है। हिंसा, जो अन्याय और अनाचार के फोडे पर मलने-मसलने की चीज थी, उसे तो हमने जाने-अनजाने अपने जीवन-व्यवहार में अपना लिया है और अहिंसा, जो सदा-सर्वदा, क्षण-प्रतिक्षण पालनीय-आचरणीय थी, उसे हमने उपदेश की वस्तुमात्र बनाकर रख छोड़ा है। अहिंसा अब शास्त्रों के पन्नों में कैद होकर रह गई है। ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों की सहायता से हम उसे सभा-सम्मेलनों में जोर-शोर से उछालते है। हम दूसरो को तो अहिंसक देखना चाहते है किन्तु रोज-रोज अपने द्वारा होने वाली हिसा को प्रायः अनदेखा करते रहते हैं।

अपने जैन समाज को ही लें। रात्रि को भोजन न करने वालो का प्रतिशत निरन्तर घटता जा रहा है। ब्याह-बारातों में सूर्यास्त के बाद गौधूलि-बेला में ही नहीं, दिया-बाती हो जाने के बाद तक भी ज्यौनार मे जीमते हुए जैनियों को कहीं भी देखा जा सकता है। पानी छानकर पीने वालो का औसत नगण्य रह गया है। आलोकितपान भोजन की बात आज केवल साधुओं तक सिमट कर रह गई है। हमे एक घटना याद आ रही है। एक आदमी के पेट में दर्द था। वह इलाज के लिए डाक्टर साहब के पास गया। डाक्टर साहब ने उससे पूछा—'आज आपने भोजन मे क्या लिया है?' उसने बताया कि आज दोस्तों के साथ बाजार में चाट-पकौडी और तली हुई चटपटी-मसालेदार चीजे ज्यादा मात्रा में खा ली हैं। डाक्टर ने अपने कम्पाउण्डर से कहा-इसकी ऑख मे दवा डाल दो।' मरीज चौककर कहने लगा—'जी, दर्द ऑख मे नहीं, पेट में है।' डाक्टर ने कहा—"जानता हूँ। ऑखों से देखकर खाओगे तो कभी पेट मे दर्द नही होगा। पहले पेट दर्द का नही, तुम्हारी आँखो का इलाज जरूरी है।" भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना चाहे जो और चाहे जब खाने-चबाने वालों पर इस घटना में कैसा तीखा व्यंग्य छिपा हुआ है।

हमारी अधिकांश बीमारियो का कारण भोजन-सम्बन्धी हिसा भी है। अण्डा-सेवन से हार्ट-अटैक, धूम्रपान से कैसर, मद्यपान से गुर्दो का निष्क्रिय होना, मॉस-भक्षण से स्नायु-दौर्बल्य जेसी बीमारियॉ बढ़ रही है। यह कैसा विरोधाभास है कि आज विश्व के वैज्ञानिक और चिकित्सक तो शाकाहार के लाभों पर शोध कर रहे हैं, किन्तु भारत में अण्डा-मॉस-मछली के विज्ञापन की संस्कृति फल-फूल रही है। 'मछली की खेती' और 'अण्डो की पैदावार' सरीखे शब्द प्रचलित हो गए हैं। चमडे की बनी वस्तुओं, शैम्पू, लिपिस्टक आदि के माध्यम से होने वाली हिंसा का तो अभी पूरा हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता है।

किसी शिष्य ने पूछा था—'सर्वत्र जीवो के सद्भाव मे अहिसा कैसे पले?' आचार्य महाराज ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा—

"जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए।
जदं भुंजेज्ज भासिज्ज एवं पावं ण वज्झई"।

ठीक प्रकार से चलने, खडे होने, वैठने, सोने, खाने और बोलने वाला पापबन्ध को प्राप्त नहीं होता अर्थात् विवेकपूर्ण क्रिया करने वाला हिसा के दोष से वचा रहता है। दैनिक कार्य-व्यवहार मे समितियो के पालन की बात इसी दृष्टि से कही गई है। जैन मान्यता के अनुसार पॉच समितियॉ अहिसा के रक्षा-कवच के रूप में हैं। वे विवेक की प्रतीक हैं। चीजों को उठाने-धरने, सभा में बैठने-उठने, समाज में बोलने-चालने का भी एक विज्ञान है और उसका सम्बन्ध अहिंसा से है। परनिन्दा, चुगली, विकथा, कठोर वचन आदि का प्रयोग अहिसक के लिए वर्जित है। जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रिया में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही अहिंसक हो सकता है। 'भागवत् के इस श्लोक से भी इसका समर्थन होता है—

'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं पिवेज्जलम।
सत्यपूतं वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥"

मद्य-मॉस-मधु का त्याग अहिंसा की पहली शर्त है। महाकवि बाल्मीकि ने श्रीराम के बारे में लिखा है—'न मांसं राघवो

लिखना एक कला है और उसे सीखना पड़ता है– यह तो एक साधना है, सच है, जैसे बिना परिश्रम के कोई इंजीनियर नहीं बन सकता, वैसे ही बिना प्रयत्न के कोई लेखक नहीं बन सकता।

भुक्ते, न चैवं मधु सेवते।' मद्य से होने वाली हानियों से पाठकों को अवगत कराने के लिए 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने तो एक विशेषांक ही निकाला था। मधु–संचय में जो हिंसा होती है, उसे कोई ऑख से देख ले तो उल्टी हो जाएगी। कपडों पर खून का एक धब्बा लग जाता है तो जब तक उसे धो नहीं लेते, तब तक मन में ग्लानि बनी रहती है। खून-सने कपड़ों से मन्दिर-मस्जिद या चर्च में प्रवेश नहीं हो सकता। जिसके शरीर से रक्त बह रहा है, उसे कौन अपने पास बिठाएगा? कैसा आश्चर्य है कि जिह्वा के क्षणिक स्वाद के लिए यह जीव खून से लथपथ मॉस के लोथड़ों को अपने पेट में रख लेता है। जार्ज बर्नार्ड शा, गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे मनीषियों को, जो पहले मॉसाहारी थे, मॉस से ऐसी घृणा हुई कि वे कट्टर शाकाहारी बन गए।

सिगरेटों पर लिखा रहता है कि 'धूम्रपान विष है। टेलीविजन, सिनेमा आदि के द्वारा प्रचारित किया जाता है कि **'मद्यपान विष है'**, किन्तु लोगों ने न तो सिगरेट पीना कम किया और न मद्यपान में ही कहीं कोई कमी आई। सिगरेट और शराब सरकार के लिए राष्ट्रीय आय का साधन है। विदेशी मुद्रा के लालच में बन्दरो, मेढ़कों आदि का निर्यात क्या सरकार की अहिंसा-नीति के खोखलेपन को ही व्यक्त नहीं करता? गाँधीजी ने कहा था–**'साधन और साध्य दोनों ही पवित्र होने चाहिए,** आज यह पवित्रता सर्वांग में कहीं दिखती है क्या?

'अहिंसा' आत्मा की खुराक है तो 'रोटी' शरीर की। जो रोटी न्यायपूर्वक, बिना दूसरे को पीडा दिए हुए, दूसरो का हक सुरक्षित रहे-इस भावना से कमाई जाती है, वह खाने योग्य है। भोजन का उद्देश्य बल या आयु बढाना, शरीर-पुष्टि और स्वाद नहीं, बल्कि संयम-ध्यान-ज्ञान की साधना में उसका सहकारी होना है। जो पाप, बेईमानी और कपट से कमाई रोटी खाता है, उसका तो पतन होता ही है, जिस परिवार में ऐसी रोटी आती है, वहाँ भी धर्म नहीं टिक पाता। खान-पान का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है।

अहिंसा · पूर्णतः व्यावहारिक– कुछ लोग अहिंसा की व्यावहारिकता पर सदेह करते है। उनका तर्क होता है कि अहिसा तो साधु-सन्यासियों का धर्म है। राजधर्म मे अहिसा का क्या काम? यदि सरकार आततताइयों को दण्ड न दे तो ससार मे जुल्म की वृद्धि होगी, सज्जन कष्ट पाएँगे, अधर्म का बोलबाला और धर्म का ह्रास होगा। ऐसे सन्देहों का निवारण करते हुए स्व पं. गोपालदासजी बरैया ने 'जैन मित्र' मे लिखा था–"किसी बालक के पेट मे कृमि हो गए है तो उनसे मुक्ति के लिए धर्म यह कभी नहीं कहता कि उसे औषधि नही देनी चाहिए, क्योंकि औषधि देने से जो कृमि मरेंगे, उस हिंसा में प्रमत्त योग नहीं होगा। वहाँ बालक के स्वास्थ्य–लाभ का लक्ष्य है, कृमि मारने का नहीं"।

वैसे भी गृहस्थ विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता। राम ने रावण से और पाण्डवों ने कौरवों से युद्ध किया, उसमें हिंसा तो हुई किन्तु उस हिंसा का कारण साम्राज्य-विस्तार, धनसग्रह, यशोलिप्सा या निजी स्वार्थ नही था। वे दोनों युद्ध क्रमशः सतीत्व और स्वत्व की रक्षा के लिए लडे गए थे। युद्ध से पहले राम के दूतो ने रावण को तथा पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाने की भरसक कोशिश की थी, किन्तु जब मदान्धों पर समझाने का असर नहीं होता, तब युद्ध अनिवार्य और अनिर्वार हो जाता है। ऐसे युद्धों का उद्देश्य कुछ निश्चित आदर्शो की रक्षा करना होता है। अहिंसा में उसका निषेध नहीं है। सम्राट खारवेल, सेनापति चामुण्डराय आदि को भी युद्ध लड़ने पडे थे। द्वेषरहित होकर समबुद्धि से लोक-कल्याण के लिए दिया गया दण्ड या प्राण-हनन हिंसा की कोटि में नहीं आता। हॉ, गॉधीजी के शब्दों में–"यदि हमारी महत्त्वाकांक्षा साम्राज्य फैलाने की है, यदि हमारी आँखें दूसरों की सम्पत्ति पर गड़ी हैं, यदि भूखे पड़ोसियों के प्रति हमें कोई हमदर्दी नही है, हम अपने ही स्वार्थ में रत रहकर भोगों के पीछे पड़े हुए हैं तो फिर यहाँ अहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है।"

आज संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किए जा रहे हैं किन्तु वे सफल क्यों नहीं हो रहे? उन सभी प्रयत्नों की असफलता का कारण भय और अविश्वास की भावना है। अहिंसा तो समर्पण और निर्भयता चाहती है। अभी कुछ वर्षो पहले पंजाब से भागकर आये हिन्दुओं को पंजाब के एक मंत्री ने सलाह दी-"तुम्हें अपने प्रदेश में लौटना चाहिए।

हम करेंगे तुम्हारी सुरक्षा। तुम डरते क्यों हो?" एक पलायित हिन्दू ने पूछा—"क्या आप स्वयं सुरक्षित हैं? यदि हाँ तो आपके पीछे-पीछे यह सुरक्षा-गार्ड और हथियारबंद सैनिक क्यों चल रहे हैं? इससे तो यही मालूम होता है कि आप स्वयं भयभीत हैं। जिसे स्वयं अपनी सुरक्षा का भरोसा न हो वह दूसरों की गारण्टी कैसे दे सकता है? मंत्रीजी बेचारे निरुत्तर मुँह लटकाये लौट गए।

गाँधीजी जहाँ भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते थे, वहाँ निर्भय होकर पहुँच जाते, उनके साथ फौज तो क्या, रिवाल्वर भी नहीं होती थी। आत्मबल और अनशन-सत्याग्रह के अहिंसक अस्त्र से वह अनेक बार बलवाइयों का हृदय-परिवर्तन करने में सफल हुए थे।

अहिंसा पर तो एक पूरा ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। हम तो सार-रूप में यहाँ यही कहना चाहेंगे कि पैर में काँटा चुभ जाने, आँख में जरा-सी किरकिरी (धूल-कण) पड़ जाने, शरीर मे कहीं चींटी के काट लेने या जूतों में सरसों के एक दाने के पड़े रह जाने से हमें कितनी असुविधा, कितना कष्ट होता है। उस कष्ट की कल्पना को अपने सामने रखकर हमें जीवमात्र के कष्ट-निवारण में सदैव प्रवृत्त रहना चाहिए। सुप्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसल के इस कथन का उल्लेख करते हुए हम इस लेखमाला को सम्प्रति यहाँ समाप्त कर रहे हैं :—

"यदि अच्छे लोग बुराई से संघर्ष नहीं करेंगे तो उनका स्थान बुरे लोग लेंगे। बुरे लोग देश तथा समाज में अग्रणी न बन पायें, इसलिए अच्छे लोगों को बुराई से संघर्ष करना ही होगा।"

बुराइयों से संघर्ष करना ही अहिंसा है और यह अहिंसा ही सर्वोपरि धर्म है, जैसा कि कहा भी गया है—

'श्रूयते सर्वशास्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च।
अहिंसा लक्षणो धर्मः तद्विपक्षश्च पातकम् ॥

□

अनेकान्त

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा णणिव्वडइ
तस्स भुवणेक्क गुरुणो णमो अणेयन्त वायस्स

(जिसके बिना लोक का व्यवहार सर्वथा नहीं चल सकता है, उस तीन लोक के गुरु अनेकान्त दर्शन को मेरा नमस्कार हो।)

अनेकान्त और स्याद्वाद के सिद्धान्त जैन दर्शन के मूलाधार हैं। अनेकान्त विरोध में भी अविरोध का दर्शन है। किसी पूर्वाग्रह या हठवाद का नाम यदि एकान्त है तो अनेकान्त का अभिप्राय है—अनेक गुण या धर्मवाला पदार्थ। उदाहरण के लिए अग्नि को लीजिए, उसमें भस्म करने या जलाने, ताप प्रदान करने, पकाने, भाप बनाने, प्रकाशित करने आदि अनेक प्रकार के गुण विद्यमान हैं, किन्तु एक समय में एक साथ इन सभी गुणों का कथन नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि शेष गुणों का अभाव हो जाता है, बल्कि वे उस समय भी सत्ता में रहते हैं किन्तु कहने में नहीं आते। मुख्य या गौण की इस विवक्षा को जैनदर्शन में 'नय' कहते हैं। इस संदर्भ में आचार्य अमृतचन्द्र का कथन है—

एकेनाकर्षयन्ति श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी

मन को निर्मल बनाओ और वह निर्मल बनता है सकारात्मक चिन्तन से, मन एक बर्तन की तरह है, साफ बर्तन में भरा पानी गन्दा नहीं होता है जबकि गन्दे बर्तन में गंगाजल भी अशुद्ध हो जाता है।

अर्थात्—जिस प्रकार गोपी दही को मथते समय मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर देती है, उसी प्रकार जैन नीति (अनेकान्त-पद्धति) किसी वस्तुतत्त्व का निर्णय करते समय उसके एक धर्म को मुख्य करती है और दूसरे को गौण (अमुख्य) करती है (उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती)। इस नीति का नाम है—नय-विवक्षा।

नय अनन्त हो सकते हैं। कहा जाता है कि जितने शब्द हैं, उतने ही नय हैं। शब्द अनेकार्थक हो सकते हैं। एक शब्द है—'द्विज'। इस एक शब्द के ब्राह्मण, पक्षी, दाँत, मुनि आदि अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु एक समय में इनमें से कोई एक ही अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। किसी मनीषी ने कहा है—

अयमर्थो नायमर्थः इति शब्दाः वदन्ति न
कल्प्योयमर्थः पुरुषैः, ते च रागादि दूषिताः

अर्थात्—मेरा यह अर्थ है और यह अर्थ नहीं है—ऐसा शब्द नहीं बोलते। अर्थ की कल्पना तो मनुष्यों के द्वारा की गई है और ये रागादि से दूषित हैं।

जहाँ जो प्रसंग या अपेक्षा होती है, उसके अनुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है। यह पद्धति विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त शब्दों में सामंजस्य स्थापित करती है। शब्दों से होने वाली कलह या टकराहट को शब्दों के सदुपयोग से ही रोका जा सकता है। शब्दों के सदुपयोग का नाम ही अनेकान्त या स्याद्वाद है। वह शब्दों का प्रयोग सोच-समझकर करने तथा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने पर जोर देता है। ऐसा यदि हो तो विसंवाद नहीं हो सकता। कहा भी गया है—**'एकः शब्दः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके व कामधुग् भवति'**। अनेकान्त विविध नयों के मध्य तालमेल स्थापित करता है। प. बनारसीदासजी ने लिखा भी है—

नय अनन्त इह विधि कही, मिलै न काहू कोइ
जो सब नय साधन करे, अनेकान्त है सोइ

एक ही वस्तु में अनेक गुण-धर्म स्वीकार करने में कहीं कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, भाई, पति, दामाद, बहनोई आदि हो सकता है। राम दशरथ के पुत्र, लव-कुश के पिता, लक्ष्मण के भाई, सीता के पति, जनक के दामाद और भामण्डल के बहनोई थे। जिस प्रकार सम्बन्धों की इस अनेकात्मकता को हम जानते-समझते हैं, उसी प्रकार पदार्थो की अनेक धर्मात्मकता को भी अनेकान्त से जानने में कोई बाधा नहीं आती। सप्त भंगों द्वारा हम सही निर्णय तक पहुँच सकते हैं। अनेकान्त-दर्शन में यह सप्तभंगी का सिद्धान्त संगीत के सात स्वरों की तरह ही महत्त्वपूर्ण है। किसी वस्तु या पदार्थ को सात पहलुओं से देखना ही सप्तभंगी कहलाता है। इन्द्रधनुष के सात रंगों की तरह पहलू सात ही होते हैं, न छः हो सकते हैं और न आठ ही।

जब एक परिवार के दस सदस्यों में भी मतैक्य नहीं पाया जाता तो फिर विभिन्न धर्मानुयायियों में मतभेदों का होना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कोई या कैसा भी मतभेद समाज के स्वास्थ्य के लिए तब तक हानिकारक नहीं है, जब तक वह **'वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः'** की नीति पर आश्रित रहता है किन्तु यह मतभेद जब मनभेद में बदलने लगता है तो वह कलह और अशान्ति का कारण बन जाता है। मतभेद का अर्थ है—दृष्टिकोण की भिन्नता, किन्तु मनभेद कषाय का प्रतीक है। इतिहास ने मनभेद का परिणाम ईसा को शूली पर टाँगे जाने, ब्रूनों को जिंदा जलाने, दयानन्द को काँच पिलाने और गाँधी के सीने पर गोलियाँ दागने के रूप में देखा है। परिवार के दस सदस्य मतभिन्नता के बाद भी आपस में मिल-जुलकर रह सकते हैं/रहते ही हैं, किन्तु मतभेद हो जाने पर उनका साथ-साथ रहना दिन-प्रतिदिन कठिन होता जाता है। जो विचार-पद्धति मतभेदों को मनभेद में परिणत नहीं होने देती और वैचारिक विरोधों में भी अविरोध की खोज करती है, उसी को अनेकान्त कहते हैं।

हमेशा ध्यान रखो कि आने वाला कल आज की अपेक्षा अधिक कल्याणपूर्ण होगा। अतः उसको अच्छे उपयोग की तैयारी करो।

मतभेद सदा रहे हैं और रहेंगे। हम इतना तो कर ही सकते हैं कि दूसरों के दृष्टिकोण की उपेक्षा न करें और न बलात् उन पर अपनी राय ही थोपें। झगड़ा तो तभी होता है, जब हम यह मान लेते हैं कि जो हमने कहा या सोचा है, केवल वही सत्य है और शेष सभी की मान्यताएँ सर्वथा असत्य हैं। आग्रह या पक्षपात इसी का नाम है। इसी को एकान्त भी कहते हैं और वही झगड़े की जड़ है। जब एक कहता है कि यह तुम्हारी भूल थी और दूसरा ताना मारता है कि जी नहीं, यह सब तुम्हारी करतूत का ही नतीजा है, तब झगड़ा तो होगा ही। अपना-अपना पक्ष रखने का हम सबको हक है, किन्तु कहने-सुनने के तरीके मे एक सलीका और सतुलन तो होना ही चाहिए। कोई अनाग्रही या निष्पक्ष व्यक्ति ही मतभेदों में भी सतुलन बनाए रख सकता है। अनाग्रही होना ही अनेकान्त दृष्टि का सूचक है।

अनेकान्त शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है—**"अनेक अन्ता धर्माः सामान्य-विशेष गुण-पर्याया यस्तेति सिद्धोऽनेकान्तः'।** अन्य जितनी भी विचारधाराएँ हैं, वे वस्तु के एक-एक अंश का दर्शन कराती हैं। इससे यह भ्रम उत्पन्न होता है कि वस्तु इतनी ही है, और नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि शेष सभी धर्मों/अंशों का तिरस्कार हो जाने के कारण वस्तु का पूर्ण दर्शन नहीं हो पाता। कोई भी अंश कभी सर्वथा असत्य नही हुआ करता। **हर कथन किसी-न-किसी अपेक्षा से जुड़ा रहता है। किसी एक अपेक्षा से कोई कथन सत्य होता है तो किसी अन्य अपेक्षा से दूसरा।** सापेक्ष कथन ही वास्तव में पदार्थ के सच्चे ज्ञान में सहायक है और विरोध को मिटाता है। सापेक्षवाद ही अनेकान्त है। स्वयंभू स्तोत्र में आचार्य समन्तभद्र कहते हैं—

> 'य एव नित्य-क्षणिकादयो नया
> मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर-प्रणाशिनः
> स एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः,
> परस्परापेक्षाः स्व-परोपकारिणः'

अर्थात्—यदि नित्यत्व, अनित्यत्व आदि परस्पर निरपेक्ष एक-एक ही धर्म वस्तु मे हो तो वे न स्वय अपने अस्तित्व को रख सकते हैं और न अन्य के ही। यदि वे परस्पर सापेक्ष हो-अन्य का तिरस्कार न करें-तो हे विमल जिन! वे अपना भी अस्तित्व रखते हैं और अन्य धर्मो का भी। तात्पर्य यह है कि एकान्त दृष्टि तो स्वपरघातक है और अनेकान्त दृष्टि स्वपरोपकारक है।

सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों की परस्पर विरोधी विचारधाराओ मे समन्वय और तालमेल बिठाने मे अनेकान्त का महत्त्व अप्रतिम है। अनेकान्त-दर्शन विचारों की सकीर्णता को नष्ट कर अनेकता में एकता स्थापित करता है। आपसी संघर्ष, द्वेष और घृणा के जहर से व्यक्ति और समाज की रक्षा करता है। अनेकान्त के योगदान के बिना किसी भी वस्तु को सर्वागतः नही समझा जा सकता। प्रस्तुत है एक उदाहरण—

कुछ सम्प्रदाय ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते हैं और कुछ नहीं मानते। दोनो में से कोई तो गलत होगा ही, किन्तु व्यापक दृष्टि से विचार करने पर दोनों में एक सामजस्य भी दिखाई पड़ता है। ईश्वर को जगतकर्ता मानने वाले लोग कहते हैं कि जो पाप करेगा, उसे ईश्वर दण्ड देगा और उसे नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे तथा पुण्य करने वाले को ईश्वर स्वर्ग में भेजेगा और वह सुख पाएगा। ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्व का विरोध करने वाले कहते हैं कि पाप कर्म से अशुभ का बन्ध होता है और उसका परिणाम दुःखरूप है। पापी को दुर्गति में जाना पडेगा, परन्तु पुण्य करने से शुभ कर्म का उपार्जन होगा और शुभ कर्म जीव को सुख देता है। इस प्रकार दोनों ही पक्ष एक ही बात पर जोर देते हैं कि कोई भी मनुष्य पाप न करे। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा परिणाम मिलने के बारे मे दोनों एकमत हैं। प्राणी सदाचारी बनकर सुखी हो, दोनों का उद्देश्य यही है। एक और उदाहरण देखिए—

जैन समाज हमेशा से एकता, समन्वय और सहिष्णुता का प्रबल पक्षधर रहा है। जिस प्रकार हर [illegible] बनने और प्रत्येक अक्षर में मंत्र बनने की शक्ति निहित है, उसी प्रकार हर आत्मा में परमात्मा होने की [illegible]

कुछ लोग कार्य-सिद्धि में दैव को प्रधान मानते हैं और कुछ पुरुषार्थ को। दैव और पुरुषार्थ में से किसी एक को ही कार्यकारी मानना एकान्त है। इस सन्दर्भ में अनेकान्त दृष्टि से यह समाधान प्रस्तुत किया गया है–

'अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात् ॥ –आचार्य समन्तभद्र

अर्थात्–बिना सोचे-विचारे जो अनुकूल या प्रतिकूल कार्य हो जाता है, वह स्वदैवकृत माना जाता है (क्योंकि उसमें बुद्धिपूर्वक कार्य की अपेक्षा नहीं है), अतः यहाँ पुरुषार्थ अप्रधान है। इसके विपरीत आयासपूर्वक जो इष्ट या अनिष्ट कार्य होता है, वह पुरुषार्थकृत माना जाता है।

अनेकान्त–दर्शन सैद्धान्तिक गुत्थियों को तो सुलझाता ही है, व्यावहारिक जीवन की उलझनों के निराकरण मे भी मार्गदर्शन करता है। हर व्यक्ति जीवन में सुख-शान्ति चाहता है, जैसा कि कहा भी गया है–**'जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहें दुख तैं भयवन्त'**। सुख-शान्ति की प्राप्ति में बाधक है हिसा। अहिंसा का सहारा लेने वाला स्वयं तो सुखी रहता ही है, दूसरों को भी सुखी बना सकता है। **अहिंसा और अनेकान्त एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।**

जैनधर्म में अहिंसा का प्रमुख स्थान है। वह समभाव का धर्म है। समभाव, समता, सहिष्णुता और परस्परोपग्रह-ये जैनधर्म के मूलतत्त्व हैं। इनका आधार अहिंसा है। सकारात्मक चिन्तन का पर्याय है अहिसा। साधुजन सकारात्मक चिन्तन से अपनी कषायो पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। अहिंसक जीवन-शैली से सह-अस्तित्व का भाव जागृत होता है। कहा भी है–

स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।
अहिसायां प्रधानत्वं, जैनधर्मः स उच्यते

अनेकान्त और स्याद्वाद एक-दूसरे के पूरक होते हुए भी भिन्नार्थक हैं। स्याद्वाद प्रतिपादक है और अनेकान्त प्रतिपाद्य है। अनेकान्त का आधार वस्तु और स्याद्वाद का वचन है। अनेकान्त का निवास मन, मस्तिष्क और बुद्धि में है तथा स्याद्वाद का कण्ठ, वाणी और शब्दों में। जो वस्तु श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनेकान्त रूप है, वही नयों की अपेक्षा एकान्त रूप है। स्याद्वाद मुख्य और गौण की विवक्षा से अर्थ ग्रहण करता है, जबकि अनेकान्त की दृष्टि उसकी अपेक्षा व्यापक है।

विचारों का अनाग्रही स्वरूप ही वास्तव में अनेकान्त है। जब अनेकान्त वाणी या भाषा का रूप लेता है तो वह स्याद्वाद बन जाता है और जब आचार का रूप लेता है तो अहिंसा बन जाता है। विचारों में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और आचरण में अहिंसा ही सुख-शान्ति का मूल है। समता और संतुलन का विकास ही अनेकान्त, स्याद्वाद और अहिंसा का नवनीत है। पक्षपात छोड़कर हम सबको उसी की साधना करनी चाहिए।

□

वीतराग विज्ञान

मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है। बुद्धि दुमुँही है। वह बाहर की ओर भी दौड़ती है तथा भीतर भी झाँकती या झाँक सकती है। मनुष्य जब उसका उपयोग बहिर्जगत की खोज में करता है तो सभ्यता का विकास होता है और अन्तर्गत के अनुसंधान से संस्कृति विकसित होती है। सभ्यता का अर्थ है–अशन, वसन, शिक्षा, चिकित्सा, यांत्रिकी आदि में प्रगति। संस्कृति से आचार-विचार में निखार आता है। सभ्यता का परिचय हमारे रहन-सहन और खान-पान के स्तर से मिलता है। संस्कृति का प्राण है हमारा आचरण और चिन्तन। संस्कृति अध्यात्म के और सभ्यता भौतिकता के निकट है।

भौतिकता की ओर जाने के लिए सूत्र है–**'अन्दर के पट बंद कर, बाहर के पट खोल'**। अध्यात्म तक पहुँचाने के लिए जो मार्ग है, वह इससे ठीक उल्टा है–**'बाहर के पट बंद कर, अंदर के पट खोल।'** अंदर के पट खोलने से मिलती है मानसिक शान्ति और बहिर्दृष्टि का परिणाम होता है चिन्ताओं मे वृद्धि।

अध्यात्म में प्रवेश कर सकता है वह, जो बाहरी दुनिया से अपना मोह समेट लेता है। **'विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः'** की स्थिति को प्राप्त तथा ज्ञान-ध्यान तप में अनुरक्त कोई साधु ही आध्यात्मिक हो सकता है। अध्यात्म तो सर्वत्र दिखता है, किन्तु आध्यात्मिक आचरण के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं।

भौतिकता को ओढ़ने और सहेजने वाला सम्राट् तो बन सकता है किन्तु एक सत की प्रभुता के सामने उसका वैभव तुच्छ ही माना जाएगा। सम्राट् और संत में संत ही महान् है। इतिहास साक्षी है कि जिस चक्रवर्ती के सामने बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा सिर झुकाते हैं, वह स्वय साधु के चरणों में माथा टेककर स्वय को धन्य मानता है। कविवर दौलतरामजी ने कहा भी है–**'मुनि सकलव्रती बड़भागी।'** भाग्यशाली वह नहीं है, जिसके पास अकूत दौलत है। भाग्यवान है वह, जो दौलत को लात मारकर अपरिग्रही और अनासक्त बन चुका है।

तब और अब : अन्तर

आज लोग भौतिकता की ओर दौड़ रहे हैं। आज से सौ साल पूर्व जब मानव ने बीसवीं सदी की दहलीज पर अपने कदम रखे होंगे और अब जब वह इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने जा रहा है, उसकी दशा में जमीन-आसमान का अंतर आ गया है। तब वह हाथ से बुनी खादी के मोटे कपड़े पहनता था, चना-जौ-गेहूँ के मिश्रित हाथ-चक्की से पिसे चोकर-सहित आटे की रोटियाँ खाता था, बैलगाड़ी में सफर करता था और कामचलाऊ थोड़ी-सी पढ़ाई-लिखाई से अपना जीवन-व्यवहार चलाता था। तब न पक्की सड़कें थी और न बिजली की जगमगाहट ही। सरसों के तेल से भरे दीपक की मन्द रोशनी में पढ़कर जो बड़े हुए हैं, ऐसे कुछ बुजुर्ग आज भी हम लोगों के बीच में हैं। अब वह स्थिति नहीं है। आज के आदमी का जीवनस्तर (स्टेण्डर्ड ऑफ लिविंग) बहुत उन्नत है। शिक्षा का प्रसार पहले की तुलना में काफी बढ़ा है। पहले जहाँ एक गाँव में एक-दो मिडिल पास लोग मिलते थे, अब वहाँ दर्जनो ग्रेजुएट पाए जाते हैं। खादी का स्थान अब टेरीकाट और टेरीलिन के वस्त्रों ने ले लिया है। पहले एक आदमी के कपड़े एक झोले में आ जाते थे, अब ट्रंक और अटेचियाँ छोटी पड़ने लगी हैं। कच्चे घरों की जगह आलीशान कोठियाँ खड़ी हो गई हैं। बैलगाड़ी की जगह 'स्कूटर' आ गया है। आदमी यदि थोड़ा सम्पन्न हुआ तो 'कार' उसके घर के द्वार की शोभा बढ़ाती है। एकदम ठाठ-बाट का जीवन हो गया है आज के आदमी का। सुविधाओं और लग्जरीज (विलास-सामग्री) का अम्बार लग गया है उसके सामने और वह मजे से गुलछर्रे उड़ा रहा है।

जैन धर्म यथार्थ में वैदिक या हिन्दू धर्म नहीं है, यद्यपि उसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई है और वह भारतीय जीवन, संस्कृति तथा तत्त्व ज्ञान का मुख्य अंग है। धर्म की दृष्टि से जैन धर्म हिन्दू धर्म नहीं है। (भारत की खोज, पं. जवाहरलाल नेहरू)

इसी बदलाव की वजह से कहा जाता है कि आज का आदमी अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक सभ्य और शिक्षित है। पुराने और बूढ़े लोगों के लिए अपढ़ और गँवार जैसे विशेषण भी लगाए जाते हैं, किन्तु क्या कोई यह भी कह सकता है कि आज का आदमी पहले के आदमी के मुकाबले में अधिक सुसंस्कृत भी है? आपाधापी, अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता आज ज्यादा है या पहले ज्यादा थी? क्या बाहर से समृद्ध दिखने वाला आज का आदमी भीतर से टूट नहीं रहा है? नैतिकता की ढ़हती दीवारें किस ओर संकेत कर रही हैं?

किसी शायर ने क्या खूब कहा है :–

तालीम का शोर इतना, तहजीब का गुल इतना।
बरकत जो नहीं होती, नीयत की खराबी है।

तालीम (शिक्षा) और तहजीब (सभ्यता) के प्रसार के साथ भोग की लालसा भी बढ़ी है। असन्तोष ने अपने पैर दूर-दूर तक पसार लिए हैं। पहले की अपेक्षा आज का आदमी अधिक बेचैन है। कारण क्या है? आदमी आज इतना विलासी बन गया है कि वह दिन-रात पाँचों इन्द्रियों के विषयों की तृप्ति के लिए भोग-सामग्री जुटाने में पागलों की तरह दौड़ता रहता है। भोग की ओर इस अंधी दौड़ की गति इतनी तेज है कि यदि एक क्षण के लिए ठहरकर वह अपनी स्थिति पर गौर भी करता है तो इस दौड़ में दूसरों से अपने को पिछड़ा हुआ पाता है। कोई आगे न निकल जाए, इसलिए वह और तेज दौड़ता है। ग्रामोफोन से रेडियो, रेडियो से टेलीविजन और टेलीविजन से वी. डी. ओ. तक वह आ पहुँचा है। आगे अभी कहाँ तक जायेगा, यह भविष्य के गर्भ में है। आदमी आज 'पराधीन' बनकर रह गया है। एक क्षण के लिए भी तो वह विश्राम नहीं कर पाता। विश्राम के अभाव में दुःखी तो वह होगा ही और है भी। सुखी होने का एक ही उपाय है कि फिर से अध्यात्म की ओर लौटा जाय।

लौटें अध्यात्म की ओर

तालीम और तहजीब बहिर्जगत की तथा 'नीयत' अन्तर्जगत की घटना है। जिस तरह समुद्र की सतह पर लहरों का शोर उठता रहता है, किन्तु तल में शान्ति रहती है, उसी प्रकार बाहरी दुनिया में बेचैन कर देने वाली हलचलें हैं, किन्तु भीतर सुख-चैन का साम्राज्य है। भीतर की ओर लौटना ही अध्यात्म है। इसी को हमारे आचार्यो ने 'वीतराग विज्ञान' नाम दिया है। अब वक्त आ गया है यह सोचने का कि हम किधर जायें? अध्यात्म और भौतिकता के इस द्वन्द्व में हमारा कर्तव्य क्या है, यह विचारणीय है।

भारतीय संस्कृति अध्यात्मप्रधान है। चार्वाक को छोड़कर हमारे देश के प्रायः सभी मनीषियों ने अध्यात्म पर जोर दिया है। जैन दर्शन का तो प्राण ही अध्यात्म है। वैदिक विचारधारा में भी जैन ऋषियों के प्रभाव से ही अध्यात्म का प्रवेश हुआ। वेदों में अध्यात्म का वर्णन नहीं पाया जाता। वह बाद में उपनिषदों में देखने को मिला। उपनिषदों में यह स्वीकार किया गया है कि आत्म-विद्या के जनक क्षत्रिय (जैन तीर्थंकर) और कर्मकाण्ड-विद्या के उपदेशक ब्राह्मण थे। आज तो सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन का सार अध्यात्म ही है। अध्यात्म के बिना भारत की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हमारे पूर्व प्रधान मंत्री श्री राजीव गाँधी ने भी सन् 1989 में बम्बई में सम्पन्न राष्ट्रीय कांग्रेस के शताब्दी अधिवेशन में एक ऐसे भारत का निर्माण करने का आह्वान किया था, जो नैतिक और आध्यात्मिक बल से युक्त हो।

जैन चिन्तकों ने अध्यात्म के लिए एक नये शब्द 'वीतराग विज्ञान' का भी प्रयोग किया है। अन्य दर्शनों में इस शब्द

[illegible] के विकास को [illegible] के वातावरण को [illegible] सर्वथा अवांछनीय है।

का व्यवहार प्रायः नहीं मिलता। यह शब्द बहुत सार्थक है तथा जैन तत्त्व-प्रतिपादन में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। पण्डित-प्रवर टोडरमलजी ने अपने ग्रन्थ *'मोक्षमार्ग प्रकाश'* में वीतराग विज्ञान को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हुए उसे मंगलमय, मंगलकरण और अर्हतादि महानात्माओं का जनक बताया है। कविवर दौलतरामजी ने भी 'छहढाला' के मंगलाचरण में ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं :–

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुं त्रियोग सम्हारिकें।।

अध्यात्म को ही वीतराग विज्ञान (विकार-रहित ज्ञान स्वभाव) कहा गया है। विज्ञान की गणना शिक्षा-पद्धति में एक विषय के रूप में की जाती है। आज स्कूल और कालिजों में कला-वर्ग (आर्ट साइड) और विज्ञान-वर्ग (साइंस साइड) में पढ़ाई की व्यवस्था है। साहित्यिक या कला-वर्ग में भाषा, इतिहास, नागरिकशास्त्र, कला आदि विषय पढ़ाये जाते हैं। इनका केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही पर्याप्त है, किन्तु विज्ञान में सिद्धान्त (थ्योरी) के साथ-साथ प्रयोगात्मक (प्रेक्टीकल) ज्ञान भी आवश्यक है। विद्यार्थी कक्षा में सिद्धान्त सीखते हैं तथा उस सीखे हुए ज्ञान का अभ्यास प्रयोगशाला में करते हैं। अध्यात्म भी एक विज्ञान है। उसमें सिद्धान्त और प्रयोग का समन्वय है। आज अध्यात्म के सिद्धान्त को जानने वाले तो बढ़ रहे हैं, किन्तु उसके प्रयोग करने वालों का अभाव दिखाई देता है। प्रयोग-रहित कोरा सैद्धान्तिक ज्ञान निरर्थक है। विद्युत-तकनीक का सैद्धान्तिक ज्ञान बी. एस-सी. स्नातक को होता है, किन्तु प्रायोगिक ज्ञान न होने के कारण वह बिजली की बिगडी लाइन को ठीक नहीं कर पाता। एक बिजली-मिस्त्री का सामान्य लड़का यह काम आसानी से कर सकता है, क्योंकि उसे प्रयोग-पक्ष की पूरी जानकारी होती है।

सिद्धान्त के साथ प्रयोग भी आवश्यक

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं। अध्यात्म शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक जीव (आत्मा) शुद्ध, बुद्ध, निरंजन और अनन्त सुख का भण्डार है, किन्तु वर्तमान पर्याय की अपेक्षा वह अशुद्ध, सकषाय और सदोष है। यह अध्यात्म का सैद्धान्तिक पक्ष है। उस मलिन आत्मा को वैराग्य से निर्मल बनाकर अनन्त सुख का भण्डार कैसे बनाया जा सकता है, इस प्रक्रिया का वर्णन भी आगम ग्रन्थों में मिलता है। वह प्रक्रिया अध्यात्म का प्रायोगिक पक्ष है। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों के मेल से ही आत्मकल्याण सम्भव है। केवल एक पक्ष को पकडकर बैठ जाना एकानत का पोषण है।

सुख स्वयं में है, स्वद्रव्य में है किन्तु हम पर द्रव्य के आश्रय से सुख की कल्पना करते हैं, यही हमारी सबसे बड़ी भूल है। इस भूल के मिटने पर ही शान्ति मिल सकती है। प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। हम भी सुख चाहते हैं। सुखी होने के उपायों की तलाश में ही हम धर्म-सभाओं में जाते हैं, साधुओं के उपदेश सुनते हैं और तत्त्व-चर्चा करते हैं। यह सब करते हुए भी अटक और भटक क्यों रहे हैं? इसका कारण है 'राग'। कहा भी है–**राग आग दहे सदा। इस राग से बचने** की प्रक्रिया समझें और तदनुरूप प्रयोग (आचरण) करे तो हम सुखी हो सकते हैं। प्रयोग के बिना सुखी होने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

हम सब वर्षो से आत्मा की कथावार्ता सुनते आ रहे हैं। रात-दिन आपस में आत्मचर्चा करते रहते हैं, लेकिन आत्मा के बारे में इतना सब जानना तो शीशी पर लगे लेबिल के ज्ञान के समान है। दवा का नाम और गुण जान लेने मात्र से रोग मिटने का नहीं। आरोग्य-प्राप्ति के लिए औषधि का वैद्य के निर्देशानुसार सेवन भी आवश्यक है। आत्मस्वरूप का ज्ञान

दार्शनिक भाषा में निश्चय नय का और उस स्वरूप की प्राप्ति के लिए साधना का ज्ञान व्यवहार नय का विषय है। निश्चय नय अध्यात्म का सैद्धान्तिक और व्यवहार नय अध्यात्म का प्रायोगिक पक्ष है। किसी एक पक्ष की भी अवज्ञा या उपेक्षा हमारे आध्यात्मिक बनने के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट बन जाती है।

अध्यात्म की प्रयोगशाला

प्रयोग-पक्ष का आदर्श हमें दि. जैन साधु को मानकर चलना होगा। साधु वीतराग-पथ का पथिक होता है। **'वीतो नष्टो रागो येषां ते वीतरागाः'** के अनुसार जिनका राग नष्ट हो गया है, वे वीतराग कहलाते हैं। 'लब्धिसार' ग्रन्थ के अनुसार यह राग संक्लेश परिणामों को उत्पन्न करने वाला है। पर पदार्थो के प्रति ममत्व का नाम ही राग है और संक्लेश परिणाम भी परनिमित्तक हैं। गृहस्थों की अपेक्षा इंद्रियभोगों और पर पदार्थो से अलिप्त रहने के कारण साधु को विरागी कहा जाता है। संयम-साधना के द्वारा वह लक्ष्य (वीतरागता) की प्राप्ति के लिए सतत सचेष्ट और अग्रसर रहता है। साधु का जीवन अध्यात्म की प्रयोगशाला है। गृहस्थ कितना ही ज्ञानी क्यों न हो, यदि इन्द्रियों के विषयों में आकण्ठ डूबा हुआ हो और संयमी न हो तो आध्यात्मिक नहीं कहला सकता। 'प्रवचनसार' में कहा भी है–**सद्दहमाणो अत्थे असंजदो णाण णिव्वदि'** अर्थात् पदार्थो का श्रद्धान करने वाला (सिद्धान्तज्ञ) भी यदि असंयत (आचरणरहित) हो तो निर्वाण को प्राप्त नहीं होता। सम्यग्दर्शन अध्यात्म का सैद्धान्तिक पक्ष है तो संयम उसका प्रायोगिक पक्ष हैं।

पण्डित दौलतरामजी ने लिखा है–**'जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहें दुख तें भयवन्त।'** संसार में रहते हुए कष्ट या क्लेश कोई नहीं पाना चाहता। सभी लोग सुख की ही तलाश में भटक रहे हैं। कुछ लोग बाहरी पदार्थो के संचय और उनके भोग में आकण्ठ डूबे रहने में सुख मानते हैं तो कुछ लोगों की मान्यता है कि विरागी बन योग की ओर उन्मुख होने में सुख निहित है। भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक विकास दोनों के लिए मनुष्य के प्रयत्न सुख की प्राप्ति के लिए ही हैं, किन्तु दोनों से मिलने वाला सुख असमान जाति का है। भौतिकता से प्राप्त सुख क्षणभंगुर है, जबकि चैतन्य-चमत्कार से प्राप्त सुख शाश्वत है।

सच्चे सुख की खोज

आचार्यो ने सुख के चार भेद बताये हैं–इन्द्रियज, मनोत्पन्न, प्रशमोत्पन्न और आत्मोत्पन्न। इनमे से प्रथम दो प्रकार के सुख भौतिक सम्पन्नता से मिलते हैं और अन्तिम दो प्रकार के सुख आध्यात्मिकता या वीतरागता से। दोनों में श्रेष्ठ सुख कौन सा है, आचार्य शुभचंद्र ने इसका समाधान इन शब्दों में किया है–

> **"यत्सुखं वीतरागस्य मुनेः प्रशमपूर्वकम्।**
> **न तस्यानन्तभागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरः।।"**

अर्थात्-वीतरागी (अध्यात्मरसिक) मुनि को प्रशम भावपूर्वक जो सुख मिलता है, उसका अनन्तवॉं भाग सुख भी इन्द्र को प्राप्त नहीं होता।

'आत्मानुशासन' के अनुसार 'तत्सुखं यत्र नासुखम्' अर्थात् सुख वह है, जिसके होने पर दुःख न हो। इन्द्रियज सुख तो दुःखरूप ही है, क्योंकि जो वस्तु एक समय में मन या इन्द्रियों को प्रिय लगती है, वही दूसरे समय में उन्हें अप्रिय लगने लगती है। पेट खाली होने पर भोजन अच्छा लगता है, किन्तु भूख के अभाव में स्वादिष्ट पकवानों की ओर भी देखने की [illegible]

इच्छा तक नहीं होती। जाड़ों में जो कपड़े तन-मन को बहुत भाते हैं, गर्मियों में उन्हें छूने को भी जी नहीं चाहता। इन्द्रियज और मनोत्पन्न सुख दाद के खुजलाने से मिलने वाले सुख की तरह है, जिससे बाद में वेदना में बढ़ोतरी ही होती है। सच्चा सुख तो वीतरागता से ही प्राप्त हो सकता है।

मनुष्य-जीवन के दो पहलू हैं–एक शरीर और दूसरा आत्मा। रस-रक्त-मांस-मज्जा आदि से निर्मित शरीर जड़ और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न आत्मा चेतन है। जड़ के सुखी होने में जड़ पदार्थ निमित्त बनते हैं, किन्तु चेतन का सुख प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सेवा, क्षमाशीलता, सरलता आदि सद्गुणों के विकास में है। शरीर-सुख के लिए अपेक्षित है सुविधायें और आत्मसुख के लिए चाहिए निराकुलता। अनेक वैभवसम्पन्न व्यक्ति भी आकुल-व्याकुल दिखाई देते हैं, जबकि अकिंचन फकीरो का जीवन मस्ती से भरा हुआ देखा जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि वास्तविक सुख परिग्रह (वाह्य पदार्थो के संग्रह) में नहीं, बल्कि संतोष-वृत्ति में है। कहावत भी है कि **'संतोषी सदा सुखी'**। वकौल कविवर नीरज–**'वह स्वाद न छप्पन भोगों में, जो स्वाद है प्रेम-पंजीरी में'** अथवा **'जो आये मजा फकीरी में, वह मस्ती कहाँ अमीरी में।'**

आत्मजीवी बनें

हम शरीर है या आत्मा? यह एक सनातन प्रश्न है, जिस पर सदियों से हमारे दार्शनिक ऊहापोह करते आ रहे हैं। 'समयसार' की टीका में आचार्य पूछते हैं–'भोजन कौन करता है–शरीर या आत्मा? शिष्य का उत्तर होता है–शरीर। आचार्य टोकते हैं–'यदि शरीर भोजन करता है तो मुर्दा क्यों नहीं करता? वह भी तो शरीर है।' शिष्य पुनः कहता है–'तो भोजन आत्मा करता है।' आचार्य का प्रतिप्रश्न है–'तब सिद्ध क्यों नहीं करते? वह भी तो आत्मा है।' शिष्य निरुत्तर और उलझन में है। आचार्य समाधान करते हैं–**'हम न तो मात्र शरीर हैं और न केवल आत्मा ही। हम शरीर-सहित या सशरीर आत्मा हैं**। इस सत्य और तथ्य की स्वीकृति में हमारी अनेक उलझनों का हल छिपा हुआ है।

अध्यात्म-गंगा के दो तट है–एक शरीर, दूसरा आत्मा। जिन लोगों के शरीर में ही यह गंगा अटक कर रह जाती है, वे आत्मा तक कभी नहीं पहुँच पाते। वे इतने सुविधाभोगी हो जाते हैं कि जरा सी असुविधा उनके चित्त को विचलित कर देती है। ऐसे लोग अध्यात्म के प्रयोगात्मक पक्ष संयम-पालन से हमेशा कतराते रहते हैं। न तो उनसे शान-शौकत की जिंदगी बिताने का लोभ छूट पाता है और न अमर्यादित खान-पान की तृष्णा से ही वे बच पाते हैं। कारों-हवाई जहाजों में बैठकर सैर-सपाटा करना, मसनद के सहारे डनलप के गद्दों पर आराम फरमाना, कूलर की ठण्डी हवा खाना और तिजोरी के धन या बैंक-बैलेन्स को बढ़ाते रहना उनकी नियति बन जाती है। शरीर में उठी जरा सी फुन्सी भी उन्हें अस्पताल में शरण लेने को विवश कर देती है। ऐसे लोग आचरण के स्तर पर शरीरजीवी और शब्दों के स्तर पर आत्मजीवी बन जाते हैं। वह भी केवल इसलिए कि आत्मजीवी कहलाए बिना कोई भी उन्हें सत्पुरुष, सद्गुरुदेव या महात्मा मानने को तैयार नहीं होता। संयम-शून्य ऐसे मठाधीशों के द्वारा उपदिष्ट आत्मा उस खूबसूरत दुशाले की तरह होता है, जो 'शो केस' में रखी प्लास्टर ऑफ पेरिस की नारी-प्रतिमा पर ओढ़ाया जाता है।

वीतरागता को शास्त्रों और सुविधाओं में नहीं, स्वयं में ही खोजना होता है। शब्दों से हुआ उसका ज्ञान तो प्रायः अज्ञान से भी अधिक घातक होता है, क्योंकि अज्ञान में एक पीड़ा और उससे ऊपर उठने की आकांक्षा रहती है, किन्तु तथाकथित

खुशियों को समेटो नहीं, बांटो, बांटने से खुशियां बढ़ती हैं।

थोथा शास्त्रीय ज्ञान तो उल्टे अहंकार को बढ़ाता है और अहंकार अज्ञान को। जिस प्रकार नक्शे पर अंकित किए हुए समुद्र पर कोई जहाज नहीं तैर सकता और न उसके पहाड़ों से टकराकर वर्षा हो सकती है, उसी प्रकार छपे हुए ग्रन्थों और रटे हुए शब्दों की आत्मा से जीवन की आकुलता नहीं मिट सकती।

'मैं शुद्ध-बुद्ध, चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप' की शाब्दिक स्तुति का आशय केवल इतना ही है कि मैं शक्ति की अपेक्षा शुद्ध हूँ और ऐसा होने योग्य हूँ। यह मात्र एक सम्भावना है, जो श्रद्धान या भावना का विषय है। इसे हम अध्यात्म का सैद्धान्तिक पक्ष कह सकते हैं, किन्तु ऐसा होना तभी-केवल तभी-सम्भव है, जब गुणस्थान-क्रमानुसार संयम की साधना की जाए। पण्डित बनारसीदासजी ने कहा भी है–

'जो जो जिय गुणथानक होय। तैसी क्रिया करै सब कोय ॥'

संयम और सदाचार के बिना आत्मा की कोरी कथनी तोतारटन्त ही है। 'द्रव्यसंग्रह' में कहा है–**'संसारदेहभोगेसु विरत्तभावो य वैरग्गं।'** वैराग्य को प्राप्त जीव ही आध्यात्मिक हो सकता है। हमारे सभी आचार्यो ने पंचेन्द्रियों के विषयों से उदासीन होने की प्रेरणा की है–'आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।' इसी को संयम या व्यवहार चारित्र कहते हैं। यह व्यवहार या सराग चरित्र जीव को अध्यात्म की ओर ले जाने में सहायक है। वह उसका प्रयोगात्मक पक्ष है। उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। 'परमात्म प्रकाश' में कहा है–'हे जीव! तू व्यवहार रत्नत्रय को जान, जिससे कि तू पवित्र हो सके।' आचार्य देवसेन के अनुसार भी व्यवहार-मार्ग में प्रवेश किए बिना जीव निश्चय-मार्ग को जानने में समर्थ नहीं हो सकता।

कैसा आश्चर्य है कि पहले जब किसी को वैराग्य होता था, तो उसके कदम वन की ओर उठते थे और अब वैराग्य होने पर लोग धन (अमरीका, फ्राँस, स्विटजरलैण्ड आदि, जहाँ धन का अर्जन ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है) की ओर प्रस्थान करते हैं। इस विरोधाभास की समाप्ति पर ही सुख-चैन की वर्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं।

वीतराग विज्ञान में सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक दोनों पक्षों का संतुलन आवश्यक है। आदमी का सभ्य होना तो जरूरी है ही, किन्तु उसे सुसंस्कृत भी होना चाहिए। संस्कारों के अभाव में सभ्यता मानवता के लिए बोझ बन जाती है। संस्कारों का जनक संयम या सदाचार है और सभ्यता का भौतिक विकास। गृहस्थ दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु जीवन में उनकी एक निश्चित मर्यादा या सीमा-रेखा का अंकन अवश्य करता है। अध्यात्मोन्मुख भौतिकता ही सद्‌गृहस्थ के लिए उपयोगी हो सकती है। शब्दों के साथ-साथ आचरण में भी अध्यात्म उतरे, इसी में हमारे समाज, राष्ट्र और विश्व का मंगल है।

□

"जो [illegible] हो जाता है, बूढ़ा भी नहीं होता है। जो [illegible] हो गया, वह कभी बूढ़ा नहीं होता।

साधु-संगति : हमारा अहोभाग्य

भौतिक वातावरण-प्रधान इस बीसवीं सदी में जन्मे साधर्मी भाई बहिनों का यह परम सौभाग्य है कि उन्हें निर्ग्रन्थ वीतराग गुरुओं के दर्शन आज सहज सुलभ हैं। उत्तर भारत में बीच में सैकड़ों वर्षो का ऐसा समय भी आया, जब मुनियों के दर्शन दुर्लभ हो गए थे। पण्डित बनारसीदासजी ने अपनी आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक' में लिखा है–

चन्द्रभान बनारसी उदयकरन और थान,
चारों खेलहिं खेल फिर, करहिं अध्यात्म ज्ञान।
नगन होंहि चारों जने फिरहिं कोठरी माहिं,
कहहिं भए मुनिराज हम कछू परिग्रह नाहिं ॥

यदि उन्हें मुनि-दर्शन हुए होते तो ऐसा कौतुक वह नहीं कर सकते थे। यही तो एकमात्र ऐसी मुद्रा है, जिसका स्वाँग नहीं भरा जा सकता।

हमारे नगर फिरोजाबाद के निकट एक स्वामी ब्रह्मगुलालजी हो गए हैं, जो पेशे से बहुरूपिया थे। राधा, कृष्ण, सीता, राम, राजा, रंक, सेठ, भिखारी आदि का बाना धारण करने में सिद्धहस्त थे। एक बार टापे के राजा के आग्रह पर उन्होंने सिंह का ऐसा सजीव रूप धारण किया कि भय से राजकुमार का प्राणान्त ही हो गया। पुत्र-वियोग से दुःखी राजा ने अपने कुछ मुँह लगे लोगों के सुझाने पर ब्रह्मगुलाल से जैन मुनि का वेश धारण करके अर्थात् निर्वेश होकर उपदेश देने को कहा, जिससे उनका शोक कुछ कम हो सके। इस तरह वह मुनि बन गए और उस मुनि-दशा का उन्होंने ऐसा सुन्दर निर्वाह किया कि लोग दंग रह गए। उनके द्वारा बारह भावनाओं का मार्मिक उपदेश सुनकर राजा का चित्त भी शान्त हुआ और उन्होंने एक थाल में रत्न सजाकर उन्हें पुरस्कृत करना चाहा किन्तु स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया कि जैन साधु तिरस्कार और पुरस्कार दोनों से निःस्पृह होता है। राजा-प्रजा और परिवारजनों की अनुनय-विनय पर भी उन्होंने एक बार ग्रहण करके उस मुनि-दशा को छोड़ा नहीं। उसके बाद उनके सारे स्वाँग ही छूट गए। उनके बारे में हमारी ओर एक लावनी पढ़ी जाती है, जिसके बोल हैं–

स्वामी ब्रह्मगुलाल मुनी की, सुनो कथा अचरजकारी।
हँसी-खेल में स्वाँग रचायो, जिनमत की दीक्षा धारी ॥

तो ऐसी अद्वितीय है यह मुनि-दशा। अपने नए मुमुक्षु भाइयों के शब्दों में हम कहना चाहेंगे कि जब अनेक जन्मों के पुण्य थोक में उछाल लेते हैं, तब कोई मुनित्व को अंगीकार करता है। भव-भव की बेड़ियाँ काटने में यही पद समर्थ है। इसलिए मुनिचरणों में बहुमान होना मानव जीवन की चरम सार्थकता है।

कविवर भूधरदासजी ने निर्ग्रन्थ गुरुओं की बड़ी भावभीनी स्तुति की है। अपने जीवन में मुनियों के दर्शन वह नहीं कर सके, इसकी उनके मन में बडी कसक थी। उनकी अकुलाहट तो देखिए–

कर जोर भूधर बीनवे, कब मिलहिं मो मुनिराज।
यह आश मन की कब फलहिं, कब सरहिं सिगरे-काज ॥

एक ओर तो हमारे ये पूर्वज हैं, जो मुनियों को अपने पलक-पाँवडों पर उठाने की ललक मन में संजोए थे और एक ओर हममें से कुछ ऐसे भी हैं, जो मुनियो में दाग ढूँढ़ने में ही अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। एक बार भूल से समाज के एक सम्प्रदाय के मुखिया के मुँह से द्रव्यलिंगी मुनियों के विषय में जो हीन शब्द निकल गए तो कुछ लोगों ने उसी तर्ज पर मुनि-निन्दा को अपनी रोजमर्रा की बातचीत का अग ही बना लिया। आज कुछ लोगों में यह बीमारी बढ़ती ही जा रही

[illegible]

है और वे अत्यन्त भद्दी आक्षेपात्मक भाषा में मुनियों पर ही नहीं, मुनित्व पर भी आक्रमण कर रहे हैं। कोई मुनियों के प्रति निन्दापरक लेख लिखकर अपनी योग्यता का सिक्का जमाने के प्रयास में हैं तो कोई शिथिलाचार पर प्रहार करने के बहाने अपने मन की भड़ास निकाल रहे हैं। समाज में उपगूहन अंग के पालन का अभाव चिन्ता का विषय है।

कथित शिथिलाचार : साधुओं में शिथिलाचार है, इससे हमारी कोई असहमति नहीं है, किन्तु हमारा कहना यह है कि यह युग की देन है। गृहस्थों में साधुओं से भी अधिक शिथिलाचार है और यह वहीं से यहाँ आया है। साधु कोई फरिश्ता नहीं होता। वह गृहस्थ पहले होता है, साधु बाद में बनता है। जब हम अपनी पहाड़ सी भूलों को नजरअन्दाज करते हैं और साधु की राई-सी त्रुटि को ऊँचा उछालते हैं तो निश्चय ही गलती पर होते हैं। शिथिलाचार कोई अनहोनी वस्तु नहीं है, शास्त्रों में उसका वर्णन है और उसी के लिए प्रायश्चित विधान है। शिथिलाचार के कारण कोई साधु अवंद्य नहीं हो जाता। शिथिलाचारी की हम वन्दना करें या नहीं, जब ऐसा कोई द्वन्द्व मन में उत्पन्न हो, तब पण्डित-प्रवर आशाधरजी से हमें समाधान प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने कहा है–

यथापूज्यं जिनेन्द्राणां रूपं लेपादिनिर्मितम्।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः पूज्याः सम्प्रति संयताः॥

अर्थात्–जिस प्रकार पाषाण-निर्मित मूर्ति में हम जिनेन्द्र प्रभु की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार वर्तमान मुनियों में चतुर्थकालीन साधुओं की कल्पना कर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। कितना सुन्दर समाधान है! **'भावना भवनाशिनी'** के अनुसार हमें अपनी भक्ति-भावना का फल मिलेगा। साधु में यदि कोई कमी है तो उसका दण्ड वह पाएगा। उनकी निन्दा करके हम अपने मन को क्यों विकृत बनाएँ?

फल्टण में जब शास्त्रि परिषद का अधिवेशन हुआ था, तब उपाध्याय श्री सिद्धसेनजी महाराज के दर्शन करने का सुअवसर मिला था। वह सौम्य एवं सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी थे तथा प्रभावक वक्ता थे। उनके प्रवचन का एक अंश आज भी ध्यान से उतरता नहीं है। उन्होंने कहा था–"मत मानों मुझे सिद्धसेन, मैं तो दुष्टसेन हूँ, लेकिन इतना ध्यान रखना कि जब भी कोई दुष्टसेन सिद्धसेन बनना चाहेगा तो उसे यही मुद्रा धारण करनी होगी। यह महावीर की और कुन्दकुन्द की मुद्रा है। इसकी अवमानना कभी मत करना।" मुनियों में ऐब ढूँढ़ने वालों को पूज्य उपाध्याय श्री के शब्दों पर मनन करना चाहिए। मुनि-निन्दा तो एक पातक है और उसकी आज्ञा किसी भी दशा में किसी को नहीं दी जा सकती।

शिष्टाचार : शिथिलाचार की चर्चा करने वाले शिष्टाचार की बात क्यों नहीं करते? अठारह वर्ष पूर्व पोदनपुर (बम्बई) में पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज की जन्मजयन्ती मनाई गई थी। आदरणीय स्व. पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री से भी बोलने के लिए आग्रह किया गया था। हम जानते हैं कि पण्डितजी आचार्यश्री के आलोचक थे और यदा-कदा उन्होंने उनके संघ की कुछ प्रवृत्तियों की नुक्ताचीनी की थी। सभी उत्सुक थे कि देखें, वे आज क्या कहते हैं लेकिन हम सबको उस समय सुखद आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने आचार्यश्री का नाम लेकर उन्हें नमोऽस्तु किया और उनके प्रति बहुमान व्यक्त किया। यह था गृहस्थोचित शिष्टाचार का निर्वाह, जो हम सबका आवश्यक और पुनीत कर्त्तव्य है। साधु को देखकर जिसका मस्तक झुकता नहीं है, उसका भव-भ्रमण अभी समाप्त होने का कोई लक्षण नहीं है, यही कहा जा सकता है।

एक शास्त्रीय प्रमाण : प्रथमानुयोग में राजा उद्यायन का दृष्टान्त आता है। एक बार एक देव ने उनकी मुनिभक्ति की परीक्षा लेने के लिए नकली मुनि का वेश बनाया और रुग्ण शरीर लिए कराहते हुए वह उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। राजा उद्यायन ने उनकी यथाशक्ति वैयावृत्ति की। उन्होंने यह नहीं सोचा कि पहले मुनि की परीक्षा लें कि यह सच्चा मुनि हैं या नहीं? भावलिंगी या सम्यग्दृष्टि है या नहीं? उन्होंने उनकी सेवा-परिचर्या कर शिष्टाचार का सम्यक् निर्वाह किया। यही गृहस्थ का कर्त्तव्य है। हमें शास्त्रों में कहीं भी यह पढ़ने और देखने को नहीं मिला कि नकली मुनि की सेवा-भक्ति

गुरु की [illegible] शास्त्रों का अध्ययन कर जो नित्य उपदेश प्रदान करते हैं, माता जिनवाणी के चरणों के उपासक वे पूज्यवर विद्वज्जन सबका सम्मान करें।

करने से राजा उद्यायन के सम्यक्त्व को कोई आँच आई हो। यह एक उदाहरण यह बताने में पूरी तरह समर्थ है कि मुनियों के प्रति हमारा दायित्व और कर्त्तव्य क्या है।

इस पंचम काल में भी तपोधन पू. शान्तिसागरजी महाराज से लेकर विद्यासागरजी महाराज पर्यन्त जो साधु-संस्था हमारे सामने है, उसमें अनेक उत्कृष्ट संत हैं। वे स्वयं उत्कृष्ट चारित्र के धारक है तथा उनकी प्रेरणा से अनेक भाई-बहिन संयम-मार्ग में प्रवृत्त हुए और हो रहे हैं। यह आगम का ही कथन है कि चौबीस तीर्थंकरों के काल में सात बार मुनि-संस्था का उच्छेद हुआ और उतनी ही बार धर्म का ह्रास और लोप हुआ। अतः यह निर्विवाद है कि जब तक मुनि-संस्था फलती-फूलती रहेगी, तब तक धर्म की जड़ हरी रहेगी। मुनि-संस्था के इस उपकार का विस्मरण हमें कभी नही करना चाहिए। आज वैदुष्यमण्डित अनेक आर्यिकाएँ हमारे मध्य हैं, यह एक चमत्कार ही है। इन सबके द्वारा जो महती प्रभावना हो रही है, उसकी अनदेखी कोई नादान ही कर सकता है। यह सचमुच हमारा अहोभाग्य ही है कि हम उनके युग में रह रहे हैं। यह आकाश मण्डल के ध्रुवतारे की तरह एक अटल सत्य के रूप मे मान्य है–

वन्दों दिगम्बर गुरुचरन, जग तरन-तारन जान।
जे कर्मभारी रोग को हैं, राजवैद्य महान ॥
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहि कटे कर्म-जंजीर।
ते साधु मेरे उर वसहु, मम हरहु पातक पीर ॥

आइए, हम इन श्रेष्ठ ऋषिराजों की चरण-रज माथे से लगाकर अपने मानव जीवन को सार्थक और कृतार्थ करें।

□

चरणानुयोग और मुनि-चर्या

(डा. कोठियाजी से एक चर्चा)

विद्वानों के मन में धर्म की सुरक्षा और समाज की उन्नति के लिए एक टीस या तड़पन होती है। जब भी उन्हे कही कुछ असगत-सा दिखाई देता है तो उनकी मनोव्यथा उनके शब्दों में व्यक्त हुए बिना नहीं रहती। ऐसा ही कुछ अनुभव हुआ गत 26 फरवरी 1993 को, जब हम सागर के पंचकल्याणक समारोह से लौटते हुए बीना में श्रद्धेय डा. दरबारीलालजी कोठिया से मिले। हम उनके साथ दो घण्टे से कुछ अधिक समय तक रहे। अनेक सामाजिक प्रसंगो पर उनसे चर्चा हुई। उनके मन में सर्वाधिक चिन्ता समाज में, विशेषतः साधु-समाज में दिनोदिन बढ़ती हुई स्वेच्छाचारिता को लेकर थी।

डा. साहब का कहना था कि व्यक्तियों के आचरण में आ रही गिरावट के प्रति हम काल या वातावरण का प्रभाव मानकर चुप्पी साध सकते है किन्तु साधु-चर्या में आ रहे दोष तो हमें बिना पूछे भी बोलने के लिए मजबूर करते हैं। साधु मार्गदर्शक है। वह यदि अपने मार्ग से हट या भटक गया तो समाज या व्यक्तियों के समूह में आ रही गिरावट को दूर करने के सारे रास्ते ही बंद हो जाएँगे। स्वस्थ समाज का निर्माण आदर्श साधुओं पर ही निर्भर है।

डा. साहब ने कहा कि जहाँ वीतराग संत विराजते हो, वहाँ प्रेम का दरिया बहते रहना चाहिए। सामाजिक कलह या द्वन्द्वों की समाप्ति तथा भाईचारे की भावना के विकास से ही किसी साधु का प्रभाव आंका जाता है। शास्त्रों में कहा गया है कि मुनि के चरणों में शेर और गाय या सॉप और नेवला जैसे परस्पर विरोधी प्रकृति के जीव भी शान्त होकर बैठते हैं।

मायाचार, प्रपञ्च और दूसरों के प्रतारण में चतुर यह लक्ष्मी अपने अनादर के भय से ही मानों विद्वानों के पास नहीं आती, अतः निष्पाप हृदय, लोभ से अकुण्ठित बुद्धि वाले ये विद्वान् आदरणीय हैं।

वे अपना जन्मजात ब वैरभाव भूल जाते हैं। आज ऐसा क्यों नही हो रहा है? किसी नगर में साधु के रहते हुए भी पुराने झगड़े तो मिटें नहीं, बल्कि नए और खड़े हो जाए तो इसके कारणों पर विचार अवश्य करना चाहिए, अन्यथा नई पीढ़ी की श्रद्धा या आस्था ही खत्म हो सकती है। डा. कोठियाजी एक मुनिभक्त विद्वान है। उन्होंने जैनदर्शन, आचार और न्यायशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। वह साधुओं के साथ बैठकर वर्षो तक स्वाध्याय करते और कराते रहे हैं। आज 82 वर्ष की उम्र में भी बुलाए जाने पर आगम-ग्रन्थों की वाचनाओं में शामिल होते हैं। शक्त्यानुसार जिनधर्म की प्रभावना में निरन्तर अनुरक्त है। उनकी चिन्ता को हल्के ढंग से नहीं लिया जा सकता। उनकी भावना साधु-संस्था के स्थितिकरण की ही है, उसकी आलोचना की कतई नहीं।

दो घण्टे की वार्ता में डा. साहब ने आगम के आलोक में अपने कुछ विचार व्यक्त किए। उन्हीं विचारों को हम यहाँ अपनी लेखनी से लिखकर प्रस्तुत कर रहे हैं। विचार उनके है, भाषा हमारी है। बात आगम की है, कहने का ढंग अपना है। साधु और श्रावक दोनों इस दिशा में विचार तो करें ही, बस इतनी-सी प्रार्थना है।

उनके साथ वार्ता करते समय जो बिन्दु उभरकर सामने आए, उनमें से मुख्य ये हैं .–

(1) यदि जैनेतर पत्रों में दि. साधुओं के चरित्र को लेकर कोई टीका-टिप्पणी छपती है तो उससे जैनधर्म की निर्मल छवि को आघात पहुँचता है। पिछले दिनों ऐसी कुछ घटनाएँ घटी है। चौथी दुनिया, राजस्थान-पत्रिका, नई कहानियाँ आदि कुछ पत्रों की कतरने हमारे सामने है हमारा मानना है कि इन पत्रों में जो कुछ छपा है, वह असत्य ही होगा किन्तु साथ ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि दिगम्बर जैन साधु को ऐसे सभी प्रसंगों से बचना चाहिए, जिन पर लोगों को उँगली उठाने का अवसर मिले। कहावत भी है–**'बद अच्छा, बदनाम बुरा'**। साधु की अपनी एक गरिमा होती है। उसे ठेस नहीं लगे, ऐसा पुरुषार्थ करना साधु का कर्त्तव्य है।

इस तरह की घटनाओं के पीछे कुछ युवा साधुओं का एकलबिहारी होना है। युवा साधुओं में जोश तो खूब होता है और वे जोर-जोर से धर्म-प्रभावना भी करना चाहते हैं, किन्तु यह कार्य किसी अनुभवी साधु की छत्र-छाया और अनुशासन में रहकर ही करना उचित है तभी वह प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

इधर [illegible] युवा साधुओ की सख्या तेजी से बढ रही है और उनको समाज में बहुमान भी मिल रहा है। इससे कुछ अपात्रो को भी मुनि बनने का प्रोत्साहन मिला है और उनके द्वारा साधु-पद को लांछित करने वाली कुछ घटनाएँ इधर घटी है। एकलबिहारी साधु प्राय. निरकुश हो जाता है और कभी-कभी जाने या अनजाने वह अकरणीय कार्य कर बैठता है। अतः हमारे मान्य आचार्यो को साधुओं के एकलबिहार पर सख्ती से रोक लगानी चाहिए। सही आत्मसाधना संघ में रहकर ही सम्भव है।

(2) आज हर साधु आचार्य बनना चाहता है। एक आचार्य के रहते हुए भी उनके द्वारा दीक्षित उनकी शिष्य-परम्परा मे अनेक आचार्य देखे जा रहे है। कुछ को समाज ने भी बिना उनके दीक्षा-गुरु से पूछे आचार्य घोषित कर दिया है। आचार्य-पद बहुत सस्ता हो गया है। नियमतः तो एक संघ का एक ही आचार्य होना चाहिए, किन्तु यथार्थ मे आज ऐसा है नहीं। हमें यह ध्यान मे रखना होगा कि आचार्य-पद के अवमूल्यन में साधु-संस्था का भी अवमूल्यन निहित है।

आगम कहता है–'जो पहले शिष्यपना न करके आचार्यपना करने को वेगवान है, वह पूर्वापर विवेकरहित ढोंढाचार्य है, जैसे अंकुशरहित मतवाला हाथी' (मूलाचार/785)। इस सदर्भ में दो बातें विचारणीय है–(क) अच्छा तो यही है कि एक संघ में एक ही आचार्य हो। उसके आचार्य की अनुमति से कुछ साधु यदि संघ से पृथक बिहार करें तो भी निर्देश-आदेश उन्हीं का मानें। स्वतन्त्र आचार्य बनकर कदापि स्वेच्छाचारिता को बढ़ावा न दें। **(जैनी तपस्या हि स्वैराचारविरोधिनी)** तथा (ख) यदि ऐसा सम्भव न हो तो जिस साधु ने कम से कम बारह वर्षों तक मुनि-व्रतों का निरतिचार रूप से पालन किया

[illegible]

हो, जो उपदेश-कुशल हो, शास्त्र-मर्मज्ञ हो और जिसमें अनुशासन बनाए रखने की योग्यता हों, उसको ही आचार्य-पद दिया जाए।

(3) आज कुछ संघों में साधुओं की संख्या बढ़ाने की होड़ लगी हुई है। लगता है कि कुछ आचार्य ऐसा सोचते हैं कि उनके संघ में जितने अधिक साधु होंगे, वह संघ उतना ही बड़ा माना जाएगा। इस काल्पनिक व्यामोह में बहुत से अपरिपक्व लोगों को मुनि-दीक्षाएँ दी जा रही है। उनमें से अनेक अल्प समय में ही साधु-मर्यादा से च्युत होते हुए देखे जा रहे हैं। आगम का कथन है—**'पासत्थ सदसहस्सादो वि सुसीलो वरं सु एक्को वि'** (भगवती आराधना/354) अर्थात् अपरिपक्व या चारित्र-भ्रष्ट मुनि एक लाख भी हों तो भी एक सुशील मुनि उनसे श्रेष्ठ है। महत्त्व संख्या-वृद्धि का नहीं, गुणवत्ता का है।

आवश्यकता सुशील मुनियों की है। बिना कठोर परीक्षा लिए और बिना किसी के स्वभाव-कुल शील को जाने-परखे मुनि-दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। दीक्षा देने में उतावलापन उत्पात का कारण है। दीक्षा देने से पूर्व पाँच-सात वर्षो तक ब्रह्मचारी या क्षुल्लक के रूप में रखकर, उसे आगम-ग्रन्थों का गहन अभ्यास कराना चाहिए। 'मोक्षमार्ग-प्रकाश' में मुनि-पद ग्रहण करने का यह क्रम बताया गया है—'पहले तत्त्वज्ञान हो, फिर उदासीन परिणाम हो, परीषहादि सहने की शक्ति हो और तब मुनि बनने की स्वयं इच्छा करें।' हर नवदीक्षार्थी को इस कसौटी पर कसकर भलीभाँति परख लेना चाहिए।

किसी भी अयोग्य या अपात्र को दीक्षा देना धर्म के अपयश का कारण बनता है। आगम में कहा गया है कि जो अयोग्य साधु को प्रथम तो मोह के कारण ग्रहण करे और बाद में उसे उसके दोषों के लिए प्रायश्चित्त न दे तो वह आचार्य भी प्रायश्चित्त का पात्र है। साधु के दस स्थिरकल्पों में एक 'व्रत' नाम का भी स्थितिकल्प है। उसके अनुसार जिसे व्रत का स्वरूप मालूम है, उसे ही व्रत देना चाहिए। नासमझ को दीक्षा देने वाले आचार्य और दीक्षित साधु दोनों ही हंसी के पात्र बनते हैं।

(4) भगवती आराधना में साधु को 'अनियतवासो युक्तः' कहा गया है। वर्षाकाल के चार महीनों को छोड़कर वह सदा बिहार करता रहता है। कहावत भी है कि बहते पानी और रमते योगी को बाँधकर नहीं रखा जा सकता। आगम में साधु के एक स्थान पर रहने की अवधि का उल्लेख करते हुए कहा गया है—**'गामेयरादिवासी णयरे पंचाहवासिणो धीरा'** (मूलाधार/785) अर्थात् जो ग्राम में एक रात और नगर में पाँच दिन तक रहते हैं, वे साधु धैर्यवान प्रासुक बिहारी है। बोध पाहुण-टीका में भी **'नगरे पंचरात्रे स्यातव्यं, ग्रामे विशेषेण न स्यातव्यं'** का ही निर्देश है। किसी-किसी ग्रन्थ में एक-एक ऋतु में **'मासैकवासिता'** अर्थात् एक मास पर्यन्त ही एक स्थान में निवास करने की बात कही गई है। इससे अधिक समय तक रहने का विधान चरणानुयोग के किसी ग्रन्थ में नहीं है।

तीर्थस्थानों या सिद्धक्षेत्रों में साधु के अधिक समय तक रहने का उल्लेख प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में कहीं-कहीं मिलता है, किन्तु यह व्यवस्था भी विशेष अध्ययन या समाधि-साधना के लिए ही है। आज तो कुछ साधुगण मंदिर, आश्रम, मानस्तम्भ आदि बनवाने के फेर में कई-कई बर्षों तक एक ही स्थान पर निवास करते रहते हैं। उससे उनके मन में स्थान विशेष के प्रति विशेष राग उत्पन्न हो जाता है और यह लम्बा प्रवास **'अति परिचयात् अवज्ञा'** का भी कारण बन जाता है।

अनियत बिहार के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए भगवती आराधना में कहा गया है—'अनियतबिहारी को विविध तीर्थस्थानों का दर्शन होने से उसके सम्यग्दर्शन में निर्मलता आती है। अन्य मुनि भी उसके संवेग-वैराग्यादि को देखकर अपना स्थितिकरण करते हैं। परीषह-सहन की शक्ति प्राप्त होती है तथा यह अनियत बिहार ज्ञान-बुद्धि का भी साधन है।'

एक स्थान पर अधिक समय तक रहने से उस स्थान तथा उस स्थान पर रहने वालों से राग बढ़ जाता है और कदाचित् कभी कोई उनके मन की इच्छा के विरुद्ध कुछ कह दे तो निज परिणामों में मलिनता आए बिना नहीं रहती। इससे तपस्या एवं वीतरागता की साधना में व्यवधान तो आता ही है।

(5) 'परमात्मप्रकाश' की गाथा 91 में कहा गया है—'जो मुनि जिनलिंग को धारण करके भी इच्छित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे वमन करके फिर उस वमन को ही निगलते हैं।' अतः मुनि बनने के बाद अपने इर्द-गिर्द परिग्रह इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

हे विद्वज्जन! सर्वज्ञ प्रतिपादित जिन शासन के आप रक्षक हैं, मार्गभ्रष्ट अज्ञानी जनों के हितैषी हैं, [illegible] से [illegible] शासन के ज्ञाता हैं, और हिताहित रूप विवेक [illegible] के [illegible] हैं।

मुनि के पास संयमोपकरण (पिच्छी), शौचोपकरण (कमण्डलु) एवं ज्ञानोपकरण (शास्त्र) के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु रखने की आज्ञा नहीं है, यहाँ तक कि आगम में सल्लेखना के समय तो अवशिष्ट ज्ञानोपकरण को भी परिग्रह माना गया है (**ज्ञानोपकरणं अवशिष्टोपधि रुच्यते**/भ. आ.) किन्तु अब तो कुछ मुनि-संघों में इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ पाया और देखा जाता है। एक-दो मुनि-संघों में चोरी आदि की घटनाएँ भी होती हुई सुनी गई हैं। क्या इससे आचार्य कुन्दकुन्द की '**बाल की नोंक या तिल के छिलके के बराबर भी परिग्रह न रखने**' की देशना को रद्दी की टोकरी में डाल देना ही नहीं सिद्ध होता?

कुछ साधु-संघों में धन और परिग्रह के बढ़ते हुए प्रवाह ने साधुओं को आत्म-विशुद्धता के लक्ष्य से तो विरत किया ही है, उन्हें अनेक विकथाओं में भी उलझा दिया है। इस सबके रख-रखाव के चक्कर में साधुओं को अपनी तपस्या से अर्जित पुण्य की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। रयणसार में साधु को हर समय धर्म-कथा में संलग्न रहने को कहा गया है। सराग श्रमण होने का अर्थ '**वयाइरायेण जो हि संजुत्ता**' अर्थात् व्रतादि के राग से संयुक्त होना है, निर्माणादि कार्यों में आसक्त रहना नहीं। जो भी चीजें परिणामों में संक्लेश बढ़ाने में निमित्त है, साधु को उनसे दूर रहना चाहिए।

आचार्य इन्द्रनन्दि ने अपने 'नीतिसार-ग्रन्थ में लिखा है–'**गच्छपुस्तकवृद्ध्यर्थमयाचितमथाल्पकम्**' अर्थात् गच्छ और पुस्तक की वृद्धि के लिए आचार्य बिना याचना से प्राप्त हुआ अल्प परिग्रह रख सकता है। यह भी अपवाद मार्ग है। इसकी मनमानी व्याख्या कर इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, जैसा कि आजकल हो रहा है।

(6) पंचकल्याणकों आदि में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रात्रि के समय मंच पर साधु या आर्यिकाओं की उपस्थिति भी उचित नहीं है।

(7) गृहस्थों की मनःतुष्टि, संकट-निवारण अथवा कुदेवादि की आराधना से बचाने के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि का देना उतना आपत्तिजनक न भी हो, किन्तु उसे आजीविका या धनार्जन का साधन बनाना तो आगम का स्पष्ट उल्लंघन है।

आशा है, हमारे पूज्य आचार्यगण एवं साधुवृन्द आगम के आलोक में आत्मावलोकन करते हुए इन बिन्दुओं पर विचार करेंगे। श्रावकों/गृहस्थों से भी हमारी यही अपेक्षा है कि वे श्रद्धा-भक्ति के अतिरेक में ऐसा कुछ न करें, जिसकी आगम में अनुमति नहीं है।

डा. कोठियाजी का एक सुझाव यह भी था (अब वह हमारे मध्य नहीं हैं) कि हर नवदीक्षार्थी को दीक्षा लेने से पूर्व साधु की आचार-संहिता की जानकारी प्राप्त करने के लिए कम-से-कम एक बार 'मूलाचार' ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिए। बहुत-सी शिथिलताएँ तो अज्ञानवश अथवा दूसरों की देखादेखी आ रही है। यदि नवदीक्षित को आगम की मर्यादा का ज्ञान होगा तो वह उससे बचने की कोशिश अवश्य करेगा।

श्रावक को भी आगम-ग्रन्थ पढ़ने चाहिए। स्वाध्याय के अभाव में वह स्वयं तो भ्रष्ट हो ही रहा है, साधु को भी पथ-भ्रष्ट कर रहा है।

'**द्रव्यतो यो निवृत्तोऽस्ति स पूज्यो व्यवहारिभिः**' की जिनाज्ञा का पालन करते हुए हम साधुमात्र के पुनीत चरणों में नमन करते हुए सम्प्रति विराम लेते हैं।

□

संस्कृति के बिना कोई जाति जीवित नहीं रहती और संस्कृति साहित्य के बिना सुरक्षित नहीं रहती और साहित्य का सर्जन करने वाले विद्वान् ही होते हैं। अतः एक विद्वान् ही वस्तुतः समस्त जगत् को धारण करता है।

साधु संस्था और चमत्कार

साधु का पद अपनी अलौकिक वृत्ति के लिए विख्यात है। आज जब किसी साधु को हम झाड़-फूँक और यन्त्र-मन्त्र के जाल में उलझा हुआ पाते हैं, तब कष्ट होता है। आगम के अनुसार सदाकाल परमपद का अन्वेषण करने वाला साधु कहलाता है। आत्मशुद्धि के अभाव में वेष धारण करने मात्र से हम किसी को साधु नहीं कह सकते। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जो साधु रूप से प्रव्रजित हुआ है, वह यदि इस लोक-सम्बन्धी (सांसारिक) कार्यों में प्रवृत्त होता है, तो तप-संयम से युक्त होते हुए भी वह लौकिक प्राणी ही है। (पारमार्थिक मुनि नहीं)।

गृहस्थों को पुत्र की प्राप्ति, धन की वृद्धि, शत्रु पर विजय प्राप्त करने, मुकदमे में जीतने, आजीविका-लाभ आदि के लिए उपाय बताना लौकिक क्रियाएँ ही है। कोई भी साधु महाराज किसी को लौकिक आशीष नहीं देते हैं। उनके द्वारा भक्तों को 'धन-वृद्धि' का नहीं, 'धर्म-वृद्धि का आशीर्वाद मिलता है। साधु के कहने से कदाचित् नीरोगता, धन या पुत्र की प्राप्ति हो भी जाए तो इसमें साधु को अपनी तपस्या का व्यय करना पड़ता है। इस तरह का आशीर्वाद देना उसके स्वयं के लिए बहुत महँगा पड़ता है। साधु के लिए आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य को विचार में न लाने का निर्देश है। आगम में कहा गया है कि मुनि को हर आधा घण्टे पीछे पाँच मिनट के लिए स्थिर ध्यान अवश्य करना चाहिए, क्योंकि छठवें-सातवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। ख्याति-लाभ और मन्त्र-तन्त्रादि के व्यामोह में फँसकर साधु नियमतः अपने पद को मलिन कर लेता है।

शास्त्रों में लौकिक सुखों की अभिलाषा करने को गृहस्थों के लिए भी बन्ध का कारण बताया गया है, साधुओं की तो बात ही जुदा है। भोगभूमि के सुखों की वांछा, चक्रवर्ती के पद की इच्छा, इन्द्र-अहमिन्द्र होने की भावना, धनवान बनने की चाह आदि की गणना लौकिक ऐन्द्रियिक सुखों में ही की जाती है। इन्हें धर्म का फल मानना, निदान या सुखानुबन्ध नामक दोष है। सभी प्रकार के इन्द्रियजन्य सुख दुःखरूप ही होते हैं तथा वे सभी कर्म परवश, और पाप-बीज हैं, अतः लौकिक सुखाभासों को धर्म का फल मानना, या कहना धर्म का अनादर करना है।

जिन वस्तुओं को साधु स्वयं छोड़ चुका है और जिनका हमारे महापुरुषों ने भी निषेध किया है, उन्हीं की प्राप्ति का उपाय दूसरों को भला कैसे बताया जा सकता है? शास्त्रों में परिग्रह को सब दोषों की उत्पत्ति का स्थान तथा सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ कहा गया है। एक जैन कवि ने लिखा है–'**धन, जीवन अरु राज्य-सम्पदा, ये सब हैं सावन-बदरा रे**' अर्थात् श्रावण मास के बादलों की तरह धन, यौवन और सम्पत्ति क्षणभंगुर हैं। आचार्यों के इन्ही प्रशस्त वचनों पर श्रद्धा रखते हुए ही धन-परिग्रह को छोड़कर कोई गृहस्थ साधु बनता है। जिसे बुरा समझ कर वह स्वयं छोड़ चुका है, दूसरों को उसी बुराई में फँसने का प्रलोभन देने वाला कोई भी क्यों न हो, जीव का हितैषी कदापि नहीं हो सकता।

पण्डित आशाधरजी ने लिखा है कि जन्मते ही पुत्र स्त्री का हरण कर लेता है, बड़े होने पर बढ़ोतरी को छीनता है, समर्थ होकर धन पर अधिकार कर लेता है, अतः पुत्र के समान अन्य कोई बैरी नहीं है। यह कथन भी भगवान की आज्ञानुसार ही है। उनके ही द्वारा निषिद्ध वस्तु (पुत्र-प्राप्ति) को उन्हीं से माँगना क्या उनकी अवमानना नहीं है? आचार्य उमास्वामी ने 'परविवाहकरण' (दूसरों की पुत्र-पुत्रियों के विवाह कराने) को ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचारों में गिनाया है। तब कोई विरक्त साधु संसारी प्राणियों की खातिर ऐसे दुनियादारी के झंझटों में फँस कर अपने साधुत्व का सौदा कैसे कर सकता है? स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्त्यार ने ठीक ही लिखा था–'यदि दूसरों को उनके इन्द्रिय-विषय-भोगों की प्राप्ति कराना ही उनका हित साधन करना है तो फिर अपने इन्द्रिय विषय भोगों ने ही कौन-सा अपराध किया है, जिससे उनकी निवृत्ति की जाए? व्रतियों की समस्त क्रियाएँ संवेग और वैराग्य के लिए होती है। लौकिक यश या विभूतियों का मिल जाना धर्म की कसौटी कदापि नहीं है।

मलिन चित्त में व्रत और शील नहीं ठहर सकते हैं। जहाँ वासना की उपस्थिति है, वहाँ व्रत और संयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है।

हमारे जैनदर्शन में चमत्कार-जैसी कोई वस्तु नहीं है। जैन सिद्धान्तानुसार कोई भी अतिशय ठोस कार्य-कारण-भाव या निमित्त-नैमित्तिक-सम्बन्ध से रहित नहीं है। पुत्र-प्राप्ति, नीरोगता, धन-संचय आदि पुण्यकर्म के कौतुक हैं तो रोग, सन्तानहीनता, निर्धनता आदि पापकर्म के खेल हैं। मन्त्र इसमें क्या कर सकते हैं? देवों के कण्ठ से अमृत झरता है और हमारे कण्ठ से नजला। क्या कोई मन्त्र-तन्त्र कर्मोदयजनित इस दशा को उलटने में समर्थ है? यदि कोई अभव्य जिनेन्द्र प्रभु से मोक्ष की माँग कर बैठे तो क्या उसकी पूर्ति सम्भव है? अनहोनी कभी नहीं होती, इसीलिए आचार्यों ने सम्यग्दर्शन के अमूढ़दृष्टित्व अंग का वर्णन करते हुए लौकिक चमत्कारों से विमोहित होने को सम्यग्दर्शन का दोष कहा है।

वैष्णव लोग काली, विन्ध्येश्वरी आदि देवियों से नाना प्रकार की मनौतियाँ मानते हैं और मुसलमान भाई पीर-पैगम्बरों अथवा ख्वाजा-शरीफ, मियाँ अमरोहा आदि से अपनी बहुत सी तमन्नाओं को पूरी करने की अरदास करते हैं, किन्तु ये सब तो सरागी देवता हैं। उनसे माँगना तो समझ में आता है, किन्तु वीतरागी प्रभु से याचना करना तो किसी भी प्रकार न्यायसंगत नहीं है। आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि किसी भी जीव को वर-प्राप्ति की इच्छा से आशावान् नहीं होना चाहिए। धनंजय कवि ने लिखा है–'हे देव! आपकी स्तुति कर मैं दीनता से कोई वर नहीं माँगता हूँ। तुम तो सबसे उपेक्षा रखने वाले हो, दोगे भी क्या? जैन ग्रन्थों में सर्वत्र याचकवृत्ति का निषेध किया गया है। जैन मान्यता में तो स्वावलम्बन ही मोक्षमार्ग है।

कोई-कोई तर्क देते हैं कि वीतरागी प्रभु तो कुछ देते-लेते नहीं हैं, किन्तु उनके भक्त शासनदेव, यक्ष आदि धर्मानुरागियों की मनोकामना पूरी कर देते हैं। यहाँ दो बातें सदा स्मरण, रखनी चाहिए-प्रथम तो ये व्यन्तरादि बड़े मनमौजी और कौतुकी होते हैं। इन्होंने एक ओर जहाँ यमपाल, सीता, सुदर्शन आदि की सहायता की तो वहीं दूसरी ओर अनेक लोगों के सताने में भी निमित्त बने। सुभौम और लक्ष्मण के उदाहरण हमारे सामने हैं। दूसरी बात यह कि पुण्योदय का योग न होने पर ये देवता भी किसी की मदद नहीं कर पाते। गजकुमार, पंच पाण्डव, सुकुमाल आदि पर जब उपसर्ग हुए, तब ये सब कहाँ थे? दण्डक वन में 500 मुनियों को घानी में पेल दिया गया, उस समय दूर-दूर तक इनका कहीं अता-पता तक नहीं था। इसलिए भव्य प्राणियों को इनके चक्कर में फँसकर अपने सम्यक्त्व को नहीं गँवा देना चाहिए।

विद्वद्वर्य पण्डित माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य प्रायः कहा करते थे-'उपसर्ग-निवारण हो जाने की अपेक्षा उपसर्ग-सहन का पद बहुत ऊँचा है। इससे बड़ी कमाई होती है। तीन पाण्डवों की मृत्यु विघ्न सहने से ही हुई। यदि किसी देवता ने उनकी रक्षा कर दी होती तो वे भी दीर्घ संसारी ही बने रहते। सीता के लिए बनाया गया अग्नि कुण्ड, जल-कुण्ड बन गया, इस घटना पर लट्टू मत हो जाओ। सीता के उस साहस की प्रशंसा करो कि अपनी आत्मबुद्धि से आश्वस्त वह अग्नि में कूद पड़ी तथा बाद में श्री रामचन्द्रजी के प्रार्थना करने पर भी संसार में नहीं फँसी, आर्यिका बन गई। धर्म का यह फल अग्नि-परीक्षा से बहुत बड़ा है। प्रशंसा हमेशा पुरुषार्थ की करनी चाहिए, अतिशयों की नहीं।

धर्मग्रन्थों में मन्त्रादि का वर्णन तो है, किन्तु उनका प्रयोग आत्मविशुद्धि, आलौकिक आनन्द की प्राप्ति, कर्मों के संवरऔर निर्जरा के लिए ही होना चाहिये। धन प्रत्रादि की प्राप्ति के लिए मन्त्रों का प्रयोग उचित नहीं है। वात्सल्य, प्रभावना एवं संयम-रक्षा के लिए कदाचित् मन्त्र-साधन की बात कही भी गई है, फिर भी वह अपवाद मार्ग है, उत्सर्ग मार्ग नहीं। मुमुक्षु को उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, मारण मन्त्रों के प्रसंगों में तो कदापि पड़ना ही नहीं चाहिए, काम्य मन्त्र भी रागवर्धक होने से हेय ही माने गए हैं। मन्त्रों से लौकिक फलों की प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को 'अष्टसहस्री' में तीव्र रागी तथा **'अमूल्यदानक्रयी'** दोष से दूषित बताया है अर्थात जिस तरह कोई ग्राहक मूल्य न देकर दुकानदार से मुफ्त में सौदा झपटना चाहता है, उसी प्रकार लौकिक व्यक्ति पुण्यरहित दशा में तीव्र पुण्यवानों का फल लूटना चाहते हैं।

प्रायः यह भी सुनने में आता रहता है कि मन्त्र-तन्त्रादि का सहारा लेकर कुछ साधु पैसा भी इकट्ठा करते हैं। वह स्वयं नहीं करते तो अपने ही संघ में स्थायी रूप से रहने वाले किसी संचालक, या संचालिका नामधारी को देने के लिए

[illegible]

कह देते हैं। धन-संग्रह के लिए इधर-उधर तरह-तरह के टोटकों का आविष्कार भी होने लगा है। उन सबकी चर्चा करना इस लेख का विषय नहीं है। हम तो यहाँ मात्र इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि इस तरह की तरकीबों-'स्टण्टों' से निर्मल धर्म-पथ के गौरव की क्षति होती है तथा वीतराग-मार्ग पर लांछन लगता है। यह सब बंद होना चाहिए। साधु का काम चमत्कारों का चक्रव्यूह खड़ा करना नहीं है।

□

वर्षायोग

आगम-ग्रन्थों में साधु के दस कल्पों का उल्लेख मिलता है। इन दस कल्पों के नाम है—अचेलकत्व, उद्दिष्ट आहार-त्याग, सत्याग्रह, राजपिण्ड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मासैकवासिता और पद्‌म। 'पद्‌म' नामक दसवें स्थितिकल्प में वर्षायोग या चातुर्मास की व्यवस्था समाहित हैं

वर्षाऋतु में चारों ओर हरियाली छा जाती है। जमीन हरी-हरी घास से ढक जाती है। मिट्टी की आर्द्रता के कारण अनेक जीव-जन्तु उत्पन्न होने लगते हैं। जीव हिंसा-विरति के प्रति सतत सावधान इन चार महीनों में व्यर्थ गमनागमन नहीं करते। अनियतबिहारी होते हुए भी चार माह तक किसी एक ही स्थान पर रह कर आत्मसाधना करते हैं। यही उनका वर्षायोग या चातुर्मास कहलाता है।

कल्प का अर्थ है—या कुशलेन परिणामेन वाह्यवस्तु-प्रतिसेवना स कल्पः' अर्थात् कुशल परिणाम से (सावधानी के साथ/विवेकपूर्ण) बाह्य वस्तुओं का जो सेवन किया जाता है, उसका नाम कल्प है। यह एक वीतरागता-पोषक कदम है। साधु जानता है कि राग से कर्म-बन्ध होता है। इन चार महीनों में उसे बस्ती के लोगों के सम्पर्क में निरन्तर रहना पड़ता है। इन सम्पर्को में भी वह मन से अनासक्त रहने का अभ्यास करता है। इसी को कुशल परिणाम कहते हैं। इससे उसके आत्मबल में वृद्धि होती है।

'वर्षायोग' में जो 'योग' शब्द है, वह बड़े मार्के का है। गणितशास्त्र में योग का अर्थ होता है जोड़, जैसे 2+2 = 4 धर्मशास्त्र के अनुसार आत्मा का आत्मा से मिलन योग कहलाता है। सामान्य लोग प्रायः शरीरजीवी होते हैं। वह हमेशा शरीर की अपेक्षा से ही सोचते-विचारते हैं। उनके चिन्तन का रूप है—

'मैं सुखी-दुखी, मैं रंक-राव, मेरे धन-गृह-गोधन प्रभाव,
मेरे सुत-तिय मैं सबल-दीन, बेरूप-सुभग मूरख प्रवीन,
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान,
रागादि प्रकट जे दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन',

आत्मजीवी साधु का चिन्तन गृहस्थ से भिन्न होता है। वह विचारता है—

'जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला,
ता प्रकट जुदे धन-धामा, क्यों है इक मिल सुत रामा।'

साधु निरन्तर परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहने की कोशिश करता रहता है। इस स्थिरता में बाधक

धर्मनीति का आधार तो प्रेम, करुणा और वात्सल्य है। राजनीति दबाव के बिना चल नहीं सकती और धर्मनीति में दबाव का कोई काम नहीं।

तत्त्व मोह है। उसे जीतने से ही वह निर्मोही कहलाता है। गृहस्थ अपनी मानसिक दुर्बलता या अज्ञान के कारण मोह का शिकार होता रहता है। हाँ, कोशिश करने पर साधु-समागम से उसे मोह को जीतने की प्रेरणा अवश्य मिलती है।

योग से संयोग और वियोगजन्य दुःखों (अहंकार या आर्तरौद्रध्यानादि) से छुटकारा मिलता है। योग से प्राप्त होने वाला यह सबसे बड़ा लाभ ही है। आगम में कहा है कि वायुरहित स्थान् पर जैसे दीपक की लौ अकम्प और ऊर्ध्वगामी रहती है, वैसे ही योग-दशा में परिणाम अचल और उच्चादर्श की ओर उन्मुख रहते हैं।

वर्षायोग सद्गृहस्थों को धर्म-साधन के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करता है। उन्हें साधुओं के प्रवचन सुनने, आहार-दान देने, उनकी वैयावृत्ति करने और संयम धारण करने के अनेक प्रेरक क्षण प्राप्त होते हैं इन क्षणों में उनके पुण्य में वृद्धि होती है तथा पाप-भार हल्का होता है। जीवन को संस्कारित करने के लिए वर्षायोग एक वरदान के समान है।

आज वर्षायोग ने एक खर्चीले उत्सव का रूप ले लिया है। चातुर्मास का बजट कहीं-कहीं तो लाखों तक पहुँचने लगा है। जिस बस्ती में निम्न या मध्यम आय-वर्ग के लोग अधिक रहते हैं, उनके लिए इतना खर्चा जुटा पाना मुश्किल होता है। अतः वह बस्ती तो किसी साधु के वर्षायोग के सुख से प्रायः वंचित ही रहती है। वर्षायोग में आयोजक चन्दे-चिट्ठे के लिए इतने अधिक निमित्त/बहाने जुटा लेते हैं कि लोग ऊब जाते हैं! बड़े लोग भी कभी-कभी अनमने भाव से चन्दा बोलते या लिखाते हुए देखे जाते हैं। सामाजिक मान-मर्यादा के नाते व स्वयं को एक अपरिहार्य विवशता के चक्र में फँसा हुआ अनुभव करते हैं। कुछ साधुजनों को भी इसमें रस आता है। इससे वर्षायोग का आनन्द भी लोगों के मन में एक कसक भी छोड़ जाता है।

हमने देखा है कि चातुर्मास के लिए किसी संत के पास प्रार्थना करने के लिए जाते समय लोगों के मन में जितना उत्साह और हर्ष रहता है, चातुर्मास शुरू होने के बाद धीरे-धीरे उसमें कमी आने लगती है और एक स्थिति तो ऐसी भी आती है, जब वे वर्षायोग की समाप्ति के लिए एक-एक दिन गिन-गिन कर मन को ढाँढ़स बँधाते हैं। जहाँ भी ऐसा होता है, उसके कारणों की छानबीन अवश्य की जानी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि एक दिन वर्षायोग अपनी प्रासंगिकता ही खो बैठे।

साधु और श्रावक दोनों ही अपने-अपने परिणामों को अचंचल और उच्चादर्श की ओर उन्मुख रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहें तो वर्षायोग निःसंदेह वरदान सिद्ध हो सकेगा। वर्षायोग लोगों को भारस्वरूप न लगने लगे, इस स्थिति को समय रहते टालना आवश्यक है। बाद में पछताने या चिंता करने से कोई लाभ नहीं।

किसी भी वर्षायोग की सफलता के मूल्याँकन के लिए हमें निम्न प्रश्नों का उत्तर तलाशना होगा:—

साधु-संगति से नित्य देवदर्शन करने, पानी छानकर पीने या भोजन दिन में ही करने के नियम कितने लोगों ने लिए?

व्यसन-मुक्ति की दिशा में कितने कदम उठे? भोगों की ओर चल रही अन्धी दौड़ में कुछ कमी आई या नहीं?

समाज में दहेज आदि के नाम पर होने वाला उत्पीड़न कितना कम हुआ?

परिवार में सास और बहू, ननद और भावज, दिवरानी और जिठानी, पुत्र और पिता तथा भाई और भाई के बीच कितनी समझदारी बढ़ी अर्थात् इनमें एक-दूसरे के प्रति व्याप्त अविश्वास में कुछ कमी आई या नहीं?

साधर्मीजनों में परस्पर वात्सल्य बढ़ रहा है या मतभेद पहले से भी अधिक गहरे हो रहे हैं? कषाय का खेल या पार्टीबन्दी ह्रासोन्मुख है या विकासोन्मुख?

चातुर्मास में समाज का जितना पैसा खर्च हो रहा है, उसके सकारात्मक परिणाम (Positive Result) भी दिखाई दे रहे हैं या नहीं? कहीं खानापूरी या लोक-दिखावे के चक्कर में कुछ लोगों के अहं की ही पुष्टि तो नहीं हो रही है?

जिस प्रकार आलोक के बिना लोग मार्ग नहीं देख सकते, उसी प्रकार आगम के बिना कार्यार्थियों को कार्य-मार्ग का ज्ञान नहीं होता।

बच्चों में/नई पीढ़ी में कुछ बदलाव आ रहा है या वही रफ्तार बेढंगी, जो पहले थी, अब भी चल रही है?

आज नहीं तो कल, हमें इन प्रश्नों के महत्त्व को स्वीकार करना ही होगा। नैतिक मूल्यों का दिनों दिन हो रहा क्षरण हमारी साख को दीमक की तरह खोखला कर रहा है। उसे बचाना तभी सम्भव होगा, जब हम वर्षायोग की साख को बचा पाएँगें। आइए, साधु और श्रावक दोनों मिल-बैठकर इस स्थिति पर खुले दिल से चर्चा करें और उत्साह को जीवन्त बनाए रखने के लिए पक्के इरादों के साथ अपने संकल्प की घोषणा करें। संकल्प का निर्णय करते समय इतना अवश्य ध्यान में रहे कि दो नम्बर के पैसे से सम्पन्न होने वाला वर्षायोग कुशल परिणामों की साधना में बाधक ही बनेगा।

□

जिनदीक्षा : स्वरूप और समीक्षा

दीक्षाग्रहण करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह एक ऐसा पवित्र सस्कार है, जो जीव को मोक्ष की ओर ले जाता है। दीक्षा भावुकता में, देखादेखी या प्रतिस्पर्धावश ग्रहण करने की वस्तु नही है। जहाँ भी अविचारित या अपरिपक्व दीक्षाएँ दी या ली जाती हैं, वहाँ धर्म की प्रभावना कम, कुप्रभावना ही अधिक होती है। दीक्षा-संस्कार का अवमूल्यन न हो, प्रस्तुत आलेख की पीछे हमारा यही उद्देश्य निहित है।

दीक्षा को प्रव्रज्या भी कहते हैं। संसार, शरीर और भोगों से जब किसी का मोह भंग हो जाता है, कषायों और पापारम्भ से जब कोई भयभीत रहने लगता है तथा मानापमान, जय-पराजय, लाभ-हानि, जीवन-मरण आदि की अनुकूल या प्रतिकूल स्थितियों में जो हर्ष-विषाद नहीं करता, ऐसा पुण्यात्मा जीव लाखों में कोई एक होता है। सामान्य लोगों की दृष्टि में तो जिसके पास प्रचुर धन या अतुल भोग-सामग्री होती है, वह पुण्यात्मा माना जाता है। किन्तु महापुरुषों ने वैराग्य को पुण्यात्मा होने की पहचान बताया है–'**न विषयभोगो भाग्यं, भाग्यं विषयेषु वैराग्यम्**'। दौलतरामजी भी कहते हैं–'**मुनि सकलव्रती बड़भागी**' अर्थात्–सबसे अधिक भाग्यशाली (पुण्यात्मा) महाव्रती मुनिराज होते हैं। ऐसे महिमा-मण्डित मुनित्व को अंगीकार करना ही जिनागम के अनुसार दीक्षा या प्रव्रज्या है।

यह दीक्षा या प्रवज्या हमेशा गुरू-सानिध्य में ही ग्रहण की जाती है। स्वयं दीक्षित होने का कोई विधान नहीं हैं।

दीक्षा का प्रयोजन : आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं–'**पवज्जा सव्वसंग परिचत्ता**' अर्थात्–प्रव्रज्या (दीक्षा) वह है, जिसमें सर्व परिग्रहों का त्याग है। आचार्यो ने परिग्रह को पाप-मूल कहा है। 'परमात्म प्रकाश' में कहा गया है–'जो मुनि-दीक्षा धारण करके भी इच्छित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे वमन करके फिर उस वमन को ही निगलते हैं। मुनि को संयम, शौच और ज्ञान के प्रतीक पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु के रखने की आज्ञा नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने लिखा है–(दीक्षोपरान्त) बाल की नोंक या तिल के छिलके के बराबर भी परिग्रह नहीं रखना चाहिए।' दीक्षित मुनि के सामने एक ही धुन हर समय रहती है–"**वैराग्यभावना नित्यं, नित्यं तत्त्वानुचिन्तनम्।**" क्षत्रचूड़ामणिकार के शब्दों में "**जैनी दीक्षामुपादत्त, यस्यां कायेऽपि हेयता।**" हर भव्य जीव उस जिनदीक्षा को ग्रहण करना

भारतीय संस्कृति में हर उत्सव के पीछे एक उच्चकोटि की आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। इसमें कहीं भी मनोरंजन का कतई महत्त्व नहीं है, साथ में आत्मरंजन भी होना चाहिये।

चाहता है, जिसमें वाह्य परिग्रह की तो बात ही क्या, अपने शरीर तक को परद्रव्य जानकर हेय माना गया है।

सम्यग्ज्ञान और सद्गुणों की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्ति के लिए दीक्षा धारण की जाती है। देखें, 'तन्त्रवार्तिक' की यह गाथा :–

'दीयते ज्ञान सद्भावः, क्षीयते जन्म-बन्धनम्,
दान-क्षपण-सामर्थ्याद्, दीक्षा सा कथिता बुधैः'

कर्म–रज्जु को काटने के लिए दीक्षा असिधारा के समान है। संसार-बीज के विनाश के लिए भव्यात्मा दिगम्बर मुद्रा धारण करते हैं। यही दीक्षा है। क्षुल्लक-ऐलक-पद उसकी प्रारंभिक सीढ़ियाँ हैं। दीक्षा ग्रहण करने से पुण्य की वृद्धि एवं संसृति (पंचपरावर्तनरूप संसार) से मुक्ति मिलती है। महर्षि पुष्पदन्त कह रहे हैं:–

दीक्षां गृहणन्ति मनुजाः स्वकर्महरणाय च स्वपुण्यवृद्धये, केचित् संसृतिमुक्तये'

दीक्षा का फल : दीक्षा की कामंना देवगण भी करते हैं, किन्तु उनके लिए यह दुर्लभ है। वह तो केवल संज्ञी–पर्याप्तक–पुण्यात्मा–विवेकी मनुष्य ही है, जो दीक्षा ग्रहण कर मानव-जीवन को सफल और सार्थक बना सकता है। जिनदीक्षा ग्रहण किए बिना मुक्ति-लाभ असम्भव है। कहा भी है–**'ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिनशासणे जदवि होइ तित्थयरो'** अर्थात् तीर्थकर भी दीक्षा ग्रहण किए बिना सिद्धगति को प्राप्त नहीं होते। 'प्रवचनसार' में कहा गया है :–

'पणिवज्जदु सामण्णं, जदि इच्छसि 'दुःख-परिमोक्खम्'

अर्थात्–हे भव्यजीव! यदि तू दुःख से छूटना चाहता है तो श्रामण्य (जिनदीक्षा) को ग्रहण कर। जो एक बार निर्दोष/निर्मल मुनित्व को धारण करता है, आचार्य यतिवृषभ के अनुसार उसकी मुक्ति सुनिश्चित है :–

'जो सब्बसंग मुक्को, झायदि अप्पामप्पणे अप्पा,
सो सव्वदुक्खं-मोक्खं, पावइ अचिरेण कालेन'

अर्थात्–जो जीव सर्व परिग्रहों से मुक्त होकर स्व-आत्मा का आत्मा से ध्यान करता है, वह शीघ्र ही सभी दुःखों से छूटकर (अजर-अमर-अविनाशी) मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेता है।

दीक्षोपरांत यह जीव अनुपम गौरव-गरिमा को प्राप्त हो जाता है। मुनि के चरणों में माता-पिता-गुरुजन-परिजन-पुरजन-राजा-महाराजा आदि सभी माथा टेककर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। जो दीक्षित होकर मुनि-पद में स्थित हो जाता है, उसकी प्रशंसा लोग इन शब्दों में करते हैं–**'कुलं पवित्रं, जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती बभूव'**।

दीक्षा के लिए पात्रता : **'भावना भवनाशिनी'** की नीति के अनुसार दीक्षा के भाव तो कोई भी कर सकता है, करनें भी चाहिए, किन्तु हर किसी में दीक्षा के लिए पात्रता नहीं है। **'विशुद्ध कुलगोत्रस्य, सद्वृत्तस्य वपुष्मतः'** की जिनाज्ञा के अनुसार जिसका कुल-गोत्र शुद्ध हो तथा जो सदाचारी और सुन्दर हो, वही दीक्षा के योग्य माना गया है। प्रवचनसार' के चारित्राधिकार में कहा है कि जो निम्न शर्तें पूरी करता है, वही दीक्षा ग्रहण कर सकता है :–

- जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-इन तीन वर्णों में से किसी एक वर्ण का हो
- जो तप करने में समर्थ हो।

[illegible]

- जो न अति वृद्ध हो और न अति बाल हो (अपवाद-सल्लेखनापूर्वक शरीर के अवसान की इच्छा रखने वाले जराजीर्ण और रोगी, जिनका विवेक जागृत हो, भी दीक्षा ले सकते हैं।)
- जिसकी मुखछवि सुन्दर हो (जो विरूप या विकलांग न हो)
- जिसका आचरण अपवाद-रहित हो।

अयोग्य को दीक्षा देने का आगम में निषेध किया गया है–**'तेऽपि न दीक्षार्हा, लोके अवर्णवाद सम्भवात्'**। वैराग्य-भाव के परिपाक को प्राप्त होने पर ही दीक्षा की मर्यादा का सम्यक् निर्वाह हो सकता है। दीक्षा की ओर उठा हुआ पहला कदम ही यह है–**'राग छूटे, त्याग आए'**।

जिन दीक्षा का क्रम : आज पहले से अधिक दीक्षायें हो रही हैं। कहाँ तो इस सदी के प्रारम्भ में मुनि के दर्शन नहीं होते थे और कहाँ अब शताधिक मुनियों के दर्शनों का सौभाग्य हमें प्राप्त है। यह अच्छी बात है, किन्तु देखने में आ रहा है कि आज साधुओं की संख्या-वृद्धि पर तो आवश्यकता से अधिक ध्यान है, गुणवत्ता बनाए रखने का लक्ष्य गौण हो गया है। यह बात उचित नहीं है। महत्त्व संख्या-वृद्धि का नहीं, गुणवत्ता का होता है। दीक्षा में उतावलापन नहीं दिखाना चाहिए। 'भगवती आराधना' में कहा गया है–**'पासत्थ सदसहस्सादो वि सुशीलो वरं सु एक्को वि'** अर्थात्–अपरिपक्व या चारित्र–भ्रष्ट एक लाख मुनियों से एक सुशील मुनि श्रेष्ठ है।

जिस दीक्षार्थी को व्रतों के स्वरूप का ज्ञान न हो, उसे दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। आज आवश्यकता सुशील मुनियों की है। बिना कठोर परीक्षा लिए तथा बिना किसी के स्वभाव-कुल-शील को जाँचे-परखे मुनि-दीक्षा देना कभी-कभी उत्पाद का कारण बन जाता है। दीक्षा देने से पूर्व पाँच-सात वर्षों तक दीक्षार्थी को ब्रह्मचारी या क्षुल्लक के रूप में रखकर उसे आगम-ग्रन्थों का अभ्यास कराना चाहिए। कहा भी है :–

प्रथमं ब्रह्मचारी संघार्यानन्तरं क्षुल्लकदीक्षाम्,
ऐलकदीक्षां धृत्वाऽनन्तरमपि वर्ततेऽत्र निर्ग्रन्थः'

दीक्षार्थी के विषय में उसके कुटुम्बियों से अनुमति भी प्राप्त कर लेनी चाहिए। जो कार्य सबके अविरोध से किया जाता है, वह सफल होता है। उसमें न किसी को शल्य रहती है और न संक्लेश होता है। किसी के दीक्षा लेने से यदि उसके परिवारजनों के मन में किन्हीं कारणों से कोई ऊहापोह या अन्तर्द्वन्द्व हो तो उसका निरसन या समाधान करना युक्ति संगत ही है।

'मोक्षमार्ग प्रकाश' में मुनि-पद ग्रहण करने का यह क्रम बताया गया है–'पहले तत्त्वज्ञान हो, फिर उदासीन परिणाम हो, परीषहादि सहने की शक्ति हो और तब वह मुनि बनने की स्वयं इच्छा करें।' नासमझ को दीक्षा देने से दीक्षादाता आचार्य एवं दीक्षित साधु दोनों ही हंसी के पात्र बनते हैं।

दो शब्द : आर्यिकाओं के सम्बन्ध में : 'मूलाचार' ग्रन्थ में आचार्य बट्टकेरस्वामी ने आर्यिकाओं को संयमी और जगत्पूज्य (आर्यिका संयतिकाः....ते जगतपूज्यम्') कहा है। उन्हें उसी समाचार-नीति का पालन करने के लिए कहा गया है, जो मुनियों के लिए निर्दिष्ट है। उनकी दीक्षा-विधि भी मुनियों के समान ही है। वे स्वयं भी दीक्षा दे सकती हैं और उनमें उपचार से महाव्रत कहे गए हैं। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि सोलह हाथ की साड़ी धारण करने पर भी आर्यिकाओं को तो उपचार से महाव्रती कहा गया है, जबकि आठ-दस गिरह की लंगोटी मात्र के धारक ऐलकों की गणना देशव्रतियों में की जाती है। श्रावकाचार-ग्रन्थों में क्षुल्लक और ऐलक की चर्या का वर्णन तो मिलता है, किन्तु आर्यिका की

शुक्ल-लेश्या का शरीर शुक्ल होता है यह ठीक है पर उसकी यह शुक्लता [illegible] नहीं है, किन्तु [illegible] के स्वच्छ हृदय में निवास करने के कारण [illegible] के प्रभाव से उसे शुक्ल कहा जाता है।

चर्या का नहीं। इससे सिद्ध है कि आर्यिकाओं में वीतराग-भाव की मुख्यता होने से उन्हें मुनि-तुल्य माना गया है। स्व. पं. रतनचन्द्रजी मुख्तार के अनुसार उनकी नवधा भक्ति की जानी चाहिए। मुनियों की अपेक्षा आर्यिकाओं की चर्या में कुछ असमानताएँ भी देखी जाती हैं। उल्लेख्य अन्तर ये हैं :–

आर्यिकाओं के लिए वृक्षमूल, आतापन और अभ्रावकाश योग (अर्थात् पावस में वृक्ष के नीचे, ग्रीष्म में पहाड़ की चोटी पर तथा शीत ऋतु में खुले मैदान में ध्यान करने) का निषेध है। ये ध्यान उनकी आत्मशक्ति से बाहर है।

आर्यिकायें दो साड़ी रख सकती हैं। तीसरी साड़ी रखने पर प्रायश्चित का विधान है।

आर्यिकायें बैठकर आहार ग्रहण करती है।

आर्यिकाओं को समूह में रहने के लिए कहा गया है। गुरु–वन्दना के लिए भी उन्हें अकेले नहीं जाना चाहिए।

मासिक धर्म के समय आर्यिकाओं को जिन मंदिर से पृथक्, वसतिका में तीन दिन तक मौनपूर्वक रहने की आज्ञा है। इन तीन दिनों में वे पुस्तक भी नहीं छू सकतीं। भगवत्भजन या स्तुति-स्तोत्र आदि का पाठ भी चिन्तनरूप में ही करती हैं। तीन दिन तक शक्ति हो तो उपवास करती हैं, अन्यथा नीरस आहार ग्रहण करती हैं।

दीक्षा-विधि : दीक्षा से एक या दो दिन पूर्व शान्ति विधान गणधरवलय या चारित्रशुद्धि विधान में से किसी एक की पूजा का आयोजन होता है। दीक्षा से पूर्व दिन में दीक्षार्थी कर-पात्र में आहार ग्रहण कर अगले दिन के लिए उपवास का संकल्प करता है। इसी दिन सायंकाल विनौली (आभूषणों एवं वस्त्राभरणों से अलंकृत दीक्षार्थी की शोभायात्रा) भी निकाली जाती है। तब शुभ दिन और मुहूर्त तथा स्थिर लगन में चतुर्विध संघ के समक्ष दीक्षा-विधि सम्पन्न की जाती है। दीक्षार्थी सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा पूरे नए चौक या पाटे पर पूर्वाभिमुख होकर बैठता है तथा आचार्य उसके मस्तक पर मंत्रपाठ द्वारा व्रतों के संस्कार करते है। यथासंभव और यथाविधि सिद्धभक्ति, योगभक्ति, समाधिभक्ति आदि का पाठ भी चलता रहता है। दीक्षा-विधि के अंतर्गत नग्नत्व, केश-लुंचन, पिच्छि-ग्रहण, नामकरण आदि क्रियाओं की मुख्यता रहती है।

दीक्षोपरान्त प्रव्रजित साधु की सभी श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिकाओं आदि के द्वारा विनय की जाती है। वह पूज्य बन जाता है और उसकी गणना परमेष्ठियों में होने लगती है। यह उसका नया जन्म है। यह एक नई पर्याय है, एक ऐसी पर्याय, जहाँ से नई-नई पर्यायों की अनादि शृंखला को तोड़ने का अभ्यास शुरू होता है। यह जीवन की एक महान् उपलब्धि है।

अपूर्व और अनुपम ऐसी जिनदीक्षा का प्रसंग किसी भव्यात्मा के जीवन में किसी वरदान की प्राप्ति से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसकी गरिमा को बनाए रखने का दायित्व जितना नवदीक्षित पर है, उतना ही आचार्य, संघ और हम सब पर भी है। दीक्षा-दान कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह परमपद की ओर ले जाने वाला एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इसकी सुरक्षा होनी चाहिए। इसकी सुरक्षा में ही धर्म और संस्कृति की सुरक्षा है।

☐

उत्तम क्षमा:- सहनशील एवं सहिष्णु बनना। सुख-दुख, हानि-लाभ, मान-अपमान, जय-पराजय आदि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समता भाव रखना। क्रोध का त्याग करना।

आवश्यकता है समाज के जीर्णोद्धार की

अब हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं। कोशिश करनी चाहिए कि यह नई सदी पुरानी सदी की तुलना में अच्छी सिद्ध हो और ऐसा तभी होगा, जब हम शुरू से ही उसकी तैयारी करें।

बीसवीं सदी की जहाँ अपनी कुछ कमियाँ और कमजोरियाँ हैं, वहाँ कुछ विशेषताएँ और उपलब्धियाँ भी हैं। पहले जो धनात्मक है, उसे देखें। इन बीते हुए सौ वर्षो में स्वाध्याय और पठन-पाठन की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। धर्म, दर्शन और सिद्धान्तों की जानकारी आज सामान्य जैन को पहले से अधिक है। धार्मिक ग्रन्थ प्रारम्भ के ताड़पत्रीय युग की तुलना में आज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और वह भी बढ़िया-से-बढ़िया रंग-रूप में। क्रियाकाण्ड के क्षेत्र में भी क्रान्ति हुई है। पहले जितने विधान होते थे, उससे अधिक अब पंचकल्याणक समारोह हो रहे हैं। विधानों की तो बाढ़ ही आ गई है। नए-नए विधान रचे जा रहे हैं। जिन-चैत्य-चैत्यालय की पूजा के साथ अब आगम ग्रन्थों के विधानों का नया क्रम भी शुरू हुआ है। तीर्थो पर भी चहल-पहल बढ़ी है। धीरे-धीरे इन क्षेत्रो पर रहने-खाने की सुविधाएँ बेहतर हो रही है। पहले यात्री वहाँ पूजा-वन्दना के लिए आता था, अब सैर-सपाटे के लिए भी आने लगा है। तीर्थक्षेत्र धीरे-धीरे पिकनिक स्पॉट बन रहे हैं और लोग इसे इस सदी का एक 'प्लस प्वाइंट' मान रहे हैं।

अब जरा ऋणात्मक पक्ष पर भी दृष्टि डाल ले। आज का आदमी बाहर से जितना धर्मात्मा दिखता है, अन्दर से उतना ही खोखला नजर आ रहा है। चौका की पवित्रता को डाइनिंग टेबुल ने शून्य पर पहुँचा दिया है। जूते पहनकर भोजन करने का फैशन बढ़ रहा है। पहले महिलाएँ बैठकर खाना बनाती थीं, अब खड़े होकर बनाती हैं। चौके में रबड़ की चप्पलें प्रवेश पाती जा रही हैं। चटनी, पापड़, भुजिया आदि पहले घर में बनती थीं, अब रेडीमेड मिल जाती हैं। रात्रि-भोजन से अब बहुसंख्यक जैनों को परहेज नहीं है। बारातों में तो दिन में खाना फैशन-विरुद्ध हो गया है। 'न्याय की कमाई' की चर्चा केवल धर्मग्रन्थों में पढ़ने-पढ़ाने का विषय बन गई है, व्यवहार में अब उसके दर्शन नहीं होते। जितने भी नए मन्दिर बन रहे हैं या नई पुस्तकें छप रही हैं अथवा बड़े-बडे समारोह हो रहे हैं, उनमें नम्बर दो की कमाई लग रही है। ईमानदार फाके कर रहे हैं और बेईमानों के गले में फूलमालायें पड़ रही हैं।

दोनों पक्षों पर दृष्टि डालने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म का शरीर तो इस सदी में हृष्टपुष्ट हुआ है किन्तु धर्म की आत्मा कृश हुई है। सभ्यता, शिक्षा और वाह्य साधनों को तो विकास हुआ है किन्तु संस्कृति और आचरण में गिरावट आई है।

इक्कीसवीं सदी में यदि हम बरकत चाहते हैं तो हमें अपने आचरण-पक्ष को सुधारना होगा। स्वाध्याय, पूजा-पाठ और तीर्थ-वन्दना जिसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है, उस पर हमें ध्यान देना होगा। किताबें हम ढ़ेरों पढ़ते रहें किन्तु कषाय ढ़ीली न हुई तो स्वाध्याय बेकार है। पूजा का प्रयोजन पूज्य बनना है। उस ओर कदम नहीं बढ़े तो पूजा निरर्थक है, केवल एक शाब्दिक व्यायाम मात्र है। तीर्थक्षेत्रों पर चलते-घूमते पैरों में छाले पड जाए किन्तु राग-द्वेष पर खरोंच भी न आए तो ऐसी यात्रा भला किस काम की।

प्रसन्नता है कि हमारे कुछ पूज्य संतों का ध्यान जीवन में पल और बढ़ रहे इस द्वैत की ओर गया है और उन्होंने यह प्रेरणा देना शुरू किया है कि जीवन में कथनी और करनी का अन्तर मिटना चाहिए। विसंगति तो यही है कि आदमी जो कहता है, वह करता नहीं, और जो करता है, उसे कहता नहीं। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज कहा करते थे—'जो जैसा बोले वैसा चाले, तासी वंदामि पाउले' अर्थात् जो जैसा बोलता है, वैसा ही यदि करता भी हो उसके पैरों की वन्दना करनी चाहिए। आज ऐसे वन्दनीय चरणों के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं।

उत्तम मार्दव:- परिणामों को कोमल बनाना, कठोर व्यवहार एवं अहंकार का त्याग करना। सबके प्रति यथोचित आदर-सत्कार का भाव रखना। अपमान तो किसी का भी करना ही नहीं।

आज तीर्थों की सुरक्षा और मूर्तियों के निर्माण से भी अधिक ध्यान हमें मानव के निर्माण पर देना चाहिए। हम मूर्तियों तो हर वर्ष हजारों की संख्या में नई-नई मन्दिरों में स्थापित करते रहें किन्तु एक भी नया पुजारी पैदा न कर सकें तो यह सारा श्रम निष्फल हो जाएगा। अब जरूरत है कि आत्मा का शास्त्र पढ़ाने से पूर्व हम वर्तमान पीढ़ी को समाजशास्त्र पढ़ाए। तीर्थों का जीर्णोद्धार आवश्यक तो है, किन्तु उससे भी पहले जरूरत है समाज के जीर्णोद्धार की। अब हमें कुछ ऐसा करना चाहिए कि एक नए मानव का निर्माण हो। शक्ल से आज जो मानव दिखते हैं, उन्हें अक्ल और आचरण से भी मानव होना दिखना चाहिए। आचरण-शून्य मानव से न धर्म का हित होने वाला है और न किसी मन्दिर या तीर्थ का।

इक्कीसवीं सदी में धर्म और धर्मात्मा की पहचान को जीवन्त बनाए रखना ही मनीषियों के समक्ष आज की सबसे बडी चुनौती है। उनकी सांस्कृतिक अस्मिता यदि लुप्त हो गई तो प्रचुर मात्रा में नए-नए मन्दिरो के निर्माण, बड़े-बड़े उत्सवों के आयोजन तथा ढेरो पोथियों के प्रकाशन के बाद भी हम धर्म के गौरव की रक्षा नहीं कर पाएँगे। धर्म का गौरव बाह्य साधनों और उपासनाओं की चमक-दमक से नहीं, हमारी परम्परागत आन्तरिक संरचना से सुरक्षित रहेगा। खुशी है कि हमारे सन्तों की चिन्ता इस ओर है। इन दिनों जो प्रेरणाएँ वे दे रहे हैं, वे स्वागत-योग्य है।

रात्रिभोज-निषेध : प्रतिदिन देव-दर्शन करना, पानी छानकर पीना और रात्रि में भोजन न करना—जैनों की ये तीन पहचान पण्डित-प्रवर टोडरमलजी ने अपने श्रावकाचार मे बताई हैं। आज सम्पूर्ण जैन समाज में कितने प्रतिशत लोग इस पहचान को बनाए रख पा रहे हैं, शायद यह बताने की जरूरत नहीं है। एक रात्रि-भोजन की ही बात लें, कितने लोग इस नियम को निभाते हुए दिखाई देते हैं? इने-गिने लोग और उनमें भी मुख्यतः बड़े-बूढ़े, जिनके परलोक जाने का समय निकट आ गया है। नई पीढ़ी और नौकरीपेशा लोगों के मन में तो रात्रि को खाते समय ग्लानि तो दूर, किसी तरह की हिचक तक नहीं होती। ब्याह और बारातों मे तो दिन में भोजन करना अब फैशन-विरुद्ध माना जाने लगा है। जैनों के वैवाहिक निमन्त्रण-पत्रों में प्रायः लिखा रहता है—'प्रीतिभोज' सायं 6 बजे से आपके आगमन तक'। जब अन्य धर्मावलम्बी जैनों को रात मे खाते हुए देखते हैं तो वे पीठ-पीछे हँसते हैं। हर धर्म और उसके मानने वालो की अपनी एक पहचान होती है। उसका खो जाना धर्म की बदनामी का कारण बन जाता है। रात्रि में भोजन किसी मजबूरी में करना तो एक बार क्षम्य हो सकता है, किन्तु जो लोग मार्ग समझकर या बनाकर रात्रि भोजन कर रहे हैं, उनका यह कार्य तो अक्षम्य है। आज का कडुवा सच यही है कि हममें से अधिकांश ने रात्रि-भोजन को मार्ग बना लिया है।

सन्तों ने इस दिशा में बारातों में रात्रि-भोजन की प्रथा बंद हो, इस ओर प्रेरणा देना शुरू किया है। कोई घर में रात को खाता है तो इसे केवल घर वाले ही जानते हैं, किन्तु बारात में जीमने वाले को तो सारा शहर देखता है। अतः बदनामी की जड़ पर सबसे पहले प्रहार करने का बीड़ा उठाया गया है। जयपुर में अपने वर्षायोग मे पूज्य श्री सुधासागरजी महाराज ने इस दिशा में क्रान्तिकारी पहल की है। लोगों को अच्छा लगे या बुरा, वे बिना लाग-लपेट के और बेधड़क बोलते हैं। बुराइयों पर चोट करते समय वह किसी की परवाह नहीं करते। उन्होंने अपनी सभाओं में पहले तो रात्रि-भोज के दोषों पर विस्तार से प्रकाश डाला और फिर जयपुर की एक-एक सभा और संस्थाओं के ट्रस्टियों और पदाधिकारियों को बुला-बुलाकर यह संकल्प दिलाया कि वे न तो स्वयं अपने बेटे-बेटियों के विवाह में रात्रि-भोज देंगे, न किसी अन्य के यहाँ आयोजित रात्रि-भोज में शामिल होंगे और न किसी जैन संस्था (अतिथिगृह, धर्मशाला आदि) में किसी को रात्रि-भोज की इजाजत देंगे। तहलका तो खूब मचा, पीठ-पीछे टीका-टिप्पणियाँ भी हुई, पर सम्प्रति जयपुर में किसी जैन संस्था में रात्रि-भोज नहीं हो रहा है। सब प्रतिज्ञा-बद्ध हो चुके हैं। भविष्य में भी वे अपने निश्चय में स्खलित न हों, यह कोशिश करते रहना चाहिए।

[illegible] आर्जव :– मन-वचन-कार्य की सरलता अर्थात् अच्छा सोचना, अच्छा बोलना और अच्छा कार्य करना, [illegible] के संकल्प तथा न्याय व ईमानदारी से जीवन-यापन करना।

रात्रिभोज-निषेध के इस आन्दोलन को पूज्य श्री समतासागरजी और प्रमाणसागरजी महाराज भी आगे बढ़ा रहे हैं। वह भी जहाँ-जहाँ प्रवास करते हैं, वहाँ-वहाँ ट्रस्टियों/पदाधिकारियों आदि से संकल्प-पत्रों पर हस्ताक्षर करने की प्रेरणा करते हैं। यह संकल्पपत्र अष्टसूत्रीय है। इसमें शामिल नियम हैं–(1) शादी-विवाहों में रात्रि में भोजन-व्यवस्था नहीं की जाएगी, (2) जहाँ तक सम्भव हो विवाह भी दिन में ही सम्पन्न किए जाएंगे (3) विवाहों में भौंडे नृत्य नहीं होंगे, (4) विवाहों में आतिशबाजी नहीं चलाई जाएगी (5) बाराती या अन्य लोग किसी प्रकार का नशा नहीं करेंगे (6) केवल सात्विक शाकाहारी भोजन की व्यवस्था दिन में की जाएगी (7) सभी लोग अहिंसक संस्कृति की सुरक्षा के लिए समर्पित रहेंगे तथा (8) मरण-भोज का निषेध करेंगे।

साधु यदि अच्छा वक्ता भी हो तो जन-मानस पर उसका भारी प्रभाव पड़ता है। ये मुनि-द्वय मधुरभाषी और प्रभावक वक्ता हैं। जनता को अपनी निश्छल वाणी से सम्मोहित करने की शक्ति उनमें है। संकल्पों की प्रेरणा का यह सिलसिला छपारा से शुरू होकर योटे गाँव और शहपुरा में अपने कदम जमाते हुए जबलपुर में अपने चरम पर पहुँच गया। महानगर जबलपुर की समस्त संस्थाओं, कालोनियों, उपनगरों, बस्तियों और मुहल्लों के सभी सामाजिक कार्यकर्ता इस आन्दोलन में शामिल हो चुके हैं और आज जयपुर की तरह ही पुरा जबलपुर-सम्भाग भी जैनों के लिए रात्रिभोज-निषिद्ध क्षेत्र बन चुका है। लड़के की बारात चाहे तो इन स्थानों से बाहर जा रही है या बाहर से इन स्थानों पर आ रही हो, यह संकल्प-पत्र दोनों दशा में मान्य होगा।

जबलपुर से बिहार कर ये मुनि-द्वय अशोकनगर पहुँचे। वहाँ पर चर्चा तो पहले ही पहुँच चुकी थी, अतः बिना अधिक प्रयास के, बल्कि अत्यधिक उत्साह से यहाँ का जैन समाज भी संकल्पबद्ध हो गया। पिपरई, मुँगावली और पाटन में भी यह लहर कामयाबी की ओर बढ़ गई और अब मुनि-द्वय का प्रवास सागर में चल रहा है। वहाँ की सभाओं में जुड़ने वाली भीड़ इस बात की ओर संकेत कर रही हैं कि यहाँ के साधर्मीजन भी इन संकल्पों के परिपालन में किसी से पीछे नहीं रहेंगे।

जब रात्रि में बारात चढ़ती है तो युवा पीढ़ी पैग चढ़ाकर नाचती है। जब भाँवरे पड़ रही होती हैं, तब लड़के किसी कमरे में बैठकर जुआ खेल रहे होते हैं। आतिशबाजी में जो हिंसा होती है, उसे बताने की जरूरत नहीं है। इस आन्दोलन की सफलता से इन सब बुराइयों से भी छुटकारा मिल ही जाएगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हरिद्वार में एक लोकप्रिय आश्रम है–'शान्तिकुंज। वहाँ देश-विदेश से हजारों की संख्या में लोग पहुँचते रहते हैं। वहाँ बारहों महीने दिन में भोजन होता है। रात्रि-भोजन पर कड़ी पाबन्दी है। उस परिसर में कोई बीड़ी-सिगरेट तक नहीं पी सकता। अशोकनगर में एक रघुवंशी समाज है। उसने जुआ और शराबबन्दी का प्रस्ताव पास किया है। यह भी निर्णय लिया है कि विवाह-कार्य दिन में ही सम्पन्न करेंगे। जब जैनेतर समाज इस दिशा में आदर्श उपस्थित कर रहा है, तब क्या हम जैन लोग अपने कुल-धर्म के निर्वाह की प्रतिज्ञा नहीं लेंगे? रात्रि-भोजन की बढ़ती हुई प्रथा क्या हमारी सांस्कृतिक चेतना को लील नहीं जाएगी?

अब यह समय की माँग है कि हम अब इस दिशा में सक्रिय हों। हर युग में सन्तों ने ही समाज को दिशा दिखाई है। हमारा कर्तव्य है कि हम उस दिशा में आगे बढ़े, जिस ओर वह इशारा कर रहे हैं। इसमें धर्म, समाज और संस्कृति का भी हित निहित है।

व्यावसायिक शुचिता : न्यायोपार्जित धन जैन श्रावक का प्रथम गुण हैं। हमारे यहाँ महत्त्व इस बात का नहीं है कि किसने कितना दान किया, महत्त्व इस बात का है कि जो धन दिया गया, वह कमाया किस तरह है? जुए-सट्टे की कमाई

उत्तम शौच:- जीवन में सत्प्रयत्नों एवं सत् पुरुषार्थ से जो और जितना प्राप्त हो, उसी में सन्तोष रखना। लोभ तृष्णा का त्याग करना।

का दान फलदायक नहीं होता। रिश्वत का पैसा भी कभी नहीं फलता। ईमानदारी के चार पैसों से जितनी बरकत होती है, वह बेईमानी के लाखों रुपयों से नहीं होती। सोनागिर और मढ़ियाजी के पिसनहारी के मन्दिर साधारण होते हुए भी जन-जन में अधिक श्रद्धा जागृत करते हैं। क्या श्रवणबेलगोल में एक साधारण बुढ़िया गुल्लिकाअज्जी का दोनाभर दूध बड़े-बड़े अमीरों के घड़ों की शान पर बट्टा नहीं लगा गया?

पुराणों में मन्दिरों में होने वाले चमत्कारों की चर्चा पढ़ने को मिलती है। चोर मूर्ति चुराने आया तो वह अन्धा हो गया या फौज मन्दिर लूटने आई तो दीवालों से हजारों ततैयाँ निकल पड़ीं और फौज को वापिस लौटना पड़ा आदि। आज क्यों नहीं सुनाई देते हैं ऐसे चमत्कार? कारण एक ही समझ में आता है कि पुराने लोग मन्दिरों में कम पैसा लगाते थे, किन्तु वह न्यायोपार्जित पैसा होता था। वे किसी गरीब का शोषण नहीं करते थे। जिस पैसे के पीछे किसी की हाय छिपी होती है, वह पैसा चमत्कार उत्पन्न करने में बोझ माना गया है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि पुराने लोग मन्दिरों की दीवालें चिनवाते समय छने पानी का प्रयोग करते थे। पवित्र साध्य के लिए साधन भी पवित्र होने चाहिए।

आज व्यावसायिक शुचिता समाप्त हो गई है। मन्दिर तो बढ़िया बन रहे हैं। ईंट-गारे की जगह धवल संगमरमर लग रहा है, किन्तु जिस धन से ये पत्थर खरीदे गए हैं, वह गलत तरीकों से कमाया गया है। इस आर्थिक अशुचिता की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

यह युग अर्थ-पूजा का है। अर्थार्जन के लिए लोग छल, पाखण्ड, चोरी, बेईमानी आदि मिथ्याचारों का आश्रय लेने में जरा भी नहीं हिचकचाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि धर्म-पालन में न्याय-नीति की कमाई का ही महत्त्व है। जैन धर्म कहता है कि केवल भोजन ही नहीं, व्यापार भी प्रासुक होना चाहिए। यहाँ 'प्रासुक' शब्द का अर्थ है कि मनुष्य अपने जीवन की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित साधनों का ही सहारा लें। आवश्यकता से अधिक का संग्रह भी न करें।

आर्य कर्म : अनार्य कर्म जिन कार्यों में हिंसा न हो और यदि हो भी तो अत्यल्प हो, वे सभी कार्य प्रासुक कहलाते हैं। धर्म आर्य कर्मों का समर्थन करता है। कृषि आर्य कर्म है। हिंसा-रहित वे सभी धन्धे भी आर्य कर्म कहलाएँगे, जिसमें चोरी और छीना-झपटी न हो। जहाँ नमूना कुछ दिखाया जाए और माल कुछ दिया जाए, जहाँ तौल में गड़बड़ी की जाती हो, ऐसे सभी धन्धे भले ही वे आर्य कर्म की ही श्रेणी में क्यों न आते हों, कहलाएँगे अनार्य कर्म ही। जुआ, शेयर, लॉटरी, मिलावट आदि से धन कमाना तो अनार्य कर्म है ही, यदि कोई कत्लखाना खोलता है या पशुओं के चर्म का व्यापार करता है तो वह भी निकृष्ट कार्य ही करता है।

आज कुछ जैन लोग भी अनार्य कर्मों से पैसा अर्जित कर रहे हैं। जब किसी हवाला काण्ड, चर्बी काण्ड या अलकबीर के साथ किसी जैन का नाम जुड़ता है तो धर्म कलंकित होता है। संतों और मनीषियों का कार्य है कि वे लोगों को गलत धन्धे करने से बचने की सलाह दें। बात इसी सदी के प्रारम्भ की है। सहारनपुर में सेठ जम्बूप्रसादजी थे, बड़े ही उदार और धर्मात्मा। नियमित स्वाध्याय के लिए वह विद्वानों को अपने यहाँ रखते थे। अपने समय के एक दिग्गज विद्वान् न्यायदिवाकर पंडित पन्नालालजी भी उनके आश्रय में रहते थे। वह पण्डितजी का अत्यधिक सम्मान करते थे। एक बार उनसे छिपाकर (उन्हें बताए बिना) सेठजी ने लाख-उत्पादन का कार्य शुरू कर दिया। इसमें जीव-हिंसा होती ही थी। पण्डितजी को एक दिन उनके इस नए व्यापार की बात मालूम हो गई। उन्होंने तुरन्त अपने पोथी-पन्ने समेटे और कहा-"सेठजी! हम चलते हैं। तुम्हारे यहाँ से हमारा दाना-पानी उठ गया। क्या स्वाध्याय में हमने तुम्हें यही पढ़ाया था कि तुम दो रोटी के लिए हिंसक/अप्रासुक/अनार्य कर्म करो? क्या तुम्हारे यहाँ पैसों का बहुत टोटा/अकाल पड़ गया था, जो तुमने ऐसा व्यापार शुरू किया? हमारा अब तक का पढ़ाना तो तुमने धूल में मिला दिया।" सेठजी ने पण्डितजी के पैर पकड़ लिए और साश्रुनयन हो बोले-'मुझे माफ कर दो। मुझसे भूल हो गई। मैं आज ही यह धन्धा बंद करने की घोषणा करता

[illegible]

हूँ। मैं लाखों रुपयों का घाटा सह सकता हूँ लेकिन आपको नहीं छोड़ सकता।' पण्डितजी का मन उनके प्रायश्चित्त के आँसुओं से पिघल उठा और उन्होंने सहारनपुर छोड़ने का इरादा छोड़ दिया।

आज तो उल्टा हो रहा है। जो जितना अधिक दान देता है, समाज में उसका उतना ही अधिक आदर होता है। लोग दान की रकम देखते हैं, लेकिन उसका स्रोत नहीं देखते। धार्मिक मंचों पर प्रतिष्ठा पाने का साधन धर्म नहीं, धन बनता जा रहा है। इस स्थिति को बदलना चाहिए। जिसने धर्म-पूर्वक धनार्जन किया है, ऐसे दातारों का सम्मान हो तो यह अनुचित नहीं है।

सच तो यह है कि धर्म के क्षेत्र को यदि हम फलते-फूलते देखना चाहते है तो हमे व्यावसायिक शुचिता को महत्त्व देना ही होगा। दवाओं में मिलावट कर जो सैकड़ों मरीजों के जीवन के साथ खिलवाड कर रहे हैं या जो कत्लखाने खोलकर देश के लिए उपयोगी पशुधन का विनाश कर रहे हैं अथवा जो घी-साबुन में चर्बी मिलाकर भोले-भाले लोगों को भ्रष्ट कर रहे हैं, उन्हें धर्मात्मा मानकर मंच पर सम्मान देने की प्रथा को हमें तिलांजलि देनी होगी। काली कमाई के आवरण में काला चरित्र छिपा होता है, यह हमें नहीं भूलना चाहिए। काली कमाई से शानदार मन्दिर और महल तो खड़े हो सकते हैं किन्तु उनमें बैठकर आत्मशान्ति नहीं मिल सकती।

अर्थ-शुद्धि ही धर्म है। इस दिशा में भविष्य के लिए शुभ संकेत देने वाली कुछ घटनाएँ देखिए--

बात कुछ वर्ष पहले की है। मढ़ियाजी (जबलपुर) में विराट् नन्दीश्वर मन्दिर का निर्माण चल रहा था। एक श्रीमन्त ने आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सामने मन्दिर-निर्माण के लिए बडी रकम देने का प्रस्ताव किया। महाराज ने सहज भाव से पूछ लिया-'काम क्या करते हो?' दातार ने बताया-'मेरे यहाँ मुर्गीदाने बनाने की फैक्ट्री है।' महाराज को जब पता लगा कि मुर्गीदाना मछलियों के अंग-विशेष से बनता है तो उन्होंने दातार को निरुत्साहित ही नहीं किया, उससे अपना व्यापार बदलने के लिए भी कहा। उसने व्यापार बदला या नहीं, यह तो पता नहीं लेकिन उस समय जन-साधारण मे इस साहसिक प्रेरणा की सराहना बहुत हुई।

ऐसी ही एक घटना थूबोनजी की है। समाज के एक बडे उद्योगपति ने नवधाभक्तिपूर्वक आचार्य श्री को आहार दिया। आहार के बाद उसी चौके में उन्होंने भोजन किया। सामायिक के बाद वह महाराज के पास बैठे थे। बोले-'आज पहली बार बिना नमक का भोजन किया। बड़ा स्वादिष्ट लगा। मजा आ गया।' महाराज बोले-'तुम्हारे यहाँ एक अनार्य कर्म होता है। तुम यदि उसे समाप्त कर दो तो फिर रोज ही तुम्हें भोजन स्वादिष्ट लगने लगेगा।' उस प्रख्यात उद्योगपति ने उसी समय उनके सामने यह संकल्प किया कि यहाँ से लौटते ही वह अपने धन्धे से अपने तमाम शेयर वापिस ले लेंगे और सचमुच उन्होंने यही किया भी।

एक प्रसंग इसी 16 अप्रैल का है। सागर में अगले दिन त्रि-रथ (गजरथ, वृषभ-रथ और मानव-रथ) निकलने थे। अवसर था महावीर जयन्ती का। सारथी के लिए बोली चल रही थी। एक भाई के नाम इक्यावन हजार में वह समाप्त हुई। मुनि-द्वय श्री समतासागरजी एवं प्रमाणसागरजी महारज वहाँ विराजमान थे। किसी से पूछने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि बोली लेने वाला कीटनाशक दवाएं बनाता है। उन्होंने पंचो को यह दान न लेने का निर्देश दिया। दातार को पहले तो यह लगा कि समाज में आज उसकी किरकिरी हो गई, किन्तु आदमी समझदार था। जब उसने गहराई से विचार किया तो उसे अपनी भूल समझ में आ गई और उसने मुनि-चरणों में यह संकल्प घोषित किया कि वह छः माह में अपना व्यवसाय बदल लेगा। समाज में आज उस व्यक्ति की प्रशंसा हो रही है।

उत्तम संयम:- विषय-भोगों को नियंत्रित करना। मन एवं इन्द्रियों को भोगों से हटाकर [illegible] कार्यों में लगाना।

पूज्य मुनि श्री सरलसागरजी महाराज ने गजरथ—समीक्षा, मुनि-समीक्षा, आचार्य—समीक्षा, श्रावक—समीक्षा, मुमुक्षु—समीक्षा आदि शीर्षकों से इधर कुछ नई पुस्तकें लिखी है। हमारे पास भी ये पुस्तकें समीक्षार्थ आई। हमने उन्हें सरसरी नजर से एक बार पढ़ा भी। यह एक क्रान्तिकारी लेखन है। किसी मुनि ने इससे पूर्व सामाजिक विकृतियों पर इतना पैना/नुकीला नश्तर नहीं चलाया। पढ़कर हम चौंके तो जरूर, किन्तु कटु यथार्थ को हम अस्वीकार करने का भी साहस नहीं जुटा सके। पाँचों पुस्तकों में एक स्वर तो मुखरित है ही कि आज जो मन की कालिमा दिखाई दे रही है, उसके पीछे काले धन को महत्त्व देने की प्रवृत्ति है। मुनिश्री ने कठोरता से इस प्रवृत्ति का आपरेशन किया है। पुस्तकें पढ़ी जानी चाहिए और हो सके तो उन विकृतियों, जिन पर करारी चोट की गई है, से बचने की कोशिश करनी चाहिए। विकृति का फोड़ा पक चुका है, इसलिए आपरेशन जरूरी है। अटपटा केवल इतना लगता है कि सर्जन का काम एक मुनि को अपनी कलम की तेज धार से करना पड़ा है। शायद कोई चारा भी नहीं था। आज का श्रावक सर्वथा निस्तेज हो चुका है। उसमें विकृतियों से पंगा लेने का साहस ही शेष नहीं रह गया है। क्यों? इस पर भी हमें विचार करना होगा।

एक प्रसंग और, अवसर था दीपावली का। बच्चे पटाखे छुड़ा रहे थे। मुनि-द्वय ने इस हिंसा से उन्हें विरत करने के लिए एक मनोवैज्ञानिक तरीका निकाला। उन्होंने बच्चों को इकट्ठा किया और प्यारपूर्वक उनसे कहा-'जो बच्चा पटाखे न चलाने का नियम लेगा, उसे हम एक सुन्दर मोरपंख देंगे'। बच्चे लुभा गए और उस वर्ष गाँव के बच्चों ने पहली बार पटाखे-रहित दिवाली मनाई। एक गाँव तो अनन्त हिंसा के पाप से बच गया।

आज जब व्यंग्य से हम यह कहावतें सुनते हैं कि पंचकल्याणक का अर्थ है, एक ऐसा आयोजन, जिससे पंचों का कल्याण होता है तो लगता यही है कि आज का आदमी धन के पीछे इतना पागल हो चुका है कि निर्माल्य भी ग्रहण कर रहा है। इसमें उसे कोई संकोच नहीं है। हमारे एक बुजुर्ग तो यहाँ तक फरमाते हैं कि आचार्यो ने अधर्म का खाने के लिए मना किया है, अब वह यदि धर्म का खा रहा है तो आप उसे क्यों बुरा-भला कहते हो? बात तो ठीक है लेकिन वाक्य गलत है। सही वाक्य होना चाहिए—**'ऐसे लोग धर्म का नहीं, धर्म को ही खा रहे हैं।'**

अर्थ—शुद्धि ही धर्म है और इसके लिए संतों को प्रेरणा करनी चाहिए। इक्कीसवीं सदी को भ्रष्ट होने से बचाना है तो यह आवश्यक है। भ्रष्ट कमाई आचरण-भ्रष्टता की जड़ है। **'कमाई भ्रष्ट तो धर्म भ्रष्ट'** का नारा अब लगाना ही होगा।

साधर्मी सहायता प्रकोष्ठ धन का अभाव भी एक बड़ी विपत्ति है। गरीबी में भी एक व्यक्ति कुछ ऐसा करने के लिए विवश हो जाता है, जिसे न तो वह मन से कभी करना चाहता है और न उसे करना चाहिए। संसार में ऐसा कौन है, जो अपनी कन्या को विवाह के बाद भी सुखी नहीं देखना चाहता। वह अपनी लड़की का विवाह अच्छे से अच्छे घर में करना चाहता है किन्तु गरीबी यहाँ बाधा बनकर खड़ी हो जाती है। ऐसी दशा में अनजाने कुछ चतुर लोगों द्वारा वह ठगा जाता है।

विवाह दो तरह के होते हैं—एक तो वह, जो अपनी मर्जी से हो तथा दूसरा कुछ इस तरह का कि जैसे—किसी बकरे को कान पकड़कर जिबह करके वधशाला में घसीटकर ले जाया जाए। हमारे प्रिय पाठकों को यह जानकर आश्चर्य एवं क्षोभ होगा कि आज एक क्षेत्र-विशेष में दूसरी तरह के विवाह प्रचुर मात्रा में हो रहे हैं और सैकड़ों कन्यायें अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहा रही हैं।

कुछ दलाल किस्म के लोग लड़की के बाप को यह सब्जबाग दिखाते हैं कि बम्बई या अहमदाबाद में एक परिवार है। उसका बहुत बड़ा कारोबार है। लाखों रुपए महीने की आमदनी है। उनका विवाह-योग्य लड़का है। सुन्दर-सलौना है। यदि अपनी लड़की का विवाह तुम उसके साथ कर दो तो वह राज करेगी। कहो तो बात चलाऊँ। बेचारा लड़की वाला दलाल की बातों में आकर अपनी कन्या का विवाह महाराष्ट्र या गुजरात के उस धनी परिवार में कर देता है। चार-छः माह तक

[illegible]

तो सब कुछ ठीक-ठाक चलता है किन्तु उसके बाद शुरू होता है लड़की पर अत्याचारों का सिलसिला। यथार्थ में उन्हें बहू की नहीं, एक नौकरानी की तलाश होती है, जो बर्तन माँज सके, पूरे घर के कपड़े धो सके, झाड़ू–पोंछा कर सके आदि। लड़की के सारे सपने बिखरने लगते हैं। सिसकियों को पी-पीकर वह खटती और मरती रहती है। यहाँ उस पर रहम करने वाला कोई नहीं होता। वह बकरे की तरह जिबह होती रहती है।

इस स्थिति के पीछे हकीकत यह है कि इस जाति के धन्ना सेठों में लड़कियों की संख्या लड़कों की तुलना में कम हैं और जो हैं भी, वे पढ़ी-लिखी, अपटूडेट, क्लब-संस्कृति में रची-पची हैं। इसलिए वे घर के काम नहीं कर सकती। इस अभाव की पूर्ति के लिए उनकी नजर वहाँ गई, जहाँ गरीबी है। उन्होंने कुछ दलालों को पटाया। उन्हें आर्थिक प्रलोभन दिया और उनकी मदद से यहाँ की लड़कियाँ सेवा-टहल के लिए उनके घरों में आने लगीं। **नाम से तो वे बहू हैं किन्तु काम उनसे दासी का लिया जाता है।** ये दलाल दिगम्बर हैं और एक विवाह कराने के बदले में उन्हें हजारों रुपया कमीशन के रूप में मिल जाता है।

आदमी कितना पतित हो गया है। हम भले ही शेर और भेड़िया की आलोचना करें किन्तु उन्होंने किसी को जेब काटना तो नहीं सिखाया, किसी की लड़की को घसीटकर वे वधशाला में तो नहीं ले गए। आदमी आज पशु से भी पतित हो गया है। चंद पैसों की खातिर वह क्या-क्या कुकर्म/अनर्थ नहीं करता या कर सकता है। ऐसे कुछ दलालों की पहचान भी अब हो चुकी है और संतों के चरणों में बैठकर उनमें से कुछ ने इस नीच कर्म को छोड़ने की प्रतिज्ञा भी की है।

रोंगटे खड़ी कर देने वाली इस तरह की घटनाओं पर जब ध्यान जाता है तो कठोर व्यक्ति का निर्ममत्व मन भी एक बार तो हिल ही जाता है। इसके लिए कुछ ठोस उपाय होना चाहिए, आज इसकी आवश्यकता है।

मुनिद्वय श्री समतासागरजी एवं प्रमाणसागरजी ने एक ओर तो कन्याओं के पिताओं को ढांढस बंधाया, दूसरी ओर दलालों की पहचान की और उन्हें समझा-बुझाकर इस निन्द्य कार्य से विरत करने का पुरुषार्थ किया तथा तीसरी ओर समाज को एक **'साधर्मी सहायता प्रकोष्ठ'** स्थापित करने के लिए प्रेरित किया, ताकि किसी कन्या को गरीबी के कारण अपनी जिन्दगी आँसुओं की बाढ़ में डुबोने को विवश न किया जा सके। जबलपुर और अशोकनगर में उन्होंने यह अपील की और उसके परिणाम बहुत अच्छे सामने आए। एक-एक हजार प्रतिवर्ष देने का अनेक उदारमना लोगों ने प्रकोष्ठ को आश्वासन दिया है। दोनों स्थलों पर अद्यतन ऐसे दातारों की संख्या क्रमशः एक हजार और सात सौ है और यह मिशन अभी चल रहा है। कुछ लोगों ने पाँच वर्षों तक सहायता देने की घोषणा की है। इस प्रकोष्ठ के प्रति लोगों के मन में बड़ा उत्साह है।

उपसंहार : इक्कीसवीं सदी को निरापद-निष्कण्टक एवं सुखमय बनाने के लिए संतों की यह रचनात्मक पहल श्लाघ्य है। शाकाहार-प्रचार एवं मद्य-निषेध के लिए भी कुछ संतों ने बिगुल बजा दिया है। पूज्य संत साहित्य-प्रकाशन के क्षेत्र में भी कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। पूज्य आचार्य विद्यानन्दजी, आचार्य कनकनन्दीजी, आचार्य भरतसागरजी, मुनि क्षमासागरजी, मुनि सुधासागरजी, उपाध्याय ज्ञानसागरजी, आचार्य विरागसागरजी, मुनि निर्णयसागरजी आदि तथा विदुषी आर्यिकायें इस दिशा में समर्पित/संलग्न हैं। जगह-जगह ज्ञान-गोष्ठियाँ, विद्वानों के सम्मान आदि को संतो द्वारा निरन्तर प्रोत्साहन मिल रहा है। 21वीं सदी की प्रवेश-बेला में ये सब अच्छे शकुन है। आशा जगी है कि इक्कीसवीं सदी एक बेहतर सदी सिद्ध होगी और यही हम सबकी आकांक्षा भी है। मन्दिरों के जीर्णोद्धार से भी ज्यादा जरूरी है समाज का जीर्णोद्धार। समाज की सुरक्षा में ही मन्दिर और धर्म की भी सुरक्षा है।

□

[illegible], आहार, ज्ञान एवं [illegible] द्वारा [illegible]
[illegible] एवं [illegible] की निष्काम-भाव से सेवा करना एवं [illegible]

जीवन में व्रतों की उपादेयता

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः काय-वाक्-चित्तसम्भवम्
कलंकमंगिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते। --ज्ञानार्णव

आज का मानव विलासिता में डूबा हुआ है। उसने अपने चारों ओर भोग-सामग्रियाँ बड़ी मात्रा में जुटा ली हैं। वह सोचता है कि धन-कन-कंचन अथवा रोटी-कपड़ा और मकान में ही सच्चा सुख है, किन्तु यह उसका भ्रम है। सुख पदार्थों में नहीं, आत्मा में है। पदार्थों के संग्रह से सुविधाएँ तो मिल सकती हैं, किन्तु सुख नहीं। सुविधाओं से मिलने वाला सुख क्षणिक होता है, जबकि आत्मसुख शाश्वत है। हर सुविधा का अंत दुविधा में होता है और हर अनुकूलता एक दिन प्रतिकूलता में बदल जाती है। यह एक ऐसा चक्र है, जो निरंतर गतिशील रहता है। केवल व्रती सत्पुरुष एवं तपस्वी संत ही इस चक्र को भेदकर अन्तर्जगत में प्रवेश कर पाते हैं।

आचार्य पूज्यपादस्वामी का एक छोटा सा ग्रन्थ है--इष्टोपदेश। मात्र 51 श्लोकों में आचार्यश्री ने गागर में सागर भरने की कहावत को चरितार्थ किया है। इसकी महत्ता एवं उपयोगिता को देखकर ही संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं में इसकी अनेक टीकाएँ भी हुई हैं। इस ग्रन्थ में संसारी प्राणियों की बहिर्मुखी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाने की प्रेरणा दी गई है। सुख-शान्ति का उपाय भी यही है--"बाहर के पट बन्द कर, अन्तर के पट खोल"। अन्दर के पट खोलने का प्रथम लाभ है--मानसिक शान्ति की प्राप्ति और दूसरा लाभ है--ज्ञान की अभिवृद्धि। जीवन में सुखानुभूति के लिए यह आवश्यक भी है कि मनुष्य के हृदय और बुद्धि को अन्तर्मुखी बनाया जाए। इस ग्रन्थ में आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादित इष्ट उपदेश को ग्रहण कर भव्य जीव मन और बुद्धि के सन्तुलन को साधते हुए अपने जीवन में सुख प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य श्री ने भव्य जीवों को उपदेश देते हुए कहा है--'परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकार परो भव'/31 अर्थात् परोपकार की अपेक्षा स्वोपकार में लगना हितकर है। अब तक हम अपने शरीर (जो पर और विनश्वर है) की सार-सँभाल में ही अधिक ध्यान देते रहे हैं और उसके सुख के लिए तरह-तरह के साधन जुटाते रहे हैं। आचार्यश्री ने इसे परावलंबन कहा है और यह परावलम्बन आत्मा को परमात्मा बनाने के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। वह कहते हैं--

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्
यद्देहस्योपकाराय, तद्जीवस्यापकारकम्/19

अर्थात्--जो जीव के लिए उपकारक है, वह शरीर के लिए अपकारक है और जिनसे शरीर का हित होता है, वे आत्मा के लिए अहितकर हैं।

दूसरों की भलाई के लिए तो दुनिया चिन्तित है, किन्तु आत्महित की बात बिरले ही सोचते हैं। परोपकार आसान है, स्वहित कठिन है। भूखे को रोटी, गरीब को धन और बीमार को दवा देकर हम संतुष्ट कर सकते हैं, किन्तु अपनी आत्मा की शान्ति के लिए सोना, चाँदी, धन, मकान, औषधि आदि की आवश्यकता नहीं होती, उसके लिए आवश्यक है अपनी अन्तःशक्ति के जागरण या उद्घाटन की। सुख कहीं बाहर नहीं, अपने ही भीतर है। कबीरदासजी ने कहा भी है--

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सके तो जाग

आत्मजागरण के लिए बाह्य पदार्थों से यथाशक्ति ममत्व घटाना होता है। बाहरी पदार्थों के संसर्ग से मन में विकार

[illegible]

उत्पन्न होते हैं और इन विकारों से बचने की दिशा में उठा हुआ पहला कदम है व्रत धारण करना। व्रत की सही परिभाषा देते हुए पूज्यपादस्वामी ने कहा है—**'व्रतमभिसंधिकृतो नियमः इदं कर्त्तव्यमिदं न कर्त्तव्यमिति वा'** (सर्वार्थसिद्धि) अर्थात् प्रतिज्ञापूर्वक नियम लेना अथवा यह करने योग्य है और यह करने योग्य नहीं है, ऐसा विचारकर नियम लेना व्रत कहलाता है। प्रतिज्ञा को ब्रजभाषा में आखड़ी भी कहते हैं। जब हम गलत रास्ते पर चलने लगें, तब जो बीच रास्ते में आ खड़ी हो और हमें कुमार्ग पर जाने से रोक दे, उसे कहते हैं आखड़ी। रावण ने अनन्तवीर्य मुनिराज से यह आखड़ी ली थी—**'जो परस्त्री मोहि ने अभिलाषे, ताहि में न सेवूँ'**। सीता-हरण के बाद उसके सतीत्व-भंग का विकृत विचार जब-जब रावण के मन में उत्पन्न हुआ, तब-तब इस आखड़ी ने इस विकार से उसकी रक्षा की।

भगवती आराधना में व्रत की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि—**'पापेभ्यो विरमणं व्रतं'** अर्थात् पापों से विरक्त होना व्रत है। आचार्य उमास्वामी का भी यही मत है—**'हिंसानृतस्तेययाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं'**- (मोक्षशास्त्र/अध्याय 7) पापस्वरूप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है। बुद्धिपूर्वक पाप के एकदेश त्याग को अणुव्रत और सकलदेश त्याग को महाव्रत कहते हैं। ये दोनों संवर में सहायक हैं। कहा भी है—

> **सम्मत्तं देशवयं महव्वयं तह जओ कसायाणं।**
> **एदे संवर णामा जोगा-भावो तहच्चेव।।**
> **—कार्तिकेयानुप्रेक्षा/65**

अर्थात्—सम्यक्त्व, देशव्रत, कषायों का जीतना तथा भोगों का अभाव, ये संवर के ही नाम हैं। कहने का प्रयोजन ये है कि व्रत वीतरागता के द्योतक हैं, राग के परिचायक नहीं हैं। आचार्यो का कथन है कि व्रतों के कारण सम्यग्दृष्टि के प्रतिसमय अनन्तगुनी निर्जरा होती रहती है।

पाँच पापों में परिग्रह महापाप है। पहले चार पाप भी प्रायः परिग्रह के लिए ही किए जाते हैं। जीवन में जितना-जितना अधिक परिग्रह जुटता जाता है, हमारे मन की शान्ति उतनी-उतनी घटती जाती है। यदि परिग्रह में सुख होता तो तीर्थंकर क्यों छोड़ते?

आचार्य पूज्यपादस्वामी ने इष्टोपदेश में परिग्रह की निस्सारता पर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने सभी प्रकार के परिग्रहों को **'सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते'**/8 कहकर उन्हें आत्मस्वभाव से भिन्न अर्थात् पर कहकर उससे विरक्त होने की प्रेरणा की है। परिग्रह को जो अपना मानते हैं, उन्हें मूढ़ कहा है। उन्होंने यह भी बताया है कि ऐसे परिग्रह-विमूढ़ लोग अपने जीवन से धन को अधिक इष्ट मानते हैं (जीवितात्सुतरां धनं/15) किन्तु धनरूप परिग्रह तो आत्मशान्ति में बाधक है। रावण ने लंका में एक बहुत भव्य मन्दिर बनवाया, जिसकी दीवालें सोने की, फर्श चाँदी का और छतें इन्द्रनील मणि की थीं। सोलह दिनों तक वह उसमें बैठकर साधना करता रहा, ऐसी कठोर साधना कि अपनी पटरानी मन्दोदरी की चीख भी उसे सुनाई नहीं दी। उसकी उस साधना का लक्ष्य था महासती सीता को अपना बनाना तथा राम को युद्ध में पराजित करना। उद्देश्य गलत होने से अतुल सम्पदा खर्च करने पर भी रावण बदनाम ही हुआ।

पाँचों पापों का आधार परिग्रह को मानकर आचार्यश्री ने अपने ग्रन्थ में पुण्य कार्यो के सम्पादन की इच्छा या पुण्य-प्राप्ति के लिए धन-संचय करने को अनुचित कहा है। वह कहते हैं कि इस प्रकार की धनेच्छा स्नान कर लूँगा, ऐसे ख्याल से अपने शरीर को कीचड़ से लपेटने की तरह है (देखें श्लोक 16)। सच भी यही है कि ऐसे परिग्रह से पुण्य-संचय नहीं होता, यह तो आचरण से होता है। व्रत, संयम और आचरण ये तीनो पर्यायवाची हैं।

द्रव्यसंग्रह-टीका में शुभाशुभ राग के विकल्प से मुक्ति को व्रत कहा गया है। दुनिया में जितने भी दोष हैं, वे सभी रागजनित ही तो हैं। राग के साथ द्वेष भी रहता ही है। ये दोनों तो सहोदर/सहजात हैं, जैसा कि आचार्य शुभचन्द्र ने कहा

उत्तम ब्रह्मचर्य:- अपने निजात्मा एवं निर्विकल्प आत्मस्वरूप की [illegible] दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करना।

भी है—'यत्र रागः पदं धत्ते, द्वेषस्तत्रेति निश्चयः'। रागद्वेष के वश होकर ही यह जीव पराधीन बन संसार-परिभ्रमण करता रहता है। आचार्य पूज्यपादस्वामी ने अपने इस ग्रन्थ में कहा भी है—

रागद्वेषद्वयीदीर्घ-नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरम् जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।

चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज कहा करते थे कि लोग रागद्वेष, कषाय और पापों का परित्याग कर दुःख से बचें, इसीलिए हम उन्हें व्रती बनने की प्रेरणा करते रहते हैं। व्रताचरण से पतित जीव भी पावनता को प्राप्त होते हैं। गुणभद्रस्वामी के अनुसार व्रत धारण करने वाला जीव आगामी भव में अभीष्ट फल को प्राप्त करता है। व्रत से बढ़कर जीव का दूसरा कोई बन्धु नहीं है तथा व्रत-रहित अवस्था से बढ़कर उसका कोई शत्रु नहीं है। अतः सुखार्थी जीव को व्रत अवश्य धारण करना चाहिए।

दुःख है कि आज एक ऐसी पीढ़ी भी पनप रही है, जो व्रतों के नाम से ऐसे बिदकती है, जैसे कोई गाय लाल कपड़े को देखकर बिदकती है। उस पीढ़ी में शुद्धात्मा का कीर्तन तो होता है किन्तु व्रताचरण का नाम भी नहीं लिया जाता। क्या आज तक उस शुद्धात्मा को किसी ने बिना व्रत धारण किए प्राप्त किया है? 2 मार्च सन् 1964 के आत्मधर्म का एक अंक हमारे पास है। उसकी इस पंक्ति को पढ़कर किसी का भी माथा ठनक सकता है—**'अणुव्रत-महाव्रत वैभाविक क्रिया है।'** शायद इसीलिए हमारे ये तथाकथित मुमुक्षु बन्धु व्रताचरण को हेय मानकर उसकी उपेक्षा करते हैं। आचार्य पूज्यपादस्वामी के इस महत्त्वपूर्ण कथन से उन्हें अपनी मिथ्या धारणा को बदलना चाहिए—

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।3।।

अर्थात्—व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है किन्तु अव्रती रहकर नरक-पद पाना अच्छा नहीं है। जैसे छाया और धूप में बैठने वालों में अन्तर पाया जाता है, वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करने वालों में अन्तर समझना चाहिए।

देव पर्याय में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय पाया जाता है, इसलिए वे व्रत धारण नहीं कर सकते। भोगभूमियों में जीवों की आहार पर्यायें नियत होने से वहाँ भी सयम-पालन नहीं हो सकता तथा नरकों में शुभ लेश्या के अभाव से चारित्र का नाम तक नहीं होता। यह तो केवल मनुष्य ही इतना भाग्यशाली है कि उसकी आहार पर्याय अनियत होने तथा उसमें शुभ लेश्या का सद्भाव पाए जाने से वह व्रत धारण कर सकता है। नर-जन्म पाने के बाद भी अव्रत-अवस्था में समय व्यतीत करना दुर्भाग्य का ही सूचक है। श्रेणिक महाराज को क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो हुई, किन्तु वे व्रत धारण नहीं कर सके, इसलिए उन्हें नरक जाना पड़ा, किन्तु व्रती जीव नियम से स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं और देव होकर तीर्थंकर प्रभु, श्रुतकेवलियों एवं ऋद्धिधारी मुनीश्वरों की सत्संगति से अवर्णनीय लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

व्रतादिक या संयम पर जोर दिए बिना शुद्धात्मा की चर्चा नक्शे में दिखाई गई झील की तरह है। उस झील में न तो नहाया जा सकता है और न नौका-बिहार ही किया जा सकता है। झील का आनन्द तो उसमें अठखेलियाँ करने पर ही मिलता है। शुद्धात्मा का अनुभव भी वहीं कर सकते हैं, जो व्रतों का पालन करते हैं। व्रत-शून्य मानव जीवन निस्सार और निरर्थक है।

किसी मनीषी की इन पंक्तियों के साथ हम अपने आलेख को विराम दे रहे हैं—

"शरीर मृण्मय है। उसका महत्त्व उतना ही है, जितना कि माटी के दीये का होता है। असली मूल्य तो ज्योति का है, मृण्मय में प्रकट होने वाले चिन्मय का है। दीया तो ज्योति को प्रकट करने का माध्यम मात्र है। मृण्मय पर व्रतों का नियंत्रण हो और हो चिन्मय का समायोजन, तभी शरीर और शरीरधारियों की सार्थकता है।" □

[illegible]

जैनधर्म और आहार-नीति

जैनधर्म और आहार-नीति : वायु, जल और वातावरण के साथ ही हमारे आहार एवं आचार-विचार में भी प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। शुद्ध खान-पान की चर्चा अब शनैः-शनैः पोथियों की वस्तु बनती जा रही है। होटल-संस्कृति के बढ़ते प्रभाव को सर्वत्र देखा जा सकता है। कहीं एक व्यंग्य-कथा सुनी थी :--

एक बड़ा-सा गाँव था। गाँव में एक शिव-मन्दिर था। इस मन्दिर में हिन्दू लोग आते-जाते थे। गैर हिन्दुओं में अधिक संख्या मुसलमानों की थी। वे उस मन्दिर पर कब्जा करना चाहते थे। एक बार मौका पाकर छल-बल से उन्होंने मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया और वहाँ नमाज पढ़ने लगे। हिन्दुओं को बहुत बुरा लगा। वहाँ उनका आना बंद हो गया। गाँव में नवदीक्षित बौद्धों की संख्या भी काफी थी। हिन्दुओं के साथ मिलकर उन्होंने पुनः उस पर अधिकार कर लिया और उसमें महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति स्थापित कर दी। अब बौद्धों के अलावा अन्य लोग वहाँ दिखाई नहीं देते थे।

मन्दिर पर जोर-जबरदस्ती से बार-बार कब्जा करने-कराने के इन प्रयासों ने गाँव में साम्प्रदायिक तनाव को जन्म दे दिया। कुछ समझदार लोगों की पहल पर सभी वर्गो के प्रमुख लोगों की एक बैठक बुलाई गई। उसमें इस बात पर आम सहमति हुई कि मन्दिर के स्थान पर ऐसा कुछ किया जाए, जिससे हिन्दू बौद्ध और मुसलमान सभी वहाँ इकट्ठे हो सके। यहाँ तक किसी अल्पसंख्यक सिक्ख ईसाई को भी वहाँ आने में कोई झिझक महसूस न हो। घण्टों की माथापच्ची के बाद सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि मन्दिर के स्थान पर एक होटल खोल दिया जाए।

और, होटल खुल गया। अब बिना किसी भेदभाव के सभी लोग वहाँ आने लगे। होटल की आमदनी बढ़ने लगी। कुछ लोगों की माँग पर उसमें एक 'बार' (मदिरालय) भी खोल दिया गया। लोगों को शराब का स्वाद भा गया। जब भी एक मेज के आगे चार आदमी इकट्ठे होते तो प्रेम से 'चीयर्स' कहकर शराब पीने लगते। शुरू-शुरू में परस्पर हँसते-बोलते, बाद में शराब का असर होने पर एक-दूसरे से झगड़ते और कपड़े फाड़ने लगते। अंत में धक्के देकर बाहर निकलवा दिए जाते।

हमारी आज की खान-पान की सभ्यता पर क्या यह एक चुभता हुआ मजाक नहीं है? इससे भी तीखा क्या कोई और व्यंग्य भी हो सकता है? आज आवश्यकता है खान-पान में आई गिरावट को रोकने की। शाकाहार-वर्ष की परिकल्पना और योजना के पीछे यही उद्देश्य निहित था।

शाकाहार : एक प्रतीक 'शाकाहार' को अपने रूढ़ या संकुचित अर्थो में ग्रहण नहीं करना चाहिए। उसका अर्थ केवल माँस-मछली या अण्डा न खाना ही नहीं है, अपितु इस एक शब्द में एक सम्पूर्ण एवं सुसन्तुलित आहार-नीति का प्रारूप समाविष्ट है। शाकाहार जीवन को आनन्दमय एवं मंगलमय बनाने की प्रक्रिया है। जीने की कला के साथ इसका सम्बन्ध है। जीन की कला में 'कदं चरे' और 'कदं चिट्ठे' से लेकर 'कदं भुंज्जेज' तक का सलीका शामिल है। जिससे आचार-विचार को शुद्ध रखने तथा धर्म-पालन में सहायता मिले, उसी आहार की 'शाकाहार' संज्ञा है। भोजन वही उचित है, जिससे भजन में बाधा न आए। हमारे आगम-ग्रन्थों में धर्म के साधन के रूप में एक सुसंगत आहार-नीति की चर्चा की गई है।

ऊनोदर अर्थात् भूख से कम खाना या कभी-कभी अनशन अर्थात् बिल्कुल न खाना भी आहार-नीति का ही अंग है। ठूँस-ठूँसकर खाना न तो स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से उचित है और न धर्म की दृष्टि से ही। 'सागारधर्मामृत' में बताया गया है कि सुबह और शाम को उतना ही खाए, जिसको जठराग्नि सुगमता से पचा सके। गरिष्ठ पदार्थों को भूख से आधा और हल्के पदार्थो को तृप्ति-पर्यन्त खाएं, मूलाचार में कहा है कि उदर के चार भागों में से दो भाग भोजन से और तीसरा

दया धर्म का मूल है। दया-भाव से विनय-गुण का विकास होता है और विनय से ही किसी को [illegible] शोभा होती पा सकती है।

भाग जल से भरें। चौथा भाग पवन के लिए खाली छोड़े। इसी बात को एक हिन्दी कवि ने इस प्रकार कहा है–

भोजन आधा पेट कर, दुगुना पानी पीउ।
तिगुना श्रम, चौगुन हँसी, वर्ष सवा सौ जीउ ॥

अल्पाहारी के चित्त में उमंग और उल्लास रहता है। जो उत्साही है, वही धर्मसाधन कर सकता है। उसी के जीवन में खुशियाँ अठखेलियाँ करती हैं। भोजन-भट्ट तो निद्रा और आलस की गिरफ्त में आकर अपना अहित ही करता है।

शुद्ध और सात्विक भोजन से परिणाम विशुद्ध रहते हैं और यह विशुद्धि ही आहार का प्रयोजन है। भोजन स्वाद के लिए नहीं, धर्म-साधन में मन को टिकाए रखने के लिए करना चाहिए। हम क्या, कब और कितना खाएँ, इन सबका विवेचन हमारे धर्म-ग्रन्थों में विस्तार से मिलता है। इसी समग्र आहार-नीति का प्रतीक है यह शाकाहार। उसका फलक बहुत व्यापक है। आहार के सन्दर्भ में हमें अपना दृष्टिकोण भी उतना ही व्यापक बनाना होगा। अपने जीवन को शानदार और शान्तिपूर्ण बनाना तभी सम्भव है।

शाकाहार : एक आन्दोलन शाकाहार-अभियान को सतत् एक आन्दोलन के रूप में चलाते रहने की आवश्यकता है। शाकाहार में माँस के साथ ही मद्य और मधु का त्याग, रात्रि भोजन का त्याग, अभक्ष्य पदार्थो के सेवन का त्याग, पशु-चर्म से बनी वस्तुओं का त्याग आदि शामिल है। 'लाटी संहिता में औषधि के रूप में भी अभक्ष्य पदार्थ को ग्रहण न करने का निर्देश दिया गया है। अपने को शाकाहारी कहने और मानने वाले लोग भी इन सबसे बच नहीं पा रहे हैं। आज जैनियों में भी 80 प्रतिशत लोग रात्रि-भोजन करने लगे हैं, चमड़े से बनी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, कभी-कभी-प्रतिदिन बीड़ी-सिगरेट पीते ही हैं, भाँग, शराब आदि से भी सर्वथा मुक्त उन्हें नहीं कहा जा सकता तथा श्रृंगार-प्रसाधनों और दवाओं के नाम पर अवांछनीय को भी पोत या गटक रहे हैं। अहिंसा-भावना की रक्षा के लिए यथासम्भव इन सबसे बचना ही होगा। इसका एक सार्थक नाम 'शाकाहार-मिशन' है, जिसे हमें निरन्तर गति प्रदान करनी चाहिए।

शाकाहार : एक सही आहार– आहार मनुष्य की एक अनिवार्य आवश्यकता है। आहार के बिना उसका काम चल ही नहीं सकता। उसके शरीर की स्थिति, भरण-पोषण और वृद्धि आहार पर ही निर्भर है। आहार से ही आयुर्बल और आरोग्य की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, आहार से उनका विचार-संस्थान और अन्तःकरण भी प्रभावित होता है। उससे केवल शरीर ही नहीं बनता, स्वभाव भी बनता है। चित्त की चंचलता, मनोविकार और अनीति के पीछे अनुपयुक्त आहार की ही प्रधान भूमिका रहती है। जो लोग अपने आहार का चयन सावधानीपूर्वक नहीं कर पाते, उन्हें भारी कष्ट उठाना पड़ता है।

युगादि से ही इस देश का स्वाभाविक आहार अन्न, दूध, फल और शाकभाजी ही रहा है। पहले यहाँ भोगभूमि थी। उस समय के मनुष्य का जीवन वृक्षों पर निर्भर था। वह अन्न और फलों से ही पेट भरता था। खेती-बाड़ी का उसे ज्ञान न था। अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कार के अभाव में वह शिकार करना भी नहीं जानता था। प्रकृति से जो मिल गया, वह खा-पी लिया। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प उसके सामने नहीं था।

फिर एक ऐसा समय आया, जब कल्पवृक्ष नष्ट हो गए। उनके सामने भोजन का संकट खड़ा हो गया। भूख की वेदना उन्हें सताने लगी। भूखे लोग कहीं किसी कुमार्ग की ओर न चल पड़े, यह सोचकर भगवान ऋषभदेव ने उन्हें कृषि की शिक्षा दी। जमीन को जोत-बोकर वे अन्न उत्पन्न करने लगे और वह अन्न ही उनके उदर-निर्वाह का साधन बन गया।

बाइबिल में भी सृष्टि के प्रथम स्त्री-पुरुष आदम और ईव को 'गॉड फादर' की ओर से निर्देश दिया गया है–'देखो! मैंने तुम्हें प्रत्येक पौधा बीज उत्पन्न करने वाला और वृक्ष फल देने वाला दिया है। वे ही तुम्हारे लिए आहार होंगे।' एक

मृदु, कोमलमती व्यक्ति कभी किसी का तिरस्कार नहीं करता और यह सृष्टि का नियम है कि यहाँ दूसरों को आदर देने वाला ही स्वयं आदर का पात्र बन सकता है।

हिन्दू ग्रन्थ **'प्रश्नोपनिषद'** में अन्न को ही विधाता कहा गया है–**'अन्न वै प्रजापतिः'**। शोधार्थियों द्वारा शरीर-रचना, नीतिशास्त्र, चिकित्सा-विज्ञान, पर्यावरण आदि सभी दृष्टियों से शाकाहार की श्रेष्ठता प्रमाणित की जा चुकी है।

कुछ प्रेरक प्रसंग : त्रिलोकसार' आदि ग्रन्थों में बताया गया है कि इस अवसर्पिणी के अन्तिम काल-खण्ड में अनावृष्टि आदि के कारण वृक्षों और वनस्पतियो का अभाव होता जाएगा। इसका प्रभाव यह होगा कि लोग वन्य पशुओं की तरह आचरण करने लगेंगे, वे पशु-माँस खाकर जीवन-निर्वाह करेंगे। माँस-भक्षण से उन्हें कुष्ठ, खुजली जैसे अनेक रोगों का सामना करना पड़ेगा।

उत्सर्पिणी का प्रारम्भ होने पर पर्यावरण मे सुधार दिखाई देने लगेगा। मेघ फिर से बरसेंगे तथा निरन्तर जलवृष्टि से पृथ्वी पुनः हरी-भरी हो जाएगी। शुद्ध जल, स्वच्छ वायु और प्रासुक अन्न लोगों को मिलने लगेगा और इससे उन्हे पुनः ताजगी और आरोग्य की प्राप्ति होगी। आयु और बल में भी वृद्धि होती जाएगी। **'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति'** के अनुसार उस समय कुछ भद्रजन सभी लोगों को एकत्र कर कहेंगे-'अब प्रकृति हम पर प्रसन्न है। सुन्दर फल-फूल, शाक-भाजी और अन्न आसानी से सुलभ होने लगा है। आइए, हम सब यह प्रण करे कि आज से माँस नही खाएँगे और यदि कोई खाता है तो हम उसकी छाया का स्पर्श भी अपने शरीर से नहीं होने देगे।'

यह प्रसंग शाकाहार की पुनर्प्रतिष्ठा का द्योतक तो है ही, इससे यह भी प्रमाणित होता है कि शाकाहार से सामाजिक सभ्यता का विकास होता है। माँसाहार की बढ़ती प्रवृत्ति से तो सामाजिक मान-मर्यादा में गिरावट की ही सूचना मिलती है।

हमारे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ने भी माँसाहार की बढती-पनपती प्रवृत्ति को रोकने तथा पशु-रक्षा के लिए अपने विवाह का विचार त्याग दिया था, कन्या-पक्ष के द्वार पर पहुँचकर भी दूल्हे का बाना उतार फेंका था तथा पशु-यन्त्रणा की कल्पना मात्र से विरक्त होकर सन्यास धारण कर लिया था।

पुरुरवा भील मद्य-माँस-मधु के त्याग से कालान्तर में भगवान महावीर बन गया तथा खदिर सार भील ने पहले केवल कौवे का माँस छोड़ा और बाद में सर्वमाँस-परित्यागपूर्वक श्रावक के व्रत अंगीकार कर अपना उद्धार कर लिया। उसका जीव भावी युग का पहला तीर्थंकर होगा।

शास्त्रो एव पुराणों के ये प्रसग शाकाहार की महत्ता का सम्यक्, प्रतिपादन कर रहे हैं।

माँसाहार का निषेध क्यों? माँस पशुओं को मारकर प्राप्त होता है और किसी को मारना निर्दयता का कार्य है। मरते समय पशु को अपार कष्ट होता है। उसकी पीड़ा और यन्त्रणा को यदि एक बार कोई समझ सके तो फिर माँस खाने की वह कभी इच्छा ही नहीं करेगा। कुछ ममतामयी माताएँ अपने बीमार वच्चे की बाँह में डाक्टर द्वारा इंजैक्शन लगाना नहीं देख पातीं। वे मुँह फेर लेती है। सर्वथा अहानिकर एक छोटी-सी सुई का शरीर में घुसेडना भी जब सिहरन पैदा करता है तो पशुओं पर छुरी या दुधारा चलाने पर उन्हे कितना कष्ट होता होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अनिर्वचनीय यन्त्रणा से प्राप्त यह पशु-माँस किन्हीं हृदयहीनों का ही आहार हो सकता है, सहृदयों को तो कदापि नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द ने 'कुरल काव्य' मे ठीक ही कहा है–'भला उसके मन में दया कैसे आएगी, जो अपना माँस बढ़ाने के लिए दूसरो का माँस खाते हैं।

मरते समय पशु पीड़ा से छटपटाता है। उसे मारने वाले पर क्रोध या आवेश भी आता ही होगा, किन्तु असहाय होने या प्रतिकार करने की शक्ति के अभाव मे वह भय और चिन्ता से उद्विग्न हो उठता है। चिकित्साशास्त्रियों का मानना है कि आवेश, चिन्ता, भय और तनाव से खून जहरीला हो जाता है। उस मृत पशु के माँस के साथ यह जहर माँसाहारी व्यक्ति

महापुरुष जो कहते हैं, वही करते हैं, किन्तु कुटिल पुरुषों की कथनी और करनी में [illegible] है। शास्त्रों में इसे त्याज्य बताया गया है।

के रक्त में भी प्रविष्ट हो जाता है और इस विष के घातक प्रभाव उसे झेलने पड़ते हैं। वैसे भी यह हमारी अपनी देखी-समझी बात है कि चिन्तित रहने वालों के बाल जल्दी झड़ने लगते हैं। भयग्रस्त होने पर बच्चे का पेशाब निकल जाता है और क्रोध में भूख कम हो जाती है। पशु-माँस खाने वालों में भी प्रायः ये लक्षण पाए जाते हैं।

जिस पशु या पक्षी का माँस खाया जा रहा है, हो सकता है कि वह पहले से ही बीमार रहा हो। स्वयं मरते या मारते समय उसका मेडीकल या पैथालोजीकल टेस्ट तो होता नहीं, जिससे उसके रोग का पता चल सके। ऐसी स्थिति में उसका वह रोग उसका माँस खाने वाले में भी आ जाता है। पश्चिम के वैज्ञानिक भी आज एक स्वर से माँसाहार को रोगों की जड़ स्वीकार करने लगे हैं और उनके निष्कर्षों से प्रेरित होकर शाकाहार-पोषक अनेक संस्थाएँ वहाँ स्थापित हो चुकी हैं।

अभी हमें 'पंजाब केसरी' में एक रोचक वार्ता पढ़ने को मिली। वह इस प्रकार है—एक व्यक्ति अपने पुत्र को नसीहत दे रहा था—'बेटा! हरी मिर्च खा लेना लेकिन अण्डे हरगिज न खाना'।

बेटे ने हैरान होकर पूछा—'पिताजी! ऐसा क्यों?'

पिता का उत्तर था—'कल मैं बाजार से गुजर रहा था तो रास्ते में देखा कि दो मुर्गियाँ आपस में लड़कर लहू-लुहान हो गईं। इस पर मैंने सोचा कि अण्डे देने वालों का जब यह हाल है तो अण्डे खाने वालों का क्या हाल होगा?'

इस वार्ता में यह संकेत निहित है कि पशुओं का माँस खाने वाला पशु-स्वभाव को भी जाने या अनजाने ग्रहण करता रहता है। जिस पशु का माँस खाया जाता है, उसकी आदतें भी खाने वालों में संक्रमित हुए बिना नहीं रहतीं।

माँस एक घृणास्पद पदार्थ है। यदि किसी शरीर के किसी अंग या कपड़े पर खून का एक धब्बा भी लग जाए तो वह ग्लानि से भर उठता है और उसके मन को तब तक चैन नहीं मिलता, जब तक वह उसे पानी से धोकर साफ नहीं कर लेता। खून से सने पकड़े पहनकर मन्दिर, मस्जिद या चर्च में जाना वर्जित है तथा सभा-सोसायटी में शामिल होना भी अच्छा नहीं समझा जाता। संवेदना-शून्य कोई अघोरी या पागल व्यक्ति ही ऐसा हो सकता है, जिसे माँस को देखकर ग्लानि नहीं होती हो। सभ्य व्यक्ति तो जब बाजार में निकलता है तो किसी माँस की दुकान पर मृत पशु के लौथडे देखकर नाक पर रूमाल रखकर तेज कदमों से आगे बढ़ जाता है।

अन्य भी अनेक ऐसी सच्चाइयाँ हैं, जिनसे माँस की हेयता सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए माँस खाने वालों का पसीना और मलमूत्र अधिक दुर्गन्धयुक्त होता है। एक ओर जहाँ माँसाहारी पशु निर्दय, खून के प्यासे और झगडालू होते हैं, वहीं दूसरी ओर शाकाहारी पशु सौम्य और शांतिप्रिय होते हैं। शेर और गाय अथवा चीता और घोड़ा को साक्षी के रूप में सामने रखा जा सकता है। हरी सब्जियाँ रक्तशोधक एवं रक्तवर्धक होती हैं तथा उनमें खनिज तत्त्वों की प्रधानता रहती है, जो मस्तिष्क के लिए भी अनुकूल हैं। यह गुण माँस में नहीं पाए जाते। माँस एक उत्तेजक खाद्य है, जो रक्तविकार, दृष्टिमन्दता, अपच और स्नायु दुर्बलता का कारण है। पशुओं में शाकाहारी हाथी और पक्षियों में शाकाहारी तोता सर्वाधिक दीर्घजीवी एवं बुद्धिमान माने जाते हैं।

माँस हर दृष्टि से निन्द्य, अखाद्य और त्याज्य है। वह रोगों का घर है। वह मन-बुद्धि को विकृत करता है तथा उससे जीवन की सुख-शान्ति में बाधा उत्पन्न होती है। शिष्ट, संयत, सभ्य एवं सात्विक वृत्ति के पुरुषों का आहार वह कदापि हो ही नहीं सकता।

आहार-नीति का आधार : अहिंसा मनुष्य के सुख और स्वास्थ्य का उसके शुद्ध विचार और प्रासुक आहार से गहरा सम्बन्ध है। आहार का आधार यदि हिंसा होगा तो विचार अहिंसक कैसे हो सकते हैं। इसी दृष्टि से कहा गया है

[illegible]

कि अहिंसा आत्मा की खुराक है तो रोटी शरीर की। चूँकि आत्मा और शरीर साथ-साथ रहते हैं, इसलिए अहिंसा और रोटी में भी सह अस्तित्व होना चाहिए। हिंसा से प्राप्त भोजन से शरीर की भूख तो मिट सकती है, लेकिन इस स्थिति में आत्मा को तो भूखा रहना पड़ेगा। श्रेष्ठता का दम्भ करने वाले मनुष्य के लिए आत्मा को मरने देने और शरीर को जीवित रखने का कोई औचित्य नहीं है।

हमारे धर्मशास्त्रों में अहिंसा की रक्षा के लिए ही पाँच पापों के साथ तीन मकार (मद्य, माँस और मधु) तथा पाँच उदुम्बर फलों (बड़, पीपर, पाकर, मूलर और कठूमर) के त्याग की प्रेरणा की गई है। इन पदार्थों में सतत त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। आचार्य समन्तभद्र एवं अकलंकदेव ने पाँच प्रकार के भोजन को अभक्ष्य कहा है :–

(1) **जिसमें त्रसघात हो,** जैसे–माँस, मधु, सड़ा-बुसा भोजन, अचार-मुरब्बा आदि।

(2) **जिसमें बहुघात की सम्भावना हो,** जैसे–आलु, अरबी, मूली, अदरख आदि कन्दमूल।

(3) **जो अनिष्टकर हो,** जैसे–गरिष्ठ, अधिक चटपटा–मसालेदार तथा प्रकृति के प्रतिकूल भोजन।

(4) **जो अनुपसेव्य हो,** जैसे–मल, रुधिर, पीव आदि अथवा उन सरीखे दिखने वाले तरबूजा, भींगा हुआ कतीर आदि।

(5) **जो मादकता उत्पन्न करें,** जैसे–भाँग, शराब, गाँजा, चरस, तम्बाकू, ड्रग्स आदि।

इनमें पिछले तीन प्रकार के पदार्थ प्रासुक तो हैं किन्तु मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव के कारण सज्जनों के लिए वे ग्राह्य नहीं है। चमड़े से बनी वस्तुओं तथा ऐसी सभी प्रसाधन-सामग्री और दवाओं आदि, जिनके बनाने में हिंसा का सहारा लिया गया हो, के प्रयोग से भी पापभीरु मनुष्यों को बचना चाहिए। शाकाहार के नियम का पूर्ण परिपालन तभी सम्भव है।

अहिंसा की सुरक्षा के लिए ही सप्त व्यसनों में मद्य-माँस के त्याग से पहले जुआ खेलने का निषेध किया गया है। अन्याय से उपार्जित धन से खरीदी या बनाई गई रोटी कभी अहिंसक नहीं हो सकती। पण्डित टोडरमलजी ने अहिंसा पालन की अपेक्षा से ही पानी छानकर पीने एवं रात्रि को भोजन न करने पर जोर दिया है। एक शाकाहारी के आचरण में ये सभी प्रवृत्तियाँ सहज ही देखने को मिलती हैं।

शाकाहार : व्यापक परिप्रेक्ष्य में 'तीर्थंकर' के मान्य सम्पादक डा. नेमीचन्दजी ने लिखा है–'शाकाहार सिर्फ आहार ही नहीं है, वह वस्तुतः एक परिपूर्ण जीवन-शैली है, जीने की एक शान्तिप्रिय पद्धति है। आदमी को एक बेहतर आदमी बनाने की प्रक्रिया है।'

'शाकाहार' का वर्णाश्रित अर्थ कुछ इस प्रकार होगा–'**शा**' से शान्ति, '**का**' से कारक, '**हा**' से हानि और '**र**' से रहित अर्थात् शान्तिकारक हानिरहित आहार। शाकाहार से केवल माँस-मछली-अण्डा खाने का निषेध ही नहीं होता, बल्कि अन्याय-उत्पीड़न और अनाचार से रहित पुरुषार्थ की प्रेरणा भी मिलती है। शाकाहार में सम्पूर्ण श्रावकाचार गर्भित है। वह संयमित और सन्तुलित जीवनचर्या का प्रतीक है। उसमें महर्षि धन्वन्तरि के '**मितभुक्, ऋतुभुक्, हितभुक्,** का सूत्र भली प्रकार से समाहित है।

शाकाहार-वर्ष और रसोई की सुरक्षा हमारे पूर्वज चौके (रसोई) में भोजन करते थे। हम डायनिंग टेबिल पर बैठकर खाते हैं। यहाँ तक तो गनीमत है, किन्तु शाकाहार-वर्ष में कम-से-कम इतना तो नियम लेना ही चाहिए कि जूते-चप्पल पहनकर नहीं खाएँगे। स्वरुचि भोजन (बफे) में भी आहार विषयक पवित्रता की सुरक्षा सम्भव नहीं है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि का ध्यान रखने से रसोईघर को 'चौका' कहा जाता था। चौका-पद्धति में ये विशेषताएँ हैं–

लोगों की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता। आदमी बूढ़ा हो जाता है, किन्तु तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती। तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।

- अनीति से उपार्जित धन से खरीदे अन्न तथा अभक्ष्य पदार्थों का प्रवेश चौके में नहीं होना चाहिए। (द्रव्य-शुद्धि)।
- चौके का वातावरण पवित्र होता है। बिना नहाये, बिना हाथ-पैर धोए तथा बिना स्वच्छ वस्त्र पहने चौके के अन्दर प्रवेश करना वर्जित है। (क्षेत्र-शुद्धि)।
- दिन में सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त से पूर्व ही खाना बनाने और खाने का नियम है। जब भूख लगे, तब खायें। वही भोजन की अमृत बेला कहलाती है। (काल-शुद्धि)
- भोजन बनाने और खिलाने का कार्य स्नेह, प्रेम और रुचिपूर्वक होना चाहिए। प्रायः भोजन करते समय मौन रखा जाता है। (भाव-शुद्धि)।

आज चौका-पद्धति हमारे घरों से उठती जा रही है। अब तो कुछ ही घरों में चौका लगता है और वह भी प्रायः साधुओं के निमित्त से। इस पद्धति को पुनर्जीवित किए जाने की आवश्यकता है। चौके का शाकाहार से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

स्पृहणीय हैं ये शाकाहारी : जैन और ब्राह्मण समाज तो एक शाकाहारी समाज है ही, भारत की अन्य अनेक जातियों में भी शाकाहार प्रचलित है। सुखद आश्चर्य की बात तो यह है कि पाइथागोरस, आइजक न्यूटन, डा. एनीबिसेण्ट, अल्बर्ट आइन्सटाइन, जार्ज बर्नार्ड शॉ, टालस्टाय और सुकरात सरीखे विदेशों में जन्मे अनेक महापुरुषों ने भी शाकाहार के गुणों को जाँच-परखकर बुद्धिपूर्वक उसे स्वीकार किया था। समस्त शाकाहारियों के लिए यह स्पृहणीय बात है।

जार्ज बर्नार्ड शॉ कट्टर शाकाहारी थे। एक बार बीमार पड़ने पर डाक्टरों ने उनसे कहा–'यदि माँस नहीं खाओगे तो मर जाओगे।' शा का उत्तर था–**'माँसाहार करने से तो मरना ही अच्छा है।'** उन्होंने डाक्टर से यह भी कहा कि माँस न खाने पर भी यदि वह बच जाएं तो आप भी माँस खाना छोड़ देना। शॉ तो बच गए लेकिन डाक्टर शाकाहारी नहीं बन सका।

महात्मा गाँधी का पुत्र एक बार बीमार पड़ा। डाक्टरों ने पथ्य के रूप में माँस का सूप खाने की सलाह दी, किन्तु शाकाहार में अडिग आस्था रखने वाले गाँधीजी ने सूप नहीं दिया। बच्चा फिर भी स्वस्थ हो गया।

मेनका गाँधी शाकाहारी परिवार में पैदा न होने पर भी शाकाहारी हैं और चाँदी के वरक तक को अभक्ष्य की श्रेणी में गिनती हैं। पूर्व प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह की फर की टोपी उन्होंने छुड़वा दी थी। चमड़े से बनी वस्तुओं के प्रयोग का भी वह निषेध करती हैं। पर्यावरण एवं वन राज्यमन्त्री के रूप में उन्होंने प्रदूषण-नियन्त्रण और पशु-कल्याण के लिए शाकाहार के प्रचार को काफी महत्त्व दिया था।

हमें इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। शाकाहार में प्रमाद या अज्ञानवश यदि हमसे कहीं अतीचार लग रहे हों तो उनसे बचना हमारा परम कर्त्तव्य है।

उपसंहार : हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि खान-पान की इस गिरावट या भक्ष्याभक्ष्य के विवेक की इतिश्री को रोके जाने के जोरदार उपाय किए जाएँगे। खान-पान में विवेक के लुप्त हो जाने पर हमारी शान्ति और अस्मिता दोनों ही खतरे में पड़ जाएंगी। यदि इस संकल्प से व्यसन-मुक्त जीवन की प्रेरणा हमें मिल सकी तो यह हमारे उज्ज्वल भविष्य का सूचक होगा।

□

[illegible]

पशु-हत्या का व्यापार

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से हमारे देश में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पिछले पचास-बावन वर्षो में सबसे अधिक हिंसा के शिकार हुए हैं हमारे बेजुवान ओर निरीह पशु। हम तो आजाद हो गए, लेकिन उनकी आजादी छिन गई। आजादी से पूर्व तीन-सौ कत्लखाने थे, जिनकी संख्या अब 36000 से भी अधिक हो गई है। तब की तैंतीस करोड़ की मानव-आबादी आज एक अरब के करीब पहुँच चुकी है, लेकिन पशुओं का अनुपात तेजी से घटा है। तब छत्तीस करोड़ पशु थे, जिनकी संख्या अब मात्र दस-ग्यारह करोड़ रह गई है। यदि पशुहत्या के व्यापार पर पाबंदी होती तो पशुओं की संख्या मनुष्यों से अधिक ही होती। अब भी कत्लखानों की बेहताशा वृद्धि पर यदि रोक न लगी तो एक दिन पशुविहीन भारत हमारी आँखों के सामने होगा। माँसाहार की बढ़ती प्रवृत्ति से हमारे पड़ौसी देश म्यांमार में बैलों की प्रजाति प्रायः खत्म हो गई है। वहाँ के खेतों में आदमी को हल चलाते हुए देखा जा सकता है। निकट भविष्य में हमें भी यदि ऐसा दुर्दिन देखना पड़े तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। जानवरों के खत्म होने पर आदमी के कत्ल की बारी आ सकती है। कहा जाता है कि शेर को जब मनुष्य के मास की गन्ध भा जाती है। तब आसपास के गॉवों की खैर नहीं रहती। कत्लखानों की बाढ़ में भी भारत के विकट संकट की सूचना निहित है।

बताया जाता है कि माँस का निर्यात करने से देश को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, लेकिन कितनी? दो-सौ करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा के लिए हम अपने लाखों पशुओं को मौत के घाट उतारकर इस राशि से कई गुना ज्यादा राशि का नुकसान कर रहे हैं। अर्थतंत्र पर निगाह डालें तो पशुओं से हमें अरबों रुपए मूल्य की सम्पत्ति तो प्राप्त होती ही है, साथ में खुशहाली भी मिलती है। फिर थोडी-सी विदेशी मुद्रा के लालच में माँस के निर्यात के लिए यह पशुवध कर हम क्यों सांस्कृतिक व आर्थिक कुठारघात के शिकार हो रहे हैं? देश के शाकाहारी व अहिंसक समाज ने बार-बार कहा है कि वह माँस-निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा के कई गुना अधिक विदेशी मुद्रा अन्य प्रकार का औद्योगिक निर्यात कर अर्जित कर सकता है। तब समझ में नहीं आता कि सरकार के सामने माँस-निर्यात की क्या बाध्यता है? क्या हमने बाहर के मुल्कों को अपना पशुधन काटकर खिलाने का ठेका ले लिया है? यह चिन्तनीय व हृदयद्रावक स्थिति है, जिस पर तुरन्त विचार होना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में पशुओं के प्रति करुणा पर बहुत जोर दिया गया है। भगवान ऋषभदेव का वाहन है वृषभ या बैल। शिव का वाहन नन्दी है। श्रीकृष्ण को गायें प्रिय थीं। भगवान नेमिनाथ से पशुओं का विलाप नहीं देखा गया। पशु-क्रन्दन की घटना उनके वैराग्य में निमित्त बन गई। ये सब हमारे महापुरुषों के पशु-प्रेम के ही प्रेरक उदाहरण हैं। तो हम आज क्यों इतने निष्ठुर हो गए हैं? महावीर-पूर्व भारत की तस्वीर भी कुछ ऐसी ही थी। तब भी धर्म के नाम पर हिंसा होती थी। नरमेध, अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञ होते थे और उनमें होम दिए जाते थे सैकड़ों-हजारों बेगुनाह पशु। शाक्त धर्म के उपासक नर-माँस को महाप्रसाद के रूप मे ग्रहण करते थे। अघोरी सम्प्रदाय के अनुयायी श्मशान में जलती चिता के इर्द-गिर्द कच्चा या पका माँस प्राप्त करने के लिए चक्कर काटते थे। महावीर ने इस हिंसक प्रवृत्ति के विरुद्ध क्रान्ति का बिगुल बजाया। प्रो रामास्वामी आयंगर ने लिखा है: 'यह महावीर का ही प्रभाव था कि वैदिक यज्ञ का स्वरूप बदला। सजीव पशुओं की जगह आटे के पशु होमें जाने लगे।' रोम्या रोला ने कहा--हिंसा के मध्य अहिंसा का आविष्कार करने वाले महावीर न्यूटन से अधिक बुद्धिमान तथा बिलिंगटन से बडे योद्धा थे।' कत्लखानों के लिए नित नए-नए लाइसेंस देकर क्या हमारे देश की सरकार हमारी पावन सस्कृति को ही तहस-नहस करने का कुचक्र नहीं रच रही है?

पशु-पक्षी या जीव-जन्तु कभी अनुपयोगी नहीं होते। वे पर्यावरण के रक्षक हैं और प्रदूषण के फैलाव को रोकने में हमारी सहायता करते हैं। मछली को ही लीजिए। वह पानी की गन्दगी को समाप्त करती है। एक देश है नार्वे, जो सरोवरों का देश कहलाता है। वहाँ के 15000 तालाब आज मछलीविहीन हो गए हैं और अब नार्वेवासी प्रदूषित जल पी रहे हैं। हमारे

हित, मित और प्रिय वचन बोलना ही वाणी का सदुपयोग है [illegible] की तरह होते हैं, जो सुनने वाले के हृदय में घाव कर देते हैं।

देश में भी मत्स्य-उद्योग के चलते जल-प्रदूषण बढ़ रहा है। हृदयहीन सरकार मछली मारने के लिए सब्सिडी, जाल, नाव और मत्स्य-भण्डारगृह के लिए नाममात्र के ब्याज पर कर्ज दे रही है। पशुओं की कमी से देश में खाद-संकट उत्पन्न हो गया है। सरकार को 80 लाख टन गोबर का आयात करना पड़ रहा है। भूतपूर्व केन्द्रीय कृषि मन्त्री बूटासिंह ने कहा था–'भारत के बूचड़खानों में प्रतिवर्ष पच्चीस लाख पशु काटे जाते हैं। इन्हें न काटा जाए तो वर्ष में एक करोड़ टन गोबर मिल सकता है।'

पशु हमारे मित्र हैं, शत्रु नहीं। उनके जरिए न जानें कितने परिवारों की उदर-पूर्ति हो रही है। हम एक पशु को पालते हैं और वह एक पशु हमारे पूरे परिवार को पालता है। ताँगेवालों के परिवार का भरण-पोषण ताँगे में जुतने वाले घोड़े करते हैं। बैलों के आधार से किसानो के परिवार पलते हैं। भेड़ें अपने शरीर के रोम (ऊन) देकर गड़रियों की जीविका चलातीं हैं। रीछ और बंदरों से अनेक बाजीगरों या मदारियों के परिवारों का निर्वाह होता है। मानव-जाति पर पशुओं का बड़ा उपकार है। उन्हें मारना क्या कृतघ्नता नहीं है? सच तो यह है कि पशु देश की दौलत हैं। उनका संहार देश की दौलत का ही संहार है।

पहले पशुओं को धर्म के नाम पर मारा जाता था, किन्तु आज तो स्वाद, शौक या सजावट, औषधि–निर्माण और विदेशी मुद्रार्जन के लिए पहले से भी कई गुनी अधिक संख्या में पशुओं की हत्या की जा रही है। पाश्चात्य देशों में पाँच सितारा होटलों और रेस्त्राओं में जिह्वालोलुपी मानव की स्वाद-पूर्ति के लिए मेढ़क, नेवला, साँप, तिलचट्टे आदि का माँस या सूप परोसा जाता है। एक देशी नाम वाली फ्राँसीसी कम्पनी प्रतिदिन दस लाख अण्डों का चूर्ण बनाती है। इन्हें खरीदकर हमारे देश की बेकरीज और फार्मेसियाँ दवाएँ, बिस्कुट, डबलरोटी आदि बनाती हैं। अण्डों और मछलियों के उत्पादन को सरकारी कागजों और विज्ञापनों में खेती या उद्योग का दर्जा दिया जाता है। अनेक टूथपेस्टों, फेवीकोल या चीनी के बर्तनों में पशु-अंगों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। साज-श्रृंगार के समानों जैसे–नेलपालिश, लोशन, क्रीम, लिपिस्टिक, शैम्पू आदि की परख के लिए बेशुमार चूहों, मेढ़कों, खरगोशों, बन्दरों आदि को मृत्यु या विकलाँगता का वरण करना पड़ता है। अनेक दवाओं के निर्माण में पशु के अवयवों से प्राप्त स्राव का उपयोग किया जाता है। कत्लखानों की बढ़ती संख्या के पीछे विदेशी मुद्रा की कमाई का नापाक सरकारी इरादा ही तो है। दर्दरहित मृत्यु का मानवीय वध सरीखे भ्रामक शब्दों की आड़ में 'सी–126 मैग्नम' जैसे कानून बनाकर पशु-हत्या के अनौचित्य को छिपाने की कोशिश की जा रही है। आज हमारे देश में पशु से ज्यादा असुरक्षित अन्य कोई नहीं है।

शताब्दियों से मानव-सेवा में रत पशुओं का वध दरिन्दगी की निशानी है। गोश्तखोर इन्सान और एक गिद्ध में आज अन्तर ही क्या रह गया है? कत्लखानों में तड़प-तड़प कर अपने प्राणों की आहुति देने वाले इन निरीह पशुओं की पुकार आज कोई भी तो नहीं सुन रहा है। ये बेचारे तो मूक हैं, अपनी प्राण-रक्षा के लिए किसी से फरियाद भी नहीं कर सकते। इनका कोई संगठन न होने से ये न तो जुलूस निकाल सकते हैं और न बेरहम कातिलों के खिलाफ 'हाय-हाय' या 'मुर्दाबाद' के नारे ही लगा सकते हैं। निश्चय ही आज हमारे देश का सम्पूर्ण पशु-जगत इस सदी के प्रभावक जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रति कृतज्ञता अवश्य व्यक्त कर रहा होगा, जो गत एक वर्ष से इनकी प्राण-रक्षा के लिए अलख जगा रहे हैं। करुणा, मैत्री और अहिंसा में विश्वास रखने वाले सभी धर्मो के अनुयायी भी यही चाह रहे हैं। सभी संतों और महन्तों का आशीर्वाद इसे प्राप्त है। आशा है कि पूरे राष्ट्र की करुण पुकार सरकार के बहरे कानों तक अवश्य पहुँचेगी। महात्मा बुद्ध का कथन था–'पशु-पक्षी पूर्व जन्म के हमारे भाई-बहन, माता-पिता या पुत्र-पुत्री हो सकते हैं। इन्हें मारकर हम अपने ही सगे-सम्बन्धियों को नहीं मार रहे हैं क्या?'

यह प्रश्न बड़ा ही धार्मिक और मानव-संवेदना को जगाने वाला है। यह सवाल पत्थरदिल इन्सान के कठोर हृदय को भी मोम की तरह पिघलाने की सामर्थ्य रखता है। कत्लखानों का विरोध हिंसा का ही विरोध है और यह विरोध हम सबको

[illegible]

एकजुट होकर व्यक्त करना है। यह आन्दोलन भारत की अस्मिता को बचाने का आन्दोलन है। विधि आयोग ने भी माँस के निर्यात पर रोक लगाने की सिफारिश की है। अपने ही आयोग की सिफारिश को यदि सरकार अस्वीकार करती है तो इसे अनैतिक ही कहा जाएगा। कहावत है कि बच्चे को बिना रोए तो माँ भी दूध नहीं पिलाती। आज हमारे बेजुबान पशु भी रो रहे हैं। माँ (सरकार) के सामने कातर आँखों से निहार रहे हैं। क्या सरकार एक माँ का फर्ज भी अदा नहीं करेगी? न्यायसंगत माँगों को अनसुना कर सरकार अपने रसातल में जाने का मार्ग चुनना शायद पसन्द नहीं करेगी, इसी विश्वास पर अहिंसा-प्रेमियों की सारी आशाएँ टिकी हैं। इस माँग के माध्यम से देश के सम्पूर्ण पशु, जो अपनी बर्बरतापूर्ण विनाशलीला से आहत हैं, भारत सरकार से पूछ रहे है।:–'गुनहगारों में शामिल हैं, गुनाहों से नहीं वाकिफ/सजा तो जानते हैं, खुदा जाने खता क्या है?

□

पाखण्ड से बचिए :

पिछले कुछ दशकों में विश्वभर के अखबारों में एक नाम बिजली की तरह कौंधता रहा था और वह नाम था भगवान रजनीश या ओशो का। हमारे एक पाठक ने एक बार प्यारा-सा पत्र लिखकर पूछा था कि 'जैन गजट' में भावी तीर्थंकर के बारे में तो आए दिन बहुत-कुछ छपता रहा है, आधुनिक भगवान पर कभी आपकी कृपा क्यों नहीं हुई। अपने प्रिय पाठक का मन रखने के लिए आज हम रजनीशजी का स्मरण कर रहे हैं। कभी-कभी पाखण्ड से समाज को बचाए रखने के लिए पाखण्ड की चर्चा भी जरूरी होती है।

रजनीशजी को देखने-सुनने का अवसर हमें केवल एक ही बार मिला था। 1 जनवरी 1966 को उनका फिरोजाबाद में आना हुआ था। उस समय वह जबलपुर में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। नए ढंग के अध्यात्म के बीज उनकी उर्वरा मानसिक धरती पर कुलबुलाने लगे थे। आचार्य रजनीश के रूप में वह प्रसिद्धि की ओर बढ़ रहे थे। स्थानीय सेठ कन्हैयालाल की जीन में उनकी वार्ता सुनने के लिए कुछ इने-गिने बुद्धिजीवियों को आमन्त्रित किया गया था। हम भी उस गोष्ठी में शामिल होने वालों में से एक थे। उन्होंने जो बातें कहीं, उन्हें सुनकर लोग चौंके थे। उनके भाषण का सार यह था–

- विश्वास एक सामाजिक अभिशाप है। किसी एक धर्म, पंथ या ईश्वर के विश्वास में बँधना सर्वनाश का कारण है। विश्वास एक छल है, भुलावा है। मुक्त होने के लिए हर तरह के विश्वास बन्धनों से मुक्त होना होगा।
- उपदेश व्यर्थ है। जो उपदेश देते हैं, वे सब भ्रमित हैं। उपदेशों से मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्त होने के तीन ही मार्ग हैं–चित्त की स्वतन्त्रता, सजगता और शून्यता। उपदेश और शास्त्र इस मार्ग की बाधाएँ हैं। दुनिया के सारे शास्त्रों को समुद्र में डुबा देना चाहिए।
- यह कैसा पागलपन है कि हमारे सभी महात्मा यह छोड़ने, वह छोड़ने ब्रह्मचर्य धारण करने आदि का उपदेश देते हैं। यह सब बकवास करते हैं। इच्छाओं का दमन धर्म नहीं, अधर्म है। ब्रह्मचर्य भी दमन से उत्पन्न होता है। दमित वासना और ब्रह्मचर्य में कोई अन्तर नहीं।

फिरोजाबाद से जाने के बाद भी रजनीशजी यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों में बहुत दिनों तक चर्चा के विषय बने रहे थे। उनके भाषण की प्रशंसा भी हुई थी और आलोचना भी।

लोहे की टेढ़ी छड़ तपाकर सीधी की जाती है। सोना तपने के बाद ही आभूषण बनता है। ऐसे ही तप के द्वारा आत्मा की मलिनता को विदा किया जाता है।

यह रजनीशजी पहले कभी राजेन्द्रकुमार जैन कहलाते थे। बचपन से ही प्रतिभाशाली और रूपवान थे—सुन्दर, सलोने और आकर्षक व्यक्तित्व वाले। उनकी वाणी मधुर थी। होश सँभालते ही जैन सभा-सम्मेलनों में बोलने लगे थे। गजब का सम्मोहन था उनके शब्दों में। सुनकर श्रोता-समुदाय मन्त्र-मुग्ध हो जाता था, एकदम निःस्तब्ध और खोया हुआ-सा।

शब्दों के इस जादूगर का जैसे-जैसे प्रभाव बढ़ता गया, वैस-ही-वैसे उसकी महत्त्वाकांक्षा भी बढ़ती गई। हर तरह की वासना को जी भरकर भोगने की स्वतन्त्रता के उनके दर्शन ने सम्पन्न घरानों के नई उम्र के लड़के-लड़कियों को बहुत प्रभावित किया। उनके चारों ओर नवयुवकों और नवयौवनाओं का घेरा बनता और बढ़ता ही गया। उनका आवास (चाहे वह जबलपुर में रहा हो या बम्बई अथवा पूना में) रासलीला का अड्डा बनता रहा। रजनीश के आवास का अर्थ था एक ऐसा स्थान जहाँ बेरोकटोक चरस, गाँजे और शराब का सेवन होता हो तथा जहाँ स्वच्छन्द यौनाचार की खुली छूट हो। अमरीका में तो यह नंगनाच अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।

भोग-विलास को धर्म का जामा पहनाने वाले दार्शनिक के रूप में रजनीश ने इतिहास में अपना एक स्थान बना लिया है। फ्रायड के बाद सैक्स की इतनी जोरदार वकालत करने वाला दूसरा कोई नहीं हुआ। देश-विदेश के विलासी धन-कुबेर उन पर जी-जान से फिदा थे।

रजनीश जहाँ भी रहे, विवादास्पद बनकर रहे। 'सम्भोग से समाधि की ओर-, 'अस्वीकृति मे उठा हाथ', 'समाजवाद से सावधान' जैसी कृतियों ने उन्हें बहुचर्चित बना दिया। **'अगर बदनाम भी हुए तो क्या नाम न होगा'** की तर्ज पर वह हमेशा अखबार की सुर्खियों में बने रहे। उनकी मान्यता थी कि बदनाम होने का अर्थ है नाम होना और नाम न होने से बेहतर है बदनाम होना।

उनकी मादक-मोहक चितवन और वाणी ने लाखों लोगों को मतवाला बना दिया। पूना के **'रजनीश फाउण्डेशन'** और अमेरिका के **'रजनीशपुरम'** के बारे में सुन-सुनकर दुनिया हैरत में रह गई। उनके तिलिस्मी व्यक्तित्व ने हजारों को अन्धा बना दिया। तनाव-मुक्ति और ध्यान के नाम पर उन्होंने अपने भक्तों को निर्वस्त्र होकर अश्लील और कुत्सित हरकतें करने की इतनी छूट दे दी कि उन्हें देखकर जानवर भी शर्म से आँखें नीची कर लेते। वह जहाँ भी रहे, उनकी आड़ में तस्करी, हत्या, बलात्कार और धोखाधड़ी के अपराध पनपते रहे। पूना से उनका पलायन इसी वजह से हुआ और इसी वजह से उन्हें अमेरिका में जेल का मेहमान बनना पड़ा। बेइज्जती के उन दिनों में उनकी भगवानी किसी काम न आ सकी।

मजा-मौज की नीति रजनीशी मनोरंजन की चीज हो सकती है, आत्मविकास की नहीं। रजनीश के पूना-स्थित आश्रम के बाहर लिखा रहता था—**'यहाँ जूते और दिमाग निकालकर प्रवेश करें।'** सच भी यही है कि जिनकी बुद्धि का दिवाला निकल गया होता था, वही उनकी दिवाली (रंगीनियों) का आनन्द लेने पहुँचता था। रजनीश और पाखण्ड पर्यायवाची हैं। असंयम से बढ़कर पाखण्ड और क्या हो सकता है?

रजनीश यदि राजेन्द्र जैन ही रहते तो भगवान नहीं कहलाते। भविष्यकालीन काल्पनिक भगवान कहलवाने से उन्हें सन्तोष नहीं हो सकता था। उनकी महत्त्वाकांक्षा कुछ बड़ी थी, इसलिए उन्होंने बड़ा क्षेत्र पकड़ा। विश्वभर में अपने 500 साधना-केन्द्र और लगभग पाँच लाख अनुयायी बनाने में वह सफल हुए। सारे ग्रन्थों को समुद्र में डुबा देने की बात कहने वाले के 400 ग्रन्थ, हजारों बी. डी. ओ. कैसिट्स तथा टेप आज दुनिया में बिक रहे हैं और उनसे लाखों डालर की आमदनी है।

राजेन्द्र उर्फ रजनीश ने यह तो सिद्ध कर ही दिया है कि यदि पुण्य का उदय हो तो ढोंग और पाखण्ड को भी 'धर्म' के रूप में भुनाया जा सकता है, होनी चाहिए योग्यता और उस योग्यता के दुरुपयोग करने की क्षमता। आज रजनीश के बारे में जानकर हमें मारीचि का जीवन याद आ जाता है।

दुनिया में और भी बहुत से लोग आज नया पंथ/मठ/स्टण्ट आदि चलाकर अपना भाग्य अजमा रहे हैं। ऐसे ही एक

धन की तीन ही गतियाँ हैं— दान, भोग और नाश, बुद्धिमत्ता इसी में है कि नष्ट होने से पहले उसे परोपकार में लगा दिया जाए।

स्वामी ओंकारानन्द स्विटजरलैण्ड की जेल में रह चुके हैं। सुनते हैं कि अकेले अमेरिका में इस समय देश-विदेश के 2400 धर्मगुरु आध्यात्मिकता का सुपर बाजार खोले हुए हैं।

रजनीश से दिगम्बर जैन समाज को कोई खतरा कभी नहीं रहा, क्योंकि वह अपने को 'जैन' नहीं कहते थे और न दुनिया में ही कोई उन्हें 'जैन' के रूप में जानता-मानता था। 'दिगम्बर जैन समाज को खतरा तो दिगम्बरों के वेश में छिपे गैर-दिगम्बरियों की करतूतों से ही होगा। शरीर की क्रिया को जड़ की क्रिया कहकर भोग का ही समर्थन किया जा रहा है। संयम और व्रत चारित्र की उपेक्षा भी पाखण्ड ही है। जो मुनि बनना तो दूर, अपने जीवन में श्रावक तक नहीं बन सके—ऐसे नामधारी स्वामी और भगवतियों से सावधानी अपेक्षित है।'

□

जनसेवा और जिनसेवा

सामूहिक चेतना में से हुआ है सेवा की भावना का विकास। यह पशुओं में नहीं पाई जाती है। देव और नारकियो मे भी इसका अभाव है। यह तो केवल मनुष्यों के बाँट में आई है। मनुष्य अकेले रहकर सुख नहीं पा सकता। दूसरे के सुख-दुख से वह स्वयं प्रभावित होता है तथा उसके अपने क्रिया-कलाप भी दूसरों के हर्ष-विषाद मे निमित्त बनते हैं। अंगोपांग और शरीर में, अथवा जलकण और समुद्र में जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध व्यक्ति और समाज में है। एक व्यक्ति का कष्ट पूरे परिवार का सुख-चैन छीन लेता है और परिवार के सकट से व्यक्ति भी अछूता नहीं रह पाता। व्यक्ति समाज और परिवार एक दूसरे के पूरक हैं। इसी संवेदना में से सेवा का जन्म हुआ है। **'शिवमस्तु सर्वजगतां'** या **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** अथवा **'क्षेमं सर्वप्रजानाम्'** के संकल्प सेवा के ही आदर्श हैं।

भारतीय तत्त्व-चिन्तन में स्वर्ग और अपवर्ग से भी अधिक महत्त्व सेवा को दिया गया है। **'जीवाणं रक्खणं धम्मो', 'गुणिषु प्रमोदं', क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं'** तथा **'मित्ती में सव्वभूएसु'** के आर्षवाक्यों में सेवा की ही प्रेरणा निहित है। भगवान महावीर का एक सूत्र है—**'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'**। इसका अर्थ यही है कि एक-दूसरे की सहायता और सेवा करना चेतन का स्वभाव है, धर्म है। हमारे मनीषी आचार्यो ने **'सर्वोदयतीर्थमिदम्'** या **'सार्वजनिक धर्मोऽयम्'** कह कर 'सेवा' और 'धर्म' को पर्याय सिद्ध कर दिया है। धर्म में से सेवा को निकाल देने से बचता ही क्या है? सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में से निर्विचिकित्सा, उपगूहन, वात्सल्य और प्रभावना ये चार अंग व्यक्ति को समाज से जोड़ते हैं। समाज से जुड़ना ही सेवा है। अपने आस-पास के प्राणियों को उठाते हुए उनके सुख-दुःख में अपने को साझेदार बनाकर चलना ही सेवा है और यही सेवा महान् धर्म है। किसी नीतिकार ने कहा है कि—**'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'** अर्थात् सेवा धर्म परम गहन है, वह योगियों के लिए भी अगम्य है। सेवा-सुश्रूसा **(वैयावृत्ति)** के आधार पर तीर्थंकर-पद भी प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य हेमचन्द्र 'वीतराग स्तोत्र' में कहते हैं :—'हे वीतराग प्रभो! तुम्हारी पूजा-उपासना से तुम्हारी आज्ञाओं का परिपालन कहीं अधिक उत्तम है **(तव सपर्यास्तवाज्ञा-परिपालनम्)** और प्रभु की आज्ञा है—मैत्री और करुणा। इन्हीं का मूर्त रूप है जनसेवा। इसीलिए कहा जाता है। 'जनसेवा ही जिनसेवा है। सेवा पर भगवान बहुत जोर देते हैं। उनका कथन है कि जो एक बार मेरी उपासना चाहे न भी करता हो; किन्तु जो दीन-दुखियों की सहायता करता हो, वह श्रेष्ठ है और मेरे धन्यवाद का पात्र है **(जे ग्लानं पडियरइ से धन्ने)**। सर्वसाधारण चैतन्य की सेवा ही भगवान की सेवा है। सम्पूर्ण भारतीय

[illegible]

वाङ्मय सेवा की महिमा से भरा पड़ा है। हमारे धर्मशास्त्र यह नहीं पूछते कि तुम्हारे पास धन-वैभव या सोने-चाँदी का कितना ढेर है? वे तो यह पूछते हैं कि तुमने उसका दूसरे के कल्याण के लिए कितना उपयोग किया है।

'आदिपुराण' में आचार्य गुणभद्रस्वामी कहते हैं—**'तन्नूनं महतां चेष्टा परार्थैव, निसर्गतः'** अर्थात् महापुरुषों के सभी प्रयास जन-कल्याण के लिए ही होते हैं। लोकहित करना उनका स्वभाव है। दया या परोपकार किसी पर कोई कृपा नहीं है, वह तो स्वकल्याण का ही एक साधन है। परोपकार में स्वोपकार भी छिपा हुआ है। शास्त्रों में दया के स्वदया और परदया ऐसे दो भेद किए गए हैं। **'आद हिदं कादव्वं'**-पहले स्वहित करना चाहिए। **'जदि सक्कइ परहिदं च कादव्वं'** अर्थात् यदि शक्ति और सामर्थ्य हो तो बाद में दूसरों का भी हित करो। एक दयालु पुरुष के लिए यह कैसे सम्भव है कि वह समर्थ होते हुए भी रक्षणीय व्यक्ति की उपेक्षा कर दे। अन्धे व्यक्ति के सामने कुँआ देखकर भी उसे बचाने वाला तो कोई अत्यन्त निर्दय हो सकता है, किन्तु जो स्वयं सबल और सुरक्षित नहीं हैं, वह दूसरों की सेवा-सुरक्षा कैसे कर सकता है? इसलिए स्वदया पहले हो, समाजसेवा बाद में। वीतरागता (कषाय-मुक्ति), सत्य, संयम, संतोष, प्रेम, सहानुभूति आदि गुणों का विकास ही स्वदया है। सेवा करते हुए यदि अहंकारादि दुर्गुण उत्पन्न हो गए हों तो सेवा का फल नष्ट हुआ ही समझना चाहिए।

सेवा कोई सौदा नहीं है। वह तो एक निष्काम भाव है। निष्काम सेवा को ही धर्म कहा गया है। **'बाल्मीकि रामायण'** में एक सुन्दर प्रसग आता है। अयोध्या-वापिसी के बाद श्री रामचन्द्रजी अपने भक्त हनुमान को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं :—

मदंगेजीर्णतां यातु, यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकारणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥

'हे हनुमान'! तुमने जो उपकार मुझ पर किए हैं, वे मेरे अंग में ही जीर्ण हो जाएँ, यानी उन्हें लौटाने का अवसर न आए। मनुष्य विपत्ति के समय प्रत्युपकार की पात्रता को प्राप्त होता है। यदि मैं कहूँ कि मेरी भी प्रत्युपकार करने की इच्छा है तो इसका अर्थ यही होगा कि तुम पर भी बनवास, युद्ध, सीताहरण जैसी विपत्तियाँ आएं और तब मैं तुम्हारी सहायता करूँ। बदले की यह भावना तो सेवा नहीं है, अतः मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे उपकार मुझमें जीर्ण हो जाएँ, उन्हें लौटाने का अवसर न आए, तुम सदा सुखी और प्रसन्नं रहो।'

कैसे उच्च विचार है। उपकर्ता और उपकृत दोनों के समक्ष सेवा का यह आदर्श रहना चाहिए।

'देशस्य राष्ट्रस्य, पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवज्जिनेंद्रः' की नित्य निष्काम प्रार्थना ही सच्ची सेवा है। ऐसी सेवा करने वाला ही जिनेन्द्र प्रभु के निकट रह सकता है। वह स्वयं तिरता हुआ दूसरों को भी पार लगाता है।

सेवा से बढ़कर कोई तप नहीं है। उससे यदि पुण्यकर्मो का आस्रव होता है तो पापकर्मों की संवर-निर्जरा भी होती है। मुक्ति-मार्ग में गृहस्थों के लिए सेवा एक बहुत बड़ा सम्बल है। सेवक ही सुखी हो सकता है। जिससे जितनी बन पड़े, सेवा-सुश्रूषा करना चाहिए। मानव-जीवन की सफलता का माप सेवा से ही हो सकता है। कहावत भी है कि जो सेवा करता है, वह मेवा पाता है।

□

सत्य और निष्पक्ष लेखन पत्रकारिता का पहला धर्म है और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता सम्पादक का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

जैन-जागरण पर एक विहंगम दृष्टि

सामाजिक क्रान्ति के सौ वर्ष

समय परिवर्तनशील है। समय के साथ-सथ समाज की रीति-नीतियों और संस्कारों में भी फेर-फार या बदलाव होते रहते हैं, यहाँ तक कि तत्कालीन स्थिति का स्वरूप बदलकर कुछ-का-कुछ हो गया है। प्रबुद्धजनों की सावधानी और सदाशयता से समाज की जीवनी-शक्ति और गतिशीलता बढ़ती है, किन्तु उनकी जरा-सी चूक दशाब्दियों के लिए सामाजिक परिताप का कारण बन सकती है। किसी भी समाज के उत्थान-पतन में प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका का बड़ा महत्व होता है।

नई सदी के स्वागत के इस दुर्लभ अवसर पर गत सौ वर्षो की गतिविधियों को पीछे मुड़कर देखना एक दिलचस्प अनुभूति होगी। सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्व. श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने उपयोगी सूत्र हमें दिया है–"हम देखें पीछे, हम जियें आज और हम बढ़े आगे। पीछे देखने का अर्थ है जीवन की साधना और आगे बढ़ने का अर्थ है–जीवन की सिद्धि का विश्वास। इन तीनों में से किसी एक की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।" इसी दृष्टि से यहाँ जैन समाज के अतीत की एक-छोटी-सी झाँकी प्रस्तुत की जा रही हैं।

इस देश की विशाल जनसंख्या को देखते हुए जैन जनसंख्या बहुत छोटी है, तथापि समग्र राष्ट्रीय चेतना के ही एक अभिन्न अंग होने तथा शिक्षा और संस्कृति की संरचना में उसके महत्वपूर्ण अवदान के नाते इस प्रकार का पुनरावलोकन अन्य समाजों को भी अपने अतीत का लेखा-जोखा रखने को प्रेरित अवश्य करेगा। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इसका महत्व होगा ही, यह प्रयास नई ऊर्जा का स्रोत भी सिद्ध हो सकता है। कहा भी है–**"कौमें जाग उठती हैं अक्सर इन्हीं अफसानों से।"**

आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व का जैन समाज एक निहायत ही पिछड़ा हुआ समाज था। उसमें सर्वत्र रूढ़िग्रस्तता, अशिक्षा और अंधविश्वास का बोलबाला था। उस समय जैन लोग लकीर के फकीर बने रहने में ही गौरव का अनुभव करते थे। पीढ़ियो से चलते आ रहे रीति-रिवाजों में किसी भी प्रकार का बदलाव उन्हे इष्ट नहीं था। नये विचारों को पचा पाने की शक्ति उस समय के समाज में नहीं थी। किसी भी नये प्रगतिशील कदम का विरोध करना शान की बात समझी जाती थी। स्थितिपालकों को लोग सम्मान की दृष्टि से देखते थे, जबकि सुधारकों को निन्दा, भर्त्सना और प्रताड़ना का सामना करना पड़ता था। ऐसी विषम स्थिति में भी धैर्य और साहस की मसाल हाथ में थामें हुए प्रबुद्धजनों ने सामाजिक क्रान्ति का जो अलख जगाया, उसे देखकर सुखद आश्चर्य होता है।

पुस्तक-प्रकाशन के क्षेत्र में बढ़े कदम : एक जमाना था, जब जैन ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में ही मिलते थे। उनका पढना तो दूर की बात थी, उनका दर्शन तक हर किसी को सुलभ नहीं था। बहुमूल्य रत्नों की तरह उनकी सुरक्षा की जाती थी तथा विशेष समारोहों पर दुर्लभ वस्तुओ की तरह उनका प्रदर्शन किया जाता था। पहले-पहल मुंशी अमनसिंहजी, सेठ हीराचन्द नेमीचन्दजी ने दो-एक छोटे-छोटे ग्रन्थ छपाये थे। उनको लेकर समाज में बड़ा हो-हल्ला हुआ। जगह-जगह छपाई का विरोध होने लगा। सहारनपुर में एक सभा हुई, जिसमें वहाँ के एक प्रमुख रईस लाला उग्रसेनजी ने घोषणा की कि सहारनपुर जिले का जिम्मा मै लेता हूँ कि यहाँ शास्त्र नहीं छपने पायेंगे। इसी तरह यदि दूसरे प्रतिष्ठित लोग अपने-अपने आस-पास का जिम्मा ले लें तो यह काम रुक जायेगा। सहारनपुर के ही एक विद्वान् बाबू सूरजभानजी वकील को यह बात बुरी लगी और उन्होंने चुनौती के स्वर मे यह कहा कि ग्रन्थ-प्रकाशन का यह काम अब सबसे पहले सहारनपुर में ही होगा। देखें, कौन रोकता है?

बाद में सूरजभानजी ने जैन ग्रन्थ छपाने और उनका प्रचार करने के लिये एक संस्था स्थापित की, चन्दा किया और

भगवान महावीर के जितने भी सिद्धान्त हैं, वे रटने-बोलने के लिए नहीं हैं, बल्कि जीवन में उतारने के लिये हैं। जब तक सिद्धान्त हमारे आचरण का अंग नहीं बनते, तब तक वे धर्म नहीं कहलाते।

छपाने का काम शुरू कर दिया। सबसे पहले रत्नकरण्ड श्रावकाचार प्रकाशित हुआ। आगे चलकर उन्होंने लाहौर से मोक्षमार्ग प्रकाश, आत्मानुशासन, हरिवंशपुराण आदि अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ भी प्रकाशित किए।

स्व. पं. पन्नालालजी बाकलीलाल एवं श्री नाथूरामजी 'प्रेमी' ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया और जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई के माध्यम से उसे आगे बढ़ाया। जैनधर्म के उत्तमोत्तम ग्रन्थ हजारों की संख्या में छापकर वितरित किए गए। ग्रन्थ छपने पर बड़ा तूफान उठा। जगह-जगह विरोध किया गया। छापने वाले ही नहीं, अनुमोदन करनेवाले भी जाति से बहिष्कृत किए गए। पर, ये विद्वज्जन हताश और निराश नहीं हुए। यह इनकी अद्भुत हिम्मत का ही सुपरिणाम था कि विरोध करनेवालों के वंशज भी आज इनके द्वारा की गई पुस्तक-क्रान्ति के फलस्वरूप आनन्द के साथ जैन ग्रन्थों का रसास्वादन कर कृतार्थ हो रहे हैं।

शैक्षिक क्रान्ति : आज से पचास-साठ साल पहले जैन समाज में सर्वत्र अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ था। जैन माता-पिता अपने बालकों को कामचलाऊ बहीखाता सिखाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते थे। शिक्षा का प्रसार साक्षरता की सीमा से आगे नहीं बढ़ पाया था। मिडिल पास होना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। धर्म-शिक्षण की ओर तो किसी का ध्यान ही नहीं था। तत्त्वार्थसूत्र को बाँच लेनेवाला भी पण्डित मान लिया जाता था।

यह वह जमाना था, जब जगह-जगह आर्य समाज की पाठशालायें और कॉलेज हलवाई की दुकानों की तरह तीव्र गति से खुलते जा रहे थे। देवबन्द और अलीगढ़ में मुसलमानों के राज्य-शिक्षा-प्रणाली के केन्द्र खुल गये थे तथा बड़े-बड़े शहरों में ईसाईयों के मिशन-स्कूलों का जाल बिछता जा रहा था। केवल जैन समाज ही इस वक्त अकर्मण्य-सा सबसे अलग-अलग खड़ा था।

श्रद्धेय पं. गोपालदासजी वरैया, क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी एवं महात्मा भगवानदीन ने इस दुर्दशा को देखा। अब्राह्मण होने के कारण उन्हें स्वयं शिक्षा-प्राप्ति में अपमान के कड़वे घूँट पीने पड़े थे। फलतः उनके हृदय में एक टीस-सी उठी और उन्होंने शिक्षा-प्रसार के लिए कमर कस ली। मोरैना, बनारस और हस्तिनापुर में जैन शिक्षा के जो केन्द्र उन्होंने खोले, उनसे शिक्षा-जगत में एक क्रान्ति घटित हो गयी। आज जो भी जैन पण्डित-परम्परा विद्यमान है, उसका श्रेय इसी त्रिमूर्ति को ही है।

प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला का कथन अक्षरशः सही है कि मोरैना और बनारस के इन विद्या-मन्दिरों ने जैन समाज की वही सेवा की है, जो श्री सैयद अहमद के अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने मुसलमानों की, पूज्य मालवीयजी के काशी विश्वविद्यालय ने वैदिकों की तथा महात्मा गाँधी के विद्यापीठों ने पूरे भारत की है। इन संस्थाओं के बीजारोपण, सिंचन और पल्लवन में जैसा संघर्ष हमारे विद्वज्जनों को करना पड़ा है, उसकी कहानी पढ़कर हमारा मस्तक स्वाभिमान और गर्व से उन्नत हो उठता है।

स्व. अयोध्याप्रसादजी गोयलीय ने ठीक ही लिखा है—"आज तो तत्त्वचर्चा घर-घर में फैली हुई है और ऐसी बन गयी है, मानो वह माँ के पेट के साथ आती हो, ये सब इन पण्डितों की ही मेहनत का फल है।"

वर्णीजी का उपकार तो इस दिशा में अप्रतिम है। आज सैकड़ों की संख्या में जो जैन स्कूल-कॉलेज समाज में चल रहे हैं, उन सब के पीछे पूज्य वर्णीजी की ही प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा रही है। यदि वर्णीजी न होते तो शायद जैनियों में शिक्षित व्यक्ति ढूँढ़े भी न मिलते।

उन दिनों कन्या को पुत्र की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जाता था। समाज की घोर उपेक्षा से उनका जीवन झाड़ू-पोंछा और चूल्हा-चक्की के घेरे में सिमट कर रह गया था। स्त्री-शिक्षा का भी चलन नहीं था। धोबी के कपड़े लिख लेने लायक योग्यता पर्याप्त समझी जाती थी। पण्डितारत्न ब्र. चन्दाबाई एवं महिलारत्न मगनबाई ने नारी शिक्षा के क्षेत्र में जो क्रान्ति की, वह अभूतपूर्व है। आज नारी समाज में जो नवजागरण दिखाई दे रहा है, उसका सम्पूर्ण श्रेय इन विदुषियों को ही है। इन दोनों बाल-विधवाओं ने अपने लिए जो मार्ग चुना, वह नारीमात्र के लिए अनुकरणीय और आदर्श बन गया है। इन्होंने

[illegible]

जैन बहिनों को सीता, अंजना और राजुल बनने का मार्ग दिखाया है।[1] वैधव्य के कलंक को वरदान में कैसे बदला जा सकता है, यह कोई इनसे सीखे।

रूढ़ियों पर चोट : दस्सा-पूजाधिकार और अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन कर एक नई सामाजिक चेतना को जन्म देने का श्रेय ब्र. शीतलप्रसादजी एवं पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार को है। अपनी पैनी तर्कणाओं एवं सशक्त लेखनी से इन्होंने विरोधियों के व्यंग्य-बाणों को कुण्ठित कर दिया। इनको जाति से हटाने, मन्दिर में न घुसने देने, सभी जैन संस्थाओं से निकाल देने तथा कहीं भाषण न करने देने की सफल-असफल धमकियाँ दी गई, किन्तु ये विचलित नहीं हुए। फलतः प्रचलित वैवाहिक रीतिरिवाजों एवं पूजा-पाठ के विधि-निषेधों की चूले हिल गई। दस्साओं को अपमानजनक स्थिति से उबारने में इन दोनों महाशयों के साथ बरैयाजी का भी योगदान है। पंचायती मरणभोज जैसी कुप्रथाओं का मूलोच्छेद होना भी तभी से शुरू हुआ। इन सुधारों से कुछ लोग आज भी असहमत है।

विदेशों में धर्म-प्रभावना : अठारहवीं सदी में विदेश-यात्रा को भारत में अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। यदि कोई परम्परा को तोड़कर चला भी जाता तो लौटने पर उसे बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ता। सबसे बड़ी मुसीबत तो जाति-बहिष्कार के रूप में सामने आती। इस रुकावट के पीछे आशंकायें थीं कि विलायत जानेवाले लोग वहा। के भोगप्रधान वातावरण से कहीं भ्रष्ट न हो जायें, अपने धर्म को ही न छोड़ बैठे या किसी मेम से विवाह कर वहीं न बस जाएँ। एक चरित्रप्रधान देश में इन सबको पचा पाना जरा मुश्किल ही था।

महर्षि विवेकानन्द और महात्मा गाँधी सरीखे महानुभावों के विदेश जाने पर जब लोगों ने देखा कि वे व्यसनों में नही फँसें, विदेश-यात्रा के प्रति लोगों की धारणा में बदलाव आया। लोग यह समझने लगे कि यदि मन पवित्र और संस्कार सुदृढ हों तो धार्मिक मर्यादा और चरित्र को सुरक्षित रखा जा सकता है। आज तो हजारों भारतीय न केवल विदेश यात्रा करते हैं, अपितु वहाँ स्थायी रूप से बस भी गए हैं।

जैन समाज में भी विदेश-यात्रा की पहल ब्र. शीतलप्रसादजी ने की। वह जैनधर्म के प्रसार और बौद्धधर्म के अध्ययन के लिए वर्मा तक गए। इंग्लैण्ड और अमेरिका जाने की उनकी साध फिर भी पूरी न हो सकी। बाबू चम्पतरायजी ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिनकी शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई और सन् 1897 में वहीं से बैरिस्टर बनकर लौटे। उसके बाद योरप में उकना विचरण प्रायः होता रहा। सन 1926 में वह नार्वे भी गये, जहाँ के बारे में कहा जाता है कि वर्ष के तीन-चार माह तक वहाँ सूर्यास्त नहीं होता। उनके सक्रिय जीवन का बहुभाग इंग्लैण्ड और अमेरिका में जैनधर्म का प्रचार करते हुए बीता, किन्तु विदेशी आबोहवा उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी।

आज तो बड़ी संख्या में जैन लोग विदेशों में रह रहे हैं और आमन्त्रण पर जैन भट्टारक और विद्वान धर्म-प्रचार के लिए वहाँ जाते रहते हैं। विदेशों में अनेक नगरों में जैन मन्दिरों की भी स्थापना हो चुकी है। पंचकल्याण सरीखे उत्सव भी वहाँ हुए हैं। इस सदी में जैनों में विदेश-यात्रा के प्रति बढ़ती ललक रूढ़ियों से मुक्त होने की दिशा में उठा हुआ एक कदम ही तो है।

आध्यात्मिक जागरण : 'समयसार' महाग्रन्थ के स्वाध्याय से प्रेरणा पाकर पं. कानजी भाई ने जैन समाज में जो आध्यात्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी है, उसकी कोई दूसरी मिसाल नहीं है। चारों ओर से तनी हुई तीक्ष्ण असिधारों के बीच भी, वह जिस गति से आगे बढ़े हैं, उनके इस साहस की दाद तो देनी ही चाहिए। अच्छे और सस्ते धार्मिक साहित्य का प्रचुर परिमाण में प्रकाशन, तत्त्व के प्रति पाठकों के हृदय में रुचि एवं जिज्ञासा का नवजागरण, शिक्षण-शिविरों की देशव्यापी लहर आदि कानजी भाई की ही देन है। अपने सम्प्रदाय को छोड़कर नए पंथ को स्वीकार करना, फिर उसमें भी अपना वर्चस्व स्थापित कर लेना हर किसी के बूते की बात नहीं थी। कानजी भाई का व्यक्तित्व इस दृष्टि से कम क्रान्तिकारी नहीं है। उनसे मतभेद रखते हुए भी उनके प्रबल पुरुषार्थ की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भीगा हुआ होना चाहिए।

सामाजिक क्रान्ति में प्रबुद्ध वर्ग के योगदान की ये तस्वीरें हैं। ये हमें बताती हैं कि यह वर्ग समाज की कितनी बड़ी शक्ति है और उसका क्या दायित्व है। वह चाहे तो समाज का नक्शा बदल सकता है। आशा है, प्रबुद्धजन अपने तप-त्याग और बलिदान से हर तरह का जोखम उठाकर जिन्दादिली और दृढ़ता के साथ समाज का निरन्तर मार्गदर्शन करते रहेंगे।

अन्त में आज से सौ वर्ष पूर्व कही गयी ब्र. शीतलप्रसादजी की निम्न पंक्तियों के साथ हम यह आलेख समाप्त करते हैं–

"ऐ प्रबुद्धजनों, यह जैन समाज आपके ही अधीन है। इसकी रक्षा के लिए प्रकाश फैलाइये, स्रोतों को जगाइये और तन-मन-धन से परोपकार और शुद्धाचार लाने की कोशिश कीजिए, जिससे आप लोग और परलोक दोनों सुधरें।"

□

जैन इतिहास उपलब्धियाँ एवं सम्भावनायें

दुर्भाग्य से भारत में इतिहास-लेखन पर बहुत कम ध्यान दिया गया। जब मुस्लिम शासकों ने भारत में अपने पैर जमा लिए, तब उनके मुल्ला-मौलवियों ने उनकी राजनीतिक तवारीखें लिखना शुरू किया। इनका मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का गुणगान कर उन्हें प्रसन्न रखना था। अपने मालिकों की मर्जी के अनुसार वे तथ्यों को छिपा या दबा जाते थे। सम्प्रदायगत पूर्वाग्रह और पक्षपात के कारण भी इन्होंने प्रायः सत्य का अपलाप किया है। बाद में अंग्रेजों ने जो इतिहास लिखे, उनका आधार भी ये तवारीखें ही रहीं। उन्होंने प्रचलित जनश्रुतियों, चारणों एवं भाटों की कृतियों, ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य, नाटक, रासो-साहित्य आदि को या तो छुआ ही नहीं या महत्व नहीं दिया। जो पुरातत्वीय सामग्री उपलब्ध थी, उसका भी उपयोग नहीं हो सका। फलतः इतिहास के नाम पर जो कुछ सामने आया, वह एकांगी, पक्षपात व अतिशयोक्तिपूर्ण बनकर रह गया।

जब भारतीय इतिहास की यह स्थिति है, तब जैन संस्कृति के इतिहास की दशा तो और भी दयनीय रही है। प्रथम जैनियों का एतद् विषयक साहित्य ही पूरा-पूरा प्रकाश में नहीं आया, दूसरी ओर ऐतिहासिक शोध करनेवालों को समाज से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इसके विपरीत जिन्होंने साहस संजोकर इस दिशा में अपने कदम बढ़ाये भी, उनको समाज की निन्दा का पात्र बनना पड़ा। अतः इस क्षेत्र में काम करनेवालों की संख्या अत्यल्प रही, किन्तु प्रसन्नता है कि पिछली आधी सदी में जैन इतिहास को अन्धकार की इस गुफा से निकालने के लिए कुछ जोरदार प्रयत्न हुए हैं।

गत पाँच दशकों में बहुत-सा अलभ्य साहित्य प्रकाश में आया है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, आयागपट्टों आदि में निहित आलेखों का उद्घाटन हुआ है। जैन साहित्य के साथ इतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति को भी इधर बढ़ावा मिला है। यह अपनी जगह बिलकुल सच है कि जैन संस्कृति के बारे में केवल जैन साहित्य के आधार से जो कहा जाएगा, जैनेतर लोग स्वीकार नहीं करेंगे। उसके लिए अपने मत के समर्थन में जैनेतर ग्रन्थों से भी उद्धरण जुटाना आवश्यक है, जो बिना सर्वांगीण एवं विस्तृत अध्ययन के सम्भव नहीं है। पिछली अर्द्ध शताब्दी में सर्वश्री स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी, स्व. डा. हीरालाल जैन, स्व. पं. परमानन्दजी आदि का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है। श्रद्धेय पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने भी जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका तथा प्रथम-द्वितीय भाग) लिखकर स्वसंस्कृति के पूर्व गौरव पर पड़ी विस्मृति की परतों को उघाड़ने का स्तुत्य प्रयास किया है। डा. ज्योतिप्रसाद जैन की सेवायें भी महत्त्वपूर्ण रही हैं। वर्तमान में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं पुरातत्व सम्बन्धी जैन इतिहास के क्रमबद्ध अनुशीलन एवं शोध का कार्य चल रहा है। भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली और महावीर अकादमी जयपुर द्वारा इस दिशा में प्रचुर और सुनियोजित कार्य हो रहा है।

[illegible]

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को हम ऐतिहासिक जागरण का काल कह सकते हैं। अब से कुछ पहले तक भारतीय इतिहास में जैनधर्म और संस्कृति के सन्दर्भ में अनेक भ्रान्तिपूर्ण विवरण पाये जाते थे। इस जागरणकाल में उनमें से कुछ का निरसन हुआ है और अनेक की चूलें हिल गई हैं। आधुनिक इतिहासकार अपनी उन (भ्रान्त) मान्यताओं के बारे में नए सिरे से सोचने के लिए विवश हुए हैं। इस दिशा में जैन और जैनेतर सभी विद्वानों के द्वारा गम्भीर अन्वेषण किए गए हैं। जैन इतिहास की कुछ सन्तोषजनक उपलब्धियों के निम्न उदाहरण हैं–

1. हमारे प्रारम्भिक प्राच्यविद् जैनधर्म को बौद्धधर्म की एक शाखा के रूप में निरूपित करते रहे हैं। चीनी पर्यटक युवान च्वांग ने अपने यात्रावृत्त से इस भ्रम को खूब फैलाया। प्रो. हॉरैस विल्सन, हण्टर बेबर आदि विदेशी इतिहासकारों ने इस मत का समर्थन ही नहीं किया, बल्कि सातवीं सदी से पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व को ही नकार दिया। जब सम्राट अशोक के शिलालेख पढ़ लिए गए और बौद्ध ग्रन्थों से यह सिद्ध हो गया कि उनमें चर्चित निगंठनातपुत्र ही भगवान महावीर थे तो इस धारणा को छोड़ने के लिए इतिहासकार बाध्य हुए। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. हर्मन जैकोबी, मैक्समूलर तथा डॉ. गैरीनाट ने अपनी खोजों से अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र धर्म है और उसका अभ्युदय बौद्धों से बहुत पहले हुआ है। डॉ. राधाकृष्णन् ने भी स्पष्ट लिखा है कि जैन धर्म की एक स्वतन्त्र सत्ता है और उसके इतिहास की जड़ें वेदों तक फैली हुई हैं। अब इस विषय में शायद ही किसी को कोई सन्देह हो।

2. बहुत समय तक भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक माना जाता रहा, लेकिन तेईसवें और बाईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और नेमिनाथ की ऐतिहासिकता अब स्वीकार कर ली गई है तथा यह भी मान लिया गया है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ही इस परम्परा के प्रथम पुरस्कर्ता थे। योगवासिष्ठ, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, शाक्टायन व्याकरण आदि ग्रन्थों में जिन, जैनधर्म, श्रमण आदि नामों का उल्लेख मिलता है। श्रमणा दिगम्बराः, श्रमणा वातरशनाः, व्रात्य, आर्हत् आदि सूक्तों और शब्दों का प्रयोग जैन सन्तों के अर्थ में ही हुआ है। पुरातत्व की खोजों और उत्खनन के परिणामस्वरूप भी नये तथ्यों और मूल्यों पर प्रकाश पड़ा है। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा में कुछ ऐसी मुहरें मिली हैं, जिनमें कायोत्सर्ग और योग मुद्रा में योगी-मूर्तियाँ अंकित हैं। योगी का यह परिवेश जैन पुराणों में वर्णित सन्तो के विवरण से मिलता है। अतः इन सभी गवेषणाओं से जैनधर्म की प्राचीनता अब स्वतः सिद्ध हो चुकी है।

3. हमारा देश 'भारतवर्ष' के नाम से जाना जाता है। सभी विद्वान् मानते हैं कि यह नाम भरत के नाम पर पड़ा है। इस भारत-भूमि में तीन भरत हुए हैं–1. दशरथ-पुत्र भरत 2. दुष्यन्त-पुत्र भरत एवं 3. ऋषभ-पुत्र भरत। इनमें से किस भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ, यह विचारणीय है। कुछ विद्वानों की धारणा थी कि यह नाम राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा है और काफी अर्से तक जनमानस द्वारा यही बात स्वीकार की जाती रही, किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि वैदिक धारा के ग्रन्थों में भी प्रजापति ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत को ही इस देश के नाम भारतवर्ष का मूलाधार माना गया है। ऋषभ-पुत्र भरत से पहले इस देश का नाम 'अजनाभवर्ष' या 'नाभि-खण्ड' था, जो अन्तिम कुलकर नाभिराय के नाम पर रखा गया था। बाद में उनके प्रपौत्र भरत के नाम पर यह देश भरतवर्ष कहलाया। डॉ. प्रेमसागर जैन ने अपनी पुस्तक **'भरत और भारत'** में स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, मार्कण्डेय पुराण, शिव पुराण आदि अनेक हिन्दू धर्म-ग्रन्थों से इस समर्थन में पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए हैं तथा श्रीयुत राहुल.सांकृत्यायन, वासुदेवशरण प्रभृति विद्वानों ने भी इस मत का अनुमोदन कर इस विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति के लिए अवकाश नहीं रहने दिया है।

4. बहुत लम्बे समय तक जैन साहित्य को साम्प्रदायिक कहकर उसकी घोर उपेक्षा की गई और हिन्दी के साहित्यिक मानचित्र में उसे कोई स्थान नहीं दिया गया। चाहे वह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहे हों या श्री शिवसिंह सेंगर, गियर्सन रहे हों या मिश्रबन्धु, किसी ने भी जैन कवियों की कृति को महत्व नहीं दिया। सर्वप्रथम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अपने ग्रन्थ **'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास'** में यह स्वीकार किया कि हिन्दी अपभ्रंश

क्षमाशील सुख की नींद सोता है, जब कि असहिष्णु एवं क्रोधी व्यक्ति की रातें करवटें बदलते हुए बीतती हैं।

की उपज है। उसका विकास और विस्तार अपभ्रंश से ही हुआ है और अपभ्रंश भाषा का अधिकांश साहित्य जैन कवियों की देन है। महाकवि स्वयंभू के **'पउमचरिउ'**, कवि धनपाल कृत **'भविसयत्तकहा'** तथा जोइन्दु कवि के **'परमात्मप्रकाश'** की प्रशंसा करते हुए उन्हें उच्चकोटि की रचना कहा गया है तथा हिन्दी के आदिकाल में जैन कवियों के वर्चस्व को भी खुले हृदय से स्वीकार किया गया है। हिन्दी के वर्तमान साहित्यिक इतिहास में कविवर बनारसीदास जैन के **'अर्धकथानक'** को हिन्दी का प्रथम आत्मचरित मान लिया गया है। इन स्थापनाओं को जैन इतिहास की उपलब्धि के रूप में स्वीकार करने में किसी को कोई झिझक नहीं होनी चाहिए, भले ही, जैन साहित्य की विपुलता और श्रेष्ठता को देखते हुए अभी वह नगण्य ही क्यों न हो।

5. इतिहासकारों की दृष्टि जब से जैन साहित्य, शिल्प और पुरातत्व की ओर आकर्षित हुई है, तबसे अपनी कुछ पूर्वबद्ध मान्यताओं में उन्होंने परिवर्तन किया है। उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने जैन कवि श्रीधर के **'पार्श्वनाथ चरित'** के दिल्ली-वर्णन के आधार पर कुतुबमीनार को किसी मुसलमान बादशाह द्वारा निर्मित न मानकर तोमरकालीन कीर्तिस्तम्भ सिद्ध किया है। श्रीधर ने **'गयणमण्डला लग्गु साल'** (एक बहुत ऊँची मीनार) के रूप में तोमर-शासकों के काल में उसके होने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार **'ग्वालियर के तोमर'** नामक अपने ग्रन्थ में उन्होंने यशोधरचरित, सम्यक्त्वकौमुदी, षट्कर्मोपदेश आदि जैन ग्रन्थों के प्रकाश में अनेक नई निष्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। जेम्स फर्गुसन ने अजमेर की **'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा'** नामक मस्जिद को पुरातत्व और शिल्प की अपेक्षा जैन मन्दिर के रूप में प्रमाणित किया है।

जैन इतिहास की उपलब्धियों का क्रमिक, वैज्ञानिक और सुसंगत परिशीलन तो कोई इतिहासविद् ही प्रस्तुत कर सकते हैं। मै तो जैन इतिहास का एक सामान्य पाठक मात्र हूँ और उस नाते ही जिन बातों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्हें मै अपनी दृष्टि से कम महत्व का नहीं मानता। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इस क्षेत्र में निरन्तर अपनी गति बनाए रखने की महती आवश्यकता है।

जैन इतिहास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अभी इस दिशा में कार्य करने को बहुत कुछ बाकी है। भावी सम्भावनाओं के आकलन का शुभारम्भ अब होने लगा है, यह एक शुभ संकेत है। अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैं कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रहा हूँ–

1. आचार्य जिनसेन ने इतिहास, इतिवृत्त और ऐतिह्य का पर्यायवाची माना है। इतिहास शब्द की व्युत्पति 'इति इह आसीत्' (यहाँ ऐसा हुआ) प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने महापुराण को इतिहास कहा है। आचार्य रविषेण भी पुराणों को इतिहास मानते हैं। हिन्दू परम्परा के ग्रन्थों में तो 'इतिहास-पुराण' इस संयुक्त पद का प्रयोग मिलता है। कौटिल्य के अनुसार पुराण, आख्यायिका, धर्मशास्त्र ये सब इतिहास के अंग हैं। अतः हमारा निवेदन है कि जैन विद्वानों को पौराणिक साहित्य को आधुनिक भाषा और शिल्प में प्रस्तुत करने की चुनौती पूरे जीवट के साथ स्वीकार करनी चाहिए। पुराणों में जो भी अतिरंजित या कल्पित है, उसे बुद्धिगम्य बनाकर पाठकों के सामने परोसा जाना चाहिए। श्री वीरेन्द्र जैन के **मुक्तिदूत** और **अनुत्तर योगी**, आनन्दप्रकाश जैन के **'तन से लिपटी बले'** आदि उपन्यासों का आधार इतिहास ही है और वह इसी तरह का एक सुष्ठु प्रयास है। श्री माईदयाल जैन की **'हरिवंश कथा'** की तरह सभी प्रमुख पुराणों का सुसम्बद्ध सार-संक्षेप सामने आए तो यह भी एक ऐतिहासिक कार्य होगा। जैन पुराणों के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व व कृतित्व पर शोधपरक पुस्तकें लिखने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। बालोपयोगी ऐतिहासिक पुस्तिकाओं की कमी तो निश्चय ही खटकने वाली बात है।

2. जैन समाज के समय-समय पर अनेक आन्दोलन चलते रहते हैं। ग्रन्थों के प्रकाशन, तेरापन्थ-बीसपन्थ, हरिजन-मन्दिर-प्रवेश, विधवा, अन्तर्जातीय और विजातीय विवाह, जिनाभिषेक, स्त्रीप्रक्षाल, सोनगढ़ की निश्चयप्रधान विचारधारा, मुनियों का शिथिलाचार आदि विषय इन आन्दोलनों के आधार रहे हैं। स्थितिपालक और सुधारकों के टकराव

[illegible]

से बड़ी रोचक स्थितियाँ उत्पन्न होती रही हैं। तटस्थ दृष्टि से इनका इतिहास लिखा जा सके तो उससे भावी पीढ़ियाँ अवश्य लाभान्वित होंगी। **'जैन जागरण के अग्रदूत'** पुस्तक इस दिशा में एक अच्छा प्रयास था, किन्तु उसके बाद इस क्रम में कोई नई पुस्तक देखने में नहीं आई।

3. जैन आचार्य–परम्परा पर तो डॉ. नेमीचन्द जैन, पं. परमानन्द जैन, पं. बलभद्र जैन आदि की कुछ रचनाएँ सामने आई हैं, किन्तु पौराणिक राजवंशों (इक्ष्वाकु, सोम, कुरु, रघु, नाथ, भोज, हरिवंश आदि) पर वर्गीकृत शोध के लिए अभी बहुत सम्भावनाएँ हैं। आशा है, इधर भी विद्वानों का ध्यान जायेगा।

4. कल्पना के पंखों पर बैठकर तथ्यों को बिना कोई क्षति पहुँचाये जैन पुरातत्त्व और इतिहास को श्री नीरज जैन ने **'गोमटेश-गाथा'** के रूप में बड़े सरस और औपन्यासिक ढंग से निबद्ध किया है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है और आगे भी इसका अनुकरण जारी रहना चाहिए।

ये कुछ परिकल्पनाएँ मेरे मन-मस्तिष्क में हैं। इतिहास के शोधार्थी और पारखी इन्हे रचनात्मक रूप देंगे, ऐसी आशा है। अन्त में, मै डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के इन शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ कि जैन इतिहास पर किया जानेवाला श्रम जैनों की दृष्टि से ही परमावश्यक नहीं है, अपितु भारतीय एवं विश्व इतिहास की दृष्टि से भी परम उपादेय है।

☐

युवा शक्ति का आह्वान

जीवन की चार अवस्थायें हैं · 1. शैशव, 2. बचपन, 3. जवानी और 4. बुढ़ापा। शिशु अबोध और अनजान होता है। वह जानता ही नहीं कि उसे क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना है? बुढ़ापे में काया और इन्द्रियॉं शिथिल हो जाती है। अपने कर्तव्य को जानते हुए भी वृद्ध मनुष्य शक्ति की कमी से अपने को असहाय-सा अनुभव करता है। वह केवल सलाह दे सकता है। बचपन में खेलने-खाने का शौक होता है। बुद्धि अपरिपक्व होती है। कोई भी बच्चा अथ से इति तक अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा सकता। अब बच रही जवानी। यह उठती हुई देह और बढ़ती हुई शक्ति का समय होता है। एक जवान जब अपने मन में कुछ करने की ठान लेता है तो हजार-हजार अड़चनें भी उसका हौंसला पस्त नहीं कर सकतीं। इसीलिए तो युवावस्था को जीवन का स्वर्णकाल कहा जाता है। किसी भी जाति, समाज या देश के हित युवकों के हाथों में ही सुरक्षित रह सकते हैं।

युवक ही चेतन राष्ट्र हैं। समाज और धर्म की बागडोर भी उनके हाथों में ही सुरक्षित है। मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त ने जो सोलह दुःस्वप्न देखे थे, उनमें एक स्वप्न यह भी था कि बछड़े रथ को खींच रहे हैं। निमित्तज्ञानी आचार्य श्री भद्रबाहु ने इसका फल बताते हुए कहा था कि इस (पंचम) काल में युवावस्था में ही धर्म और संयम के रथ को खींचने की शक्ति पाई जायेगी। वृद्धावस्था में वह शक्ति क्षीण हो जायेगी। अपनी निर्दोष मुनि-चर्या के लिए विश्रुत आचार्य विद्यासागरजी के संघ में युवा साधुओं और बाल ब्रह्मचारिणियों के अनुशासित दल को देखकर यह भविष्यवाणी सत्य प्रतीत होती है। एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी के प्रशस्त संरक्षण में संचालित लोक-जागरण के सभी अभियानों में युवावर्ग ही अग्रणी है। उपाध्याय श्री भरतसागरजी, आचार्य श्री विरागसागरजी, मुनिश्री वर्धमानसागरजी, पुष्पदन्तसागरजी एवं उनके शिष्यवृन्द आदि हमारे धर्म-रथ को कितना आगे बढ़ा रहे हैं, यह कोई कहने-सुनने की नहीं, प्रत्यक्ष देखने/अनुभव करने की चीज है। उनका व्यक्तित्व इक्कीसवीं सदी के द्वार पर दस्तक दे रहे इस सुविधाभोगी युग में किसी चमत्कार से कम नहीं है।

बड़ों से मिली सीखें बड़े काम की होती हैं। उन पर अमल करना चाहिए।

जवानी का जोश उस भाप की तरह होता है, जिसकी शक्ति को जेम्सवाट नामक वैज्ञानिक ने आँका और पहचाना था। खुद-बुद करती भाप से पानी की पतीली को ऊपर-नीचे उठते-गिरते हुए देखकर उसके मन मे यह विचार आया था कि यदि किसी तरह इस भाप को नियन्त्रित किया जा सके तो उससे हजारों आदमियों और ढेर सारे सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया और ढोया जा सकता है। इसी सूझ और अन्वेषण का परिणाम है आज का रेल इंजन। युवको में भी भाप (शक्ति) बहुत है, किन्तु उचित नियन्त्रण के अभाव में वह बेकार जा रही है। समीचीन मार्गदर्शन देकर इस अद्‌भुत एवं विराट् युवा-शक्ति का समायोजन धर्म और समाज के अभ्युदय के लिए किए जाने के प्रयास किसी उज्जवल भविष्य का ही संकेत देते हैं।

हमारे बुजुर्गो का जब किसी युवक को डाँटने या उलाहना देने का मन होता है तो वे यही कहते हैं–"जब हम तुम्हारी उमर के थे, तब यों चुटकियों में काम कर देते थे और एक तुम हो जो...।" इससे स्पष्ट है कि जवानी की ताकत का कोई मुकाबला नहीं है। आवश्यकता है कि आज का युवक अपनी ताकत को पहचाने। वह जवानी का जोश ही तो है, जो डंके की चोट पर यह ऐलान करता है कि–

'हम वो हैं मर्द कि मैदान न छोड़ेंगे कभी।
मुँह से जो कह चुके, मुँह उससे न मोड़ेंगे कभी॥
तीर से, तेग से, खंजर से कहीं डरते हैं?
कस्द जिस बात का कर लेते हैं, वोह करते हैं॥'

हर अच्छे कार्य का प्रारम्भ युवावस्था में ही करना चाहिए। चाहे वह लोक-कल्याण का प्रसंग हो अथवा धर्म-पालन का अवसर, युवकों के लिए चुनौतियाँ स्वीकार करना जितना आसान है, उतना बच्चों और बूढों के लिए नहीं। पैसा कमाने, महल-मकान बनवाने या भोग-सामग्री जुटाने में जितनी ताकत खर्च होती है, क्या व्रत-नियमों के अनुपालन में भी उतनी ही अपेक्षित नहीं है? धर्म की साधना भी जवानी में जितनी अच्छी की जा सकती है, उतनी और वैसी बुढ़ापे में हर्गिज नहीं। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है–

'यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्थ, यावच्चेन्द्रियसम्पदः।
तावद्युक्तं तपः कर्म, वार्धक्ये केवल श्रमः॥

अर्थात्–जब तक शरीर स्वस्थ है और इन्द्रियाँ अपना कार्य करने में समर्थ हैं, तब तक ही आत्मकल्याण के लिए कुछ कर लेना चाहिए। बुढ़ापे का श्रम अधिक फलदायी नहीं होता। वह तो एक दार्शनिक के शब्दों में इसी प्रकार है कि जैसे कोई व्यक्ति बहुत समय तक बन्दूक से गोलियाँ दागता रहे और उनके (गोलियों के) समाप्त हो जाने पर कहे कि अब मैं सबको क्षमा करता हूँ। इन्द्रियों के शिथिल ओर शक्तिहीन हो जाने पर धर्म-कर्म भी सध नहीं सकता।

शक्ति के ह्रास का नाम बुढ़ापा और शक्ति के विकास का नाम जवानी है। जिस बुढ़ापे में व्यक्ति से अपना शरीर ही नहीं सँभलता, चलते और उठते-बैठते समय किसी के कंधों, लाठी या दीवाल का सहारा लेना पड़ता है, उस असहाय बुढ़ापे में धर्म की सँभाल कैसे हो सकती है? दन्त-विहीन पोपले मुँह से शुद्ध पाठ नहीं हो सकता, दृष्टि-मन्दता आगम-ग्रन्थों के स्वाध्याय में बाधक बन जाती है, झुकी कमर, काँपते हाथों और लड़खड़ाते पाँवों से आवश्यक षट्कर्मों का निर्वाह नहीं हो पाता तथा कानों से कम सुनाई पड़ने के कारण धर्म-श्रवण से भी वंचित रह जाना पड़ता है, इसलिए हमारे आचार्यो ने **'युवैव धर्मशीलः स्यात्'** का उपदेश दिया है।

घर में आग लगने पर कुआँ खुदवाना और बुढ़ापे में धर्म के मार्ग को अंगीकार करने लाभदायक नहीं है। धर्म का पालन तो शरीर में शक्ति रहते ही शुरू कर देना चाहिए। जिस प्रकार युवावस्था की कमाई को मनुष्य वृद्धावस्था में आराम से

[illegible]

भोगता है, उसी प्रकार युवावस्था की धर्म-साधना का उपयोग भी वृद्धावस्था में किया जाता है।

एक बार की बात है कि आचार्य श्री विद्यासागरजी वेदना से छटपटाते हुए किसी रुग्ण युवा भाई को णमोकार मन्त्र सुना रहे थे। वहीं पास में खड़े एक व्यक्ति के मुख से निकला कि यह कोई मर थोड़े ही रहा है, जो आप इसे णमोकार मन्त्र सुना रहे हैं। उसकी बात सुनकर महाराज को हँसी आ गई। उन्होंने कहा कि संसार के रागी प्राणी धर्म-कर्म की बात भी तब सुनना चाहते हैं, जब सुनने-समझने की शक्ति ही नहीं रह जाती। काल-देवता तो महाबली हैं, वह किसको लील लेगा, इसका कुछ पता नहीं, इसलिए सदा-सर्वदा शक्ति का उपयोग बहुत आवश्यक है। महाश्रमण वर्धमान ने कहा भी है '*समयं गोयम मा पमायए*'—हे गौतम! क्षणमात्र के लिए भी प्रमाद मत कर। युवावस्था उत्साह और उमंग से भरे उन क्षणों का नाम है, जिनमें कार्य करने की अपूर्व क्षमता सन्निहित है। जिस समाज के नवयुवक धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, न्यायप्रिय, क्रियाशील और ईमानदार होते हैं, वही समाज गौरव के साथ अपना माथा ऊँचा करके दुनिया में रह सकता है। हमारे देश का इतिहास साक्षी है कि समाज एवं धर्म के उद्धार और विकास में युवा-शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भगवान महावीर ने भरी जवानी में ही जीवमात्र के कल्याण की कामना से योग धारण किया था। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने अपनी युवावस्था में ही धर्मात्मा जनक और कनक को शत्रु-राजा के बन्धनों से छुड़या था, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अनन्य भक्त बज्रकरण पर हुए आक्रमण एवं ध्यानमग्न मुनिराज श्री देशभूषण और कुलभूषण पर हुए उपसर्ग का निवारण किया था तथा वनवास के लोमहर्षक संघर्षो का जिन्दादिली के साथ सामना किया था। वीर अकलंक का धर्म-पुरुषार्थ तो सर्व-विदित ही है। स्व. श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय की ये पंक्तियाँ एक आदर्श के रूप में नवयुवकों के सामने रहनी चाहिए—

"जिससे तस्वीर की शोभा बढ़े वो रंग बनो।
बदल में गैरत है अगर 'दास' तो अकलंक बनो।"

आज पुरानी पीढ़ी से हमारी अपेक्षा है कि वह नई पीढ़ी को सामाजिक जिम्मेदारियाँ सौंपे तथा स्वयं उनका मार्गदर्शन करें। दोनों पीढ़ियों के पारस्परिक सम्बन्ध श्रद्धा और स्नेह की भाव-भूमियों पर निर्मित होने चाहिए। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने युवकों को सलाह देते हुए लिखा है—"जो अपने से उम्र में बड़े हैं, वे पर, प्रतिष्ठा, धन और बुद्धि में भले ही तुमसे छोटे हों, उनके सामने हमेशा अपना सिर नीचा और बोल मीठा रखना, उनके साथ कभी अशिष्टता और उद्धतता का व्यवहार मत करना। जिस घर में बुजुर्गो का अपमान होता है, वहाँ सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं।" वृद्धजनों से वह कहते हैं—"जो अपने से उम्र में छोटे हों, अपना हाथ उनके कन्धों पर रखना, यथाशक्ति उन्हें सहारा और ममता देना।" दोनों पीढ़ियो की विवेकपूर्ण समझदारी से ही आगे बढ़ने का रास्ता निष्कंटक हो सकता है। वृद्धों की युक्ति और युवकों की शक्ति के समन्वय में ही समस्याओं से मुक्ति सम्भव है। एक पीढ़ी के पास होश है तो दूसरी के पास जोश। होश और जोश के संगम को ही शास्त्रीय भाषा में व्यावहारिक भेद विज्ञान कहा जाता है और यही है निःश्रेयस और सफलता की प्राप्ति का अचूक उपाय। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी को अपना-अपना सोच बदलना होगा। एक पीढ़ी क्रियाकाण्ड-प्रिय है तो दूसरी पीढी तर्कप्रखर है। आज का युवक तर्क और विज्ञानसम्मत आधार पर ही अपनी कोई मान्यता बनाता है। उस पर विचार थोपने की कोशिश की जाती है तो वह बगावत करने लगता है। प्यार से उससे कितना ही काम ले लो, आदेश मानने को तैयार नहीं होता। आखिर तो वीर बाहुबली का रक्त उसकी रगों में बह रहा है।

जैनधर्म को 'वीतराग विज्ञान' कहकर सम्बोधित किया गया है। तर्क की करौटी पर उसका हर सिद्धान्त खरा उतरता है। आज के हमारे युवा साथी को चाहिए—पुस्तकों और प्रवचनों में एक नया भाषा-शिल्प, नया युग-बोध, घटना-प्रधान दैनिक जीवन को प्रभावित करनेवाले दृष्टान्त और मनोवैज्ञानिक शैली। जहाँ यह सब हैं, वहाँ उनका मन खूब लगता है और कभी-कभी व्रत-नियमों और मूलगुणों का स्वेच्छा से वरण करने में वे वृद्धजनों को भी काफी पीछे छोड़ देते हैं। हाल ही में कुछ स्थानों पर सम्पन्न कुछ साधु-दीक्षायें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सभी पंथों, ग्रंथों और सन्तों का उद्देश्य एक ही है—मन की शान्ति प्राप्त करना। भगवान महावीर की दृष्टि में यही वास्तविक धर्म है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है।

हमारे स्व. युवा प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने भारत को इक्कीसवीं सदी में ले जाने का लुभावना नारा देकर जनता में एक नया विश्वास पैदा किया था। जैन समाज को भी समग्र भारतीय समाज के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलना होगा। इस नई विकास-यात्रा में युवाशक्ति की भूमिका क्या है और कैसी हो, अब इसके निर्धारण का समय आ गया है। हमारे आचार्यों ने युवाशक्ति को संगठित और एकजुट होने की जो प्रेरणा दी है वह उनकी दूरदर्शिता का ही सुफल है। हमारी सभी अखिल भारतीय संस्थाओं को सक्रिय होकर युवा जागरण के इस पवित्र अभियान में सहभागी बनना चाहिए। आशा है कि उनके कदम आगे बढ़ेंगे और वे एक सशक्त युवा-मंच बनाने में सफल होंगे। 'सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्'

□

नगर के गौरव दादा जी : पत्रों के आइने में

साहित्य, समाज, संस्कृति, राष्ट्रभाषा और देश की सेवा करने वालों में स्व. पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी (दादाजी) का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के संस्मरणकार एव सुलेखक होने के साथ ही वे एक श्रेष्ठ पत्र-लेखक भी थे। सात दशकों की अपनी अविराम साहित्यिक यात्रा में उन्होंने हजारों ही पत्र लिखे होंगे। पत्र-लेखन को वे एक व्यसन या नशा मानते थे। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने दीनबन्धु एण्डूज के बारे में एक बार कहा था–'एज ए लेटर राइटर यू आर इन्कम्पेयरेबल' अर्थात–पत्रलेखक के रूप में आप बेजोड़ हैं। श्रद्धेय दादा जी के बारे में भी यह बात उतनी ही सही है।

यद्यपि दादा जी दूसरों को पत्र लिखने की बीमारी से बचने की सलाह दिया करते थे, किन्तु अपने बारे में उनका कहना था कि चैत-क्वार में जैसे मलेरिया फैलता है, उसी प्रकार जीवन की एक विशेष अवस्था में पत्र-व्यवहार का यह खसरा निकले बिना नहीं रहता। इसे वह एकाकीपन के रोग की एक औषधि मानते थे। उनकी लिखावट सुन्दर और सुवाच्य होती थी। वे पत्र लिखते समय नीली और लाल दोनों स्याहियों तथा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया करते थे। देश और दुनिया के बड़े-बड़े लेखकों के साथ तो उनका यह पत्र-व्यवहार चलता ही था, किन्तु उनके बड़प्पन की बात यह थी कि साधारण लोगों को भी वह उतनी ही आत्मीयता के साथ पत्र लिखा करते थे।

जिनसे एक बार उनका अन्तरंग परिचय हो जाता था, समय-समय पर उन्हें पत्र लिखने में वे कभी कृपणता नहीं करते थे। नगर के साहित्यप्रेमियों में उनकी इस कृपा से कृतार्थ होने वालों में सर्वश्री डा. मथुराप्रसाद भानव, बालकृष्ण गुप्त, डा. एम. सी. चतुर्वेदी (बिल्लूजी) एवं ब्रजकिशोर जैन के नाम उल्लेख्य हैं। दिवंगतों में सर्वश्री उमेश जोशी, प्राणेशजी, रतनलाल बंसल, जगदीश मृदुल, जगन्नाथ वेटरी, गंगाप्रसाद नाजुक आदि के नाम मुख्य हैं। उनके सहज स्नेह और वात्सल्य की रस शीतल धारा में अवगाहन करने का सौभाग्य हमें भी मिलता रहा है। सन् 1964 से 1977 के मध्य उनके द्वारा हमें लिखे गए 50-55 पत्र हमारी फाइल में आज भी सुरक्षित हैं और हमारे लिए उनका महत्त्व किसी अमूल्य निधि से कम नहीं है।

उनके पत्रों में अनेक उपयोगी सुझाव होते थे। उनमें से कुछ पर लोग अमल करते थे और कुछ पर नहीं भी होता था, किन्तु दादाजी इस बारे में बेपरवाह थे। वह प्रायः कहा करते थे–**'विचारों के बीज तुम बोते चलो, कभी न कभी फूल-फल लायेंगे। जो छोटे से पौधे अभी दीखते, एक दिन वट वृक्ष बन जायेंगे।**

श्रद्धेय दादा जी के इन पत्रों में दिये गए सुझावों के आधार पर यहाँ की शिक्षा संस्थाओं में अनेक पुण्य कार्य सम्पन्न

[illegible]

हुए हैं। उनके अनुरोध पर इस्लामिया कालेज ने 'फीरोजाबाद अंक' और 'किदवई अंक', डी. ए. वी. कालेज ने 'श्रीधर पाठक अंक' और 'कवि हरिशंकर अंक' तथा तिलक कालेज ने 'रामचन्द्र पालीवाल अंक' निकाले। उनकी वरदानी छाया का लाभ पाने वाली संस्थाओं में हमारा कालेज अग्रणी रहा। हमारे कालेज में भी 'जनपद अंक', 'स्वच्छता अंक', 'स्व. बाबू हजारीलाल अंक' 'शिक्षा अंक', 'वीर परिनिर्वाण अंक' आदि प्रकाशित किये। दादाजी 'प्रेरक पत्र लिख-लिखकर हमें हमेशा रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्साहित करते रहते थे। हमारे कॉलेज के प्रति उनके उत्कट लगाव का परिचय उनके इस पत्र से मिलता है—

ज्ञानपुर, 15.2.1976

प्रिय भाई नरेन्द्रप्रकाशजी, जयजिनेन्द्र।

पी. डी. जैन कॉलेज को अब मैं अपना कालेज मानने की धृष्टता करने लगा हूँ। इससे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उसकी उन्नति मैं हृदय से चाहता रहा हूँ। मेरा जन्मदिन इस कालेज में कई बार मनाया गया और न जाने कितने कार्य मेरे अनुरोध पर आपके विद्यालय ने किए। मेरी सनकों पर आप लोगों ने बहुत खर्च किया है और तदर्थ मै यावज्जीवन संस्था का ऋणी रहूँगा। लोग मुझे जैनी समझते हैं।

आपके कालेज का मैदान ही मुझे स्वस्थ रख सका, क्योकि मैं नित्यप्रति प्रातःकाल वहीं टहलने आता था। एक दिन तो वार्षिक परीक्षा के दिनों में मैं वहाँ टहल रहा था। उस दिन हिन्दी के पर्चे में मेरी लेखन-शैली, जिसे मै भी नही जानता, के बारे में प्रश्न पूछा गया था। एक छात्र ने लिखा—'जिनकी लेखन शैली पूछी गई है, वे तो यहाँ सामने ही टहल रहे हैं।'

'धर कौ जोगी जोगना, आनगाँव को सिद्ध'—इस कहावत को आप लोगों ने मेरे जैसे जोगना को सिद्ध मानकर गलत सिद्ध कर दिया है। मेरा इतना सम्मान किया कि दिमाग के आसमान में चढ़ जाने की आशंका होने लगी है।

—बनारसीदास

श्रद्धेय दादाजी की महती कृपा से कई क्रान्तिकारी, जैसे सर्वश्री काशीरामजी, माहौरजी, शचीन्द्रनाथ बख्शी, बाबा पृथ्वीसिंह आजाद, पं. परमानन्दजी, राजा महेन्द्रप्रताप सिंह यहाँ पधार चुके हैं। राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर, वियोगी हरि, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि अनेक शीर्षस्थ साहित्यकारों के दर्शनों का लाभ भी मिलता रहा है। उनकी ही प्रशस्त प्रेरणा से सन् 1946 मे कालेज के छात्रों ने सफाई-अभियान पूरे नगर में एक पखवाड़े तक चलाया। कालेज में शास्त्री कक्ष (अतिथि भवन) और बनारसीदास चबूतरे के निर्माण की सलाह भी उन्हीं की थी। उनके द्वारा समय-समय पर प्रदत्त परामर्शो को हम वरदान के रूप में स्वीकार करते थे। इस उपकार के लिए उनका तर्क कितना मजेदार था, देखिए—

15.101977

प्रिय भाई नरेन्द्रप्रकाशजी,

जो स्वच्छ वातावरण सोलह मिनटों के लिए मुझे आपके कॉलेज के उपवन में मिलता है, वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। मै यहाँ शुद्ध वायु-सेवल के लिए आता हूँ। जैनधर्म के अनुसार बिना मूल्य चुकाये कुछ भी लेना चोरी है। शुद्ध वायु ग्रहण करने से चोरी का दोष मुझे न लगे, इसलिए कुछ सुझाव दे देता हूँ।

—बनारसीदास

नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करना भी उनका एक मिशन था। वह हमें कुछ अच्छी पुस्तकों की समीक्षायें लिखने के लिए प्रेरणा देते रहते थे। उनके ही द्वारा उपलब्ध कराई गई कुछ श्रेष्ठ पुस्तकें 'प्रथम याम' (स्व. श्री आनन्दशंकर

धर्म न वचनों में मिलता है और न शरीर में। धर्म तो परिणामों (भावों) में मिलता है। अगर हमारे भावों में धर्म है तो हम सुख और शान्ति की दिशा में अपने कदम बढ़ाने में समर्थ होंगे।

माधवन का आत्मचरित), 'मास्टर महिम' (एक शिक्षक की आपबीती करुण कथा), 'रूस की साहित्यिक यात्रा' (दादाजी द्वारा लिखित यात्रावृत्त) तथा स्व. हेमचन्द्र मोदी की एक संस्करणात्मक पुस्तक (नाम विस्मृत हो गया है) की समीक्षा में हमने लिखी थीं, जिन्हें उन्होंने क्रमशः साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवभारत टाइम्स और रामराज्य में प्रकाशित करवा दिया था।

लेखन-कार्य में प्रमाद उन्हें पसन्द नहीं था। देरी होने पर वह टोकते थे। एक बार टीकमगढ़ से श्री उमेश जोशी के दिनांक 12.4.66 को प्रेषित एक पत्र में उलाहना देते हुए उन्होंने लिखा था--

"श्री नरेन्द्रजी से जयजिनेन्द्र कहिए। अगर प्रार्थना में मेरा विश्वास होता तो मैं ईश्वर से यह विनती करता कि उन्हे घरेलू झंझटों और आलसी वृत्ति से मुक्ति मिल जाय। एक-एक किताब की रिव्यू में तीन-तीन महीने लगाना कहाँ की बुद्धिमानी है! सेण्ट वो तो प्रति सप्ताह एक रिव्यू लिख लेता था। नरेन्द्रजी एक महीने मे एक लेख लिख लें।"

पत्र-लेखन से आत्मीयता बढ़ती है। साहित्य-प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा की भावना को जागृत करने में महापुरुषों के पत्र बड़े ही सहायक सिद्ध होते हैं। दादाजी ने अपने सहस्रों पत्रों के माध्यम से सैकड़ों लोगों पर जो उपकार किया है, उससे कोई उऋण नहीं हो सकता। उनके स्नेहपूरित पत्रों में उनके ऋषितुल्य जीवन के दर्शन होते हैं। उनकी पावन स्मृतियों को हमारे शतशः प्रणाम।

□

एक उद्‌बोधन

(उत्तर प्रदेश प्रधानाचार्य परिषद् के लखनऊ अधिवेशन (1989) में प्रदत्त)

बढ़ती भीड़-गिरते मूल्य : आज शिक्षा के प्रसार की रफ्तार बहुत तेज है। आजादी के पूर्व जिस नगर मे केवल दो कालिज थे, आज वहाँ दर्जनों कालिज हैं। पहले एक कक्षा में जहाँ तीस-पैंतीस छात्र हुआ करते थ, वहाँ अब उनकी संख्या पचास-पचपन से कम नहीं होती। पहले एक वर्ग (कला, वाणिज्य या विज्ञान) में एक सैक्शन होता था, अब एक-एक वर्ग में कई-कई सैक्शन है। इस तरह शिक्षण-संस्थाओं, शिक्षकों और छात्रों की भीड में गत तीस वर्षो में बेतहाशा वृद्धि हुई है। इस पर किसी भी शिक्षा-प्रेमी को क्या गर्व और गौरव का अनुभव नहीं होना चाहिए? होना तो चाहिए, पर हुआ है ठीक इसके विपरीत। शिक्षा के क्षेत्र में आज जो लोग काम कर रहे हैं। उन सबके चेहरे बुझे हुए हैं, उनके माथे पर उभरती हुई असंतोष की रेखाएं स्पष्ट दिखाई दे रही है। क्यों? इसलिए कि शिक्षा का तो विकास-विस्तार हुआ है, किन्तु नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है। पढ़-लिखकर आदमी को जो सुख-शान्ति मिलनी चाहिए थी, उसके लिए वह तरस गया है। प्रफुल्लता की जगह तनाव में बढ़ोत्तरी हुई है। पहले आदमी अपने अज्ञान से दुखी था, आज ज्ञान उसके लिए बोझ बन गया है। ठीक ही कहा है किसी कवि ने--

> **धूप का ऐसा तना वितान, अँधेरा कठिनाई में फँसा।**
> **भागने को न मिली जब राह, आदमी के भीतर जा बसा॥**

यहाँ धूप प्रतीक है 'ज्ञान' की और अँधेरे से तात्पर्य हैं आदमी के भीतर की 'कुण्ठा, खीझ और निराशा' से। आज ज्यों-ज्यों बाहरी दुनिया में ज्ञान की धूप खिलती जाती है, त्यों-त्यों आदमी के भीतर का अँधेरा बढ़ रहा है। असल में

[illegible] के मन की निर्मलता को ही सुखी जीवन का आधार माना है। चित्त-शुद्धि ही किसी व्यक्ति के [illegible] होने की [illegible] कसौटी है।

घना अन्धकार भी ठीक नहीं और बहुत तेज रोशनी भी निरर्थक है। अँधेरा जब बहुत गहन होता है तो कुछ सूझता नहीं है और ज्योति भी जब सीमातीत होती है तो अंधता (चकाचौंध) को उत्पन्न करती है। आज यही स्थिति है।

गिरावट का कारण-अनुपयोगी शिक्षा : क्या यह सवाल आपके मन में नहीं उठता कि ऐसा क्यों हुआ? इसका एकमात्र कारण है, आज की शिक्षा का जन-जीवन से कट जाना। जो शिक्षा बालक को अपने परिवेश के प्रति उपयोगी और समर्थ नहीं बनाती, वह उसके व्यक्तित्व को तोड़ती है। आज का छात्र सात समुद्र की बातें तो जानता है, किन्तु अपने अड़ोसी-पड़ोसी के घर का हाल नहीं जानता। पुस्तकों के मनुष्यों से तो उसकी पहचान है, किन्तु पृथ्वी के मनुष्यों से नहीं। महायुद्ध की घटनाओं का वर्णन पढ़कर तो वह द्रवित होता है, किन्तु अपने निकट किसी के घाव को देखकर उकसी आँखें गीली नहीं होतीं। ऐसी अनुपयोगी शिक्षा ने ही आज समाज मे विसगतियाँ उत्पन्न की हैं।

सही तो यह है कि आज के कालेजों में विद्या का दान तो दिया जा रहा है किन्तु ज्ञान-ज्योति का जागरण नहीं हो रहा। विद्या बाहर से ठूँसी जाने वाली जानकारियों का नाम है और ज्ञान भीतर से प्रकट होने वाला संस्कार है। शास्त्रों में ज्ञान को प्राण और विद्या को देह बताया गया है। आज देह की पूजा और प्राण की उपेक्षा हो रही है। आज ज्ञानियों की खिल्ली उड़ायी जाती है और विद्वानों को पुरस्कृत किया जा रहा है।

महात्मा भगवानदीन ने विद्या और ज्ञान के अन्तर को इस तरह स्पष्ट किया है—"पकाने की क्रियाओं को जानना विद्या है और अच्छे-अच्छे भोजन तैयार कर देना ज्ञान है। यों पाक-विद्या और पाक-ज्ञान अथवा पाक-शास्त्र और पाक-कला दो अलग-अलग चीज हो जाती है। एक बी. कॉम. या एम. कॉम. व्यापार-विषय का विद्वान है लेकिन एक सफल व्यापारी व्यापार-विषय का ज्ञानी है। इसलिये बी. कॉम. को बेकाम कहकर उपहास का पात्र बनाया जाता है और उसे सफल व्यापारी-ज्ञानी की व्यापार-बग्घी में जोत दिया जाता है। उस गाड़ी को खींचते-खींचते वह अपने को भ्रान्तिवश सफल व्यापारी समझने लगता है, कभी तो उस कुत्ते जैसी भूल भी कर बैठता है, जो गाड़ी के नीचे चलकर ये समझा करता था कि गाड़ी को मैं ही चला रहा हूँ।"

ऐसी अनुपयोगी और बेजान शिक्षा को बदलकर जब तक उसे संस्कार एवं प्रयोजनमूलक नहीं बनाया जायेगा, तब तक 'सा विद्या या विमुक्तये' का आर्ष वचन केवल पोथियों की ही शोभा बढ़ाता रहेगा। शिक्षा वही सफल मानी जायेगी, जो छात्रों में प्रेम, सेवा और सहानुभूति के गुणों को उभारे तथा आलस, अकर्मण्यता और ईर्ष्या-द्वेष के अवगुणों से उसे मुक्त करे। जिस शिक्षा में ऐसी शक्ति नहीं, वह भारस्वरूप है।

महत्व एक प्रधानाचार्य का : संस्कार देने का दायित्व शिक्षकों का है। युग-युग से वह यह काम करता आ रहा है। वही एक ऐसा दीपक है, जो स्वयं प्रज्वलित होकर दूसरों को प्रकाश प्रदान करता है। आलोक बिखेरने के लिए उसे जलना पडता है। जो अपने इस कर्तव्य को पूरा नहीं करता, वह शिक्षक कहलाने का अधिकारी नहीं है। महात्मा तुलसीदास ने कितनी बड़ी गहरी बात कहीं है—

"हरहि शिष्य-धन, शोक न हरहिं।
सो गुरु घोर नरक मह परहिं॥"

प्रधानाचार्य भी एक शिक्षक ही है, किन्तु उसके नाम से पूर्व लगा 'प्रधान' शब्द उसके दायित्व को बहुत अधिक बढ़ा देता है। विख्यात शिक्षा-शास्त्री रायबर्न का कथन है कि जिस प्रकार जहाज के कप्तान का जहाज पर सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, उसी प्रकार विद्यालय में प्रधानाचार्य का स्थान सर्वोपरि होता है। मनीषी रेन का मत है कि घड़ी में जो उसकी कमानी का काम है, मशीन में जो चक्के या पहिए का स्थान है अथवा रेलगाड़ी में जो इंजिन का महत्व है, विद्यालय में वही महत्व प्रधानाचार्य का है। प्रधानाचार्य ही किसी विद्यालय की आत्मा का निर्धारण करता है। उसी के व्यक्तित्व

जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियाँ शान्ति से निर्द्वन्द्व होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषायरूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकता।

पर विद्यालय की उन्नति निर्भर है। इसलिये एक सफल प्रधानाचार्य में ये गुण अवश्य होने चाहिए—

- सबके प्रति उसका व्यवहार सौहार्द्रपूर्ण हो।
- उसका ज्ञान बहुमुखी होना चाहिए। धर्म और दर्शन का ज्ञान भी यदि उसे हो तो वह कभी अनीति के मार्ग पर नहीं चलेगा।
- उसमें धैर्य, विवेक और गम्भीरता के गुण होने चाहिए।
- वह मानसिक सन्तुलन का धनी हो। किसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी उत्तेजना, आवेश और आक्रोश का शिकार न हो।
- प्रत्युत्पन्न बुद्धिवाला हो। सामयिक परिस्थितियों में साहस और हिम्मत से काम ले। वह स्वयं कम बोले, दूसरों की अधिक सुने।
- स्वाभिमानी, मृदुभाषी, व्यवहार-कुशल और कार्य-पटु हो। दब्बू और खुशामदी हरगिज न हो। सही बात को दृढ़ता से कहे।
- लेखन एवं वक्तृत्व-कला में कुशल हो।
- चरित्रवान तथा सादगी-पसन्द हो।
- हिसाब-किताब के मामले मे सतर्क, सावधान और नियमितता बतरने वाला हो।

हम सब इस कसौटी पर अपने को कसें और खरे सिद्ध हों। यदि ऐसा हुआ, तो वह युग फिर आयेगा, जब किसी प्राचार्य-आचार्य की भृकुटि-भंगिमा को देखकर चक्रवर्ती सम्राट् का माथा भी चरणों में झुक जाया करता था।

यदि आज के आचार्य या प्राचार्य अपने इस महान् दायित्व के निर्वाह में चूक गये तो फिर नव-निर्माण, प्रशस्त सृजन या शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन का नारा एक कोरी कल्पना या सपना बनकर ही रह जायेगा। राजस्थान के प्रख्यात शिक्षाविद् श्री जगन्नाथसिंह मेहता के ये शब्द हमें हमेशा ध्यान में रखने होंगे—

''इंजीनियर की बड़ी से बड़ी गलती इमारत के बनाने-बिगड़ने के साथ समाप्त हो जाती है। चिकित्सालय की कैसी भी त्रुटि रोगी के साथ सदा के लिए तिरोहित हो जाती है। प्रशासन का कैसा भी अपराध फाइलों में दब जाता है किन्तु शिक्षक या प्राचार्य द्वारा की गई त्रुटि सम्पूर्ण राष्ट्र को भुगतनी पड़ती है और पीढ़ियों तक चलती है।''

अतः सतत जागरूकता और सावधानी अपेक्षित है। कार्यशील और कर्तव्यनिष्ठ प्राणियों पर माँ सरस्वती की कृपा सदैव बरसती रहती है।

एक अकेला-अलबेला : प्रायः सुनने को मिलता है कि प्रधानाचार्य एक है, अकेला है। वह क्या कर सकता है? किन्तु ध्यान रहे कि उसका अकेला होना ही उसकी विशेषता है। क्या बहुत से मृगों के झुण्ड में सिंह अकेला नहीं होता? आकाश में लाखों नक्षत्रों के मध्य चमकने वाले अकेले चन्द्रमा की आभा क्या अपनी उपमा स्वयं नहीं है? रेल में डिब्बे तो बहुत होते हैं, पर इंजिन एक ही होता है। अकेला यदि सदा-सर्वथा असमर्थ या असहाय होता तो कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'एकला चलो रे' का गीत क्यों गाते?

कक्षा में साठ लड़कों के बीच में अध्यापक भी तो अकेला ही होता है। वह भी रोने-झींकने लगे कि लड़के तो बहुत हैं, पर मैं एक और अकेला हूँ। वे मुझे पढ़ाने नहीं देते। शोर करते हैं। कक्षा को सिर पर उठा लेते है। मैं क्या करूँ? तो यह लड़कों के बहुमत का दोष माना जायेगा या शिक्षक की अयोग्यता-असमर्थता? इसी प्रकार प्रधानाचार्य का एकाकीपन भी शिकायत की वस्तु नहीं है। वही उसकी शक्ति है। अकेले होने में ही उसका बड़प्पन है। 'जितने शिक्षक, उतने ही प्रधानाचार्य' वाली बात यदि मान ली जाय तो फिर प्रधानाचार्य की पूछ या महिमा ही क्या रहेगी? □

[illegible]

एक सुहाना सफर

(हस्तिनापुर एवं देहरादून)

मनुष्य एक भ्रमणशील प्राणी है। देश-विदेशों में घूमना सदियों से उसका एक प्रिय शौक रहा है। एक ही स्थान पर रहते-रहते जब वह ऊब जाता है, तब वह सैर-सपाटे के लिए निकल पड़ता है। देश में उसे आनन्द तो आता ही है, नई-नई जानकारियाँ भी मिलती हैं। नए-नए लोगों से उसका सम्पर्क भी होता है। यात्रा के माध्यम से वह जीवन में नई स्फूर्ति और ताजगी प्राप्त करता रहता है। घर से बाहर निकलने पर कुछ कष्ट तो होते ही हैं किन्तु एक मस्त यात्री उनकी कभी परवाह नहीं करता।

नदियों के किनारों या पहाड़ की चोटियों में एक अद्‌भुत आकर्षण होता है। ये स्थान प्राकृतिक सुषमा के भण्डार होते हैं। हमारे साधु पुरुषों के विरक्त चित्त को भी ऐसे सुरम्य स्थानों ने सदैव आकर्षित किया है। यही कारण है कि ऋषियों और मुनियों ने अपनी साधना के लिए प्रायः ऐसे ही स्थानों का चयन किया है। इस देश के आधे से अधिक तीर्थ या तो पर्वतों पर या पर्वतीय अचलों में मिलेंगे अथवा सरिता और सरोवरों के तटों पर। नदियों में गंगा और पर्वतों में हिमालय सिरमौर माने जाते हैं। गंगा का उद्‌गम-स्थल हिमालय में ही है। यदि किसी को कभी हिमालय-यात्रा का कोई अवसर मिलता है तो उसे टालने को भला किसका जी चाहेगा।

बद्रीनाथ-यात्रा का आमंत्रण : मई 1988 के तृतीय सप्ताह में हमें इन्दौर से प्रेषित एक परिपत्र मिला, जिसके द्वारा हमें 13, 14 और 15 जून की अवधि में बद्रीनाथ-यात्रा का निमंत्रण दिया गया था। बद्रीनाथ हिन्दुओं का तो एक प्रसिद्ध तीर्थ है ही, अब वहाँ परिपत्र-प्रेषक श्रीमान् देवकुमार सिंह जी कासलीवाल और कैलाशचन्द जी चौधरी के सम्मिलित प्रयत्नों से भगवान आदिनाथ के देश में उपलब्ध प्राचीनतम चरण भी स्थापित किये जा चुके हैं। इन तारीखों में वहाँ विदुषी बहिन ब्र0 कौशल जी के सानिध्य में एक ध्यान योग शिविर, महाचरणाभिषेक तथा बद्रीनाथ-स्थित आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन की परामर्शदात्री समिति, जिसके एक सदस्य के रूप में हमारा भी मनोनयन किया गया है, की बैठक आयोजित थी।

कॉलिज में गर्मियों की छुट्टियाँ हो चुकी थी। उनके सदुपयोग के एक अच्छे निमित्त के रूप में हमने हिमालय-यात्रा का मन बना लिया। बच्चे भी साथ चलने को मचलने लगे। बड़े पुत्र और पुत्रवधु की भी इच्छा पाई गई। हमारे बहिन-बहनोई ने भी चलने की हामी भर दी। इस तरह हम छोटे-बड़े चौदह प्राणी 4 जून को घर से यात्रा के लिए निकल पड़े।

हस्तिनापुर में पहला पड़ाव : हरिद्वार हिमालय का प्रवेश-द्वार कहलाता है। आगरा से रेल द्वारा हम सीधे हरिद्वार पहुँच सकते थे किन्तु हमने मेरठ होकर जाने का निर्णय लिया। इस निर्णय के पीछे तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर के दर्शनों का आकर्षण था। बहिन चन्द्रप्रभा और बहनोई श्री जयप्रकाश जी ने अभी तक जम्बूद्वीप के दर्शन नहीं किये थे, इस रूट से चलने के पीछे यह भी एक कारण था। हम लोग 4 जून की मध्यरात्रि को संगम एक्सप्रेस से मेरठ के लिए रवाना हुए और मेरठ से बस द्वारा चलकर 5 जून को प्रातः ग्यारह बजे हस्तिनापुर पहुँच गए। यहाँ हम जम्बूद्वीप में आकर ठहरे। इस स्थान के प्रति हमारे मन में विशेष लगाव है। इस लगाव का मुख्य कारण तो यह है कि यहाँ के सभी कार्यकर्ता हमारे सुपरिचित हैं, इसलिए वे हम सबकी अच्छी आवभगत करते हैं। यहाँ का खुलापन भी मन को मोह लेता है।

तीर्थों का स्थल विशेष स्मृति के परदे पर सदियों पहले की घटनाओं को चलचित्र की तरह उभार देता है, जिससे जीवन में कभी कभी ऐसी प्रेरणा मिलती है जैसी बड़ी-बड़ी पोथियों को पढ़कर भी नहीं मिलती। 'सागार-धर्मामृत' में पण्डित आशाधर जी ने कहा है– अर्थात् आत्म-निर्मलता के प्रधान अंग सम्यग्दर्शन की परिपुष्टि के लिए गृहस्थ को तीर्थयात्रा करनी

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञाओं का अनुसरण करना भी विनय के ही अन्तर्गत आता है। ऐसी वास्तविक [illegible] से मान कषाय गल जाती है।

चाहिए। हस्तिनापुर की पवित्र भूमि के दर्शनों से भी हमें वहाँ की अति प्राचीन घटनाओं का स्मरण हो आया, जिनसे चित्त को बड़ी शांति मिली।

हस्तिनापुर एक ऐतिहासिक नगर है। अयोध्या की तरह इस नगर की भी रचना देवों ने की थी। यहाँ भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ के चार-चार कल्याणक गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान सम्पन्न हुए हैं। ये तीनों तीर्थंकर चक्रवर्तियों के रूप में भी पुराण प्रसिद्ध हैं। हरिषेण कथाकोष के अनुसार चौथे चक्रवर्ती सनतकुमार का जन्म भी यहीं हुआ था। इस प्रकार लगातार चार चक्रवर्ती और तीन तीर्थंकर यहाँ हुए।

युगारम्भ में भी इस नगर का अस्तित्व था। दान तीर्थ का प्रवर्तन यहीं से हुआ। दीक्षा लेने के बाद आदिप्रभु ने निराहार रहकर छह माह तक तपश्चरण किया था। प्रतिमायोग पूरा होने पर वे गोचर विधि से आहार के लिए उठे किन्तु उस कर्म भूमि के प्रारम्भ में मुनि के आहार दान की विधि ही लोगों को नहीं मालूम थी। भगवान स्वयं मौन व्रती थे और था उनके अन्तराय कर्म का तीव्र उदय। चान्द्री चर्या से नगर-नगर में घूमते हुए उनका हस्तिनापुर आगमन हुआ। उस समय यहाँ राजा सोमप्रभ राज्य करते थे। उनके छोटे भाई श्रेयांस ने जैसे ही प्रभु के दर्शन किये, उन्हें जाति स्मरण हो गया। सात भव पहले भगवान जब बज्रसंघ की और राजकुमार श्रेयांस उनकी पत्नी श्रीमती की पर्याय में थे, तब दोनों ने दो चारणऋद्धिधारी मुनियों को आहार दिया था। आहार-विधि का स्मरण होते ही उनके मुख से ये शब्द निकले - "भो स्वामिन्, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, आहार-जल शुद्ध है।" विधि के मिलते ही प्रभु उनके द्वार पर आकर पड़ग गए और वहाँ इक्षु रस का निर्विघ्न आहार हुआ। जनता खुशी से झूम उठी। देवताओं ने पंचाश्चर्य किये और इन्द्र ने श्रेयांस कुमार को दान तीर्थंकर की पदवी प्रदान की। यह दिन बैशाख शुक्ला तृतीया का था, जो अक्षय तृतीया के पावन पर्व के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

बाद में इसी अक्षय तृतीया की पुण्य तिथि पर आज से कोई 77 वर्ष पूर्व मई 1911 को ब्र0 शीतल प्रसाद जी की प्रेरणा और ऐलक पन्नालाल जी के शुभाशीर्वाद से यहाँ श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हुई थी। नसीराबाद के बाबू अजितप्रसाद जी उसके प्रथम मन्त्री थे। प्रारम्भ में उसे गुरुकुल कांगड़ी के आदर्श पर विकसित करने का संकल्प था किन्तु दि0 जैन समाज के ऐसे ही अन्य सपनों की तरह धीरे-धीरे कालक्रम से यह संकल्प भी तिरोहित हो गया। यों कहने को संस्था आज भी चल रही है।

यहाँ यह उल्लेख करना दिलचस्प होगा कि सन् 1911 में यहाँ आने के लिए मेरठ से 19 मील तक घोड़ा गाड़ी चलती थी तथा शेष 7 मील का रास्ता बैलगाड़ी से या पैदल पार करना पड़ता था। जरा कल्पना तो करें कि उस वक्त की तुलना में आज की यात्रा कितनी आसान हो गई है।

सती सुलोचना, जिसके शील की चमत्कारपूर्ण घटनायें प्रसिद्ध हैं, यहीं के राजा मेघेश्वर जयकुमार की पत्नी थी। जयकुमार प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज का प्रधान सेनापति था।

वह हस्तिनापुर ही था, जहाँ से रक्षा बन्धन का त्यौहार शुरू हुआ। आचार्य अकम्पन और उनके संघ के 700 मुनियों पर बलि, प्रहलाद, नमुचि और बृहस्पति नामक मन्त्रियों ने घोर उपसर्ग किया था। महामुनि विष्णु कुमार ने अपनी विक्रिया से वामन का वेश धारण कर किस प्रकार उसे दूर किया, यह कथा सभी को मालूम है। जिस दिन उपसर्ग टला, वह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का दिन था। साधुओं की प्राणरक्षा से प्रसन्न नागरिकों ने इस दिन एक दूसरे की कलाई पर रक्षा-सूत्र बाँधकर धर्म, समाज और साधुओं की रक्षा का व्रत लिया था।

कौरव और पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर ही थी। यहाँ उनके किले के भग्नावशेष अभी भी अवस्थित हैं। दोनों पक्षों

[illegible], पत्रिकाओं का आदान-प्रदान, अभिनन्दन-समारोहों की बाढ़, मन्दिरों आदि की दीवालों और फर्शों पर लगे [illegible] आदि समाज में दिनों-दिन बढ़ती हुई मान कषाय के सजीव चित्र हैं।

में राज्य के लिए महाभारत नामक भयंकर युद्ध हुआ था, जिसमें हुये महाविनाश की कहानी सुनकर रोम-रोम सिहर उठता है। यह नादान मनुष्य भले ही युद्धों से प्रेम करता रहे किन्तु युद्धों को तो मनुष्यों से घोर घृणा है।

एक बार कौरवों ने यहाँ के उद्यान में विराजमान यमदत्त नामक मुनि पर पत्थर बरसाये थे। बाद मे पाण्डवों ने आकर पत्थर हटाये, उनकी यथोचित भक्तिवन्दना की तथा उनकी सुरक्षा के लिए वहाँ पहरेदार बनकर बैठ गए। मुनि महाराज तो ध्यान-मग्न थे। उन्हें उसी क्षण केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

ऐसी है हस्तिनापुर की पवित्र गौरवगाथा। यहाँ के प्राचीन दि0 जैन मन्दिर के निर्माण की कहानी भी कम रोचक नहीं है। कहाँ मिलते हैं अब ऐसे निर्माता और दानवीर?

मन्दिर-निर्माण की कहानी : "जैन-जागरण के अग्रदूत" में कुशल कथा शिल्पी स्व0 श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय ने दि0 जैन मन्दिर के निर्माण की कहानी को इन शब्दों में व्यक्त किया है - 'दिल्ली के सेठ सुगनचन्द जी की आन्तरिक अभिलाषा थी कि हस्तिनापुर जैसे प्राचीन जैन-तीर्थ स्थान में एक जिन मन्दिर बनवाकर तीर्थक्षेत्र का पुनरुद्धार किया जाए, किन्तु उन दिनों जैन मन्दिर बनवाना मानों लन्दन में कांग्रेस-भवन का निर्माण करना था। सेठ साहब की मनोभिलाषा को मीरापुर के राँगड़ पूरी नहीं होने देते थे। उन दिनों हस्तिनापुर और मीरापुर साढ़ौरा स्टेट में थे।

भाग्य की बात, दुष्काल पडने पर महाराज साढ़ौरा को एक लाख रुपये की जरूरत पड़ी। सेठ सुगनचन्द जी साहूकारी के लिए काफी विख्यात थे। अतः सब ओर से निराश होकर महाराज ने अपना दीवान सेठ साहब के पास भेजा और बगैर कोई लिखा-पढ़ी कराये ही सेठ साहब के सकेत पर मुनीम ने एक लाख रुपये गिन दिये।

एक वर्ष के बाद दीवान साहब जब एक लाख रुपया ब्याज-समेत वापिस देने आये तो सेठ साहब के मुनीम ने रुपया लेने से इनकार कर दिया और कहा कि हमारे यहाँ से महाराज साढ़ौरा को कभी रुपया कर्ज नहीं दिया गया।

दीवान हैरान था कि मैं स्वयं इस मुनीम से एक लाख रुपया ले गया हूँ और फिर भी यह अनभिज्ञता प्रकट करता है?.... आखिर दीवान साहब तंग आकर बोले 'सेठ साहब, यह हमने माना कि आपने आडे वक्त में रुपया देकर हमारे काम साधे, मगर इसका यह अर्थ तो नही कि आप अपना रुपया ही न लें और उस पर भी कहा जा रहा है कि रुपया कर्ज दिया ही नहीं गया। अगर रुपया हम कर्ज न ले जाते तो हमारे पास आपकी तरह फालतू तो है नहीं, जो व्यर्थ में देने आते। मैं स्वयं ही मुनीम जी से उक्त तारीख को रुपया उधार लेकर गया हूँ। आखिर?'

सेठ साहब बात को संभालते हुए बोले 'मुनीमजी, जरा अमुक तारीख की रोकड़ बही फिर ध्यान से देखो आखिर एक लाख रुपये का मामला है। दीवान साहब भी तो झूठ नहीं बोल रहे होंगे।'

मुनीम जी ने रोजनामचा उस तारीख का देखा तो गर्म हो गए। ताव में भरकर बोले 'लीजिये, आप ही देख लीजिए, उधार दिया हो तो पता चले। मुझे व्यर्थ में इतनी देर से परेशान कर रखा है।'

सेठ साहब और दीवान साहब ने पढा तो लिखा हुआ था-दीवान साहब के हस्ते महाराज साढ़ौरा के पास एक लाख रुपया हस्तिनापुर में जैन मन्दिर बनवाने के वास्ते बतौर जमानत जमा कराया।'

पढ़ा तो दीवान साहब अवाक् रह गए। फिर भी रुपया जमा कर लेने के लिए आग्रह किया किन्तु सेठ साहब ने यह कहकर रुपया जमा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की कि जब मन्दिर के लिए रुपया लिखा हुआ है तो वापिस कैसे लिया जा सकता है? धर्म के लिए अर्पण किया हुआ द्रव्य तो छूना भी पाप है।

जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों-हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी [illegible] सकता है, लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती।

लाचार दीवान जी ने लौटकर सारी परिस्थिति महाराजा को समझाई। अन्त में महाराज साढ़ौरा ने कृतज्ञता स्वरूप राँगड़ों को राजी करके जैन मन्दिर बनवा दिया। मन्दिर निर्माण होने पर सेठ साहब को बुलवाया गया और हँसकर उनकी अमानत उन्हें सौंप दी।... एक बात और, यदि सेठ साहब चाहते तो हर ईट पर अपना नाम खुदवा सकते थे, मगर खोज करने पर भी कहीं नाम लिखा नहीं मिलता। केवल वहाँ की वायु ही उनकी कीर्ति सुरभि फैलाती हुई भावुक हृदयों को प्रफुल्लित करती नजर आती है।"

है न बहुत मजेदार कहानी! 6 जून की प्रातः बेला में हमारे मानस-सरोवर में यही सब स्मृतियाँ तैरती रहीं। इधर जम्बूद्वीप का भी अच्छा विकास हुआ है। कमल के आकार का नवनिर्मित मन्दिर तो बहुत ही भव्य है और शायद पूरे देश में इस डिजाइन का अकेला है। अभी सफेद और गुलाबी पत्थर लगना बाकी है। मन्दिर के चारों ओर बीस फिट चौड़ा तालाब भी बनना है। काम पूरा होने पर उसकी शान अनोखी होगी, इसमें सन्देह नहीं।

यहाँ सुमेरु पर्वत एवं जम्बूद्वीप की रचना हो जाने से यात्रियों तथा पर्यटकों की संख्या बढ़ी है। रात्रि के समय रंग-बिरंगे फुब्बारों की छटा तो बड़ी ही मनमोहक होती है। नौका विहार में भी लोग बड़ा आनन्द लेते हैं। शीघ्र ही यहाँ विद्युतचालित ग्यारह धार्मिक नयनाभिराम झाकियाँ भी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बनेंगी। पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माता जी की प्रेरणा और उत्तर प्रदेश सरकार के सौजन्य से तीनों नशियाओं तक पक्की सड़क बन जाने से बहुत सुविधा हो गई है।

कुछ लोगों का यह कहना हमें नहीं जँचता कि जम्बूद्वीप के बन जाने से प्राचीन क्षेत्र को कोई क्षति पहुँची है। उसका भी दिनो दिन विकास हो रहा है। नवनिर्मित नन्दीश्वरद्वीप मन्दिर तथा निर्माणाधीन समवशरण-मन्दिर इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वहाँ तो तेरहपंथ की पद्धति से पूजा-पाठ होता ही है, जम्बूद्वीप में भी इस पर कोई रोक नहीं है। आपस के हेलमेल से दोनों ही क्षेत्रों का और भी त्वरित विकास हो सकता है। तीर्थों पर अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा तो होनी ही नहीं चाहिए।

हस्तिनापुर में हम लोग दो दिन रहे। सबने भक्तिभाव पूर्वक सभी मन्दिरों और नशियाओं के दर्शन किये। सर्व श्री पं० फूलचन्दजी सि० शास्त्री, पं० धर्मचन्दजी शास्त्री, प० प्रवीणचन्दजी, पं० नरेशचन्दजी, ब्र० बहिन माधुरीजी, देशव्रती बहिन पुष्पाजी, चि० दिलीप, सुरेश, ज्योति प्रकाश आदि अनेक महानुभावों से मिलना हुआ। पूज्य माता जी के प्रशस्त आशीर्वाद का लाभ तो होना ही था। सचमुच बहुत आनन्द आया। कुछ बातों को लेकर मन में ऊहापोह भी हुआ।

जम्बूद्वीप के गोलाकार सरोवर (लवण समुद्र) में भरे जल को लेकर जो आलोचना की जाती है, उसका औचित्य आज तक हमारी समझ में नहीं आया। जल-मन्दिर तो प्राचीन क्षेत्र पर भी बनाया गया है। दो वर्ष पहले हमने उस जल-कुण्ड में काई की मोटी पर्त जमी देखी थी। जम्बूद्वीप में तो सप्ताह में एक बार सरोवर की सफाई होती है। पुराने पानी को निकालकर नया ताजा पानी भी भरा जाता है। ऐसा भी नही है कि क्षेत्र-स्थित कुण्ड में तो पानी सीधे क्षीर-सागर से आता हो और यहाँ किसी पोखर से लाकर भरा जाता हो। केवल आलोचना के लिए आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

गत 21 मई को क्षेत्र पर घटित अवांछनीय एवं निन्दनीय घटनाओं से उत्पन्न तनाव यद्यपि मैं उस समय वहाँ नहीं था, तथापि प्राचीन और नवीन दोनों ही क्षेत्रों पर बतौर निशानी आरोप प्रत्यारोपों से भरे पर्चे और पोस्टर हमारी वीतरागता को मुंह चिढ़ाते से दिख पड़ते थे। न जाने कब आयेगा वह शुभ दिन, जब हमारे दिगम्बर जैन समाज में पारस्परिक ईर्ष्या और अहं से उत्पन्न कलह का पूरी तरह खात्मा होगा तथा हम सब अपने तीर्थकरों और आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग, पर कदम बढ़ायेंगे। यही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिससे हम और हमारा समाज राग-द्वेष के बियावानों में भटकने से बच सकता है।

दून-घाटी में दो दिन : राजकीय परिवहन की बसें अब जम्बूद्वीप तक आती-जाती हैं। 7 जून को प्रातः पौने छह

बजे की बस से हम लोग मेरठ के लिए चल पड़े। चलने से पूर्व क्षेत्र के लिये यथाशक्ति दानादि लिखाने तथा पूज्य माताजी के चरणों में नमोस्तु करके उनकी अनुमति प्राप्त करने में भी हमने प्रमाद नहीं किया। सन्तों का आशीर्वाद ही तो भव्य पुरुषों की पूँजी है।

मेरठ पहुँचने पर तुरन्त सवा सात बजे हमें देहरादून के लिए बस मिल गई, जिसने पाँच घण्टों की यात्रा के बाद दोपहर सवा बारह बजे हमें देहरादून पहुँचा दिया। यहाँ जैन धर्मशाला में हमें एक हॉल मिल गया किन्तु इसके लिये हमें दो घण्टे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इन दिनों यहाँ पर्यटकों की काफी भीड़ थी।

देहरादून की घाटी, शिवालिक पर्वतमालाओं के मध्य स्थित है। इसके पूर्व में गंगा तथा पश्चिम में जमुना बहती है। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा होने से यहाँ का तापमान न अधिक गर्म रहता है, न अधिक सर्द। वर्तमान में इसकी आबादी तीन लाख से अधिक है। इस शहर को 'गेटवे आफ मसूरी' कहा जाता है, क्योंकि हर दिशा से आने वाले यात्रियों को मसूरी के लिये यहीं होकर जाना होता है। मसूरी का जिला-मुख्यालय भी देहरादून ही है। आधुनिक देहरादून का इतिहास लगभग 300 वर्ष पुराना है।

किंवदन्ती है कि महाभारत-युद्ध की समाप्ति पर गुरू द्रोणाचार्य मानसिक शान्ति की खोज में यहाँ आए थे और यहाँ उन्होंने शस्त्र-विद्या का साधना-केन्द्र भी खोला था। इसी से इसका नाम 'द्रोण-घाटी' पड़ा, जो बिगड़कर अब 'दून-घाटी' हो गया है। एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार देहरा का अर्थ है पड़ाव (कैम्प) और दून कहते हैं घाटी या पहाड़ों के बीच स्थित भू-भाग को। प्रमुख सिख-गुरू श्री रामराव महाराज ने दिल्ली से आकर यहाँ पड़ाव डाला था। यहाँ उनका दरबार साहब (गुरूद्वारा) भी है, जिसके गुम्बदों की चित्रकला आज सैकड़ों साल बीत जाने पर भी नई-सी दिखाई देती है। गुरूजी का डेरा होने की वजह से ही इस शहर का नाम पहले 'डेरादून', बाद में 'देहरादून' प्रसिद्ध हो गया।

यहाँ का 'दून-स्कूल' इंगलैण्ड के पब्लिक स्कूलों की टक्कर का एक प्रख्यात शिक्षा संस्थान है। इसी स्कूल का एक छात्र आज अपने देश का प्रधानमन्त्री है। यहाँ भारतीय सेना अकादमी, वन अनुसन्धान केन्द्र, भारत पेट्रोलियम, सर्वे आफ इण्डिया, तैल एवं प्राकृतिक गैस आयोग आदि अनेक देशव्यापी ख्याति की संस्थायें भी कार्यरत हैं। यहाँ अन्धे और मूक-बधिर बच्चों के लिए भी विद्यालय हैं, जिनमें उन्हें आत्म निर्भर बनाने की शिक्षा दी जाती है। एक ब्रेल प्रेस भी है। यह शहर चार चकारों चावल (बासमती), चाय, चूना और चोब (लकड़ी) के लिए प्रसिद्ध है।

दून के दर्शनीय स्थान : मसूरी-हिमालय की हरी-भरी सुकुमार गोद में बसी मसूरी "पर्वतों की रानी" के नाम से विख्यात है। यहाँ चारों ओर प्रकृति का मादक-मोहक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। यहाँ के हिमधवल पर्वत शृंग, जल-प्रपात, नागिन सी बल खातीं सड़कें, ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, देवदार के सघन वन, रंग-बिरंगे भवन आदि पर्यटक के मन में परी-लोक की कल्पना को साकार करते हैं। यह हिल-स्टेशन देहरादून से 35 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है।

समाज के धनिक लोग तथा सरकार के मन्त्री और अधिकारीगण गर्मियों के मौसम में यहाँ की ठण्डी हवाओं का आनन्द लेने आते रहते हैं। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक मानी जाती है। कहा जाता है कि यदि कोई मनुष्य खाना न खाता हो तो उसे मसूरी में आकर भूख लगने लगती है। यह नगरी अपने अनेक पब्लिक स्कूलों के लिए भी विख्यात है। इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र बड़े-बड़े अफसर, कलक्टर, राजदूत आदि बनकर निकलते हैं।

मसूरी के निर्माण और विकास का श्रेय अंग्रेजों को जाता है। सन् 1947 तक यहाँ अंग्रेजों का ही दबदबा और बोलबाला रहा। अब तो यहाँ भारतीय सैलानियों की संख्या पीक सीजन में (15 मई से 15 जुलाई तक) डेढ़-दो लाख तक पहुँच जाती

जो पाप, बेईमानी और कपट से कमाई रोटी खाता है, उसका तो पतन होता ही है, जिस परिवार में ऐसी रोटी आती है वहाँ भी धर्म नहीं टिक पाता। खान-पान का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है।

है। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार सन् 1987 में यहाँ वर्ष भर में लगभग ग्यारह लाख पर्यटक आए थे। अपनी मनोहरता और भव्यता के कारण मसूरी आज असंख्य प्रकृति-प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

हम लोगों ने मसूरी के सौन्दर्य का पाँच-छह घण्टों तक जी भरकर आनन्द लिया। यहाँ से चार कि0 मी0 दूर स्थित कम्पनी गार्डन तक हाथ रिक्शा में बैठकर गए। बाग में भाँति-भाँति के चित्ताकर्षक फूल खिले हुए थे। एक छोटी-सी कृत्रिम झील भी थी, जिसमें नौकाविहार किया जा सकता है। बच्चों के मनोरंजन के लिए खेलकूद के अनेक साधन भी हैं। जो छोटे बच्चे अभिषेक, सोनू, मनीष, ज्योति आदि हमारे साथ थे उनका मन यहाँ खूब लगा। बाग के बाहर फुटपाथ पर बैठने वालों से कुछ सामान जैसे-सिले हुए कपड़े, टाप, टोपा, कैप, बच्चों की दुरबीन आदि की खरीद की। बाग से लौटकर लाइब्रेरी बाजार में दो चक्कर लगाए। कैम्पटी फाल अवश्य जाना चाहते थे किन्तु समयाभाव से नहीं जा सके। सुनते हैं कि इस जल-प्रपात का दृश्य अत्यंत सुहावना और रोमांचक है। ऊपर से गिरता हुआ पानी दूध की धार सा दिखाई देता है।

हम लोग आए तो बस से थे किन्तु लौटते समय बहुत प्रतीक्षा करने के बाद भी कोई बस सुलभ नहीं हुई। अतः टैक्सियों से देहरादून वापिस आए।

सहस्रधारा : देहरादून से 14 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है। यहाँ पहाड़ों से पानी झरता है तथा कई झरने तो एक साथ मिलकर गिरते हैं। प्रतिदिन हजारों लोग स्नान करने आते हैं। शरीर-शुद्धि के लिए हम सबने भी स्नान किया। हम लोग बहुत ऊपर चले गए थे। वहाँ भीड़-भाड़ कम थी। सहस्रधारा नहाने वालों के लिए सर्वाधिक निरापद स्थान है। यहाँ गन्धक-युक्त पानी का भी झरना है, जिसका जल पीने से पेट के विकार तथा नहाने से चर्म-रोग दूर होते हैं। यहाँ भी एक छोटा-सा बाजार है, जहाँ से बेंत, मोमबत्ती-स्टेण्ड, बच्चों के खिलौने आदि खरीदे जा सकते हैं।

वन अनुसन्धान-शाला : यह विश्व-विख्यात संस्थान देहरादून-चकरौता मार्ग पर घने वृक्षों के बीच में स्थित है। यहाँ जंगलों से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इसके शानदार विशाल भवन के निर्माण में ही करोड़ों रुपयों की लागत आई होगी। सात बड़े-बड़े कक्षों में संयोजित संग्रहालयों में दुर्लभ वन-सम्पदा के हजारों नमूने देखे जा सकते हैं। हमने यहाँ 40-50 तरह के गोंद, पचासों तरह के मसाले, विभिन्न पत्तों से बने रेशे और रस्सियां, तेज-बेरोजा-लाख आदि की बेशुमार किस्में, वृक्षों से बनाए गये विविध रेशे आदि देखे। कवक विज्ञान के कक्ष में जाने पर पता चलता है कि वृक्षों में भी क्षय, व्रण दाग-धब्बे आदि तरह-तरह की बीमारियाँ पाई जाती हैं। साल, सिरिस, तून, बाँस, गुरजन, वेद, सफेदा, देवदार, हल्दू, खजूर, सागोन, शीशम, चीड़ आदि अनगिनत लकड़ियों के नमूने यहाँ देखे जा सकते हैं। वन-संवर्धन-कक्ष में कृषि सम्बन्धी औजारों का प्रदर्शन किया गया है तथा सामाजिक वानिकी के कक्ष में काष्ठाधारित कुटीर उद्योगों का परिचय प्राप्त किया जाना सम्भव है।

टपकेश्वर : पहाड़ की खोह में स्थित यह एक शिवालय है। यहाँ प्रकृति-नटी का एक चमत्कार यह देखने में आता है कि ऊपर की चट्टान के किसी अदृश्य छेद से बूंद-बूंद कर टपकता हुआ पानी शिवलिंग का हर समय अभिषेक करता रहता है। बताया जाता है कि शिवरात्रि को यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है।

चकरोता मार्ग पर ही देहरादून से 45 कि0 मी0 की दूरी पर यमुना जल विद्युत परियोजना का मुख्य स्थल, "डाक पत्थर" है। वहाँ हमारा जाना नहीं हो सका। यह एक अच्छा पिकनिक स्पाट है।

देहरादून का जैन-वैभव : यहाँ की जैन धर्मशाला का भवन बहुत विशाल और तीन मंजिला है। उत्तर भारत में इससे बड़ी धर्मशाला शायद ही कहीं अन्यत्र हो। इसमें 50-60 बड़े कमरे, 2 छोटे हाल, 14 फ्लैट, एक डाइनिंग हाल और

[illegible] दूसरों के [illegible] और [illegible]

एक रसोई घर है। आंगन बहुत बड़ा है। सभी आधुनिक सुविधायें सुलभ हैं। स्वच्छता एवं सुप्रबन्ध अत्यंत प्रशंसनीय है। धर्मशाला में एक वाचनालय भी है, जिससे सैकड़ों प्रबुद्धजन लाभ प्राप्त करते हैं।

अभी हाल ही में धर्मशाला के भीतर एक दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर का निर्माण कराया गया है। मन्दिर बहुत भव्य है तथा गत वर्ष ही उसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई है। यहाँ पूजा-पाठ और स्वाध्याय मूलाम्नाय के अनुसार होता है। दो दि० जैन मन्दिर और भी हैं–एक झण्डे बाजार में तथा दूसरा सरनीमल बाजार में। दोनों मन्दिर विशाल हैं। आवश्यकतानुसार इनका विस्तार होता रहा है। नीचे बनी दुकानों से स्थाई आमदनी भी है। शास्त्र-सभा पर यहाँ मुमुक्षुओं का प्रभुत्व है।

यहाँ जैन समाज द्वारा संचालित दो शिक्षा संस्थाये भी हैं। श्री वर्णी जैन उ० मा० विद्यालय जैन धर्मशाला के पृष्ठ भाग में चलता है। यहाँ 700 छात्र पढते हैं। श्री महावीर जैन कन्या पाठशाला इण्टर कालेज में लगभग एक हजार छात्रायें अध्ययन-रत हैं। इनके अलावा यहाँ एक धमार्थ होम्योपैथिक चिकित्सालय, एक आक्सीजन बैंक तथा एक पैथालौजी केन्द्र का संचालन भी जैन समाज द्वारा होता है।

सामाजिक स्तर पर दि० जैन महासमिति और जैन मिलन की शाखाओं का विधिवत् गठन है। सिंचाई विभाग में सेवारत श्री सुरेशचन्द जैन ने आग्रह किया है कि महासभाध्यक्ष श्रीमान् निर्मलकुमार सेठी को इधर ध्यान देते हुए महासभा का भी प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

आज से लगभग सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व सबसे पहले यहाँ सहारनपुर के लाला दीपचन्द जैन का शुभागमन हुआ। बाद में पॉच-सात परिवार मैनपुरी से आकर बस गए। वर्तमान में जैन घरों की सख्या पॉच सौ से अधिक ही है। सौ-पचास घर ऐसे लोगो के भी हैं, जो यहाँ सरकारी सेवाओं में हैं और जिनका स्थानान्तरण होता रहता है।

स्थानीय प्रमुख उद्योगपति श्री नरेन्द्रकुमार जैन, धर्मशाला के अध्यक्ष एवं मन्त्री सर्वश्री सुरेन्द्र कुमार जी व बालेश कुमार जी तथा वयोवृद्ध-प्रमुख श्री जितेन्द्रकुमारजी चौधरी से प्रथम परिचय ही नहीं हुआ बल्कि सार्थक चर्चा वार्ता भी हुई। इस प्रकार 9 और 10 जून के समय का अच्छा सदुपयोग हुआ।

(नोट– फीरोजाबाद के महात्मा गाधी बालिका महाविद्यालय की पत्रिका से इस सुहाने सफर का इतना ही अश हमें सुलभ हो सका। समय पर यात्रा का शेष भाग उपलब्ध न हो पाने से ऋषिकेष, पंचप्रयाग, श्रीनगर (गढ़वाल), जोशीमठ, बदरीनाथ और माणा गॉव के सुहाने सफर का विवरण यहॉ प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। जितना भी मिल सका, वह उपयोगी है, इस दृष्टि से इसे प्रकाशित करना ही हमने उचित समझा है। –प्र. सम्पादक)

☐

भौतिकता को ओढ़ने और सहेजने वाला सम्राट् तो बन सकता है किन्तु एक संत [illegible] वैभव तुच्छ ही माना जाएगा। सम्राट् और संत में संत ही महान् है।

कलकत्ता का जैन-वैभव

सन् 1991 इस वर्ष पर्यूषण पर्व में कलकत्ता गया था। लौटने के बाद सोचा था कि यहाँ जो देखा, सुना और समझा है, उस पर कुछ लिखूंगा किन्तु तुरन्त कुछ लिख नहीं सका। घर-गृहस्थी और कॉलिज के काम-काजों में उलझा रहा। अब विलम्ब से ही सही कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। आशा है घुमक्कड़ पाठकों को यह लिखना रुचिकर लगेगा।

कलकत्ता भारत का सबसे बड़ा शहर है। यहाँ की आबादी लगभग डेढ़ करोड़ है। हमारे नगर फिरोजाबाद, जिसकी आबादी इस समय लगभग पौने चार लाख है, की तुलना में यह चालीस गुना अधिक है। इसकी इस विशालता को देखकर ही अपने एक लेख में श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखा था कि कलकत्ता को एक नगर या महानगर तो गलती से कहा जाता है, यथार्थ में तो यह एक छोटा-सा देश ही है। विश्वकवि ने भी कभी इसे 'लाखो मनुष्यों से गुंजरित घोसलों'' कहा था। यहाँ की सड़कों पर ट्रामों, मोटरों, कारों, ठेलों, रिक्शों और पैदल मनुष्यों का ताता लगा रहता है। लोगों के अन्तहीन काफिलों को देखकर लगता है कि मानों यहाँ दिन-रात जुलूस-ही-जुलूस निकलते रहते हों। इतनी भीडें अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती। इस शहर की खूबी इसकी इस चहल-पहल में ही है।

यह महानगर पश्चिम बंगाल की राजधानी और देश का एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। 24 अगस्त 1989 को इसकी तीन सौवीं जयन्ती धूमधाम से मनाई जा चुकी है। इस पर राज्य सरकार ने करोड़ो रूपये खर्च किये थे। इस नगर की स्थापना एक अंग्रेज जॉब चार्नाक ने 24 अगस्त 1660 को की थी। इसमे पहले यहाँ घोर जंगल और दलदल था। इस तरह आज का यह कलकत्ता ''जंगल में मंगल'' की कहावत को चरितार्थ कर रहा है। कालीदेवी के मन्दिर की वजह से इसका नाम 'कालीकाता' पड़ा, जो बाद में कलकत्ता के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

सन 1773 में अंग्रेजों ने कलकत्ता को ब्रिटिश भारत की राजधानी घोषित किया था। निरन्तर एक सौ अड़तीस वर्षों सन 1919 तक इसे यह महत्व प्राप्त रहा। इस महानगर को राजा राममोहनराय जैसे समाज-सुधारक, सुभाष चन्द्र बोस जैसे स्वातन्त्र्य योद्धा तथा बंकिम, रवीन्द्र और शरत्चन्द्र सरीखे साहित्यकारों की साधना-भूमि होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्र विशाल भारत, मतवाला और ज्ञानोदय यही से निकलते थे। सन 1657 में अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत करने पर मंगल पाण्डे पुलिस की गोली से यहीं शहीद हुए थे।

कलकत्ता के बारे में यह जानना भी दिलचस्प रहेगा कि यहाँ पहली रेल लाइन सन् 1850 में बिछाई गई थी। सन् 1857 में कलकत्ता विश्व विद्यालय की स्थापना हुई थी। पहली ट्राम गाड़ी जिसे घोड़े खींचते थे, सन् 1880 में चली। टेलीफोन सन 1881 में आया। अब यह भारत का पहला ऐसा शहर है, जहाँ जमीन के नीचे भी रेल चलती है। यही वह नगर है, जहाँ आदमी आदमी को खींचता है। भारत का सबसे बड़ा स्टेडियम ईडेन गार्डन भी यहीं है।

जैन दृष्टि से महत्व : बंगाल में जैनियों का निवास भी शताब्दियों पूर्व से है कुछ पुराने शिलालेखों से ज्ञात होता है कि बिहार प्रदेश के पार्श्व में बसा होने से कई तीर्थकरों का बिहार बंग प्रदेश में भी हुआ था। उनके उपदेशों के प्रभाव से अहिंसक आचार प्रधान सराक जाति का अस्तित्व आज भी बंगाल के कुछ भागों में पाया जाता है। सराक लोग प्राचीन काल के जैन श्रावक ही हैं। वे आज भी भगवान पार्श्व को अपना कुलदेवता मानते हैं तथा शारीरिक हिंसा से ही नहीं बल्कि शाब्दिक हिंसा से भी परहेज रखते हैं।

आज से एक शताब्दी पूर्व यहाँ जैन धर्म के शिक्षण और प्रचार-प्रसार की अच्छी व्यवस्था थी। क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी छह माह तक कलकत्ता में पण्डित कलाधर जी पद्मावतीपुरवाल के पास ठहरे थे और प० ठाकुर प्रसाद जी की सहायता से स्थानीय संस्कृत कॉलिज में प्रविष्ट होकर उन्होंने न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी आत्मकथा [illegible]

में लिखा है कि उन दिनों आज से 60-65 वर्ष पूर्व यहाँ धर्मशास्त्र की चर्चा का अतिशय प्रचार था। यहाँ वयोवृद्ध बाबा अर्जुनदास जी एवं पं० गुलजारीलाल जी लमेचू अच्छे तत्ववेत्ता निवास करते थे। प्रतिदिन प्रातः काल तत्वचर्चा होती थी, जिसमें सौ से अधिक महाशय उपस्थित रहा करते थे।

यहाँ के लोगों की धार्मिक रुचि से प्रभावित होकर ही जैन ग्रन्थ प्रकाशन के क्षेत्र में अग्रणी पं० पन्नालाल जी बाकलीवाल "भारतीय जैन सिद्धान्त-प्रकाशिनी-संस्था" को बनारस से उठाकर कलकत्ता ले आए थे। यहाँ उन्होंने बंगीय अहिंसा परिषद् की भी स्थापना की थी तथा उसकी ओर से "जिनवाणी" नाम से बंगाली भाषा में एक मासिक पत्र का प्रकाशन किया था। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने बंगाल के अनेक जैनेतर विद्वानों को अत्यन्त प्रभावित किया था। अपने प्रभावक कार्यों की वजह से बाकलीवाल जी जैनियों के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कहे जाने लगे थे।

धर्म-प्रचार के लिए कलकत्ता का जैन समाज हमेशा से उदारता पूर्वक प्रचुर आर्थिक सहयोग देता रहा है। उसकी दानशीलता का परिचय देने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। सन 1920 में पर्युषण पर्व में स्थानीय समाज ने पं० उमरावसिंह जी जो बाद में ब्र० ज्ञानानन्द के नाम से मशहूर हुए की अपील पर उन्हें अस्सी हजार रूपए भेंट किए थे। उस निधि से अहिंसा प्रचारिणी परिषद् अस्तित्व में आई थी और "अहिंसा" पत्र का प्रकाशन हुआ था। इस औदार्य की झलक आज भी यहाँ देखी जा सकती है। पर्यूषण पर्व के अन्तिम दिनों में यहाँ पचासों जैन तीर्थक्षेत्रों और संस्थाओं के प्रचारक एवं कार्यकर्ता इकट्ठे होते हैं तथा उनमें से कभी कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता।

अपने समय के उग्र सुधारक एवं मिशनरी साहित्यसेवी ब्र० शीतल प्रसाद जी का भी कलकत्ता से गहरा सम्बन्ध रहा। यहाँ उनकी ससुराल थी। स्थानीय श्री छेदीलाल अग्रवाल की सुपुत्री से उनका विवाह हुआ था। इस नाते उनका यहाँ आना-जाना बना रहता था।

एक रोचक घटना : कलकत्ता से जुड़ी एक रोचक घटना का विवरण "जैन जागरण के अग्रदूत" के एक लेख में मिलता है। अ० भा० दि० जैन महासभा के जन्मदाता राजा लक्ष्मणदासजी (सी. आई. ई.) एक बार यहाँ आए। तब यहाँ घोड़ागाड़ियाँ चला करती थीं। चार घोड़ों की गाड़ी में चलने का अधिकार अंग्रेजों के अलावा अन्य किसी को नहीं था। राजा साहब को यह बात ज्ञात नहीं थी। वह चार घोड़ों की गाड़ी में बैठकर निकल गए। कानून की इस अवज्ञा पर मजिस्ट्रेट ने एक हजार रूपए जुर्माना कर दिया। राजा साहब को यह बात चुभ गई। उन्होंने जुर्माना अदा किया और दूसरे दिन छह घोड़ों की गाड़ी में निकले तो दो हजार जुर्माना कर दिया गया। वह जुर्माना अदा करते रहे और घोड़ों की संख्या बढ़ाते रहे। जिस दिन वह 32 घोड़ों की गाड़ी पर निकले तो मजिस्ट्रेट ने घबराकर वायसराय को इसकी सूचना दी। वायसराय को लाचार होकर 32 घोड़ों की गाड़ी में निकलते रहने का उन्हें सदैव के लिए अधिकारी देना पड़ा। उनकी जिद और सत्याग्रह को देखकर वह दंग रह गया।

लगता है कि राजा साहब की इस स्वाभिमान भरी ठसक की छाप कलकत्ता के जैनियों पर स्थायी रूपसे पड़ी है और उसके दिलचस्प नजारे यदा-कदा उनके स्वभाव में देखने को मिल जाते हैं।

दर्शनीय दि. जैन मन्दिर : किसी भी समाज की सुरुचि सम्पन्नता और समृद्धि का परिचय उसके द्वारा स्थापित संस्थाओं मंदिर, विद्यालय औषधालय, अतिथि-निवास आदि को देखकर प्राप्त किया जा सकता है। कलकत्ता में भी जैन समाज द्वारा संचालित दर्जनों संस्थायें हैं, जिनके रखरखाव और व्यवस्था को देखकर हर्षमिश्रित गौरव का अनुभव होता है।

यहाँ कई दिगम्बर जैन मंदिर हैं। 1-बैशाख लेन पर बड़ा मंदिर विशाल है। आज से 165 वर्ष पूर्व यहाँ दो चैत्यालय हुआ करते थे। सन् 1826 में यहाँ के एक उदारमना जौहरी सेठ हुलासीराय अग्रवाल ने इसका कायाकल्प कराया। वह निःसन्तान थे। उनकी सजातीय एक विधवा बहिन उनकी सेवा सुश्रूषा करती थी। उसकी एक कन्या थी। सेठजी ने उसका

जड़ के सुखी होने में जड़ पदार्थ निमित्त बनते हैं, किन्तु चेतन का सुख प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सेवा, क्षमाशीलता, सरलता आदि सद्गुणों के विकास में है।

विवाह हरसहाय नामक एक नवयुवक से कर उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। यहाँ के अन्य कुछ मन्दिर भी इस परिवार की उदारता से पल्लवित और पोषित हुए हैं।

कलकत्ता के इन्हीं सेठ हुलासीराय हरसहाय अग्रवाल की हमारे नगर फीरोजाबाद में भी कहीं कोई रिश्तेदारी थी, जिसके निमित्त से इनका यहाँ आवागमन होता रहता था। यहाँ उन्होंने कई बीघे जमीन खरीदकर स्थानीय समाज को प्रदान की और उस पर एक त्रैवार्षिक जैन मेला समारम्भ कराया। यह ऐतिहासिक मेला आज तक अपनी उसी अनोखी शान से लगता चला आ रहा है। सम्पूर्ण उत्तर भारत में उसकी अपनी धाक है।

कलकत्ता के इस बड़े मन्दिर का समय-समय पर जीर्णोद्धार और विस्तार होता रहता है। मन्दिर जी में कांच के काम की सजावट देखते ही बनती है। नीचे विशाल हाल है, जहाँ शास्त्र सभा होती है। निर्बल और वृद्धजनों की सुविधा की दृष्टि से अब लिफ्ट भी लग गई है।

कलकत्ता के बड़े जैन मन्दिर के बाद दूसरा स्थान नया मन्दिर को प्राप्त है। यह मन्दिर 120 रवीन्द्र सरिणी, चितपुर स्पर पर अवस्थित है और लगभग 90 वर्ष पुराना है। कहा जाता है कि कलकत्ता में नए विचार और सुधारों का सूत्रपात इसी मन्दिर से हुआ। इसमें संगमरमर का काम दर्शनीय है।

बेलगछिया रोड पर स्थित श्री पार्श्वनाथ उपवन मन्दिर अखिल भारतीय ख्याति का मन्दिर है। पहले इस स्थान पर सेठ हुलासीरायजी का बगीचा था। बाद में यहाँ यह मन्दिर बन गया। इस मन्दिर का नक्शा विक्टोरिया मेमोरियल बनाने वाले इंजीनियर ब्राउन साहब से बनवाया गया था। मन्दिर के सामने सुन्दर सरोवर है। अब भव्य मानस्तम्भ भी बन गया है। इसे देखने के लिए देश-विदेश के काफी पर्यटक आते रहते हैं। कृत्रिम पहाड़, झरने और फुब्बारे से इसकी शोभा बहुत बढ़ गई है।

बड़े मन्दिरजी से आधा मील उत्तर की ओर पुरानी बाड़ी का दि0 जैन मन्दिर भी जीर्णोद्धार के बाद रमणीक और दर्शनीय हो गया है।

उत्तर पाड़ा का जैन मन्दिर भी एक शताब्दी पुराना है। इसका निर्माण फफोतु उ0प्र0 के मूल निवासी लाला धनपतराय जैन पद्मावती पुरवाल ने सन 1897 में कराया था। चिन्सुरा और बाली में भी दो मन्दिर हैं। इन तीनों मन्दिरों का प्रबन्ध बड़ा मन्दिर की कमेटी के जिम्मे है। गत एक दशक में इन सभी मन्दिरों को भी नवीन रूप प्रदान किया गया है।

इधर के तीन चार वर्षों में तीन नए मन्दिरों का भी निर्माण हुआ है :- 1-श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय, डबसन रोड, 2-श्री दि0 जैन मन्दिर, हावड़ा साउथ एवं 3- श्री दि0 जैन मन्दिर, चौरंगी टेरेस। इन तीनों स्थानों पर जैन लोगों के सौ-सौ घर आबाद हो गए हैं। चौरंगी टेरेस के आसपास सम्पन्न जैनों की कोठियाँ हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि लोग मन्दिर-निर्माण में तो लाखों रुपये लगा देते हैं लेकिन मूर्तियों पर उतना ध्यान नहीं देते, पर कलकत्ता के सभी जैन मन्दिरों में विराजमान मूर्तियाँ अत्यन्त आकर्षक और बड़ी अवगाहना की हैं। उनकी मुखमुद्रा से प्रतिपल झरती शान्ति और सौम्यता से दर्शनार्थी को अपार आनन्द मिलता है।

पर्यूषण पर्व में पूजा और आरती के समय इन मन्दिरों में साधर्मी स्त्री-पुरुषों की भारी भीड़ें देखने को मिलती हैं। बड़े मन्दिरजी में तो भक्तिरस से परिपूर्ण दृश्य देखकर मुझे यह लगता रहा कि लोग महात्मा गांधी के शब्दों में यह कहना चाह रहे हैं - मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊंगा।"

धर्म-मार्ग पर आस्था बनाए रखने में मन्दिरों का योगदान अप्रतिम है।

दि0 जैन संस्थाएं : यहाँ के सर्वाधिक जनसंकुल बड़े बाजार के मध्य 10-ए. चितपुर स्पर में स्थित दि0 जैन भवन

[illegible] है ही, किन्तु उसे सुसंस्कृत भी होना चाहिए। संस्कारों के अभाव में [illegible] के लिए बोझ बन जाती है।

में यात्रियों के लिए आवास की सुन्दर व्यवस्था है। यहाँ शादी-विवाह-सभा और सम्मेलन के कार्यक्रम भी सम्पन्न होते रहते हैं। यह भवन चार मंजिला है। इसके पॉचवें तल्ले पर एक सुन्दर बगीचा विकसित किया गया है। लिफ्ट की व्यवस्था है। भवन में दि० जैन शिक्षालय, महावीर पुस्तकालय एवं दातव्य औषधालय भी चल रहे हैं। वर्तमान में श्री श्रवणकुमारजी के निर्देशन मे जैन भवन अपने द्रुत विकास की ओर अग्रसर है।

श्री दि० जैन दातव्य औषधालय की एक शाखा बड़े मन्दिरजी के पास बैशाख लेन में भी चल रही है। औषधालय के दोनों सेवा केन्द्र अपने आयुर्वेदिक होम्योपैथिक और हड्डी-चिकित्सा प्रकल्पों द्वारा हजारों मरीजों को निःशुल्क लाभ पहुंचा रहे हैं।

शिक्षा-संस्थाओं में कॉटन स्ट्रीट-स्थित अपने सात मंजिला भवन में चल रहे श्री दि० जैन हा० सै० स्कूल की गणना कलकत्ता के लोकप्रिय विद्यालयों में की जाती है। यहाँ पन्द्रह सौ छात्र अध्ययनरत हैं। इसी प्रकार श्री दि० जैन बालिका विद्यालय हा० सै० स्कूल 221-महर्षि देवेन्द्र रोड भी अपने शिक्षण स्तर और अनुशासन के लिए मशहूर है। कलकत्ता के दि० जैन समाज के लिए गौरवास्पद इन दोनों संस्थाओं की स्थापना का श्रेय अहिंसा प्रचार समिति को है।

अन्य संस्थाओं मे महावीर शिशु बिहार, महावीर कला-केन्द्र, दि० जैन शिक्षा निकेतन आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

प्रभावना के क्षेत्र में कार्तिकी पूर्णिमा को निकलने वाली रथयात्रा का एक विशिष्ट स्थान है। बड़े मन्दिरजी से चलकर बेलगछिया-उपवन तक पहुचने वाली 'पारसनाथ जुलूस' के नाम से मशहूर यह रथयात्रा भारत में अद्वितीय मानी जाती है। दूर-दूर से आकर साधर्मी लोग इसमें सम्मिलित होते हैं।

पर्यूषण पर्व और स्थानीय समाज : अहिंसा प्रचार समिति विद्यालय-द्वय के संचालन के साथ-साथ पर्यूषण पर्व में विद्वानों को आमन्त्रित करने का दायित्व भी निभाती है। पिछले अनेक वर्षो से सर्वश्री शान्तिलाल बाकलीवाल, कल्याणचन्द्र पाटनी और हजारीमल पाड्या पूरी लगन एवं निष्ठा के साथ समिति की ओर से यह कार्य करते आ रहे है। ये लोग बडे धर्मानुरागी है तथा अपनी सूझबूझ, कर्मठता एवं निर्विवाद कार्य-शैली से यहॉ की धार्मिक गतिविधियों को जीवन्त बनाए रखते है।

महीनों पूर्व से ही विद्वानों से पत्राचार प्रारम्भ कर दिया जाता है। कम-से-कम तीन-चार विद्वानों की आवश्यकता तो यहाँ रहती ही है। सभी विद्वानों को दि० जैन बालिका विद्यालय हा० सै० स्कूल के अतिथि-निवास में ठहराया जाता है। उनकी सेवार्थ एक कर्मचारी दसों दिन पूरे समय के लिए नियुक्त रहता है। समिति उन्हें एक कार भी सुलभ कराती है, ताकि प्रवचन से बचे हुए समय में विद्वज्जन कलकत्ता के विविध आकर्षणों जैसे - विक्टोरिया मेमोरियल, बिड़ला प्लेनेटोरियम, तारामण्डल, इण्डियन म्यूजियम, भूगर्भ रेल मेट्रों, बेलूर मठ, नेशनल लाइब्रेरी आदि का अवलोकन कर सकें।

हम सन् 1977 में पर्यूषण पर्व पर पहले भी यहाँ आ चुके हैं। गत आठ-दस वर्षों के प्रबल आग्रह के बाद इस वर्ष पुनः मन बना लिया था। दसो दिन प्रातः एवं साय हमारे व्याख्यान प्रायः बड़े मन्दिरजी में हुए। शास्त्रसभा में भारी संख्या में श्रोताओं की उपस्थिति और उन्हें दत्तचित्त होकर सूचीपात शान्ति के साथ प्रवचन सुनते हुए देखकर किसी भी वक्ता को प्रसन्नता और सन्तोष होना तो स्वाभाविक ही है। मेरे लिए भी कलकत्ता की स्मृतियाँ सुखद रही हैं। यहाँ के साधर्मी भाई बहिनों के हृदयों मे गुणानुराग और तत्वजिज्ञासा कूटकूटकर भरी है।

यहाँ के वरिष्ठ एवं अनुभववृद्ध कार्यकर्ता श्री जयकुमार जी काला इन दिनों श्वासजनित अस्वास्थ्य के बावजूद प्रतिदिन दोनों वक्त प्रवचनों में उपस्थित होते रहे तथा नित्यपूजन में भी कभी नागा नहीं की। उनके इस धर्म प्रेम एवं युवकोचित उत्साह से भला किसे शक्ति और प्रेरणा प्राप्त नही होगी।

सर्वश्री आदरणीय सेठ हरकचन्द्रजी साहब, भागचन्द्रजी पहाड़िया, शिखरचन्द्रजी दगड़ा बाबु हिम्मतसिंहजी, राजकुमारजी सेठी, धन्नालालजी काला, ब्र० नेमीचन्द्रजी बड़जात्या, कल्याणमलजी झांझरी, देवेन्द्र जैन एडवोकेट, सम्पत छाबड़ा,

संसार के बंधन से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति ही भव्य जीव का सर्वोच्च [illegible] को प्राप्त किया जा सकता है।

सीतारामजी पाटनी तेजराजजी कासलीवाल आदि स्थानीय समाज के ऐसे हस्ताक्षर हैं, जो हर धार्मिक-सामाजिक मोर्चे और मंच पर सबसे आगे रहते हैं। इन सबका स्नेह और सानिध्य मुझे निरन्तर मिलता रहा। स्थानीय विद्वान श्रीमान पं0 पन्नालालजी साहब से मिला प्रोत्साहन तो धरोहर के रूप में मेरे पास सुरक्षित है। इस बार महासभा के कर्णधार, ओज और ऊर्जा के धनी सर्वश्री अमरचन्द्र जी पहाड़िया, भागचन्द्र जी पाटनी, नागरमलजी आदि पर्व में कलकत्ता से बाहर थे। सभा में उनकी अनुपस्थिति बराबर खलती रही।

मेरे अतिरिक्त वयोवृद्ध व्रती विद्वान एवं प्रतिष्ठाचार्य पण्डित महेन्द्रकुमारजी शास्त्री (मेरठ) तथा पं0 मूलचन्द्रजी शास्त्री (टीकमगढ़) भी यहाँ आमन्त्रित थे। उन्होंने साउथ हावड़ा और डबसन रोड के मन्दिरों में प्रवचन किए। प्रबुद्ध श्रोताओं पर दोनों विद्वानों ने गहरी और अच्छी छाप छोड़ी। नया मन्दिर और चौरंगी टेरेस में मुमुक्षु मण्डल की ओर से पं0 ज्ञानचन्द्रजी, विदिशा व उनके एक सहयोगी युवा विद्वान् पधारे थे। मुमुक्षुओं के अतिशय आग्रह तथा सेठ हरकचन्द्रजी साहब की विशेष इच्छा पर चौरंगी टेरेस - स्थित मन्दिरजी में जैनाध्यात्म पर हमारा भी एक प्रवचन हुआ।

पर्यूषण पर्व के अवसर पर जो अन्य समारोह हुए, उनमें शाकाहार गोष्ठी, दि0 जैन बालिका विद्यालय की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत 'प्रकाशपुंज महावीर : पंचकल्याणक नृत्य नाटिका'' एवं बेलगछिया-उपवन के जलधारा महोत्सव ने बहुत प्रभावित किया। नृत्य नाटिका ने तो दर्शकों को सम्मोहित और मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया था।

पर्व में साठ से अधिक भाई-बहिनों, जिनमें युवाओं की संख्या भी अच्छी थी, ने दस लक्षण-व्रत किए थे। उन्होंने दसों दिनों अनशनपूर्वक आत्माराधन किया तथा वे सभी गृहवास से विरत रहें। उनका अधिकांश समय धर्मध्यान में और मन्दिरजी में ही व्यतीत हुआ। पूर्णिमा के दिन समाज ने शोभा यात्रा निकालकर उन सबका भावभीना सम्मान किया था।

अन्त में, बस इतना और... : कलकत्ता बडा शहर तो है किन्तु ज्यादा खूबसूरत नहीं है। आदमियों से यहाँ की धरती और अट्टालिकाओ से यहाँ का आकाश पटा.पड़ा है। ज्यों-ज्यों जनसंख्या का घनत्व बढ़ रहा है, त्यों-त्यों जगह की तंगी, प्रदूषण, परिवहन और यातायात आदि की समस्यायें भी बढ़ती जा रही है। भूगर्भ ट्रेनो के विस्तार की योजना इसी अभाव की पूर्ति की दिशा में उठा एक कदम है। जो नगर कभी 'सिटी ऑफ ज्वॉय' कब्लाता था, वह आज ''सिटी ऑफ क्राइसेस'' बनता जा रहा है। यह सब होने पर भी यह सबके आकर्षण का केन्द्र तो है ही। जैन लोग, जो तीर्थराज सम्मेदशिखर या चम्पापुर, मन्दारगिरि, खण्डगिरि, उदयगिरि आदि की यात्रा पर निकलते हैं भी कलकत्ता देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। न देख पायें तो मन में एक कसक-सी बनी रहती है।

आदमी पढ़-लिखकर उतना नहीं सीख पाता, जितना घूम-फिरकर सीखता है। इसी दृष्टि से आप भी कभी कलकत्ता के सैर-सपाटे के लिए निकलिए, यहाँ के दिग0 जैन भवन में ठहरिए तथा इसी भवन की ओर से प्रकाशित श्री धर्मचन्द्र जी सरावगी की पुस्तक ''यह कलकत्ता है'' को गाइड बुक के रूप में अपने साथ रखकर एक बार इस भावना के आलोक में यहाँ की परिक्रमा कर जाइए-

दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाजार से गुजरा हूँ खरीदार नहीं हूँ।।

आभार : कलकत्ता के धर्म-वत्सल सम्पूर्ण समाज के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके सौजन्य और सेवा-भाव से मुझे यह सब सोचने, कहने या लिखने का अवसर मिला है। भाई रमाकान्त झा को बहुत बहुत धन्यवाद। यह हमारे कलकत्ता-प्रवास में निरन्तर हमारे साथ रहे और हमें वहाँ खूब सैर कराते रहे। प्रणाम उन सबको, जो हमारे आवास पर आते रहे और जिनसे हमें अनेक जानकारियाँ मिलती रहीं।

□

आइए, चलें दक्षिण की ओर (मई-जून, 1981)

(एक यात्रा-वर्णन)

यात्रा का भी अपना एक आनन्द है। किसी स्थान विशेष पर अतीत में घटी कुछ घटनाओं अथवा आकर्षक जिनबिम्बों के स्मरण या दर्शन से कभी-कभी ऐसी प्रेरणा मिलती है, जैसी पुस्तकों या प्रवचनों से भी नहीं मिलती। पण्डित आशाधरजी के शब्दों में तीर्थयात्रा सम्यग्दर्शन की विशुद्धि में निमित्त है। भैय्या भगवतीदासजी ने इसीलिए तीर्थयात्रा करते रहने की सलाह दी है :-

'तीन लोक के तीरथ जहाँ,
नितप्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन-वचन-काय साहित सिर नाय
वन्दन करहिं भविक गुण गाए।।'

आज हम अपनी एक ऐसी ही तीर्थयात्रा की मधुर स्मृतियों का आनन्द ले रहे हैं। सन् 1981 में ग्रीष्मावकाश होते ही हमने सपरिवार दक्षिण भारत की यात्रा के लिए निकलने का निश्चय किया था। हमने चार यात्रियों का एक सर्कुलर टिकट बनवा लिया, जिसके अनुसार हमें अपनी यात्रा उड़ीसा की ओर से शुरू करनी थी। अपनी इस यात्रा में हमने पांच सिद्धक्षेत्रों एवं बीस अतिशय क्षेत्रों की वन्दना की थी। भारत के पांच बड़े शहरों और दो प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थों का भी अवलोकन किया था। अनेक विद्वानों एवं भट्टारकों से भी हमारा सम्पर्क हुआ। निश्चय ही हमारी यह यात्रा बड़ी सुखद रही थी।

10 मई से 19 जून तक की इस यात्रा में हम अपने मनोभाव और यात्रा का विवरण प्रतिदिन एक नोट बुक में लिखते रहे थे। आज बारह वर्षों के बाद यकायक वह नोटबुक हमारे हाथों में आई तो यात्रा के दृश्य किसी फिल्म की तरह हमारी आंखों के पर्दे पर घूमने लगे। पढ़कर पुरानी स्मृतियां हरी हो गई।

हम पहले से योजना बनाकर चले थे। जहाँ-जहाँ परिचित लोग थे, उनसे पहले से ही पत्र-व्यवहार कर लिया था। हर जगह उसका लाभ भी हमें मिला। फिर भी लम्बी यात्रा में कुछ असुविधायें तो होती ही हैं। उनसे यदा-कदा खीझ भी होती है किन्तु वह खीझ रास्ते के प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर मनोरम दृश्यों के सामने ज्यादा देर तक टिक नहीं पाती। यही कारण है कि यात्रा में कष्टों की परवाह कोई नहीं करता।

घर से प्रस्थान : 10 मई। कल कॉलिज में शिक्षक संघ ने एक बैठक का आयोजन कर हमें शुभकामनायें प्रदान की थीं कि हमारी यह यात्रा सकुशल एवं निर्विघ्न सम्पन्न हो। आज चलने से पूर्व पहला तिलक मा० धर्मचन्द्रजी ने और उसके बाद बहिनों ने किया। मन्दिरजी में मोहल्ले के कुछ लोग उपस्थित थे। उनके चेहरों पर ऐसी प्रसन्नता थी कि यात्रा पर मानों हम नहीं, वे ही जा रहे हों। यही तो है भारतीय संस्कृति, जिसके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। हमारे शास्त्रों में अनुमोदना को भी पुण्य का हेतु कहा गया है।

घर से प्रातः 8 बजे निकले। हमारे साथ हमारी धर्मपत्नी एवं दो पुत्रियां भी थीं। हमें टूण्डला पर नीलांचल पकड़नी थी। बस द्वारा टूण्डला आए। चार-पांच लोग बिठाने भी आए थे। 'नीलांचल' ढाई घण्टे विलम्ब से आई। भीड़ बेशुमार थी। आरक्षित 'थ्री टायर' बोगी में भी कैसे चढ़ना हो पाया, इसका ठीक-ठीक वर्णन तो कोई प्रत्यक्षदर्शी ही कर सकता है।

डिब्बे में बैठने की जगह तो टूण्डला से ही मिल गई थी लेकिन सामान और सवारियों को चढ़ाने में नानी याद आ गई। एक बार तो ऐसा लगा कि कोई सामान या सवारी चढ़ने से रह न जाए लेकिन भला हो पहुंचाने वालों का, जिन्होंने ठेल-ठेलकर सबको चढ़ा ही दिया।

भगवान के गुणों के स्तवन से मोह के बंधन ढीले पड़ जाते हैं। मोह के पलायन करते ही शेष कर्म भी हथियार डाल देते हैं।

लेटने के लिए जगह वाराणसी पर ही मिल सकी, रात के बारह बजे। फिर तो खूब नींद आई। दिनभर के थके हुए जो थे। हर स्टेशन पर भीड़ चढ़ती-उतरती रही। टूण्डला से भुवनेश्वर तक कण्डक्टर के कहीं दर्शन ही नहीं हुए। भीड़ से मगज मारने की अपेक्षा डिब्बे से गायब रहने में ही उसने अपना हित देखा होगा। यात्रियों के हित की चिन्ता कौन करे?

सुबह जब हम बर्थ से उठे, तब गाड़ी उड़ीसा की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी। यहाँ के रास्ते हरे-भरे हैं। कटक से पूर्व महानदी का बड़ा विस्तार है। काफी लम्बा पुल है। नारियल और ताड़ के पेड़ों की बहुलता है। मिट्टी का रंग लाल है।

खड़गपुर तक गाड़ी चार घण्टे विलम्ब से चल रही थी किन्तु भुवनेश्वर तक आते-आते उसने तीन घण्टे कवर कर लिए। हम लोग 11 मई को सायं पौने छह बजे भुवनेश्वर स्टेशन पर उतरे। रात्रि-विश्राम खण्डगिरि में किया। स्टेशन से रिक्शे आते-जाते हैं। वह स्थान स्टेशन से पांच मील पश्चिम में है। धर्मशाला ठीक-ठाक है। रात्रि को नींद अच्छी आई।

खण्डगिरि-उदयगिरि की वन्दना : खण्डगिरि और उदयगिरि दो पहाड़ियां हैं। दोनों के बीच में एक तंग घाटी है। दोनों पहाड़ियों पर पत्थर काटकर अनेक गुफाओं और मन्दिरों का निर्माण किया गया है। प्राचीन होने से इनका महत्व है। यह रचना ईसा पूर्व की है।

हम लोग पहले खण्डगिरि की ओर चलें। इसकी ऊँचाई 133 फीट बताई जाती है। खड़ी चढ़ाई है। सीढ़ियां बनी हुई हैं। पहाड़ी पर दो मन्दिर हैं - एक आदिप्रभु का और दूसरा पार्श्वप्रभु का। भगवान पार्श्वनाथ की ग्यारह फीट अवगाहना की खडगासन प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ हैं सम्वत् 2007 में स्थापित कराई गई है।

पर्वत पर मुनियों के ध्यान करने योग्य अनेक गुफायें बनी हुई हैं, जिनमें से अनन्त गुफा, इन्द्रकेसरी गुफा, आदिनाथ गुफा, बारहभुजी गुफा, नवमुनि गुफा आदि के नाम उल्लेख्य हैं। इन गुफाओं में यक्ष-यक्षिणी सहित अनेक प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। इनमें से कुछ जीर्ण हो चुकी हैं। पुरातन की दृष्टि से इन सभी गुफाओं और प्रतिमाओं का बड़ा महत्व है। अनेक शिलालेख हैं, जिनसे जैन इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

पर्वत पर आकाश-गंगा, गुप्त गंगा, श्याम कुण्ड, राधा कुण्ड आदि जलस्रोत भी हैं।

जब हम बारहभुजी गुफा पर पहुंचे तो वहाँ एक गैरिक साधु ध्यान कर रहा था। हिन्दू और बौद्ध भी इन गुफाओं को पवित्र मानते हैं। श्याम कुण्ड गहरा है और उसके तल पर काई जम रही थी। रास्ते में छोटे-छोटे कीड़े वस्त्रों पर और मुंह पर चिपक जाते थे। कीड़ों की वजह से आगे के कुण्डों को देखने नहीं गए। मन ही नहीं हुआ, क्योंकि जैसे स्वच्छ-निर्मल जल की कल्पना थी, उसके दर्शन तो वहाँ होने नहीं थे। उस पर भी कीड़ों की भरमार। आगे बढ़ने की इच्छा हो भी तो कैसे!

सामने उदयगिरि है यह 110 फीट ऊँची है। इसका एक पुराना नाम कुमारी पर्वत भी है। यहाँ भगवान महावीर का समवसरण आया था तथा यहाँ से पांच सौ मुनियों के मोक्ष जाने का उल्लेख मिलता है।

यहाँ भी अनेक गुफायें हैं। बढ़िया-बढ़िया उनके नाम हैं, जैसे - अलकापुरी, जयविजय, रानीनूर, स्वर्ग-मध्य-पाताल आदि। गणेश गुफा और हाथी गुफा भी है। गणेश गुफा के बाहर दो बड़े-बड़े पाषाण गज और भीतर गणेश जी की मूर्ति है। हाथी गुफा में सम्राट खारवेल के समय का 2200•वर्ष प्राचीन एक शिलालेख है।

हमने रानीनूर गुफा में अन्दर प्रविष्ट होकर अन्य अन्तर गुफायें भी देखीं अर्थात गुफा में घुसने भर का ऊपर एक बड़ा सूराख है। उससे दूसरे खन पर चढ़ जाते हैं और फिर किसी नए सूराख से नीचे नई गुफा में आ जाते हैं। यह गुफा दो खन की है।

गुफायें अनेक हैं। छोटी-छोटी हैं। प्राचीन हैं। इन गुफाओं में कभी मुनिगण ध्यान करते होंगे। हमने भी चाहा कि किसी एक गुफा में थोड़ी देर आंख बन्द करके बैठें और देखें कि कैसा लगता है किंतु हर गुफा में बदबू और चमगादड़ थे।

जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रिया में सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही अहिंसक हो सकता है।

दो-ढाई हजार साल पहले इन गुफाओं में बैठने पर जरूर तबियत लगती होगी। तब न उनसे लॉन झरता होगा और न सीलन-बदबू ही उनमें होगी। निःसन्देह अच्छा ध्यान जमता होगा और यहाँ के शान्त-नीरव वातावरण में आत्मा का अनहद नाद सुनाई पड़ता होगा।

दोनों पहाड़ियों के दर्शन कर एक सिद्धक्षेत्र की वन्दना का संतोष मिला। आज के हम लोग ही एकमात्र यात्री थे पुजारी ने मन्दिरों के ताले खोले और सफाई की। पूजा भी शायद होती ही होगी पर हमें तो उसके लक्षण दिखे नहीं।

भुवनेश्वर की सैर : आज 12 मई है। बन्दना से लौटकर बच्चों ने भोजन तैयार किया। खाना खाने के बाद थोड़ा सा विश्राम किया और ठीक साढ़े बारह बजे सामान बांध/समेट कर हम लोग यहां से चल दिए। यहाँ के व्यवस्थापक पं0 जसोधरजी के सुपुत्र अपने निजी थ्रीव्हीलर में रेलवे स्टेशन, भुवनेश्वर तक पहुंचा गए।

यहाँ आते ही हमने सबसे पहले मद्रास के लिए आरक्षण की स्थिति की पड़ताल की। 14 मई का जनता एक्सप्रेस से आरक्षण मिला। सुपरफास्ट कोरोमण्डल एक्सप्रेस में तो कोई जगह अगले पन्द्रह दिनों तक खाली नहीं थी।

भुवनेश्वर मन्दिरों का शहर कहलाता है। यहाँ आसपास अनेक दर्शनीय स्थल हैं। उड़ीसा के टूरिस्ट डेवलपमेण्ट कारपोरेशन की बसे घूमने के लिए सर्वोत्तम साधन हैं। ऐसी ही एक बस से हम धौलगिरि, कोणार्क और पिपली के लिए रवाना हुए। पन्द्रह रुपये प्रति सवारी टिकट है। बस लगभग छह घण्टे भ्रमण कराती है। एक गाइड साथ रहता है। लाउडस्पीकर से वह हर स्थान का परिचय कराता चलता है। बीच में सुगम संगीत के रिकार्ड बजते रहते हैं।

धौलगिरि : यह बस सबसे पहले धौलगिरि पहुची। यहाँ के मैदानी भाग में कभी कलिंग का महाविनाशकारी युद्ध हुआ था, जिसमें लाखो की संख्या में नरसंहार हुआ। सम्राट अशोक को इस घटना से बड़ा पश्चाताप हुआ और उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। आज स्मृतिस्वरूप एक बौद्ध मन्दिर बना हुआ है, जिसके चारों ओर चार द्वार हैं। सीढ़ियों से चढ़कर पहुंचना होता है। हर द्वार के सामने महात्मा बुद्ध की चित्ताकर्षक प्रतिमायें हैं- दो बैठी हुई, एक खड्गासन और एक लेटी हुई मुद्रा में। सम्राट अशोक के हृदय-परिवर्तन के दृश्य उकेरे गए हैं।

यह स्थान अब उड़ीसा के रमणीय स्थलों में है। आसपास के दृश्य बड़े मोहक हैं। दूर-दूर मीलों तक हरियाली छाई हुई है। लगता है, जैसे सारे भू-भाग को धानी, चहचहे हरे और मूँगिया रंग के गलीचों से सजाया गया हो। पास में 'ताया' नदी सांप की तरह बलखाती, इठलाती बह रही है। फिल्मांकन-योग्य दृश्य है। मन प्रसन्न हुआ। यहाँ के व्यवस्थित परिवेश की प्रशंसा करनी ही होगी।

कोणार्क : विश्वविख्यात कोणार्क के सूर्य-मन्दिर पर बस का दूसरा पड़ाव था। सूर्य-मन्दिर की कला के तो कहने ही क्या हैं! शिल्पकार की छेनी ने कवि की लेखनी को मात दे दी है। हर रस यहाँ है। बूढ़े नवग्रहों के दर्शन करें, जवान कामशास्त्र पढ़े और बच्चे पत्थर की मूर्तियों को देखकर खुश हों।

कोणार्क के सूर्य मन्दिर का निर्माण सन् 1250 में राजा नरसिंह देव ने करवाया था। कहा जाता है कि इसे बनाने में 12 हजार कारीगरों ने 12 वर्षों तक कार्य किया था। यद्यपि यह मन्दिर आज भग्न-दशा में है, तथापि भग्न होते हुए भी सम्पूर्ण है। यहाँ की कारीगरी उस समय की उड़ीसी स्थापत्य कला का सर्वोत्तम नमूना है।

यह मन्दिर 24 पहियों और 7 घोड़ों से युक्त सूर्य-रथ के रूप में है। इतना जीवन्त है कि लगता है, अभी घोड़ों के खुरों से धूल उड़ेगी और यह रथ सूर्य को लेकर आकाश की यात्रा पर निकल पड़ेगा। उदय होते और अस्त होते सूर्य की मूर्तियां देखते ही बनती हैं। प्रेम और लड़ाई, जीत और हार, शिकार, व्यापार, गजारोही सैनिक, नाचते गाते नर्तक आदि के दृश्य कलाकार की उंगलियों का स्पर्श पाकर जीवन्त हो उठे हैं। यहाँ की बोलती हुई बेजोड़ कला को देखने के लिए

प्रतिवर्ष हजारों देशी-विदेशी दर्शक आते रहते हैं।

यदि इस सूर्य-मन्दिर की ठीक से सार-संभाल की गई होती तो इसकी गणना ताजमहल की तरह संसार के आश्चर्यों में की जाती।

यहाँ से दो किलोमीटर पर समुद्र है कहते हैं कि पहले सूर्य-मन्दिर के बगल में ही बहता था किन्तु अब खिसक गया है। नाम है 'चन्द्रभागा'। क्षितिज तक पानी ही पानी दिखाई देता है, पानी के अलावा कुछ नहीं। बड़ी-बड़ी उत्ताल तरंगे सफेद बादलों के पहाड़-सी बनातीं, किनारे तक आतीं और वहाँ खड़े लोगों को घुटनों तक भिंगो-भिंगो जातीं। बच्चे, स्त्रियां प्रौढ़ सब आनन्द-मग्न हो भींग रहे हैं। लगता है, लोगों का उमंगभरा उत्साह ही यहाँ तरंगित हो रहा है। बच्चे पानी में लकड़ी फेंकते हैं किन्तु पानी का प्रवाह उसे बाहर फेंक देता है और बच्चे पुनः उसे लपक लेते हैं। उनके लिए यह खेल भी है और विनोद भी।

पिपली गांव : मार्ग में हमने पिपली गांव भी देखा। यह गांव उड़ीसा में कढ़ाई के कट-वर्क के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ दीवार पर सजाने वाली वस्तुएं (वाल हैंगिंग) और छतरियां तैयार की जाती हैं। कपड़ों पर रंग-बिरंगी डिजाइनें देखते ही बनती हैं। अपने हस्तशिल्प के कारण यह गांव दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र है।

हमें बताया गया कि भुवनेश्वर का राजकीय संग्रहालय भी दर्शनीय है। यहाँ 8वीं से 10वीं सदी की अनेक जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। समयाभाव से हम नहीं देख सके।

रात्रि को साढ़े आठ बजे बस ने हमें रेलवे स्टेशन पर ही वापिस छोड़ दिया। हम तुरन्त 9 बजे ही तिलचर-पुरी पैसेंजर से पुरी के लिए चल पड़े। 13 मई को प्रातः हम पुरी में थे।

जगन्नाथपुरी : पुरी में हम लोग सेठ तोताराम बगड़िया धर्मशाला में ठहरे। यहाँ आते ही पण्डों ने चक्कर काटना शुरू कर दिया। रेल से उतरने से लेकर धर्मशाला पहुंचने तक ये परछाई की तरह लगे रहे हैं। यहाँ पण्डों से पिण्ड छुड़ाने में भी बड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

जगन्नाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर देखा। अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। सैकड़ों श्रद्धाभिभूत दर्शनार्थी वन्दना-परिक्रमा कर रहे थे। हर वेदी पर प्रसाद वितरित करने वाले, सिर पर लकड़ी छुआकर आशीर्वाद देने वाले पण्डे हाथ फैलाते/पसारते रहते हैं। यहाँ यात्रियों की हर एक मण्डली के पीछे दो-दो पण्डों का औसत होगा। आशीर्वाद भी यहाँ मुफ्त में नहीं मिलता।

यह हिन्दुओं के चार धामों में से एक है। मन्दिर बहुत विशाल है। इसके शिखर पर नीलचक्र सुशोभित है। इस मन्दिर के दक्षिण द्वार के बाहर दीवाल में भगवान ऋषभदेव की मूर्ति विराजमान हैं जैन लोग उसके दर्शन अवश्य करते हैं। जनश्रुति है कि इस मन्दिर का निर्माण सम्राट खारवेल ने 'कलिंग जिन' की मूर्ति को विराजमान कराने के लिए किया था।

शाम को पुरी के समुद्र-तट पर बैठे। जो दृश्य कल कोणार्क में था, कुछ वैसा ही आज यहाँ दृष्टिगत हुआ। यहाँ का समुद्र-तट दुनिया के सर्वोत्तम समुद्र-तटों में गिना जाता है। सुबह का दृश्य दर्शकों का मन मोह लेता है। यहाँ की जलवायु न तो अधिक ठण्डी है और न अधिक गरम। समुद्र के किनारे अनेक गैस्ट हाउस हैं।

आज दोनों वक्त गर्म भोजन खाने को मिला। तृप्ति का अनुभव हुआ। कल पुनः तीस घण्टे रेल में बैठना है।

14 मई। प्रातः तीन बजे पुरी की धर्मशाला छोड़ दी। तिलचर पैसेंजर ने 7 बजे भुवनेश्वर पहुंचा दिया। प्रथम श्रेणी के प्रतीक्षालय में प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त हुए। स्नान किया, कपड़े धोए, माला फेरी और भोजन किया।

जनता एक्सप्रेस सही समय पर आ गई। खुरदा रोड से फीरोजाबाद का एक युवक वेदप्रकाश भी इसी बोगी में चढ़ा।

उसे अपने व्यवसाय के सिलसिले में ब्रह्मपुत्र तक जाना था। शिष्य-धर्म का निर्वाह करते हुए रास्ते भर सबकी सेवा करता रहा।

मौसम अपेक्षाकृत गर्म था किन्तु दोपहर 3 बजे के बाद थोड़ा सुहावना हो गया। रात्रि को साढ़े आठ बजे तक आपस में गपशप करते रहे। फिर सब लोग सोने के लिए अपनी-अपनी बर्थ पर चले गए।

15 मई। सुबह आंख खुली तो गाड़ी आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी नदी के पुल पर चल रही थी। बड़ा चौड़ा विस्तार है नदी का। किनारे पर सैकड़ों स्त्री-पुरुष नहा रहे थे। नहाने की इच्छा तो अपनी भी थी, पर रेल में नदी का जल कैसे लाते! नहाने का डौल न बैठना भी यात्रा की एक मजबूरी है।

हरीतिमा तो आन्ध्र में भी है किन्तु उड़ीसा-सरीखी नहीं। इधर की दृश्यावली भी अधिक आकर्षक नहीं है।

विजयवाड़ा पर गाड़ी 10 बजे आई - तीन घण्टे विलम्ब से। यह नगर कृष्णा नदी के किनारे पर बसा हुआ है। कृष्णा-गोदावरी आन्ध्रप्रदेश की ऐसी ही शोभा है, जैसी गंगा-जमुना उत्तरप्रदेश की है।

दिन की यात्रा में कुछ लोग तो दोपहरी सोकर निकाल देते हैं, पर हमें नींद नहीं आती। हम रास्ते के दृश्यों से मन बहलाने की कोशिश करते रहते हैं।

ये पूरा रास्ता अनाकर्षक है। धूल, धुंध, धुंआ, ऊसर और बंजर से ये मार्ग भरा हुआ है। पेड़ों के नाम पर प्रायः ताड़ के पेड़ मिलते हैं। पतला, सीधा और लम्बा तना, ऊपर थोड़ा-सा गुच्छा। छाया का नाम-निशान नहीं।

जब गाड़ी ने गुंडूर स्टेशन छोड़ा तो हमने डिब्बे में बिखरे सामान को समेटना शुरू कर दिया। लम्बा सफर हो और हो आरक्षण तो रेल में भी एक घर-सा बस जाता है। इधर की एक दिक्कत यह है कि यहाँ स्टेशनों पर खाने-पीने की सूखी चीजें नहीं मिलतीं। सायं 7 बजे जैसे-तैसे गाड़ी मद्रास सेन्ट्रल पर पहुंची।

मद्रास में दि० जैन धर्मशाला कहाँ, किस गली बाजार में है, यह हमें ज्ञात नहीं था। बहुत तलाशने पर एक तांगेवाला मिला, जो जानता था। धर्मशाला में प्रबन्धकों ने एक छोटा-सा हवादार हॉल दे दिया। सबसे पहले तबियत से नहाए। सारा बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। नहाकर आराम मिला। रात को बहुत अच्छी नींद आई।

दक्षिण का सांस्कृतिक द्वार : मद्रास : 16 मई। मद्रास के दि० जैन धर्मशाला का ठिकाना है - सुब्रामनिया मुदली गली। यहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है, साफ-सुथरा और भव्य। भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी की तीन फीट की अवगाहना वाली मूलनायक प्रतिमा मनोज्ञ है। दर्शन में भाव लगते हैं। धर्मशाला में पानी का अच्छा प्रबन्ध है।

मद्रास को दक्षिण का सांस्कृतिक द्वार कहा जाता है। यहाँ के निकटवर्ती गांवों में कभी जैनों की अच्छी संख्या रहती थी। आज भी वहाँ कुछ अच्छे जैन मन्दिर हैं। यहाँ के निवासियों ने अपनी परम्परा और वेशभूषा को आज तक अक्षुण्ण बनाए रखा है।

भोजनादि से निवृत्त होकर हम लोग शहर घूमने निकले। यहाँ से एक दि० जैन युवक चन्द्रकुमार को साथ ले लिया। उसके दिशा-निर्देशन में निम्न स्थानों का अवलोकन किया :-

दादाबाड़ी : यह श्वेताम्बरों का बड़ा मन्दिर है। बाहर एक एकड़ में बगीचा है। सात-आठ हजार लोग आ जायें, इतना बड़ा सभा-भवन है। यात्रियों के ठहरने के लिए कमरे हैं। घड़े के ठण्डे पानी का प्रबन्ध है। महावीर जयन्ती पर यहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर भाई हजारों की संख्या में एकत्र होते हैं।

स्नेकपार्क : यहाँ पचास पैसे का टिकट लेना पड़ता है। पचासों किस्म के सांप यहाँ हैं। पानी के सांप, उड़ने वाले

हे प्रभो! आपकी स्तुति से मेरे समग्र पाप क्षण भर में उसी प्रकार समाप्त हों, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से रात्रि का सघन अंधकार नष्ट हो जाता है।

सांप, कोबरा, हरे-पीले सांप, बिना जहर के सांप आदि। कुछ विसखपरी भी थीं। एक विसखपरी ने हमारे सामने ही एक मेढ़क को अपना आहार बना लिया। 'जीवः जीवस्य भोजनम्'

मिनी जू : इसे चिल्डरन्स कार्नर भी कहते हैं। यहाँ बीस पैसे का टिकट है। यहाँ भांति-भांति के पक्षी, चिड़ियाँ, तोते, सफेद-भूरे कबूतर, चीतल-सांभर, हिरन, खरगोश, चीते, नीलगाय, लोमड़ी, बन्दर, सफेद-काले लंगूर, हाथी, मगर, कछुआ, रीछ, बारहसिंघे आदि देखने को मिले। इस समय दर्शकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र था - साढ़े तीन माह का हाथी का बच्चा (जन्मः 29 जनवरी 1981), कोमल, गुदगुदा, ठिगना और स्फूर्तिमय।

राजाजी का स्मारक : इस युग के चाणक्य एवं भारत के प्रथम गवर्नर जनरल तथा मद्रास के भूतपूर्व मुख्यमंत्री के इस स्मारक में उनका एक छोटा स्टेच्यू एक गोलाकार हॉल में लगाया गया है। दीवालों पर उनके जीवन की मुख्य घटनाओं को बड़े तैलचित्रों तथा अन्य फोटो-पोट्रेट्स आदि के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। हॉल में हवा का संचार इतना है कि कुछ देर यहाँ बैठने को जी चाहता ही है।

ऐसी गरम दोपहरी में भी हजारों लोग यहाँ घूम रहे थे। मनुष्य में 'जिज्ञासा' नाम की प्रवृत्ति कितनी जोरदार है कि वह उसे गर्मी-सर्दी या बरसात की बाधाओं की परवाह ही नहीं करने देती।

मैरीना बीच : यह विश्व का दूसरा सबसे लम्बा समुद्रतट है। यह लगभग सोलह किलोमीटर लम्बा है। मार्ग बड़ा सुहावना है। मीलों तक बस समुद्र के किनारे-किनारे चलती है। तैरती हुई नौकाओं और जहाजों को देखना अच्छा लगता है। इस पूरी पट्टी पर मद्रास-निगम द्वारा पार्किंग की गई है। हरी-हरी घास के लॉन, अनेक स्टेच्यू, आकर्षक द्वारों आदि से दृश्य बड़ा लुभावना बन गया है। तट पर अन्ना की समाधि भी चित्ताकर्षक है। यह स्थान 'अन्ना स्क्वायर' कहलाता है, क्योंकि यहाँ तमिलनाडु के भू०पू० मुख्यमन्त्री अन्नादुराई की समाधि है। यह स्क्वायर एक सुन्दर पार्क के मध्य स्थित है।

फोर्ट म्यूजियम : यह दो मंजिला है और इसमें नौ कक्ष हैं, जिनमें अंग्रेजों के शासनकाल के हथियारों, सिक्कों, पोट्रेट्स, पोशाकों, चीनी के बर्तनों, कलात्मक चित्रों, स्टेच्यू, मैसूर की कलाकृतियों, मद्रास-अंचल के पिकनिक स्पॉट्स तथा पर्वतीय सौन्दर्य से भरे चित्रों का संकलन है। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यहाँ का आर्कोट जिला अधिक समृद्ध प्रतीत होता है।

आज हमने बस द्वारा लगभग पचास किलोमीटर का भ्रमण किया। नया-पुराना मद्रास शहर दृष्टिपथ में आ गया। मद्रास विश्वविद्यालय का विशाल भवन और हाईकोर्ट की विशाल शाही इमारत को भी सरसरी नजर से देखा। यहाँ चर्च बहुत हैं। रास्ते में अनेक चर्च दिखाई दिए।

समुद्र से पहले एकाध मील तक तो बालू ही बालू है। बीच-बीच में पानी पिलाने वाले बैठे रहते हैं। केवल चार हाथ गहरा गड्ढा खोदकर लोग मीठा पानी निकाल लेते हैं तथा दस पैसा प्रति यात्री पिलाते हैं। यह धरती भी नीलकण्ठ है। पास में बहने वाले समुद्र का सारा खारापन स्वयं सोख लेती है तथा अपने पुत्रों को मीठा जल पिलाती है। कोई सीखना चाहे तो यह कोई छोटा पाठ नहीं है।

ठगई और मंगतापन की बीमारी इस पूरे देश में है और मद्रास भी उससे अछूता नहीं है।

यहाँ बसों में ड्राइवर के बाईं ओर की सीटों पर प्रायः महिलायें और दाईं ओर की सीटों पर पुरुष बैठते हैं। मद्रास में महिलायें नाक में दाहिनी ओर आभूषण पहनती हैं। जबकि हमारे यहाँ बाईं ओर पहनने का रिवाज है। प्रायः स्त्रियां वेणी में पुष्प गूंथना पसन्द करती हैं।

सुबह ग्यारह बजे निकले थे, सायं पांच बजे धर्मशाला पर आ गए। ग्रीष्म ऋतु की यह दोपहरी इतने बढ़िया ढंग से निकल जायेगी, यह कल्पनातीत था। साथ गए युवक चन्द्रकुमार को 21/- दिए तो बहुत खुश हो गया।

भगवान के गुणानुवाद से चित्त को शान्ति मिलती है और वह विकार-मुक्त होने लगता है।

नहा-धोकर खुली हवा में सोने छत पर चले गए। कमरे में पंखा चलते रहने पर भी उमस रहती है।

17 मई। मद्रास की दुकानों के बोर्ड या तो तमिल में है या अंग्रेजी में। हिन्दी का व्यवहार बहुत कम है। जैन लोग हिन्दी समझ लेते हैं। वे पूजन-भजन हिन्दी-संस्कृत में ही पढ़ते/बोलते हैं।

यहाँ के मूल निवासी हिन्दी नहीं जानते। यहाँ टूटी-फूटी अंग्रेजी से या इशारों से या तमिल अथवा कन्नड़ के दो-चार शब्द बोलकर काम चलाना पड़ता है। अंग्रेजी में पूछने पर भी तरकारी मण्डी का पता नहीं चला। किन्तु 'काई अंगड़ो एल्लि' कहने पर तुरन्त ठिकाने तक पहुंचना सम्भव हो गया। मद्रास की विशेषता यही है कि यहाँ के लोगों ने अपनी भाषा, संस्कृति, खान-पान, पहनावा आदि को क्षतिग्रस्त नहीं होने दिया है। हां, हिन्दी के प्रति दुर्भाव और घृणा अवश्य खटकने वाली बात है।

मान्यवर पं0 मल्लिनाथजी शास्त्री के घर पर भी गए। वह गांव गए हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में भी उनके सुपुत्र श्री जिनेन्द्रदास ने अच्छा आतिथ्य किया। उनकी विनम्रता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह यहाँ किसी सरकारी सेवा में हैं।

भोजनादि से निवृत्त होकर मद्रास-बंगलौर एक्सप्रेस से रवाना हुए। गाड़ी में बैठने की जगह मिल गई थी। किन्तु रास्ते में काफी यात्री चढ़ते रहे। सात घण्टों के लिए अपनी सीट से चिपक कर रह गए।

मद्रास से बंगलौर का रास्ता प्रायः चट्टानी है। जोलारपट्टे जंक्शन से पूर्व दो नदियाँ दिखीं किन्तु उनमें पानी नहीं था। हमारी पुत्री ने उन्हें बालू की नदी नाम दिया। मौसम सुहावना था। पसीने का नाम नहीं था। बरसात हो रही थी। हवा ठण्डी थी। सायं 8.20 पर बंगलौर आ गए। यह शहर मद्रास से बिल्कुल भिन्न है। एक आधुनिकतम शहर, जैसे नई दिल्ली, की छवि दिखाई देता है।

वातानुकूलित शहर : बंगलौर : चिकपेठ की दि0 जैन धर्मशाला में कोई धनीधोरी नहीं था। मैनेजर के कमरे में ताला लटका था। जो दो-चार लोग वहाँ थे भी, उन्होंने बताया कि कोई कमरा खाली नहीं है। हमारी कठिनाई को देखकर किसी अनजान बालक ने हमारी सहायता की। उसने हमें पास में ही श्वेताम्बर धर्मशाला में एक कमरा दिलवा दिया।

यहाँ के लोगों में सहयोग की अच्छी भावना देखी। रास्ता पूछने पर स्वयं साथ चल पड़ते हैं और गन्तव्य तक पहुंचा देते हैं। आज की शहर संस्कृति में यह सहयोग-सहानुभूति प्रशंसनीय और दुर्लभ ही कही जायेगी।

यहाँ बिजली के पंखे की भी जरूरत नहीं है। रात को कमरे के अन्दर भी चादर ओढ़ना पड़ा। वातावरण में मोहक सुगन्ध यहाँ की अनोखी विशेषता है। हरसिंगार के फूलों जैसी महक से चित्त बड़ा प्रसन्न रहा। यहाँ के लोगों में मद्रास की तरह हिन्दी-विरोधी जुनून भी नहीं है। उत्तर भी टूटी-फूटी हिन्दी में देते हैं।

यह शहर अपने दो सौ से भी अधिक बगीचों के कारण 'वातानुकूलित शहर' के नाम से जाना जाता है। यह कर्नाटक का प्रवेश-द्वार और यहाँ का सबसे खूबसूरत शहर है। सड़कें चौड़ी, साफ-सुथरीं और दोनों किनारे पर लगे वृक्षों से सुशोभित हैं।

यह शहर एक बड़ा उद्योग-केन्द्र है। यहाँ रेल के इंजन, हवाई जहाज और घड़ियों का निर्माण होता है। जनसंख्या 30 लाख है। दि0 जैन मन्दिर छोटा ही है। पीतल की चार फुट की महावीर स्वामी की मूलनायक प्रतिमा विराजमान है। दो वेदी और हैं। एक में भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की खड्गासन मूर्ति है। पद्मावती-चन्द्रेश्वरी आदि देवियों की मूर्तियां भी हैं।

श्वेताम्बर मन्दिर बहुत भव्य है। प्रबन्ध और व्यवहार भी उत्तम है। यात्रियों के साथ उनकी बातचीत में बड़ी मिठास रहती है। बंगलौर साइट सीइंग' के नाम से यहाँ अनेक एजेन्सियां सेवारत हैं। उन्हीं में से एक एजेन्सी की बस से हमने

मोह के उदय में दृष्टि मलिन और विपरीत हो जाती है, [illegible] राग-द्वेष के द्वन्द्व में फंस जाता है। यह मोह मीठा [illegible] है।

बंगलौर भ्रमण के लिए आरक्षण करा लिया।

18 मई। प्रातः 8 बजे निकले। निम्न स्थानों का अवलोकन किया :-

बुल टेम्पिल : यहाँ नन्दी की ग्यारह फुटी मूर्ति है। पार्श्व में विनायक गणपति का मन्दिर और गणेशजी की विशाल मूर्ति है। चामुण्डी हिल पर नन्दी की और भी बड़ी मूर्ति है।

टीपू का महल : दो सौ दस वर्ष पुराना है। काष्ठ निर्मित है। एक कक्ष में टीपू के अनेक पोट्रेट्स हैं। असली महल रंगपट्टम के पास है।

लाल बाग : भारत का दूसरा सबसे बड़ा बाग। पहला कलकत्ता में है। टीपू ने दो सौ वर्ष पूर्व 96 एकड़ में बनवाया था। बाद में ब्रिटिश पीरियड और नेहरू-युग में विस्तार हुआ। अब 240 एकड़ में है। 40 एकड़ में उद्यान है। शेष वनस्पति विज्ञान के शोध परियोजना की पूर्ति के लिए है। इसके एक भाग में गुलाब की दो सौ किस्में हैं।

मध्य में स्थित काष्ठ-मण्डप में हर रविवार को संगीत का आयोजन होता है। सिरे की एक चट्टान से बंगलौर का विहंगम दृश्य देखा जा सकता है।

महात्मा गांधी मार्ग : यहाँ का भव्यतम मार्ग है। चालीस मंजिली इमारतों से अपनी चमक-दमक का अनुभव कराता है। सबसे ऊँची इमारत का नाम है 'यूटीलिटी बिल्डिंग'। इस बिल्डिंग के ग्राउण्ड एवं फर्स्ट फ्लोर में बाजार है। पैंसठ हजार दर्शकों की क्षमता वाला विशाल स्टेडियम भी इसी मार्ग पर है।

कमर्शियल स्ट्रीट : चन्दन, चांदी, रोल्ड गोल्ड और सिल्क का सामान यहाँ एक दाम पर मिलता है।

अलसूर झील : नौका-विहार का प्रबन्ध है, पर पानी गन्दा था। ड्रेनेज का भी इसी में गिरता है।

हनुमान मन्दिर : यहाँ हनुमान की एक ही पाषाण से निर्मित 22 फुट ऊँची मूर्ति है। साढ़े बारह लाख की लागत से एक मन्दिर का निर्माण हो रहा है। प्लानिंग सुन्दर और सुनियोजित है। एक दिन बंगलौर की शान सिद्ध होगा।

चमरैया स्मृति भवन : प्रसिद्ध संगीतज्ञ की स्मृति में वायलिन के आकार में निर्मित है। कला को जहाँ इतना आदर मिला हो, वह प्रदेश उत्तम ही कहा जायेगा।

कवन पार्क : 350 एकड़ में निर्मित है। विधान सौंध, सभी सरकारी दफ्तर, हाईकोर्ट, म्यूजियम आदि यहीं स्थित हैं। विधान सौंध माननीय हनुमन्तैया के मुख्यमन्त्रित्व-काल में बना था। तब साढ़े तीन करोड़ लगे थे। अब दस गुनी कीमत तो आंक ही लीजिए। हर रविवार की रात में पीली रोशनी होती है।

म्यूजियम : इसके तीन भाग हैं - (1) विश्वेश्वरैया इण्डस्ट्रियल एण्ड टेक्नोलॉजीकल म्यूजियम, (2) आर्कोलोजीकल म्यूजियम तथा (3) वैंकटप्पा आर्ट गैलरी। तीनों तीन पृथक्-पृथक् भवनों में हैं। देश के समृद्ध म्यूजियमों में गणनीय है।

प्रथम में उद्योग-क्षेत्र के मॉडल तथा द्वितीय में पशु-पक्षियों के कंकाल तथा सैकड़ों तरह के मिट्टी के खिलौने हैं। तीसरा कला-मन्दिर है। पत्थर में उकेरी छवियों में पाण्डवों को धनुर्विद्या सिखाते हुए द्रोणाचार्य, शकुन्तला की विदाई, शिव-ताण्डव, एकलव्य का शरसंधानाभ्यास आदि दर्शनीय हैं। पेंटिंग में प्राकृतिक दृश्यों का अंकन जीवन्त-सा प्रतीत होता है।

इतना व्यवस्थित और समृद्ध म्यूजियम अब तक देखने में नहीं आया। देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

रात्रि को आठ बजे लौटे। मार्ग में करोड़ों रुपयों से निर्मित साबुन का ऑटोमेटिक प्लाण्ट 'कर्नाटक सोप्स एण्ड

डिटर्जेण्ट्स' भी देखा। देखने योग्य है। श्री आदिनाथ दि0 जैन मन्दिर के दर्शन कर धर्मशाला आए। मन्दिर भव्य है। ऊपर समवशरण की रचना है।

किसी नगर को घूम-फिरकर देखना थोड़ा खर्चीला तो है, पर हर रोज तो इधर आना होता नहीं। घूमने से उस क्षेत्र की कला, संस्कृति और इतिहास के बारे में एक स्पष्ट समझ बनती है और इतना आवश्यक है।

19 मई। पैसेन्जर में रात्रि को आराम से सोते हुए आए। प्रातः पांच बजे मैसूर स्टेशन पर उतरे। तांगे से चन्द्रगुप्त मार्ग पर संगम सिनेमा के पास स्थित जैन बोर्डिंग होम पहुंचे। आठ रुपये प्रतिदिन की दर से एक कमरा मिल गया।

अगले दिन के लिए साइट सीइंग से बाईस रुपये प्रति यात्री के हिसाब से चार सीटें बुक कराई। ये बसें प्रातः आठ से सायं आठ बजे तक घुमाती है।

यहाँ नीरा के श्री माणिकचन्द्र गुलाबचन्द्र जी दोशी से भेंट हुई। कुछ वर्ष पूर्व फलटण में उनसे परिचय हुआ था। उनसे ज्ञात हुआ कि पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज निकटस्थ गोम्मटगिरि क्षेत्र पर विराज रहे हैं। हमने श्री दोषीजी के साथ मिलकर एक टैक्सी द्वारा गोम्मटगिरि की यात्रा का कार्यक्रम बना लिया। यह क्षेत्र मैसूर से मात्र 26 कि0 मी0 की दूरी पर है। मोटर से आने-जाने का कोई सुनिश्चित साधन न होने से यात्री प्रायः इस क्षेत्र के दर्शन किए बिना निकल जाते हैं।

अतिशयक्षेत्र गोम्मटगिरि : गोम्मटगिरि पहाड़ी दूर से एक रथ-सरीखी दिखलाई देती है। इस पर अट्ठारह फुट की अवगाहना की भगवान बाहुबलि स्वामी की मनोज्ञ मूर्ति विराज रही है। काले वर्ण की अत्यन्त शान्त एवं नयनाभिराम मूर्ति है, जो लगभग 900 वर्ष प्राचीन है। यदि प्रमादवश इस मूर्ति के दर्शन न किए होते तो पछतावा बना रहता।

क्षेत्र पर धर्मशाला है। यहाँ आचार्य विमलसागर संघ के दर्शन किए। महाराज वात्सल्य-मूर्ति हैं। प्रसन्न मन से उन्होंने हम सबको प्रशस्त ममतामय आशीर्वाद दिया। आज ही, हमारे पहुंचने के कुछ समय बाद ही, उनका यहाँ से विहार हो गया। सौभाग्य से उनके दर्शन हो गए।

क्षेत्र के अध्यक्ष श्री सी.वी.एम. चन्द्रैया से पहले यहाँ और बाद में मैसूर में भेंट हुई बोर्डिंग हाउस के पार्श्व में ही उनकी फोटोग्राफी की दुकान है। उन्होंने गोम्मटजिन का एक फोटो दिया, जो आज भी हमारे एलबम की शोभा बढ़ा रहा है।

वापिस मैसूर आए। चार व्यक्तियों पर केवल 70/- टैक्सी खर्च आया। बोर्डिंग हाउस में पानी की भारी किल्लत है। किसी एक ही परिवार का इस पर आधिपत्य होने से व्यवस्था में अनेक खामियां हैं। सुविधायें हों तो लोग अधिक भाड़ा देने को भी तैयार रहते हैं। यहाँ ठहरे यात्रियों की टिप्पणी यह थी कि इसका नाम 'जैन लॉज' रख दिया जाए तो ठीक है, क्योंकि 'लॉज' में व्यवस्था तो होती है। यहाँ पैसा तो लॉज-जैसा लेते हैं, पर प्रबन्ध कुछ नहीं है।

अस्तु, आज फलटण से भी एक यात्री-बस आई, उसमें कुछ लोग परिचित निकल आए। उन्होंने फलटण आने का आग्रह किया।

मैसूर : एक शाही शहर : स्थानीय सैंयाजी रोड-स्थित बाजार यहाँ का सुन्दरतम मार्केट है। शाम को इसका एक चक्कर लगाया। इस रोड पर ट्रेफिक पुलिस की सहायता के लिए घुड़सवार पुलिस जगह-जगह तैनात रहती है। यह एक शाही शहर है। चौड़ी सड़कों और दोनों ओर एक-सी इमारतों से यह शहर 'मिनी जयपुर' प्रतीत होता है। यहाँ का 'गान्धी स्क्वायर' नामक चौराहा सर्वांगसुन्दर है। वृक्षों की बहुलता और स्थान-स्थान पर पार्क दिखाई देते हैं। घण्टाघर भी कई हैं।

20 मई। जैन मन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन सुन्दर प्रतिमा है। प्राचीन है। प्रतिमा के ऊपर एक पीतल का पात्र छत्र के स्थान पर लटका रखा है। प्रातः उसमें पानी भर देते हैं, जो तली के मध्यछिद्र से पतली धार के रूप में टपकता रहता है। सतत अभिषेक की यह सूझ अच्छी है। शास्त्र-सम्मत है या नहीं, यह विद्वज्जन जानें। यहाँ तीन चैत्यालय भी हैं।

भक्ति का कार्य ही पापों को नष्ट करना है। जिस भक्ति के द्वारा हमारे हृदय में पवित्र भावों के संचार से पुण्य-बंध होता है और उस पुण्य के फल से पाप दूर होते हैं।

दर्शनीय स्थल : प्रातः बस द्वारा नगर-भ्रमण के लिए निकले। अपनी सदाबहार हरीतिमा के कारण मैसूर शहर एक बहुत बड़े बगीचे के बीच में बसा हुआ-सा दिखाई देता था। आज जिन स्थानों को देखा, उनका विवरण इस प्रकार है :-

जगमोहन पैलेस (आर्ट गैलरी) : इसमें तीन विभाग हैं- (1) क्राफ्ट्स सेक्शन, (2) तैलचित्र सम्भाग एवं (3) दीवाल-पेंटिंग्स। एक जापानी कला का कक्ष भी है। इस क्षेत्र में जापानियों की प्रगति कमाल की है। नक्काशीदार कुर्सियां, सिंहासन, सोफे तथा लकड़ी का काम दर्शनीय है। प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है एक फ्रेन्चघड़ी, जिसमें सैकण्ड, मिनट, पाव घण्टे और घण्टे की सूचना यान्त्रिक सिपाहियों के आसन-परिवर्तन से संचालित है। संगीत-वाद्यों का भी अच्छा संकलन है। गैलरी समृद्ध है। प्रतियात्री डेढ़ रुपया टिकट है।

सरकारी सिल्क-वीविंग फैक्टरी : इसके हैण्डलूम सैक्शन में कक्ष में गिट्टकें भरी जाती हैं। वीविंग-सैक्शन में स्वचालित यन्त्रों से ताने-बाने बुनने का काम होता है। डाई-विभाग में थान से धोतियां कार्टी और घरी की जाती हैं। रंगाई भी यहाँ होती है। फैक्टरी से बाहर भीख मांगते छोटे-छोटे बच्चे विचित्र दृश्य उपस्थित करते हैं।

सन्दल ऑयल फैक्टरी : यहाँ चन्दन की लकड़ी से तेल निकाला जाता है। लकड़ी से कतरन बनाने, कतरन से लुगदी तैयार करने और लुगदी से तेल निकालने का काम यन्त्रों द्वारा होता है।

चिड़ियाघर : समृद्ध है। शेर, चीते और गेंडा बहुत हैं। बन्दरों की अनेक किस्में हैं। दूध, सरीखे सफेद मोर हैं। अफ्रीकी हाथी हैं। रास्ते में बेलें लगाकर छाया की गई है। मेण्टीनेन्स बढ़िया है। चीता के तीन छोटे-छोटे बच्चे दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र हैं।

चामुण्डी हिल : पहाड़ी ऊँची है। नीचे देखने पर खपरैल से पटे घर खिलौने-सरीखे दिखते है। चामुण्डी मन्दिर का शिखर अद्भुत कला का नमूना है। ग्यारह मंजिल के बराबर ऊँचाई होगी। तिराहे पर 18-20 फुट की महिषासुर की मूर्ति और उससे थोड़ा आगे विशाल नन्दी है, बंगलौर से बड़ा।

महाराजा पैलेस : बहुत शानदार है। देखकर यह विचार आया कि जब आज के राजा-महाराजाओं का यह ठाठ है तो पहले के चक्रवर्तियों का कितना और कैसा रहा होगा! यहाँ के भित्तिचित्र, दीवालों और छतों की नक्काशी, उन पर सोने का काम आदि सब कुछ बार-बार देखने योग्य है।

रोशनी के लिए आंगन की छत कांच की है। कांच पर उत्तम पेंटिंग की गई है। सच तो यह हे कि यहाँ सब बढ़िया ही है, घटिया कुछ है ही नहीं।

महाराज और उनके परिवार के चित्र हैं, मानों उनका पूरा वंश-परिचय ही हो। स्वर्ण-सिंहासन भी यहाँ है। भवन में बड़ी ठण्डक है। यहाँ का शिल्प गौरवास्पद है। अब तक जितने महल देखे हैं, उनमें यह सर्वोत्तम है।

आश्चर्य है कि जिन्होंने इसे बनवाया, वे या उनके उत्तराधिकारी अब यहाँ नहीं रहते। आजकल इसकी व्यवस्था डायरेक्टरेट ऑफ आर्कोलॉजी एण्ड म्यूजियम्स, मैसूर द्वारा होती है। रविवार को यह महल दस हजार बल्वों की रोशनी में नहाकर अनोखा समां बांधता है।

हमें तो यहाँ बैठकर बारह भावनाओं का पाठ करने का विचार आया। वैभव-सुख की क्षणभंगुरता, संसार की अनित्यता और मनुष्य के बौनेपन का यहाँ स्पष्ट आभास मिलता है। इसकी दीवालों से 'सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा' की ध्वनि की गूंज सुनाई देती है।

सेण्ट फिलोमिना चर्च : चर्चों की अपनी एक विशिष्ट स्थापत्य-शैली होती है। यह चर्च उसी का एक उत्कृष्ट नमूना [illegible]

है। यहाँ एक प्रार्थना-हाल है, जिसकी दीवालों पर ईसा के जीवन से सम्बद्ध मनोरम चित्र हैं। यहाँ प्रतिदिन प्रार्थना होती है। बैठने के लिए मेजें और बेंचें हैं।

श्री रंगपट्टण : काबेरी की दो धाराओं की बीच में बसा हुआ एक ऐतिहासिक स्थान है। यह हायसल-शैली का एक दर्शनीय मन्दिर है। इसमें सैकड़ों खम्भे हैं। मन्दिर में रंगनाथ, वेणुगोपाल, जनार्दन, हनुमान आदि की मूर्तियां हैं। यहाँ एक सिंहासन है, जिस पर सोने का पानी चढ़ाया गया है। सिंहासन के पीछे दो सर्प-फण और पार्श्व में दो हाथी हैं। हमने अपनी मनःकल्पना में वहाँ सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की स्थापना कर ली। वैसे यहाँ एक छोटा दि० जैन मन्दिर भी है।

इस स्थान के आसपास काबेरी-संगम, टीपू सुल्तान का 'दरिया दौलत' नामक बाग और ग्रीष्मकालीन महल, उसका समाधि-स्थल आदि भी दर्शनीय हैं। 'दरिया दौलत' में पेंटिंग और हाथीदांत का काम अच्छा है।

वृन्दावन गार्डन : इसके उल्लेख के बिना मैसूर का वर्णन अधूरा है। यहाँ हरी कोमल दूब के गलीचे हैं, फुब्बारे, झरने और झील भी हैं। रंगबिरंगी रोशनी का उत्तम प्रबन्ध है। हमें तो यह बाग कश्मीर के विश्व-प्रसिद्ध बागों से किसी भी तरह कम नहीं लगा, सुन्दर वस्त्राभूषणों में सुसज्जित देश-विदेश के हजारों स्त्री-पुरुष भी पुष्पों से कम शोभा नहीं बिखेरते हैं। ऐसा लगता है कि परियों के देश में पहुंच गए हों।

बाग को देखकर कहा जा सकता है - 'ए थिंग ऑफ ब्यूटी इज ए ज्वॉय फॉर एवर'। कृष्णाराजसागर बांध से इसकी शोभा दिगुणित हो गई है।

आज की बारह घण्टे की यात्रा काफी उत्साहवर्धक रही। मैसूर पर्यटकों से काफी पैसा खींचता है।

यहाँ पर प्राप्त प्राचीन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मैसूर का राज्य बहुत दिनों तक जैन राजाओं के अधिकार में रहा है। स्वामी समन्तभद्र, अकलंकदेव, पूज्यपाद, प्रभाचन्द्र, पात्रकेसरी, जिनसेन, गुणभद्र, नेमिचन्द्र और वादीभसिंह सरीखे दिग्गज एवं प्रतापी आचार्य इसी प्रान्त में हुए हैं। यहाँ के महाराज अमोघवर्ष के समय में भगवज्जिनसेनाचार्य के प्रभाव से यहाँ दिगम्बर जैनधर्म का अच्छा अभ्युदय हुआ था। जैनधर्म से प्रभावित राष्ट्रकूट, कदम्ब, चालुक्य और गंगवंश की कहानियां यहाँ के कण-कण में बिखरी पड़ी हैं। जैन दृष्टि से मैसूर का अपना महत्व है।

श्रवणबेलगोला में पांच दिन : 21 मई। आज साढ़े दस बजे की बस से चलकर अपराह्न में दो बजे श्रवणबेलगोला आ गए। विद्यानन्द-निलय में ठहरे। दो पलंग, दो कुर्सी, पंखा आदि से सुसज्जित कई कमरे हैं। अच्छी जगह है। आवास-शुल्क भी कम है, केवल पांच रुपया प्रतिदिन। लेट्रिन-बाथरुम-अटेच्ड कमरे हैं।

कमरे में सामान जमाकर पूज्य मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज के दर्शनार्थ गए। अकेले थे। हमें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। सवा घण्टे तक उनके पुनीत चरणों में बैठे। इस वर्ष का महामस्तकाभिषेक समारोह उन्हीं के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। महाराजश्री ने उस समय की अनेक घटनाओं का जिक्र किया, जिनमें से कुछ उल्लेख्य हैं :-

प्रारम्भ में कुछ छोटी-मोटी चोरियां हो गई। महाराज ने पब्लिक मीटिंग में कर्नाटक-पुलिस की आलोचना कर दी। हड़कम्प मच गया। अधिकारी उनसे मिले और उसके बाद सारा इन्तजाम चुस्त हो गया। पैट्रोलिंग बढ़ा दी गई। ऐसा था उनका दबदबा।

महाराज ने महोत्सव का अधिकांश प्रबन्ध उत्तर के कार्यकर्ताओं को सौंपा। उसके पीछे उनकी दूरदृष्टि थी। उत्तर की भाषा तो वे समझते ही थे, साथ ही दक्षिण वालों की तुलना में ऐसे समारोहों के प्रबन्ध का उन्हें अधिक अनुभव था।

महोत्सव पर भारी भीड़ें हुई। एक दिन दोपहर तीन बजे महाराज ने एक यात्री-परिवार को सामान-सहित धूप में बैठे

जिस प्रकार एक नन्ही-सी ज्योति-किरण पूरे अंधकार को पी जाती है, उसी प्रकार [illegible]
पाप-कर्म प्रभु-भक्ति के प्रभाव से क्षीण होकर नष्ट हो जाते हैं। यही तो है भक्ति की [illegible]

देखा। महाराज ने घोषणा कर दी कि जब तक इनके ठहरने का समुचित प्रबन्ध नहीं होता, तब तक वे मीटिंग में नहीं जायेंगे। कार्यकर्ता दौड़े और इन्तजाम हो गया। उसके बाद कार्यकर्ता महोत्सव के समापन तक चौकस रहे।

एक दिन मंच पर दो साधु नियत स्थान पर न बैठकर आर्यिकाओं के बीच बैठ गए। अपने दीक्षा-गुरु के कहने पर भी वहाँ से नहीं हटे। आचार्यश्री को मालूम हुआ तो एक को हाथ पकड़कर उन्होंने उठाया। यह देखकर दूसरे साधु अपने आप उठकर नियत स्थान पर आ गए। यह इकबाल की बात है, जिसके पूज्य महाराजश्री धनी हैं। अपनी अद्‌भुत सूझबूझ से उन्होंने महोत्सव में पधारे लगभग पौने दो सौ पिच्छीधारियों को अनुशासित बनाए रखा।

महाराज ने कर्नाटक-सरकार के अनेक वरिष्ठ मंत्रियों का मठ की ओर से स्वागत करा दिया। उन्हें शाल भेंट कराए। इसका परिणाम यह हुआ कि उन सबने महोत्सव में व्यक्तिगत रुचि ली और समारोह के निमित्त सरकार की ओर से छह करोड़ रुपए खर्च किए गए। यह एक कीर्तिमान है। किसी से काम कैसे लिया जाए, यह कला महाराज से सीखनी चाहिए।

महाराजजी के साथ कितनी ही चर्चा करो, उसमें रस आता है। बहुत सीखने को भी मिलता है। उनका प्रशस्त स्नेह हमें प्राप्त है; इसे हम अपना पूर्व-पुण्योदय मानते हैं।

इन दिनों यहाँ पूज्य आचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज भी विराजमान थे। आर्यिका विजयमती माताजी भी थीं। उनके साथ नेमिनाथनगर की छह किलोमीटर (तीन कि0मी0 जाना और तीन कि0मी0 आना) की यात्रा भी बड़ी आनन्ददायक रही। लगभग चालीस यात्री, चार मुनिराज एवं छह आर्यिका माताएं इस पद-यात्रा में सम्मिलित थीं। कॉलिज के दिनों की 'आउटिंग' की तरह ही मजेदार थी यह पदयात्रा।

नेमिनाथनगर-मन्दिर : यह मन्दिर जिस स्थान पर अवस्थित है, उस स्थान को नेमिनाथनगर कहते हैं। एक परकोटे के भीतर 20 फुट गुणा 25 फुट का यह मंदिर है। इसमें एक पाषाण-खण्ड में भगवान नेमिनाथ का एक उत्कीर्ण चित्रफलक है। लगभग एक हजार वर्ष पुराना होते हुए भी उसका शिल्प अब भी नया-सा लगता है। बताया जाता है कि श्रवणबेलगोल की मूल पीठ पहले यहीं थी।

चित्रफलक में बीच में प्रभु नेमिनाथ की छोटी किन्तु भव्य मूर्ति है। ऊपर दोनों ओर इन्द्र चंवर ढोर रहे हैं। नीचे दोनों बाजुओं में वृक्षों के नीचे यक्ष-यक्षिणी हैं। भगवान के सिर पर तीन छत्र हैं।

यहाँ से चन्द्रगिरि-विन्ध्यगिरि आजू-बाजू दिखते हैं, जबकि वे हैं आमने-सामने। सं0 1980 में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ है। तीन कि0मी0 का यह रास्ता हरा-भरा है।

श्री जिननाथपुर का प्राचीन मन्दिर : श्रवणबेलगोल-स्थित जिननाथपुर का मन्दिर भी आठ सौ वर्ष पुराना है तथा पूरे कर्नाटक में अपने शिल्प में बेजोड़ है। इसकी दीवारों, मेहराबों और खम्भों पर जो नक्काशी है, वह कोणार्क या खजुराहो की तरह बारीक है। काले पाषाण के गोल खम्भे दर्शनीय हैं। पूज्य भट्टारक जी महाराज ने बताया कि यह मन्दिर भग्न होने की स्थिति में था। सरकारी सहायता से इसका जीर्णोद्धार कराया गया। अब इसका तेजी से विकास किया जाएगा। आसपास के मकान खरीदकर गिरा दिए गये हैं। वहाँ पार्क विकसित करने की योजना है। मन्दिर के मुख्य द्वार को दुबारा बनाया जायेगा। इस मन्दिर में भगवान शान्तिनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा है। यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियों की कलात्मकता देखते ही बनती है। योरोपीय पुरातत्वज्ञों ने इस मन्दिर की बड़ी सराहना की है।

विन्ध्यगिरि के प्रमुख आकर्षण हैं गोमटेश्वर बाहुबलि। शिल्पकार ने अपनी पूरी क्षमता इस मूर्ति में उड़ेल दी है। इसका वर्णन करने में 'गिरा बिनु नयन, नयन बिनु वाणी' के कारण हर कोई असमर्थ है। हम यही कह सकते हैं कि अपने इस आकाश पुरुष की दिव्यता, विशालता और सुषमा को देखकर चित्त में जो आनन्द का सागर हिलोरे लेता है, उसकी [illegible]

अभिव्यक्ति गूंगे द्वारा अनुभूत गुड़ के स्वाद की तरह अनिर्वचनीय है।

श्रवणबेलगोल में नीचे सात मन्दिर हैं। इनमें से 'भण्डार वसदि' सबसे बड़ा है। इसमें एक गर्भ-गृह और तीन द्वार हैं। एक ही वेदी पर प्रतिष्ठित चौबीस तीर्थकरों की मूर्तियां अत्यन्त भव्य हैं। प्रत्येक मूर्ति की अवगाहना तीन-तीन फुट है। होयसल नरेश के भण्डारी हुल्ल ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। यहाँ की दीवालों पर जो चित्रकारी है, वह बहुत सुन्दर है। मन्दिर के सामने मान-स्तम्भ है।

नीचे के मन्दिरों में अक्कन वसदि, सिद्धान्त वसदि, मंगाई वसदि आदि भी दर्शनीय हैं। इनमें विराजमान सभी मूर्तियाँ मनोज्ञ हैं।

कल्याणी सरोवर का फुव्वारा हर शनिवार और रविवार को चलता है। जल की धारायें कमलाकार हैं। स्वचालित हरी-पीली-लाल रोशनी में चलता हुआ यह बड़ा आकर्षक लगता है। बीच की धारा अस्सी फुट ऊँची उठती है। कर्नाटक में अपनी तरह का यह एक ही फुव्वारा है।

मठ-मन्दिर में हीरा, पन्ना, माणिक, मरकत, वैडूर्य, नीलम, गरुण, मूंगा आदि की बहुमूल्य मणि-मूर्तियां हैं। कहा जाता है कि गरुण-मणि-निर्मित मूर्ति के अभिषेक जल से सर्प का जहर उतर जाता है। पुराण-वर्णित गजमोतियों के भी दर्शन हुए। ये सब दुर्लभ चीजें हैं। दुर्लभ इसलिए भी हैं, क्योंकि इनका दर्शन करने के लिए गोलक में पन्द्रह रुपए की भेंट अर्पित करनी होती है।

मठ की ओर से सम्मान : 25 मई। आज श्रद्धेय भट्टारकजी से भेंट-वार्ता हुई। उनके साथ उनकी गाड़ी में घूमकर यहाँ के विकास कार्यों का अवलोकन किया। उन्होंने बताया कि इस वर्ष के महामस्तकाभिषेक से सारे खर्चे निकालकर आठ लाख की बचत हुई है, जबकि पिछले महोत्सवों में घाटा रहता था।

क्षेत्र-भ्रमण के बाद हमने कहा कि पूज्य श्री विद्यानन्दजी की युक्ति, आपकी शक्ति और श्रावकों की भक्ति का संगम यहाँ है। यह तालमेल इस क्षेत्र को पृथ्वी का नन्दन-कानन बनाने में समर्थ है। क्षेत्र पर एक वाचनालय-पुस्तकालय एवं बाहुबलि चित्र-वीथिका की स्थापना के हमारे सुझाव को उन्होंने पसन्द किया।

यहाँ से प्रस्थान से पूर्व स्वामीजी ने ऊनी उत्तरीय (जो इस महोत्सव के लिए विशेष रूप से तैयार कराए गए थे), श्रीफल और मठ द्वारा प्रकाशित साहित्य भेंटकर हमें अपना सहज स्नेह का अवदान दिया। उन्होंने क्षेत्र पर आते रहने की प्रबल प्रेरणा भी की। उनका यह वात्सल्य चिरस्मरणीय है।

हासन और हलेविड के मन्दिर : बारह बजे की बस से हम चन्नारायपट्टन आए। वहाँ से दूसरी बस पकड़कर हासन पहुंचे। बस स्टैण्ड के निकट ही जैन धर्मशाला है। वहां ठहर गए। भोजनादि से निवृत्त होकर हलेविड के लिए रवाना हुए। बस डेढ घण्टे लेती है।

हलेविड का मन्दिर हायसलेश्वर मन्दिर कहलाता है। यह प्राचीन हिन्दू-शिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। इसकी नक्काशी बहुत बारीक और उत्तम है। अन्दर काले पाषाण के बलयाकृत गोल खम्भे अत्यन्त सुन्दर हैं। छतों की नक्काशी देखते ही बनती है। बाहर दीवालों पर नीचे युद्धोन्मुख हाथियों के दल हैं, उससे ऊपर घुड़सवार हैं और सबसे ऊपर पंक्ति में रामायण एवं महाभारत के पौराणिक प्रसंगों का अंकन किया गया है, जो घण्टों तक देखे जायें तो भी मन की अतृप्ति को ही बढ़ाते हैं। मन्दिर के सामने दोनों ओर एक ही शिला में से निर्मित दो विशाल नन्दी हैं। पार्श्व में द्वारसमुद्र झील है। मन्दिर के अन्दर शिवलिंग विराजमान है। यह मन्दिर विश्व-प्रसिद्ध है।

जिस प्रकार पाषाण-निर्मित मूर्ति में हम जिनेन्द्र प्रभु की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार वर्तमान मुनियों में चतुर्थकालीन साधुओं की कल्पना कर, हमें उनकी पूजा करनी चाहिए।

पीछे दो फर्लांग की दूरी पर तीन जैन मन्दिर हैं, जिनमें से बीच का आदिनाथ मन्दिर तो सामान्य है, लेकिन दोनों किनारे के भगवान शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ के मन्दिर विशाल हैं। मनोज्ञ भी हैं। काले पाषाण (कसौटी) के खम्भे एकदम चिकने, आकर्षक और नयनाभिराम हैं। ये वर्तुलाकार हैं। इनमें आकृतियाँ (प्रतिबिम्ब) बड़े विचित्र तरीके की दिखाई देती हैं; जैसे-एक खम्भे में हाथों के दुहरे प्रतिबिम्ब बनते हैं-दो सीधे और दो उल्टे। एक में पंजा केकड़े की आकृति का दिखता है। एक स्तम्भ में हाथ ऊपर करने पर हाथ अलग और बीच में शरीर अलग दिखाई पड़ता है। एक में कपड़ों का जैसा रंग हो, वैसा ही दृष्टिगत होता है। ये विविधता बड़ी कौतुकपूर्ण है। खम्भे की बारीक कटाई पर यदि उंगली के अग्रभाग से टंकार दें तो सारंगी सरीखी आवाज निकलती है। यह मन्दिर भी विश्व-ख्याति का है।

पार्श्वनाथ मन्दिर में चौबीस आले हैं, जिनमें कभी चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ थीं किन्तु अब नष्ट कर दी गई हैं। इस मन्दिर की ऊपर की छत की नक्काशी होयसलेश्वर मन्दिर से भी श्रेष्ठ है। उसमें चौबीस तीर्थंकर तथा यक्ष-यक्षणियां आदि बने हुए हैं, सुन्दर हैं। हिन्दू मन्दिर से ये जैन मन्दिर पहले बने हैं-ऐसा गाइड का कहना है। कभी यहाँ सात सौ से भी अधिक जैन मन्दिर थे।

इन मन्दिरों के दर्शन कर रात्रि को साढ़े दस बजे हम वापिस हासन आ गए। धर्मशाला में विश्राम किया।

26 मई। हासन में दो मन्दिर हैं। दोनों अच्छे हैं। दोनों में पार्श्वप्रभु की श्यामवर्ण ढाई-ढाई फुट की अवगाहना की तोरण और यक्ष-यक्षिणी-सहित मनोज्ञ प्रतिमायें हैं। बड़ा मन्दिर नौ सौ साल पुराना बताया जाता है। इसमें सात फुट की एक बाहुबलि-प्रतिमा भी है।

यहाँ जैनियों के लगभग सवा दो सौ घर हैं। शहर बड़ा है।

आकर्षक चारमाड़ी घाटी : हासन से दस बजे धर्मस्थल के लिए सीधी बस मिलती है। उससे चले। बेलूर से उजरे और उजरे से धर्मस्थल तक का यह रास्ता इस यात्रा में अब तक का सुन्दरतम मार्ग रहा। लगभग सौ किलोमीटर का यह पूरा रास्ता एक रमणीक घाटी के बीच होकर गुजरता है। मार्ग के दोनों ओर चकाचक हरियाली है। प्रचुर वृक्ष हैं। लाल-गुलाबी-बैंगनी-केसरिया रंग के विविध पुष्प मन को मोहते हैं। बीच-बीच में खपरैल से ढके कॉटेजनुमा घर ऐसे दिखते हैं, जैसे ऋषियों की कुटियां हों।

उजरे से कोई तीस किलोमीटर इधर से तो इस मार्ग का चरमोत्कर्ष आता है। अति खतरनाक मोड़ों वाले रास्ते पर हमारी मोटर चल रही है। एक ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं तो दूसरी ओर सैकड़ों फुट गहरी खाइयाँ। नीचे देखते ही डर लगता है। ड्राइवर का जरा-सा प्रमाद सारे यात्रियों के प्राणों के लिए उपसर्ग बन सकता है। हर मोड़ पर गाड़ी के भीतर लाल बत्ती टिमटिमाकर सावधान होकर बैठने की चेतावनी देती है। इस लम्बी-गहरी घाटी को देखकर जम्मू-कश्मीर-मार्ग की याद ताजा हो गई।

सारा रास्ता सुहावना है-प्रकृति की अनोखी सुषमा से भरा हुआ। इस घाटी का नाम 'चारमाड़ी' है। एक यात्री ने बताया कि इस घाटी के सौन्दर्य को देखकर इन्दिराजी बड़ी मुग्ध हुई थीं।

प्रकृति-नटी की लीलायें भी बड़ी विचित्र हैं। कहीं आकाशचुम्बी चोटियाँ और कहीं पातालस्पर्शी खाइयाँ। कहीं बेशुमार वृक्ष या झाड़-झाड़ियाँ और कहीं दूब या तिनका तक नहीं। कहीं पानी की भरमार तो कहीं बूंद-बूंद के लिए तरसती धरती। कहीं कंकरीले मार्ग तो कहीं रेत का दरिया। प्रकृति की इन रंग-बिरंगी करतूतों को देखकर या तो कोई कवि बन सकता है या साधु।

कल्पना के घोड़े पर बैठकर इन्द्रधनुष को छूने या वैराग्य के झूले पर बैठकर पेगें बढ़ाने के साधन यहाँ हैं। जीवन की भी यह दशा है :-

[illegible]

'कहीं पर सुख के सारे साज,
कहीं नित गिरती रहती गाज।
अनोखे ये कुदरत के खेल,
जगत के रंग सभी बेमेल।।'

जो भी हो, यह 'चारमाड़ी घाटी' देखने योग्य तो है ही, यदि साधन और सुविधायें जुटाई जा सकें तो रहने योग्य भी है।

सर्वधर्म-संगम : धर्मस्थल : घाटी के मनोहर दृश्यों को देखते-देखते चार-पांच घण्टे का समय कैसे बीत गया, कुछ पता ही नहीं चला। तीन बजे हम धर्मस्थल आ गए। पहले से हुए पत्र-व्यवहार के आधार पर यहाँ की धर्मशाला 'नेत्रवती' में हमारे लिए एक कमरा आरक्षित था। धर्मशाला आधुनिक है।

वैसे यहाँ आवास की कोई कठिनाई नहीं है। इतनी धर्मशालायें हैं कि लगभग तीस-पैंतीस हजार लोग उनमें रह सकते हैं।

धर्मस्थल एक ऐसा तीर्थ है, जिसे हम हिन्दू और जैन धर्मानुयायियों का समन्वय-केन्द्र कह सकते हैं। यहाँ का 'श्री मंजुनाथ प्रसन्ना मन्दिर' देश का एक प्रसिद्ध हिन्दू-मन्दिर है। दर्शनार्थियों का यहाँ बड़ा लम्बा 'क्यू' लगता है। दर्शनों के लिए भेंट देनी होती है।

यहाँ के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े हैं। वह और उनका परिवार जैनधर्म पालता है। उनकी कोठी में दो चैत्यालय हैं। उनमें कुछ रत्न-मूर्तियाँ भी हैं। द्वाररक्षक आने वाले जैन लोगों को उनके दर्शन कराता है।

हाल ही में यहाँ भगवान बाहुबलिस्वामी की एक विशाल मूर्ति भी स्थापित कराई गई है, जिससे अब इसकी गणना एक जैन तीर्थ के रूप में भी होने लगी है।

छह बजे हम लोग 'बाहुबलि-विहार' के लिए चले। आधी चढ़ाई ही चढ़ पाए थे कि बरसात आ गई। कुछ पीछे लौटना पड़ा। भींग गए। पार्श्ववर्ती एक कुटिया में बरसात रुकने तक आश्रय लिया। एक-दूसरे के प्रति हमदर्दी यहाँ संकेतों में व्यक्त होती है। भाषा का अन्तर विचारों के आदान-प्रदान में बाधक है। हिन्दी में कही गई हमारी बात का मंशा और मर्म तो वह समझ लेते हैं किन्तु अपनी प्रतिक्रिया हिन्दी में व्यक्त नहीं कर सकते। उनकी भाषा हमारी समझ में नहीं आती। आजादी के इतने वर्षों के बाद भी पूरे देश में अभिव्यक्ति के किसी एक माध्यम (भाषा) का चलन न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण है।

बरसात थमने पर ऊपर पहुंचकर भगवान बाहुबलि के दर्शन किए। पैदल दर्शकों के लिए सीढ़ियों का तथा वाहन वालों के लिए डामर का रास्ता है। मूर्ति 42 फुट की है। चेहरा सुन्दर है। धर्मस्थल-जैसे प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ में इतनी विशाल दि0 जैन मूर्ति का स्थापित होना बहुत महत्वपूर्ण है।

श्रीमान् महामना हेगड़ेजी की कोठी में स्थापित संग्रहालय भी देखा। संग्रह मूल्यवान और अच्छा है।

हेगड़ेजी की यहाँ बड़ी प्रतिष्ठा है। वह स्थानीय लोगों के विवादों का निपटारा भी करते हैं। क्षेत्र की ओर से अनेक शिक्षण-संस्थायें और चिकित्सालय आदि चलते हैं।

यहाँ की स्वचालित यन्त्रों (वाष्प कुकर आदि) से सज्जित भोजनशाला भी देखने योग्य है। आठ-दस हजार लोग प्रतिदिन भोजन करते हैं। चावल में से कंकर बीनने का काम भी मशीन से होता है। छने पानी का उपयोग होता है।

अपनी तरह का भारत में यह एकमात्र तीर्थ है, जहाँ के महन्त (धर्माधिकारी) को जैन और सनातन धर्म के अनुयायियों का समान आदर प्राप्त है।

जब अनेक जन्मों के पुण्य जोश में उछाल लेते हैं, तब कोई मुनिपद को अंगीकार करता है। [illegible] काटने में वही पद समर्थ है। इसलिए मुनिचरणों में नतमस्तक होना मानव जीवन की परम [illegible] है।

अतिशयक्षेत्र वेणूर : 27 मई। प्रातः सात बजे बस द्वारा वेणूर पहुंचे। यह स्थान यहाँ। यह स्थान यहाँ से मात्र 32 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है। बस ने आगे पुलिया पर दूर जाकर छोड़ा। जगह की जानकारी न होने से ऐसा हुआ। यह दूरी हमें आटो से तय करनी पड़ी। धर्मशाला तो यहाँ है, पर हमेशा बन्द रहती है।

यहाँ भगवान बाहुबलिस्वामी की सन् 1604 में स्थापित 37 फुट की अवगाहना की प्रतिमा है। आठ मन्दिर और भी हैं, जिनमें पार्श्वनाथ और आदिनाथ के मन्दिर अच्छे हैं। तीर्थकर-मन्दिर में श्रवणबेलगोल के भण्डार वसदि की तरह की चौबीसी (सन् 1537 की) है।

यहाँ पानी नहीं मिलता। दो मील दूर से लाना पड़ता है। व्यवस्था नाम की भी कोई बात नहीं है।

कारकल : वेणूर से मूड़बिद्री 20 किलोमीटर और मूड़बिद्री से कारकल 26 किलोमीटर की दूरी पर है। हम गाजियाबाद के यात्रियों की मेटाडोर से मूड़बिद्री आ गए। सामान वगैरह जमाकर तथा कुछ मन्दिरों के दर्शन करने के बाद हम दोपहर पौने चार बजे कारकल पहुंचे। सर्वप्रथम मठ-स्थित श्री चन्द्रप्रभ-मन्दिर के दर्शन किए। भट्टारक श्री ललितकीर्तिजी महाराज से भी कुछ क्षण वार्ता हुई। काफी वृद्ध हैं।

बाहुबलि की पहाड़ी के नीचे 'जैन जीर्णोद्धारक संघ' का कैम्प था। उनसे मन्दिरों की जानकारी ली। कुल 18 मन्दिर यहाँ हैं।

एक छोटी-सी पहाड़ी पर भगवान बाहुबलि की 42 फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति आज से लगभग साढ़े पांच सौ वर्ष पूर्व स्थापित की गई थी। यह मूर्ति विशालता और मनोज्ञता में दूसरे नम्बर की है। वेणूर की मूर्ति से इसका शिल्प अधिक आनुपातिक और निर्दोष है। बारिश के कारण मूर्ति का रंग काला हो जाता है। काश! मूल पत्थर का रंग रहा होता तो निःसंदेह मूर्ति बहुत भव्य है। पहाड़ी पर दो मन्दिर भी हैं। एक ऊँचे स्तम्भ पर ब्रह्मदेव की मूर्ति स्थापित है।

चतुर्मुखी वसदि अर्थात् चौमुखी रत्नत्रय मन्दिर भी शानदार है। यह सौ स्तम्भों पर टिका हुआ है। चारों दिशाओं में सात-सात फुट की तीर्थकर-प्रतिमायें हैं-अत्यन्त आकर्षक। इस मन्दिर का तथा बाहुबलि-पहाड़ी का प्रबन्ध ऑर्कोलोजीकल डिपार्टमेण्ट के हाथों में है। अब ये ऐतिहासिक महत्व की कृतियाँ दर्शनीय ही हैं। इन स्थानों से जैनियों के विलुप्तप्रायः हो जाने से नित्य पूजा-प्रक्षाल भी नहीं हो पाता है। इससे इन तीर्थों की जीवन्तता में तो कमी आई ही है।

कारकल में भुजबलि ब्रह्मचर्याश्रम एवं बाहुबलि श्राविकाश्रम नामक संस्थायें भी येन-केन-प्रकारेण अपने अस्तित्व में हैं।

यहाँ से हम लोग पुनः मूड़बिद्री वापिस आ गए। रात्रि-विश्राम यहीं किया।

जैन काशीः मूड़बिद्री : 28 मई। सोकर उठते ही सबसे पहली चिन्ता शौच जाने और नहाने की होती है। ये दो काम निपट जायें, तो दिनभर के लिए निश्चिन्तता हो जाती है। प्रवास में इन्हीं दो कामों की कठिनाई से कठिनाई प्रतीत होने लगती है।

यहाँ हम लोग धर्मशाला में ठहरे हैं। शौचालय फ्लश के हैं किन्तु गन्दे पड़े हैं। इसके लिए पानी की कमी और यात्रियों की लापरवाही दोनों ही जिम्मेदार हैं। नलों में पानी न होने से हम लोग रमारानी शोध संस्थान के अतिथि भवन में नहाने गए किन्तु जल-संकट यहाँ भी है। टोंटियों से पानी ऐसे टपक रहा था, जैसे-आंख से आँसू। जैसे-तैसे बदन का पसीना धो लिया।

मूड़बिद्री का प्राचीन नाम बिद्री, वेणुपुर या बंसपुर है। शायद कभी बांस की बहुलता रही होगी। वेणु का अर्थ बांस है। कस्बा अच्छा है किन्तु यहाँ के मन्दिरों के बारे में जो कल्पना थी, वह भंग हुई है। इसलिए नहीं कि वे अच्छे नहीं हैं। मन्दिर तो शानदार हैं, कुछ तो लाखों-करोड़ों की लागत से बने हैं किन्तु यहाँ व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है। मज्जन

के अभाव में यहाँ विराजमान धातु की मूर्तियाँ काली पड़ गई हैं।

मन्दिरों में पूजा-पाठ प्रायः ब्राह्मण करते हैं। ये लोग परम्परा से जैनधर्म-पालक हैं। आर्थिक स्थिति कमजोर होने से यात्रियों से धनापेक्षा रखते हैं। अपेक्षा पूरी न होने पर इनके व्यवहार में रूखापन आ जाता है।

'त्रिभुवनतिलक चूड़ामणि मन्दिर' विशालतम है। इस मन्दिर का निर्माण सन् 1429 में नौ करोड़ की लागत से हुआ था। यह चार मंजिल का है। इसके चारों ओर प्रदिक्षणा है। बड़े-बड़े प्रेक्षागृह बने हुए हैं। एक हजार खम्भे हैं। पहली मंजिल में पंचधातु की भगवान चन्द्रप्रभ की विशाल प्रतिमा है। मूलनायक जिनविम्ब यही है। नीचे आठ वेदियाँ और हैं। दूसरी मंजिल में सहस्रकूट चैत्यालय है। तीसरी मंजिल में भी चार वेदियाँ हैं। इस मन्दिर में स्फटिक मणि की भी अनेक प्रतिमायें हैं। पन्द्रहवीं सदी में यहाँ आए ईरान के एक व्यापारी अब्दुल रज्जाक ने इस मन्दिर को अद्वितीय कहा था।

दूसरे प्रसिद्ध मन्दिर का नाम 'सिद्धान्त भवन' या 'गुरु वसदि' है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की नौ फुट की कृष्ण पाषाण की खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर के नीचे एक भौंहरा बताया जाता है। यहाँ ताड़पत्र पर लिखित धवल जयधवल और महाधवल ग्रन्थराज सुरक्षित हैं। इनके दर्शन एक निश्चित समय पर ही कराए जाते हैं। यह मन्दिर दो मंजिला है।

यहाँ कुल अट्ठारह मन्दिर हैं। वेदिकायें काफी अन्दर होने से अधिकांश में अंधेरा रहता है। सात मन्दिरों के सामने बड़े-बड़े मानस्तम्भ हैं। सभी मन्दिरों में धातु की प्रतिमाओं की बहुलता है। यदि प्रतिदिन उनका अभिषेक और महीने में एक बार भी मज्जन हो तो वे सोने की तरह दमकती हुई दिखाई दें।

कहा जाता है कि होयसल नरेशों के शासन-काल में यहाँ जैनधर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। उस समय के स्थानीय जैन श्रावक भी काफी सम्पन्न थे, परन्तु अब वैसी स्थिति नहीं है। सब कुछ उलट-पलट गया है।

सन् 1980 में यहाँ 'श्री रत्नत्रय सिद्धान्त भवन' का निर्माण हुआ है और उसमें डबल शटर तथा लोहे की जाली के अन्दर बड़े करीने से बहुमूल्य रत्न-प्रतिमाओं को सुरक्षा प्रदान की गई है। उन दुर्लभ जिनविम्बों के भी दर्शन किए। स्फटिक, स्वर्ण, गोमेद, नीलम, हीरा, मूंगा, पन्ना, मोती, माणिक्य, पुखराज, वैडूर्य, गरुण, फिरोजा आदि की नयनसुख-प्रदाता 45 मूर्तियाँ हैं। श्रवणबेलगोल में ऐसी 25 मूर्तियाँ थीं।

फिरोजा पन्ना की मूर्ति के बारे में बताया जाता है कि यदि उसका दुग्ध से अभिषेक किया जाए तो दूध का दही हो जाता है।

इस रत्न-प्रतिमाओं के दर्शन करने के लिए ग्यारह रुपए प्रति यात्री के हिसाब से भेंट देनी होती है। यह खटकती है। इस सन्दर्भ में जब माननीय भट्टारकजी से हमने चर्चा की तो उन्होंने रत्न-प्रतिमाओं की सुरक्षा के लिए इसे आवश्यक बताया। हम उनसे सहमत नहीं हैं। हमारा चिन्तन यह है कि दान तो वही ठीक होता है, जो या तो स्वेच्छा से दिया जाए अथवा यात्री को सन्तुष्ट कर प्रसन्नतापूर्वक लिया जाए। दान देने के बाद यदि यात्री को लगे कि उससे पैसा छीना जा रहा है तो यह उसे अखरता है। यहाँ का जो तरीका है, वह जुर्माना वसूलने जैसा है। हमने स्वामीजी से इस पर पुनर्विचार करने के लिए निवेदन किया है।

पुजारियों के रूखे व्यवहार के सम्बन्ध में उनका कहना है कि उन पर मठ का पूर्ण नियन्त्रण नहीं है। पहले से मन्दिरों पर उनका हक चला आ रहा है। इस स्थिति को बदलने के प्रयास जारी हैं। मुकदमें तक चल रहे हैं। स्वामीजी की इस बात में वजन है।

मूड़बिद्री की प्राचीन भट्टारक-गद्दी पर जो भी आसीन होते हैं, उनका परम्परागत नाम श्रवणबेलगोल के भट्टारक की तरह पट्टाचार्य चारुकीर्तिस्वामीजी ही रहता है। पहले यह जैनबद्री की ही सहयोगी गादी थी। वर्तमान पीठाधीश भट्टारक एक

जब तक मुनि-संस्था फलती-फूलती रहेगी, तब तक धर्म की जड़ हरी रहेगी। मुनि-संस्था के इस उपकार का विस्मरण हमें कभी नहीं करना चाहिए।

अच्छे विद्वान और ओजस्वी वक्ता हैं। विदेशों में आयोजित धर्म-सम्मेलनों में अनेक बार जैनधर्म का प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। हम सन् 1975 से उनके सम्पर्क में हैं। उस समय वह शोध-कार्य कर रहे थे और उनका नाम श्री धर्मराज शेट्टी हुआ करता था। एक बार जबलपुर में उनके साथ पर्यूषण पर्व में साथ रहने और प्रवचन करने का सुअवसर भी हमें मिल चुका है। स्नेही प्राणी हैं। समय और समाज को उनसे अनेक आशायें हैं।

स्वामीजी की स्नेहपूर्ण आग्रह से आज जैन मठ में दक्षिण भारतीय शैली का भोजन भी किया। स्वादिष्ट था। आज का हमारा दिन बहुत व्यस्त रहा।

श्री होम्बुजा (हुमचा पद्मावती) क्षेत्र : 29 मई। दो महीने से एक मिनी बस मूड़बिद्री से सीधी हुमचा जाने लगी है। उसी से आठ बजे रवाना हुए। बीच में 'अगुम्बे घाटी' पड़ती है। लगभग दस किलोमीटर का रास्ता मोड़दार और हरा-भरा है। 'तीर्थहल्ली' नामक एक बड़ा कस्बा भी रास्ते में आता है। दोपहर बारह बजे हम लोग यहाँ आ गए।

यह एक प्राचीन तीर्थ है। इसकी स्थापना सातवीं शताब्दी में हुई बताई जाती है। पद्मावती देवी की मूर्ति और उसके अतिशय के कारण इस स्थान की प्रसिद्धि है। इस मूर्ति को छठवीं शताब्दी में जिनदत्त नामक एक राजकुमार अपने कुलगुरु श्री सिद्धान्तकीर्ति मुनि महाराज की प्रेरणा से मथुरा (उत्तर भारत) से यहाँ लाए थे। धीरे-धीरे इस मूर्ति के चमत्कारों से आकर्षित होकर हजारों लोग अपनी मनोकामनायें पूरी करने के लिए यहाँ आने लगे और यह क्षेत्र एक तीर्थ के रूप में विकसित हो गया।

कहते हैं कि जो भी भाई देवी के सामने नम्रीभूत होकर मनौती मानते हैं तो उनकी इच्छा अवश्य पूरी होती है। भावना-पूर्ति से पूर्व भेंट देकर मठ से रसीद प्राप्त करना आवश्यक है। यदि कार्य बनने का योग होता है तो देवी के दाई ओर से फूल गिरता है - कभी तुरन्त गिरता है, कभी देर में और कभी पुजारी द्वारा देर तक मन्त्र पढ़ने पर गिरता है। इससे कार्य-सिद्धि के काल का अनुमान लगाया जा सकता है। कभी नहीं गिरे तो भी निराश होने की जरूरत नहीं है। बार-बार कोशिश करने और देवी को प्रसन्न होने पर मनोरथ-सिद्धि हो सकती है। इष्टार्थ-सिद्धि के लिए यहाँ जैनाजैन का मेला लगा रहता है।

यहाँ तीन मंदिर और हैं - (1) मठ-मन्दिर (यहाँ भगवान आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान है) (2) पार्श्वनाथ मन्दिर (पाँच फुट की पार्श्वनाथ की मूलनायक प्रतिमा मनोज्ञ है। दालान या पूर्व रंग में भी तीन पार्श्व-प्रतिमायें हैं-दो खड्गासन और पद्मासन) तथा (3) महावीर मन्दिर। अभी सफेद पत्थर की बीस फुट की अवगाहना की एक तीर्थकर-प्रतिमा का भी निर्माण कराया गया है, जिसकी प्रतिष्ठा होनी है।

यहाँ की दो विशेषतायें और भी हैं-(1) 'लक्की वृक्ष' जिसका मूल पद्मावतीदेवी की पीठ के नीचे से उगा है। यह सदा हरा रहता है तथा (2) मुतिन केरे (सरोवर), जो कभी अकाल में भी नहीं सूखता।

मठ की ओर से 'पदमाम्बा हाईस्कूल' और 'कुन्दकुन्द विद्यापीठ' (कॉलेज) का भी संचालन होता है। 'श्री वर्द्धमान विद्यार्थी निलय' के नाम से एक छात्रावास भी है। यहाँ के भट्टारक जी देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के अधिकारी और विद्वान हैं। कई बार विदेश-यात्रायें कर चुके हैं। उनसे आधा घण्टे तक उपयोगी चर्चा हुई।

यहाँ से 4 बजे की बस से हमने शिमोगा के लिए प्रस्थान किया। सवा छह बजे यहाँ आ गए। यहाँ भोजन किया तथा रात्रि को बिरूर जंक्शन के लिए पैसेंजर ट्रेन पकड़ी। रात्रि को बारह बजे बिरूर पहुंचे। दो बजे हुबली के लिए गाड़ी मिली।

30 मई। दिन में बारह बजे हुबली पहुंचे। सामने शोलापुर की गाड़ी खड़ी थी। इससे उतरे और उसमें बैठ गए।

हुबली से शोलापुर तक का रास्ता यहाँ का मैदानी भाग कहा जा सकता है, यद्यपि उसमें कंकड़ बहुत हैं। कुछ जुते हुए खेतों में बजरी-सरीखे मोटे-मोटे पाषाण-कण ऐसे लगते थे, मानों खेतों में करीने से बोए बिछाए गए हों।

[illegible]

बीच में 'बादामी की गुफाएं' भी दिखाई दीं। यहाँ की अर्हन्त, शिव और ब्रह्मा की गुफाएं प्रसिद्ध हैं। तेज बारिश हो रही थी। अतः यहाँ उतरने का इरादा छोड़ दिया। वैसे ये गुफाएं बहुत प्राचीन हैं और काफी जीर्ण दशा में हैं।

रात्रि को आठ बजे बीजापुर स्टेशन पर उतरे। रिटायरिंग रूम खाली नहीं था। सामने 'ममता होटल' था। उसमें दो पलंगवाला एक कमरा किराए पर ले लिया। उस्मानाबाद का एक परिवार भी हमारे साथ था। एक कमरा उन्होंने ले लिया।

आज का दिन फल और मिष्ठान पर निकाल दिया। यात्रा लम्बी हो गई। भोजन बनाने का कहीं समय ही नहीं मिला। नियमतः तो नहीं, विवशता में 'ऊनोदर' व्रत का पालन हो ही गया।

रात्रि के दस बजे हम अपने-अपने बिस्तरों पर लेट गए। दो बिस्तर नीचे लगा लिए थे। थके हुए थे। पता नहीं, कब निद्रादेवी ने हमें अपने आगोश में ले लिया।

मस्जिदों का शहरः बीजापुर : 31 मई। बीजापुर 'मस्जिदों का शहर' है। तांगेवाले का कहना है कि कभी यहाँ एक लाख मस्जिदें थीं। अब भी एक हजार से अधिक सही-सलामत इबादतखाने होंगे। खण्डहर तो 'हर पचास कदम पर एक' के औसत से दिखाई देते हैं। कभी यह शहर शानदार रहा होगा।

इस शहर का प्राचीन नाम विजयपुर है। यहाँ पहले कुछ राजा जैनधर्मावलम्बी रहे हैं। उनके समय के जैन मन्दिरों के खण्डहर और मूर्ति-शिल्प के अवशेष आज भी मिलते हैं। यहाँ दो जैन मन्दिर आज भी हैं।

हमने यहाँ निम्नलिखित दर्शनीय स्थलों का अवलोकन किया:-

जामा मस्जिद : दक्षिण भारत की यह सबसे बड़ी मस्जिद है। यह 10776 वर्ग मीटर स्थान को घेरे हुए है। इसकी मध्य गुम्बद 1565 वर्ग मीटर विस्तार की है। इबादतखाने का बरामदा पैंतालीस मेहरावों वाला है। इसके सामने के भाग पर सोने के पानी का काम हो रहा है। पुरातत्व विभाग के आधीन इसकी देखरेख होती है।

गोल गुम्बज : यह विश्व में सबसे बड़ा गुम्बज है। सातवीं मंजिल पर एक 'कानाफुंसी गैलरी' है, जिसके एक सिरे पर कही गई बात दूसरे सिरे पर ऐसे सुनाई देती है, मानों टेलीफोन पर बात हो रही हो। कागज फाड़ने जैसी सूक्ष्म आवाज भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है। एक बार कही बात कई बार गूंजती है। यहाँ एक पुरातत्व संग्रहालय भी है, जिसमें प्रवेश करते ही बादामी गुफा से प्राप्त बारहवीं सदी की पार्श्वनाथ तथा कुछ अन्य तीर्थकरों की भी मूर्तियाँ हैं-बहुत मनोज्ञ और अखण्डित। उस समय के बर्तन, हथियार, कालीन, हस्तशिल्प आदि का भी संग्रह है।

यह गोल गुम्बद यथार्थ में नवाब आदिलअली शाह का मकबरा है।

विशाल तोप : मुलुक मैदान मे पंचधातुओं से निर्मित एक विशाल तोप है, जिसका वजन पचपन टन है। उसमें चालीस किलो वजन का एक लोहे का छल्ला है। उसे यहाँ तक लाने के लिए 400 बैल और 10 हाथियों की शक्ति का सहारा लेना पड़ा था। अंग्रेज इसे अपने देश ले जाना चाहते थे, पर वह फिसल गई और इसका एक कुण्डा चटक गया। सम्प्रति यह तोप अपने मूल स्थान से थोड़ा नीचे है। मूल स्थान के निकट पानी का एक कुण्ड है, जिसमें बैठकर चालक उसे चलाता था। पानी से बाहर बैठकर चलाने से तोप की आवाज से कान के पर्दे फट जाते थे। तोप को चारों ओर घुमाने के लिए दो वर्तुलाकार खाईयाँ बनी हुई है।

जैन मन्दिर : यहाँ से दो किलोमीटर दूर दरगाह के पास एक जैन मन्दिर है। उसमें सहस्रफणी पार्श्वनाथ की पांच फुट की अवगाहना की एक अद्भुत मूर्ति है। वैसी बांकी मूर्ति अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आई। कहते हैं कि किसी भी एक फण पर दूध डालें तो सभी फणों में से होता हुआ सिर का अभिषेक करता है। मूर्ति एक हजार वर्ष पुरानी है।

साधुओं को देखकर जिसके अन्तस् में हर्षोल्लास की ऊर्मियाँ नहीं उठतीं, [illegible] जा सकता है।

जैन लोग मुख्यतः इसी मूर्ति के दर्शन करने के लिए बीजापुर आते हैं। मूर्ति श्याम वर्ण की है।

यहाँ से हम लोग अतिशयक्षेत्र बाबानगर जाना चाहते थे किन्तु दिशा और दूरी की जानकारी के अभाव में जाना नहीं हो सका। कहते हैं कि यहाँ एक प्राचीन जैन मन्दिर में हरितवर्ण पद्मासन डेढ़ हाथ ऊँची भगवान पार्श्वनाथ की एक सातिशय मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। इसके अभिषेक-जल से किसी मुसलमान बादशाह की बेगम को असह्य उदरशूल से त्राण मिला था। इससे प्रभावित होकर ही बादशाह ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था।

साढ़े चार बजे की गाड़ी से चलकर हम रात्रि के आठ बजे शोलापुर आ गए। श्राविकाश्रम में ठहरे। आदरणीया विदुषी वयोवृद्ध ज्ञानवृद्धा पद्मश्री बहिन सुमतिबेन एवं विद्युल्लता शहा से रात्रि के दस बजे तक धार्मिक चर्चा-वार्ता होती रही। हमारे आने पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। शास्त्रि-परिषद् के फल्टण-अधिवेशन में उनसे हमारा प्रथम परिचय हुआ था। उनके अत्यधिक आग्रह से हमारा यहाँ चार दिन ठहरना हुआ।

ज्ञानतीर्थ शोलापुर : 1 जून। यहाँ आठ दि० जैन मन्दिर हैं। आज सभी मन्दिरों के दर्शन किए। बहिनजी ने संस्था का एक कर्मचारी साथ कर दिया था। आश्रम-मन्दिर में श्री अजितसागर जी महाराज ठहरे हुए हैं। बहिनजी और उनका परिवार उनकी पूरी सेवा और वैयावृत्ति में संलग्न है।

बहिन सुमतिबेन शाह ने यहाँ शिक्षा-संस्थाओं का एक समूह खड़ा कर दिया है। प्राइमरी से हाईस्कूल तक की अनेक संस्थायें उनकी देखरेख में चल रही हैं। छात्रावास भी है। पांच हजार विद्यार्थी इनमें अध्ययन कर रहे हैं। पूरा परिसर 'श्राविका संस्था नगर' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं। बहिन विद्युल्लताजी उनकी प्रतिच्छाया हैं। दोनों का योगदान यहाँ के शिक्षा-जगत के लिए वरदान-सदृश है।

शोलापुर में विज्ञान, कला और कॉमर्स की स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध है। यहीं के सेठ गोविन्दराव सखाराव दोषी का प्रकाशन के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान रहा है। जैन संस्कृति संरक्षक संघ ने अब तक शताधिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। गत बीस वर्षों से श्रीमान् पं० नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर इस संस्था का कार्य देख रहे हैं।

2-3 जून। चार दिवसीय शोलापुर-प्रवास में स्नेहमूर्ति बहिनजी और समाज के आग्रह से यहाँ हमारे सात व्याख्यान हुए-चार आश्रम मन्दिर में, दो आदिनाथ मन्दिर में और एक हाईस्कूल में। महिलाओं में अच्छी जागृति है। शास्त्र-सभा में अच्छे प्रश्न उठाती हैं। जैन समाज के यहाँ 700 घर हैं।

स्थानीय विद्वानों में श्रीमान् पं० नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर के अतिरिक्त पं० जिनदासजी फणकुले का भी साहित्य-सृजन में अच्छा योगदान है। आज 88 वर्ष की अवस्था में भी वह लिखते रहते हैं। उन्होंने आचार्य रविषेण के पद्मपुराण का मराठी में अनुवाद 'रामायण' शीर्षक से दो भागों में किया है। उन्होंने ये दोनों खण्ड तथा स्वलिखित 'धन्य कुमार चरित' पुस्तक हमें भेंट कीं। हमारी सभा में भी आए और भाषण सुनकर वात्सल्य-पगा आशीर्वाद दिया।

जैनगजट के पूर्व सम्पादक एवं समाज के ख्यातिलब्ध विद्वान् पं० वर्धमान पार्श्वनाथजी शास्त्री इन दिनों अर्धांगवायु से पीड़ित हैं। उनसे मिलने गए। पहचान लिया तथा अपने सुपुत्र चि० सुभाष एम.ए. को हमारा परिचय दिया। अधिक बात करने की स्थिति में नहीं थे। (कुछ दिनों बाद उनका शरीरान्त हो गया।)

इस यात्रा-वर्णन में यहाँ के निम्न तीन स्थानों का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा :-

सातिशय पार्श्वनाथ जिनबिम्ब : यहाँ पार्श्वनाथ-मन्दिर में विराजमान मूलनायक पार्श्वप्रभु की छोटी-सी मूर्ति अतिशययुक्त एवं प्राचीन है। कहते हैं कि जो इस मूर्ति का घृताभिषेक करते हैं, उनकी मनोकामनायें अवश्य पूरी होती हैं। इस चमत्कारी मूर्ति के कारण यह मन्दिर 'अतिशयक्षेत्र' कहलाता है। इसके अध्यक्ष श्री चन्द्रनाथ विष्टप्पा वनकुद्रे के [illegible]

घर पर आज हमारा भोजन था। धर्मात्मा हैं। 'इनकी एक सुपुत्री 'सुवर्णा' ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया हुआ है। विदुषी हैं।

महावीर उद्यान : सेठ मोतीचन्द जीवनचन्द गांधी कट्टर मुनिभक्त हैं। शहर से पांच किलोमीटर दूर एक एकान्त एवं रमणीक स्थान में इन्होंने एक 'महावीर उद्यान' बनाया है, जिसकी एक दीर्घा में आकर्षक झाँकियों की संयोजना की गई है। एक सरोवर भी है। त्यागियों के रहने के लिए अच्छा स्थान है।

यहाँ इन्होंने कुछ ऐसे पत्थरों का संकलन किया है, जो पानी में डूबते नहीं, तैरते हैं। 'रामायण के हनुमानजी' ने सम्भवतः ऐसे ही पत्थरों से सागर पर पुल बनाया होगा।

अक्कलकोट : यहाँ से पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक पुरानी रियासत है। विशाल रजवाड़ा बना हुआ है। स्थानीय जैन मन्दिर पांच सौ वर्ष पुराना है। यहाँ इस समय अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी श्री वीरसागरजी महाराज विराजे हुए हैं। उनके दर्शन किए। थोड़ी देर उनसे धार्मिक चर्चा भी हुई। ये गृहस्थावस्था में डाक्टर (एम.बी.बी.एस.) थे। चार वर्ष पूर्व पति-पत्नी दोनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली। पत्नी भी ग्रेजुएट हैं। दीक्षा के बाद जैन शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। यहाँ इन्हें लोग 'मिनी विद्यासागर' कहते हैं। 'तत्वचर्चा में सावधान/सन्नद्ध किन्तु विकथा में मौन' इनकी विशेषता है। हमारी यह यात्रा पं0 भिसीकरजी के आग्रह से हुई थी। अपराह्न की धर्म-सभा में हमने भी अपने विचार व्यक्त किए। यात्रा मे अपूर्व आनन्द आया। (अभी पिछले दिनो ही पूज्य मुनिश्री का कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर समाधिपूर्वक अवसान हुआ है।)

अक्कलकोट में श्री नेमीचन्द मोतीचन्द शहा के घर पर हमारा भोजन हुआ। प्रेमी जीव हैं।

यहाँ से शोलापुर वापिस आ गए। यहाँ एक जैन औषधि-निर्माणशाला और दो औषधालय भी हैं।

जैन श्राविका संस्था नगर में हमारा सम्मान किया गया। बहिनजी ने ढेर सारा स्वलिखित साहित्य भेंट किया। उपाधि भी दी। उनका आशीर्वाद मानकर ग्रहण किया।

शोलापुर से हम लोग बस द्वारा उस्मानाबाद भेड़सी होकर कुंथलगिरि फाटा (मोड़) तक आए। यहाँ से बस बदलकर सायं 7 बजे कुंथलगिरि पहुंच गए। जब हम यहाँ पहुंचे, तब हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं। अस्तंगत सूर्य की सिन्दूरी आभा नयनों को बड़ी भली लग रही थी। पहाड़ की झिलमिल-झिलमिल रोशनी मोड़ से ही दिखती थी।

निर्वाणभूमि कुन्थलगिरि : 4 जून। सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि साढ़े बारह लाख वर्ष पूर्व का इतिहास अपने गर्भ में छिपाए है। तब देशभूषण और कुलभूषण मुनि ने यहाँ ध्यान किया था। पूर्व जन्म के किसी वैरी ने उन पर उपसर्ग किया, जिसका निवारण राम-लक्ष्मण के द्वारा हुआ। उपसर्ग दूर होने पर दोनों मुनियों को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। बाद में वे यहीं से मोक्ष भी गए।

काल-गति से यह क्षेत्र विस्मृत हो गया था। आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व किसी भाई को दो मुनि-युगलों के चरण-चिह्न यहाँ मिले। तब क्षेत्र का जीर्णोद्धार कराया गया। चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने सन् 1955 में यहाँ यम-सल्लेखना धारण कर जब अपना शरीर छोड़ा, तबसे इस क्षेत्र के द्रुत विकास का काम शुरू हुआ।

पर्वत पर नौ मन्दिर हैं। एक नया नन्दीश्वर मन्दिर बन रहा है। सभी मन्दिर साफ-सुथरे हैं। पहाड़ पर जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ हैं। नीचे तलहटी में समवशरण मन्दिर सुन्दर है। भगवान बाहुबलि की अट्ठारह फुट की अवगाहना की एक नई मूर्ति स्थापित की गई है। नौ मन्दिरों में कुल बीस स्थानों पर दर्शन हैं।

यहाँ देशभूषण और कुलभूषण महाराज की तीन-तीन फुट की इटैलिक पाषाण से बनी दो मूर्तियाँ अनोखी हैं। एक-एक

यतियों की समस्त क्रियायें संयम और वैराग्य के लिए होती हैं। लौकिक [illegible] की कसौटी कदापि नहीं है।

मांसपेशी उभरी हुई है। ऐसी सुडौल-स्वस्थ-सुन्दर मूर्ति अन्यत्र देखने में नहीं आई। इस युगल विम्ब से निगाह हटती ही नहीं है।

क्षेत्र पर पूजन-प्रक्षाल की विधि बड़े ही व्यवस्थित ढंग से और बिना उतावलेपन के सम्पन्न होती है। समवशरण मन्दिर में प्रातः सवा आठ बजे तथा देशभूषण-कुलभूषण मन्दिर में साढ़े नौ बजे पंचामृत अभिषेक होता है। यह समय निश्चित है।

यहाँ की धर्मशाला पुरानी किन्तु मजबूत है। दीवालें सवा दो फुट चौड़ी हैं। बिजली है। पंखे आदि नहीं हैं। पहाड़ी क्षेत्र है। वर्षा कम होती है। पशुओं के लिए चारे का भी अभाव है। संयोग से आज पांच घण्टों तक अखण्ड वर्षा हुई है।

क्षेत्र की ओर से पानी बैलगाड़ियों से दो मील दूर से लाया जाता है। नहाने के लिए एक कुंआ है, जिसका पानी साफ नहीं है। छानकर उसे ही काम में लेते हैं। वैसे पास की एक बावड़ी से इंजन द्वारा पानी लाने के लिए पाइप-व्यवस्था है किन्तु इन दिनों इंजन खराब था। हम स्वयं पानी बावड़ी से लाए।

यहाँ के प्रबन्धक श्री जुगराज शहा भद्र पुरुष हैं। बड़ी आत्मीयता से उन्होंने क्षेत्र की जानकारी दी। क्षेत्र के पास दो सौ एकड़ जमीन है। श्वेताम्बरों की दाल यहाँ नहीं गल सकती। क्षेत्र पर बीसेक कर्मचारी हैं। सात-आठ तो चौकीदार ही हैं। सवा दो लाख का ध्रुव फण्ड है। चढ़ावे तथा भण्डारे से वर्ष में एक लाख के लगभग आय हो जाती है।

यहाँ एक गुरुकुल भी चल रहा है, जिसमें तीन सौ छात्र हैं। छात्रावास में 125 छात्र रहते हैं। प्रति छात्र 75-75 खर्च आता है।

क्षेत्र के कर्मचारियों का व्यवहार प्रशंसनीय है। वैसे प्रायः दि० जैन तीर्थक्षेत्रों पर नियुक्त कर्मचारी यात्रियों की सुख-सुविधा का विशेष ध्यान नहीं रखते। वे मशीन की तरह अपने कर्तव्यों की खानापूरी करते हुए ही दिखाई देते हैं। अल्प वेतनभोगी होने से जो यात्री उन्हें ठीक से पगार आदि देते हैं, वे केवल उनकी सुनते हैं। कमेटी और जैन समाज के प्रति वे नफरत से भरे रहते हैं और यदा-कदा उनकी फब्तियाँ सुनने को मिलती रहती हैं।

सोचता हूँ, क्या कभी वह दिन आयेगा, जब दि० जैन मन्दिरों, धर्मशालाओं, तीर्थक्षेत्रों आदि में कार्यरत कर्मचारियों को श्वेताम्बर मन्दिर के कर्मचारियों की तरह कर्तव्य-पालन की दीक्षा (ट्रेनिंग) दी जाएगी और कम-से-कम उन्हें इतना वेतन मिलेगा जो उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा कर सके। यात्रियों को कर्मचारियों का शालीन व्यवहार ही क्षेत्र की ओर आकर्षित कर सकता है। उस ओर ध्यान देना ही चाहिए। तुलनात्मक रूप से हमें यहाँ के कर्मचारियों का यात्रियों के प्रति व्यवहार बहुत अच्छा लगा। सन्तोष हुआ।

5 जून। दक्षिण भारत की दो प्रवृत्तियाँ हमें बहुत अच्छी लगीं-(1) एक तो इधर पर्दा-प्रथा नहीं है और (2) दूसरे इधर की महिलाओं में उत्तर भारत की स्त्रियों की तरह गहनों के प्रति गृद्धता नहीं है। प्रायः हाथों में दो स्वर्ण-चूड़ियाँ, कानों में टॉप्स, नाक में नग और गले में जंजीर-बस, इतने में वे सन्तुष्ट रहती हैं।

आज हमने भगवान देशभूषण-कुलभूषण का अभिषेक किया। यहाँ आम चढ़ाने का काफी रिवाज है।

दोपहर-पूर्व ग्यारह बजे हमने क्षेत्र से विदा ली। सायं चार बजे पुनः शोलापुर आ गए। कल श्रुतपंचमी के उपलक्ष में आयोजित समारोह में सम्मिलित होने का हमसे वायदा करा लिया गया था। प्रसारित पत्रकों में मुख्य वक्ता के रूप में हमारे नाम का उल्लेख किया गया है।

6 जून। आज श्राविकाश्रम-चालित प्रथम शिक्षा संस्था का 57 वां वर्धापन दिवस था। बच्चों, शिक्षक-शिक्षिकाओं एवं अभिभावकों की अच्छी उपस्थिति थी। 'बालजीवन और संस्कारों का महत्व' विषय पर लगभग एक घण्टा हम भी बोले। सबने प्रसन्नता की।

दोपहर तीन बजे से आश्रम-मन्दिर में श्रुतपंचमी-समारोह आयोजित था। उसमें भी बोले। पं० जिनदासजी फणकुले भी

उपस्थित थे। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने हमारे प्रति स्नेहपूर्वक प्रशंसा के भाव व्यक्त किए।

शाम का भोजन आश्रम में था। यहाँ के प्रसिद्ध भोजन 'पूरन पूरी' का स्वाद लिया। अपने यहाँ की भाषा में मीठी चपाती कह सकते हैं।

रात्रि को नौ बजे की बस हाथकलंगणे के लिए हमारा आरक्षण था। श्रद्धेय पं0 भिसीकरजी, सेठ मोतीचन्द रेवचन्दजी गान्धी तथा दो-तीन कर्मचारी बिठाने आए थे।

एक सन्त का साधना-स्थलः कुम्भोज बाहुबलि : 7 जून। बस ने प्रातः चार बजे हाथकलंगणे पर उतार दिया। यहाँ एक घटना घट गई। पूज्य आर्यनन्दीजी महाराज की गृहस्थावस्था की भतीजी प्रभावती भी शोलापुर से हमारे साथ ही आई थीं। उनकी अटैची मोटर में छूट गई। उन्होंने सोचा कि हमने उतार ली होगी और हमने सोचा कि उन्होंने उतार ली होगी। अटैची में कीमती और जरूरी सामान था। रात्रि में ही एक पैट्रोल पम्प के मालिक को जगाकर उनके यहाँ से 'कोल्हापुर एस.टी.स्टैण्ड' को फोन किया। बात हो गई।

धर्मपत्नी और पुत्रियों को कुम्भोज जाने के लिए बोलकर हम साढ़े पांच बजे की बस से प्रभावती जी को लेकर कोल्हापुर गए। संयोग से अटैची सुपरिण्टेण्डेण्ट-आफिस मे मिल गई। तुरन्त दूसरी बस से लौट पड़े। साढ़े सात बजे कुम्भोज बाहुबलि आ गए। बच्चे पहले पहुंच गए थे। सम्माननीय पं0 माणिकचन्दजी भिसीकर साहब ने हमारा नाम बताने पर 'साहू श्रेयांसप्रसाद अतिथि भवन' में एक कमरा दे दिया था--साफ-सुथरा और आधुनिक।

क्षेत्र भव्य है। सड़क पर ही विशाल प्रवेश-द्वार है। फिर धर्मशालायें और तदनन्तर गुरुकुल-भवन है। थोड़ा आगे बढ़ने पर जिनालयों के दर्शन शुरू होते हैं। सामने भगवान बाहुबलिस्वामी की अट्‌ठाइस फुट अवगाहना की आकर्षक और मनोज्ञ प्रतिमा है और उसके पृष्ठ भाग में सिद्धक्षेत्रों की रम्य प्रतिकृतियां (मॉडल-रचना) बनी हुई हैं। दृश्य बड़ा मनोरम है।

मन्दिरों के पीछे एक पहाडी है। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उस पहाड़ी पर पांच प्राचीन 'मन्दिर हैं:- (1) ब्रह्मयक्ष का मन्दिर (यहाँ ब्रह्मदेव की पांच फुट की मूर्ति है), (2) सोलह खम्भों का मन्दिर (इसमें बाहुबलिस्वामी के चरण-चिह्न विराजमान हैं। यह मन्दिर शिल्पकलायुक्त प्राचीन है तथा इसी के आधार पर इस क्षेत्र का नाम 'बाहुबलि' प्रसिद्ध हुआ है।) यहाँ एक विशाल धर्मशाला भी है। यहाँ से पश्चिम की ओर तीन-चार फर्लांग चलने पर तीन मन्दिर और मिलते हैं- (3) आदिनाथ मन्दिर, (4) महावीर मन्दिर तथा (5) शान्तिनाथ मन्दिर। एक श्वेताम्बर मन्दिर भी है।

यहाँ हमें परमपूज्य आचार्य श्री समन्तभद्रजी महाराज, उनके सुयोग्य शिष्य मुनिवर श्री आर्यनन्दीजी एवं महाबलजी महाराज तथा ऐलक जगभद्रजी और वीरभद्रजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस क्षेत्र का सम्पूर्ण वैभव कर्मयोगी आचार्य समन्तभद्रजी महाराज (सम्प्रति आयु 90 वर्ष) की प्रशस्त साधना का परिणाम है। उन्होंने कारंजा, स्तवनिधि, शोलापुर, कारकल, खुरई आदि स्थानों पर चौदह गुरुकुलों की स्थापना की। सभी आज भी चल रहे हैं। कुम्भोज में भी एक गुरुकुल, एक हाईस्कूल और एक तकनीकी विद्यालय चल रहा है। गुरुकुल के बच्चे क्षेत्र-स्थित मन्दिरों में प्रतिदिन पूजन और आरती करते हुए देखे जाते हैं।

प्राचीन नगरः कोल्हापुर : 8-9 जून। अपराह्न तीन बजे हम लोग कोल्हापुर आ गए। यहाँ शुक्रवार पेठ-स्थित मठ में ठहरे। वैसे श्री नेमिनाथ मन्दिर, 618-ई, शाहूपुरी में भी ठहरने की व्यवस्था है।

कोल्हापुर एक प्राचीन नगर है, जिसने विगत में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। यह नगर 5वीं, 10वीं एवं 11वीं-12वीं शताब्दी में क्रमशः कदम्ब, राष्ट्रकूट एवं चालुक्य वंश के राजाओं के अधिकार में रहा है। 13वीं सदी में इस पर महामण्डलेश्वर शिलाहार राजाओं का अधिकार रहा। ये जैन थे। यहाँ प्राप्त शिलालेखों और पुरावशेषों से यह ज्ञात होता

साधु निरन्तर परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहने की कोशिश करता रहता है। इस स्थिरता में बाधक तत्त्व मोह है। उसे जीतने से ही वह निर्मोही कहलाता है।

है। कुछ सिक्के भी मिले हैं। यहाँ का प्रसिद्ध महालक्ष्मी मन्दिर कभी पद्मावतीदेवी का मन्दिर था। पद्मावती शिलाहार राजाओं की शासनदेवी थी। मन्दिर के बायें पार्श्व में तीर्थंकर-मूर्तियाँ तथा पृष्ठ भाग में त्रेसठ शलाका पुरुषों की मूर्तियाँ आज भी सुरक्षित हैं। मराठा-काल में कभी हिन्दुओं ने उस पर अधिकार कर लिया। तबसे पद्मावतीदेवी महालक्ष्मी या अम्बाबाई बन गई।

कोल्हापुर में पांच दर्शनीय दि0 जैन मन्दिर हैं। - (1) शाहीपुरी (2) मंगावेश (यहाँ पर एक हजार वर्ष प्राचीन एक शिलालेख है) (3) पार्श्वनाथ मानस्तम्भ (यहाँ पर भी दो पुराने शिलालेख हैं) (4) नेमिनाथ एवं (5) मंगलवार पेठ-मन्दिर। मानस्तम्भ-मन्दिर आठ सौ वर्ष पहले का बना हुआ है। मन्दिर के खम्भे हलेबिड के समान हैं। इनके अलावा शहर में पांच मन्दिर और हैं।

अम्बादेवी (महालक्ष्मी) का मन्दिर मूड़बिद्री के त्रिभुवनतिलक चूड़ामणि-सरीखा है। बहुत बडा है। इसमें भी हजार खम्भे बताए जाते हैं। इधर हिन्दुओं में इसकी बहुत मान्यता है। दर्शनार्थियों की भारी भीड़ें जुटती/जुड़ती हैं।

यहाँ हम दो दिन रहे। अनेक प्रतिष्ठित लोगों से परिचय हुआ। श्री जी.के.पाटिल (सम्पादक-प्रगति आणि जिणविजय) एवं प्रो0 अर्हद्दास दिगे अच्छे विद्वान् पुरुष हैं। डा0 दिगे के यहाँ तो एक दिन हमारा भोजन भी हुआ और उनसे अनेक जानकारियाँ मिलीं। प्रो0 पाटिल सांगली के हैं और किसी महाविद्यालय के अवकाश-प्राप्त प्राचार्य हैं। अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। उनकी वार्ता में बड़ी मिठास रहती है। चोगलेजी यहाँ के प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

स्थानीय महावीर महाविद्यालय के प्राचार्य भी मिलने आए। आग्रह पर कॉलिज देखने गए। संस्था के वाइस चेयरमैन श्री महावीर देसाई ने गेट पर स्वागत किया। कला और वाणिज्य में मान्यता मिली हुई है। लगभग 800 छात्र पढ़ रहे हैं। संस्था के पास पांच एकड़ निजी भूमि है।

श्री नेमिनाथ मन्दिर में 'संयम की महत्ता' विषय पर हमारा प्रवचन भी हुआ। अच्छी उपस्थिति थी। समाज ने पर्यूषण के लिए पुरजोर आग्रह किया। जनश्रुति है कि इस मन्दिर में 'षट्खण्डागम' का अन्तिम भाग लिखा गया था।

कोल्हापुर-मठ के पीठासीन भट्टारक स्वस्तिश्री लक्ष्मीसेनजी महाराज से हमारा पूर्व परिचय है। बहुत सरल और स्नेही हैं। यहाँ के मन्दिर में भगवान आदिनाथ की 28 फुट की मनोज्ञ मूर्ति विराजमान है। भगवान पार्श्वनाथ की एक छोटी किन्तु प्राचीन मूर्ति भी है। स्वामीजी के निर्देश पर मठ का एक कर्मचारी गोंडा पाटील बराबर हमारी सेवा में रहा।

मठ की एक शाखा बेलगांव में भी है। यहाँ से 'रत्नत्रय' नामक एक मासिक का प्रकाशन होता है। यहां साढे चार हजार मुद्रित तथा सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं। स्वामीजी ने उनका अवलोकन कराया।

कोल्हापुर में दूध की अच्छी सुविधा है। जगह-जगह डेयरी हैं। सामने दुहा हुआ ताजा दूध मिल जाता है।

मठ की ओर से भट्टारकजी ने सम्मान किया। 'व्याख्यानकेसरी' की उपाधि प्रदान की। हमने आभार व्यक्त किया।

अतिशयक्षेत्र स्तवनिधि : 10 जून। प्रातः 7 बजे की बस से निपाणी के लिए रवाना हुए। कोल्हापुर से निपाणी की दूरी 25 मील की है और निपाणी से मात्र तीन मील पर स्तवनिधि क्षेत्र अवस्थित है। इस अंचल में इस तीर्थ की अच्छी मान्यता है। हजारों लोग अपनी-अपनी मनौतियों को लेकर यहाँ आते रहते हैं। गांव का नाम 'तोंदी' है। स्थानीय लोग इस क्षेत्र को इसी नाम से जानते या पहचानते हैं।

यहाँ एक यक्ष 'ब्रह्मदेव' का मन्दिर है। उसके दर्शनों के लिए जैन और जैनेतर सभी आते हैं। कहा जाता है कि बीजापुर का कोई पुजारी भी इस यक्ष का भक्त था उसकी एक युवा कन्या को वहाँ का नवाब अपनी बेगम बनाना चाहता था पुजारी

यह नहीं चाहता था। वह कन्या को लेकर यहाँ यक्ष की शरण में आ गया। रात्रि को उसे स्वप्न हुआ कि निकटवर्ती सरोवर में पड़ी मूर्ति का उद्धार करो। दूसरे दिन सुबह वह मूर्ति निकालने के लिए गया। निकालते समय मूर्ति हाथ से फिसल गई और उसके नौ टुकड़े हो गए। अगली रात्रि का पुनः स्वप्न आया और तदनुसार उन टुकड़ों को जोड़कर शीरा के कुण्ड में डाल दिया गया। संयोग से वह जुड़ गई। जोड़ के निशान आज भी दिखते हैं। यह मूर्ति 'नवखण्ड पार्श्वनाथ' के नाम से प्रसिद्ध है और इसके चमत्कार की अनेक घटनायें किंवदन्तियों के रूप में यहाँ लोगों की जिह्वा पर हैं। जिस प्राचीन मन्दिर में यह मूर्ति स्थापित है, वह तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। मनोहर दृश्य हैं।

भगवान पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा खड्गासन है और उसके दर्शनों के लिए भक्तों की भारी भीड़ जुटती है। पूरे वर्ष मेला-सा लगा रहता है। इस मन्दिर में तीन जगह दर्शन और हैं। थोड़ा सा नीचे की ओर पद्मावती देवी और पहाड़ के ऊपर क्षेत्रपाल विराजमान हैं।

मुख्य सड़क (मोड़) पर 'पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम' (गुरुकुल) है। यहाँ के प्रधानाध्यापक श्री आर.ए.अट्रापूड़ि से भेंट हुई। यहाँ हाईस्कूल स्तर तक की अच्छी और प्रभावी शिक्षण-व्यवस्था है। विद्यालय-परिसर-स्थित मन्दिरजी में 19 फुट अवगाहना की पीले पाषाण से निर्मित पार्श्वप्रभु की मनोज्ञ प्रतिमा है।

एक नया तीर्थ : शान्तिगिरि : यहाँ से वापिस निपाणी आए। निपाणी से 'कोथली' या 'कुप्पनवाड़ी' दस मील पर है। यह प्रभावक आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज का जन्मस्थान है। यहाँ एक छोटी पहाड़ी पर भगवान चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ और महावीर की तीन विशाल खड्गासन मूर्तियाँ विराजमान की गई हैं। पृष्ठ भाग में विद्यमान बीस तीर्थकरों की प्रतिमायें हैं।

त्रिमूर्ति के दायें-बायें पार्श्वों में चौबीसी स्थापित होगी। मुख्य द्वार के बाई ओर नन्दीश्वर-पंचमेरु का मन्दिर है तथा दाई ओर समवशरण-मन्दिर बन रहा है। अब तक यहाँ लाखों रुपया लग चुका है और लाखों अभी लगेगा। इस पर्वत का नाम 'शान्तिगिरि' रखा गया है। कार्य पूरा होने पर यहाँ एक साथ पोदनपुर (बम्बई) एवं शान्तिवीरनगर (महावीरजी) का संयुक्त स्वरूप उपस्थित हो जाएगा।

यहाँ पूज्य आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज एवं मुनि श्री वरांग महाराज के दर्शन हुए। दोनों का आशीर्वाद मिला।

पहाड़ी के नीचे 'श्री देशभूषण गुरुकुल' एवं 'आश्रम' है। मानस्तम्भ-सहित भव्य मन्दिर भी है। कुप्पनवाड़ी गांव में भी मन्दिर है। दोनों मन्दिरों के दर्शन किए।

इस क्षेत्र पर आने के लिए निपाणी से चिकौडी की बस में बैठना चाहिए। कुप्पनवाड़ी गांव के स्टॉप पर उतरकर पर्वत तक पहुंचने में दो मील चलना पड़ता है। निजी वाहन ऊपर तक जा सकते हैं।

यहाँ से हम लोग निपाणी होते हुए पुनः कोल्हापुर लौट आए। कुछ क्षणों के विश्राम के बाद महाराष्ट्र एक्सप्रेस से मनमाड के लिए रवाना हुए। अब हमारा अगला पड़ाव तीर्थराज मांगीतुंगी में होगा।

दक्षिण का सम्मेदशिखर : मांगीतुंगी : 11 जून। हमारी ट्रेन प्रातः छह बजे मनमाड पहुंची। तांगे द्वारा स्थानक तक आएं। 'बस स्टैण्ड' के लिए इधर हिन्दी-शब्द 'बस-स्थानक' प्रचलित है। अच्छा शब्द है।

यहाँ से तहाराबाद अथवा सटाणा होकर मांगीतुंगी पहुंचा जा सकता है। हम तहाराबाद की बस में बैठे। तहाराबाद से मांगीतुंगी तक दिन में चार-पांच बसें आती जाती हैं। मैटाडोर भी मिल जाती है। मांगीतुंगी यहाँ से नौ किलोमीटर है।

दोपहर साढ़े बारह बजे हम दक्षिण भारत के सम्मेदशिखर के नाम से प्रसिद्ध इस पावन क्षेत्र पर आ गए। पूरा क्षेत्र

आगम की विवक्षाओं को समझकर ही, हमें अपना मार्ग-निर्धारण करना चाहिए। [illegible] खड़ा-खड़ा बोलकर पाप का भागी नहीं बनना चाहिए।

पहाड़ी है। पहाड़ कभी बस के बाएं, कभी दाएं और कभी आगे-पीछे चलते प्रतीत होते हैं। यहाँ के पहाड़ ऊँचे और टोपीनुमा हैं। तुंगी पर्वत दूर से शिवलिंग की तरह दिखता है। सभी पहाड़ों में अलग-सा ही है। रास्ते में हम तो यह कल्पना ही नहीं कर सके कि यही मोक्षधाम है। मांगी पर्वत की छवि पिसनहारी मन्दिर-सी है। यहाँ के सभी पर्वतों में ये दोनों अलबेले हैं।

श्रवणबेलगोल के महामस्तकाभिषेक से दक्षिण के सभी तीर्थों को लाभ हुआ है। यहाँ भी सुजानगढ़वालों की ओर से तीन लाख रुपया लगाकर एक नई, आधुनिक सुविधा-सम्पन्न धर्मशाला का निर्माण कराया गया है। पारोलीवालों ने कार्यालय-भवन बनवा दिया है।

स्नानादि से निवृत्त होकर हमने सर्वप्रथम नीचे के तीन मन्दिरों के दर्शन किए। फिर भोजन और विश्राम किया। शाम को ढलान से उतरकर नदी तक घूमने गए। लौटकर आरती की।

12 जून। प्रातः पौने चार बजे उठे। आवश्यक क्रिया एवं स्नानादि से निवृत्त होकर ठीक पांच बजे पर्वतराज की वन्दनार्थ निकले। मांगीतुंगी से राम, हनूमान, सुग्रीव, गव, गवाक्ष, नील, महानील आदि 99 करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं। सर्वप्रथम सिद्धबुद्ध गुफा के दर्शन किए। पार्श्वप्रभु की विशाल पद्मासन मूर्ति मनोज्ञ है। ऊपर मोड से एक रास्ता मांगी को और दूसरा तुंगी को जाता है। दोनों पहाड़ों की चढ़ाई लगभग तीन मील की है। तीन हजार सीढ़ियाँ हैं।

पहले मांगी की ओर चले। मांगी की चोटी गोलाकार ढोल की तरह है। परिक्रमा में सैकड़ों मुनियों तीर्थकरों आदि की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सभी ग्यारहवीं-बारहवीं सदी की हैं। कुछ खण्डित कर दी गई हैं और कुछ सांगोपांग हैं। इनमें आचार्य भद्रबाहु की भी प्रतिमा है। इनके दर्शन करते हुए मोड़ तक वापिस आकर तुंगी की ओर गमन किया। यहाँ से तुंगी पर्वत ऐसे दिखता था, मानों कोई बड़ा शिलालेख-पट्ट हो। यही पर्वत वापिसी में बैठे हुए शेर की भांति दिखता था। तुंगी पर्वत की परिक्रमा में भी अनेक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। एक गुफा-मन्दिर में भगवान चन्द्रप्रभ की चार फुट की पद्मासन प्रतिमा दर्शनीय है।

दोनों पर्वतों की पूरी वन्दना लगभग बारह किलोमीटर की पड़ती है। त्वरित-मध्यम गति से चार घण्टे का समय लगता है। हम लोग नौ बजे वापिस धर्मशाला में आए। पर्वत पर यत्र-तत्र जलकुण्ड भी हैं। चोटियों से धुनी हुई रुई सरीखे बादलों का अठखेलियाँ करना मन को बहुत भाता है।

पहाड़ों की चढ़ाई में सांस फूलती है और उतराई में घुटने चटकते हैं। चढ़ाई करते समय यात्री णमोकार मन्त्र पढ़ता रहता है। पहाड़ों पर एकाग्रता की साधना मैदानों की अपेक्षा अच्छी तरह हो सकती है। शायद इसीलिए ऋषियों ने तपश्चरण के लिए पहाड़ों का चुनाव किया होगा।

परिक्रमा इतनी संकरी है कि 'एक के पीछे एक' के क्रम से ही चला जा सकता है। नीचे देखने, झांकने पर डर लगता है। इसलिए चित्त प्रार्थना में एकाग्र हो जाता है।

नारायण श्रीकृष्ण का देहान्त यहीं कहीं जंगल में हुआ होगा। उनका दाह-संस्कार पर्वत पर हुआ। बलराम का वैराग्य-स्थान भी यही है। यहीं उन्होंने तप किया।

नीचे के मन्दिरों के आज पुनः दर्शन किए। एक मन्दिर में श्यामवर्ण और दूसरे में श्वेतवर्ण पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं में चुम्बकीय आकर्षण है। मूर्तियों का सस्मित मुखमण्डल चित्त को अद्भुत शान्ति प्रदान करता है।

भोजनादि से छुट्टी पाकर बारह बजे यहाँ से चले। पहले तहाराबाद और फिर सटाणा आए। सटाणा से नासिक के लिए मोटर मिल गई। मोटर में बैठते ही पानी पड़ा। नासिक सायं पौने पांच बजे आ गए। यहाँ से गजपन्था के लिए ऑटो कर लिया। नासिक शहर से गजपन्था चार मील उत्तर में है। गांव का नाम 'मसरूल' है।

जैसे ही यहाँ धर्मशाला में सामान टिकाया कि जोरदार बारिश शुरु हो गई। कैसा अद्भुत संयोग है कि पानी या तो तब गिरना शुरु हुआ, जब हम मोटर में बैठ गए हों अथवा धर्मशाला में हमारा प्रवेश हो गया हो। रास्ते में भींगने की नौबत प्रायः नहीं आई।

सिद्धक्षेत्र गजपन्था : 13 जून। गजपन्था से बलभद्र आदि आठ करोड मुनि मोक्ष गए हैं। मुक्ति-प्राप्त सात बलभद्रों के नाम हैं-विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, नन्दी, नन्दीमित्र और सुदर्शन। पहाड़ पर इनके चरण-चिह्न स्थापित हैं।

यह पर्वत गांव मसरूल से एक मील की दूरी पर है। इसकी लगभग सवा चार सौ सीढ़ियों के दोनों ओर की प्राचीर (बाउण्ड्री) कलई से पुती हुई है। दूर से देखने पर ऐसी लगती है कि मानों क्षीरसागर से दूध की धारा निकलकर प्रवाहित हो रही हो। पहाड़ की ऊँचाई 400 फीट है।

सर्वप्रथम गुफा-मन्दिर में पार्श्वप्रभु की सवा दस फीट ऊँची पद्मासन प्रतिमा है। दूसरा मन्दिर नया है। उसमें भी पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान है। इसके बाद के गुफा-मन्दिर में शान्ति-कुन्थु-अरहनाथ की साढ़े चार-चार फुट की खड्गासन प्रतिमायें हैं। आकर्षक हैं। यह 'रत्नत्रय गुफा मन्दिर' कहलाता है। अन्त के सबसे प्राचीन और बडे गुफा-मन्दिर में पार्श्वनाथ की तीन प्रतिमायें हैं। तीनों के मध्य में ललितासन में धरणेन्द्र और पद्मावतीदेवी की मूर्तियाँ हैं। बाहर दालान में नेमिनाथ एवं चन्द्रप्रभ की खड्गासन प्रतिमायें हैं। दोनों बाजुओं में सिंह और हाथी पर आसीन पद्मावती की रंगीन मूर्तियाँ हैं। ये तीनों गुफायें बहुत प्राचीन हैं। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मैसूर के राजा चामराज ने इनकी पुनर्प्रतिष्ठा कराई थी। इसलिए इनका नाम 'चामरलोनी' प्रसिद्ध है।

तलहटी में भी एक मन्दिर है। भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति की समाधि भी है। इन्हीं भट्टारकजी ने आज से दौ सौ वर्ष पूर्व धर्मशाला की नींव डाली थी। धर्मशाला के मन्दिर में मूलनायक प्रतिमा महावीर भगवान की है। धातु की भी अनेक प्रतिमायें हैं। एक बाजू में सरस्वती भवन और दूसरी बाजू में एक गुफा में गुरुओं के चरण स्थापित हैं। मन्दिर के शिखर में भी एक बेदी है। मानस्तम्भ भी है। चारों ओर कोट है।

हिन्दू-तीर्थ नासिक : दोपहर बाद हम लोग गजपन्था से नासिक आ गए। यह प्रसिद्ध हिन्दूतीर्थ है। श्री रामचन्द्रजी ने अपने वनवास का अधिकांश समय यहीं व्यतीत किया था। सूर्पणखा (रावण की बहिन) की नाक यहीं काटी थी, इसलिए इसका नाम नासिक पड़ गया। यह नगर गोदावरी के किनारे बसा हुआ है। हर बारह वर्ष के बाद यहाँ कुम्भ का मेला होता है।

यहाँ अनेक हिन्दू देवताओं जैसे-बालाजी, शिव, श्रीराम आदि के मन्दिर हैं। निकटस्थ पंचवटी में कई आंटियों का वट-वृक्ष है। आसपास अनेक गुफायें और कुण्ड हैं। यहाँ के मकानों की नक्काशी देखते ही बनती है। स्टेशन के रास्ते में एक दशक पूर्व निर्मित 'मुक्ति-धाम' नामक मन्दिर भव्यतम है। इसमें सभी देवी-देवताओं की आकर्षक मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति लंगोट-सहित भगवान महावीर की भी है। श्वेत संगमरमर-निर्मित इस मन्दिर को सम्पूर्ण धामों के धाम का स्वरूप दिया गया है। दर्शनीय है।

नागपुर में दो दिन : 14-15 जून। कल नासिक शहर से हम नागपुर के लिए रवाना हुए थे। दादर-नागपुर एक्सप्रेस सायं साढ़े चार बजे छूटी। वहाँ से तो बहुत भीड़ थी किन्तु भुसावल में हमें दो बर्थ मिल गई थीं। इससे थोड़ा आगम मिल गया। सुबह 6.05 पर गाड़ी नागपुर आ गई। श्री परमानन्द दि० जैन धर्मशाला, इतवारी में आकर ठहर गए।

यहाँ दिगम्बर जैनियों की सख्या बीस हजार से कम नहीं होगी। यहाँ इन दिनों प्रखर तपस्वी पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज ससंघ परवारपुरा में ठहरे हुए हैं। संघ में तीन मुनि हैं- सर्वश्री आनन्दसागरजी, महेन्द्रसागरजी एवं हेमसागरजी महाराज। सभी साधु सरल और स्वाध्यायी हैं। पूज्य हेमसागरजी नवयुवा और नवदीक्षित हैं। बहुत अच्छा बोलते

जब तक यह मुनि-संस्था जीवित है, समाज में संयम का प्रवाह बना रहेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयम ही सुखी जीवन की आधारशिला है।

हैं। एक आर्यिका माता दो क्षुल्लक और चार क्षुल्लिकायें भी हैं। दोनों दिन का अधिकांश समय साधु-समागम में व्यतीत हुआ। आचार्य महाराज तो हमें देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। यहाँ उनकी प्रशस्त प्रेरणा और समाज के प्रबल आग्रह से हमारे परवारपुरा मन्दिर में तीन तथा पार्श्वनाथ मोठे मन्दिर में दो प्रवचन भी हुए। अनेक प्रतिष्ठित लोगों से परिचय हुआ। स्थानीय विद्वानों में पं0 मनोहरजी आग्रेकर एवं पं0 ताराचन्दजी साहब ने पूरा स्नेहानुराग प्रदान किया।

यहाँ अनेक दि0 जैन मन्दिर हैं। हमने परवारपुरा मन्दिर, पार्श्वनाथ सैतवाल मन्दिर, पार्श्वनाथ मोठे मन्दिर, जूना-मन्दिर, किराना ओली-मन्दिर, सेनगण मन्दिर तथा एक चैत्यालय के दर्शन किए। सभी मन्दिर भव्य और विशाल हैं।

जैनियों में 84 गोत्र सुने जाते हैं। नागपुर में उनमें से अधिकांश गोत्रों के लोग मिल जायेंगे।

पर्यूषण पर्व के लिए स्थानीय लोगों का बड़ा आग्रह है। हमने उन्हें वचन दिया है कि इस वर्ष आने की पूरी कोशिश करेंगे और यदि किसी कारण यह सम्भव नहीं हुआ तो अपने धर्मशिक्षा-गुरु श्रद्धेय पं0 श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री को प्रार्थनापूर्वक अवश्य भिजवायेंगे। (बाद में समाज की प्रार्थना पर शास्त्रीजी गए भी)।

यहाँ बीसेक दिन पूर्व आचार्यश्री के चरण-चिह्न आहार लेते समय पक्के फर्श पर अंकित हो गए हैं। अभी तक मिटे नहीं हैं। स्थानीय दैनिक 'नवभारत' में फोटो छप चुका है। इस चमत्कार के विषय में लोगों में बड़ी जिज्ञासायें हैं। हमने इतना ही कहा कि ये ईर्यापथ से चलने वालों के चरण हैं। इनसे हमें देखभालकर चलने की प्रेरणा लेनी चाहिए।

श्री शान्तिनाथ अतिशयक्षेत्र : रामटेक : 16 जून। रामटेक यहाँ से 48 कि0मी0 की दूरी पर है। श्री कुन्दनलालजी एवं श्री भीकमचन्दजी ने हमारे लिए एक ऑटो की व्यवस्था करा दी थी। उससे हम यहाँ नौ बजे आ गए। क्षेत्र रम्य है। एक ही परकोटे में नौ मन्दिर हैं। मुख्य मन्दिर भगवान शान्तिनाथ का है। साढ़े तेरह फुट की पीले पाषाण की यह प्रतिमा सातिशय है। नागपुर-नरेश भौंसले के साथ आए एक जैन श्रेष्ठी को खोज करते हुए यह मूर्ति मिली थी। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। दृष्टि उस पर से हटती नहीं है।

रामटेक एक अच्छा कस्बा है। रेल और सड़क मार्ग से नागपुर से जुड़ा हुआ है। निकटस्थ पहाड़ी पर श्रीराम का एक भव्य मन्दिर बना हुआ है। कालिदास का स्मारक भी है। कहा जाता है कि मेघदूत में यहीं के वनों का वर्णन है।

कामठी का जैन मन्दिर : रामटेक से लौटते हुए कामठी के जैन मन्दिर के भी दर्शन किए। मन्दिर बहुत विशाल लाखों रुपए का तथा शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है। चार सौ वर्ष पुराना है। लाल पत्थर में पद्मपुराण एवं पाण्डव पुराण के दृश्य उकेरे गए हैं। बाहर की दीवाल में कौरव-पाण्डव-युद्ध एवं नेमिनाथ के वैराग्य के दृश्यों में कमाल का शिल्प-कौशल देखने को मिलता है। शिखरों की पच्चीकारी दर्शनीय है।

मूलनायक भगवान आदिनाथ की प्रतिमा मनोज्ञ है किन्तु उसके नेत्र-युगल खुले हुए हैं। भौहों में बांकापन है। लगता है कि प्रभु आक्रोश की मुद्रा में हैं। लोग कहते हैं कि इस दृष्टि-दोष के कारण कामठी की जैन बस्ती उजड़ गई है। पहले यहाँ सौ-सवा सौ घर थे, आज मात्र एक-दो हैं। जो भी हो, यह एक कलापूर्ण उत्कृष्ट मन्दिर है। प्रवचन-बारादरी देखने योग्य है। अनेक वेदियाँ हैं। अन्य सभी मूर्तियाँ निर्दोष हैं। वैसे भगवान आदिनाथ की मूर्ति में भी सम्मोहन-शक्ति है।

यहाँ के दर्शन करते हुए वापिस नागपुर आ गए।

अंजनगांव : 17 जून। आज यहाँ से परतवाड़ा आए। धर्मशाला में भोजन किया। अंजनगांव से श्री शान्ति येसु संगई लिवाने आ गए। नागपुर में मिले थे। यह यात्रा उनके ही आग्रह से हुई। यह गांव यहाँ से तीस किलोमीटर की दूरी पर है।

यह गांव अपने बंगला व कपूरी पानों के लिए दूर-दूर तक जाना जाता है। यहाँ सेनगण बलात्कारगण और काष्ठासंघ

[illegible] चाहते हैं मन की खोट को और खोट चाहे सोने में हो या मन में, उससे मूल्य और मान कम होता है।

के ढाई सौ वर्ष प्राचीन तीन मन्दिर हैं। कुछ मूर्तियाँ सातिशय हैं। लोगों के आग्रह पर काष्ठासंघ-मन्दिर में 'क्रमबद्ध पर्याय' पर हमारा प्रवचन भी हुआ। लोगों की शंकाओं का निरसन हुआ।

रात्रि-विश्राम संगईजी के घर पर हुआ। नागपुर से श्री जोहरापुरकर भी साथ आए थे।

यात्रा का अन्तिम पड़ाव : सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि : 18 जून। प्रातः साढ़े चार बजे अंजनगांव से चले। परतवाड़ा आ गए। यहाँ के विशाल मन्दिर के भी दर्शन किए। यहाँ से ऑटो द्वारा मुक्तागिरि गए। घने पहाड़ों की बीच सुरम्य सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं। पर्वत छोटा ही है। कुल 55 मंदिर हैं। अधिकांश सोलहवीं सदी के हैं। 40 नं0 का मन्दिर कलात्मक है। प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न क्षेत्र है। श्रेणिक महाराज का भी सम्बन्ध इस क्षेत्र से रहा है।

वापिसी : 19 जून। आज जी.टी. एक्सप्रेस से आगरा के लिए रवाना हुए। पूरी यात्रा में पांच सिद्ध एवं बीस अतिशय क्षेत्रों के दर्शन हुए। तीन हिन्दू तीर्थ और पांच महानगरों को भी घूम-फिरकर देखा। अनेक साधु-संघों के दर्शन का सौभाग्य मिला। यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

□

सन्तों की जन्मभूमियों के दर्शन

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध वस्त्रोद्योग केन्द्र इचलकरंजी में गत 16 से 23 फरवरी तक पंचकल्याणक महोत्सव का आयोजन था। इसी महोत्सव के अन्तर्गत दिनांक 28 फरवरी को चारित्र–चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के दीक्षा अमृत महोत्सव के मुख्य अतिथि वक्ता के रूप में हमें आमन्त्रित किया गया था। यह कार्यक्रम उन्हीं की परम्परा के वर्तमान पट्टाचार्य पूज्य श्री वर्धमान सागरजी महाराज के पुनीत सान्निध्य में सम्पन्न होना था। एक ओर उनके दर्शनों की उत्कट लालसा तो मन में थी ही, दूसरी ओर हमें यह भी ज्ञात था कि इचलकरंजी के सन्निकट अनेक प्रातः स्मरणीय साधुओं की जन्म एवं साधना-स्थलियाँ भी हैं। वहाँ पहुँचकर उन पवित्र भूमियों की रज माथे से लगाने का अवसर भी अनायास मिल सकता है। अतः हमने आमन्त्रण स्वीकार करते हुए गोवा एक्सप्रेस से दिनाँक 17 फरवरी को मिरज पहुँचने की सूचना महोत्सव समिति के अध्यक्ष श्री कुन्तीलालजी पाटनी को सहर्ष दे दी।

यथासमय हम वहाँ पहुँचे। वहाँ से टैक्सी लेकर पाटनीजी के आवास पर जाकर ठहर गए। दीक्षा अमृत महोत्सव का आयोजन प्रथम तीनों दिनों दिनाँक 18, 19 एवं 20 फरवरी तक चला। दक्षिण के सुप्रसिद्ध मठ श्रवणबेलगोला, कोल्हापुर एवं नांदणी के पीठासीन यशस्वी भट्टारक-त्रय स्वस्तिश्री कर्मयोगी चारुकीर्तिस्वामीजी, लक्ष्मीसेनस्वामीजी तथा जिनसेनस्वामीजी की उपस्थिति से आयोजन को गरिमा प्राप्त हुई। महासभाध्यक्ष श्रीमान् निर्मल सेठी, जो उन दिनों अपनी अस्वस्थ धर्मपत्नी, का चिकित्साकीय–परीक्षण बम्बई हॉस्पीटल में करा रहे थे, भी एक दिन का समय निकालकर पधारे थे। कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान से भी बड़ी संख्या में गणमान्य महानुभावों का शुभागमन हुआ था। इस सदी के प्रथमाचार्य एवं अप्रतिम प्रभावक व्यक्तित्व के धनी आचार्यश्री के प्रति विनयांजलि अर्पित करने की लोगों की ललक चिरस्मरणीय थी।

इसी अवधि में समय निकालकर हमने निकटस्थ सन्तों की जन्मभूमियों के दर्शन-वन्दन करने का सौभाग्य प्राप्त किया।

आज की भौतिक वातावरण प्रधान इस बीसवीं सदी में भी [illegible] के दर्शन हो रहे हैं, यह आचार्य शान्तिसागर महाराज का ही महान् उपकार है।

पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से ही ऐसे अवसर मिलते हैं। पुण्यशाली महापुरुषों का जहाँ जन्म होता है अथवा वे जहाँ-जहाँ बिहार और प्रवास करते हैं, वे सभी स्थान तीर्थ-तुल्य बन जाते हैं, ऐसे स्थानों की यात्रा से मन को अद्भुत शान्ति मिलती है तथा सम्बन्धित सन्तों के पुण्य स्मरण से कर्म-भार भी हल्का होता ही है। जिन-जिन स्थानों के हमने दर्शन किए, उनका संक्षिप्त विवरण हम अपने प्रिय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

नवोदित तीर्थ धर्मनगर : इचलकरंजी से आठ किलोमीटर की दूरी पर जयसिंहपुर की ओर आचार्य श्री बाहुबलिसागरजी महाराज की प्रशस्त प्रेरणा, आशीर्वाद एवं सूझबूझ से प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में एक नया तीर्थ 'धर्मनगर' नाम से विकसित हो रहा है। क्षेत्र के पास चारों ओर काफी खुला स्थान है। बीचोंबीच एक तिमंजिला 'देव-शास्त्र-गुरु मन्दिर' बन चुका है। उसकी ऊपर की मंजिल में धर्मनाथ भगवान की ग्यारह फुटी अवगाहना की एक मनोज्ञ खड्गासन मूर्ति स्थापित की गई है। राष्ट्रीय मार्ग पर आने-जाने वाले लोगों को दूर-दूर से और दूर-दूर तक उसके दर्शन होते हैं और उनके दोनों हाथ श्रद्धा से आपोंआप जुड़ जाते हैं। बीच की मंजिल में जिनश्रुत-भण्डार है तथा ग्राउण्ड फ्लोर पर मुनियों के आवास योग्य सात कक्ष बने हुए हैं। यह इमारत गोलाकार एवं नयनाभिराम है। ऊपर की खुली छत पर खड़े होने पर चारों ओर के रमणीक दृश्य मन को मुग्ध करते हैं। भवन के सामने एक अर्ध गोलाकार पार्क भी विकसित किया जा रहा है।

क्षेत्र पर यात्रियों के लिए ठहरने की व्यवस्था है। बाहुबलि मुद्रणालय भी है तथा 'धर्म-साम्राज्य' शीर्षक से एक साप्ताहिक पत्रिका भी निकलती है। एक नया मन्दिर भी निर्माणाधीन है। पद्मासन विराट् चार मूर्तियाँ, जो अभी प्रतिष्ठित हैं, एक टिन-शैड में रखी हुई हैं। धर्म-साधना एवं आत्मचिन्तन के लिए यह स्थान बहुत ही अनुकूल है।

कुंजवन उदगाँव : धर्मनगर के दर्शन कर हम कुंजवन उद्गाँव आए। यह स्थान श्री महावीर अतिशय क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। यह दिगम्बर जैन मुनियों का समाधि-स्थल भी है। हमारे फिरोजाबाद नगर के गौरव, बहुभाषविद् तथा चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान् स्वनामधन्य आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ने एक वयोवृद्ध एकान्तप्रिय आत्मसाधक श्री आदिसागरजी मुनि महाराज से यहीं दीक्षा ग्रहण की थी। इसीलिए हमारे मन में इस स्थान के प्रति विशेष आकर्षण था। हमने क्षेत्र की धूल को माथे से लगाकर अद्भुत आल्हाद का अनुभव किया।

पहले यहाँ केवल एक गुफा थी। मुनि श्री 108 आदिसागरजी महाराज, जो गृहस्थावस्था में निकटवर्ती अंकली गॉव में रहते थे, प्रायः यहाँ आत्मसाधना करते थे। बहुत ही शान्त प्रकृति के साधु थे तथा कभी विकथाओं में उलझते नहीं थे। यशोकामना से सर्वथा निःस्पृह थे। यहीं 104 वर्ष की अवस्था में उनकी समाधि हुई। कुछ ही दिनों के अन्तर से श्री आदिसागर नाम के ही एक अन्य सन्त ने भी यहीं अपना शरीर छोड़ा। क्षेत्र-परिसर में दोनों की समाधियाँ बनी हुई हैं। सन् 1944 का एक शिलालेख भी है। उसमें श्री आदिसागरजी अंकलीकर को 'मुनि' शब्द से ही उल्लिखित किया गया है।

अब यहाँ वृक्षारोपण कर एक वन विकसित किया गया है। इसलिए 'श्री कुंजवन' इसका नाम है। एक भव्य मन्दिर भी है। सन् 1947 में स्थापित भगवान महावीर की प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। प्रतिमा छोटी और खड्गासन है, दायीं और बांयी और क्रमशः भरत-बाहुबलि की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर में काँच का काम दर्शनीय है। पूज्य श्री सुबलसागरजी महाराज की प्रशस्त प्रेरणा से इसका निर्माण हुआ है। मन्दिर के सामने प्रवचन हॉल है। हॉल के सामने लाल पत्थरों से बना मानस्तम्भ भी है।

यहाँ स्थापित क्षेत्रपाल की बड़ी मान्यता है तथा हर माह की अमावस्या को अच्छी संख्या में यात्रीगण यहाँ आते हैं। एक छोटा सा मेला भी लगता हैं

[illegible]

अंकली गाँव : पास में एक-दो किलोमीटर पर ही अंकली गाँव है। **मुनिवर श्री आदिसागरजी (प्रथम) का जन्म यहीं हुआ था, इसीलिए वे 'सन्त अंकलीकर' के नाम से प्रसिद्ध हुए।** मुनि श्री आदिसागरजी (द्वितीय) की जन्म-स्थली बोरगाँव होने से वे 'बोरगाँवकर' कहलाए। महाराष्ट्र में गाँव के नाम से ही व्यक्तियों की पहचान होती है।

यहाँ जैनियों के लगभग तीन सौ घर है। 60 प्रतिशत निवासी जैन ही है। जयजिनेन्द्र झाँझ पथक, जयजिनेन्द्र कला मन्दिर जैसी संस्थाएँ यहाँ सेवारत है। मकानों के नाम भी सुन्दर-सुन्दर रखे गए है, जैस सर्वतोभद्र, ऋतु-विलास आदि।

मानस्तम्भ सहित एक भव्य मन्दिर गाँव में है। सन् 1960 में उसका जीर्णोद्धार हो चुका है। महाराष्ट्र में मन्दिर के शिखर एवं मानस्तम्भ की ऊँचाई समान ही देखने में आती है। प्रायः सभी जगह मानस्तम्भों के निर्माण में लाल पत्थरों का ही प्रयोग हुआ है। हर मन्दिर में गर्भगृह के सामने मण्डप होता है। मन्दिरजी के दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ।

मन्दिरजी में गर्भगृह के द्वार के दोनों ओर परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी एवं सन्त-प्रवर श्री आदिसागरजी महाराज के चित्र लगे हैं। अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए हमने श्री आदिसागरजी महाराज के चित्र को ध्यान से देखा। **चित्र के नीचे परिचयात्मक पंक्ति के रूप में लिखा था–**

महान् तपस्वी श्री आदिसागर मुनि महाराज अंकली (सांगली) सल्लेखना ता० 22.2.1944 : उदगाँव कुंजवन

मन्दिरजी में पं० वृषभजी से भेंट हुई। उनकी शिक्षा कोल्हापुर मठ में हुई है। गत तीन वर्षो से वह यहॉ सेवारत हैं? हमने उनसे पूछा कि यहाँ यह चित्र कब से है? उनका उत्तर था–"मैं तो जब से यहाँ आया हूँ, मैंने उसे यहीं देखा है।" चित्र के नीचे लिखी पंक्ति और उदगाँव के शिलालेख को पढ़कर प्रचलित वाद के सम्बन्ध में हमने अन्य कोई जानकारी प्राप्त करने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। **गाँव के लोग भी पूज्य श्री 108 आदिसागरजी के नाम पर चलाए जा रहे विवाद से खुश नहीं है, ऐसा पं० वृषभ जी ने हमें बताया।** उन्होंने आचार्य श्री वर्धमानसागरजी महाराज की बहुत प्रशंसा की, जिनका प्रवास पिछले दिनों यहाँ हुआ था। महाराजश्री ने एक दिन भी इस विवाद के सम्बन्ध मे एक शब्द तक नहीं कहा, जब कि पिछले अनुभव के आधार पर लोगों को आशंका थी कि पहले आई माताजी के कथनो की प्रतिक्रिया में वे कुछ कहेंगे अवश्य। व्यक्तिगत वार्ता में किसी के पूछने पर वह इतना ही बोले–'सत्य हमेशा सत्य ही रहेगा। जो खरा है, सो हमेशा खरा है।'

यह सच भी है कि साधु को न तो कोई विवाद खड़ा करना चाहिए और न उसमें पड़ना चाहिए। वीतरागता की सुरक्षा और संवर्धन भी तभी सम्भव है।

इस यात्रा में इचलकरंजी से ही उद्‌गॉव के श्री कुबेर चौगले को हमने अपने साथ ले लिया था। वह एक अच्छे संगीतकार हैं तथा मराठी, हिन्दी और कन्नड़ भाषाओं पर उनका अधिकार हैं। अंकली–उदगाँव में ही रहते हैं। जब कोई भाई मराठी में कुछ कहते थे तो वे हिन्दी में उसका अनुवाद कर हमें बताते थे और हमारे द्वारा हिन्दी भाषा में व्यक्त जिज्ञासा वह वहाँ के मूल निवासियों को मराठी में बता देते थे। **उनसे बहुत सहायता मिली। उनका कहना था कि यहाँ के सभी लोग सन्त अंकलीकर को मुनि ही मानते हैं तथा इसी रूप में गर्व और गौरव का अनुभव करते हैं। आचार्य बताए जाने में न उन्हें कोई रुचि है और न इस विवाद से उनका कोई सरोकार ही है।** आज जाते समय हम थोड़ी देर के लिए जयसिंहपुर में श्री रामचन्द्र बलवन्त झेले के आवास पर भी रुके थे और उनसे बातचीत की थी। वह पहले ऑननेरी मजिस्ट्रेट रह चुके हैं। उनकी यहाँ एक तेल मिल है। उन्होंने एक बस्ती भी बसाई है, जो झेले कॉलोनी कहलाती है। आढ़त का थोक कारोबार है। उनके एक पुत्र झेले चित्र मन्दिर (सिने टॉकीज) का संचालन करते हैं। जब अंकलीकरजी की समाधि हुई, तब वे स्वयं उपस्थित थे। वह कुंजवन के ट्रस्टियों में से हैं। आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज की दीक्षा के भी वे

मुनि होकर विपरीत आचरण करना अक्षम्य अपराध है। झूठी प्रशंसा या [illegible] के चक्कर में [illegible] सुगम साधु-मार्ग नहीं है।

प्रत्यक्षदर्शी हैं। उनसे जो जानकारी हमें मिली, वह प्रामाणिक है। उनके मन में असत्य–प्रचार की तीव्र पीड़ा है, वह बार-बार उनकी वाणी से व्यक्त हो जाती थी। यह सब चर्चा हम कभी बाद में करेंगे। अभी इसका प्रसंग नहीं है।

आज की इस यात्रा में हमारे साथ अजमेर के युवा कार्यकर्त्ता एवं चिन्तक श्री कुमुदचन्द्र सोनी भी थे। गाड़ी हमें इचलकरंजी के प्रमुख उद्योगपति श्री धनराज जी बाकलीवाल ने सुलभ करा दी थी।

उत्तर भारत में यदि सभी तीर्थंकरों का जन्म हुआ तो अनेक आचार्यों को जन्म देने का सौभाग्य दक्षिण भारत को प्राप्त है। वर्तमानकालीन प्रभावक आचार्य स्वनामधन्य सर्वश्री शान्तिसागरजी, देशभूषणजी, विद्यानन्दजी आदि की जन्मदात्री भूमि भी यहीं है और यह एक सुखद संयोग ही है कि इन सबके जन्मस्थान पास-पास में ही अवस्थित है। आज की यात्रा में हमने प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज एवं आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के गाँवों के दर्शन करने का विचार बनाया। महोत्सव समिति के अध्यक्ष श्री कान्तिलाल जी पाटनी ने हमें अपनी गाड़ी सौंप दी। अजमेर के युवा बैंक अधिकारी एवं जैनधर्म के अध्ययन-मनन के प्रति समर्पित मनीषी कार्यकर्त्ता श्री कुमुदचन्द्र सोनी आज भी हमारा साथ दे रहे थे। दुभाषिया की भूमिका का निर्वाह किया ड्राइवर जादवजी ने, जो मराठी और हिन्दी दोनों भाषाओं में बातचीत करने में दक्ष थे।

भोजगाँव : सर्वप्रथम हम भोजगाँव पहुँचें। यह युग-प्रवर्तक आचार्य श्री शान्सिागरजी का गाँव था। यहाँ उनका पूरा बचपन बीता। इसी की मिट्टी में खेलकर वह बड़े हुए। यहीं उनके हृदय में धीरे-धीरे वैराग्य का बीज अंकुरित होता रहा और जब वह बीज पल्लवित होकर एक विराट् वृक्ष बन गया तो सारे भारत को उसकी शीतल छाया-प्राप्त हुई। हम सबके लिए यह भूमि अत्यंत पुण्यशाली है। यह गाँव उस अद्भुत सन्त-प्रवर की अनेक मधुर स्मृतियाँ अपने गर्भ में संजोए हुए है।

आज यहाँ 'चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी जैन संस्कृति मण्डल' की देखरेख में एक भव्य स्मारक बन चुका है। इसकी स्थापना के लिए एक बड़े और अच्छे स्थान का चयन किया गया है। स्मारक में प्रवेश करते ही दो कदम चलने पर सामने हम आचार्य श्री की चरण-छतरी के दर्शन करते हैं। इन पार्थिव चरणकमलों का दोनों हाथों की ऊँगलियों से स्पर्श कर हमने बड़ी पुलक का अनुभव किया। ये चरण हमें उन चरणों की याद दिलाते हैं, जिन्होंने पूरे भारत में बिहार कर धर्म का अलख जगाया था। पास में एक शिलापट्ट पर उनका अन्तिम उपदेश पद्मश्री बहिन सुमतिबेन शहा द्वारा उत्कीर्ण करवा कर लगाया गया है। उपदेश क्या है, एक प्रकार से जैनधर्म का घोषणा-पत्र ही है।

यहाँ एक अष्टकोण मंदिर में शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा विराजमान की गई है, जिसके दर्शनों से भव्यों को शान्तिसागर से शान्तिनाथ तक की यात्रा के लिए संकल्प का सम्बल प्राप्त होता है। मन्दिर के चारों ओर वाटिका है। सामने मानस्तम्भ है और उसके बाद कुछ स्थान छोड़कर एक ऊँचे चबूतरे पर आचार्यश्री का स्टेच्यू स्थापित किया गया है। हमारा सुझाव है कि यहाँ एक शिलापट्ट पर उनका जीवन-परिचय तथा उनके उदात्त व्यक्तित्व एवं विराट् कर्तव्य को प्रकट करने वाली घटनाओं का संक्षिप्त विवरण भी उत्कीर्ण कराया जाना चाहिए। सन् 1990 में चरण-छतरी के पीछे एक प्रवचन-हाल का भी निर्माण हो चुका है।

स्मारक के शेष भाग में बाग विकसित हो रहा है। नारियल-वृक्षों से उसकी शोभा द्विगुणित हो गई है। निःसन्देह शीघ्र ही यह एक मनोरम स्थान बन जाएगा। इस स्मारक का नक्शा आर्चीटेक्ट इंजीनियर श्री अरिंजय पाटिल (जो आचार्यश्री का प्रपौत्र है तथा सम्प्रति जयसिंहपुर में सेवारत है) ने बनाया है। इस स्मारक के पीछे प्रशस्त प्रेरणा है पूज्य आचार्य श्री बाहुबलिसागरजी महाराज की।

भोजगाँव का पुराना मन्दिर : भोज के पुराने मन्दिर का जीर्णोद्धार हो चुका है। यहाँ भी एक सीध में मन्दिर,

[illegible]

मानस्तम्भ और प्रवचन हाल बने हुए हैं। मन्दिर में मूलनायक के रूप में भगवान पार्श्वनाथ की मनोज्ञ मूर्ति विराजमान है। मन्दिरजी में आचार्यश्री के हस्तलेख के नमूने देखे जा सकते हैं। वे सभी कन्नड़ भाषा में हैं। आचार्यश्री अपनी गृहस्थावस्था में इसी मन्दिर में पूजा-पाठ किया करते थे। उनके कोमल हृदय में श्रद्धा, भक्ति, विवेक, विनय आदि गुणों के विकास में इसी मन्दिर की भूमिका रही है।

भोज के निवासी आज भी बड़े गौरव से आचार्यश्री का स्मरण करते हैं। 'चारित्र-चक्रवर्ती' ग्रन्थ में यह ठीक ही लिखा गया है–"जगत्पूज्य व्यक्ति भी अपने स्थान में वन्दित नहीं होता, ऐसी सूक्ति है, किन्तु ये प्रकृतिसिद्ध महात्मा उस लोकोक्ति के बन्धन से विमुक्त थे। इनकी जन्मभूमि की जनता इनको देवता-तुल्य पूज्य तथा वन्दनीय मानती है। सर्वत्र यह नियम नहीं देखा जाता।

परिजनों से भेंट : गाँव में चार सौ जैन घर हैं। मन में आचार्यश्री के परिजनों से मिलने की उत्कण्ठा थी। जब हम गाँव के मन्दिरजी में दर्शन कर रहे थे, हमें नितिनकुमार पाटिल नामक युवक मिला, जो हिन्दी अच्छी तरह लिख-बोल लेता है। संयोग से इसके पिता महाराज के नाती निकले। आग्रहपूर्वक वह हमें उनके घर ले गया। आचार्य श्री चार भाई थे, उनमें से दो की वंश-परम्परा अभी चल रही है।

हमारी आँखों के सामने वही घर था, जहाँ कभी मुनिराज आदिसागर अंकलीकर, देवेन्द्रकीर्ति आदि साधु लोग प्रायः पधारा करते थे और आजी माता उनकी सेवा-भक्ति तथा आहार-दान बड़ी खुशी से दिया करती थीं। मुनिराज श्री आदिसागरजी बोरगाँवकर को तो स्वयं आचार्य महाराज अपनी गृहस्थावस्था में आहार दिया करते थे। वे एक वनवासी थे, केवल आहार के लिए बस्ती में आते थे। 'चारित्र-चक्रवर्ती ग्रन्थ में लिखा है–" वे भोज में आते थे और हमारे घर में उनका आहार होता था। वे उस दिन हमारी दुकान में ही रहते थे। वहाँ ही वे रात्रि में सोते थे। हम भी उनके पास में सो जाते थे। हम उनकी निरन्तर वैयावृत्ति तथा सेवा करते थे। दूसरे दिन हम उनको दूधगंगा, वेदगंगा नदी के सगम तक पहुँचाते थे। बाद में हम उन्हें अपने कंधे पर रखकर नदी के पार ले जाते थे।"

यह सब वर्णन बोरगाँव के आदिसागरजी के विषय में है, किन्तु कुछ नवीन पुस्तकों में बिना पूरी पड़ताल किए केवल नाम-साम्य के कारण अंकलीकरजी के साथ जोड़ दिया गया है। तथ्य सामने आने पर अब इसमें सुधार कर लेना चाहिए। जैनधर्म भ्रान्तियों के निवारण पर बहुत जोर देता है। जानकर भी अनजान बने रहने पर बहाना करना अच्छी बात नहीं है।

हमारी भेंट यहाँ श्री भीमगौड़ा पाटिल से हुई। जब उन्होंने अपना नाम बताया तो हमें एक घटना याद आ गई। सन् 1952 में पण्डित सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर इसी घर में भोजन कर रहे थे। पास में महाराज के भाई का नाती भीम भी भोजन कर रहा था। बालक भीम के सामने जब बिना नमक का भोजन आया तो उसने अपनी माँ से कहा-"माता, मुझे नमक चाहिए।" उसकी छोटी बहिन सुशीला भी वहाँ थीं। वह बोल उठी-"भैया, जब तुम मुनि बनोगे, तब तो बिना नमक का आहार लेना होगा। उस समय नमक कैसे मांगोगे?"

वही बालक भीम इस समय 61 वर्षीय प्रौढ़ भीमगौड़ाजी पाटिल के रूप में हमारे सामने हैं। बहिन सुशीला भी अभी है। वह नसलापुर में रहती है। यह घटना जब हमने भीमगौड़ाजी को सुनाई तो उन्होंने भी इसकी पुष्टि की। हम और कुमुदजी इन्हें आग्रहपूर्वक इचलकरंजी लेकर लौटे तथा वहाँ महासभा की ओर से इनका सम्मान किया गया।

आचार्य श्री के गृहस्थावस्था के इस घर में एक कक्ष में आचार्य श्री के जीवन से सम्बन्धित एक चित्र-वीथिका होनी चाहिए, हमारे इस सुझाव पर श्री भीमगौड़ाजी ने अपने इस घर का एक कमरा प्रदान करने की सहर्ष अनुमति प्रदान की। आशा है 'आचार्य शान्तिसागरजी जैन संस्कृति मण्डल' हमारे इस विनम्र सुझाव के क्रियान्वन पर अवश्य विचार करेगा।

जो मुनि जिनलिंग को धारण करके भी इच्छित परिग्रह को ग्रहण करते हैं, वे [illegible] वमन को ही निगलते हैं। अतः मुनि बनने के बाद अपने पूर्व-[illegible]

यहाँ श्री भीमगौड़ाजी की माँ, जिनकी उम्र इस समय 82 वर्ष की है, का भी आशीर्वाद हमने प्राप्त किया। उन्होंने जलपान कराए बिना हमें वहां से नहीं आने दिया। ममता और स्नेह की मूर्ति ही है।

सदलगा : भोजगाँव से हम सदलगा आए। यह एक बड़ा गाँव है। पक्की और चौड़ी सड़के हैं, नगरपालिका है। यहाँ जैनों के पाँच सौ घर हैं। **इसी गाँव में जन्मे थे परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज, जिनकी निर्दोष तपश्चर्या का डंका आज पूरे भारत में बज रहा है।** यह चार भाई थे, जिनमें से तीन आज मुनि हैं। उनके माता-पिता ने भी आर्यिका एवं मुनि की दीक्षा अंगीकार की थी। दो बहिनें हैं, वे भी गृह-विरत हैं। केवल एक भाई महावीरप्रसादजी गाँव में रहते थे। वे भी कुछ महीने पहले घर खाली कर गए हैं। **उन्होंने अपना यह घर 'श्री विद्याधर दि. जैन ट्रस्ट' को दान कर दिया है।** अब यहाँ नीचे एक विशाल हॉल बन रहा है, जिसमें आचार्यप्रवर श्री विद्यासागरजी महाराज से सम्बन्धित चित्रवीथिका रहेगी तथा एक वृहद् ग्रन्थालय की भी स्थापना की जाएगी। ऊपर मन्दिर रहेगा। इस स्मारक का निर्माण दिल्ली के एक श्रीमन्त श्री महावीरप्रसाद जैन करा रहे हैं। निर्माण-कार्य चल रहा था।

यहाँ हमारी भेंट पूज्य आचार्य श्री के गृहस्थावस्था के चचेरे भाई श्री अन्ना साहब से हुई। आचार्य श्री की पूर्व पर्याय के भतीजे युवा संजय अष्ट ने हमें गाँव के मन्दिरों के दर्शन कराए। यहाँ तीन जैन मन्दिर है।

गाँव के मन्दिर :

(1) **कल बस्ती**—यह पुराना मन्दिर है और लाल पत्थर का बना है। कन्नड़ में कल का अर्थ पत्थर होता है। पत्थर से निर्मित होने के कारण ही इसे कल बस्ती बोलतें हैं। मन्दिर के मूलनायक भगवान आदिनाथ हैं

(2) **दौड़ बस्ती**—दौड़ अर्थात् बड़ा। यह बड़ा होने से दौड़ बस्ती कहलाता है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति अत्यन्त मनोहर है। यहाँ मण्डप के स्थान पर चबूतरा बना हुआ है। सामने अष्टकोण आधार पर मानस्तम्भ बना हुआ है। आधार में छह हाथी और दो शेर बने हुए हैं। लगता है कि जैसे वही मानस्तम्भ का भार अपने पुष्ट कन्धों पर सँभाले हुए हैं। दोनों पार्श्वों में बरामदे हैं। एक बरामदे में आचार्य श्री के अनेक चित्र हैं। **एक चित्र सुप्रसिद्ध विद्वान् डा. ए. एन. उपाध्ये का भी है। उनका भी जन्मस्थान सदलगा ही है।** निःसन्देह सदलगा के इन दोनों सपतों पर पूरे भारत को गर्व और गौरव का अनुभव होता है।

(3) **शिखर बस्ती**—पहले शिखर वाला मन्दिर यही था। अब तो शेष दोनों पर भी शिखर बन चुके हैं। यहाँ भी मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान हैं। मानस्तम्भ और हाल भी है। हाल और मन्दिर में मानस्तम्भ तक लौह-सोपान है। आप उसे नसैनी का पुल भी कह सकते हैं। महाराष्ट्र में अन्य कुछ मन्दिरों में भी हमने ऐसी सीढ़ियाँ देखी हैं। मानस्तम्भ में ऊपर जहाँ चतुर्मुखी मूर्तियाँ विराजमान रहती हैं, वहाँ उनके सामने लोहे की जालियाँ लगी रहती हैं, ताकि पक्षियों की बीट से उनकी सुरक्षा हो सके।

सदलगा से वापिसी में चार मील चलने पर हमने अपनी गाड़ी बेड़की हाल सर्किल पर रोकी। श्री महावीरप्रसाद जैन गाँव का मकान ट्रस्ट को दान करने के बाद अब यहीं अपने नवनिर्मित मकान मे रहने लगे हैं। गृह नाम बड़ा सुन्दर है—**'धवला'**। उनसे भेंट नहीं हो सकी। वे राजस्थान गए हुए थे। रास्ते में दूधगंगा नदी के भी दर्शन किए। दोपहर में महासभा का अधिवेशन सम्पन्न होना था। अतः दो बजे तक इचलकरंजी वापिस आ गए।

(जैन गजट / 18 मार्च 1996)

□

[illegible]

यात्रा काश्मीर की

कुछ वर्ष पहले की बात है। श्री यशपाल जैन को एक जर्मन यात्री मिले। उनकी उम्र बासठ वर्ष की थी। पिछले चवालीस वर्ष से वह भ्रमण कर रहे थे। उनकी आँखों की रोशनी कुछ कम हो गई थी। डाक्टरों ने उन्हें आराम की सलाह दी थी। फिर भी उनका घुमक्कड़पन जारी था। यशपाल जी ने उनसे कहा–जब डाक्टर कहते हैं कि आप घूमना छोड़ दें तो आप छोड़ क्यों नहीं देते?" जानते हैं, उन्होंने इसका क्या उत्तर दिया? बोले, "जी हाँ, अगर घूमना बन्द कर दूँगा तो सचमुच ही अन्धा हो जाऊँगा। जगह-जगह जाता हूँ, नई-नई चीजें देखता हूँ, उससे आँखों को फायदा पहुँचता है। मेरी नेत्र-ज्योति पहले से बहुत अच्छी हो गई है।"

उन जर्मन सज्जन का कथन सर्वथा सत्य था। कौन नहीं जानता कि यात्राओं से बड़े लाभ है। आदमी दुनियाँ को अपनी आँखों से देखता है, उसका ज्ञान बढ़ता है, उसका दिल ऊँचा होता है, उसमें नई हिम्मत और हौसला पैदा होता है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि घूमने से आदमी का शरीर और मन दोनों जवान रहते हैं। मानना होगा कि घूमना एक नशा है। एक बार जिसको चस्का लगा तो फिर छूटता नहीं। घर बैठने पर उसे लगता है जैसे कोई उसका द्वार खटखटा रहा है और उसे बाहर बुला रहा है।

पहाड़ों में घूमने का तो आनन्द ही निराला है। सच बात तो यह है कि पहाड़ों का अपना जादू होता है। पहाड़ जैसे अपने आप हमें वहाँ आने के लिए पुकारते हैं। उन पर जाते हैं तो उनमें विशालता और भव्यता के दर्शन होते हैं। उनकी सुन्दरता की ओर आदमी स्वयं खिंच जाता है। पहाड़ किसका मन नहीं हर लेते। पहाड़ों पर सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य तो देखने ही लायक होते है। किरणें जब बर्फ पर पड़ती हैं तो लगता है जैसे सोना बिखेर रही हों। बर्फ से ढकी चोटियाँ कभी गुलाबी, कभी सुनहरी और कभी चाँदी सी उजली हो जाती हैं तो लगता है सचमुच इन मनोहरी शिखरों पर देवता रहते हैं। नई-नई बातें जानने की आदमी की भूख उसे कहीं से कहीं ले जाती है। हिम्मत आदमी में जन्म से ही होती है। उसका इतिहास बतलाता है कि उसने कठिनाइयों से हमेशा डटकर मुकाबला किया है। ज्योंही कोई बाधा दिखाई देती है, वह उस पर विजय पाने की सोचता है। बाधाओं को पार करने की यही आकांक्षा आदमी से अचरज भरे काम करवा डालती है। इसीलिए पहाड़ों पर चढ़ना आदमी की बहादुरी और जिन्दादिली का उदाहरण है। पहाड़ों की चढ़ाइयाँ चढ़ने में पैर दुखने लगते हैं उतरने में टाँगों की बुरी हालत हो जाती है, लेकिन अपनी मंजिल पर पहुँच सुख की जो अनुभूति होती है, उससे यात्रा की सारी तकलीफों पर मरहम लग जाता है।

इस प्रकार का सुख लेने का अवसर इस कालेज के छात्र और अध्यापक कई बार प्राप्त कर चुके हैं। गत वर्ष ही दो दलों ने फतहपुर सीकरी की तथा एक दल ने फरीदाबाद, दिल्ली, चण्डीगढ़, पिंजौर, भाखरानांगल और शिमला की यात्रा की थी। शिमला की सर्वोच्च चोटी 'जाखू हिल' और 'कामना देवी' (प्रास्पैक्ट हिल) को नाप लेने के बाद हमारे छात्र और अध्यापकों की सहज इच्छा हुई कि इस वर्ष 'धरती के स्वर्ग' की संज्ञा से विभूषित रमणीक-स्थली काश्मीर की यात्रा की जाय।

कार्यक्रम के अनुसार रविवार 26 सितम्बर को तूफान एक्सप्रैस द्वारा रवाना होने की सूचना सभी लोगों को दे दी गई। कॉलेज के छात्र और अध्यापकों की इस दस दिवसीय काश्मीर यात्रा का विवरण हम यहाँ प्रधानाचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन द्वारा अंकित यात्रा की दिन-प्रतिदिन की डायरी के आधार पर प्रस्तुत करते हैं।

रविवार, 26 सितम्बर 1971–फीरोजाबाद हमारी इस यात्रा में आठ अध्यापक–प्रधानाचार्य–श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, टूर–इंचार्ज–श्री श्यामबिहारीलाल मित्तल, ब्रजकिशोर जैन, श्री प्रेमकुमार जैन, श्री रामबाबू जैन, श्री विनयकुमार जैन, श्री रमेन्द्र प्रकाश सक्सेना तथा श्री जैनेन्द्रकुमार जैन व ग्यारह छात्र-देशमुख यादव XII A, ब्रजेन्द्र सिंह यादव XII A, रमेश

मुनि को संयम, शौच और ज्ञान के प्रतीक पिच्छी, कमण्डलु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु के रखने की आज्ञा नहीं है।

चन्द्रगुप्त XII C, सन्तोष कुमार जैन XIIC , नरेन्द्र कुमार जैन XII C, देवेन्द्र कुमार जैन XII C, उमेशचन्द्र झिन्दल XIC, विनोद कुमार जैन XII C, ओंकार नाथ विज XII C, पुष्पेन्द्र कुमार जैन XIC, तथा बंगालीभूषण X C हैं। सभी लोग समय से फीरोजाबाद रेलवे स्टेशन पहुँच गये। लेकिन हमारी ट्रेन दो घण्टे लेट हो गई। यात्री समूह को विदा करने के लिए हमारे बहुत से इष्ट मित्र और छात्रों के अभिभावकगण उपस्थित थे।

तूफान में बड़ी भीड़ थी। सारी गाड़ी का चक्कर लगा डाला लेकिन कहीं जगह न दिखाई दी। एक क्षण को तो ऐसा प्रतीत हुआ कि इस गाड़ी से हम लोग नहीं जा पायेंगे, लेकिन तभी कुछ छात्रों ने साहस करके कुछ सामान गाड़ी में झोंक दिया। हम लोगों को विदा करने आये छात्र और अभिभावकों ने भी मदद की और आनन-फानन में हम लोग जैसे-तैसे गाड़ी में सवार हो गये। कोई दरवाजे में खड़ा था तो कोई फुटबोर्ड पर लट्ठा पकड़े लटका हुआ था। गनीमत यही थी कि चढ़ सब गये थे। धीरे-धीरे सभी को कहीं न कहीं स्थान मिल गया। मथुरा पर सब लोगों ने सायंकालीन भोजन किया।

रात साढ़े आठ बजे के लगभग नई दिल्ली पहुँच गये। हमारे सहयोगी श्री जिनेशचन्द्र जैन, जो अपनी पत्नी की चिकित्सा के सम्बन्ध में दिल्ली टिके हुए थे। सूचना पाकर स्टेशन पर आ गये थे। यहाँ से हमें पठानकोट के लिए गाड़ी बदलनी थी। मालूम हुआ कि वह गाड़ी यार्ड में खड़ी हुई है। कुछ छात्र और अध्यापकों ने वहीं पहुँच कर एक डिब्बे में स्थान घेर लिया। उसी की बदौलत गाड़ी में बैठना सम्भव हो सका अन्यथा स्टेशन पर भारी भीड़ थी। बन्धुवर जिनेशचन्द्र जैन से काफी मदद मिली। सभी लोग एक ही डिब्बे में स्थान पा गये। इसी बीच हमारे सहयात्री श्री रामबाबू जैन के साले साहब श्री सुन्दरसिंह जी भी हम लोगों से मिलने आ गये उन्होंने सभी को कोकाकोला पिलाया और चार-पाँच दर्जन केले भेंट किये। श्री जिनेश चन्द्र जैन प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े किसी को पानी लाकर तो किसी को पान लाकर पर्यटक दल के सदस्यों की सेवा करते रहे। आखिर गाडी पठानकोट के लिए रवाना हुई। अम्बाला तक तो सभी लोग बैठे हुए बातें करते रहे। फिर थोड़ा पैर सीधा करने लायक स्थान मिला। नींद तो क्या आनी थी, हाँ, थोड़ी आँखें जरूर झपक गई। हाँ, भाई प्रेमकुमार जी इसके अपवाद थे। उन्होंने भरपूर नींद ली!

सोमवार 27 सितम्बर 1971 प्रातः लगभग आठ बजे पठानकोट आ गये। दिशा मैदान से लोग निश्चिंत हो ही चुके थे। स्टेशन से बाहर आकर एक स्थान पर सारा सामान जमा दिया। श्री श्यामबिहारीलाल मीतल, ब्रजकिशोर जैन और प्रेमकुमार जैन बस की टिकटें लेने चले गये। शेष लोगों में से कुछ ने शुष्क स्नान किया और कुछ ने नल के नीचे बैठकर लोटे ढाले। मालूम हुआ कि गाड़ी मिलने में काफी देर होगी, अतः साथ बैठकर सभी ने घर से लाया हुआ भोजन किया। लगभग पौने तीन बजे बस मिल सकी। बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। टूरिस्ट आफीसर, पठानकोट से पत्र-व्यवहार कर पहले से यदि रिजर्वेशन करा लिया जाता तो सुविधा रहती है।

पठानकोट रेलवे टरमिनस है। सैनिक महत्व का स्थान है। मैदान और यहाँ के मौसम में कोई अन्तर नहीं। पठानकोट से जम्मू तक की सड़क चौड़ी है। रास्ते में अनेक नहरें हैं। रावी नदी का दृश्य दर्शनीय है। शीघ्र ही जम्मू तक रेल-मार्ग चालू हो जाने की आशा है। मार्ग में कई स्थानों पर रेल की पटरियाँ बिछाई जाती दिखाई दीं। मार्ग में जगह जगह पत्थर की गोल-मटोल चिकनी बटियों का चमत्कार देखा। जहाँ-जहाँ ये बटियाँ दिखाई दी वे स्थान नदी की शाखाओं जैसे लगे। बरसात में वहाँ नदी का पानी भर जाता होगा। कहीं-कहीं पहाड़ों की ओर गमन करते हुए राजमार्ग को देखकर जैन तीर्थ राजगृही का स्मरण हो आया।

सायं पौने छः बजे के लगभग जम्मू आ गये। आज रात्रि यहीं विश्राम करना है। 'टूरिस्ट रिसैप्शन सेन्टर' के जनरल हाल में 1) रुपया प्रति यात्री की दर से स्थान प्राप्त किया। दो व्यक्तियों के लिए एक कमरे का किराया 20) रुपया प्रतिदिन है। शीघ्रता से मुँह-हाथ धो सायंकालीन भोजन किया। दो लोगों को सामान की रखवाली के लिए छोड़, शेष लोग नगर

[illegible]

घूमने चले गये।

जम्मू प्रदेश की शीतकालीन राजधानी है। हिन्दू बहुल आबादी का नगर है। साफ-सुथरा है। कुछ देर बाजार घूमे। यहाँ के कुछ प्रसिद्ध मन्दिर देखे, श्री रघुनाथ मन्दिर और श्री शिव मन्दिर। शिवजी की विशाल भव्य पिण्डी बहुत आकर्षक प्रतीत हुई। रात्रि नौ-साढ़े नौ के लगभग सो गये। कल प्रातः 7 बजे ही यहाँ से श्रीनगर को रवाना होना है।

मंगलवार 28 सितम्बर 1971 प्रातःकाल पाँच बजे भाई प्रेमकुमार जी के जगाने पर सोकर उठे। कई अन्य सहयोगी और छात्रगण पहले ही जागकर शौच आदि से निवृत्त हो चुके थे। कुछ लोगों के बिस्तर बँधे पड़े थे। प्रिंसपल साहब तो स्नान भी कर चुके थे। विदित हुआ कि श्यामबिहारीलाल जी गाड़ी में स्थान सुरक्षित कराने जा चुके है। जल्दी-जल्दी विस्तर बाँधा। शौच आदि से निवृत हो कुल्ला-दाँतून किया। इसी बीच छात्रगण सामान उठा-उठा बस स्टेण्ड ले जाने लगे। ब्रजेन्द्र सिंह नामक जिस छात्र को हमारे सहयोगी ऊधमी और शरारती समझते थे ऐसे अवसरों पर उसे सबसे अधिक उपयोगी पाया गया। उसने अकेले ही पाँच-छः लोगों का सामान बस पर पहुँचा दिया। पठानकोट से हम लोग 48 सीट वाली बसों में आये थे लेकिन यहाँ श्रीनगर को जाने वाली बसें 24 सीटों वाली थी। सीटें बड़ी आरामदेह थीं। बस पर समान लद जाने पर लोगों ने चाय-पान किया। साढ़े सात बजे बस रवाना हो गई।

जम्मू से श्रीनगर तक का लगभग 300 किलोमीटर का रास्ता एकदम पहाड़ी मार्ग है। रास्ते में जगह-जगह मिलेट्री पड़ी हुई है। सड़कें घुमावदार है। मानों सर्प कुंडली मारे बैठा हो। पहाड़ों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के वृक्ष है जिनकी हरीतिमा चित्त को प्रसन्न कर देती है।

लगभग दो घण्टे की यात्रा के बाद गढ़ी उधमपुर में बस रुकी। यहीं सड़क के किनारे कई छोटे-छोटे होटल है। इसी प्रकार के एक रोड साईड रेस्ट्राँ में खुले में पडी कुर्सी मेजों पर बैठ कर हम लोगों ने चाय पान किया। पान खाये। होटल की सफाई ने प्रभावित किया।

साढ़े दस बजे के लभग बस 'कुद' पहुँची। यहाँ प्रथम बार मौसम का परिवर्तन प्रतीत हुआ। लोगों को कुछ ठण्ड महसूस हुई। यहाँ से 'बटौत' तक का मार्ग अत्यन्त रमणीक और सुहावना है। चीड़ और देवदार के लम्बे-लम्बे पेड़ बड़े सुन्दर लगते है। इनका तना बिल्कुल सीधा होता है। चालीस पचास फुट तक की ऊँचाई होगी। पहाड़ों पर उगे इन वृक्षों की हरियाली नेत्रों को बड़ा आनन्द देती है। झरने इस आनन्द को और भी बढ़ा देते हैं।

बटौत में एक होटल के सामने लाकर ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी और भोजन कर लेने के लिए कहा। हम लोगों ने एक चबूतरे पर चादरें बिछा कर अपने-अपने टिफिन निकाले। घर से लाया हुआ भोजन यहाँ समाप्त हो गया। आस-पास नल कहीं दिखाई नहीं पड़ा। एक होटल से लाकर पानी पिया। बटौत का जलवायु बड़ा स्वास्थ्यवर्द्धक है। यहाँ का बाजार हमें अपने नगर फीरोजाबाद जैसा ही प्रतीत हुआ। सीधी सड़क पर दोनों ओर बड़ी लम्बाई में दूरी तक दुकानें हैं।

आगे 'रामवन' से काफी दूर तक चिनाव नदी साथ-साथ चलती है। दृश्य बड़ा सुन्दर और मनोहारी है। यहाँ से आगे 40-50 मील का रास्ता खराब है। 'रामसू' नामक स्थान से एक मील इधर ही आज प्रातःकाल एक ट्रक नीचे खड्डे में गिर गया। दो मौतें हुई। टूटा-टाटा ट्रक खड्ड में पड़ा दिखाई दिया। ड्राइवर ने बताया कि हर साल 5-6 ऐसी दुर्घटनाएँ घट ही जाती है। कहीं-कहीं पहाड़ सड़क पर झुके हुए दिखाई देते हैं। लगता है कि शिला नीचे गिरी। बस आगे बढ़ जाने पर खतरा पार कर लेने जैसी खुशी होती है।

करीब चार बजे 'बनिहाल' पहुँचे। स्थान बड़ा सुन्दर है। धान की सीढ़ीदार खेती (Terrace Cultivation of Rice) कैसे होती है, भुगोल के विद्यार्थियों को यह पाठ सीखने का प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त हुआ। चारों ओर पहाड़ों की हरियाली के बीच

मुमुक्षु से अपेक्षा [illegible] आचरण करता है, [illegible] श्रद्धा, विवेक और आचरण का संगम [illegible] होना चाहिए।

धान के ऊँचे-नीचे घुमावदार खेत बड़े मनोहर लगते हैं।

पौने छः बजे के लगभग हमारी बस 'जवाहर टनल' पहुँची। यह तीन किलोमीटर लम्बी है। यहाँ 'वनवे ट्रैफिक' है। यह सुरंग जम्मू को काश्मीर से जोड़ती है। सुरङ्ग में बीच-बीच में बिजली की रोशनी है फिर अँधेरा सा रहता है। बस की बत्तियाँ जलानी पड़ती है। टनल पार करने के बाद नीचे खड्ड में तरह-तरह के रंगीन वृक्षों को देखकर हमारे मुँह से 'वंडरफुल' 'हाऊ ब्यूटीफुल' जैसे शब्द निकल पड़े। प्रिंसपल श्री नरेन्द्र प्रकाश जी बोले 'यह धरती का इन्द्र धनुष है।'

ड्राइवर से कहने पर 'बेरीनाग' जाया जा सकता है, यह बात हमें मार्ग में यात्रियों से बातचीत करने पर मालूम होगई थी। बातचीत करने पर एक रुपया प्रति व्यक्ति अतिरिक्त चार्ज लेकर ड्राइवर ने बस को वैरीनाग ले जाना स्वीकार कर लिया। टनल पार कर लेने के बाद कुछ ही दूरी से वैरीनाग के लिए रास्ता जाता है। मार्ग में ड्राइवर ने हमें वह 'लोकेशन' दिखलाई जहाँ 'काश्मीर की कली' नामक लोकप्रिय फिल्म की शूटिंग हुई थी। 'बैरीनाग' एक चश्मा या स्रोत (Spring) है जिसका जल अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल है। लगभग 15 X 15 फुट का कुण्ड जैसा प्रतीत होता है गहराई 54 बताई गई है। किनारे पर 18 फुट गहरा है। तल के पत्थर स्पष्ट दिखाई देते हैं। दूसरा पर्त 36 फुट पर है। वह भी दिखाई देती है। चश्मे से उमड़-उमड़ कर निकलता शीतल जल भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। तैरती हुई मछलियों की स्फूर्ति देखते ही बनती है। बताया जाता है कि चश्मे का पानी पाताल से आता है और यही चश्मा झेलम नदी का है। चश्मे के चारों ओर चहारदीवारी है। बाहर सुन्दर लॉन और फुलवारी है। चारों ओर पहाड़ियाँ है। बादाम, अखरोट, सेब, नीबू के वृक्ष है। बहुत सुन्दर पिकनिक स्पॉट है। देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। 'जंगली' फिल्म की शूटिंग भी इस स्थल पर हुई है।

वैरीनाग से लौटने पर 'काजीगुण्ड' से पहले ड्राइवर ने उन स्थानों को भी दिखाया जहाँ 'हमसाया' और 'झुक गया आसमान' नामक फिल्मों का छायांकन हुआ था। वास्तव में इस क्षेत्र की धरती का चप्पा-चप्पा फिल्मांकन के ही योग्य है। 'काजी गुण्ड' में बस रुकने पर एक होटल में मठरी के साथ चाय पान किया। यहीं से श्रीनगर तक का रास्ता समतल है। दोनों ओर खेत हैं। सर्दी लगने लगी थी अतः लोगों ने स्वेटर, जाकटें और मफलर बाँध लिए। अँधेरा छा गया था। सायंकालीन धुँधलके में रास्ता पार किया। श्रीनगर से कुछ पहले ही 'पाम्पौर' नामक स्थान है जहाँ केशर की खेती होती है। श्रीनगर रेडियो स्टेशन की लालबत्ती दिखाई देने लगी थी। सवा आठ बजे श्रीनगर बस स्टेंड पर आकर बस रुकी। कहाँ ठहरना है इसका प्रबन्ध करने में आधा-पौन घन्टा लग गया। टूरिस्ट रिसैप्सन सेन्टर से फोन पर बातचीत करने के बाद आखिर 'डल गेट' स्थित 'एम्बेसी होटल' में ठहरने का निश्चय हुआ। होटल की तीसरी मंजिल पर एक हाल 19 रुपये रोज और एक कमरा 18 रुपये रोज पर लिया। छात्रगण हाल में और हम अध्यापक लोग कमरे में जम गये। कमरे साफ नहीं थे। उनकी सफाई कराई गई। कमरों में बाथरूम और लैट्रिन तो साथ हैं, लेकिन नलों में पानी कम आता है। नवम्बर-दिसम्बर जैसी सर्दी है। रजाई-गद्दे निकाल पर बिस्तर लगाए और साढ़े दस बजे के लगभग सो गये।

बुधवार 29, सितम्बर 1971 सवेरे होटल से निकलते-निकलते 9 बज गए। अतः बाहर जाने का कोई कार्यक्रम न हो सका। बाहर जाने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि एक दिन पूर्व ही किसी ट्रांसपोर्ट एन्जेसी में रिजर्वेशन करा लिया जाय अथवा जिस दिन जाना हो उस दिन प्रातः काल सात-साढ़े सात बजे तक मोटर स्टैण्ड पर पहुँच जाना चाहिए। अतः आज सबसे पहला कार्य यह किया कि कल दिनांक 30 सितम्बर के लिए पहलगाम और परसों पहली अक्टूबर के लिए सोनमर्ग जाने का रिजर्वेशन काश्मीर मोटर ड्राइबर्स एसोसिएशन की बस सर्विस से कराया। फिर एक गाइड श्री अलीमोहम्मद सोगू को लेकर श्रीनगर भ्रमण के लिए निकल पड़े। पहले मोटर से 'शालीमार गार्डन' पहुँचे, यह बाग मुगल सम्राट शाहजहाँ का बनवाया हुआ है। ग्रीष्म ऋतु में शाहजहाँ अपनी राजधानी यहीं रखता था और शीत में दिल्ली। बाग में चिनार के बड़े-बड़े घने वृक्ष देखे जिनकी छाया शीतल और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। तरह-तरह के पुष्प जैसे—गुलबहार, नरगिस, यम्रजल, केशरी, मोबल, गेंदा और गुलाबं की अनेक किस्में देखने को मिलीं। कीकर का पेड़ जो छतरी की भाँति विकसित

[illegible]

होता है चित्त को प्रसन्न करता है। इसकी लकड़ी कुर्सी मेज बनाने के काम आती है। शहंशाह शाहजहाँ का दरबार जहाँ लगा करता था उस स्थान की दीवाल पर छतों पर 'पेपरमाशी' का काम दर्शनीय है। इस बाग में 'सूरज' 'आरजू' और 'फिर वही दिल लाया हूँ' नामक फिल्मों की शूटिंग हुई है। यहीं बाग में डिलीशस सेब खरीदे। बहुत मीठे होते है। लेकिन ज्यादा दिन चल नहीं सकते। बाहर ले जाने के लिये अम्बरी सेव बढ़िया होता है। सेव की बीसियों किस्में होती हैं

शालीमार बाग देखने के बाद मोटर द्वारा ही हमारा दल 'निशात बाग' पहुँचा। इस उद्यान का निर्माण मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा कराया गया। निशात बाग की स्थिति शालीमार से अच्छी है। प्रवेश करते ही बाग से सटे हुए ऊँचे-ऊँचे गगन चुम्बी पर्वत शिखर दिखाई देते हैं। पहाड़ों के नीचे चिनार आदि के बड़े-बड़े वृक्ष और सामने मोहक फुलवारी। हरियाना के पिंजौर गार्डन्स की भाँति यह बाग भी कई मंजिलों में बना हुआ है। पीछे की ओर लौट कर दृष्टि डालें तो डल झील अपने अनुपम रूप में चाँदी का खान जैसी प्रतीत होती है। यह दृश्य देख कर सहज ही मुँह से 'वाह, वाह', निकल पड़ता है। रविवार के दिन जब फुब्बारे चलते होंगे उस समय का दृश्य न जाने कितना सुन्दर होता होगा। बाग की तीसरी मंजिलपर 'तख्तेताऊस' है। वहाँ से पानी नीचे गिरता है। सीध में फब्बारे लगे हुए हैं बिल्कुल पिंजौर की तरह। यहाँ हमने 'लुकाट' के पेड़ देखे तथा फूलों में 'कारनिश' और 'बटपोश' के नये फूल भी देखे। 'बटपोश' के फूल के विषय में बताया गया कि शादी के समय इनकी पूजा की जाती है। हमें बताया गया कि इस बाग में 'दस लाख', 'जंगली' और 'जब जब फूल खिले' नामक फिल्मों की शूटिंग हुई है। यहाँ हम लोगों ने 'तिरेल' नामक फल भी खाया, जो आकार में आँवले जैसा परन्तु शक्ल में बिल्कुल सेव जैसा होता है। खाने में बड़ा मधुर लगा।

निशात बाग देखने के बाद साढ़े बारह बजे से डल झील में शिकारे से विहार प्रारम्भ किया। बीस लोगों के लिए 10-10 रुपये में तीन शिकारे पक्के किए। शिकारों के नाम थे—'सूरज', 'मूर हैन' और 'राम और श्याम'। हम छः अध्यापक 'सूरज' नामक शिकारे में बैठे। निशात बाग से थोड़ा आगे बढ़ने पर झील का पानी सूरज की धूप में चाँदी सा चमकता है इसलिए इसका नाम 'सिलवर लेक' प्रसिद्ध हो गया है। डलझील में शिकारे पर बिहार करते हुए हम लोग 'चार चिनारी' पहुँचे' डलझील के बीचों बीच एक भूमि खण्ड पर इसका निर्माण हुआ है। इसके चारों कोनों पर चिनार के चार वृक्ष खड़े हैं। लॉन है। रेस्टोराँ है। पकोड़ों के साथ चाय पान किया। दो बजे यहाँ से पुनः शिकारे में रवाना हुए। 'चार चिनारी में "आन मिलो सजना' नामक फिल्म का छायांकन हुआ है।

यहां से चश्मे शाही बाग आये। सडक से दो किलोमीटर ऊपर राजभवन की ओर चलना पडता है। पूरे रास्ते में दोनों और सफेदा के सीधे ऊँचे वृक्ष हैं। चालीस पचास फीट ऊँचे होते हैं अत्यन्त भव्य और मनोहारी लगते हैं। सड़क के बीच से जरा हट कर इन पर निगाह डालें तो एक विशाल दीवार सी खड़ी मालूम होती है।

सामने एक पहाडी पर 'परी महल' दिखाई पड़ता है। कहा जाता है मुगल सम्राट शाहजहाँ यहाँ सुन्दरियों के साथ रंगरेलियाँ मनाया करता था। इसी 'परी महल' में फिल्म 'गाइड' की शूटिंग हो चुकी है। मार्ग में ही 'नेहरू मेमोरियल पार्क' का काम प्रारम्भ हो चुका है। काफी विस्तृत क्षेत्र में यह पार्क बनाया जा रहा है किसी दिन अच्छा स्थान बन जायगा।

चश्मेशाही के विकास में महाराजा हरीसिंह का अच्छा योगदान रहा है। लेकिन अब यह सरकार के आधीन है। यहाँ चेरी का वृक्ष देखा। कहा जाता है कि चेरी का फल रक्तवर्द्धक होता है। चश्मेशाही के निकट ही एम. एल. ए. और एस. पी. आदि के लिए 'हट्स' बनी हुई है। पास में 'नेहरू काटेज' है। जहाँ पं. नेहरू ठहरा करते थे। राजभवन भी यहीं है, जहाँ राज्यपाल महोदय निवास करते हैं। चश्मे शाही का वाग शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था। चश्मे का जल अत्यन्त शीतल और मधुर तो है ही स्वास्थ्यबर्द्धक भी है। गाइड ने बताया कि इस सोते का पानी कभी-कभी वायुमार्ग से पंडित नेहरू के लिए जाया करता था। पानी गर्मियों में ठण्डा और जाड़ें में गर्म रहता है।

धन्य है वह गृहस्थ-धर्म, जिसमें विवेक और विनम्रता की पूजा, गुणियों की [illegible], [illegible] की सेवा एवं व्रतों का पालन किया जाता है।

साढ़े तीन बजे के लगभग चश्मे शाही से लौटे। 'तैरते बाग' (फ्लोटिंग गार्डन्स) देखे। तैरते बागों में टमाटर, तरबूज, और खीरा पैदा किया जाता है। 100 वर्ग फीट खेत का दाम 150) होता है। आँधी आने पर यह खेत झील में ही कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। सामान्यतया इन्हें रोकने के लिए इनके किनारे पर एक लम्बा बाँस गाड़ दिया जाता है। इसकी मिट्टी पानी में गलती या डूबती नहीं है।

यहीं झील के बीच में महाराजा हरीसिंह द्वारा बनवाई हुई एक सड़क देखी, जो उनकी कोठी तक जाती है। कोठी सुन्दर बनी हुई है। उसके चारों ओर एक-एक फर्लागं तक कमल लगाए गए है। कोठी तीन नामों से प्रसिद्ध है—'समर हाउस', 'कबूतर खाना' और 'लोटस गार्डन'। सुनते है महाराजा हरीसिंह को कबूतर पालने का शौक था।

चार बजे हम लोग 'नेहरू पार्क' में पहुँचे। यह भी डलझील के मध्य में स्थित है। इसका निर्माण सन् 1953 में हुआ था। रात्रि के समय बिजली के कुमकुमों में जगमग-जगमग करता यह स्थल बड़ा मनोरम लगता होगा। यहीं कुण्ड में नंग-धड़ंग बच्चों को पाँच पैसे का खेल दिखाते देखा। आप कुण्ड में पाँच पैसे का का सिक्का फेंके। सिक्के के हाथ से छूटते ही बच्चा पानी में कूद जायगा और क्षण भर में ही आपके द्वारा फेंके सिक्के को मुँह से निकाल कर आपको दिखा देगा।

झील में निकट से कई हाऊस बोट देखे। हाऊस बोट देवदार की लकड़ी से बनाया जाता है। एक अच्छे हाउस बोट मे दो लाख रुपया तक लग जाता है। अच्छे हाउस बोट में ठहरने के लिए लोगों को 10) से लेकर 25) प्रतिदिन तक का किराया देना होता है। हाऊस बोट अच्छी शानदार कोठी की तरह सजे हुए होते हैं।

साढ़े चार बजे के लगभग शिकारों ने हमें बुलवर्ड रोड़ पर छोड़ दिया। यहाँ से हम लोग लाल चौक पहुँचे। लालारुख होटल के सामने एक दुकान पर पूड़ियाँ खाईं। पूड़ियाँ मैदा की बनी और वेजीटेबिल में तली हुई थीं। सब्जी की जगह छोले थे। गनीमत यही थी कि प्याज नहीं पड़ी थी।

यहाँ हमारे गाइड ने किसी दलाल से कनमन्तर लिया। वह हमें लाल चौक से श्रीनगर की पुरानी बस्ती स्थित 'काश्मीर आर्ट कोआपरेटिव स्टोर' ले गया। वहाँ छात्रों और अध्यापकों ने लगभग 1000) के शाल आदि खरीदे। सामान और मंहगा नहीं तो सस्ता भी नहीं था। गाइड ने भी अपनी कमीशन सीधा किया, ऐसा उसने कबूल किया। ग्राहकों को फँसाने के लिए ही वह लाल चौक से पुराने नगर तक टैक्सी में केवल दस पैसे सवारी के हिसाब से ले गया, जब कि दूरी दो मील से कम न होगी। निश्चय ही कुछ पैसा गाइड और दलाल की सलाह से मालिक ने दिया होगा। वहाँ से लौटकर लाल चौक में चाय पी। लड़कों ने भोजन किया। बस न मिल सकने के कारण साढ़े ग्यारह बजे के लगभग होटल पहुँच सके।

गुरुवार 30, सितम्बर 1971—पहलगाम को— प्रातः साढ़े सात बजे होटल छोड़ दिया। लाल चौक में आकर कलवाली दूकान पर ही मठरी और समोसे के साथ-साथ चाय पीयी। निकट ही बस स्टेण्ड था। के. एम. डी. ए. की 985 नं. बस में हम सबको स्थान मिला। पौने नौ बजे बस रवाना हुई। साढ़े नौ बजे बस "अवन्तिपुर" आकर रुकी। यहाँ नवीं शताब्दी के दो मन्दिरों के भग्नावशेष है। चारों ओर एक बरामदा सा और बीच में एक कक्ष रहा होगा। अब केवल खम्भे शेष है। जिन पर नक्काशी का काम व उत्कीर्ण मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। कुछ लोगों ने इनके चित्र खींचे।

अगला मुकाम "अनन्तनाग" था। डिस्ट्रिक्ट हैड क्वार्टर होने के कारण भीड़-भाड़ काफी हैं। सड़के कम चौड़ी हैं। बस स्टेंड अत्यन्त व्यस्त। अदालत भी हैं। एक सुन्दर चश्मा तथा रघुनाथ जी का मन्दिर है। गन्धक कुण्ड भी हैं। इसका जल चर्म रोगों के लिए लाभदायक है। एक कुण्ड पर स्नान भी किया जा सकता है। पहाड़ से पानी आता है और तेजी से आता है।

पौने बारह बजे "कुकरनाग" पहुँचे। यहा एक बोटेनिकल गार्डेन है जो काफी लम्बे क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ कई जगह से पानी झरता है और मुर्गे के पंजे की भाँति कई धाराओं में विभक्त होकर बहता है। इसीलिए इसका नाम 'कुकरनाग'

[illegible]

है। स्थान स्वास्थ्यवर्द्धक है। पिकनिक के लिए बहुत उत्तम है।

एक बजे वापसी में 'अच्छाबल' में मुगल उद्यान देखा, निशात बाग की ही भाँति सीढ़ीदार बाग है। बीच में वैसी ही जलधारा और फब्बारे लगे है। लान और पुष्पवाटिका है। और झरना भी। बाग के पीछे 'ट्राउट कल्चर फार्म' है। जहाँ 'ट्राउट' मछली पाली जाती है। मछलियाँ बेची भी जाती हैं। बारह रुपये प्रति किलो।

यहाँ एक भयंकर दृश्य भी देखना पड़ा। एक ग्राहक को मछली बेची गई। जाल में फँसा कर ताल से मछली को निकाला गया। फिर तराजू में तोलकर उसे झटके के साथ जमीन पर पटक दिया गया, जहाँ तड़प-तड़प कर 5-7 मिनट में उसने प्राण त्याग दिए। न जाने कितनी मछलियों का जीवन इसी प्रकार प्रति दिन समाप्त हो जाता है।

अच्छावल से आगे चढ़ाई शुरू होती है। सात मोड चढ़ने के बाद थोड़ा मैदान आ जाता है। मीलों तक धान ही धान की खेती दिखाई पड़ती है। फिर सात मोड नीचे उतरने पर 'मटन' नामक धार्मिक स्थान पर आना होता है। यहाँ ढाई वर्ष बाद कुम्भ का मेला लगता है। देवी का मन्दिर है इस स्थान का असली नाम 'मार्तण्ड है 'मटन' अपभ्रंश है। यहाँ दो कुण्ड हैं--कमल-कुण्ड और विमल-कुण्ड। उनसे चाका नदी निकलती है। कुण्डों का पानी स्वच्छ है। पूर्णिमा नामक मछलियाँ बडी तादाद में तैरती देखीं। धार्मिक स्थान होने के कारण उनका पकड़ना वर्जित है। यहाँ मथुरा-वृन्दावन जैसे अनेक पण्डे देखे जो 'मार्तण्ड पुजारी' कहलाते हैं। ये लोग अपने साथ बड़े-बड़े बही खाते रखते है जिनमें स्थान-स्थान के यजमानों की पीढ़ियों पुरानी सूची रहती है। दान-दक्षिणा के लिये ये लोग मांग-जांच बहुत करते है।

मटन तक का मार्ग कुछ अधिक आकर्षक नहीं था। यहाँ से आगे दृश्य बदलता है। सड़क के साथ-साथ दाँई ओर लिवर नदी एक छोटे से रजवहे के रूप में बहती दिखाई देती है। कुछ आगे बढ़ने पर उसका प्रवाह नदी के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है जो पहलगाम तक बराबर साथ रहता है। लगभग 25 किलोमीटर तक यही स्थिति रहती है। सामने तीनों ओर पहाड़ दिखाई पड़ते हैं कहीं-कहीं दोनों ओर पहाड़ बीच में नदी और सड़क बिल्कुल सटी-सटी सी। सुन्दर दृश्य है।

पहलगाम पहुँच कर ही हवा में कुछ ठण्डक महसूस हुई। उससे पूर्व बिल्कुल नहीं। लगभग पौने तीन बजे यहाँ पहुँचे। फसल कटने के बाद उसे ढोने के लिए गाड़ियों को इस्तेमाल करते यहाँ नहीं देखा। स्त्री-पुरुष बहुत बड़े-बड़े बोझ पीठ पर लाद कर ढोते हैं। जैसे ही बस से उतरे रमेशचन्द्र गुप्त नामक एक लड़का चक्कर खाकर गिर पड़ा। सबने उसे सम्भाला। मालूम हुआ कि यह श्रीमान् रास्ते भर एकाउन्टेंसी के प्रश्न हल करते आ रहे थे। सो, दिमाग चक्कर खा गया! खैर थोड़ी देर में वे स्वस्थ हो गये। अब जो चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ नजर आये। कहीं धूप और कही छाया की छटा निराली थी। कुछ चोटियों से बादल टकराते देखे। दृश्य और वातावरण बड़ा मनमोहक था। एकाध पहाड़ी चोटी पर बर्फ सी दिखाई दी। वहाँ रहने वाले उसे वर्फ ही बताते थे, यद्यपि हमारे चित्त मे थोड़ा असमंजस ही बना रहा।

यहाँ गुजरात पूर्णिमा होटल अच्छा लगा। शाकाहारी भोजन मिल जाता है। हम लोग आज ही शाम लौट जाने के लिए रिटर्न टिकिट लेकर आये थे। पर रिटर्न टिकट लेकर नहीं आना चाहिए। एक रात टिक कर चन्दनवाड़ी आदि स्थान देखकर दूसरे दिन लौटना चाहिए। दो-तीन घण्टे में तबियत नहीं भरती। कुछ लड़कों का मन घोड़ों की सवारी करने का हुआ। अतः घोड़ों की पीठ पर 'बाइसरन' नामक स्थान की यात्रा की। लगभग 4 कि. मी. का ऊबड़-खाबड़ कच्चा मार्ग है। मार्ग में घने वृक्ष है। आकाश तक दिखाई नहीं देता। ऊपर विस्तृत मैदान है, जहाँ से सूर्यास्त और पहाड़ों का दृश्य देखते ही बनता है। यहाँ आकर कुछ समय विश्राम को जी चाहता है। लेकिन समयाभाव के कारण ऐसा न कर सके।

उतरते समय मंजिल पर पहुँचते-पहुँचते उमेश झिन्दल नामक छात्र घोड़े से गिर पड़ा। मामूली चोट लगी। खैर ही हुई। जरा सी असावधानी और थोड़ा सन्तुलन बिगड़ने से घुड़सवारी खतरनाक भी हो जाती है। पाँच बजकर पच्चीस मिनट पर

जो संतोष को ही अपना सबसे बड़ा [illegible] मानेंगे, वे अपनी [illegible] सदैव सदाचार का पालन करेंगे।

रवाना होकर पौने आठ बजे श्रीनगर के लाल चौक वापस आ गये। बाजार से कुछ कंठिया और लकड़ी का सामान खरीदा। कल प्रातः काल सोनमर्ग के लिए रवाना होना है। 2 अक्टूबर के लिए 'वूलर लेक' तथा 3 अक्टूबर के लिए 'गुलमर्ग' जाने का रिजर्वेशन भारत ट्रांसपोर्ट से बुक किया। ग्यारह बजे होटल वापस आ गये।

आज सुना कि एक छात्र-दल जो कि टंगमर्ग से गुलमर्ग की यात्रा घोड़ों पर कर रहा था दुर्घटनाग्रस्त हो गया। घोड़े से गिर जाने से एक लड़के की मृत्यु हो गई और दूसरा उस सदमे को बर्दाश्त न कर पाने से मर गया!

शुक्रवार 1 अक्टूबर 1971—सोनमर्ग ठीक साढ़े आठ बजे सोनमर्ग के लिए चल दिये। सोनमर्ग चीनी बार्डर की ओर है। रास्ते में कई सैनिक शिविर देखे। दस बजे के लगभग हमारी बस 'कंगन' नामक गांव में रुकी। यहाँ 'सिंध हाइडल प्रोजेक्ट' का हेड क्वार्टर है। बीस-पचीस दुकानें भी है। बस 10 मिनट तक ठहरती है ताकि यात्री लोग चाय-पान कर लें। यहाँ से सोनमर्ग तक का पूरा मार्ग अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत है; सिन्धु नदी और सीढ़ीदार धान के खेतों की शोभा देखते ही बनती हैं। 'गुण्ड' नामक चैकपोस्ट पर भी मोटर थोड़ी देर रुकी। यहाँ पास ही एक बिजली घर का निर्माण हो रहा है। सिन्धु नदी पूरे रास्ते साथ रहती है। उसकी भव्यता ने झेलम और चिनाव को भी मात देदी। नदी कभी दायें, कभी बायें, कभी आगे, कभी पीछे, कभी ऊपर, कभी नीचे बहती हुई चलती है। पहाड़ों पर धूप-छाँव का खेल मन को मोह लेता है। कुछ स्थलों पर पहाड़ की बड़ी-बड़ी शिलाएँ सड़क के ऊपर ऐसे लटकी हुई हैं मानो किसी मकान की काफी चौड़ी गौख हो। वही सड़क के नीचे काफी गहरे खड्ड में सिंधु कल-कल निनाद करती हुई बहती है। एक-बारगी तो इस दृश्य को देखकर फुरफुरी आ जाती है। एक भी पत्थर खिसक पड़े तो भगवान याद आ जाये। एकाध पहाड़ तो ऐसा भी देखा, जिसे बड़ी-बड़ी पाषाण शिलाओं का ढेर ही कहा जा सकता है। लगता है पहाड़ टूट गया है और हर चट्टान अलग हो गयी है।

सिन्धु नदी के बीच-बीच में बड़ी-बड़ी शिलायें पड़ी है। उससे टकराकर पानी को रोकना चाहती है; पर वाह रे पानी! तू तो रुकता ही नहीं, चलता ही जाता है। जहाँ साहस हो वहाँ सिद्धि मिलकर हो रहती है। 'कुलन' नामक गॉव से आगे सड़क एकदम पतली हैं, बाँयीं ओर नजर आती है तो आगे निकले हुए पहाड़ दिखाई देते हैं, ठीक नीचे नदी बह रही है। लगता है सिन्धु की छाती पर ही यात्रा कर रहे हैं।

यहाँ से एक चोटी पर बर्फ दिखाई दी। थोड़ा और चलने पर अनेक चोटियाँ बर्फ से ढकी हुई देखी। मोटर के सभी यात्रियों ने खिड़कियों से सिर निकाल-निकाल कर चोटियाँ निहारना शुरू कर दिया। यह शोभा वर्णनातीत है। चोटियाँ देखकर मालूम पड़ता था मानो चाँदी के पहाड़ हों। ठीक बारह बजे मोटर ने सोनमर्ग पहुँचा दिया। कुल मिलाकर 200—250 यात्री होंगे अधिक नहीं।

झोपड़ीनुमा एक होटल में चाय-पान कर साढ़े बारह बजे हम लोग चार मील ऊँचाई पर स्थित 'थाजवास ग्लेशियर' की ओर चल पड़े। कुछ लोग घोड़ों से भी जाते हैं। हम ग्लेशियर की ओर चढ़ रहे हैं, बीच-बीच में पीछे मुड़कर देखते हैं। एक चोटी पूरी की पूरी बर्फ से ढकी दिखाई देती है। लगता है प्रकृति-सुन्दरी 'आइस-हट' में विश्राम कर रही है। लगभग दो मील चढ़ जाने के बाद हल्की-हल्की बूँदें झरने लगती हैं—इतनी हल्की कि देह पर पड़ते ही सूख जाय। ये बूँदें बड़ी भली लगीं। यात्रा का पूरा आनन्द आ गया। ऊपर से बहने वाले बेगवान झरने के बीच पड़ी हुई शिला पर 15 मिनट बैठे। अनुपम शांति का अनुभव हुआ।

हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये, बर्फ से ढके पहाड़ भी हमसे दूर होते गये। अनोखी मरीचिका थी। चलते थे तो लगता था कि बस से यही बर्फ सौ कदम पर, परन्तु पाँच सौ कदम के बाद भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता था। रास्ते में विनोदपूर्ण संवाद भी चल रहे थे। एक छात्र से पूछा, फोटो में वर्फ दिखाई देगी या नहीं? दूसरे ने समाधान किया। 'जब

[illegible]

तक निगेटिव से पोजीटिव बनेगा, तब तक बर्फ पिघल न जायेगी।

'थाजवास ग्लेशियर' पर लगभग पौन घन्टे घूमे-बैठे। एक केम्पनुमा दुकान थी, मात्र एक ही दुकान। चालीस-चालीस पैसे में चार-पाँच गिलास चाय बनवाई। मैंने जेब से लाला सुखबरदयाल रमेशचन्द्र की फोरोजाबाद से लाई हुई दालमोंठ को पुड़िया निकाली। धीरे-धीरे चाय की चुस्कियाँ ली। पूर्णानन्द का अनुभव हुआ। प्रिंसपल साहब ने ग्लेशियर के मैदान को 'मैदानेबटिया' का नाम दिया। फर्लांगों तक मैदान में बटियाँ बिखरी पड़ी थीं। चाय वाले ने बताया कि सामने कृष्णसर, विष्णुसर, सतसर और गंगबल नामक पहाड़ है। यह चाय वाला 15 अक्टूबर तक ही ग्लेशियर पर अपनी दुकान चलायेगा, आगे असम्भव है क्योंकि बर्फ गिरने लगेगी। आकाश बादलों से घिरा हुआ था। सूरज दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु जहाँ-तहाँ धूप दिखाई दे जाती थी। प्रकाश की धूमिल रेखा-सी किरणें ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों स्वर्ग लोक के देवगण इस अनुपम किन्नर देश के लोगों की गतिविधियों का 'सर्चलाईट' फेंककर अवलोकन कर रहे हों। दो बजे यहाँ से लौटकर तीन बजे नीचे सोनामर्ग आ गए। साढ़े तीन बजे बस रवाना हो ली। आज निराहार रहना पड़ा पर मानसिक आहार खूब मिला!

हमारे बस में लुधियाना के किसी कॉलेज के दस-बारह छात्र और थे। दोनों ओर से उन्होंने फिल्मी तराने और हरिकीर्तन का अखण्ड पाठ किया था। बस में दो विदेशी लड़कियाँ भी थीं, उनकों छेड़ देने पर इन छात्रों को पूरे बस के यात्रियों के क्रोध और आक्रोश का शिकार बनना पड़ा। ड्राइवर की एक फटकार ने उनकी बोलती बन्द कर दी। उसने कड़ककर कहा, "ऐ बाबू! चुप करो, नहीं तो कसम खुदा की, यहीं पर हुलिया दुरुस्त करा दूँगा कि जिन्दगी भर याद करोगे! धौंस काम कर गई और फिर उनके तराने सुनाई नहीं दिए। आज का दिन उत्तम रहा।

शनिवार 2 अक्टूबर 1971 : गाँधी जयन्ती दिवस : परिक्रमा बूलरझील की— आज गाँधी जयन्ती है। प्रातःकाल उठकर सब लोगों ने पाँच मिनट रामधुन का सामूहिक पाठ किया।

आज 'बूलर झील' देखने जाना है। मोटर हमारे 'एम्बैसी होटल' के गेट से ही 9 बजे हमें बैठा लेगी। अतः सब लोगों ने इत्मीनान के साथ मल-मलकर स्नान किया। मोटर-अड्डे तक जाने की किसी को जल्दी नहीं थी। नौ बजे मोटर गेट पर गई। सब लोग चाय-पान और नाश्ता करके निश्चिंत थे। श्री जैनेन्द्रकुमार जैन पेचिश के कारण आज के ट्रिप में नहीं चल रहे हैं।

साढ़े दस बजे हम लोग 'खीर भवानी' पहुँचे। यहाँ जगदम्बा देवी का मन्दिर है। एक कुण्ड भी है—जगदम्बा कुण्ड, जिसमें देवी पर चढ़ाए जाने वाला घी-दूध बह कर जमा होता है। इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। कहा जाता है कि इस कुण्ड का रंग बदलता रहता है जो अच्छे बुरे समय का प्रतीक होता है। मई-जून में यहाँ एक मेला लगता है अच्छी मान्यता है। प्रवेश मार्ग देखकर लगता है बड़ी होगी लेकिन है छोटी ही।

ग्यारह बजे 'मानस बल' पहुँचे यह 'बूलर' झील की ही एक शाखा है। यहाँ 'रेस्ट हाऊस' भी बना है। बारह बजकर दस मिनट पर 'निशात बाग' पहुँचे। यह श्रीनगर के निशात बाग का ही छोटा संस्करण है।

बण्डीपुर नगर है। काफी लम्बा बाजार है। यहाँ 'न्यू हिन्द होटल' में भोजन किया। पराठे छोले और दही का। कई दिन बाद थोड़ी तृप्ति हुई।

यहाँ से आगे 'बूलर' के दर्शन हुए। झील अधिकांश में सूखी पड़ी थी। कहा जाता है कि पिछले दो वर्ष से काश्मीर में 'स्नो फाल' अच्छा नहीं हुआ, इसी कारण झील सूखी पड़ी है।

बण्डीपुर के बाद 'बारपुरा' नामक स्थान आया। यहाँ सेबों की बड़े पैमाने पर खेती होती है। यहाँ से सेब पेटियों में पैक कर ट्रकों द्वारा बड़े-बड़े नगरों में ले जाया जाता है। मोटर से उतरकर यहाँ यात्रियों ने एक-एक दो-दो रुपए में सेब

धर्म का गौरव बाह्य साधनों और व्यवस्थाओं की चमक-दमक से नहीं, इसकी परम्परागत आध्यात्मिक संरचना से सुरक्षित रहेगा।

खरीदे। सेब की पैदावार यहाँ ऐसे ही होती है जैसे अपने यहाँ आम और अमरूद होता है।

तीन बजे 'सौपुर' आ गए। अच्छी व्यापारिक मण्डी है। बहुत बड़ा बाजार है। चौराहे से चारों ओर चौड़ी-चौड़ी सड़कें जाती हैं। रास्ते में 'पट्टन' नामक स्थान पड़ा जो किसी समय (शायद शंकरावर्मन के समय) काश्मीर की राजधानी रह चुका है। यहाँ अवन्तिपुर जैसे ही कुछ भग्न स्तम्भ दिखाई दिए। पौने पाँच बजे श्रीनगर वापस आ गए।

'सैण्ट्रल मार्केट श्रीनगर'— ट्रिप से लौटने के बाद सभी सैण्ट्रल मार्केट पहुँचे। यहाँ लगभग एक सौ पचास दुकानें हैं। काश्मीर निर्मित प्रायः सभी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हैं। दाम निश्चित हैं। मोल-भाव नहीं होता। चौंतीसवीं उद्योग प्रदर्शनी थी देखी। प्रति वर्ष इन्हीं दिनों लगती है। काश्मीर के कला-कौशल और कारीगरी का पूरा दर्शन हो गया।

नौ बजे होटल वापस आ गए। आज की यात्रा विशेष आकर्षक नहीं रही। 'बूलर' झील का अल्पांश ही दिखाई दिया। सन्तोष किया जा सकता है यह सोचकर, कि हम यह कह सकेंगे कि हमने एशिया की सबसे बड़ी झील देखी है!

रविवार 3 अक्टूबर : 'टंगमर्ग'-'गुलमर्ग' 'खिलनमर्ग'— आठ बजकर चालीस मिनट पर हमारी मोटर टंगमर्ग के लिए चल दी। श्री जैनेन्द्र कुमार आज भी अस्वस्थ होने के कारण साथ नहीं चल रहे हैं। 'मैंगम' नामक स्थान तक दूर-दूर तक खेत-ही-खेत दिखाई देते रहे। क्षितिज के पास जहाँ पहाड़ों की छवि भव्य प्रतीत होती थी। यहाँ से मोटर ने जैसे ही टर्न लिया कि पहाड़ करीब आ गए। बिल्कुल पास ही खड़े छोटे-छोटे टीले ऐसे लगते थे मानों पहाड़ों ने अपनी निकटता का बोध कराने के लिए अपने प्रतिनिधि भेज दिए हों! रास्ते में एक बहुत बड़ा गोल पत्थर तरबूज की तरह बीच में फटा देखा।

दस बजे हम लोग 'टंगमर्ग' आ गए। यहाँ घोड़े तो बहुत थे लेकिन उनका ग्राहक कोई नजर नहीं आ रहा था। हमने भी 'गुलमर्ग' तक पैदल चलने का ही निश्चय किया। वैसे गुलमर्ग तक सड़क बन गई और मोटर वहाँ तक जाती भी हैं लेकिन घोड़े वालों के आन्दोलन के कारण मोटरें अब टंगमर्ग तक ही जाती हैं। टैक्सियाँ गुलमर्ग अब भी जा सकती हैं।

यहाँ से गुलमर्ग के लिए सड़क का मार्ग चौदह किलोमीटर और घोड़ों का रास्ता लगभग छः किलोमीटर है। इस जगह 'पौनी-ट्रैक' के बोर्ड लगे हुए हैं। इससे भटकने की आशंका नहीं रहती। हमने इसी मार्ग का अनुशरण किया। वैसे पैदल जाने के लिए छोटे-छोटे रास्ते भी हैं। पर इनमें चढ़ाई अधिक सीधी होने से साँस फूल जाती है।

रास्ते में वारिश भी हो जाती थी, उससे बचने के लिए बीच-बीच में पेड़ों के नीचे विश्राम कर लेते थे। एक जगह 'शार्ट-कट' के लिए एकदम सीधी चढ़ाई चढ़ने के बाद लगा जैसे 'एवरेस्ट विजय' कर लिया हो!

साढ़े ग्यारह बजे 'गुलमर्ग' पहुँच गए। बहुत खुली जगह है। गोल्फ का बड़ा मैदान है। अनेक आकर्षक ढालू स्थान है जहाँ जाड़ों में बर्फ पर फिसलने का खेल (आइस स्केटिंग) खेला जाता है। टूरिस्ट रेस्ट्राँ में पराठें खाए। भोजन करने के बाद सामने बने 'महारानी मन्दिर' गए। एक जगह कुछ लोगों को गोल्फ खेलते देखा। फिर यों ही ढलानों पर चढ़ते-उतरते रहे। यह निरुद्देश्य व्यर्थ का घूमना बड़ा भला लग रहा था।

'खिलनमर्ग' का मार्ग करीब 6 किलोमीटर की चढ़ाई का है। जाने का कोई इच्छा नहीं थी। अन्य साथी भी इधर-उधर बैठे विश्राम करते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर रहे थे। लेकिन घूमते-घूमते मैं, प्रिसंपल साहब श्री नरेन्द्रप्रकाश जी और मुंशी रमेशचन्द्र प्रकाश कुछ आगे निकल आए तो मन में जिज्ञासा जाग्रत हुई कि ऊपर क्या है, उसे भी देखना ही चाहिए। सोचा, एवरेस्ट पर चढ़ाई करने वाले उन्नतीस तीस हजार ऊँची बर्फीली चोटियाँ नाप डालते हैं, तो हम क्या नौ हजार फुट ऊँची चढ़ाई भी नहीं चढ़ सकते? 'खिलनमर्ग' हमें एक चुनौति जैसा प्रतीत हुआ और हम चल पड़े। रास्ता ढालू है। चार किलोमीटर बाद सीधी चढ़ाई है। मध्य में एक कैम्पनुमा चाय की दुकान मिली। हम लोगों ने चाय पी और

[illegible] के प्रयोग, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि [illegible] से [illegible]

फिर अपनी मंजिल की ओर चल पडे। रास्ते में हमारे दल के कुछ छात्र ब्रजेन्द्र, उमेश झिन्दल, देशमुख और औंकार नाथ लौटते मिले। रास्ते की शोभा ऊँचे-ऊँचे बदर के वृक्ष हैं। साठ-साठ फुट तक की उनकी ऊँचाई होगी। वृक्ष एक दम सीधे थे लगता था मानो अनेक कुतुबमीनार खड़ी हों। पेड़ इतने घने थे कि उनमें पहाड़ छिप गए थे। यहाँ ठण्ड सबसे अधिक थी, लेकिन चढ़ाई के परिश्रम के कारण शरीर से पीसना छूट रहा था। इस पसीने के निकल जाने से जो आनन्द आ रहा था वह पंखे के नीचे भी गर्मी का अनुभव करनेवालों के नसीब में कहाँ?

एक स्थान पर चोटी बर्फ से ढकी दिखाई दी जो बताया गया कि बर्फ पिछली रात ही गिरी थी। लगभग एक घण्टे में हम लोग 'खिलनमर्ग' पहुँच गए। निकट ही पहाड़ की चोटियों से बादलों के टकराने का दृश्य देखकर मन प्रफुल्लित हो उठा। बादलों से ओद निकलकर पहाड़ों से बह रहा था। पहाड़ों के बीच खुले स्थान ऐसे चमक रहे थे मानो उन पर मोती बिखरे हों। सामने क्षितिज पर कुहरा छाया हुआ था। धूप में मैदान भाँति-भाँति के रंगों से सुशोभित प्रतीत हो रहा था। लगता था मानो प्रकृति-वधू ने पचरंगी चूनर ओढ़ रखी हो। 'गुलमर्ग' की दिशा में कहीं बाबा ऋषि पर्वत है जो घने कुहरे के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा था। 'दूसरी ओर (गुलमर्ग की विपरीत दिशा में) नंगा पर्वत था। सामने 'बूलर लेक' और उससे इधर निंगल नाला' बह रहा था। सुन्दर दृश्य था। हमारे बाई ओर की चोटियाँ बादलों से ढकी थीं। हम इन पर्वतों के मूल में ही खड़े थे। होटल वाले ने बताया कि इनके उस पार 'अलपत्थर झील' है। इन्हीं पर्वतों के उस ओर कहीं 'आजाद काश्मीर' है। 'खिलनमर्ग' जब एक मील रह जाता है तो वृक्षों की कतारें समाप्त हो जाती हैं और नंगी चोटियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं। 'गुलमर्ग' की ओर दृष्टि डालते हैं तो घास के बीच अनेक रास्ते ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे मैदानों में अनेक नदियाँ बह रही हों।

पन्द्रह मिनट ठहरकर और चाय-पान कर तीन बजकर पचपन मिनट पर हम लोग वापस चल पड़े। पाँच बजे हमें 'टंगमर्ग' पहुँचकर बस पकड़नी थी। उतरते समय सन्तोष, देवेन्द्र और नरेन्द्र घोड़ों पर ऊपर जाते दिखाई पड़े। प्रिंसपल साहब ने उन्हें शीघ्र लौटने की ताकीद की। हम लोग तेजी से दौड़ते हुए उतर रहे थे। पानी बरसने लगा था। हम लोगों के कोट भीग गए थे। रास्ते में हमने पहली बार दो पूरे इन्द्र धनुष देखें क्षितिज-से-क्षितिज तक पूरे तने हुए। पाँच बजकर दस मिनिट पर हम लोग टंगमर्ग आ पहुँचे। ठीक सवा घण्टे में हमने पैदल बारह किलोमीटर का रास्ता तय किया था। वह भी ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी और बारिश के कारण फिसलन भरा! परन्तु एवज में बजाय प्रशंसा के देखने को मिली टूर-इंचार्ज श्री श्यामबिहारीलाल और भाई प्रेमकुमार की टेढ़ी भौंहैं! वे भी बेचारे करते तो क्या करते, शेष यात्री मोटर में आकर सवार हो चुके थे। और शीघ्र मोटर चलने का आग्रह कर रहे थे। तीन लडके आना अब भी शेष था। जैसे-तैसे करके उन यात्रियों को साधा गया। इतने में ही ये तीनों भी गुलमर्ग से तीन-तीन रुपए में एक मोटर ठेले में बैठकर आ गए।

टंगमर्ग से साढ़े पाँच बजे मोटर चल दी। पौने सात बजे वापस श्रीनगर आ गए। सब लोगों के साथ उद्योग प्रदर्शनी और सैण्ट्रल मार्केट फिर देखा। कुछ सामान खरीदा। साढ़े ग्यारह बजे तक होटल लौट आए। कल प्रातः यहाँ से चल देना है। अतः सामान इत्यादि सम्भाल कर रखा। बारह बजे सो गए।

सोमबार 4 अक्टूबर 1971 यात्रा वापिसी— प्रातः छः बजे सामान सहित होटल के नीचे आ गए। टैक्सी से 'टूरिस्ट-सेन्टर' आए। सामान हथठेला से आया। आठ बजे मोटर में बैठकर श्रीनगर से विदा ली।

मार्ग में 'रामवन' में रुकने पर भोजन किया। सोचा-काश्मीर में क्या है? मन में निम्न प्रत्युत्तर जन्मा—काश्मीर में चाँदी के पहाड़ हैं, नीलम, मरकत और रजत की संयुक्त आभा वाले झरने और सरिता समूह है। आकर्षक पेड़-पौधे हैं। जिन पर सोने के झुमके लगते हैं और जिनके बीच-बीच में मीनाकारी हो रही है, सीढ़ीदार सुन्दर खेत हैं, बलखाती, इठलाती, इतराती सड़कें और नदियाँ हैं। प्रातः और संध्या के सुन्दर सिन्दूरी दृश्य हैं, अपने रूप और सौन्दर्य से अद्वितीय युवक और

अपनी आत्मा की शान्ति के लिये सोना, चाँदी, धन, मकान, वस्त्र-वाहन आदि की आवश्यकता नहीं होती, उसके लिये आवश्यक है अपनी अन्तःशक्ति के जागरण या उद्घाटन की। सुख कहीं बाहर नहीं, अपने ही भीतर है।

युवतियाँ हैं और यत्र-तत्र सर्वत्र अनहद नाद का मधुर संगीत है।

लौटते समय मार्ग में जगह-जगह मोटर, कार, ट्रक आदि के ड्राइवर को सावधानी के लिए बडे सुन्दर और उपयोगी सूत्र साइनबोर्डो पर लिखे देखे। जैसे

(i) "Drive with your nerves calm; And see the Valley's charm "

(ii) "Death lays his icy hands on speed kings."

(iii) "Life is short, don't make it shorter"

(iv) Drive alert, accident avert."

रामवन के बाद मोटर मार्ग में कहीं और नहीं रुकी। साढ़े सात बजे जम्बू आ गए। ड्राइवर और ट्रांसपोर्ट आफीसर से कह सुनकर उन्हें उसी समय पठानकोट चलने के लिए हमारे साथियों ने राजी कर लिया। इस प्रकार सवा ग्यारह बजे पठानकोट रेलवे स्टेशन आ पहुँचे। प्रातः आठ बजे से रात्रि सवा ग्यारह बजे तक श्रीनगर से पठानकोट तक सवा पन्द्रह घण्टे का सफर किया। डीलक्स बस की आरामदेह सीट पर बैठे-बैठे भी हम लोग बुरी तरह थक गए थे। लेकिन इस बीच मोटर ड्राइवर के धैर्य, साहस और परिश्रम का ख्याल आया तो हमें अपनी थकावट पर लज्जा आने लगी। यहाँ के ड्राइवरों का जीवन भी क्या जीवन है! बेचारों पर बड़ा श्रम पड़ता है। यात्री लोग तो आरामदेह सीटों पर झपकियाँ ले लेते हैं, कुछ तो घण्टों लम्बी पूरी नींद ही ले लेते हैं। जैसे हमारे भाई साहब प्रेमकुमार जी! परन्तु ये ड्राइवर लोग यदि एक क्षण के लिए भी असावधान हो जाएँ तो? कुछ मुसलमान ड्राइवर लोग तो बीड़ी-सिगरेट पीकर अपनी सुस्ती दूर कर लेते हैं लेकिन अधिकांश ड्राइवर तो सिख-सरदार होते हैं जो धूम्रपान भी नहीं करते। 14-15 घण्टे बस चलाते हैं, पूर्ण एकाग्रचित्त होकर। सचमुच इनका जीवन कमाल का जीवन है। उनके श्रम और एकाग्रता पर ही यात्रियों का जीवन निर्भर रहता है।

पठानकोट स्टेशन पर सलाह-मशविरा कर ढाई बजे की गाड़ी से 'स्वर्ण मन्दिर' और 'जलियाँ वाला बाग' देखने के इरादे से अमृतसर को चल दिए। रास्ते में सबने हल्की नींद भी ले ली।

मंगलवार, 5 अक्टूबर, 1971 : अमृतसर— प्रातः साढ़े छः बजे अमृतसर आ गए। शौचादि से निवृत्त ट्रेन में ही हो लिए थे। कुछ लोगों ने नहा-धोकर और कुछ लोगों ने शुष्क स्नान कर कपडे बदले। प्रिंसपल साहब और भाई प्रेमकुमार जी को प्लेटफार्म पर सामान रखवाली के लिए छोड़ सब लोग स्वर्ण मन्दिर और जलियाँवाला बाग देखने चल दिए। तीन ताँगों में बैठ सब लोग पहले स्वर्ण मन्दिर को रवाना हुए। ताँगे में बैठते ही ताँगे वाले ने जो हाँक लगाई तो श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी लिखित अमर कहानी 'उसने कहा था' याद आ गई। बिल्कुल वही लहजा वैसे मीठे और नपे-तुले शब्द ताँगे वाले के मुँह से निकल रहे थे। 'स्वर्ण मन्दिर' काफी विशाल भू-भाग में है, चारों ओर सरोवर है, बीच में मन्दिर। ताँबे पर सोने का पानी चढ़ा हुआ है। कारीगरी दर्शनीय है। मन्दिर में पैर धोकर और ढककर ही जाया जा सकता है। मैं संयोग से श्रीनगर से खरीदी हुई बालोंदार टोपी पहिने हुआ था, दूसरे साथियों ने रूमाल निकाल-निकालकर अपने सिर ढक लिए लेकिन कुछ छात्र ऐसे भी थे जिन पर रूमाल भी नहीं निकला, उन्हें मन्दिर जी की ओर से उपलब्ध केशरिया रंग के रूमालोंनुमा कपड़ों से अपना सिर ढकना पड़ा। एक ओर एक म्यूजियम है जिसमें सिख पन्थ का इतिहास संग्रहीत है। अनेक चित्र, अस्त्र-वस्त्र और दूसरी ऐतिहासिक वस्तुएँ बड़े सुव्यवस्थित ढंग से सुरक्षित हैं। दूसरी ओर बताया गया कि एक पुस्तकालय और वाचनालय भी है जिसे समयाभाव के कारण हम देख नहीं सके। जिस समय हम लोग पहुँचे किन्हीं सिख एम.एल.ए. महोदय का भाषण चल रहा था। वह फूल-मालाओं से लदे धाराप्रवाह पंजाबी या गुरुमुखी में अपना प्रवचन दे रहे थे। अकाल-तख्त के भी दर्शन किए। मंदिर के क्षेत्र में कई जगह भजन-कीर्तन और ग्रन्थ साहब का पाठ चल रहा था। एक जगह मन्दिर से लौटने वालों को शुद्ध देशी घी का सूजी का हलवा प्रसाद रूप में वितरित हो रहा था। मन्दिर [illegible]

सचमुच बहुत सुन्दर है और अपनी अखिल भारतीय कीर्ति के अनुरूप ही है।

यहाँ से लौटे तो 'बाजार सट्टीवाला' में एक बोर्ड लगा देखा–'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर' 26 सितम्बर को फिरोजाबाद से चलने के बाद आज नवें दिन पहली वार श्री जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन कर चित्त को हार्दिक प्रसन्नता हुई। मन्दिर छोटा और अच्छा है। बम्बई के किन्हीं सेठ श्री रामलाल गणपतिराम ने इसे बनवाया है। माली से विदित हुआ कि यहाँ 7-8 जैन परिवार हैं। अधिकांश व्यक्ति सेवाओं में हैं। इस आकस्मिक देव-दर्शन से हमें ऐसी खुशी हुई मानों हमने कोई नई खोज कर ली हो।

यहाँ से दस-बीस कदम पर ही **'जलियांवाला बाग'** है, जहाँ 31 अप्रैल 1919 को जनरल डायर ने 'रौलट एक्ट' के विरुद्ध सभा करनेवाले शान्तिपूर्ण निःशस्त्र भारतीयों को गोलियों से भुनवा दिया था। करीब दो हजार लोग मारे गए थे। अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रयत्नों से इस स्थान को अमृतसर वासियों से 5,65,000 रुपयों में खरीदकर एक भव्य स्मारक का रूप दे दिया गया है। एक सुन्दर बाग के रूप में इसका विकास हो रहा है। वह कुआँ भी देखा, जिसमें भागते हुए कुछ लोग गिर गये थे। उस कुएँ से एक सौ बीस शव निकाले गए थे। अब कुएँ के तीन ओर दीवालें बनवा दी गई हैं। बाग में किनारे-किनारे बरामदे हैं, जिनमें बेंचें बनी हुई हैं। धूप और वर्षा में लोग यहाँ बैठ सकते हैं। बीच में लाल पत्थर का एक भव्य स्तूप-सा खड़ा है। स्मारक को देख सहज ही शहीदों के प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाता है।

स्मारक देखने के बाद बाजार में एक हलवाई की दुकान से देशी घी की पूड़ियाँ, दही और आलू की सब्जी के साथ ग्रहण की। बड़ी तृप्ति हुई। दही अच्छा और सस्ता था। एक-एक व्यक्ति पाव-पाव भर दही खा गया। इसी बीच श्री जैनेन्द्र कुमार और रामबाबू जैन प्रिंसिपल साहब और प्रेम कुमार जैन को स्टेशन से मुक्त कर स्वर्ण मन्दिर और जलियाँवाला बाग देखने का उन्हें भी अवसर देने के लिए स्टेशन चले गए थे। हम लोग जैसे ही स्टेशन पहुँचे साढ़े ग्यारह बजे पठानकोट जानेवाली पैसेंजर ट्रेन प्लेटफार्म पर आ लगी थी। श्री रामबाबू और जैनेन्द्र कुमार जैन स्टेशन पर मिले। जिस प्लेटफार्म से पठानकोट जानेवाली थी। उसी प्लेटफार्म पर हमारा लगेज रखा हुआ था। यह काम श्री प्रेमकुमार जी जाने से पहले ही करा गए थे। लेकिन इसी समय जैनेन्द्र जी ने प्रेमकुमार जी को एक चिट दी जिस पर लिखा था "हमें विलम्ब हो जाए तो हमारी प्रतीक्षा न करें। हम दिल्ली पर मिल जाएँगे। अथवा एक दिन दिल्ली रुककर दूसरे दिन पहुँचेंगे।" एक क्षण तो हम लोग द्विविधा में पड़े। लेकिन गाड़ी चलने से कुछ समय पूर्व ही प्रिंसपल साहब और प्रेमकुमार जी दोनों ही स्टेशन आ गए।

पठानकोट स्टेशन पर उतरते ही, दिल्ली जाने वाली काश्मीर मेल प्लेटफार्म पर खड़ी मिली। लेकिन बेहद भीड़ के कारण उसमें स्थान न मिल सका। शाम को कुछ लोगों ने पठानकोट स्टेशन पर रेलवे के भोजनालय में और कुछ लोगों ने वैष्णवी ढावा में शाम का भोजन किया। दस बजे 'श्रीनगर एक्सप्रेस' प्लेटफार्म पर आई। बड़ी मुश्किल से तीन डिब्बों में सामान चढ़ाया जा सका। बिस्तरों पर बैठने का स्थान मिला। वैष्णो देवी के मेले की भीड़ चल रही है।

बुधवार 6 अक्टूबर 1971 : दिल्ली से फिरोजाबाद– प्रातः नौ बजे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन उतरे। दस बजे तूफान एक्सप्रेस मिल गई। किसी तरह सभी लोग एक ही डिब्बे में बैठ गए। आगरा केण्ट पर मालूम हुआ कि यह डिब्बा मिलीटरी के लिए रिजर्व था। उन्होंने डिब्बा खाली कराने का भरपूर प्रयत्न किया। लेकिन हमारे खाली न करने पर सन्तोष करके रह गए। साढ़े चार बजे के लगभग हम लोग वापस अपने नगर फिरोजाबाद आ गए। इस प्रकार हमारी यह ग्यारह दिवसीय काश्मीर-यात्रा सानन्द समाप्त हुई।

प्रस्तुति : श्री ब्रजकिशोर जैन

□

जीवन में जितना-जितना अधिक परिग्रह जुड़ता जाता है, हमारे मन की शान्ति उतनी-उतनी घटती जाती है। यदि परिग्रह में सुख होता तो तीर्थंकर क्यों छोड़ते?

वह लाजवाब है

(पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के प्रति)

वह मुनिगण—मुकुट है
उसका कोई जवाब नहीं
वह सैकड़ों में अकेला है
अलबेला है
उसका कोई जोड़ नहीं
वह तो बस वह ही है।

वह भला है
भोला है
भद्र भावों से भरा है
खरा है
बदन का इकहरा है
छरहरा है
उम्र से जवान है
साधक महान् है
भूखा है ज्ञान का
शत्रु है अभिमान का
भुलावों से दूर है
तपश्चरण में शूर है।

उसका चिन्तन मौलिक है
उसकी वार्ता अलौकिक है
विचारों में उदारता है
प्रामाणिकता है
शालीनता है
सर्वजनहितैषता है।
साम्प्रदायिकता से वह परे है।
संकीर्णता के घेरों से मुक्त है।
वह आत्मजयी है।
आत्मकेन्द्रित है
नासादृष्टि है
निजानन्द—रसलीन है
मोह-माया-मत्सर-विहीन है

उसे लुभाती नहीं है
बाहरी दुनिया की चमक
उसके स्वभाव में है
एक स्वाभिमानी की ठसक।
उसके सबसे बड़े गुण हैं—
अनासक्ति और निःस्पृहता
क्षमाशीलता और समता
निर्ममता और निर्भयता

वह आलोक-पुंज है
ज्ञान-दीप है
ज्योति-पुरुष है
विराजी रहती है प्रतिक्षण
उसके चहरे पर
एक निर्मल-निश्छल मुस्कान
उसकी हर छवि है अम्लान
उसका नहीं है जवाब
वह है लाजवाब

□

त्याग

त्याग एक आग है
जो खान से निकले
मलिन स्वर्ण को
शुद्ध बनाती है
विकारी आदमी को
बुद्ध बनाती है।

□

मैं कौन हूँ

आओ, लगाओ गोते
अध्यात्म के अतल सागर में
लाओ ढूँढ़-ढूँढ़कर
वेशकीमती मोती
मोती—
जिनमें अनोखी आब है
आब—
जो केवल अनुभवगम्य है
अनुभव—
जो थाती है
केवल अन्तर्दृष्टाओं की
हम सब नतमस्तक है
सन्तों से मिली
उस अनुपम और अलौकिक
थाती के प्रति
जो आज भी सुरक्षित है
स्मृति की स्वर्ण मंजूषा में।

चर्म चक्षुओं से जो दिखता है
वह असार है
नश्वर है
क्षणभंगुर है
किन्तु शाश्वत है वह सब
जो ज्ञान-चक्षुओं से
हिये की आँखों से
दिखता या देखा जाता है
सबके पास है यह आँख
पर, उससे देखने का काम
विरले ही लेते हैं
जो लेते हैं
वही सुखी होते हैं।
मैं कौन हूँ
यह एक सनातन प्रश्न है

[illegible]

एक भूलभुलैया है
एक बीहड़ वन है
सदियों से
हमारे धर्मशास्त्री
तपस्वी और दार्शनिक
इसका उत्तर खोजते रहे हैं
किन्तु संसार के अधिकांश जीव
आज भी भ्रमित हैं/अनजान हैं
भटक/अटक रहे हैं
'मैं' को नहीं समझ पा रहे हैं
कुल को, नाम को
रूप को, गाँव को
स्पर्श-रस-वर्ण को
महल-भूमि-स्वर्ण को
बाहरी समस्त वैभव को ही
संसारी अपना मानते रहे हैं
देह को और धाम को ही
'मैं' के रूप में
जानते रहे हैं।

'मैं' सुखी-दुःखी, मैं रंक-राव
मेरे धन-गृह-गोधन-प्रभाव
मेरे-सुत-तिय, मैं सबल-दीन
बेरूप-सुभग, मूरख-प्रवीन'
इन मिथ्या कल्पनाओं में
अपने 'मैं' को
पहचानते रहे हैं।
'मैं' जो भीतर की सत्ता है
उससे सभी अनजान हैं
सिंहासन के स्वामी होकर भी
दिखते रीते/सुनसान हैं
राजा बन गया है भिक्षुक
रिरिया रहा है साहूकार
अफसर कर रहा चाकरी

वह बेखबर है इस तथ्य से—
'सबके पल्ले लाल,
लाल बिना कोई नहीं
यातें भयो कंगाल
गाँठ खोल देखी नहीं'।

बाहर की सारी दौलत
चमक-दमक
फीकी है/निस्तेज है
उस रोशनी के सामने
जो भीतर है
और, सतत् रहती है ज्योतित
कभी नष्ट नहीं होती
सबको बचाती है भटकने से
खजाने तक पहुँचने का
उपाय बताती है
रास्ता दिखाती है।
हम सब आस्तिक हैं
ईश्वर के उपासक हैं
उसकी स्तुति करते हैं
उसके पावन चरणों में
नित माथा टेकते हैं
उसकी मूर्तियाँ गढ़ते-गढ़वाते हैं
मन्दिर बना-बनाकर
उनमें उन्हें पधराते हैं
बदले में नाना उपाधियाँ पाते हैं
किन्तु, यह जाने बिना कि
वह ईश्वर कोई और नहीं
'मैं' ही तो हूँ।

हम अपने दम्भ, दोष या पाप को
छिपाने के लिए
बहाने तलाशते हैं।

और, इस तरह ईश्वरत्व से दूर
बहुत दूर होते जाते हैं
जबकि हम उसके बहुत करीब हैं
नहीं जानते, इसी से गरीब हैं।
मैं वह हूँ, जो है भगवान
जो मैं हूँ, वह है भगवान
यह रहस्य जब ज्ञात होगा
तब बदल जाएगा जीवन
मिल जाएगा वह,
जो हमारा लक्ष्य है
गंतव्य है/प्राप्तव्य है।
मैं हूँ एक त्रैकालिक शुद्ध तत्त्व
न जिसका आदि है
न जिसका अन्त
जो इन्द्रिय-अगोचर है
चैतन्य है, ध्रुव है
अविनाशी है, आनन्दकन्द है
ज्ञान-घन-पिण्ड है
और है—सर्व परभावों से भिन्न
अरस-अरूप-अगन्ध
वह सदा से है, था
और सदा रहेगा
उसी को खोजो
उसकी खोज ही अपनी खोज है
खोजने वाला और मैं
एक ही है, अलग नहीं है
उसी को जानो, उसी में रमो
कहा भी है—
एक देखिए जानिए,
रमि रहिए इक ठौर।
समल विमल न विचारिए,
यहै सिद्धि नहीं और ॥

□

धर्म का काम विवादों को मिटाना है। धर्म का काम समता कायम करना है। धर्म का काम [illegible] का उन्मूलन है। धर्म का काम शान्ति का उद्भव करना है।

जो सम्यक् हो, सही हो, उसमें रचो-पचो

शरीर के लिए
जितना आवश्यक है
भोजन,
मन के लिए
उतना ही जरूरी है
भजन-चिन्तन-मनन।
रोटी से मिटती है
तन की भूख,
विचारों से हटती है
मन की हूक।
माटी के दिये
हटाते हैं
मिटाते हैं
बाहर का अँधेरा
विचारों के दिए
लाते हैं
अन्तस में सवेरा
और...
उजाला होना चाहिए–
भीतर भी,
बाहर भी,
तभी बात बनती है
सफलता मिलती है।

ज्योति-किरण से उज्ज्वल
महिमापूर्ण विचार
आलोकित करते हैं
मानव के अन्तर को,
भरते हैं उत्साह नया,
देते हैं गति-मति अमित
हृदय के निर्मल स्वर को।
प्रिय श्रावक!
बाहर की चमक में
उलझकर मत रह जाना,
मन को माँजकर
निज अन्तर को सजाना।
जीवन की
इसी में है सफलता,
शेष सब विफलता।

जरूरत है विवेक की
आचार में
विचार में
व्यवहार में।
विचारों का छानना
उतना ही जरूरी है,
जितना जरूरी है
चाय को छानना।
विचारों में जो अच्छा हो
उसे स्वीकारो
जो बुरा हो
उसे बुहारो
अनर्थदण्ड–
यानी जो निःसार हो
उससे बचो,
जो सम्यक् हो
सही हो
उसमें रचो-पचो।
विचार से बनता है आचार
और, आचार से व्यवहार
इसलिए विचार मूल है
मूल को सुधारो,
किसी अन्य को
मत गुहारो।
विचार की यह शक्ति
प्राप्त है सहज ही
मनुष्य को
केवल मनुष्य को,
मनुष्य के अलावा
और किसी को नहीं।
यह एक बहुत बड़ा
वरदान है,
सर्वोत्तम
अवदान है।
विचार की शक्ति–
मनुष्य की
सबसे बड़ी निधि है,
ढंग से जीने की
एक खूबसूरत विधि है।
इसलिए यह जरूरी है कि–
विचारों में जो अच्छा हो
उसे स्वीकारो
जो बुरा हो
उसे बुहारो
जो निःसार हो
उससे बचो,
जो सम्यक् हो
सही हो
उसमें रचो-पचो।

□

[illegible]

आत्मालोचन

हम सब छद्मस्थ हैं,
सदोष हैं,
अधूरे हैं–
इस सत्य की अनुभूति ही
पहली सीढ़ी है
पूर्णता के उस शिखर पर
पहुँचने की
जहाँ लहरा रहा है
निर्मलता का पावन ध्वज।
परिछिद्रान्वेषण पाप है–
स्वदोष दर्शन उपाय है
उस पाप से मुक्त होने का;
इसीलिए तो कहा है
किसी कवि ने–
"बुरा जो देखन मैं चला
बुरा न दीखा कोय,
सिग जग ढूँढ़ा जायके
मुझसे बुरा न कोय"
एक शायर भी फरमाते हैं–
"एक नहीं, दो नहीं
सौ नहीं, हजार नहीं
मेरे सीने में दागों
का कोई शुमार नहीं"
निजदर्शन की प्रवृत्ति
जब जगती है
तब धुल जाती है
सारी कालिमा
कलुषता मन की।
आत्मविकास के लिए
आत्मालोचन ही
सर्वोत्तम मार्ग है।
एक नीतिज्ञ का कथन है–
"स्वयं में जब कमियाँ होती हैं
तब उधर से हटाने के लिए
दूसरों का ध्यान हम दिखाने लगते हैं
अन्य-अन्य की कमियाँ
पर, मिटती नहीं हैं
इससे किसी की छवियाँ
हम खुद कर लेते हैं
अपना ही अहित
आइए,
आज क्षमावाणी के इस
पावन पर्व पर
हम संकल्प लें–
कि हम जूझेंगे
अपनी ही कमियों से
स्वयं को संवारेंगे
बिना दूसरों को बिगाडे हुए।

□

साल पुराना गया

साल पुराना गया,
नव वर्ष आया
जगाओ–
संकल्प की प्रखर किरण,
ताकि सूझ सके रास्ता,
जो गुम हो गया है
गहरे कुहासे में
पुराना वर्ष लिख गया कथा–
अवमूल्यन की,
गिरावट की,
ह्रास की।
दे गया उत्तराधिकार में
नए वर्ष को
संत्रास,
घुटन,
मूल्यहीनता।

स्थिति विषम है,
बद से बदतर है,
फिर भी नए शिशु को
जीना तो पड़ेगा ही।
फिर क्यों न जिए
वह हौंसले से!
हौंसला यदि बुझ गया
तो नए वर्ष की प्राणशक्ति भी
सूखे बिना न रहेगी,
जिन्दा तो वह रहेगा,
रहना पड़ेगा उसे,
तीन सौ पैंसठ दिन तक,
किन्तु अधमरे की तरह।

हौंसला वह सजीवनी है,
प्राण-सुधा है,
जो करती है संचार
एक अदम्य जिजीविषा का,
जो देती है शक्ति
जूझने की तूफानों से।
विरोधावरोध नष्ट होते हैं,
हो सकते हैं
या होंगे कभी भी,
तो उसके पीछे ताकत होगी
हौंसलों की ही।
हौंसलों से काफिले बढ़ते है,
प्रलय के दायरे सिकुड़ते हैं
जमाने बदलते हैं,
काँटों में फूल खिलते हैं,
बलबले विकास के,
प्रगति के
मचलते हैं,
बादल निराशा के
छिटकते हैं
हटते हैं,
विलीन होते हैं
होता नया सूर्योदय आशा का,
उत्साह का प्रभात आता है,
रोशनी लाता है खुशियों की।

□

जहाँ कषाय की उपस्थिति है, वहां सत्य और संयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है। सत्य-संयम के अभाव में तप-त्याग का निर्वाह भला कैसे हो सकता है?

वे सब खुश हैं

चरित्र कैंसर-ग्रस्त हो गया।
हमारे यहाँ के महन्तों ने,
महात्माओं ने,
तथाकथित नेताओं ने
भरपूर कोशिश की,
उसे जिलाने की,
बचाने की,
परन्तु उसकी हालत
बिगड़ती गई,
और एक दिन—
वह मर ही गया।
लोगों ने चरित्र की मौत पर
घड़ियाली आँसू बहाए,
मातमी गीत गाए।
तेरहवीं के बाद
बन्द हो गया
शोक का यह रस्मी नाटक भी
आज जब करता है कोई
चरित्र की बात,
तो लगता है मानो
किसी मृतक की पुण्यतिथि पर
कर रहा हो याद उसकी
दो क्षण के लिए
पीट रहा हो ढिंढ़ोरा
उसके खानदानी होने का।

वैसे उसके मरने से
वे सब खुश हैं,
जो महलों में रहने लगे हैं,
काले धन से उपजी
'लग्जरीज' में पलने लगे हैं,
डनलप के गद्दे पर
गुलगुले मसनद के सहारे
अधलेटे होकर या बैठकर
जो शराब के जाम पीते हैं,
गुलछर्रे उड़ाते हैं,
नौकरों को डाँटकर
अपना रौब दिखाते हैं,
हर तरह के व्यभिचार से
अपना जी बहलाते हैं।

वे सब खुश हैं,
बहुत खुश हैं,
इस बात पर
कि चरित्र मर गया
उन्हें ऐयाशी की छूट दे गया।
उसके जिन्दा रहते
वे नहीं भोग सकते थे
उन 'लग्जरीज' को,
जिनका मानवता से
कोई अनुबन्ध नहीं है,
राम, कृष्ण, बुद्ध या महावीर से,
ईसा, पैगम्बर, रहीम या करीम से
कोई सम्बन्ध नहीं है।
चरित्र बाधक था
उनकी स्वच्छन्दता में,
इसलिए वे खुश हैं कि
वह मर गया।

वह मर गया,
फिर भी वे याद करते हैं
चरित्र को,
केवल इसलिए कि
आज भी बहुसंख्यक सर्वहारा,
गरीब, श्रमशील लोग
उसके भक्त हैं,
उसके उपासक हैं,
साधक हैं
आराधक हैं।
चरित्रहन्ता
लेकर चरित्र का नाम
अर्पित करते हैं उसके प्रति
अपनी श्रद्धांजलि,
जलांजलि
प्रणामांजलि
और इस तरह करते हैं
कोशिश
दिल जीतने की
चरित्र-भक्तों का,
क्योंकि जीते बिना
उनका दिल
उनका शोषण-उत्पीड़न
और न ही सम्भव है
विलासिता से भरपूर
जीवन जीना।
आने वाले वर्ष में
हम ढूँढ़ पाएँगे,
खोज पाएँगे,
चरित्र का कोई विकल्प
याकि फिर ऐसे ही/यों ही
बजाते रहेंगे
चारित्र की मृत्यु का
यह मातमी शंख

☐

सुन्दरता

सुन्दरता वरदान है
सृष्टि का सार है
जीवन का श्रृंगार है
सुन्दरता से रहित
व्यक्ति हो या पदार्थ
पृथ्वी का भार है
चरित्रवान के लिए
सुन्दरता होली है
माथे की रोली है
मूर्ख के लिए भट्टी है
गूदड़ों से भरी
रंगीन झोली है
सुन्दरता नियामत है
ज्ञानी के लिए,
अज्ञानी के लिए
कयामत है ☐

[illegible]

आज पूजा है धन की, पाप की, फरेब की

आज पूजा हो रही है
यत्र-तत्र-सर्वत्र
धन की,
पाप की,
फरेब की,
पर्यायवाची हैं ये तीनों,
इन तीनों के मध्य है
एक अपवित्र गठबन्धन
ये एक-दूसरे को
दुलराते हैं,
थपथपाते हैं,
आगे बढ़ाते हैं।
एक के बिना दूसरे का
काम निकलता नहीं,
बिना आपसी सहयोग के
इनमें से कोई भी
आगे बढ़ता नहीं,
एक कदम भी खिसकता नहीं।
इनका रिश्ता अटूट है,
इन्हें हर तरह से छूट है।
संयम और अनुशासन से
इनका कोई नाता नहीं,
नैतिक मर्यादा का बज्रघोष
इन्हें जरा भी भाता नहीं।
एक बार भी
जो फॅस जाता है
इनके चक्कर में,
उसका इससे निकलना
हो जाता है मुश्किल
इनका फन्दा बहुत कड़ा है,
एक बार जो अड़ा सो अड़ा है,
फिर वह उसी में सड़ा है।
आज के मनुष्य का
हर काम,
चाहे वह प्रभु-पूजा का हो,
या धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय का,
अथवा दया का
दान का–
उन सबके पीछे
धन की लिप्सा है।
भगवान को बिठाना था
दिल में, हमें अपने
पर हमने उसे रख छोड़ा है
मन्दिर या देवालय में।
हम चढ़ाते हैं रोज-रोज अर्घ्य–
अक्षत का, दीप-धूप का,
करते हैं उसका वन्दन,
स्तवन और स्मरण,
किन्तु बनाए रखते हैं एक दूरी
अपनी
उससे हमेशा,
ताकि वह हमें रोक न सके,
धन-संग्रह से,
और उसके लिए कृत
पाप से, फरेब से।
भगवान को चिढ़ है
जिन-जिन चीजों से
हमें वही-वही प्रिय हैं।
फिर भी हम उसे पूजते हैं
इसलिए कि किसी का
ध्यान न जाए
हमारे पापों/फरेबों पर,
लोग हमें समझें धर्मात्मा,
पर क्या सचमुच हम ऐसे हैं?
क्या हम उसके गुणों को
उतारते हैं अपने जीवन में?
उत्तर है–'नहीं, नहीं, नहीं।
इसलिए कहता हूँ कि
आज पूजा है
धन की,
पाप की,
फरेब की।
प्रभु पूजा तो एक बहाना भर है
अपने ऐबों/ऐमालों को
छिपाने का,
दुनिया की नजरों में
अपनी विलुप्त साख को
बचाने का।

धन का, पाप का,
याकि फरेब का
यह आरोप,
केवल आरोप ही नहीं,
एक तथ्य है,
एक ऐसा तथ्य–
जो कटु है,
कड़ा है,
अप्रिय है।
क्या वह दिन कभी आएगा
जब हम छूटेंगे
या छूट पाएँगे–
बेइन्तहा धन-लिप्सा से,
पाप-प्रपंच से,
फरेब-फोबिया से,
अपनी असीमित और नापाक
आकांक्षाओं के जाल/जंजाल से।
समय के राजहंस सोचें
ऐसा कब होगा?
होगा भी या नहीं होगा?

□

जिस प्रकार उबलते हुए पानी में अपनी परछाईं नहीं दिखती, उसी प्रकार [illegible] के समय में [illegible] नहीं हो सकता तथा जिस प्रकार लोहे का गर्म गोला पानी को अपने भीतर सोख लेता है, उसी प्रकार [illegible]

आदमी हो, आदमी की तरह जीना जरा जानो

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
रोते हुए रिसना,
रिसते हुए रोना–
यह सदा से कायरों का काम है

रात-दिन आँसू बहाकर
शक्ति क्यों तुम हो गँवाते?
कसाई के शिकंजे में कसी उस
गाय से क्यों नित रँभाते?
अक्ल के तुम पूत हो
बुद्धि-कोष अकूत हो
जरा-सा झटका लगा
बस, रो दिए
ईश्वरी वरदान सारे
खो दिए
मिनमिनाना बकरियों को
भला लगता
हिनहिनाना घोड़ियों को
ठीक दिखता।
चिनचिनाना चिरैयों को
सही जँचता
तुम मनुज हो
तुम्हें शाभा नहीं देता
जन्तुओं की भाँति
रोना-चीखना।
खिलखिलाना
यह तुम्हारी शान है
हँसना, हँसाना
मनुज की पहचान है
जानवर हँसता हुआ
क्या कभी देखा गया है?
मौन हो चोटें सहे
नहीं 'उफ्' मुँह से कहे
ऐसा कहाँ लेखा गया है?

इन्सान ही बस
एक ऐसा जीव है
जो दुःखों में
आपत्तियों में
संकटों में कभी
बाजी नहीं है हारता
रहता सदा सप्राण है।
यह प्रकृति का पुतला
कहो, कितना विलक्षण है!
हँसो प्यारे
मुस्कराओ तो जरा
छँट जाय कुहरा
भागे जहाँ से
अब उदासी का अँधेरा
हो सुघड प्यारा-सलोना सवेरा

इधर देखो
यह अकेला
चतुर्दिक घिरा कांटों से
हँस रहा फिर भी
चेहरे पर नहीं कोई शिकन
पता इसको नहीं
मातम किसे कहते
नहीं शिकवा
शिकायत भी नहीं कोई
भले ही शूल इसको
दे रहे दिन-रात
पैनी-सी चुभन
इस फूल से कुछ सीखना
तुम धर्म अपना आज मानो
आदमी हो
आदमी की तरह
जीना जरा जानो।

□

क्षमा

क्षमा क्या है?
क्षमा एक सन्तुलन है,
जो स्थिर रखता है
आत्मा को
हानि-लाभ में
जय-पराजय में
सुख-दुःख में
जीवन-मरण में
उत्थान-पतन में।
क्षमा समत्व की सिद्धि है
क्षमा देवताओं की ऋद्धि है
क्षमाशील को दुनिया पूजती है
उसकी कीर्ति–
दिगृदिगन्त में गूँजती है।
क्षमा नाम धरती का
सहती है कितना
सबका भार
सबका बोझ,
वह रौंदी जाती है
पर कभी उफ् नहीं करती
ऐसी ही सहनशीलता का
नाम है क्षमा
जिसके पास क्षमा है
वह ऋषि है
नर-पुंगव है
नमनीय है
वन्दनीय है।

□

• [illegible]

राजनीति है जाला मकड़ी का

राजनीति से मुझे अरुचि है
राजनीति में नहीं
जरा भी मुझको रुचि है
राजनीति दलदल है
राजनीति कीचड़ है
जो भी उसमें घुसता है
फँस जाता है
धँस जाता है
सिर धुनता है
रोता है
पछताता है
आत्मीय गुणों की पूँजी को
वह रोज गँवाता है
अटकल से
तिकड़म से, माया से
सबको भरमाता है।

आज राजनीति है
नाम कलह का
नहीं सुलह का,
खुदगर्जी है आधार
आज की राजनीति का
स्वार्थ--नीति का
राजनीति है कारण
आकुलता का
व्याकुलता का
राजनीति है जाला मकड़ी का
जो भी उसमें घुसता है
फिर निकल नहीं पाता है।
अखबारों की खबरें पढ़कर
मेरा मन अब ऊब उठा है
टाँग घसीटी
उठा-पटक
निन्दा-स्तुति या
धौस-धपड़ की नृत्य-नाटिका
देख-देखकर
सदय कलेजा दहल उठा है
जनता हो या काँग्रेस हो
हो जनसंघ, साम्यवादी या
सबके सब कुर्सी के भूखे हैं
है नहीं किसी को प्रेम न्याय से
सत्ता के मद मे ये
शुचिता को भूल रहे हैं
आत्मघात की फॉसी पर
सब झूल रहे हैं
अब कोई ऐसी शक्ति उदित हो
जो इस दूषित राजनीति के
गन्दे-से वातायन को
साफ करे या
माफ करे
हम सबके सामूहिक पापों को
जिनका फल यह राजनीति है, पर,
क्या ऐसा हो पाएगा?
मन जब संशय से भरा हुआ है
तब, उत्तर कैसे मिल पाएगा?

□

महावीर और हम

महावीर ने
हमें सिखाया
निज आतम को
उजलाने का
महकाने का
तौर-तरीका
पर सीख सके
हम नहीं
आज तक
सदाचार से
संयम से
रहने-जीने का
सही सलीका
सयंम-सदाचार
या आत्मा की
जगर-मगर से
इस जग का/या
हम सब का
क्या लेना-देना
धँधा रहे सलामत
पैसे की हो आमद
यही इष्ट है
इसी भाव से
बड़े चाव से
महावीर को तस्वीरों से
सजी-सजाई
आइसक्रीम
मिठाई
ठेलों पर रख
बेच रहे हैं
खूब मुनाफा मिले
तिजोरी भरे
बस,
इसीलिए हम
घुटनों के बल
या साष्टांग लेटकर
शीश नवाकर
हाथ जोड़कर
छत्र चढ़ाकर
तरह-तरह से
उसे रिझाकर
सर्वज्ञदेव
अन्तर्यामी
त्रिभुवननामी
उस महावीर को
अपलक देख रहे हैं
उसकी जय-जय
बोल रहे हैं
धन
घर-द्वार
परिवार
महावीर ने
जो-जो छोड़ा
उस-उस को
हम जोड़ रहे हैं
संग्रह में
जो बाधक बनते
उनसे नाता तोड़ रहे हैं
पाप न हमको लग जाए
बस, इसीलिए हम
महावीर की, वर्द्धमान की
जय-जय बोल रहे हैं।

□

आदमी की तलाश

आज मुझे मिल गया
वह आदमी
जिसकी
हम सबको तलाश थी।
वह एक लाचार अपाहिज को
अपनी बॉह का सहारा देकर
सड़क पार करा रहा था
उसकी बोली में
मिश्री की मिठास थी
हँसी में थी फूलों की खुशबू
वह एक कस्बे में
एक कुटिया में रहता था
पेट भरने के लिए
मजदूरी करता था।
आवश्यकता भर पैसे
अपने पास रखता था
शेष को दुःखियो में
वितरित करता था
उसका बैंक-बैलेंस निल था
फिर भी मस्ती थी स्वभाव मे
ऑखों में थी चमक
दिल में थी
एक स्वाभिमानी की ठसक
मैं उससे मिला ही था
कि कमबख्त बच्चे ने
आवाज दी
और, मैं जग गया
मेरी ऑख खुल गई
अब मैं उसे फिर तलाश रहा हूँ
शायद मिल जाए कभी
कहीं किसी ठौर
तब पुनः आपको बताऊँगा
आपको उससे मिलाऊँगा।

□

[illegible] नहीं [illegible] सकते, उसी प्रकार [illegible] नहीं है।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन का 'चिन्तन-प्रवाह'

—प्राचार्य निहालचन्द जैन, बीना (म.प्र.)

विद्वत्प्रवर प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी, विगत 45 वर्षों से, अपने वाणी-सम्मोहन के कारण—प्रवचन/व्याख्यान-शैली के लिए विश्रुत हैं। प्रबुद्ध श्रोता हों या श्रमण-सन्त, पूरी तन्मयता से उन्हें सुनते हैं। उनका धारा प्रवाह और सन्दर्भित विषय पर व्याख्यान, विविध उद्धरणों/बोध-कथाओं या पौराणिक-प्रसंगों से ओतप्रोत होने के कारण, सभी को सहज/बोधगम्य बन जाता है। विषय का प्रस्तुतीकरण और भाषा का संयम इतना सधा हुआ होता है कि श्रोताओं में 'ऊब' का 'वाइरस' नहीं फैल पाता।

मुनिराजों/सन्तों के प्रवचनों में श्रद्धा तत्त्व प्रमुख रहता है। सन्त को सुनने की अपेक्षा उनके दर्शन-मात्र से, भक्तगण और श्रोता उपस्थिति दर्ज कराकर आशीर्वाद पा लेता है जबकि एक विद्वान, तभी अभिभूत कर पाता है, जब उसके वक्तृत्व में मौलिकता और शैली में नवीनता के साथ प्रज्ञा (ज्ञान) का सम्पुट समाहित हो, अन्यथा श्रोता ऊब से भरकर उसके व्याख्यान की समाप्ति की प्रतीक्षा, उसके प्रारम्भ होने के बाद से ही करने लगता है।

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी के प्रवचन/व्याख्यान में कभी 'ऊब' का वाइरस फैलते हुए नहीं देखा। उनकी तराशी गई शैली का मूल तत्त्व है—'चिन्तनशीलता'। चिन्तन जितना सुलझा हुआ हो, वाणी में प्रभावकता और मुग्धता उतनी ही होती है।

कतिपय विद्वान—तर्कसंगत और अच्छा बोलते हैं परन्तु उतने अच्छे शब्द-शिल्पी नहीं बन पाते, जबकि कतिपय विद्वान बहुत अच्छा लिखते हैं परन्तु अभिव्यक्ति में कमजोर होने से उतना अच्छा बोल नहीं पाते। परन्तु पं. नरेन्द्र प्रकाश जी ऐसे सधे/निर्भीक वक्ता और लेखक हैं कि सामयिक लेखन और प्रासंगिक-अभिव्यक्ति, दोनों विधाओं में सटीक और पारंगत हैं। उनके सम्पादकीय-लेखों की एक वृहत्तर विरासत इसकी गवाह है। उनके लेखन में भी कहीं मजबूरी या दवाब नहीं है।

अभी हाल में आपकी दो कृतियाँ प्रकाशित होकर चर्चित हुई हैं—पहली है—'चिन्तन-प्रवाह' और दूसरी है—'समय के शिलालेख' दोनों कृतियाँ उनके पत्रकार-व्यक्तित्व को मुखर करती हैं।

वस्तुतः नरेन्द्रप्रकाश की साहित्यिक-ऊर्बरता में, साहित्य-जगत के स्वनामधन्य दादा बनारसीदास चतुर्वेदी जी का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। जिनके पास बैठने और चर्चा करने का आपको सहज-सुयोग मिला। जब आप पी.डी. जैन कॉलेज में प्राचार्य थे, उस समय कॉलेज के उद्यान की महकती स्वच्छ वायु का सेवन करने के लिए वे प्रातः भ्रमण पर आते और प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी अपने नगर के गौरवमयी दादा जी की चर्चाओं और विचारों से लाभान्वित हो जाते। स्व. पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के संस्मरणकार और श्रेष्ठतम लेखक थे। पण्डित जी के कई संस्मरण प्राचार्य जी ने इस लेखक को सुनाकर भाव-विभोर किया।

इसके साथ ही, अपने समय के निष्णात विद्वान पं. श्यामसुन्दर दास शास्त्री फिरोजाबाद की एक विभूति रहे, जिनके प्रधान सम्पादकत्व में जैन गज़ट का स्वरूप परिमार्जित हुआ। पण्डित नरेन्द्र प्रकाश जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा और अभीक्ष्णक्षायोपशमिक-ज्ञान का पूरा उपयोग, उनके निर्देशन में जैन गज़ट के सम्पादक के रूप में किया। आज जैन गज़ट-प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन का पर्यायवाची बना हुआ है।

इस प्रकार दो व्यक्तित्वों की गहरी-छाप आपके गम्भीर व्यक्तित्व पर पड़ी। मूलतः आप एक शिक्षक हैं। जिससे आपकी अभिव्यक्ति और शब्द-शिल्पन, दोनों में ऐसी विशेषता है कि प्रभावित किए बिना नहीं रहती। आपके लेखन और व्याख्यान दोनों में एक रसमयता झलकती है, जो श्रोताओं और पाठकों को आत्मसात् करने की भावना स्वाभाविक रूप से, भर देती है।

समय के साथ उनके भीतर का शिक्षक-पत्रकार और सम्पादक के रूप में विकसित होता गया और उनकी चिन्तनशीलता 'सम्पादकीय-गुणवत्ता का आरोहण करने लगी। उनके चिन्तन-क्षैतिज पर, समसामयिकता के साथ-साथ निर्भीकता और

क्या हम पाप, विषमता, परपीड़न, अन्याय-अत्याचार, [illegible] हैं? [illegible]
निर्दोष हैं और न अपने को निर्दोष कहने की [illegible]

स्पष्टवादिता का सम्पुट भी जुड़ने लगा। समय की माँग ने उनसे जो लिखवाया उसे उन्होंने सम्पादकीय के माध्यम से लिखा और समाज की धड़कती नाड़ी के स्पन्दन का लेखा-जोखा भी खुले प्रवचन-मंचों से उद्‌घाटित किया।

जैन गज़ट—जैन समाज में एक विशिष्ट स्थान पाने वाला 'साप्ताहिक' पत्र है। प्राचार्य जी के सम्पादकत्व में, इसने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। कारण कि प्राचार्य जी के सम्पादकीय लेखों में कहीं भी असंगत समझौता—न सामाजिक विवादो से और न ही धार्मिक मान्यताओं से नहीं किया गया। श्रमण संस्था में पनप रहे शिथिलाचार को कतई प्रोत्साहन नहीं दिया।

आपके चिन्तन को इन तीन मौलिक गुणों ने ज्यादा मुखर किया है—

(1) सादगी और स्वाभिमान
(2) निर्लोभता
(3) स्पष्टवादिता (तोड़ने के लिए नहीं, अपितु जोड़ने के लिए)

इस सन्दर्भ में एक छोटा प्रसग है जब नीरज जैन सतना और आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सन्दर्भ में एक 'कनफ्लिक्सन' पैदा हुआ, उस समय नरेन्द्र प्रकाश जी ने सकारात्मक-मध्यस्थता की भूमिका अदा की। एक ओर उन्होंने समाज के उन उच्छृंखल-युवाओं की भर्त्सना की, जिन्होंने नीरज जी को ओछे शब्दों से भरे पत्र लिखे तो दूसरी ओर शान्ति और समन्वय से एक बड़े भाई के रूप में उन्हें सम्मान देकर सलाह भी दी और एक सुखद पटाक्षेप इसका किया।

सम्पादक—तत्कालीन समय की समस्याओं को रेखांकित करता है और यथोचित समाधान की दवा भी प्रस्तुत करता है।

'चिन्तन प्रवाह' और 'समय के शिलालेख'—आपकी ऐसी दो कृतियाँ हैं, जिनमें संकलित निबन्ध या तो जैन गज़ट के लिए सम्पादकीय लिखे गए या सेमीनारों/राष्ट्रीय संगोष्ठियों के लिए शोधालेख या विशेष धार्मिक महोत्सवों/आयोजनो में दिए गए व्याख्यानों की स्क्रिप्ट हैं।

इन सभी निबन्धों में विविधता होते हुए भी, जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक चिन्तन का एक सार्वभौमिक-फलक प्रतिबिम्बित है।

आपके चिन्तन में न कहीं दबाव है और न ही विरोधाभास। हॉं, निर्भीकता का एक जीवन-परिदृश्य अवश्य दिखाई देता है।

प्राचार्य जी की समालोच्य कृति 'चिन्तन प्रवाह' में उनके पूर्वोक्तगुणों का एक विहंगावलोकन है। इस निबन्ध सकलन में 41 निबन्ध हैं जो चार वर्गो में विभाजित किए गए हैं—

1. धर्म और दर्शन 2. श्रमणाचार 3. श्रावकाचार और 4. सामयिकी। इसके अतिरिक्त विविधा के अन्तर्गत, विचारों के मौक्तिक कण हैं, जो प्रवचनांश या लेखों के महत्त्वपूर्ण अंश ही हैं।

प्रथम उपखण्ड—धर्म और दर्शन के अन्तर्गत संकलित सात निबन्धों में तीन शोधालेख, उन संगोष्ठियों के हैं, जिनके संयोजक होने का सुयोग इन पंक्तियों के लेखक को रहा। (1) बीना में विज्ञान विचार संगोष्ठी सन् 1998 में मुनि श्री क्षमासागर जी के सान्निध्य में 'मनःशुद्धि' पर दिया गया प्रभावक व्याख्यान (2) अहमदाबाद में 'जैनधर्म सम्वर्द्धन विद्वत् संगोष्ठी सन् 2000 अक्टूबर में मुनि श्री प्रज्ञासागर जी सान्निध्य में' अनेकान्त की सामाजिक पृष्ठभूमि पर शोधालेख एवं (3) भोपाल में फरवरी 2000 में 'भक्तामर स्तोत्र पर आयोजित संगोष्ठी (मुनि श्री समतासागर मुनि श्री प्रमाण सागर जी की सन्निधि में) 'भक्तामर स्तोत्र' में अध्यात्म पर वाचित शोधालेख है।

द्वितीय उपखण्ड—श्रमणाचार में आठ निबन्ध संकलित हैं जो 1983 से 1994 के बीच जैनगज़ट में प्रकाशित सम्पादकीय हैं तथा साधु चर्या/कर्म और चरणानुयोग से सम्बन्धित हैं। इन निबन्धों में साधु संस्था में पनप रहे शिथिलाचार पर ऊहापोह है और यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस शिथिलाचार को हवा देने वाला श्रावक ही होता है, जो निजी स्वार्थपूर्ति

[illegible]

के लिए साधु को मूलाचार से हटकर कुछ मन्त्र/तन्त्र/माला-मुदरी आदि देने को प्रेरित करते हैं और साधु भी पूजता पाने का लोभसंवरण नहीं कर पाता।

इसके अन्तर्गत—एक भेंटवार्ता भी है जो बीना में डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया-विश्रुत वरेण्य मनीषी के बीच हुई थी जो दो विद्वानों के दृष्टिकोण का एक दस्तावेज़ है। प्राचार्य जी का मानना है कि साधु को चमत्कार के व्यामोह से बचना चाहिए। डॉ. कोठिया जी की वार्ता में एक बात निष्कर्ष के रूप में उभरी कि दि. साधु को ऐसे सभी प्रसंगों से बचना चाहिए, जिनपर लोगो को उंगली उठाने का अवसर मिले, जैसी कहावत है—'बद अच्छा बदनाम बुरा'। यदि साधु इस पंक्ति को आचरित कर ले तो शिथिलाचार की गुंजाइश अपने आप नहीं रहेगी। लौकिक सुख की कामना ही साधु के पापास्रव का कारण होती है।

मेरा भी विश्वास है कि साधु—समाज के लिए 'आदर्श' होता है। एक श्रावक की अपेक्षा एक साधु का कदाचरण ज्यादा घातक सिद्ध होता है क्योंकि पूरा समाज उससे जुड़ा होने से आन्दोलित होता है।

तीसरस खण्ड—श्रावकाचार के अन्तर्गत दस निबन्ध समायोजित हैं, जो जैन गज़ट के अलावा तीर्थंकर, प्राकृतविद्या आदि मानक मासिक पत्रों में प्रकाशित हुए हैं जिनमें समाज के जीर्णोद्धार की आवश्यकता पर बल दिया गया है। श्रावक—अपनी शक्ति का उपयोग—'राम' बनकर करे, रावण बनकर नहीं। श्रावक के बिगड़ते आहार पर चिन्ता व्यक्त करते हुए अहिंसा के आलोक में शाकाहार की सार्वभौमिकता और उसके महत्त्व को निरूपित किया गया है। अहिंसा जैनधर्म का प्राण है। श्रावकाचार की आधार शिला यही अहिंसा है। 'सर्वभूतेषु-संरक्षण' की कल्याणी भावना, अहिंसा के धरातल पर खड़ी है अतः इस उपखण्ड के अन्तर्गत व्रत, संयम, सदाचार, स्वमूल्यांकन जैसे लोकोत्तर गुणों का विवेचन इन निबन्धों में है।

सामयिकी के अन्तर्गत—प्राचार्य जी के समय-समय पर लिखे गए जैन गज़ट के सम्पादकीय हैं।

इस प्रकार लगभग 200 पृष्ठों से अधिक कलेवर वाली यह कृति प्राचार्य जी के चिन्तनशील व्यक्तित्व को मुखर करती है।

एक यक्ष प्रश्न के द्वारा कृतिकार ने समाज के परिप्रेक्ष्य में भविष्य के सामाजिक स्वरूप पर चिन्ता व्यक्त की है। समाज में अनेक प्रोजेक्ट चल रहे हैं, जिनमें भक्तों का करोड़ों रुपया लग रहा है—वह काला है या सफेद इसका कोई लेखा-जोखा नहीं।

दानवीर श्रावकों की बात तो छोडें, सन्त भी आत्म-प्रशंसा के वाइरस से नहीं बच पा रहे हैं। अब समाज/संस्था/तीर्थो की कमेटियों के चुनाव, शान्ति और सौजन्यता के दायरों को लाँघकर सत्ता/पद की होड़ में ओछे हथकण्डों को अपनाकर सम्पन्न होने लगे हैं। हमारा सामाजिक चिन्तन स्वस्थ और पारदर्शी बने।

युवाओं में जैन संस्कारों और संयम का हास दिख रहा है अस्तु समय की धड़कन को अनसुना नहीं किया जाना चाहिए, इस बात पर कृतिकार ने अपनी सोच पूरी निष्ठा से प्रस्तुत की है।

महोत्सव में जैन मंचों पर फिल्मी स्टाइल और धुनों में भैजनों की पैरोडी पर होनेवाले नृत्य वनाम डान्स-गरवा आदि को पुण्य पाने की भावना से जोड़कर देखा जाना और क्रान्ति के नाम पर साधु-आचरण में सब-कुछ जायज ठहराना, इस पर रोक लगानी चाहिए। महोत्सवों में विद्वानों के प्रवचन मात्र रस्म अदायगी के लिए होने लगे और मंहगे आर्केस्ट्रा/ख्यातिप्राप्त कलाकारों की भजन संध्याएँ तथा मनोरंजन के कार्यक्रम—जादू आदि से सस्ती वाह-वाही लूटना आयोजनकर्ताओं का शगल बन गया है इस पर पुनर्विचार किया जावे।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी विद्वत्ता और संयमाचरण की जुगलबन्दी से अध्यात्म का एक संगीत और महक बिखेरते रहें अस्तु उनके यशस्वी और दीर्घ-स्वस्थ जीवन की हार्दिक मगल कामना के साथ इस समीक्षात्मक आलेख को उपसंहारित करते हैं।

□

सदाचारी और सभ्य मनुष्य का तो बलवान होना अच्छा है, किन्तु दुराचारी और निर्बुद्धि मनुष्य का निर्बल होना ही ठीक है।

समय के शिलालेख : एक समीक्षात्मक अध्ययन

–डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन', श्री महावीरजी

'समय के शिलालेख' नाम से मैंने समझा था कि शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण अभिलेखों का संग्रह होगा किन्तु पुस्तक प्राप्ति के पश्चात् प्रमाणित हुआ कि प्रस्तुत रचना में प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन के वे लेख हैं जो समय के अनुकूल हैं तथा शिलालेखों के समान जिनकी असन्दिग्ध प्रामाणिकता है।

लेखक नरेन्द्र प्रकाश जैन के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में श्री 'सरल' जी लिखते हैं कि आपके प्रवचन तर्कपूर्ण, सिद्धान्तपूर्ण और गवेषणापूर्ण होते हैं। उच्च ग्रन्थों का तलस्पर्शी ज्ञान उनकी गिरा पर धरा मिल जाता है। जब वे साधु-सन्तों से मन्त्रणा करते हैं तो साधुओं को पूर्ण सचेत होकर वार्ता करते पाया गया है। वे प्रज्ञ, विज्ञ और विद्वत्प्रवर हैं। लेखक ने अपनी भावनाओं को स्व. श्री भगवत्स्वरूप जी 'भगवत्' की दो पंक्तियों द्वारा निम्न प्रकार व्यक्त किया है–

कर्मक्षेत्र में उतर रहा हूँ लेकर यह अभिलाषा।
समझ सके संगठन-शक्ति की, जनता अब परिभाषा ॥

पुस्तक का प्रकाशन श्री पण्डित हँसमुखजी के सुझाव पर श्री दिगम्बर जैन पंचायत, महावीर भवन ट्रस्ट, ए.टी. रोड गुवाहटी 781001 (असम) द्वारा किया गया है। मार्च 2003 में प्रकाशित यह रचना अवश्य पठनीय एवं संग्रहणीय है।

दौ सो चौबीस पृष्ठीय यह रचना तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग का शीर्षक है–साधक के पर्व। इस भाग में विभिन्न पर्वों की सामग्री बहत्तर पृष्ठों में दी गई है। सर्वप्रथम पर्व-तिथियों का महत्त्व दर्शाते हुए लेखक ने पर्व के दिनों में कषाओं की मन्दता में काल का निमित्त पाकर उसे कालमंगल संज्ञा दी है। लेखक ने पर्वों के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए लिखा है कि जैसे लोहे की पटरी रेल के चलने में सहायक है किन्तु रेल यदि चलना ही न चाहे तो वह उसे बलात् चला नहीं सकती, उसी प्रकार साधक के अष्टाह्निका, पर्यूषण, अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व-तिथियाँ धर्म-संचय में कारणभूत कही गई हैं, वे पापमल के निराकरण में सहायक हैं किन्तु यदि कोई पाप से बचना ही न चाहे तो उनकी ये कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। आत्मशुद्धि में पुरुषार्थ (उपादान शक्ति के जागरण) का महत्त्व सर्वोपरि है, अकेला निमित्त कार्यकारी नहीं है। आत्मशुद्धि कषायों के रहते कभी हो ही नहीं सकती। जहाँ कषाएँ हैं वहाँ सत्य और संयम की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं। पर्व जीने की कला सिखाते है।

नया वर्ष : नव संवत्सर लेख में शक सवत् की ऐतिहासिकता से पाठकों को परिचित कराते हुए शक संवत् का संचालन गौतमीपुत्र सातकर्णी शालिवाहन द्वारा ईसवी 79 में राजा नरवाहन की पराजय और शकों की विजय के उपलक्ष्य में हुआ बताया गया है। लेखक नए वर्ष का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से स्वीकारते हैं। उनकी इसमें भारतीय-संस्कृति के प्रति स्नेह-भावना प्रतिफलित होती है।

इस भाग का तीसरा लेख है–'महावीर जयन्ती'। इसमें लेखक के सार्वजनीन विचार आदरणीय हैं कि "सबके सुख में अपना सुख माननेवाले ही महावीर बन सकते हैं।" इस वाक्य से लेखक ने महावीर के हृदय की बात कह दी है। महावीर सम्बन्धी इतर विद्वानों के विचारों का भी लेखक ने अध्ययन किया है। वीरायतन काव्य की दो पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं–

बार-बार क्यों पोंछती, अरे लाल का गाल।
पगली यह पानी नहीं, यह कुण्डल की झाल ॥

[illegible]
[illegible]

श्रुतपंचमी : एक ज्ञान पर्व—लेख में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी तिथि में आचार्य श्री धरसेनस्वामी के तीर्थंकर कथित तत्त्वज्ञान को लिपिबद्ध कराने के विचारों का साकार होना बताया गया है। पुष्पदन्त और भूतबलि युगल शिष्यों ने इसी दिन शास्त्र रचना का कार्य पूर्ण किया था। इसीलिए यह तिथि श्रुतपंचमी के रूप में विख्यात है। लेखक का वर्तमान की परिस्थियों में स्वाध्याय के लिए शास्त्र का कसौटी पर कसकर ही चयन करना कथन उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके लिए उन्होंने निम्न श्लोक का उल्लेख किया है—

> **यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।**
> **तथैव शास्त्रं विदुषा परीक्ष्यते, श्रुतेनशीलेन तपोदयागुणैः ॥**

इस श्लोक में संकेत है कि जैसे स्वर्ण घिसकर, काटकर, तपाकर और पीटकर शुद्धाशुद्ध देखा जाता है ऐसे ही शास्त्र में चार बातें दृष्टव्य हैं—अबाधित कथन, शील-सदाचार की प्रतिष्ठा, ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के लिए तप का विधान तथा अहिंसामूलक दयागुण युक्त सन्मार्ग का निरूपण। पर्व सम्बन्धी सुझाव पठनीय और आचरणीय हैं।

वीरशासन-दिवस नामक लेख में इस पर्व की वह तिथि उल्लिखित है जिस दिन छियासठ दिन के मौन के बाद भगवान वीर वर्द्धमान की देशना सुनने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ था। वह दिन था श्रावण कृष्णा प्रतिपदा। कवि सोमठाकुर ने इस तिथि का इस प्रकार उल्लेख किया है—

> वह युगों की माँग थी, जब समय ने तुमको पुकारा,
> मास था श्रावण जगत में, बह रही थी तिमिर-धारा।
> क्यों न होता विश्व आलोकित तुम्हारे ज्योतिरथ से,
> कृष्णपक्षी प्रतिपदा को मौन टूटा था तुम्हारा ॥

इसी दिन धर्मतीर्थ का प्रवर्तन हुआ था। इसकी स्मृति में सर्वत्र सोल्लास श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को वीर शासन जयन्ती मनाई जाती है।

'रक्षाबन्धन' नामक लेख में रक्षाबन्धन की कथा को तीर्थंकर मल्लिनाथ के समय की बताकर लेखक की मान्यता है कि यहाँ रक्षा शब्द आत्मरक्षा तथा बन्धन शब्द नियमन अनुशासन या संयम की ओर इंगित कर रहा है। आत्महित इसी में है। रक्षापर्व पर आत्मावलोकन करे, शिथिलाचार से बचें। पर दोष दर्शन से आत्मदर्शन नहीं हो सकता और आत्मदर्शन बिना आत्मरक्षा सम्भव नहीं। खोखले जीवन से विराम लें। लेखक का सार्थक कथन है कि जैसे आकर्षक रंगों से रंजित किन्तु घुनी खोखली लाठी आत्मरक्षा में सहायक नहीं होती ऐसे ही भोग और कषायमय वैभव सम्पन्न जीवन जीने से आत्मरक्षा नहीं। करुणा, प्रेम, सद्भावना, वात्सल्यादि गुणों से उसे समृद्ध बनावें। अपनी आत्मा पर लगी कालिख को धोने में ही सार है।

पावन पर्यूषण पर्व को लेखक ने गुण-पूजा का पर्व कहा है। उनका कहना है—निरर्थक है वह पूजा, जो गुणों पर आश्रित नहीं। लेखक के विचार सर्वग्राह्य हैं। लेखक का प्यारा कथन है कि जिन मन्दिर के साथ मन-मन्दिर को भी बुहारो। प्रतिकूल परिस्थितियों में तटस्थभाव रखकर क्रोधादि कषायों और पंचेन्द्रिय विषयों को त्यागो, अकड़ें नहीं, विनम्र बने, करनी-कथनी समान हो, लोभ से बचें, हित-मित-प्रिय बोले, संयम धारें, अनशनादि तप से जड़ता त्यागें, लेना ही नहीं देना भी सीखें, देने में किसने कितना दिया महत्त्व की बात नहीं, महत्त्व तो कैसे और किसलिए दिया इसमें है, परिग्रह को दुःख

'बड़े भाग मानुष तन पावा' की सीख को ध्यान में रखते हुए आत्महित हमारा मुख्य लक्ष्य बन जाए, इसी में इस भव का गौरव है।

का कारण जानो, जीवन का सार ब्रह्मचर्य धारण करो, दृष्टि शरीर की ओर न कर आत्मा की ओर करो ताकि मन की प्रवृत्ति ध्यान, भजन और स्वाध्याय में हो सके। यह पर्व विकारों से मुक्ति का पर्व है। ईर्ष्या, द्वेष, असंयमादि त्यागें। लेखक के अनुसार पर्व एक बदलाव है, अशुभ से शुभ की ओर जाने का।

विजया-दशमी निबन्ध में सिद्ध किया गया है कि मनुष्य की भावना और परिस्थिति ही उसे अच्छा या बुरा बनाती है। लेखक का कहना है कि राम और रावण दोनों ही मनुष्य थे, लेकिन अपनी शक्ति के दुरुपयोग से रावण लोक में निन्दा का पात्र हुआ, जबकि श्रीराम ने अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सुयश प्राप्त किया। आज भी राम नाम आदर के साथ लिया जाता है। लेखक का चिन्तन सराहनीय है।

दीपावली- निबन्ध में लेखक ने लिखा है कि मनुष्य जीवन विकास के लिए मिला है, विनाश के लिए नहीं। दीपावली–आत्मा को परमात्मा बनने की ओर इंगित करती है। पुरुषार्थ से सब संभव है। महावीर पुरुषार्थी थे। कार्तिक के कृष्ण पक्ष की अमावस्था के अन्धकार में उनका निर्वाण हुआ था। देवों ने उनका निर्वाण महोत्सव मनाया था। जन-जन ने घी के दीप जलाकर हर्ष प्रकट किया था। आज भी ऐसा हो रहा है। लेखक की भावना है–जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना। अँधेरा मनों में कहीं रह न जाए ॥ **लक्ष्मी के उपासकों से** शीर्षक निबन्ध में बताया गया है कि दीपावली के दिन महावीर के प्रथम शिष्य गौतम-गणधर को बोधि (केवल ज्ञान) की प्राप्ति हुई थी। लेखक की भावना है कि दीपावली की रात ज्ञान-लक्ष्मी की पूजा होनी चाहिए। धन, पाप और फरेब तीनों को पर्यायवाची बताकर लेखक ने तीनों से निवृत्त होने का परामर्श दिया है।

प्रथम भाग का अन्तिम लेख है **होली : एक राष्ट्रव्यापी त्यौहार**। लेखक के अनुसार साधर्मीजनों के दर्द में हमदर्द बनना ही सही होली है। सन्त तिरुवल्लुवर के कथन का अपने कथन के सन्दर्भ में लेखक ने उल्लेख भी किया है–

प्रीतिं करोतु तादृशीं, यादृशी नीरपंकयोः।
सूर्येण शोषिते नीरे, पंकदेहो विदीर्यते ॥

अर्थात्–आपस में प्रेम ऐसा होना चाहिए कि जैसा पानी और कीचड़ में होता है। जब सूर्य अपनी प्रखर किरणों से पानी को सुखा देता है, तो कीचड़ की देह में दरारें पड़ जाती हैं। परस्पर में ऐसी प्रीति सराहनीय है।

पुस्तक का दूसरा भाग है–**समस्या और समाधान** : प्रस्तुत भाग में इस सदी की प्रमुख इक्कीस समस्याओं पर विचार करते हुए उपयुक्त समाधान सुझाए गए हैं। "आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाए" प्रस्तुत लेख के माध्यम से लेखक ने भावना व्यक्त की है कि गुमनाम पत्र नहीं लिखें और न व्यक्तिगत छींटाकशी करें। वादे वादे जायते तत्त्वबोधः की भावना से विषय को समझना और समझाना ठीक है, किन्तु लेखक हठाग्रह या दुराग्रह नहीं चाहते। वे मतभेद होना बुरा नहीं मानते हैं। लेखक के विचार से शास्त्रसम्मत ऊहापोह किया जावे किन्तु किसी पक्ष पर कटाक्ष न हो और न अपने विचार बलपूर्वक दूसरों पर थोपे जाएँ। विवाद या मतभेद प्रेम और सद्भाव से सुलझाएँ। सोमदेव सूरि ने ऐसी सम्पूर्ण लौकिक विधियों को प्रमाण कहा है, जिनसे उनके सम्यक्त्व या व्रतों में दोष न लगे–

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यकत्वहानि र्न यत्र न व्रत-दूषणम् ॥

शासनदेवी-देवताओं की पूजा नामक निबन्ध में पूजा के दो अर्थ बताए गए हैं–वन्दना और सत्कार। इनमें

[illegible]

वन्दना-समर्थक अर्थ देवतापूजा में अभिप्रेत नहीं है। देवों में श्रद्धा नहीं। श्रद्धान तो वीतराग परमेष्ठी के प्रति ही हो सकता है। स्व. पं. शीतलप्रसाद जी ने देवों को साधर्मी-समान मानने योग्य कहा है। स्व. प. मक्खनलाल जी शास्त्री के अनुसार राजा और भृत्य के सत्कार में जैसा अन्तर है, वैसा जिनेन्द्र और शासनदेवों के मध्य अन्तर मानना चाहिए। लेखक के अनुसार शासनदेव जिनशासन के सेवक हैं, स्वामी नहीं।

जाति व्यवस्था और सामाजिक संगठन- निबन्ध में जाति-व्यवस्था अनादिकालीन बताकर जातियों के नामों में परिवर्तन की सम्भावना व्यक्त की गई है। अमरकोश, मेदिनीकोश आदि के अनुसार सन्तति, गोत्र, कुल, वंश, अभिजन आदि शब्द जाति के पर्यायवाची बताए गए हैं। जैनदर्शन में सज्जातित्व प्रथम परम स्थान है। इसके बिना अन्तिम परम स्थान निर्वाण साध्य नहीं। लेखक ने 'मनुष्यजातिरेकैव' कथन को संग्रहनय की अपेक्षा से माना है। उनके अनुसार जाति व्यवस्था बुरी नहीं, जातिवाद बुरा है। जातिवाद अनुचित है।

विधवा विवाह आगमानुकूल नहीं शीर्षक लेख में इसे आगम सम्मत नहीं कहा गया है। वर्णी जी जैसे शास्त्रज्ञ सन्त ने भी इसे स्वीकार नहीं किया है। आदिपुराण में अर्ककीर्ति के सुलोचना के प्रति कथन से भी यही सिद्ध होता है।

एक ही पंथ : आगम पंथ लेख में बीसपंथ को कामदं और तेरहपंथ को मोक्षदं बताया है। दोनों की सैद्धान्तिक मान्यताएँ एक निरूपित हैं। दोनों नाम काल्पनिक कहे हैं। आगम में इन शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। लेखक के अनुसार जहाँ जैसी मान्यता हो, वहाँ उस तरह लोगों को करने देना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्न गाथा ध्यातव्य है-

जं सक्कइ तं कीरइ, जं पुण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावई अजरामरं ठाणं ॥

नग्न मुनि एवं भट्टारक शीर्षक लेख में मुनि को भट्टारक नहीं बनना उचित ठहराया गया है। **जैन बनाम हिन्दू:** लेख में लेखक ने धर्म की अपेक्षा जैनों को हिन्दू नहीं माना है। जिन जातियों और जिन धर्मो की जन्मभूमि भारतवर्ष है वे सब जातियाँ और धर्म हिन्दू शब्द के वाच्य अर्थ में समाहित हो जाते हैं। स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी कृति भारत की खोज में ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं-"जैनधर्म यथार्थ में वैदिक या हिन्दू धर्म नहीं है, यद्यपि उसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई और वह भारतीय जीवन, संस्कृति तथा तत्त्वज्ञान का मुख्य अंग है। धर्म की दृष्टि से जैनधर्म हिन्दूधर्म नहीं है।

कानजीपंथ का विरोध क्यों? निबन्ध में विरोध के कारणों में सूर्यकीर्ति नामक कपोल कल्पित नए तीर्थंकर की सृष्टि, व्रती बनने की प्रेरणा का अभाव, क्रमबद्ध पर्याय सिद्धान्त की उत्पत्ति, एकान्त का पोषण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

एकान्तवाद के प्रति महासभा की नीति नामक निबन्ध में एकान्तवादियों की-एक दृष्टि को सर्वथा भूतार्थ और दूसरी दृष्टि को सर्वथा अभूतार्थ मानने का विरोध करते हुए महासभा जैनागम में कथित निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियों को अपेक्षाभेद से कथंचित् भूतार्थ कथंचित् अभूतार्थ मानती है जो आगम सम्मत है। महासभा की मन्दिरों, मूर्तियों, सन्तों और आगमग्रन्थों सम्बन्धी सुरक्षा करने की नीति सराहनीय है।

जातिस्मरण-ज्ञान या दिवा स्वप्न? लेख में चम्पा बहिन के जातिस्मरणों को आगमवाणी और आप्तवचन मानकर भित्तियों पर उत्कीर्ण करने को लेखक ने उचित नहीं कहा है। **धन्य अवतार : एक समीक्षा** लेख में बहिन श्री चम्पाबेन के लिए कहे गए उद्गारों के प्रति लेखक ने असहमति व्यक्त कर यथार्थता प्रकट की है।

जीव दया, सम्यक्त्व और ज्ञान की आराधना, दान तथा परोपकार से जीवन मंगलमय बनता है। अपनी शिक्षा-बुद्धि, धन-वैभव और शारीरिक बल का सदुपयोग जो ऐसे अच्छे कार्यों में करता है, वह [illegible] [illegible] है।

'एक रास्ता यह भी' नामक लेखक में उपर्युक्त विचार व्यक्त किए गए हैं कि संस्थाएँ चलानेवाले राग से बच नहीं सकते। सहज ज्ञाता दृष्टा बने रहना ही अध्यात्म की चरम उपलब्धि है। दिगम्बरत्व की सुरक्षा दिगम्बरों से ही होगी, अम्बरधारकों से नहीं। आज जरूरत पक्के जैनों की नहीं सच्चे जैनों की है।

'भूलेश्वर में एक अटपटी खटपट' नामक लेख में बताया गया है कि अपने स्वामित्व के लिए लोग कैसे-कैसे कार्य करने में भी नहीं चूकते। विद्वान् होना अलग है, जरूरी नहीं वह स्वामित्व लोभ का संवरण कर सके। यथार्थ में यह तो विवेकहीनता है। विद्वानों को निज विवेक का उपयोग करना चाहिए।

'जो भी करो दिल से करो' शीर्षक लेख में प्रदर्शन से दर्शन की ओर लौटने की ओर संकेत है। दिखावटी मुनिभक्ति ठीक नहीं। साधु निन्दा भी सराहनीय नहीं है। मत ठुकराओ, गले लगाओ आदर्श नीति है। सन्तों के जीवन से सन्त-पथ पर यथाशक्ति चलने की प्रेरणा लेना चाहिए।

'आइए, हम ऐसा कुछ करें' लेख में लेखक ने नैतिक बात कही है कि "जब अव्रती गृहस्थ को आध्यात्मिक, सत्पुरुष एवं परमपूज्य गुरुदेव जैसे विशेषणों का यदि प्रयोग कर सकते हैं, फिर मुनियों को ऐसा कहने में संकोच क्यों? यथार्थ में व्रती सभी के लिए आदरणीय है।

अंकलीकर-प्रकरण नामक लेख में तीन आचार्य परम्पराएँ मिलती हैं–1. श्री आदिसागर जी अंकलीकर, 2. श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) 3. श्री शान्तिसागर जी छाणी। इनमें सर्वाधिक प्रभावक साधु होने से आचार्य शान्तिसागर जी महाराज निर्विवाद रूप से सर्वोच्च माने गए हैं। ये पहले हुए या बाद में यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं है। पर वह एक उत्कृष्ट संत थे, यह बात लेखक ने भी स्वीकार की है।

आचार्य शान्तिसागर एवं सन्त अंकलीकर लेख में मुनि आदिसागर अंकलीकर को समकालीन प्रकाशनों में अचर्चित बताया है तथा कहा गया है कि स्व. श्री आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ने यदि उनसे मुनि दीक्षा न ली होती तो शायद आज उन्हें कोई जानता भी नहीं। मुनि के रूप में वे श्री शान्तिसागर जी से पूर्ववर्ती थे, किन्तु श्री शान्तिसागर जी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व बेजोड़ रहा। यही कारण है उन्हें इस सदी का युग प्रवर्त्तक स्वीकार कर लिया गया है।

सन्तों की जन्मभूमियों के दर्शन : निबन्ध में धर्मनगर, कुंजवन, उदगांव, अंकलीगांव, भोजगांव और सदलगा ग्रामों का परिचय देकर सदलगा को प्रसिद्ध जैन साहित्य सेवी डॉ. एन.एन. उपाध्ये की जन्मस्थली बताया गया है। प्राचार्य जी की यह सूझ-बूझ आदरणीय है।

जनगणना और जैन लेख में जन्मना जैनों को स्वयं को जैन मानने और जनगणना में स्वयं को जैन लिखाने का परामर्श देकर लेखक ने जैनों का उपकार किया है। जनगणना-प्रकरण लेख में जैन दो प्रकार के बताए हैं–जन्मना और कर्मणा। लेखक की सुन्दर भावना है कि कोई भी जैन हो जनगणना के समय स्वयं को जैन लिखाना उसका राष्ट्रीय कर्तव्य है। लेखक का मत आदरणीय है कि जो व्यक्ति जिन, जिनागम और जिनमुद्रा में श्रद्धा या आस्था रखता है, वह जैन है। जन्मना या कर्मणा जैन का विवाद निरर्थक है।

पुस्तक के पृष्ठ 207 से पुस्तक का तीसरा भाग–**'अंकुर आनन्द के'** आरम्भ हुआ है। इसमें सत्रह विषय समाहित हैं। **अभिवन्दन** शीर्षक में आचार्य विद्यानन्द को नमन किया गया है। **'वह लाजवाब है'** शीर्षक रचना में आचार्य विद्यासागर

[illegible]

को कहा गया है—वह मुनिगण-मुकुट है, उसका कोई जबाव नहीं, वह सैकड़ों में अकेला है, अलबेला है, उसकी कोई जोड़ नहीं, वह तो बस वह ही है। **मैं कौन हूँ** रचना में चर्म चक्षुओं से जो दिखता है, उसे असार, नश्वर तथा ज्ञान चक्षुओं/हिये की आँखों से जो दिखता उसे शाश्वत् बताया गया है। **जो सम्यक् हो, सही हो, उसमें रचो-पचो** शीर्षक रचना में लेखक के विचार आदरणीय हैं। उनका कहना है—"विचारों में जो अच्छा हो उसे स्वीकारो, जो बुरा हो उसे बुहारो।" आत्मालोचन रचना में परछिद्रान्वेषण हेय और स्वदोष दर्शन को उपादेय कहा गया है। **'साल पुराना गया'** रचना में आगत तूफानों से जूझने का हौंसला रखने का परामर्श विद्यमान है। वे सब खुश हैं—रचना में चरित्र के मरण पर काले धनवालों को प्रसन्न और गरीब, श्रमशील लोगों को अप्रसन्न बताकर वर्तमान स्थिति पर अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। **सुन्दरता** रचना में रचनाकार के अनुसार—सुन्दरता नियामत है, ज्ञानी के लिए, अज्ञानी के लिए कयामत है। इसमें लेखक की गम्भीरता का बोध होता है। आज पूजा है, धन की, पाप की, फरेब की प्रस्तुत रचना में पूजा को पाप का आवरण बताकर और विलुप्त साख को बचाने का उपाय कहकर वर्तमान पर करारी चोट की है। त्याग नामक रचना में मलिनता को धोने, विकारों को दूर करने में त्याग को आग की उपमा दी है।

'आदमी हो, आदमी की तरह जीना जरा जानो' रचना में कसाई के शिकंजे में कसी गाय और बकरी के समान रंभानें, मिमयाने अर्थात् रोने-धोने में आदमी की शोभा नहीं, हँसना-हँसाना आदमी की पहिचान है। इस रचना में पुरुष को पुरुषार्थ करने का संकेत है। क्षमा रचना में कहा गया है—क्षमा समत्त्व की सिद्धि है, क्षमा देवताओं की ऋद्धि है, सहनशीलता का नाम है क्षमा।

'राजनीति है जाला मकड़ी का' रचना में राजनीति से निकल सकना कठिन बताकर कहा गया है कि इसमें न्याय-नीति से प्रेम न होकर कुर्सी से होता है। राजनीति में कलह, सुलह नहीं। **महावीर और हम** शीर्षक क्षणिकाओं में वर्तमान के भक्तों की स्थिति दर्शाई गई है कि वे "महावीर ने जो छोड़ा है उसे ग्रहण कर रहे हैं। पाप न लगे इसीलिए उनकी जय बोल रहे हैं। एक ऐसा ही व्यंग्य" **'आदमी की तलाश'** रचना में है जिसमें स्वप्न में देखे गए परोपकारी, निर्लोभी व्यक्ति की नींद खुलने के बाद तलाश दर्शाई गई है तथा आशा की गई है कि शायद वह कहीं किसी ठौर मिल जाए। पुस्तक समापन मंगलभावना से हुआ है।

निबन्धों के पश्चात् रिक्त स्थानों में भैया भगवतीदास पं. दौलतराम, कवि बुधजन, कवि वृन्दावन, द्यानतराय तथा पं. भूधरदास के भजनों से पुस्तक को जनोपयोगी बनाया गया है। सभी निबन्ध जैन गजट में प्रकाशित हैं किन्तु पुस्तक रूप में संकलित हो जाने से समय-समय पर उनका अध्ययन करने में सुविधा होगी।

लेखक प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी की लेखनी से प्रसूत ये लेख समन्वय भावना के प्रतीक हैं। समाज को दिशाबोध भी प्राप्त होता है। मंगलभावना से समन्वित लेखों में धर्म और दर्शन की भी चर्चा है। भाई प्राचार्य जी के विचार समन्वयवादी होने से वे जन-जन के लिए हैं। सदाचरणशील तो हैं ही, स्नेहागार भी हैं वे। विद्वज्जनों के तो परम हितैषी हैं। उनके दीर्घायुष्य की मैं वीर प्रभु से कामना करता हूँ।

□

जिन कार्यों की चरणानुयोग में आज्ञा नहीं है, उन संबंधी [illegible] शिथिलाचार में होती है।

'चिन्तन प्रवाह' में सामाजिक चेतना

–डॉ. संगीता दिलीप मेहता, इन्दौर (म.प्र.)

भारतीय संस्कृति के गौरव, जैन संस्कृति के उन्नायक, सारस्वत मनीषी प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जी जैन, भारतीय समाज के सजग प्रहरी हैं। उनकी ओजस्विनी वाणी और ऊर्जस्वित् लेखनी में साक्षात् सरस्वती विराजमान दृष्टिगत होती है। उनके विचारों में अनुभव की गहराई है तो अभिव्यक्ति में दृढ़ता और सच्चाई है। वाणी और व्यवहार की एकरूपता के कारण वे आज महापुरुषों में अग्रगण्य और अभिनन्दनीय हैं।

अद्वितीय मेधा का नवनीत उनके विविध आलेखों में प्राप्त होता है। नीर-क्षीर-विवेकी उनकी हंस दृष्टि ने समाज को पारदर्शिता दी है। उनका 'चिन्तन-प्रवाह' जीवन सरिता के तटों को उर्वर संस्कारों से निरन्तर सिंचित, पुष्पित और पल्लवित कर रहा है। उनका लेखन प्रत्यक्ष जीवन से जुड़ा है। उन्होंने जहाँ एक ओर व्यक्ति को अन्तरंग विकास का मार्ग सुझाया तो दूसरी ओर स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए उनमें व्याप्त कुरीतियों पर तीखी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। एक ओर साम्प्रदायिक सद्भाव को आवश्यक बताया तो दूसरी ओर राजनेताओं पर भी तीव्र कटाक्ष किए। भारतीय संस्कृति में सात्विकता और आध्यात्मिकता के दर्शन किए तो दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव/प्रहार की निन्दा के स्वर भी मुखरित किए हैं।

जैन दर्शन के वृहत् स्वरूप को लघुकथा लेखों, छोटे-छोटे वाक्यों में जीवन से जुड़े उदाहरणों के माध्यम से हृदयंगम बना दिया है। उनके समग्र चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है—मनःशुद्धि, आत्मशुद्धि। जिसके द्वारा समाज के सभी अंगों को कर्त्तव्य बोध कराते हुए परिशोधन और परिमार्जन की दिशा दी है। उनके 'चिन्तन प्रवाह' के कुछ प्रेरक अंश दृष्टव्य है।

मनःशुद्धि आत्मशुद्धि

- मन की मलिनता का दूसरा नाम कषाय है। कषाय के रहते आत्मा कभी शुद्ध नहीं हो सकती। अतः प्रथम कार्य है कषाय मुक्ति। कषाय के रहते हुए न कभी मन स्वस्थ हो सकता है और न आत्मा पवित्र।
- लोहे की पटरी रेल के चलने में सहायक है किन्तु रेल यदि चलना ही नहीं चाहे तो वह उसे बलात् चला नहीं सकती, उसी प्रकार पर्व-तिथियाँ भी पाप-मल के निराकरण में सहायक हैं, किन्तु कोई यदि पाप स बचना ही न चाहे तो उनकी ये कुछ भी सहायता नहीं कर सकतीं। आत्मशुद्धि में पुरुषार्थ (उपादान शक्ति के जागरण) का महत्त्व सर्वोपरि है। अकेला निमित्त कार्यकारी नहीं है।
- आत्मा अपनी है और शरीर पर या पड़ोसी है।

आचरण

- जैसे जल के बिना कुएँ का, सुगन्ध के बिना पुष्प का और मूर्ति के बिना मन्दिर का कोई महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार संयम-सदाचार के बिना मानव-जीवन निरर्थक है। यह मानव-शरीर एक ऐसे रथ के समान है, जिसमें इन्द्रियरूपी पाँच घोड़े जुते हुए हैं। मन उसका सारथी है। यदि वह संयमित और सन्तुलित है तो रथ को सही मार्ग पर ले जाएगा, अन्यथा विषयासक्त चित्ता तो हमेशा कुमार्गगामी ही होता है।
- **सत्वेषु मैत्री** का पाठ शब्दों से नहीं आचरण से दुहराना होगा।
- **परोपदेशक** ढोल की तरह होते हैं और **सदाचारी** होते हैं पुष्प की सुगन्ध की तरह।
- आज हम सब दूसरों को प्रभावित करने में तो लगे हैं, किन्तु स्वयं को थोड़ा-सा भी संस्कारित नहीं करना चाहते। हम लोग धन के बल पर दिखाई देनेवाली चमक-दमक को ही प्रभावना मान लेते हैं और यह भूल जाते हैं कि प्रभावना धन से नहीं, आचरण से होती है।

सम्यग्ज्ञान और साधुओं की प्राप्ति तथा जन्म-मरण से मुक्ति के लिए दीक्षा धारण की जाती है।

- आज दर्शन ने दूरदर्शन का, ज्ञान ने विज्ञान या अज्ञान का तथा चरित्र ने भोगविलास का बाना धारण कर लिया है। आध्यात्मिक जीवन जीने वाले भी रत्नत्रय का निर्दोष-निरतिचार पालन कहाँ कर पा रहे हैं?
- समृद्धि में **दान** देने का उतना महत्व नहीं है जितना दारिद्रय में थोड़ा भी दान देना गौरवपूर्ण है।
- **अहिंसा**, जो सदा-सर्वदा, क्षण-प्रतिक्षण पालनीय-आचरणीय थी, उसे हमने उपदेश की वस्तुमात्र बनाकर रख छोड़ा है। अहिंसा अब शास्त्रों के पन्नों में कैद होकर रह गई है। ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों की सहायता से हम उसे सभा-सम्मेलनों में जोर-शोर से उछालते हैं। हम दूसरों को तो अहिंसक देखना चाहते हैं किन्तु रोज-रोज अपने द्वारा होनेवाली हिंसा को प्रायः अनदेखा करते रहते हैं।
- अहिंसा आत्मा की खुराक है और रोटी शरीर की।
- **शाकाहार का वर्णाश्रित अर्थ** कुछ इस प्रकार होगा **'शा'** से शान्ति, **'का'** से कारक, **'हा'** से हानि और **'र'** से रहित अर्थात् शान्तिकारक हानिरहित आहार। शाकाहार से केवल माँस-मछली-अण्डा खाने का निषेध ही नहीं होता, बल्कि अन्याय-उत्पीड़न और अनाचार से रहित पुरुषार्थ की प्रेरणा भी मिलती है। शाकाहार में सम्पूर्ण श्रावकाचार गर्भित है। वह संयमित और सन्तुलित जीवनचर्या का प्रतीक है।

समाज–

- **साधु और गृहस्थ** समाज सरिता के दो कूल हैं। दोनों तटों की सुरक्षा से ही धर्म रक्षा सम्भव है।
- साधु का जीवन अध्यात्म की प्रयोगशाला है।
- जो साधु निरन्तर ज्ञान-ध्यान और तप में अनुरक्त रहते हैं, वही सच्चे सन्त हैं। हमारे सभी प्राचीन आचार्य एवं साधुवृन्द अपनी विकसित ज्ञान-साधना तथा कालजयी रचनाओं के कारण ही आज हजारों वर्षों के बाद भी स्मरण किए जाते हैं।
- मुनि होकर विपरीत आचरण अक्षम्य अपराध है। झूठी प्रशंसा या वाहवाही के चक्कर में पड़कर भीड़ें जुटाना साधु-मार्ग नहीं है। मन्त्र-तन्त्र के व्यामोह में पड़ना भी साधु के लिए उचित नहीं। जब धर्म पर कोई संकट उपस्थित हो जाए, तब ही बात अलग है।
- गुरुमुख से उपदेश सुनकर जो विचारपूर्वक आचरण करता है, वास्तव में वह है **श्रावक!** एक आदर्श श्रावक में श्रद्धा, विवेक और आचरण का संगम दृष्टिगत होना चाहिए।
- मुनियों की निन्दा करने से पूर्व स्वयं मुनि बनने और मुनियों को उत्पन्न करने की क्षमता प्रदर्शित करें। ऐसा यदि सम्भव न हो तो जो मुनि बन गए हैं, उन्हें पूरा आदर दें।
- **विद्वान्** समाज के मार्गदर्शक होते हैं। आगम के आलोक में जीवन जीने की प्रेरणा लोगों को उन्हीं से मिलती है। विद्वान् की सुरक्षा में ही समाज की श्री-वृद्धि है। जब विद्वानों का अभाव हो जाता है, तब सामाजिक गौरव की भी क्षति होती देखी जाती है।
- कवि सम्मेलन में फूहड़ और अश्लील कविता सुनाने वालों को **समाज** हजारों रुपए भेंट में दे देता है, किन्तु जिनवाणी-प्रचारक को किराया मात्र देते समय भी आयोजक मुख पर प्रसन्नता का भाव नहीं पाया जाता।
- **वृद्धों** की युक्ति और **युवकों** की शक्ति के समन्वय में ही समस्याओं से मुक्ति सम्भव है। एक पीढ़ी के पास होश है तो दूसरी के पास जोश। एक पीढ़ी क्रियाकाण्ड-प्रिय है तो दूसरी पीढ़ी तर्कप्रखर है। आज का युवक तर्क और विज्ञानसम्मत आधार पर ही अपनी कोई मान्यता बनाता है। उस पर विचार थोपने की कोशिश की जाती है तो वह बगावत करने लगता है। प्यार से उससे कितना ही काम ले लो, आदेश मानने को यह तैयार नहीं होता। आखिर तो वीर बाहुबली का रक्त उसकी रगों में बह रहा है।

एक सद्गृहस्थ वह है, जो अपने कर्तव्य का पालन करता है। कर्तव्यपालन ही धर्म है।

- एक विधवा के जीवन की सारी उमंगे तथा खुशियाँ तब समाप्त हो जाती हैं, जब दुनिया उसे अपशगुन मानती हैं। **विधवाओं के प्रति प्रेम और सम्मान** का भाव रखते हुए उन्हें आत्मकल्याण के मार्ग पर कदम बढ़ाने की प्रेरणा देना ही एक मात्र सही उपाय है। मनुष्य भव की सार्थकता केवल विषय-भोग-सेवन में नहीं, बल्कि उससे मुक्त होने में है।

सामाजिक कुरीतियों पर आक्षेप–

- **दहेज** की माँग भी एक पाप है, जो परिग्रह की श्रेणी में आता है और उसके पीछे होती है तीव्र लोभ कषाय। विवाह-सरीखे मंगलमय संस्कार को मोल-भाव की तराजू पर रखकर बाजारू बना देने में कौन-सी शान है? कन्या के उत्तम गुणों से बढ़कर दहेज और क्या हो सकता है? जो व्यक्ति अपने पुत्रों का विवाह तय करते समय दहेज नहीं माँगते, वे भी धर्मात्मा हैं। आत्मोद्धार के मार्ग में दहेज माँगने का त्याग भी व्रतों की श्रेणी में रख दिया जाना चाहिए।
- आयोजकों की दृष्टि केवल इस बात पर रहती है कि कौन कितना पैसा खर्च कर सकता है। धन को महिमामण्डित करने से गुणों की उपेक्षा हुई है और इस कारण **पंचकल्याण** प्रतिष्ठाओं की गरिमा में निरन्तर गिरावट आती जा रही है। प्रतिष्ठाओं में सादगी अपेक्षित है। प्रदर्शन या दिखावे से अहकार का पोषण तो हो सकता है, किन्तु मनःशक्ति और आत्मलाभ प्राप्त नहीं हो सकता।
- मजा-मौज की रजनीशी दुनिया मनोरंजन की चीज हो सकती है, आत्मविकास की नहीं। असंयम से बढ़कर **पाखण्ड** और क्या हो सकता है?
- दिगम्बर जैन समाज को खतरा तो दिगम्बरों के वेश में छिपे गैर-दिगम्बरियों की करतूतों से ही होगा। शरीर की क्रिया को जड़ की क्रिया कहकर भोग का ही समर्थन किया जा रहा है। **संयम और व्रत चारित्र** की उपेक्षा भी पाखण्ड ही है। जो मुनि बनना तो दूर, अपने जीवन में श्रावक तक नहीं बना सके–ऐसे नामधारी स्वामी और भगवतियों से सावधानी अपेक्षित है।

साम्प्रदायिक सद्भाव–

- घृणा और विद्वेष विष बीज हैं जो सृष्टि में कड़वाहट घोलते हैं। प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना चाहिए। 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे'।
- इस्लाम धर्म भी बेगुनाहों के कत्लेआम की इजाजत नहीं देता है वह कहता है–'खुदा (परमात्मा) सारे खल्क (दुनिया) का खालिक (पिता) है और सभी इन्सान उसके बन्दे (बेटे) हैं। तो क्या एक पिता अपने बेटों को आपस में लड़ने या मारने का हुक्म दे सकता है? हर्गिज नहीं, कभी नहीं।'
- क्या साम्प्रदायिकता पर इससे भी तीखा व्यंग्य कोई और हो सकता है? वैसे भी हिन्दू और मुसलमान का कर्म, पहनावा, खानपान, भाषा और पूजा या इबादत का तरीका अलग-अलग हो सकता है, लेकिन उनकी भूख, गरीबी, आँसू और मुस्कान में कोई अन्तर नहीं हो सकता। एक हिन्दू बेटे या एक मुसलमान बेटे के मरने पर उनकी माताओं की आँखों से गिरनेवाले आँसुओं में फर्क करना मुमकिन नहीं है। इस आन्तरिक एकता और सचाई के पानी से ही इस साम्प्रदायिक आग को बुझाया जा सकता है। मौत तो मौत है, वह चाहे हिन्दू की हो या मुसलमान की, उसका सदमा सबको होता है और सदमें की कोई जाति नहीं होती।

राजनीति पर कटाक्ष

- आज की राजनीति तो क्षुद्र स्वार्थो पर टिकी है और उसका केवल एक ही लक्ष्य रह गया है, येन केन प्रकारेण हिन्दू और मुसलमानों अथवा सवर्ण और असवर्णो के वोटों को अपनी झोली में डालना। लोगों को आपस

साधु-संगति से ही सज्जन और सदाचारी नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त होगा।

में लड़ाकर या उनमें परस्पर घृणा उत्पन्न कर ही यह लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है और यही आज के राजनीतिज्ञ कर रहे हैं। लोग मरें या जिएँ, इनसे इनका कुछ भी सरोकार नहीं है।

- इस घृणा या विद्वेष रूपी राक्षस की अनेक शक्लें हैं। पहले जमाने में ये राक्षस चन्द धर्मान्ध लोगों के मनों में पलते थे, आज ये स्वार्थी राजनीतिज्ञों का सहारा हैं। इनसे सावधान रहने की आवश्यकता है।
- कत्लखानों की बढ़ती संख्या के पीछे विदेशी मुद्रा की कमाई का नापाक सरकारी इरादा ही तो है। सरकार के सामने **माँस-निर्यात** की क्या बाध्यता है? क्या हमने बाहर के मुल्कों को अपना पशुधन काटकर खिलाने का ठेका ले लिया है? यह चिन्तनीय व हृदयद्रावक स्थिति है, जिस पर तुरन्त विचार होना चाहिए।
- कत्लखानों के लिए नित नए-नए लायसेंस देकर क्या हमारे देश की सरकार हमारी पावन संस्कृति को ही तहस-नहस करने का कुचक्र नहीं रच रही है?

भारतीय संस्कृति–

- पश्चिमी देशों की उत्सवप्रियता शारीरिक सुख, इन्द्रिय-विलास और राग-रंग के साधनों के जुटाने तक ही सिमटी हुई है, जबकि भारतीय संस्कृति में हर उत्सव के पीछे एक उच्चकोटि की आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। हमारे यहाँ मनोरंजन का कतई महत्त्व नहीं है, साथ में आत्मरंजन भी होना चाहिए।
- संस्कारित एवं व्यसनमुक्त जीवन-शैली के बिना निर्मल चेतना का अनावरण नहीं हो सकता।

धर्म और विज्ञान

- बाह्य जगत की खोज को विज्ञान और अन्तर्जगत के शोध को धर्म कहते हैं। विज्ञान की खोज यदि परमाणु है तो धर्म की खोज परमात्मा है।
- धर्म को विज्ञान की और विज्ञान को धर्म की कसौटी पर कसते रहना चाहिए। विज्ञान मानव-जीवन के लिए कल्याणकारक है। विज्ञान ने विनाश के साधन भी दिए हैं, किन्तु धर्म जीव को हमेशा अभ्युदय की ओर ले जाता है। जहाँ विज्ञान एक अपूर्ण धर्म है, वहीं धर्म एक सम्पूर्ण विज्ञान है।

अनेकान्त

- किसी जिज्ञासु ने एक सन्त से पूछा, "मनुष्य का बलवान होना अच्छा है या निर्बल होना?" छोटा-सा और सरल-सा प्रश्न था, किन्तु सन्त का उत्तर कुछ गूढ़-सा था। उन्होंने अनेकान्त शैली में कहा, "आदमी का बलवान होना भी अच्छा है और निर्बल होना भी।" जिज्ञासु ने जब कहा कि मुझे तो एक उत्तर मिलना चाहिए तो सन्त बोले कि इस प्रश्न का एक उत्तर तो हो ही नहीं सकता। सदाचारी और सभ्य मनुष्य का तो बलवान होना अच्छा है, किन्तु दुराचारी और निर्गुण मनुष्य का निर्बल होना ही ठीक है। बल अपने आप में न तो अच्छा होता है और न बुरा। मनुष्य की भावना और परिस्थिति ही उसे अच्छा या बुरा बनाती है। बल या शक्ति से किसी को परेशान कर उसे रुलाया भी जा सकता है और उसी बल से किसी असहाय अनाथ के आँसू भी पोंछे जा सकते हैं।

एक नया भाषा-शिल्प, नया युगबोध, घटना-प्रधान दैनिक जीवन को प्रभावित करनेवाले दृष्टान्त और मनोवैज्ञानिक शैली–ये सब विशेषताएँ प्राचार्य जी के लेखन, भाषण और प्रवचनों में हैं। एक ही कथन में दो विरोधी धाराओं को सोदाहरण प्रस्तुत कर देना उनकी अपनी विशेषता है।

इस ग्रन्थ में प्राचार्य जी की भाषा सहज और बोधगम्य है। छोटे-छोटे चुटीले संवादों से उन्होंने जीवन की गहराइयों

को व्यक्त करा दिया है। बुराइयों पर करारा व्यंग्य किया है और कहीं-कहीं व्यक्ति और समाज की अस्मिता के लिए अनेक प्रश्न भी खड़े किए हैं, जो पाठक और श्रोता को कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं। उनकी वाणी और लेखन ओज गुणमण्डित है। उसमें अर्थ–गौरव है, **गागर में सागर समाहित करने की अद्भुत क्षमता है।** विविध विषयों का गहन अध्ययन उनके लेखन में परिलक्षित होता है। भावों और विचारों की प्रस्तुति या पुष्टि में पूर्वापर शास्त्रीय, आगमिक, पौराणिक और साहित्यिक प्रसंग भी विद्यमान हैं। महर्षियों, मनीषियों, आचार्यों, पैगम्बर, ईसा मसीह और गौतम आदि के कथनों को भी यत्र-तत्र समाविष्ट किया है।

वाणी भूषण, विद्या वाचस्पति, समाज विभूषण, व्याख्यान केसरी, सिद्धान्तरत्न आदि मानद उपाधियों से सुशोभित नवनवोन्मेष प्रतिभाशाली, नीति-विशारद पं. नरेन्द्रप्रकाश जैन विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। 71वें वसन्त में मंगल प्रवेश के अवसर पर हमारी शुभाकांक्षा है कि वे स्वस्थ, प्रसन्न और शतायु रहें। उनका सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निरन्तर उर्ध्वगामी बने और वे अपने ज्ञान के प्रकाश से जन-जन का पथ आलोकित करते रहें।

□

प्राचार्य जी का काव्य जगत्

–डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली (उ.प्र.)

एक समर्थ साहित्यकार समय के धरातल पर अपने ऐसे पदचिह्न छोड़ जाता है, जिन पर आगे आनेवाली पीढ़ियाँ चलती हैं और 'स्वान्तः सुखाय' लिखकर आनन्दानुभूति करती हैं। नई-नई कल्पनाएँ नई-नई उद्भावनाएँ घटनाओं के नए-नए प्रतीक ढूँढ़ना साहित्यकार का धर्म ही नहीं कर्म होना चाहिए। धर्म और अध्यात्म से जुड़े साहित्यकार की रचनाओं में तो शान्ति-सुधा की धारा बहना और भी आवश्यक है। प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी ऐसे ही साहित्यकार हैं जो उक्त कसौटियों पर सदा खरे उतरे हैं। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् उनकी रचनाओं का वक्ष है और अध्यात्म उनके रचना-मन्दिर का कलश। जैन पर्व-घटनाओं के जो प्रतीक उन्होंने ढूँढ़े हैं, वे ही उनकी कीर्ति-कौमुदी को दिग्दिगन्त-व्यापिनी बनाने में समर्थ हैं। चाहे सम्पादकीय हो, कोई शोध लेख हो, साक्षात्कार हो या घटना विशेष का जिक्र, उनके कल्पनाधर्मी स्वभाव ने कभी विराम नहीं लिया। सर्वत्र लीक से हटकर उनका चिन्तन हमें दिखाई देता है। सच है लीक पर तो सभी चलते हैं, लीक बनाना कठिन है।

प्राचार्य जी का जीवन-दर्शन, चिन्तन, अभिव्यक्ति और सृजन जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, समाज इतिहास, संस्कृति से ओतप्रोत रहा है। जैन अध्यात्म और दर्शन उनकी साँसों में बसा है। उन्होंने स्वतन्त्र रूप में पुस्तकों की रचना की तो छोटे-छोटे ट्रैक्ट्स भी लिखे। जहाँ अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों/स्मृति ग्रन्थों का सम्पादन किया, वहीं समाचार पत्रों के सम्पादकीय अग्रलेख भी लिखे। यद्यपि अनेक जैन पत्रों के सम्पादक मण्डलों से वे जुड़े रहे, उन मण्डलों में भी उनका नाम प्रथम पंक्तिेय रहा किन्तु पिछले लगभग दो दशकों से वे और 'जैन गजट' एकाकार हो गए हैं। यदि यह कहें कि 'प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश का अर्थ है जैन गजट' और जैन गजट का अर्थ है 'प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश' तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अनन्वय अलंकार की भाषा में कहें तो प्राचार्य जी ही उपमेय हैं और वही उपमान–'प्राचार्य जी प्राचार्यजीवत् हैं।' अपनी कृतियों में नई-नई उद्भावनाएँ/कल्पनाएँ, वह भी सिद्धान्त से विरोध न करनेवाली, प्राचार्य जी ने की हैं। तीर्थंकर भगवान् के गर्भ में आने से छह महीने पहले से नगरी में रत्नवृष्टि होती है। प्राचार्य जी का

विद्यार्थी-जीवन तो स्वाध्याय का काल है-आत्महित, विनय का परिपालन, वात्सल्य और प्रभावना।

सोच है—'ऐसा होना असम्भव नहीं है। जब किसी के जीवन में लगातार मुसीबतें ही मुसीबतें आती हैं तो लोग पूछने लगते हैं कि जब तुम माता के पेट में थे, तब क्या धरती पर पथरा (ओले) पड़े थे। यदि पाप कर्म के उदय में ओले पड़ सकते हैं तो लोकोत्तम तीर्थंकर कर्मप्रकृति के उदय में रत्न बरसना भी सम्भव है। महावीर का जीव स्वर्ग से आनेवाला था। छह माह पूर्व देवताओं के गले की माला मुरझाने लगती है। उससे यह सबको ज्ञात हो जाता है कि इस जीव की आयु समाप्त होनेवाली है। यद्यपि जिस देव का जीव तीर्थंकर होनेवाला है, उसकी माला नहीं मुरझाती किन्तु छह माह पूर्व अन्य देवों की तरह आयु-बन्ध तो उसका भी होता ही है। देवताओं को अवधिज्ञान तो होता ही है। उससे उन्होंने यह भी जान लिया होगा कि हमारे इस साथी का जन्म अब कुण्डलपुर में होनेवाला है। हो सकता है कि उसके जन्म से पूर्व उन्होंने छह माह पूर्व से वहाँ रत्नवृष्टि करना शुरू कर दिया हो। जिस जीव को जहाँ रहना होता है, वहाँ का वातावरण यदि अच्छा नहीं हुआ तो वह जीव सुखी नहीं रह सकता। जहाँ चारों ओर हाहाकार मचा हो, पड़ौसी चीख-पुकार कर रहे हों, वहाँ भला कौन चैन से रह सकता है। बालक महावीर के पूर्व भव के साथियों (देवताओं) ने यही सब सोचकर स्नेहवश कुण्डलपुर के वातावरण को सुखमय बना दिया था।

(जैन गजट, 14 अप्रैल, 1994)

दूसरों द्वारा की गई नवीन उद्भावनाओं को स्वीकार करने में प्राचार्य जी को कोई हिचक नहीं होती। इस सन्दर्भ में दो उदाहरण हैं—माता के शुभ स्वप्न दर्शन के सन्दर्भ में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज कहा करते थे मन में जैसे विचार होते हैं, वैसे ही स्वप्न दिखाई देते हैं। प्राचार्य जी ने जैन सन्देश 14 अप्रैल, 1994 के अंक में आचार्य श्री को उद्धृत किया है—'मनी बसे स्वप्ने दिसे।' इसी अंक में जिन बालक के अप्रतिम सौन्दर्य-वर्णन के प्रसंग में प्राचार्य जी ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार वीरायन के लेखक श्री रघुवीरशरण 'मित्र' को उद्धृत किया है—

'बार-बार क्यों पोंछती अरे लाल का गाल।
पगली यह पानी नहीं, यह कुण्डल की झाल ॥'

दीपावली के दिन भगवान् महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ था। लोगों ने घी के दीपक जलाए थे। प्राचार्य जी की उद्भावना है—"भगवान् महावीर ने आज के दिन निर्वाण प्राप्त किया था। वह तो अध्यात्म-सूर्य थे। सूर्य के विदा होने पर लोग दीपक का प्रकाश करते ही हैं। उनके मुक्त होने पर भी देवों और मनुष्यों ने घर-घर व डगर-डगर को दीप पंक्तियों से सजा दिया था। तभी से दीपावली की परम्परा चली आ रही है, किन्तु मिट्टी का दिया जो प्रतीक मात्र है। ऋषियों का इशारा तो ज्ञान-दीप प्रकाशित करने की ओर है।" (समय के शिलालेख, पृष्ठ 62)

होली पर्व के सम्बन्ध में प्राचार्य जी की कल्पना दृष्टव्य है—"होली दहन तो प्रतीक है। उसके पीछे उद्देश्य तो दोष-दहन का होना चाहिए। होली के ढेर पर हमें लकड़ियाँ नहीं, अपने क्रोध या प्रतिशोध की भावना को जलाना है।" आगे वे कविता के अन्दाज में लिखते हैं—

'खुशियों से
द्वेष गल जाए
प्यार महक उठे
दिल चहक उठे
मनाओ इस तरह
होली का त्योहार।'

(जैन गजट 16 मार्च, 1995)

साहित्यकार का धर्म विवादों का वपन नहीं, शमन होना चाहिए। प्राचार्य जी इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। 'शासन

मनुष्य पर्याय पाकर हमें उसका सदुपयोग अपनी भोगेच्छाओं और कषायों पर विजय पाने में करना चाहिये।

देवी-देवताओं की पूजा' जैन धर्म में काफी समय से विवाद का विषय रहा है। वे इस विवाद में पड़ना चाहते, फिर भी बिना लाग-लपेट के अपने सीधे विचार पाठकों को परोसते हैं। जैन गजट 4/3/1986 में वे लिखते हैं–

"साधर्मी का सम्मान करना कोई गुनाह नहीं है। धरणेन्द्र, पद्मावती, चक्रेश्वरी, क्षेत्रपालादि शासनदेव धर्म, धर्मात्मा और धर्मायतनों के रक्षक के रूप में चर्चित हैं। राजकुमार नमि-विनमि, महासती सीता, जीवन्धरकुमार, धन्यकुमार, अनन्तमती, तपस्वी पार्श्वनाथ, सुदर्शन सेठ, स्वामी समन्तभद्र, पात्रकेसरी, विद्यानन्दि, आचार्य मानतुंग, श्रीभद् भट्टाकलंकदेव, वादिराज सूरि आदि के जीवन-प्रसंगों में इन देवों आदि के द्वारा की गई सहायता-वार्ता पुराण-प्रसिद्ध है। प्रथमानुयोग ऐसे प्रसंगों से भरा पड़ा है। ऐसे धर्मबुद्धि शासनदेवों को साधर्मी मानकर आदर देना सम्यग्दर्शन के वात्सल्य अंग का ही परिचायक है। शासन देवों को आदर देने से सम्यक्त्व दूषित हो जाएगा, ऐसी कल्पना ही हास्यास्पद है। धर्मात्माओं की पूजा-प्रशंसा करना शास्त्रानुमोदित है। पं. सदासुखलाल जी ने विनय सम्पन्नता भावना का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'अपमान तो किसी भी जीव का नहीं करना चाहिए। दूसरों को सम्मान देनेवाला स्वयं सम्मान पाता है। जो दूसरों का अपमान करता है वह स्वयं भी अपमानित होता है। अपमान तो मिथ्यादृष्टि का भी नहीं करना चाहिए। एक सद् गृहस्थ के लिए परमार्थ विनय और व्यवहार विनय दोनों का ही निर्वाह करना उचित है।

प्राचार्य जी ने समय-समय पर काव्यानन्द के सागर में भी पाठकों को स्नान कराया है। वे तुकान्त और अतुकान्त दोनों तरह की काव्य-रचना में सिद्धहस्त हैं। अपने मर्म को उन्होंने इन कविताओं में उड़ेल दिया है। जब वे बोलते या लिखते हैं तो वाणी उनकी चेरी बन जाती है। प्राचार्य जी की दृष्टि में कविता का उद्देश्य मानवता को जीवन्त और हरा-भरा बनाए रखना है। 'अंकुर आनन्द के' शीर्षक से उनकी कुछ कविताओं का संकलन 'समय के शिलालेख' में प्रकाशित हुआ है। कविता के सम्बन्ध में उनके विचार हैं–

'हर कोई कवि नहीं होता किन्तु कविता के अंकुर सबके भीतर हो सकते हैं। चित्त जब आनन्द से भरा होता है, तब शब्द अंकुर बनकर कागज पर उतरने को मचल उठते हैं। उद्देश्य अंकुर का भी वही होता है, जो कविता का होता है–'मानवता को जीवन्त और हरा-भरा बनाए रखना।'

प्राचार्य जी की कविताओं में भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष अपने यौवनमय रूप में उतरा है। अलंकार युक्त भाषा का प्रयोग उनकी विशेषता है। यद्यपि उनकी कविताएँ प्रबन्ध रूप में नहीं हैं, फिर भी समग्र कविताओं की दृष्टि से उनका प्रधान रस अध्यात्म-मिश्रित शान्त है।

भाषात्मक दृष्टि से देखें तो प्राचार्य जी के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता एकदम प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। उनका भाव किसी विशेष भाषा के विशेष शब्द की प्रतीक्षा नहीं करता। जिस शब्द से उनका पूरा कथ्य प्रकट होता हो, वैसा ही शब्द वे प्रयोग करके आगे बढ़ जाते हैं। एकदम प्रचलित प्रयोग के कारण उनकी भाषा पैनी बन गई है। बिहारी के शब्दों में उनके शब्द–'देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर।' यहाँ कुछ शब्द उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं–'फरिश्ता, एलर्जी, डगर-डगर, थपथपाते, हौंसला, लग्जरीज, डनलप, फरेब-फोबिया, जिन्दादिली, मिनमिनाना, हिनहिनाना, चिनचिनाना, शान, नमनीय, शिकन, शुचिता, टाँगघसीटी, आइसक्रीम, उजलाने, महकाने, सलीका, बैंक-बैलेन्स, लाजबाव आदि।

कहीं-कहीं प्राचार्य जी की कविता रहस्यवादी बन जाती है। 'वह लाजबाव है' शीर्षक कविता मे वे लिखते हैं–

'वह मुनिगण मुकुट है
उसका कोई जवाब नहीं
वह सैकड़ों में अकेला है
अलबेला है

संयम धारण करने में ही मानव जीवन की शोभा और सफलता है। असंयम ही शक्ति का दुरुपयोग है।

उसका कोई जोड़ नहीं
वह तो बस वह ही है।'

अध्यात्मपरक एक और कविता दृष्ट्व्य है–

आओ लगाओ गोते
अध्यात्म के अतल सागर में
लाओ ढूँढ़ ढूँढ़कर
वेशकीमती मोती
उसकी मूर्तियाँ गढ़ते-गढ़वाते हैं
मन्दिर बना-बनाकर
उनमें उन्हें पधराते हैं
बदले में नाना उपाधियाँ पाते हैं
किन्तु यह जाने बिना कि
वह ईश्वर कोई और नहीं
मैं ही तो हूँ।

उसी को खोजो
उसकी खोज ही अपनी खोज है
खोजनेवाला है मैं
एक ही है, अलग नहीं ('मैं कौन हूँ' से)

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं प्राचार्य जी के साहित्य का अंगी रस अध्यात्म-मिश्रित शान्त है। अन्य रसों का बहुत कम परिपाक हुआ है। कुछ उदाहरण हैं–

'वह आलोक-पुंज है
ज्ञान-दीप है
ज्योति-पुरुष है
विराजी रहती है प्रतिक्षण
उसके चेहरे पर
एक निर्मल-निश्छल मुस्कान
उसकी हर छवि है अम्लान
उसका नहीं है जबाव
वह है लाजबाव'
('वह लाजबाव है' से)

त्याग एक आग है
जो खान से निकले
मलिन स्वर्ण को
शुद्ध बनाती है
विकारी आदमी को
बुद्ध बनाती है' ('त्याग' से)

'रत्नत्रय से पावन जिसका
यह औदारिक तन है
गुप्ति-समिति-अनुप्रेक्षा में रत
रहता निशदिन मन है
सन्मति युग के ऋषि-सा जिसका
बीत रहा हर क्षण है
त्याग-तपस्या लीन यती यह
प्रवचन कला प्रवण है।' ('नमन' से)

'आइए
आज क्षमावाणी के इस
पावन पर्व पर
हम संकल्प लें
कि हम जूझेंगे
अपनी ही कमियों से
स्वयं को सँवारेंगे
बिना दूसरों को बिगाड़े हुए' ('आत्मालोचन' से)

अलंकारों में प्राचार्य जी के प्रिय अलंकार अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा हैं। अन्य अलंकारों की इन्द्रधुनषी छटा भी यत्र-तत्र दिखाई देती है। कुछ उदाहरण हैं–

अनुप्रास–

वह भला है
भोला है
भद्र भावों से भरा है

उपमा–

ज्योतिकिरण से उज्ज्वल
महिमापूर्ण विचार
आलोकित करते हैं
मानव के अन्तर को
('जो सम्यक् हो, सही हो, उसमें रचो-पचो' से)

उत्प्रेक्षा–

चरित्र की बात करो
तो लगता है मानो
किसी मृतक की पुण्यतिथि पर
कर रहा हो याद उसकी
('वे सब खुश हैं' से)

यदि जीवन में, परिवार में या समाज में हम सुख-शान्ति चाहते हैं तो धर्म को अपने मन में स्थान देना होगा।

रूपक–

हौंसला वह संजीवनी है,
प्राण-सुधा है,
जो करती है संचार
एक अदम्य जिजीविषा का ('साल पुराना गया' से)

समय के राजहंस सोचें
ऐसा कब होगा
होगा भी या नहीं होगा ('आज पूजा है...' से)

मानवीकरण–

चरित्र कैंसर-ग्रस्त हो गया है
हमारे यहाँ के महन्तों ने
महात्माओं ने
तथाकथित नेताओं ने
भरपूर कोशिश की
उसे जिलाने की
बचाने की
परन्तु उसकी हालत
बिगड़ती गई
और एक दिन
वह मर गया ('वे सब खुश हैं' से)

अनन्वय–

उसका कोई जोड़ नहीं
वह तो बस वह ही है ('वह लाजबाव है' से)

और अन्त में 'प्राचार्य जी जैसे साहित्यकार लोक को क्या कहना चाहते हैं?' इस प्रश्न के उत्तर के साथ इस निबन्ध का समापन करना चाहेंगे। प्राचार्य जी के एक साक्षात्कार से तीन प्रश्न और उनके उत्तर यहॉ प्रस्तुत हैं, जिनमें प्राचार्य जी का जीवन-दर्शन झलकता है–उनसे पूछा गया–

प्रश्न–जीवन के सबसे सुखद क्षण?

उत्तर–जब हमारे हाथों में किसी महापुरुष की जीवनी या संस्मरण की पुस्तक होती है।

प्रश्न–सीख, जो नई पीढ़ी को देना चाहेंगे?

उत्तर–आयु, विद्या, यश और बल में जो बड़े हैं, उनके प्रति विनम्र व्यवहार।

प्रश्न–किसी मनीषी का कोई वाक्य जो आपको सर्वाधिक अच्छा लगा हो?

उत्तर–'उन्नतं मानसं यस्य भाग्य तस्य समुन्नतम्'

(चिन्तन-प्रवाह, पृष्ठ 206-207)

'हमारा भाग्य भी समुन्नत बने, हमारा मानस समुन्नत बने' इस मंगलभावना के साथ।

□



(जैन सरस्वती, लाडनूं)

पंचम खण्ड

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख जैन मनीषी

गुजरात के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

– डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद

गुजरात भारत वर्ष का आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से समृद्ध प्रदेश माना जाता है। पर प्राचीन या यों कहें प्राग् ऐतिहासिक काल से भी उसका मूर्धन्य स्थान व योगदान रहा है। चौबीस तीर्थंकरों में से 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के तीन-तीन कल्याणकों की भूमि होने का पुण्य उसे प्राप्त है। राजुल की पलकों पर बँधे अश्रु-तोरण आज भी आँखों को छलका देते हैं तो पशुओं की चीत्कार, जिसने नेमि का मन ही बदल दिया उस करुण क्रन्दन और उनको मिला अभयदान, आज भी अहिंसा और करुणा के गीत मुखरित करता है। नारायण कृष्ण का द्वारिका में राज्य करना एक सुनहरा पृष्ठ है।

जैन धर्म के महान ग्रंथ षट्खंडागम का प्रादुर्भाव इसी गुजरात की गिरनार व अंकलेश्वर की धरती पर हुआ। इसी गिरनार पर आ. कुन्दकुन्द ने विवाद द्वारा विजय प्राप्त की। गुजरात के बंदरगाह सुदूर विश्व के साथ व्यापार से जुड़े थे जो संस्कृति के भी प्रचारक रहे।

महात्मा गांधी जैसे अहिंसा के पुजारी, देश के उद्धारक इसी गुजरात की भूमि के सपूत थे। देश को अखडिता के सूत्र में पिरोने वाले सरदार बल्लभभाई पटेल चिर स्मरणीय रहेंगे। इसी धरा पर नरसिंह मेहता, श्री हेमचन्द्राचार्य, यशोविजय जी जैसे मुनि पुंगवों ने जैन धर्म की ध्वजा फहराई। गुजरात के तत्कालीन नरेश कुमारपाल ने तो आचार्य हेमचन्द्राचार्य की प्रेरणा से पूरे राज्य में आमारि घोषणा कर अहिंसा का शंखनाद फूंका था। यही गुजरात है जहाँ श्रीमद् राजचंद के उपदेश गूँजे थे। उनकी साधना सिद्ध हुई थी। मीरा के भजनों की स्वरलहरी यहीं गूंजी थी। गुजरात की यशोगाथा उसके तीर्थ, उसका साहित्य सभी में आज भी विद्यमान है।

हमारे इस लेख का अभिप्रेत उन आर्ष परंपरा के दिगंबर विद्वानों से है जिनके द्वारा रचित साहित्य, पत्रकारिता, प्रवचन आदि के कारण यह प्रदेश भी धर्म का प्रचारक-प्रसारक रहा है। हमने इस लेख में मुनिराज, क्षुल्लक, विद्वानों का साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया है, जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया है।

(1) पं. श्री मनहरभाई शाह (मुनि श्री कीर्तिधरनन्दी) : मूलतः भावनगर में जन्मे श्री मनहरभाई शाह का जीवन प्रारंभ से ही धर्ममय रहा। वे कपडे के व्यापार के साथ धर्म का अध्ययन करते रहे और अपने विचारों को लेखों के रूप में अभिव्यक्त भी करते रहे। वे स्वयं गुजराती भाषा-भाषी थे पर हिन्दी में लिखना उनका शौक रहा। गृहस्थ जीवन से वैराग्य होने पर आपने ग. आ. कुन्थुसागरजी से दीक्षा ली और मुनि कीर्तिधरनंदी के नाम से जाने गये। चारित्रपालन में अति दृढ, ओजस्वी वक्ता अहिंसा के प्रचार-प्रसार में दिन-रात लगे रहे। आपने अहिंसा के प्रचार के लिए अनेक होर्डिंग बोर्ड्स व पर्चे छपवाये। चारित्र के साथ लेखन का कार्य भी वृद्धिंगत होता रहा, और आपने लगभग बीस पुस्तकों की रचना की जो हिन्दी-गुजराती में है। उनमें– जीयो और जीने दो, धर्म ध्यान का स्वरूप, आत्मदर्पण, मानव मुकुट, नग्नता एवं केशलुंच, संस्कार (ये सभी गुजराती में मौलिक या अनुवाद हैं)

हिन्दी में मानवता का मूल शाकाहार, मानव धर्म प्राणिमात्र पर दया, मानवता का आधार होता है शाकाहार, दया ही धर्म है, मेरी राष्ट्र भावना, समयसार दोहन, त्रियोग से समाधि, मुक्ति का मार्ग रत्नत्रय, वैय्यावृत्ति : स्वकीय और परकीय, तथा मुनियों के प्रति श्रावकों के कर्तव्य कृतियाँ है।

(2) पं. कपिलभाई कोटड़िया (क्षु. चित्तसागरजी) : आपका गृहस्थावस्था का नाम श्री कपिलभाई कोटड़िया था। आप एडवोकेट थे और हिम्मतनगर के प्रसिद्ध वकील, समाजसेवी एवं राजकीय नेता थे। अनेक प्रतिष्ठित पदों पर काम किया, धार्मिक संस्कार दिन-प्रतिदिन दृढ़ होते गये और आप अपने विचारों को लेखों द्वारा व्यक्त करते रहे जो अनेक जैन-जैनेतर पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। आपकी लगभग 50 कृतियाँ दि. जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई हैं। इनमे

[illegible]

मौलिक व अनुवाद सम्मिलित है। मुख्य कृतियों में, सद्विचारोंनु उपवन, तरणतारण, आध्यात्म सरिता, अजब-गजब, जय गोमटेश, आगम दर्पण आदि मुख्य हैं। (सभी गुजराती में)

आपने 'जैन शासन' गुजराती मासिक पत्र का सात वर्ष तक सफलता पूर्वक प्रकाशन व संपादन किया था। आप पर पू. स्व. क्षु. सहजानंदजी वर्णी का महत्तम प्रभाव था। उनकी अनेक पुस्तकों के अनुवाद भी किये थे। प्रखर चिंतक, स्पष्ट और कुशल वक्ता मुनि धर्म के चुस्त पालक थे।

(3) ब्र. पं. मूलशंकर जी : जन्म राजकोट में हुआ। आपने ग्रंथों का अनुवाद व संपादन किया था। राजकोट में रहकर सोनगढ़ की आंधी को दीवार बनकर रोके रहे। आर्ष परंपरा की ज्योति को जलाये रहे। यद्यपि मुझे 1965-66 के दौरान राजकोट में उनसे चार-पाँच बार मिलने का एवं चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

(4) डॉ. सोनेजी : आज गुजरात जिन पर गर्व कर सकता है। वैसे गृहस्थ जीवन में डॉ. सोनेजी के नाम से प्रसिद्ध और अब आत्मानंदजी के नाम से विश्व में प्रसिद्ध विद्वान हैं। इंग्लैण्ड से FRCS की पदवी प्राप्त डॉ. सोनेजी ने अहमदाबाद में उच्च कोटि के डॉक्टर के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। अतिव्यस्तता में भी सरस्वती का स्रोत बहता ही रहा और उससे सरस्वती का प्रकटीकरण प्रवचनों और लेखों के द्वारा होता रहा। व्यवसाय में भी करुणापूर्ण व्यवहार रहा। वही व्यवसाय त्यागने के पश्चात अधिक मृदुल होता गया। श्रीमद् राजचंद्रजी के परम अनुयायी स्वामीजी ने दिगम्बर शास्त्रों का आद्योपान्त स्वाध्याय, मनन, चिंतन और जीवन में उतारने का कार्य किया है। आप सांगोपांग सरस्वती के पर्याय ही बन गये है। हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में आपने रचनायें प्रस्तुत की हैं।

हिन्दी में :– आध्यात्म ज्ञान प्रवेशिका, चारित्र सुवास

गुजराती में :– चारित्र सुवास, आपणो संस्कार वारसो, योग स्वास्थाय अने मानव मूल्यो, तीर्थ सौरभ, श्रीमद् राजचंद्रजी जीवन साधना, अर्वाचीन जैन ज्योतिर्धरो, साधक साथी, साधना सोपान, संस्कार, जीव विज्ञान अने अध्यात्म, अध्यात्म ज्ञान प्रवेशिका, अध्यात्म तत्व प्रश्नोत्तरी, बोधसार, साधक भावना, अध्यात्मना पंथे, रत्नकरण्ड श्रावकाचार (अनुवाद चार भाषा), वारस अणुवेख्खा (अनुवाद चार भाषा), दैनिक भक्ति क्रम, भक्ति मार्गनी आराधना

English :- Aspirants Guide, Adhyatma gyan, praveshika, Prayer and its power, Jain approach to self realization, Our culture heritage

इसके उपरान्त आपके संपादकत्व में दिव्य ध्वनि (गुजराती मासिक) प्रकाशित हो रहा है। इसके उपरान्त आपके मार्गदर्शन में अनेक विशेषांक प्रकाशित हुए हैं–विश्व धर्म परिषद शताब्दि विशेषांक, रजत जयंति विशेषांक, विद्या भक्ति आनंद प्रतिष्ठा विशेषांक, महावीर प्रभु विशेषांक, आ. श्री समन्तभद्र विशेषांक एवं पू. गणेशप्रसादजी वर्णी विशेषांक आपकी साहित्य साधना के प्रतिबिम्ब हैं।

उपरोक्त मुनि, क्षुल्लक एवं महान साधक के साहित्य के पश्चात अब विद्वानों के साहित्य का परिचय प्रस्तुत है।

(5) पं. मूलचन्द किशनदास कापड़िया : गुजरात में पत्रिकारिता के भीष्मपितामह श्री मूलचंद किसनदास कापड़िया का नाम शीर्षस्थ है। 'जैनमित्र' की सताधिक वर्षों की यात्रा के वे नींव के सर्जक हैं। 'जैनमित्र' द्वारा पूरे देश में दिगम्बरत्व का महत्व स्थापित करने वाला, जैन धर्म के सिद्धान्तों को निडरता से प्रस्तुत करने वाला एवं सत्य के लिए संघर्ष करने वाला जैनमित्र मूलतः कापड़ियाजी के ही विचारों चिंतन व सत्यनिष्ठा का प्रतीक है। मुझे 1966 से 1968 दो वर्ष आपके साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। तब मुझे ज्ञात हुआ की पत्रकारिता क्या है। कापड़ियाजी ने दिगम्बरत्व और तीर्थों की रक्षा के लिये अपनी लेखनी से निरंतर जागृति पैदा की। मुझे उनके अभिनंदन ग्रंथ का पूर्ण संपादन करने का सौभाग्य 1981 में प्राप्त हुआ। उन्होंने पत्र संपादन के साथ पूजा संग्रह, जिनवाणी संग्रह, गुटका आदि पुस्तकों का संपादक किया

था। उनके संपादकीय भी महान साहित्य की विरासत हैं।

श्री कापड़ियाजी ने पं. दामोदरदासजी जैन सागर, पं. परमेष्ठीदासजी जैन ललितपुर एवं पं. ज्ञानचंदजी जैन स्वतंत्र को भी जैन जगत में प्रतिष्ठित किया था।

(6) पं. परमेष्ठीदासजी : बौद्धिक लेखक, वक्ता, चिंतक एवं स्वतंत्रता सेनानी थे। आपने सूरत में रहकर स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया और जेल यात्रा की। पंडित जी ने सत्य को प्रस्तुत करने हेतु निर्भीकता से गांधीजी को भी अपना विरोधपत्र प्रस्तुत किया और उसके उत्तर में गांधीजी के व महादेव भाई देसाई के साथ हुए पत्र व्यवहार से उनकी विचारधारा का परिचय प्राप्त होता है।

पंडितजी जैन दर्शन के महान विद्वान थे। परंतु वे रूढ़ियों से मुक्त उदारतावादी दृष्टिकोण रखते थे। यही कारण हैं कि उन्होंने जाति भेद का आधार आचरण माना है, परंपरायें नहीं। उन्होंने जैनधर्म की रूढ़ियों पर भी और गजरथ जैसे फालतू खर्च के आयोजनों पर भी समाज को जागृत करने का कार्य किया। एक अच्छे अनुवादक और लेखक होने का श्रेय उन्हें था। उन्होंने समयसार प्रवचन, मोक्ष शास्त्र अर्थात् तत्वार्थ सूत्र, श्री प्रवचनसार ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद किये एवं भ. महावीर और उनका संदेश, जैनधर्म की उदारता, गजरथ क्यों आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। तदुपरात आपने विद्यालयों के लिये जैन बालबोध के चार भागों की रचना भी की।

(7) पं. ज्ञानचन्दजी जैन 'स्वतन्त्र' : लगभग 20 वर्षो तक 'जैनमित्र' का सहसंपादन पं. ज्ञानचंदजी जैन स्वतंत्र ने किया। बनारस से न्यायालंकार तक की शिक्षा प्राप्त पंडितजी ने 'जैनमित्र' मे आगम सम्मत सिद्धान्त पक्ष को बढ़ावा दिया, जो ज्ञान प्रसार का कार्य करता रहा। आप हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू, संस्कृत, प्राकृत और पालि भाषा के जानकार थे। आपकी कुछ प्रमुख रचनायें इस प्रकार है। जैनधर्म पर लोकमत (हिन्दी, मराठी), भ. महावीर संदेश (मराठी), जैन शतक का हिन्दी अनुवाद, बेसुरा राग, पापों का पछतावा, मानव बने मानव, हम कैसे सुधरें, प्रायश्चित शुद्धि आत्मधर्म, विवाह क्या है, मानवता के पथ भाग1-2, गागर में सागर, स्वर्ग-नर्क, दाम्पत्य जीवन, श्रीमद् राजचद्र की विशेषताये, दिगम्बर जैन साहित्य में विकार (हिन्दी अनुवाद), ज्येष्ठ जिनवर की कथा, प्रकाश की किरणें, मु. श्री वीरसागर की जीवनी, नारी, आ. कुन्द-कुन्द एवं पं. बनारसी दास की जीवनी, विवाह एक आदर्श संस्था, दहेज एक अभिशाप, मु. श्री समकितसागरजी का जीवन व्रत, सोनानुं पाजरुं (अनुवाद), जैनव्रत कथासंग्रह हैं।

इनकी अप्रकाशित पांडुलिपियाँ हैं–इस पार-उस पार, हम आगे बढ़ रहे हैं, नारी के भूषण, सस्कार नही जाते, नारी के दूषण, जिन्हें की हम भूल जाते हें, ये भयंकर पाप लीलायें, दो पहलू, जीवन में संयम का महत्व, विंधे हुये मोती, बेरंग बुकपोस्ट, वाईफ और पत्नी, ईमानदार तांगेवाला आदि हैं। इन कृतियों से समझा जा सकता है कि आपकी साहित्यिक प्रतिभा कैसी थी। प्रायः धर्म, समाज आदि पर स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किये हैं।

(8) पं. श्री साकरचन्दजी वखारिया : 1932 में जन्मे वखारियाजी को परिवार से ही धार्मिक संस्कार मिले थे। जो पूज्य च. च. शान्तिसागरजी महाराज से लेकर अनेक आचार्यो की भक्ति व वैय्यावृत्ति से दृढ होते रहे। आप स्वाध्यायी हैं और पिछले 30 वर्षो से पर्युषण पर्व में अपने व्याख्यानों द्वारा धर्मप्रचार में लगे हैं। आपको पू. आत्मानंदजी से विशेष प्रेरणा मिली है। आपके लेख गुजराती पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

(9) शाह कोदरलाल जीवराज : तलोद के मूल निवासी श्री कोदरलालजी गुजरात में पं. कोदरलाल के नाम से जाने जाते हैं। आपने दिगम्बर ग्रंथों का अध्ययन व स्वाध्याय किया और अपने बुद्धि कौशल से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया। दृढ देव-शास्त्र-गुरु भक्त ने खानिया चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान किया था। आपने गुजरात में प्रायः सभी स्थानों पर अपने सैद्धान्तिक प्रवचनों से जैनधर्म का प्रचार किया। स्वाध्यायी पंडितजी के लेख और विचार गुजराती पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

मुनि निन्दा से बड़ा पाप कोई दूसरा नहीं है।

(10) श्री विनोदभाई हर्ष : युवा मनीषी, विद्वान श्री विनोदभाई 'हर्ष' वर्तमान में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में लगे हैं व्यवसाय के साथ स्वाध्याय, चिंतन, लेखन कार्य को समानांतर रूप से न्याय देते हैं। आपके लगभग 250 स्वतंत्र लेख विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आप द्वारा अनुदित और संपादित पुस्तकें—सन्मति चरित्र एवं आदि ब्रह्मा ऋषभदेव में प्रकाशित हो चुकी हैं। पिछले दस वर्षों से 'तीर्थंकर वाणी' के गुजराती विभाग के संपादक हैं। आठ वर्षो के गुजराती पत्र 'युव संदेश' के संपादक है, और आप दस वर्षो तक 'समाज विकास' पत्रिका के संपादक रहे हैं। 'वीर विद्या संघ' की स्मारिका एवं 'दि. जैन बोर्डिंग प्रांतीज की रजत जयंति स्मारिका' के संपादक रहें। तो पू. क्षु. चित्तसागरजी की पुस्तक 'सद्‌विचारों नु उपवन' का संपादन कार्य किया। आपने लगभग 15-20 पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद किया है। जिनमें 'तत्वार्थ सूत्र' एवं 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' है। आप वर्तमान में बे. द. हुमड दि. जैन धार्मिक शिक्षण शिविर के मंत्री हैं। आप दि. जैन त्रिलोक जैन शोध संस्थान हस्तिनापुर की कार्यकारिणी के सदस्य एवं भ. ऋषभदेव विद्वत् जैन महासंघ के सदस्य हैं।

(11) श्री मणिलाल झवेरदास शाह : आपका नाम आज गुजरात के मूर्धन्य लेखकों और विचारकों में एक है। आप एग्रीकल्चर से स्नातक हैं, परंतु आपने सद्‌विचारों की खेती करके समाज को, सविशेष युवाओं, चिंतकों को विशेष फसल उपलब्ध कराई। आपने धर्म का प्रचार एक ओर अनेक पाठशालाओं महिला-युवा मंडलो में शिखा प्रदान करके की तो अहमदाबाद एवं गुजरात में विविध स्थानों पर ध्यान की कक्षाओं द्वारा भी प्रचार किया है। गुजरात विद्यापीठ में एम.ए. स्तर पर धार्मिक अध्यापन कार्य किया है। भारत ही नहीं अमरीका आदि देशों में भी आपने स्वाध्याय व प्रवचन से धर्मप्रचार किया है। पर्युषण व्याख्यान माला में एवं श्रीमद् राजचंद्र स्वाध्याय मंडल में आपके प्रवचन होते रहते हैं।

आपने समाज सुधारक की शृंखला में मृत्यु के पश्चात् रोने धोने के स्थान पर प्रार्थना का आयोजन किया। तत्संबंधी पुस्तक की रचना की। प्रतिक्रमण पर सरल भाषा में पुस्तक लेखन का कार्य किया। आप गुजराती पत्रिका दिव्यध्वनि एवं तीर्थंकर वाणी के गुजराती विभाग में निरंतर लेखों द्वारा जैन सिद्धान्तों की समीक्षा करते रहे है।

(12) श्री गोकुलभाई शाह : आप आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारी, स्वाध्यायी साधक हैं। आपका पूरा जीवन स्वाध्याय, ध्यान और सत्संग में ही व्यतीत होता है। पूज्य स्व. क्षु. सहजानदजी वर्णी का आप पर विशेष प्रभाव है। आपने लेखन कार्य के रूप में अकलंक स्वामी कृत 'स्वरूप संबोधन', रत्नकरंडश्रावकाचार के संलेखना अधिकार पर 'समाधि मरण' एवं दर्शन पाहुड का अनुवाद सरल गुजराती में किया है। ये तीनों ग्रंथ पू. सहजानदजी वर्णी द्वारा लिखित है। इसी प्रकार आपने केशरसूरीजी महाराज द्वारा संकलित ग्रंथ 'ध्यान दीपिका' का अनुवाद किया है। आपने अनेक शास्त्रों का स्वाध्याय और संपादक किया है। एक उत्तम प्रवचनकार के रूप में आप पूरे गुजरात में प्रतिष्ठित है।

(13) डॉ. अनिल जैन : यह गुजरात का गौरव है कि यहाँ डॉ. अनिल जैन जैसे फिजिक्स से पी.एच.डी. विद्वान जैन धर्म के सिद्धांतों को विज्ञान की कसौटी पर कस कर नवयुवकों को धर्म के सिद्धांतों के प्रति आस्थावान बना रहे हैं। साइंस के विद्यार्थी श्री अनिलजी को लेखन व पठन का शौक बचपन से ही था। वे युवावस्था की देहरी पर पाँव रखते-रखते 'पल्लीवाल जैन पत्रिका' का सहसपादन करने लगे थे। 1985 में उनके तीन लेख जो तीर्थंकर (इन्दौर), तुलसी प्रज्ञा (लाडनूं) तथा कादंबिनी में प्रकाशित हुए और उनसे वे जैन साहित्य जगत में दमकने लगे। स्व. पं. कैलाशचंदजी द्वारा प्रशंसा प्राप्त लेख ने डॉ. अनिलजी के उत्साह को अनेक गुना बढ़ाया और फिर युवा लेखक इस कला के मार्ग पर चला ही नहीं दौड़ने लगा। अबतक लगभग 150 लेख देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छप चुके हैं जिनसे लोगों के चित्त में नया प्रकाश फैला है। आपकी मौलिक रचनाओं में पल्लिवाल जैन जाति का इतिहास तथा जीवन क्या है मुख्य हैं। उत्तम लेख हेतु अर्हत्‌वचन पुरस्कार से आप पुरस्कृत हैं। आपके लेखों का मुख्य स्वर धर्म और विज्ञान से संबंधित रहा है। आपके लेख देश-विदेश के सेमिनारों में सराहे गये है। आप आगम सम्मत देव-शास्त्र-गुरु के भक्त है, शिथिलाचार पर सदैव अपनी कलम चलाई है।

पुण्यशाली महापुरुषों का जहां जन्म होता है अथवा वे जहां-जहां विहार व प्रवास करते हैं, वे सभी स्थान तीर्थ तुल्य बन जाते हैं, ऐसे स्थानों की यात्रा से मन को अद्भुत शान्ति मिलती है।

(14) डॉ. शेखरचन्द जैन : आज गुजरात, भारत व विदेश में जिनका नाम श्रद्धा से लिया जाता है ऐसे डॉ. शेखरचन्द्र जैन मूलतः मध्यप्रदेश के हैं परंतु तीन पीढ़ियों से अहमदाबाद को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया है। बचपन से ही आपको लेखन का शौक रहा है। प्रारंभ में कविता में विशेष रुचि रही। मात्र 18 वर्ष की अवस्था मे आपका प्रथम व्यंग्य काव्य 'घरवाला' प्रकट हो चुका था। सन् 1956 से 1997 तक 41 वर्ष आपने अध्यापन कार्य किया। बचपन से धार्मिक अध्ययन व प्रवचन की रुचि ही पल्लवित होकर वटवृक्ष बनी। आपने 1966 से 68 तक जैन मित्र में आदरणीय स्व. कापड़ियाजी के साथ सहसंपादन का कार्य किया। आपने 1969 में राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला पर लिखे शोध प्रबंध पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी साहित्य के साथ-साथ आप जैन साहित्य पर भी निरतर लिखते रहे। आपकी साहित्य यात्रा इस प्रकार है–

हिन्दी साहित्य (1) राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला, (2) घरवाला (व्यग काव्य), (3) कठपुतली का शोर (काव्य संग्रह), (4) टूटते सकल्प (कहानी सग्रह), (5) इकाईयाँ और परछाईयाँ (कहानी सकलन)

जैन साहित्य (1) मुक्ति का आनंद (हिन्दी, गुजराती), (2) जैन धर्म सिद्धांत और आराधना (हिन्दी, गुजराती), (3) तन साधो : मन बाँधो (ध्यान संबंधी-हिन्दी, गुजराती), (4) मृत्यु महोत्सव, (5) मृत्युजयी केवली राम (उपन्यास), (6) आ. ज्ञानमति (जीवनी), (7) ज्योतिर्धरा (कहानी संग्रह), (8) परिषह जयी (कहानी संग्रह), (9) आ कवि विद्यासागर का काव्य वैभव (समीक्षा), (10) जैन शब्दावली (गुजराती), (11) गणधरवाद (गुजराती, अंग्रेजी), (12) जैन दर्शन में कर्मवाद, (13) जैनधर्म : नये आयाम (निबंध संग्रह), (14) जैन धर्मनी क्षितिज (गुजराती)

संपादन (1) श्री कापड़ियाजी अभिनंदन ग्रंथ, (2) आ. ज्ञानमति अभिवदन ग्रंथ (सह संपादन), (3) गुजराती कल्पसूत्र एव जिनवाणी का संपादन, (4) The Directory of Gujarat (Co-editor).

– जैन मित्र (सूरत), दी जैन (लंदन) के पूर्व सह संपादक
– शिक्षण सस्कार, रोटरी क्लब बुलेटिन (भावनगर) के भूतपूर्व सपादक
– प्रधान संपादक . 'तीर्थंकर वाणी'

लेख प्रकाशन एवं प्रस्तुतिकरण (1) अनेक गुजराती से हिदी एवं हिन्दी से गुजराती अनुवाद, (2) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग एव अनेक जैन गोष्ठियों सेमिनारो में आलेख वाचन एवं पत्र-पत्रिकाओं मे लेख प्रकाशित हुए है।

आपको जैन समाज द्वारा तन साधो : **मन बाँधो** एवं **ज्योतिर्धरा** पर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। तदुपरांत नागपुर जेन समाज द्वारा **'प्रवचन मणि'**, उदयपुर जैन समाज द्वारा **'वाणीभूषण'** एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर द्वारा **'ज्ञानवारिधि'** की उपाधि से सम्मानित किया गया है। आपको 'तीर्थंकर वाणी' पर **'श्रुत संवर्धन पुरस्कार'** दि. जैन त्रिलोक शोध सस्थान द्वारा **'जम्बूद्वीप पुरस्कार'** तथा अहमदाबाद की दिगम्बर जेन समाज द्वारा **'श्री सहजानंद वर्णी साहित्य पुरस्कार'** प्रदान किये गये हैं।

गुजरात के महामहिम राज्यपालजी द्वारा आपको जैन विद्वान के रूप मे सम्मानित किया गया।

सन् 1989 से 2003 तक इग्लैण्ड, पूर्व अफ्रीका, केनेडा एवं अमरीका की बारह बार यात्राये करके लगभग नाताम संस्थानों पर भारतीय संस्कृति एव जैन धर्म दर्शन पर प्रवचन किये और णमोकार ध्यान शिविर के आयोजन किये।

इस प्रकार गुजरात में विद्वानो द्वारा देव-शास्त्र-गुरु (आर्ष परंपरा) की वाणी का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है।

□

यह सच है कि साधु को न तो कोई विवाद खड़ा करना चाहिए और न उसमें पड़ना चाहिए; वीतरागता की सुरक्षा और संवर्धन की यही संभव है।

बिहार के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

– डॉ. ऋषभचन्द जैन फौजदार
श्रीमती वीणा जैन फौजदार, वैशाली

बिहार के उर्वरा भूमि में जैन परम्परा के चौबीस में से पॉच तीर्थकरों वासुपूज्य, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ और महावीर स्वामी ने जन्म लेकर तथा 22 तीर्थकरों ने निर्वाण प्राप्त कर इसे पूज्य बनाया है। अनेक विद्वान् आचार्यो की साधना एवं कर्मस्थली बिहार में बीसवीं सदी में भी अनेक जैन विद्वानों ने साहित्य साधना करके इसके परम्परागत गौरव को अक्षुण्ण रखा है। यहां बीसवीं शती के कतिपय साहित्य-साधको का संक्षिप्त परिचय हिन्दी वर्णक्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. **डॉ. ऋषभचन्द्र जैन "फौजदार"** : डा. ऋषभचन्द्र जैन का जन्म 2 मार्च 1960 ई. में मध्यप्रदेश के छतरपुर जिलान्तर्गत सेंधपा (द्रोणगिरि) नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री पं. मल्लिकुमार जैन फौजदार एवं माता का नाम श्रीमती नौंनी बाई है। इनके दादा पं. मोतीलाल जी फौजदार प्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य, जैन ज्योतिर्विद एवं स्वाध्यायी विद्वान् थे।

डॉ. जैन की मिडिल तक की शिक्षास्थानीय मिडिल स्कूल तथा स्थानीय जैन पाठशाला मे हुई। उसके बाद वे अगस्त 1974 में स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी आ गये, यहा से पूर्वमध्यमा से लेकर शास्त्री, शिक्षाशास्त्री तथा जैनधर्म की सिद्धांतशास्त्री परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर 1982 में श्री जैन कन्या माध्यमिक पाठशाला आरा में शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। आरा में कार्य करते हुए डा. जैन ने आचार्य (जैनदर्शन) प्राकृत एवं जैनागम, एम.ए. संस्कृत और पीएच.डी. की उपाधियॉ प्राप्त कीं। तीनों स्नातकोत्तर उपाधियों में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पाकर स्वर्णपदक प्राप्त किये। 1982 ई. से ही श्री देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान (मगध विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त), जैन सिद्धांत भवन, आरा मे शोध सहायक के रूप में भी सेवा देते रहे। उसी समय से जैन सिद्धात भास्कर एवं जैन एण्टीक्वैरी के सम्पादन/प्रकाशन में हाथ बॅटाने लगे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा डा. जैन को 1990 ई. मे "आचार्य कुन्दकुन्दकृत नियमसार का तात्पर्यवृत्ति संस्कृत टीका के साथ सम्पादन और अध्ययन" विषय पर रिसर्च एशोसिएटशिप अवार्ड हुई। इस कार्य को उन्होंने सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के प्राकृत एवं जैनागम विभाग में 1990 से 1993 ई. तक नियमित रहकर (तीन वर्ष में) पूर्ण किया। डॉ. जैन 1994 ई. में बिहार शिक्षा सेवा-दो में "प्राकृत और जैनशास्त्र" विषय के व्याख्याता के पद पर प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोधसस्थान, वैशाली में नियुक्त हुए। तब से अनवरत यहां कार्यरत है।

डा. जैन द्वारा लिखित, सम्पादित और अनूदित कृतियों में– 1. जैन सिद्धांत भवन ग्रन्थावली, भाग-1,2,3, 2. अवचूरिजुतोदव्वसंगहो, 3. अर्हत्प्रवचन, 4. सचित्र जैनरामायण (रामयशोरसायन रास), 5. नियमसार, 6. लीलावई, 7. प्राकृगद्य पद्यबध, भाग-3, (अनुवाद), 8. पंडित जुगलकिशोर मुख्तार स्मृति ग्रन्थ, 9. आत्मकल्याण-प्रकाश आदि प्रमुख है। शोधादर्श, अनेकान्त, श्रमण, जैनसिद्धांत भास्कर, प्राकृतविद्या आदि शोध पत्रिकाओं में लगभग 75 शोधलेख प्रकाशित हैं। जैन सिद्धांत भास्कर एवं जैन एण्टीक्वैरी का 20 वर्षो से सम्पादन तथा 1998 से वैशाली इन्स्टीच्यूट रिसर्च बुलेटिन (वार्षिक) का सम्पादन कर रहे है। डा जैन के निर्देशन में कई शोधार्थी शोधकार्य में संलग्न हैं। डा. जैन लगभग शतार्ध सेमिनारों, संगोष्ठियों और कार्यशालाओं में संयोजन, सहभाग एवं शोधपत्र वाचन कर चुके हैं। वे प्राकृत और जैनविद्या विषयक उच्चतर अध्ययन, अनुसंधान तथा सम्पादन आदि कार्यो में अनवरत संलग्न हैं।

भगवान महावीर ने कहा है कि धर्म वह है जो चित्त को शान्त करे, हमारी दुर्बलताओं का शमन करे और हमारी सहन शक्ति को बढ़ाए।

२. पं. के. भुजबली शास्त्री : मूलतः कन्नड़ भाषी साहित्यकार विद्याभूषण पं. के. भुजबली शास्त्री का जन्म कर्नाटक राज्य में दक्षिण कनारा जिले के काशीपट्टण नामक ग्राम में हुआ था। ग्रामीण पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करके वे नेल्लिकार ग्राम की संस्कृत पाठशाला में गये। 1916 ई. में मैसूर नगर की संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट हुए। पश्चात् 1921 ई. में पं. गोपालदास जैन विद्यालय, मुरैना गये, वहाँ शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। "न्यायकुलभूषण" और "न्यायाचार्य" की उपाधियाँ भी उन्होंने प्राप्त कीं।

शिक्षा पूर्ण होने पर उत्तरभारत के एकमात्र पाण्डुलिपि केन्द्र श्री जैन सिद्धांत भवन, आरा के पुस्तकालयाध्यक्ष पद के लिए बाबू निर्मलकुमार जैन आरा द्वारा आमन्त्रित किये गये। यहाँ वे 1923 से 1944 ई. तक रहे। साथ ही जैन बाला विश्राम की छात्राओं को जैनधर्म और संस्कृत की शिक्षा देते रहे। आश्रम में संस्कृत और न्याय की उच्च कक्षाएँ प्रारंभ करने का श्रेय भी आपको है।

आरा में रहकर आपने अनेक ग्रन्थ रचे तथा अन्य ग्रन्थों को सम्पादित/अनूदित भी किया। आपकी कृतियों में 1. दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता, 2. मूर्तिपूजा की आवश्यकता, 3. जैनरभूरारत्नगलु (कन्नड़), 4. आत्मनिवेदनम् (संस्कृत), 5. आदर्श जैन महिलेयरु (क.), 6. आदर्श जैन वीररु (क.), 7. आदर्श साहितिगलु (क.), 8. जैनवाङ्मय मातृस्मृति, 9. दैनिक षट्कर्म, 10. निबन्ध संग्रह, 11. प्रबन्ध पुंज, समवसरण, 12. भव्यस्मरणे, 13. महावीर वाणी, 14. कन्नडकवि चरिते, 15. कामन कालग आदि प्रमुख हैं। आपने मुनिसुव्रत काव्य, चित्रसेन पद्मावती चरितम्, भव्यानन्द, मुहूर्त्तदर्पण आदि ग्रन्थो का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद किया। कन्नड प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थसूची एवं प्रशास्तिसग्रह, जैन प्राकृत वाङ्मय (निबन्ध संग्रह) भी उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। कुल मिलाकर प. भुजबली शास्त्री की 40 रचनाएँ बतायी जाती हैं।

सन् 1944 में आप आरा से मूडबिद्री चले गये। वहाँ दो वर्ष तक भारतीय ज्ञानपीठ की कन्नड शाखा के प्रमुख रहे। बाद में 1946 से 1968 तक कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ के अनुसन्धान विभाग में सशोधक के रूप में कार्यरत रहे।

आपको 1938 ई. में भारतधर्म महामण्डल, वाराणसी की और से "विद्याभूषण" की उपाधि से सम्मानित किया गया था। 1963 ई. मे जैन सिद्धात भवन, आरा के हीरक जयन्ती महोत्सव के अवसर पर बिहार के तत्कालीन राज्यपाल अनन्तशयनम् आयंगर ने आपको "सिद्धाताचार्य" की मानद उपाधि से विभूषित किया था। शिमला, हुबुच, कारकल, आरा आदि नगरों के जैनसमाज तथा संस्थाओं ने आपका यथासमयय यशोगान और सम्मान किया है। आपने अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं को अध्यक्ष, मंत्री, सदस्य आदि के रूप अपनी सेवायें प्रदान की हैं। पावापुरी, राजगृह, आरा और आसनसोल आदि नगरों में जिन बिम्बप्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा और मानस्तंभ की प्रतिष्ठायें आपने सम्पन्न करवायी हैं।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका अनुकरणीय योगदान है। शरणसाहित्य, विवेकाभ्युदय, वीरवाणी, जैन सिद्धांत भास्कर और वायस ऑफ अहिंसा आदि पत्रों के सम्पादक मण्डल के आप सक्रिय सदस्य रहे हैं। विभिन्न पत्रो में आपके शताधिक संशोधनात्मक लेख प्रकाशित होते रहे है। आप आजीवन उत्तर और दक्षिण में सांस्कृतिक तथा धार्मिक आदान-प्रदान के कार्य में संलग्न रहे हैं।

३. प्रो. (डा.) गुलाबचन्द्र चौधरी (1917-1974 ई.) : जबलपुर (म. प्र.) जिले के सिलौंडी ग्राम में 2 अक्टूबर 1917 ई. को जन्में प्रो. गुलाबचन्द्र चौधरी प्रतिष्ठित विद्वान् हुए हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सिलौंडी ग्राम में ही हुई। उसके बाद वे जैन शिक्षा संस्था कटनी आये, यहां से सिद्धांतशास्त्री और काव्यतीर्थ की उपाधि प्राप्त कर उच्चतर अध्ययन हेतु स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी पहुँचे। यहाँ उन्होंने व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कीं। वहीं प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं. जयचन्द्र विद्यालंकार के साथ भारतीय इतिहास परिषद् में तीन

[illegible]

वर्ष तक भारतीय इतिहास के निर्माण में सहयोग किया। वाराणसी में ही सन्मति जैन निकेतन और पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान में रहकर प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में शोधकार्य कर 1954 ई. में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

प्रो चौधरी कार्यक्षेत्र में सर्वप्रथम नव नालन्दा महाविहार, नालंदा में बिहार शिक्षा सेवा वर्ग-2 में पुस्तकाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए। यहा वे 1952-60 तक कार्यरत रहे। साथ ही पालि-प्राकृत-संस्कृत के पाठयग्रन्थों का अध्यापन तथा शोधपथ प्रदर्शन भी किया। सितम्बर 1960 में बिहार शिक्षा सेवा वर्ग-1 (एक) में प्रोफेसर प्राकृत के पद पर प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में नियुक्त हुए। यहा उन्होंने सितम्बर 1965 तक प्राकृत और जैनविद्या के विविध आयामों का अध्यापन और शोध-निर्देशन किया। अक्टूबर 1965 में मिथिला संस्कृत शोध संस्थान, दरभंगा में स्थानान्तरित होकर दिसम्बर 1967 तक भाषाविज्ञान और न्याय-व्याकरण आदि विषयों का अध्यापन तथा शोध-पथ प्रदर्शन किया। जनवरी 1968 में स्थानान्तरित होकर पुन: नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा में वरिष्ठ प्राध्यापक के पद पर रहते हुए पालि, बौद्धदर्शन तथा भारतीय इतिहास का अध्यापन एवं शोध निर्देशन किया। जनवरी 1973 में प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली में निदेशक के पद पर नियुक्त होकर 4 मई 1974 तक संस्थान के दायित्वों का निर्वाह किया। प्रो चौधरी निदेशक के पद पर अधिक दिनों तक नहीं रह पाये। 4 मई 1974 को हृदयगति रुक जाने से उनका आकस्मिक निधन हो गया। वर्तमान में उनके ज्येष्ठपुत्र श्री प्रमोदकुमार चौधरी, प्रकाशनशास्त्री के पद पर प्राकृत शोध संस्थान वैशाली में कार्यरत हैं।

प्रो. चौधरी जी द्वारा लिखित, सम्पादित और अनूदित कृतियों में 1. पुराणसार-संग्रह-दामनन्दि (दो भाग) सम्पादन एव अनुवाद, 2. जैन शिलालेख सग्रह (भाग-2-3) मे प्रकाशित 850 शिलालेखो पर विस्तृत प्रस्तावना, 3. कन्नड़ भाषा के 53 जैन शिलालेखों का देवनागरी रूपान्तरण एवं सारानुवाद, 4. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज (अंग्रेजी), 5. जैन काव्य साहित्य का इतिहास (जैन साहित्य का बृहद् इतिहास छठवाँ भाग)। इसके अतिरिक्त प्रो. चौधरी ने जैन साहित्य और संस्कृति के विभिन्न पक्षो पर अनेक लेखों का प्रणयन करके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा स्मृति-ग्रन्थो मे उनका प्रकाशन कराया है।

4. प्रो. (डा.) गोकुलचन्द्र जैन : आपका जन्म 5 नवम्बर 1934 ई. को सागर (म. प्र.) के पिड़रुआ ग्राम में हुआ था। आपके पिता सेठ मूलचन्द जैन एक समृद्ध, संभ्रान्त और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपकी माता यशोदाबाई धार्मिक प्रवृत्ति की गृहिणी थीं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पिड़रुआ में हुई। 1944 ई. में आप गणेश दि. जैन संस्कृत विद्यालय मोराजी, सागर आये। यहां रहकर आपने साहित्य शास्त्री, काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। उसके बाद 1954 ई. में उच्चतर अध्ययन हेतु श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी आये। यहां आपने साहित्याचार्य, जैन-दर्शनाचार्य, शास्त्राचार्य और एम. ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। डा. वासुदेव शरण अग्रवाल के निर्देशन में "यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन" विषय पर शोधकार्य करके काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय से पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की। 1968 ई. में आपका शोधप्रबन्ध उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुआ।

1962 ई. मे भारतीय ज्ञानपीठ में आप प्रबन्धक-शोध प्रकाशन नियुक्त हुए। वहाँ रहते हुए आपने खूब लगन और परिश्रम से काम किया, जिससे भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा नये-नये ग्रन्थ प्रकाश में आये। दिल्ली में रहकर आपने जैनोलॉजिकल रिसर्च सोसायटी नामक सस्था की स्थापना करके शोध के क्षेत्र में नये-नये कार्यो को गति प्रदान करने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किया। अपने अध्ययनकाल से ही लेखन की ओर आपकी विशेष रुचि है। जैन साहित्य और संस्कृति विषयक निबन्ध, कहानी, कविता और स्केच आदि लिखनें में आप अत्यन्त कुशल है। 1974 ई. में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्याधर्मविज्ञान संकाय में जैनधर्म के प्राध्यापक नियुक्त हुए। यहां भी आप अध्यापन के साथ शोध निर्देशक, ग्रन्थ सम्पादन

जिस सरोवर में मगरमच्छ होंगे, उसमें मछलियां शान्ति से निर्भय होकर विचरण नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार जब तक हमारी आत्मा में कषाय रूपी मगरमच्छ रहेंगे, तब तक आत्मा में शान्ति का संचरण नहीं हो सकेगा।

आदि कार्यो में संलग्न रहे। भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अनेक आयोजन सम्पन्न कराये। 1977 ई. में संस्कृत विद्याधर्म विज्ञान संकाय मे "पाण्डुलिपि सम्पादन और प्रशिक्षण शिविर" लगाकर आपने विद्वानों एवं शोधार्थियों को प्रशिक्षित कर इस क्षेत्र को नयी दिशा प्रदान की।

स्व. प्रो. जगन्नाथ उपाध्याय के सत्-प्रयत्नों से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के श्रमण विद्या संकाय में "प्राकृत और जैनागम" विभाग स्थापित हुआ। जैन 1979 में इस विभाग में पहले विभागाध्यक्ष एवं उपाचार्य नियुक्त हुए। यहाँ पर उन्होंने पूर्व-मध्यमा से लेकर आचार्य तक "प्राकृत एवं जैनागम" के पाठ्यक्रम को "क" वर्गीय विषय के रूप मे प्रारंभ कराया। विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग में "प्राकृत और जैनविद्या ग्रन्थमाला" स्थापित कराई। संकाय पत्रिका के प्रकाशन की योजना स्वीकृत कराकर उसका प्रकाशन प्रारंभ कराया। संकाय में आयोजित सेमिनारों में पठित शोध-निबन्धों के प्रकाशन हेतु "परिसंवाद" का प्रकाशन प्रारंभ कराया। विद्यावारिधि (पीएच.डी.) उपाधि हेतु शोधकार्यो का निर्देशन-संचालन किया। आचार्य कुन्दकुन्द विषयक उच्चतर अध्ययन-अनुसंधान को ध्यान में रखकर "पोस्ट डॉक्टोरल" रिसर्च के रूप में चार शोध सहायकों द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से नियमसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड आदि ग्रन्थों का सम्पादन और अध्ययन कराया, जिससे उक्त ग्रन्थो के मानक संस्करण तैयार हुए। इन संस्करणों में कन्नड और देवनागरी लिपियों की अधिसख्य पाण्डुलिपियों का उपयोग करके मूलप्राकृत पाठ निर्धारित किया गया। उक्त सभी कार्य विद्वानों और शोधार्थियो के लिए दिशा-निर्देशक का काम करेंगे।

डॉ. जैन जैनविद्या और प्राकृत के विविध पक्षों पर व्याख्यान देने हेतु द. कोरिया जापान, कनाडा आदि की विदेश यात्रा पर जा चुके हैं। गोम्मटेश विद्यापीठ प्रशस्ति आदि अनेक पुरस्कार-सम्मानों से भी वे सम्मानित हैं। डा. जैन द्वारा लिखित-सम्पादित कृतियों में 1. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, 2. सत्यशासन परीक्षा, 3. कर्मप्रकृति, 4. प्रमेय-कण्ठिका, 5. जैनदर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन, 6. समन्तभद्र ग्रन्थावली, 7. परमागमसारो, 8. तच्चवियारो, 9. कसायपाहुडसुत्त, 10. अवचूरिजुदो दव्वसंगहो, 11. सकायपत्रिका-1,2 12. परिसवाद, 13. चौबीस तीर्थकर, 14. भगवान महावीर आदि प्रमुख हैं। चौबीस तीर्थकर और भगवान महावीर ये दोनों रचनाएँ कन्नड आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर भी प्रकाशित हूई हैं।

डा. जैन का कई दशकों से बिहार से गहरा सम्बन्ध मे है। जैन सिद्धांत भास्कर एव जैन एण्टीक्वेरी के सम्पादक मण्डल के लम्बे समय से सदस्य है। जैन सिद्धांत भवन के अनुसंधान कार्यो में आपका निरन्तर निर्देशन और सहयोग प्राप्त रहा है। प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली की अधिष्ठातृ परिषद् के आप सदस्य रहे हैं। जैन बाला विश्राम, आरा और देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान, आरा के कार्यो में आपका प्रत्यक्ष सहयोग सेवा-निवृत्ति के बाद 1995 से अनवरत प्राप्त हो रहा है। जैन सिद्धांत भवन के शताब्दी महोत्सव की तैयारी आपके निर्देशन में चल रही है। आपकी धर्मपत्नी डॉ. सुनीता जैन सम्प्रति जैन बाला विश्राम उच्च विद्यालय आरा मे शिक्षिका है।

5. प्रो. (डा.) चन्द्रसेन कुमार जैन : बीसवीं सदी के तीसरे दशक में आरा में जन्मे प्रो. चन्द्रसेन कुमार जैन हिन्दी जगत् के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। इनके पिता बाबू अनन्तकुमार जैन थे। इनकी शिक्षा आरा नगर के विभिन्न शिक्षासंस्थानों में हुई। कार्यक्षेत्र में सबसे पहले जैन कालेज, आरा में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। एक वर्ष बाद वे उड़ीसा के उच्च-शिक्षा विभाग में नियुक्त हुए, वहाँ वे बारीपदा, बालासोर, कटक आदि स्थानों में प्राध्यापकी करते हुए अन्त में उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर में प्रोफेसर के पद से सेवा निवृत्त हो गये। उन्होंने हिन्दी के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हैं। उन्होंने हिन्दी-उड़िया कोश का भी काम किया है। उन्हें हिन्दी अकादमी द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है।

जिस प्रकार उबलते हुए पानी में अपनी परछाई नहीं दिखती, उसी प्रकार तीव्र कषाय के उदय में शुद्धात्मदर्शन नहीं हो सकता।

6. ब्र. पंडिता चन्दाबाई- (1890-1977 ई.) आर्यिका ब्रह्मचारिणी पंडिता चन्दाबाई का जन्म ई. सन् 1890 में वृन्दावन (उ. प्र.) में हुआ था। उनके पिता श्री नारायणदास अग्रवाल तथा माता श्रीमती राधिका देवी थीं। पाँच वर्ष की अवस्था में इनका विद्यारंभ संस्कार हिन्दूरीति-रिवाज के अनुसार हुआ था। रामायण और गीता इनके प्रिय धर्मग्रन्थ थे। बारह वर्ष की अल्पावस्था में इनका विवाह आरा निवासी राजर्षि देवकुमार जैन के अनुज बाबू धर्मकुमार जैन के साथ 1902 में हुआ था। दुर्भाग्य से 1903 ई. में सम्मेदशिखर की यात्रा से लौटते हुए प्लेग रोग से पीड़ित हो जाने के कारण गिरिडीह मे उनके पति का आकस्मिक निधन हो गया। उक्त घटना के बाद चन्दाबाई ने धर्म एव समाज की सेवा करने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य को लेकर 1909 में इन्होंने सम्मेदशिखर में अक्षय तृतीया के दिन ब्र. कंकुबाई, मगनबाई और ललिता बाई के साथ मिलकर अखिल भारतीय जैन महिला परिषद् की स्थापना की।

आपने 1910 ई. राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काशी की पण्डिता परीक्षा पास कर भट्टारक नेमिसागर वर्णी तथा ब्र. शीतलप्रसाद के सहयोग से सर्वार्थसिद्धि, गोम्मट्सार, समयसार, लब्धिसार, तत्वार्थसूत्र, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पंचाध्यायी चन्द्रप्रभचरित आदि जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया। तीस वर्ष की अवस्था में आजीवन एक बार भोजन करने की नियम ले लिया।

आरा नगर के पूर्वी छोर धनुपुरा स्थित अपने पारिवारिक उद्यान में 1921 ई मे जैन बाला विश्राम की स्थापना कर चन्दाबाई ने नारी शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया। उनके भतीजे निर्मलकुमार और चक्रेश्वरकुमार ने उक्त उद्यान का नाम "धर्मकुंज" रखकर उसकी रजिस्ट्री जैन बाला विश्राम के नाम कर दी। इस सस्था के यश के प्रभाव से अनेक राष्ट्रीय नेता यहाँ आते रहे हैं। इसकी स्नातिकाओं में आर्यिका विजयमती माता जी, आर्यिका सिद्धमती माताजी, आर्यिका आदिमती जी, क्षु. विजयश्री, जयवन्ती देवी, ब्र. आदेश जैन, पं. ब्रजबाला देवी, सुश्री शशिप्रभा शशांक, श्रीमती सुलोचना जैन, डा शान्ति जैन, डॉ. जया जैन, सुश्री शारदा जैन प्रभृति नारियाँ सुशिक्षित होकर धर्म और समाज की सेवा में संलग्न हैं। जैन बाला विश्राम के शिक्षकों मे श्री शांतिराज शास्त्री, पं के. भुवबलीशास्त्री डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य, डॉ. (पं) नेमिचन्द्र प्राचार्य (खुरई) के नाम उल्लेखनीय है।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला परिषद् के लखनऊ अधिवेशन में 1922 ई. में ब्र. चन्दाबाई के प्रयत्न से मासिक पत्रिका निकालने हेतु एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। पत्रिका का नाम "जैन महिलादर्श" रखा गया। इसके सम्पादन/प्रकाशन का दायित्व प. चन्दाबाई को ही सौंपा गया। तब से 1978 तक लगातार (51 वर्षो तक) उन्होंने उसका सम्पादन किया। उनके सम्पादकीय, सामायिक टिप्पणियाँ, सम्पादिका की डाक, शंका-समाधान और निबन्ध आदि सरस और सुपाच्य होते थे। पत्रिका में सामान्यतः महिलाओ की रचनाओं को ही स्थान मिलता था। उक्त पत्रिका ने जैन समाज की गृहणियों को लेखिका और साहित्यकार बनने हेतु प्रेरित किया। हजारों गृहणियाँ स्वाध्याय हेतु प्रेरित हुई। ब्र. चन्दाबाई द्वारा लिखित उपदेशरत्नमाला, सौभाग्य रत्नमाला, निबन्धरत्नमाला और आदर्शनिबन्ध आदि कृतियों के नये संस्करण 1997 में छपे हैं। उपदेशरत्नमाला को तो मराठी भाषा मे भी अनुवाद हुआ है।

ब्र चन्दाबाई जी ने राजगृह और सम्मेदशिखर में मन्दिर बनवाये तथा जैन बाला विश्राम, आरा में भगवान बाहुबलि के सामने देवाधिदेव भगवान आदिनाथ का 31 फुट ऊँचा विशाल मानस्तंभ बनवाकर बड़ी धूमधाम से उसकी प्रतिष्ठा कराई थी।

पू. ब्र. चन्दाबाई की सेवाओ का मूल्यांकन करते हुए अखिल भारतीय दि. जैन महिला परिषद् के तत्त्वाधान में सन् 1953 ई. में अनेक विद्वानों के सहयोग से एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर दिल्ली के परेड मैदान मे तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् द्वारा भेंट किया गया था। उसी वर्ष महामहिम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और भारत की प्रथम

कषाय एक ऐसा जहर है, जो आत्मा के सभी गुणों को विषाक्त बना देता है, इस जहर से बचिए, यही सुख का रास्ता है।

महिला ने उन्हें राष्ट्रपति भवन में आमन्त्रित करके सम्मानित भी किया था। जीवन के अन्त में 26 जुलाई 1977 को आर्यिका दीक्षा लेने के दो दिन बाद 28 जुलाई 1977 ई. को उनका समाधिमरण हो गया।

7. जगदीशचन्द्र जैन (1909-1994 ई.) : जैन विद्या के प्रतिष्ठित विद्वानों में डॉ. जगदीशचन्द्र जैन का नाम अग्रपंक्ति में आता है। इनका जन्म 20 जनवरी 1909 ई. को मुजफ्फरनगर (उ. प्र.) में हुआ था। इन्होंने प्राच्य पद्धति की शास्त्री परीक्षा तथा 1932 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से दर्शनशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की थी। आपने 1944 ई. में बम्बई विश्वविद्यालय से "सोशियल लाइफ इन ऐंशिएण्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन जैन केनन्स" विषय पर शोधप्रबन्ध लिखकर पी-एच.डी. की उपाधि पाई थी। 1932-33 ई. में आप विश्वभारती विश्वविद्यालय में शोध स्नातक रहे हैं।

डॉ. जैन 1952-53 ई. पीकिंग (चीन) में भाषा विज्ञान एव साहित्य विभाग में हिन्दी विषय के प्राध्यापक रहे हैं। वे रामनारायण रुइया कालेज, बम्बई (बम्बई विश्व विद्यालय से सम्बद्ध) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर के पद पर तीस वर्ष तक कार्यरत रहे। वहाँ उन्होंने हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का भी अध्यापन किया। अनेक शोधार्थियों का मार्गदर्शन कर उन्हें पीएच.डी. करने में सहयोग किया। सेवा निवृत्ति के बाद 1970 ई. आप पश्चिम जर्मनी के कील विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग में अनुसंधान प्रोफेसर नियुक्त हुए, वहां वे 1974 ई. तक रहे।

डॉ. जैन अक्टूबर 1958 से नवम्बर 1959 तक प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में प्राकृत और जैनशास्त्र के प्रोफेसर (बिहार शिक्षा सेवा वर्ग-एक) रहे। इस विषय में वे प्राकृत साहित्य का इतिहास की भूमिका पृ. 4 पर स्वयं लिखते हैं–"सन् 1956 से ही प्राकृत जैन विद्यापीठ मुजफ्फरपुर (बिहार) में मेरी नियुक्ति की बात चल रही थी। लगभग दो वर्ष बाद बिहार सरकार ने अपनी भूल का संशोधन कर अन्तत अक्टूबर 1958 मे प्राकृत जैन विद्यापीठ में मेरी नियुक्ति कर उदारता का परिचय दिया।"

डॉ. जैन ने यहाँ अत्यल्प (एक वर्ष दो माह) के कार्यकाल में प्राकृत जैनविद्या के अध्येताओ के लिए अपनी अमूल्य रचना "प्राकृत साहित्य का इतिहास" का निर्माण किया, जिसे प्राकृत साहित्य इतिहास विषयक पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। यह ग्रन्थ उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। आपकी अन्य रचनाओं में स्याद्वादमंजरी, जैनआगमों में प्राचीन भारत का चित्रण, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियॉं, प्राचीन भारत की कहानियॉं, प्राचीन भारत क जैन तीर्थ, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास, प्राकृत जैन कथा साहित्य, द जैन व आफ लाइफ, भारतीय तत्व चिन्तन, रमणी के रूप, वसुदेव हिण्डी, द जेनीसिस एण्ड ग्रोथ ऑफ प्राकृत, जैन नैरेटिव लिटरेचर आदि प्रमुख हैं। आप 1990 ई. तक 70 ग्रन्थ लिख चुके थे।

डॉ. जैन को अनेक अवार्ड मिले है। भारत सरकार के संचार विभाग ने 1998 ई. में डॉ. जैन पर एक डाक टिकिट जारी करके उन्हें सम्मानित किया था। उन्हें प्राकृत ज्ञान भारती अवार्ड भी 1990 में मिला था। अन्त 28 जुलाई 1994 को डॉ. जैन 85 वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये, जिससे सम्पूर्ण विद्वज्जगत् शोकमग्न हो गया।

8. डॉ. जया जैन : डॉ. जया जैन का जन्म 9 जून 1942 ई. को आरा (बिहार) के एक धार्मिक परिवार में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री जैन कन्या पाठशाला, आरा में हुई। मैट्रिक की परीक्षा जैन बाला विश्राम हाई स्कूल, आरा से करने के बाद एम.एम. महिला कॉलेज आरा से इण्टर और बी.ए. किया। मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से एम.ए. हिन्दी और प्राकृत एवं जैनविद्या में 1972 ई. में किया, जिसमें स्वर्णपदक भी प्राप्त हुआ। उन्होंने "संतकाव्य पर अपभ्रंश का प्रभाव" विषय पर शोधकार्य करके पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपने प्राकृत कथाओ पर लघुशोधप्रबन्ध एम.ए. हिन्दी के प्रसंग में प्रस्तुत किया था। इनके शोधनिबन्ध जैन सिद्धांत भास्कर, परिषद् पत्रिका, तीर्थंकर, सन्मतिवाणी आदि पत्रिकाओं

जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों, हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बांट सकता है, लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती है।

में प्रकाशित हुए हैं। डॉ. जया जी ने पाण्डे रूपचन्द्र के हस्तलिखित आध्यात्मिक काव्यों का सम्पादन "अध्यात्म काव्यद्वय" नाम से किया था तथा सगीतशती की भी रचना की थी। संगीत के क्षेत्र में भी आपका अच्छा अधिकार था। लखनऊ, वाराणसी, आरा आदि स्थानों पर अनेक राष्ट्रीय आयोजनों में आपका सक्रिय सहभाग रहा है।

आप 10-12 वर्ष तक जैन बाला विश्राम हाई स्कूल, आरा में शिक्षिका एवं उप-प्राचार्या रहीं हैं। जया जी अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् एव बिहार सरकार की सघन शिक्षण योजना की सदस्या तथा महिला परिषद् भोजपुर की महासचिव भी रही हैं।

9. डॉ. जैनमती जैन : डॉ. जैनमती जैन प्राकृत जैनशास्त्र और अहिसा शोध संस्थान, वैशाली के पूर्व-निदेशक प्रो (डॉ.) लालचन्द जैन की धर्मपत्नी हैं। इन्होंने प्राकृत और जैनशास्त्र विषय में बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फपुर से एम ए किया है। वीरकुंजर सिह विश्वविद्यालय, आरा से *"पचास्तिकाय का तुलनात्मक एव समीक्षात्मक अध्ययन"* विषय पर शोध कार्य करके उन्होंने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। 1993 ई. से वे श्री जैन बाला विश्राम हाई स्कूल में सहायक शिक्षिका के रूप मे अध्यापन कार्य कर रही हैं।

अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आपके शोधनिबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। पंचास्तिकाय का तुलनात्मक एव समीक्षात्मक अध्ययन, कंसवहो, नयचक्र और तत्वसार इनकी प्रकाशित कृतियाँ है।

10. प्रो. नलिन के. शास्त्री : प्रो. नलिन जी जैन साहित्यिक क्षेत्र के अद्वितीय विद्वान् डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के सुपुत्र हैं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वनस्पतिशास्त्र विपयक विशेपज्ञता प्राप्त कर आप सर्व-प्रथम महाराजा कॉलेज, आरा में वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए। उसके 1982 में मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के स्नाकोत्तर वनस्पतिशास्त्र विभाग मे उपाचार्य हो गयें। पश्चात् कई विश्वविद्यालयो मे रजिस्ट्रार के पद पर भी कार्य किया। इसके साथ-साथ जैनविद्या के प्रति आपका प्रेम और समर्पण सराहनीय है। आप जैनविद्या विषयक सगोष्ठियों, कार्यशालाओं आदि में निरन्तर सक्रिय रहते है। प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर तथा श्रुत संवर्द्धन सस्थान मेरठ आदि संस्थाओं के कार्यो मे आपकी सक्रियता सराहनीय है। आप मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आने वाले महाविद्यालयो की विकास परिपद् के समायोजक भी रहे है।

11. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य (1915-1974 ई.) : डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य का जन्म बावरपुर ग्राम (राजाखेडा धौलपुर) मे 1915 ई. को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बलवीर तथा माता का नाम सावित्री बाई था। जब आप एक वर्ष छह माह के थे, तब ही पिता जी का देहान्त हो गया, इसलिए आप मामाजी के पास बसई धियाराम नामक ग्राम चले गये। वहीं प्रारम्भिक शिक्षा पाने के बाद राजखेडा माध्यमिक शाला से मिडिल परीक्षा पास की। यहीं कुन्दकुन्द विद्यालय से प्रवेशिका परीक्षा भी उत्तीर्ण की। उसके बाद उच्च शिक्षा लेने हेतु स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी आ गये, वहां जैनधर्म शास्त्री, ज्योतिपतीर्थ, काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ और ज्योतिषाचार्य आदि परीक्षाएँ पास कीं। इसके बाद संस्कृत, हिन्दी तथा प्राकृत और जैनशास्त्र विषय से एम ए करने के अनन्तर पीएच.डी. और डी. लिट्. की भी उपाधिया प्राप्त कीं। कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते हुए आपने सर्वप्रथम आरा की रात्रि पाठशाला में अध्यापन तथा शास्त्र प्रवचन का कार्य किया। उसके बाद जैन बाला विश्राम आरा में अध्यापन तथा जैन सिद्धांत भवन, आरा मे पुस्तकालय, अध्यक्ष के रूप मे सेवायें दीं। कुछ समय के लिए शासकीय सस्कृत विद्यालय, सुलतानगज में ज्योतिष का अध्यापन किया। अनन्तर हरप्रसाददास जैन कालेज आरा मे संस्कृत-प्राकृत विभाग मे प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा बाद मे विभाग के अध्यक्ष भी बने। ज्योतिषाचार्य जी ने अपने समय मे प्राकृत और जैनविद्या का खूब प्रचार-प्रसार किया था।

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री लेखन, एवं सम्पादन कला के मर्मज्ञ थे, उन्होने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन और

आज आवश्यकता अलगाव की नहीं, एकत्व की है। आवश्यकता उन ताकतों को बढ़ावा देने की है, जो जोड़ती हैं और उन तमाम स्थितियों को नकारती हैं जो तोड़ती हैं या आपस में बैर बढ़ाती हैं।

अनुवाद किया है। उनकी प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं—1. भारतीय ज्योतिष, 2 आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, 3. संस्कृत गीतिकाव्यानुचिन्तनम्, 4. संस्कृतकाव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, 5. स्नातक संस्कृत व्याकरण, 6. चन्द्र संस्कृत व्याकरण, 7. हेमशब्दानुशासन : एक अध्ययन, 8. अभिनव प्राकृत व्याकरण, 9. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, 10. हरिभद्र के प्राकृत कथासाहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, 12. जैन साहित्य परिशीलन, 13. भाग्यफल, 14. प्राकृत-प्रबोध, 15. संस्कृत-प्रबोध, 16. पुराने घाट : नयी सीढ़ियाँ, 17. भात, 18. पंडित गोपालदास वरैया : संक्षिप्त झांकी, 19. आचार्य जुगलकिशोर : व्यक्तित्व और कृतित्व, 20. विश्वशांति और जैनधर्म, 21. तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (चार भाग), 22. व्रततिथिनिर्णय, 23. केवल-ज्ञानप्रश्न चूड़ामणि, 24. भद्रबाहु-संहिता, 25. मुहूर्त दर्पण, 26. रिट्ठसमुच्चय, 27. रत्नाकरशतक, 28. धर्मामृत, 29. लोक-विजय-यंत्र, 30. अलकार चिन्तामणि, 31. रघुवंश (द्वितीय सर्ग), 32. कुमारसंभव (पचम सर्ग), 33. पाइय-पज्ज-संगहो (दो भाग), 34. पाइय-गज्ज-सगहो पदढ्मो भागो, 35. वरैया स्मृति-ग्रन्थ। वे मागधम् (संस्कृत), जैनसिद्धांत भास्कर (हिन्दी), जैन एण्टीक्वेरी (अंग्रेजी), भारतीय जैन साहित्य परिवेशन आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं के दीर्घावधि तक सम्पादक भी रहे।

डॉ. शास्त्री देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान, आरा के मानद निदेशक, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष, श्री गणेशवर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी के संयुक्तमंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी के ट्रस्टी, स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध सस्थान, वैशाली की जनरल काउन्सिल के सदस्य तथा बिहार प्रादेशिक दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी आदि संस्थाओ को सक्रिय सदस्य के रूप में सहयोग करते रहे।

12. **ब्र. पतासी बाई :** ब्र पतासी बाई का जन्म मारवाड के मारौठ नगर मे वि स. 1948 में हुआ था। बचपन से ही इनकी रुचि धर्म की ओर थी। 13 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह निवासी श्री हीरालाल जैन के साथ हुआ, परन्तु दुर्दैव से कुछ ही समय में उनके पति दिवगत हो गये। इस दुःख को पूर्व जन्म का पापोदय मानकर पतासीबाई ने समताभावपूर्वक सहन किया। उनकी जेठानी ने उन्हें पढाया-लिखाया। वे निरन्तर स्वाध्याय और वैराग्य में संलग्न रहने लगीं। उन्होने अनेक तीर्थो की यात्रा की। भगत प्यारे लाल जी पं. वंशीधरजी न्यायालकार और पं. खूबचन्द जी सिद्धांतशास्त्री से ज्ञान प्राप्त करने का उन्हें सुयोग मिला।

ब्र. पतासी बाई ने स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी और गया की जैन पाठशाला को दान दिया। बाई जी ने अपने जीवन-काल में ब्र. छोटेलाल जी के सहयोग से 17 पाठशालाएँ खुलवाई तथा उन्हें दान दिया। पन्द्रह पंचकल्याणको मे शामिल हुई। कोडरमा के पंचकल्याणक मे उन्हे "महिलाभूषण" की उपाधि से विभूषित किया गया था। आचार्य शान्तिसागर जी, क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी जी, मुनि आनन्दसागर जी आदि के सान्निध्य मे आपने ज्ञान को प्रशस्त किया। आपने अपना तन-मन और धन सब कुछ शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया।

13. **ब्र. पण्डिता ब्रजबाला देवी :** विदुषीरत्न पण्डिता ब्रजबाला देवी पूज्य माँ श्री ब्र. चन्दाबाई की छोटी बहिन थी। ये बहुत प्रतिभाशाली थीं। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी का आपको अच्छा ज्ञान था। जैन सिद्धांत की तो आप विदुषी ही थी। जैन बाला विश्राम के संचालन में आप सदा सक्रिय रही। आश्रम के सभी दायित्वों का निर्वाह जीवन पर्यन्त किया। पं. ब्रजबाला देवी अखिल भारतीय महिला परिषद् की मंत्री, जैन बाला विश्राम की उपसचालिका तथा जैन महिलादर्श की उपसंपादिका भी रहीं। आपने जैन मिशन की सदस्यता ग्रहण कर स्व. बाबू कामता प्रसाद जी के साथ जैन सस्कृति के सम्वर्द्धन हेतु पर्याप्त कार्य किया। दुर्भाग्य से आपको 17 वर्ष की अवस्था में वैधव्य का दारुण दुःख सहना पड़ा था। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन नारी के उत्थान हेतु समर्पित कर दिया। 1992 ई. में जैनबाला विश्राम की संचालिका रहते हुए आपने

जैन धर्म अत्यधिक सुसंगत स्वतंत्र और सुव्यवस्थित है। ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा यह अधिक सरल, सम्पन्न एवं विविधतापूर्ण है, डा. ए. गिरनार (एक फ्रेंच विद्वान)।

समाधिमरण पूर्वक शरीर का त्याग किया।

14. प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन : मध्यप्रदेश के सागर जिलान्तर्गत मालथौन ग्राम में 1 फरवरी 1929 को जन्में डॉ. राजाराम जैन की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय प्रायमरी स्कूल में हुई। उसके बाद वे संस्कृत, प्राकृत एवं जैनधर्म का अध्ययन करने हेतु श्री वीर विद्यालय, पपौरा (टीकमगढ) गये। वहॉ से उच्चशिक्षा के निमित्त 1941-42 ई. में वाराणसी आये, जहॉं स्याद्वाद महाविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मध्यमा, शास्त्री, आचार्य, एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षाएँ पास कीं। 1958 में प्राकृत शोध संस्थान, वैशाल से प्राकृत और जैनशास्त्र मे एम.ए की उपाधि प्राप्त की। 1954-55 ई. में डॉ. जैन ने राजकीय महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र) में हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य किया। 1956 मे डॉ. हीरालाल जैन का सान्निध्य पाने की लालसा से शहडोल की प्राध्यापकी छोड़कर वे वैशाली मे "प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान" में प्रथम पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे पदस्थापित हो गये। यहॉ पर सरकारी सेवा के साथ डॉ. नथमल टाटिया के निर्देशन में सन् 1958 ई. में "महाकवि रइधू के ग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोधकार्य प्रारभ किया। उक्त शोधप्रबन्ध पर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से 1964 ई. मे शोधोपाधि (पी एच डी.) मिली।

सन् 1961 ई. में डॉ जैन हरप्रसाददास जैन कालेज, आरा (मगध विश्वविद्यालय) के संस्कृत-प्राकृत विभाग मे प्राध्यापक होकर आरा चले गये। वहां से वे प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद से 1991 ई. में सेवानिवृत्त हुए। डॉ. जैन देवकुमार जैन प्राच्य शोध संस्थान, जैन सिद्धांत भवन, आरा के मानद् निदेशक रहे हैं तथा जैन सिद्धांत भास्कर के सम्पादक मण्डल मे लम्बे समय से है। भोजपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आरा और नागरी प्रचारिणी सभा, आरा से सक्रिय रूप से जुडे रहे। उक्त संस्थाओ के शोध-बुलेटिनो का आपने अनेक वर्षो तक सम्पादन भी किया।

आपके द्वारा लिखित/सम्पादित लगभग ण दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित हैं, जिनमे रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, रइधू ग्रन्थावली भाग-1 एव 2, वड्ढमाणचरिउ (विबुध श्रीधर), पुण्णसव कहा, श्रमण साहित्य में वर्णित बिहार के कुछ जैन तीर्थभूमियॉं, आचार्य भद्रबाहु, चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक एव राजा कल्कि वर्णन, जैन साहित्य की प्रगति, कुमार पालचरित (1-2सर्ग) हिन्दी अनुवाद, पाइय-गज्ज-संगहो, अगडदत्तचरियं (देवेन्द्र गणि) हिन्दी अनुवाद प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु आचार्य कुन्दकुन्द, भविष्यदत्तकाव्य (महेश्वरसूरि) हिन्दी अनुवाद, आरामसोहाकहा (सघतिलक सूरि), सम्पादन एव हिन्दी अनुवाद, कहाणय अट्ठगं, अतीत के पृष्ठो से, सरल प्राकृत व्याकरण, लीलावाई कहा (312) हिन्दी अनुवाद, सेतुबन्ध (1,2 एव 11 आश्वास) हिन्दी अनुवाद, मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक, छक्खडागम लेखन कथा आदि प्रमुख है। डॉ जैन ने अनेक स्मृति-ग्रन्थो, अभिनन्दन-ग्रन्थो, स्मारिकाओ आदि का सम्पादन भी किया है।

डॉ. जैन की सेवाओ का मूल्याकन करते हुए विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा उन्हें सम्मान/पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। वे अपनी विद्वत्ता के लिए भारत सरकार के "राष्ट्रपति सम्मान" से भी सम्मानित हो चुके है। वर्तमान मे डॉ जैन कुन्दकुन्द भारती जैन शोध सस्थान, नई दिल्ली के डायरेक्टर के पद पर कार्यरत है। प्राकृत विद्या, जैन सदेश आदि पत्र-पत्रिकाओ के मानद सम्पादक है। अनेक राष्ट्रीय महत्व की अकादमिक संस्थाओ/समितियो के भी मानद सदस्य है। डॉ. विद्यावती जैन आपकी धर्मपत्नी है।

15. डॉ. लालचन्द जैन : डॉ. लालचन्द जैन का जन्म किशनगढ़, छतरपुर (म.प्र.) में 3 मई 1944 ई. को हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय प्रायमरी स्कूल मे हुई। पश्चात् मिडिल की शिक्षा प्राप्त करने हेतु वे संस्कृत विद्यालय, साढूमल (उ प्र.) गये। वहां से उच्च शिक्षा प्राप्ति के निमित्त स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी आये। उन्होंने सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर से क्रमश.

स्वाध्याय के प्रति लगन और श्रेष्ठ जनों की सगति का लाभ जिसे प्राप्त हो, उसे औरों से अधिक मान-सम्मान मिलता ही है।

जैनदर्शनाचार्य, शास्त्राचार्य, एम.ए. दर्शनशास्त्र, पीएच डी. (दर्शनशास्त्र) तथा एम ए., संस्कृत, और प्राकृत एवं जैनशास्त्र की उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्राकृत और जैनशास्त्र की स्नाकोत्तर उपाधि हेतु उन्हे स्वर्णपदक मिला। आपने सन् 1972 से 1974 तक जैन विश्वभारती, लाडनूं में प्राध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य किया। उसके बाद जुलाई 1974 ई. मे प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में जैन तर्कशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए। बिहार शिक्षा सेवा वर्ग-1 मे प्रोफेसर एव कार्यकारी निदेशक के रूप मे कार्य करते हुए डॉ. जैन 31 मई 2002 को सेवानिवृत्त हुए। फरवरी 1988 से मार्च 1990 तक और जनवरी 2002 से मई 2002 तक दो वार संस्थान के कार्यकारी निदेशक रहे। सम्प्रति उत्कल युनिवर्सिटी ऑफ कल्चर मे नवस्थापित जैन चेयर पर कार्यरत हैं। डॉ. जैन कर्मठ एव अध्यवसायी विद्वान् हैं। अद्यावधि उनकी प्रकाशित कृतियो मे–1. जैनदर्शन में आत्मविचार, 2. प्राकृत गद्यपद्य वध, भाग-2,3, 3. रिसर्व वुलेटिन न 6, 4. लीलावई, सम्पादन-अनुवाद, 5 कंसवहो सम्पादन एवं अनुवाद, 6 प्राकृत गद्यपद्य बंध, भाग-3, हिन्दी अनुवाद, 7 अद्वैतवाद, 8. नयचक्र, सम्पादन और अनुवाद, 9. तत्त्वसार, सम्पादन एव अनुवाद प्रमुख हैं। डॉ जैन के शताधिक शोध लेख स्मृतिग्रन्थो, अभिनन्दन ग्रन्थों, स्मारिकाओ तथा शोधपत्रों में प्रकाशित है। डॉ. जैन "महावीर-विमल देशना" मासिक पत्र के भी सम्पादक है।

16. **डॉ. विद्यावती जैन :** आपका जन्म स्थान मध्यप्रदेश का जबलपुर नगर है। आपका शुभ-विवाह प्राकृत और जैनविद्या के मूर्धन्य मनीषी प्रो राजाराम जैन के साथ हुआ। आप हिन्दी साहित्य और प्राकृत-जैनविद्या मे एम.ए. है। श्रीमती जैन ने "महाकवि सिंह और उनका अपभ्रंश महाकाव्य पउम-चरिउ" विषय पर शोध कार्य कर पी-एच.डी तथा "सतकवि देवीदास और उनके अप्रकाशित साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर बिहार विश्वविद्यालय से डी लिट् की उपाधि प्राप्त की है। आप मगध विश्वविद्यालय से सम्वद्धता प्राप्त महन्त महादेवानन्द महिला कॉलेज, आरा मे हिन्दी की प्राध्यापिका नियुक्त हुई। बाद मे रीडर और विभागाध्यक्ष के पद से तीन वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हुई है। आप अच्छी वक्ता है। आरा शहर की अनेक सस्थाओ से आप सम्वद्ध रही है, जिनम महावीर जयन्ती समारोह समिति, आरा नागरी प्रचारिणी सभा, भोजपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आरा आदि प्रमुख है। आपने अनेक शोध छात्रो का शोधपथ-प्रदर्शन भी किया है।

श्रीमती जैन की प्रकाशित कृतियो मे–पउमचरिउ (पुरस्कृत), देवीदास विलास, महावीर रास, हिन्दी के प्रसिद्ध लोक कवि, मध्यकालीन जैन सट्टक नाटक सग्रह, प्राच्य भारतीय ज्ञान विज्ञान के महामेरु आचार्य कुन्दकुन्द, आरामसोहाकहा, तथा सेतुवन्ध कुमारपाल चरित एव लीलावई के छात्रोपयोगी लघु सस्करण है। इनके शताधिक सशोधनात्मक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। सम्प्रति जैन महिलादर्श के सम्पादक मण्डल की सदस्या है।

17. **सुश्री शशिप्रभा जैन "शशांक" :** बीसवीं शताब्दी के पॉचवे दशक मे जन्मी सुश्री शशिप्रभा जैन लगभग 12 वर्ष की आयु मे अपने जन्म नगर सिवनी (म प्र) से अध्ययनार्थ श्री जैन वाला विश्राम, आरा आ गयी थी। यही रहकर उन्होंने विशारद तक की धार्मिक शिक्षा प्राप्त की तथा लौकिक शिक्षा में भी बी ए पास किया, वाद मे हिन्दी विषय लेकर एम ए. उपाधि ली। अध्ययन के बाद वे सबसे पहले जैन बाला विश्राम माध्यमिक विद्यालय, आरा मे शिक्षिका नियुक्त हुई। अनन्तर जैन बाला विश्राम हाई स्कूल में शिक्षिका बनीं, फिर लगभग 1985 मे उक्त विद्यालय की प्राचार्या बन गयी। उन्होने शिक्षिका और प्राचार्या के रूप मे अपने दायित्व को बखूबी पूरा किया। उनकी देखरेख मे विद्यालय ने जिला एव राज्य स्तर के विभिन्न आयोजनो मे अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

साहित्यिक क्षेत्र मे उनकी शताधिक कविताएँ और लेख अनके पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित है। मॉ श्री चन्दावाई के साथ रहकर वे जैन महिलादर्श के सम्पादन एव महिला परिषद् से जुडी रही। मॉ श्री के समाधिमरण के वाद स्वय जैन महिलादर्श के सम्पादक मण्डल में शामिल हुई। पू ब्र चन्दा मां श्री के जीवन-दर्शन पर शशि जी "चन्द्रायण" नामक एक महाकाव्य की रचना कर रहीं थीं, किन्तु दुर्देव से वह पूर्ण नही हो पाया और वीच मे ही 1996 ई मे उनका स्वर्गवास हो गया।

विद्या मनुष्य के लिए एक अविनाशी निधि है, इसके सामने धन-सम्पत्ति का कोई महत्व नहीं है– वह माता के समान सुख देने वाली तथा दान देते रहने पर भी सदा-सदा बढ़ती रहने वाली दुर्लभ वस्तु है।

धार्मिक और साहित्यिक रुचि, काव्य-प्रतिभा तथा संस्थाओं के प्रति समर्पण से उन्हें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। 25 सौ वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में जैन समाज की और से उन्हें प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया गया था। जैन बाला विश्राम के अमृत महोत्सव 1997 ई. में शशि जी के द्रव्य से पूज्या माँ श्री की "उपदेश रत्नमाला" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है।

18. डॉ. शान्ति जैन : डॉ. शान्ति जैन का जन्म 4 जुलाई 1946 ई. को आरा, नगर मे हुआ था। आपके पिता श्री हेमराज जैन मूलतः मध्यप्रदेश के छतरपुर मण्डलान्तर्गत बकस्वाहा ग्राम के निवासी थे। आपकी स्कूल स्तर की शिक्षा जैन बाला विश्राम आरा मे हुई। आपने हिन्दी और संस्कृत भाषा में स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्रथम श्रेणी में प्राप्त की हैं। शोधकार्य करके आप पी-एच.डी. और डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त कर चुकीं हैं। साहित्य के साथ संगीत में भी आपको महारथ हासिल हैं। "संगीत प्रभाकर" की उपाधि भी आपने प्राप्त की थी। विगत 35 वर्षो से आपके गीतों, कविताओं, वार्ताओं और मानस पाठ आदि को श्रोता/दर्शक आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से मंत्रमुग्ध होकर देख-सुन रहे हैं। पटना के मगध महिला कालेज में 1972 ई. में आप संस्कृत की प्राध्यापिका नियुक्त हुई। उसके बाद अनेक महाविद्यालयों मे अध्यापन कार्य करती हुई इस समय श्री हरप्रसाद दास जैन कॉलेज, आरा में सम्कृत-विभाग की अध्यक्ष तथा रीडर के पद पर कार्यरत हैं। आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् मे भी कुछ समय तक अनुसंधान कार्यो का सचालन किया है।

डॉ. शान्ति जैन का संगीत और साहित्य दोनो क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान और योगदान है। अभी तक उनकी कुल 22 पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है, जिनमे चन्दनबाला (प्रबन्ध काव्य), लोकगीतो के सन्दर्भ और आयाम, व्रत और त्यौहार, पौराणिक एव सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उगो है सूर्य, ऋतुगीत, चैती, भगवान महावीर स्मृति तीर्थ स्मारिका आदि उल्लेखनीय है। डॉ. जैन के फिल्मी गीत भी बहुत चर्चित है। उन्हे चैती पर राजभाषा पुरस्कार, संगीतरूपक के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार तथा अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

19. डॉ. सुनीता जैन : डॉ. सुनीता जैन का जन्म रुड़की में हुआ था। इनके पिता जी मूलत· मध्यप्रदेश के निवासी थे। आप प्राकृत और जैनविद्या के प्रतिष्ठित मनीषी विद्वान् प्रो गोकुलचन्द्र जैन की धर्मपत्नी हैं। आप हिन्दी साहित्य और प्राकृत एव जैनविद्या में एम ए. तथा एम एड् है। बिहार विश्वविद्यालय से "जैन भाक्तिकाव्य परम्परा" विषय पर आपने पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की है। आपने रिसर्च एशोसिएटशिप योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से आचार्य कुन्दकुन्द के "पवयणसारसुत्त" का समालोचनात्मक सम्पादन और अध्ययन किया है। आपके शोधात्मक आलेख स्तरीय शोधपत्रों मे प्रकाशित होते रहते है। आपकी रेडियो वार्ताएँ आकाशवाणी के वाराणसी, लखनऊ आदि केन्द्रो से प्रसारित हुई हैं। आप 1982 से अनवरत जैन बाला विश्राम उच्च विद्यालय, आरा में वरिष्ठ शिक्षिका के पद पर कार्यरत है। आप "महावीर विमल देशना" मासिक-पत्र की सम्पादिका हैं।

20. बाबू सुबोधकुमार जैन : श्री सुबोधकुमार जैन आरा के प्रसिद्ध जमींदार परिवार के राजर्षिबाबू देवकुमार के पौत्र तथा श्री निर्मलकुमार जैन के सुपुत्र हैं। जैनधर्म, सस्कृति और साहित्य के प्रति अनन्य रुचि रखने वाले कवि हृदय सुबोध बाबू छह दशको से अपने पूर्वजो द्वारा स्थापित-संचालित विभिन्न संस्थाओं की संचालन पूरी तन्मयता से कर रहे है। उनके पूर्वजो द्वारा बनवाये गये मन्दिर, धर्मशाला, पुस्तकालय, छात्रावास एवं शिक्षण संस्थान जूनागढ, मंगलोर, श्रवणबेलगोला, कोशाम्बी, वाराणसी, चन्द्रावती, अयोध्या, मन्दारगिरि, पावापुरी, राजगृह, सम्मेदशिखर, और आरा आदि नगरों में चल रहे हैं। उक्त परिवार द्वारा अकेले आरा नगर में ही 17 सस्थायें स्थापित और संचालित हैं। जिनमें से 6-7 संस्थाओं को तो सुबोध बाबू ने ही स्थापित किया है। पॉच दशकों से वे जैन सिद्धांत भास्कर एवं जैन एण्टीक्वेरी के प्रकाशन की भी देख-रेख कर रहे हैं। भास्कर के प्रत्येक अंक में उनके लेख, पुस्तक समीक्षाये आदि अवश्य होते हैं।

लोक में विद्या विमुख व्यक्ति को अधिक आदर का पात्र नहीं माना जाता।

साहित्यिक क्षेत्र में भी सुबोध बाबू का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी प्रकाशित रचनाओं में 1. ध्यान कैसे करें, 2. ओंकार धुनिसार, 3. सम्राट कुमारपाल, 4. कौशाम्बीगढ़ का इतिहास, 5. राजुल, 6. राष्ट्रीय एकता की भाषा हिन्दी, 7 प्रकाशदीप, 8. सोलहकारण भावनाओं की पूजा का रूपान्तर, 9 भगवान बाहुबलि, 10. बूंदभर दूध, 11. राजर्षि देवकुमार की कहानी, 12. जैन चित्रकला, 13. हमारे पूर्वज हमारे हितैषी, 14. द्रव्यसंग्रह : पद्यानुवाद, 15. समयसार पद्यानुवाद आदि है। धर्मदर्शन के कई अन्य ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी उन्होने किया है।

श्री सुबोध बाबू श्री दि. जैन बीसपंथी कोठी मधुवन, शिखर जी के अध्यक्ष, बिहार प्रादेशिक दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, आरा के मत्री, स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के मंत्री, आदिनाथ ट्रस्ट, आरा के मत्री और अध्यक्ष, आरा के मैनासुन्दर ट्रस्ट, बच्चू लाल ट्रस्ट, डी. के. जैन ट्रस्ट, जैन सिद्धांत भवन, एवं प्रायः सभी जैन शैक्षणिक सस्थाओं के वर्षो तक मंत्री एवं अध्यक्ष रहे हैं। आपके परिवार ने हमेशा विद्वानों और विद्याप्रेमियों का सम्मान किया है। इस समय अधिकांश संस्थाओं का संचालन उनके कर्मठ एवं सुयोग्य पुत्र श्री अजयकुमार जैन एडवोकेट कर रहे है। उनके पौत्र पराग जैन भी सामाजिक गतिविधियों में रुचिपूर्वक संलग्न रहते हैं। श्री सुबोध कुमार जैन के दादा राजर्षिबाबू देवकुमार जैन ने जैन सिद्धात भवन और जैन कन्या पाठशाला को स्थापित किया था। वे कुछ वर्षो तक जैनगजट के सम्पादक भी रहे है। उनके पुत्र निर्मलकुमार जैन ने जैन सिद्धांत भवन का वर्तमान भवन निर्मित करवाकर उसे स्थायी स्वरूप प्रदान किया था। यह परिवार जैन धर्म और संस्कृति के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन हेतु निरन्तर प्रयत्नशील एवं समर्पित रहा हैं।

21. श्रीमती सुलोचना जैन : श्रीमती सुलोचना जैन का जन्म मध्यप्रदेश के सिमगा ग्राम में सन् 1946 मे हुआ था। आपके पिता स्व वृन्दावन जैन तथा माता जी अत्यन्त दयालु प्रवृत्ति के श्रावक थे। आप 1963 ई. में जैन बाला विश्राम आरा आयी। यहाँ आप बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त कर 1973 ई. में जैन वाला विश्राम मिडिल स्कूल मे शिक्षिका बनीं। 1975 ई. में उच्चविद्यालय (जैन बाला विश्राम) मे शिक्षिका नियुक्त हुई। 1992 ई में मॉ की ब्रजबाला देवी के समाधिमरण के बाद जैन बाला विश्राम की संचालिका बनीं। मुझे शशिप्रभा जी के निधन के पश्चात् 1996 से आप प्राचार्या के पद पर कार्यरत हैं। सामाजिक एव धार्मिक कार्यो में आपको विशेष रुचि है। इसलिए कई सामाजिक सस्थाओं की ओर से आपको सम्मानित किया जा चुका है। आपने अपने द्रव्य से कई तीर्थो पर मूर्तियॉ स्थापित कराई हैं तथा सौभाग्य रत्नमाला, मन्दिर आदि पुस्तको का प्रकाशन भी कराया है। पूजापाठ, स्वाध्याय आदि आपकी दिनचर्या के अंग है।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त पं. अशोककुमार "रवि" ईसरी, पं कस्तूरचन्द शास्त्री, ईसरी, पं. जैनेन्द्रकुमार जैन ईसरी, पं. सुरेशचन्द जैन हजारी बाग, पं. वीरचन्द जैन हजारीबाग, प. रत्नेशकुमार जैन रांची (सम्पादक अहिंसा सन्देश), पं. भैयालाल जैन ईसरी, प्रो. डी.सी. जैन आरा, डॉ. पूर्णेन्द्रचन्द्र जैन आरा, डॉ. राकेन्द्र चन्द्र जैन आरा, डॉ. सूरजमुखी जैन आरा (मुजफ्फनगर), डॉ. चन्द्रमुखी जैन आरा (डिबूगढ) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन जागरण के अग्रदूत पूज्य क्षु. गणेशप्रसाद जी वर्णी ने भी ईसरी में पर्याप्त समय तक संयम की साधना की है। इन लोगो ने जिनवाणी की सेवा, साधना आदि मे अपना उपयोग लगाकर स्वपर कल्याण किया।

□

जीवन को संवारने और भूलों को सुधारने के लिए दण्ड व्यवस्था भी आवश्यक है।

महाराष्ट्र के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

– प्रो. भागचन्द भास्कर, नागपुर

महाराष्ट्र दक्षिणापथ का प्रवेश द्वार है। उसकी सीमा यद्यपि परिवर्तित होती रही है, फिर भी वर्तमान महाराष्ट्र में दण्डकारण्य को छोड़कर विदर्भ और अपरान्त (कोकण) उसके मुख्य भौगोलिक भाग हैं। इस समूचे भाग में जैन सस्कृति कदाचित् प्रारम्भकाल से ही लोकप्रिय रही है। सातवाहन कालीन भाजे गुफा मे प्राप्त भित्तिचित्र को विद्याधर सस्कृति से सवद्ध माना गया है। भद्रवाहु प्रथम की परम्परा मे दीक्षित मौर्य सम्राट्-चन्द्रगुप्त का सारा जैन सघ महाराष्ट्र मार्ग से ही श्रवणवेलगोल पहुंचा था। इसके पूर्व यही से श्रीलका मे भी जैनधर्म गया था। धाराशिव (तेर), अजनेरी आदि स्थानो की जैन गुफायें और महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग जैनत्व का आवाहक है। पूजा के समीपवर्ती ग्राम पाल मे प्राप्त प्राचीन अभिलेख मे उट्टंकित 'नमो अरहतान' खारवेल अभिलेख और षड्खण्डागम के मगलाचरण की याद दिला देता है। महिमा नगरी नागपुर, एलिचपुर, चादा, वर्धा, अमरावती, नासिक, नादेड, कगड, मान्यखेट (साताग), सागली, वेलगाव, कोल्हापुर, सोलापुर आदि मे हुई जैन सास्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियो ने महाराष्ट्र को एक जीवन्त प्रदेश सिद्ध कर दिया है। पुष्पदन्त, ब्रह्मगुणदास आदि प्राचीन कवियो ने उसकी जीवन्तता को सीचा है।

इस जीवन्तता को बनाये रखने मे समाज के हर वर्ग का अपना-अपना योगदान भी रहा है, जिसे मात्र एक आलेख मे समेटना सभव नही लगता। उसे तो पृथक् शोधप्रवन्ध की आवश्यकता होगी। अत यहा हमने 'मनीषी' को मात्र साहित्यिक विधा से परिवद्ध कर दिया है। इसमे साहित्यकारो और चिन्तको का जिक्र करते समय सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास का भी एक परिदृश्य नजर आ सकेगा।

मनीषियो को हमने कालक्रम से ही सयोजित करना अधिक उचित समझा। इसमे दिवगत और विद्यमान, दोनों वर्ग समाविष्ट हो जाते हैं। काल-परिचय न होने के कारण यह कालक्रम कही-कही विशृखलित भी हो गया होगा। कतिपय मनीषी हमारी अल्पज्ञता के कारण लेखनी के भीतर आने से वचित भी हो गये होंगे अथवा उनके योगदान का समुचित या पर्याप्त उल्लेख नही किया जा सका होगा। इसके लिए सुधी पाठक क्षमा करेंगे।

वीसवी शताब्दी मे नारी चेतना का काफी जागरण हुआ। जैन महिला वर्ग भी उससे अप्रभावित नही रहा। विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि जैसे अनेक आन्दोलन भी चलाये गये, जिनका सम्बन्ध समाजिक विकास से था। शैक्षणिक क्षेत्र मे भी महिला वर्ग ने अपना स्थान वना लिया है। इस दृष्टि से हमने महिला मनीषी को पृथक् वर्ग के रूप मे आकलित किया है इस तरह यह आलेख दो भागो मे विभाजित किया गया है-पुरुष वर्ग और महिला वर्ग।

महाराष्ट्र की जैन सांस्कृतिक चेतना के विकास मे मराठी भाषियो का तो योगदान है ही, पर हिन्दी और गुजराती आदि भाषा-भाषियो के योगदान की भी उपेक्षा नही की जा सकती। इसलिए हमने यहा ऐसे भी जैन मनीषियो को इस आलेख मे सम्मिलित किया है, जिन्होने अपने जीवन का अमूल्य बहुभाग यहा विताया है और यहा की चेतना के विकास में अपना खून-पसीना वहाया है, प्रतिभा और सामर्थ्य का उपयोग किया है। डॉ. हीरालाल जैन, प देवकीनन्दन शास्त्री, प नाथूराम प्रेमी जैसे मनीषियों को कैसे भुलाया जा सकता है? आशा है, आप हमारे विचारों से सहमत होंगे। योगदान का मूल्याकन वस्तुत मात्र जन्मभूमि पर आधारित नही होता, वल्कि उससे कहीं अधिक कर्मभूमि पथ का निर्माण करती है।

बीसवी शताब्दी का मराठी जैन साहित्य

मराठी जैन साहित्य का प्रारम्भ लगभग पन्द्रहवी शताब्दी से होता है। जिसका प्रारम्भ गुजराती विद्वानों द्वारा हुआ। इसमे काव्य, पुराण, कथासग्रह, उपदेशात्मक पद और अभग हैं। इन विधाओं के लेखकों में भट्टारक अधिक हैं और गृहस्थ कम।

डॉ. सुभाषचन्द्र अक्कोले ने मध्यकालीन मराठी जैन साहित्य पर अच्छा कार्य किया है।

मराठी साहित्य के समान आधुनिक मराठी जैन साहित्य भी अंग्रेजी शिक्षापद्धति और मुद्रण व्यवसाय से प्रभावित हुआ है। 1850 के बाद यह स्थिति अधिक देखी जा सकती है। मराठी जैन समाज में इस परिवर्तन का सूत्रपात सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी द्वारा सन् 1884 में स्थापित जैन बोधक से हुआ है। विधाओं और विषयों का वैविध्य, तथा भाषा की सरलता इसकी विशेषता है। मौलिक ग्रन्थों का निर्माण कम और अनुवाद अधिक हुआ है। इनमें कथा, स्तोत्र, पूजा, सिद्धान्त, इतिहास, तीर्थ विवरण और धर्मतत्व से सम्बद्ध साहित्य अधिक रचा गया है। इनके लेखकों में गृहस्थों की ही संख्या अधिक है।

मराठी जैन साहित्य में नवयुग का निर्माण हुए आज लगभग एक शतक हो चुका है। सन् 1985 के आसपास ही कोल्हापुर में श्री जिनविजय पत्र का प्रारम्भ हुआ। 1899 में दक्षिण भारतीय दि. जैन महासभा की स्थापना हुई। इस सभा की ओर से प्रसिद्ध चिन्तक और सुधारक अण्णा साहेब लट्ठे ने 'श्री जिनविजय' का नाम "प्रगति आणि जिनविजय" रखा और उसे 1902 में शुरू किया। इस पत्र ने सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में अच्छा कार्य किया और अभिनव मराठी जैन साहित्य के निर्माण का सूत्रपात हुआ। साथ ही प्राचीन जैन मराठी साहित्य का भी मूल्यांकन होने लगा। विद्वानों ने जैन साहित्यकार कवि रणदिवे, कादम्बरीकार वा. ना. शहा, बालसुत, मकरन्द व कवि कांचन नाना रामचन्द्र नाग, राजेन्द्र वीडकर, प्रदीप शहा आदि का उल्लेख मराठी साहित्यकार के रूप मे किया। 1934 मे स्तवनिधि में तात्या नेमिनाथ पांगल की अध्यक्षता में जैन साहित्य संमेलन हुआ। इसके बाद सांगली में "जैन महाराष्ट्र कवि मण्डल" की स्थापना हुई। इसी बीच वर्धा से भी पत्र प्रकाशित हुए जैन बन्धु और वाग्विलास तथा जैन भाग्योदय। 1925 में सोलापुर से भी प्रभावना पत्र निकला। इनके अतिरिक्त दिव्यध्वनि, श्राविका, जन, तपस्या, जैन पथिक, जैन जगत आदि पत्रिकायें भी साहित्यिक क्षेत्र में थीं।

इसी सन्दर्भ में षड्खण्डागम के आदि प्राचीन ग्रन्थों के संपादन-प्रकाशन का इतिहास भी स्मृति पटल पर घूमने लगता है। कारंजा के बलात्कारगण मंदिर में प्राचीन जैन पाण्डुलिपियों का अच्छा संग्रह है। बीसवीं शती के तीसरे दशक में पं. देवकीनन्दनजी, और सेठ गोपाल सावजी चवरे के पुनीत सहयोग से डॉ. हीरालाल जी को यहां से अपभ्रंश ग्रन्थों की कुछ पाण्डुलिपियां मिल सकीं, जिनका सम्पादन और अनुवाद प्रस्तुतकर भारतीय ज्ञानपीठ से उन्होंने उनका प्रकाशन कराया।

1933 में अखिल भारतवर्षीय दि. जैन परिषद का वार्षिक अधिवेशन इटारसी मे समाज सुधारक बैरिस्टर जमनाप्रसाद जज, नागपुर की अध्यक्षता में हुआ। वहीं भेलसा (विदिशा) के सेठ लक्ष्मीचन्द्र सिताबरायजी भी पहुंचे हुए थे। जज साहब ने समझा-बुझाकर सेठ सा. से साहित्योद्धार के लिए दस हजार रूपयों की घोषणा करा दी, जिसका उपयोग धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थों के प्रकाशन में किया जाना भी निश्चित हो गया। इधर सिघई पन्नालालजी के अटूट प्रयत्नों से धवला और जय धवला की प्रतिलिपि अमरावती पहुंच गई और डॉ. हीरालाल ने पं. बालचन्द्रजी, प. फूलचन्द्र जी, पं. हीरालालजी, डॉ. उपाध्येजी आदि विद्वानों के सहयोग से सम्पादन कार्य प्रारम्भ कर दिया। सोलह जिल्दों में 1968 तक उनका सम्पादन हो गया जिनके प्रकाशन का श्रेय सेठ माणिकचन्दजी सोलापुर को जाता है। सेठ सखाराम दोशी, सोलापुर, नेमचन्द्रजी वकील उस्मानाबाद, पं. लोकनाथ शास्त्री मूडबिद्री, पं. नाथूराम प्रेमी जैसे महानुभावों का भी अनेक प्रकार से इस पवित्र कार्य मे सहयोग रहा। अन्त में इन ग्रन्थों के प्रकाशन का उत्तरदायित्व जैन सिद्धान्त संरक्षणी संघ, सोलापुर को सौपा गया। इस तरह जैनागम की सुरक्षा और प्रकाशन व्यवस्था का मुख्य श्रेय महाराष्ट्र को जाता है जिसमें हिन्दी, मराठी या गुजराती भाषा-भाषियों का कोई भेद नहीं था। इसी तरह सुमतीबाई शहा और सुलोचना बाई भोकरे के नेतृत्व में जैन स्त्री लेखिका संगठन की स्थापना हुई जिसने 1940 में "जैन महाराष्ट्र लेखिका" नाम से जैन महिलाओं के लेखों का संग्रह प्रकाशित हुआ। डॉ. शं. गो. तुलपुले, डॉ. वि.भि. कोलते, डॉ. अ.न. देशपाण्डे, डॉ. रा. चिंढेरे, डॉ. व. भि. कुलकर्णी आदि जैसे निष्णात विद्वानों ने मराठी जैन साहित्य की समुचित ढंग से समीक्षा भी की है।

जातियों के उत्कर्ष से समाज का अपकर्ष कभी नहीं होता।

कन्नड और मराठी जैन साहित्य के बीच प्रारम्भ से ही संबध रहा है। गोमटेश्वर (श्रवणबेलगोला) के चरणों के समीप अंकित शिलालेख मराठी का आद्य शिलालेख है। मान्यखेट (मलखेड) राष्ट्रकूटों की राजधानी रही है जिसमे महाराष्ट्री अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण की रचना हुई। यह भाग कर्नाटक और महाराष्ट्र को जोड़ने वाला रहा है। ज्ञानेश्वर के पूर्ववर्ती मराठी साहित्य पर जैन साधु सन्तों का अच्छा प्रभाव रहा है। ज्ञानेश्वर के 'पसायदान' में और महापुराण के 'लोककल्याणभावना' में बडा भावनात्मक साम्य दिखाई देता है। पुष्पदन्त महाकवि का बहुत सारा समय राष्ट्रकूटों की राजधानी में बीता। वस्तुतः इस समय की मराठी को पूर्व मराठी का रूप कह सकते हैं। कवि नागराज जैसे अनेक ऐसे कवि हुए हैं जो कन्नड और मराठी दोनों भाषाओ मे दक्ष थे। आज भी काफी ऐसे उभयभाषी विद्वान मिलते हैं जिन्होंने दोनों भाषाओं के साहित्य में समान रूप से अपना शोधकार्य किया है।

इस बीसवीं शताब्दी में बाबा दुलीचन्द, नांडेकर, साहित्यचद शहा, कुतीनाथ करके (जन्म 20 अप्रेल 1936), अमीचद शहा, हातकणंगलेकर, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, पं. कल्लाप्पा निटवे, दत्तायेय भवाणी रणदिवे, पं. माणिकचन्द चवरे, सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी, मोतीचन्द गांधी अज्ञात, डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. सुभाषचन्द अक्कोले आदि जैसे बीसों विद्वान हुए हैं और है जिन्होने मराठी और हिन्दी-अंग्रेजी में जैन साहित्य की अभिवृद्धि की है। यहां हम उनमे से कतिपय साहित्यकारों का उल्लेख कर रहे हैं।

प्रारम्भिक मराठी जैन साहित्य में अनूदित रचनाये अधिक हुई, स्वतन्त्र साहित्य का सृजन अधिक नहीं हुआ। ऐसी रचनाओं में विशेष उल्लेखनीय इस प्रकार है। यहां सर्वप्रथम उन साहित्यकारो की रचनाओं का उल्लेख किया जा रहा है जिनके विषय में अधिक कुछ नही मिल सका।

नानचन्द बालचन्द गाधी, उस्मानाबाद ने द्रव्यसग्रह, श्रावकप्रतिक्रमण, रविवारव्रतकथा इत्यादि का अनुवाद किया। नेमचन्द्र बालचन्द वकील ने गोम्मटसार का अनुवाद, कर्मसिद्धान्त पर आधारित अनेक ग्रन्थो का अनुवाद, ईश्वर कुछ करता है क्या? गुणस्थानचर्चा, सुभाषितावली, सामायिकपाठ, सज्जन चित्तवल्लभ, पद्मनन्दिपंचविंशति आदि ग्रन्थो का अनुवाद किया। हीराचन्द अमीचन्द शहा की कुछ स्वतन्त्र रचनाये मिलती हैं—सम्राट् अशोक, छत्रसाल और उषा (उपन्यास), प्रणयी युवराज (नाटक) आदि। बालचन्द रामचन्द कोठारी ने धर्मामृतरसायन का अनुवाद किया और गीतारहस्य पर आधारित आलोचनात्मक प्रबन्ध जैसी अनेक पुस्तकें लिखी। श्रीकृष्णा जी नारायण जोशी ने धर्मपरीक्षा, द्रव्यसंग्रह, नेमिदूतकाव्य तथा धर्मशर्माभ्युदय का मराठी अनुवाद दिया। बालगौडा जखगौडा पाटील ने प. नाथूराम प्रेमी कृत 'भट्टारक' निबन्ध का अनुवाद किया। केवलचन्द हीराचन्द कोठारी बुधकर ने षट्पाहुड आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। इसी तरह मरुदेवी स्व. धर्मप्पा आखाडे का भट्ट अकलंकदेव विरचित रत्नत्रयसार का अनुवाद, पं. कालचन्द जिनदत्त उपाध्याय का द्वादशानुप्रेक्षा, परमात्मप्रकाश तथा भरतेशवैभव का अनुवाद, श्री चन्दप्पा जिनप्पा हाडोले का जैनधर्म की प्राचीनता का अनुवाद भी मिलता है। रा. भिसीकर नरेन्द्रनाथ जयवत के बालबोधिनी व जैनसिद्धान्तप्रवेशिका तथा दा. बा. पाटील की तत्वार्थसूत्रप्रकाशिनी का भी उल्लेख किया जा सकता है। अनुवाद के क्षेत्र मे दीवान बहादुर बाबा जी लट्टे का शाहू छत्रपति कोल्हापुर की जीवनी तथा जैनिज्म, क्षु. स्वरूपसागर के अनुभवप्रदीप, स्वरूपनित्यजिनपूजा, स्वरूप भजनशतक, स्वरूपछन्दशतक, मेरीभावना आदि, तथा ब्र. नन्दलाल जैन का रत्नकरण्डश्रावकाचार व समयसार नाटक का सम्पादन, आत्मप्रमोद, आत्मभावना, अनुभवलहर, आत्मवंदना, शुद्धात्मविलास, कुन्दकुन्द भजनावली, कुन्दकुन्द वचनामृत, आत्मवाद और एकान्तपरिहार, ज्ञानज्योति और नित्यमुक्त स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में सामने आये। तथा दीवान बहादुर अवाप्पा फड्यप्प चौगुले का रत्नकरण्डश्रावकाचार, वसुनन्दीश्रावकाचार, और आदिपुराण का अनुवाद तथा चौगले और कर्मवीर बलवतराव चंदप्पा धावते का प्रगति आणि जिनविजय का सम्पादन भी हुआ। 1950 में सोलापुर से 'सन्मति' और 1968 में श्रेणिक अन्नदाते के सम्पादकत्व में तीर्थकर का प्रकाशन शुरू हुआ।

इसके बाद हम उन मनीषियों का उल्लेख कर रहे हैं, जिन्होंने इस बीसवीं शताब्दी को अपने साहित्यिक और सांस्कृतिक अवदान से विशेष समृद्ध किया है।

मम मानस-विहारिणी राजहंसिनीतुल्य हिन्दी को छोड़कर अन्य किस भाषा में इतनी तेजस्विता और सामर्थ्य है कि वह राष्ट्र भाषा के प्रतिष्ठित पद पर अलंकृत हो सके।

बाबा दुलीचंद फलटण निवासी हुंमड जाति बाबा दुलीचंद श्रावक थे। आपने अनेक जिन प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा करायी और बहुत ग्रन्थो का संग्रह किया। उनका यह संग्रह जयपुर के तेरापन्थी मंदिर में सुरक्षित है। आप समूचे भारत में भ्रमण करते थे और ग्रन्थों का संग्रह, उनकी प्रतिलिपि और स्वतन्त्र लेखन किया करते थे। आपके पिताश्री माणिकचंद भी अच्छे साहित्यप्रेमी और लेखक थे। आपका देहावसान 4 अगस्त सन् 1928 को आगरा मे हुआ।

प्रतिष्ठासार भाषा टीका सग्रह, (सं. 1936), धर्मोपदेश रत्नमाला, जैन यात्रा दर्पण, मन्दिर निर्माण विधि बाबा के स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त उनके उपलब्ध ग्रन्थ हैं— सुभाषितावली (स. 1931), जैनागार प्रक्रिया (सं. 1936), बाईस अभक्ष्य (सं. 1941), जैन सदाचार मार्तण्ड (सं. 1946), अकृत्रिम जिन चैत्यालय वर्णन, द्रव्य सग्रह भाषा (स. 1966), धर्मपरीक्षा (1968), मृत्यु महोत्सव, धर्मदास व दुलीचंद पत्र-व्यवहार, ज्ञान प्रकाश विलास, विवाह पद्धति, आबू मंदिराचे शिलालेख भाषा, पूजा क्रिया वर्णन, आराधनासार वचनिका, निर्माल्य दोष वर्णन, पदसंग्रह, हरसुखराय, दिल्ली मंदिरातील ग्रन्थसूची। बाबा के द्वारा संग्रहीत 850 ग्रन्थ जयपुर के बडे मन्दिर में रखे हुए हैं।

पं. देवकीनन्दन शास्त्री : बरुआसागर में सन् 1853 में जन्मे प. देवकीनन्दनजी शास्त्री को अपनी माताश्री तुलसीबाई और पिताश्री हजारीलालजी का पारम्परिक स्नेह-दुलार मिला और धार्मिक वातावरण की फुहार भी। पू. गणेश प्रसाद जी वर्णी के आग्रह से पं. जी को मुरैना तथा मुरैना से स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी उच्च शिक्षा के लिए भेजा गया जहा उन्होंने सस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। गुरुणा गुरु प. गोपालदास वरैया के वे अनन्य शिष्य थे।

पं जी का अधिकांश समय कारंजा आश्रम की सेवा में बीता। वे वहां सन् 1918 से 1945 तक रहे और सफल अध्यापनकार्य किया। पं. माणिकचन्द भिसीकर, माणिकचन्द चवरे, धन्यकुमार भोरे, पद्मनाभ जैनी, जयचन्द लोहाडे, सुमेरुचन्द्र दिवाकर, जगन्मोहन लाल शास्त्री आदि जैसे सुप्रतिष्ठित विद्वान प. जी के शिष्य रहे है। प. जी की अध्यापन पद्धति बडी ही प्रभावक थी। कारंजा तथा खुरई गुरुकुलों के विकास की पृष्ठभूमि में पं. जी का योगदान अविस्मरणीय है। वे कुशल शास्त्रार्थी और निस्पृही समाज सेवक थे।

सागारधर्मामृत और पंचाध्यायी की टीकायें तथा षट्खण्डागम के सम्पादन काल में दिया गया सहयोग आपकी आगमिक प्रतिभा का निदर्शन है। वक्तृत्व की कुशलता के कारण आपको 'व्याख्यान वाचस्पति' का विरुद देकर संमानित किया गया। प. जी एक अच्छे राजवैद्य भी थे।

सरसेठ हुकमचन्द जी के आग्रह से आपने अपने अन्तिम समय में कारंजा को छोडकर इन्दौर को अपना आवास बना लिया। वहीं 12 मई 1950 को आपने अन्तिम सासें लेकर इहलीला को समाप्त किया।

सेठ हीराचंद नेमचन्द दोशी : हुमड-गुर्जर जाति के श्रावक हीराचन्द नेमचन्द दोशी दक्षिण महाराष्ट्र के एक सशक्त व्यक्तित्व थे जो मूलतः गुजराती थे पर महाराष्ट्र के निवासी हो गये। 5 नवम्बर 1856 को सोलापुर में जन्मे हीराचन्द की बाल्यावस्था अपने पिताश्री नेमचन्द और माताश्री रतनबाई के धार्मिक वातावरण मे बीती और प्रारंभिक शिक्षा भी यहीं पूरी हुई। यहीं उन्होंने संस्कृत और जैनदर्शन का अभ्यास किया। स्वाध्याय की उनकी यह परम्परा अन्त तक चलती रही और लेखन भी उससे जुड गया। सरस्वती और लक्ष्मी का सुन्दर संगम दोशी परिवार में रहा है।

किशोरावस्था में ही पिताश्री के देहावसान हो जाने से आपका पारिवारिक उत्तरदायित्व बढ़ गया। तदर्थ आपने औरंगाबाद मिल की एजेन्सी ली और साथ ही बम्बई में एक ज्वेलरी की दुकान खोली। आपको इन दोनो व्यापारों में अच्छी सफलता मिली।

आर्थिक संपन्नता बढने के साथ ही आपकी सामाजिक सेवा में भी वृद्धि हुई। आपने 1884 में जैन बोधक मासिक

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज से जुड़कर उसे चलना ही चाहिए। समाज से यदि हम कुछ ग्रहण करें तो उसे कुछ देना भी चाहिए।

पत्रिका शुरू की, जिसने मराठा समाज को जाग्रत करने में अपनी अहं भूमिका अपनायी है। आपने बम्बई में ही, ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन पाठशाला की स्थापना इसी सन् 1884 मे की जिसमें आयुर्वेद, अभियान्त्रिकी, संस्कृत आदि विषयों की अध्यापन-व्यवस्था की गई। इसके साथ ही जैन बोर्डिंग, अनाथालय, गोरक्षाकेन्द्र, पांच ग्रन्थशालायें, मुंबई प्रान्तिक जैन सभा आदि जैसे सस्थान भी आपने स्थापित किये।

आप स्वतन्त्रता सैनानी भी रहे। राजनीति मे आकर आप सोलापुर नगरपालिका के सर्वप्रथम सदस्य बने और बाद में उपाध्यक्ष और अध्यक्ष बनकर जनता की सेवा की। आपकी इस सेवा के उपलक्ष्य में आपको 'मेकर आफ सोलापुर' के नाम से जाना जाने लगा।

स्वाध्यायी होने के कारण साहित्यिक लेखन की ओर भी आपकी प्रतिभा जाग्रत हुई। रत्नकरण्डश्रावकाचार का हिन्दी-मराठी अनुवाद, कुन्दकुन्दाचार्यकृत श्रावकधर्म, पूज्यपादकृत उपासकाचार, आदिपुराणातीत श्रावकधर्म, तत्त्वार्थसूत्रातील श्रावकधर्म, षोडश कारणभावना, पद्मनंदिकृत श्रावकाचार, पद्मन्दिकृत अनित्य पंचाशत का गुजराती-मराठी अनुवाद, आपली प्रार्थना, सल्लेखना अथवा मृत्युमहोत्सव, श्रावक प्रतिक्रमण, श्री पार्श्वनाथचरित्र, षोडशकारण भावना, श्री महावीरचरित्र, सद्बोधमालिका, व्यंतरांच्या आराधनेपासून नुकसान, शासनदेवता पूजा चर्चा (हिन्दी-मराठी) भट्टारक चर्चा, पुण्य-पाप के कारण, जैनकथा संग्रह, निर्माल्य चर्चा, जीवा कर्माचे बन्धन कशाने होतात आदि उनके ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। आप वस्तुतः आधुनिक मराठी जैन साहित्य के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। आपने 1923 से 1928 तक 'सम्यक्त्व वर्धक' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। 1901 में यूनियन क्लब सोलापुर मे दिये गये भाषण को 'जैनधर्माची माहिती' शीर्षक से प्रकाशित किया और उसी को हिन्दी और अग्रेजी मे भी मुद्रित किया।

आपकी इस राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक योगदान के उपलक्ष्य में आपका दादाभाई नौरोजी भाई की अध्यक्षता में और सर सेठ हुकुमचन्द इन्दौर के मुख्य आतिथ्य में अमृत महोत्सव मनाया गया दिसम्बर 1936 में। इसके थोडे समय बाद ही 2 फरवरी 1937 में सोलापुर मे ही आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

दीनानाथ बापूजी मगुडकर ने सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी का जीवन चरित लिखा था जिसे सेठजी के सुपुत्र रतनचन्द हीराचन्द ने सन् 1937 मे प्रकाशित किया। इसी तरह इन्दुमती सतीशचद शहा ने अपने पिताश्री रतनचन्द हीराचंद की बडी सुन्दर आत्मकथा लिखी है।

पं. कल्लाप्पा निटवे : सन् 1870 मे जन्मे और 28 जनवरी 1930 मे स्वर्गवासी हुए। कल्लाप्पा भरमाप्पा निटवे कोल्हापुर के निवासी थे। वे सस्कृत और प्राकृत के अच्छे कवि थे। कुछ वर्षो के लिए वे जैन बोधक के सम्पादक भी रहे। उन्होंने जैनेन्द्र प्रेस भी चलाया कुंभोज बाहुबली डोगरा के पास छात्रों के लिए एक वसतिगृह भी बनवाया। वे राजर्षि साहू महाराज के परम मित्र थे। उनकी स्वाभिमानशीलता, कर्तव्यनिष्ठा, देशप्रेम और अध्यात्मनिष्ठा हमारे लिए गौरव का विषय है।

पं. निटवे कुशल अध्येता के साथ ही साहित्यकार भी थे। उन्होने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का मराठी अनुवाद कर प्रथम बार उन्हें जनता के बीच प्रस्तुत किया और तत्वज्ञान विषयक अनेक गहन आलेख भी लिखे। आपके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ हैं—उपदेशरत्नमाला, देवागम स्तोत्र, आप्त मीमांसा, सागारधर्मामृत, पंचास्तिकाय, समयसार, प्रश्नोत्तर माणिक्यमाला, सम्यक्त्व कौमुदी, जैन धर्मामृतसार, रयणसार, अमितगति श्रावकाचार, जीवन्धरचरित, महापुराण, आदिपुराण। इनके अतिरिक्त 'महापुराणामृत' नामक एक स्वतन्त्र रचना भी प्रकाशित हुई है।

तात्या साहेब केशवरा चौपडे : प्रसिद्ध साहित्यकार और कीर्तनकार तात्या साहेब चौपडे का जन्म 23 जून सन् 1875 में भिलवाडी (सांगली) में हुआ जहां आपने कृषक के पारिवारिक वातावरण में रहकर प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की। आपके पिताश्री केशवराव और माताश्री बालाबाई ने आपको जो धार्मिक संस्कार दिये उन्होंने चौपडे को एक कुशल कीर्तनकार बना दिया। कृषि का व्यवसाय करते हुए ही आपने भक्तिरस का आप्लावन किया।

जो अनीति को देख सुनकर भी शान्त बने रहते हैं और उनकी नस-नस नहीं फड़कने लगती है तो या तो वे कायर है या अकर्मण्य।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में भजनामृत पद्यावली (1911), पूजा व सद्यःस्थिति (1924), जैन व हिन्दू (1944), भ. ऋषभदेवांचे चरित्र, आर्यमताचे खण्डन, पंढरपुरचा विठोबा, कुलभूषण-देशभूषण चरित्र, जगदुद्धारक जैनधर्म (1938), आचार्य शान्तिसागर चरित्र उल्लेखनीय हैं। पढ़रपुर का विठोबा (1947) के प्रकाशित होते ही यह तथ्य सामने आया कि पढ़रपुर का मन्दिर और मूर्ति मूलतः जैनधर्मावलम्बियों से सम्बद्ध है।

अप्रकाशित रचनाओ मे बुद्ध आणि जैन, जैनधर्माचे प्राचीनत्व, वाग्भट जैन की अहिसा, बौद्धधर्म आणि जैन रक्षक, चक्रवर्ती भरत, जैनाचा प्राचीन इतिहास, कोल्हापुरची अम्बाबाई, जैनमय जगत, सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् अशोक, जैन भरतचा प्राचीन इतिहास, अद्वितीय जैन जगत, एक हजार वर्षापूर्वी हेच हिन्दू जैन होते, और कीर्तनातील निवडक गोष्ठी आदि। ये ग्रन्थ आज भी प्रकाशन की वाट देख रहे हैं।

तात्या साहेव की साहित्यकारिता और कीर्तनशैली से प्रभावित होकर आपको आलंद, जिल्हा हैदरावाद समाज की ओर से 'जिनदासभूषण' और कुथलगिरि पर 'जैनधर्म भूषण' का अलंकरण प्रदान किया गया। इसी तरह 1913 में भिलवाडा समाज ने आपको 'कीर्तन सम्राट' से अलंकृत किया।

ऐसे भक्ति सगीकार चौपडे का शारीरिक अवसान 9 दिसम्बर 1950 को भिलवाडी में हो गया। पर उनकी यशोगाथा आज भी सुनी जा सकती है।

अण्णा साहेब लट्ठे : कोल्हापुर के श्रीमंत वावाजी एव अऊबाई के सुपुत्र अण्णा साहेब लट्ठे का जन्म कुरून्दवाड गाव मे 9 दिसम्बर 1878 को हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने के बाद उन्हें सागली भेज दिया गया और बाद में कोल्हापुर। पुणे से 1903 में वी ए परीक्षा उत्तीर्ण की और वम्वई से एम.ए. स्वर्णपदक लेकर प्रान्त मे प्रथम एम.ए. छात्र होने का गौरव प्राप्त किया। तदर्थ मुवई प्रान्तिक जैन समाज ने आपका बडा सम्मान किया। बाद मे 1916 में बेलगाम से एल एल वी परीक्षा पास की।

परिवार के धार्मिक और सामाजिक सस्कारो ने आपको प्रारम्भ से ही सामाजिक कार्यकर्ता वना दिया। 21 वर्ष की ही अवस्था में आपने दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा की स्थापना की जो बाद में दक्षिण भारत जैन महासभा के रूप मे परिवर्तित हो गई। 1907 मे राजाराम कालेज कोल्हापुर में प्राध्यापक और प्राचार्य हुए। बाद में, 1911 से 1914 तक छत्रपति साहू महाराज के पास रहे। यही आप आनरेरी सिटी मजिस्ट्रेट रहे और 1916 से 1920 तक वकालात भी की। 1925 में दीवान वनाये गये जहा रहकर अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य किये। पंचायत शासन की स्थापना करते हुए कोल्हापुर बैंक, महावीर बैंक, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज आदि संस्थाओ से भी संवद्ध रहे। साक्षरता, स्त्रीशिक्षण और अन्तर्जातीय विवाह जैसे समाज सुधार के कार्यो के अधिकाधिक प्रभावी बनाने के लिए अपनी सर्विस से भी अवकाश ले लिया। राजनीतिक क्षेत्र मे भी आप एक प्रभावक नेता के रूप मे काम करते रहे। महाराष्ट्र प्रान्त के अर्थमन्त्री रहकर आपने समूचे प्रान्त की प्रशंसनीय सेवा भी की। सुधारवादी आन्दोलनों से उन्होंने जैन महिला समाज में ज्ञान पिपासा जाग्रत की और पारम्परिक रुढ़ियों को तोड़ने का वातावरण तैयार किया।

साहित्यिक क्षेत्र भी आपसे अछूता नही रहा। जिनविजय पत्रिका के आप सफल सम्पादक रहे। इसके अतिरिक्त अग्रेजी और मराठी में छत्रपति शाहू महाराज चरित्र, हिन्दुस्तानातील ब्रिटिश साम्राज्याचे उदय, Problems of Indiam States, Federal Constitutions of the World आदि जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखकर आपने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया। समूची सेवा के उपलक्ष्य में म्युनिसपल कार्पोरेशन, सेन्ट्रल कोआपरेटिव बैंक आदि अनेक संस्थानो ने आपका गौरव पूर्ण सम्मान भी किया।

अण्णा साहेब लट्ठे साहित्य, समाज और देश की सेवा करते हुए बेलगाम में 16 मई 1950 को सभी को विलखते हुए छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।

अधिक विद्वत्ता या पाण्डित्य का प्रदर्शन करना वक्ता की कुशलता का माप नहीं है– वक्ता की योग्यता इस बात पर निर्भर है कि वह जितना भी जानता है– थोड़ा या बहुत, उसे श्रोताओं के हृदय में उतार पाता है या नहीं।

बाबगोंडा भुजगोंडा पाटिल : प्रख्यात समाजसेवक बाबगोंडा भुजगोडा पाटिल का जन्म समदोली (सांगली) में 12 **दिसम्बर** 1880 को पिताश्री भुजगोंडा पाटिल और माताश्री रूक्मणिबाई के घर हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा सांगली में हुई और बी.ए. विल्सन कालेज बम्बई से किया। बाद में 1920 में एल-एल. बी. परीक्षा भी उत्तीर्ण की। इतनी शिक्षा होने के बावजूद आपने नौकरी करने की अपेक्षा व्यापार करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। अनाज का व्यापार करते हुए आप समाज सेवा में भी लगे रहे। रत्नाकर बैंक, सागली संस्थान, लट्ठे एजुकेशन सोसायटी, रत्नाकर प्रोडक्टस लिमिटेड संस्थानों को खडा करने में आपकी अह भूमिका रही है।

आप जैन दर्शन और साहित्य के भी मर्मज्ञ थे। ऐतिहासिक जैन वीर (1934), दक्षिण भारत जैन व जैनधर्म (1938), रत्नकरण्ड श्रावकाचार (1943) महावीर वाणी (1956), रायबाग, दुबिनबागे, अहिसा (1946), जैन हे हिन्दू नव्हेत, भगवान् महावीरांचे महावीरत्व, सम्राट् खारबेल आदि आपकी महत्वपूर्ण कृतियां हैं। इसके साथ ही 1924 से 1946 तक 'जिनविजय' के कुशल सम्पादक भी रहे। यह पत्रिका अब 'प्रगति आणि जिनविजय' के नाम से लोकप्रिय है।

लगभग सत्तर वर्ष अवस्था तक इस निष्काम साधक ने साहित्य साधना की और 1955 में इहलोक से नाता तोड लिया।

दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे : अतिशय प्रतिभा सम्पन्न और क्रान्तिदर्शी दत्तात्रय भिमाणी रणदिवे मिरज गांव (अहमदनगर) मे 6 जुलाई 1880 को माताश्री सुन्दराबाई की कूख से हुए। प्रारम्भिक शिक्षा यहीं लेने के बाद उच्च शिक्षा के लिए आप अहमदनगर गये, जहां एम.ए तक की विशिष्ट शिक्षा ग्रहण की। इसके पूर्व ही 15 वर्ष की अवस्था में आपका विवाह शेतवाल समाज की ही जमनाबाई के साथ हो गया।

आप एक सिद्धहस्त मराठी कवि और लेखक होने के साथ ही कर्मठ समाज सुधारक भी रहे हैं। सामाजिक सुधार की अवधारणायें आपके साहित्य में प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक ही है। समता, स्वातन्त्र्य और पारस्परिक सहयोग उनकी समाज सुधारणा की धुरी रही है।

महावीर स्तवन, प्रभु जन्मोत्सव गीत, दोगा जैनाचा संवाद, जिनपद्य रत्नावली, साध्वी नीली चरित (1915), कुलभूषण-देशभूषण चरित्र सुधा (1909), जयकुमार सुलोचना काव्य (1949), दु:खाश्रुहार, अश्रु कुसुमांजलि, नाईकांचे बोल, पाटिल निवडले, वर्णाश्रम विलाप, शिखरजी विलाप, 'प्रभु जन्मोत्सव गीत', नादलहरी, महामण्डलेश्वर अभिनव काव्य माला, श्रेणिकचरित्र, रत्नकरण्ड, भक्तिपदसग्रह, आदि काव्य रचनाये बडी लोकप्रिय है। संजीवन, सूमती आदि पत्रिकाओ के आप सम्पादक भी रहे है। सुरस ग्रन्थ प्रसारक मण्डली की स्थापना पूना में करके आपने साहित्यप्रसार करने का बीडा भी उठाया था।

अंजना सुन्दरी, खरी आर्यकन्या, कुमुदिनी सुधाशु, शैशव सहचरी, राष्ट्रीय जीवन, नयनतारा, नगरतारका, अजब कारस्तान, प्रबाल द्वीप, महात्मा गांधीचा कारावास, साठ वर्षापूर्वी, एक्यातच मौज, मोहिनी, व्यापारी सृष्टि, कुमुदचन्द्र, मयूख, चन्द्रकान्ता, अजनी सुन्दरी, प्रेमाश्रय, विजयी, प्रतिभा, जगाचा बाजार, बनव्यातील फुल, गौर देवदूत, जटाशंकर, जग हे असे आहे, मनोरमा, तेजस्वी, तारका, रूपिणी, मृगेन्द्र लीला और चन्द्रिका आदि लगभग बीस उपन्यास सुपरिचित ही हैं।

डाक्टरचा कांदा और पुनर्जन्म आपके प्रसिद्ध नाटक हैं और दादाच्या चुकीचे फल, अरेबियन नाईट्स मधून चुकून राहिलेली गोष्ठ जैसी कुछ लघुकथाये हैं। स्फुट रचनाओ में सीता की शील परीक्षा, आर्यरत्नकरण्डक, जैनवाङ्.मय विलास, जिनगुणालाप, रूपिणी आदि उल्लेखनीय हैं। सुमति, सहस्रकर, सजीवन, वाग्विलास, विजयी और मराठा जैसी पत्रिकाओं के आप सम्पादक भी रहे है। आपके इस साहित्यिक लेखन के लिए आपको डेक्कन व्हर्नाकुलर सोसायटी द्वारा 'मनोरमा' पर पुरस्कृत किया गया और महाराष्ट्र शासन द्वारा भी आपको मरणोपरान्त सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त आप और भी अनेक सम्मानों से विभूषित हुए।

जैन सस्कृति के इस कर्मठ प्रचारक का अवसान सन् 1929 मे हो गया। आपको मराठी के प्रसिद्ध कवि केशवसुत के

जिस कार्य को करते समय किसी के सामने मुंह छिपाना पड़े, वह कार्य कपट के अन्तर्गत गणनीय है। पहली बार किये गये कपट को भूल और बारबार किये जाने वाले कपट को पाप कहा जाता है।

समकक्ष रखा जा सकता है। जैन कथाओं पर आधारित आपने लगभग पच्चीस उपन्यास लिखे जो बड़े लोकप्रिय हुए। आज भी आपका साहित्य उत्तमकोटि में गिना जाता है। 1981 में आपकी जन्मशताब्दी भी मनाई गयी थी।

नेमचन्द और गणपतराव चवडे वर्धा : का चवडे परिवार प्राचीन मराठी साहित्य का संरक्षक रहा है। चवडे तीन भाई थे जिनदास, नेमचन्द और गणपतराव। जिनदास जैन साहित्य के प्रकाशक के रूप में प्रसिद्ध हुए। नेमचन्द चवडे ने जैन धर्मामृतसार, जैनव्रतकथा संग्रह तथा संगीत निर्वाण क्षेत्र पूजा 1894 में, संगीत सुशील मनोरमा नाटक 1902 में, जैन भजनामृत संगीत पद 1910 में संगीत जैन कीर्तनावली 1918 में तथा सीताशील माहात्म्य व लवांकुश चरित्र 1925 में लिखा। गणपतराव चवडे ने संगीत गर्वपरिहार नाटक (1907) तथा हनुमान चरित्र (1912) ये दो पुस्तकें लिखीं। आपने 'जैन बन्धु' मासिक पत्र (1908) का भी कुछ वर्ष सम्पादन किया।

कृष्णाजी नारायण जोशी : बेलगांव निवासी कृष्णाजी नारायण जोशी सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उन्होने 1897-98 मे अपना लेखन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे उन्होंने अनेक ग्रन्थों का मराठी अनुवाद कर दिया। उदाहरणार्थ-अमृतचन्द्राचार्यकृत पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, नेमिचन्द्राचार्यकृत द्रव्यसंग्रह, हरिचन्दकृत धर्मशर्माभ्युदय (प्रथम तीन सर्ग), सकलकीर्तिकृत सुभाषितावली, मल्लिषेणाचार्यकृत सज्जनचित्तवल्लभ तथा समन्तभद्राचार्यकृत जिनचतुर्विंशतिस्तोत्र। ये पुस्तकें बालचन्द कस्तूरचन्द गांधी धाराशिव ने अपने प्रकाशन से प्रकाशित कराई थी।

नाना रामचन्द्र नाग : फलटण निवासी नाना रामचन्द्र नाग मूलत. ब्राह्मण विद्वान थे, पर जैनधर्म का अध्ययन करने के बाद उनका झुकाव जैनधर्म की ओर बढ़ गया। संयोग से हीराचन्द अमोलक (1839-1892) फलटण आये और उनका उपदेश सुनकर नाना जैनधर्म में दीक्षित हो गये। हीराचन्द अच्छे विद्वान कवि थे। उन्होंने नलचरित्र, पचपूजा, तथा जैन रामायण नामक पुस्तको की रचना की थी। नाना ने उनके द्वारा विरचित पदों का एक सग्रह प्रकाशित किया था, जिसमें 100 पद हिन्दी के और 12 पद मराठी के थे। इसके अतिरिक्त तत्त्वार्थसूत्र (1905), प्रतिक्रमण (1913), तथा षट्पाहुड (1928) ग्रन्थों का अनुवाद तथा भारतीय सचित्र बालबोध भी उनके ग्रन्थ हैं।

अप्पा भाऊ मगदूम : सांगली वासी जैन इतिहासज्ञ अप्पा भाऊ मगदूम अच्छे सामाजिक कायकर्ता रहे है। सागली की ही वीरग्रन्थमाला के संचालक भी रहे और अनेक आयोजनों के माध्यम से उन्होंने जैन समाज में इतिहास के प्रति अभिरुचि जागृत की। नेमिसागरचरित (1934), सप्त सम्राट (1936), जैन वीर स्त्रियां (1936), चौदा रत्ने (आचार्य जीवन परिचय) 1941, तथा वनराज (1945) आदि उनकी प्रमुख कृतियां हैं।

आचार्य समन्तभद्र महाराज : गुरुकुल प्रणाली के प्रवर्तक/पुनरुद्धारक आचार्य समन्तभद्र एक तेजस्वी और प्रभावक साधु थे। उनका जन्म यद्यपि 19वीं शती (1991 सोलापुर) में हुआ, पर कार्यकाल बीसवी शती का रहा। वे महाराष्ट्र के पं गोपालदास वरैया थे। उनके पिताश्री कस्तूरचंद और माताश्री कंकुबाई ने बालक देवचन्द को ऐसा आध्यात्मिक वातावरण दिया कि आधुनिक शिक्षा पाने पर भी वे अनगारावस्था की ओर बढ चले। क्रान्तिकारी स्व. अर्जुनलाल सेठी उनके प्रेरणा स्रोत थे। स्वयं ही ब्रह्मचर्यव्रत लेकर उन्होंने गुरुकुल पद्धति से जैन समाज में शिक्षा देने का सकल्प ले लिया।

गुरुकुल पद्धति का सूत्रपात हुआ कारंजा से। और उसके बाद तो सोलापुर, नवागढ़, कुन्थलगरि, बाहुबली (कुभोज), एलोरा, देवलगांवराजा, स्तवनिधि (कर्नाटक), गजकथा, बेबागेवाडी, रामटेक, तेरदल, कारकल और खुरई (म. प्र.) में भी गुरुकुलों की स्थापना हुई। इन गुरुकुलों से जैन समाज में कितना शैक्षणिक और चारित्रिक विकास हुआ है, यह हम सब अच्छी तरह से जानते हैं। उनमें जैन मन्दिर रहता है, नैतिक शिक्षा दी जाती है, ग्रन्थ-प्रकाशन होता है, और शोध-प्रवृत्तियॉ होती हैं। इनके अतिरिक्त बेलगांव, तेरदाल, अक्किवाद, जयसिंगपुर, बारामती, सोलापुर में आचार्य श्री की ही प्रेरणा से महाविद्यालयों की भी स्थापना हुई।

जिस प्रकार कपड़े सुखाने में समय लगता है, भिगोने में नहीं; या मकान बनाने में समय लगता है, गिराने में नहीं, उसी प्रकार ख्याति पाने में समय लगता है, गंवाने में नहीं।

देवचन्द काका के इस कार्य में ब्र. माणिकचंद चवरे, माणिकचन्द्र भिसीकर, नरेन्द्रकुमार भिसीकर आदि ब्रह्मचारी वर्ग ने विशेष सहयोग किया। 1933 मे उन्होंने आचार्य श्री शान्तिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली। इससे उनके ब्रह्मचारी शिष्य वर्ग पर गुरुकुलों की देखभाल का अधिक उत्तरदायित्व आ पडा। महाराजश्री के मार्गदर्शन, दान-प्रेरणा और लक्ष्य-पूर्ति के साधनों के एकत्रीकरण से गुरुकुलों की सारी व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रही।

1952 में महाराजश्री ने जिनेन्द्र देव के समक्ष स्वय ही मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। यह उनके आत्मकल्याण की प्रकर्षता थी। उन्होंने आत्मकल्याण में सस्था को बाधक नहीं बनने दिया। सस्थानों के विकास के लिए उनकी उपस्थिति ही पर्याप्त रही। प. देवकीनन्दन जी शास्त्री की असामयिक मृत्यु ने कदाचित् उन्हे मुनि बनने की प्रेरणा दी।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ तीर्थक्षेत्र को श्वेताम्बर समाज ने हथियाने का प्रयत्न किया, मुकद्दमेबाजी हुई। इससे महाराजश्री वड़े व्यथित हुए। उन्होंने तीर्थरक्षा फण्ड में एक करोड रूपये एकत्रित करने के लिए अपने शिष्यो को प्रेरित किया। मुनिश्री आर्यनन्दीजी ने इस आदेश को व्रत के रूप मे स्वीकार किया।

आचार्य श्री के जिन कर्मठ शिष्यों ने उनकी गुरुकुल प्रणाली को संवर्धित और पोषित करने में अथक साथ दिया, वे है--ब्र माणिकचद चवरे, ब्र देवचन्द जोहरापुरकर, ब्र नरेन्द्र कुमार भिसीकर, पं. धन्यकुमार भोरे, ब्र माणिकचन्द शहा, ब्र. अजिकुमार कर्के, ब्र. प. सुमेरचन्द, ब्र. बालचन्द शहा, ब्र भूपाल दलाल, प देवकीनन्दन शास्त्री, प्रद्युम्न साव, माणिकचन्द माहोलकर, शान्तिकुमार लोहाडे, जयचन्द लोहाडे आदि।

हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत, मराठी, कन्नड, अग्रेजी भाषाओ के प्रबुद्ध ज्ञाता आचार्यश्री की ही प्रेरणा से जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर की स्थापना हुई, जिससे शताधिक उच्चकोटि के जैन ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ।

आचार्यश्री कुम्भोज बाहुवली में रहकर ही समूचा ज्ञानयज्ञ करते रहे और साथ ही, आध्यात्मिक साधना मे भी पूरी गहराई के साथ जुटे रहे। अन्त में 18.8 88 को सल्लेखना पूर्वक उनकी समाधि हो गई। उनका अथ से इति तक का सारा जीवन समाज को प्रबुद्ध बनाने में ही बीता, जिसके लिए समाज उनका सदैव आभारी रहेगा। वे वस्तुत महाराष्ट्र के लिए पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी थे।

सेठ रावजी नेमचन्द शहा : कुशल साहित्यकार और समाजसेवी सेठ रावजी नेमचन्द शहा का जन्म सोलापुर मे सन् 1890 में हुआ। 1912 में पूना से एल-एल. बी. किया और वकालात के क्षेत्र मे अपना महत्वपूर्ण स्थाना वना लिया। अग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और मराठी पर उनका अच्छा अधिकार था। वे एक प्रभावक वक्ता और सिद्धहस्त लेखक भी थे।

सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे भी उन्होने अच्छा कार्य किया है। हरिजन और पिछडे वर्ग के विकास के वे पक्षधर रहे है। कोल्हापुर के भट्टारक लक्ष्मीसेन के नेतृत्व मे उन्होंने समाज सेवा का जो व्रत लिया था उसे वे पूर्ण करने मे जुटे रहे। जैनधर्म पर जब भी कोई आरोप लगा या किसी तरह का आक्रमण हुआ, आपने सदैव उसका यथाशक्य प्रतिकार किया। अखिल विश्व जैन मिशन, भारत जैन महामण्डल, दक्षिण भारत जैन महामण्डल आदि संस्थाओं से भी आप जुडे रहे है।

जैनधर्मादर्श (मराठी) आपकी प्रमुख कृति है (1910) जिसका भरपूर उपयोग 'जैन ज्ञानकोश' बनाने मे 'अज्ञात' ने किया है। सामायिक पाठ, समाधि शतक (1912), महापुराणामृत जिन शासन (1915) तीर्थंकरों की प्राचीनता (1938) और जैनशासन, जैन साहित्य सृष्टि, पूज्यपादाचार्यचरित, अमृतचन्द्राचार्यचरित, जैनधर्म पर आक्षिप्त विधान और निरसन (1938) आदि आपकी अन्य कृतियां है। 'प्रगति आणि जिनविजय' का आपने सहसंपादन भी किया है। इन सभी के उपलक्ष्य मे आपको 1946 मे जगन्नाथ पुरी के शकराचार्य द्वारा "वाड्मय प्रदीप" की उपाधि से समानित किया गया।

पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले : न्याय, व्याकरण, दर्शन और साहित्य मे निष्णात प. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले का जन्म माताश्री प्रयागबाई की कुक्षि से सन् 1894 मे सोलापुर मे हुआ। आपके दादा पडदादा गोपालराव गोविन्दराव फडकुले

हर व्यक्ति गुण और दोषों का पिण्ड है किन्तु गुण वही सार्थक है जिनसे दूसरों को लाभ मिले और जिससे केवल अपनी ही हानि हो, ऐसे दोष भी ठीक हैं, ऐसे दोषी ठोकर खाकर सभल सकते हैं।

मूलतः गुलवर्गा (उस्मानाबाद) के निवासी थे। आपके परिवार में प्रारम्भ से ही साहित्यिक अभिरुचि थी। सभी लोग प्राचीन पाण्डुलिपियों के लेखन और अध्ययन में अपना अमूल्य समय दिया करते थे। आज भी ये ग्रन्थ आदिनाथ जैन मन्दिर सोलापुर में सुरक्षित हैं।

पं. जिनदास अपनी प्रारंभिक शिक्षा सोलापुर में ही पूर्णकर न्याय, व्याकरण आदि का गंभीर अध्ययन करने के लिए आप पं. वंशीधरशास्त्री न्यायालंकार और पं. गोपालदास वरैया न्यायतीर्थ के पास मुरैना चले गये। वहां उन्होंने न्यायतीर्थ उपाधि प्राप्त की। वहां से 1919 में आकर आप कुछ समय ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन पाठशाला में धर्माध्यापक रहे। 1919 से 1950 तक मराठी जैन बोधक के अवैतनिक सम्पादक रहकर आपने समाज में अपने अग्रलेखों से अच्छी जागृति उत्पन्न की।

पं. जी कुशल कवि और टीकाकार भी थे। धर्मशर्माभ्युदय टीका इसका प्रमाण है। आपने सुदर्शनचरित्र, सुकुमारचरित्र, वरांगचरित्र, प्रीतिंकरचरित्र, नागकुमारचरित्र, वर्धमानचरित्र, शान्तिनाथ पुराण आदि ग्रन्थो का हिन्दी से मराठी में अनुवादकर मराठी भाषी समुदाय को नया ज्ञान-क्षितिज दिया। आपने सुभाषितावली, भगवती आराधना, प्रश्नोत्तर रत्नमाला, गोम्मटसार जीवकाण्ड आदि लगभग 50 ग्रन्थों का मराठी गद्य-पद्य में अनुवाद कर मराठी साहित्य को समृद्ध किया है। आपने पाण्डवपुराण तथा सिद्धान्त सार संग्रह आदि ग्रन्थों का संपादन तथा हिन्दी अनुवाद भी किया।

आप वस्तुतः मराठी और हिन्दी के सफल अनुवादक हैं। लगभग 50 ग्रन्थों का आपका मराठी अनुवाद प्रकाश मे आया है जिनमें कतिपय और भी उल्लेखनीय है—स्वयंभूस्तोत्र (1920), पात्रकेशरीकृत जिनेन्द्र गुणस्तुति तथा आचार्य विद्यानन्द कृत श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र (1920), कुन्दकुन्दाचार्य तथा पूज्यपादाचार्यकृत दशभक्ति (1921), शिवकोट्याचार्यकृत रत्नमाला (1921), सोमदेवसूरिकृत द्वादशानुप्रेक्षा (1923), अमितगतिकृत तत्वभावना (1924), देवसेनकृत भावसंग्रह (1927), मल्लिषेणकृत नागकुमार चरित (1927), सकलकीर्ति विरचित सुदर्शनचरित (1927) तथा श्रीपालचरित (1963), असगकृत वर्धमानचरित (1931), कुंथुसागरकृत बोधामृतसार (1938), नेमिदत्तकृत रात्रिभोजन त्यागकथा (1956), जैन रामायण, (रविषेणकृत पद्मपुराण) (1965)।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति : देवेन्द्रकीर्ति नाम के लगभग 25 भट्टारक और विद्वान हुए हैं। यहां हमारी कालावधि में कारजा के दो भट्टारकों का नाम आता है। एक तो वे हैं जिनका जन्म स. 1916 में हुआ। अल्पावस्था मे ही उन्होंने अमोलकचद से दीक्षा ली और 41 वें वर्ष में उनका पट्टाभिषेक हो गया। आपने कारंजा गद्दी के ग्रन्थ भण्डार को सुव्यवस्थित किया, अनेक प्रतिष्ठाये करायीं और स्वाध्याय किया/कराया। सन् 1917 में उनका देहावसान हो गया।

द्वितीय देवेन्द्रकीर्ति (कालूरामजी) बलात्कारगण कारंजा शाखा के ही रत्नकीर्ति भट्टारक के शिष्य थे। सं. 1957 में वे गद्दी पर बैठे और सं. 1973 मे स्वर्गवासी हो गये। इनके बाद कोई भी भट्टारक कारंजा की गद्दी पर आसीन नहीं हुआ। आपके लगभग 200 हिन्दी पदो का मराठी अनुवाद 1895 में प्रकाशित हुआ था। यहां आपका उपनाम 'अनाथ' मिलता है।

पं. पुरुषोत्तम जैन : ऐलक चन्द्रसागर का गृहस्थावस्था का नाम पुरुषोत्तम था। उनका जन्म फलटण निवासी केशवचन्द्र की पत्नी बालूबाई की कुक्षि से हुआ वि. सं. 1917 में। सं. 1940 में विवाह हुआ और चार पुत्र और चार पुत्रियां हुई। कपडा और किराना का व्यापार करते हुए, अध्यात्म की ओर भी आपका अच्छा झुकाव था। फलतः ऐलक पन्नालाल जी के पास सोलापुर में उन्होंने पंचाणुव्रत लिये और 1969 में कुरुंदवाड में मुनि जिनाप्पा स्वामी के पास क्षुल्लक दीक्षा ले ली और 1970 मे ऐलक बन गये। इसके कुछेक वर्षो के बाद ही समाधिमरण हो गया।

पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री : जैन सिद्धान्त मर्मज्ञ पं. बालचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री का जन्म सोंरई (झांसी) उ.प्र. मे सं. 1962 में हुआ। 1921 से 1928 तक स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में रहकर आपने नव्यन्याय, जैन सिद्धान्त आदि

लिखना एक कला है और उसे सीखना पड़ता है– वह तो एक साधना है, तप है, जैसे बिना परिश्रम के कोई इंजीनियर नहीं बन सकता, वैसे ही बिना प्रयत्न के कोई लेखक नहीं बन सकता।

का अध्ययन किया और मथुरा, गुना आदि स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। 1940 से षड्खण्डागम के सम्पादन के सन्दर्भ में आप धवला आफिस अमरावती और जीवराज जैन ग्रन्थमाला सोलापुर रहे, लगभग बीस वर्ष तक।

पं. जी का अधिकाश साहित्यिक कार्य महाराष्ट्र में रहते हुए ही हुआ है। षड्खण्डागम भाग 6 से 16 का सम्पादन और अनुवाद आपके ही सहयोग से नागपुर और अमरावती में रहकर पूरा हो सका है। इनके अतिरिक्त तिलोयपण्णत्ति, भाग 1-2, जंबूदीवपण्णत्ति, आत्मानुशासन, पद्मनंदि-पचविंशतिका, लोकविभाग, पुण्याश्रवकथाकोश, ज्ञानार्णव, धर्म परीक्षा, जैन लक्षणावली 4 भाग, ध्यानशतक एवं ध्यानस्तव, श्रावकप्रज्ञप्ति, सुभाषित रत्नसदोह, षड्खण्डागम परिशीलन आदि ग्रन्थ आपके द्वारा संपादित और अनूदित हैं। अनेकान्त आदि पत्रिकाओं मे आपके शोधपरक आलेख प्रारम्भ से ही छपते रहे हैं।

सोलापुर की अनेक साहित्यिक संस्थाओं से भी आप सबद्ध रहे हैं। लोकविभाग पर आपको भारतीय ज्ञानपीठ से विशेष पुरस्कार और 'धर्मदिवाकर' की उपाधि से विभूषित किया गया। मेरठ, सागर, सोलापुर, दिल्ली आदि और भी संस्थानों से आपको सम्मानित किया गया। परन्तु इन सभी सम्मानों से पं. जी सदैव अलिप्त रहे हैं। वे वस्तुत· मौन साधक थे, निश्छल और सरल प्रकृति के थे। अन्तिम समय में आप अपने छोटे पुत्र सुरेन्द्रकुमार जी के पास हैरादाबाद में रहे और वहीं 17 अप्रेल 1991 में उनका देहावसान हो गया। उनके अवसान से प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन एवं अनुवाद के क्षेत्र में जो रिक्तता आयी है, उसका भरना सरल नहीं है।

तात्याराव नेमिनाथ पांगल : बारसी (सोलापुर में जन्मे) तात्याराव नेमिनाथ पांगल जैनधर्म और इतिहास के गहन अध्येता रहे हैं। 1913 में पूना की वसन्त व्याख्यानशाला मे दिया गया आपका भाषण इसका प्रतीक है। आपके पिताश्री अनन्तराज भी अच्छे कवि और साहित्यकार थे। आपने अपनी सुरस ग्रन्थमाला से अनेक सुन्दर जैन ग्रन्थों का भी प्रकाशन किया है। आपका गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण पर आधारित मराठी में लिखे गये तीर्थकरों के सचित्र चरित एक उल्लेखनीय योगदान है। रत्नत्रयमार्गप्रदीप (1905), पद्यावली (पिताश्री के भक्तिपदों का संकलन), पंचकल्याणक तथा सती अनन्तमती (1906), जैनधर्म, चौबीस तीर्थकर चरित्र, रत्नत्रय, कुन्दकुन्दाचार्य चरित्र (1907), वन्दे जिनवरम् (1908) मासिक पत्र का सम्पादन, तीर्थकर चरित्र (1909), अभंग आदि और भी अनेक रचनाये हैं। आपने जैन इतिहास पर भी कई पुस्तिकाये और उपन्यास लिखे हैं। महाराष्ट्र जैन साहित्य परिषद् आदि के अध्यक्ष भी रहे हैं। 1947 में आप सल्लेखना पूर्वक चल बसे।

पं. तेजपाल काला : एक साधारण परिस्थिति मे सं. 1961 में नादगांव (अमरावती) में जन्मे प तेजपाल काला का प्रारंभिक शिक्षण अमरावती मे अपने ताऊश्री चन्द्रभान के घर मे रहकर हुआ। बाद में आपके पिताश्री मूलचन्द भी सपत्नीक अमरावती में स्थानान्तरित हो गये। ताऊजी अच्छे पण्डित थे, समयसार के ज्ञाता थे, और पर्यूषण पर्व में प्रवचन भी किया करते थे। इसी वातावरण ने तेजपालजी को विद्वान बना दिया।

आप अमरावती से बम्बई आ गये। यहा अपनी गृहस्थी चलाने के लिए कपडे का व्यापार किया, किराना और अनाज की भी दुकान की। यहीं आपका सम्पर्क अनेक विद्वानों से हुआ और फलतः अपने अध्यवसाय से स्वयं भी विद्वान हो गये। रत्नकरण्डश्रावकाचार, धनजय नाममाला और तत्वार्थसूत्र के अध्ययन से प्रवचन शैली मे भी निखार आ गया।

सन् 1954 में आप जैन दर्शन के सह सम्पादक, 1964 में दि. जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के सहायक मन्त्री, भारतवर्षीय दि जैन महासभा की प्रबन्धकारिणी के प्रतिनिधि, शान्तिवीर दि. जैन सिद्धान्तसेवी सभा की प्रबन्धकारिणी के सभासद जैसी सामाजिक संस्थाओं से आपका गहरा सम्बन्ध रहा है। आप मल्लिसागर दि. जैन ग्रन्थमाला के 22 वर्ष तक मन्त्री रहे और अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया। चन्द्रभाग औषधालय के मन्त्री और गजपंथा सिद्धक्षेत्र की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य रहकर भी आपने अच्छी सामाजिक सेवा की।

तेजपाल जी के जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए उनकी पत्नी जानकी देवी ने बहुत सहयोग किया। उनके ही

शिक्षा संस्था कहो या विद्या मंदिर एक ही बात है। मंदिर पूजा का स्थान होता है, इसे कभी अखाड़ा मत बनने देना।

स्नेहिल सहयोग से पं. जी को सुखद वातावरण मिल सका। इसी से पं. जी ने 'सरल जैन विवाह पद्धति और लोकाचार' तथा 'सुगम जैन विवाह संस्कारविधि' जैसी साधारण जनोपयोगी पुस्तकों की रचनाकर सामाजिक सेवा की।

जीवराज गौतमचन्द दोशी : ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचन्द दोशी सोलापुर का प्रतिष्ठित, समृद्ध और स्वाध्यायनिष्ठ परिवार था। आपने 1914 से 1918 तक 'जैनबोधक' पत्रिका का सम्पादन किया। तत्वार्थसूत्र, आत्मानुशासन (1961), पण्डित गोपालदास वरैया कृत जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और सार्वधर्म तथा पण्डित जुगल किशोर मुख्तारकृत ग्रन्थपरीक्षा का मराठी अनुवाद इसके पूर्व आप कर चुके थे जिनका प्रकाशन बाद में हुआ। दर्शनसार (विष्णु शास्त्री वापट द्वारा लिखित) में व्यक्त जैनधर्म पर किये गये आक्षेपों का जो उत्तर पं. वंशीधर न्यायालंकार ने दिया उसका मराठी अनुवाद (1918), आचार्य शान्तिसागर चरित (1924), जाति की मीमांसा (1925), पण्डित सदासुखकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार वचनिका का अनुवाद (1954), पं. पन्नालालकृत महापुराण की आलोचना की समीक्षा (1954) तथा भगवान् नेमिनाथ (1958) ये आपकी अन्य साहित्यिक रचनायें हैं।

साहित्यिक अभिरुचि के साथ ही आप अच्छे दानवीर भी थे। 1914 में ग्रीष्मकाल में आपने गंजपंथा तीर्थक्षेत्र, नासिक पर एक विद्वत्सम्मेलन निमंत्रित किया और उसमें विचार-विमर्श कर जैन संस्कृति तथा साहित्य को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से जैन संस्कृति संरक्षक संघ की स्थापना की और उसके लिए 30000/- का दान दिया। इसके बाद 1944 में अपनी संपूर्ण संपत्ति लगभग दो लाख की इसी संघ को समर्पित कर दी। बाद में 15.1.57 को समाधिमरणपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। आज इसी जीवराज जैन ग्रन्थमाला से हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी के लगभग 300 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

धर्मवीर रावजी सखाराम दोशी : सोलापुर के रावजी सखाराम दोशी भी दोशी परिवार के एक अन्यतम साहित्यकार रहे हैं। उन्होने मराठी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए अथक प्रयत्न किया और तदर्थ अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग भी किया। बालकोपयोगी जैनधर्म के चारों भागों का अनुवादकर उन्हें प्रकाशित किया। अन्य तरुण साहित्यकारों की कृतियो का भी अपने ही द्रव्य से प्रकाशन किया। आचार्य इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार (1912), तथा पण्डित दौलतरामकृत छहढाला (1913), आदि अनेक आपकी मराठी अनुदित कृतियां हैं। जैन कथासंग्रह (1930), तथा जैन कीर्तन तरंगिणी (1931) आपकी मराठी स्वतन्त्र कृतियां हैं। आपने बीस वर्ष तक जैन बोधक का सफल सम्पादन किया और तरुण साहित्यकारो को खड़ा किया। इस पत्रिका ने समाज को अनके मुद्दों पर प्रकाश दिया जो आपकी लेखनी का ही फल कहा जा सकता है।

शान्तिनाथ यशवन्त नान्द्रे : सोलापुर वासी शान्तिनाथ यशवन्त नान्द्रे मध्यवर्गीय परिवार के साहित्यकार थे। आपने सेठ रावजी सखाराम दोशी तथा आचार्य शान्तिसागर का जीवनचरित लिखकर समाज को उनके पथचिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित किया था। कथा कौमुदी (1936) में कथाओं के माध्यम से सम्यक्त्व के पालन की प्रेरणा को पिरोया है। जम्बूकुमार की विरक्ति (1959) तथा सती चम्पावती (1963) आपकी अन्य सरलभाषा में लिखी कथात्मक कृतियां हैं।

पं. दरबारीलाल सत्यभक्त : सं. 1956 में शाहपुर (सागर) म.प्र. में जन्में पं. दरबारीलालजी सत्यभक्त ने पू. गणेशप्रसाद वर्णीजी के सान्निध्य में रहकर सागर में अध्ययन किया, फिर स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र हुए और वहीं अध्यापक भी हो गये। वहां से इन्दौर महाविद्यालय में शिक्षक हुए जहां उन्होंने 'जैनदर्शन' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। वहीं सन् 1919 में उन्होंने न्यायतीर्थ परीक्षा की उत्तीर्ण की। विजातीय और विधवा विवाह के समर्थक होने के कारण उन्हें इन्दौर छोडना पडा। सन् 1925 में कुशल चिन्तक और समाज सुधारक के रूप में तक तक पं. जी प्रसिद्ध हो चुके थे। वे वस्तुतः एक अच्छे कवि, लेखक, विद्वान और सर्वधर्म समाज के संस्थापक थे।

इन्दौर से पं. जी बम्बई आये और अन्त तक महाराष्ट्र में ही अपना कर्मक्षेत्र बनाये रखा। बम्बई में उन्हें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों ने अपना लिया। जैन जगत और जैनदर्शन पत्रिकाओं के सम्पादक होने से वे अपने विचारो को और भी सशक्त ढंग से निर्भयता पूर्वक रख सके। दोनों सम्प्रदायो के बीच उन्होंने एकता के लिए भी बहुत प्रयत्न किया।

[illegible]

जैनधर्म को आधुनिक वैज्ञानिक जगत में स्थापित करने के लिए उन्होंने 'जैनधर्म मीमांसा' नामक पुस्तक भी लिखी और वे अपने आपको सत्यभक्त कहने लगे। 1924 मे सत्यसमाज की स्थापना की। उसी समय पत्नी शान्तादेवी क्षयरोग के कारण चल बसी। कार्याधिक्य के कारण वे पत्नी का विशेष ध्यान नहीं रख सके। सत्य समाज आश्रम की स्थापना के सन्दर्भ में जमनालाल बजाज के सहयोग से वर्धा को अपना स्थायी निवास बनाया। मई 1936 में वे वर्धा आकर रहने लगे। यहीं उनका पुनर्विवाह नागपुरवासी वेणुबाई से 1937 में हो गया। महात्मा भगवानदीन इस विवाह के पुरोहित थे।

सत्याश्रम वर्धा सत्यभक्तजी का कार्यस्थल बन गया जहा वे अन्त तक रहे। उन्होंने 'सत्यदर्शन' और संगम पत्र भी प्रारम्भ किये। अपने विचारो की आवाहक लगभग पचास पुस्तकें सत्यभक्तजी ने समाज में नयी चेतना जाग्रत की। उनके आश्रम में सत्य समाज मन्दिर भी था। मुझे उनसे मिलने का भी सौभाग्य मिला है लगभग 1980 में।

सत्यभक्तजी ने लगभग पचास साल वर्धा में बिताये और सत्यसमाज का प्रचार करते रहे। फिर भी वे जैनधर्म को नहीं भुला सके। उनमें जैनदर्शन का अगाध पाण्डित्य था और जैनधर्म में उनकी अगाध श्रद्धा भी अन्त तक बनी रही। बीसवीं शताब्दी के दशवें शतक के लगभग अन्तिम समय तक वे समाज सेवा करते रहे।

ब्र. माणिकचंद चवरे : तात्याजी के नाम से विश्रुत ब्र. माणिकचंद जयकुमार चवरे गुरुकुल प्रणाली के समर्थक और प्रचारक थे। आचार्य समन्तभद्र महाराज के और प देवकीनंद जी शास्त्री, दोनों महानुभावों के व्यक्तित्व से प्रभावित तात्याजी का जन्म जैनो की काशी कारजा के एक समृद्ध परिवार में 30 जुलाई 1911 को हुआ। उनके पिता जयकुमार चवरे उस समय के अकोला के प्रसिद्ध वकील थे। उनकी माता सुदरबाई भी श्रीमत परिवार से थीं। चार भाई और दो बहनो से भरा यह धार्मिक संस्कार सपन्न सुशिक्षित परिवार कारजा आश्रम के लिए वरदान था। गुरूणा गुरु पं. गोपालदास जी वरैया के सहयोग से पं देवकीनन्दनजी शास्त्री को यहा नियुक्त किया गया। साथ ही ब्र. देवचद काका भी उसी मे अध्यापन कार्य करने लगे। 1921 में माणिकचंद को भी उसी आश्रम में अध्ययनार्थ प्रवेश करा दिया गया।

थोडे समय बाद ही तात्याजी को माता-पिता का वियोग सहना पड़ा। इस वियोग ने उन्हे ससार के स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया और उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर समाजसेवा का व्रत ले लिया। 1933 मे ब्र. देवचन्द काका ने आचार्य श्री शान्तिसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली और क्षुल्लक समन्तभद्र बनते ही उन्होंने गुरुकुल का अधिष्ठाता पद देवकीनंदनजी को और उपाधिष्ठातापद माणिकचंद जी चवरे को सौप दिया। 1934 मे बाहुबली में भी गुरुकुल की स्थापना हो गई और वहा कोल्हापुर के दानवीर सेठ कल्लप्पा विरगे ने बाहुबली भगवान की मूर्ति वहा की व्यवस्था विराजित कर दी। 1940 मे देवलगांवराजा और 1941 में गजपंथा में भी गुरुकुल स्थापित कर दिये गये। वहां क्रमशः लालाजी विठोबाजी फर्सुले और शान्तिकुमार तथा जयचंद लोहाडे पर छोड दी गई। इसी तरह 1943 में रामटेक मे और 1944 मे खुरई मे भी गुरुकुल खुल गये। 1952 में क्षुल्लक समन्तभद्र मुनि समन्तभद्र बन गये। इसके बाद प. देवकीनन्दनजी स्वास्थलाभ के लिए इन्दौर चले गये जहां उन्होंने अन्तिम सांसे लीं। तात्याजी इन सभी गुरुकुलों का कार्यभार संभालते हुए अध्यात्मिक साधना करते रहे। अशोक चवरे ने आश्रम में आकर उनकी हर तरह से मदद की और आश्रम की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। इससे तात्याजी को अन्य सामाजिक कार्यो में समय अधिक मिलने लगा। कुन्दकुन्द कहान तीर्थक्षेत्र कमेटी की स्थापना के पीछे भी तात्याजी का हाथ था। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की सुरक्षा करने में भी तात्याजी का बडा योगदान रहा है।

तात्याजी वृद्धावस्था के कारण काफी अशक्त हो गये थे। मोतियाबिन्द बढ़ रहा था, प्रोस्टेट ग्लेंड का आपरेशन भी आवश्यक था। दोनों आपरेशन हो गये, पर स्वास्थ्य सुधर नहीं सका। वे स्वाध्याय में लीन रहकर मानसिक एकाग्रता करते और कष्ट भूलने का प्रयत्न करते। अन्ततः 30 अगस्त 1997 में वे इस संसार से चल बसे और गुरुकुल प्रणाली का एक सशक्त अध्याय समाप्त हो गया।

जैन समाज हमेशा से एकता, समन्वय और सहिष्णुता का प्रबल पक्षधर रहा है। जिस प्रकार हर बीज में वृक्ष बनने और प्रत्येक अक्षर में मंत्र बनने की शक्ति निहित है, उसी प्रकार हर आत्मा में परमात्मा होने की योग्यता है।

तात्याजी का समूचा जीवन एक समर्पित और निःस्वार्थ सेवक के रूप में बीता। उनमे स्वाध्यायशीलता, सरलता, तत्वज्ञता, वैदुष्य, मौन साधकता, निरभिमानता और सहनशीलता जैसे अपार गुण थे। इन्ही गुणों ने उनको कर्मयोगी बना दिया।

माणिकचंद भिसीकर : भिसीकर गुरुजी का जन्म कारंजा (वाशिम) में 1 अगस्त 1916 में हुआ। गुरुकुल प्रणाली के प्रवर्तक आचार्य श्री समन्तभद्र ने 1918 में यहां महावीर ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की। इस सस्था की पूर्वपीठिका को सुनिश्चित करने के लिए जिन छह व्यक्तियों की कमेटी बनी थी उसमें एक थे भिसीकरजी के पिताश्री जयवतसा भिसीकर। प्रारम्भ से मैट्रिक तक माणिकचन्दजी भिसीकर की शिक्षा इसी गुरुकुल में हुई और बाद में बी.ए. तथा न्यायतीर्थ की उपाधियां नागपुर से प्राप्त की। आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लेकर 1941 मे आचार्यश्री के निर्देश पर सोलापुर में गुरुकुल की देखरेख करने में जुट गये। बाद मे 1952 में वे बाहुबली आश्रम के संचालक बना दिये गये। यहीं से उन्होंने डॉ. उपाध्ये के मार्गदर्शन में प्राकृत में एम.ए. भी कर लिया।

1963 में संस्था की गतिविधियां विकसित करने का निर्णय लिया गया। आचार्य श्री शान्तिसागरजी इसी वर्ष यहा पधारे और उनके निर्देशन पर कर्नाटक मे भी गुरुकुलों की स्थापना की गई। इस तरह बाहुबली की तेरह शाखायें विभिन्न स्थानों पर शुरु हो गई और उनका सारा उत्तरदायित्व भिसीकरजी के सबल कन्धों पर आ गया, जिसका उन्होंने बडी कुशलता पूर्वक निर्वाह किया। 1983 में बाहुबली का डोंगरासंबन्धी राजकीय विवाद चला जिसे आचार्य श्री विद्यानन्दजी तथा सरयू दफ्तरी के आत्मिक सहयोग से निपटाया जा सका। इसमें भी भिसीकर जी की दूरदर्शिता ने जबर्दस्त काम किया।

आचार्य श्री समन्तभद्रजी की इच्छानुसार 1950 में सोलापुर से 'सन्मति' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और उसके सम्पादन का भार भी भिसीकर जी को स्वीकारना पड़ा। बाद में यह पत्रिका बाहुबली में स्थानान्तरित कर दी गई। इस पत्रिका में उनके जैन दर्शन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण आलेख प्रकाशित हुए। डॉ. कोलते, पद्मनाभ जेनी, आचार्य कालेलकर, ए.एन. उपाध्ये, डॉ. संघवे, प्राचार्य सुमेरुचद्र जैन, डॉ. जोहरापुरकर आदि विद्वानों के निबन्ध इसमें प्रकाशित होते रहे हैं।

जैन साहित्य संशोधन में प्रगति लाने की दृष्टि से बाहुबली मे अनेकान्त शोध विद्यापीठ की भी स्थापना की गई। भिसीकरजी के सान्निध्य में इस सस्थान से अनेक शोधप्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। एक लम्बे समय तक स्तम्भ के रूप में काम करने वाले कर्मठ कार्यकर्ता भिसीकरजी का देहावसान 20 अप्रैल 2003 को हुआ। उनके जाने से गुरुकुल प्रणाली का एक और स्तम्भ ढ़ह गया।

ब्र. मोहोलकर गुरुजी : ब्र. माणिकचंद शिवलाल शहा उर्फ मोहोलकर गुरुजी, ब्र. माणिकचंद जयकुमार चवरे (तात्याजी) ब्र. माणिकचंद जयवंतसा भीसीकर ये तीन माणिक्य थे, जिन्होने मराठी भाषी जैन समाज की अनूठी प्रगति की है। इनका साथ दिया वालचंद शहा, भूपाल दलाल, अजित कुमार कर्के, आदिनाथ सोनटक्के, देवचंद जोहरापुरकर, मृत्युंजय मालगावे, बाबूराव पाटिल, यशपाल जैन, रवीन्द्र जैन, विष्णुकुमार देशमाने, देवचंदशहा, अभयकुमार डोलस, रामचंद्ररु द्राक्ष आदि बालब्रह्मचारी वर्ग ने। इन सभी कार्यकर्ताओ ने आचार्य समन्तभद्र के निर्देशन में गुरुप्रणाली को जाग्रत किया और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को तेज किया।

इनमें ब्र. माहोलकर गुरुजी का स्वर्गवास 20.9.02 को हो गया। उन्होंने 47-48 में वी.टी. परीक्षा उत्तीर्णकर मुनिश्री के निर्देश से बाहुबली गुरुकुल के मुख्याध्यापक का पद विभूषित किया। उन्होंने जीवन के अन्तिम समय तक इस गुरुकुल में पूरी कुशलता, समरसता और अनासक्ति के साथ कार्य किया।

पं. नाथूराम प्रेमी : पं. नाथूराम प्रेमी यद्यपि देवरी (सागर) में जन्में पर उनका अधिकांश समय बम्बई मे बीता। स 1938 में जन्में प्रेमीजी की प्रारंभिक शिक्षा देहति में ही हुई। बाद में उन्होंने मास्टरी की और फिर नागपुर के कृषि कालेज में शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने सन् 1901 में मुंबई प्रान्तिक सभा में मुंशीगिरि की। इस सभा के अन्तर्गत जैनमित्र और उपदेशकीय विभाग थे।

किसी भी अच्छे कार्य को टालो मत और न उसे बे-मन से करो। कार्य को बोझ मत समझो, उसमें दिलचस्पी लो, जहां भी तुम हो, पूरी तरह वहीं रहो।

यहां रहकर प्रेमजी ने संस्कृत, गुजराती, बंगला और मराठी भाषायें सीखी, रामचंद्र ग्रन्थमाला में काम किया और जैन हितेषी के सफल सम्पादक रहे। बाद में जब सन् 1912 में पन्नालाल बाकलीवाल ने ग्रन्थों के विक्रय की दृष्टि से जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय चालू किया तो प्रेमीजी को अपनी प्रतिभा को विकसित करने का सुअवसर मिला। यहां से उनका पहला ग्रन्थ 'स्वाधीन' प्रकाशित हुआ जो महावीरप्रसाद के लिबर्टी ग्रन्थ का अनुवाद था। रसिकमित्र, काव्य सुधाकर आदि पत्रिकाओं में उनकी अनेक कवितायें निकलीं जिन्होंने उनको कवि के रूप में भी स्थापित कर दिया। इसी तरह जैन हितैषी ने उनकी शोधवृत्ति को प्रकाशित किया।

प्रेमीजी ने मूल ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों का अध्ययन कर जो प्रस्थापनायें की है वे आज भी अनूठी हैं। उनकी इस प्रतिभा को हम निम्न ग्रन्थों में देख सकते हैं– विद्वत् रत्नमाला भाग 1,2, दिगम्बर जैन ग्रन्थ कर्ता और उनके ग्रन्थ, बनारसीदास का जीवन चरित्र, भट्टारक मीमांसा, कर्नाटक जैन कवि, भक्तामर स्तोत्र पद्यानुवाद, विषापहार स्तोत्र पद्यानुवाद, उपमिति भव प्रपंच कथा, भाग 1-2, ज्ञान सूर्योदय नाटक, प्राणिप्रिय काव्य-अनुवाद, सज्जनचित्त बल्लभ-अनुवाद, पुण्यास्रवकथाकोश, अनुवाद, धूर्ताख्यान, चर्चाशतक, प्रतिभा, फूलो का गुच्छ, दिया तले अंधेरा, प्रद्युम्नकुमार, रवीन्द्रकथाकुज, जैन साहित्य का इतिहास, अर्धकथानक, तारणपन्थ, जान स्टुअर्ट चरित्र (मराठी)। सेठ माणिकचंद झवेरी से अधिक आत्मीयता होने के कारण प्रेमीजी ने उनसे माणिकनंद ग्रन्थमाला स्थापित करायी और संपादित कर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ उससे प्रकाशित किये। उनके जाने के बाद यह संस्था भारतीय ज्ञानपीठ में अन्तर्मुक्त हो गई।

मोतीचंद गांधी अज्ञात : उस्मानाबाद (औरंगाबाद) में जन्में मोतीचंद गांधी कपास के समृद्ध व्यापारी थे। लगभग 15 वर्ष की अवस्था में 1921 में उनका विवाह रतनबाई के साथ हो गया। थोड़े समय बाद ही वे क्षय रोग से ग्रस्त हो गये। लगभग दस वर्ष के बाद दो पुत्र और एक पुत्री हुई। घर का वातावरण बडा धार्मिक था। वे जातिवाद के विरोधी थे और जैनधर्म में अटूट श्रद्धा रखते थे। मुनि समन्तभद्रजी के प्रति उनके मन में गहरी श्रद्धा थी। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने माताश्री चतुरबाई के नाम से चतुरबाई जैन ग्रन्थमाला ट्रस्ट की स्थापना की और उसी से सभी ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया।

गांधी कुशल व्यवसायी तो थे ही, साथ ही एक अच्छे कवि, लेखक और चिन्तक भी थे। रतनबाई ने सारे गार्हस्थिक कार्यो का उत्तरदायित्व सम्हालकर उन्हें साहित्यिक कार्यो में व्यस्त रहने की छूट दे दी थी। परिणामतः वे दिन-रात जुटकर निम्नलिखित ग्रन्थो को लिख सके–

1. साधु शिक्षा - अध्यात्मकल्पद्रुम के शिक्षोपदेशाधिकार का काव्यात्मक रूपान्तरण (1926), 2. सुभाषित रत्नसंदोह - काव्यात्मक रूपान्तरण, 3.आर्या कुन्दकुन्द - आचार्य कुन्दकुन्द के समग्र ग्रन्थों का काव्यात्मक रूपान्तरण (350 पृष्ठ), 4. पंचसंग्रह (1951) - परमात्मप्रकाश, योगसार, इष्टोपदेश, समाधिशतक और सूक्तिमुक्तावलि का काव्यात्मक रूपान्तरण (100 पृष्ठ) 5. धर्मपरीक्षा - काव्यात्मक रूपान्तरण (210 पृष्ठ), 6. ग्रन्थत्रयी - कार्तिकेयानुप्रेक्षा, तत्त्वानुप्रेक्षा और वसुनन्दी श्रावकाचार का काव्यात्मक रूपान्तरण, 7. क्षत्रचूडामणि (1958) - टीका एवं मराठी अनुवाद (310 पृष्ठ), 8. आत्मसिद्धि - मराठी अनुवाद (110 पृष्ठ), 9. मुनिसुव्रतकाव्य (1958) - मराठी काव्यात्मक अनुवाद (पृ. 75), 10. उपमितिभवप्रपंचकथा - गद्यात्मक मराठी अनुवाद (पृ. 575), 11. छहढाला - मराठी काव्यात्मक अनुवाद (पृ. 60), 12. माझी तीर्थवन्दना - तीर्थक्षेत्र परिचय (पृ. 625), 13. महावीरचरित्र (1931) - मराठी गद्य (पृ. 175), 14. नित्यक्रियादि पूजन संग्रह - (पृ. 235), 15. पद्मनंदि पंचविंशति - मराठी काव्यानुवाद (पृ. 266), 16. जैन लग्नविधी - (पृ. 100), 17. जैन ज्ञानकोश - चार भाग (पृ. 1600), 18. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय - मराठी काव्यानुवाद, 19. हरिषेणाचार्यकृत वृहत्कथाकोश-दो भाग (1936), 20. कुरलकाव्य - गद्यानुवाद (1937), 21. तामिल जैन वाड्मय, 22. सज्जनचित्त बल्लभ - मराठी अनुवाद, 23. परमपदप्राप्तीची भावना - मराठी काव्यानुवाद, 24. अनित्यपंचाशत, 25. वैराग्यमणिमाला - मराठी काव्यानुवाद, 26. मनोभावना - मेरी भावना का मराठी अनुवाद, 27. सामायिक पाठ - मराठी पद्यानुवाद, 28. आर्या महापुराण - काव्यात्मक अनुवाद, 29. द्विजवदनचपेट, 30. रत्नकरण्डश्रावकाचार, 31. सागारधर्मामृत, 32. प्रतिष्ठा तिलक, 33. आशाधरकृत त्रिषष्टि शलाका स्मृतिशास्त्र - (1937)

जैन धर्म सचमुच में वैदिक या हिन्दू धर्म नहीं है, यद्यपि उसकी उत्पत्ति भारत में ही हुई है और वह भारतीय जीवन संस्कृति तथा तत्त्व ज्ञान का मुख्य अंग है। धर्म की दृष्टि से जैन धर्म हिन्दू धर्म नहीं है। ([illegible])

रुग्णावस्था में भी इतना अधिक साहित्यिक कार्य कर लेना ही कर्मठता और अनूठापन है। 'आराम हराम है' अज्ञात का जीवन दर्शन था।

डॉ. विलास संघवे : सोलापुर में जन्में लगभग तेरासी वर्षीय (जन्म 2 जून 1920) डॉ. विलास संघवे जैन समाजशास्त्र के कदाचित् प्रथम अध्येता रहे हैं। बम्बई विश्वविद्यालय से उन्होंने पांच वर्ष के सतत परिश्रम के बाद 1950 में "Jain Community A Social Survey" विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। तभी से जैन साहित्य, जैन कला आदि के समान जैन समाज भी एक विशिष्ट अध्ययन का क्षेत्र माना जाने लगा। इस शोधप्रबन्ध का प्रकाशन मुंबई विद्यापीठ की ओर से मुंबई के पापुलर प्रकाशन ने 1956 में किया। 1980 में उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। इस शोधग्रन्थ का प्रभाव इतना अधिक हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर "जैन समाज" अध्ययन का एक स्वतन्त्र क्षेत्र मान्य हो गया। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में जून 1985 में इस विषय पर एक पृथक् चर्चा सत्र भी रखा गया था जिसमें डॉ. संघवे विशेष रूप से आमन्त्रित विद्वान् के रूप में उपस्थित रहे। मैं भी उसमें आमन्त्रित किया गया था।

डॉ. संघवे प्रारम्भ में कुछ वर्ष कर्नाटक कालेज धारवाड में प्रोफेसर रहे और फिर कोल्हापुर विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं। और वहीं से 1980 में सेवानिवृत्त हुए। जैन दर्शन का भी उनका अध्ययन गभीर है। अहिसा आदि अनेक विषयों पर अंग्रेजी मे उनके कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। डॉ. उपाध्ये के देहावसान के बाद दक्षिणवर्ती विद्वान के रूप में उनका नाम काफी उभरा। पुणे में 1988 में हुए मराठी जैन साहित्य सम्मेलन के आप अध्यक्ष भी रहे हैं। अहिंसा इंटरनेशनल आदि सस्थानो द्वारा भी वे सम्मानित हुए हैं।

अंग्रेजी, मराठी और हिन्दी पर समान अधिकार रखने वाले प्रोफेसर संघवे को 1985 में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय लंदन ने और 1989 में बिहार सरकार ने सम्मान किया। 1990 में उन्हें बकिंघम पेलेस लण्दन में भी The Jain Declaration of Nature विषय पर भाषण देने निमन्त्रित किया गया। देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों से भी सघवे संबद्ध रहे हैं।

डॉ सघवे कोल्हापुर विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद साहू शोध सस्थान, कोल्हापुर एवं अनेकान्त शोधपीठ बाहुबली के मानद निदेशक के रूप में अपनी सेवायें देते रहे हैं। मराठी में भी उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। 2002 मे शिवाजी विद्यापीठ ने उनके द्वारा सम्पादित "जैन साहित्य व संस्कृति" नामक एक अच्छा सन्दर्भ ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसी तरह अनेकान्त शोधपीठ ने भी जैन संस्कृति : परम्परा व प्रभाव नामक उनका ग्रन्थ प्रकाशित कर यशार्जन किया है। उनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं– 1 Jaina-community A Social Survey, 2 Life and Legacy of Mahavira A Social Study, 3 History of Dakshina Bharat Jaina Sabha, 4 Sacred Shravana Belagala A Social Religious Study, 5 Hirachand Nemchand The Pioneer of Jain Social Preform Movement, 6 Aspects of Jain Religion, 7 The Jain Path of Ahimsa

डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर : सन् 1935 में नागपुर में जन्में डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर ने नागपुर विश्वविद्यालय से 1956 में संस्कृत में एम.ए. और 1959 में प्रोफेसर मिराशी के निर्देशन में 'भट्टारक सम्प्रदाय" पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। उनका कार्यक्षेत्र मध्यप्रदेश रहा है। वहीं से वे उच्च शिक्षा विभाग में सस्कृत प्राध्यापक पद पर नागपुर, जबलपुर, जावरा, मण्डला, भोपाल आदि स्थानों पर शिक्षण कार्य करने के बाद शासकीय महाविद्यालय केवलारी (सिवनी) के प्राचार्य पद से निवृत्त हुए। पी-एच.डी के बाद जैन इतिहास और संस्कृति के अध्ययन की ओर उनका झुकाव बढ़ता गया। फलतः एतत्सम्बन्धी उनके अनेक लेख और शोध ग्रन्थ सामने आये। मूलतः मराठी भाषी होने के कारण मराठी में भी आपका कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। दक्षिण भारत जैन सभा ने आपको 1999 में साहित्य पुरस्कार से सम्मानित किया है और दक्षिण वघेरवाल संघने भी आपको सम्मानित किया है। वर्तमान में आप सेवानिवृत्त होने के बाद नागपुर में ही अपने परिवार के साथ रहकर साहित्य साधना कर रहे हैं। अभी तक आपके द्वारा संपादित/लिखित प्रकाशित पुस्तकों की सूची इस प्रकार हैं–

1. यशस्तिलक (हिन्दी कथासार), 2. तिलकमंजरी (हिन्दी कथासार), 3. भट्टारक सम्प्रदाय (इतिहास साधन संग्रह), 4. धर्मामृत (15वीं शती का मराठी रचना), 5. जिनसागर कविता (18वीं शती की मराठी रचनायें), 6. तीर्थवन्दन संग्रह (इतिहास साधन संग्रह), 7. विश्वतत्त्व प्रकाश (13वीं शती की संस्कृत रचना), 8. प्रमाप्रमेय (13वीं शती की संस्कृत रचना), 9. जैन शिलालेख संग्रह, भाग 4, 10. जैन शिलालेख संग्रह, भाग 5, 11 कुवलय माला (मराठी कथासार), 12. स्वयंभू स्तोत्र (मराठी अनुवाद), 13. वीरशासन के प्रभावक आचार्य (पूर्वार्ध), 14. विवेक विलास (15वीं शती की गुजराती रचना), 15. भ. महावीर (हिन्दी पुस्तिका), 16. भ. महावीर (मराठी पुस्तिका), 17. प्राचीन मराठी कथा पंचक (17-18 वीं शती की कथायें), 18. मराठी जैन साहित्य (जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग 7 में संमिलित), 19. बघेरवाल जाति का इतिहास।

पं. नेमचंद धन्नुसा डोणगांवकर : सत्तरवर्षीय पं. नेमचद धन्नूसा डोणगांवकर जैन इतिहास, संस्कृति, साहित्य और दर्शन के तलस्पर्शी विद्वान हैं। उनकी संयमित वृत्ति, शान्त प्रकृति और निरहंकारी चेतना व्यक्ति को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेती है। आपने गुरुकुल कारंजा और बाहुबली में अध्ययन करते हुए न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर क्षेत्र के लिए प्रदत्त निःस्वार्थ सेवा उनके सरल व्यक्तित्व का एक विशिष्ट पक्ष रहा है। विदर्भ के जैन इतिहास पर अनेकान्त में प्रकाशित कतिपय लेखो ने उनकी विद्वत्ता का अच्छा आभास दिया। पं. डोणगांवकर के लिखित ग्रन्थो मे अन्यतम हैं—1. श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ निवडक साहित्य संग्रह, 2. श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ का इतिहास, 3. श्रुतावतार तथा संघभेद . शोध तथा भेद, 4. पं. आशाधर : व्यक्तित्व और कृतित्व।

पं. धन्यकुमार भौरे : महाराष्ट्र में कारजा गुरुकुल ने वही कार्य किया है जो मध्यप्रदेश मे श्री गणेश वर्णी महाविद्यालय मोराजी सागर ने और उत्तरप्रदेश में स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी ने। प्रोफेसर पद्मनाभ जैनी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वानों की जननी कारंजा आश्रम संस्थान से उद्भूत पं. भौरे का जन्म 1924 में नागपुर में हुआ। कारजा, अमरावती, और नागपुर में रहकर उन्होंने बी ए., एल-एल बी. की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। सीधी-सादी वेषभूषा में रहने वाले भौरे के व्यक्तित्व पर महात्मागांधी का प्रभाव अधिक रहा। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी भाग लेकर उन्होंने राष्ट्र की सेवा की। समयसार (1968), प्रवचनसार, नियमसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि ग्रन्थों को मराठी भाषा में अनूदित कर उन्होंने जिनवाणी की भी अनन्य सेवा की। पं. भौरे एक कुशल लेखक, और प्रवचनकार हैं। बघरेवाल संघ के भी वे एक निष्ठावान् कार्यकर्ता हैं।

डॉ. सुभाषचंद्र अक्कोले : मराठी जैन साहित्य के प्रख्यात सशोधक, प्रभावी लेखक और वक्ता डॉ. सुभाषचन्द्र अक्कोले के 1 अप्रैल 2002 को पचहत्तर वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य मे 6 अप्रैल को जयसिंगपुर में 'अमृत महोत्सवी सत्कार' का भव्य आयोजन किया गया। मराठी और संस्कृत के अधिकारी विद्वान डॉ. अक्कोले सातारा, बारामती, जयसिंगपुर आदि स्थानों पर मराठी प्राध्यापक के रूप मे कार्य करते हुए अनेकान्त एज्युकेशन सोसायटी के जयसिंगपुर कालेज से प्राचार्य के रूप मे सन् 1987 में सेवानिवृत्त हुए। अपने "प्राचीन मराठी जैन साहित्य" जैसे महत्वपूर्ण विषय पर पी-एच.डी 1964 में पुणे विश्वविद्यालय से की जिसका प्रकाशन 1967 में सुविचार प्रकाशित नागपुर से हुआ। इसके बाद ब्रह्मगुणदास विरचित श्रेणिकचरित्र मेघराज विरचित जसोहररास, सूरिजन विरचित परमहंस कथा और गुणकीर्ति विरचित द्वादशानुप्रेक्षा ग्रन्थों का सम्पादन किया और तुकाराम गाथा, स्वात्मविचार, नामदेवकृत संतचरित्र, आदि छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ लिखे। सन्मति आदि अनेक मराठी पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल में भी आपका नाम मुखरित हुआ है। इसी तरह जैन संस्कृति संरक्षक संघ आदि अनेक सस्थानों और तीर्थक्षेत्रों के विकास में भी आपने अपना गुरुतर योगदान दिया। मराठी जैन साहित्य पर काम कर आपने मराठी साहित्यिक क्षेत्र में एक नयी चेतना जाग्रत कर दी और विचारवान् समीक्षक के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। 'समाज संवाद' नामक ग्रन्थ में सन्मति और जिणविजय पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके अग्रलेख संकलित हुए हैं। "संत श्रेष्ठ आचार्य श्री शान्तिसागर" और धवलगान ने भी अक्कोले को एक सफल मराठी जैन साहित्यकार के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। धवलगान में सं. 925 से 1813 तक की बीस आदि कालीन और मध्यकालीन मराठी जैन कवियों की 48 रचनाओं का संकलन है। ब्र. माणिकचंदजी भिसीकर के देहावसान के बाद डॉ. अक्कोले सन्मति के संपादक बनाये गये।

मन में जिज्ञासा बनी रहे तो स्वाध्याय और सत्संगति से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

प्राचार्य विद्याधर उमाठे : पल्लीवाल जैन समाज के मूर्धन्य प्राचार्य विद्याधर उमाठे का जन्म कोंढ़ाली (नागपुर) ग्राम में 26 जून 1926 को हुआ। वे संस्कृत और मराठी के अच्छे कवि थे। कारंजा आश्रम के पुनीत वातावरण ने उन्हे जैन सस्कृति के अध्येता और जैन साहित्य के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित किया और आचार्य श्री समन्तभद्र के अनुशासित जीवन ने उन्हें एक कुशल समाज सेवक बनाया। नागपुर विद्यापीठ के प्राध्यापक और स्वावलम्बी शिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य उमाठे एक सिद्धहस्त साहित्यकार भी थे। उनके द्वारा लिखित और अनूदित ग्रन्थों में प्रमुख हैं–शैक्षणिक संशोधनाची मूलतत्त्वे, इष्टोपदेश, भावना बत्तीशी, श्रावक धर्मसार, मंगलार्चना, अनेकान्त पाठावली, गोमटेश्वर, बाहुबली, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्तोत्र, संजीवन पत्रावली, सूक्ति सौरभ, महावीर गीत सुधा, निर्वाण क्षेत्र पूजा, साररूप कार्तिकेयानुप्रेक्षा, भ. महावीरांचे सर्वोदय तीर्थ, अभंग सुधा, जैन विचारधारा, जीवनदृष्टि, तीर्थकर महावीर, भद्रभारती, प. पू. गुरुदेव श्री समन्तभद्र महाराजांचे लघुचित्र (हिन्दी/मराठी), समय रत्नमाला, श्रमणसूत्र रत्नमाला, पदार्थ रत्नमाला, परिपाठ रत्नमाला आदि।

मराठी जैन साहित्य सम्मेलन जयसिंगपुर की आपने अध्यक्षता की। शोधपीठ बाहुबली के मानद संचालक, सन्मति के सह सम्पादक, शिक्षण भारती के प्रधान सम्पादक, अनेक विद्यापीठों और संस्थानों के सदस्य भी आप रहे हैं। ललिता विद्याधर उमाठे आपकी सुशिक्षित पत्नी हैं जो आज भी महिलाश्रम अध्यापिका विद्यालय वर्धा की प्राचार्या है। प्राचार्य उमाठे समाज और साहित्य की सेवा करते हुए 22 सितम्बर 1995 को स्वर्गवास हो गये। एक सरल और निष्काम साधक हमारे बीच से चला गया।

प्राचार्य सुमेरूचन्द्र जैन : 7.11.1925 को जन्में प्राचार्य सुमेरूचन्द्र जैन मूलत चांदूर (नागपुर) वासी हैं पर उनका कर्मक्षेत्र सोलापुर है जहां से वे एक प्रसिद्ध कालेज के प्राचार्य पद से निवृत्त हुए लगभग 1990 मे। वे 'सन्मति' के सम्पादक रहे हैं। उनका लेखन सरल और गम्भीर दोनों प्रकार का है। उनकी पत्नी लीलावती भी साहित्य सृष्टा रही हैं। उनके ही नाम पर प्राचार्यजी ने स्वयंभू प्रकाशन प्रारम्भ किया जिससे अभी तक लगभ 100 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। 'जटायू' नामक निबन्ध संग्रह में उनके विचारोत्तेजक निबन्धों का संकलन है। वर्धमान महावीर (1958), सम्राट करकण्डु (1934), अमरकथा (1970) जैसे कथात्मक ग्रन्थें में आपने प्राचीन कथाओं का सरस रूपान्तरण किया है। समयसार प्रवचन 10 भाग, समाधि, जीवन्धरकथा, जैनाचार्य, आर्यनन्दी महाराज, लक्ष्मीसेन भट्टारक आदि विषयो पर आपने छोटे-छोटे अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। हिन्दी-मराठी और मराठी-हिन्दी अमरकोश तथा बाल विश्वकोश जैसी सार्वजनोपयोगी पुस्तको का सम्पादन भी आपने किया है। अभी तक आपके लगभग 50 ग्रन्थ निकल चुके हैं। वर्तमान में 'अरिहन्त' पत्रिका आपके संपादन में सोलापुर से ही प्रकाशित हो रही है। ब्रह्मचर्याश्रम कारंजा ने आपको जो दृष्टि और संस्कार दिये हैं उन्होंने आपको अच्छा साहित्यकार बना दिया है। भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ (1976) जैसे सुन्दर ग्रन्थों के प्रकाशन का संयोजन भी आप करते रहते हैं। 1987 के मराठी जैन साहित्य संमेलन के आप अध्यक्ष भी रहे है

श्रेणिक अन्नदाते : डोंबावली (मुंबई) से प्रकाशित 'तीर्थकर' मासिक पत्रिका के सम्पादक और वरिष्ठ मराठी साहित्यकार श्रेणिक अन्नदाते का मराठी जैन साहित्य के चिन्तन में महनीय योगदान है। वे पिछले पैतीस वर्षो से तीर्थकर पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। उनके सम्पादन काल में अनेक मराठी जैन साहित्यकारों की सुप्त प्रतिभा जाग्रत हुई। 1997 से अन्नदाते समकालीन मराठी जैन कथाओं के प्रकाशन मे जुटे हुए हैं। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यह उपयोगी भी है। सुमेरु प्रकाशन की ओर से अभी तक उनके पुनीत (1997), परहिदं च कादव्वं (1998), गिरनार (1999), व्रती (2000), अभिषेक (2001) नाम के पांच कथासंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें चौबीस लेखकों-लेखिकाओं द्वारा लिखित ब्यासी जैन कथाओं का संकलन हुआ है। मराठी जैन इतिहास परिषद की स्थापना कर आपने जैन इतिहास की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।

मनोहर गणपतराव मारवडकर : कोदामेढ़ी (नागपुर) में 1931 में जन्में मनोहर गणपतराव मारवडकर कारंजा ब्रह्मचर्याश्रम के छात्र रहे हैं। प्रवर डाकघर अधीक्षक पद से सेवानिवृत्त होने के बाद आप स्वाध्याय, लेखन, अनुवाद, काव्य

रचना आदि में व्यस्त हो गये। परिणामतः जिनार्चन, योगसार, स्वधर्म आराधना, भक्तामर विधान, सामायिकपाठ, कुंदकुंदशतक, परमात्मप्रकाश अनुवाद, तत्वार्थसूत्र व भक्तामर स्तोत्र अनुवाद, आत्मसिद्धि, क्षत्रचूडामणि, समाधि सोपान, द्रव्यसंग्रह, अप्तमीमांसा, इष्टोपदेश आदि ग्रन्थों का मराठी गद्य-पद्यात्मक अनुवाद किया। आपके कुछ ग्रन्थ महावीर गीतगंगा, भक्तामरस्तोत्र विधान, शुद्धोपयोग आदि हिन्दी में भी प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर : कुशल साहित्यकार और जैन-बौद्ध संस्कृति के मर्मज्ञ डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' का जन्म बम्हौरी (छतरपुर) म.प्र. में 1 जनवरी 1939 में हुआ। पिताश्री गोरेलाल और माताश्री तुलसादेवी ने धार्मिक संस्कार दिये। प्रारम्भिक शिक्षण तो गांव में ही हुआ पर बाद में सागर और फिर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे रहते हुए बी.ए. एम.ए. (संस्कृत, पालि-प्राकृत, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व) किया और साहित्याचार्य आदि अन्य उपाधियां भी लीं। कामन्वेल्थ फैलोशिप पर Jainism in Buddhist Literature विषय पर श्रीलका में 1963 से 1965 तक रहकर 1966 में पी-एच.डी. की। उसके बाद नागपुर विश्वविद्यालय में 1965 से विभिन्न पदों पर काम करते हुए 1998 में प्रोफेसर एवं पालि-प्राकृत विभागाध्यक्ष के रूप में काम करते हुए सेवानिवृत्त हुए। इस बीच आपने 1983-95 तक राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर में जैन अनुशीलनकेन्द्र में प्रोफेसर एवं निदेशक पद पर कार्य किया। 1985-87 तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने आपको अपनी सर्वोच्च National UGC Fellowship देकर संमानित किया। 1999 से 2001 तक पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी में प्रोफेसर एवं निदेशक रहे। वर्तमान में सन्मति प्राच्य शोध संस्थान नागपुर तथा सर्वोदय विद्यापीठ सागर के मानद प्रोफेसर एवं निदेशक हैं। विशेष बात यह है कि डॉ. जैन ने नागपुर विश्वविद्यालय से विभिन्न विषयो पर सस्कृत पालि-प्राकृत और हिन्दी में तीन डी. लिट्. की उपाधियां लीं जो शायद World Record है।

डॉ. जैन के अभी तक लगभग चालीस ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। उनमे वे ग्रन्थ भी हैं जो संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में हैं और जो पहली बार संपादित और अनुदित होकर प्रकाश में आये हैं। इन ग्रन्थों में निम्न ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है– 1. Jainism in Buddhist Literature (Ph D Thesis), 2. Jainism and Mahavir, 3. Jain Logic, 4. Jainism and Buddhism, 5 संपादित और अनूदित ग्रन्थ, 6. चतुःशतकम्, 7. पालिकोस संगहो, 8. अभिधम्मत्थ संगहो, 9. यशोधर चरितम्, 10. धम्मपरिक्खा, 11. चंदप्पह चरिउ, 12. संवोहि पंचासिया, 13. वयकहा, 24. हेवज्रतंत्र, 29. मूलाचार-तीन भाग, 14. बौद्ध मनोविज्ञान, 15. भ. महावीर और उनका चिन्तन, 16. प्राकृत धम्मपद, 17. अलंकार दप्पण, 5. बौद्ध संस्कृति का इतिहास, 18. जैनदर्शन और संस्कृति का इतिहास, 19. भ. महावीर और उनके दसधर्म, 20 षोडशक प्रकरण, 21. पातिमोक्ख, 22. दोहाकोश, 3. स्वतन्त्र ग्रन्थों में मुख्य हैं– 22. जैनधर्म और पर्यावरण, 23. अम्बेडकर और बौद्धधर्म, 24. जैन संस्कृति कोश-तीन भाग, 25. जैन इतिहास, संकृति और पुरातत्व, 26. जैन आध्यात्मिक और दार्शनिक चेतना, 27 जैन सांस्कृतिक चेतना, 28. समय की शिला पर उभरते भाव चित्र-चार खण्ड (काव्यसंग्रह), 30. मूकमाठी-चेतना के स्वर, 31. जैनधर्म, 32. महावीर और उनके दशधर्म, 33. भारतीय सस्कृतिला बौद्धधर्माचे योगदान (मराठी), 34. महावीरः एक अग्निरेखा (मराठी), 35. जैनधर्म, 36. भारतीय दर्शनों में निर्वाण विचार, 37. समयसार का दार्शनिक चिन्तन आदि ये सभी ग्रन्थ शोधपरक और वृहदाकार हैं। इनके अतिरिक्त शताधिक आलेख भी प्रकाशित हुए हैं।

आप 1985 से 1993 तक लगातार अमेरिका में हुए Assembly of Worlds Religions and Conferences में जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में विचार प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किये जाते रहे हैं। शताधिक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सगोष्ठियों में भाग लिया तथा उनके अध्यक्ष रहे है और हार्बर्ड विश्वविद्यालय में भी आमन्त्रित हुए हैं।

डॉ. जैन रत्नत्रय, सुधर्मा, जैनमिलन, नागपुर विश्वविद्यालय जर्नल एवं श्रमण पत्रिकाओं के सम्पादक भी रहे हैं। आपने डॉ. भागचन्द्र पुष्पलता जैन चेरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना कर सन्मति प्राच्य शोध संस्थान की स्थापना की है, जिसके अन्तर्गत छात्रवृत्तियां आदि भी दी जाती हैं। आप एक अच्छे कवि भी हैं।

खुशियों को समेटो नहीं, बांटो, बांटने से खुशियां बढ़ती हैं।

आपको अभी तक केन्द्रीय सरकार पुरस्कार, महावीर पुरस्कार, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार, प्रदीप रामपुरिया पुरस्कार, रिद्धिलता पुरस्कार, जेजानी ट्रस्ट पुरस्कार, हस्तिमल जैन सेवा पुरस्कार, अहिंसा इन्टरनेशनल पुरस्कार आदि लगभग पन्द्रह पुरस्कारों से पुरस्कृत किया जा चुका है।

अन्य मराठी जैन मनीषी : इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी मराठी जैन लेखक, कवि और अनुवादक हुए हैं जिनकी एक-दो रचनायें ही उपलब्ध हैं। उनका हम यहां मात्र नामोल्लेख कर रहे हैं। इनमें अधिकांश रचनायें मराठी में अनूदित हैं। फूलचन्द काडुसकर, कोल्हापुर - जिन पद्यरत्नकाला (1896), ब्रह्मचारी हीराचन्द, अकलूज - नलचरित, रामायण आदि (सं. 1912), ब्रह्मचारी जीतमल, वर्धा - जिन सत्यनारायण पूजा (1904), कान्ताबाई बालचन्द, सोलापुर - श्रमणनारद का मराठी अनुवाद, आर. आ. बोबडे, अकोला - जैन पुरोहित (1910), जिनाचारविधि (1911), सुलोचना बाई भोकदे, सोलापुर - जैन महाराष्ट्र लेखिका, दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा का इतिहास, माणिकसा मोतीसा खंडारे, कारंजा - जिनपद्यकुसुममाला (1912), हीराचन्द अमीरचन्द शहा, सोलापुर - यशोधरचरित्र (1912), व्रतशीलकथासंग्रह, शान्तिनाथ गोविन्द कटके, औरंगाबाद - पद्यकुसुमावली (1918), चौबीस तीर्थंकरपूजा, वक्तादास पिंपलनेर - कुलभूषण देशभूषण कथा (1919), माणिकराव कटके, औरंगाबाद - परमेष्ठी गुणवर्णन (1919), पंचकल्याणक वर्णन (1927), सुमतिनाथ कटके, औरंगाबाद - सुमति अभंग, रत्ननन्दि भट्टारक - भद्रबाहुपुराण का अनुवाद (1921) कल्लाप्पा अनन्त उपाध्याय ने किया।, नेमचन्द बालचंद गाधी - उस्मानाबाद-गोमट्टसार, गुणस्थानचर्चा, सप्ततत्त्वविचार (1922), देवेन्द्रतनय शमनेवाडी - शान्तिसागराचार्यचरित सुधा (1924), ब्रह्मयस्वामी, कुरून्दवाड - अनुभवप्रकाश-गद्य-पद्य मिश्रित (1929), बाहुबली शर्मा - रत्नत्रयसार और वृत्तिविलास का मराठी अनुवाद (1929-31), विष्णुकुमार डोणगांवकर, कारंजा - रत्नकरण्ड तथा द्रव्यसग्रह (1930), नरेन्द्रकुमार भिसीकर, कारंजा - जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (1932), क्षत्रचूडामणि (1938), नियमसार (1963), अनन्तराव बोपलकर, सोलापुर - महामतिसागर जीवनचरित (1934), पार्श्वपुराण (1939), विद्याकुमार देवीदास - भक्तामर आदि पचस्तोत्र (1935), धनंजय नाममाला (1937), गोपालबालाजी बीडकर - खरा स्वार्थत्याग (1936), कुलभूषण देशभूषणचरित (1939), नत्थूसा पासूसा कलमकर - जैनव्रतकथा सग्रह (1936) चौबीसतीर्थंकर पूजा, कालचन्द्र जिनचन्द्र उपध्याय - परीक्षामुख (1937), जैनेन्द्रव्रतकथासंग्रह (1954), प्रियंकर शिरढ़ोणकर, सांगली - कर्णाटक जैन कविकुल (1941), प्राचीन जैनाचार्य (1942), भट्टारक विशालकीर्ति, लातूर - भवांकुर (1948), प्रतापमलकोचर - निर्ग्रन्थ प्रवचन (1954), कीर्तिविजय, मुंबई - अर्हत धर्मप्रकाश (1955), जयकुमार अलंदकर - जीवन्धरकथा (1956), ऋषभदेव (1958), रवीन्द्रकुमार नांदगांवकर - सागार धर्मामृत (1957), जयकुमार और क्षीर सागर - यशोधरचरित (1960), क्षत्रचूडामणि, प्रेमचन्द शहा - जैनधर्म का मराठी अनुवाद, अ. जि. हुपरे - गीतमहावीर (1963), मैना सुन्दरी, गजकुमार शहा - पवनपुत्र हनुमान, आदिकुमार बेडगे - कुमार प्रीतिंकर, बालचन्द हीराचन्द दोशी - अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (1960), हेमचन्द्र वैद्य, कारंजा - कैलास काका, शीलसम्राज्ञी वाटिका, उद्‌बोधन, क्षुल्लक आदिसागर - मकरध्वज पराजय नाटक, महावीर कडाकर, बारामती - पद्‌मपुराण (रविषेणाचार्यकृत) का मराठी अनुवाद (1985), लालचंद परमणकर, परभणी - ज्ञानतुषार, जैन आयुर्वेद।

वर्तमान में पं. जिनदास फडकुले के सुपुत्र निर्मलकुमार फडकुले जैन बोधक पत्रिका के संपादक मण्डल में हैं सोलापुर कालेज में मराठी विभाग के अध्यक्ष हैं और वारकरी सम्प्रदाय के विशेष अध्येता है। उन्होंने भी मराठी जैन साहित्य पर कुछ निबन्ध लिखे हैं। 'बीसवीं शदी के जैन कवि' शीर्षक से नाद लहरी ने एक काव्यसंग्रह संपादित किया, प्रभाकर रणदिवे ने द. भि. रणदिवे की कविताओं का एक काव्यसंग्रह प्रकाशित किया तथा लीलावती सान्ताप्पा दुर्गे ने सुमेरु प्रकाशन से अभंग को साहित्यिक क्षेत्र के लिए सौंपा। 'तीर्थकर' की सह सम्पादिका डॉ. हेमलता जोहरापुर का 'तपस्वी' नामक उपन्यास और एक काव्य संग्रह प्रकाश में आया। महावीर कंडारकर का रविषेणाचार्य के पद्‌मपुराण का मराठी अनुवाद भी 1985 में बारामती (पुणे) से स्वयंभू प्रकाशन सोलापुर से प्रकाशित हुआ वर्तमान में उसके अधिष्ठाता डॉ. सुमेरुचन्द्र जैन ने समयसार, जीवंधर कथा, जैनाचार्य आदि दसों पुस्तकों का प्रकाशन किया। शान्तिलाल भण्डार का 'अभिनिवेश' लेख संग्रह, जगदीश

जो मनुष्य स्मृतिजीवी हो जाता है, युवा भी नहीं होता है। जो स्मृतिजीवी हो गया, वह कभी युवा नहीं होता।

किल्लेदार का मराठी आराधना कथा कोश, दिलीप इंगोले का मराठी जैन लोककथा साहित्य, मधुकर गडेकर का महावीर गीतकाव्य भी उल्लेखनीय हैं। इसी तरह डॉ. अर्हदास डिगे का जैन योग, डॉ. हुकमचंद सघवे का "शास्त्रवार्ता समुच्चय का परिशीलन" तथा डॉ कुलभूषण लोखण्डे का शोध प्रबन्ध भी अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। डॉ. जिनेन्द्र भोमज, डॉ पाटिल, प्रो. माधव रणदिवे, डॉ. रावसाहेब पाटील, धन्यकुमार जैनी, डॉ. भागचन्द्र भास्कर आदि विद्वानों ने भी प्राकृत और मराठी जैन साहित्य के क्षेत्र में अपना योगदान दिया है और दे रहे हैं। डॉ. प्रदीप शहा, रवीन्द्र नादगावकर, विद्याधर उमाठे, हेमचन्द्र जैन, ढ़ेरे, धनंजय शहा, मकरन्द, फूलचंद गांधी, जस्टिस तुकोल, प्राचार्य जे.के पाटील, एस.पी. पाटिल जमनालाल जैन, जिनदास जवडे, अजित पाटील, कुरूंदवाडे, लीलाशाह, रतन पहाडी आदि साहित्यकार भी उल्लेखनीय हैं।

विदुषी जैन महिलायें : महाराष्ट्र मे महिला वर्ग मे नव जागरण अधिक हुआ है। जैन महिलावर्ग भी उसमें पीछे नही रहा। विशेष रूप से दक्षिण महाराष्ट्र में यह जागृति अधिक दिखाई देती है। इसे हम आगे के पृष्ठों से प्रमाणित कर सकते हैं कि जैन महिला वर्ग कितना सजग रहा है।

बीसवीं शताब्दी की अन्यतम उपलब्धि यह है कि इस युग मे महिला वर्ग में ऐसी जागृति आयी कि उसने सभी क्षेत्रो मे पुरुषवर्ग के कदम से कदम मिलाने का साहस किया। ऐसी साहसी महिलाओं में कंकुबाई का नामोल्लेख सर्वप्रथम किया जा सकता है जिसने अल्पावस्था मे प्राप्त वैधव्य अवस्था की दुःखदर्दी कहानी को आध्यात्मिक सुख में बदल दिया। सेठ हीराचन्द नेमचन्द की सुपुत्री होते हुए भी उन्होंने सांसारिक मोहजाल से बाहर रहकर साहित्यिक साधना को भी अपना व्रत बना लिया। महिलावर्ग की उन्नति के लिए भी उन्होने अच्छा कार्य किया है। चारित्र शुद्धिव्रत कथा तथा जैन व्रत कथासग्रह (1921), देवसेनाचार्यकृत तत्वसार तथा अमृतचन्द्राचार्यकृत समयसारटीका (समयसार कलश), पद्मनंदि कृत अनित्यपंचाशत् आदि ग्रन्थों के आपके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त दशलक्षणधर्म, मृत्युमहोत्सव, सल्लेखना आदि छोटे-छोटे स्वतन्त्र ग्रन्थ भी सामने आये है। महावीर ब्रह्मचर्याश्रम, कारंजा में आपकी स्मृति मे कंकुबाई धार्मिक पाठ्य पुस्तक माला स्थापित की गई जिससे लगभग बीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसके बाद सोनाबाई जिंतूरकर कारंजा, द्वारा 1925 में देवेन्द्रकीति सुधानिधि नामक पद्यबद्ध रचना लिखी गई, कान्ताबाई बालचन्द ने श्रमणनारद का मराठी अनुवाद किया और सुलोचना बाई भोकरे ने जैन महाराष्ट्र लेखिका तथा दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा का इतिहास लिखा।

20-30 वर्षो के बाद सोलापुर श्राविकाश्रम की संचालिका न्यायतीर्थ प. सुमतीबाई शहा (मृत्यु 6 जुलाई 2000) ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। उन्होंने 14-15 पुस्तकें लिखी। उनके चिन्तनात्मक लेखों का संग्रह 'सुमती प्रज्ञा' नाम से प्रकाशित हुआ। 'हे गीत जीवनाचे' शीर्षक से उनका आत्मचरित्र भी काफी लोकप्रिय हुआ। इनके अतिरिक्त हृदयगध, भाव पल्लवी, स्वर्णरेखा, ज्ञानगीता, आदिगीता, महापुराण, रामायण (1965), द्रव्य संग्रह (1968), ग्रन्थ भी प्रकाश में आये। इसी तरह वासन्ती शहा का पहला सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (1965) तथा संस्कृति गंगा भी उल्लेखनीय है। प मगलबाई, क्षु. राजुलमती, कलंत्रे अक्का, लीलावती दुगे सावंप्या के नाम भी उल्लेखनीय हैं। सावतप्पा की आत्मकथा नारी शिक्षा आन्दोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उन्होंने 1938 में फीमेल एजुकेशन सोसायटी की स्थापना निपाणी में कर इस कार्य को और आगे बढ़ाया। 'लीलावती सावताप्पा' नामक आत्मकथा मे उन्होंने यह सब स्पष्ट किया है। ऐसी ही सामाजिक सेवा करते-करते वे 13 जुलाई 1984 को चल बसी।

स्व. लीलावती जैन का स्वयभू प्रकाशन, सोलापुर ने जैन साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में पूरी निष्ठापूर्वक काम किया है, जिसे अब उनके पतिदेव प्राचार्य सुमेरुचंद जैन देख रहे हैं। उन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। जिन वन्दना, कथा सौरभ, जैन श्रावकाचार, जैन कथा, जैन तत्वज्ञान, जैन महापुरुषो के चरित्र पर उनकी प्रभावशाली लेखनी चली है। उनके हिन्दी-मराठी और मराठी-हिन्दी कोषों का भी उल्लेख किया जा सकता है।

प्रेम विवाह, कोर्ट मैरिज, दहेज आदि के कारण विवाह संस्था आज विकृत हो चुकी है- इसकी वजह से संयुक्त परिवार टूट रहे है घर-घर में खींचतान है- इन विनाशकारी प्रवृत्तियों और कुप्रथाओं के विरुद्ध सभी संस्थाओं को एकजुट होकर पूरी ताकत से आन्दोलन चलाना चाहिए।

दूसरी लालावती जैन पुणे की धर्ममंगल साप्ताहिक को संपादिका और प्राध्यापिका हैं जिन्होने इस पत्रिका के माध्यम से सामाजिक जागृति का प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी तरह पत्रकारिता के क्षेत्र मे 'ज्ञानशलाका' की संपादिका वासंतीबेन और 'श्राविका' मासिक की संपादिका विद्युल्लता शाह को भी नहीं भुलाया जा सकता है, जिनके लेखों ने अन्धश्रद्धा का उन्मूलन करते हुए जैन शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया है। समाज प्रबोधन की दृष्टि से उनका महत्वपूर्ण योगदान हैं।

एक और विद्युल्लता शहा का नाम उल्लेखनीय है जो नांदेड की प्रसिद्ध कीर्तनकार रतनबाई की ज्येष्ठ कन्या हैं। वे सतत उद्यमश्रीलता की प्रतिमूर्ति हैं। सोलापुर श्राविकाश्रम की संचालिका पद से अभी अभी निवृत्त हुई हैं। उन्होने विविध जैन विषयों पर अनेक लेख लिखे जिनका संकलन 'तेजा चा वारसा' नाम से प्रकाशित हुआ। लगभग 75 वर्ष की अवस्था में भी स्वस्थ और स्वाध्यायरत विद्युल्लता शहा मराठवाडा क्षेत्र की प्रसिद्ध जैन विदुषी है। उन्होंने सोलापुर, औरंगाबाद, मदनपल्ली, वर्धा, मुंबई आदि अनेक नगरों की शिक्षण सस्थानों में उच्चस्तरीय शिक्षा लेकर शिक्षा शास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए इंगलैण्ड गई और वहां से Western Indians शीर्षक पुस्तक लिखकर पी-एच.डी प्राप्त की। 1984 में सेवानिवृत्त होते ही उन्होंने अपनी सारी संपत्ति का 'गोमटेश ट्रस्ट' नाम से एक ट्रस्ट बना दिया जिसके तहत ज्ञानदान और धर्मदान में संपत्ति का सदुपयोग होना शुरू हो गया। उनकी लिखी 'तीर्थकर' महावीर, राजुलमाता, जीवनचरित तथा "सारे एकानावेचे प्रवासी" पुस्तकें बड़ी लोकप्रिय हुई जैनदर्शन के क्षेत्र में। कुशाग्रनन्दी महाराजश्री ने उन्हें 'नारी रत्न' अलंकरण से संमानित किया। बारह फुट की मनोज्ञ बाहुबली प्रतिमा को उन्होंने औरंगाबाद के समीपवर्ती पार्श्वनाथ क्षेत्र पर प्रतिष्ठितकर एक आदर्श साधिका शिक्षिका का निदर्शन प्रस्तुत किया है। वे एक सेवाभावी और स्वाध्यायी विदुषी हैं। उनकी समग्र सामाजिक सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें विद्यासागर पुरस्कार, जैन साहित्य पुरस्कार आदि और भी अनेक पुरस्कारों से संमानित किया गया है।

इन्दुमती आबाडे इचलंकर प्रसिद्ध उद्योगपति लोक सांसद कल्लाप्पा आबाडे की पत्नी और महाराष्ट्र के वस्त्रोद्योग मत्री प्रकाशराव आबाड़े की माताश्री है। आपने वनिता महिला मण्डल, महिला सहकारी बैक, महिला स्पिनिग मिल, इन्दिरा गाधी महिला सहकारी गिरणी की स्थापना कर महिलाओं के आत्मिक और आर्थिक-सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। उन्होंने शैक्षणिक क्षेत्र में भी अच्छा कार्य किया है। जैन दर्शन की भी वे विदुषी हैं। जैन मिलन फाउण्डेशन और पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की ओर से श्राविकारत्न, महाराष्ट्र स्टेट की ओर से गौरव, अ.भा. जैन महिला सम्मेलन की ओर से ब्राह्मी सुन्दरी अलंकरण पुरस्कार, सहयोग फाउण्डेशन बंबई की ओर से ग्रामीण मसीहा जैसे अलंकरणों से आपको विभूषित किया गया। अखिल भारतीय जैन मराठी साहित्य समेलन तथा दक्षिण भारत जैन सभा से भी आप संबद्ध हैं। स्वभाव से मधुर और कार्य में समन्वित साधना लेकर चलने वाली इन्दुमती आज बडी लोकप्रिय जैन महिला विदुषी है। एक अन्य इन्दुमती शहा ने अपने पिता रतनचंद हीराचंद की आत्मकथा लिखी हैं।

अकोला नगर की वैभव डॉ. प्रमिला प्रख्यात स्त्रीरोग विशेषज्ञ और समाजसेविका थी। आपने 80 वर्ष की अवस्था में आचार्य पुष्पदन्त सागर से अक्टोबर 2000 में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की और परखश्री माताजी के नाम से विश्रुत हुई। अकोला में आपका नर्सिंग होम था। अनेक सेवाभावी कार्यो के बदले आपको 1999 में 'सेवाश्री' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अनेक संस्थानों से संबद्ध रही डॉ. प्रमिला के पती श्रीपाल प्रसिद्ध वकील थे। उनके कनिष्ठ पुत्र सुनील ने भी आचार्य पुष्पदन्त जी से ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ब्र. प्रभात के नाम से संघस्थ हो गये। परखश्री माताजी की समाधिकरण 2002 में नागपुर में हो गया। दोनों पुत्र संयम मार्ग पर दृढ़ होकर स्वाध्याय में लीन हैं और आत्मसाधना कर रहे हैं।

डॉ. पद्मा किल्लेदार प्रो. जगदीश किल्लेदार की पत्नी और पं. धन्यकुमार भौरे की बहिन हैं। उनका भी प्रारम्भिक अध्ययन कारंजा में हुआ। पारिवारिक परेशानियों के बीच संघर्ष करते हुए वे अध्ययन में जुटी रहीं। विवाह के बाद नागपुर में आकर उनकी अध्ययन पिपासा और भी जाग्रत हुई और डॉ. हीरालाल जैन के सहयोग से उन्होंने पालि-प्राकृत विषय में एम.ए. कर लिया। 1956 में नागपुर महाविद्यालय में प्राध्यापिका हो गई और बाद में नागपुर विश्वविद्यालय में पालि-प्राकृत

गुरु के समीप समीचीन शास्त्रों का अध्ययन कर जो नित्य उपदेश प्रदान करते हैं, माता जिनवाणी के चरणों के उपासक वे पुण्यात्मा विद्वज्जन सबका कल्याण करें।

विभाग स्थापित होने के बाद उनकी नियुक्ति वहां हो गई। सन् 1963 में इस विभाग में विभागाध्यक्ष के रूप में .आया। तबसे पद्माजी हमारे साथ ही अध्यापन कार्य करती रहीं। 1976 में उन्हें "जैन बौद्ध परिभाषेतील योगसाधने च तौलनिक अध्ययन" विषय पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त हुई। नियमित अध्ययन-अध्यापन में ही उनका सारा जीवन लग गया। 1985 में सेवा निवृत्त होने के बाद भी आज वे स्वाध्याय में लगी रहती है। धैर्य, हिम्मत, सदाचार ही पद्माजी की कमाई है। आल इंडिया रेडियो पर वार्तायें तथा पत्र-पत्रिकाओ में चिन्तनपरक लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

बीजापुर में 17 अप्रैल 1944 को माताश्री सोनुबाई की कोख से जन्मी शकुन्तला ने पिताश्री छगनलाल के आश्रय में रहकर बी.ए. आनर्स कर स्वर्णपदक प्राप्त किया और बाद में एच.एम.डी.एस. की आयुर्वेदिक उपाधि लेकर 1966 में डॉ. चन्द्रकान्त गुलाबचन्द दोशी के साथ परिणय मे बंध गई। आपने पारिवारिक जीवनकाल में जैन आध्यात्मिक ग्रन्थों का गहन पारायण किया, चिन्तन, मनन और अध्ययन किया। गृहस्थावस्था में इनकी धर्मपरायणता ने डॉ. चन्द्रकान्त को वीर सागर मुनि बना दिया और शकुन्तला को क्षुल्लिका चन्द्रमति नाम दे दिया। उन्होंने अपने इस आध्यात्मिक जीवन में स्वाध्याय के साथ ही लेखन कार्य भी किया।

सोलापुर की सुरेखा शहा पिछले तीस वर्ष से सतत लेखनकार्य में लगी हुई है। नमोनाट्य, कथा उपन्यास, कविता, एकांकी, नाटक, प्रवासवर्णन, अनुवाद, ललितलेख, बाल-कुमार साहित्य, पथनाट्य आदि विधायें उनके लेखन से समृद्ध हुई हैं। चक्रव्यहू, जन्मठेप, नायक, पानगल, कहत बनारसी, यती, मृगजल, स्वप्न गवसले होती आदि उपन्यास, एकांकी सग्रह, गीत गोमटेश नामक काव्यसंग्रह, सुंदर कथा नामक कथासंग्रह आदि प्रकाशित हुए हैं। विद्यायतन पुरस्कार, धर्ममगल पुरस्कार, महाराष्ट्र जैन साहित्य परिषद् पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से आपको सम्मानित भी किया गया है। सुरेखा शहा ने कथाओं और उपन्यासों के माध्यम से जैन जीवन पद्धति पर अच्छा प्रकाश डाला। सुमेरुप्रकाशन डोबीवली (बम्बई) से उनके पांच कथासंग्रह प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का बनारसीदास चरित भी छपा है। उन्हें 'जोहए' चरित्रात्मक उपत्यास पर दमाडी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी तरह सुरेखा शहा के साथ ही हम लीलशहा का भी उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने बाल साहित्य लेखन में अच्छा नाम कमाया है। उनके लेखन पर उन्हें ताराबाई मोडक बाल साहित्य पुरस्कार से संमानित किया गया। "अल्बर्ट श्वाइट्झर' पुस्तक पर महाराष्ट्र सरकार ने सर्वोच्च उत्कृष्ट साहित्यकार के रूप में पुरस्कृतकर उनका अभिनंदन किया। महाराष्ट्र शासन ने उनकी आठ पुस्तकों को भी आपरेशन ब्लेक बोर्ड योजना के लिए स्वीकृत किया है।

कर्मशीला डॉ. पुष्पलता जैन का जन्म 20 सितम्बर 1941 में सागर में हुआ पर 1962 में डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर के साथ विवाह हो जाने पर उनका कर्मक्षेत्र नागपुर बन गया। प्रारम्भिक शिक्षा हाईस्कूल तक सागर में हुई और उसके बाद का शिक्षण बी.ए., बी.एड., एम.ए. (हिन्दी और भाषाविज्ञान-1970-1974, 1975, 1978 तथा पी-एच.डी. हिन्दी और भाषाविज्ञान) नागपुर विश्वविद्यालय से हुआ। सामाजिक क्षेत्र में आपने जैन सेवा मण्डल, जैन मिलन, विदर्भ महिला क्रिकेट एसोसियेसन आदि संस्थाओं की सचिव आदि विभिन्न पदों पर रहकर कार्य किया है। एस.एफ.एस. कालेज, नागपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एव हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुई 2001 में। वर्तमान में आप सन्मति प्राच्य शोध संस्थान की मानद उपनिदेशक पद पर अपनी सेवाये दे रही हैं। आपकी अभी तक निम्नलिखित साहित्यिक कृतियां प्रकाशित हो गई है—1. मध्यकालीन हिन्दी जैन काव्य में - रहस्य भावना (पी-एच.डी. शोधप्रबन्ध) जिसका द्वितीय सस्करण जैन रहस्यवाद नाम से प्रकाशित हुआ, 2. मराठी बोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (पी-एच.डी. शोधप्रबन्ध), 3. हिन्दी जैन काव्य और प्रवृत्तियां, 4. जैन सांस्कृतिक चेतना, 5. दोहाकोश-सम्पादन-अनुवाद। अनके अतिरिक्त लगभग 75 शोध निबन्ध प्रकाशित हो गये हैं। 1985 मे आपको Assembly of Worlds Religions Conference में जैनधर्म पर शोधपत्र प्रस्तुत करने का भी अवसर मिला है।

सन् 1950 मे इन्दौर में जन्मी डॉ. कुसुम पटोरिया को 1974 में श्री राजेन्द्र पटोरिया से विवाह होने के बाद 1975 में

पापाचार, प्रपञ्च और दूसरों के प्रतारण में चतुर यह लक्ष्मी अपने अनादर के भय से ही मानों विद्वानों के पास नहीं आती, अतः निष्पाप हृदय, लोभ से अकुण्ठित बुद्धि वाले वे विद्वान् जयवन्त हों।

नागपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। आपने एम.ए. (संस्कृत) और पी-एच.डी. इन्दौर विश्वविद्यालय से किया और डी.लिट् उपाधि नागपुर विश्वविद्यालय से 2003 में प्राप्त की। वर्तमान में आप नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रोफेसर हैं। आपने पी-एच.डी. लीलावई कहा पर की है, जो प्रकाश्य है। इसके अतिरिक्त यापनीय सम्प्रदाय और उसका साहित्य पुस्तक वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट से प्रकाशित हुई है। एक काव्य संग्रह भी छप चुका है।

सोलापुर का औद्योगिक परिवार बालचंद हीराचंद, लालचंद हीराचंद, गुलाबचंद रतनचंद और गोविंदजी रावजी दोशी समूचे जैन समाज के लिए एक गौरव का विषय है। उसने सोलापुर के वैभव को बढ़ने में जो योगदान दिया है और त्याग किया है वह अविस्मरणीय है। इस परिवार ने इंजीनियरिंग कालेज आदि अनेक शैक्षणिक और सामाजिक संस्थान संस्थापित किये हैं। उन्ही ने 'जैन बोधक' पत्रिका भी प्रारम्भ की जिससे सामाजिक विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। कुमुदिनीबाई उसकी प्रथम संपादिका थी। संपादिका के रूप मे उन्होंने इसमें जैन साहित्य और समाज के उद्धार के लिए विशेषतः महिला वर्ग के उद्धार के लिए जो कार्य किये हैं, वे नितान्त अनुकरणीय हैं।

मराठी क्षेत्र में 'जैन बोधक' पत्रिका कदाचित् सर्वाधिक पुरानी पत्रिका हैं। उसकी संपादिका का कुमुदिनी के बाद सरयू ताई ने उसमें अपने कुशल संपादन से चार चांद लगा दिये। उन्होंने जैन समाज की सुप्त प्रतिभाओं को जाग्रतकर लेखिका बना दिया। जिन लेखिकाओं के एक-दो जैन ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें स्मिता शहा का पूजाविधान, डॉ. उज्ज्वला शहा का करणानुयोग, सन्मति शहा का भ. बाहुबली, विशल्यादेव बगवाल का 'महावीर' जंबूवती शहा का 'अर्ध्य' व 'भक्ति सुमने' काव्य संग्रह और वृषाली मगदुम के साकव और विरागी नामक दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त मेघा अलासे, मीना गरीबे, सुशीला बालचाले, शोभना शहा, नयना पाटिल, सुजाता शहा, प्रतिभा शहा, सुनेत्रा नकाते, उदिता शहा, उषातुषकर, लीना चवरे, हेमलता जोहरापुरकर, रजनी शहा, कांचन वनकुद्रे, लीला शहा, सहिना शहा आदि अनेक जैन महिला साहित्यकार हैं जो जैन साहित्य और समाज की सेवा मे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर रही है। सन्मति, तीर्थंकर, श्राविका, दिव्यध्वनि, सार्वधर्म, अरिहंत, पंचरंग प्रबोधिनी आदि नियतकालिक पत्रिकाओं मे प्रकाशित लेखों से पता चलता है कि आजकल जैन समाज में महिलावर्ग भी कितना प्रगतिपथ पर बढ़ चला है। मराठी नैन आख्यानक काव्य पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त हेमलता जोहरापुरकर मारसिंह के महाविद्यालय मे प्राचार्या हैं। लीना चवरे ने भी मराठी जैन साहित्य पर पी-एच. डी. शोध प्रबन्ध लिखा है। ऐसी और भी अनेक महिलाये हैं जो मराठी जैन साहित्य पर शोध कार्यरत हैं।

महाराष्ट्र के इस जैन साहित्य के सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आता है कि 19वी शती का द्वितीय शतक जैन साहित्य और समाज का एक विशिष्ट परिवर्तनकारी समय रहा है। नागपुर, वर्धा, मुंबई, शोलापुर, कोल्हापुर, बेलगांव, सांगली, पूना आदि स्थान शैक्षणिक केन्द्र हो गये थे परिणामतः यहां का जैन समाज शिक्षा के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ा और साहित्य की भी रचना होने लगी। अनेक पत्र-पत्रिकायें और शिक्षण संस्थान स्थापित हो गये। पण्डित पार्टी और बाबू पार्टी के बीच द्वन्द्व शुरू हो गया। अनेक जैन परिषदों ने समाज और साहित्य को आधुनिकता और प्राचीनता के बीच सुन्दर सेतुओं का निर्माण किया। इससे नये साहित्यकारों का जन्म हुआ उनमें प्रमुख हैं–डॉ. हेमचंद, श्री. पी.बी. पाटील, राजेन्द्र बीडकर, महावीर व अरविंद जोंधले, अ.जि. हुपरे, कुन्तिनाथ कर्के, विकास शहा, लालचन्द हरिशचन्द्र, महावीर कन्डारकर, बाल चौगुले, ज. ने. क्षीरसागर, जि. ता. जबडे, प्रदीप शहा, शान्तिलाल भंडारी, श्रीधर हेरवाडे, विष्णुकुमार देशमाने, सागरे गुरुजी, मद्दाण्णा गुरुजी, माधव रणदिवे, विजय आवटी, आदिनाथ कुरुन्दवाडे, मृत्युंजय मालगावे, विद्युल्लता शहा, सुरेखा शहा, लीलावती सुमेरचन्द, अश्विनी शहा, शोभना शहा इत्यादि।

इस प्रकार इस आलेख में हमने महाराष्ट्र में रहने वाले समग्र उन जैन मनीषियों का संक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है, जिन्होंने बीसवीं शताब्दी में अपनी प्रतिभा, श्रम और शक्ति से जैनधर्म, साहित्य, दर्शन और संस्कृति को पुष्पित और पल्लवित किया है। □

हे जिज्ञासुओ! नय दृष्टि से भगवान् महावीर का यह पवित्र शासन जो आज तक चला आ रहा है उसमें एक समय ही कारण है, क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं होता।

राजस्थान के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

–डॉ. शीतलचन्द्र जैन शास्त्री, जयपुर
–डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका, जयपुर
–डॉ. शोभालाल जैन, जयपुर

भारतीय इतिहास में राजस्थान का गौरवपूर्ण स्थान है। यहा की धरती वीर-प्रसविनी होने के साथ ही मनीषी साहित्यकारो एवं सस्कृत भाषा के उदभट विद्वानो की कर्मस्थली भी रही है। एक ओर यहां की कर्मभूमि का कण-कण वीरता एवं शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहा है, तो दूसरी और भारतीय साहित्य एवं संस्कृत के गौरव स्थल भी यहां पर्याप्त सख्या में मिलते हैं। यहां के वीर योद्धाओं ने अपनी जननी जन्मभूमि की रक्षार्थ हंसते-2 प्राणों को न्यौछावर किया है, तो यहां होने वाले आचार्यो, ऋषि-मुनियों, भट्टारकों, साधु-सन्तों एवं विद्वान् मनीषियों ने साहित्य की महती सेवा की और अपनी कृतियो द्वारा प्रजा में राष्ट्रभक्ति, नैतिकता एव सांस्कृतिक जागरूकता का प्रचार किया। यही कारण है कि प्रारम्भ से ही राजस्थान प्रजा एव शासन के अपूर्व सहयोग से साहित्य, सस्कृति, कला एवं शौर्य का प्रमुख केन्द्र रहा है।

राजस्थान की पावन भूमि पर अनेको सत, मनीषी विद्वान् हुये है, जिन्होने अपनी कृतियों द्वारा भारतीय वाङ्मय के भण्डार को परिपूर्ण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राजस्थान प्रांत जैन-मुनियो एवं विद्वानों का सैकडो वर्षो तक केन्द्र रहा है। जयपुर, अजमेर, उदयपुर, डूंगरपुर, बीकानेर, नागौर, जैसलमेर, प्रतापगढ़ आदि स्थल, सन्तो एव विद्वान् मनीषियों के मुख्य स्थान रहे हैं। भारतीय साहित्य की सेवा एवं सुरक्षा में इन विद्वानों का विशिष्ट योगदान रहा है।

राजस्थान के जैन विद्वानों ने स्वयं तो विविध विधाओ एव भाषाओं में सैकडों, हजारो कृतियों का सृजन किया ही साथ ही अपने पूर्ववर्ती आचार्यो, साधु-विद्वान् कवियों की रचनाओं को भी बड़े प्रेम, श्रद्धा एवं उत्साह से सग्रह किया। एक-एक ग्रंथ की अनेक प्रतियां लिखवाकर विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में विराजमान कीं। राजस्थान के सैकड़ों ग्रन्थागार उनकी साहित्य सेवा के ज्वलंत उदाहरण है। ये जैन विद्वान् ग्रथ सग्रह की दृष्टि से कभी सम्प्रदायवाद के व्यामोह मे नहीं पड़े। इन्होंने साहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन एवं सम्पोषण में अनुपम योगदान दिया है।

राजस्थान में सातवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा मे रचना करने वाले अनेक विद्वान् हुये हैं। यहां बीसवीं शताब्दी मे होने वाले प्रमुख विद्वानों का साहित्यिक अवदान प्रस्तुत है :–

पं. भूरामलजी शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर जी) : राजस्थान के बीसवीं शताब्दी के जैन सन्त विद्वानों में आचार्य प्रवर श्री ज्ञान सागर जी महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। वे 50 वर्षो से भी अधिक समय तक सस्कृत-हिन्दी वाड्मय की सेवा में अनवरत सलग्न रहे। गृहस्थ जीवन मे पं. भूरामल नाम से प्रसिद्ध आचार्य ज्ञानसागर राजस्थान के सीकर जिला के राणोली ग्राम के मूल निवासी थे। उनका जन्म सं. 1948 में श्री चतुर्भुज जी एवं श्रीमती घृतवरी देवी के घर में हुआ। वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय में रहकर आ. ज्ञानसागर ने संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गम्भीर अध्ययन किया। राजस्थान के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ उनके सहपाठी रहे। आ. ज्ञानसागर जी ने आ. विद्यासागर जी को शिक्षित व दीक्षित किया। बनारस से स्नातक बनने के बाद आ. ज्ञानसागर अपने निवास ग्राम राणोली आये, पर उनका मन व्यवसाय की अपेक्षा काव्य निर्माण में लगा और आजीवन अविवाहित रहकर मां भारती की सेवा एवं आत्माराधना मे लग गये। गृहस्थ से साधु जीवन अपना कर प. भूरामल ज्ञानसागर बन गये।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने संस्कृत में तीन महाकाव्यों वीरोदय, जयोदय एवं दयोदय तथा सुदर्शनोदय, भद्रोदय, एवं समुद्रदत्त चरित्र-चम्पूकाव्यों की रचना की। वीरोदय महाकाव्य मे 24वें तीर्थकर भ. महावीर का उदात्त जीवन 22 सर्गो में

हे विद्वज्जन! सर्वज्ञ प्रतिपादित जिन शासन के आप रक्षक हैं, मार्गभ्रष्ट अज्ञानी जनों के हितैषी हैं, नय-उपनय से प्रथित शास्त्र के ज्ञाता हैं, और हिताहित रूप विवेक मनोरथ के प्रदाता हैं।

निबद्ध है। इसमें महाकाव्यत्व का पूर्णतः पालन हुआ है। यह कालिदास और अश्वघोष के काव्यों के समकक्ष है। जयोदय महाकाव्य में जयकुमार और सुलोचना का आख्यान आबद्ध है। 28 सर्गो में निबद्ध इस महाकाव्य में अपरिग्रह व्रत का माहात्म्य वर्णित है। इस काव्य की संस्कृत टीका भी आचार्य श्री ने ही की है। बृहत्त्रयी की परम्परा में प्रौढ़ संस्कृत भाषा में इस काव्य की रचना हुई है। जो नैषधीय चरित के समकक्ष है। दयोदय एक चम्पू काव्य है जो संस्कृत गद्य-पद्य की अनूठी रचना है। सुदर्शनोदय नौ सर्गो का काव्य है जिसमें पंच नमस्कार मंत्र का महत्व है। नौ सर्गो में निबद्ध भद्रोदय में अस्तेय महाव्रत की शिक्षा दी है। महाकवि की अन्य रचनाओं मे ऋषभावतार, प्रवचनसार, भाग्योदय, कर्त्तव्य पथप्रदर्शन में तत्वार्थ दीपिका में मोक्षशास्त्र को सरल भाषा में रूपायित किया है। आ. कुन्दकुन्द के समयसार का हिन्दी पद्यानुवाद किया है। इस प्रकार आ. ज्ञानसागर जी ने संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य की भी वृद्धि में बहुयोग दिया है। यहा यह उल्लेख है कि आ. श्री की अधिकांश रचनाएं गृहस्थावस्था में (पं. भूरामल) लिखी।

पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ : 20वीं शताब्दी के राजस्थान के जैन विद्वानों में पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे अपने समय के श्रद्धास्पद विद्वान् माने जाते थे। उनका जन्म जयपुर जिले के भादवा ग्राम मे श्री जवाहर लाल जी रांवका की धर्मपत्नी श्रीमती धापूबाई की कुक्षि से 22 जनवरी 1900 को हुआ। बचपन मे ही एक पांव पर पक्षाघात हो गया, जो आजीवन रहा। वे उच्च अध्ययन के लिये वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे पं. भूरामल (आ. ज्ञानसागर) एवं पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री के सहपाठी बने। वे आजीवन अविवाहित रहे। जयपुर के प्रसिद्ध श्री दि. जैन संस्कृत कॉलेज के चालीस वर्ष तक के प्राचार्यत्व काल में अनेक विद्वान् बनाये। उनके विद्वान् शिष्यों में प. श्री प्रकाश शास्त्री, पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, पं. मिलापचन्द जी शास्त्री, डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, प. अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ, डॉ. प्रेमचन्द रांवका आदि प्रमुख है।

पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ का व्यक्तित्व महान् था और कर्तृत्व बहुआयामी। वे श्रेष्ठ अध्यापक, लेखक, पत्रकार, कवि, प्रवचनकार व समाजसुधारक थे। जैन दर्शन, जैन बन्धु एवं वीरवाणी जैसी पत्रिकाओ के माध्यम से उन्होंने एक ओर समाज में व्याप्त शिथिलाचारो एवं कुरीतियों के निराकरण के लिये जन-जागरण किया तो दूसरी ओर युवा लेखकों का मण्डल तैयार किया।

पं. चैनसुखदास जी का समग्र जीवन मां भारती की आरती में व्यतीत हुआ। वे वस्तुतः सरस्वती पुत्र थे। उनकी विद्याराधना और साहित्य-साधना उच्च कोटि की थी। वे मौलिक रचनाकार थे। उनकी रचनाधर्मिता ने जैन दर्शनसार, सर्वार्थसिद्धिसार, भावना-विवेक, पावनप्रवाह, प्रवचन प्रकाश, अर्हत्-प्रवचन, प्रद्युम्न-चरित, निक्षेप चक्र और दार्शनिक के गीत जैसी रचनाएं दीं। इनके अतिरिक्त उनके शताधिक लेखों, कहानियो, सम्पादकीय आलेखो, पुस्तकीय समीक्षाओं और आकाशवाणी वार्ताओं ने जन-मानस को आन्दोलित किया। उनके प्रवचनों में सम्बोधन एव उद्गार बड़े मार्मिक होते थे।

पं. चैनसुखदास जैन दर्शन एवं न्याय के विद्वान् थे साधु-सन्तों को भी संस्कृत एव जैन दर्शन का ज्ञान कराया। संस्कृत-विद्वत्समुदाय में उनका पूर्ण आदर था। वे लोकेषणा से दूर रहते थे। आ. विद्यानन्द जी ने उन्हें कपड़े से ढके मुनि बताया था। पं. दरबारी लाल जी कोठिया के शब्दों में– पं. टोडरमल जी के बाद, जयपुर में निर्भीक एवं प्रभावी विद्वान प. चैनसुखदास जी हुए, जिन्होंने समाज को प्रबुद्ध किया। उनकी लेखनी एवं प्रवचन समाज को प्रभावित करते थे।

पं. इन्द्रलाल जी शास्त्री : संस्कृत के शास्त्रीय शैली के विद्वान् थे। उनका जन्म जयपुर में हुआ। वे उत्कृष्ट लेखक थे। वे खण्डेलवाल जैन हितेच्छु, अहिंसा जैसे पत्रों के सम्पादक थे। आपने हिन्दी गद्य-पद्य में अनेक पुस्तकें लिखीं हैं। धर्म सोपान, तत्वालोक, आत्म वैभव, शांति पीयूष धारा, विवेक मंजूषा, महावीर देशना आदि मुख्य हैं। प. इन्द्रलाल जी शास्त्री अपने समय के अच्छे वक्ता, लेखक कवि व सम्पादक रहे।

संस्कृति के बिना कोई जाति जीवित नहीं रहती और संस्कृति साहित्य के बिना सुरक्षित नहीं रहती और साहित्य का सर्जन करने वाले विद्वान् ही होते हैं। अतः एक विद्वान् ही वस्तुतः समग्र जगत् को धारण करता है।

पं. श्री प्रकाश जी शास्त्री : जन्म सं. 1972 में जयपुर में हुआ। आपने सन् 1934 में न्यायतीर्थ और 36 में काव्यतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। आप प्राच्य विद्यानुरागी थे। दर्शन और अध्यात्म परक लेख लिखते थे। आपके हिन्दी जैन साहित्य पर कितने ही लेख वीरवाणी में प्रकाशित हुए। आपने आचार्य श्री सूर्यसागर जी के 'संयम प्रकाश' ग्रन्थ का सम्पादन किया।

पं. मिलापचन्द जी शास्त्री : जन्म जयपुर राज्य के प्रतापपुरा ग्राम में सं 1971 में हुआ। आपने शास्त्री और न्यायतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने पं. चैनसुखदास जी के पावन प्रवाह एवं जैन दर्शन सार की हिन्दी टीका की।

पं. मूलचन्द जी शास्त्री : अनेक वर्षो तक श्री महावीर जी में रहकर हिन्दी-संस्कृत में अनेक पुस्तके लिखी है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपने जैनदर्शन के उच्च ग्रन्थ आप्तमीमांसा तथा युक्त्यनुशासन का विस्तृत अनुवाद किया। महाकवि कालिदास के मेघदूत के अन्तिम चरण की समस्या पूर्ति करते हुये राजुल की विरह वेदना को व्यक्त करने वाले की 'वचनदूतम्' संस्कृत काव्य की रचना की। हिन्दी में इसका गद्य-पद्यानुवाद भी किया। पं. जी सरस्वती के अनन्य उपासक थे। राजस्थान सरकार ने उनकी संस्कृत-विद्वता के लिये सम्मानित किया।

पं. मिलापचन्द, रतनलाल कटारिया : राजस्थान के केकड़ी कस्बे के निवासी थे। दोनों पुत्र-पिता संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी के सिद्धान्त पुराण, कथा-चरित्र, व्याकरण, दर्शन-पूजा विधान आदि विषयों के विशिष्ट ज्ञाता, समालोचक और अधिकारी लेखक रहे हैं। "जैन-निबन्ध रत्नावलि" आपके शोधपूर्ण लेखों का श्रेष्ठ संकलन है, जो 1966 में वीर शासन सघ कलकत्ता से प्रकाशित और पं0 चैन सुखदासजी को समर्पित है।

पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ : जन्म जयपुर मे सं 1972 में हुआ। पं. जी विद्वान्, लेखक, पत्रकार व सम्पादक थे। वीरवाणी, जैन बन्धु तथा जैन हितेच्छु के सम्पादक रहे। जयपुर राज्य के जैन दीवानो पर विशेष कार्य किया। बनारसी विलास का सम्पादन किया। राज्य सरकार द्वारा सम्मानित भी हुये। अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष रहे है। संस्कृत के विद्वान थे।

पं. भंवरलालजी पोल्याका : जयपुर निवासी पं. पोल्याका जी शास्त्री एवं जैन दर्शनाचार्य थे। वे कुशल वक्ता, लेखक व समालोचक थे। "तमिल-भाषा का जैन साहित्य" पुस्तक लिखी। महावीर जयन्ती स्मारिका का वर्षो तक सम्पादन किया। आपकी भाषा प्रांजल और सौष्ठवपूर्ण रही।

प्रो. प्रवीणचन्द्र जी जैन : प्रो. जैन सा. प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी अंग्रेजी साहित्य के अधिकारी विद्वान् थे। उनका जन्म जयपुर में 16.4.09 को हुआ। श्री दि. जैन सस्कृत कॉलेज, जयपुर से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। आगरा वि. वि. से प्रथम श्रेणी प्रथम स्थान लेकर संस्कृत में एम.ए. किया। इलाहाबाद वि. वि. से एम.ए. हिन्दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। प्रयाग से साहित्यरत्न किया। जयपुर के प्रसिद्ध महाराजा कॉलेज में हिन्दी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष बनाये गये। जयपुर राज्य के मनोनीत मुख्य मत्री पं. हीरालाल शास्त्री के आग्रह पर आप वनस्थली विद्यापीठ के आचार्य बने। तदन्तर भरतपुर, कोटा, बीकानेर के राजकीय महाविद्यालयों के प्राचार्य बने। पुनः वनस्थली विद्यापीठ के प्राचार्य बनें सेवानिवृत्ति के बाद 1970 में आपने उच्चस्तरीय अध्ययन-अनुसंधान की स्थापना की। इस संस्थान के माध्यम से पत्रिका प्रकाशन, राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियो का आयोजन एवं बीसों शोधार्थियों को पी-एच.डी और डी. लिट् की उपाधियां प्रदान करायीं। प्रो. प्रवीणचन्द जी जैन ने अपने 92 वर्ष के जीवन में साहित्य, संस्कृति, पुरातत्व और समाज सेवा के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कीर्तिमान स्थापित किये। आपने श्री महावीर जी क्षेत्र के जैन विद्या सस्थान द्वारा प्रकाशित 'पुराणकोश' का सम्पादन किया। जिसका विमोचन भारत के महामहिम राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने 1994 में किया। उनके विद्वान् शिष्यों में डॉ. कासलीवाल, डॉ. गंगाधर भट्ट, प्रो. हरिराम आचार्य, डॉ. तारा प्रकाश जोशी आदि है। जयपुर की राजमाता गायत्री देवी भी आपकी विद्यार्थी रही है। उनके मौलिक लेखन में व्याकरण तत्वचिन्तन, कांदम्बरी मीमांसा, निबन्ध संग्रह आदि हैं।

मलिन चित्त में व्रत और शील नहीं ठहर सकते हैं। जहाँ कषाय की उपस्थिति है, वहाँ सत्य और संयम की प्रतिष्ठा भी सम्भव नहीं है।

डॉ. कस्तूरचन्द जी कासलीवाल : का जन्म 8.8.1920 को जयपुर जिले के सैंथल ग्राम में हुआ। पं. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के संरक्षण में आपने एम.ए. व शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। 1961 में राजस्थान वि.वि से राजस्थान के जैन भण्डार शोधकार्य पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उनकी 80 पुस्तकें प्रकाशित हुई है। उनमें प्रशस्ति संग्रह, प्रद्युम्न चरित, जिणदत्त चरित, हिन्दी पद संग्रह, राजस्थान के जैन सन्त, महाकवि दौलतराम, वीर शासन के प्रभावक आचार्य आदि उल्लेखनीय है। अनेक अभिनन्दन-स्मृति ग्रन्थों के सम्पादक रहे। दीर्घकाल तक अ. भा. दि. जैन विद्वपरिषद् के सक्रिय सदस्य एवं संरक्षक रहे। उनके द्वारा अनेक संगोष्ठियों के आयोजन हुये। अनेक बार राज्य एवं समाज स्तर पर सम्मानित हुये। जैन साहित्य के अन्वेषण एवं प्रकाशन में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है।

डॉ. कमलचन्द्र जी सौगाणी : उदयपुर वि.वि. में दर्शन विभाग के प्रोफेसर रह चुके है। "एथिकिल डॉक्ट्रिन्स इन जैनिज्म" पर आपका शोधग्रन्थ है। आपने आ. कुन्दकुन्द वाङ्मय एवं अपभ्रंश साहित्य पर विशेष कार्य किया है।

पं. अनूपचन्द्र जी न्यायपतीर्थ : आपका जन्म जयपुर (राज.) में हुआ है। आपने जैन दर्शन से शास्त्री, न्यायतीर्थ की परीक्षाएं उत्तीर्ण की हैं। आप ए.जी. ऑफिस जयपुर में केन्द्रीय सर्विस में रहे हैं। रोहिणीव्रतकथापूजा, कांजिकाद्वादशीव्रतपूजा, चन्दनषष्ठीव्रतपूजा, पुरासम्पदा सम्बंधी शोधपूर्ण लेख, राजस्थान जैन ग्रंथ भंडारों की ग्रंथ सूची भाग 3,4,5 का लेखन एवं सम्पादन किया है। ब्र. पूरणमल ऋद्धिलता लुहाडिया पुरस्कार से आप सम्मानित है। अनेक सामाजिक संस्थाओं ने भी आपको समय-समय पर सम्मानित किया है। दि. जैन मन्दिरमहासंघ के मंत्री, विभिन्न संगठनों एवं शिक्षण संस्थाओं के सदस्य है।

डॉ. ताराचन्द जैन बख्शी : जयपुर के रहने वाले है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता-एम.एस-सी, एल.एल.बी., एन, डी.डी.वाई. एवं योगाचार्य है। वर्तमान में आप चिकित्सा सेवा से जुड़े हुए है। अहिंसा वाणी, जैनमिशन बुलेटिन, वीर-वाणी, जैनमिशन में 100 के लगभग जैनधर्म एवं समाज के परिपेक्ष्य में लेख प्रकाशित हुए है। आप उपराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित है।

ब्र. सुरजमल जी 'बाबाजी' : आपका जन्म वि. सं. 1979 की मंगसिर बदी एकम रविवार को जामुनिया (भोपाल) मध्यप्रदेश में हुआ था। आपके पिता का नाम धर्मनिष्ठ श्रावक श्री मथुरालाल जी तथा माता का नाम महताब बाई था। आपकी तीन वर्ष की आयु में ही आपके पिता का स्वर्गवास हो गया तथा दस वर्ष की आयु में माताजी का वियोग हो गया था। मां के स्वर्गवास होने के बाद अपनी बड़ी बहन धापुबाई के पास अजिनाश चले गये तथा वहीं ही लौकिक शिक्षण प्राप्त किया।

वि. सं. 1994 में खातेगांव में परम पूज्य मुनि श्री जयकीर्तिजी के आपने दर्शन किये तथा उनसे प्रभावित होकर आप महाराज जी की सेवा में लग गये, बाद में आप इन्दौर में पूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के चरण सानिध्य में आ गये थे। सन 1995 में आचार्य श्री वीरसागर जी का चातुर्मास खातेगांव में हुआ तब आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये तथा तीन माह पश्चात ही आप सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कर आत्म साधना की ओर अग्रसर हुए।

आपने अपने जीवनकाल में सौ से भी अधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई तथा सैकड़ो स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा विधान आदि धार्मिक कार्य करवा कर धर्म की महती प्रभावना की।

प्रतिष्ठाचार्य के रूप में आपका नाम अग्रणी है आपको मरसलगंज पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर "संहितासूरि" की उपाधि से अंलकृत किया गया था।

आपमें धर्म चिन्तन की अथाह लगन थी साहित्य सेवा एवं समाज को धार्मिक विधि विधानों में प्रोत्साहित करने की आपकी त्यागमयी सेवा भावना अनुकरणीय है।

सम्यग्दर्शन के बिना संसार के बंधन से यह जीव नहीं छूट सकता। इसलिये हमें शास्त्राभ्यास में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

श्री शान्तिवीर नगर (महावीर जी) के आप अधिष्ठाता रह चुके है तथा संस्थान को आपने मार्ग दर्शन देकर उसे उन्नतिशील बनाया। साधुओं की सेवा में रहकर धर्म ध्यान करते हुए 1995 में आपका स्वर्गवास जयपुर में हो गया। आपका निवास निवाई (राजस्थान) में अनेक वर्षो से रहा था।

डॉ. शीतलचन्द जैन : डॉ. साहब का जन्म कुसमाड़ जिला-ललिपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षणिक योग्यता एम.ए. , जैनदर्शनाचार्य, पी-एच.डी., साहित्यरत्न है। सम्प्रति - श्री दि. जैन आचार्य सं. महाविद्यालय, जयपुर में प्राचार्य के रूप में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे है। ज्ञानदर्पण भाग-1,2,3,4 का सम्पादन, न्यायमणि दीपिका, आचार्य विद्यानन्द के सिद्धान्तो का समालोचनात्मक अध्ययन आदि महत्वपूर्ण कृतिया प्रकाशनाधीन है। अनेक सम्मानो से सम्मानित एवं वाणी-भूषण, युवारत्न, जैनरत्न, विद्या शिरोमणि आदि उपाधियों से विभूषित है। अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के उपाध्यक्ष, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट के मंत्री, श्रमण संस्कृति संस्थान, जयपुर के निर्देशक, श्री स्याद्वाद प्रसारिणी सभा, जयपुर के निर्देशक, संकायाध्यक्ष-श्रमण विद्या संकाय-राज. सं. वि. वि. जयपुर, एवं विभिन्न संगठनों से सम्बद्ध हैं। आ. ज्ञानसागर पुरस्कार से पुरस्कृत है।

पं. प्रभुदयाल जी वैद्य : वैद्य जी का जन्म सैंथल जयपुर में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता-आयुर्वेदाचार्य एव भिषगाचार्य है। राजकीय सेवा में चिकित्सिक पद सेवाए प्रदान कर रहे है। आत्मविनिश्चय, आत्मानुशीलन, श्रावक-धर्म, प्रभुशतक, समयसार, पचास्तिकाय, लघुतत्त्वस्फोट का हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद आदि महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान है। अनेक सम्मानों से सम्मानित। अ.भा.दि.जै.वि. परिषद् के सदस्य।

डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका : डॉ. साहब जयपुर के है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता एम.ए, (हिन्दी, संस्कृत) पी एच.डी. है। जैनदर्शन में आचार्य भी किया हैं राजकीय सेवा में रहते हुए प्राचार्य-राजकीय आचार्य स. महाविद्यालय, मनोहरपुर से सेवा निवृत्त हुए है। महाकवि ब्र. जिनदास व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर आपको पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। प्रकाशित आलेखों की संख्या 100 से अधिक है। आप विभिन्न सगठनों एवं शिक्षा समितियों से जुड़े हुए है।

डॉ. सनतकुमार जैन : आपका जन्म नैकोरा, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। वर्तमान में जयपुर मे रहते है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं-व्याकरणाचार्य, एम.ए., पी-एच.डी. शि. शा., सिद्धान्तशास्त्री हैं। सम्प्रति · श्री दि. जैन आचार्य सं. महाविद्यालय, जयपुर में प्राध्यापक पद पर अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे है। आत्मचिंतन, जीवन एक करिश्मा, सम्पा-प गोविन्ददास कोठिया अभिनन्दन ग्रंथ, आचार्य आदिसागर अंकलीकर की देन, एव विश्वोदय, शोध-लेख (20) महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। दि. जैन महासमिति, जयपुर के मंत्री, श्री स्याद्वादप्रसारिणी सभा, जयपुर के अध्यक्ष है। अखिल विश्व जैन मिशन एवं अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के कार्य कारिणी के सदस्य है। आप शैक्षिणिक संस्थाओं एवं समाज द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत है।

डॉ. बाबूलाल सेठी : आपका जन्म चीथवाड़ी जयपुर (राज.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं- एम.ए. (इतिहास) जैन दर्शनाचार्य पी-एच.डी. है। वर्तमान में राजकीय सेठ मोतीलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय झुंझुनु (राज.) में विभागाध्यक्ष (इतिहास) पद पर अपनी सेवाए प्रदान कर रहे है। 25 के लगभग शोधलेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

डॉ. शोभालाल जैन : जैन साहब का जन्म घुवारा छतरपुर (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं- एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) जैन दर्शनाचार्य, एम लिब., आई. एस-सी, साहित्यरत्न, पी-एच.डी. है। सम्प्रति-श्री दि. जैन आचार्य स. महाविद्यालय, जयपुर मे पुस्तकालयाध्यक्ष पद पर कार्यरत है। लगभग 50 शोधालेख प्रकाशित। राज. साहित्य परिषद, श्री स्याद्वाद प्रसारिणी, जयपुर एवं अ.भा दि. जैन विद्वत्परिषद् के कार्यकारिणी के आमंत्रित सदस्य, सामाजिक स्तर पर सम्मानित एवं पुरस्कृत।

डॉ. विमलकुमार जैन : आपका जन्म गुढ़ा, ललितपुर (उ. प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं- शास्त्री, आचार्य, एम.ए.बी.एड, पी-एच.डी. है। राजकीय सेवा में वरिष्ठाध्यापक पद पर कार्यरत हैं। कहानी, कविता एवं अनेक आलेख

धर्मनीति का आधार तो प्रेम, करुणा और वात्सल्य है। राजनीति कषाय के बिना चल नहीं सकती और धर्मनीति में कषाय का कोई काम नहीं।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। सामाजिक स्तर पर वाणी-भूषण, प्रतिष्ठारत्न, युवारत्न, धर्मरत्न विधानाचार्य, विद्वतरत्न आदि उपाधियों से विभूषित।

पं. निर्मलकुमार बोहरा : आपका जन्म जयपुर में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्ताएं- एम ए., जैनदर्शनाचार्य, बी.एड है। सम्प्रति- श्री दि. जैन आचार्य सं. महाविद्यालय, जयपुर-3 में जैनदर्शन प्राध्यापक पदपर कार्यरत है। जैन संस्कार विधि, और अन्य पूजा सम्बन्धी पुस्तके आपके महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। सामाजिक एवं शैक्षिणिक स्तर पर सम्मानित एवं पुरस्कृत।

पं. कैलाशचन्द्र मलैया : आपका जन्म भीकमपुर, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताए शास्त्री, एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत) बी.एड. एम.एड., पी.जी. पत्रकारिता डिप्लोमा है। सम्प्रति-राजकीय उ.मा. विधालय, चाकसू, जयपुर में संस्कृत व्याख्याता पद पर कार्यरत है। विभिन्न पत्रिकाओं में 10 शोधालेख प्रकाशित। अ.भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के सदस्य।

पं. अशोककुमार जैन : जन्म घुवारा छतरपुर (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं-शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य है। सम्प्रति-दि. जैन उ. वि. कुचामन में धर्माध्यापक पदपर कार्यरत है।

पं. दीपक जैन दिव्य : आपका जन्म निवाई जिला टोंक में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री एवं धर्मरत्न है। सम्प्रति– विधि-विधान, प्रतिष्ठाचार्य के रूप में कार्य कर रहे है।

श्रीमती शारदा जैन : आपका जन्म गढ़ाकोटा सागर (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्ताए – एम.ए. (हिन्दी, सस्कृत) बी.एड. है। वर्तमान में श्री दि. जैन आचार्य सं. महाविद्यालय, जयपुर में वरिष्ठअध्यापिका पद पर कार्यरत है। आपने पाडव पुराण पर कार्य किया है।

श्रीमती कामिनी जैन 'चैतन्य' : आपका जन्म जशवन्तनगर इटावा (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताऐं – एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) बी.एड., एम.एड. है। सम्प्रति – श्री महावीर दि. जैन बालिका उ.मा.वि. जयपुर में अध्यापिका पदपर कार्यरत है। अविवेक की आंधी, नारी चेतना का जागरण, जैन भजन संग्रह - आदि महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं।

श्रीमती माधुरी जैन 'ज्योति' : आपका जन्म जशवन्तनगर जिला-इटावा (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं एम.ए., बी.एड. है। आपकी मौलिक कृतियाँ - कुल का दीप, मैं जीत गयी, तिरस्कार समाज द्वारा प्रशंसनीय। विभिन्न पत्रो में लेख, एकांकी, नाटक, पौराणिक, सामाजिक प्रकाशित। समाज द्वारा महिलारत्न, सरस्वतीपुत्री, विदुषीरत्न आदि उपाधियों से सम्मानित।

श्रीमती डॉ. सिन्धुलता जैन : आपका जन्म सागर (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – एम.ए., एम.फिल (हिन्दी) पी-एच.डी. है। सम्प्रति – प्राच्य विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर में प्राध्यापक पदपर कार्यरत हैं। गुप्त जी एवं नवीन जी की उर्मिला का तुलनात्मक अध्ययन, हिन्दी भाषा के विकास में जैन कवियो का योगदान, छहढाला में पर्यावरण की अवधारणा, चैन सुखदास जी के गीतो का दर्शन, नई कविता में मानव मूल्यों की अवधारणा, निराला और कुकुरमुत्ता इत्यादि समीक्षात्मक लेख महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

डॉ. विद्यावती जैन : आपका जन्म जयपुर में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता – एम.ए., जैनदर्शनाचार्य, पी-एच.डी. है। सम्प्रति – राजकीय शासकीय संस्कृत महाविद्यालय गनौड़ा। जिला – बांसवाड़ा (राज.) में प्राचार्य पद पर कार्यरत है। आप विभिन्न संगठनों से जुड़ी हुई है।

पं. सुरेशचन्द्र जैन : आपका जन्म रजपुरा, जिला दमोह (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – हायर सैकेण्ड्री शास्त्री है। सम्प्रति – छात्रावास अधीक्षक-श्री शान्तिवीर जैन गुरुकुल श्री महावीर जी में कार्यरत है। जैन परिषदों से भी जुड़े हुए है। समाजिक स्तर पर सम्मानित है।

जिस प्रकार आलोक के बिना लोग मार्ग नहीं देख सकते, उसी प्रकार आगम के बिना धर्मजीवियों को धर्म-मार्ग का दर्शन नहीं होता।

पं. रमेशकुमार जैन : आपका जन्म मैनवार, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं एम.ए., बी.एड. है। सम्प्रति – अध्यापक – श्री शान्तिवीर जैन गुरुकुल वि. जोबनेर में कार्यरत है। समाज में विधि विधान कराना, पाठशाला का संचालन करना एवं जैन पर्वोपर प्रवचन करना आपकी विशेषताएं है।

पं. रमेशकुमार जैन : आपका जन्म घुवारा (छतरपुर) म.प्र. में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, बी.एड. है। सम्प्रति – अध्यापक – राजकीय संस्कृत विद्यालय विराटनगर में कार्यरत है। आप विभिन्न संगठनों से जुडे हुए हैं।

पं. राजकुमार जैन : आपका जन्म खुटगुवां ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं शास्त्री, व्याकरणाचार्य, बी.एड. है। सम्प्रति – श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर में धर्माध्यापक पद पर कार्यरत हैं। सामाजिक स्तर पर सम्मानित हैं। जैन विधि विधान विशेषज्ञ है।

पं. कोमलचन्द्र जैन : मूलतः म.प्र. के सागर जिले में जन्में आप डोगरगांव जिला राजनांदगाव (छत्तीसगढ़) के रहने वाले है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री, काव्यतीर्थ हैं। वर्तमान में श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र तिजारा, अलवर में प्रवाचक हैं। सामाजिक स्तर पर सम्मानित एवं पुरस्कृत।

पं. पवनकुमार जैन : आपका जन्म शहपुरा (जबलपुर) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्ताए एम.ए. जैनदर्शनाचार्य है। वर्तमान में के. डी. जैन सी.से. स्कूल किशनगढ़ अजमेर (राज.) में अध्यापक पद पर कार्यरत हैं।

पं. विजयकुमार जैन : आपका जन्म कुसमाड़ जिला – ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताए जैनदर्शनाचार्य, एम.ए. बी.एड. है। आप श्री के. डी. जैन सी. से. स्कूल मदनगंज किशनगढ़ में कार्यरत है। 10 आलेख विभिन्न विषयों पर प्रकाशित, सामाजिक स्तर पर सम्मानित एवं पुरस्कृत है।

पं. अरविन्दकुमार जैन : आपका जन्म दरगुवां (जिला-टीकमगढ़) (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताए शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड. है। राजकीय जाजोदिया उ. मा. वि. सुजानगढ़ में सेवारत है। सामाजिक स्तर पर सम्मानित एव पुरस्कृत और अ. भा. दि. जैन वि. परि. के सदस्य हैं। प्रकाशन–असीम की सीमा।

पं. वीरेन्द्रकुमार जैन : आपका जन्म समर्रा जिला - टीकमगढ़ में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता – शास्त्री, एम. ए. है। आप श्री दि. जैन उ. प्राथमिक विद्यालय, सुजानगढ़ में अध्यापक पद पर कार्यरत हैं। विधानाचार्य एवं प्रवचनकार है।

पं. निर्मलकुमार जैन : आपका जन्म हटा (टीकमगढ़, म.प्र.) में हुआ है। शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, बी.एड की शैक्षिणिक योग्यताए है। 10 आलेख प्रकाशित, सामाजिक स्तर पर सम्मानित। विभिन्न संगठनों से सम्बद्ध।

डॉ. गंगाराम गर्ग : आप भरतपुर (राज.) के निवासी है। एम.ए., पी-एच.डी. आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं है। जैनसाहित्य का तुलनात्मक मूल्यांकन, पार्श्वदास पदावली, जगराम गोदिका पदावली, जैन पद संचयन पर आपने कार्य किया है। अपभ्रंश और हिन्दी के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का सम्पादन।

पं. विजयकुमार जैन : आपका जन्म सादूमल जिला – ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ। शैक्षिणिक योग्यताएं शास्त्री, एम.ए. साहित्याचार्य है। सम्प्रति – श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र महावीर जी करौली (राज.) में कार्यरत है। वर्णी जी की अमर कहानी, द्रोणगिरी दर्शन, जैन कथासंचय, इन्द्रनन्दीकृत श्रुतावतार, णमोकार महामंत्र माहात्म्य, जैन तत्त्वमीमासा, इष्टापदेश आपके महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। साहित्य लेखक, प्रतिष्ठाचार्य, विधानाचार्य के रूप में कार्य कर रहे है।

डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'समुन' : आपका जन्म बाँसातारखेड़ा दमोह (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं एम.

भारतीय संस्कृति में हर उत्सव के पीछे एक उच्चकोटि की आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। हमारे यहाँ कोरे मनोरंजन का कतई महत्व नहीं है, साथ में आत्मरंजन भी होना चाहिये।

ए. (संस्कृत, पालि-प्राकृत), प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व, पी-एच.डी.। सम्प्रति – प्रभारी एवं वरिष्ठ विद्वान, जैन विद्या संस्थान श्री महावीर जी में सेवारत। प्रकाशन – अमरसेण चरिउ, अप्पसंवोह कव्व, जैन पुराणकोश, जैन अभिलेख परिशीलन, भा.दि.जैन प्राचीन अभिलेख, महापुराण कथाकुंज, ज्ञानकथाकुंज, विद्याकथा कुंज, जम्बूस्वामी चरिउ, कथाकुंजचरिउ। अप्रकाशित – प्रमाण-परीक्षा भाषा वचनिका, हिन्दी अनुवाद, कुन्दकुन्द कोश। जैन समाज गुना, अनेकान्तपरिषद् सोनागिरि, जैन समाज खुरई, श्री दि. जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति दिल्ली, जैन विद्या संस्थान महावीर जी द्वारा सम्मानित।

पं. अरुण कुमार जैन : आपका जन्म तालवेहट, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री, एम.ए. व्याकरणाचार्य एवं जैनदर्शनाचार्य है। वर्तमान में सनातन धर्म संस्कृत विद्यालय ब्यावर (राज.) में प्राचार्य पदपर कार्यरत है। हित-सम्पादक, कीर्ति-स्तम्भ, आ. ज्ञानसागर का अध्यात्म योगदान आदि महत्वपूर्ण कृतियां। निदेशक – आ. ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र ब्यावर। आ. ज्ञानसागर पुरस्कार से पुरस्कृत।

पं. जयन्तकुमार जैन : आपका जन्म बडागाँव जिला – टीकमगढ़ (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योगयताए एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत) साहित्याचार्य, बी.एड. साहित्यरत्न है। सम्प्रति – श्री दि. जैन उ.मा. वि. सीकर (राज.) में व्याख्यातापद पर कार्यरत है। 40 आलेखों का प्रकाशन। सामाजिक स्तर पर सीकर, स्योहारा, खेडली समाज द्वारा सम्मानित।

पं. विजयकुमार जैन : आपका जन्म गुढा, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता – शास्त्री, एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड है। सम्प्रति – राजकीय उ. मा विद्यालय नरायना, जयपुर में वरिष्ठ अध्यापक पद पर कार्यरत है। 10 आलेख प्रकाशित, सामाजिक स्तर पर सम्मानित।

पं. मुन्नालाल शास्त्री : आपका जन्म गौना जिला-ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यता शास्त्री, बी एड.,एम.ए. है। सम्प्रति राजकीय उ. प्रा. वि. गोविन्दगढ में वरिष्ठ अध्यापक पद पर कार्यरत है। 11 आलेख प्रकाशित है।

डॉ. अशोककुमार जैन : आपका जन्म मड़ावरा जिला - ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ हैं। शैक्षिणिक योग्यता एम.ए., जैन दर्शनाचार्य, डी.फिल, पी-एच.डी. है। जैन दर्शन में अनेकान्तवाद एक परिशीलन, आ. ज्ञानसागर का दार्शनिक अवदान, आदि महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं। अ.भा.शा.परि. द्वारा सम्मानित। शास्त्री परिषद के उपाध्यक्ष, अ भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के सदस्य। सम्प्रति जैन विश्व भारती लाडनूं में जैन विद्या विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्यरत।

डॉ. प्रेमसुमन जैन : आप जैन विद्या के मनीषी विद्वान है। मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में जैनागम प्राकृत विद्या विभाग के विभागाध्यक्ष रहे है। आपने जैन धर्म एवं दर्शन से सम्बंधित अनेक पुस्तकों का सृजन किया है। आप मुख्य रूप से प्राकृत विद्या के मूर्धन्य विद्वान् है। अनेक पुरस्कारो से सम्मानित व्यक्तित्व है। विदेशो की अनेक यात्राएँ कर चुके है।

डॉ. उदयचन्द्र जैन : आपका जन्म बम्हौरी जिला - छतरपुर (म.प्र.) में हुआ है। आप जैनागम प्राकृत विभाग - मोहनलाल सुखाडिया विश्व विद्यालय उदयपुर में विभागाध्यक्ष है। आपने कुन्द कुन्द कोष एवं प्राकृत भाषा में अनेक महाकाव्यों की रचना की है। आप प्राकृत भाषा के आशुकवि हैं। अनेकशः सम्मानित एवं पुरस्कृत व्यक्तित्व है। आपका साहित्यिक योगदान भी महत्वपूर्ण है।

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी : आप जोधपुर के रहने वाले है। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं। जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान है। आपने तत्त्वार्थ राजवार्तिक एवं तत्त्वार्थ तात्पर्य वृत्ति जैसे- जैनदर्शन के प्रमुख ग्रंथों का सम्पादन किया है। आपका साहित्यिक योगदान सराहनीय एवं महत्वपूर्ण है।

पं. ज्योतिबाबू जैन : आपका जन्म सोंरई, ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री, एम.ए.

क्या तो विद्वान् और क्या साधु, सभी पद और परिग्रह को इतना अधिक महत्व दे रहे हैं कि उससे धर्म का क्षेत्र भी राजनीति का अखाड़ा बन गया है।

हैं। वर्तमान में सर्व ऋतु विलास, उदयपुर में धर्माध्यापक पद पर कार्यरत है। अध्ययन, अध्यापन, प्रबन्धन एवं प्रतिष्ठादि में आपकी विशेष रूचि है।

पं. कोमलचन्द्र जैन : आपका जन्म बरमा, जिला छतरपुर (म.प्र.) में हुआ है। शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री और विशारद है। सम्प्रति – श्री दि. जैन समाज लोहारिया जिला बांसवाडा (राज.) में धार्मिक अध्यापन कार्य करते है। अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् और शास्त्री परिषद के सदस्य है।

पं. शीलचन्द्र जैन : पंडित जी का जन्म नैकौरा ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – एम.ए.,बी. एड. सिद्धान्त शास्त्री है। सम्प्रति-वरिष्ठाध्यापक राजकीय वरिष्ठ संस्कृत विद्यालय विराटनगर, जयपुर में सेवारत है।

पं. रविकान्त जैन : आपका जन्म सलेहा, सतना (म.प्र.) में हुआ है। शैक्षिणिक योग्यताएं हाई सेकेन्ड्री हैं। सम्प्रति प्रतिष्ठाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रतिष्ठाचार्य पं. हंसमुख जी धारियावाद के शिष्य है तथा अजमेर प्रवास कर रहे है। अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् और शास्त्री परिषद् के सदस्य हैं।

पं. कोमलचन्द्र 'सुमन' : आपका जन्म अजनौर-टीमकगढ (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं शास्त्री, बी. एड. हैं। सम्प्रति दि. जैन पाठशाला, फागी जिला-जयपुर में धार्मिक अध्यापन कराते है। प्रतिष्ठाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हैं।

पं. अनिलकुमार जैन 'सौम्य' : आपका जन्म सोजना ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री, एम.ए. (हिन्दी) बी.एड. हैं। सम्प्रति – श्री दि. जैन आचार्य सं. महाविद्यालय मनिहारों का रास्ता, जयपुर में अध्यापन कार्य कर रहे है। सामाजिक स्तर पर सम्मानित है।

पं. सुनीलकुमार जैन : आपका जन्म सोंजना ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – शास्त्री, एम. ए., बी.एड. है। वर्तमान में दि. जैन उ. प्राथ. विद्यालय, निवाई, जिला टोंक में कार्यरत है। प्रतिष्ठाचार्य के रूप में प्रसिद्ध है।

डॉ. पी.सी. जैन : आप जयपुर के निवासी हैं। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – एम.ए., पी-एच.डी. है। वर्तमान में राजस्थान विश्वविद्यालय के जैन अध्ययन केन्द्र, संस्कृत विभाग में निदेशक पद पर कार्यरत है। आपने नागौर के ग्रंथ भंडारो की सूचियों का काम किया है। जैन विद्या सेमिनारों का आयोजन भी करते रहते है। 50 शोधालेख प्रकाशित है। समाज द्वारा सम्मानित है।

पं. बाबूलाल जी सेठिया : आप नैनवां जिला-टोंक के रहने वाले है। आप धार्मिक प्रकृति एवं मुनिभक्त विद्वान है। पूजा, विधानादि कराने में निष्णात है। स्वाध्यायी एवं अध्ययनशील व्यक्ति है।

डॉ. श्रीयांस सिंघई : आपका जन्म खुरई जिला सागर (म.प्र.) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – एम.ए. जैन दर्शनाचार्य पी-एच.डी. हैं। सम्प्रति – केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर में जैन दर्शन विभाग में उपाचार्य पद पर अपनी सेवाये दे रहे हैं। आप स्वाध्यायी एवं आध्यात्मिक प्रवचनकार हैं।

पं. पीयूष जैन : आपका जन्म द्रोणागिरि (छतरपुर) में हुआ है। आपकी शैक्षिणिक योग्यताएं – जैनदर्शनाचार्य, एम.ए. है। पं. टोडरमल स्मारक भवन में प्रबंधक पद पर कार्यरत हैं। निष्ठात प्रवचनकार हैं।

पं. जवाहरलाल जैन : आप भिण्डर (राज.) के निवासी हैं। आप अनन्य मुनिभक्त है। भारतवर्षीय शास्त्रि परिषद के मान्य सदस्य है। करणानुयोग के उद्भट विद्वानों में आपकी गणना होती है। लगभग 900 आलेख प्रकाशित है। करणानुयोग की अनेक लघु पुस्तिकायें प्रकाशित है। जैन गजट आदि पत्रों में करणानुयोग विषयक शंका-समाधान प्रकाशित होते रहते हैं।

☐

श्रुत-देवता का शरीर शुक्ल होता है यह ठीक है पर उसकी यह शुक्लता अपनी निजी नहीं है, किन्तु विद्वानों के स्वच्छ हृदय में निवास करने के कारण प्रकृति के प्रभाव से उसे शुक्ल माना जाता है।

मध्यप्रदेश के प्रमुख दि. जैन मनीषी (अ)

– डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली

भारत का हृदयस्थल मध्यप्रदेश। अपनी नैसर्गिक सुषमा के लिए विश्वविख्यात, अपनी पुरातात्विक धरोहर के लिए सदैव चर्चित। जैन विद्वानों की खान। म.प्र. और उ.प्र. के कुछ जिलों में फैले बुन्देलखण्ड में जन्म लेने वाले जैन विद्वानों ने भारत और विश्व के हर कोने में जाकर जैन साहित्य-संस्कृति के प्रचार-प्रसार और संरक्षण का जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। इन विद्वानों ने अभावो को झेलते हुए, कष्टों को सहते हुए, परिवार की चिन्ता छोड, प्रवासी बनकर साहित्य और संस्कृति को जीवन्त रखा। बुन्देलखण्ड में कहावत है कि 'यदि चार बेटे हैं तो एक धर्म के लिए दे दो' यहाँ के लोगों ने इससे भी आगे बढ़कर अपने पूरे परिवार को ही धर्म प्रचार में लगा दिया। आज भी यहॉ के मन्दिरो में प्रातः काल उमड़ती भीड़ से यहां की भक्ति-भावना का अन्दाज लगाया जा सकता है।

जैन धर्म, साहित्य और संस्कृति को अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले म.प्र. के किन विद्वानो का परिचय दिया जाए, किनका नहीं यह बड़ी समस्या है, विद्वानों की एक लम्बी सूची हमारे सामने है। अधिकाश का सम्पर्क किसी न किसी रूप से म प्र से रहा है। किसी की जन्म और कर्मस्थली यह है तो कोई अध्ययन के लिए या कुछ वर्ष कार्य के लिए यहॉ रहा। ऐसी दशा में, जिनका अधिकाश समय म प्र में बीता ऐसे जितने विद्वानों का परिचय उपलब्ध हो सका, उनका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है, क्योंकि यह आलेख है प्रबन्ध या शोध प्रबन्ध नहीं। यद्यपि उन सभी विद्वानो के अलग-अलग परिचय शोध निबन्ध-प्रबन्ध के रूप में लिखे जाने योग्य है। म.प्र. में जन्म लेने वाले, पढने वाले या कुछ समय रहने वाले अनेक लोगो का परिचय तत्-तत् प्रदेशों के इतिहास में आ गया होगा जैसे डा. शेखरचंद का गुजरात मे, डा. शीतलचंद का राजस्थान मे, डा. भागचंद भास्कर का महाराष्ट्र मे, डा. राजाराम का बिहार मे, डा. कोमलचद का उ.प्र. मे आदि आदि।

किसका परिचय पहले दें और किसका बाद में, यह बहुत बड़ी समस्या हमारे सामने थी अत अकारादि क्रम से परिचय दिया है। अनेक विद्वानो के नाम ग्राम/शहर/जिला के नामों में वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियॉ हो सकती है। जन्म के समय में एक वर्ष का अन्तर हो सकता है क्योंकि संवत् से ई. सन् में कुछ महीनों के अन्तर के कारण कही-कही वर्ष का अन्तर हो जाता है। पूरे अवदान की चर्चा भी नहीं आ पाई हैं, हमने प्रमुख रूप से विद्वानों के साहित्यिक अवदान को ही रेखांकित करने का प्रयास किया है। जिनके ग्राम/शहर का नाम नहीं मिल सका, उनके जिले का नाम दिया गया है।

दिगम्बर जैन विद्वानों की संस्थाओं को एक विशाल कार्य योजना बनाकर विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ (अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद द्वारा 1976 में प्रकाशित, पृष्ठ संख्या लगभग 700) जैसे किसी वृहद ग्रन्थ को प्रकाशित करना चाहिए जिसमें वर्तमान के सभी विद्वानों के अवदान का विस्तृत परिचय हो इस विषय में हमारी कुछ संस्थाओं ने कुछ कार्य किया है। पर उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। हमारे साधक वर्ग और समाज को भी इस कार्य में सक्रिय सहयोग देना चाहिए। आगे की पंक्तियों में म.प्र. के प्रमुख जैन विद्वानों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

डा. अनुपम जैन : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के निदेशक, अर्हत् वचन के सम्पादक तथा अंकगणित के अधिकारी विद्वान् अनुपम जैन का जन्म फिरोजाबाद में हुआ। सलावा में कुछ दिन अध्यापन करने के बाद आप म.प्र. शासन की सेवा में गणित प्राध्यापक के रूप में चले गए। सम्प्रति इन्दौर में स्थाई रूप से रह रहे हैं। तीर्थंकर ऋषभ देव विद्वत् महासंघ के मंत्री अनुपम जी ने सभी विद्वानों के पते 'सम्पर्क' रूप में प्रकाशित कर सराहनीय कार्य किया है। अनेक संगोष्ठियों का सफल संचालन और विदेश यात्रा आपने की हैं अनेक पुरस्कारों से आप सम्मानित किए जा चुके हैं। आपने मेरठ से जैन

[illegible]

गणित पर शोधकार्य किया है। समाज को आपसे बहुत आशायें हैं।

डा. अभयप्रकाश जैन : नित नवीन विषयों पर अपनी पैनी लेखनी चलाने वाले अभय प्रकाश जी का जन्म ग्वालियर (म.प्र.) में हुआ। आप ग्वालियर में ही स्थाई रूप से रह रहे हैं और वहाँ ए.जी. कार्यालय में कार्यरत हैं। अर्हत् वचन आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डा. जैन की अनेक पुस्तकें तथा शताधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

डा. अशोक जैन : जीवाजी वि.वि. में वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर, अनेक बार विदेश यात्रा कर चुके अशोक जी का जन्म अशोक नगर (म.प्र.) में हुआ। सम्प्रति आप ग्वालियर में रह रहे हैं। जैन वैज्ञानिक विषयो विशेषतः जैन चौका, खान-पान, शाकाहार के सम्बन्ध में प्रभावक भाषण देकर तथा लेख लिखकर आपने महती प्रभावना की है। अनेक पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया जा चुका है। आपसे समाज को बहुत आशायें हैं।

डा. (कु.) आराधना जैन : 'जयोदय महाकाव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन' जैसे गहन विषय पर शोध करने वाली आराधना जी का जन्म गंजबासोदा में हुआ। सम्प्रति आप म.प्र. शासकीय सेवा में रहते हुए गंजबासोदा में ही स्थाई रूप से ही रह रही हैं। आपके अनेक लेख (शोध) प्रकाशित हो चुके हैं व संगोष्ठियों में आपने शोधपत्र वाचन किए हैं। पं ज्ञानचंद जी 'स्वतन्त्र' की पुत्री आराधना जी में ज्ञानचंद जी के वैदग्ध्य की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

डा. (श्रीमती) आशा मलैया : आचार्य विद्यासागर जी महाराज के कृतित्व पर शोधकार्य करने वाली डा. आशा मलैया वर्तमान समय की विदुषी महिला हैं। आपके अनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अनेक सम्मानों से सम्मानित डा. आशा जी शासकीय कन्या महाविद्यालय में प्रोफेसर हैं और सागर (म.प्र.) में रहती हैं।

डा. के. एल. जैन : अनेक दिगम्बर जैन आचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपने निर्देशन में शोध कार्य करा चुके टीकमगढ़ (म.प्र.) के डा. के.एल. जैन वहाँ शासकीय महाविद्यालय में प्रोफेसर पद पर आसीन हैं। स्वयं आपने अनेक पुस्तकों का सृजन किया है और सेमिनारों में शोध पत्रों का वाचन किया है। अनेक पुरस्कारों/सम्मानों से भी आपको सम्मानित किया जा चुका है।

डा. कन्छेदीलाल साहित्याचार्य : 'जैन सन्देश' के सम्पादक रहे तथा 'रूपककार हस्तिमल्ल' के संस्कृत जैन नाटकों पर शोधकार्य करने वाले कन्छेदीलाल जी का जन्म 1929 ई. में बिलानी (पथरिया) जिला दमोह (म.प्र.) में हुआ। आपने सागर और वाराणसी में अध्ययन किया तथा शासकीय सेवा में आ गए। अनेक वर्षो तक शासकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे तथा रायपुर में भी कुछ वर्षो तक डिग्री कालेज में रहे। आपके सैकड़ों शोध पत्र तथा समसामयिक विषयों पर लिखे गए लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे। अप्रत्याशित रूप से असमय में ही आपका निधन हो गया।

पं. कमलकुमार शास्त्री : श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी (टीकमगढ़) म.प्र. के मंत्री आदि अनेक पदों को सुशोभित करने वाले पं. कमल कुमार जी का जन्म नारायणपुर (टीकमगढ़) में हुआ। दलपतपुर, सागर आदि में आपने अध्यापन कार्य किया और अब स्थाई रूप से टीकमगढ़ में बस गए हैं। 'पपौरा दर्शन' आपकी चर्चित कृति है। 'वाणीभूषण' आदि अनेक उपाधियों से आप अलंकृत हैं। दि. जैन विद्वानों की संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हैं।

डा. कैलाशचन्द जैन (डा. के.सी. जैन) : 'जैनिज्म इन राजस्थान' जैसी सुप्रसिद्ध कृति के लेखक श्री कैलाश चंद जैन का जन्म 21 अप्रैल 1930 को मारौठ (नागौर) राज0 में हुआ। महाराजा कालेज, जयपुर से बी.ए. व राजस्थान वि.वि. से पीएच.डी., डी.लिट्. जैसी शोध उपाधियाँ प्राप्त की। आपने शासकीय महाविद्यालय अलवर, अजमेर, जयपुर में कार्य किया फिर विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में प्रोफेसर हुए और वहीं से सेवा निवृत्त हुए। 'एनशियन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ

राजस्थान' आपका डी.लिट्. का प्रकाशित प्रबन्ध है। इनके अतिरिक्त भी आपने अनेक पुस्तकें व शताधिक शोध निबन्ध लिखे हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति व पुरातत्व के विश्व विख्यात विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित डा. कैलाशचन्द जैन की 'लार्ड महावीरा' बहुचर्चित कृति मानी जाती है।

पं. खूबचंद 'पुष्कल' : 'पुष्कल' उपनाम से लिखने वाले खूबचंद जी का जन्म संवत् 1978 में सीहोरा (सागर) म.प्र. में हुआ। 1941-42 के आन्दोलन में आपने जेल यात्रा की। रक्षाबन्धन कथा (पद्यमय) आपने लिखी है। आप अपनी कविताओं के माध्यम से आजादी की अलख जगाते रहे। लगभग 300 कवितायें आपने लिखी हैं। मंचीय कवि के रूप में विख्यात पुष्कल जी को ललितपुर में 'स्वर्णपदक' से सम्मानित किया गया था।

श्री गुलाबचंद जैन 'जैन दर्शनाचार्य' : 'नैतिक शिक्षा' के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्त और कथाओं का म.प्र. की शिक्षा शालाओं में प्रचार प्रसार करने वाले श्री गुलाबचंद जी का जन्म बरौदिया कलां (सागर) में हुआ। आपने वाराणसी में रहकर एम.ए. अर्थशास्त्र तथा जैन दर्शनाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं। पूज्य वर्णी जी के अन्यतम शिष्यो में एक गुलाबचद जी ने जबलपुर की पाठशाला को पुनरुज्जीवित किया, अपनी प्रिंटिंग प्रेस स्थापित की और पुस्तक प्रकाशन के व्यवसाय से जुड़ गए। आपका अभूतपूर्व कार्य प्रशंसा के योग्य है। जैन धर्म की भी अनेक पुस्तकें आपने लिखीं और प्रकाशित की हैं।

'प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचंद पुष्प' : अपने काल में सौ से अधिक पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएं कराकर एक कीर्तिमान स्थापित कर चुके पं. गुलाबचंद जी 'पुष्प' का जन्म ककरवाहा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.) में सं 1931 में हुआ। सम्प्रति आप स्थाई रूप से टीकमगढ़ में रह रहे हैं। आपकी तीन पीढ़ियाँ प्रतिष्ठा कार्य से सम्बंद्ध रही हैं। पिता श्री मन्नूलाल जी प्रतिष्ठाचार्य के साथ-साथ आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता थे। आपकी भी आयुर्वेद में गहरी पैठ है। आपके पुत्र ब्र. जय निशान्त जी प्रतिष्ठा कार्य से जुड़ गए हैं और नवोदित प्रतिष्ठाचार्यों में आपका स्थान प्रथम पांक्तेय हैं। 'प्रतिष्ठा रत्नाकर' जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ समाज के देने वाले पं. गुलाबचंद जी पुष्प का कृतज्ञ जैन समाज ने विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर सम्मान किया था। वाणीभूषण, प्रतिष्ठा दिवाकर आदि उपाधियों से अलंकृत पं. जी से समाज को बहुत आशाएं हैं।

गुरूणां गुरू पं. गोपालदास वरैया : 'गुरूणा गुरू' की उपाधि से अलंकृत, चलती ट्रेन में बच्चे की उम्र पूरे टिकट की हो जाने पर वहीं स्टेशन पर उतरकर, और आधा टिकट लेने वाले, पत्नी द्वारा विद्यालय की लकड़ी से चौकी बनवा लेने पर उसके पैसे जमा कराने वाले, पण्डित परम्परा के संरक्षक, मौरेना विद्यालय के प्राण, षड्दर्शनों के पारदृश्वा पं. गोपालदास वरैया जैन समाज के उन विद्वानों में थे, जो कभी समाज से भेंट/दक्षिणा नहीं लेते थे। शास्त्रार्थ करना उनका शौक था। पं. जी की तीक्ष्ण प्रतिभा न्यायशास्त्र में अन्तः प्रवेश कर जाती थी, उनका क्षयोपशम तीव्र था। गोम्मटसार, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थ उन्हें कण्ठस्थ थे। वे स्थानीय म्युनिसिपैल्टी के कमिश्नर, मजिस्ट्रैट आदि पदों पर रह चुके थे। पं. मक्खनलाल जी, पं. माणिकचन्द जी न्यायाचार्य पं. वंशीधर जी, पं. खूबचंद जी, पं. उमरावसिंह जी, पं. वंशीधर जी (महरौनी) जैसे निष्णात विद्वान उनके शिष्य थे। जैन धर्म और साहित्य पर तो उन्होंने लिखा ही, 'सुशीला' उपन्यास लिखकर वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी अमर हो गए।

पं. गोविन्ददास कोठिया : 'ज्ञानमाल पच्चीसी', 'अहार वैभव', 'अमर सन्देश' आदि के रचयिता तथा अनेक पुस्तकों के अनुवादक पं. गोविन्ददास जी का जन्म सं. 1976 में अहार (टीकमगढ़) में हुआ। एम.ए. आयुर्वेदाचार्य आदि उपाधि प्राप्तकर्ता पं. जी आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता थे। बरुआसागर विद्यालय में आपने हमें भी पढ़ाया था। कुछ समय आप मोरेना विद्यालय में भी प्रधानाध्यापक रहे थे। आप शुद्ध आयुर्वेद दवायें बनाते थे और साधकों (जैन) को निःशुल्क देते थे। अहार क्षेत्र के विकास में आपका योगदान अविस्मरणीय है।

लोगों की इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता। आदमी बूढ़ा हो जाता है, किन्तु तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती। तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।

विद्याभूषण पं. गोविन्दराय शास्त्री : 'जैन धर्म की सनातनता', 'गृहिणी चर्चा', 'बुन्देलखण्ड गौरव' (संस्कृत) जैसी पुस्तकों के लेखक पं. गोविन्दराय जी का जन्म महरौनी (झांसी) में हुआ। टीकमगढ़ महाराज के दरबार में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। आपने कुरल काव्य का संस्कृत तथा हिन्दी मे अनुवाद कर कीर्तिमान स्थापित किया था। आज इसके पुनः प्रकाशन की महती आवश्यकता है। आपके अनेक लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

पं. घनश्यामदास जी न्यायतीर्थ : पांडव पुराण, परीक्षामुख, नाममाला, पद्मपुराण आदि ग्रन्थों के अनुवादक पं. घनश्यामदास जी का जन्म वि. सं. 1945 में महरौनी (झांसी) में हुआ। मोरेना विद्यालय में अध्ययन कर आप बनारस चले गए। वहाँ स्याद्वाद महा वि. में धर्माध्यापक रहे फिर सर सेठ हुकुमचंद विद्यालय, इन्दौर में प्रधानाचार्य रहे। दो वर्ष बाद वहाँ से साढूमल आ गए और साढूमल विद्यालय की स्थापना में सहयोग दिया। बाद में आप खुरई में व्यापार करने लगे और वहीं आपका देहावसान हुआ।

पं. छोटेलाल जी वरैया : विनोदरत्न, व्याख्यानभूषण, समाजरत्न जैसी उपाधियों से अलंकृत, लगभग 45 ग्रन्थ तथा शताधिक लेखों के लेखक वरैया जी का जन्म आमोल (शिवपुरी) म.प्र. में संवत् 1965 में हुआ। आपने प्रतिष्ठा कार्य भी किया। आपने 'श्रेयोमार्ग' तथा 'जैन दर्शन' का सम्पादन भी किया।

पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री : 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' उक्ति को चरितार्थ करने वाले 'अध्यात्म अमृत कलश' और 'श्रावक धर्मप्रदीप' जैसी कृतियाँ समाज को देने वाले पं. जी का जन्म 1901 ई. में शहडोल (म.प्र.) में हुआ। आप भा. दि. जैन संघ मथुरा के प्रधानमंत्री व जैन सन्देश के अनेक वर्षों तक सम्पादक रहे थे। अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पद को भी आपने सुशोभित किया था। 1990 में कृतज्ञ जैन समाज ने सतना में आपका सार्वजनिक, अभिनन्दन कर वृहद् साधुवाद (अभिनन्दन) ग्रन्थ भेट किया था। आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार से भी आप सम्मानित हुए थे। कटनी विद्यालय के आप प्राण थे। आपके अनेक शिष्य आज जैन समाज की सेवा कर रहे हैं। बडे पुत्र श्री अमरचंद जी पं. जी के कदमों पर चलते हुए जैन साहित्य की सेवा में रत हैं। पं. जी का सल्लेखना पूर्वक निधन, कुण्डलपुर में आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में हुआ था।

डा. जयकुमार 'जलज' : 'जलज' उपनाम से लिखने वाले श्री जयकुमार जैन का जन्म 1934 ई. मे ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ। आपने इलाहबाद वि.वि. से एम.ए. एवं पी एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। म.प्र के शासकीय महाविद्यालयों में आप हिन्दी के आचार्य व प्राचार्य रहे तथा रतलाम से सेवानिवृत्त होकर वहीं स्थाई रूप से रह रहे हैं। 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' आपकी बहुचर्चित कृति है। और भी अनेक साहित्यिक कृतियाँ आपने लिखी है। भाषा विज्ञान, हिन्दी नाटक तथा नाट्यशास्त्र के आप प्रतिनिधि विद्वान हैं। भगवान महावीर 2600वां जन्मकल्याणक पर आपने 'भगवान महावीर' पुस्तक लिखी जिसे म.प्र. शासन ने प्रकाशित किया है। दो वर्ष में ही इसके चार संस्करण निकल गए हैं। यह जलज जी की लोकप्रियता का प्रमाण है।

ब्र. जयनिशान्त जैन, प्रतिष्ठाचार्य : दि. जैन समाज के युवा प्रतिष्ठाचार्यों में अग्रिम पांक्तेय पं. जय कुमार 'निशान्त' का जन्म टीकमगढ़ में हुआ। आपके दादा श्री मन्नूलाल जी सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य थे। पिताश्री पं. गुलाबचंद जी पुष्प सम्प्रति देश के सर्वोच्च ख्यातिलब्ध प्रतिष्ठाचार्य हैं जिन्हें हाल ही में 'पुष्पांजलि' अभि. ग्रन्थ भेंटकर सम्मानित किया गया है। 'निशान्त जी' उपनाम से विख्यात जयकुमार जी ने हाल ही में अपनी शासकीय सेवा से त्यागपत्र देकर पूर्णरूप से जैन साहित्य-संस्कृति की सेवा का व्रत लिया है। विधि-विधान विषयक महत्वपूर्ण बड़े-बड़े ग्रन्थों का सम्पादन आपने किया है जिनमें 'प्रतिष्ठा रत्नाकर' भी एक है। अनेक सम्मानों से सम्मानित निशान्त जी के सैकड़ों लेख प्रकाशित हैं। आप संस्कार सागर के प्रबन्ध सम्पादक भी हैं। हाल ही में आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिए हैं।

गंगा-स्नान आदि से शरीर तो स्वच्छ हो सकता है, किन्तु आत्मा की [illegible] आवश्यक है।

पं. ठाकुरदास जी शास्त्री : श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा व वीर विद्यालय के लगभग 18 वर्षों तक मंत्री रहे प. ठाकुरदास शास्त्री का जन्म तालबेहट (झांसी) में हुआ। बी.ए. पास कर आप शासकीय सेवा में आ गए। जब पूज्य गणेश प्रसाद जी 'वर्णी' के मन में समयसार का प्रामाणिक संस्करण निकालने की बात आई तो समयसार के दो अनुभवी विद्वानों में से एक आपको भी चुना। वर्णी जी ने अपनी जीवन गाथा में आपका यथोचित उल्लेख किया है। महाराजा वीर सिंह जू देव द्वारा स्थापित साहित्य संस्था के आप प्रमुख साहित्यकार थे।

पं. दयाचन्द जी साहित्याचार्य : 'छात्रहितैषी' पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन करने वाले तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले पं. दयाचंद जी का जन्म 1915 ई. में शाहपुर (सागर) में हुआ। साहित्याचार्य उपाधि प्राप्त पं. जी ने बामोरा, बीना आदि के विद्यालयों में कार्य किया। बाद में आप मोराजी, सागर आ गए और प्राचार्य पद सम्हाला। आपके 3. निबन्ध और अनेक कविताएं प्रकाशित हुई। पाठ्यक्रम की भी अनेक पुस्तकें आपने लिखीं हैं।

वैद्य दामोदरदास "चन्द्र" : पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी के जीवनवृत्त को काव्य में लिखने वाले वैद्य दामोदर दास जी का जन्म 1916 ई. में घुवारा (छतरपुर) में हुआ। आप आयुर्वेद और ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता थे। द्रोण प्रान्तीय सेवा परिषद के संस्थापक 'चन्द्र' जी ने 10 से अधिक पुस्तके लिखीं है। आपके शताधिक लेख कविताए विभिन्न जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

पं. दामोदरदास : 'जैन मित्र' के सम्पादक मण्डल में रहे पं. दामोदर दास जी का जन्म 1904 ई. में बुढ़वार (उ.प्र.) में हुआ। 1927 में आप सागर में बस गए। पूज्य वर्णी जी के अन्यतम शिष्यो में रहे पं. जी ने अनेक स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। आपके सुपुत्र डा. प्रकाशचंद जैन जैन धार्मिक विषयों के अच्छे लेखक हैं।

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन 'साहित्याचार्य' : भविसत्तिय कहा तथा अपभ्रंश काव्य', 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृतियॉं' जैसी पुस्तकों के लेखक अपभ्रंश भाषा-साहित्य के उद्धारकर्ता डॉ. देवेन्द्र कुमार जी का जन्म 1933 ई. में शुजालपुर में हुआ। आप मूलतः चिरगांव (झांसी) के निवासी हैं आपने साहित्याचार्य पी एच.डी. जैसी उच्च उपाधियाँ प्राप्त की और म.प्र. शासन की शासकीय सेवा में रहे। शा. महाविद्यालय नीमच से आप सेवानिवृत्त हुए। अनेक पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित डा. सा. भारतीय ज्ञानपीठ के उपनिदेशक जैसे पदों पर रहे। सम्प्रति आप बाहुबली (कुम्भोज) में रह रहे हैं। आपने यम सल्लेखना ले ली हैं।

श्री धन्यकुमार 'सुधेश' : 'परमज्योति महावीर' महाकाव्य के साथ ही 14 और पुस्तकों के लेखक 'विराग' पर लाल पुरस्कार से सम्मानित श्री धन्यकुमार का जन्म 1927 ई. में नागौद (सतना) में हुआ। 1942 में आपने दरबार कालेज रीवा में प्रवेश लेकर भी आन्दोलन के कारण कालेज छोड़ दिया और अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण नहीं की। आप कवि सम्मेलनों में भारी वाहवाही लूटते थे। आपने लगभग 4 हजार पृष्ठ का साहित्य लिखा जिसमें कविता, नाटक, गीतिकाव्य आदि हैं। आपको 'गुरू गोपालदास वरैया' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। 1953 में वर्णी विद्या मन्दिर की स्थापना आपने नागौद में की थी। 1964 में नागौद में जनता महाविद्यालय की स्थापना कराई उसमें दो वर्ष निःशुल्क अध्यापन किया तथा अपना निजी भवन भी निःशुल्क विद्यालय को समर्पित कर दिया था।

पं. धरणेन्द्रकुमार शास्त्री : 'द्रोणगिरी दर्पण', 'धन्यकुमार चरित', 'जीवंधर ज्योति' जैसी पुस्तकों के लेखक पं. धरणेन्द्र कुमार जी का जन्म 1923 ई. में वरदुवाहा (छतरपुर) में हुआ। आपने छतरपुर, हीरापुर, हटा आदि के विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। द्रोणगिरि नवयुवक सेवा संघ के उपाध्यक्ष पं. जी विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय रहे हैं।

पं. धर्मचंद्र जी आयुर्वेदाचार्य : लगभग 50 वर्ष तक प्रिंस यशवंतराव आयुर्वेदिक औषधालय व राजकुमार सिंह

हित, मित और प्रिय वचन बोलना ही वाणी का सदुपयोग है। कटु, कर्कश, कठोर एवं निन्दात्मक वचन बाण की तरह होते हैं, जो सुनने वाले के हृदय में घाव कर देते हैं।

आयुर्वेदिक कालेज में औषधि निर्माण से जुड़े पं. धर्मचंद जी का जन्म देवरान (झांसी) में 1917 ई. में हुआ। आप शुद्ध दवाओं का निर्माण कर जैन मुनियों/साधकों को निःशुल्क देते हैं। आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक निबन्ध आपके प्रकाशित हैं। अच्छे वक्ता और मिलनसार पं. जी अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद के अनेक पदों पर रहे हैं।

डॉ. नन्दलाल जैन : दिगम्बर जैन आगम ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले, वर्ष में छह माह जैन विद्याओं के प्रसार-प्रचारार्थ विदेश में रहने वाले तथा जैन वैज्ञानिक पक्ष को विश्व के सामने लाने वाले श्री नन्दलाल जैन का जन्म शाहगढ़ (छतरपुर) में हुआ। म.प्र. के अनेक शासकीय महाविद्यालयों में सेवा करने के बाद सेवानिवृत्त होकर आप स्थाई रूप से रीवा (म.प्र.) में रह रहे हैं। आपने रसायन एवं भौतिक विज्ञान में विशेषज्ञता प्राप्त की है। इस विषय पर आपके सैकड़ों लेख और अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों का सफल व कुशल सम्पादन आपने किया है। आपकी धारणा है कि 'जैन विद्याओं' के विविध साहित्य में वर्णित वैज्ञानिक तथ्यों का आकलन ऐतिहासिक दृष्टि से ही समीचीनतापूर्वक किया जा सकता है। जैन दर्शन की भौतिक जगत सम्बन्धी अनेक मान्यतायें सैद्धान्तिक दृष्टि से आज भी जैनाचार्यों की कीर्ति-पताका फहरा रही हैं।'

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन : 'जैन दर्शन में रत्नत्रय का स्वरूप' जैसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध कार्य करने वाले, पार्श्वज्योति (मासिक) के सम्पादक नरेन्द्र जी' का जन्म 1960 ई. में मडावरा (ललितपुर) उ.प्र. में हुआ। आपकी शिक्षा बिजनौर में हुई वहीं से एम.ए., पीएच.डी. उपाधियाँ प्राप्त की हैं। आपने कुछ दिन 'जैन गजट' के सम्पादकीय विभाग में भी कार्य किया। सम्प्रति आप शिक्षण कार्य से जुड़कर सनावद (म.प्र.) में स्थाई रूप से रह रहे हैं। अनेक पुस्तकें और लेख प्रकाशित हो चुके हैं। 'गुरूवर्य गोपालदास वरैया स्मृति पुरस्कार' आदि अनेक पुरस्कारों/सम्मानों से भी आपको नवाजा गया है।

डा. नरेन्द्र विद्यार्थी : 'जैन जगत के गांधी' नाम से विख्यात पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी के उपदेशामृत से वर्णी वाणी नाम से अनेक भागों का संकलन-सम्पादन-प्रकाशन करने वाले 'आदि पुराण में तीर्थंकर ऋषभ और भरत का चरित्र' विषय पर सागर वि.वि. से पीएच.डी. उपाधि प्राप्त करने वाले म.प्र. विधानसभा में विधायक रहकर शासन-समाज की सेवा करने वाले नरेन्द्र विद्यार्थी का जन्म भगवां (द्रोणगिरि) में हुआ। बाद में आप स्थाई रूप से छतरपुर में बस गए। आपने वर्णी जी के साथ पदयात्रायें कीं। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया और देश की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया।

पं. नाथूराम डोंगरीय : 'वर्णी पुरस्कार' के साथ ही अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डोंगरीय जी का जन्म 1916 ई. में मुंगावली में हुआ। कटनी में अध्यापन कर आपने मोरेना, बिजनौर, इन्दौर व बीना के विद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। आपने 'वीर प्रतिभा' काव्य लिखा जो बहुत चर्चित हुआ।

श्री नाथूराम 'प्रेमी' : हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध अन्वेषक पं. नाथूराम प्रेमी का जन्म देवरी (सागर) में 1881 ई. में हुआ। 1912 में आपने 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय की स्थापना की व 'स्वतन्त्रता' नामक प्रथम ग्रन्थ निकाला। इस संस्था से उन्होंने जो पुस्तकें प्रकाशित की वे आज भी प्रामाणिक मानी जाती हैं। जैन साहित्य के इतिहास पर प्रेमी जी द्वारा किया गया कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' तो इतना खोजपूर्ण है कि उसके आधार पर शताधिक शोध प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। अन्य आपके लगभग 20 ग्रन्थ प्रकाशित हैं। आप नए लेखकों को बहुत प्रोत्साहित करते थे। बम्बई में आपने फिल्म क्षेत्र के प्रसिद्ध गीत लेखक इन्दीवर को आगे बढ़ाया था, अपने एक संस्मरण में उन्होंने प्रेमी जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'माणिकचंद ग्रन्थमाला के भी आप सम्पादक व मंत्री रहे थे। उनका लेखन आज भी प्रामाणिक माना जाता है। संकटापन्न अवस्था में भी वे मेरू की तरह अडिग रहे। विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर कृतज्ञ हिन्दी समाज ने आपका सम्मान किया था।

पं. नाथूलाल जैन इन्दौर : सरसेठ हुकुमचंद संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य रहे, अनेक विधि-विधान सम्बन्धी पुस्तकों

संयम जीवन का सार तत्व है। जिस तरह मूर्ति के बिना मन्दिर, सुगन्ध के बिना पुष्प और पानी के बिना नहर का कोई महत्व नहीं है, उसी प्रकार संयम या सदाचार से शून्य जीवन निरर्थक है।

के सृजनकर्ता, अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित पं. नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर के नाम से जैन समाज का कोई व्यक्ति शायद ही अपरिचित हो। जैन विधि-विधान के क्षेत्र में आपकी प्रामाणिक पुस्तकें नवीन प्रतिष्ठाचार्यों को दीप स्तम्भ का काम कर रहीं हैं। इन्दौर समाज ने आपके निर्देशन में बहुमुखी प्रगति की है। सन्मति वाणी आपके निर्देशन में ही ऊँचाइयों को पा सकी है। आपके लेख सभी जैन-पत्रिकाओं में ससम्मान छपे हैं। आपके सहस्त्राधिक शिष्य आज राष्ट्र और समाज की सेवा कर रहे हैं। यह गौरव की बात है।

श्री निर्मल जैन : शाकाहार के प्रचार-प्रसार को ही अपने जीवन का मिशन बना चुके निर्मल जी का जन्म विद्वानों की खान कहे जाने वाले रीठी ग्राम में हुआ, बाद में आप सतना आ गए। अहिंसा और शाकाहार के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान के कारण आप 'अहिंसा इन्टरनेशनल' आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किए जा चुके हैं। आपके सहस्रों लेख प्रकाशित हो चुके हैं। अतिशय क्षेत्र खजुराहो के मंत्री पद पर रहते हुए वहाँ के विकास मे महनीय योगदान दिया है। सरल, सहृदय निर्मलजी सम्प्रति जैन समाज के वयोवृद्ध विद्वान हैं। यात्रायें करना आपका शौक है। दक्षिण भारत की यात्रा आपके सान्निध्य में करने का हमें सौभाग्य मिला था। आपका वैदुष्य देखते ही बनता है।

प्राचार्य पं. निहालचंद जी जैन : जैन साहित्य के वैज्ञानिक पक्ष को अपने लेखन के माध्यम से उजागर करने वाले, अनेक पुरस्कारों/पुस्तकों के लेखक, कुशल वक्ता, सरल, सरस, सहृदय पं. निहालचंद जी का जन्म 1942 ई. में मड़ावरा (ललितपुर) में हुआ। आपने रीवां से एम.एससी. की उपाधि प्राप्त की और तत्काल शासकीय सेवा में आ गए। अनेक पदों पर रहते हुए आप हाल ही मे प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त होने वाले हैं। सम्प्रति स्थाई रूप से बीना मे ही रह रहे हैं। आपकी लिखी पुस्तकें और लेख जैनाजैनों में समान रूप से पढ़े जाते हैं। अनेक पुरस्कारो से भी आपको सम्मानित किया जा चुका है। दक्षिण भारत की यात्रा हमने आपके साथ की थी।

श्री नीरज जैन : 'सोनगढ़ समीक्षा' जैसी विचारोत्तेजक कृति के कृतिकार, जैन सस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक देशों की यात्रा कर चुके श्री नीरज जी का जन्म 1926 ई. में विद्वानों और समाजसेवियों की खान रीठी (सागर) में हुआ। सागर में शिक्षा प्राप्त कर सम्प्रति आप स्थाई रूप से सतना (म प्र.) मे रह रहे हैं। अध्ययन के प्रति आपकी गहन रुचि है यहाँ तक कि आपने 45 वर्ष की उम्र में अपने पुत्र के साथ एम ए. किया। प्रो. के.डी. बाजपेयी के सम्पर्क और शिष्यत्व के कारण आप काव्य-रस से पुरातत्व की ओर अग्रसर हुए और यहाँ भी प्रभूत यश और ख्याति अर्जित की। आप पुरातत्व के प्रथम पांक्तेय अधिकारी विद्वान हैं। आपके शताधिक शोध लेख प्रकाशित हैं। महासभा द्वारा प्रकाशित प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार के आप प्रधान सम्पादक हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादक मण्डलों से जुड़े नीरज जी जब बोलते हैं तो हजारों की संख्या वाले पाण्डाल में पिन गिरने की भी ध्वनि सुनी जा सकने योग्य शान्ति के साथ लोग आपको सुनते हैं। अनेक पुरस्कारों के साथ प्रतिष्ठित 'साहू अशोक जैन पुरस्कार' से सम्मानित पं जी की 'चन्दना, गोम्मटेश गाथा' 'सहस्राब्दि समारोह' आदि रचनाएं सुविख्यात हैं।

डा. नेमीचन्द जैन : 'भगवान महावीर फाउन्डेशन' चेन्नई द्वारा पाच लाख के पुरस्कार से सम्मानित डॉ. नेमीचन्द जी ने अपना समग्र जीवन शाकाहार के प्रचार-प्रसार में समर्पित कर दिया था। उन्होंने सौ से अधिक पुस्तकें केवल शाकाहार पर लिखीं। इन्दौर से प्रकाशित होने वाले 'तीर्थंकर' (मासिक) की आप जान थे। उसमें प्रकाशित लेख जैन संस्कृति के साथ साहित्यिक गरिमा लिए होते थे। शाकाहार के प्रति सर्मपण के कारण ही आपको महावीर फाउन्डेशन का पुरस्कार दिया गया था किन्तु बीच में ही देहावसान हो जाने के कारण मरणोपरान्त यह पुरस्कार दिया गया।

डॉ. नेमीचन्द शास्त्री : श्री पा. दि. जैन गुरूकुल खुरई (म.प्र.) से हाल ही में प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए डॉ. नेमीचन्द जी, शास्त्री परिषद् विद्वत्परिषद् आदि से जुड़े रहे हैं। वे विद्वत्परिषद् के उपमंत्री हैं। छात्रों के सर्वागीण विकास और उनमें

लोहे की टेढ़ी छड़ तपाकर सीधी की जाती है। सोना तपने के बाद ही आभूषण बनता है। ऐसे ही तप के द्वारा आत्मा की वक्रता को विदा किया जाता है।

जैन संस्कारों के आरोपण में आपने महती भूमिका निभाई। आपके सहस्राब्दिक शिष्य इस समय धर्म और राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। सम्प्रति आप खुरई में ही स्थाई रूप से रह रहे हैं।

डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य : अपने वजन से भी अधिक वजन की पुस्तकों का सम्पादन/अनुवाद करने वाले, पूज्य वर्णी जी के अनन्य भक्त पं. पन्नालाल जी का जन्म 5 मार्च 1911 ई. को पारगुवां में हुआ। सागर और वाराणसी में आपने अध्ययन किया तथा लगभग पूरा जीवन ही सागर विद्यालय में अध्यापन करते हुए बिताया। अन्तिम समय में जबलपुर गुरुकुल में रहे प. जी का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। आपने अधिकांश जैन संस्कृत पुराणों व अन्य ग्रन्थों का अनुवाद किया है। आप द्वारा लिखित/सम्पादित अधिकांश ग्रन्थ देश की सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था भारतीय ज्ञानपीठ से छपे हैं। पूज्य वर्णी जी द्वारा स्थापित अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के आप प्राण थे। इस संस्था के आप अनेक वर्षों तक अध्यक्ष/मंत्री रहे। एक व्रती की चर्या का निर्वाह करने वाले पं. जी को राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। अन्य भी अनेक पुरस्कारों से आप सम्मानित हुए। कृतज्ञ जैन समाज ने एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर आपका सम्मान किया था। आपकी स्मृति में प्रतिवर्ष सेमिनार/व्याख्यान आदि आयोजित किए जाते हैं।

डॉ. परमेष्ठीदास जी : 'आचारांगसूत्र' पर सागर वि.वि. से पी एच.डी. उपाधि प्राप्त करने वाले पं. परमेष्ठीदास का जन्म विदिशा (म.प्र.) में हुआ। सागर हाई स्कूल में अध्यापन कार्य करने के बाद आप गुरूकुल खुरई मे प्राचार्य बने और उसके विकास में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। आपके लेख प्राय· सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा आपने जैन धर्म की महती प्रभावना की। जैन महिलाश्रम, सागर के आप शिक्षा मंत्री तथा वर्णी स्नातक परिषद् के संयोजक रहे थे। असमय में ही असाध्य बीमारी के कारण आपका निधन हो गया।

ब्र. प्रद्युम्नकुमार जी : टिकरिया (हरपालपुर) में जन्में ब्र. प्रद्युम्नकुमार जी क्षु. सहजानन्द जी महाराज (छोटे वर्णी) के सानिध्य में अनेक वर्षों तक रहे। अनेक पुस्तकों के सम्पादक ब्र. जी वर्तमान में विधानों के माध्यम से भक्ति-भाव का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

श्री प्रेमचन्द जैन 'विद्यार्थी' : 'विद्यार्थी' उपनाम से विख्यात प. प्रेमचन्द जी का जन्म कुआरखेड़ा नायक, पो.-मुरिया, जिला - दमोह में हुआ। 1955 में हिन्दी साहित्य समिति द्वारा आपको विद्यार्थी उपाधि प्रदान की गई। आपने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'श्रमवाला' व 'जैन धर्म मेरी दृष्टि में' प्रमुख हैं। 1946 में आपने आजाद हिन्द दल में काम किया और देश की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया। दमोह में अनेक संस्थाओं से आप जुड़े रहे। 'जैन साहित्य सांस्कृतिक सस्था की स्थापना भी आपने की थी।

पं. पूर्णचन्द्र जी 'सुमन' : दुर्ग जैन समाज के अध्यक्ष तथा अन्य अनेक सामाजिक और राजनैतिक सस्थाओं के उच्च पदो पर रहे सुमन जी का जन्म ककरवाहा (टीकमगढ़) में हुआ। आपका पारिवारिक व्यवसाय वैद्यक है। सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचन्द जी 'पुष्प' आपके भाई हैं। आपने शाहगढ़, दुर्ग, नवापारा राजिम आदि में अध्यापन का कार्य किया, फिर दुर्ग में स्थाई रूप में बस गए। दुर्ग में अनेक राजनैतिक पदों पर रहें। नवभारत, जैन मित्र, छत्तीसगढ़ केसरी आदि में आपकी रचनायें छपीं। 'सुमन संगीत सरिता' आपकी चर्चित कृति है।

पं. फूलचन्द मधुर : 'अपरिणीता' खण्डकाव्य द्वारा राजुल के चरित की सुरभि सर्वत्र फैलाने वाले, आजादी के दीवाने फूलचंद का जन्म नरसिंहपुर में हुआ। बाद में आप सागर प्रवासी हो गए। अपने आरम्भिक काल में आपने जैन विद्यालयों में अध्ययन किया। 'बाहुबली सेवा दल' में सम्मिलित होकर जैन समाज में संगठन की अद्भुत क्षमता का परिचय दिया। बाद में आप जैन धर्म विषयक लेख/कवितायें लिखने लगे। राष्ट्रीयता पर अनेक गीत आपने लिखे जो पुरस्कृत हुए। 'राष्ट्रीय

धन की तीन ही गतियाँ हैं— दान, भोग और नाश, बुद्धिमत्ता इसी में है कि नाश होने के पहले उसे परोपकार में लगा दिया जाय।

सेवा योजना' का प्रथम विचार आपने ही दिया था।

श्री फूलचंद 'योगिराज' : 'जैन योगिराज' के नाम से विख्यात फूलचंद जी का जन्म जतारा (टीकमगढ़) में हुआ। म. प्र. शासन की सेवा में आने के बाद आप अनेक स्थानों पर स्थानान्तरण के बाद अब छतरपुर में स्थाई रूप से बस गए हैं और वहीं सत्यम् योग संस्थान की स्थापना की है। आपने 'जैन योग' का विशेष अध्ययन कर जैन योग पद्धति का विकास किया है और अनेक स्थानों पर शिविर लगाये हैं। आपको अनेक सम्मानो से नवाजा गया है। आपकी अनेक रचनायें प्रकाशित हैं।

पं. बालचंद जैन : म.प्र. के पुरातत्व विभाग में उपसंचालक रहे पं. बालचंद जी का जन्म गोरखपुर (बडामलहरा) छतरपुर में हुआ। आपने कटनी और वाराणसी के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की तथा गवर्नमेंट कालेज काशी से प्रा. मा. इ. स. पुरातत्व में एम.ए. किया। कुछ दिन आप प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम बम्बई में ट्रेनिंग हेतु रहे। पुरातत्व पर आपकी पुस्तकें व अनेक लेख प्रकाशित हैं साथ ही 'आत्म समर्पण' और 'राजुल' जैसे खण्डकाव्य भी आपने लिखे है। विश्व विख्यात पत्र-पत्रिकाओं में आपके पुरातत्व और मुद्रा सम्बन्धी लेख छपे हैं। 'जैन प्रतिमा शास्त्र' और 'छत्तीसगढ का इतिहास' आपकी चर्चित कृतियॉं हैं। अनेक सस्थाओं की भी आपने स्थापना की है।

पं. बालचंद जी सिद्धान्त शास्त्री : 'तिलोयपण्णत्ती', जम्बूदीपपण्णत्ती, लोक विभाग, आत्मानुशासन जैसे महत्वपूर्ण और विशाल ग्रन्थों का सम्पादन करने वाले प. जी का जन्म सोंरई (उ.प्र.) मे हुआ। आपने गुना, मथुरा, उज्जैन आदि में अध्यापन कार्य किया। आप हावला आफिस, अमरावती और जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर में अनेक वर्षों तक रहे व महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सम्पादन किया। वीर सेवा मंदिर, दरियागंज व वहॉं के पत्र 'अनेकान्त' से भी आप जुड़े रहे तथा 'जैन लक्षणावली' (तीन भाग) का सम्पादन आपने किया। अनेक सम्मानों से सम्मानित पं. बालचंद जी ने जैन साहित्य की सेवा को ही अपना मिशन बनाया था। सुप्रसिद्ध जैन विद्वान पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य आपके चाचा व प. डा. दरबारी लाल जी कोठिया आपके चचेरे भाई थे।

डॉ. भागचंद 'भागेन्दु' : 'देवगढ की जैन कला' जैसे पुरातात्त्विक विषय पर शोध करने वाले, म.प्र. संस्कृत अकादमी के सचिव, प्राकृत संस्थान, श्रवणबेलगोला के निदेशक आदि पदों पर रहे भागेन्दु जी का जन्म विद्वानो की खान कही जाने वाली रीठी नगरी में हुआ। शिक्षा के उपरान्त आप म.प्र. शासकीय सेवा मे आ गए तथा अनेक महाविद्यालयो मे अपनी सेवायें प्रदान कीं। आप स्थाई रूप से दमोह में ही रह रहे हैं। आपके निर्देशन में जितने शोध कार्य हुए हैं शायद ही किसी के निर्देशन में हुए हों। सम्प्रति आप प्राकृत-संस्कृत शोध संस्थान के निदेशक हैं। अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों/स्मारिकाओं का सफल सम्पादन तथा अनेक सेमिनारों का संचालन आयोजन आपने किया है। लगभग 20 पुस्तकें आपकी प्रकाशित हैं। हाल ही में 'जैन राष्ट्र गौरव' अलंकरण से विभूषित किया गया है।

विद्यावारिधि पं. मक्खनलाल जी शास्त्री : ग्राम चावली में जन्में बीसवीं सदी में जैन विद्या प्रचार प्रसार के सुदृढ़ स्तम्भ पं. जी ने मोरेना को अपनी कर्म भूमि बनाया और लगभग चार दशक तक गोपाल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का संचालन कर हजारों जैन विद्वान तैयार किये। आपके छह भाइयों में से एक पं लालाराम जी ने लगभग 100 जैन ग्रन्थो की टीकायें लिखीं व एक भाई ने मुनिदीक्षा ली थी। देहली और अम्बाला के शास्त्रार्थों में मक्खनलाल जी ने विरोधियों के लिखित व मौखिक उत्तर देकर 'वादीभकेसरी' की उपाधि प्राप्त की थी। चा. च. आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के संघ पर राजाखेड़ा में आए संकट को आपने अपने बुद्धि-चातुर्य से सुलझाया था।

डॉ. महेन्द्रकुमार 'मनुज' : वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त 'मनुज' उपनाम से लिखने वाले डॉ. महेन्द्र

[illegible]

कुमार ने आचार्य कुन्दकुन्द के अष्टपाहुड पर शोधकार्य कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। यू.जी.सी. की अनेक शैक्षणिक योजनाओं से आप जुड़े रहे हैं। सम्प्रति कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में शोधाधिकारी हैं और एक वृहद् प्रोजक्ट पर कार्य कर रहे हैं।

श्री महेन्द्रकुमार 'मानव' : म.प्र. के प्रख्यात राजनेता, कुशल पत्रकार, सजग साहित्यकार, सहृदय समाजसेवी और राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्मठ सिपहसालार श्री महेन्द्र कुमार मानव का जन्म छतरपुर में 1927 ई. में हुआ। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में मानव जी ने हिस्सा लिया और 10 माह होशंगाबाद व जबलपुर जेलों में बंद रहे। देश की स्वाधीनता के बाद आप छतरपुर नगरपालिका के सदस्य और विन्ध्य प्रदेश के पहले शिक्षा और बाद में वित्त एवं समाजसेवा मंत्री बने। उन दिनों आप पूरे भारत में सबसे छोटी उम्र के मंत्री थे। जैन समाज के कार्यक्रमों में आप समय समय पर भाग लेते रहे हैं। हाल ही में आपके अभिनन्दन ग्रंथ का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ है। जो लगभग 650 पृष्ठ का है।

पं. मोहनलाल शास्त्री 'काव्यतीर्थ' : 'सरल जैन ग्रन्थ भण्डार' के माध्यम से जैन साहित्य के प्रकाशन द्वारा जैन धर्म की महती प्रभावना करने वाले पं. मोहनलाल शास्त्री काव्यतीर्थ का जन्म 1914 ई. में बरायठा (सागर) में हुआ। आरम्भ में आपने प्रतिष्ठा और वैद्यक का कार्य किया। आपने जैन परीक्षालयों में निर्धारित पुस्तकों के परीक्षोपयोगी संस्करण तैयार कर एक अद्भुत कार्य किया। आपने अनेक विद्यालयों मे अध्यापन कार्य भी किया था। बाद में आप जबलपुर मे ही बस गए।

डॉ. रतनचंद जैन : 'जिनभाषित' पत्रिका के प्रधान सम्पादक, 'जैन दर्शन मे निश्चय और व्यवहार नय' जैसे चर्चित विषय पर शोधकार्य करने वाले रतनचंद जी का जन्म 1935 ई. में लुहारी (सागर) म.प्र. में हुआ। सागर में शिक्षा प्राप्त कर आपने शिक्षक के रूप में विद्यालय से विश्वविद्यालय तक का सफर तय किया और भोपाल वि.वि. के संस्कृत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर सम्प्रति भोपाल में स्थाई रूप से रह रहे हैं। अनेक छात्रों ने आपके निर्देशन मे शोध उपाधियाँ प्राप्त की हैं। अनेक सेमिनारों का संचालन-आयोजन आपने किया है। 'यापनीय सम्प्रदाय' के विषय में दि. जैन आचार्यों पर जब कुछ कटाक्ष किये गए तो उनका सप्रमाण उत्तर देने के लिए आपने कार्य प्रारम्भ किया। विगत लगभग 3-4 वर्षों से आप इसी पुस्तक के लेखन में संलग्न हैं।

डा. (श्रीमती) रमा जैन : पूज्य गणेश प्रसाद जी 'वर्णी' के साहित्य की सुरभि सर्वत्र बिखेरने वाले डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर जैन साहित्य को महनीय योगदान देने वाली रमा जी ने हिन्दी मे शोधकार्य किया। म. प्र. के शासकीय महाविद्यालयों में प्राध्यापिका के रूप में अपनी सेवायें देकर आप सम्प्रति छतरपुर में रह रही हैं। अनेक सामाजिक और धार्मिक संगठनों से जुड़ी रमा जी अपने लेखन के माध्यम से सर्वत्र जानी जाती हैं। वे वीर महिला सगठन की मत्री हैं।

ब्र. राकेश जैन : 'जैन विश्वकोष' परियोजना के प्राण ब्र. राकेश जी का जन्म सागर में हुआ। आचार्य विद्यासागर जी महाराज के शिष्य राकेश जी भाग्योदय, सागर में एक 'नेशनल जैन लाइब्रेरी' की स्थापना में कटिबद्ध हैं। वे वहीं रहकर 'जैन विश्वकोष' पर कार्य कर रहे हैं। प्रवचनसार जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों का आपने सम्पादन किया है। भाग्योदय में उन्हें कभी भी कम्प्यूटर पर कार्य करते देखा जा सकता है।

श्री रामजीत जैन एडवोकेट : वकालत जैसे पेशे में रहकर भी जैन साहित्य की श्रीवृद्धि में महनीय योगदान देने वाले रामजीत जी जैन एडवोकेट का जन्म 1923 ई. में कुरचितरपुर (आगरा) में हुआ। बाद में आप ग्वालियर प्रवासी हो गए। जैन साहित्य का इतिहास पढ़ने और लिखने की ऐसी लगन लगी कि लगभग सभी जातियों का इतिहास आपने लिख डाला। इनमें प्रमुख हैं गोलालारे, जैसवाल, खरौआ लवेंचू आदि। गिरनार माहात्म्य, सोनागिर तीर्थ आदि पुस्तकें भी लिखी हैं।

तटस्थ और निष्पक्ष लेखन पत्रकारिता का महत्त्व धर्म है और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता सम्पादक का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

गोपाचल को प्रसिद्धि दिलाने और उसकी ओर सरकार/समाज का ध्यान आकृष्ट करने के लिए काफी कार्य किया और लेख आदि लिखे। अनेक पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया जा चुका है।

डा. (श्रीमती) रुक्मणि जैन : हरिवंश पुराण पर शोधकार्य करने वाली रुक्मणि जी का जन्म 1930 ई. में बुलन्दशहर (उ.प्र.) में हुआ। मुरादाबाद से बी.ए. तथा एम.ए. परीक्षायें पास कीं। 1956 में आप बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छिन्दवाडा में व्याख्याता हुईं। उसके बाद शासकीय संस्कृत महाविद्यालय रायपुर में अनेक वर्षों तक अध्यापन कार्य किया और प्रभूत कीर्ति अर्जित की।

श्रीमती रूपवती 'किरण' : ग्यारह वर्ष की अल्पवय से ही कविता और फिर, नाटक, एकांकी कहानियाँ आदि लिखकर जैन साहित्य-संस्कृति की सेवा करने वाली रूपवती किरण ने आरा-विद्यालय में शिक्षा पाई। विवाह होकर वह नागपुर से जबलपुर आईं। गम्भीर आर्थिक संकटों से घिरने पर भी धैर्य नहीं छोड़ा। आपने सांध्यकालीन धार्मिक पाठशालायें स्थापित करवाई। जबलपुर महिला पुस्तकालय की स्थापना एक नवीन और अनूठा प्रयोग था। आपकी सहस्राधिक रचनायें प्रकाशित हुई हैं। 'सन्मति सन्देश' के तो लगभग हर अंक में आपकी रचनायें छपीं। समाज से आपने कभी कोई अपेक्षा नहीं की। आज आवश्यकता है आपकी सभी रचनाओं का संकलन कर ग्रन्थावली प्रकाशन की। हो सकता है कि कोई जैन अन्वेषी यह काम कर डाले। 'जैन दर्शन' नाम से आपका एक निबन्ध संग्रह भी छपा है।

प्रो. एल.सी. जैन (डॉ. लक्ष्मीचंद जैन) : भारतीय गणित के साथ ही जैन गणित के सुविख्यात विद्वान, प्रो. एल.सी. जैन के नाम से प्रसिद्ध श्री लक्ष्मीचंद जी का जन्म सागर में हुआ। सागर और जबलपुर में शिक्षा-दीक्षा के बाद आपने स्वाध्यायी छात्र के रूप में गणित में एम.ए. किया। अनेक वर्षों तक शासकीय महाविद्यालयों में प्राध्यापक तथा प्राचार्य के पदों को सुशोभित कर सेवानिवृत्ति के बाद आप स्थाई रूप से जबलपुर में रह रहे हैं। गणित पर आपकी अनेक महत्वपूर्ण और बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने जैन गणित के लौकिक एवं लोकोत्तर रूपों को पृथक-पृथक रूप में वर्णित किया और वर्तमान 'समुच्चय सिद्धान्त' के बीज जैन शास्त्रों में पाये। भारत तथा विश्व के गणितज्ञों का ध्यान आपने जैन गणित की ओर आकृष्ट कराया। आपके शताधिक शोध लेख तथा अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। अनेक छात्र आपके निर्देशन में पीएच.डी. आदि उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं।

श्री लक्ष्मीचंद 'रसिक' : 'रसिक' उपनाम से कवितायें लिखकर जिन शासन की महिमा को दिग्दिगंत व्यापिनी बनाने वाले लक्ष्मीचंद जी का जन्म 1932 ई में रायसेन (म.प्र.) में हुआ। आपने विदिशा में अध्ययन किया और वहीं शिक्षक बन गए। सागर वि.वि. से आपने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। आपकी कवितायें रसीली होती थीं, मंच पर जब आप कवितायें सुनाते थे तो या तो सन्नाटा छा जाता था या तालियों की गड़गड़ाहट। सभी जैन पत्रों में आपकी कवितायें छपीं। 'विदिशा के बोल', 'पावसगीत' 'स्वरूप' आदि संग्रहों में आपकी कवितायें चर्चित रही थीं।

पं. लक्ष्मीचंद 'सरोज' : रतलाम (म.प्र.) में 'दिगम्बर जैन मण्डल' की स्थापना करने वाले तथा शताधिक पत्र-पत्रिकाओं में अपनी कविताओं का प्रकाशन कराकर जैन धर्म-संस्कृति का फैलाव करने वाले पं. लक्ष्मीचंद जी का जन्म 1925 ई. में सिलगन में हुआ। बाद में आप रतलाम प्रवासी हो गए और वहीं से पत्रकारिता में जुड़े। चेतना (दैनिक) का सम्पादन व प्रकाशन किया। सावधान, जनघोष पत्रों से भी आप जुड़े रहे। 'जैन मित्र', 'वीर' में नियमित रूप से लिखने वाले सरोज जी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं।

पं. लालचंद राकेश : आचार्य विद्यासागर जी महाराज के साथ ही अनेक दिगम्बर साधकों के जीवन चरितों के लेखक पं. लालचंद जी का जन्म 1934 ई. में सिलगन (झांसी) उ. प्र. में हुआ। आपका लालन पालन किसलवास में मामा के घर हुआ। म.प्र. के अनेक विद्यालयों में शिक्षण कार्य करने के उपरान्त आप प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त होकर वर्तमान में

[illegible]

गंजबासौदा (विदिशा) म.प्र. में निवास करते हुए जैन साहित्य की सेवा मे संलग्न हैं। आपने आचार्य विद्यासागर उपाध्याय ज्ञानसागर, मुनिश्री सुधासागर जी महाराज के जीवन चरित लिखे हैं, अनेक पत्र पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल से जुड़े हैं तथा लगभग सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख/कवितायें प्रकाशित होती रहती है।

पं. वंशीधर जी 'न्यायालंकार' : स्याद्वाद महाविद्यालय के प्रथम स्नातक पं. वंशीधर का जन्म 1890 ई. में महरौनी में हुआ। गुरू गोपालदास वरैया के सान्निध्य में रहकर आपने न्यायालंकार जैसी विशिष्ट उपाधियाँ प्राप्त कीं और वहीं आपने गोम्मटसार, तत्वार्थवार्तिक जैसे ग्रन्थों का अध्यापन किया। बाद में आप जबलपुर में रहे फिर इन्दौर मे रहे और पं. वंशीधर जी इन्दौर वाले के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। इन्दौर में आप महाविद्यालय में प्राचार्य पद पर रहे। तत्कालीन जैन विद्वानों में असीमित ख्याति प्राप्त पं. जी को शिक्षा के क्षेत्र में जितना यश मिला उतना अन्य किसी विद्वान को नहीं मिल सका। जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान पं. कैलाशचंद जी शास्त्री, पं जगन्मोहन लाल जी, पं. फूलचंद जी सिद्धान्ताचार्य, प के भुजबली शास्त्री आदि आपके शिष्य थे। संयम की सीढ़ियॉं चढ़ते हुए प. जी ने सातवीं प्रतिमा स्वीकार की थी घर पर ही सल्लेखना पूर्वक आपका पंडितमरण हुआ था।

पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य : भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल यात्रा करने वाले पं. वशीधर जी व्याकरणाचार्य का जन्म सोंरई (ललितपुर) उ.प्र. मे हुआ। सागर वाराणसी आदि मे आपने अध्ययन किया और 'जैन जगत के गांधी' नाम से विख्यात पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी की छत्र छाया में रहे। म प्र. के बीना शहर को आपने अपनी कर्मस्थली बनाया और एक स्वतंत्र व्यवसायी और विचारक के रूप में विख्यात हुए। आप अनेक वर्षों तक अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष रहे थे। 1942 के आन्दोलन में आप सागर तथा नागपुर की जेलो में बन्द रहे थे। अनेक पत्रो का भी आपने सम्पादन किया था। पं. बालचंद जी शास्त्री, पं. डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया आदि विद्वत् विद्वान् आपके परिवार मे उत्पन्न हुए थे। 1974 में भारत के उपराष्ट्रपति श्री वी.डी. जत्ती द्वारा आपका सम्मान किया गया था। आपको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर उपकृत जैन समाज ने आपका सम्मान किया था। 'जैन तत्वमीमांसा' आपकी चर्चित कृति है।

पं. विमलकुमार सौरया : मिलनसार व्यक्तित्व के धनी ख्यातिलब्ध प्रतिष्ठाचार्य 'सौरया' उपनाम से विख्यात पं. विमलकुमार का जन्म मंदिरो की नगरी मड़ावरा में 1940 ई. में हुआ। 'वीतराग वाणी' के संस्थापक-सम्पादक पं. जी अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद् से वर्षो से जुड़े रहे है व उसके संयुक्त मंत्री-उपाध्यक्ष आदि महत्वपूर्ण पदों पर रहे है। 1975 में विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर चुके तथा शताधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें विधान आदि के माध्यम से धर्म प्रभावना करने वाले प. जी स्थाई रूप से टीकमगढ़ में ही रह रहे हैं। आप अनेक सम्मानो से सम्मानित किये जा चुके हैं।

डॉ. वीरेन्द्रकुमार जैन : 'तिलकमजरी का आलोचनात्मक अध्ययन जैसे गहन विषय पर शोधकार्य करने वाले वीरेन्द्र कुमार का जन्म विद्वानों की खान कहे जाने वाले रीठी ग्राम में 1936 ई. में हुआ। सागर वि.वि. से शिक्षा प्राप्त कर आप म.प्र. की शासकीय सेवा मे आये और गुना, छतरपुर आदि के शासकीय महाविद्यालयों में असि. प्रोफेसर/प्राचार्य आदि पदो पर रहे। वर्णी स्नातक परिषद की स्थापना में आपका विशिष्ट योगदान था।

पं. शिखरचंद प्रतिष्ठाचार्य : अपने जीवन में शताधिक पचकल्याणक प्रतिष्ठायें कराने वाले प्रतिष्ठाचार्य पं. शिखरचंद जी का जन्म ग्राम वछरौली (अमाइन) म.प्र. में हुआ। आपकी शिक्षा श्री गो. दि. जैन सि. विद्यालय, मोरेना (म.प्र.) में हुई। आपने पं. झग्गनलाल जी से प्रतिष्ठा कार्य सीखा। अपने समय के सिद्धहस्त प्रतिष्ठाचार्य शिखरचंद जी वाणीभूषण, प्रतिष्ठा दिवाकर, प्रतिष्ठा तिलक आदि उपाधियों से सम्मानित हुए थे।

पं. सत्यन्धरकुमार सेठी : जैन समाज में 'मृत्युभोज' जैसी कुरीतियों से लोहा लेने वाले पं. सत्यन्धर कुमार का जन्म 1910. ई. में भादवा (राज.) में हुआ। बाद में आप उज्जैन प्रवासी हो गए। पं. चैनसुखदासजी के सान्निध्य में रहकर सेठी

वात्सल्य या प्रेम का उद्भव करुणा से होता है। जहाँ करुणा नहीं, वहाँ प्रेम भी नहीं।

जी समाज सुधारक बने। राष्ट्रीय एकता के लिए आपने जमकर काम किया। बंगीय अहिंसा परिषद् की स्थापना की। विघ्न संतोषियों द्वारा आपका अनेक बार बहिष्कार किया गया किन्तु आप विचलित नहीं हुए। महिलाओं व विद्यार्थियों के लिए आपने सहायता फण्ड की स्थापना की थी। आपके लिखे लेख क्रान्तिकारी होते थे। समाज में भूचाल सा आ जाता था, सभी जैन पत्र पत्रिकाओं में आपके लेख छपते थे। उज्जैन में एक संग्रहालय की स्थापना आपने की थी। आप अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध थे। कृतज्ञ समाज ने अभिनन्दन ग्रन्थ भेंटकर आपका सम्मान किया था।

पं. सनतकुमार विनोदकुमार 'रजवांस' : भारतीय समाज में जैसे राम लक्ष्मण की जोड़ी प्रसिद्ध है वैसे ही जैन प्रतिष्ठाचार्यों/विद्वानों में पं. सनतकुमार विनोदकुमार की जोड़ी प्रसिद्ध है। आपके पूज्य पिताश्री प्रतिष्ठा कार्यों से जुड़े थे। रजवांस (सागर) निवासी सनत और विनोद जी एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों को एक ही मच पर देखा जाता है। सनत जी जहाँ अध्यात्म पूर्ण संगीतमयी स्वर लहरियों के द्वारा अपना स्थाई प्रभाव जमाते हैं वहाँ विनोदजी अपने शुद्ध उच्चारण और सुमधुर ध्वनियों में विधि-विधानपूर्वक प्रतिष्ठाकार्य कराकर अपनी छाप छोडते हैं। भ्रातृद्वय के लेख लगभग सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में देखे जा सकते हैं। आप दोनों के द्वारा हाल ही मे लिखित/सम्पादित/प्रकाशित सार्थ सिद्धचक्र विधान ने तो धूम मचा दी है। पहली बार इतने बड़े विधान का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। इससे पूर्व आपकी सभी पूजाओ के अर्थ वाली पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

ब्र. सन्दीप 'सरल' : बीना (म.प्र.) में अनेकान्त ज्ञान मन्दिर की स्थापना कर श्रुत संरक्षण के महान कार्य में लगे ब्र. सन्दीप 'सरल' जी ने शास्त्र संरक्षण हेतु अनेक स्थानों की यात्रायें कर वहाँ पड़े असुरक्षित हस्तलिखित/मुद्रित ग्रन्थों को लाकर अनेकान्त ज्ञान मंदिर में एकत्रित किया है तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थों की फिल्में तैयार कराई है। भैय्या जी ने 'अनेकान्त ग्रन्थावली' नाम से पुस्तक सूची प्रकाशित कर अपने यहाँ शोधार्थियो को आमन्त्रित किया है। अपने आपको 'जिनवाणी शिशु' कहने वाले भैय्या जी से बहुत आशायें है।

पं. सुमेरुचंद दिवाकर : सुमेरू की तरह अचल व्यक्तित्व वाले 'जैन शासन', 'चारित्र चक्रवर्ती' जैसी महनीय कृतियों के सर्जक 1921-22 में असहयोग आन्दोलन के समय विदेशी सत्ता द्वारा संचालित अंग्रेजी हाईस्कूल का त्याग कर जैन गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले, जबलपुर से बी.ए. तथा नागपुर से एल.एल.बी. जैसी महत्वपूर्ण उपाधि प्राप्त करने वाले (बाल) ब्रह्मचारी पं. सुमेरचंद जी दिवाकर का जन्म सिवनी (म.प्र.) के सम्पन्न जैन परिवार में 1905 ई. मे हुआ। वर्षो तक जैन गजट के सम्पादक रहे पं. जी ने अपना अधिकांश समय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के साथ बिताया, उसी की फलश्रुति 'चारित्र-चक्रवर्ती' ग्रन्थ है। इसमे चा च. आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का प्रामाणिक जीवन और विहार वृत्त है विहार के समय की छोटी से छोटी घटना का भी इसमें वर्णन है। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने आपको 'धर्म दिवाकर' की उपाधि से सम्मानित किया था। जापान में सम्पन्न सर्वधर्म सम्मेलन मे आपने जैन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। अन्य कई देशों की यात्रा आपने की थी। रामटेक में स्थापित गुरुकुल के संस्थापकों में आप भी एक थे।

डॉ. सुरेन्द्र 'भारती' : अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद के मत्री, पार्श्वज्योति के प्रधान सम्पादक, महाकवि आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार, स्वयंभू पुरस्कार आदि से सम्मानित, पासणाहचरिउः एक समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर शोधकार्य करने वाले सुरेन्द्र कुमार का जन्म 1963 ई. में मड़ावरा मे हुआ। आपकी शिक्षा बिजनौर (उ.प्र.) में हुई। वहीं से आपने एम.ए. , पीएच.डी. उपाधियाँ प्राप्त कीं। बाद में आप म.प्र. शासन की सेवा में आ गए और सम्प्रति बुरहानपुर (म.प्र.) में हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं। आपने जैन हैप्पी स्कूल की स्थापना की है। साथ ही मुनि सुधासागर शोध ग्रन्थालय की भी स्थापना की है। आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.) : आई.ए.एस. होकर प्रशासनिक पदों पर रहते हुए भी जैन धर्म, साहित्य और संस्कृति

रक्षाबन्धन की राखी का हर धागा प्रेम या करुणा में भीगा हुआ होना चाहिए।

की महती सेवा करने वाले सुरेश जी का जन्म नैनागिर में हुआ। आपने सागर में शिक्षा प्राप्त की। जिलाधीश आदि पदों पर रहते हुए वर्तमान में आप मध्यप्रदेश के चुनाव आयुक्त पद पर आसीन हैं और भोपाल में स्थाई रूप से रह रहे हैं। आ. विद्यासागर प्रबन्ध संस्थान के निदेशक आदि अनेक पदों पर रहकर जैन धर्म की महनीय सेवा कर रहे हैं। अल्पसंख्यकों के अधिकार-कर्तव्य पर आपकी महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हुई है। जैन पत्र पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। 'मैत्री समूह' के माध्यम से आप छात्रों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। नैनागिर में इन्टर कालेज की स्थापना की है। सम्प्रति 'जैन लॉ' के सन्दर्भ में विशिष्ट पुस्तक लेखन में संलग्न हैं।

ब्र. सुरेश- मलैया जिनेश मलैया : इन्दौर में पंचबालयति मंदिर की स्थापना कर जैन धर्म संस्कृति साहित्य के विकास हेतु वहीं से गतिविधियाँ चलाने वाले भातृद्वय ब्र. सुरेश व जिनेश मलैया का जन्म सागर जिले में हुआ। 'संस्कार सागर' का प्रकाशन और सम्पादन आपका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। पंचबालयति ने अपनी शैशवावस्था में ही लगभग 100 पुस्तकें प्रकाशित कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। ब्र. होते हुए भी आपकी चर्या मुनियों जैसी है। पंचबालयति में पुस्तक विक्रय केन्द्र सी.डी. केन्द्र आदि चल रहे हैं। ब्र. राजेश भैय्या, अजित भैय्या, नितिन भैय्या आदि सभी मिलकर जो कार्य कर रहे हैं। वह जैन संस्कृति के विकास में मील का पत्थर सिद्ध होगा।

श्री सुरेश 'सरल' : आचार्य विद्यासागर जी महाराज के साथ अनेक दि० जैन मुनियों का जीवन चरित्र कथा के रूप में लिखने वाले सरल जी का जन्म 1942 ई. में जबलपुर (म.प्र.) में हुआ। आप म.प्र. शासन में इंजीनियर होते हुए भी सहृदय लेखक और साहित्यकार हैं। जैन संस्कृति को आधार बनाकर आपने अनेक कहानियाँ/लेख लिखे हैं। लगभग सभी जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख छपते हैं। जीवनियाँ लिखने में तो आपने कीर्तिमान स्थापित कर दिया है।

डॉ. स्नेहरानी जैन : सागर विश्वविद्यालय के 'भैषज विज्ञान विभाग' के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर 'ब्राह्मी लिपि' की खोज में लगी डा. स्नेहरानी जैन सम्प्रति श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि पर्वत के अनपढ़े शिलालेखों की खोज कर रही हैं। तपती धूप में भी अकेले ही काम करते हुए हमने उन्हें देखा है। जैन वैज्ञानिक विषयों पर आपके लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन : साहित्य की सर्वोच्च उपाधि महामहोपाध्याय से अलंकृत, सरल हृदय, सुयोग्य शिक्षक, कर्मठ समाज सुधारक, आजादी के दीवाने डॉ. हरीन्द्रभूषण का जन्म 16 अगस्त 1921 ई. को नरयावली जिला सागर (म.प्र.) में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर आप स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी आये। यह विद्यालय उन दिनों क्रान्तिकारियों का गढ़ था। विद्यालय के लगभग सभी छात्र क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न थे। 1939 से ही आपने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। 3 माह तक आप बनारस जेल में रहे। अनेक पुस्तकों के रचयिता डॉ. जैन के लगभग 60 शोध निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आप अनेक वर्षों तक विद्वत् परिषद के मंत्री रहे।

डॉ. हीरालाल जैन : 'डाक्टर ऑफ लॉ' की उपाधि से सम्मानित धवलादि आगम ग्रन्थों के सम्पादक/उद्धारकर्ता, जैन साहित्य-समुद्र के पारगामी हीरालाल जी का जन्म 1899 ई. में गागई (नरसिंहपुर) में हुआ। एम.ए. एल.एल.बी. आदि उपाधियाँ प्राप्त डॉ. सा. ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के उद्धार का बीडा उठाया और उसमें आशातीत सफल हुए। आप अमरावती आदि के कालेजों में प्रोफेसर रहे। जबलपुर में भी अनेक वर्षों तक रहे। पी.एल. वैद्य जैसे अन्वेषक आपके शिष्य रहे हैं। अ. भा. दि. जैन परिषद के खण्डवा अधिवेशन के आप अध्यक्ष थे। धवलादि ग्रन्थों के सम्पादन में आपने विशिष्ट सहयोग दिया था। आपकी अनेक पुस्तकें सुप्रसिद्ध संस्था 'भारतीय ज्ञानपीठ' से प्रकाशित हैं। म.प्र. शासन साहित्य परिषद के अनुरोध पर आपने 'जैन धर्म का उद्‌भव और विकास', 'जैन कला', 'जैन दर्शन' आदि पर सारगर्भित भाषण दिये थे वे 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' नाम से प्रकाशित और चर्चित हैं। कृतज्ञ समाज ने विशाल अभिनन्दन/स्मृति ग्रन्थ निकाल कर आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है।

पं. हीरालाल 'सिद्धान्त शास्त्री' : षट्खण्डागम भाग 1-6 कषायपाहुडसुत, पंच संग्रह, वसुनन्दी श्रावकाचार, जिन सहस्रनाम, धर्मामृत, प्रमेय रत्नमाला आदि प्राचीन एवं बीसवीं सदी में शुष्क होती संस्कृत (जैन) काव्यधारा को प्रवाहमान करने वाले आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के वीरोदय, दयोदय सुदर्शनोदय आदि नवीन ग्रन्थों की व्याख्या/सम्पादन करने वाले पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री का जन्म संवत् 1961 में साढूमल (उ.प्र.) में हुआ। उन्होंने महाराष्ट्र, राजस्थान, म.प्र., उ.प्र., आदि को अपनी सेवायें दीं। आपका अध्ययन, इन्दौर, जबलपुर आदि के गुरुकुलों में हुआ। आपका पुस्तक संग्रह अनूठा था। विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 147 के अनुसार आपके परिवार में 7 विद्वान पं. हुए। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित, कुशल सम्पादक, उच्चकोटि के विद्वान, प्रभावोत्पादक प्रवचनकर्ता, महानतम साहित्यकार अनुवादक एवं विशिष्ट ललित निबन्धकार पं. जी ने जैसी जैन साहित्य की सेवा की, इतिहास में दूसरा उदाहरण शायद ही मिले।

पं. ज्ञानचन्द्र जैन 'स्वतन्त्र' : लगभग पचास पुस्तकें लिखकर माँ जिनवाणी के भण्डार को भरने वाले, अनेक वर्षो तक जैन मित्र के सम्पादक रहे, अध्यापन, सम्पादन, सामाजिक सेवा, धार्मिक सेवा, वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक सिद्धचक्र विधानादि में भाषण आदि सभी कलाओं में दक्ष ज्ञानचंद्र जी का जन्म 1913 ई. में बहादुरपुर (गुना) में हुआ। जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये, सभी में आप अडिग रहे। भारत छोड़ो आन्दोलन में भी आपने सक्रिय भाग लिया था। सभी जैन संस्थाओं से जुड़े रहे। पचास पुस्तकों के अतिरिक्त आपके हजारों लेख प्रकाशित हुए। अनेक पुस्तकों का आपने सशोधन/सम्पादन किया। आप गंजबासौदा प्रवासी हो गए और अंतिम समय तक वहीं रहे। आपकी सुपुत्री डा. आराधना जैन आपके कार्यो को आगे बढ़ा रही हैं।

मध्य प्रदेश में जन्म लेने वाले, कुछ समय रहने वाले, स्थाई रूप से रहने वाले या जिनके परिचय उपलब्ध नहीं हो सके ऐसे अन्य सम्मानीय विद्वान हैं– ब्र. अजित भैय्या, पंचबालपति मंदिर, इन्दौर, पं. अभय कुमार जैन, बीना, पं. अभय चन्द्र जैन, भानगढ़, पं. अमरचंद प्रतिष्ठाचार्य, शाहपुर, पं. अमरचंद शास्त्री, कटनी, पं. अमृत लाल प्रतिष्ठाचार्य, दमोह, पं. अमृत लाल फणीन्द्र, टीकमगढ़, पं. अमृत लाल चंचल, पं. अशोक कुमार रवि प्रियदर्शी, पं. उदयचंद जैन प्रतिष्ठाचार्य, सागर, डा. कपूरचंद जैन, बरधुवां (दतिया), पं. कमल कुमार न्यायतीर्थ, कलकत्ता, श्रीमती कमलाबाई जैन, ललितपुर, पं. किशोरी लाल शास्त्री, मालथौन, पं. कुन्दन लाल जैन, दिल्ली, डा. के. के. जैन, बीना, डा. कोमल चंद जैन, वाराणसी, डा. कृष्णा जैन ग्वालियर, पं. क्षेमंकर शास्त्री, मालथौन, पं. खुन्नीलाल (पं. ज्ञानानन्द) भदौरा (टीकमगढ़), पं. खुशालचंद सिद्धान्त शास्त्री, करौंदी (दमोह), पं. खूबचंद न्यायतीर्थ, मड़ावरा, पं. राजकुमार बाबूलाल शहा, बड़वानी (इन्दौर), पं. गुलजारी लाल चौधरी स्वतंत्रता सेनानी, केसली (सागर), पं. गुलजारी लाल सौरभ मड़ावरा, पं. गुलाबचंद आदित्य, भोपाल, पं. गुलाबचंद एम.एससी, मवई, पं. गुलाबचंद वैद्य, ढाना, डा. गुलाबचंद चौधरी, सिलोण्डी (जबलपुर) वैशाली, पं. गेंदालाल सिंघई, चन्देरी, डा. गोकुल चंद जैन, वाराणसी, पं. गोपीलाल अमर, दिल्ली, पं. गोपीलाल गोधा, प्रतिष्ठाचार्य, लश्कर (ग्वालियर), पं. घनश्यामदास शास्त्री, देवराहा (जतारा), पं. घनश्यामदास नायक, लुहर्रा, पं. चन्द्रकुमार शास्त्री, सरावन (सागर), पं. चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर', गुना, पं. चुन्नीलाल शास्त्री, परसोन, पं. छोटेलाल शास्त्री, सागर, पं. जमुना प्रसाद शास्त्री, टनी, पं. जयकुमार शास्त्री, सागर, डा. जयकुमार जैन, पिपरा (शिवपुरी), पं. जयकुमार शास्त्री प्रचारक, मोरेना, पं. जयन्ती प्रसाद जैन, खतौली, पं. जयसेन जैन, इन्दौर, पं. जानकी प्रसाद शास्त्री, केरवाना (सागर), ब्र. जिनेश भैय्या, जबलपुर, पं. तनसुख लाल काला, बाबू दयाचंद गोयलीय, पं. दयाचंद शास्त्री, उज्जैन, पं. दौलतराम मित्र, गरौठ, पं. धन्यकुमार जैन, कटनी, पं. धर्मचंद विशारद, शाहपुर, पं. धर्मदास न्यायतीर्थ बड़नगर, पं. नन्हेंलाल शास्त्री, एरोरा, पं. नन्हेंलाल शास्त्री, राजाखेड़ा, डा. नरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद, ब्र. नितिन जैन, पंचबालयति, इन्दौर, डा. नेमीचंद ज्योतिषाचार्य, आरा, पं. नेमीचंद साहित्याचार्य पलेह (सागर), पं. नेमीचंद साहित्याचार्य, दैलवारा (झांसी), पं. पदमचंद जैन प्रतिष्ठाचार्य, पानीपत, पं. पन्नालाल न्यायतीर्थ, साठेगांव (हरदा), पं. पन्नालाल जैन मच्छरदानी वाले, रीवां, पं. पन्नालाल विशारद बहेरिया (सागर),

पं. पन्नालाल प्रतिष्ठाचार्य, ईसागढ़ (चंदेरी), पं. परमानन्द न्यायतीर्थ, पं. पवन कुमार सिंघई, सागर, पं. पवन कुमार दीवान, प्रतिष्ठाचार्य, मोरेना, पं. पूर्णचंद्र पूर्णेन्दु, पड़वार (सागर), पं. पूर्णचन्द्र सुमन दुर्ग, पं. प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली, डा. प्रकाशचंद जैन, सागर, पं. प्रकाश सिंघई, केरवाना (सागर), डा. प्रकाशचंद जैन, इन्दौर, ब्र. प्रदीप पीयूष, जबलपुर, डा. प्रभा जैन, जबलपुर, पं. प्रभुदयाल प्रेमी, पोहरी (शिवपुरी), पं. प्रशान्त जी, धनगुवां, पं. प्रेमचंद सिद्धान्त शास्त्री, करैया (सागर), डा. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर, डा. फूलचंद प्रेमी, वाराणसी, पं. बलदेव प्रसाद प्रतिष्ठाचार्य, ककरवाहा (टीकमगढ़), पं. बाबूलाल जमादार, बड़ौत, पं. बाबूलाल फणीस, उन पावागिरि, पं. बाबूलाल फणीस, देवरान (झांसी), पं. बाबूलाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, चांदपुर (सागर), पं. बाबूलाल शास्त्री बरुवाहा, पं. बाबूलाल शास्त्री 'आकुल', दलपतपुर, पं. बाबूलाल सुधेश, मवई (टीकमगढ़), पं. बाबूलाल शास्त्री, खुरई, पं. बाबूलाल डेरिया, होशंगाबाद, पं. बालकृष्ण शास्त्री, कुम्हारों (दमोह), पं. बालमुकुन्द शास्त्री, मुरैना, पं. भगवती प्रसाद बरैया, करहिया, पं. भगवानदास शास्त्री, सिलगन, पं. भगवानदास शास्त्री, सरधना, पं. भगवानदास शास्त्री, साढूमल, डा. भागचंद भास्कर नागपुर, पं. भुवनेन्द्र कुमार विश्व, जबलपुर, पं. भुवनेन्द्र कुमार, खुरई, पं. भुवनेंद्र कुमार, बांदरी वाले, सागर, पं. भैय्यालाल सहोदर मालथौन, पं. भैय्यालाल शास्त्री, सिलावन, पं. भैय्या शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, बामौरकला (शिवपुरी), पं. मनोहर लाल शास्त्री, दमोह, पं. मनोहर लाल शास्त्री, कुरवाई, डा. महेन्द्र कुमार जैन, भगवां, पं. महेन्द्र कुमार शास्त्री, प्राचार्य, मुरैना, डा. महावीर सरन जैन, जबलपुर, पं. माणिकचंद शास्त्री, शाहपुर, श्री मिश्रीलाल एडवोकेट, गुना, पं. मुन्नालाल काव्यतीर्थ, मालथौन, पं. मुन्नालाल रांधेलीय, पाटन, डा. मुन्नी पुष्पा जैन, वाराणसी, पं. मूलचंद शास्त्री, सनावद, साहित्यकार मूलचंद वत्सल, प. मूलचंद शास्त्री, मालथौन वाले, श्री महावीर जी, पं. मोतीचंद शास्त्री, सनावद, पं. वैद्य मोतीलाल आयुर्वेदाचार्य, खुरई, सिंघई मोतीलाल विजय, कटनी, पं. मोतीलाल सुराना, रामपुरा (मन्दसौर), पं. यशवंत कुमार शास्त्री, दमोह, श्री यशपाल जैन, दिल्ली, पं. रतनलाल जैन, इन्दौर, पं. रतनचंद शास्त्री, बामौर कला (शिवपुरी), पं. रतनचंद रत्नेश, लखनादौन, पं. रतनचंद बांझल, कारी (टीकमगढ), पं. रतनचंद शास्त्री, मवई (टीकमगढ़), डा. रमेशचंद जैन दरहाई (जबलपुर), पं. रमेशचंद शास्त्री, खुरई, पं. रवीन्द्रनाथ शास्त्री, दिल्ली, पं. राजधरलाल, इटारसी, डा. राजाराम जैन, आरा, प. राजेन्द्र कुमार कुमरेश, चन्देरी, ब्र. राजेश भैय्या, पंचबालयति, इन्दौर, डा. वन्दना जैन, शाजापुर, पं. वर्धमान सोंरया, प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ, पं. विजय कुमार शास्त्री, सरधना, डा. विजय कुमार जैन, लखनऊ, डा. विद्यावती जैन, आरा, पं. विरदीचंद जैन, सिवनी, डा. विमला जैन जबलपुर, पं. विहारी लाल मोदी, बड़ा मलहरा, डा. शान्तिलाल बालेन्दु, मन्दसौर, पं. शिखरचंद साहित्याचार्य, सागर, पं. शिखरचंद शास्त्री, लुहारी (सागर), डा. शीतलचंद जैन, सागर, डा. शीलचंद जैन, छिन्दवाड़ा, प्राचार्य श्रीचंद जैन, उज्जैन, पं. श्रीपाल दिवा, भोपाल, डा. श्रेयांस कुमार जैन, दुमदुमा (टीकमगढ़), डा. शेखर चंद जैन, अहमदाबाद, पं सरमन लाल शास्त्री, हस्तिनापुर, डा. सन्तोष कुमार जैन, सीकर, प्रो. सरोज कुमार, इन्दौर, डा. (श्रीमती) सरोज जैन, बीना, पं. सागर चंद बड़जात्या, ग्वालियर, पं. सिद्धिसागर, ललितपुर, डा. सुखनन्दन जैन, बड़ौत, डा. सुदर्शन लाल जैन, वाराणसी, पं. सुन्दर लाल शास्त्री गंजबासौदा, पं. सुन्दर कवि, पटेरा, वैद्य सुन्दरलाल, खैराना (सागर), डा. सुपार्श्व कुमार जैन, बडौत, पं. सुमति चंद शास्त्री, मुरैना, पं. सुमेर चंद कौशल, सिवनी, पं. सुरेन्द्र कुमार सिद्धान्त शास्त्री, बीना, डा. सुरेन्द्र कुमार जैन, बडा मलहरा, पं. सुरेन्द्र कुमार जैन, भगवां, डा. सुरेश चंद जैन, दिल्ली, पं. स्वरूप चंद जैन, दमोह, डा. हरिश्चन्द्र जैन, मुरैना, पं. हीरालाल कौशल, दिल्ली, डा. हुकुमचंद जैन, दिल्ली, पं. हुकुमचंद पंडवार (सागर)।

□

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। रोते हुए हँसना, हँसते हुए रोना-यह सदा से कायरों का काम है।

उत्तरप्रदेश के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

भारतवर्ष का उत्तरप्रदेश पुराकाल से जैन विद्याओं का प्रचार-प्रसार स्थल रहा है। अनेक तीर्थकरों के अनेक कल्याणकों से पावन इस भू-भाग पर उनके अनुयायी आचार्यो ने ससंघ विहार करके इसे गौरवान्वित किया है। विद्वान् हमेशा साधु एवं श्रावक के मध्य एक सेतु का कार्य करते हैं। अतः दोनों के मध्य उनकी महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। विद्वानों की सशक्त लेखनी, प्रवचननिष्ठा तथा उनकी आगमज्ञता का ही यह सुफल है कि आज भी निर्ग्रन्थ परम्परा में निर्बाधगतिता है तथा श्रावको में श्रावकत्वबोध का सर्वथा अभाव नहीं हो पाया है। प्रस्तुत आलेख में बीसवीं शताब्दी में उत्तरप्रदेश में अपना बहुमूल्य साहित्यिक एवं सामाजिक अवदान देने वाले विद्वानों की सपर्या को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। अज्ञानवश अनेक विद्वानों का समावेश इसमें नहीं हो सका है तथा सुविधा की दृष्टि से अकारादि क्रम में रखा गया है। इससे विद्वानों की वयोवृद्धता का ध्यान हम नहीं रख सके हैं, जिसका हमें खेद है।

डा. ब्र. अन्जु जैन—फिरोजाबाद में श्री निर्मल कुमार एवं सरला देवी के घर जन्मी कु. अन्जु जैन ने 1986 में आचार्य कुन्थुसागर जी से ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया तथा मुनि श्री अमित सागर जी से 1991 में सातवीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये। आपने संस्कृत, अर्थशास्त्र में एम. ए., पी. एच-डी, कामर्स एवं कम्प्यूटर कोर्स किया है। आपने आध्यात्मिक ग्रन्थो की शिक्षा ग्रहण करके सुभाषित रत्नावली एवं भोज चरित्र का हिन्दी अनुवाद, अनासक्त योगी का सम्पादन किया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में आपके आलेख आदि प्रकाशित होते रहते हैं।

श्री अनूपचन्द्र जैन एडवोकेट—फिरोजाबाद में 20 अगस्त 1942 ई. को जन्मे आप वकालत के व्यवसाय से जुड़े होने पर भी जैन विद्याओं में विशेष रुचि रखते हैं। आपने डी.जी.सी. (सिविल) के रूप में कार्य करके न्यायिक क्षेत्र में विशेष कीर्ति प्राप्त की है। तीर्थकर महावीर, सन्तसौरभ, जिनेन्द्र वर्णी स्मारिका, श्रमणरत्न, श्रवणबेलगोला डायरी, चारित्रचन्द्रिका, निजधर्मरहस्य तथा अन्य स्मारिका आदि के सम्पादन/लेखन आपकी प्रतिभा को प्रकट करते हैं। आप अनेक सामाजिक, शैक्षणिक एवं अन्य संस्थाओं के पदाधिकारी के रूप में समाज-सेवा मे संलग्न हैं।

पं. अमृतलाल शास्त्री—आपका जन्म 1919 ई. में बमराना जिला—झाँसी में हुआ था। सन् 1944 से 1959 तक श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में तथा बाद में 20 वर्ष तक संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में जैनदर्शन विभाग की सेवा करके आप 1979 ई. में सेवानिवृत्त हुए। चन्द्रप्रभचरित तथा तत्त्वसंसिद्धि आपकी अनूदित कृतियाँ हैं। 2001 ई. में वाराणसी मे आपका देहावसान हो गया। 1979 से 1997 तक 18 वर्ष आपने जैन विश्वभारती लाड़नूँ की ब्राह्मी विद्यापीठ को भी अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं।

श्री पं. उत्तमचन्द्र 'राकेश'—05 जनवरी 1926 ई को ललितपुर में जन्मे आपकी शिक्षा इन्दौर एवं मोरेना विद्यालयो में हुई। आपने आगरा वि. वि. से संस्कृत एवं हिन्दी में एम. ए. किया। 1952 ई. से आप वर्णी इण्टर कॉलेज ललितपुर में प्रवक्ता रहे तथा 1996 ई. में आपने अवकाश ग्रहण किया। सम्प्रति अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद् के उपाध्यक्ष हैं।

प्रो. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य—आपका जन्म म. प्र. के शिवपुरी जिला की खनियाधाना तहसील के पिपरौदा ग्राम में 01 अक्टूबर 1923 को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री प्राणसिंह था। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में आपका अध्ययन हुआ। का. हि. वि. वि. के जैन बौद्ध दर्शन विभागाध्यक्ष के रूप में आप सेवानिवृत्त हुए। आप्तमीमांसा तत्त्वदीपिका, स्वयंभूस्तोत्रतत्त्वदीपिका, स्याद्वाद और अनेकान्त, प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलन तथा न्यायकुमुदचन्द्र परिशीलन आपकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

बड़ों से मिली सीखें बड़े काम की होती हैं उन पर अमल करना चाहिए।

डॉ. कपूरचन्द्र जैन—1954 ई. में दतिया जिला के वरधुआँ ग्राम में जन्मे आपने बरूआसागर विद्यालय, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी एवं का.हि.वि. वि. में शिक्षा प्राप्त की। 1977 ई. से आप श्री कुन्दकुन्द महाविद्यालय खतौली में संस्कृत प्राध्यापक एवं 1980 से विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। आपकी लेखनी से अनेक कृतियाँ निःसृत हुई हैं, जिनमें 'प्राकृत एवं जैनविद्या : शोध सन्दर्भ, पुरुदेवचम्पू का आलोचनात्मक परिशीलन, अमर जैन शहीद, भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं का योगदान, जैन दर्शन में द्रव्य आदि महत्त्वपूर्ण हैं। 'भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में जैन' उनकी नवीन कृति प्रकाशित हुई है। आप अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद् के प्रचारमन्त्री हैं तथा एक कुशल वक्ता के रूप में आपकी प्रतिष्ठा है।

डॉ. कमलेशकुमार जैन—दमोह जिला के ग्राम कुलुआ में वि.सं. 2007 में जन्में आपने कटनी, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एवं का.हि.वि.वि. में अध्ययन किया। पार्श्वनाथ विद्याश्रम वाराणसी में रहकर 'जैनाचार्यो का अलंकारशास्त्र में योगदान' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विषयों में एम.ए. के साथ आपने साहित्याचार्य एवं जैन दर्शनाचार्य भी किया। सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि. से स्वर्णपदक से अलंकृत आपने जैन विश्वभारती लाड़नूँ, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में अध्यापन के पश्चात् 1984 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैनदर्शन विभाग में अपना कार्यभार ग्रहण किया। सम्प्रति आप रीडर एवं विभागाध्यक्ष हैं। शोधप्रबन्ध के अतिरिक्त योगसार आपकी महत्त्वपूर्ण कृति है। आपने जैन न्याय भाग-2 (श्री पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री) का भी सम्पादन किया है। आप कुशल वक्ता आगमविद् विद्वान् हैं।

श्री पं. कुंजीलाल शास्त्री—आप की शिक्षा गो.दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय मुरैना में हुई। आप पं. मक्खनलाल जी के प्रिय शिष्य थे। लौकिक क्षेत्र में आपने एम.ए. किया है। गिरिडीह में प्रधानाचार्य के रूप में आपने यश अर्जित किया। 4 सितम्बर, 1989 को अपने छोटे पुत्र के पास रहते हुए आपने फिरोजाबाद में अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया। आप संस्कृत एवं हिन्दी के अच्छे विद्वान्, कुशल तार्किक तथा निर्भीक वक्ता थे।

पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री—आपका जन्म वि. स. 1960 की कार्तिक शुक्ल द्वादशी को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिला के नहटौर ग्राम में हुआ था। आपकी प्राईमरी शिक्षा स्थानीय पाठशाला में तथा धार्मिक शिक्षा जैन पाठशाला में हुई। ग्यारह वर्ष की अवस्था में आपको काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश मिला तथा वहाँ आपने छः वर्ष तक अध्ययन किया। कुछ समय बाद आप धर्माध्ययन के लिए मुरैना चले गए। वहाँ पर पं. फूलचन्द्र शास्त्री और पं. जगन्मोहन लाल जी आपके सहाध्यायी थे। मुरैना में दो वर्ष तक अध्ययन के पश्चात् आपकी स्याद्वाद महाविद्यालय में धर्माध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई। एक वर्ष पश्चात् अस्वस्थतावश आपको नौकरी छोड़ना पडी। कुछ समय बाद आप पुनः वाराणसी चले गए। वाराणसी में जयधवला कार्यालय की स्थापना के साथ आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ हुआ। जैनधर्म, जैन साहित्य का इतिहास, जैन न्याय आपकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। आपने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है। जैन सन्देश के निर्भीक सम्पादकीय पढ़ने के लिए विद्वान् हमेशा आतुर रहते थे। 1980 ई. में आपकी सेवाओं के सम्मान के लिए एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया था। 1986 ई. में आपने अपने नश्वर देह को त्याग दिया।

डॉ. कोमलचन्द्र जैन—20 अगस्त, 1935 ई. को सागर जिला के बीना में जन्में आपने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एवं का. हि.वि.वि. वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। 'बौद्ध एवं जैन आगमों में नारी जीवन'' आपका पी-एच.डी. की उपाधि के लिए लिखित शोधप्रबन्ध एक महनीय प्रकाशित कृति है। प्राकृत प्रवेशिका, पालि प्रवेशिका, पालि साहित्य का इतिहास आदि आपकी बहुचर्चित कृतियाँ हैं। का.हि.वि.वि. वाराणसी से 1997 ई. में सेवानिवृत्त डॉ. जैन वाराणसी में रहते हुए जिनवाणी की आराधना कर रहे हैं।

प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला—1917 ई. में मड़ावरा (उ.प्र.) में जन्में श्री गोरावाला जी प्रारम्भ में सक्रिय राजनीतिक रहे हैं। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में आपका अध्ययन हुआ तथा काशी विद्यापीठ वाराणसी का ग्रन्थालय आपका कार्यक्षेत्र रहा। आपने वरांग चरित एवं द्विसन्धान महाकाव्य का सम्पादन एवं अनुवाद किया। आप वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ के भी

भगवान महावीर ने कहा है कि [illegible]

सम्पादक थे। वाराणसी में आपका स्वर्गवास हो गया।

डॉ. गोकुलचन्द्र जैन—आपका जन्म ग्राम पिडरुआ में सेठ मूलचन्द्र जैन के यहाँ हुआ था। आपने एम.ए., पी-एच.डी. तक शिक्षा प्राप्त की। भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली में सेवा के पश्चात् आप का.हि.वि.वि. वाराणसी में जैन दर्शन में रीडर नियुक्त हुए। तत्पश्चात् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में प्राकृत एवं जैनागम विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में कार्य करके सेवानिवृत्त हुए। आपने अनेक पुस्तकों का मानक सम्पादन किया है तथा शताधिक अनुसन्धान लिखे हैं।

विद्याभूषण पं. गोविन्दराय शास्त्री—आपका जन्म महरौनी (उ.प्र.) में हुआ था। आपने श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में अध्ययन-अध्यापन किया। 1940 ई. में नेत्रज्योति चले जाने पर आपने शिक्षा विभाग के सब इन्स्पेक्टर पद से सेवानिवृत्ति ग्रहण कर ली तथा आप जिनवाणी की सेवा में लग गए। आपने कुरलकाव्य का तमिल से संस्कृत एवं हिन्दी में अनुवाद किया तथा जैन धर्म की सनातनता, गृहिणीचर्या, बुन्देलखण्ड गौरव आदि की रचना के साथ भक्तामर स्तोत्र तथा यशस्तिलकचम्पू गत बारह भावनाओं का भी हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद किया है।

श्री पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ—आपका जन्म महरौनी (जिला झाँसी वर्तमान ललितपुर) में वि.सं. 1945 में हुआ था। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो गया था। वर्णी जी की प्रेरणा से आपने सागर एवं वाराणसी में अध्ययन किया। 1915 ई. में आप वाराणसी में धर्माध्यापक नियुक्त हुए। सादूमल पाठशाला की स्थापना होने पर आप उसके प्रधानाध्यापक बने। आपके द्वारा अनूदित पाण्डवपुराण, परीक्षामुख, नाममाला, पद्मपुराण तथा प्रभंजनचरित नामक प्रमुख कृतियाँ हैं। 1924 ई. मे खुरई (म.प्र.) में आपका स्वर्गवास हुआ।

श्री छोटेलाल जैन—आपका जन्म 6 जनवरी, 1938 ई. को उ.प्र. के एटा जिला के वाघई गॉव मे हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रसैन जैन शास्त्री काव्यतीर्थ एवं न्यायतीर्थ थे। आपने एम.ए. भूगोल के साथ एल-एल.बी. की उपाधि अर्जित की। झॉसी से वरिष्ठ मण्डल लेखा कार्यालय मध्य रेल से आप सेवानिवृत्त हुए। सेवा निवृत्ति के पश्चात् आप जैन विद्याओं के अध्ययन में संलग्न हैं। जैन धर्म में देवदर्शन एवं चन्द्रबाड़ के चन्द्रप्रभ आपकी एकमात्र कृति है। आपके लगभग 15-20 आलेख प्रकाशित हैं।

श्री पं. जगदीशचन्द्र जैन—आपका जन्म 11 जुलाई, 1940 ई. में कानपुर (कांचीखाना) में हुआ था। आप सहारनुपर निवासी रायबहादुर हरीशचन्द्र जैन के पुत्र थे। आप जय सीताराम इण्टर कॉलेज झिंझाना से संस्कृत-प्रवक्ता के रूप में सेवानिवृत्त हुए थे तथा 2002 ई. में आप दिवंगत हो गए। अहिंसा आलोक, सिन्धु की सभ्यता एवं जैन संस्कृति, मानव और अहिंसा आदि लघु पुस्तिकाओं के लेखन के साथ आपके अनेक आलेख प्रकाशित हैं।

श्री जमनालाल जैन—श्री जमनालाल जैन सर्वोदयी साहित्य सृजन में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। 1947 ई. में आपने जैन जगत् एवं वीर का सम्पादन सँभाला। जैन जगत् का सम्पादन 1955 ई. तक करते रहे, जबकि वीर का सम्पादन तीन माह बाद ही छोड़ दिया। 1974 से 1978 तक आपने श्रमण का तथा 1978 में छः माह तक अमर भारती का सम्पादन किया। मान्यखेट का इतिहास, महावीर का समाज दर्शन, बारह भावना : एक सामाजिक चिन्तन, जैन समाज वर्धा के सौ वर्ष, मेरी जीवन यात्रा, चिन्तन प्रवाह आपकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। आपने लगभग एक सौ पुस्तकों का सम्पादन प्रकाशन, अनुवाद एवं लेखन किया है। आपके ग्रन्थों में सर्वत्र सर्वोदयी विचारधारा परिलक्षित होती है। आपके लगभग 500-600 लेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित हैं। श्री विनोबा जी, श्री रजनीश तथा श्री जिनेन्द्र वर्णी जी के साथ आपका निकट का सम्बन्ध रहा है। आपके अनुरोध पर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने समणसुत्तं का जैन गीता के नाम से हिन्दी पद्यानुवाद किया था। श्री जैन से जैन समाज को अभी भी अनेक आशाएँ हैं। सम्प्रति आप सारनाथ में रह रहे हैं।

डॉ. जयकुमार जैन—आपका जन्म शिवपुरी जिला के पिपरा ग्राम में 1 अगस्त, सन् 1952 ई. को हुआ था। 1962 ई. [illegible]

में आप पिता की छत्रछाया से हीन हो गए। माता ने एवं बड़े भाई ने आपका पालन पोषण किया। आपकी शिक्षा बरुआसागर, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी एवं का.हि.वि.वि. वाराणसी में हुई। आपने का.हि.वि. वि. में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके तीन गोल्डमेडल तथा पुरस्कार अर्जित किए। आप अप्रैल, 1979 से एस.डी. कॉलेज मुजफ्फरनगर में संस्कृत के प्रध्यापक तथा वर्तमान में विभागाध्यक्ष हैं। अ.भा.दि. जैन शास्त्रि-परिषद् के आप 1995 ई. से महामन्त्री हैं। तीन दर्जन से अधिक पुस्तकों के लेखक, अनुवादक एवं सम्पादक के रूप में आप शास्त्रीपरिषद्, महावीर-श्रुतसंवर्धन, जैन विद्वतूरत्न एवं महाकवि ज्ञानसागर पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं। आप त्रैमासिक शोध पत्रिका 'अनेकान्त' के सम्पादक हैं।

डॉ. जिनेन्द्रकुमार जैन—आपका जन्म म.प्र. के नरसिंहपुर जिला के विक्रमपुर ग्राम में 04 जनवरी, 1948 ई. को हुआ था। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एवं काशी विद्यापीठ वाराणसी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आप 1974 ई. में अलीगढ़ जिला के सासनी कस्बा में किरोड़ीमल जैन इण्टर कॉलेज में प्रवक्ता नियुक्त हुए। जिनागम, पर्व एवं प्रवचन आपकी प्रकाशित महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। आपके शताधिक आलेख प्रकाशित है। निर्लोभ भाव से प्रतिष्ठा कार्य प्रवचनादि करते हुए आप इस कार्य में प्राप्त द्रव्य को असहाय छात्रों की सहायता में खर्च करते हैं। अध्ययन काल में आप क्रीड़ाक्षेत्र में भी सक्रिय रहे हैं तथा अनेक पदक प्राप्त किए हैं।

श्री पं. जीवनलाल शास्त्री—आपका जन्म म.प्र. के सागर जिला के विदवासन ग्राम में 4 अप्रैल, 1935 ई. को हुआ था। एक कुशल वैद्य एवं शिक्षक के रूप में ख्यातिप्राप्त आप 1984 ई. से श्री स्याद्वाद सिद्धान्त संस्कृत महाविद्यालय ललितपुर में प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं। आपके 15-20 आलेख प्रकाशित हैं। अपने प्रवचनों के द्वारा आपने धर्म के प्रचार-प्रसार मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

डॉ. ज्योति जैन—सागर में जन्मी और शिक्षा प्राप्त आपने सागर वि.वि. से 'भारत में न्यायिक पुनरावलोकन' विषय पर राजनीतिशास्त्र में पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। 1983 में आपका विवाह डॉ. कपूरचन्द्र जैन खतौली के साथ हुआ। सम्प्रति खतौली में रहकर आप संस्कार सागर, जैन सन्देश आदि के सम्पादन में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर रही हैं। विविध पत्र-पत्रिकाओं में आपके शताधिक सामायिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री पं. ठाकुरदास शास्त्री—उत्तर प्रदेश के झाँसी नगर मे जन्मे आपका हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषाओं पर अप्रतिम अधिकार था। पत्रकार बनारसीदास जी, साहित्यकार यशपाल जैन, महाराजा वीर सिह जू देव एवं वर्णी जी आपसे बहुत प्रभावित थे। वर्णी जी ने 'मेरी जीवन गाथा' में आपका सादर उल्लेख किया है। राजकीय सेवा में होने पर भी आप जैनधर्म एवं दर्शन का निरन्तर स्वाध्याय करते थे तथा सदाचार का विषम परिस्थितियों में भी पालन करते थे।

श्री पं. तुलसीराम काव्यतीर्थ—आपका जन्म ललितपुर (उ.प्र.) मे हुआ था। दिगम्बर जैन कॉलेज बड़ौत में आपने अध्यापन किया। संस्कृत भाषा पर आपका असाधारण अधिकार था। आपने संस्कृत में अनेक कविताओं की रचना की है। श्री पं. लाल बहादुर शास्त्री उनकी कविताओं से बहुत प्रभावित थे। आप पं. देवकीनन्दन जी के अनन्य सहयोगी रहे हैं।

श्री पं. नन्हेलाल सिद्धान्तशास्त्री—आपका जन्म झाँसी जिला के सेरवास नामक गाँव में वि.स. 1953 में हुआ था। आपकी शिक्षा ललितपुर एवं मुरैना के विद्यालयो में हुई। आपने गो. दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में अध्यापन एवं प्रधानाचार्यत्व का निर्वहन किया। मुरैना महाविद्यालय के विकास मे आपका बड़ा योगदान रहा है। आपके प्रमुख शिष्यों में क्षु. सहजानन्द जी वर्णी, पं. लाल बहादुर शास्त्री, डॉ. हुकुमचन्द्र भारिल्ल, प. रतनचन्द भारिल्ल, पं. अमृतलाल शास्त्री आदि अग्रगण्य हैं। 23 जनवरी, 1987 को ललितपुर में 94 वर्ष की आयु में आपका देहावसान हो गया। उनकी स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थ शीघ्र प्रकाश्य है।

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन—आपका जन्म 31 दिसम्बर, 1933 ई. को आगरा जिला के जटौआ गाँव में हुआ था। आगरा

जब तक धर्म मन में निवास करता है, तब तक प्राणी अपने मारने वाले का भी घात नहीं करता और जब वह ध र्म मन में से निकल जाता है, तब पिता और पुत्र का भी परस्पर में घात देखा जाता है।

वि.वि. से एम.ए. एल.टी. करने के पश्चात् आपने पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज फिरोजाबाद में प्रवक्ता के रूप में अध्यापन कार्य किया तथा 1933 ई. में प्राचार्य के रूप में अवकाश ग्रहण किया। अध्ययन, तीर्थाटन, पत्रकारिता तथा चिन्तन-मनन में आपकी विशेष अभिरुचि है। आपकी कृतियों में मधुर स्मृतियाँ, शाकाहार एक आन्दोलन, चिन्तन प्रवाह, मुनिश्री विद्यानन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रमुख हैं। आपने अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों, स्मृतिग्रन्थों, स्मारिकाओं आदि के सम्पादन के साथ लगभग 200-250 चिन्तनपरक लेख लिखे हैं। आचार्य विद्यासागर रजत दीक्षोत्सव पुरस्कार, गोम्मटेश विद्यापीठ पुरस्कार, शास्त्रीपरिषद् पुरस्कार, श्रमण भारती पुरस्कार, श्रुतसंवर्धन पुरस्कार एवं ऋषभदेव पुरस्कार से सम्मानित आपको समाज ने अनेक मानद उपाधियों से अलंकृत किया। सम्प्रति आप अ.भा.दि. जैन शास्त्री-परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष तथा जैन गजट के निष्पक्ष एवं निर्भीक सम्पादक के रूप में समाज को अपनी महनीय सेवायें में प्रदान कर रहे हैं।

श्री पं. नेमीचन्द जैन साहित्याचार्य–8 मई, 1934 ई. को दैलवारा (उ.प्र.) में जन्मे आपकी शिक्षा ललितपुर, बीना और इन्दौर के विद्यालयों में हुई। आपने एम.ए. हिन्दी एवं संस्कृत में, आचार्य साहित्य एवं जैन दर्शन में बरुआसागर विद्यालय में प्रधानाचार्य रहते हुए किया। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के प्राचार्य पद से आपने अवकाश ग्रहण किया है। आप हिन्दी मे आशुकविता करने में समर्थ हैं।

श्री पं. परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ–जैन विद्याओं के मूर्धन्य मनीषी आपका जन्म सन् 1907 ई. में महरौनी (उ.प्र.) में हुआ था। आपकी धार्मिक शिक्षा सादूमल, मुरैना, जबलपुर एव इन्दौर में हुई। आपने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। अनेक सामाजिक आन्दोलनो का आपने सुदृढ़ नेतृत्व किया। समयसार, प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों पर तो आपने टीकाएँ लिखी ही हैं, आपने सामाजिक क्रान्ति के पुरोधा के रूप में विजातीय विवाह मीमांसा, मरणभोज, दस्ताओं का पूजाधिकार आदि पर भी लेखनी चलाई। सामाजिक विकृतियों के कटु आलोचक के रूप में ख्यातिलब्ध पण्डित जी 12 जनवरी, 1978 ई. को धर्म एवं राष्ट्र की सेवा करते हुए दिवंगत हो गए।

डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी–7 जुलाई, 1948 ई. को दलपतपुर (म.प्र.) मे जन्मे श्री प्रेमी ने कटनी, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एव का.हि.वि.वि. वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की तथा 'मूलाचार' पर शोधकार्य करके पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। जैन विश्व भारती लाड़नूँ के ब्राह्मी विद्यापीठ में अध्यापन के पश्चात् आप नवम्बर, 1979 से सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी में जैनदर्शन विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। अनेक सम्मानो एवं पुरस्कारों से अलंकृत आप सम्प्रति अ.भा.दि जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष हैं। कृतियों में मूलाचार, मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन, लाड़नूँ के जैन मन्दिर आदि प्रमुख हैं।

श्री पं. फूलचन्द शास्त्री–आपका जन्म वि.सं. 1967 में सिरगन (ललितपुर) में हुआ था। आपने मोरेना महाविद्यालय में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री एवं पं. नन्हेंलाल जी शास्त्री से शिक्षा प्राप्त की। आपने बीना विद्यालय में अध्यापन किया। जिनाष्टकावलिस्तोत्रम्, नित्य नवदेव पूजा, शीतलारिष्ट निवारक पूजा एवं दक्षिण तीर्थयात्रा लावनी आपकी रचनाएँ हैं। बीना विद्यालय से अवकाश ग्रहण के पश्चात् आपने जखौरा (उ.प्र.) में निवास किया।

श्री पं. फूलचन्द सिद्धान्ताचार्य–आपका जन्म 11 अप्रैल, 1901 को सिलावन (जिला–ललितपुर, तत्कालीन जिला–झाँसी) में हुआ था। आप सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों से सतत् जुड़े रहे। श्री पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री एवं श्री पं. जगन्मोहन लाल शास्त्री आपसे अत्यन्त प्रभावित थे तथा आपकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते थे। षट्खण्डागम, कषायपाहुड तथा महाबन्ध जैसे ग्रन्थों को हिन्दी में उपलब्ध कराने में आपका महान् सुयश है। आपने जैन धर्म और वर्णव्यवस्था, वर्ण जाति और धर्म लिखकर जैन धर्म में वर्णव्यवस्था को अहेतुक सिद्ध किया है। 50 से अधिक पुस्तकों का लेखन, सम्पादन एवं अनुवाद आपके द्वारा हुआ है। श्री गणेश वर्णी संस्थान वाराणसी के आप संस्थापक थे। 1985 ई. में आचार्य श्री विद्यानन्द जी के सान्निध्य में आपको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करके सम्मानित किया गया था। 31 अगस्त, 1991 ई. को अपने पुत्र डॉ. अशोक कुमार जैन (रुड़की वि.वि. में भौतिकी के प्राध्यापक) के यहाँ रुड़की में आपने अपने नश्वर देह को त्याग दिया।

धर्म न वचनों में मिलता है और न शरीर में। धर्म तो परिणामों (भावों) में मिलता है। अगर हमारे भावों में धर्म है तो हम सुख और शान्ति की दिशा में अपने कदम बढ़ाने में समर्थ होंगे।

श्री पं. बच्चूलाल जैन शास्त्री—आपका जन्म नौहरकलाँ (ललितपुर) में वि.सं. 1979 में हुआ था। आपने सिलगन एवं गुरसौरा में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उज्जैन, कटनी एवं इन्दौर में अध्ययन किया। 1944 ई. से कानपुर में प्रधानाचार्य के दायित्व का निर्वाह किया तथा 1987 तक दि. जैन विद्यालय कानपुर में ही कार्यरत रहे। अपने प्रवचनों एवं विधान आदि के द्वारा आपने समाज में समय-समय पर विशेष जागृति की है।

श्री पं. बाबूलाल जमादार—22 अप्रैल, 1922 ई. में ललितपुर में जन्मे आपने ललितपुर, इन्दौर तथा सहारनपुर में अध्ययन किया। आपने तिस्सा, दिल्ली, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, सरधना आदि में अपनी शैक्षिक एवं प्रशासनिक पदों पर सेवाएँ दीं। 1954 से 1971 तक आप दि. जैन कॉलेज बड़ौत में धर्माध्यापक रहे। अ.भा. दि. जैन शास्त्रीपरिषद् के संयुक्तमन्त्री तथा महामन्त्री के रूप में उनकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। आपकी अनेक कृतियों में प्रतिज्ञा, माँ की ममता, हस्तिनापुर गौरव, समाजदर्पण, ते गुरु मेरे उर बसो, आर्यिका, उत्थान पतन, श्रावक दर्शन, सम्मेदशिखर गौरव, खण्डगिरि उदयगिरि गौरव आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने सराकों पर अनेक ट्रैक्ट लिखे। ललितपुर में अचानक हृदयगति रुक जाने से उनका स्वर्गवास हो गया।

श्री डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य—1911 ई. में मध्यप्रदेश के खुरई कस्बे में जन्मे श्री महेन्द्र कुमार जी जैन न्याय के उद्भट विद्वान् थे। जैनदर्शन के लेखन तथा न्यायकुमुदचन्द्र आदि ग्रन्थों के सम्पादन के कारण प्राच्यविद्याविदों में आपका महत्वपूर्ण स्थान था। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बौद्ध दर्शन विभाग में प्राध्यापक थे। 48 वर्ष की अल्पायु में ही 1959 ई. में आपका देहावसान हो गया। पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से आपकी स्मृति में एक स्मृतिग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।

श्री पं. माणिकचन्द्र कौन्देय—श्लोकवार्तिक सदृश ग्रन्थ के टीकाकार के रूप में सुयश को प्राप्त न्यायदिवाकर, स्याद्वादवारिधि आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत पं. माणिकचन्द्र कौन्देय दिगम्बर जैन समाज के देदीप्यमान रत्न थे। 2 जून, 1968 ई. को फिरोजाबाद में मानसरोवर साहित्य संगम द्वारा उनका सार्वजनिक सम्मान करके उन्हें नगरगौरव की उपाधि से विभूषित किया था। 8 नवम्बर, 1971 ई. को आप दिवंगत हो गए।

डॉ. रमेशचन्द्र जैन—आपका जन्म 5 मई, 1946 ई. को मड़ावरा में हुआ। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी एवं का. हि.वि.वि. वाराणसी में आपकी उच्च शिक्षा हुई। रुहेलखण्ड वि.वि. बरेली से आपने पी-एच.डी. एवं डी.लिट् की उपाधियाँ अर्जित कीं। आप 1969 ई. से वर्धमान कॉलेज बिजनौर में संस्कृत विभाग में प्राध्यापक एवं वर्तमान में विभागाध्यक्ष हैं। आपने प्रबन्धकथाकोष, पार्श्वाभ्युदय के अलावा अनेक पाठ्यक्रम की पुस्तकों का लेखन किया है। पद्मपुराण में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति, दिगम्बरत्व की खोज तथा जैन धर्म की मौलिक विशेषताएँ आपकी बहुचर्चित कृतियाँ हैं। आपके निर्देशन में 20 से अधिक शोधछात्रों ने पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की है। आप अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष रहे हैं।

डॉ. राजकुमार साहित्याचार्य—आपका जन्म 15 अक्टूबर, 1917 ई. में झाँसी जिला के गुन्दरापुर गाँव में हुआ था। वाराणसी से साहित्याचार्य एवं आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् आपने दि. जैन कॉलेज बड़ौत तथा आगरा कॉलेज आगरा में अध्यापन कार्य किया। मदन-पराजय, प्रशमरतिप्रकरण, पार्श्वाभ्युदय एवं बृहत्कथाकोष आदि आपके द्वारा सम्पादित/अनूदित ग्रन्थ हैं।

श्री पं. राजधरलाल व्याकरणाचार्य—ग्राम गुरसौरा (जखौरा) में वि.सं. 1970 में जन्मे आपने क्षेत्रपाल ललितपुर, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। आपने हस्तिनापुर गुरुकुल, मुरैना विद्यालय तथा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा एवं वीर विद्यालय पपौरा में अध्यापन कार्य किया। अपने समय के व्याकरणविदों में आपका विशिष्ट स्थान था।

श्री पं. रामस्वरूप जैन शास्त्री—आगरा जिला के जटौआ ग्रामवासी पं. रामस्वरूप जी एक योग्य विख्यात प्रतिष्ठाचार्य

[illegible]

थे। प्रश्नोत्तरशतक, सरस सवैये, जिनमतप्रकाश, जैनभजनरंजनमाला, प्रश्नोत्तर मालिका, दृष्टान्तलहरी एवं प्रतिष्ठापाठसंग्रह आदि रचनाओं के द्वारा आपने अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनमें से कतिपय रचनाएँ अद्यावधि अप्रकाशित हैं। आपने आरोन (गुना), हजारीबाग, सुजानगढ़, कुचामन सिटी, आवा (कोटा) आदि अनेक स्थानों पर रहकर अध्यापन द्वारा समाज का उपकार किया। 29 दिसम्बर, 1983 ई. को पण्डित जी का फिरोजाबाद में समाधिमरण पूर्वक देहावसान हो गया। आपके सुयोग्य पुत्र प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद सम्प्रति समाजसेवा में निरत हैं।

श्री पं. लालाराम शास्त्री—आपका जन्म 1883 ई. में हुआ था। आप श्री पं. मक्खन लाल जी शास्त्री के प्रमुख साथी थे। भक्तामरशतद्वयी, सहस्रनामस्तोत्र एवं जैनधर्म आदि कृतियों के साथ आपने संस्कृत के शताधिक ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया है। अ.भा.दि. जैन शास्त्रीपरिषद् के अध्यक्ष के रूप में आपने समाज की अविस्मरणीय सेवा की। मुरैना विद्यालय में धर्माध्यापक से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आप फिरोजाबाद में रहने लगे थे तथा वहीं पर 4 जनवरी, 1962 ई. को 79 वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

डॉ. विजयकुमार जैन—पन्ना जिला के ग्राम गुनौर में जन्मे आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से पालि में एम. ए. किया तथा डॉ. कोमलचन्द्र जैन के निर्देशन में संयुक्त निकाय पर शोधकार्य करके पी-एच.डी. की उपाधि को प्राप्त किया। आप संस्कृत विद्यापीठ लखनऊ (मानित वि.वि.) में बौद्धदर्शन विभाग में रीडर पद पर कार्यरत हैं। जैन एवं बौद्ध दर्शन दोनों में आपकी अच्छी पकड़ है तथा आप तुलनात्मक अध्ययन के पक्षधर हैं।

श्री पं. शिवचरन लाल जैन—आपका जन्म मैनपुरी जिला के नगला इन्दु ग्राम में 1939 ई. में रक्षाबन्धन के दिन हुआ था। मात्र मैट्रिक तक शिक्षा होने पर भी आपने स्वाध्याय के द्वारा जैनदर्शन में विशेष गति प्राप्त की है। आपके लगभग 100 आलेख प्रकाशित हैं। ज्ञानप्रवादपूर्व परिचय आपका महत्त्वपूर्ण शोध निबन्ध है। अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी एवं सदस्य के रूप में आपने समाज की बहुमूल्य सेवा की है। वाणीभूषण, व्याख्यानवाचस्पति उपाधियों से अलंकृत आपको श्रमणभारती, रइधू, श्रुतसंवर्धन आदि अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं।

श्री शीतलप्रसाद जैन—आपका जन्म बागपत (तत्कालीन मेरठ) जिला के बड़ागाँव में 1920 ई. मे हुआ था। उ.प्र. शासन के खण्ड विकास अधिकारी पद से सेवानिवृत्त होकर आप सम्प्रति समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की कुरीतियों के निवारण तथा ठोस कार्यों के प्रति समर्पित हैं। भारत के 1942 के स्वतन्त्रता आन्दोलन में आपने सक्रिय सहयोग करके जेलयात्रा भी की थी। पशुबलिनिषेध कृति की रचना के अतिरिक्त आपके लगभग 30 आलेख प्रकाशित हैं।

श्री पं. श्यामसुन्दर लाल शास्त्री—आप श्री पं. मक्खनलाल जी शास्त्री के सुयोग्य शिष्यों में से एक थे। छात्र जीवन से ही आप संस्कृत भाषा में रचनायें करने लगे थे। जब आप किसी सभा में बोलते थे तो सभा मन्त्रमुग्ध होकर आपको सुनती थी। आप जीवन-पर्यन्त पी.डी.जैन इण्टर कॉलेज फिरोज़ाबाद के संस्थापक मन्त्री रहे। आपको सन् 1998 में आचार्य विद्यानन्द जी के सान्निध्य में अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में तोलापुर की सुप्रसिद्ध संस्था श्री रंग जी गांधी नाथा जन मंगल प्रतिष्ठान की ओर से एक लाख रुपये का आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार प्रदान किया गया था। आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज और आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा थी। आप गुरुभक्त विद्वान् थे। 1999 ई. में फीरोज़ाबाद में आप दिवंगत हो गये।

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन—आपका जन्म सितम्बर 1952 ई. में ग्राम दुमदुमा जिला टीकमगढ़ में हुआ। प्रवचन, भाषण, लेखन, सम्पादन तथा समाज सेवा में अभिरुचि सम्पन्न आप 1978 ई. से दिगम्बर जैन कॉलेज बड़ौत में संस्कृत विभाग में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। अ.भा.दि. जैन शास्त्रीपरिषद् के महामन्त्री, उपाध्यक्ष एवं कार्याध्यक्ष के रूप में आपने आर्ष परम्परा की अद्वितीय सेवा की है। सागार धर्म सोपान, सप्तसन्धान का समीक्षात्मक अध्ययन के लेखन के साथ-साथ आपने अनेक

[illegible] विस्तार नहीं कर सकती। इसी प्रकार जब [illegible] रहेंगे, तब तक आत्मा में शक्ति का संचरण नहीं हो सकता।

ग्रन्थों, अभिनन्दन ग्रन्थों स्मारिकाओ तथा पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया है। आपके व्याख्यान अत्यन्त प्रभावक तथा हृदयग्राही होते हैं। आपकी शिक्षा बरुआसागर विद्यालय के पश्चात् श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में हुई है।

श्री पं. श्रेयांसकुमार जैन—आपका जन्म उ.प्र. के बिजनौर जिला के किरतपुर कस्बे में वि.सं. 1974 की ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को हुआ था। आप 1949 ई. से 1980 ई. तक स्थानीय इण्टर कॉलेज में संस्कृत के अध्यापक रहे हैं। सेवानिवृत्ति के पश्चात् आपने कुछ समय तक दि.जैन उ. प्रान्तीय गुरुकुल हस्तिनापुर में प्राचार्य के दायित्व का भी निर्वाह किया है। आपने भक्तामरस्तोत्र, एकीभावस्तोत्र, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र आदि का सम्पादन भी किया है। विविध पत्रों-पत्रिकाओं में आपके लगभग 50 आलेख प्रकाशित हैं। अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़कर आप समाज की सेवा में संलग्न हैं।

श्री सरमनलाल दिवाकर—आपका जन्म म.प्र. के टीकमगढ़ जिला के एरोरा गॉव में 15 सितम्बर, 1938 ई. को हुआ था। सरधना की अनेक शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक एवं प्राचार्य के दायित्व का निर्वाह करने के पश्चात् सम्प्रति आप श्री दि. जैन उत्तरप्रान्तीय गुरुकुल हस्तिनापुर के प्राचार्य हैं। श्री सम्मेद शिखरविधान, नवग्रहविधान, परमात्मदर्शनविधि, वीतराग अर्चना रहस्य, जैनविवाहविधि, परमात्मदर्शन विधि, वीतराग अर्चना रहस्य, आदि आपके द्वारा सम्पादित/लिखित कृतियॉं हैं। आप 'वीर' के कई वर्षो तक सहसम्पादक रहे हैं तथा आपके शताधिक लेख प्रकाशित हैं। भ. महावीर के 2500वे निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में संचालित धर्मचक्र के माध्यम से 1 वर्ष तक आपने अपने प्रवचनो से सम्पूर्ण भारतवर्ष की समाज को धर्मोपदेश दिया था। विधानादि कार्यों में आपकी विशेष रुचि है।

डॉ. सुखनन्दन लाल जैन—बरमा का ताल (टीकमगढ़) में जन्मे आपने पपौरा, इन्दौर तथा श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। आगरा वि.वि. से एम.ए. संस्कृत एवं हिन्दी मे किया। गुरुकुल हस्तिनापुर मे प्रधानाचार्य के रूप में सेवाएँ देने के बाद आप संस्कृत विभाग दि जैन कॉलेज बडौत में प्राध्यापक एव विभागाध्यक्ष रहे। 'जैनदर्शन में नयवाद' विषय पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। 1981 ई. में अचानक हृदयगति रुक जाने से आपका देहावसान हो गया। यशस्तिलकचम्पू पर आपने निर्धारित अंश पर टीका लिखी, जो छात्रों को अत्यन्त उपयोगी रही।

डॉ. सुदर्शनलाल जैन—दमोह (म.प्र.) में 1944 ई. में जन्में आपने कटनी के बाद श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। पार्श्वनाथ विद्याश्रम वाराणसी में कार्य करते हुए आपने 'उत्तराध्ययन का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। वर्धमान कॉलेज बिजनौर में अध्यापन के पश्चात् आप का. हि.वि.वि. के संस्कृत विभाग में नियुक्त हुए। सम्प्रति आप संस्कृत विभागाध्यक्ष है। पाठ्यक्रम की अनेक पुस्तकों के साथ-साथ आपने जैनविधाओं पर अनेक पुस्तकें लिखीं हैं। देव, शास्त्र, गुरु आपकी बहुचर्चित कृति है। आप अ.भा.दि जैन विद्वत् परिषद के मन्त्री रहे हैं।

डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन—म.प्र. के बीना (सागर) में जन्में आपकी शिक्षा बीना, कटनी एवं वाराणसी में हुई। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से साहित्यशास्त्री तथा का.हि.वि.वि. से बी.कॉम. करने के पश्चात् आपने इन्दौर से एम.ए. (अर्थशास्त्र) किया। तदनन्तर आप दि.जैन कॉलेज बडौत में अर्थशास्त्र विभाग में प्रवक्ता नियुक्त हुए तथा जून 2002 में विभागाध्यक्ष के रूप में सेवानिवृत्त हुए हैं। जैनदर्शन में आपकी गहरी पैठ है। आगम और अध्यात्म आपकी बहुप्रशंसित कृति हैं। आपके द्वारा रचित अनेक पूजाएँ सिद्धान्तविदों द्वारा श्लाघ्य रही हैं। छहढाला की एक सैद्धान्तिक टीका प्रकाशनाधीन है। आपने अर्थशास्त्र में भी जैन विषय लेकर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की है।

डॉ. सुशीलकुमार जैन—आपका जन्म उ.प्र. के मैनपुरी जिला के कुरावली कस्बा में 19 जून, 1969 ई. को हुआ था। आपके पिताश्री ताराचन्द जी एक सेवाभावी चिकित्सक थे। आप भी बी.एस-सी. के पश्चात् बी.ए.एम.एस. करके कुरावली में

विद्वत्ता, पद-प्रतिष्ठा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का घमण्ड कभी नहीं करना चाहिए। ये सभी नश्वर हैं।

अपना क्लीनिक चला रहे हैं। आपके लगभग 200 आलेख अब तक विविध पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हैं। सराक ज्योति के यशस्वी सम्पादक तथा जैन प्रभात के सम्पादक के रूप में आपने जैन समाज की अद्वितीय सेवा की है। आप अनेक सामाजिक एवं शैक्षिक संस्थाओं के पदाधिकारी तथा कार्यकारिणी के सदस्य हैं।

डॉ. सुशीलचन्द्र जैन—आपका जन्म उ.प्र. के मैनपुरी में दिनाँक 5.8.1951 ई. को हुआ था। आपके पिताश्री व्यवसाय से चिकित्सक होते हुए भी जैनधर्म दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। आप भी 1976 ई. से चिकित्सा के पावन व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। आपने श्रमण भारती दशाब्दी समारोह स्मारिका का भव्य सम्पादन किया है। भ. महावीर और अहिंसा आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। जैन पत्र-पत्रिकाओं मे तो आपके अनेक लेख प्रकाशित हैं ही, सरिता, मुक्ता, जनसत्ता आदि राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके लेख प्रकाशित हैं। अपने प्रवचनों द्वारा आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष मे जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में महान योगदान दिया है। आप अब तक अनेक पुरस्कार एवं सम्मानों से अलंकृत हो चुके हैं तथा प्रतिवर्ष एक युवा विद्वान् को पुरस्कृत भी करते हैं।

डॉ. सूरजमुखी जैन—आपका जन्म आरा (बिहार) में 1 जुलाई, 1928 ई. को हुआ था। आपने हिन्दी तथा संस्कृत में एम. ए. किया तथा पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। आपने 1949 से 1963 ई. तक जैन कन्या इण्टर कॉलेज मुजफ्फरनगर मे हिन्दी प्रवक्ता, 1963 से 1974 तक जैन गर्ल्स डिग्री कॉलेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा 1974 से 1989 तक जैन स्थानकवासी डिग्री कॉलेज बडौत में प्राचार्या के रूप मे कार्य किया। 'अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और कबीर' आपकी बहुप्रशंसित कृति है। इसके साथ प्रमाणनिर्णय आदि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद एवं अन्य अनेक ग्रन्थो का सम्पादन आपने किया है। आप श्री शीतलप्रसाद जैन मुजफ्फरनगर की धर्मपत्नी हैं।

श्री पं. हीरालाल सिद्धान्त-शास्त्री—आपका जन्म वि.सं. 1961 मे साढूमल (उ.प्र.) में हुआ था। स्थानीय पाठशाला के अतिरिक्त इन्दौर एवं जबलपुर में आपका अध्ययन हुआ। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में तथा ब्यावर मे आपने अध्यापन किया। आपने षट्खण्डागम के सम्पादन मे सहयोग के साथ ही स्वतन्त्र रूप से कषायपाहुडसुत्त, पचसंग्रह, प्रमेयरत्नमाला, वसुनन्दि श्रावकाचार, जिनसहस्रनाम, जैन धर्मामृत, कर्मप्रकृति ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद किया। श्रावकाचार संग्रह, परमागमसार एवं पुरुषार्थानुशासन का सम्पादन एवं अनुवाद भी आपकी लेखनी से हुआ है। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि शोधपत्रिकाओं में आपके खोजपूर्ण सैकड़ो लेख प्रकाशित हैं।

डॉ. वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ—महात्मा गॉधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के भाषा केन्द्र में प्रोफेसर एव निदेशक के रूप में कार्यरत डॉ. वृषभप्रसाद जैन स्व. श्री कामता प्रसाद जैन के पौत्र एव श्री वीरेन्द्रकुमार जैन के पुत्र हैं। एम. ए (भाषाविज्ञान, संस्कृत), एम.फिल (भाषाविज्ञान), आचार्य (साहित्य) तथा पी एच.डी. आदि उपाधियों से अलंकृत डॉ. जैन भोपाल विश्वविद्यालय, के. एम. मुंशी हिन्दी एवं भाषाविज्ञान विद्यापीठ आगरा, सम्पूर्णानन्द सं. वि. वि. वाराणसी और लखनऊ विश्वविद्यालय में भाषाविद् के रूप में अपनी अध्यापन-सेवायें दे चुके हैं। आपके अनेक स्तरीय ग्रन्थ प्रकाशित हैं, जिनमें अधिकांश भाषाविज्ञान एवं व्याकरण से सम्बन्धित हैं। कालिदास एवं बाहुबलीयम् कृतियॉ परिष्कृत संस्कृत में लिखित हैं।

□

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आज्ञाओं का अनुसरण करना भी विनय के ही अन्तर्गत आता है। ऐसी वास्तविक विनय से मान कषाय गल जाती है।

छत्तीसगढ़ के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—पं. पूर्णचन्द 'सुमन', दुर्ग

पं. पूर्णचन्द्र जैन शास्त्री का जन्म सन् 1928 में ककरवाहा ग्राम में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा महावीर विद्यालय साढ़ूमल में हुई और श्री गणेश संस्कृत विद्यालय सागर में न्याय विशारद शास्त्री और काव्यतीर्थ की शिक्षा प्राप्त कर श्री महावीर विद्यालय नवापारा राजिम में अध्यापन का कार्य किया। आप दशलक्षण पर्व पर प्रवचनार्थ अनेक स्थानों पर गए हैं। आप शिक्षण शिविरों, प्रतिष्ठाओं एवं विधि विधानो के माध्यम से धर्म प्रभावना कर रहे हैं।

आपने चन्द्रतारा एकांकी नाटक प्राणप्रिय काव्य का पद्यानुवाद किया है एवं सुमन संगीत सरिता, अर्चना के सुमन भाग, 1, 2, 3 आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। आप परवार पंचायत दुर्ग के अध्यक्ष अखिल भारत वर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद के कार्यकारिणी सदस्य और छत्तीसगढ़ दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष हैं।

पं. बालचन्द्र जी का जन्म 1.5.1918 को ग्राम गौना (सौजना) में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा साढ़ूमल विद्यालय में हुई एवं श्रीगणेश वर्णी जैन संस्कृत विद्यालय सागर से शास्त्री और काव्यतीर्थ की परीक्षा कलकत्ता से उत्तीर्ण की। आपने बम्हौरी, रायपुर, नवापाराराजिम आदि स्थानों में जैन पाठशालाओं में अध्यापन का कार्य करते हुए सर्राफा, बर्तन व्यवसाय, तेल मील, राईस मिल आदि अनेक व्यापार किए। आपने मोक्षशास्त्र की टीका की जो प. मोहनलाल जी शास्त्री जबलपुर ने प्रकाशित की है। आपके अनेक लेख प्रकाशित हुए आपने अपना समय धर्म ध्यान एव सामाजिक गतिविधियों में लगाया 10.5.1996 को आपका देहावसान हो गया।

पं. धर्मचन्द्र जी न्यायतीर्थ का जन्म सन् 1905 में ग्राम मौड़ी जिला झाँसी में हुआ था। आपकी शिक्षा बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री तक तथा कलकत्ता से न्यायतीर्थ की हुई। आपने बड़नगर (उज्जैन) नैनागिरि (छतरपुर) एवं नवापारा (राजिम) में अध्यापन कार्य किया। सन् 1942 से 1955 तक नैनागिरि सिद्ध क्षेत्र की जैन पाठशाला आपके सान्निध्य में चरमोत्कर्ष पर रही आपको आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान था आप स्वयं दवाइयाँ तैयार कर निःशुल्क दिया करते थे। आपने 3.6.1950 में अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन नागपुर से आयुर्वेदरत्न की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपने 1955-56 से 1976 तक श्री दिगम्बर जैन पाठशाला नवापारा (राजिम) में अध्यापन कार्य किया। छत्तीसगढ़ प्रदेश की समाज में आपकी निर्विवाद प्रतिष्ठा रही सन् 1978 की कार्तिक पूर्णिमा को आपका देहावसान हो गया।

पं. सुमेरचन्द्र जी का जन्म 13.4.1942 को नवापारा राजिम (रायपुर) में हुआ। आपकी प्रारंभिक शिक्षा राजिम में हुई, पश्चात् विशारद एवं इंटर तक की संस्कृत एवं धार्मिक शिक्षा श्रीगणेश वर्णी संस्कृत विद्यालय सागर में हुई। आपने व्यापारिक कार्य करते हुए धार्मिक सामाजिक कार्य में सक्रिय योगदान दिया। आपने साहित्य के क्षेत्र में अनेक कार्य किए हैं। आपके अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। धार्मिक कार्यों में आपकी स्मरणीय भागीदारी रहती है।

डॉ. ऋषभकुमार जी जैन का जन्म 30.12.1960 को रजपुरा (दमोह) में हुआ। आपने एम.कॉम., एम.ए., धर्मालंकार, साहित्यशास्त्री, आयुर्वेदरत्न की शिक्षा प्राप्त कर उपाधियाँ प्राप्त कीं। आप अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत् संघ, अ. भा. दि. जैन वर्णी स्नातक परिषद के सदस्य एवं छत्तीसगढ़ दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के उपाध्यक्ष हैं। आपने लगभग दस पुस्तकों का सम्पादन किया है। आप विधिविधान के क्षेत्र में 25 वर्षो से संलग्न हैं।

पं. सुरेशचन्द्र जी का जन्म सागर नगर में 25.3.1943 को हुआ था। अपने शास्त्री, जैनदर्शन की शिक्षा श्रीगणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय सागर से प्राप्त की एवं श्री हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर से एम. ए., बी.

नाम की भूख, पदवियों का आदान-प्रदान, अभिनन्दन-समारोहों की बाढ़, मन्दिरों आदि की दीवालों और पाटों पर लम्बे नामों के बेशुमार पाटिये आदि समाज में दिनों-दिन बढ़ती हुई मान कषाय को [illegible] है।

एड. की शिक्षा प्राप्त की है। आप अध्यापन का कार्य कर रहे है। आप छत्तीसगढ़ विद्वत् परिषद के सदस्य है। आप सामाजिक एवं धार्मिक कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लेते हैं। विधि विधान के कार्यक्रम भी आप करवाते है। साक्षरता समिति जिला प्रशासन द्वारा शिक्षक दिवस पर 'अक्षर चेतना सम्मान 2002' से सम्मानित किया गया है।

पं. भागचन्द्र जैन विशारद का जन्म संवत् 1996 में पठा जिला टीकमगढ़ में हुआ था। आपने धर्म विशारद की शिक्षा प्राप्त कर 28 वर्ष तक श्री शान्तिनाथ जैन पाठशाला बलौदा बाजार जिला रायपुर मे अध्यापन का कार्य किया। आप कपड़े का व्यापार करते हुए धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में सलग्न हैं। आपने धार्मिक शिक्षण, शिखर, प्रवचन, विधिविधान धार्मिक अनुष्ठान कराए हैं। इसके फलस्वरूप आपको रायपुर, राजिम, दुर्ग, राजनांदगांव, डोगरगाँव, भाटापारा, अकलतरा, भिलाई, टैगोर नगर आदि अनेक स्थानों से आपको सम्मान प्राप्त हैं।

पं. हुकुमचन्द्र जी का जन्म रायपुर जिला ललितपुर उ.प्र. में 9 8 1924 को हुआ था। आपकी प्रारभिक शिक्षा पिपरा ग्राम में हुई। धार्मिक शिक्षा श्री दिगम्बर जैन वीर विद्यालय पपौरा में हुई। आपने विशारद तक की शिक्षा प्राप्त कर सन् 1942 से 1945 तक मौ (जिला भिण्ड) मे अध्यापन कार्य किया। इसके बाद श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला डोंगर गॉव जिला राजनांदगांव मे अध्यापन का कार्य किया। आप धार्मिक और सामाजिक कार्यो मे सलग्न रहते है। वेदी प्रतिष्ठा, विधि विधान आदि कार्यो को भी आप पूर्ण विधिपूर्वक करते हैं। आपने रायपुर, दुर्ग, जगदलपुर, चिरमिरी, डोगरगॉव, नवापारा राजिम आदि स्थानो पर धार्मिक शिविर लगा कर धर्म प्रचार में पूर्ण सहयोग दिया है।

पं. बाबूलाल 'आकुल' : आपका जन्म सागर जिले के दलपतपुर ग्राम में हुआ था। वहीं प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् आपने जबलपुर एवं सागर मे अध्ययन किया एवं परिवार सहित सागर में निवास करने लगे। यहीं आपने पद्माकर प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना कर व्यवसाय किया। आप सात भाई थे, सागर मे ही आपने जैन भ्रातृसंघ की स्थापना की एवं अनेको सस्थाओ में पदाधिकारी रहे। देशांतरण का योग होने पर आपने दुर्ग आकर स्टेशनरी एव पेपर सप्लाई का व्यवसाय प्रारम्भ किया। दुर्ग नगर एवं अन्य स्थानो में प्रतिष्ठा कार्य के रूप में विधान, प्रतिष्ठा तथा धार्मिक गतिविधियाँ सम्पादित कराई। आपने सोनगढ़ के एकान्तवादी मत के विरुद्ध एक पुस्तक भी लिखी जो अप्रकाशित रह गई, 80 वर्ष की आयु में मंदिर जी में ही एक बैठक के दौरान हृदयाघात के कारण निधन हो गया था। आप योग्य वक्ता, संस्था सचालक एव संगठक होने के कारण ही विशिष्ट रूप से जाने जाते थे।

पं. बालचन्द जी न्यायतीर्थ : ललितपुर मण्डल के अन्तर्गत गौना ग्राम में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता श्री दमरूलाल जी थे, आप दो भाई थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा, साढूमल विद्यालय के पश्चात् श्री स्याद्वाद जैन स महाविद्यालय भदैनी, बनारस से आपने न्यायतीर्थ तक अध्ययन किया, दुर्ग के रामप्रताप मोहनलाल बाकलीवाल के आग्रह पर आप दुर्ग आए एवं पाठशाला मे अध्यापन कार्य किया साथ ही अपने भाई भागचन्द के साथ स्टेशनरी व जनरल की दुकान प्रारम्भ की। इन्हीं दिनों आपने मुनीमी का कार्य भी किया, व्यवसाय के चलने के बाद आपने अनेकों देशांतरित जैन बन्धु, विद्वानों को सहयोग किया और उन्हें दुर्ग-भिलाई में ही बसने के लिए प्रेरित किया, धार्मिक अनुष्ठानों आदि में आप सक्रिय रहते थे, लगभग 80 वर्ष की आयु में आपका देहावसान हुआ था। धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन में प्रभावक शैली थी।

पं. जयकुमार जैन शास्त्री : जन्मस्थल ललितपुर के समीप ग्राम नैकोरा, पिता स्व. श्री. कल्याणमल जी, प्रारम्भिक शिक्षा, दि. जैन महावीर विद्यालय साढूमल में श्रीमान पं. शीलचन्द जी एवं पं. प्रभुदयाल जी शास्त्री के सान्निध्य मे विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। धार्मिक अभिरुचि के कारण व्यवसाय के साथ ही धार्मिक गतिविधियों में हमेशा तत्परतापूर्वक भाग लेते हैं एवं पर्यूषण पर्व, विधान आदि आयोजनों में आमंत्रित किए जाते हैं। तदनुरूप अनेक स्थानों में सम्मानित हुए हैं, धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी का पूर्ण सहयोग होता है, आप छत्तीसगढ़ जैन विद्वत् परिषद् के उपमंत्री हैं। ☐

जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों-हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बाँट सकता है
लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती।

तमिलनाडु के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—प. मल्लिनाथ शास्त्री

पं. सिंहचन्द्र जी शास्त्री ने गोमटेश विद्यापीठ, श्रवणवेलगोला, श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय मौरेना एवं श्री गणेश दिगम्बर जैन महाविद्यालय सागर से, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न एवं शास्त्री तक की शिक्षा प्राप्त की। आपने तत्वार्थसूत्र, भक्तामर विशद व्याख्यान, प्रतिष्ठाविधि, महापुरुषों के जीवन चरित तमिलनाडु के प्रमुख जैन आदि अनेक ग्रंथों का सम्पादन किया है। आपको तमिल भाषा के अतिरिक्त कन्नड़, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान है। आप वर्तमान में हिन्दी शिक्षक पद से निवृत होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, विधिविधान धर्मप्रचार एवं ग्रन्थ सम्पादन के कार्यो में संलग्न हैं।

पं. जंबूकुमार जी जैन संस्कृत के प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक हैं। आपको शास्त्री (जैन दर्शन) एम. ए. (संस्कृत) एवं हिन्दी से राजस्थान विश्वविद्यालय से और जैन दर्शन आचार्य (पूर्वार्द्ध) अजमेर विश्वविद्यालय से की है। शिक्षा शास्त्री (बी.एड.) की शिक्षा आपने श्री लालबहादुर शास्त्री सस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली से प्राप्त की है। आप 'अर्हत् तत्त्व' तमिल मासिक पत्रिका के सह-सम्पादक एवं कुन्दकुन्द शिक्षण सस्था पोन्नूर मलै के सक्रिय कार्यकर्त्ता है। वर्तमान मे आप दिगम्बर जैन आध्यात्मिक शिविरो का आयोजन, प्रवचन और विधि विधान कर के धर्म प्रभावना कर रहे हैं।

डॉ. रवीन्द्रकुमार जी का जन्म 15.12.1925 को उत्तर प्रदेश के झाँसी नगर में हुआ था। आपने एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) शास्त्री काव्यतीर्थ पी.एच.डी. एवं डी. लिट की उपाधियाँ प्राप्त कर 35 वर्ष तक अध्यापन का कार्य किया। आपके निर्देशन में 35 छात्रों ने पी.एच.डी और 50 छात्रो ने एम. फिल की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। आप निष्णात अध्यापक, प्रतिष्ठित लेखक उद्‌भट वक्ता एवं सुकवि हैं। आपने पजाब, आगरा एव तिरुपति विश्वविद्यालयों मे अध्यापन का कार्य किया है। आपको हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, तमिल एवं तेलुगु आदि भाषाओं का ज्ञान है। आपके द्वारा रचित कविवर बनारसीदास साहित्य लोचन के सिद्धान्त आदि अनेक शोध, समीक्षा एवं काव्य आदि बीस रचनाएँ हैं। आप कर्मठता और सघर्ष की निरन्तरता को सर्वोपरि मानते हैं। आपके शिष्यों ने आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर आपका सम्मान किया है।

पं. श्री मल्लिनाथ शास्त्री की शिक्षा पं. गोपालदास बरैया संस्कृत विद्यालय मोरेना मे हुई, यहाँ से आपने न्यायतीर्थ एवं शास्त्री की शिक्षा प्राप्त कर त्याग राय कॉलेज मद्रास में 35 वर्ष तक अध्यापन का कार्य किया आपने तमिल भाषा में मोक्ष शास्त्र आदि 35 ग्रन्थों को प्रकाशित किया है और हिन्दी मे तमिलनाडु का इतिहास, जीवक चिन्तामणि महाकाव्य नीति पथसार एव माल आदि ग्रंथों का सम्पादन किया है। आप दशलक्षण पर्व में प्रवचनार्थ बाहर जाते हैं। आपको श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ, धर्मस्थल आदि अनेक जगहों से सम्मान प्राप्त हुए हैं। आप जैन गजट के सह-सम्पादक हैं।

□

भोजन का उद्देश्य बल या आयु बढ़ाना, शरीर-पुष्टि और स्वाद नहीं, बल्कि संयम-ध्यान-ज्ञान की साधना में उसका सहकारी होना है।

पूर्वाञ्चल में प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

(असम, मणिपुर, नागालैण्ड)

—श्री कपूरचन्द जैन पाटनी, गुवाहाटी
सुश्री सरला जैन, विजयनगर

कपूरचन्द पाटनी, गौहाटी पूर्वांचल के सुप्रसिद्ध जैन विद्वान्, ओजस्वी वक्ता, कुशल सम्पादक, उच्च कोटि के लेखक एवं साहित्यकार कपूरचन्द पाटनी ने अपने तेजस्वी भाषणों एवं मौलिक लेखों से समाज में व्याप्त अंधविश्वास कुरीतियों एवं मुनि संस्था में व्याप्त शिथिलाचारों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है।

10 नवम्बर, 1941 को असम के कामरूप जिले के पलाशवाड़ी नगर मे श्रेष्ठी श्री चम्पालाल पाटनी की धर्मपत्नी भंवरीदेवी की कुक्षि से आपका जन्म हुआ। पलाशवाड़ी के दि. जैन पाठशाला मे आपने लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की। स्व. पं. गुलजारी लाल जी शास्त्री आपके बचपन के धर्मगुरु थे। प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त उच्च शिक्षा हेतु आपने कोलकाता की सेन्ट जेवियर्स कॉलेज से बी.ए. की परीक्षा पास की। एम. ए. तथा एल. एल. बी. करने के पश्चात् आपने 1986 में तथा 1991 में पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमति माताजी के सान्निध्य में जैनागम का अध्ययन किया।

गौहाटी समाज की विभिन्न संस्थाओं, अन्य अनेक मर्चेन्ट्स एसोसिएसनो में आपकी सेवाएं स्मरणीय रहेगी आपकी सेवाओं को दृष्टिगत रखते हुए दिसपुर समाज ने आपको 'समाज रत्न' आदि उपाधियों से अलंकृत किया था।

सन् 1991 में आपको जैन गजट का सह-सम्पादक नियुक्त किया गया। पार्षद पत्रिका मे शंका समाधान, अण्डों के सौ तथ्य, मांसाहार के सौ तथ्य को असमिया भाषा मे अनुवाद, आर्यिकाओं की चर्या, द्रव्य संग्रह पर प्रश्नोत्तर दीपिका आदी पुस्तकें स्थानीय हिन्दी अंग्रेजी पत्रों में आपके आलेख बड़े चाव से पढे जाते हैं।

पं. श्री उत्तमचन्द शास्त्री डीमापुर (नागालैण्ड) : आपका जन्म दि. 8 सितम्बर 1941 को सागर जिलान्तर्गत चुरारी ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम स्व. श्री पन्नालाल जी जैन तथा माता का नाम स्व. श्रीमती राजरानी जैन था। बचपन से ही आप कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। पढ़ने में आपकी विशेष रुचि रही। आपने इन्दौर, सागर तथा वाराणसी में शिक्षा प्राप्त करके क्रमशः सिद्धान्त शास्त्री, जैन दर्शनाचार्य, एम. ए. तथा आयुर्वेदरत्न की उपाधियाँ प्राप्त कीं। सन् 1916 तक अध्ययन करने के पश्चात् आपने बड़वानी मे हरसुखराय दि. जैन छात्रावास में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। तत्पश्चात् आपने खुरई में हायर सेकेण्ड्री स्कूल गुरुकुल में भी अध्यापन कार्य किया। सन् 1972 से आप डीमापुर में दि. जैन हाई स्कूल में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

श्री उत्तमचन्द जी शास्त्री एक कुशल प्रवचनकार हैं तथा विधि विधान के कार्यों में भी आप अत्यन्त कुशल हैं। पूर्वांचल के नागालैण्ड राज्य में रहकर आपने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का अद्वितीय कार्य किया है। आप परम मुनिभक्त और कट्टर आर्ष मार्गी विद्वान् हैं। आप अत्यन्त विनयशील एवं विनम्र स्वभावी हैं।

पं. श्री कपूरचन्द काशलीवाल (गुवाहाटी) : स्व. पं. कपूरचन्द जी काशलीवाल ने सन् 1959 से लेकर सन् 1986 तक श्री दिगम्बर जैन समाज गुवाहाटी में तथा श्री दिगम्बर जैन विद्यालय गुवाहाटी मे जैन धर्म के शिक्षक के रूप में अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रदान कीं। आपका जन्म सन् 1916 में कटूमर (अलवर) राजस्थान में हुआ था। आपके पिताजी का नाम स्व. करोड़ीमल जी काशलीवाल था। आपने सोलापुर से तथा व्यावर से शास्त्री एवं न्यायतीर्थ की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपका विवाह सन् 1945 में श्रीमती कमलादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। आपके दो पुत्र क्रमशः सुमेरचन्द

जो पाप, बेईमानी और कपट से कमाई रोटी खाता है, उसका तो पतन होता ही है, जिस परिवार में ऐसी रोटी आती है वहाँ भी धर्म नहीं टिक पाता। खान-पान का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है।

और शरदकुमार हैं। पुष्पा, सुनीता, तथा शारदा है आपकी तीन पुत्रियाँ हैं। स्व. पं. कपूरचन्द जी का पूर्वांचल में जैन धर्म के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप एक अत्यन्त सरल स्वभाव के मिलनसार व्यक्ति थे। सन् 1965 में गुवाहाटी में आयोजित पंच कल्याणक महोत्सव में आपने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप विधिविधान आदि सभी धार्मिक कार्य अत्यन्त निष्ठापूर्वक एव कुशलता से सम्पन्न कराते थे। आपके कारण ही जैन विद्यालय गुवाहाटी में धार्मिक पढ़ाई नियमित रूप से चलती रही तथा बच्चो में धार्मिक संस्कारों की नीव पड़ी। दि. 24 जुलाई 1986 को मात्र 70 वर्ष की उम्र में आपका देहावसान गुवाहाटी में हुआ।

पं. गुलजारीलाल जी शास्त्री : आपका जन्म 1992 ई. में सागर जिले के हनोतिया नामक गॉव के एक साधारण परिवार मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बालचंद जैन था। उनकी माता धार्मिक आस्था के लिए प्रसिद्ध थीं। चार वर्ष की कच्ची उम्र में ही इन्होंने अपने पिता को खो दिया। ये अपने माता-पिता के एकमात्र सन्तान थे। इनकी माता का देहान्त पिता के देहान्त से पहले ही हो चुका था, अतः बचपन से ही इनका जीवन सघर्ष में बीता। पिता के परम्परागत संस्कार का सहारा लेकर बालक गुलजारीलाल धीरे-धीरे सेवा, अध्ययन और सादगी के पथ पर उत्तरोत्तर विकसित होता गया।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा बनारस सस्कृत विद्यालय में हुई और वहीं पर इन्होने अपनी शिक्षा पूरी की। कुछ वर्षो बाद वे आसाम आये तथा पलासबाडी जैन समाज के सम्पर्क मे आकर इन्होने जैन समाज तथा धर्म की सेवा काफी लगन के साथ की।

अचानक ब्रह्मपुत्र के भयानक प्रकोप ने पलासबाड़ी को अपनी गोद में ले लिया। उसके बाद विजयनगर की स्थापना हुई जिसके कर्णधार पण्डित गुलजारीलाल शास्त्री थे। यहॉ स्थायी रूप से रहकर इन्होंने अपनी जिन्दगी के शेष साल पूरे किए। विजयनगर जैन समाज तथा धर्म की सेवा करने के अलावा इन्होंने विजयनगर को अन्य क्षेत्रो में काफी आगे बढ़ाया। इन्होंने विजयनगर में श्री दिगम्बर जैन स्कूल की स्थापना की। खुद एक साधारण अध्यापक का कार्यभार सम्हालकर इन्होंने जैन धर्म के मूल तत्त्वों तथा साहित्य का ज्ञान स्कूली बच्चों को दिया। अपने असाधारण ज्ञान, सुन्दर वक्तृत्व तथा निपुण अध्यापन शैली से छात्रो का मन मोह लिया। पाण्डित्य, ज्ञान और धर्म के क्षेत्र में नई सूझ-बूझ के कारण उन्हें दूसरे प्रान्तों में भी ख्याति मिली। इनके प्रवचन पर आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ने कहा था–"पण्डित गुलजारी का प्रवचन केवल विजयनगर जैन समाज के लिए ही गौरव की बात नही है।"

शनिवार 8 जून 1994 को लगभग रात के 11 बजे बीमारी से पीड़ित पण्डित गुलजारी लाल जी गॉववासियों को शोकाभिभूत छोड़कर सदा के लिए चले गए। उन्होंने अपना सारा अस्तित्व विजयनगर जैन समाज के लिए अर्पित कर दिया था।

पण्डित वीरेन्द्रकुमार शास्त्री : आपका जन्म सवाई सिंघई परिवार में 1 जनवरी 1964 को अजनौर जिला-टीकमगढ (मध्यप्रदेश) में हुआ था। आपके पिता-स. सि. स्व. श्री बाबूलाल जी और माता-श्रीमती ललिता देवी है आपका पॉच भाई और दो बहिनों से भरा-पूरा परिवार है। आपका विवाह श्रीमती मीना देवी जी, सुपुत्री स्व. मथुरा प्रसाद जी बडागॉव (धसान) टीकमगढ़ (म.प्र.) के साथ संपन्न हुआ था। आपके पिताश्री कम उम्र में ही छोड़ बसे। 13 वर्ष की अवस्था मे ही आपको द्वितीय भाई (पं. ज्ञानचन्द्र जी) के सहारे पर रहना पडा।

प्राथमिक शिक्षा जन्मस्थान अजनौर से एवं उच्चशिक्षा संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राप्त की। विशारद परीक्षा सेठ माणिकचन्द दि. जैन परीक्षालय मुम्बई एवं शास्त्री परीक्षा आर्यिका रत्न ज्ञानमती दि. जैन परीक्षालय बोर्ड हस्तिनापुर (उ.प्र.) से प्राप्त की। आप तेंदूखेड़ा नरसिंहपुर (म.प्र.) चिरगॉव (झॉसी) (उ. प्र.) बड़ागॉव (धसान), टीकमगढ (म.प्र.)। डीमापुर, नागालैण्ड आदि स्थानों पर सेवाएँ प्रदान करते हुए 1992 से विजय नगर कामरूप (असम) में कार्यरत हैं। ☐

मतभेद सदा रहे हैं और रहेंगे। हम इतना तो कर ही सकते हैं कि दूसरों के दृष्टिकोण की उपेक्षा न करें और न बलात् उन पर अपनी राय ही थोपें।

मध्य प्रदेश के प्रमुख दि. जैन मनीषी (ब)

—डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर

पं. पदमचन्द्र— आपका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल बुधवार वि. सं. 1928 को लश्कर में हुआ। आपके पिता नगर के प्रसिद्ध विद्वान् पं. लक्ष्मीचन्द्र जी थे। उनके निर्देशन में आपने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। आपकी एक रचना पद्य में दशलक्षण धर्म है। आप धार्मिक अनुष्ठान, सिद्धचक्र मण्डल विधान, तीन लोक विधान आदि सम्पन्न कराने पूरे देश में जाते थे। आपका निधन अप्रैल सन् 1952 में हुआ।

प्रोफेसर घासीराम जैन— आपका जन्म यद्यपि श्रीनगर गढ़वाल में हुआ था। लेकिन शिक्षा मेरठ (इन्टर तक) एवं इलाहाबाद (एम. एससी.) में हुई। आप ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज (वर्तमान में महारानी लक्ष्मीवाई शा. स्वायतशासी महाविद्यालय) में भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर हुए। वहाँ से रिटायर होने पर ग्वालियर इंजीनियर कॉलेज में प्रोफेसर नियुक्त हुए। आपने तत्त्वार्थसूत्र के सम्बन्धित अध्याय का अंग्रेजी मे अनुवाद कर Cosmology old and New पुस्तक लिखी जिसकी सर्वत्र सराहना हुई।

आपने अनेकों लेख लिखे जिनमें जैनधर्म के सिद्धान्तों को विज्ञान सम्मत प्रमाणित किया। आपके विज्ञान सम्मत लेखों का संकलन श्री प. कपूरचन्द्र बरैया ने किया जो प्रकाशित भी हुआ।

पं. सागरचन्द्र बडजात्या— आपका जन्म 3 नबम्वर 1919 को लश्कर ग्वालियर मे हुआ। 1937 मे विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर से मैट्रिक पास किया। आयुर्वेद और फलित ज्योतिष मे भी आपकी अभिरुचि थी। आपने अनेक पदों पर रहते हुए शासन में सेवाएँ दी एव पूज्य 105 क्षुल्लक श्री गणेशवर्णी एवं ब्र. मूलशंकर देशाई के उपदेशों से प्रभावित होकर कई ग्रन्थों का पद्यानुवाद किया जैसे-समाधितंत्र, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार और ज्ञानार्णव के पद्यानुवाद की स्वतन्त्र रचनाऍ लिखी। इसके अलावा लगभग 36 स्फुट कविताएँ अप्रकाशित हैं जैसे-देवस्तोत्र, बारहभावना, ईर्यापथमहिमा, सुबोधपचीसा, नीतिदोहे, भक्तिएकादशी आदि।

फूलचन्द काला— आपका जन्म सन् 1899 ई. में हुआ। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपने समयसार, प्रवचनसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक का अध्ययन किया। आपने 'मानव विकास साहित्य सदन' के नाम से पद्य में छोटे-छोटे ट्रेक्ट प्रकाशित किए (1) हम दुखी क्यों हैं (2) सदाचार, (3) बुद्धि विलास (4) आदर्श भावना और कर्त्तव्य (5) सच्चाई को पहचानो (6) धर्मस्वरूप (7) उपकारी बनो (8) सत्य को पहचानो आदि। इनमें सरल शब्दों में कविताओ द्वारा अपने धार्मिक विचारो को व्यक्त किया गया है।

पं. लक्ष्मीचन्द्र जैन— आपका जन्म मध्यभारत की राजधानी लश्कर नगर मे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी वि. सवत् 1903 में धर्मनिष्ठ श्रेष्ठिवर्य मन्नालाल जी के घर हुआ था। आपने 6 वर्ष की अवस्था में ही कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते हुए भक्तामर पाठ, जिनसहस्रनाम, अमरकोश आदि संस्कृत के ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर लिया था। आपने दो ग्रन्थों की रचना की (1) जैन सिद्धान्त के अनुसार 'लक्ष्मीविलास' (2) जैनेतर शास्त्रानुसार—"अज्ञानतिमिर मार्तण्ड"। आपको समाज द्वारा सम्मानित किया गया एवं अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया।

पं. प्यारेलाल बवरैया 'लाल' आपका जन्म वि. सं 1960 के श्रावण मास में ग्राम रायपुर (जिला-ग्वालियर) में

भौतिकता को औंधने और सहेजने वाला सम्राट् हो सकता है किन्तु एक संत की प्रभुता के सामने उसका वैभव तुच्छ ही माना जाएगा। सम्राट् और संत में संत ही महान् है।

हुआ था। आपकी शिक्षा मुरैना विद्यालय में गुरुवर्य पं. गोपालदास बरैया की देखरेख में हुई। 1976 से आपने लश्कर में अपना व्यवसाय शुरू किया। आपने 50 वर्ष की आयु तक व्रतादि नहीं किए परन्तु वि. सं. 2010 में सराफा जैन बड़ा मन्दिर जी में पं. धन्नालाल जी ग्वालियर वालों के प्रवचन सुनकर आपका मन अध्यात्म की ओर झुक गया। आपने अध्यात्म के सभी शास्त्रों का अध्ययन कर अनेकों पुस्तकें लिखी जो अध्यात्म प्रेमियों को बड़ी रुचिकर सिद्ध हुई हैं। वे पुस्तकें पद्यात्मक हैं जिसमें दोहा, छन्द, सवैया आदि हैं। आपका उपनाम 'लाल' है इसी नाम से रचनाएँ करते हैं।

आपकी रचनाएँ निम्न हैं–अध्यात्म भावना, अध्यात्म चालीसा, अध्यात्म बहत्तरी, भेदज्ञान चालीसा, दर्शन पचीसा, द्वादशानुप्रेक्षा, वारह भावना, तीन की महिमा एवं प्रश्न उत्तर, जैनधर्म शतक, चौबीस ठाणा के उत्तर भेद, दान प्रथा, सुख पाने के सम्यक् उपाय, सार समुच्चय, रयणसार पद्यानुवाद, आत्म प्रबोध ग्रन्थ, अध्यात्म भक्ति भजन भावना, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अध्यात्म प्रश्न उत्तरी, शान्ति पथ प्रदर्शक, वरहिया विलास भाग 1 व 2, कर्ता कौन, जीव की 46 शक्तियाँ, आत्मार्थी जीवों की भावनाएँ।

श्री रामजीत जैन एडवोकेट : आपका जन्म 2 जनवरी 1923 ई को कुरांचित्रपुर जिला आगरा में हुआ था। आपके पिता श्री करनसिंह जैन एवं माता श्रीमती रोनाबाई जैन थी। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती कपूरी देवी जैन था। आपने प्रारम्भ में ग्वालियर आकर वकालात आरम्भ की लेकिन आपका रुझान समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की ओर गया और आपने लेखन कार्य प्रारम्भ किया। इसी क्रम में आपकी लगभग 14 पुस्तकें एक के बाद एक प्रकाशन में आ चुकी हैं– गोपाचल सिद्धक्षेत्र, श्री दिगम्बर जैन बरैया समाज का इतिहास, जैसवाल जैन इतिहास, गोपाचल जिनेन्द्र पूजाञ्जलि, श्री दिगम्बर जैन खरौआ समाज का इतिहास, विजयवर्गीय इतिहास, गोलालारे जैन जाति इतिहास, ग्वालियर गौरव गोपाचल, सोनागिर वैभव, गिरनार माहात्म्य, अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ, चम्बल घाटी का अतिशय क्षेत्र सिंहौनियाँ, तीर्थ क्षेत्र मथुरा, हस्तिनापुराख्यान, दिगम्बर जैन बुढेलवाल समाज का इतिहास, तीर्थक्षेत्र कम्पिलाजी।

आपकी अभी दो कृतियाँ अप्रकाशित है–दि. जैन पद्मावती पुरवाल समाज, भक्ति संगीत समयसार

आपकी इस मौन साधना एवं कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए श्रुतसंवर्धन सस्थान मेरठ की ओर से आपको पुरस्कृत किया गया है। अभी भी आप निरन्तर लेखन कार्य में संलग्न है

डॉ. कैलाशकमल जैन · आपका जन्म 30 अगस्त 1926 को अग्रवाल वैश्य परिवार मे ग्वालियर मे हुआ। आपके पिता वैद्य एवं कवि श्री श्रीलाल जैन थे। आप आर. एम. पी. आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा के पंजीयक डॉक्टर हैं। पूर्व में आपने 1969 से 1975 तक वकालत भी की। आपका हिन्दी उर्दू साहित्य की सभी विधाओ में उत्कृष्ट लेखन कार्य है। आप धार्मिक स्थलों से सम्बन्धित आख्यानों एव अनुश्रुतियों को गीतबद्ध कर उनको जनहित मे प्रकाशित करते हैं। "चदाप्रभु के दर्शन करने सोनागिर को जाऊँगी" आपका प्रसिद्ध भजन है। आप अनेक संस्थाओ से जुड़कर समाज सेवा के कार्यो में सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

डॉ. कृष्णा जैन : आपका जन्म 23 जुलाई 1959 में गुरसरायँ (जिला झाँसी) में हुआ। आपके पिता श्री खेमचन्द्र जैन एव माता श्रीमती केसरबाई हैं। आपकी इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा तो गृहनगर में हुई उसके बाद बी. ए. (टीकमगढ़, म. प्र.) से एवं एम.ए., पी-एच.डी. सागर विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आपने 'षट्दर्शनो मे सृष्टि एव लय की धारणा का उद्भव एवं विकास" पर शोधोपाधि प्राप्त की। दर्शन विषय के अध्ययन मे गृदं माता पिता के धार्मिक संस्कारों से आपकी भी धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में रुचि जागृत हुई। तभी से अनवरत रूप से आप सामाजिक, धार्मिक

भाग्यशाली वह नहीं है, जिसके पास अकूत दौलत है। भाग्यवान है वह, जो दौलत को लात मारकर अपरिग्रही और अनासक्त बन चुका है।

संस्थाओं से जुड़कर समाज सेवा एवं अपनी लेखनी से श्रुत देवता के भण्डार में वृद्धि कर रही हैं। इस समय आप ग्वालियर के महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य उत्कृष्ट महाविद्यालय में संस्कृत की प्राध्यापिका हैं। आपके निर्देशन में छह शोध छात्र जैन धर्म एवं दर्शन के विषयो पर शोधकार्य कर रहे हैं। आपने उपाध्याय श्री ज्ञान सागर जी महाराज के प्रवचनों का सम्पादन किया है जिसकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं– अभय की साधना, क्षणभंगुर जीवन।

दो पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन दिल्ली की ओर से आपको 'प्रतिभा सम्मान', एवं अमेरिकन वायोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट अमेरिका के द्वारा आपको 'वूमेन ऑफ द ईयर '2002' का सम्मान प्राप्त हुआ है। आप देश की शीर्षस्थ संस्थाओं की सदस्य एवं विभिन्न महिला संगठनो की पदाधिकारी रहते हुए समाज सेवा एवं लेखन कार्य में संलग्न हैं।

डॉ. श्रीमती जया जैन : आपका जन्म 4 जनवरी 1962 में ग्वालियर नगर में हुआ। आपके पिता श्री.वी.के. जैसवाल एवं माता श्रीमती मालती जैसवाल हैं। आपके पति श्री आर. के. जैन अपर कलैक्टर ग्वालियर में पदस्थ हैं। आप शासकीय कमलाराजा कन्या महाविद्यालय ग्वालियर में चित्रकला की प्राध्यापिका हैं। आपने 'जैनधर्म में प्रतीक का कलात्मक पक्ष 'एक अध्ययन' पर जीवाजी विश्वविद्यालय से शोधोपाधि प्राप्त की है। आपके विभिन्न पत्र पत्रिकाओं मे जैनदर्शन एवं कलात्मक विषयों पर अनेकों लेख प्रकाशित हुए है। अनेक कलाकेन्द्रों, आर्ट गैलरियों तथा कला वीथिकाओं में अपने चित्रो की प्रदर्शनियॉं आयोजित की हैं एवं अनेक शोध संगोष्ठियों में जैनदर्शन एव सामाजिक विषयो पर शोध पत्र प्रस्तुत किए है।

डॉ. कान्ति जैन : आपका जन्म राजनांदगॉव (म.प्र.) में हुआ। आपके पति डॉ अभयप्रकाश जैन ग्वालियर में लेखा कार्यालय मे पदस्थ हैं। आप भी लगभग 20 वर्षो से ग्वालियर के ही लेखा कार्यालय में पदस्थ हैं एवं निरन्तर अपने कार्य के ही साथ जैन धर्म एवं दर्शन की संगोष्ठियों मे अपने शोधपत्र प्रस्तुत करती हैं। आपके समसामयिक विषयों पर अनेक आलेख विभिन्न पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। विभिन्न महिला सगठनों में सम्बद्ध रहकर समाज सेवा में संलग्न हैं।

पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य स्याद्वादवाचस्पति, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ जैसी उपाधियों से अलंकृत, गुरुणां गुरु श्री पं. दयाचन्द्र साहित्याचार्य का जन्म बांदरी जिला, सागर (म.प्र.) में हुआ। साधारण अवस्था होने पर भी आप कभी असन्तुष्ट नहीं रहे, छोटी सी किराने की दुकान से ही आप अपनी आजीविका चलाते रहे और मोराजी में अध्यापन कार्य करते रहे। पूज्य वर्णी जी के अनन्य भक्त पं. जी के सैकड़ों शिष्य आज जैन धर्म की महती प्रभावना कर रहे हैं। आपको जैनागम के अनेक ग्रन्थ कण्ठस्थ थे, जब आप बोलते थे तो ऐसा लगता था मानों सरस्वती आपकी जिह्वा पर आ गई हो। आपका निधन 1974 में सागर में हुआ। आपके नाम पर मोराजी, सागर मे 'दयाचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री स्मृति भवन' की स्थापना की गई है।

डॉ. प्रकाशचन्द जैन गणित के अध्यापन से जुडे डा. प्रकाश चन्द जैन का जन्म 1942 में सागर (म.प्र.) में हुआ। बचपन में ही आप में जैन धर्म और साहित्य के प्रति लगाव हो गया था क्योंकि आपके पिताश्री सुप्रसिद्ध विद्वान् और जैनमित्र के सम्पादक थे। आपने जैन गणित के रहस्यों को खोजा और समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ में लेख लिखते रहे। स्पष्ट वक्ता के रूप में आप विख्यात रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र में आप अनेक वर्षो से सक्रिय हैं और वर्तमान में अनेक वर्षो से उदासीन आश्रम, सागर के मन्त्री पद पर रहते हुए धर्म की सेवा कर रहे हैं।

जड़ के सुखी होने में जड़ पदार्थ निमित्त बनते हैं, किन्तु चेतन का सुख प्रेम, करुणा, सहानुभूति, क्षेम, क्षमाशीलता, सरलता आदि सद्गुणों के विकास में है।

पं. फूलचन्द्र शास्त्री डेह, नागौर, दाहोद, इम्फाल आदि शहरों में अध्यापन कार्य करते हुए जैन विषयों पर लेख लिखने वाले फूलचन्द्र जी का जन्म 1899 ई. में बुढ़वार, जिला ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ। वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय से शास्त्री उपाधि लेने वाले पं. जी ने जैन जन-जागरण का जो कार्य किया वह अद्वितीय है। 28.5.1984 को सागर में समताभाव पूर्वक आपका देहावसान हो गया।

पं. बालचन्द्र जैन सिद्धान्तशास्त्री सिद्धान्तभूषण, धर्मदिवाकर जैसी उपाधियों से अलंकृत तथा षट्खण्डागम परिशीलन जैसे महनीय ग्रन्थ के लेखक पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री का जन्म 1905 ई. में सोरई, जिला-ललितपुर (उ.प्र.) में हुआ। आपने स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी से शिक्षा प्राप्त की और मथुरा, गुना, जारखी आदि के विद्यालयों में शिक्षण कार्य किया। षट्खण्डागम प्रकाशन कार्यालय अमरावती में आप लम्बे समय तक रहे और षट्खण्डागम (धवला सहित) भाग 6 से 16 तक का सम्पादन और अनुवाद किया। आपके अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं-जम्बूद्वीवपण्णत्ती, आत्मानुशासन पद्मनन्दिपंचविंशतिका, लोक विभाग, पुण्याश्रवकथाकोष, धर्म परीक्षा आदि। वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली से आपका महत्त्वपूर्ण कोष तीन भागों में–'जैनलक्षणावली' के नाम से प्रकाशित हुआ है। आपका निधन हैदराबाद में हुआ।

पं. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री जैनागम ग्रन्थों के तलस्पर्शी विद्वान् पं. भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री का जन्म 1911 ई. में सेवारा जिला-सागर (म.प्र.) में हुआ। बाद में आप सागर आ गए। प्रतिदिन स्वाध्याय, सामायिक, चारों अनुयोगों का लेखन और अध्ययन आप करते थे। प्रवचन भी आप किया करते थे। 1942 के आन्दोलन में आपने भाग लिया और सागर जेल मे 6 माह का कारावास भोगा। आपका निधन सागर मे हुआ। आपको श्रुत सवर्धन पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। कुछ समय आपने अध्यापन कार्य भी किया 'धवला के सोलह भागों की अनुक्रमणिका' तथा 'न्यचक्र' आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं।

पं. भूपेन्द कुमार जैन दौलतराम, द्यानतराय आदि जैन कवियों के भजनों का सस्वर पाठ कर धार्मिक चेतना का संचार करने वाले पं. भूपेन्द्र कुमार का जन्म भौंरासा (विदिशा) म. प्र. में 1913 ई. में हुआ। आपने वाराणसी से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके पिता जी भौरासा में मन्दिर जी में शास्त्र वाचन करते थे, उन्ही के संस्कारों के कारण आप नौकरी प्रारम्भ करके भी उसका सफल निर्वाह नहीं कर सके और गंजबासौदा में आकर व्यवसाय करने लगे। वहाँ स्टेशन के समीप मन्दिर निर्माण में आपने महती भूमिका निभाई और अन्त समय तक मन्दिर की व्यवस्था मे योगदान देते रहे, शान्त परिणामों के साथ 26.6.1972 को आपका निधन हो गया।

□

आदमी का सभ्य होना तो जरूरी है ही, किन्तु उसे सुसंस्कृत भी होना चाहिए। संस्कारों के अभाव में सभ्यता मानवता के लिए बोझ बन जाती है।

हरियाणा के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—डॉ धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र

बाबू न्यामत सिंह जैन : हरियाणा में बीसवीं शती के जैन मनीषी विद्वान् साहित्यकारों में पूज्य बाबू न्यामत सिंह जी जैन का नाम अग्रणी है। आपने एक मात्र जैन धर्म-दर्शन पर ही अपनी लेखनी नहीं चलाई बल्कि उस समय के सम सामयिक विषयों को भी अपनी रचनाओं में प्रचुरतया उजागर किया है। आपका जन्म सन् 1866 में हांसी शहर के सुप्रतिष्ठित एवं सम्पन्न दिगम्बर जैन परिवार में हुआ था। सन् 1904 में आपकी प्रथम पुस्तक 'जिनेन्द्र भजन माला' के नाम से लखनऊ से प्रकाशित हुई जो हाथो हाथ बिक गई। आपको प्रचुर ख्याति प्राप्त हुई आपका साहस दुगुना हो गया और आपने भजनों पर भजन लिख डाले। भगवान जिनेन्द्र की स्तुति परक भजन सग्रहो मे जैन भजन रत्नावली, जैन भजन तरंगिणी, जैन भजन मुक्तावली, राजुल भजन एकादशी, स्त्री जैन भजन पच्चीसी, कलयुग लीला भजनावली और जैन भजन शतक प्रमुख हैं। आप द्वारा रचित सती कमल श्री नाटक, भविसदत्त तिलका नाटक, कुन्ती नाटक, चिदानन्द शिवसुन्दरी नाटक, अनाथरुदन नाटक, विजया सुन्दरी नाटक आदि नाटक अभिनीत किए जाते हैं। आपने और भी अन्य ग्रन्थों की रचना की जिनमें प्रमुख हैं। मूर्तिखण्डन प्रकाश, भगवान महावीर का जुहूर, स्वाभिमान रक्षा, जैन समाज दिग्दर्शन, सप्त व्यसन निषेध और थ्योरीकल जैन मंजरी आदि। इस तरह सब मिला कर आपके द्वारा रचित 20 पुस्तकें हैं।

पं. सम्भवकुमार जैन : आपका जन्म 5 फरवरी 1919 को मध्य प्रदेश के मुंगावली ग्राम में हुआ था आपने संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी से सम्पूर्ण मध्यमा एवं धर्म विशारद की उपाधियों प्राप्त की। आप सहृदय कवि हैं। जैन गजट, जैन मित्र, एवं जैन महिलादर्श जैसी पत्रिकाओं में आपके अनेक आलेख और कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

बाबू शेखरचन्द्र जैन : आपका जन्म 3 सितम्बर 1920 को हरियाणा की ऐतिहासिक नगरी रेवाडी के सुप्रसिद्ध जैन घराने में हुआ था। आपकी विचारधारा प्रमुख रूप से राष्ट्रीय गॉधी वादी एवं मानवतावादी रही है। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात भारत पाक युद्ध के समय आपने देश के कोने कोने मे जाकर नव जागृति का शंख फूँका। सकल दिगम्बर जैन समाज ने आपकी साहित्यिक सेवाओं से प्रेरित होकर 20 नवम्बर 1986 को दिल्ली अधिवेशन में आपको प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया है। आपके द्वारा लिखित काव्यो का संग्रह ''दीप जलता है अकेला'' मार्च 1997 को प्रकाशित हुआ है।

क्षु0 जिनेन्द्र वर्णी : आपका जन्म सन् 1921 में पानीपत के जैन परिवार में हुआ था। आपने बनारस में रहकर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए जिनमें उनका लेखन कार्य अधिक उल्लेखनीय है। ''शान्ति पथ प्रदर्शक'' ''जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश'' समण सुत्तं, वर्णी दर्शन आपकी प्रमुख कृतियों हैं, वाराणसी में अप्रैल 1981 में महावीर जयन्ती के सुअवसर पर वैशाली प्राकृत शोध संस्थान की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन किया गया जिसमें नगद राशि छोड़कर आपने अपने सम्मान स्वरूप ताम्रपत्र, साहित्य एवं चादर भेंट में स्वीकार की थी।

पं. ताराचन्द्र जैन शास्त्री : आप मध्य प्रदेश के बीना इटावा के मूल निवासी थे। आप 50-55 वर्षो से रेवाडी में निवास कर रहे थे। आप सुयोग्य शिक्षक थे। आपने साहित्यरत्न, प्रभाकर, बी.ए. और ओ.टी. उपाधियों धारण की

संसार के बंधन से छूटकर मोक्ष की प्राप्ति ही भव्य जीव का सर्वोच्च लक्ष्य है। जिनेन्द्र-भक्ति से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

थीं। आपके द्वारा निम्न ग्रन्थों की रचना की गई है। श्री शान्ति नाथ विधान, भगवान महावीर स्वामी विषयक मेरी जीवन झाकियॉं, बाबा लालमनदास का जीवन परिचय एवं जैन विवाह पद्धति। श्री शान्ति नाथ विधान आपकी बहुचर्चित कृति है।

श्रीमती चन्दनबाला जैन : आपका जन्म 3.10.1931 में हिसार में हुआ था। आपकी धार्मिक एव उच्च शिक्षा एम.ए. एवं प्रभाकर आरा (बिहार) में रह कर हुई। सामान्य ज्ञान में आपकी अधिकाधिक रुचि थी। जिसके फलस्वरूप ही आपकी प्रथम कृति विश्व दर्पण सन् 1960 में प्रकाशित हुई थी। दैनिक ट्रिब्यून, हरिगंधा, पंजाब सौरभ, प्रज्ञा साहित्य, दलित अस्मिता, काव्य गंगा, आभा, पंजाबी संस्कृति, दिगम्बर महासमिति पत्रिका, अग्रोहा धाम, अणुव्रत भावना, प्रेमवर्षा तथा जैन संगम टाइम्स आदि पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। आपने जीवन में अनेक विदेश यात्राएँ भी की हैं जिनमें इंग्लैण्ड, हालैण्ड, बैल्जियम, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, फ्रॉस और नेपाल प्रमुख हैं। आपको भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा डॉ अम्बेडकर फैलोशिप सम्मान, ताल कटोरा दिल्ली में श्री माता प्रसाद, राज्यपाल अरुणाचल प्रदेश के द्वारा प्रदान किया गया था।

पं. पद्मचन्द्र जैन शास्त्री : आपका जन्म 9.5.1942 को उत्तर प्रदेश ललितपुर जिले के ग्राम सिरगन मे संस्कारित जैन घराने में हुआ था। आपने दिगम्बर जैन गुरुकुल हस्तिनापुर तथा श्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त की इस दौरान आपने सिद्धान्तशास्त्री, साहित्य शास्त्री आदि उपाधियॉं अर्जित की। वाणीभूषण, सिद्धान्तदिवाकर सिद्धान्तरत्न एवं प्रतिष्ठाचार्य आदि अनेक अलंकरणों से विभूषित पण्डित पद्मचन्द्र जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी तो हैं ही साथ ही, एक अनुभवी विद्वान् तथा कुशल वक्ता भी हैं। आपकी भगवान महावीर और जैन धर्म, जैन धर्म और विश्वधर्म तथा जैन विवाह विधि ये तीन कृतियॉं प्रमुख हैं। जो आज भी जैनधर्म दर्शन के क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय हैं।

मॉं श्री कौशल : आपका जन्म 26 मई 1944 में श्री भगवान दास एव श्रीमती शकुन्तला देवी के गृहागण में हुआ था। योगिनी बन आपने देश के विभिन्न ऑंचलों में इस अध्यात्म योग पर अनेक शिविर लगाए जिसमें ध्यानयोग की महत्ता से जन-जन परिचित हुआ आपकी लेखनी से तद्विषयक अनेक कृतियॉं लोकप्रिय हुई। आपने लगभग 40 चातुर्मासों में महिलाओं, युवाओं एवं पुरुषों को नैतिक एवं धार्मिक संस्कारों से सुसंस्कृत किया है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। उत्तर प्रदेश की प्रमुख औद्योगिक नगरी गाजियाबाद के समीपवर्ती गॉंव मोरटा में जैन तीर्थ ऋषभांचल का निर्माण, दस हजार वर्ग गज के विशाल भूखण्ड पर स्वस्थ जीवन के लिए आरोग्य भारती का निर्माण, स्वस्थ मन रखने के लिए ध्यान केन्द्र एवं जीवन की पवित्रता के लिए 81 शिखरों से सयुक्त विशाल जिन मन्दिर का निर्माण आदि महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं।

डॉ. श्रीचन्द्र जैन : आपका जन्म मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) के ग्राम पुरबालियान के जाने माने धन धान्य सम्पन्न जैन कुल में 29 7.1940 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मुजफ्फरनगर एवं हस्तिनापुर में हुई तथा 1959 में उच्च शिक्षा को बनारस पहुँचे। आप संस्कृत, पालि-प्राकृत के साथ हिन्दी तथा अपभ्रंश भाषाओं के भी अधिकारी विद्वान हैं। प्रारम्भ से आपकी अभिरुचि लेखन, सम्पादन, पठन पाठन एवं सम्भाषण आदि में अधिक रही है। इसी कारण अब तक आपके स्नातकोत्तर स्तर के लगभग 20 समीक्षा ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे भी आपके अनेक खोजपूर्ण आलेख प्रकाशित हुए हैं। आप कुशल समीक्षक होने के साथ एक कुशल वक्ता तथा जैन

अकेली एक जिनभक्ति ही ज्ञानी के दुर्गति का निवारण करने में, पुण्य का संचय करने में और मुक्तिरूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है।

धर्म दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं।

डॉ. धर्मचन्द्र जैन : आपका जन्म 7.10.1940 को सागर, म.प्र. के मध्यम जैन परिवार में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री गणेशवर्णी संस्कृत विद्यालय मोराजी, सागर में हुई सन् 1960 में आपने बनारस से इन्टर तथा उत्तरमध्यमा द्वितीय वर्ष पास किया। आप संस्कृत, पालि-प्राकृत एवं अपभ्रश, इंग्लिश, हिन्दी के अधिकारी विद्वान् तो है ही इसके अलावा आप पुरातन राजस्थानी, गुजराती तथा मराठी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता हैं। 1985 में आप संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान में रीडर बने और जुलाई 1993 में आप इसी संस्थान में प्रोफेसर तथा डायरेक्टर भी बनें। आपने कुरुक्षेत्र में रहकर अध्यापन काल के दौरान जिन-जिन कार्यो को किया उनमें लेखन तथा मार्गदर्शन अधिक महत्त्वपूर्ण है। अभिधर्म देशना : बौद्ध सिद्धान्तों का विवेचन, जैन दर्शन में नय की अवधारणा, बौद्ध पारिभाषिक शब्दकोश, प्राच्य ज्योति (विश्व विद्यालय जनरल), आस्थाञ्जली, महाश्रवणी अभिनन्दन ग्रन्थ आदि आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

डॉ. श्रीमती किरणकला जैन : आपका जन्म 26.3.1951 में सागर म प्र. के सुसम्पन्न धार्मिक परिवार में हुआ था। आपके द्वारा लिखित एकमात्र ग्रन्थ 'स्याद्वाद मञ्जरी एक समीक्षात्मक अध्ययन' दिल्ली से सन् 1992 में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा जैन विद्या के विभिन्न पक्षों पर 10 से अधिक शोध आलेख विभिन्न पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके हैं। आप एक कुशल प्रशासक जैन विदुषी हैं। सम्प्रति आप कुरु क्षेत्र मे ही निवास करती हैं।

पं. हेमचन्द्र जैन चेतन : आपका जन्म ग्राम समर्रा (टीकमगढ) म.प्र. में सन् 1949 में हुआ था, समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख एवं कविताएँ प्रकाशित हुई। इसके साथ ही आपने पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा एक विश्लेषण आलेख भी लिखा जो उत्तम कार्य है। आपने अहमियत नामक लघु उपन्यास लिखा है। अनेक बार महावीर जयन्ती के अवसर पर रेडियों पर आपकी वार्ता प्रसारित हुई है। इन दिनों आप रेवाडी में निवास कर रहे हैं।

कवि मदनलाल जैन : आप का जन्म 26.11.1935 में ग्राम महोली जिला संगरूर (पंजाब) में हुआ था। आपने कवि हृदय पाया है फलतः आपके द्वारा अनेक मनोज्ञ काव्यों की रचना हुई है। सन् 1989 में आपका प्रथम उर्दू काव्य 'एबाव का नक्शे' प्रकाशित हुआ। 'फ्रिक में परिन्दे' यह दूसरा काव्य 1990 में छपा इसे भी खूब सराहा गया और सम्मानित हुआ। 'बेनाम अलाह' तीसरा उर्दू काव्य 1994 में छपा इसे 1995 में सम्मान मिला। आप 1993 में 58 वर्ष की उम्र में अध्यापन कार्य से सेवामुक्त होकर कुरुक्षेत्र में रह रहे हैं।

□

भगवान के गुणों के स्तवन से मोह के बंधन ढीले पड़ जाते हैं। मोह के पलायन करते ही शेष कर्म भी हथियार डाल देते हैं।

दिल्ली के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—डॉ. अनेकान्त जैन, दिल्ली

यशपाल जैन निष्काम साधक और नैतिकता के धनी श्री यशपाल जैन एक विशुद्ध गाँधीवादी साहित्यकार थे। वे अथ से इति तक अहिंसा और सत्य के पालक तथा अणुव्रत के पुजारी थे। आपका आदर्शवाद और अध्यात्मवाद उन्हें एक सच्चे धर्म पुरुष के रूप में प्रस्थापित करता है। वे कुशल लेखक तथा प्रभावक आत्म कथाकार थे। हिन्दी साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा बची हो जो उनकी लेखनी से अछूती रही हो। आत्म कथा स्वयं के बारे में एक निष्पक्ष आलोचना है। आत्मकथा के प्रारम्भिक पृष्ठो में बचपन की जिन स्मृतियो को आकलित किया है उसमें उन्होंने अपनी जीवन दृष्टि को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है। "मानवीय मूल्यों के बीज मेरे भीतर उसी बाल्यकाल में पड़े और वे धीरे-धीरे पल्लवित होते गए आज उन मूल्यों में मेरी जो गहन आस्था है वह बचपन के संस्कारों का परिणाम है, सादगी का जीवन आज भी मुझे बेहद प्रिय है और सर्व धर्म समभाव को मैं बहुत ऊँचा स्थान देता हूँ।' आप में साहित्यिक प्रतिभा का सूत्रपात स्कूली जीवन से ही शुरू हो गया था। आप 1946 में दिल्ली आकर सस्ता साहित्य मण्डल से जुड़ गए और मन्त्री के रूप में कार्य किया। यहाँ से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों का सम्पादन कार्य बड़े श्रम और निष्ठा के साथ करते रहे इसी मण्डल से दो पत्रिकाएँ 'त्यागभूमि' और 'जीवन साहित्य' भी आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित होते रहे। लगभग 50 वर्षो में आपने इसे एक सशक्त संस्थान के रूप में खड़ा कर दिया है। आप भारतीय साहित्य परिषद की दिल्ली शाखा के ऐसे अध्यक्ष थे जिसके अन्तर्गत काफी गोष्ठियॉ होती रही। सन् 1951 में आचार्य तुलसी ने जो अणुव्रत आन्दोलन प्रारम्भ किया था उसका अणुव्रत प्रवक्ता भी उन्हे बनाया गया था। सन् 1946 के बाद आपका यायावरीय व्यक्तित्व खुलकर सामने आया। आपने देश विदेश की अनेक यात्राएँ विभिन्न सन्दर्भो में की और उनके संस्मरण पुस्तकाकार रूप में लिखे जो प्रकाशित हुए और पुरस्कृत भी हुए। स्व राहुल सास्कृत्यायन एव रघुवीर सहाय के बाद यशपाल जी ही तीसरे लेखक थे जिन्होंने देश भ्रमण के साथ विदेश के 42 देशो की यात्रा की। आपकी सम्पादन कला की मर्मज्ञता का अनुभव साहित्यकारों के बीच एक प्रशंसा का विषय रहा है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं एवं अनेक अभिनन्दन ग्रन्थों का आपने कुशलता से सम्पादन किया। अनेकान्त के सम्पादक मण्डल में भी आप वर्षो तक रहे हैं। आप मूक साधक रहे हैं। आपको 1990 में पद्मश्री की उपाधि प्राप्त हुई थी।

पं. पद्मचन्द्र शास्त्री : आपका जन्म सम्वत् 1972 में ग्राम विलसी जिला बदायुँ उ.प्र में हुआ था। आपने मथुरा चौरासी ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम से व्याकरण तीर्थ की उपाधि प्राप्त की। शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला उपदेशक विद्यालय से जैन दर्शन के प्रचार प्रसार हेतु शिक्षा ग्रहण की तथा बाद में जैन दर्शन का प्रचार प्रसार सारे देश में किया सन् 1950 से 1964 तक स्याद्वाद विद्यालय वाराणसी में व्यवस्थापक पद पर रहकर जैन दर्शन शास्त्री, एम.ए. (प्राकृत) तथा वेदतीर्थ किया। सन् 1964 से आप वीर सेवा मन्दिर शोध संस्थान को अपनी सेवाएँ दे रहे हैं तथा वर्तमान में भी आप वीर सेवा मन्दिर के अनुराग के कारण अपना मार्ग दर्शन देते रहते हैं। आपको लीक पर चलना पसन्द नही था। अतः आपने अपने अनुभव एवं गहन अध्ययन से चिन्तन के मौलिक मोती खोजे, आपकी शोधपूर्णता, मौलिकता का प्रमाण आपकी जैन शासन के विचारणीय प्रसग, जरा सोचिए, हिमालय में दिगम्बर मुनि, तीर्थकर वर्धमान महावीर, सिद्धाणं जीवा :, मूल जैन संस्कृति अपरिग्रह, जैन ध्वज और उसका स्वरूप आदि कृतियाँ पठनीय हैं।

लगभग 20 वर्ष तक अनेकान्त पत्रिका का सम्पादन निर्भीकता और शोधपूर्ण ढंग से किया है। जिससे पत्रिका के उद्देश्य की पूर्ति हुई है। अनेकान्त की जो प्रतिष्ठा आज है वह सब आपके श्रम का ही परिणाम है। वर्तमान में

जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रिया में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही अहिंसक हो सकता है।

आप अनेकान्त पत्रिका के परामर्शदाता हैं।

पं. परमानन्द शास्त्री : आपका जन्म ग्राम निवार (म. प्र.) में सम्वत् 1962 में हुआ था। आपने श्री गणेशवर्णी संस्कृत विद्यालय सागर से न्यायतीर्थ एवं शास्त्री की उपाधि प्राप्त की थी। आपने सन् 1929 से 1935 तक खतौली, सलावा और शाहपुर की पाठशालाओं मे अध्यापन का कार्य किया। महाकवि रइधू व कवि वीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सर्वप्रथम शास्त्रीजी ने अपनी लेखनी चलाई थी। आप मूलत. निबन्धकार थे, निबन्ध लिखने के लिए वे मन्दिरो, पुस्तकालयों और शास्त्र भण्डारों की खाक छानते रहे। अनेक असुविधाओं का सामना करते हुए भी पाण्डुलिपियों में खोए रहते और सामग्री एकत्रित कर निबन्ध लिखा करते। आपके ऐसे निबन्धों की संख्या 500 है। जो अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर, और जैन सन्देश शोधांक आदि पत्रिकाओ में प्रकाशित होते रहे है। वीर सेवा मन्दिर संस्थान और उसके शोध पत्र "अनेकान्त" को सक्रिय बनाए रखने के लिए उसके सस्थापक पं जुगल किशोर मुख्तार, बाबू छोटेलाल एवं पं परमानन्द शास्त्री ये तीन मनीषी तीन स्तम्भो के रूप में प्रारम्भ से ही अविचलित खड़े रहे हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन : आपका जन्म 1948 मे कोतमा जिला शहडोल मे हुआ आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सतना एव कटनी में हुई साहित्याचार्य, जैन दर्शनाचार्य सिद्धान्त शास्त्री, एम.ए. (अर्थशास्त्र) की शिक्षा श्रीस्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में हुई। आपने कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय हरियाणा से पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की है। वात्सल्य रत्नाकर, अभिवंदना पुष्प, शान्तिनाथ चरित्र आदि अनेक ग्रन्थों का आपने सम्पादन किया है। आपके लगभग 100 शोधलेख एवं समसामयिक सन्दर्भो में अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। आप दिगम्बर जैन कॉलेज बड़ौत मे अर्थशास्त्र प्रवक्ता, श्री दिगम्बर जैन गुरूकुल प्राचार्य, श्री स्याद्वाद विद्यालय में दर्शन विभागाध्यक्ष आदि अनेक पदों को विभूषित करते हुए वर्तमान में श्री भारतवर्षीय अनाथ रक्षक जैन सोसाइटी, दरियागज के मुख्य पत्र जैन प्रचारक, मासिक के यशस्वी सम्पादक हैं।

पं. कुन्दनलाल जैन : आपका जन्म सन् 1926 में बीना (इटावा) जिला सागर में हुआ था। आपने एम.ए. (डबल) साहित्य शास्त्री, सोलापुर से की थी। मथुरा चौरासी गुरुकुल मे आपने अध्यापन कार्य किया। दिल्ली जैन ग्रन्थ रत्नावली, जैन इतिहास के प्रेरक व्यक्तित्व आदि आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। इसके अलावा लगभग 200-300 शोध लेख प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. अनेकान्त जैन : आपका जन्म 16.8.1978 को ग्राम दलपतपुर जिला सागर मे हुआ था, आपने एम.ए. (जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन), आचार्य (प्राकृत एवं जैनागम) आदि शिक्षा प्राप्त कर 'दार्शनिक समन्वय की दृष्टि : जैन नयवाद' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके लगभग 15-20 शोधपत्र प्रकाशित हैं एव लगभग 100 समसामयिक लेख प्रकाशित हुए हैं। देश के विभिन्न भागों में आप प्रवचनार्थ जाते हैं। जिन वाणी का प्रचार प्रसार एवं शोध करते हुए आप श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में दर्शन संकाय जैन दर्शन विभाग मैं व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. सुदीप जैन : आपका जन्म सन् 1962 में ललितपुर नगर में हुआ था। आपने एम.ए. (प्राकृत) एवं पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। आपके द्वारा सम्पादित एवं प्राक्कथन सहित पुस्तकों की संख्या बीस के लगभग है। "प्राकृतविद्यां" नामक अतिप्रतिष्ठित त्रैमासिक शोध पत्रिका का विगत आठ वर्षो आपने गरिमापूर्ण सम्पादन किया है। आपके सम्पादन काल में इस पत्रिका ने शोध पत्रकारिता जगत में नूतन प्रतिमान स्थापित किए हैं। आपको वर्ष 2002

संयम और सदाचार के बिना आत्मा की कोरी कहानी तोतारटन्त ही है।

का "राष्ट्रपति पुरस्कार" (महर्षि बादरायण व्यास पुरस्कार) प्राकृत भाषा और साहित्य के क्षेत्र में समग्र उल्लेखनीय योगदान के लिए भारत गणराज्य के महामहिम राष्ट्रपति की ओर से एवं कर्नाटक राज्य का प्रतिष्ठित गोम्मटेश विद्यापीठ सम्मान भी इस वर्ष आपको महावीर जयंती के शुभ अवसर पर सादर समर्पित किया गया। श्री लाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली में सम्प्रति आप प्राकृत भाषा विभाग में उपाचार्य (रीडर) हैं।

डॉ. जयकुमार उपाध्ये : आपका जन्म 1.6.1956 में हुआ था आपने एम.ए. (प्राकृत एवं ज्योतिष) एवं पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। आप श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय विद्यापीठ (मानित विद्यालय) नई दिल्ली में वरिष्ठ व्याख्याता एवं विभागाध्यक्ष, प्राकृत भाषा विभाग और संयोजक-प्राकृत भाषा प्रमाण पत्रीय एवं डिप्लोमा पाठ्यक्रम के पद पर कार्यरत हैं। आपको प्रतिष्ठाचार्य, वास्तुविद्या विशारद, ज्योतिषाचार्य, गृहस्थाचार्य एवं संगीतरत्नाकर आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त हैं।

डॉ. वीर सागर जैन : आपका जन्म 16.07.1962 को ग्राम गुढ़ाचन्द्रजी, जिला करौली राजस्थान में हुआ था आपने 'पं. दौलतराम कासलीवाल और उनका साहित्य' विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। जैन शतक, दौलत विलास, चतुर चिन्तामणि, श्रीपालचरित, षट्खंडागम अमृतझरना, अनंगधरा, निराला की कहानियों का यथार्थवाद, और अध्यात्म योगी राम आदि कृतियाँ आपके द्वारा सम्पादित अनुवादित एवं रचित हैं। आपके द्वारा लगभग 20 शोध आलेख लिखे गए हैं

डॉ. अशोक जैन : आपका जन्म 20.6.1962 को बण्डा (बेलई) जिला सागर म.प्र. में हुआ था आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बण्डा में हुई आपने शास्त्री, एम.ए. जैन दर्शनाचार्य की शिक्षा पूर्ण कर "आचार्य कुन्द कुन्द के ग्रन्थो का सस्कृत अध्ययन" विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। साधना के सूत्र, नैतिक शिक्षावली भाग 1 से 5 तक आपके द्वारा रचित एवं जिनेन्द्र पूजाञ्जलि सम्पादित है। आपके अनेक लेख प्रकाशित हैं। आप विधि विधान धार्मिक शिक्षण शिविरों का संचालन करते हैं।

डॉ. कमलेशकुमार जैन : आपका जन्म 21.6.60 को ककडारी, जिला ललितपुर उ.प्र. में हुआ था। आपने एम. ए., आचार्य (प्राकृत एवं जैनागम) की शिक्षा प्राप्त कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके द्वारा रचित जैन उद्धरण कोश भाग-1 एवं लगभग 50 शोध पत्र प्रकाशित हैं। वर्तमान में आप भोगी लाल लेहरचन्द्र इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डोलॉजी में एसोसिएट प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. कल्पना जैन : नई पीढ़ी के जैनविद्या एवं प्राकृत के विद्वत् समाज में श्रीमती डॉ. कल्पना जैन का नाम सुपरिचित है। डॉ. कल्पना ने मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर से संस्कृत साहित्य में एम.ए. तथा "भट्टारक वादिचन्द्रसूरिकृत सुलोचनाचरित का अध्ययन एवं सम्पादन" विषय पर 'विद्यावारिधि' की उपाधि प्राप्त की है। आपके अब तक 10-15 शोध आलेख भी प्रकाशित हुए हैं। विगत दो-तीन वर्षो से डॉ. कल्पना जैन श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली के प्राकृत विभाग में प्राध्यापिका पद पर नियुक्त है। इस समय आप जैन पाण्डुलिपियों के सूचीकरण प्रोजेक्ट के अतिरिक्त महाकवि राजशेखर के संस्कृत-प्राकृत काव्यों की समीक्षा विषय पर शोधकार्य भी कर रही हैं।

□

पश्चिम बंगाल के प्रमुख दिगम्बर जैन मनीषी

—डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता

जैनधर्म के अंतिम तीर्थकर भगवान महावीर ने अपने काल में बिहार प्रांत के अतिरिक्त पश्चिम बंगाल प्रान्त को ही सर्वाधिक प्रभावित किया था। इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। बंगाल के कुछ जिलों के वर्तमान नाम यथा वीरभूमि, सिंहभूमि वर्द्धमान आदि, यहाँ की स्थानीय प्राचीन जनजाति 'सराक' जो लाखों की संख्या में हैं तथा जो आज भी आचरण की दृष्टि से जैनाचार से सर्वाधिक नजदीक हैं और पुरुलिया जिलों के आसपास का सम्पूर्ण संभाग जहाँ आज भी खुदाई में यत्र-तत्र-सर्वत्र जैन शिल्प एवम् मूर्तिकला चहुँ ओर बिखरी पड़ी खुली आँखों से दिखाई पड़ रही है। गत दिनों कलकत्ता में आयोजित एक विशिष्ट समारोह में पं. बंगाल के पुरातत्त्व अधिकारी ने तो यह कहकर सबको आश्चर्य मे डाल दिया था कि बंगाल में मात्र पुरुलिया ही नही बल्कि करीब एक हजार पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण जैन साईट्स मौजूद हैं। खेद का विषय है कि वर्तमान में समाज में शोध-बोध के लिए वह जागरूकता एवं संसाधन उपलब्ध नही है, जो ऐसे बृहद् कार्यो के लिए आवश्यक होते है।

काल परिवर्तन हुआ एवम् यहाँ स्थानीय समाज में जैनधर्म का धीरे-धीरे लोप होता गया। आज जो कुछ भी परिलक्षित होता है, वह सब प्रवासी समाज का योगदान है। मशहूर है कि पूरे भारत में बंगाल जो आज सोचता है; पूरा देश बीस वर्ष पश्चात् सोचता है। यह भूमि हर क्षेत्र में सदैव अग्रणी रही है तथा विद्वत्ता में तो बंगाल का नाम पूरे विश्व में आदर के साथ लिया जाता है। विश्व के किसी भी कोने मे, किसी भी देश के प्रमुख शिक्षण सस्थान मे बंगाली प्रोफेसर-डॉक्टर अवश्य देखा जा सकता है। जैन धर्म और जैन दर्शन पर भी स्थानीय अनेको बंगाली विद्वानो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री सातकोढ़ी मुखर्जी एवं श्री शरत्चन्द्र घोषाल सदृश मनीषियों का विशिष्ट योगदान रहा है और आज भी सत्यरंजन बनर्जी जैसे नाम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुविज्ञात हैं। खैर इस आलेख का यहाँ सीमित क्षेत्र है तथा बीसवीं सदी के प्रमुख दिगम्बर जैन विद्वान् जिनका कर्म क्षेत्र बंगाल रहा है, उन्ही तक सीमित है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के स्वर्णजयंती वर्ष 2001 पर प्रकाशित ग्रंथ "ज्ञानायनी" जो मुझे गत दिनों ही प्राचार्य डॉ. शीतलचंद्रजी ने सस्नेह भेंट स्वरूप दिया था, अभी मैं देख रहा था और मेरा ध्यान चला गया सन् 1973 के शिवपुरी में दिए गए समाज के सशक्त हस्ताक्षर वरिष्ठ जैन मनीषी डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया, न्यायाचार्य के अध्यक्षीय उद्बोधन पर, जिनकी निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"विद्वत्परिषद् के जन्म से ही मेरा संबंध रहा है। इसके जन्म की महत्त्वपूर्ण घटना सन् 1944 में कलकत्ता में वीर शासन महोत्सव का विशाल आयोजन था। इस आयोजन के कार्यक्रमों में अंग्रेजी भाषा के विशेषज्ञ को ही प्राथमिकता दी गई थी। आयोजन में सम्मिलित समाज के विद्वानों का योगदान नहीं लिया गया था। यद्यपि वहाँ बहुसंख्यक मूर्धन्य विद्वान थे। इससे विद्वानों के स्वाभिमान को चोट पहुँची। उधर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के जैन विद्या विभाग से पठित भाषण में कुछ ऐसी स्थापनाएँ की गई थीं, जो दिगम्बर जैन मान्यताओं के प्रतिकूल थीं। इन दो कारणों से वहाँ एकत्र नए पुराने सभी विद्वानों ने एक स्वर से अनुभव किया कि दिगम्बर जैन सिद्धान्तों के संरक्षण और विद्वानों में परस्पर सौहार्द एवं ऐक्य स्थापन के लिए उनका एक संगठन होना आवश्यक है। फलतः ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध स्वर्गीय पण्डित श्रीलालाजी पाटनी अलीगढ़ की अध्यक्षता में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना की गई। उल्लेखनीय है कि परिषद् का शुभारम्भ कलकत्ता में ही जैन भवन में आहूत उस बैठक से हुआ, जो महोत्सव में पधारे उक्त भाषणकर्ता के साथ उनकी स्थापनाओं पर चर्चा करने के लिए आयोजित की गई थी। उपस्थित

हे प्रभो! आपकी स्तुति से मेरे समग्र पाप क्षण भर में उसी प्रकार समाप्त हों, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से रात्रि का सघन अंधकार नष्ट हो जाता है।

विद्वानों में अपूर्व उत्साह एवं उल्लास देखा गया था और सभी ने परिषद की सार्थकता तथा आवश्यकता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था।

स्पष्ट है कि जैन समाज के मूर्धन्य विद्वानों द्वारा जैन शासन के संरक्षण प्रचार एवम् विद्वानों की सामयिक उन्नति हेतु स्थापित इस विद्वत् परिषद को जन्म देने का क्रान्तिकारी कदम बंगाल की धरती पर ही उठा था। अब हम एक संक्षिप्त झलक लेते हैं इस कर्म भूमि को प्रणम्य बनाने वाले कुछ उल्लेखनीय जैन मनीषियों की-

ब्र. शीतलप्रसाद जी— जैनधर्म भूषण ब्र० शीतलप्रसादजी जैन समाज के एक अनूठे सेवक हुए है। आपका जन्म सन् 1879 में हुआ था। श्री मक्खनलालजी आपके पिताश्री थे, जो मध्यमवर्गीय गृहस्थ थे। आपकी माता का नाम श्रीमती नारायणी देवी था। आप अपने पितामह श्री मंगलसेनजी के साथ आठ वर्ष की अवस्था में ही कलकत्ता चले आए थे। वहीं आपने शिक्षा प्राप्त की तथा आपका विवाह भी वहीं कलकत्ता निवासी श्री छेदीलालजी गुप्त की कन्या से सन् 1893 मे कर दिया गया। 1896 में मैट्रिक तथा 1891 में एकाउण्टेण्टशिप की परीक्षा करने के पश्चात् रूहेलखण्ड मे आप रेलवे मे नौकरी करने लगे। अतिरिक्त समय में आप स्वाध्याय एवं समाजसेवा के कार्यो के रुचि रखते थे।

अचानक घटनाचक्र घूमा। आपके पिता श्री मक्खनलालजी का सन् 1903 में देहावसान हो गया और उसके बाद एक एक करके सन् 1904 की 9 मार्च को माता नारायणी देवी का, 13 मार्च को धर्मपत्नी का तथा 15 मार्च को नौजवान छोटे भाई पन्नालाल के शरीर-त्याग की अचानक घटनाओं से ससार की असारता आपको प्रत्यक्ष समझ में आने लगी और एक वर्ष तक वैराग्य भावना और संसार के प्रलोभनों के बीच अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरने के पश्चात् अन्ततः वैराग्य भावना आप मे बलवती हुई और 1905 मे आपने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

इस समय तक के इस अल्प जीवन मे ही आप कई महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके थे। जैन गजट का सम्पादक, दि० जैन अवध प्रान्तीय सभा के उपमन्त्री एवम् महासभा के अधिवेशनों में क्रियात्मक कार्य आदि सेवाए करने से आप जैनधर्म के अथक सेवक कहे जाने लगे। 1905 में सेठ माणिकन्द्रजी मुम्बई के अनुरोध पर आप मुम्बई चले आए। आपकी प्रेरणा से ही सेठजी ने मुम्बई, सांगली, आगरा, शोलापुर, कोल्हापुर, लाहौर आदि विभिन्न स्थानों पर धार्मिक सस्थाओं की स्थापनाएँ की।

सम्मानित पदवियाँ—1909 से 1929 तक आपने बड़ी कुशलता से 'जैनमित्र' (साप्ताहिक) का सम्पादन किया और अपने सम्पादकत्व में अनवरत विभिन्न विषयों पर उपयोगी एव सुधारवादी लेख लिखते रहे। 1909 मे शोलापुर मे श्री ऐलक पन्नालाल के समक्ष आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। 1913 में आपको जैनधर्म भूषण तथा 1924 मे इटावा मे विभिन्न संस्थाओं की ओर से धर्म दिवाकर की उपाधि समर्पित की गई। परन्तु वे इनसे निर्लिप्त रहे। आप कांग्रेस अधिवेशनों में भी सक्रिय भाग लेते थे। स्याद्वाद महाविद्यालय के अधिष्ठाता होने पर आपको कानपुर कांग्रेस के अधिवेशन में जैन समाज के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया था।

जैन परिषद की स्थापना—1923 में जैन महासभा के दिल्ली अधिवेशन में रूढिवादिता और प्रगतिशील विचारको में मतभेद उत्पन्न हो जाने से आपके नेतृत्व में प्रगतिवादियों ने भा. दि. जैन परिषद की स्थापना का निश्चय किया। इसमें प्रमुख थे बैरिस्टर चम्पतराय, श्री अजितप्रसाद जैन एवं बाबू कामताप्रसादजी। 1923 से ही परिषद के मुखपत्र 'वीर' का सम्पादन कार्य भी सहसम्पादक बाबू कामताप्रसाद जी के साथ आपने किया। 1923 में आप लखनऊ पधारे तथा कुछ धर्म पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद हेतु श्री अजितप्रसाद जी को प्रोत्साहित कर प्रकाशित की। आप बड़े ही सुधारवादी दृष्टिकोण के आदमी थे। 1927 में आपने विभिन्न संस्थाओ से त्यागपत्र दे दिए।

भगवान के गुणानुवाद से चित्त को शान्ति मिलती है और वह विकार-मुक्त होने लगता है।

आपका विश्वास था कि यदि प्रचार किया जाए, तो जैनधर्म राष्ट्रधर्म हो सकता है। विदेशों में जैन धर्म के प्रचार की बड़ी इच्छा बनी रहती थी। कम्पवायु रोग के कारण 1949 में स्वर्गवास हो जाने से यह इच्छा अपूर्ण बनी रही।

साहित्य सेवा—(1) आपने लंका व बर्मा जाकर बौद्धधर्म का विशेष अध्ययन कर जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान (अंग्रेजी) व हिन्दी में रचना कर दोनों धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। (2) लगभग 30 बड़े ग्रंथ, 2 छोटी पुस्तकों की रचना तथा 22 ग्रन्थों की टीकाएँ कीं। अंग्रेजी में 23 तीर्थकरों के चरित्र तथा What is Jainism लिखा जो उल्लेखनीय है। (3) अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन के साथ-साथ विशाल ग्रन्थ, बृहद् जैन शब्दार्णव का सम्पादन कार्य विशेष सराहनीय है। (4) गद्य-रचना के साथ-साथ पद्य-रचना भी लिखी और (5) इस प्रकार 30 वर्ष के ब्रह्मचर्य काल में आपने लगभग 77 ग्रंथ व पुस्तकें समाज को दीं, जो आपके लगभग 12 घंटे प्रतिदिन के स्वाध्याय एवं ज्ञानार्जन का प्रतिफल थीं।

स्वरचित ग्रन्थ—1. तत्त्वमाला द्वितीयावृत्ति, 2. गृहस्थ धर्म (तृतीय संस्करण), 3. अनुभवानन्द, 4. स्वसमरानन्द, 5. आत्मधर्म, 6. सुलोचना चरित्र, 7. सेठ माणिकचन्द्रजी का जीवनवृत्त, 8. प्राचीन जैन स्मारक-बंगाल, बिहार, उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, राजपूताना, मध्य भारत, बम्बई प्रान्त, मैसूर व मद्रास प्रान्त, प्रतिष्ठासार संग्रह, जैनधर्म प्रकाश, निश्चय धर्म का मनन, महिलारत्न मगनबाई का जीवन चरित्र, आध्यात्मिक सोपान, सुखसागर भजनावली (भाग 1-2), मोक्षमार्ग प्रकाशक, विद्यार्थी जैन धर्म शिक्षा, जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान (हिन्दी-2 भागों में, अंग्रेजी), मानवधर्म, सहजसुख साधन, सहजानन्द सोपान, जम्बूस्वामी चरित्र, जैनधर्म में अहिंसा।

हिन्दी टीकायें—छहढाला, नियमसार, समयसार, समाधिशतक, पंचास्तिकाय (प्रथम एवं द्वितीय भाग) इष्टोपदेश, समायिक पाठ (अमितगति आचार्य), समयसार कलश टीका, बृहत् स्वयम्भूस्तोत्र, श्रावकाचार (तारणस्वामीकृत), ज्ञानसमुच्चयसार एवं उपदेश शुद्धसार, मंगल पाहुड़ सारसमुच्चय (कुलभद्राचार्य), बारह भावना (अंग्रेजी), तत्त्वसार टीका (देवसेनाचार्य), योगसार टीका, आध्यात्मिक चौबीस ठाणा चर्चा, त्रिभंगीसार एवं देव पुरुषार्थ एवं बृहद् जैनशब्दार्णव द्वितीय भाग का सम्पादन।

पं. छोंगालालजी बज—तरुणाई से लेकर जीवन पर्यन्त समाजसेवा करने वाले निःस्वार्थ सेवी छोंगालालजी आज हमारे बीच नहीं है। उनकी सेवाओं तथा मृदुल व्यवहार को कोई भी सहृदय व्यक्ति भूल नहीं सकता। आपका जन्म सवाई माधोपुर में हुआ था। आपके पिताश्री भी एक कर्मठ एवं विद्वान् व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व को आपने अपने जीवन में पूरी तरह से उतार लिया। धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ आपने श्री दि. जैन संस्कृत कालेज जयपुर में सस्कृत का अध्ययन किया।

अध्ययन के उपरान्त आपने कलकत्ता में दलाली एवं बाद में दि0 जैन पाठशाला दौसा, लवान एवं सवाई माधोपुर आदि विद्यालयों में अध्यापन कार्य भी किया। आप संस्कृति एवं प्राकृत भाषा के अच्छे विद्वान थे। कलकत्ता में जैन मंदिर का कार्यभार आपने कई वर्षों तक सम्हाला। आपका व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि सचमुच जनसामान्य के हृदयहार बन कर आपने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। लगभग सत्तर वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्रीजुगमंदिरदासजी जैन—आपका जन्म सन् 1912 में एटा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में ही आप कलकत्ता आए। शिक्षा में रुचि होने पर भी जब आप अर्थाभाव से पढ़ नहीं सके, तो आपने शास्त्र-स्वाध्याय और जन-सम्पर्क की शिक्षा ली। सन् 1930 के स्वतंत्रता संग्राम हेतु राजनीति में भाग लेने दिल्ली आए। वहाँ,. 'बंगाल गए तथा 1934 के षडयन्त्र केस में गिरफ्तार हुए। विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेकर भी आपने चरित्र, निष्ठा और धर्म को सुरक्षित रखा।

1937 में आपने पुनः व्यापार शुरू किया। 1940 में पत्नी के शोक को शान्ति से सहन किया। 1953 में स्व. बाबू छोटेलाल जी की प्रेरणा से सेवा की दिशा में आगे बढ़े। सरल स्वभाव कर्तव्यनिष्ठ होने के कारण सेठ जुगमंदिरदासजी अनेक संस्थाओं

मोह के उदय में दृष्टि मलिन और विपरीत हो जाती है, सत्य भी असत्य प्रतीत होने लगता है तथा चित्त राग-द्वेष के द्वन्द्व में फंस जाता है। यह मोह मीठा बदमाश है।

के जन्म और जीवनदाता रहे। एकता और संगठन आपके जीवन के मूलमत्र रहे। स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के उत्पादनकर्ता होकर आपने काफी कीर्ति कमायी। पद्मावती पुरवाल जैन डाइरेक्टरी का प्रकाशन कर आपने अपनी निष्ठा, विद्वत्ता एवं कर्मठता का परिचय दिया। आपका व्यक्तित्व सौम्य मुखमुद्रा वाला था एवम् आप विद्वानों के अनुरागी थे। पद्मावती पुरवाल जाति के भूषण थे। पद्मावती संदेश के जन्म और जीवनदाता आप ही थे। इस पत्र ने आपके विषय में विशेषांक भी निकाला था, जिसमें आपके पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय कार्यो का उल्लेख है।

जैन समाज के विद्यासागर पं. पन्नालाल जी बाकलीवाल—सन् 1914-15 की बात है। श्रीधन्यकुमारजी जैन सम्पादक-विशाल भारत अजमेर ने गुरुवर पं. पन्नालालजी के बारे में एक घटनाक्रम का उल्लेख किया कि उन्होंने मैदागिनी बनारस की जैन धर्मशाला के फाटक के पास स्थिति भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था कार्यालय से जब एक किताब पर कवर चढ़ाने हेतु एक कागज मॉगा, तो आपने उसकी भी कीमत मॉंगी और यह कहा कि इसका मालिक पूरी जैन समाज है, पर लेने के लिए नहीं बल्कि देने के लिए। उस समय श्रीधन्यकुमारजी स्याद्वाद महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। श्री धन्यकुमारजी लिखते हैं कि पहले तो मुझे बुद्ढा बहुत कंजूस दिखा परन्तु बाद में जब गुरुवर्य के साथ 10-12 वर्ष रहा और उक्त संस्थाओं में सेवा करने का सौभाग्य मिला, तब ज्ञात हो सका कि अवैतनिक कार्यकर्ता का क्या आदर्श होना चाहिए।

एक युग था जब जैन ग्रंथ छापने वालों को लोग घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। उस समय बाकलीवाल सा. ने जैन ग्रन्थ रत्नाकार कार्याकलय की स्थापना कर जैन साहित्य का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बाद में श्रीमान् पं. नाथूरामजी प्रेमी की विशिष्ट प्रतिभा देख उन्हें जैनग्रन्थ कार्यालय का साझीदार बना लिया और उन पर सारा उत्तरदायित्व छोड, स्वयं उच्चतर प्रकाशन संस्था और विद्यालयों की स्थापना जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यो में जुट गए। 1918 तक आपको जैन समाज के लिए अनन्य सेवाएँ प्राप्त हुई और आपके जीवन का कोई भी क्षण जैनसमाज की सेवा के सिवाय निजी कार्य में व्यतीत नहीं हुआ। जब आप जैन हितैषी पत्रिका निकाला करते थे उसी समय श्री निर्णयसागर 'प्रेस' की प्रेरणा से प्रमेयकमलमार्तण्ड और यशस्तिलक चम्पू जैसे महान् ग्रन्थ प्रकाशित कराये, जब कि उस समय उनका प्रकाशन असम्भव सा लगता था।

जिनवाणी प्रचार—आप बनारस से भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था कलकत्ता ले जाए और यहॉं बंगाली जैन विद्वानों, जैसे सर्वश्री महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य, पं. हरिहर शास्त्री, बा. शरतचन्द्र घोषाल, पं. चिन्ताहरण चक्रवर्ती आदि अनेक विद्वानों को जैन साहित्य की ओर आकर्षित किया और अन्त में उनके पास बंगाली जैन विद्वानों का एक समूह-सा जम गया। इसी समय आपने एक बंगीय अहिंसा परिषद की स्थापना की तथा उसकी तरफ से जिनवाणी नामक एक बंगला मासिक पत्रिका प्रकाशित करवाई। आपकी इच्छा इस जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था को गीता प्रेस गोरखपुर की भांति बनाने का था। परन्तु आपके जाने के बाद न केवल बगीय अहिंसा परिषद और बंगाल जिनवाणी पत्रिका का नामोनिशान मिट गया, बल्कि गीताप्रेस की भांति स्वप्न को मूर्तिमान करने वाली वह भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था कलकत्ते के किसी एक मकान में पड़ी अपनी अन्तिम सॉसें ले रही है।

शिक्षा जगत में सेवाएँ—बीस वर्ष विश्वविद्यालय शिक्षा के अध्यापन का अनुभव हुआ। बाद में दि. जैन कॉलेज बड़ौत में हिन्दी स्नातकोत्तर विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर। अनेकान्त के सम्पादक। भारतीय ज्ञानपीठ काशी की परामर्शदाता समिति के सदस्य। जैन शोध संस्थान आगरा की प्रबन्ध समिति के सदस्य। आगरा तथा मेरठ विद्यालयों में हिन्दी के शोध-निर्देशक का महत्त्वपूर्ण पद भी संभाला। आपने साहित्यसृजन के द्वारा राष्ट्रीय चेतना में विशेष योगदान दिया।

जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि, भूमि जैन भक्तिकाव्य और कवि, भरत और भारत, जैन शोध और समीक्षा इसके अतिरिक्त अनेकानेक शोध निबंध आपकी मौलिक कृतियाँ हैं। आपके द्वारा संकलित सम्पादित पार्श्वनाथ भक्ति गंगा में

वीतराग की भक्ति भक्त को भी वीतराग बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

लिखी गई भूमिका अपने में एक शोध निबंध है। हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, आपकी पुरस्कृत रचना है, जो उत्तर प्रदेश सरकार के पुरस्कार से सम्मानित हुई।

अनेकान्त, वीर (शिक्षा विशेषांक), संगीत सम्मेलन पत्रिका आदि का आपने संपादन किया। सामाजिक और सार्वजनिक सम्मान और मानपत्र के रूप में आपको कई स्थानों से अभिनन्दनपत्र प्राप्त हुए तथा समय-समय पर रेडियो भाषण एवं समीक्षाएँ प्रसारित हुयी।

श्री प्रकाश जैन—श्री प्रकाश जैन एक ऐसे निर्विवाद व्यक्तित्व वाले व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें धनिकों का धन और विद्वानों की गुटबन्दी झुका नहीं पाई। आप सामाजिक कार्यों में रुचि रखनेवाले, कवि हृदय संवेदनशील और भावुक थे। व्यंग्य लेखन और स्पष्टवादी होने के कारण खरी बात कहने वाले, सरस, हंसमुख और बच्चों तथा बुजुर्गों में समान रूप से घुलमिल जानेवाले व्यक्ति थे। पत्रकारिता आपका व्यसन था।

आपका जन्म 9 जनवरी 1934 को कलकत्ता में हुआ था। आपके पिता श्री नेमीचन्दजी कलकत्ता में घी का व्यापार करते थे। आपके परदादा जैन पद्मावती पुरवाल जातिभूषण फरिहा (मैनपुरी) के निवासी थे। सन् 1940-41 में कलकत्ता पर जापानी आक्रमण और बमों के भय से आपके पिता एवं ताऊ श्री तेजपाल जी सपरिवार फरिहा आ गए। प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद फरिहा में ऊँची पढ़ाई का स्कूल नहीं होने के कारण आपकी आगामी पढ़ाई व्यवस्थित क्रम से एकजगह न हो सकी। फीरोजाबाद और मोरेना महाविद्यालय से अप्रत्याशित अध्ययन क्रम टूट जाने के बाद अपनी ननिहाल से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। पिताश्री आपको व्यापार में लगा देना चाहते थे परन्तु आपके मन की ललक उच्च अध्ययन करने की थी। फलस्वरूप आपने स्वाध्यायी रूप से पंजाब विश्वविद्यालय में आनर्स-इन हिन्दी (बी.ए समकक्ष) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आपका विवाह 17 वर्ष की आयु में ही एटा निवासी श्री इन्द्ररतनजी सर्राफ की सुपुत्री प्रमिला जैन से हो गया परन्तु दो पुत्रों और एक पुत्री को जन्म देने के बाद भी आपकी शिक्षा की लौ कम नहीं हुई। आपने एक लम्बे अन्तराल के बाद जबलपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. कर लिया।

साहित्य सेवा—वैसे तो जब आपकी आयु बारह वर्ष की थी तभी तुकबन्दी कविता करने लगे थे, परन्तु कलकत्ते में कविरूप का विकास हुआ। दैनिक लोकमान्य के रविवासरीय परिशिष्ट में बराबर आपकी रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। धीरे-धीरे कवि सम्मेलनों में एक युवा गीतकार के रूप में आप प्रकट होने लगे। पं. सूर्यनाथ पाण्डेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले सन्मार्ग (रविवार परिशिष्ट) के बाल विनोद स्तम्भ के आप सयोजक बने। कलकत्ता की प्रमुख राष्ट्रीय साहित्यिक संस्थाओं से सम्बन्ध जुड़ने के पश्चात पटना जाना हुआ। यहाँ आकर व्यापार के साथ आपकी साहित्यिक प्रवृत्ति पुनः सक्रिय हो उठी और आकाश वाणी के पटना केन्द्र से आपकी कविताएँ, रूपक, रेडियोवार्ता आदि प्रसारित होने के साथ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी।

1964 में मरसलगंज में रायसाहब सेठ चांदमलजी के द्वारा एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आपको कविरत्न की उपाधि से विभूषित किया गया। कुछ दिनों बाद आपका मरसलगंज पर एक खण्डकाव्य भी प्रकाशित हुआ। 1965 से जैन शास्त्री परिषद की संरक्षकता में प्रकाशित होने वाले बाल-प्रभात (मासिक) के आप सम्पादक नियुक्त हुए और इस रूप में आपने काफी नाम अर्जित किया। कुछ व्यवधानों से यह मासिक बन्द हुआ परन्तु 1968 से स्वतंत्र रूप से आपने इसका प्रकाशन किया, जो पुनः 1973 में स्थगित हो गया। 1973 में युगवीर साप्ताहिक का प्रकाशन आपने प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि आपको लेखन से अच्छी आय थी, परन्तु आप मसिजीवी नहीं बनना चाहते थे। साहित्यिक वांछा को लिए, आप घाटे को अपने ऊपर ओढ़कर भी निष्पक्ष रूप से पत्रिका प्रकाशन करते रहे। 1966 में आपकी एक प्रिय साहित्यिक कृति वरमाला का

भक्ति का कार्य बुरे भावों को नष्ट करना है। जिस भक्ति के द्वारा हमारे हृदय में पवित्र भावों के संचार से पुण्य-बंध होता है और उस पुण्य के फल से पाप दूर होते हैं।

प्रकाशन हुआ। 1967 में ***आओ साथी करें वंदना*** नामक गीत पुस्तिका का प्रकाशन हुआ। आपकी प्रथम पुस्तक साहित्यिक कृति द्वादस द्वादसी 1965 में प्रकाशित हुई थी। **साहसी अरुण** (बाल-उपन्यास), **आदीश-अर्चना** (भावपूर्ण सृजन), **बूझो जो जाने, नानी की कहानी** (8 पद्य कथाएँ) प्रकाशित हुई। आपके तीन उपन्यास एक कहानी संग्रह, एक व्यंग्य निबन्ध और तीन कविता संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार हैं। इसके अलावा एक उच्चकोटि की रचना **धरती को वरदान** (आ. शान्तिसागरजी महाराज के जीवन पर आधारित महाकाव्य) एक ऐतिहासिक ग्रन्थ भी अप्रकाशित है।

ब्र. श्रीलालजी काव्यतीर्थ–आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से काव्यतीर्थ परीक्षा पास की। पं. पन्नालाल जी बाकलीवाल ने आपके और पं. गजाधरजी के सहयोग से भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था को जन्म दिया। इस संस्था से अनेक अलभ्य जैन ग्रंथ प्रकाशित हुए जैसे राजवार्तिक, समय प्राभृत, पत्र-परीक्षा, शब्दार्णव चंद्रिका, जैनेंद्र प्रक्रिया आदि। पं. पन्नालाल जी ने कलकत्ता में शुद्ध प्रेस खोला था, जिसमें सरेस के बेलन के स्थान पर कम्बलों का बेलन था। यही कारण है कि छपे हुए ग्रंथों के तत्कालीन विरोधी वातावरण मे भी बाकलीवाल बढ़ते ही गए। 15 अगस्त 1947 को जीटी रोड, स्थित आपकी फर्म को मुसलमानों ने घेर लिया था फिर भी आप सम्यक्दृष्टि से विचलित नहीं हुए। आप कलकत्ते के राजेन्द्रकुमार कुंवरजी के साथ उनकी फर्म में काम करने लगे। आपने **विनोद** मासिक पत्रिका निकाली। जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था से गोम्मटसार टीका (टोडरमलजी) का प्रकाशन किया। समयसार, मकरध्वज पराजय, आराधनासार, पद्मपुराण आदि का भी प्रकाशन किया।

पं. कुंजीलालजी शास्त्री–आप सन् 1944 से 1952 तक कलकत्ते में श्री राजेन्द्रकुमार जी कुंवर के कारखाने मे सेवारत रहे। तत्पश्चात् गिरिडीह में जैन विद्यालय में प्रधानाध्यपक रहे। आप जैन गजट के अनेक वर्षो तक सम्पादक भी रहे।

ब्र. प्यारेलाल जी भगत–आपने कलकत्ता में हिन्दू मुस्लिम दगों के समय हजारों स्त्री-पुरुषों को बेलगछिया मंदिर मे आश्रय देकर बचाने का एक कीर्तिमान कायम किया।

पं. अजितकुमार जी शास्त्री–आपने सन् 1920 मे कलकत्ता में छः माह के लिए भारतीय दिगम्बर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था में कार्य किया था।

विद्यावारिधि पं. मक्खनलालजी शास्त्री–आपने कलकत्ता मे कपड़े की दुकान की थी।

श्री लक्ष्मीचंदजी जैन–आपने कुछ समय तक साहू जैन संस्थान में कलकत्ता रहकर भारतीय ज्ञानपीठ का कर्यभार संभाला था।

पं. कमलकुमार जी काव्यतीर्थ–आप बकस्वाहा ग्राम के रहनेवाले हैं। मनसावाचा कर्मणा एक हैं। आपकी भाषण शैली उत्तम है। आपने कुछ वर्ष तक सागर विद्यालय में व्याकरण के अध्यापन का कार्य किया एवं बाद में कलकत्ता में धार्मिक शिक्षण देने लगे। आपका संस्कृत उच्चारण बेहद सुन्दर है तथा आप साहित्य और व्याकरण के व्युत्पन्न विद्वान् हैं।

ब्र. श्री धर्मचन्द जी शास्त्री– स्वभाव से सरल और बालमन से सौम्य बाल ब्रह्मचारी धर्मचन्द जी शास्त्री का जन्म 13 दिसम्बर 1951 सं. 2008 को सागर (म. प्र.) जिले में महका ग्राम में हुआ था–आपके पिता श्री अयोध्याप्रसाद जी जैन धर्मनिष्ठ प्रतिष्ठित व्यक्ति थे 9 वर्ष की आयु में ही आपके पिता का वियोग हो गया।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा टड़ा ग्राम में हुई तथा आचार्य संघों के सानिध्य में रहकर शास्त्री एवं आचार्य आदि की परीक्षायें दी। आपने ज्योतिषाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, संहितासूरि आदि परीक्षायें भी उत्तीर्ण की है।

बुरे विचारों से पाप-बंध होता है और पाप-बंध ही दुर्गति, दुर्दशा या संसार-परिभ्रमण का कारण है।

16 वर्ष की आयु में सन् 1966 में जयपुर में पूज्य आचार्य धर्मसागर जी महाराज के सानिध्य में आकर आप साधु सेवा एवं वैयावृति करने लगे तथा धार्मिक अध्ययन भी किया।

सन् 1969 में आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

आपका साहित्यिक अवदान जैन समाज के लिए वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ। आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज का अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर आपने जिनवाणी की अनुपम सेवा की है, यह ग्रन्थ अपने आप में एक विशिष्ट ग्रन्थ था जिसने समाज के साहित्य/आध्यात्मिक क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त किया है। आपने आगम प्रणीत तीन सौ से अधिक ग्रन्थों का सम्पादन कार्य करके समाज को विशिष्ट साहित्य उपलब्ध कराया है। जैन चित्र कथा के माध्यम से आपने जैन तीर्थकरों, आचार्यों एवं कथानकों के सचित्र पचास से भी अधिक सचित्र कथानक आपने प्रकाशित कर बालकों को धार्मिक संस्कार निरुपण में अद्वितीय कार्य किया है। सन् 1986 से आप प्रतिवर्ष विदेशों में पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें विधान आदि करवा कर धर्म प्रभावना का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भारत में भी विभिन्न स्थानों पर शताधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें एवं विधान पूजा आदि करवा कर समाज में धार्मिक क्रान्ती लाने का प्रयास किया है।

आप अनेकान्त विद्वत परिषद के अध्यक्ष हैं, मानव शान्ति प्रतिष्ठान के संस्थापक है जिसके माध्यम से जैन संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन की विशाल योजनायें शीघ्र मूर्त रूप ले रही है। वर्तमान में आपका प्रवास दिल्ली के लोनी रोड मन्दिर जी में है। कोलकाता में आपने अनेक दिनों तक प्रवास किया था।

इन सबके अतिरिक्त भी बंगाल (कलकत्ता) में अनेक विद्वानों का समय-समय पर कर्मक्षेत्र रहा, जिनमें ब्र. पंडिता कृष्णा बाई, पं. श्री निवासजी शास्त्री. पं, इन्द्रलालजी शास्त्री. पं. कमलकुमार जी गोइल्ल, पं. पन्नालालजी शास्त्री, बाबू छोटेलाल जी जैन, श्री नेमीचंद जी पटोरिया, श्री नंदलालजी जैन (जवाहर प्रेस), श्री मदनलालजी जैन विशारद एवं श्री कल्याणचंद जी पाटनी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। स्वस्थ सामाजिक चेतना और अहिंसा तथा शाकाहार मिशन के सर्वतोमुखी सम्बर्द्धन हेतु अहर्निश समर्पित डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा का नाम सम्पूर्ण राष्ट्र में ऊर्जस्वित् मनीषा के लिए अग्र पांक्तेय है। वे विचार प्रधान मासिक पत्रिका 'दिशाबोध' के यशस्वी सम्पादक और प्रबुद्ध जैन विचार मंच के संयोजक भी हैं। डॉ. बगड़ा द्वारा लिखित अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में प्रकाशित 1. वेजीटेरीयनिज्म इन जैनिज्म, 2. मिथ्स ऑफ दी प्लानिंग कमीशन, 3. गाय—सौ तथ्य, 4. डेयरी मिल्क—हन्ड्रेड फैक्टस, 5. मेरे सपने, 6. वेजीटीरियनिज्म इन लाइफ—ए थॉरो एनालिसिस, बहुचर्चित कृतियाँ हैं। वर्तमान में भी यहाँ पं. दीपचंद जी छाबड़ा, पं. कमलकुमार जी शास्त्री, पं. आनन्द कुमार जी शास्त्री एवं पं. महेश कुमार जी जैन प्रतिष्ठाचार्य आदि कुछ विद्वान् कार्यरत हैं। वर्धमान संदेश जैन पाक्षिक के यशस्वी युवा संपादक श्री अजीत पाटनी भी जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। इस प्रकार विद्वद् भूमि बंग प्रदेश प्रवासी जैन विद्वानों के लिए सदैव ही प्रेरणास्रोत रही है।

□

जिस प्रकार एक नन्ही-सी ज्योति-किरण पूरे अंधकार को पी जाती है, उसी प्रकार अनादिकाल से बंधे हुए पाप-कर्म प्रभु-भक्ति के प्रताप से जीर्ण होकर झड़ जाते हैं। यही तो है भक्ति की अचिन्त्य महिमा।

KARNATAKA KE PRAMUKH DIGAMBER JAIN MANISHI

(Contribution of Jaina Writers to twentieth Century Kannada Literature)

-Dr. S.P Patil, Dharwad

Literature is one of the media to represent human culture. It is an outcome of cultural background of human mind, devotion, scholarship, hardwork and above all, intution. It is a search for eternal truth. Each age has produced lot of literature. But literature for all ages take shape rarely. With this view if we abserve the whole kannada literatuer, we come across with few works of this quality. It is worthwhile to mention that some Jaina works belong to this catagory. Works of Pampa, Poma, Ranna, Janna, Nāgachandra and Ratnakar poets are rare contribution to world literature Works on various subjects like poetry, Prose, Purānas, Sāstras, Grammer, poetics, prosody, Astrology, medicine, Mathematics by Jaina poets have enriched the treasure of Kannada literature. It can be said that the Jaina tradition has a major role in the composition of these works. This tradition of earlier period is evident even in the latter period. The great legacy put forth by mahā-Kavis of 10th centruy is continued by the twentieth century Jaina writers. Here is an attempt to give in short the contribution of Jaina writers to twentieth century kannada leterature. The author is aware of the fact that there may be some writers and their works might not have been appeared in this survey. This is a limitation of any author and as such, such types of lapses may kindly by ignored.

Tradition of great Shastries :

Pandit Ratna A. Shāntiraj Shāstri has translated mahāpurāna of Jinesena and Gunabhadra into Kannada. It is considered to be the master-piece. He has contributed more than seventy books ot kannada Jain literature. Translation from Sanskrit, Editing based on Palm-leaf manuscripts, and treatises are included in them As an editor of 'Vishwa-Bandhu' and 'Vivekābhyudaya' he tried for religious awareness in the society. He was honoured by 'Āsthāna Vidwāna' title by the mahārāja of Mysore. Daśalaksaṇa Dharmasalu, Mrutyu-mahotsava, Dharmaparikshe', 'Purusārtha Siddhyupāya' 'Samyktva Kounmudi' 'Nemijineśa Sangati', "Nempiya Kathegalu' Nagakumar charite' etc are few of his works.

Vidya Varidhi A. Subbaiah Shastri : He is also been honoured by Āsthāna Vidwāna' title 'Neeti Vakyāmṛata' Bhadrabāhu Charite' 'Samaya-Sāra' 'Gommata Sāra' 'Tattvārtha Sūtra' 'Ratnakaranda Śrāvakācār' have been tranlated into kannada by him. Two volumes of 'Ṣat Khanḍāgama' speak of his deep knowledge. He won the president of India Award in 1962. He produced good number of students who devoted themselves for the teaching and preaching of Jainism in Karnataka.

Vidya bhusana Pt. K. Bhujabali Shastri : His service as the chief of the central Jain oriental Library at Arrah (1923-1944) was memorable. 'Prabuddha Karnātaka' of mysore university, 'Kannada Sāhitya Parisat_patrike', 'Śaraṇa Sāhitya'-The top most journals of those days had the previlage to publish his articles. His contribution as the editor of Vivekābhyudaya 'Veera-Vāni' Jaina Siddhānt Bhāskar' and 'Gurudeve' is worth mentioning. 'Pampa Yugake Jain Kavi' etc were written by him in Hindi. "Sanskrit Vankmayakke Jaina Kavigala Koduge" Adarsa Jaina Mahileyaru' 'Dainika Ṣatkarma', 'Murti Pujeya Āvasyakate', are some of his works. He has translated Kailas chandra Shastires 'Jaina

पवित्रमना व्यक्ति पापों से सौदा कर लेता है तथा भक्तिमय नौका पर सवार होकर संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

Dharma' into Kannada. 'Kannada Prantiya Toda paloiya Joantha Sūchi is a monumental work of Pt K. Bhujabati Shastri.

Vidya Vachaspati Vardhamana Shastri : Vardhman Shastri was well-versed in Kannada , marathi, Hindi and Sanskrit, He has translated RatnaKaras 'Shatakatriya' and 'Bharatesha Vaibhava' into Hindi. His kannada translation of Tattvartha Sutra' is well known for its simplicity. Amol Dasa Dharma' is another book by him. 'Ratnatraya' and 'Jaina Gazetta' (Marathi) were published under his editorship. He established 'Shri Kunthusāgar Granthamāla' and published Sanskrit works of Acarya Kuntha-Sagara māharaj with marathi, Kannada, Hindi and English Translation. 'Nijatma Siddha Bhāvana' etc. works have come out in this series. Simple translation is useful to common readers.

Saraswati Bhushan Lokanath Shastri : 'Varata Swarūpa' 'Jaina Dharma-Praśnottara' 'Sristivāda vicār' 'Bhavya cintāmani 'Tulunadu Basadigalu' etc are some of the books by Lokanātha Shāstri published by 'Syādvāda grantha māla'., mention-must be made of his 'Mudahidare Charite' 'Anekanta Darsana' 'Swayambho Stotra'. His service in transcribing 'Dhavala' from Kannada script to Devanagari is ever memoriable.

Āsthāna Vidwāna Shishupāl Shastri : has written 'Prani Bali Nisedha' 'Upānayana Vidhi' Kalyāna Geetavali' in Kannada and 'Teertheśa' Vaibhava' in Sanskrit

Siddhantacharya Shrikant Shastri : 'Pradyumna Caritre' Bhadra Bahu Carite' 'Yoga-Sāra' Ksatra Cuḍāmani' 'Punyāsrava Kathā manjari' are some of important works written by Shrikant shahstri Settled Vainadu (Kerala) he is teaching siddhānt and Kannada

S. Jinaraj Shastri has sound footing in Indian Philosophy He has wirrten Tika on Gommata Sāra Jiva Kanda'. 'Samana Suttam', 'Sanksipta Puja Vidhi' and Shri Vrasabha Charita Nataka' are other works in his name.

Pt. Devakumar Shastri : He has written and edited good number of books In collaboration with Pt. K. Bhujabali Shastri he has translated 'Jaina Dharma of Kailaschandra Shastri. 'Jaina Ārādhana Sangraha' 'Voddārādhana' 'Ratnakar and Shatakagalu' 'Punyaśrava kathākośa' 'Bahubali charite' 'Chandranāth' 'Jaina dharmadalli Nāri' are his important works.

S.D. Nagendra Shāstri, Bruhmasuri Shāstri, Jinadāsa Shāstri, Nagaraj Shāstri, pārśvanāth Shāstri, Jinachandra shāstri and Dhanyakumar Shastri have also contributed to kannada Jain literature.

Dr. A.N. Upadhye is a great name in the field of Prakrit literature and Jainology. Though majority of his wirtings are in English he has written in Kannada and about Kannada Jaina literature He has dealt with research problems concerned to Kannada Jaina literature. His research papers on 'Kavi Paramesti' 'Kunda Kunda Acarya' 'Jatasimha nandi' 'Vaddarathana' and 'Chavundaraya Purana' are the great help to the students of Kannada literature in general and students of Jainology in Particular. Dr. A.N. Upadhye was from Karnataka, had a close scholarly contacts with kannada stalwarts. So he was honoured by offering him presidentship of 'Akhil Bharat Kannada Sahitya Sammelana' held at Shravanbelogol. 'Pravacan Sara', 'Kartikcyanu preksa' 'Varanga Carite' are few to point out his deep study, scholarly intorductions. 'prakrit Sahitya' a boklet in Kannada is a successful a attempt to give

the introduction of vast prakrit literature.

Miriji Annarao : Annarao is a great name in Kannada literature. A creative writer at the age of twenty eight won the state level award for his first novel 'Nisarga'. Even to this day it is been considered to be one of the best regional novel. 'Rastra Purusa' 'Ramanna Masar' 'Ashoka Chakra' 'Siddha Chakra' 'Eradu Hejje' 'Hadagetta Halli' 'Bhasamasura' 'Prati Sarkar'—these novels are to his credit and have given him a high place in the history of kannada novel. Mirji Annarao was fortunate to have Dr A.N. Upadhya as his guide for writing on Jainism. 'Jaina Dharma' of nearly 1000 pages was the pioneering work in Kannada Jaina leterature field. &Dr. A.N. Upadhye opins. In this work Shri Onirji Annarau neither stick to the unhealthy assumptions of earler scholars, nor to the moderner criticising religion with trying to understand it. Matured comparative outlook, Thought discussion, balanced mind are seen in this writing.

'Jaina Dharma' is been followed by MahaPurana Sara an abrideged prose work based on the study of sanskrit Maha Purana'. 'Ratnakarandaka Sravakacara' is a translation from Hindi, but the reterences from Ayata varmas Kannada 'Ratna Karand' is a novel method. The exaustive introduction of this book and 'Ravisenana Ramayana speak of his research ability. Modern research methodology is been followed effectively. 'Mahaparusa' depiets the saintly life of late manjayya Heggade of Dharmasthala who is been known as living-moving speaking God.' 'lekhana Kale' teaches the art of writing story, novel, drama etc. Such type of Books were available in English but Annarao without having English background writes this book based on his own experiences, giving examples and Jinavijaya' became cultural journals and great scholars used to contribute articles because of Annarao. He tried to live what he wrotc He encouraged a good number of youngsters like Bhujendra Mahishwadi, Belaali, Bhosare and the present author of this paper

Justice T.K. Tukol : was a student of English leterature. "An Introduction to Robert Bridges' 'Testament of Beauty come out at the beginning of his carrier. Please note that he was a lecturer hardly for a period of one and half years. Then he joined legal profession The work is been considered to be the autentic critical study of Robert Bridge by an young Indian Scholar. 'The compendium of Jainism' in the words of Dr. A.N. Upadhye— "He has ever been a close and critical student of Jainism, apart from being a pious sravaka. All these qualities of Justice Tukol are transperent in this compendium which is an outcome of his deep study and understanding of Jaina, Nayas, God, creation and Anekantavada in a lucid manner. He has cleared many wrong notions of earlier scholars and presented those tenets in their proper perspective " 'Pujyapada' 'Sravaka Acara' 'Sanmati Suktigalu' 'Samama Suttam' 'Sallekhan-is not a sucide' are other importnat works contributed by Justice T.K. Tukol.

Dr. M.D. Vasantaraj : Vasantaraj is a great scholar dedicated his life time for the study of Jaina literature in general and sanskrit-Prakrit literature in particular. 'Sanmati Shri Vihara' of about 400 pages deals with the dates of mahavira and Digambar Jain Tradition. References and extracts fromSanskrit, Prakrit, Vedie-and Boudha literature and history one given to substantiate the argument. Vast readings, judicious judgement, and firm belief in the tradition brings his writing authenticity. It is a milestone in the history of books in this field 'Srutavatara' deals with the stages fo transmission of Jaina Agama literature. He has edited Dhananj aya's Visapahara Stotra', Patrakesari Stotra' Pujya

Padas 'Upasakacar' (Sravakacara) with shubhachandra), Barasa Annavokkha. These works have been edited by himwith the help of palm leaf manuscripts. These Kannada translation and detail introduction and notes are useful. 'Sravakacarada Nutana Pratipadane-vichara manthana'-discusses worship of yakshis and Yakshais.

'Diagambar Jaina Agama Kritigala Bhase' was a special lecture delivered at National Institute of prakrit Study & Research, Shravenabelogal where this auother was Hon Director, 'Jainagama Itihasa Decpike' was a Annual Special lectures delivered by him in the Dept. of Jainolgy Karanataka University Dharwed. It is considered to be the only kannada work which gives a comprehensive history of both Digambar and Swetambar Agamas. 'Corroboration of the dates of Bhagwan mahavira and Bhagwan Buddha (lecturs delivered in Delhi University) is an attempt to solve the problem of determining the dates of two great personalities.

Prof. G. Brahmappa : Brahamappas contribution to Kannada Jain literature through story, novel, drama, biography is remarkable one 'Dana Chintamani Attimabbe' 'Samrata Kharavela' 'Ratanakar' 'Chelani' 'Chakreswari' are notable work by him. Some of them have been translated into Hindi and Marathi. Some were prescribed text books for college students. He has written as length on poet Ratnakara varni, 'Bharate Shana Balugabbu' 'Shata Katrayi' and 'Mahapurana' are known for simplicity and narrative style. As an editor Vivekabhyudaya' and regular contributor to 'Sanmati and Gurudeva' he has got wide readers sphere. He is been honoured by many titles and recognitions mention must be made of Kharavela Prashasti' of Orrisa Govt.

Bhujendra Mahishwadi : Bhujendra Mahishwadi become known to the whole of Karanataka by his epock making collection of poems 'maya mandira'. Famous critic and poet Dr. R.S. Mugali in his introduction has pointed out the qualities of the poems and genius which has worked behind them Miriji Annarao's encourage ment proved fruitful and versitile poet appeared on the scene. 'Malu Mannu' 'Hansa Mithuna' [Beraki Mandi' collection of poems followed. Satire and use of the language spoken by common people gave colour to his poems.' 'Siddha Sagar charite' is a biography. 'Kannada Katha 'Shrusti' 'Kannada Shitya dolli' Veera Rasa', are useful booklets, 'Prabandha Shrecsandh' 'Jaina vankmayo, Sanshodhane' are collection of Research papers. 'Nemi Jinesha Sangati' 'Dharmamrita' Suvichara Charite (with Dr. S.P. Patil) edited works-give detail information about the poet, his age, other works etc.

Dr. Hampa Nagarajaiah : Dr. Hampa. Na. Contribution to Kannada literature has a very wide range. Classical literature, Lingustics, folk lilteratrure, biography, histority and culture and above all creative lilterature are the various forms and aspects of literature, that have been touched by Hampa. Na. 'Drāvida Bhāshavignana' 'Bhāsha vijana' 'Bhāse' are his contrubution to the linguistic field. In a way he was a poineer to write on linguistic in Kannada.

'Bharatesha vaibhava' of Ratnakara was been edited by G. Brahmappa, Hampa. Na and Kamala Hampa.Na jointly. He is a successful editor and it is been proved by 'Jayanrapa Kavya' 'salva Bharata' 'shanti purana' 'vaddarad hane'. The critical editions and introductory notes reminds us to remember the method followed by the stalwarts in the field. so they deserved appreiciation by the scholarly

जब अनेक जन्मों के पुण्य योग से उछाल लेते हैं, तब कोई मुनित्व को अंगीकार करता है। पग-पग की बेड़ियाँ काटने में वही पग समर्थ है। इसलिए मुनिचरणों में बहुमान होना मानव जीवन की चरम सार्थकता है।

world.

'saryasāchi pampa' 'Nagashri' 'Hesarina sogasu' presents him as a creaticve writer The lucid style and crystled vocabulary adorns his writing. Recently he has concentred his attention to the story of history culture, art and architecture. As a result a thorough study of inscriptions voume he has brought out 'sāntaru : ondu Adhayayana' 'Later Gangas' 'Rāstrakutas' 'Humbuj inscriptions' 'Indra in Jainism' 'Mānastambha' reflect his acquiantance with the treasure of inscriptions. A verstile scholar with creative genius has dovoted himself to the study of Jaina culture of Karnatka.

Dr. Kamala. Hampa. Na. Dr Kamala entered the field with 'Sukumāra charite sangraha' of Shāntināth. She has edited 'chāvundaraya purāna' with shri. K.R. sheshasiri and given an authentic version of 'chāvundaraya purāna' 'Dāna chintāmani' 'shantinatha kavi''Adarsha Jaina Mahileyaru' 'Jaina sāhitya parisara' 'Anekāntavāda' are some important works by her As an editor of 'shri Pacche' 'Sahasrābhisheka' 'K.S.Dharanendrain' She has bought out useful volumes.

Sera Nemirasa Malla : Shri Jeva Nemiraja served the Judicary Dept as Dist Judge. But the bulk of literature produced by him proves that his first love was literature. 400 stories, 200 acticles, 11 novels and 8 translated novels are evidence to the statement 'Raktada Rupayi' 'Badukin sullyalli' 'Teerada Āsé' 'Vilasa' 'Tallani sadiru' are few of his novels 'Maruda Mareyalli' collection of stories won literatury prize of Madras Govt. 'City Bus' article won 'Kannada Prabha' Prize. His stories and novels depict the picture of society around us and try to analyse the problems. Though versitle writer and published in such bulk unfoutunately was deprived of from the critics guild.

H.B.Jwālanaiah : Jwālanaiah was gifted with various good qualities. Had a degree in Engineering, actually engaged in social work liked by small trades men and hockers, actively participated in stage He was associated with Hindi prachāra sabha He entered the literary field with his 'Bhagna Hrudaya' 'Kesari' 'Gouri' 'Sutaputra' 'Mahāparivartane' 'Rani Ratnāji' and 'Maha shilpi' 'Election' 'Phudari-plays.

'Selavina Suli' 'Kesaru' are his novels. Lively conversation, vivid description and pointed humour are the qualities of his writing.

Shantinath Desai : Shantināth Desai is a great name among the modern creative writers in Kannada. In fact he was a poineer to write Kannada short stories based on realism A professor of English literature, studied in Bombay and England has a broad-view to look at the life and world. That is been depicted in his writings. Psycholosical analysis of the mind and activities take prominent part in it 'Manju Gudde' is representive collection of modern stories in Kannada. 'Mukti' 'Vikshipta' are novels. In the later part of his he turned to the study of Jainism. He had long discussions with experts in the field. Still he has some doubts. 'Om Namo' his last novel is based on Jaina philosophy and tradition. He has his own observation of Jaina tradition and Teertha-darshana. A critical analysis and a mature mind is evident at its work in this work.

Dr. T. G. Kalaghatagi. Dr. Kalaghatagi was a professor of philosophy and then Jainology. He has his contribution to the field with "some problems in Jaina Psychology". 'Karnatakadalli Jaina dharma'

(ed.). Dr. Kalaghatagi has discipline of western philosophers but has a sound base of Jaina scripture. His works are considered valuable contribution to the study of Jainology.

Dr. B.S. Kulkarni : Dr. B.S. Kulkarni is known for his 'Samaya Parikshe' (ed) of Brahmashiva He edited the book and published it for the first time. 'Neminăth Purăna' 'Anantanăth Purăna' 'Jeevandhar Charite' 'Lobhadatta charite' and 'Chamundarăya Purăna' are been his publications. He had concentrated his attention on the works which were not seen the light of publication His contribution in publishing manuscript catalogues and the Inscriptions deserves special mention. 'Nemichandra' is PhD. thesis with poet Nemichandra and his works 'Neminătha Purana' and 'Leelavati' 'Săhitya sudhe' covers research articles on literature and tradition.

Dr. S.P. Patil : Dr. S.P. Patil's writing may be classified in two groups (1) on Jaina literature-tradition and culture and secondly Translation-mainly from marathi. Nearly 45, books and 80 Research articles are to his credit. 'Jaina săhitya sanskriti' 'Siddha shese' 'Răstriya Bhăvaikya : Jaina Dharma' 'Sama-Prabhăvane' 'Jinavăni Chintane' JinaMănikya' 'Jaina Habbagalu'- are collection of research/ popular articles based on Jaina literature and culture.

Critics opine that Dr. S.P. Patil collects information from various sources to argue his stand point and choses simple lucid style to reach even common people. Munishree Vidyanadaji Mahăvira Bhakti Gangă, 'Samayada Bele' 'Abhikshna Jnăno Payaga' and 'Mahavir Upadesh Parampare' 'Karnătaka mattu marăthi săhitya' 'Buăndharya' 'Karnătakada sănskritik parampare' Dr. R S Mugalis Heritage of Karnataka) are translations from Hindi Marathi and English.

'Hennu', 'Atithi', 'Mahileyar Kelavu marăthi Kathegalu are collection of translated stories from Marăthi. They introduce a new theme and treatment to Kannada short story history.

'Chăvundarăya Purăna' : Ondu Adhyayana is his Ph.D Thesis. Information regarding chăvundărăya and his contemporary society his mahăpurăna and its study from various angles has been done for the first time in this thesis.

'Shankha Jinodbhava Kăvya' 'Purva Purăna' 'Samyaktra Koumadi' are edited works. 'Teerth vandane' 'Veera Mărtand' 'Syădvăda kesare Payasagar Maharaj' are been known for their literary quality and sincere effort in editing them. As an honorary Editor of sanmati and Hon. Director, National Institute of Prakrit study & Research he has rendered yemon service to society at large.

Shri M.B. Patil : Shri M.B. Patil of shedbal is well versed in old kannada literature. He has deep knowledge of Jainism. He has translated useful and important books from Hindi, Among them the folowing books are to be mentioned. 'Moksha mărga Prakăsha' 'Samaya săra' 'Pravachana săra' 'Niyama săra' 'Panchăstikăya' 'Asta păhuda' 'Paramătma Prakăsha', 'Yoga Săra'. The list covers almost all important works by great Ăchăryas. M.B. Patil. has keen interest to take them to the doors of common people. His translations are faithful and an attempt to justity the intention of the master minds. He has also original works to his credit. They are 'Gommata Darsana' 'Kunda Kunda Charite' 'Kundadri Darsana' 'Achărya Vidyananda Maharaj Charite'.

Dr. A.S. Dharanendraiah : A.S. Dharanendraiah was an ardent student of Jainism and had a first

जब तक मुनि-संस्था फलती-फूलती रहेगी, तब तक धर्म भी चालू रही रहेगी। मुनि-संस्था के इस उपकार का विस्मरण हमें कभी नहीं करना चाहिए।

hand information of important works. 'Aparājıteswara sataka' 'Sasyāhāra' are his some works on Jaına literature and Negetenanism. Jaına Dharma mattu sāmājika Aikyamatya' 'Sapta Tattvas' 'Ahımsa Dharma' - research papers have been appriciated by scholars

'Mānasika Ārogya' 'Sāmānya manoviwjnāna' 'Abhiruchigalu' 'Vyaktıtra'(Tra) 'Pratibhāvanta Makkalıge Mārgadarsana' are his works on Psychology. Mano-vıjnāna Pārıbhāshika Padakosa' stands a unique one.

Smt. Koushalya Dharanedra : Smt. Koushalya Dharanendra has translated 'Tirthandara Mahāvira' of Mirji Annarao into Hındı. She has abrıdged and rendered ınto modern Kannada Ratnākaras 'Bharatesha Vaibhava'. She is actıvely engaged in lilterary and cultural activıtıes based on Jaınism.

Dr. M.A. Jayachandra : Dr. Jayachandra is equally ınterested ın classıcal and Folk literature. Hıs Ph.D thesıs is on 'Kannada Kāvyadallı Janapada Ansagalu'. 'Janapada Kalhamrta' and '108 Janapada Kathegalu' shows his scientıfic method of collectıng folk tales. 'Vaddārādhaneyallı Sırıce' ıs a booklet. His association and assistance in the Publication of 'Mahāpurāna' deserves specıal mentıon. He has prepared the glossary and useful ındexes for the help of modern researcher.

Shubhachandra : A faculty member in the Dept. of Jainology & Prakrit has publıshed 'Jaına Sāhitya Kelavu Adhayanagalu'. The artıcles ın this book are full of ınformation. The foot motes and references given here show his wide readıng and pain staking attıtude. He has edited Pinya Nemannana 'Yasodhara carite' and Pújya Pāda's 'Uupasakacāra' wıth Dr. M. D. vasantaraȷ. 'Prakrit Sahıtya Kaıpıdı' and 'Kartıdeyanu Preksa' are his other works.

Dr. Preeti Shubhachandra : A studıous researcher Dr. Preeti is ınterested ın Femınine lıterary movement. Her book published by the Kannada University Hampi on thıs subject ıs been well receıved. Ādhunika Vachanakāraru' ıs her Ph.D work It has brought her prizes and recognitıon.

D. Puttaswami : D. Puttaswamı was the edıtor of 'Vıvekabhyudaya' Hıs tımely artıcles ın the maga2zine were liked by maȷority of people. He has collected useful articles on Jaına hıstory, lıterature, culture and tenets. 'Jaına Tattva Sāra' ıs the best example for it. 'Kārkala charıte' 'Mahāvír Jayantı' 'Mudabidare' 'Paramātma Prakāsha'(ed), 'Ātmānusāsana' (ed) Tırukkurul Prasthāvane (Tr) are some other ımportant works. He has brought a felicıtatıon volume to honour Mirji Annauao Artıcles on Annarao's Works by scholars have been collected here.

K.S. Dharanendraiah : The Director of Kannada and Culture Dept of Govt. of Karnataka K.S Dharanendraiah was a poet ın heart. 'Bhakti Kusumānȷali' 'Vanamāle' are the best exmaples for hıs devotional and religıous songs. 'Punya Purusa' is a novel based on Jaina religoin. He was responsible for the contıneous Dharma and sahitya sammelanas at Dharmasthala. K.S. Dharanendraiah was learned scholar wıth sweet voice. His lectures on Janna and Ratnakar used to gather big audience.

Anantarao Bhosage : Anantarao Bhasage is known for his children lıterature.'Kene Mosaru' 'Kānike' 'Tātyā Tupi'(play) 'Veerayyana chāvadi' (play) 'Vikasa' and 'Nade munde Govinda' (novel) are to his credıt Simple language, logical development of the plot and vivid characterisation is noticiable in these works. 'Anekanta' ıs a collection of articles on Jainism. His translation of 'Srāvakācāra' of Ba.

यदि मुनि मोही है तो वह नरकादि कुगति में जायेगा। मुनि का मोहवान् होना महापाप है। वह पाप अनर्थक होता है।

Bhu. Patil from Marãthi is waiting the day of Publication. 'Panchasheelada Pratinidhigalu' Madya Hokkamane, Nammuru have won prizes.

Pt. S.P. Padmanna : Pt. Padmanna has been honoured by 'Sãhitya Vishãrada' 'Bhakti Kavi Shekhara' titles. 'Sravanabelgolada Itihasa' 'Kalpavalli' 'Samyaktva Sheele Gunavati', 'Sravaka Darpana' 'Bhavya Satakasalu' 'Madana Vijaya' are popular works. 'Veerendra Bãhubaei' narrates the installation of Bahubali at Dharmasthala by Veerendra Heggade in the poetie form. He has handled prose poetry and novel forms for his works.

D. Padmanabha Sharma 'Tyãgavíra Bãhubali' 'Bharata-Bãhubali' 'Kannada Megha Sandesa' 'Ãtma Darsana' 'Samanta Bhadra' 'Vijaya Pãrsvanath' 'Bhaktãmbarada Kathegalu' etc. more than fourty works are to his credit. 'Karnãtakada Sabdanusãsana' brought him state award. He has written a treatise on Kesirajas 'Sabdamani Darpana'

S.B Vasantarjiah : Vasantarajaiah is dedicated social worker engaged himself in organising religious functions and religious schools. 'Ahimsa Jyoti Mahavira' 'Sãmayika Pãtha' 'Koppadadinda Shravanabelgol' are some of his books. He is closely associated with shri Jain math Hombuj and organises Dharma and Sãhitya sammelanas Credit goes to him of organising two Jaina conferences at Hubli and Bangalore.

M.C. Padmanabha Sharma : M.C Padmanabha Sharma is one of the great scholars of Jaina literature 'Jaina Darśana' 'Devãgama', 'Ãpta. mimãnse' are some of his works. 'Padãrtha sãra of Mãghanandi Ãchãrya has been edited by him and published with detail introduction

Manjayya Heggade : Manjayya Heggade of Dharmasthala was equally interested in Art, music and literature He was a pioneer to start sarva Dharma sãhitya sammelaha at Dharmsthala 'Paramãtma Prakãsha' Shri Gommateshwara' are his contribution to literature. He encouraged and patironised good number of writers and artists.

Dr. H.S. Madanakesari : Dr Madanakesari has devoted his whole life for the study and propogation of Jinavãni. Nearly fourty books are to his credit. 'Jina-Bhakti-gitagalu' 'Jina-gãna' 'Gommateśwara' 'Pancha-kalyãna' 'Manujamata' 'Ahimsa Patha' 'Jinadharma sãra' are some of them. Dr. Madanakesari has travelled vast to propogate jainism and he knows the pulse of common people. His writing has been described as simple, lucid and effective.

Dr. Dhanyakumar Ijari He has written books and useful articles on Jaina Ayurved. His books are well read.

Padmaraj Hunagund : His translation of Tagore's 'Tãra mandali' and marãthi novel 'Bandhanadãche' are known for faithful translation. 'Veera Yogi Swami Vivekãnanda' is a popular book. Padmaraj has command over Sanskrit English Marathi Kannada and Bengali. His translation of Basavannas Vachanasare even remembered. 'Prayers and meditation' 'The Glory that is BijaPur' 'The Glory that is Aihole Badãmi and Pattada kallu' are good examples of his English style.

Chandraraj Shetti : He has collected names of the writers, their books and photographs of Kannada writers in three volumes. 'Vidhi' 'Mugila Mane' 'Bharatada Mahanagaragalu' 'Kavi Muddana'

साधुओं को देखकर जिसके अन्तर् में हर्षोल्लास की उर्मियाँ नहीं उठतीं, उसका कल्याण अभी दूर है, यही कहा जा सकता है।

etc 20 books are written by him. One Anna series was popular in south karnataka Dist. He has written good number of booklets in this series short, simple and useful subject mattar was the main attraction of this series.

J.C. **Brahmasuraiah** : is known for his 'Karanãnuyoga' and 'Karma-Siddhãnta' volumes. He was an authority on Jaina siddhanta.

D.S. Paramaj : D.S. Paramaj was an advocate and written series of articles in 'Sanmati' monthly. A student of English literature Shri Paramaj gives lines from English poets to substantiate his argument. 'The Voice of Ahimsa' has comeout to represent his vast reading and meditation. The work is been translated into Kannada by Sujata.

Pandit. P. Nãgarrajaiah : Pã. Nagrrajaiah is interested in classical literature. Old Kannada poetry has become difficult to modern society. So he has tried to give the abridged editions with modern kannada rendering 'Jivandhara Charite' (Bhaskar), Vardhamãn charite (Ã channa), Ajitapurãna, (of Ranna), Ãdipurãna(Pampa), mallinãtha purãn (Nagachandra), Anantanãtha purãna (Janna)-the abridged form and the editorial notes are useful. He has handled these masterpieces with almost care and seriously so that nothing important portion is left out. 'Jaina Pãribhãshika Ratna Kośa' helps the students of Jaina classics 'A shantiraj shastri' 'Saraguru chandra sãgara' and Jwãlanaiah - these biographies are vivid and throw light on the rare qualities of the personalities.

Dr. SaraswatiVijayakumar : Saraswati Vijayakumar's contribution to kannada and prakrit literature is equally important 'Apabhransa Bhãśa mattu sãhitya' 'Jaina Katha Kośa' (with others) 'Kannada Ãdi Tirthankara charitegalu (Ph.D thesis) 'Oregallu'(Res. papers) 'Ratnatrayaru mattu Janapada' 'Digamber śwetãmbar paramparegalli Ãdipurãna prasangagalu have been authored by her She handles the subject with utmost care, collects information from various sources, presents her impressions with Judicious care.

Ramachandra syãdwãdi : He has published nearly 40 books on Jaina background. They include prose, poetry, plays and biography. To mention few of them - 'shri Ã dinãtha charite' 'Pãrśwanath charite' 'Mahavir charite' 'Ãcharya kundakunda Bharti' 'Dharma Darpana' (Novel) 'Sumana Sanchaya' (collection of articles) 'Daśa Dharma' etc

Jinadatta Desai : A retired Dist Judge is an ardent student of literature throughout his carrier, from student days he is engaged in composing poems. His travel experiences have been published in series. Two poetry collections have comeout. He is associated with literary activities of Kannada Sãhitya Parishat.

Ravi Upadhye : Ravi Upadhye is an another name among promising Jaina poets 'Nãku Nalavattu' 'Kalakali' 'Surya Koleyãgiddãne' 'Delhi mattu Pãnvãla' 'Khujaraho' 'Bisilu-male' are his popular collection of poems. 'Apoorva Vinyas' contains articles on criticism. A talented poet is coming up in Ravi Upadhye.

Dr. S.P. Padma Prasãda : Dr Padma Prasãda with the pen name 'kãvya Jivi' has brought more than six collection of poems. He is accepted by Kannada literary world as one of the best poets. He

is a creative writer with special approach to life.

He is equally good in writing plays, won prizes for his plays. 'Kannada Janapada sāhitya' is his Ph.D thesis. He is a pioneer in this field. Nobody thought of folk literature in Jaina community. But he travelled to collect folk songs, tales throughout Karnataka and presented them with judiciousness He has also written biography and presented research papers in the seminars.

Dharanendra Kurakure : Dharanendra is another name among Jain poets. 'Haraku pustaka' - collection of poems has been well received by critics. Nearly five collections are to his credit. Use of common language, pointed satire makes his poems effective. He has sucessfully translated Jeevandhar Kumar Hotpote's Chāvundarāya vaibhava into Hindi.

Poornima Gudibonde : Poornima is known for her poetry. She has adopted Jaina Purānas in the form of novel. Nearly 5 books have come out. She is a established poetess.

Dr. H.A. Pārśvanāth : A professor in a Govt Medical college Dr. Pārśvanātna has varied interests in art literature and stage He is closely associated with stage and brought a book on this background. His book on art, architecture of various places speak of his keen interest in searching antiquity and importance of art value.

Mention must be made of Ratanchand koti, T.R. Jodatti, Parśvanāth Kempannavar, S. Kamala, Dhārini, Shanta Sanmati Kumar, Jeevandhar Kumar Hotpete. Bahubadi Bhosage and many other Jaina writers who have contributed to Kannada Jaina literature

Kannada literature is rich and had universal appeal. The pure literary qualities attracted the scholars of all religion and so the contribution of Non-Jaina scholars is also worth mentioning. They studied Jaina literature, wrote articles, books. appriciation on it. They prescribed Jaina Texts for study. This approach expanded the scope of Jaina literature. At degree and post - graduate level Jaina Texts were prescribed and naturally educated youths of any religion became familier with Jaina literature. The service and devotion of the following scholars be considered. B.M. Shree, K G.Kundanagar, M.P. Pujar, Govind Pal, T.S. Shamarao, P.B Desai, Dr. R.C. Hiremath, D.Javaregouda, S. Settar, Chidanand Murthi, L. Basavaraj, A. Sundar, Venkatachalshastri, Kalaburgi, C.P. Krishna Kumar, D.K. Rajegonda, B. S. Sannaiah, K.R.sheshagiri, N S.Tārānath, Padmā Sheakher, Shrinivas Pādigār, Seetārām Jāhāgirdār and many more have contrinuted to the field of Kannada Jain literature, Jaina culture and Jain art and architecture.

The present paper will throw light on the literature produced by the Jaina writers of 20th century. It is said that 10th century was a golden period of Kannada literature and Jaina literature. The same spirit is seen in this century. Prose, Poetry, drama, biography, criticism and books on history culture, art-architecture and other social sciences lot of lilterature is produced by Jaina writers. It is important to note that this literature is recognised and accepted by Kannada literary field. As this literature is based on 'Vitaraga' it is universal and it will live a long period.

□

[illegible] की समस्त क्रियायें [illegible] और वैराग्य के लिए होती है। लौकिक [illegible], या विभूतियों का मिल जाना धर्म की कसौटी कदापि नहीं है।

मृत्यु-महोत्सव

जन्म-मरण की परम्परा अनादि है। जो जन्मा है, उसका मरण भी सुनिश्चित है। एक अन्तर्मुहूर्त मे 66336 बार तक जन्म-मरण इस जीव ने किए हैं। अष्टपाहुड़ में कहा गया है कि इस जीव ने जितने अस्थि-पजरों का त्याग किया है, उन सबको यदि इकट्ठा किया जा सके तो उनका परिमाण कुलाचलो के परिमाण से अधिक बैठेगा।

जन्म-मरण के इस दुष्चक्र से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय मृत्यु-महोत्सव या सल्लेखण है। भय, शोक, सक्लेश और कषाय से रहित होकर सावधानी के साथ देह का त्याग, सल्लेखना कहलाता है। वक्त आने पर जो खुशी-खुशी मौत का स्वागत करता है, वही वीर है।

आचार्य सकलकीर्ति ने कहा है कि हे भव्य जीव! जब तेरे बचने का कोई उपाय शेष न रह जाए, तब तुझे मृत्यु-महोत्सव मनाने की तैयारी शुरू करनी चाहिए। उनके शब्द है :-

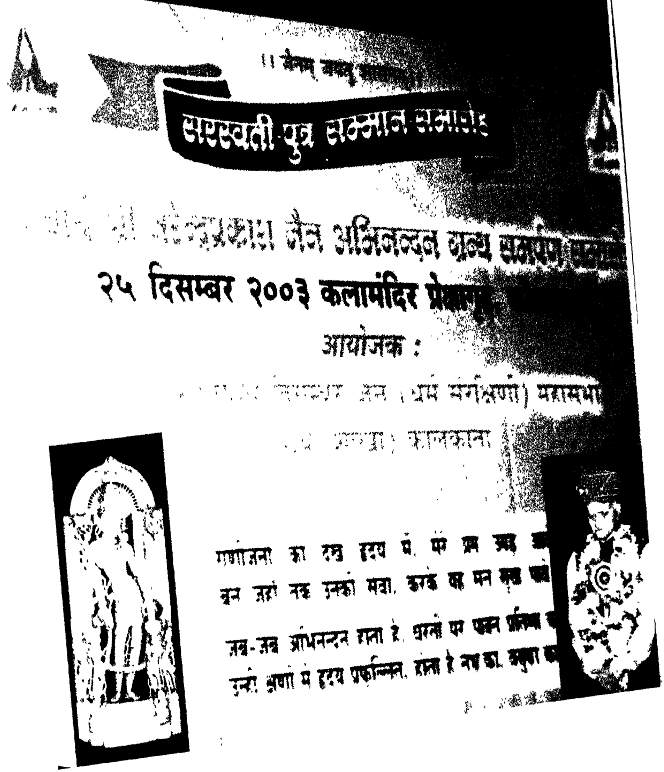
'मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते स्वर्ग-मोक्षादि सिद्धये।
समाधिमरणं यत्नात् साधयन्तु शिवार्थिनः।।'

धन्य है ये आचार्य, जो मृत्यु को कल्पवृक्ष की उपमा दे रहे हैं। यह सच भी है कि होश-हवास मे मरने का अवसर पाना किसी चिन्तामणि या कल्पवृक्ष के पाने से किसी भी तरह कम नही है।

—'जैन गजट'
(माँ इन्दुमती स्मृति अंक)

बुरे विचारो से पाप-बध होता है और पाप-बध ही दुर्गति, दुर्दशा या ससार-परिभ्रमण का कारण है।

समारोह की छवियाँ





प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी को प्रशस्ति पत्र भेंट करते हुए महासभा के केन्द्रीय अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार सेठी, उपाध्यक्ष श्री नीरज जैन, बंगाल महासभा अध्यक्ष श्री भागचन्द पहाड़िया, कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बड़जात्या, कोषाध्यक्ष श्री पवन मोदी, महामंत्री श्री महावीर प्रसाद गंगवाल, श्री धर्मचन्द पाटनी, प्रबन्ध सम्पादक डा. चिरंजीलाल बगड़ा, ब्र. श्री रवीन्द्र जी जैन एवं केन्द्रीय महासभा महामंत्री श्री चैनरूप बाकलीवाल।



अभिनन्दन ग्रन्थ ''मनीषा'' समर्पित करते हुए बंगाल महासभा कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बड़जात्या, कोषाध्यक्ष श्री पवन मोदी, केन्द्रीय महामंत्री श्री चैनरूप बाकलीवाल, श्री मदनलाल बज, केन्द्रीय अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार सेठी बंगाल महासभा अध्यक्ष श्री भागचन्द पहाड़िया एवं प्रतिष्ठाचार्य श्री गुलाबचन्द जी पुष्प।

सम्मान समारोह की छवियाँ



''स्याद्वाद वारिधि'' की उपाधि से प्राचार्य जी को अलकृत करते हुए
बगाल महासभा महामत्री श्री महावीर प्रसाद गगवाल,
कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बडजात्या,
अध्यक्ष श्री भागचन्द पहाडिया
साथ मे प्राचार्य जी की धर्मपत्नी श्रीमती गजेश्वरी देवी।



समारोह मे प्राचार्य दम्पति पर पुष्पवृष्टि के
अनुपम मनोहारी दृश्य
(प्राचार्य जी के बगल मे उनका कट आउट भी परिलक्षित है)



सम्मान समारोह की छवियाँ



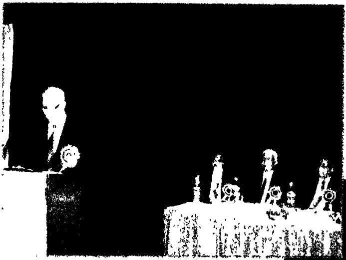
समारोह मे प्राचार्य दम्पति पर पुष्पवृष्टि के अनुपम मनोहारी दृश्य (प्राचार्य जी के बगल में उनका कट आउट भी परिलक्षित है)





समारोह का उद्घाटन करते हुए उद्योगपति श्री धर्मचन्द पाटनी, श्री सुरेशकुमार पाटनी साथ में महासभा के पदाधिकारीगण

सम्मान समारोह की छवियाँ



केन्द्रीय अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार सेठी वक्तव्य देते हुए।



बंगाल महासभा महामंत्री
श्री महावीर प्रसाद गंगवाल अपना अभिभाषण प्रस्तुत करते हुए।



सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा प्राचार्य जी को ग्रन्थ समर्पण।



समारोह अध्यक्ष श्री हरखचन्द सरावगी प्राचार्य जी का शाल ओढ़ाकर सम्मानित करते हुए।



प्राचार्य जी अपने सम्मान के उपरान्त कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए।

सम्मान समारोह की छवियाँ



कोलकाता नगर निगम मेयर श्री सुब्रत मुखर्जी ग्रन्थ की परिचय पुस्तिका का विमोचन करते हुए साथ में है प्राचार्य जी समारोह अध्यक्ष श्री हरखचन्द सरावगी, महासभा (बंगाल) अध्यक्ष श्री भागचन्द पहाडिया।



विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्राचार्य जी के सम्मान समारोह का उद्घाटन करते हुए श्री हुकमीचन्द सरावगी, गौहाटी



युवा कमठ कार्यकर्ता श्री अजीत पाटनी कार्यक्रम का सफल संचालन करते हुए।

सम्मान समारोह की छवियाँ



समारोह में उपस्थित जनसमुदाय का विहगम दृश्य।





सम्मान समारोह की छवियाँ

प्राचार्य जी के अभिनन्दन का अभूतपूर्व आयोजन सम्पन्न

देश के प्रमुख प्रबुद्ध विद्वानों एवं श्रीमन्तों के समक्ष अभिनन्दन ग्रन्थ "मनीषा" समर्पित। अद्भुत आयोजन से उपस्थित जनसमुदाय प्राचार्यजी के प्रति श्रद्धावनत हुआ। तालियों को गड़गड़ाहट के मध्य प्राचार्य दम्पत्ति पर पुष्प वृष्टि से समस्त वातावरण पुलकित हो उठा।

* विद्यार्थी से आदर्श शिक्षक, शिक्षक से प्राचार्य और अब प्राचार्य से आचार्य बने –**ब्र. रविन्द्रकुमारजी।**
* भगवान महावीर की मुद्रा धारण कर आदर्श उपस्थित करते हुए आत्म-कल्याण करें –**डॉ. प्रमीला शास्त्री।**
* विद्वानो के समागम एव सम्मान से कोलकाता जैन समाज गौरवान्वित –**भागचन्द पहाड़िया।**
* आर्ष मार्ग की ध्वजा को हमेशा कोलकाता समाज ने ऊँचाईयों पर पहुँचाया हे –**निर्मलकुमार सेठी।**
* सरस्वती पुत्रो के प्रति आदर, निष्ठा तथा सम्मान का भाव रखना कोलकाता समाज की गरिमा है ऐसे आयोजनो से कोलकाता समाज ने समस्त जैन समाज पर उपकार किया है –**चैनरुप बाकलीवाल।**
* एक करोड कोलकातावासियो की तरफ से प्राचार्यजी का अभिनन्दन है –**कोलकाता मेयर श्री सुब्रत मुखर्जी।**
* अन्तरग की प्रेरणा से विद्वत एव श्रीमन्त वर्ग की यहा उपस्थिति एव यह आयोजन अद्वितीय है, देखा और सुना नही केवल कल्पनाओं मे जैसा होता है ऐसा महोत्सव आज यहा हो रहा है –**पं. नीरज जैन।**
* हम समस्त जैनियो को गौरवान्वित होना चाहिए कि ऐसा आदर्श पुरुष हमारे साथ हे –**तिलोकचन्द सेठी।**
* कोलकाता समाज के परिश्रम का सुफल है यह अनोखा अद्भुत आयोजन –**डॉ. जयकुमार जैन।**
* बगाल महासभा ने अभूतपूर्व, विलक्षण, अद्वितीय कार्य किया है, जितनी प्रशसा की जाये कम है –**कपुरचन्द पाटनी।**

आयोजन में देश के विभिन्न भागों से, प्रबुद्ध विद्वानों के पधारने से कार्यक्रम में चार चाँद लगे, प्रतिष्ठित प्रमुख श्रीमन्तों ने भी पधारकर समारोह की गरिमा बढ़ाई, अनेक आयोजन, सम्मेलन, गोष्ठियाँ सम्पन्न, बंगाल महासभा की कार्यकारिणी की बैठक, महासभा की केन्द्रीय प्रबन्धकारिणी समिति की बैठक एवं खुला अधिवेशन, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का सम्मलेन सम्पन्न, दिगम्बर जैन पत्रकार परिषद का गठन, शास्त्री परिषद की कार्यकारिणी की सभा सम्पन्न, महिला संगोष्ठी में बाहर से समागत विदुषी महिलाओं का सम्मान, देश की विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्राचार्यजी का अभिनन्दन, अनेकों पुस्तकों का विमोचन सम्पन्न।

शाल, श्रीफल, प्रशस्ति, फूल-मालाओं से प्राचार्यजी का अभिनन्दन "स्याद्वाद-वारिधि" की मानद उपाधि से अलंकृत

कोलकाता 25 दिसम्बर 2003। सरस्वती पुत्र सम्मान समारोह का त्रिदिवसीय आयोजन अत्यन्त भव्यता एव अभूतपूर्व आयोजनो के साथ सम्पन्न हुआ। 23 दिसम्बर से 26 दिसम्बर तक कोलकाता में विभिन्न क्षेत्रो से पधारे प्रबुद्ध विद्वानो एव श्रीमन्तो ने प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के अभिनन्दन समारोह के विभिन्न आयोजनो मे भाग लिया। 23 दिसम्बर को बंगाल महासभा की कार्यकारिणी सभासदो की बैठक केन्द्रीय पदाधिकारियों के साथ सम्पन्न हुई जिसमे सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक विषयो पर निर्णय लिये गये। इस अवसर पर बगाल महासभा द्वारा प्रति वर्ष उच्च शिक्षा हेतु 5 मेधावी छात्रो को छात्रवृत्ति देने, कोलकाता में धर्म शिक्षण शिविर का निरन्तर आयोजन करने, धर्म शिक्षण हेतु स्थाई विद्वानो की व्यवस्था करने तथा बाहर से शिक्षा हेतु आगत विद्यार्थियो के आवास, भोजन की व्यवस्था हेतु छात्रावास की स्थापना करने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया। 24 दिसम्बर को प्रात. 10 बजे से धर्म सरक्षिणी महासभा की केन्द्रीय समिति की सभा प्रारम्भ हुई जो 25 दिसम्बर की रात्रि तक खुले अधिवेशन के विभिन्न सत्रो सहित चली। इस बैठक में देश के विभिन्न भागो से पधारे

अनेक महानुभावों, विद्वानों ने अखिल भारतीय स्तर पर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं सांगठनिक विषयों पर विचार विमर्श कर महत्वपूर्ण निर्णय लिये।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद की कार्यकारिणी की बैठक भी सम्पन्न हुई। यहाँ पधारे देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का सम्मेलन भी आयोजित हुआ, जिसमें दिगम्बर जैन पत्रकार परिषद का गठन कर पत्रकारों का संगठन बनाने का निर्णय लिया गया।

24 दिसम्बर को मध्यान्ह में स्थानीय श्री दिगम्बर जैन भवन मे श्रीमती शशी पाटनी की अध्यक्षता में स्थानीय महिला समाज द्वारा इस समारोह में पधारी विदुषी महिलाओं एवं प्राचार्यजी की धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरी देवी जैन का अभिनन्दन किया गया एवं सभी को शास्त्र भेंट किये गये। इस कार्यक्रम का संचालन श्रीमती सुधा जैन ने किया।

आयोजन के मुख्य कार्यक्रम में स्थानीय कला मन्दिर के भव्य मंच पर वृहस्पतिवार, दि. 25 दिसम्बर को सरस्वती पुत्र सम्मान समारोह का आयोजन अत्यन्त सादगी एवं भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी के आशीर्वाद स्वरूप कर्मयोगी ब्र. रविन्द्रकुमारजी एवं पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी के आशीर्वाद स्वरूप ब्र. डॉ. प्रमीला शास्त्री मंच पर विराजमान थीं। समारोह की अध्यक्षता कोलकाता समाज के वरिष्ठ समाजसेवी श्री हरखचन्द सरावगी ने की। श्री धर्मचन्द सुरेशकुमार पाटनी ने द्वीप प्रज्ज्वलन कर समारोह का उद्‌घाटन किया एवं श्री मोहनलाल पाण्डया ने ध्वजारोहण किया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि किसनगज के लोकप्रिय कार्यकर्ता श्री तिलोकचन्द सेठी भी मंच पर उपस्थित रहे। केन्द्रीय महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार सेठी एवं केन्द्रीय महामंत्री श्री चैनरुप बाकलीवाल ने भी मंच की शोभा बढ़ायी। विद्वानों के प्रतिनिधि के रूप में प्रख्यात विद्वान श्री नीरजजी जैन, ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक डॉ. भागचन्द भागेन्दु, प्रबन्ध संपादक डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा, बंगाल महासभाध्यक्ष श्री भागचन्द पहाड़िया, कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बड़जात्या, कोषाध्यक्ष श्री पवन मोदी एवं महामंत्री श्री महावीरप्रसाद गंगवाल मच पर उपस्थित थे।

कार्यक्रम का शुभारम्भ महिला सदस्यायों के मंगलाचरण एवं नृत्य से हुआ। स्वागत गीत–

म्हारे आंगणे उत्सव आज,
पधारो-स्वागत है श्रीमान!।

से सभी आनन्दित हो उठे।

स्वागत गीत के उपरान्त मंचासीन अतिथियो का माल्यार्पण से स्वागत किया गया।

बंगाल महासभा कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बड़जात्या ने आगत अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि– आप सबके पधारने से कोलकाता समाज गौरव का अनुभव कर रहा है।

महामंत्री श्री महावीर गंगवाल ने बंगाल महासभा की गतिविधियों की जानकारी देते हुए भविष्य की योजनाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना पर प्रकाश डाला।

डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा ने अभिनन्दन ग्रन्थ मनीषा के प्रकाशन, सपादन एवं इसकी विषय वस्तु पर विस्तृत जानकारी उपस्थित जनसमुदाय को दी।

इस अवसर पर अपने विचार रखते हुए केन्द्रीय महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार सेठी ने कहा कि आर्ष धर्म की ध्वजा हमेशा कोलकाता से फहरी है। कोलकाता समाज का सौभाग्य है कि वो हम सबके साथ आज निःस्पृही एवं बहुत बड़े विद्वान का सम्मान कर रही है। प्राचार्यजी का यश खुशबू की तरह चारों तरफ फैला हुआ है। इनका स्वागत सभी जगह लोग दिल से करते हैं, इनके चरण छूने को लालायित रहते हैं। कोलकाता नगरी स्वयं आज पूजित हो गई है। सारे विद्वत जगत का सम्मान किया है, सत्कार किया है आपकी कीर्ति चारों ओर फैलेगी। श्री निर्मलजी सेठी ने कहा कि स्वागत समारोह से प्रेरणा लेकर हमें धार्मिक पाठशालाएं, स्कूलों, कॉलेजों में शिक्षा की क्रान्ति लानी है। अपने संसाधनों को अपग्रेड करना है, नवीन तकनीक का लाभ उठाकर जैन समाज को आगे बढ़ाना है। उन्होंने इस अवसर पर उपस्थितं जन समुदाय को

शिक्षा-शिक्षा-शिक्षा का नारा दिया।

धर्म संरक्षिणी महासभा के केन्द्रीय महामंत्री श्री चैनरुप बाकलीवाल ने कहा कि प्राचार्यजी युग श्रेष्ठ सरस्वती पुत्र हैं। बंगाल महासभा ने विद्वानों के अभिनन्दन एवं ज्ञान के प्रचार का जो आयोजन किया है वह अद्वितीय है। यहां पधारे समस्त विद्वान एवं श्रेष्ठी वर्ग आयोजन की मधुरता, मिठास को साथ लेकर जायेंगे। उन्होंने कहा कि प्राचार्यजी आप भ्रमित समाज को सही सन्मार्ग पर लगावें, अपनी लेखनी से चेतना एवं जागृति लावें तथा साथ ही महासभा के पदाधिकारियों की भी क्लास लेकर उन्हें सन्मार्ग दिखावें। कोलकाता समाज का हम सब पर उपकार है, इन्होंने सरस्वती पुत्रों का सम्मान किया है तथा जो विद्वानों का सम्मान करती है वह संस्था अपना गौरव भी बढ़ाती है।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित कोलकाता नगर निगम के मेयर श्री सुब्रत मुखर्जी ने एक करोड कोलकातावासियों की तरफ से प्राचार्यजी का अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा विद्वानों का सर्वत्र सम्मान होता है– आप विद्या दान देकर ज्ञान की सेवा कर रहे हैं इस हेतु चिरकाल तक याद किये जावेंगे। विद्वानों की सेवाओ को सामाजिक स्वीकृति के लिए ऐसे आयोजनों की आवश्यकता है। धर्म हमें बांध कर रखता है तभी हम मानव से अमानव नही बनते और धर्म की शिक्षा का यह कार्य नरेन्द्रप्रकाशजी कर रहे हैं। उन्होंने महासभा के कार्यो की प्रशसा करते हुए कहा कि हम आपके साथ हैं, पुण्य कार्य करने वालों के साथ हैं।

इस अवसर पर श्री सुब्रत मुखर्जी ने नगर निगम द्वारा विद्यालय एवं शिक्षा संस्थान हेतु जमीन उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया जिसका जोरदार करतल ध्वनि से स्वागत हुआ।

वरिष्ठ विद्वान पं. नीरजजी जैन ने इस अवसर पर कहा कि ऐसा आयोजन कल्पनाओं मे लगता था, देखा सुना नही है। जो अपने आपमें सम्पूर्ण व्यक्ति है, आदर्श विद्वान है ऐसे मनीषी का चयन कर कोलकाता समाज ने अनुपम उदाहरण पेश किया है। उन्होंने कहा कि मैं लेखक एवं पत्रकार भी हूँ। मेरा दायित्व होगा कि जो मै देख रहा हूँ वह लोगो को बताऊँ, पर मेरी ऑखों ने अद्‌भुत आयोजन देखा है और ऑखों के पास वाणी नहीं है कि मैं कुछ बोल पाऊँ, क्या लिखूँ, क्या छोड़ूँ। उन्होने कहा मैंने अपने जीवन में अनकों महोत्सव आयोजन देखे हैं। 12-15 ग्रन्थों के समर्पण समारोह का साक्षी भी रहा हूँ पर आज जो देख रहा हूँ वह कुछ और ही है। यहॉ सब अन्तरंग की प्रेरणा से हजारो व्यक्ति उपस्थित है, जो भी यहा बैठा है अन्तरग की प्रेरणा से आया है। यह उत्सव ऐसा हो रहा है जैसा केवल कल्पनाओ मे ही हो सकता है।

श्री नीरजजी ने कहा गुरु कभी अवकाश प्राप्त नहीं होते, बोलना और देना गुरु का धर्म है और प्राचार्यजी अपना धर्म आज भी निभा रहे हैं, उनकी मेघा को नमन है।

किसनगंज से पधारे विशिष्ट अतिथि श्री तिलोकचन्द सेठी, ध्वजारोहणकर्ता श्री मोहनलाल पाण्डया, श्री कपुरचन्द पाटनी, गौहाटी, डा. जयकुमार जैन, मुज्जफरनगर, डा. अनुपम जैन, इन्दौर एवं श्री अनुपचन्द जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद ने भी अपने विचार रखे।

कर्मयोगी ब्र. श्री रविन्द्रजी एवं ब्र. डॉ. प्रमीला शास्त्री ने प्राचार्यजी को पूज्य ज्ञानमती माताजी एव पूज्य सुपार्श्वमती माताजी के आशीर्वाद प्रदान किये एवं उनके यशस्वी जीवन की मंगल कामना की।

प्राचार्य जी एवं उनकी धर्म पत्नी का मंच पर शॉल ओढाकर, प्रशस्ति पत्र भेटकर एवं फूल-मालाओं से अभिनन्दन किया गया। बंगाल महासभा, केन्द्रीय महासभा, सम्पादक मंडल, आयोजन स्वागत समिति द्वारा प्राचार्यजी को करतल ध्वनि के बीच अभिनन्दन ग्रन्थ "मनीषा" समर्पित किया गया। प्राचार्यजी एवं धर्मपत्नी पर उपर से अत्यन्त सुन्दर पुष्प वृष्टि हुई। पुष्प वृष्टि के दृश्य से सभी रोमांचित होकर खडे हो गये एवं करतल ध्वनि के साथ प्राचार्यजी का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर प्राचार्यजी को बंगाल महासभा एवं कोलकाता समाज तथा ग्रन्थ प्रकाशन समिति द्वारा "स्याद्वाद-वारिधि" की मानद उपाधि से भी अलंकृत किया गया।

सम्पादक मण्डल के सदस्यों को भी सम्मानित किया गया एवं समारोह में पधारे अतिथियो एवं विद्वानों के प्रति महासभाध्यक्ष श्री भागचन्द पहाड़िया ने आभार प्रदर्शित किया। अन्त में प्राचार्यजी ने अपने अभिनन्दन के लिए कृतज्ञता

ज्ञापित करते हुए कहा– बंगाल महासभा गौरव भारती संस्था की स्थापना कर अप्रकाशित शोध पुस्तकों का प्रकाशन अपने हाथ में लेवें तो जैन समाज का बहुत बड़ा उपकार हो सकता है।

समस्त अतिथियों के आवास, भोजन की व्यवस्था कोलकाता के प्रसिद्ध श्री दिगम्बर जैन भवन में की गई। भवन के ट्रस्टी श्री श्रवणकुमारजी जैन के अतुलनीय सहयोग से आगत अतिथियों का स्वागत सत्कार प्रशंसनीय रहा। इस आयोजन में प्राचार्यजी के कद का कट-आउट काफी चर्चित एवं प्रशंसनीय रहा।

समारोह का सफल संचालन अजीत पाटनी ने किया। आयोजन को सफल बनाने में बंगाल महासभा अध्यक्ष श्री भागचन्द पहाड़िया, कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचन्द बड़जात्या, कोषाध्यक्ष श्री पवन मोदी, महामंत्री श्री महावीरप्रसाद गंगवाल, संयुक्त मंत्री श्री अजीत पाण्डया, श्री प्रकाश पाटनी, जीर्णोद्धार मंत्री श्री सुरेश सेठी, प्रबन्ध सपादक डॉ. चिरंजीलाल बगडा, श्री अनिलकुमार, बड़जात्या, श्री मोहरीलाल छाबड़ा, श्री पवन जैन, श्री बसन्त कासलीवाल एवं अजीत पाटनी का विशेष सहयोग रहा। श्री महावीर युवा मण्डल के सदस्यों का सक्रिय सहयोग भी प्रशंसनीय रहा।

इस अवसर पर प्रकाण्ड विद्वान पं. शिवचरणलाल जी जैन, मैनपुरी द्वारा रचित शोध पुस्तिका "ज्ञान प्रवाद पूर्व" एवं श्री कपुरचन्द पाटनी-गौहाटी द्वारा प्रकाशित "शंका समाधान" तथा डा. कपुरचन्द जैन, खतौली द्वारा लिखित शोध पुस्तिका "संविधान विषयक जैन अवधारणायें" का विमोचन सम्पन्न हुआ। पं. महेश शास्त्री द्वारा बनाये वर्धमान कलैण्डर का भी विमोचन किया गया। प्राचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाशित जैन पत्र-पत्रिकाओं जैन गजट, श्रुत संवर्धनी, वीर निकलंक, अहिंसा संदेश, दिशा बोध एव वर्धमान संदेश के विशेषाकों का लोकापर्ण भी किया गया। अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद द्वारा इस अवसर पर प्रा. निहालचन्द जैन, बीना को स्व. कल्याणचन्द पाटनी स्मृति पुरस्कार एव प्रतिष्ठाचार्य सनतकुमार विनोदकुमार जैन, रजंवास को स्व. अमरचन्द पहाड़िया स्मृति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

विद्या विनय और विवेक के जीवन्त व्यक्तित्व की यशोगाथा "मनीषा" के समर्पण समारोह का यह अद्वितीय आयोजन चिर स्मरणीय रहेगा।

अजीत पाटनी
सयुक्त मंत्री पं. बगाल महासभा

जैन सम्पादक सम्मेलन सम्पन्न

"दिगम्बर जैन पत्रकार परिषद का गठन"- प्राचार्य जी के अभिनन्दन समारोह की महत्वपूर्ण उपलब्धि

कोलकाता। सरस्वती पुत्र सम्मान समारोह के अवसर पर गत 25 दिसम्वर 2003 को स्थानीय श्री दिगम्बर जैन भवन के सभागार में जैन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का सम्मेलन सानन्द सम्पन्न हुआ। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी की अध्यक्षता में आयोजित सम्पादक सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से पधारे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने इसमें भाग लेकर जैन पत्रकारिता की दशा एव दिशा–आगामी कार्यक्रम/व्यवस्थायें आदि पर गहन चिन्तन मनन किया। इस अवसर पर जैन पत्रिकाओं के सम्पादको/पत्रकारों के एक सबल संगठन के गठन पर विचार विर्मश हुआ जिससे विभिन्न विवादास्पद विषयों पर आपसी खींचतान न होवे एव वार्ता चलती रहे– तथा समाज को सगठित होकर सही दिशा निर्देश प्रदान किये जा सकें आदि अनेकों उद्देश्यों हेतु इसके संगठन की सभी ने आवश्यकता महसूस की।

सर्वसम्मति से **"दिगम्बर जैन पत्रकार परिषद"** का गठन किया गया एवं इसके संचालन एवं प्रारम्भिक व्यवस्थाओं हेतु तीन सदस्यों की एक तदर्थ समिति बनाई गई। श्री सुरेन्द्र भारती, बुरहानपुर के संयोजकत्व मे डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता एवं डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर की तीन सदस्यीय समिति एक वर्ष के कार्यकाल में सदस्यता अभियान/संस्था का पंजीयन व नियमावली बनाने एवं अन्य विषयों पर निर्णय लेगी।

सम्पादक सम्मेलन में देश के प्रतिष्ठित 22 पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने भाग लिया।

देश की विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्राचार्य जी का सम्मान

कोलकाता। अभिनन्दन समारोह का मुख्य आयोजन वृहस्पतिवार 25 दिसम्बर को कला मन्दिर प्रेक्षागृह मे सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर देश एवं स्थानीय अनेकों संस्थाओं द्वारा प्राचार्य जी का सम्मान/अभिनन्दन का कार्यक्रम 26 दिसम्बर 2003 को स्थानीय श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर जी के सभागार में कर्मयोगी ब्रह्मचारी श्री रवीन्द्र कुमार जी जैन, हस्तिनापुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मंच पर श्रेष्ठ विद्वान एवं श्रीमन्त उपस्थित थे– समारोह का दीप जलाकर उद्‌घाटन किया गौहाटी के श्री हुकमीचन्दजी सरावगी ने।

इस अवसर पर विभिन्न संस्थाओ द्वारा प्राचार्यजी का शाल ओढाकर, श्रीफल भेंटकर, माला पहनाकर एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मान किया गया।

श्री भा. दि. जैन धर्म संरक्षिणी महासभा की राजस्थान प्रान्त, झारखण्ड प्रदेश, आसाम एवं पूर्वांचल, नागालैंड, बिहार प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि राज्यों की शाखाओं के पदाधिकारियो द्वारा एवं निम्न संस्थाओ द्वारा अभिनन्दन किया गया–

श्री भा. दि. जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा, श्री अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद, श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत परिषद, श्री तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत महासंघ, श्री दिगम्बर जैन महासमिति, श्री दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, श्री दि. जैन मध्यलोक शोध संस्थान, श्री अ. भा. दि. जैन युवा परिषद, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, गंजपन्था तीर्थ क्षेत्र कमेटी, श्री बंगाल बिहार उडीसा दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, गौहाटी दिगम्बर जैन पंचायत, रांची दिगम्बर जैन पचायत, अ भा शाकाहार परिषद (म प्र.), अहिंसा प्रचार समिति, कोलकाता, जैन युवा संगठन, कोलकाता, जैन क्लिनिक, दि जैन हास्पीटल रिसर्च सेन्टर-शिखरजी, आशाराम भिवानीवाल हास्पीटल, पुष्पांजली, अरिहंत मण्डल, श्री जैन सभा, श्री दि. जैन सम्मेलन, श्री दि. जैन युवक समिति, श्री दि. जैन नवयुवक मण्डल, प्रबुद्ध जैन विचार मंच, श्री दि. जैन नया मन्दिर महिला परिषद, श्री डबसन रोड समाज, श्री बंगवासी दि. जैन समाज, श्री महावीर युवा मण्डल, रिसड़ा जैन समाज, बड़ाबाजार महिला समाज, सुप्रभात महिला मण्डल, अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज, राजुल महिला मण्डल, हावड़ा, बड़ा बाजार समाज, निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, जीवन ज्योति, दि. जैन मानस्तंभ निर्माण समिति, श्री दि. जैन पदमावती पौरवाल समाज, श्री दि जैन मुनिसंघ प्रबन्धक समिति ज्ञान श्री सम्पादक मण्डल, श्री अ.भा.दि. जैन खण्डेलवाल समाज, श्री दि. जैन विद्यालय, श्री दि जैन बालिका विद्यालय, आदि।

अभिनन्दन समारोह में कोलकाता पधारे प्रमुख विद्वान एवं श्रीमन्तगण

प्रमुख विद्वतगण : ब्र. रवीन्द्र जी जैन, हस्तिनापुर, ब्र. प्रमिला शास्त्री, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत, कार्याध्यक्ष : श्री अ. भा.दि. जैन शास्त्री परिषद, डॉ. जयकुमार जैन, मुज्जफरनगर, महामंत्री : श्री अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद, डॉ. कपुरचन्द जैन, खतौली, डॉ. श्रीमती ज्योति जैन, खतौली, डॉ. सुरेन्द्र भारती, बुरहानपुर, सम्पादक : पार्श्व ज्योति, डॉ. सुशील जैन, मैनपुरी, श्री शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी, पं. जयन्त जैन, सीकर, डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर, नागपुर, श्री सुरेश सरल, जबलपुर, डॉ. भागचन्द जैन भागेन्दु, दमोह, पं. लालचन्द जैन राकेश, गंजवासोदा, डॉ. धर्मचन्द जैन, कुरुक्षेत्र, पं. शिखरचन्द जैन, सागर, पं. खेमचन्द जैन, जबलपुर, श्री कपुरचन्द धुवारा, टीकमगढ, श्री रत्नेशकुमार जैन, रॉची, सम्पादक . अहिसा सन्देश, डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद, सम्पादक : तीर्थकर वाणी, अध्यक्ष : तीर्थकर ऋषभदेव विद्वत महासघ, डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर, महामंत्री : तीर्थंकर ऋषभदेव विद्वत महासंघ, डॉ. संजीव सर्राफ, सागर, श्री रमेश कासलीवाल, इन्दौर, सम्पादक· वीर निकलंक, प्र. गुलाबचन्द पुष्प, टीकमगढ़, पं. पदमचन्द शास्त्री, पानीपत, डॉ. फुलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी, अध्यक्ष : अ.भा.दि. जैन विद्वत परिषद, प्रा. शीतलचन्द जैन, जयपुर, दि. जैन संस्कृत आचार्य महाविद्यालय, सांगानेर, पं पदमचन्द पहाड़िया, जोधपुर, पं. राकेश शास्त्री, जयपुर, पं. ज्योति बाबु शास्त्री, जयपुर, पं. आलोक शास्त्री, जयपुर, पं. आनन्द शास्त्री, जयपुर, पं. निहालचन्द जैन, बीना, प्र. जय निशान्त, टीकमगढ़, सम्पादक : संस्कार सागर, प्र. सनत कुमार जैन, रजवांस प्र. विनोद कुमार जैन, रजवांस, श्री नीरज जैन, सतना, श्री निर्मल जैन, सतना, श्री सुरेश मारोरा, जबलपुर, श्री शैलेश

कापड़िया, सूरत, सम्पादक : जैन मित्र, डॉ. अनिल जैन, अहमदाबाद, श्री उत्तमचन्द जैन राकेश, ललितपुर, श्री कुलदीप कुमार जैन, एटा, सम्पादक : करुणा दीप, श्री भरत कुमार काला, मुम्बई, डॉ. विमला जैन, फिरोजाबाद, श्री अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर, श्री लालमणि जैन, ग्वालियर, डॉ. राका जैन, लखनऊ, डॉ. शीतलचन्द जैन, सागर, डॉ. अशोक जैन, लाडनूं पं. अरुण शास्त्री, व्यावर, पं. इन्द्रसेन जैन, सहारनपुर, डॉ. कमलेश जैन, वाराणसी, श्री अनुपचन्द जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद श्री उमेश जैन, फिरोजाबाद, श्री प्रदीप जैन, भरतपुर।

प्रमुख श्री मन्तगण : श्री निर्मलजी सेठी, नई दिल्ली, अध्यक्ष महासभा, श्री चैनरुपजी बाकलीवाल, गुड़गांव, महामंत्री महासभा, श्री डुंगरमल गंगवाल, नई दिल्ली, कोषाध्यक्ष महासभा, श्री हुकमीचन्द सरावगी, गौहाटी, अध्यक्ष गौहाटी समाज श्री कपुरचन्द पाटनी, गौहाटी, श्री पदमचन्द पाटनी, दिल्ली, जस्टिस मानचंन्द जैन, जयपुर, श्री ताराचन्द जैन, देवघर, अध्यक्ष : झारखंड प्रदेश दि. जैन धार्मिक न्यास बोर्ड, श्री रामगोपाल जैन, अध्यक्ष : बिहार प्रदेश दि. जैन धार्मिक न्यास बोर्ड, श्री धर्मचन्द रारा, मंत्री : रॉची दि. जैन समाज, श्री महावीर प्रसाद सौगाणी, रॉची, श्री हरिप्रसाद पहाड़िया, कतरासगढ, महामंत्री : भा.दि. जैन महासभा, बिहार, श्री चाँदमल पाण्डया, किसनगंज, अध्यक्ष : भा.दि. जैन महासभा, बिहार, श्री माणकचन्द पाटनी, इन्दौर, राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष : भा.दि. जैन महासमिति, डॉ. रमेशचन्द जैन, निवाई, श्री बाबुलाल छाबड़ा, लखनऊ, श्री ज्ञानमल शाह, अहमदाबाद, श्री सुधेश जैन, लखनऊ, श्री विमल जैन, नई दिल्ली, श्री पवन जैन, नई दिल्ली श्री कमल रांवका, लखनऊ, श्री शान्तीलाल बड़जात्या, अजमेर, श्री एवं श्रीमती कुमुद सोनी, अजमेर, श्री एव श्रीमती विजय लुहाड़िया, नई दिल्ली, श्री अनप्पा नेलवेगी, कर्नाटक, श्री जे.के जैन, मुम्बई, श्री जमनालाल जैन, मुम्बई, श्री त्रिलोकचन्द सेठी, किसनगंज, श्री कन्हैयालाल सेठी, औरंगाबाद, श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर, श्री हुलास सेठी, डीमापुर, श्री भागचन्द सेठी, डीमापुर, श्री प्रभात टोंग्या, डीमापुर, श्रीमती इन्दू जैन, दिल्ली, श्री राकेश जैन, दिल्ली, श्री अरिहत जैन, दिल्ली, श्री सागरमल चुड़ीवाल, बरपेटा रोड, श्री रविकान्त जैन, फिरोजाबाद, श्री लोकेन्द्र पाल जैन, फिरोजाबाद, श्री सुरेशचन्द जैन, इसौली, श्री प्रेमचन्द जैन, नारखी, श्री विरेन्द्रकुमार जैन, रेमजा, श्री नेमीचन्द जैन, पिलखतर, श्री देवेन्द्रकुमार जैन मामा, फिरोजाबाद, श्री भरतेश जैन, फिरोजाबाद, श्री नानकचन्द जैन, एत्मादपुर, श्री जे.के. जैन, (एस.बी.आई), फिरोजाबाद, श्री मनोज जैन, फिरोजाबाद, श्री भारतेन्दु जैन, फिरोजाबाद, श्री विजयकुमार जैन (देवता), फिरोजाबाद, श्री हरिकिसन जैन, फिरोजाबाद, श्री ललितेश जैन, फिरोजाबाद, श्री चन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद, श्री विमल जैन (रेटा वाले) फिरोजाबाद, श्री प्रमोद जैन (राजा) फिरोजाबाद, श्री कमलकुमार जैन, आलमपुर, श्री रमेशचन्द जैन बैरिस्टर, फिरोजाबाद, श्री कश्मीरचन्द जैन, फिरोजाबाद, श्री ओमप्रकाश जैन, फिरोजाबाद, श्री प्रेमचन्द जैन (फरिया) फिरोजाबाद, श्री शान्तिप्रकाश जैन, फिरोजाबाद, श्री जयप्रकाश जैन, फिरोजाबाद, श्री कुसुम जैन, फिरोजाबाद, श्री दिनेशचन्द जैन, फिरोजाबाद, श्री राजेश जैन, फिरोजाबाद, श्री मनोज जैन, फिरोजाबाद, श्री अमित जैन (एस.बी.आई.) फिरोजाबाद, श्री सुधीर जैन, फिरोजाबाद, श्री प्रकाश जैन, फिरोजाबाद, श्री सुरेशचन्द जैन, फिरोजाबाद, श्री अरविन्द जैन, दिल्ली, श्री प्रताप जैन, दिल्ली, श्री सुरेन्द्र जैन, दिल्ली, श्री राकेश जैन, दिल्ली आदि।

□

प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जी – एक गौरवशाली व्यक्तित्व

प्राचार्य पंडित नरेन्द्र प्रकाश जी से मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क उतना अधिक नहीं रहा परन्तु उनके लिए मेरे मन में विशेष आदरभाव है। प्राचार्य जी का व्यक्तित्व जितना भव्य उदार और गौरवशाली है उनका कृतित्व उतना ही प्रभावी, सारपूर्ण और जनहितकारी है। सरस्वती की आराधना करते हुए उन्होंने जीवन के सात सार्थक दशक जीये हैं। समाज को जिनवाणी का सरस अमृत पान कराने वाले पं. नरेन्द्र प्रकाश जी अपने ओजस्वी प्रवचनों के कारण व्यापक रूप से लोकप्रिय हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की सार्थकता इसी में प्रकट है कि समाज आज उन्हें समादृत करते हुए स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा है। उनका जीवन इस नीतिवाक्य को चरितार्थ करता है कि 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते'। वे समाज की विभूति हैं, प्रकाश स्तम्भ हैं। दर्शन, साहित्य, इतिहास, संस्कृति, चिन्तन आदि सभी क्षेत्रों में उनकी गहरी पैठ है। उनकी रचनाओं में प्रौढ़ चिन्तन और सत्य की झलक है। समाज उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए कुछ दिन पहले श्रमण वर्ग के प्रति श्रावकों के कर्तव्यों को लेकर उनका एक लेख पढ़ा। इससे स्पष्ट, तर्कपूर्ण तथा प्रभावी शब्द जोड़ पाना शायद ही किसी के लिए सम्भव हो। वे एक सिद्धहस्त लेखक एवं ओजस्वी वक्ता हैं। शिक्षा, सेवा, साधना और श्रमण सस्कृति के उन्नयन में उनका जीवन समर्पित रहा। समाज ने उन्हें वाणी भूषण, व्याख्यान वाचस्पति, मनीषी विद्वान आदि उपाधियों से अलकृत किया है। धर्म और संस्कृति के प्रति अपनी गहरी आस्था के कारण पंडितजी ने एक बार चोरी हो गई जैन-मूर्तियो की बरामदगी के लिए सत्याग्रह तक किया था।

इन सरीखे व्यक्तित्व के धनी सरस्वती पुत्र के सम्मान में एक अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन एक स्तुत्य कार्य है। समाज वहीं जीवन्त रहता है जो अपने विद्वानों का आदर करता है। कहा भी है 'सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्'। शास्त्री परिषद के अध्यक्ष व जैन गजट के कुशल सपादक के रूप में अपने ओजस्वी विचारों से प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी समाज का मार्ग दर्शन कर रहे हैं। उनके अभिनन्दन के अवसर पर मैं पंडित जी की दीर्घायुष्य की कामना करते हुए उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

साहू रमेशचन्द जैन, नई दिल्ली
प्रबन्ध न्यासी-भारतीय ज्ञानपीठ

☐

अनोखा और अविस्मरणीय आयोजन - किसकी अधिक सराहना करूँ

प्राचार्यश्री नरेन्द्र प्रकाश जी के शानदार अभिनन्दन उत्सव की जो अविस्मरणीय और आनन्द दायक स्मृतियाँ साथ लेकर लौटा हूँ, बार बार जुगाली करके उनका सुख संवेदन कर रहा हूँ। प्राचार्य जी के प्रति आप लोगों की श्रद्धा-विनय, वात्सल्य और प्रेम-भावना देखकर चकित हूँ। समझ नहीं पाता कि उनके गुणों को सराहूँ, या आपके समर्पण-भाव की सराहना करूँ। एक कवि मित्र की दो पंक्तियाँ याद आती हैं–

एक दिन गोपियाँ बाँसुरी सुनने के लिये लालायित थीं, पर उस दिन किशोर कृष्ण किसी कारण रूठ गये थे। कहा–'आज नहीं सुनाऊंगा। बड़ी चाहत है सुनने की तो लो यह बॉसुरी ले जाओ, बजाकर सुन लेना।' राधा ने अनुनय भरे स्वर में कहा–खेल है केवल तुम्हारी साँस का, अन्यथा क्या, एक टुकड़ा बाँस का?

कृष्ण प्रसन्न हो गये होंगे समस्या सुलझ गई होगी। कुछ समय बाद एक दिन राधा रूठ गई। मनाने के लिये कृष्ण ने प्रलोभन दिया– चलो बाँसुरी सुनाते हैं। मानिनी राधा ने कहा– चलो हटो, 'बहुत बॉस हैं गोकुल में, हम स्वयं बना लेंगे, बजा लेंगे, और जितना मन होगा, सुन लेंगे बाँसुरी।' कृष्ण ने मनाते हुए प्रलोभन दिया–'अरे, उन बाँस के टुकड़ों में क्या धरा है? तुम्हें आनन्द तो मेरे बजाने में है न, चलो बजाता हूँ।' राधा ने सीधा सा उत्तर दिया– जो न होता एक टुकड़ा बाँस का, अर्थ क्या होता तुम्हारी साँस का?

बस, कुछ ऐसी ही समस्या मेरे सामने है। समझ नहीं आता किसकी अधिक सराहना करूँ? आयोजन में जो भी हुआ, अनोखा और अविस्मरणीय हुआ। दोनों की महानता उसमें प्रेरक रही। वही मूल कारण बनी।

कोलकाता का वह सुविचारित और सुघड़ आयोजन जिन मित्रों की लगन, निष्ठा, उत्साह, और समर्पण के बल पर सफल हुआ उन्हें बधाई देता हूँ तथा आप सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

नीरज जैन, सतना

☐

जटौआ के लाल और फिरोजाबाद के गाँधी सम्मान्य प्राचार्य जी

आपकी कलम में सचमुच जादु है।

हमारा एक विद्यार्थी है, जो कभी-कभी सुनाता है कि हम अपने पापा की बारात में गये थे। इस बार आपकी बारात में हमें भी सपरिवार जाने का अवसर मिला। क्या व्यवस्था थी। नहाने को गरम पानी से लेकर नाई और मोची तक की। सुबह-शाम खाने को पकवान, दोपहर में फलाहार, रात्रि मे दूध और फलाहारी नमकीन और मिठाइयॉ। लगातार तीन दिनों तक सब कुछ था। आते समय रास्ते के लिये बायनों (नाश्ता) रखना भी नही भूले कलकत्तावासी। छोटे-बड़े सभी सदस्यो का ध्यान। अब हमें गम नहीं है कि आपकी प्रथम बारात मे हम नही जा सके। जा भी नही सकते थे, क्योंकि जन्म तो मेरा सन् 1950 में हुआ है। हॉ' जब जा सकते थे तो आपने पूरा अवसर दिया। और मै भी पूरा बनिया निकला। व्याज में परिवार को भी ले गया। इस सौहार्द के लिये हार्दिक आभार।

वाराणसी में काफी सर्दी पड़ रही है। अत. जब कलकत्ता से आये तो रविवार 28 दिसम्बर को 7 बजे शाम को ही सो गया और रात्रि में दो बजे नींद खुल गई। 'मनीषा' का लघु संस्करण बगल मे टेबल पर रखा था, सो अनायास ही हाथ में आ गया। प्रारम्भिक अवलोकन और सम्पादकीय आदि को पढ़ने के पश्चात् 66 पृष्ठीय आत्मकथ्य एक ही बैठक मे पढ गया। आपकी कलम में सचमुच जादू है।

आपने बड़ी बारीकी से परत-दरपरत खोले हैं अपने जीवन के और पाठको को वक्ता और सुलेखक बनने के लिये दस-दस टिप्स भी दे दिये। गाँव-परिवार की सारस्वत विभूतियों का स्मरण कर आपने अपने सम्मान मे उन्हे भी सहभागी बना लिया। बड़ी ताई का पूज्य बाबूजी के प्रति छुटपन में व्यवहार की घटना पढकर शरीर में सिहरन पैदा हो गई। भला हो उस जमुना मेहतरानी का जो समय पर आ गई।

पूज्य बाबूजी की अस्थिर आजीविका और आपकी स्थिर आजीविका– दोनों दो नदी के किनारे हैं। जो-जो देखी वीतराग ने।

विधायक जगन्नाथ लहरी का विनोद और पूज्य माता जी का दॉत लगवाने से इन्कार वाली घटना तथा बन्दर वाली घटना जब पत्नी और बच्चों को सुनाई तो वे सभी बिना हँसे नहीं रहे।

आदरणीय मामा रत्नेन्दुजी का भाषण तो मुझे आज भी अच्छा लग रहा है। हॉ, यह बात अलग है कि बीच मे ही आपके मस्तिष्क की विद्युत्तरगों का फ्यूज उड़ गया। पर यह अच्छा ही हुआ। बार-बार फ्यूज उडने के झंझट से हमेशा के लिए मुक्त हो गए। उधर पठ् धातु के रूप भी जीवन भर याद रहेंगे।

सत्याग्रही आन्दोलनो के लिए आत्मशान्ति और त्याग की आवश्यकता होती है और सगठन के लिए वक्तृत्व शक्ति और कठोर अनुशासन। सो ये सभी गुण आपमें कूट-कूट कर भरे हैं। सफलता आपके चरण चुमेगी ही।

अन्त में एक बात और जब कला मन्दिर प्रेक्षागृह में आप दम्पती के सम्मान मे बहारें ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रही थीं तो आप वैसे ही लग रहे ये जैसे कमठ भगवान् पार्श्वनाथ पर उपसर्ग कर रहा हो और जैसे भगवान् ने निर्विकार रूप से सब कुछ सहा, वैसे ही आपने सपत्नीक समाजकृत सम्मान-उपसर्ग को सहा।

सम्मान के प्रति आपके जैसा उदासीन भाव इससे पहले मैने कभी किसी विद्वान् मे नहीं देखा।

कमलेशकुमार जैन, वाराणसी

☐







विद्यादेवी सरस्वती

सर्वज्ञ तदह वन्दे
परं ज्योतिस्तमोऽपहम्
प्रवृत्ता यन्मुखाद् देवी
जैन वाणी सरस्वती।

जैन विद्यादेवियों में सरस्वती को प्रधानता प्राप्त है। जिनवाणी के समर्थ प्रतीक के रूप में सरस्वती मूर्ति की परिकल्पना जैन मूर्ति कला में प्रारम्भ से पाई जाती है।

विद्वानों को सम्मानित करने के बहाने विद्या और विद्वत्ता के अभिनन्दन की ही संयोजना की जाती है।

आवरण पृष्ठ पर लाडनूं में प्राप्त सरस्वती-प्रतिमा का चित्र आयोजकों के इसी अभिप्राय का सूचक है।

मनोहर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी देवी के मस्तक पर अधिष्ठाता तीर्थंकर भगवान का अंकन जिनशासन का प्रतीक है। उनके हाथों में तीर्थंकर की वचन-गंगा का अध्यात्मरस से भरा कमण्डलु, स्याद्वाद का प्रतीक ग्रन्थ, उपासना की सूचक अक्षमाला और निर्लिप्तता को रेखांकित करता हुआ कमल अंकित है। यथास्थान आज्ञावर्ती देवता तथा उपासक दम्पति देवी सरस्वती के ऐश्वर्य का उद्घोषक परिकर है।